परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

हिन्दी शब्द सागर

भाग -०१

सम्पादक

श्याम सुन्दर दास

प्रकाशक

नागरी प्रचारिणी सभा

वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

हिंदी शब्दसागर

प्रथम भाग

["अ" से "ईहित" तक, शब्दसख्या—१८०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचद्र शुक्ल
अमीरसिह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचद्र वर्मा

स्व. विनोद चन्द्र पाण्डे सा
की स्मृति मे उत्तराधिकारी से
प्राकृत भारती अकादमी जयपुर
द्वारा पुस्तकालय को भेट स्वरूप प्राप्त।

सपादकमडल

सपूर्णानद	कमलापति त्रिपाठी
मगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड	रामधन शर्मा
हरवशलाल शर्मा	शिवनदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पाडेय
भोलाशकर व्यास	करुणापति त्रिपाठी
(सह० सयो०)	(सयोजक, सपादकमडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द १९०७ स० २०४२ वि० १९८६ ई०

मूल्य नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ६३३)७५

मूल्य..... ₹५०.००

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा

नागरी मुद्रण, वाराणसी

में मुद्रित

प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन में उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दो का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एव द्योत्य भावों मे परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव मे इन शब्दो के द्वारा किसी जाति के जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों का इतिहास उपस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यो ज्यो सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठीक किया जा रहा है। इस अवस्था मे यह बात स्पष्ट समझ मे आ सकती है कि जातीय जीवन मे शब्दो का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुज्वल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की सपन्नता या शब्दबहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालो का सबसे बडा सहायक भी होता है। विशेषत अन्य भाषा भाषियो और विदेशियो के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् सपत्ति और उस भाषा के भडार का सबसे बडा निदर्शक होता है।

जब अँगरेजो का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ सबध स्थापित होने लगा, तब नवागतुक अँगरेजो को इस देश की भाषाएँ जानने की विशेष आवश्यकता पडने लगी; और फलत वे देशभाषाओ के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश मे आधुनिक ढग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशो की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओ मे से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अँगरेज लोग हिंदुस्तानी कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रीयुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरो मे सन् १७७३ मे लदन मे छपे थे। इनमे से एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' का और दूसरा 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७९० मे मदरास में छपा था जो श्रीयुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन १८०८ मे जोसफ टेलर और विलियम हटर के समिलित उद्योग से कलकत्ते मे एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी काश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरात १८१० मे एडिन्बरा मे श्रीयुक्त जे० बी० गिलक्राइस्ट का और सन १८१७ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन सस्करण हुए थे। इनमे से अतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों मे थे और इनका व्यवहार अँगरेज या अँगरेजी पढे लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरो मे जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२९ मे कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दो के अर्थ अँगरेजी में और या अँगरेजी शब्दो के अर्थ हिंदी मे होते थे। इन कोशकारो मे श्रीयुक्त एम० डब्ल्यू० फैलन का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योकि इन्होंने साधारण बोलचाल के छोटे बडे कई कोश बनाने के अतिरिक्त, कानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दो के भी कुछ कोश बनाए थे। परतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अँगरेजी कोश' था उसमे यद्यपि अधिकाश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नही थी, और कदाचित् फारस के अदालती लिपि होने के कारण ही उसमे शब्द फारसी लिपि मे, अर्थ अँगरेजी मे और उदाहरण रोमन मे दिए गए थे। सन् १८८४ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था वह भी बहुत अच्छा था और उसमे भी हिंदी तथा उर्दू शब्दो के अर्थ अँगरेजी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८७३ मे मु० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रीयुक्त पादरी जे० डी० बेट ने पहले सन् १८७५ मे काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमे हिंदी के शब्दों के अर्थ अँगरेजी मे दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी के शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही थे। बेट के कोश के भी पीछे से दो और सशोधित तथा परिवर्धित सस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ मे ही पेरिस मे एक कोश का कुछ अश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थ फ्रासीसी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८८० मे लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि मे ही, परतु शब्द उसमे अधिकाश हिंदी के थे। सन् १८८७ मे तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमे सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रीयुक्त मधुसूदन पडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा कोश श्रीयुक्त मुन्नीलाल का था जो दानापुर मे छपा था और जिसमे अँगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी मे दिए गए थे। सन् १८८१ और १८९५ के बीच मे पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्राय स्कूलो के विद्यार्थियों के काम के थे। १८९२ मे बाँकीपुर से श्रीयुक्त बाबा बेजूदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरात 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मगलकोश' 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमे हिंदी शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतो और मुहावरो आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवी शताब्दी के आरभ से ही मानो हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रो तथा पुस्तको की सख्या भी बढने लगी और पढनेवालों की भी सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगो मे प्राचीन काव्यो आदि को

पढ़ने की उत्कठा बढने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियो को हिंदी-भाषा का एक ऐसा वृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पडने लगी, जिसमे हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनो मे व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दो का समावेश हो, क्योकि ऐसे कोश के बिना आगे चलकर हिंदी के प्रचार मे कुछ बाधा पहुँचने की आशका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बडे बडे और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्राय उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष मे हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का वृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नही तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष मे हुआ था। हिंदी मे सर्वांगपूर्ण और वृहत् कोश का अभाव सभा के संचालको को १८९३ ई० मे ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिह जी से प्रार्थना की थी। महाराजा ने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए १२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरभ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पडने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनो की एक उपसमिति इस सबध मे विचार करने के लिये नियुक्त की, पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बडे बडे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक २५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संबध मे फिर श्रीमान् दरभगानरेश को लिखा था, परतु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरभ नही हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रबध न हो जाँय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरभ कर दिया।

सन् १९०४ मे सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक बहुत बडा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस सबध मे कुछ कार्य भी आरभ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी मे एक बहुत बडा कोश तैयार हो जाय, स्वय उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नही था। अत सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी सचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्राय तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे मे थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परतु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा न थी, विधाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रबंध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वय अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के सचालको ने आपस मे इस विषय की सब बातें पक्की कर लीं, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीयुक्त रेवरेंड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रबधकारिणी समिति मे यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक वृहत् और सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले, और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय मे उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित सज्जनो की एक उपसमिति नियत कर दी—रेवरेंड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, पडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, बाबू गोविददास, बाबू इद्रनारायण सिह एम० ए०, छोटेलाल, मुशी सकटाप्रसाद, पडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमे सब बातो पर पूरा विचार किया गया। अत मे ९ नवबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमे सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी-भाषा के दो बडे कोश बनवावे जिनमे से एक मे तो हिंदी शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही रहें और दूसरे मे हिंदी शब्दो के अर्थ अँगरेजी में हो। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य मे जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशो मे समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथासाध्य उदाहरणों सहित दिए जायँ। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्राय दो सौ अच्छे अच्छे ग्रथों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दो का अर्थसहित सग्रह कर लिया जाय, कोश की तैयारी का प्रबंध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के सपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रबध करने के लिये एक सपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के सबध में आवश्यक प्रबध करने के लिये महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, बाबू इद्रनारायण सिह एम० ए०, बाबू गोविददास, पडित माधवप्रसाद पाठक और पडित रामनारायण मिश्र बी० ए० की प्रबधकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मत्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रबधकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनो को भी अपने मे सम्मिलित कर ले। इस कोश के सबंध मे प्रबधकर्तृ समिति को सम्मति और सहायता देने के लिये एक और बडी समिति बनाई जाने की सम्मति भी दी गई जिसमे हिंदी के समस्त बडे बडे विद्वान् और प्रेमी सम्मिलित हो। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम मे लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओ से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रबधकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरभ कर दिया। शब्दसग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमे से शब्दसग्रह का कार्य भी आरभ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के वचन मिले, जिसमें से १९०२) नगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और बहुत सभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परतु सर सुदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरभ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

का वचन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमो के वचन मिले। तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायतार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटो, महाराजो तथा अन्य सज्जनो से सहायता प्राप्त हुई—

सयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब रीवाँ	१८००)
„ महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
„ महाराज साहब बीकानेर	१५००)
„ महाराजाधिराज बर्दवान	१५००)
„ महाराज साहब अलवर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराजा साहब काश्मीर	१०००)
„महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुँवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
„ महाराज साहब इदौर	५००)
„ स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावो से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थी, उन पुस्तको को सभासदो मे बाँटकर उनसे शब्दसग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदो ने पुस्तकें तो मँगवा ली पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतो ने तो महीनो पुस्तकें अपने पास रखकर अत मे ज्यो की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगो ने पुस्तकें भी हजम कर ली। थोड़े से लोगों ने शब्दसग्रह का काम किया था, पर उनमें भी सतोषजनक काम इने गिने सज्जनो का ही था। इसमे व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अत दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसग्रह का काम वेतन देकर कुछ लोगों से कराया जाय। तदनुसार प्राय १६-१७ आदमी शब्दसग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसग्रह का काम होने लगा।

आरभ मे कोश के सहायक सपादक पडित बालकृष्ण भट्ट, पडित रामचद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचद्र वर्मा पडित वासुदेव मिश्र, पडित रामवचनेश मिश्र, पडित ब्रजभूषण ओझा, श्रीयुत वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसग्रह के काम मे सम्मिलित थे। शब्दसग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नही रही। कोश मे पुस्तको के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दो की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी मे पुस्तकें नहीं थी। अतः सभा ने मुशी रामलगनलाल नामक एक सज्जन को शहर मे घूम घूमकर अहीरो, कहारो, लोहारो, सोनारों, चमारों, तमोलियो, तेलियो, जोलाहो, भालू और बदर नचानेवालो, कूचेबदो, धुनियो, गाडीवानो, कुश्तीबाजों, कसेरो, राजगीरो, छापेखानेवालों, महाजनो, बजाजो, दलालो, जुआरियो, महावतो, पमारियों, साईसो आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनो, कपडो, अनाजो, पेडो, बरतनो, देवताओ, गृहस्थी की चीजो, पकवानो, मिठाइयो, विवाह आदि की रस्मो, तरकारियों, सागो, फलो, घासो, खेलो और उनके साधनो, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसग्रह के साथ साथ यह काम भी प्राय दो वर्ष तक चलता रहा। इस सबध मे यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुशी रामलगनलाल का इस सबध का शब्दसग्रह बहुत सतोषजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियो, मछलियो, फूलो और पेडो आदि के नाम एकत्र करने के लिय कलकत्ते भेजा था जिन्होने प्राय. ढाई मास तक वहाँ रहकर इपीरियल लाइब्रेरी से 'फ्लोरा और फॉना आफ बृटिश इंडिया सीरिज' की समस्त पुस्तको मे से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा मे व्यवहृत होनेवाले अंगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो की जीवनियो, प्राचीन स्थानो तथा कहावतो आदि के सग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिंगल और बुंदेलखंडी आदि भाषाओ के शब्दो का भी अच्छा सग्रह किया गया था। इसमे सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश मे हिंदी भाषा मे व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायें और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अंगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओ के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो और स्थानो के नामो आदि की एक बडी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढाने के लिये हिंदी के बडे बडे विद्वानो के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष मे सभा का अनेक बडे बड़े राजा महाराजाओ तथा प्रातीय और भारतीय सरकारो से कोश के सहायतार्थ बडी बडी रकमे भी मिली, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियो को कोश के तैयार होने मे किसी प्रकार का सदेह नही रह गया और सभा बडे उत्साह से कोश का काम कराने लगी। आरभ मे सभा ने यह निश्चित नही किया था कि कोश का सपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुझे कोश का प्रधान सपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के आरभ मे शब्दसग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपो पर शब्द लिखे गए थे, उनकी सख्या अनुमानत १० लाख थी, जिनमे से आशा की गई थी कि प्राय १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्राय यही बात अत मे हुई भी। जब शब्दसग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षरक्रम से लगाई जाने लगी। पहले वे स्वरो और व्यजनो के विचार से अलग अलग की गईं और तब स्वरो के प्रत्येक अक्षर तथा व्यजनो के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गईं। जब स्वरो की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गईं, तब व्यजनो के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गईं। यह कार्य प्राय. एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के सपादन का भार मुझे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायँ और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०९ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वहीं कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपें अक्षरक्रम से लग चुकी थीं और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरंभ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जबू पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वहीं कोश के संपादन का कार्य आरंभ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू अमीर सिंह तो यथासमय जबू पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू अमीर सिंह के जबू पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरंभ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू अमीर सिंह जबू पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जबू न पहुँच सके, अतः सहायक संपादक के पद से उनका संबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में संमति लेने के लिये आरंभ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरंभ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने मँगाए। अंत में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरंभिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापढ़ी करके छपाई के संबंध में सब बातें तै कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० से सितंबर, १९१० तक तो जबू में कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जबू में दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू अमीर सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहीं बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जबू में फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जबू में सहायक संपादकों की संख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जबू से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू अमीर सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें सम्मिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जबू में तो पहले सब सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब सब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा घट तो गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी वांछित थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', और 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी कापी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। इस समय तक मैं भी काश्मीर से लौटकर काशी आ गया था, जिससे कार्यनिरीक्षण और व्यवस्था का अधिक सुभीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिपों को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रखे गए। उस समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादित की हुई स्लिपों को दोहराया करते थे, और संध्या को चार बजे से पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के संबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१२ में छपाई का कार्य आरंभ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ९६—९६ पृष्ठों की चार संख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें ८६६६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित संख्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रुडाल्फ हार्नली प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामबिहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अंकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अँगरेजी दैनिक लीडर तथा हिंदी साप्ताहिक बंगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसंख्या भी दिन पर दिन बहुत ही संतोषजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि कोशविभाग काशी में ही रहे और मेरी

अनुपस्थिति मे स्वर्गवासी पडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परतु मेरी अनुपस्थिति मे पडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक सपादकों में कुछ अनबन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय सपादक लोग प्रबधकारिणी समिति के अनेक सदस्यो तथा कर्मचारियो से बहुत रुष्ट और असतुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह झगडा भीषण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रो मे उसके सबध मे कडी टिप्पणियाँ निकलती रही। सभा के कुछ सदस्य तथा बाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनो ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अबतक कोश मे जो व्यय हुआ है, वह सब सभा को देकर कोश की सारी सामग्री उससे ले ली जाय और स्वतत्र रूप से उसके सपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से सपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मुझपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोषारोपण किए गए थे। इस आदोलन मे व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोडे ही दिनो मे यह अप्रिय और हानिकारक आदोलन ठढा पड गया और फिर सब कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयासि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस बडे काम मे भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य मे कुछ हानि नही पहुँची।

सन् १९१३ मे कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह बराबर नियमित रूप से सपादित होने लगा और सख्याएँ बराबर छपकर प्रकाशित होने लगी। बीच बीच मे आवश्यकतानुसार सपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी बीच मे पडित बालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था मे भी बडे उत्साह के साथ कोशसपादन के कार्य मे लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन बढती हुई अशक्तता के कारण अभाग्यवश नवबर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वहीं थोडे दिनो बाद उनका देहात हो गया। उस समय बाबू रामचद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक बना दिए गए और कार्यक्रम मे फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पडी। निश्चित हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह आगे के शब्दो का अलग अलग सपादन करें और पडित रामचद्र शुक्ल तथा बाबू रामचद्र वर्मा सपादित किए हुए शब्दो को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम मे यह सुभीता हुआ कि आगे का सपादन भी अच्छी तरह होने लगा और सपादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे, और दोनों ही कार्यों की गति मे भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक बराबर काम चलता रहा और कोश की १५ सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसख्या मे बहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस बीच मे और कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरभ में तीन सहायक सपादको ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक सपादकों ने 'वि' तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनो से कोश की बहुत कापी तैयार रहने पर भी अनेक कारणो से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित न हो सका जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश विभाग का व्यय बहुत अधिक था और कोश के सपादन का कार्य प्राय समाप्ति पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग मे केवल दो सहायक सपादक--पडित रामचद्र शुक्ल और बाबू रामचद्र वर्मा--तथा स्लिपो का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पडित ब्रजभूषण ओझा रह गए। इस समय आगे के शब्दो का सपादन रोक दिया गया और केवल पुराने सपादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जब आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्राय समाप्त हो चलीं, और आगे नए शब्दों के सपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तब सपादनकार्य के लिये बाबू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अत में त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले गए। परतु स्लिपों को दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ मे कोश के सबध मे एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरभ मे शब्दसग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थी, उनके २२ बडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमे 'विव्रोक' से 'श' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थी। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थी जो छप चुकी थी। इन स्लिपो के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नही हुई, क्योंकि सब छप चुकी थी। परतु शब्द-सग्रहवाली स्लिपो के चोरी जाने से अवश्य ही बहुत बडी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशो आदि से शब्द एकत्र करने पडे। यह शब्द-सग्रह अपेक्षाकृत थोडा और अधूरा हुआ और इसमे स्वभावत: ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शब्द नही आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रथों आदि के उदाहरण ही सम्मिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस त्रुटि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट मे बहुत से छूटे हुए शब्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ मे कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग मे दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए--एक तो कोश के भूतपूर्व सपादक बाबू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र बाबू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग मे प्राय एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने मे और विशेषत: व, श, ष तथा स के शब्दो के सपादन मे अच्छी सहायता मिली। जब ये दोनो सज्जन सभा से सबध त्यागकर चले गए तब सपादन कार्य के लिये श्रीयुत् पडित वासुदेव मिश्र, जो आरभ मे भी कोशविभाग मे शब्दसग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर बहुत दिनो तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक सपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से सपादन कार्य बहुत ही सुगम हो गया और वह बहुत शीघ्रता से अग्रसर होने लगा। अत मे इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का सपादन आदि समाप्त हुआ।

इतने बड़े शब्दकोश मे बहुत से शब्दो का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यो ही सब शब्दो का सग्रह करना बडा कठिन काम है, जिस पर एक जीवत भाषा मे नए शब्दो का आगम निरतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दो का सग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जाँय, तथापि जबतक यह सग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तबतक और नए शब्द भाषा मे सम्मिलित हो जायँगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नही माना जा सकता। इन कठिनाइयो के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बडे कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमे अनेक त्रुटियो का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति मे प्राय २० वर्ष लगे। इस बीच मे समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दो का पता लगता था जो शब्दसागर मे नही मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार सगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर मे छप तो गए थे, परतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अत यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दो और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप मे दे दिया जाय। तदनुसार प्राय एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप मे दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल मे जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमे दे दिए गए हैं। साराश यह कि इसके सपादको ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्ण बनाने मे उठा नहीं रखी है। इसमे जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके सपादको को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके सपादको ने भी इस कार्य को करके बहु कुछत सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा मे उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बडा और व्यवस्थित आयोजन दूसरा अबतक नही हुआ है। जिस ढग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बडी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावो के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायँ क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बँगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा मे आधुनिक वैज्ञानिक ढग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नही हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमे वही पुराना ढग काम मे लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नही किया गया था। परतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नही आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के सबध में जिज्ञासु को भी और भ्रम मे डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर के सपादको को एक ऐसे नए क्षेत्र मे काम करना पड़ा था जिसमे अभी तक कोई काम हुआ ही नही था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूँढते थे, और तब एक या दो वाक्यो मे उसका भाव स्पष्ट करते थे, और यदि यह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उस वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे, और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरात उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पडता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दो का अतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो शब्दो को लीजिए। शब्दसागर मे इन दोनो के अर्थों का अतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है--'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो के मूल भाव मे अतर है। टँगना' शब्द मे ऊँचे आधार पर टिकने या अडने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द मे ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयो के पारिभाषिक शब्दो के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यो मे मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमे आए हैं जो पहले कभी किसी कोश मे नहीं आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठको ने आरभ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यो का पढना और पढाना, एक ऐसे कोश के अभाव मे, प्राय असभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव बिल्कुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पडता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होगे कि हिंदी के अधिकाश छपे हुए काव्यो मे न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दो के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातो से पाठको ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश मे जो कुछ प्रयत्न किया गया है, बिल्कुल नए ढग का है। इस प्रयत्न मे इसके सपादको को कहाँ तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परतु सपादको के लिये यही बात विशेष सतोष और आनद की है कि आरभ से अनेक बडे बडे विद्वानो ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गगानाथ झा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बडा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगो ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस सबध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संबध मे न हम शास्त्रीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमे भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असभव बात नही है। इसी प्रकार जीवनी के सबध मे मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। सशोधित संस्करण मे ये त्रुटियाँ दूर की जायँगी।

इस प्रकार यह वृहत् आयोजन २० वर्ष के निरतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनतर समाप्त हुआ है। इसमे सब मिलाकर ९३,११५ शब्दो के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरभ मे हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य मे सभा का अबतक १०, २७, ३५।) ८६ व्यय हुआ है, जिसमे छपाई आदि का भी व्यय सम्मिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढकर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नही हुआ और इसके पहले ही इसके खडो को दो दो और तीन तीन बेर छापना पडा है और इस समय इस कोश के समस्त खड प्राप्य नही हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा बडा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रथ समाप्त भी नही हुआ था, वरन् यो कहना चाहिए कि अभी इसका थोडा ही अश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरभ हो गया था और यह काम अबतक चला जा रहा है, पर असल और नकल में जो भेद ससार मे होता है वही यहाँ भी दीख पडता है। यदि इस सबध मे कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयो ने चोरी पकडे जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य मे आरभ से लेकर अत तक पडित रामचद्र शुक्ल का संबध रहा है, और उन्होने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकाश श्रेय पडित रामचद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमे कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयो का समीचीन विवेचन प्राय उन्ही का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक सपादको की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असभव ही होता। शब्दो को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्ही पर था। फिर आगे चलकर थोडे दिनो बाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचद्र वर्मा ने भी इस काम मे उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालो मे दूसरा मुख्य स्थान बाबू रामचद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका सबध भी प्राय आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने मे बहुत अधिक सुगमता हुई है। आरभ मे उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने मे बहुत अधिक परिश्रम किया था, और तदुपरात वे इसके निर्माण और सपादित की हुई स्लिपो को दोहराने के काम मे पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से समिलित हुए। उनमे प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढग जानते हैं, और उनके इन गुणो से इस कोश को प्रस्तुत करने मे बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्राय उन्ही पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के सपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनो सज्जनो को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय पडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नही रह सकता। उन्होने इस कोश के सपादन मे बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने मे बहुत सहायता मिली है। जिन लोगो ने आरभ मे शब्दसग्रह आदि या और कामो में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानो, सहायकों तथा दानी महानुभावो के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होने किसी न किसी रूप मे इस कार्य को अग्रसर तथा सुसपन्न करने मे सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियो को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योकि उनकी कृपा से हमे अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओ के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनद और सतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असभव नही तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी
३१-१-१९२९

श्यामसुदरदास
प्रधान सपादक

संपादकीय प्रस्तावना

निघटु: आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समाम्नाय)

वैदिक (विरल या क्लिष्ट) शब्दो के सग्रह को 'निघटु' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघटु का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघटुओ मे एकमात्र यही निघटु उपलब्ध है। पर निरुक्त' से जान पडता है कि यास्क' के पूर्व अनेक निघट बन चके थे। इस विषय की सक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघटु' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघटु' पचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायो को 'नैघटुक काड' कहा गया है। इन काडो के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायो मे 'यास्क' ने व्याख्या की है इनमे १३४१ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दो की हुई है निघटु के परिगणित शब्दो मे सज्ञा अर्थात् नाम और आख्यात एव अव्यय पदो का सकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २१ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनो अध्यायो मे पर्यायवाची अथवा समानार्थ-बोधक शब्दो का समूह है इनमे भी अनेक शब्द ऐसे है जो अनेकार्थक हैं। 'निघटु' मे तो उनका सग्रह पर्यायरूप मे ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन मे उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए है। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या मे इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय मे २७८ स्वतत्र पदों का (जो किसी के पर्याय नही हैं) एकत्रीकरण दिया गया है। इनमे मुख्यत दो प्रकार के शब्द है--(१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक सस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नही है। अतिम पचम अध्याय को दैवतकांड कहा गया है जिसमे वैदिक देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघटु' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नही, इनमे कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमे प्रमुख है। डा० कील्ड ने भी हस्तलिखित ग्रथो के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषड्क और उत्तरषड्क--दोनो की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनो के निर्माता भी सभवत भिन्न रहे होंगे। परतु राजवाडे ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खडन किया है। ऐसे भी पडित हैं जो 'यास्क' को ही निघटु और निरुक्त--दोनो का रचयिता मानते हैं। स्कद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघटु' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नही है।

कोशविद्या के विचार से 'निघटु' ग्रथ को विकासक्रम का आरभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमे विशिष्ट वैदिक ग्रथ के शब्दों का सग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दो का सकलन है। इस कोश में नाम, आख्यात और अव्यय शब्दो का सकलन किया गया है। यह गद्य माध्यम से हुआ है, छदोबद्ध नही है। पर्यायसकलन या अन्यसग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था इसमे तिङन्त (आख्यात), सुबत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-सकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमे पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दो का सग्रह मिलता है। इन्हें हम चार विभागो मे बाँट सकते हैं --(१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्याय-वाची भिन्न भिन्न शब्दो का सग्रह, (३) अनेकार्थ शब्दो का सग्रह और (४) देवताओ के प्रमुख और अप्रमुख नामो का सग्रह। अज्ञात-व्याकरण-सस्कारवाले शब्द भी सगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघट' के अतिरिक्त अन्य अनेक निघटु' भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक वैयाकरण एव अनेक निरुक्तकार हो चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघटु' के अतिरिक्त अन्य निघटु भी वर्तमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१।२० तथा ७।१५) से सकेत मिलता है कि 'निघटु' शब्द अनेक निघटुओ का वाचक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघटु अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अश भी कौत्सव्य द्वारा सकलित 'निघटु' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूणि' का उल्लेख किया है। बृहद्देवता मे भी 'यास्क' के साथ साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनो ही ग्रथ--'निघटु' और 'निरुक्त'--उन्ही के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूणि' का एक निघटु भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघटु ग्रथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघटु' का अर्थ है--वह शब्दसमूह जो वेदो से चुनकर एकत्र किए हुए शब्दो का अर्थद्योतन करे। इस अर्थद्योतन मे अनेक शब्दो का अर्थद्योतन कभी एक साथ होता है और कभी पृथक् पृथक्। इसमे सामान्यत शब्द-सकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की सयोजना मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघटु मे हों अथवा न हों--(१) समानार्थक धातुओ का सग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयो एव अव्ययपदो का सग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओ के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाडे' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन--इस उपलब्ध 'निघटु' मे नही है। फिर भी ऐकपदिक काड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी ढूढ जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' काड मे तथा कथित अव्युत्पन्न शब्द लक्षण सबधी उपर्युक्त अगो मे नही आते। अत कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अगो की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'निघटु' के लिये उपर्युक्त चतुरग लक्षण आवश्यक मान लिया था, और उस प्रकार के अनेक ग्रथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघटु निर्मित हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दो तथा पर्यायवाची नामो और आख्यातो एव अव्ययो का बडे श्रम के साथ आचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक सग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यबद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यबद्ध कोशों के लिये—विशेषत पर्यायवाची कोशो का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रथ पर भी जहाँ एक ओर निघटुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के काडत्रय का प्रभाव भी 'त्रिकाडकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पडा। विषय की दृष्टि से न सही, पर काड शब्द और 'तीन की सख्या' इन दोनो अशो मे अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नहीं।

निरुक्त के आरभ मे ही कहा गया है—'समाम्नाय समाम्नात स व्याख्यातव्य। तदिम समाम्नाय निघण्टव इत्याचक्षते।' अर्थात् समाम्नाय की (जो गुरुपरपरा से वैदिको द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघटव' (निघटु) कहते है। इस शब्द का विकास 'निगतव' मे हुआ है। सभवत अनेक 'निघटु' थे, इसी से बहुवचन मे प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायो मे 'नामपदों' और 'आख्यातपदो' की पर्यायबद्ध सूची है। चौथे अध्याय मे क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप मे और ५वें मे देवतावाचक शब्दो का सग्रह है।

लगभग दो सहस्र वर्षों बाद १८वी शती मे 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघटु' के शब्दो और उनके अर्थों का पद्यबद्ध सयोजन किया गया है।

वैदिक निघटुओ की परपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परतु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—मे इस नाम के ग्रथो की परपरा चलती रही। आयुर्वेद के परपराकथित अवतारी आचार्य 'धन्वतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वतरि निघटु' है। किंवदती-अनुसारी श्लोक मे 'विक्रमादित्य' के नवरत्नो मे इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनौषधिवर्ग—श्लोक ५०) के अनुसार धन्वतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। सभवत चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रथ में पारिभाषिक शब्दो के अर्थ के साथ साथ उनके गुण दोष का भी इसमे वर्णन है श्लोकबद्ध यह 'वैद्यकनिघटु'—सभवत परवर्ती तद्वर्गीय ग्रथो का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवी शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम से एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। 'हेमचंद्र ने भी 'निघटुशेष' नामक ग्रथ का निर्माण किया था। १८वी शती के उत्तरार्ध मे अनेकशास्त्रविद्याविशारद काष्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघटु' (या 'मदनपाल विनोद' नामक विशाल ग्रथ बनाया था। इसमे मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध है।)

सस्कृत कोश· प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघटुकोशो और 'निरुक्त ग्रथो' के अनतर सस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमे उपलब्ध होते हैं। इस सबध मे 'मेक्डानल्ड' ने माना है कि सस्कृत कोशों की परपरा का उद्भव (निघटु ग्रथों के अनतर) धातुपाठो और गणपाठो मे हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप मे धातुओ और गणशब्दो का व्याकरणोपयोगी सग्रह—इन उपर्युक्त पाठो मे हुआ। पर उनमे अर्थनिर्देश न होने के कारण उन्हें केवल धातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर सस्कृत के अधिकाश कोशो मे जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देश शैली का विकास हुआ है वह धातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णत पृथक् है। निघटु ग्रथो से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघटुओ मे वैदिक शब्दो का सग्रह होता था। उनमे क्रियापदो, नामपदो और अव्ययो का भी संकलन किया जाता था। परतु सस्कृत कोशो मे मुख्यत केवल नामपदो और अव्ययो का ही सग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमे व्युत्पत्तिनिर्देश नही है। वैदिक निघटुओ मे सगृहीत शब्दो का सबध प्राय विशिष्ट ग्रथो से (ऋग्वेदसहिता या अथर्वसहिता का अथर्वनिघटु) होता था। इनकी रचना गद्य मे होती थी। परतु सस्कृत कोश मुख्यत पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमे अनुष्टुप् छद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोडकर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है 'धनजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था सभवत महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दो का संग्रह बनाना।

सस्कृत कोशो का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमे इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस सबध मे विद्वानो ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर सस्कृत कोशो को तीन कालखडो मे विभाजित किया है—(१) अमरकोश-पूर्ववर्ती सस्कृत कोश, (२) अमरकोशकाल तथा (३) अमरकोश-परवर्ती सस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके 'नामलिंगानुशासन' मे उल्लेख नही मिलता है। परतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना मे पूर्ववर्ती कोशो के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका मे लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'कात्यायन' नामक 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठातर के आधार पर व्याडि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वतरि' के 'धन्वतरिनिघटु' नामक वैद्यक निघटु (कोश) का सकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका मे 'भागुरि' के

कोश की भी—जिसका नाम 'त्रिकाडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती बताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रथसूची मे आज भी उल्लिखित है। 'रति' या 'रतिदेव' और 'रसम' या 'रसमपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'—पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानद' ने 'अमरकोश की अपनी टीका मे बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशो मे केवल लिगो का सग्रह है और 'त्रिकाड' एव 'उत्पलिनी' मे केवल शब्दो का। परतु 'अमरकोश' मे दोनो की विशेषताएं एकत्र समिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वतरि' आदि अनेक कोशकारो का क्षीरस्वामी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारो और 'त्रिकाड', 'उत्पलिनी', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रथो का परिचय दिया है।

अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवी शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वतरिनिघटु' तथा पाडुलिपिसूची मे उल्लिखित एकाध अन्य ग्रथ को छोडकर) आज उपलब्ध नही हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशो मे दो प्रकार की शैलियाँ (कदाचित्, प्रचलित थी—(१) कुछ कोश (सभवत) नामो (सज्ञाओं) का ही और कुछ लिगो का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामतत्र (नामपारायणात्मक) तथा लिगतत्र (लिगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशो मे लिगो का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमरसिंह' ने अपने कोश मे दोनो का एक साथ अत्यत प्रौढ सयोजन और विवेचन किया है। आरभ मे ही उन्होने तीसरे से पाँचवे श्लोक तक अपने कोश मे प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ ही साथ लिंग का निर्णय भी होता है।

तीन काडों के इस ग्रथ मे क्रमश दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिंग का आद्यत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिंगानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वय ग्रथकार ने बताया है कि अन्य तत्रो से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए सक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों मे विभक्त—इस 'नामलिंगानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार काडों और वर्गो का विभाजन किया गया है। वस्तुत देखा जाय तो प्रथम दो काड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय काड मे नाना प्रकृति के इतर नामपदो का सग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग मे विशेष्यानुसारी लिगादि में प्रयुक्त होनेवाले नामपदो का सग्रह है। 'सकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिंग की ऊहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग मे नानार्थ नामो का 'कात, खात' आदि क्रम के अनुसार सग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग अव्यय शब्दो को सकलित करनेवाला है, और अतिम वर्ग लिंगादिसग्रह कहा गया है एव उसमे शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिंग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिंग-निर्देश की क्रमबद्ध पद्धति बताई गई है।

यह कोशग्रथ मुख्यत पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय काड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली मे परिशिष्टाश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल मे सस्कृत कोशो की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यत. केवल नानार्थ कोश के रूप मे हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ का अशत पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओ के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमे क्रमश एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दो का योजनाबद्ध रूप से सकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी बने हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रथ 'वर्णदेशना' है, जिसमे लिखावट मे स्वल्पाधिक भेदो के कारण होनेवाले वर्णविन्यास सबधी वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्ही का एक कोश 'त्रिकाडकोष' भी है जिसमे अमरसिंह के कोश मे छूटे हुए, पर तद्युगीन भाषा मे प्रचलित, शब्दो का सग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमे विरल प्रयोगवाले 'एकार्थ' और 'अनेकार्थ' शब्दो के दो भाग हैं। स्वय लेखक ने लिखा है कि इस ग्रथ मे अत्यत विरल शब्दो का सग्रथन हुआ है।

'अमरसिंह' के अनतर कोशकारो और कोशग्रथो पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण कर लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्थ' कोश भी अमरकोश के नानार्थ वर्ग के आधार पर प्राय बहुमुखी विस्तारमात्र रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश मे अवश्य कुछ अधिक वैशिष्ट्य दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय मे एकाक्षर, द्वयक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का सकलन है। 'कैकक', 'कद्विक', आदि भी अध्यायो के नाम हैं। 'अमरकोश' का तरह ही शब्द के अतिम वर्णानुसार कात, खात आदि रूप मे शब्दो का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रथ भी वस्तुत इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायो मे क्रमश 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिगभेद' नामक चार विभिन्न भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से सस्कृत कोशो का निर्देश नीचे किया जा रहा है

शाश्वत का अनेकार्थसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णत निश्चित न होने पर भी ६०० ई० के आसपास के काल मे इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाश्वतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के सक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पडता है। ८०० अनुष्टुप छदो के इस काश का छह भागो मे विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागो मे क्रमबद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणो (पूरे श्लोक), दो चरणो (आधे श्लोक), और एक चरण मे दिए गए हैं।

चौथे भाग में एक एक चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं और पचम तथा षष्ठ विभागो मे अव्यय हैं।

भट्ट हलायुध (समय लगभग १० वीं शताब्दी ई०) के कोश का नाम **अभिधानरत्नमाला** है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच काड (स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची काड हैं, पचम मे अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द सगृहीत हैं। इसमे पूर्वकोशकारो के रूप मे **अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और वोपालित** के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिग-बोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ९०० श्लोको के इस ग्रथ पर **अमरकोश** का पर्याप्त प्रभाव जान पडता है। पिंगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसम 'हलायुध' ने धातुओं के लट्लकार के भिन्न भिन्न रूपा का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश (समय १०५५ से १३३७ के मध्य) का **वैजयती-कोश** अत्यत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएं हैं। यह वृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्ण-क्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमे आधुनिक कोशों की अकारादि-वर्णानुक्रमपद्धति का बीज दृष्टिगोचर होता है। परतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है--द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं--(१) पर्यायवाची और (२) नानार्थक। दोनो ही भाग—**अमरकोश** की अपेक्षा अधिक सपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन काडो मे द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और शेष शब्दो को सकलित किया गया है। नानार्थभाग के काडो का अध्यायविभाग—उपप्रकरणो में लिंगानुसार (पुल्लिगाध्याय, स्त्रीलिंगाध्याय, नपुसक-लिंगाध्याय, अर्थवल्लिंगाध्याय और नानालिंगाध्याय) हुआ है। अतिम चार अध्यायो मे और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ सक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमे कुछ वैदिक शब्द भी सगृहीत हैं।

हेमचद्र--सस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों मे हेमचद्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकाड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एव अनेकभाषाकोशकार भी थे (समय १०८८ से ११७२ ई०)। सस्कृत मे अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रश-कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने सपादित किया। **अभिधानचिंतामणि** (या 'अभिधान-चिंतामणिनाममाला) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह काडो के इस कोश का प्रथम काड केवल जैन देवो और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सबद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य--शेष पाँच काड हैं। 'लिंगानुशासन' पृथक् ग्रथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है--जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागरगणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमे नाना छदो मे १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसग्रह' (श्लो० स० १८२९) है जो छह काडों मे है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से काडयोजना है। अत मे परिशिष्ट काड अव्ययो से सबद्ध है। प्रत्येक काड मे दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—(१) प्रथमा-क्षरानुसारी और (२) 'अतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अशत अपभ्रश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर (१११९ ई०) के दो कोश (१) विश्वप्रकाश और (२) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रम-योजना **अमरकोश** के समान 'अत्याक्षरानुसारी है। इसके अध्यायो मे एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दो का क्रमिक सग्रह है। तदनसार 'कंकक' आदि अध्याय भी हैं। अत मे अव्यय भी सगृहीत हैं। 'स्त्री', 'पुम्' आदि शब्दो के द्वारा नहीं अपितु शब्दो की पुनरुक्ति द्वारा लिंगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम—भागीद्र, कात्यायन, साहसाक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मगल, शुभाग, शुभाक गोपालित (वोपालित) और भागुरि--निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यत शीघ्र हो गई थी क्योंकि 'सर्वानद' और 'हेमचद्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अकित कहा जाता हैं। **शब्दभेदप्रकाशिका** वस्तुत **विश्वप्रकाश** का परिशिष्ट है जिसमे शब्दभेद, वकारभेद, लिंगभेद आदि हैं।

मंख पडित (१२ वीं शती ई०) का अनेकार्थ--१००७ श्लोकों का है और **अमरकोश** एव **विश्वरूपकोश** के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वंतरि' के आधारग्रहण का उसमे सकेत है। शब्दक्रमयोजना अत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल (लगभग १२वीं-१३वीं शती के बीच) के नानार्थसग्रह नामक कोश मे १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पडता है कि शाश्वतकोश या **अनेकार्थसमुच्चय** के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्ही का अनुकरण भी इसमे आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अत मे अव्यय शब्द हैं। **धनंजय** (ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित) की **नाममाला** नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। **नाममाला** नाम के अनेक कोशग्रथ मिलते हैं। इसमे केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पाडुलिपियों मे नानार्थ शब्द नहीं हैं पर एक मे तत्सबद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव (समय ११५९ ई० के पूर्व)—सस्कृत मे पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं—(१) त्रिकाडकोश, (२) हारावली, (३) वर्णदेशना, (४) एकाक्षरकोश और (५) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानद' ने अपनी टीका मे इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दार्णव', 'व्याडि' की 'उत्पलिनी' 'विक्रमादित्य' के 'ससारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफ्रेक्त' ग्रथसूची मे नौ अन्य (व्याकरण और कोश के) ग्रथो का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकाडकोश'—नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलत वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमे सकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकाडकोश' बताया जाता है। पर उससे इसका सबध नही जान पडता।) इसमे अनेक छद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली मे पर्याय शब्दो और नानार्थ शब्दो के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों—(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक—मे उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी—(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द मे अर्थ दिए गए हैं। इसमे प्राय विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकाडकोश मे प्रसिद्ध शब्द। ग्रथकार की उक्ति के अनुसार १२ वर्षों मे बडे श्रम के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वर्णदेशना अपने ढग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से ख, क्ष या ह, ड अथवा ह, घ मे होनेवाली भ्राति का अनेक ग्रथो के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पडता है—'अत्र हि प्रयोगे बहुदश्वाना श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्णता खुरक्षुरप्रादौ खकारक्षकारयो सिहशिघानकादौ हकारघकारयो . . . तथ गौडादिलिपि साधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयो भ्रातय उपजायन्तो। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धातुपरायणे धातुवृत्ति-पूजादिषु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धोदेशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते। (इडिया आफिस केटेलाग, पृ० २९५)। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशो के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश बनाया जिसमे एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोको का लघुकोश है। नैषधकार 'श्रीहर्ष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वी या १३वीं शताब्दी) एक का **नानार्थार्णव-सक्षेप** को अपनी शैली के कारण बडा महत्व प्राप्त है। एक एक लिंग के एकाक्षर से षडक्षर तक के अनेकार्थक शब्दो का क्रमश छह कांडो मे सग्रह है और प्रत्येक काड के भी क्रमश स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुसकलिंग, वाच्यलिंग तथा नानालिंग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना मे अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' मे अनुपलब्ध शब्द ही प्राय इसमे सकलित हैं। ५८०० श्लोकसख्यक इस बृहन्नानार्थकोश मे कुछ वैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारो के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वी शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम **नानार्थशब्द-कोश** है। पर **मेदिनिकोष** नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रथारभ के परिभाषात्मक अश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमे 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दश लिए गए हैं। इसमे कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनतर के लघुकोश न तो बारंबार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशो के समान प्रमाणरूप मे मान्य हैं। परतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशो का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नही हैं अथवा और अशुद्ध रूप मे अशत उपलब्ध हैं। (१) 'जिनभद्र सूरि' का कोश है **अपवर्गनाममाला**—जिसका नाम 'पचवर्गपरिहारनाममाला भी है। इनका काल संभवत १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) 'शब्दरत्नप्रदीप'—सभवत यह **कल्याणमल्ल** का **शब्दरत्नप्रदीप** नामक पाँच काडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२९५ ई०)। (३) **महीप** का **शब्दरत्नाकर**—कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है—अनेकार्थ या नानार्थतिलक, समय है लगभग १३७४ ई०। (४) **पद्मरागदत्त** के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बडा। (५) **रामेश्वर शर्मा** की **शब्दमाला** भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वी शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा मे भास्कर अथवा दडाधिनाथ थे। उन्होने **नानार्थरत्नमाला** बनाया। (७) **अभिधानतत्र** का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या **नानार्थकमजरी**—'**नामागदसिंह**' का लघु नानार्थकोश है। (९) रूपचद्र की **रूपमजरी**—**नाममाला** का समय १६वी शती है। (१०) **शारदीय नाममाला** 'हर्षकीर्त्ति' कृत है (१६२४ ई०)। (११) शब्दरत्नाकर के कर्ता '**वामनभट्ट बाण**' हैं। (१२) **नामसग्रहमाला** की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) **नामकोश** (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) **पचतत्व प्रकाश** (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थार्णवसक्षेपकार '**केशवस्वामी**' से ये भिन्न हैं। यह ग्रथ सस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमे नानार्थ का प्रकरण या विभाग नही है। इसमे पर्यायो की सख्या सर्वाधिक है, यथा—पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका मे उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कधों के इस कोश की श्लोकसख्या लगभग चार हजार है। स्कधो के अतर्गत अनेक प्रकाड हैं। लिंगबोध के लिये अनेक सक्षिप्त सकेत हैं। पर्यायो की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें कात्य वाचस्पति, भागुरि, अमर, मगल, साहसांक, महेश और जिनांतिम (सभवत हेमचद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक—कोश मे विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। **केशवस्वामी** के **नानार्थार्णव कोश** से यह भिन्न है।

(१६) **शब्दरत्नावली** के निर्माता **मथुरेश** हैं (समय १७वी शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) **कोशकल्पतरु**—**विश्वनाथ**; (१८) **नानार्थपदपीठिका** तथा **शब्दलिंगार्थचद्रिका**—**सुजन** (दोनो ही नानार्थकोश हैं)। इनमे प्रथम में—अत्यव्यजनानुसारी क्रम है और द्वितीय मे तीन काड हैं जिसमे क्रमश एक, दो और तीन लिंगो के शब्द हैं)। (२०) **पर्यायपदमजरी** और **शब्दार्थमजूषा**—प्रसिद्ध कोश हैं। (२१) **महेश्वर** के कोश का नाम '**पर्यायरत्नमाला**' है—सभवतः पर्यायवाची कोश '**विश्वप्रकाश**' के निर्माता

महेश्वर से ये भिन्न हैं। पर्यायशब्दरत्नाकर के कर्ता धनजय भट्टाचार्य हैं। (२३) विश्वमेदिनी--सारस्वत मिश्र का है। (२४) विश्वकवि का विश्वनिघटु है। (२५) १७८६ और १८३३ के बीच बनारस मे सस्कृत-पर्यायवाची शब्दो की एक 'ग्लासरी' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन मे बनवाई थी। इसमे मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के ये और पर्याय--कर्ता कारक (प्रथमा) के। परतु सभवत इसमें बहुत सा अश आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण सदिग्ध रहा। 'वोथलिक' का सक्षिप्त शब्दकोश भी 'ग्यलनास' के अनेक उद्धरणो से युक्त है।

इनके अलावा क्षेमेद्र का लोकप्रकाश, महीप की अनेकार्थमाला का हरिचरणसेन की पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद का पचतत्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव खाडेकर का कोशावतस, 'महाक्षपणक की अनेकार्थ-ध्वनिमजरी आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। भट्टमल्ल की आख्यातचन्द्रिका (क्रियाकोश), हर्ष का लिंगानुशासन, अनिरुद्ध का शब्दभेदप्रकाश और शिवदत्त वैद्य का शिवकोश (वैद्यक), गणितार्थ नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियो के भी अनेक सग्रह हैं। इनमे भुवनेश की लौकिकन्यायसाहसी के अलावा लौकिक न्यायसग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश आदि हैं। दार्शनिक विषयो के भी कोश--जिन्हें हम पारिभाषिक कहते है--पाडुलिपि की सूचियो मे पाए जाते हैं।

सस्कृत कोशो की टीकाओ का महत्व

सस्कृत मे टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्व रखती है। प्राय सभी प्रकार के ग्रथो मे इन टीकाओ का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओ मे मूल की अपेक्षा अधिक बातें, नूतन व्याख्या तथा खडन मडन द्वारा नव्य मतो की भी स्थापना की गई है। कोशग्रथों के टीकाकारो का कृतित्व भी बडे महत्व का है। उनमे जहाँ एक ओर नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारो और कोशग्रथो के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वय ग्रंथकार हैं और स्वयमपि जिन्होने अपने ग्रथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकाश ने केवल टीकाएँ बनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएं सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं मे कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं मे अनेक पूर्ववर्ती कोशो या कोशकारो के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशो का सकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थबोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थी--यथा--'क्षुद्र-छिद्रसमोपेत चालन तितउ पुमान्।' अथवा 'स्कधादूर्ध्व तरो शाखा काटप्रो विटपो मत।' हेमचद्र ने ३० कोशकारो या कोशो का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर--तारपाल, दुर्ग, धरणीधर धर्ममुनि, रतिदेव, रुद्र, विश्वरूप, वोपदेव, शुभाग (शुभाक), वोपालित (गोपालित), कृष्णकवि (वैभाषिक शब्दकोश) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राक्षस' या 'रभस' के पडर्थकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं मे शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश' की 'रामाश्रयी' टीका मे प्रत्येक शब्द की पाणिनीय व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका मे त्रुटियाँ और कभी कभी प्रयोग भी बताए गए हैं। सब मिलाकर इन टीकाओ को कोशवाङ्मय का महत्वपूर्ण अग कहा जा सकता है। वस्तुत ये कोशो के पूरक अंग हैं। इनमे 'उक्त अनुक्त और दुरुक्त' विषयो का विचार और विवेचन किया गया है। अत संस्कृत कोशो के इतिहास मे इनका महत्व और योगदान--हमे कभी नही भूलना चाहिए।

पाली, प्राकृत और अपभ्रश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओ का वाङ्मय भी कोशो से रहित नही था। पालि भाषा मे अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें बौद्धकोश भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्ध-साहित्य के समझाने मे थी। उनकी रचना पद्यबद्ध सस्कृतकोशो की अपेक्षा गद्यमय निघटुओ के अधिक समीप है। बहुधा इनका सबध विशेष ग्रथो से रहा है। पालि का महाव्युत्पत्ति कोश २८५ अध्यायो मे लगभग नौ हजार श्लोको का परिचय देनेवाला है। बौद्ध सप्रदाय के पारिभाषिक शब्दो का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियो, वनस्पतियो और रोगो आदि के पर्यायो का इसमे सग्रह है। इसमे लगभग ९००० शब्द सकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामधातु के रूपो और वाक्यो के भी सकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्व पूर्ण कोश अभिधान प्रदीपिका (अभिधानप्पदीपिका) है। यह संस्कृत के अमरकोश की रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छदोबद्ध रूप मे निर्मित है। 'अमरकोश' के अनेक श्लोकों का भी इसमे पालिरूपातरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्त्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा मे उपलब्ध कोशो की सख्या कम है। जैन भाडागारो से कुछ प्राकृत और अपभ्रश के कोशो की विद्यमानता का पता चला है। परतु जब तक उन्हे देखने का अवसर नही मिलता, तब तक उनका विवरण देना ठीक नहीं है।

धनपाल (समय ९७२ ई० से ९९७ ई० के बीच) विरचित 'पाइअलच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य--'तिलकमजरी'--के उल्लेखानुसार 'भुजराज' ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछद मे रचित, अध्यायविरहित इस कोश म क्रम स श्लोक, श्लोकार्ध और पद (चरण) एव शब्द में पर्यायवाची शब्द निर्दिष्ट हैं। 'हेमचद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका मे उल्लेख किया है।

हेमचद्र रचित देशीनाममाला नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुत प्राकृत का पर्याय नही है, उसकी सीमा मे प्राकृत और अपभ्रश का--जो हेमचद्र के समय तक उक्त भाषाओ के ग्रथो म मिलते थे उन्हीका--सग्रह है। देशी से सामान्यत आभास यह होता है कि जो शब्द सस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्तत् देश की लौकिक भाषाओ के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्हीं को देशी कहा गया है। देशज भी उन्हीं का परिचायक है। परतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के बहुत से शब्द देशज अवश्य हैं। परतु जिन तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति सस्कृत तत्सम शब्दो

से हेमचद्र संबद्ध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया। प्राकृत के व्याकरण नियमो के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नही दिखाई जा सकी, उन्ही को यहाँ देशी कहकर सकलित किया गया। परतु 'देशीनाममाला' मे ऐसे शब्दो की सख्या बहुत बडी है जो सस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं। चूँकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचद्र उनका सबध, मूल सस्कृत शब्दो से जोडने मे असमर्थ रहे, अत' उन्हें देशी कह दिया। फलत हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दो की व्युत्पत्ति का सबध जोडने मे हेमचद्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशो का भी--एक सूत्ररूप मे और दूसरा गोपाल कृत छदोबद्ध--उल्लेख मिलते हैं। द्रोणकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है। इसी तरह शिलाग का भी कोई देशी कोश रहा होगा। हेमचद्र ने देशीनाममाला मे अपना मतभेद और विरोध--उक्त कोशकार के मत के साथ--प्रकट किया। हेमचद्र के प्राकृत शब्दसमूह मे उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारो का उल्लेख मिलता है। हेमचद्र ने ही जिन कोशकारो को सर्वाधिक महत्व दिया है उनमे राहुलक की रचना और पादलिप्ताचार्य का 'देशीकोश' कहा जाता है। 'जिनरत्नकोश' मे भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रथो के नाम मिलते हैं। अभिधानचिंतामणिमाला सभवत: वही ग्रंथ है जिसे हेमचद्र विरचित अभिधानचिंतामणि कहा गया और यह सस्कृत कोश है।

विजयराजेंद्र सूरि (१९१३-१९२५ ई०) द्वारा सपादित, सकलित और निर्मित--अभिधानराजेंद्र--भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है। पर तत्वत यह जैनो के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली मे रचित--सात जिल्दो मे ग्रथित--महाकोश है। पृष्ठ सख्या भी इसकी लगभग दस हजार है। यह वस्तुत विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है।

निष्कर्ष

(१) जहाँ तक सस्कृत कोशो का सबध है। शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार कहे जा सकते हैं--(१) शब्दकोश, (२) लौकिक शब्दकोश और (३) उभयात्मक शब्दकोश।

(२) वैदिक निघटुओ की शब्द-सग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारो प्रकार के शब्दो का सग्रह रहा होगा। परतु उनका संबध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या सहिताविशेष से भी प्राय वे सबद्ध थे। वे सभवत गद्यात्मक थे।

(३) लौकिक सस्कृत की कोशपरपरा मे 'अमरपूर्व' कोशकारो की दो पद्धतियाँ थी, एक 'नामतत्र' और दूसरा 'लिंगतत्र'। इस द्वितीय विधा के कोशों मे सस्कृत शब्दो के प्रयोगो मे स्वीकार्य लिंगो का निर्देश होता था। एकलिंग, द्विलिंग, त्रिलिंग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्लिंग और नानालिंग के प्रकरण भी इनमे हुआ करते थे। ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे।

(४) नामतत्रात्मक कोशो की भी दो विधाएँ होती थीं--एक समानार्थक शब्दसूचीकोश (जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं) और दूसरा अनेकार्थ या नानार्थ कोश।

(५) 'अमरसिंह' के कोशग्रथ मे 'नामतत्र' और 'लिंगतत्र' दोनो का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर कोश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमे समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दो--दोनो विधाओ की अवतारणा एकत्र की गई। फिर भी कुछ कोश (अभिधान चिंतामणि और कल्पद्रु आदि) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश--विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्णवसक्षेप'--आदि नानार्थकोश ही हैं। 'वर्णदेशना' सदृश कोशो को छोडकर सस्कृत कोश प्राय पद्यात्मक हैं। इनमे मुख्य छद अनुष्टुप् है। कभी कभी बहुछदवाले कोश भी बने।

(६) अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशो मे शब्दो का वर्गीकरण स्वर्ग, द्यो, दिक्, काल आदि विषयसबद्ध पदार्थों के आधार पर काडो, वर्गों, अध्यायो आदि मे हुआ और आगे चलकर कुछ मे वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया। इनमे कभी सुप्रमाण शब्दसकलन भी हुआ।

(७) अनेकार्थकोशो मे विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्द-सकलन पद्धति स्वीकृत हुई। उसमे भी अत्याक्षर (अर्थात् अतिम स्वरात व्यजन) के आधार पर शब्दसकलन का क्रम अपनाया गया और थोडे बहुत कोशो मे आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई। अत्यवर्णानुसारी कोशो की उक्त योजना का आधार कही कही निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारणस्थान होता था। इनमे कभी कभी अक्षर सख्यानुसार भी एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है।

(८) इन विशेषताओ के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशो की दो विधाओ का उल्लेख मिला है। एकार्थनाममाला, 'द्वयर्थनाममाला' आदि ग्रथ आज उपलब्ध नही हैं तथापि कोशकार 'सौहरि' के नाम से निर्मित वे कोश कहे गए हैं। 'राक्षस' कवि का 'पडर्थनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है। 'षड्मुखकोश'-वृत्ति भी सभवत ऐसा ही टीकाग्रथ था। 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है। वैकल्पिक रूपो का भी एकाध कोशो मे निर्देश किया गया है।

(९) कुछ कोशटीकाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि सस्कृतकोश के युग मे बडे कोशो के सक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी। सस्कृत के वैयाकरणो मे भी 'बृहत्' और 'लघु' संस्करणो के सपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे--'लघुशब्देंदुशेखर' 'बृहच्छब्देंदुशेखर' 'बालमनोरमा' 'प्रौढमनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धात-कौमुदी'। 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका मे 'बहत्अमरकोश,' सर्वदानद द्वारा 'बृहानद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'बृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन्ही ग्रथो के सक्षिप्त सस्करण के रूप मे 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं।

(१०) आनुपूर्वीमूलक वैकल्पिक शब्दो के सकल भीन कही

कही मिल जाते है। 'शब्दार्णवसक्षेप' मे पर्यायो की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुकोश' मे लिखित म० म० रामावतार शर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश मे कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

(११) पाली, प्राकृत और अपभ्रश कोशो मे कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशो मे बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दो का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्यात्मक कोश गद्यात्मक है।

(१२) प्राकृत कोशो मे अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमे अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दो का सकलन है। कुछ मे जैन प्राकृत ग्रथो के सपर्क से जैन मत के पारिभाषिक शब्दो का आशिक परिचय मिल जाता है। 'पइअलच्छीनाममाला' नामक ग्रथ मे सभवत सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यत लघु शब्द सग्रह रहा होगा।

(१३) अपभ्रश के कोश सभवत' पृथक् उपलब्ध नही हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशो अथवा देशी नाममालाओं मे ही उनका अतर्भाव समझना चाहिए।

मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशो का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रथो के खोजविवरणो में पचासो कोश ग्रथो के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनदन ग्रथ मे श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशो के नाम दिए हैं जो खोजविवरणो मे नही मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल मे और उसके बाद भी छोटे बड़े सैकड़ो कोश बने थे। उनमे अनेक सभवत लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमे भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रथो की खोज करनेवालो को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमे कतिपय प्रसिद्ध कोशो का सक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पड़ता है, इनपर सस्कृत के कोशों से सकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पडा है। अधिकाश कोशो ने मुख्य आधार के रूप मे 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होने उल्लेख भी किया है। कभी कभी (जैसे उमराव कोश मे) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारो ने (तथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की झलक अग्रनिर्दिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्थमजरी' 'नददास के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियो के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीबदास' का 'अनगप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही ज ती है। 'रत्नजीत' (१७१३ ई०) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिधु और (ख) भाषाधातुमाला—बताए गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफत् उल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिकबारी'—अत्यत प्रसिद्ध कोश हैं : एक 'डिंगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नददास' के नाम से 'नामचिंतामणि' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी सभवत अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रथो के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। धातुसग्रह का भी एक कोश—उपर्युक्त धातुमाला—अतिम वर्णक्रमानुसारी सकलन है। मिर्जा खाँ' का कोश अनेक दृष्टियो से नूतन पद्धतियो का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतकुमार चाटुर्ज्या ने इसकी बड़ी प्रसशा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशो मे शब्दो के क्रमसयोजन मे नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमे परिचय दिया गया है, साथ ही साथ शब्दो की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण मे—लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीबदास' का कोश सत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दो का अर्थकोश है। हिंदी मे 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नही है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूलाल' का परवर्ती (१८६७ ई०) अग्रेजी हिंदी-फारसी कोश भी उल्लेखनीय है। 'एकाक्षरी कोश', 'औषधिवरदनाममाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द सग्रहात्मक कोशो का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे प्राचीन वर्गानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—'अथ गो शब्द, 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। मुरारिदान' के डिंगल कोश के अतर्गत वर्गपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश मे शीर्षको के रूप हैं — (१) अथ वनस्पतिकायमाह, (२) दोहा, (३) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है—इद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्वीद्रियानाह, त्रीद्रियानाह, चतुरिद्रियानाह पंचेद्रियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पचेंद्रियानाह' —इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से सबद्ध नाना पदार्थों का सकलन है। कही कही पीडा, 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अतर्गत भी उन शब्दो का सग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नहीं किए जा सके। कही कही ऐसा भी है कि पर्यायो और जातिभेदो के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'रिख' के अतर्गत तो वक्षो के पर्याय दिए गए है और 'सुरद्रिख' नाम के अतर्गत वृक्षो के प्रकार गिनाए गए हैं—'सुरतर गोरक, सिसण, देवदार, मदार' इत्यादि। इसी क्रम मे वे नाम भी हैं जिनमे चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र छत्तीस शस्त्रो आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रथो मे शब्दसकलन का कार्य मुख्यत सस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशो के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भिखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रथो से भी शब्द सकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशो के समय से ही

जनजीवन या बोलचाल के शब्दो को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। सस्कृत कोशो की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चद्रसव' कहकर चद्र की सभी सज्ञाओ को कपूर का पर्याय भी सकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश आदि मे मिलती है। परतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशो मे लिंगनिर्देश की व्यवस्था नही हो पाई। शिवसिंह कायस्थ के भाषा अमरकोश' (अमरकोश की टीका) मे स्पष्ट ही उसे विना प्रयोजन समझकर छोड देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश मे यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग है और ह्रस्व पुल्लिग। अव्ययो का समावेश भी प्राय नही के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशो मे सस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपो को तत्सम भाव मे भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि सस्कृत अव्ययो के सकलन मे यह प्रक्रिया छोड दी गई है। जहाँ तक ध्वनियो मे विकसित परिवतन को निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिंद' आदि कोशो को छोडकर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, प, स, और ज्ञ आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारो ने या तो अत में पर्याय-सख्या-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अक देकर की है।

सक्षेप मे कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकत पद्य मे ही बने जो सस्कृत कोशो से—मुख्यत 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनूदित हैं। अधिकत ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी है तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघटु' ग्रथ भी—जो वैद्यक से सबधित थे,—सस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों मे नामसग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गूढार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकत 'नाममाल', 'नाममजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचिंतामणि', आदि कोशपरक नामो का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'अनल्पप्रबोध' आदि मे पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम मे अधिकत अत्य वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिंद' मे अवश्य ही वर्णवर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशो मे उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पडता है। (४)—डिंगल के कुछ कोशो में नामपद के साथ क्रियाओ का सकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिंगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-सबधी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास मे विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशो में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के सबंध मे कभी कभी कोशकार की पैनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी ओर भाषा मे प्रयक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारो के विशिष्ट साहित्यग्रथो मे प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दो के सकलन का प्रयास उतना नही हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक और भी अत्यत महत्वपूर्ण एव सभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङ्मय के ग्रथो का पाठको को अर्थबोध कराना। परतु सस्कृत कोशो और तदाधारित हिंदी कोशो के निर्माताओं की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशो के सपादन पर जो विशेषत कवियो और सामान्यत अन्य ग्रथकारो के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभाडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त मे वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

सस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रथो के टीकाकारो ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनो के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकाश कोशकारो की दृष्टि मे कविता के निर्माण मे सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशो का कदाचित एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलकारो मे उपयुक्त शब्दनियोजन के लिये शब्दो को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-सग्राहको का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी सभवत इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और सस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असस्कृ ज्ञो के लिये सुलभ करने की इतिकर्तव्यता हिंदी कोशो मे भी हुई। थोडे से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दो मे नए शब्द जोडे। पर उससे बहुत आगे बढने का स्वतत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारो ने तद्भव आदि शब्दो की थोडी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों मे कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नही हो पाई। सस्कृत कोशो की प्रामाणिक प्रौढता में उसी प्रकार कुछ ह्रास ही हुआ जैसे, रीतिकालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रथो मे सस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रथो की प्रौढता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे पूर्णत. परित्यक्त था। सस्कृत कोशों मे भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रयी' टीका (भानूजी दीक्षितकृत) मे 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशो की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अत कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि मे कोई प्रगति नही मिलती।

सस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत मे आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। इनमे एक विधा वह थी जिसमे अंग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओ के माध्यम से सस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से सपन्न नवकोश की रचनाशैली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी और नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर सस्कृत मे ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

सस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशो मे विशेष रूप मे दो उल्लेखनीय हैं (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) वाचस्पत्य'।

प्रथम कोश--स्यार राजा 'राधाकातदेव बाहादुर' द्वारा निर्मित "शब्दकल्पद्रुम" है। इसका प्रकाशन १८२८--१८५८ ई० मे हुआ। इसमे पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणो के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओ से व्युत्पन्न क्रियापदो के उदाहरण भी दिए गए है। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोडे अतिप्रचलित वैदिक शब्दो के अतिरिक्त शेष नही हैं। शब्दो की विस्तृत व्याख्या मे दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारो के लबे लबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तत्र मत्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक सपूर्ण स्तोत्र, तात्रिक मत्र आदि के भी विस्तृत अश उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओ के पारिभाषिक शब्दो का भी तद्विद्याविशेषज्ञो के सहयोग से सप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय मे भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशो की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दसग्रह किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशो मे उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशो अथवा कोशकारो के नाम भी भूमिका मे दिए गए हैं। लेखक स्वयमपि सस्कृत वैदुष्य के अतिरिक्त बँगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अग्रेजी आदि अनेक भाषाओ का अच्छा जानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश मे--जो सात खडो मे विरचित है--यथासभव समस्त उपलब्ध सस्कृत साहित्य के वाङमय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अत मे परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश रचना के विकासक्रम मे इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णत सस्कृत का एकभाषीय कोश है। परवर्ती सस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशो पर इसका प्रभाव --व्यापक रूप से--पडता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का--शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का--समिश्रित महाकोश है। इसमे बहुविधीय उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानो एव पद्धतियो का परिचय दिया गया है। इसमे गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुबतिङन्त हैं, प्रातिपदिक या धातु नही।

सुखानदनाथ ने भी चार जिल्दों मे एक बृहदाकार सस्कृतकोश आगरा और उदयपुर से (ई० १८७३-८३ मे) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' है, जिसका निर्माण अनेक वर्षों मे सपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा सस्कृत कोश का यह एक बृहत्तर सस्करण है। इसके सकलयिता थे तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बगाल के राजकीय सस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापक थे।

एच उडरो ने अपनी 'वाचनिका' मे इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'सस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गभीरतर है। साथ ही तत्र, दर्शनशास्त्र, छद शास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'राथ बोथलिंग्क्' की सस्कृत-जर्मन डिक्शनरी मे नही हैं। इसमे यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम सस्करण बँगला लिपि मे हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशो मे अनुपलब्ध सैकडो हजारो शब्द इसमे सकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशो मे अप्राप्य हैं। षड्दर्शनो के अतिरिक्त चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, अर्हत, रामानुज, माध्व, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि अल्पलोकप्रिय दर्शनो के पारिभाषिक शब्दो का भी इसमे समावेश मिलता है। पुराणो और उपपुराणो से सगृहीत पुरातन राजाओ का इतिहास तथा प्रत्नयुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमे निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणो का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष--गणित, और फलित--के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दो के सकलन सपादन को कोशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताई है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छूट भी गए हैं और बहुमख्यक वैदिक शब्दो की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'राथबोथलिंग्क' के बृहत्सस्कृत' शब्दकोश' के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत बृहत्तर सस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकाश बातो मे 'शब्दकल्पद्रुम' के आयाम को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह असामान्य है। उनके गभीर ज्ञान, तलस्पर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमे अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी ग्रथकार ने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली मे काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमे एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रम' मे 'पद' सुबत तिङत दिए गए हैं। प्रथमा एकवचन के रूप को कोश मे व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातु-रूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से--रचनाविधान की पद्धति के विचार से--'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एव शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्यापरक परिचय सक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणो की विस्तृत पृष्ठभूमि के सपर्क में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि सश्लिष्टबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणो के माध्यम से सबद्धज्ञान का आकार विश्वकोशीय

हो गया है । उपयोगितासपन्न होकर भी सामान्य सस्कृतज्ञो के लिये--- यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है ।

सस्कृत के माध्यम से छोटे बडे अनेक सस्कृतकोश बने । परतु कोश-विकास के इतिहास मे उनका कोई महत्व नही माना जा सकता । सस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओ के माध्यम से सस्कृत शब्दो का अर्थपरिचय देते हैं । परतु उनमे कोई अपनी स्वतत्र विशेषता नही दिखाई देती । 'विल्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेक्डानल्ड', 'आप्टे' के कोशो का या तो इन्होने आधार लिया अथवा थोडी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली । मराठी-सस्कृत-कोश सस्कृत-तमिल-कोश, सस्कृत-तेलगू-कोश, सस्कृत-बँगला कोश, सस्कृत-गुजराती-कोश, सस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओ के तत्तत् नामवाले---सैकडों की सख्या मे कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी है । यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि सस्कृत के उक्त दोनो महाकोश बगाल की भूमि मे ही बने ।

बँगला विश्वकोश भी सभवत उसी परपरा से प्रभावित--- 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है । इसमे यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाने की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है । उसका एक हिंदी सस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है । बगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया ।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल सस्कृत और बँगला के कोशों मे ही नही अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों मे भी लक्षित होती है । अग्रेजी आदि भाषा के अनेक बडे कोशों मे यह सरणि है---विशेषत प्राचीन सस्करणो मे । पूणचद्र का उडिया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रथ है । 'हिंदी शब्दसागर' भी अपने प्रथम सस्करण मे आधिक रूप से इसी पद्धति पर चला । द्वितीय सशोधित और परिवर्धित सस्करण मे भी उसके पूवरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है । परतु लबे लबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणो का भार इसमे न आने देने की चेष्टा हुई है । सबद्ध वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासभव देने की चेष्टा की गई है ।

आधुनिक कोशविद्या · पश्चिम मे

आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानो के सपर्क से भारत मे जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वी शती मे विकास हुआ, पश्चिम मे पहले से ही वह प्रचलित हो चुकी थी । अत. योरप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिहावलोकन यहाँ देना अनुचित न होगा ।[क]

ग्लॉस---रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एव राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरप मे लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी । उस भाषा के ग्रथो का अध्ययन अत्यत महत्वपूर्ण माने लिया गया था । वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझा जाने लगी थी । पाश्चात्य कोशविद्या का अकुरण भी इन्ही लातिन-शब्द-सूचियो से हुआ था, जिन्हे ग्लासेज कहते थे । 'ग्लासरी' शब्द भी इसी मूल से व्युत्पन्न है । ग्लासेज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ । 'लातिन' ग्रथो के पढ़ने-वाले---ग्रथो के हाशिए पर उनके दुर्बोध्य और कठिन शब्दो को लिख दिया करते थे । अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विज्ञो की सहायता से---कभी सरल 'लातिन' मे और कभी तदितर स्वभाषा मे---इन शब्दो का अर्थ भी हलके अक्षरो मे लिख लेते थे । इसी शब्द को 'ग्लास' कहते हैं ।

'रोमानिक' भूमिवासियो के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नही थी । पर दूरस्थो के लिये वह भाषा दुर्बोध्य थी । अत 'केल्टिक' और 'टयूटानिक' प्रदेशो के दूरस्थो की दृष्टि मे उपर्युक्त 'ग्लास पद्धति' अधिक उपयोगी हुई । व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम मे इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनी । इनके माध्यम से सैक्सन, इग्लिश, 'आयरिश', 'प्राचीन जर्मन (गाथिक)' आदि भाषाओ के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बडी मात्रा मे सुरक्षित रह गए हैं जिनमे तत्तद्भाषाओ के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

कहा जाता है कि इग्लैंड मे उत्पन्न 'जोन्स दी गालैंडिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण---१२२५ ई० मे किया था । लातिन

क---शब्दकोशो के आरभिक अस्तित्व की चर्चा मे अनेक देशो और जातियो के नाम जुडे हुए है । भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वैदिक 'निघटु' है । उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है । उसके पूव भी 'निघटु' की परपरा थी । अत कम से कम ई० पू० १००० से ही निघटु कोशो का सपादन होने लगा था । कहा जाता है कि 'चीन' मे ईसवी सन् के हजारो वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे । पर इस श्रुतिपरपरा का प्रमाण बहुत बाद---आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश मे मिलता है, जिसका रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-ओ-डब्ल्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी (१२१ ई० भी इसका निर्माणकाल कहा गया है) । चीन के 'हान' राजाओ के राज्य-काल मे भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है । यूरेशिया भूखड मे एक प्राचीनतम 'अक्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण---अनुमान और कल्पना के अनुसार---ई० पू० ७वी शती मे बताया जाता है । कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियो ने भी योरप मे सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की । यूनानियो का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल मे तथा मध्यकाल मे भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने । 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, शनै शनै बनते चले गए । 'लातिन' ग्लास-कोशो की चर्चा मे इसका कुछ वर्णन किया गया है । सातवी-आठवी शती ई० मे निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है ।

शब्दों का यह लघु सग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यो मे प्रयोग-निदर्शन के रूप मे भाषा के आरभिक सीखनेवालो की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची मे हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध मे भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालातर मे अलग पत्रो पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगी। उन्हें एकत्र भी किया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दो का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसग्रह का यह कार्य अत्यत उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियो मे समाविष्ट शब्दो को आगे चलकर ग्लासेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वी—मे इन्हीं 'ग्लासेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसारी शब्दसारिणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक सग्रहो का निर्माण हुआ।

अकारादिक्रम—१५वी शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरप की विभिन्न भाषाओ मे अनेक प्रकार के विभिन्न वर्गों के शब्दो की सूचियाँ सगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों मे शब्दसकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार सस्कृत के अमरकोश आदि ग्रथो मे अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दो का वर्गाश्रित सग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों मे शरीर के अगों पारिवारिक सबधो, मनुष्य के पदो और श्रेणियो, घरेलू एवं पालित जानवरो, जगली पशुओं, मछलियो, वृक्षो, व्यवसायो, वस्त्राभूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियो, रोग आदि के नामो की अर्थसहित सूचियाँ सगृहीत होती थी।

इन्हें 'वोकैब्युलेरियम्' कहा जाता था। अग्रेजी का 'वोकैब्युलरी' शब्द भी इसी से निर्गत है। कागज के अतिरिक्त चमडे पर भी इनका सग्रह होता था। मूलत भिन्न दृष्टि से सकलित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोकैब्युलरी' दोनो का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान मे सहायता देनेवाले उपकरण के रूप मे होने लगा था। अत इन दोनो प्रकार की शब्दार्थसूचियो का प्राय एकत्र सयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरो की 'ग्लॉसरी' और 'वोकैब्युलरी' से नए शब्दो को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमे नए शब्द जोडते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका सग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस् ईलियट (१५३८ ई०) का निर्मित शब्दकोश डिक्शनेरियम) विशेष महत्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदाल्स् द्वारा अग्रेजी के आरभिक लातिन पाठको की सुविधा के लिये रचित 'अग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकोश भी विषयानुसारी वर्गों मे ही ग्रथित है। परतु 'अगेजी मे लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश—१३३६ ई० मे आर एस्टीम ने बनाया था जिसमे लातिन शब्दो के समानार्थक अग्रेजी शब्दो के अलावा यूरप की अनेक नव्यभाषाओ के भी पर्याय दिए गए थे।। १५४७ ई० के बाद अग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपीकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियो मे शब्दो और वाक्याशो को उपयोगिता की दृष्टि से अकारादि क्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पडा। यही से इनमे अकारादि क्रमानुसारी सग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्याश के आरभिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची मे लिपिक सगृहीत कर देता था। उसमे द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नही देखी जाती थी। अत इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रो शब्दोवाली सूची मे अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को ढूंढ निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलत धीरे-धीरे उसमे विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरो पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीर धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग मे प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसग्रह होने लगा।

अग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियो ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अग्रेज कोशो के विकास क्रम मे उसे देखा जा सकता है। आरभ मे इन शब्दार्थसूचियो का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दो का सरल 'लातिन' भाषा मे अर्थ सूचित करना। धीरे धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा मे भी उन शब्दो का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोकैब्युलरी' के अग्रेजी भाषी विद्वानो की प्रवृत्ति मे भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दो का अग्रेजी मे अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढने लगी। इस क्रम मे 'लैटिन अगेजी' कोश का आरंभिक रूप सामने आया।

दसवी शताब्दी मे ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दो का एक 'लैटिन-इग्लिश', लघुकोश भी जोड दिया था। सभवत उक्त ढग के कोशो मे यह प्रथम था। १०६६ ई० मे लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियो को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्दसूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमे भी एक १२ वी शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियो की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची मे 'लातिन तथा अन्य भाषाओ के शब्द हैं।

इगलैड मे सास्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्बुद्ध होने पर अग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-सस्थाओ मे फ्रासीसी के स्थान पर अग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अग्रेजी मे लेखको की सख्या भी अधिक होने लगी। फलत अग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ गई। १५वी शती मे 'राइट व्यूलर' ने छह महत्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियो को मुद्रित किया। अधिकत विषयगत वर्गों के आधार पर वे बनाई गई थी। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमे अकारादिक्रम से २५००० शब्दो का सकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वी शती के दो महत्वपूर्ण ग्रथो का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरट्स' का 'वोकाब्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्डला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लाफेड्स' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिसिन द्वारा १४४० ई० मे प्रथम मुद्रित सस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोपटोरियम परव्यूलोरम सिनवलेरिकोरम्' (अर्थात् बच्चो का भाडार या संग्रहालय)। इसका महत्व--६-१० हजार शब्दो के सग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान मे नए प्रयोग का सकेत दिखाई पडा। इसमे सज्ञा और क्रिया के मुख्याश से व्यतिरिक्त अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्टस् ऑव स्पीच) भी सकलित हैं। यह 'मेड्डला ग्रामाटिसिज' कदाचित् प्रथम 'लातीन अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है--उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियो के कारण। १४८३ ई० मे 'वेथोलिअम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश सकलित हुआ था। परतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय न हो सका।

इसके पश्चात् १६वी शताब्द मे 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एव प्रकाशित हुई। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रथ है जिसमें 'डिक्शनरी' अभिधान का अंग्रेजी मे प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइंग)। पर वैयाकरणो द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ मे उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व--आरभिक शब्दसूचियो और कोशो के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा--'नॉमिनल', 'नेमबुक', मेड्डला ग्रामेटिक्स, 'दी आर्ट्स वोकाब्युलेरियम, गार्डन आफ वर्डस, दि प्रोम्पटारियम पोरवोरम, कैथोलिकम् ऐंग्लिकन्, मैनुअलस् वोकैब्युलरम्, हैंडफुल आव वोकैब्युलरियस्, 'दि एवेसडेरियम्, विवलोथिका, एल्वीरिया, लाइब्रेरी, दी टेबुल अल्फावेटिकल, दी ट्रेजरी या ट्रेजरर्स आफ वर्ड्स, 'दि इग्लिश एक्सपोजिटर, दि गाइड टु दि टग्स्, दि ग्लासोग्राफिया, दि न्यू वर्ल्ड्स् आव वर्ड्स्, 'दि इटिमालॉजिकम्, दि फाइलॉलॉजिकम्' आदि। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० मे कटन्थ की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस् ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द क्यो और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वी शती मे पूर्वार्ध के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश मे शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम की इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा मे एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतत्र, सार्थक और विश्लिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारणमूलक पद्धति पर बने हैं। वैसी भाषा के कोशो में उच्चारणानुसारी शब्दो का ढूँढना अत्यत दुष्कर होता था। परतु योरप की भाषाओ में अकारादि क्रमानुसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का सकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोम्पटोरियम के अनतर १५१९ में प्रकाशित विलियम हार्नन का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशो में उल्लेख्य है। इसमें कहावतो और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर सग्रह था। मुद्रित कोशो में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० मे रिचार्ड हाउलेट का 'एवेसेडेरियम' और 'जॉन वारेट' का 'लाइब्रेरिया'--दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम मे लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी मे अर्थकथन होने से अंग्रेजी कोशो मे--विशेषत प्राचीन काल के--इसे उत्तम और अपने ढग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व--ई० १५७० मे 'पीटर लेविस' ने एक 'इगलिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमे अंग्रेजी शब्दो के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकात रूप मे रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की बहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रास के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रासीसी भाषा पढाने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रथ बनाया जिसमे फ्रासीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १५३० ई० मे यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रासीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स दु गेज ने लेडी मेरी को फ्रासीसी पढाने के लिये १५२७ मे व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमे भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रासीसी शब्दो का सग्रह जोड दिया गया था।

रिचर्ड हाउलेट का एवेसेडिरियम १५५२ ई० मे प्रकाशित हुआ, जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान वारेट का कोश (एल्वेरिया) भी १५७३ ई० मे प्रकाशित हुआ। रिचार्ड के कोश मे अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अत उसे प्रथम अंग्रेजी कोश—लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी--कह सकते है। १६वी शताब्दी मे ही (१५९९ ई० मे) रिचार्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। पलोरियो ने भी दि वर्ल्ड्स आव दि वर्ड्स नाम से एक इतालो-अंग्रेजी कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित सस्करण १६११ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैंडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेंच-अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद मे अनेक सस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'पलोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसग्रहो का अत्यत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने समझाने मे वह बडा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'बाइबिल' का अंग्रेजी सस्करण भी प्रकाश मे आया। १७वी शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० मे) मे जॉन मिन्श्यू ने 'दि गाइड इट् इग्स' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमे अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (वेल्स, लो डच्, हाई डच्, फ्रासीसी, इतालो, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू शब्द दिए गए थे।

इन कोशों मे अंग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अंग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागरित के कारण अंग्रेजी मे लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रो शब्द और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। ये प्रयोग 'इंक हार्ड्स टर्म्स्' कहे जाते थे। वे परंपरया आगत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दो की वर्तनी और कभी कभी अर्थ बतानेवाले ग्रंथो की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खडी हुई थी। मुख्यत इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दो और मुहावरो का परिचय कराने की भावना से—आरंभिक अंग्रेजी-कोशो के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम 'टेबुल अल्फाबेटिकल आव हार्ड वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक रावर्ट काउड्रे' ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों मे रचित थी। इसमे तीन हजार शब्दो की शुद्ध वर्तनी और अर्थो का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षों मे इसके तीन संस्करण प्रकाशित करने पडे। १६१६ ई० मे 'ऐन इंगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने संस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० मे 'एच० सी० जेंट' द्वारा रचित 'इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशंसा मे 'जॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागो मे विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछ विचित्र सी लगती है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त मे निर्दिष्ट नैगमकांड, नैघंटुककांड और दैवतकांडो मे लक्षित वर्गानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अंश मे क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा मे अर्थो के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अंश मे सामान्य शब्दों के अर्थों का क्लिष्ट पर्यायो द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओ, नरनारियो, लडके लडकियो, दैत्यो-राक्षसो, पशु पक्षियो आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अंश मे वर्णन किया गया। इसमे शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसंपन्न व्यक्तियो आदि से संबद्ध कल्पनाओ का भी अच्छा संकलन है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लासोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस ब्लाउंडर ने संग्रह किया था जिसमे यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दो का व्याख्या मिलता है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अंग्रजी मे होने लगा था। ए० सी० कांकरमैन का कोश भी बडा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने संस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १६४५ ई० मे 'दि न्यू वर्ल्ड आव इंगलिश वर्ड्स, या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण संबंधी आवश्यकताओ मे कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था विशिष्ट महिलाओ या अध्ययनशील विद्युषियो को सहायता देना आदि मे चलकर कोशनिर्माण का इस प्रेरणा का निर्देश नहीं [illegible] १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लासोग्राफिया' के अनेक [illegible] एडवर्ड फिलिप्स का कोश भी बार [illegible] महत्वपूर्ण हो गया। एशिसाफोत्स ओ[illegible] भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवी शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनेरियम एंग्लोब्रिटेनिकन' या 'जनरल इंगलिश डिक्शनरी' निर्मित की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दो की पर्याप्त संख्या थी।

नैथन बेली—सौ वर्षों तक अंग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसंकलन मे विशिष्ट शब्दो की ही मुख्यता बनी रही। भाषा मे प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने मे विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन बेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोशके निर्माण की योजना बनाई जिसमे अंग्रेजी के समस्त शब्दो के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'यूनिवर्सल इटिमॉलाजिकल इंगलिश डिक्शनरी'। इसमे अनेक विशेषताएँ थी। संकलित शब्दो के विकासक्रम का संकेत दिया गया था। साथ ही इसमे व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ मे इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ मे प्रकाशित दूसरे संस्करण मे शब्दो के उच्चारणबोधक संकेत भी इसमे दिए गए। अंग्रेजी के कोशज्ञ विद्वानो द्वारा यह कोश अत्यंत महत्वपूर्ण अंग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमे समस्त अंग्रेजी शब्दों के यथाशक्ति संकलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसंकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अंग्रेजी कोश का महत्व (१७४७–१७५५ई०)

इटली और फ्रांस एकेडमीशियनो द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशो की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमे परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपो का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी और इतालो भाषाओं मे ऐसे कोशो की रचना का प्रयास चल रहा था।

अंग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एव परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छंदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त गद्य की रचनाओ को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलत अंग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर ग्राह्य और मान्य हो गया था। अत साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अंग्रेजी कोश का निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विक्रेताओ के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षों के अथक प्रयास से अंग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी [illegible] कन्साइज डिक्शनरी' भी १७५३ ई० मे जान वेसली द्वारा [illegible] सामने आई। आजतक जानसन का उक्त कोश अपने [illegible] ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमे मूल [illegible] के व्युत्पन्न शब्दो का विकासक्रम दिखाने के [illegible] अर्थप्रयोगो को भी उदाहरणो द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उत्कृष्ट लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए है।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया। इसमें शब्दों का अर्थ परिभाषा के रूप में भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास मे यह उपलब्धि सर्व-प्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए जेन्टिलमैन्स मैगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रांस के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती मे जो कार्य न कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षों मे कर दिखाया। अंग्रेज जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनो के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परंतु इसमें दिए गए साहित्यिक उद्धरण--ग्रंथों से सदर्भ निर्देशपूर्वक न लेकर--कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलत अनेक स्थलों मे उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक त्रुटि बन गई। परंतु त्वरित गति से स्वल्प समय मे कार्य समाप्त करने की आकांक्षा के कारण त्रुटि रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका संयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षों में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा असंभव था।

इसके बाद १८वीं शती के अंत तक अंग्रेजी मे अनेक कोश बने। विलियम कर्निक, विलियम पैरी, टामस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। इन कोशों को 'जॉनसन' के कोश का संक्षिप्त या लघु संस्करण कहा गया है। उच्चारण का ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णत समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारों ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा मे विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १९ वीं शती के पूर्वार्ध से उसका सम्मान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमें नए शब्दों, अर्थों, उद्धरणों आदि के परिवर्धन-कारी परिशिष्टों को, अनेक विद्वानों की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के संशोधित और संवर्धित संस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८-ई० मे ऐसा ही एक संस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इंग्लिस्तानियों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकनों की अंग्रेजी को स्वतंत्र देखकर वेब्स्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परंतु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतंत्र कल्पना से आविष्कृत थी। बाद के संस्करणों मे भाषाविज्ञों ने उनका संशोधन कर दिया। आज भी वेब्स्टर के इस कोश का दो जिल्दों मे 'इन्टरनैशनल' संस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियों से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश मे उद्धरणों के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोधक परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणों से अर्थ-प्रत्यायन की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर--१३०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारों के लेखखंडों को उसने उद्धृत किया। परंतु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नहीं दी। व्यावहारिक दृष्टि से श्रमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति--शब्दकोश से अर्थज्ञान की कामना करनेवाले पाठकों के लिये उपयोगी और सुविधा-जनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिश्चय रह ही जाता था। जनता मे अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणों का इसमें संकलन हो गया और वे स्थायी रूप मे सुरक्षित भी हो गए।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी योजना और निर्माण

१९वीं शताब्दी के मध्य लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी मे स्वपठित निबंधों द्वारा आर्चबिशप डा० आर० सी० ट्रेंच ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशों की कुछ कमियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनबेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियों के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशों द्वारा शब्दों के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एवं विकास तथा रूपविचार के विषय मे विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शब्दों और अर्थों के प्रयोग एवं ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। संक्षेप मे भाषाविज्ञान और साहित्य के वैकासिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेंटिक चेंजेज) और उत्पत्तिमूलक विकास की--कोश मे वैज्ञानिक और साहित्यिक--उभयविध संगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन त्रुटियों के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों मे विरल और अप्रचलित शब्दों का संकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्विनियोग और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता संभव नहीं होगी। यह भी संकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा संभव भी नहीं है। अनेक भाषाविज्ञ, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के संमिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लंदन की फ़िलालाजिकल सोसाइटी के समक्ष उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि बेली, जानसन, रिचर्डसन, वेब्स्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का संकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायँ। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के संदर्भ मे, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उससे द्योतित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त संस्था द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेंच के निर्देशों का आधार लेकर अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों में संकलित सामग्री की सहायता से आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और संस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त लिखित रूपों, अर्थों आदि का यथासंभव विकास इस कोश में दिखाया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जंजीर दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अप्रचलित--प्राय: सभी शब्दरूपों और उनके अर्थांश का वैकासिक एवं ऐतिहासिक विवरण भी यथासंभव दिया गया है। अप्रचलित शब्दों के उपलब्ध अंतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्तियों का भी संयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्व था इसकी यथासंभव संपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविज्ञों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशंसा हुई। इसकी सामग्री के संकलन में पचास लाख शब्द चिटें एकत्र हुई थीं और उनके संकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस संदर्भ में कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बड़े वर्तमान कोश--हिंदी-शब्द-सागर--के संपादन में भी समस्त आवश्यक एवं अपेक्षित साधनों और उपकरणों को एकत्र करने में सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी संबंध में यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुनः संशोधित और परिवर्धित संस्करण का संपादन कार्य निरंतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षों से इंग्लैंड के कोशविज्ञान-विशारद विद्वानों की मंडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरंतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनों के योग से और संस्थाविशेष के निर्देशन में विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुनः संपादन का अखंड यज्ञ चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के कोशप्रेमी विद्वानों की अबाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। कोशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एवं साहित्य के धुरंधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुनः संपादन में सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसंख्यक जागरूक पाठकों का भी बिना पारिश्रमिक के स्वल्पाधिक सहयोग मिलता रहा है।

'फिलालाजिकल सोसाइटी' की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बड़े कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमें अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढंग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अंग्रेजी कोश के आरंभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)--अंग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियों का सरल लैटिन और अंग्रेजी में अर्थ देने से कोशकला का प्रारंभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)--दूसरे सोपान पर अंग्रेजी शब्दसूचियों का तथा लैटिन और अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)--तीसरे चरण में इंग्लिश-लैटिन के शब्दसंग्रह का कार्य हुआ। (४)--चतुर्थ अवस्था में अंग्रेजी और इतर भाषाओं के कोश बने।। (५)--पाँचवे चरण में अंग्रेजी के क्लिष्ट शब्दों के शब्दसंग्रहवाले और कोश बने। बेल्जी द्वारा इनमें सामान्य शब्दों को जोड़ने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा की गई। अब शब्दप्रयोगों के उदाहरण भी संगृहीत होने लगे। (६)--छठी अवस्था में उच्च कोटि के कोशनिर्माण की चेष्टा और अर्थस्पष्टीकरण के लिये साहित्य में प्रयुक्त उद्धरणों का उपयोग प्रारंभ हुआ। (७)--इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अंग्रेजी कोशों में प्रयुज्यमान भाषाशब्दों के उच्चारणसंकेत देने की भावना प्रारंभ हुई। (८)--अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छोड़कर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अंतिम रूप से इन सबकी परिणति डा० ट्रेंच की प्रेरणा से निर्मित महाकोश में दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्द-प्रयोग और व्युत्पत्ति संबद्ध शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि को विस्तृत और ऐतिहासिक आयामों के साथ कोश में अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की आरंभिक स्थिति में पश्चिम के कोश भी पर्याय सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थों का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसंकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमें अभाव था। संस्कृत कोशों में भी यह नहीं था। क्योंकि वे ऐसे छंदोबद्ध शब्दसंग्रह थे जो पर्यायों के माध्यम से एक या अनेक अर्थों का परिचय देते थे। परंतु संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण 'भानुजी दीक्षित' द्वारा निर्मित अमरकोश की 'व्याख्यासुधा' नामक टीका में सभी शब्दों की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम में ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमत फिलिप्स के कोश में शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्देश-मात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति इसी रूप में संकेतित मात्र है। यहीं से अंग्रेजी कोशों में व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अति सामान्य आरंभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरंभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश में अर्थच्छायाओं को यद्यपि विस्तृत संदर्भ में देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसंकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसन के कोश में नाना अर्थच्छायाओं और उदाहरणों के साथ साथ शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। संकेतरूप में मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसंबंध का सूचन किया जाता था। समानार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्व के होने पर भी उच्चारणसंकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्स्टर के कोश में छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसंबंधी पूर्वमान्यताओं के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओं

के अतिरिक्त डा० रिचर्डसन' के कोश मे लातिन के साथ फ्रासीसी, इतालो, स्पेनी भाषा के शब्दो का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारो की चेतना उद्बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश मे तुलनात्मक रूपो की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या मे कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेब्स्टर' के कोश मे पुन लातिन, इतालो, स्पेनी और फ्रासीसी शब्दरूपो मे भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अग्रेजी कोशो की यह सीमा इन्ही भाषाओ के घेरे मे पडी रही।

धीरे धीरे कोशकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान सामग्रियो का प्रयोग—थोडी या बहुत मात्रा मे—आक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी की रचना के पहले से भी होने लगा था। पर उनमे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नही थे। वे उपादान किसी एक कोश मे योजनाबद्ध क्रम से सयोजित न होकर भिन्न भिन्न कोशो मे विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानो की उपयोगिता सूचित और निर्देशित हो चुकी थी। पूर्व कोशो की अपेक्षा परवर्ती कोशो मे प्राय अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और शुद्धता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक प्रौढ़ता बढती गई। डा० ट्रेंच की मनीषा ने समस्त पूर्वसकेतिक उपादानो के समुचित विनियोग एव समावेश का लिगनिर्देश किया। उन्होने सुव्यवस्थित ढग से और योजनाबद्ध रूप मे उनके उपयोग की महत्ता को ठीक ठीक समझा और उनके समुचित एव व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा मे बढाने का प्रयास किया।

आक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी के निर्माण मे उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमश विकास की ओर बढ़ती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एव वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमे लक्षित होता है। उसको पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञो, विद्यावेत्ताओ, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियो, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलको और शोधकर्ताओ की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय मे साध्य भी नही है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बडे पैमाने पर अखड रूप से चलते रहना चाहिए। आक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी का कार्य निरतर चलता रहता है। उसके सशोधन, परिष्करण, सवर्धन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम सस्करण की प्रकाशनसामग्री का सचालन होता चलता है। सपादको की अनेक पीढ़ियो ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नही—उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'सक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि सस्करण छपते और लाखो की सख्या मे बिकते रहते हैं। अन्य सैकडो हजारो अग्रेजी कोशो को—जिनमे बडे छोटे सभी प्रकार के कोश हैं—रचना मे वहाँ से सामग्री और सहायता मिलती है। उसे प्रामाणिक और आप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यही समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही सकेत करना था कि भारत मे जो आधुनिक कोश बने वे इन्ही पाश्चात्य कोशो की पद्धति पर चले। उनके निर्माण मे पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानो का योगदान

सस्कृत तथा भारतीय भाषाओ के कोश

भारत मे विदेशी विद्वानो, धर्मप्रचारको और सरकारी शासको द्वारा आधुनिक ढग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारभ हुआ—यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यत दो रूपो मे बने—(१) विदेशी भाषाओ मे (विशेषत अग्रेजी मे) और (२) अग्रेजी तथा भारतीय भाषाओ मे। विदेशी भाषाओ के माध्यम से भारतीय भाषाओ के जो कोश बने उनमे सस्कृत के कोशो का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा दूसरे वे कोश हैं जो अग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओ के।

१८१९ मे डा० 'विलसन' का 'सस्कृत इगलिश कोश' प्रकाशित हुआ। अग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस सस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा मे महत्वपूर्ण पर आरभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ सस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुत 'विलसन' का यह ग्रथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ—सस्कृत अग्रेजी कोश और इगलिश सस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० मे हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन सस्करण की भूमिका मे अपना मतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि सस्कृत के सभी शब्दो का वैज्ञानिक ढग से ऐसा आकलन हो जिससे सस्कृत की लगभग दो हजार धातुओ के अतर्गत समस्त सस्कृत शब्दो का समावेश हो जाय। इस दिशा मे उन्होंने थोडा प्रयत्न भी किया। इन दोनो के बाद महत्वपूर्ण ग्रथ आप्टे का कोश आता है जो सस्कृत अग्रेजी और अग्रेजी सस्कृत दोनो रूपो मे सपादित किया गया। विलियम्स के कोश मे धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का सदर्भ-सकेत भी दिया गया। परतु आप्टे के कोश मे सकेतमात्र ही नही उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोश की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाई पडा। कुछ वर्षों पूर्व तीन खडो मे उनके कोश का सशोधित सवर्धित और विस्तृत सस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तबतक के समस्त 'सस्कृत अग्रेजी कोशो मे सर्वाधिक प्रामाणिक एव उपयोगी

कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक सस्कृत-अग्रेजी-कोश बनते रहे जिनमे कुछ प्रसिद्ध कोशो के नाम आगे दिए जा रहे हैं—(१) सस्कृत अग्रेजी कोश (सपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) सस्कृत अग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचद्र वैद्य—१८८६), (३) सस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर बेन्फे—१८६६), (४) ग्रासमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल सस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्लिटरेशन, एक्सेंचुएशन ऐंड एटिमालाजिकल एनालसिस थ्रू आउट—मैक्डानल्ड, १९२४ ई०।

पूना मे केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० कत्रे के निदेशन मे संस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दो का जो प्रामाणिक सकलन हो रहा है वह प्राय सर्वांशत यथासभव आलोचनात्मक ढग से संपादित या संकलित है। डा० 'कत्रे' सस्कृत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बड़े विद्वान् हैं। इस कोश के शब्दसकलन और अर्थनिर्धारण मे तत्तत विषयो के सस्कृतज्ञ, प्रौढ पडितो की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न हो रहा है। सपादनविज्ञान की पद्धति पर सपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रथो से ही यथा-सभव शब्दसकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीविद्या (इडोलाजी) मे अबतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा मे हुआ है उसके सर्वांशत उपयोग और विनियोग का प्रयास हो रहा है। १७–१८ वर्षों से यह प्रयास चल रहा है जिसमे काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनो का अधिक मे अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अत आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अग्रेजी, जर्मन, फ्रासीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त सपन्न सस्कृत कोशो की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अत निश्चय ही उक्त कोश, अबतक के समस्त सस्कृत-अग्रेजी-कोशों मे श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त सस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे भी सस्करण छापे जाते।

मोनियर विलियम्स के बाद अनेक सस्कृत अग्रेजी कोश बने। परतु विलसन के नवीन सस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नही हो पाया। विलसन के कोश का एक सक्षिप्त सस्करण भी १८७० ई० मे रामजसन ने सपादित किया जिसका काफी प्रचार हुआ। मेक्डानल की प्रैक्टिकल सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यत महत्वपूर्ण कोश है। इसमे सस्कृत शब्दो के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थों को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'वेन्फे' की भी 'सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बडे सस्कृत कोश निर्मित हुए। परतु विलसन विनियम्स और आप्टे—इनकी सस्कृत इगलिश कोशत्रयी को सर्वाधिक सफलता एव प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राय और बोथलिक्ग् द्वारा प्रकाशित सस्कृत-जर्मन-कोश के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो बोथलिक्ग् तथा 'रुडोल्फ राथ' के सयुक्त सपादकत्व मे सस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—सस्कृत वॉर्तरबुख—१८५८ ई० से प्रारभ होकर १८७५ ई० मे पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीविद्या का महाज्ञान-कोश है। अत्यत विशाल और सात जिल्दो के इस कोश मे प्रभूत सामग्री भरी पडी है। इसका एक सक्षिप्त सस्करण भी १८७९ से लेकर १८८९ ई० तक प्रकाशित होता रहा। वह भी सात जिल्दो मे है पर उसकी पृष्ठसख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटरस्बर्ग से प्रकाशित यह सस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बडे सस्कृत कोश जर्मन, फ्रासीसी, इतालो आदि भाषाओ मे बन चुके थे। १८४६ ई० मे थियोडोर बेन्फ' का कोश बना था जिसका अग्रेजी रूपातर १८५६ मे मैक्समूलर के सपादकत्व मे प्रकाशित हुआ।

इनमे से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत मे और अनेक विदेशो मे प्रकाशित हुए।

हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशो का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानो ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओ एव अन्य भारतीय भाषाओ के कोशो का निर्माण जिन प्रेरणाओ से पाश्चात्य विद्वानो ने किया उनमे दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थी

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलबी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता मे घुलमिलकर उनकी भाषा बोल और समझकर उनकी दुर्बलताओं को समझा जाय और तदनुरूप उन्ही की बोली मे इस ढग से प्रचार किया जाय जिसमे सामाजिक रूढियो और बधनो से पीडित वर्ग, इसाई धर्म के लाभो के लालच मे पडकर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलत यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बँगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड, तेलगू, उडिया, असमिया आदि भाषाभाषियो के बीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमे धडल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा ग्रथरचना कर सकें। परिणामत इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग था शासको का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढता के लिये, शासित की भावना, सस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओ के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर सस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्राय निस्वार्थ भाव से सस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन मे प्रवृत्त हुए तथा तत्तत् विषयों के ग्रथो की रचना की। इसी सदर्भ मे महत्वपूर्ण कोशग्रथ भी बने। सस्कृतकोशो की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी आव् मोहमडन लॉ ऐंड बगाल रेवेन्यू टर्म्स्' (४ भाग—ई० १७९५), 'ए ग्लासरी आव् इडियन टर्म्स्' (८ भाग—१७९७ ई०), बगाली सिविल सर्विस टर्म्स्' (एच्. एम् इलियट—

१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी आव् जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स्' इत्यादि ग्रथो का निर्माण किया गया। इनसे एक ओर तो शासनकार्य मे सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानो को भी भारतीय भाषा या सस्कृत के ग्रथो का अपनी अपनी भाषाओ मे अनुवाद करने मे सहायता मिली।

इन कोशो के अलावा पाश्चात्य विद्वानो अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियो द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। रावर्ट सीजर ने पाली-सस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० मे प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० मे पाली टैक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन मे पाली-अग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचद ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमे सस्कृत, गुजराती, हिंदी और अग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी शब्दकोश कहना सगत है। 'पाइयसद्दमहण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यत विशिष्ट कोश है जिसका पुन प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं मे हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानो ने उसे हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी--दोनो ही नामों का उसके लिये—मेरी समझ में--प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अत हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशो की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशो का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट आव वन थाउजड इपार्टेंट-वर्ड्स' आरभिक प्रयास था। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हटर की हिंदुस्तानी-इग्लिश-डिक्शनरी (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी आव हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हटर का कोश निरतर सशोधित और परिवर्धित सस्करणो मे क्रमश १८१९, १८२० और १८३४ ई० मे प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हटर का कोश तथा एम० टी० आदम की कृति 'दि डिक्शनरी आव हिंदी ऐंड इग्लिश' प्रचलित था। डा० गिल-क्राइस्ट की डिक्शनरी 'इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-९६ मे प्रकाशित हो चुकी थी। उसका सक्षिप्त रूप उन्होने ही रोवुक के सहसपाद-कत्व मे १८१० ई० मे प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी को ए डिक्शनरी आव 'इग्लिश बँगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से सक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० मे प्रकाशित कराया था। जे० वी० थामसन की उर्दू-अग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० मे प्रकाशित हुई। १८१७ ई० मे शेक्सपियर द्वारा लदन से 'अग्रेजी हिंदुस्तानी, और हिंदुस्तानी अग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परतु इन सबमे रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यत होता रहा। इसी बीच १८२९ ई० मे पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो—जैसा प्रथम सस्करण की भूमिका के पृ० १ मे बताया गया है--हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता मे प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते है जिसमे हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बडे व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अग्रेजी कोश का सपादन-कार्य आरभ किया था। वे बहुत काफी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रथ था। सामान्य सदर्भ की भी इसमे सहयोजना थी। इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमे दक्खिनी हिंदी के शब्दो का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण मे इसकी पाडुलिपियो का पूर्ण उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इडिया हाउस के आफिस मे। इसके शब्दो और अर्थों के सकलन मे डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और सकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशो का शेक्सपियर ने परिवर्धित सस्करण १८४८ ई० में और दूसरा सशोधित सस्करण १८६१ ई० मे प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनो अशो मे बहुत परिवर्धन सशोधन हुआ। दोनो अश 'हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमे सबसे पहले रोमन वर्णों द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = सस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी सकेतो द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के सकेत हैं। तदनतर फारसी मे कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन मे फिर वही शब्द है और अत मे अग्रेजी पर्याय।

इसी युग मे डकन फोर्ब्स का कोश--डिक्शनरी हिंदुस्तानी (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमे कोशशब्दो को फारसी और रोमन मे तथा अर्थपर्याय अग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बडे श्रम के साथ सपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के काशो मे सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमे पर्यायवाची शैली का भी योग है। इसमे उदाहृत अश एक ओर तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतो के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओं की शुद्ध बोलियो का पहली बार उदाहरण के रूप मे यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही सकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थों को पुराने रूपो के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दो के धातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमे बोलचाल की भाषा का मथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशो का विवरण सक्षेप मे नीचे दिया जा रहा है।

गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी इगलिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बडे महत्व की है, १७८६ मे बनी थी। इसमे भूमिका देने के अलावा भाषासबधी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी सगृहीत हैं। सज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमे संस्कृत तत्सम शब्दो को छोड दिया गया है परतु तद्भव, देशज एव भारत मे प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दो की व्याख्या कम की गई है और अग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश--(१) उर्दू और अग्रेजी तथा (२) हिंदी और अग्रेजी--बनाए। फ्रासिस ग्लेडविड ने परशियन, हिंदुस्तानी और अग्रेजी की डिक्शनरी निर्मित की। जे० डी० बेट्स ने ए डिक्शनरी आव हिंदी लैंग्वेज (१८७५ ई० मे) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हटर ने उसी का आधार लेकर विस्तत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। सस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दो के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमे लिए गए हैं। दक्खिनी हिंदी और बँगाली के शब्द भी नहीं छोडे गए हैं। शब्दो की वैकल्पिक और भूगोलमूलक भिन्नताओ का स्थान स्थान पर सकेत भी किया गया है। रीति रिवाजो का भी अनेक स्थानो पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के प्रयोग मे पौराणिक और प्राचीन कथाओ का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ मे निर्मित शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अग्रेजी डिक्शनरी मे पर्याप्त शब्दो की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दो के पूव ही सकेताक्षरो द्वारा भाषाओ का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना मे फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परतु सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि मे हैं। इस कोश के अनेक सस्करण हुए। चतुर्थ सस्करण मे दक्खिनी भाषा के अनेक कवियो से भी शब्द सकलित हुए हैं।

इन कोशो की रचना मे धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अत शब्दसकलन के क्रम मे बोलचाल के शब्दो को इन कोशकारो ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दो के अनावश्यक सकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशो मे अधिकत उर्दू शब्दो का प्राधान्य है और बेट्स तथा एकाध और कोशकारो के कोशो को छोडकर प्राय: सबमे शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फैलन के कोश मे चूंकि मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी० प्लेट्स ने उर्दू और हिंदी के सा[illegible]ओ मे प्रयुक्त शब्दों के सकलन [illegible] ध्यान दिया। पादरियो और अग्रेजी शासको ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशो और नवीन कोश रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैसे लोगो ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी बेटम का काशी से (१८७५ ई० मे) प्रकाशित हिंदीकोश और मु० दुर्गाप्रसाद का अग्रेजी उर्दू कोश (१८९० ई०)--इस दिशा के अनवरत चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवी शती के अत तक--भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम सस्करण की भूमिका (पृ० १२) मे दिया गया है। अत यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नवकोशो की आद्य रचना और प्रेरणा--पश्चिम के कोशकारो द्वारा ही प्राप्त हुई। फलत हिंदी ही नही, उसकी बोलियो के भी अनेक कोश बने। व्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निर्मित--शब्दार्थपारिजात। सूर-व्रजभाष-कोश भी डा० टडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश--श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा सपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी सवद कोश भी प्रकाश मे आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदीतर भाषाओ मे कोश

(क) द्रविड भाषाएं

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशो का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा बहुत प्राचीन कही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रथ 'तालकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रथ मे ग्रथकार ने सूत्र शैली मे शब्दकोश तैयार किया था। ग्रथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दो को चार वर्गों मे विभक्त किया है--(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओ से व्युत्पन्न शब्द और (४) सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमे शब्दसग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अट्ठारहवी शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी मे बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। १२ खडो का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमे दस खडो मे वगमूलक शब्दसचय है, ११वाँ खड नानार्थ शब्दो का और १२वाँ समूहवाचक शब्दो का है।

१६७६ ई० मे प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर बेशली ने पूर्णत अकारादि क्रम पर निर्मित 'कतुर अकारादि' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अग्रेजी कोश लूयर के अनुयायी धर्मप्रचारको द्वारा १७७९ ई० मे 'मलाबार ऐंड इग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा सस्करण सशोधित रूप से तमिल मे 'इग्लिश डिक्शनरी' के नाम मे १८०९ ई० मे मुद्रित हुआ। [illegible]५१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अग्रेजी, तेलुगू और तमिल का [illegible]काशित हुआ। इनकी [illegible]ता से अनेक तमिल कोश बनते अ[illegible] [illegible] और [illegible] । मे व्याकरण

और कोशो की सपन्न परपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुआ है जो अनेक जिल्दो मे प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के अनुसार है। इसकी भूमिका मे तमिल-कोश-परपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन कालो मे अनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमे अनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमे तमिल मे अर्थ दिया गया है, कुछ मे अग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' और कुछ नए कोश ऐसे भी हैं जिनमे भारतीय भाषाओं का अर्थबोधन के लिये आश्रय लिया गया है। इन्हीं मे एकाध तमिल हिंदी कोश भी है।

दक्षिण की अन्य द्रविड भाषाओ मे भी १९वी शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली आ रही है। इन भाषाओ मे आज अनेक उत्तम और विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के त्रिभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० मे अग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छापा गया। ए तेलगू-इग्लिश डिक्शनरी का १९०० ई० मे निर्माण पी० शकरनारायण ने किया। १९१५ ई० मे आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, अर्थात् १८१२ ई० मे अग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का अग्रेजी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० मे प्रकाशित हुआ। बाद मे भी एफ्० कितल द्वारा सपादित (१८९४ ई० मे) कन्नड का भी एक कोश छपा।

(ख) आर्यभाषाएँ

हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक आर्यभाषाओं के कोशो मे बँगला और मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् अत्यत सपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाओ के अलावा अन्य आर्यभाषाओ मे भी आधुनिक कोशो की कमी नहीं है। पजाबी मे बहुत से पुराने कोश हैं। उडिया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, असमिया आदि मे भी कोश बने हैं। पर बँगला, मराठी और पजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप मे की जा रही है।

बँगला कोश

बँगला के कोशो की परपरा—बँगला भाषा का विकास होने के बाद से—बराबर चल रही है। आधुनिक ढग के कोशो मे प्रकृतिवाद अभिधान नामक विशाल बँगला कोश उल्लेखनीय है जिसका सपादन राधाकमल विद्यालकार ने किया। १८११ ई० मे यह प्रकाशित हुआ। यह शब्दकोश वस्तुत सस्कृत बँगला शब्दकोश है। इसका पूर्णत परिशोधित और परिवर्धित सस्करण १९११ ई० मे श्रीशरच्चद्र शास्त्री द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुआ। इसका षष्ठ सस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुअल ने बँगला व्याकरण के साथ बँगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बँगला कोश (सभवत) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने १८२५ ई० बहुत विशाल बँगला-इगलिश कोश बनाना था। ईस्ट इडिया कपनी की ओर से १८३३ ई० मे बँगला सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउटर और रामकमल सेन का 'बँगला-इगलिश कोश भी अत्यत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बँगला अग्रेजी कोश मे ८००००० शब्द थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक छोटे बडे बँगला अग्रेजी कोश भी बने। केवल बँगला लिपि और भाषा मे ही ज्ञानेंद्रमोहन दास का बँगला भाषार अभिधान (द्वितीय सस्करण १९२७) और पाँच जिल्दोवाला हरिचरण वद्योपाध्याय द्वारा निर्मित वगीय शब्दकोश दोनो उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बँगला मे उन्नीसवी शताब्दी से आजतक छोटे बडे शब्दकोशो के निर्माण की परपरा चली आ रही है। छोटे कोशो मे चलतिका अत्यत लोकप्रिय है। सैकडो अन्य कोश भी आज तक रचे गए और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचद्र राय का बँगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रथ मे अनेक आधारिक और सहायक ग्रथो की चर्चा है। उनमे बँगला से सबद्ध निम्नाकित कोशो के नाम उपलब्ध हैं—

(१) डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० कैरे—१८२५ ई०)

(२) ए डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० जॉन सी० मार्शमैन—१८२७ ई०)

(३) बगाली वोकैब्यूलरी (स० एच्० पी० फास्टर—१७९९ ई०)

(४) बगाली वोकैब्यूलरी (मोहनप्रसाद ठाकुर—१८१० ई०)

(५) डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० डब्ल्यू० मार्टन—१८२८ ई०)।

(६) ए डिक्शनरी आव् बगाली ऐंड इगलिश (स० ताराचद चक्रवर्ती—१८२७ ई०)।

(७) शब्दसिंधु (अमरकोश के सस्कृत शब्दो की आकारादिवर्णानुक्रमानुसार योजना तथा बँगला व्याख्या—१८०८ ई०)

ग्लासरी ऑव जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के अग्रेजी बँगला कोश का टाड सस्करण १८३४ ई० मे प्रकाशित हुआ एच्० एच्० विलसन का जो कोश १८५५ ई० मे प्रकाशित हुआ उसमे अरबी फारसी हिंदी, हिंदुस्तानी, उडिया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् आदि के साथ साथ बँगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी अच्छा कोश कहा जाता है।

मराठी कोश

मराठी भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा सभवत उस यादवकाल से प्रारभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के अनतर आधुनिक मराठी का स्वतत्र भाषा के रूप मे विकास हुआ और वह प्रौढ हो गई। उस युग मे कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पडितो द्वारा रचित अनेक कोशो का उल्लेख मिलता है। सत ज्ञानेश्वर ने अपनी कृति ज्ञानेश्वरी के क्लिष्ट शब्दो की—अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी मे पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी से सबद्ध १२वी शती के उन कोशो का सकेत मिलता है जो आज अनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय मे 'राज-

व्यवहार-कोश' बना था जिसमे मराठी, फारसी और सस्कृत---तीनो भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पडितराव द्वारा ३८४ पद्यों का यह छदोवद्ध कोश ऐसा त्रिभाषी कोश है जो अपने ढग का विशेष कोश कहा जा सकता है। सस्कृत और फारसी के भी अर्थपर्यायसूचक ऐसे कोश सस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल मे बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यो के सपर्क और प्रभाव से 'मराठी इगलिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोल्सवर्थ ने अग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० मे बनाया था। थामस कैंडी के सहयोग से उस कोश के सशोधित और परिवर्धित अनेक सस्करण छपे। मराठी के इन कोशो की परपरा १९वी शताब्दी के आरभ से अबतक चली आ रही है। कोशो की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यत सपन्न है। अग्रेजी कोशो मे केरी, कर्नल केनेडी और गोल्सवर्थ कैंडी के मराठी इगलिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १९वी शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं---(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश (इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२९ ई० से प्रारभ हो गया था), (२) रघुनाथ भास्कर गाडबोले का हसकोश (१८६३ ई०), (३) वोडकर का रत्नकोश (१८६९ ई०) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश (१८९० ई०)। वीसवी सदी के कोशो मे---वा० गो० आप्टे का---मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध है। सामान्य शब्दार्थ कोशो के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश (कृष्णाजी पाडुरग कुलकर्णी---१९४६ ई०) अत्यत प्रसिद्ध व्युत्पत्ति-कोश है। इसमे मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी मे विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्सप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमे अग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ सग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमे कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० मे पजाबी शब्दकोश बना था जिसमे गुरुमुखी और रोमन मे मूल शब्द थे तथा अग्रेजी मे अर्थ था। इसके बाद पजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वी शती मे भाई विशनदास पुरी के सपादकत्व में प्रकाशित (१९२२ ई०)और पजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाश्य-मान पजाबी कोश अत्यत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मीरी भाषा के अपने मैनुअल मे डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजवुक के साथ साथ शब्दकोश भी सपादित (१९३२ ई०) किया था। इसके मूलकर्ता ईश्वर कौल थे और सभवत १८९० ई० के पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी। इसके पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा का कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली डिक्श-नरी यद्यपि बहुत बाद की है, तथापि उसमे कोशविज्ञान और भाषा-विज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यत प्रशसनीय है।

उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशो की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशो के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्राय रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि मे निर्मित थे। इनमे फरहगे अस-फिया, तख्मीस्सुल्लुगात, लुगात किशोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। तत्वत इनमे हिंदी के शब्दो की सख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नहीं कर पाते। 'फरहगे-ए-इस्तलाहात---वस्तुत मौ० अब्दुलहक की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरुल् लुगात तथा करीमुल्लुगात उर्दूकोशों मे प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचद्र वर्मा, श्रीहरिशकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने महाह द्वारा सपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उडिया, और असमिया मे भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मदिर का सार्थ गुजराती मउणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इग्रेजी कोश प्रसिद्ध है। असमिया मे १८३७ ई० मे ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इग्लिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचद्र बरुआ द्वारा निर्मित 'असमिया-अग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उडिया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का साराश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओ मे आधुनिक कोशो की प्रेरणा पाश्चात्यो से मिली और भारतीयो ने उस कार्य को निरतर आगे बढाने मे योगदान किया।

आधुनिक कोश की विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारो की सक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग ने कोशविद्या को अत्यत व्यापक परि-वेश मे विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं---(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरतर प्रौढता की ओर बढता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषा-विज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, सदर्भसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रो तथा विज्ञानो मे प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ सकलन का पुजीकृत परिणाम है।

शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओ के कोशो मे आक्सफोर्ड-इग्लिश-डिक्शनरी के परिशीलन मे उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियो का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमे शब्दो के सही उच्चारण का सकेत-चिह्नो से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरप के उन्नत और समृद्ध देशो की प्राय सभी भाषाओं मे विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और सपन्न कोशो का निर्माण हो चुका है और उन देशों मे कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी सस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमे अबाध गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लब्धप्रतिष्ठ और बडे बडे विद्वानो का सहयोग तो उन सस्थानो को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओ मे निर्मित कोशकारो के रचना-विधान-मूलक वैशिष्ट्यो का अध्ययन करने से अद्यतन कोशो मे निम्ननिर्दिष्ट बातो का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक सकेतचिह्नो के माध्यम से शब्दो के स्वरो व्यजनो का पूर्णत शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासभव उच्चार्य अश के अक्षरो की बद्धता और अबद्धता का परिचय देना, (ख) व्याकरण-सबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना, (ग) शब्दों की इतिहास-सबद्ध वैज्ञानिक व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना, (घ) परिवार-सबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दो के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना, (ङ) शब्दो के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थों को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दो अथवा शब्दप्रयोगो की विलोपसूचना देना, (छ) शब्दों के पर्याय बताना, और (ज) सगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना, (झ) चित्रों, रेखाचित्रो, मानचित्रो आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अनर्गत इन बातो की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और वृहत्तम सस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्राय सभी विशेषताओ से सपन्न है। पर भारतीय भाषाओ के कोशो मे अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नही हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाश्यमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खड प्रकाशित हो चुके है) एक विस्तृत आयाम है। हिंदी कोशकला के लब्धप्रतिष्ठ सपादक श्रीरामचद्र वर्मा के इस प्रशसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यत शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्विक रूप मे शब्दसागर से ही अधिकाशत परिकलित है। हिंदी के अन्य कोशो मे भी अधिकाश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोडे बहुत मुख्यत सस्कृत कोशो से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दो और अर्थों को आवश्यक अनावश्यक रूप मे ठूँस दिया गया है। ज्ञानमडल के वृहद् हिंदी शब्दकोश मे पेटेवाली प्रणाली शुरू की गई है। परतु वह पद्धति सस्कृत के कोशो मे जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानो के प्रयास से आरभ हुआ था, सैकडों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इतालो, फ्रासीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणत सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशो मे तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओ मे ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियो से प्रमाणीकृत रूप में निर्मित हो चुके हैं। इनमे मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमे प्राचीन भाषाओ की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओ के शब्दो का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशो के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयो के सामूहिक और तत्तद-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओ मे बनते जा रहे हैं। शास्त्रो और विज्ञानशाखाओ के पारिभाषिक शब्दकोश भी निर्मित हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशो की रचना एक भाषा मे भी होती है और दो या अनेक भाषाओ मे भी। कुछ मे केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ मे व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयो से सबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशो मे व्याख्यात्मक परिभाषाओ तथा कभी कभी अन्य साधनो की सहायता से भी बिलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओ के कोश विश्व की विविध सपन्न भाषाओ मे विशेषज्ञो की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकडो हजारो कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश सबधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमे ज्ञानकोशात्मक तत्वो की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी समिश्रित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रो और दर्शनो आदि के विशिष्ट एव पारिभाषिक शब्दो के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि मे सकलित हो रही है। इनमे उत्तम कोटि के कोशकारो ने ग्रथसदर्भों के सस्करणात्मक सकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणिकात्मक उन शब्दसूचियो का—जिनके अर्थ नही दिए जाते हैं पर सदर्भसकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नही है। योरप और इगलैंड मे ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनी। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दो की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दो की और ऋक्सहिता में प्रयुक्त पदो की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक सकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परतु इनमे अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नही किया जा रहा है।

ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी मे इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द बँगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम बँगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी मे यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा प० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञान कोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयभंडार आदि संज्ञाओं का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वय सरकार भी बालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रथ का प्रकाशन 'ज्ञानसरोवर' नाम से कर रही है। परतु इन्साइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप मे विश्वकोश शब्द ही प्रचलित हो गया। उडिया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञान मडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि वृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान-का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दो के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रथ का इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षा-कृत लघुतरकोशो को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अग्रेजी आदि भाषाओ मे बुक आफ नालेज, डिक्शनरी आव जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अतर्गत नाना प्रकार के छोटे बडे विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरतर प्रकाशित एव विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नही इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स आदि विषयविशेष से सबद्ध विश्वकोशो की सख्या भी बहुत ही बडी है। अग्रेजी भाषा के माध्यम से निर्मित अनेक सामान्य विश्वकोश और विशेष विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्साइक्लोपीटिया ब्रिटानिका, इन्साइक्लोपीटिया अमेरिकाना अग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अग्रेजी के सामान्य विश्वकोशो द्वारा इनकी प्रामाणिकता और समान्यता सर्वस्वीकृत है। निरतर इनके सशोधित, सवर्धित तथा परिष्कृत सस्करण निकलते रहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन सस्करण की सामग्री के रूप मे सातत्य भाव से सकलित होते रहते हैं। इगलैंड मे इन्साइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशो के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशो के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नही है। चरितकोश, कथाकोश इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराख्यानकोश, पौराणिक-रूपात्मपुष्पकोश आदि आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशो की बहुत सी विधाएँ विकसित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसगत ज्ञानकोशो का सकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसग को यही समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से सबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

हिंदी कोशो की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशो की विशेषताओ और उनकी विभिन्न विधाओ की चर्चा अन्यत्र हुई है। आज के कोशो मे भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक शब्दरूपो और अर्थरूपों मे सबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ विकास-क्रम का कोश मे समावेश उसका अत्यत अनिवार्य अग हो गया है, यह अन्यत्र कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषाव्यवहार मे आद्य प्रयोग और क्रमश तत्परवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होते हैं। व्युत्पत्तिलभ्य यौगिक और रूढ—नाना अर्थों के भी सोदाहरण निर्देश—कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगसीमा मे आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश मे रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगो के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नही होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूननतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परतु ऐसे कोश सपन्न और विकसित देशो की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बडे अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनो के अभाव मे समस्त वैशिष्ट्यों से सपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासभव और यथाशक्ति या आशिक रूप मे उत्कृष्ट कोशो की घटक सामग्रियो से सहायता लेते हैं। सभवत भारत के अधिकाश बडे कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशो मे शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससबधी प्रामाणिक उदाहरणो द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नही हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दो के उच्चारण-सबधी यथार्थ निर्देश की कमी प्राय सभी छोटे बडे हिंदी कोशों मे वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिंगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दक्खिनी हिंदी, खडी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र मे प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणो का निर्देश अत्यत आवश्यक है। हिंदी पढनेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितात कठिन हो जाता है। पर अबतक के बृहत् हिंदी कोशो मे, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन सस्करण मे उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नही हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बडी भारी कमी हिंदी कोशो मे रह गई है। उसका सबंध ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगो के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा मे अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरपरा मे उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशो मे यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशो मे इनका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा मे थोडा प्रयत्न-शील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरभ और समाप्ति के प्रयोगसपुक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरातन-प्रयोग सबधी सकेत-बोधक चिह्न के द्वारा लुप्तप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियो को दूर करने की ओर कोशनिर्माण मे प्रवृत्त सस्थाओ और व्यक्तियो के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति संतोषजनक नही है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठको के लिये बने हुए सामान्य कोशो के अतिरिक्त हिंदी मे कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मात्र कहते हैं। इनमे व्याकरणसबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी मे एकाध पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयो के पारिभाषिक शब्दो के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओ और हिंदी मे भी बन रहे हैं। इनमे बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अंतर्गत आ जाते हैं। इनमे विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायो द्वारा और कभी सक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर सकेत किया गया है, विभिन्न कवियो लेखको के ग्रथो अथवा विशिष्ट ग्रथो के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते है। प्रथम प्रकार के कोशों मे हिंदी के सूर ब्रजभाषा कोश (डा० टंडन), प्रसाद काव्यकोश (श्रीसुधाकर पांडेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि मे मानस शब्द कोश आदि को। बड़े शब्दार्थ कोशो मे कभी कभी विश्वकोश पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणात्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेब्स्टर की न्यू इंगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्व कोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अंतर्नियोजित है। यहाँ यह सकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दार्थ कोशो मे यौगिक, सामासिक शब्दो और लोकोक्तियो, मुहावरो आदि का भी उसी प्रकार अंतर्योग लक्षित होता है जिस प्रकार सस्कृत कोशो अथवा अंग्रेजी कोशो मे। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर मे दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशो मे लोकोक्तियो और मुहावरो का अर्थबोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अंतर्गत दिखाया गया है। परतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल लोकोक्तिकोश या मुहावराकोश कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों मे व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशो की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बड़े कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमणिकाओ को जो मात्रशब्दो की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड देने पर भी अनेक ग्रथ के साथ सार्थक शब्दानुक्रमणिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदो का शब्दकोश कह सकते हैं।

आधुनिक कोशविद्या तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशो की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत मे कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशो के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयामो का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति मे आरभ हुआ। सस्कृत और इतर भारतीय भाषाओ मे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो के प्रयास से छोटे बड़े बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशो का भारत और भारत के बाहर भी निर्माण हुआ। आरभ मे भारतीय भाषाओ के मुख्यत सस्कृत के, कोश अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओ के माध्यम से बनाए गए। इनमे सस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि मे रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अंग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओ मे दिए गए। बंगला, तमिल आदि भाषाओ के ऐसे अनेक कोशो की रचना ईसाई धर्मप्रचारको द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपो मे हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका मे पृष्ठ १–२ पर हिंदी के आधुनिक कोशो की आरभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबसे पहला शब्दकोश सभवत फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अंग्रेजी' (अंग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० मे लदन मे प्रकाशित हुआ। इन आरभिक कोशो को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यत हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानो के इन कोशो मे हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी कही गई। कोशविद्या के इन पाश्चात्य पडितो की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वही सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम मे विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरभिक क्रम मे कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम मे मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघटु विरल और क्लिष्ट शब्दो के अर्थ और पर्यायो का सक्षिप्त सग्रह था। योरप मे भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरभिक बीजवपन हुआ था, उसके मूल मे भी विरल और क्लिष्ट शब्दो का पर्याय द्वारा अर्थबोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शनै शनै पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आविर्भूत हुए। भारत और पश्चिम दोनो ही स्थानो मे शब्दों के सकलन मे वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशो का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशो से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशो की अन्य भेदकताएँ मुख्यत निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं––

(१) योरप मे विशेष रूप से और भारत मे आंशिक रूप से–– आदिमध्यकालीन कोशकर्म मे कठिन शब्दो का सरल शब्दो या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यत एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत मे वैदिक निघटुकाल से ही पर्यायशब्दो का अर्थबोधकपरक एकत्रीकरण होता था। इनमे दुर्बोध्य और कठिन शब्दो के सग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों मे बहुपर्याय सग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशों में सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघटु का शब्दसकलन भी वैदिक वाङ्मय के समग्र शब्दनिधि का संग्रह न होकर अधिकत दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दों की संकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरंभिक अवस्था में नानार्थक शब्दों का इनमें परिशिष्ट जुड़ा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार में आकलन होने लगा। फलत: संस्कृत के अनेक नानार्थ कोशों में मुख्यत नामसंग्रह होता था और आगे चलकर लिंगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशों की संग्रहयोजना वर्गपरक हो गई थी। नानार्थ शब्दों की क्रम-योजना में अत्य व्यंजनाक्षर का क्रम (मूलत) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्ण का आधार लेकर वर्णमालानुसारी शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशों में लघु कोशों के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थबोधक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। संस्कृत में यह नहीं था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थीं। संस्कृत के समानार्थक कोशों की भाँति आधुनिक कोशों में पर्याय रखने पर अधिक बल देने की चेष्टा नहीं होती। कभी कभी अवश्य ही संस्कृत कोशों के प्रभाव से हिंदी आदि में भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं! पर वस्तुत ये कोश संस्कृत कोशों के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) संस्कृत के प्राचीन कोशों में मुख्यत नामपदों, अव्ययशब्दों तथा कभी कभी धातुओं का भी संग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित संग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठों में दिखाई पड़ता है। आरंभ में, अमरकाल और उसके बाद, संस्कृत कोशों का मुख्य रूप नामलिंगानुशासनात्मक हो गया। आधुनिक कोशों में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परंतु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसंकेतों द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशों का निर्माण उन समस्त जनों के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओं के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। संस्कृत कोशों का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकत उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यों को कंठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशों को कंठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशों का यह प्रयोजन बिल्कुल ही नहीं है।

(५) संस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियों, साहित्यनिर्माताओं और काव्यशास्त्रादि के पाठकों के शब्दभंडार की वृद्धि करना। परंतु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दों के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्संबंधी अन्य बातों की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढ़ाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिसूचन, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थों का सामान्य एवं विशेष संदर्भ-संयुक्त विविक्त विवरण, यौगिक एवं मुहावरों के शब्दयोगों तथा धातुयोगों आदि के अर्थवैशिष्ट्य का सोदाहरण निरूपण भी आधुनिक कोशों में रहता है। यह सब प्राचीन कोशों में नहीं था। कोशवीथियों में अवश्य इनमें से अनेक बातें अणत और प्रसंगत निर्दिष्ट कर दी जाती थीं।

आधुनिक कोश सीमा और स्वरूप

योरप में आधुनिक कोशों का जो स्वरूप विकसित हुआ, उसकी रूपरेखा का संकेत किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रिका के उस तटभाग में जो अरब देशों के प्रभाव में आया था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशों का निर्माण होने लगा था। भारत में व्यापक पैमाने पर जिस रूप में कोश निर्मित होते चले, उनकी संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विशिष्टताओं का आकलन करते हुए कहा जा सकता है

(क) आधुनिक कोशों में शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की परिणति दिखाने के प्रयास को बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे कोशों को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगसदर्भ का आधार लेकर अर्थ और उनके एकमुखी या बहुमुखी विकास के सप्रमाण उपन्यासन की चेष्टा की जाती है। दूसरे शब्दों में इसे हम शब्दप्रयोग और तद्बोध्यार्थ के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविकास) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा संगृहीत शब्दों और अर्थों के आधार का प्रामाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इसके लिये बाध्य नहीं था। वह स्वत प्रमाण समझा जाता था। पूर्व नामों या अर्थों का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशों में ऐसे शब्दों के संबंध में जिनका साहित्य या व्यवहार में प्रयोग नहीं मिलता, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशों की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिनका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम से सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, शब्दकोश आदि नाना रूपों में अपने आभोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशों में अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखा-चित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शास्त्रीय वाङ्मय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धांत की संगति ढूँढने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओं के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के मूल और स्रोत ढूँढने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी

प्राचीन भाषा या भाषाओं के मूलस्रोतो की गवेषणा के व्युत्पत्ति-दर्शन के सदर्भ मे महत्वपूर्ण प्रयास होता है। बहुभाषी पर्यायकोशो मे ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के सहयोग और सहायता द्वारा स्रोतभाषा के कल्पनानिर्दिष्ट रूप अगीकृत होते हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन भारत-यूरोपीय – आर्यभाषा के बहुभाषी तुलनात्मक कोशो मे मूल आर्यभाषा (या आर्यों के 'फादर लैंग्वेज') के कल्पित मूलरूपों का अनुमान किया जाता है। दूसरे शब्दो मे इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक उत्कृष्ट कोशो मे जहाँ एक ओर प्राचीन और पूर्ववर्ती वाङ्मय का शब्द-प्रयोग के क्रमिक ज्ञान के लिये ऐतिहासिक अध्ययन होता है वहाँ भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिपक्षो का प्रौढ सहयोग और विनियोग अपेक्षित रहता है। कोशविज्ञान की नूतन रचनाप्रक्रिया आज के युग मे भाषाविज्ञान के नाना अगो से बहुत ही प्रभावित हो गई है। इस प्रभाव की दूरगामी व्याप्ति का नीचे की पक्तियो मे सक्षेपत सकेत किया जा रहा है।

कोशरचना की प्रक्रिया और भाषाविज्ञान

कोशनिर्माण का शब्दसकलन सर्वप्रमुख आधार है। परतु शब्दो के सग्रह का कार्य अत्यत कठिन है। मुख्य रूप मे शब्दो का चयन दो स्रोता से होता है--(१) लिखित साहित्य से और (२) लोकव्यवहार और लोकसाहित्य से। लिखित साहित्य से सग्रह्य शब्दों के लिये हस्तलिखित और मुद्रित ग्रथो का सहारा लिया जाता है। परतु इसके अतर्गत प्राचीन हस्तलेखो और मुद्रित-ग्रथो के आधार पर जब शब्द-सकलन होता है तब उभयविध आधारग्रथो की प्रामाणिकता और पाठशुद्धि आवश्यक होती है। इनके बिना गृहीत शब्दो का महत्व कम हो जाता है और उनसे भ्रमसृष्टि की सभावना बढती है।

हिंदीकोश मे शब्दसंकलन . शुद्धपाठ

मुद्रित या हस्तलिखित ग्रथो से जो शब्दसकलन होता है उसमे पाठ की शुद्धि नितात अपेक्षित है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्व तभी स्थापित हो सकता है जब पाठालोचन विज्ञान के अनुसार ग्रथ के आलोचनात्मक (क्रिटिकल) सस्करण सपादित हो और उनके माध्यम से प्राचीनतम शुद्ध पाठ उपलब्ध हो। शुद्ध और मूल पाठ तभी निर्धारित हो सकता है जब यह ज्ञात हो कि भाषा मे प्रयुक्त कौन से शब्द का कब क्या रूप था और उसके अर्थविकास का क्या क्रम था ?

पूना से प्रकाशिप्यमाण सस्कृत कोश के आधारित ग्रथो के ऐसे समालोचित पाठ का निर्धारण किया जा रहा है जो पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धातो से विवेचित हो। प्रसगवश यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि हिंदी मे आदि और मध्य कालों के हिंदी ग्रथों के ऐसे सस्करण अत्यत दुर्लभ हैं जिनके पाठों का सपादन पाठालोचनविज्ञान के आधार पर हुआ हो। रामचरितमानस के पाठालोचन की चेष्टा कुछ अधिक हुई है, और उसके अपेक्षाकृत कुछ अच्छे सस्करण प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। परतु अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रथ अभी जिस रूप मे उपलब्ध हैं, उनमे पाठालोचनविज्ञान की सपादनपद्धति का प्राय. अभाव है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, कबीर साहित्य आदि के पूर्णतः सतोषदायक सस्करण आज भी अनुपलब्ध हैं। शुद्ध पाठ तो अप्राप्य है ही। तत्तद् ग्रथो मे कितना अश क्षेपक है एव कितना मूल है, इसका असदिग्ध प्रमाण भी अनुपलब्ध है। 'रासो' जैसे महाग्रथ के प्रामाणिक और मूल रूप का प्रश्न अत्यत विवादास्पद है। उसे जो ग्रथ भी कह दिया जाता है और उसके निर्माणकाल का भी निर्धारण अभी नही हो पाया है। ऐसी स्थिति मे प्रकाशित ग्रथो के आधार पर सकलित शब्दसमूह और उनके प्रयोग का इतिहास विवादास्पद और प्रमाणहीन रह जाता है।

हस्तलेखो मे शुद्ध पाठ की प्राप्ति स्वत दुःसाध्य कार्य है। इसके अतिरिक्त उनसे हिंदी कोशकारो का शब्दसग्रह करना और भी दुष्कर है। अपेक्षित आर्थिक साधन के अभाव मे अप्रकाशित हस्तलेखो से शब्द सग्रह करना प्राय उपेक्षित ही रहा है। कहने का तात्पर्य केवल यह कि हिंदी कोश के पूर्ण विकसित स्वरूप का निर्माण आज की परिस्थिति मे भी असभवप्राय जान पडता है।

कोश के लिये सकलित शब्दसमूह के आधार ऐसे शब्द होते हैं जो आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से विवेचित एव शुद्ध पाठवाले सस्करणो से सगृहीत हो। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टियो से पाठविज्ञान का घनिष्ठ सबध है। शब्दरूप और तद्बोध्य अर्थ का निर्णयात्मक स्वरूप भी भाषाविज्ञान की दृष्टि की--बहुत दूर तक--अपेक्षा करता है।

लोकभाषा से शब्दसकलन

व्यावहारिक लोकभाषा से शब्दसग्रह करना श्रमसाध्य कार्य अवश्य है परतु असभव नही है। इनके रूप का स्रोत ढूँढने और अर्थ-विकास की शृखला निर्धारित करने मे भाषाविज्ञान की अत्यधिक सहायता अपेक्षित होती है।

लोकसाहित्य का आज एक स्वतत्र अध्ययनक्षेत्र लोक-साहित्य-विज्ञान के रूप मे विकसित हुआ है। परपरागत लोकगीतो मे लोक-साहित्य का काफी पुराना अश चला आ रहा है। लोककथाओ आदि के पद्यात्मक रूपो मे शब्दरूपो की परपरा सुरक्षित मिल जाती है। परतु प्राचीन बोलियो से गद्यरूप काफी दूर हो जाता है। लोकबोलियो से एक ओर तो तत्तद् बोलियो के शब्दकोशो का निर्माण करने मे शब्दो का संकलन सहायक होता है, दूसरी ओर शब्द के रूपविकास और अर्थविकास की कडी के रूप में भी उनकी उपयोगिता होती है। हिंदी के कोशो मे तो बोलियो के बहुत से शब्दो का सकलन और भी आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी के अतर्गत राजस्थानी, व्रजभाषा, दक्खिनी हिंदी, सधुक्कडी, बुदेली, अवधी, बिहारी, मैथिली, उर्दू आदि अनेक प्रातीय या क्षेत्रीय भाषाओ और बोलियो के ग्रथ समाविष्ट किए गए हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्यगठन के आधार पर पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की भाषाओं और बोलियो मे स्पष्ट अतर होने पर भी, साहित्यिक दृष्टि से, विशाल हिंदीक्षेत्र की भाषा, विभाषाओं और बोलियो के शब्दरूपो और बोध्यार्थों का आकलन और सकलन हिंदी कोशों मे अनिवार्य हो जाता है। रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक और तुलनात्मक प्रतिपत्ति के लिये बोलियो के शब्दों का सकलन भी हिंदी और इस श्रेणी की अन्य भाषाओ के कोशों मे बहुत सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नही कि बोलियो और लोकसाहित्य के

ग्रंथों के प्रकाशित वाङमय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थबोधन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोकसाहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, संस्कृतिविज्ञान, पुराणविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

व्युत्पत्ति (निरुक्ति)

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में संगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मूल शब्द से संबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका घनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत (मानक अथवा स्टैंडर्ड) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचयन में भी भाषा-विज्ञान और तदंगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विशेषण और संज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश के प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में संगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अंग ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसंकेतों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निर्दिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णतः शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के संदर्भ में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पड़नेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढ़ाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निर्मित उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कृतियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि सिमाटिक्स अर्थात् अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की अंगशाखा के रूप में महत्व अपेक्षाकृत अर्वाचीन है, और साथ ही अनेक आधुनिक विचारक इस शाखा का भाषाविज्ञान से पृथक् भी बताने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोगों द्वारा इसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रौढ़ और सूक्ष्म अर्थबोधन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधिक है।

शब्दव्युत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी केवल ध्वनिसाम्य अथवा ध्वनि-विकास-संबंधी नियमों की प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोड़कर केवल ध्वनि या रूपपक्ष का आधार लेकर चलने से कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रामक और अशुद्ध हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या अर्थविज्ञान का विनियोग बड़ा ही महत्व रखता है।

इन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोड़कर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधारिक तत्वों पर साक्षात् या परंपरया आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निघंटु के निरुक्तात्मक भाष्यकाल से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का संकेत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

निष्कर्ष

हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के संपर्क और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विकसित हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में भी इसका सिंहावलोकन किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों में प्रथम था 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२९ में 'कलकत्ता' से छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यों द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम से बने। गिलक्राइस्ट, जान शेक्सपियर, टेलर, विलियम हंटर आदि पाश्चात्यों द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश कहे गए हैं। उनमें संगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फैलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाट्स का कोश हिंदी और उर्दू के अंशों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री राधेलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबकी विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का आरंभिक प्रयास शुरू हो गया था। अकारादिवर्णानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परंतु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णत: व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निर्मित हिंदी कोशों में शब्दसंग्रह का मुख्याधार संस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का भी संकलन हुआ, परंतु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशों में व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्राय पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कहीं कहीं दे दी जाती थीं, परंतु बहुधा संक्षिप्त और अपूर्ण रहती थी। किसी किसी कोश में व्युत्पत्ति देने की चेष्टा है पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नहीं है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की ओर सर्वथा उपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणों से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर बाल्यावस्था का ही कहा जा सकता है। प्राय एक व्यक्ति के प्रयास से निर्मित इन कोशों में विशेष प्रौढता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानों में युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यत शब्दार्थज्ञान कराना था, और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें संकलित अधिकाश शब्द संस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोश से ही ले लिए जाते थे और एक जिल्द में व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी में जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका संकेत प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उद्धरणी अनावश्यक है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविज्ञ के सहायकत्व में तथा बालकृष्ण भट्ट, श्री अमीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री (लाला) भगवानदीन और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओं के सहयोग से संपादित और निर्मित यह कोश एक महान् प्रयास। साधन और परिस्थितियों के विचार से उक्त महाकोश के संपादन में सभा के कर्णधारों और कोश के कार्यकर्ताओं को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ कोशों की तुलना में इसमें अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनंदनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनंतर बने हिंदी के सभी छोटे बड़े कोशों का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की रचना का कार्यारंभ हो गया था। १८५७ ई० से १८७९ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रही, और १८८४, (१८ १।१८८४) ई० में उसका प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक संपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों में उसका प्रकाशन हुआ। उसके तैयार होने में ७३ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधारिक सामग्री उससे पूर्व ही डा० जानसन, रिचर्डसन और वेब्स्टर के कोशों में संकलित हो चुकी थी। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने में बहुत बड़ा श्रम करना पड़ा। हिंदी शब्दसागर का संपादन साधन और आधारिक सामग्री को देखते हुए अपने आपमें स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि से आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उपलब्धि बहुत बड़ी रही।

पूर्ववर्ती अधिकाश हिंदी कोशों की भाँति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निर्मित न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियों द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसंकलन के लिये केवल पुराने कोशों का ही आधार न लेकर ग्रंथों और व्यवहारयुक्त भाषा और बोलियों के प्राय समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दों के संग्रह का उसमें प्रयास हुआ है। प्राय प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतों का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जो संदिग्ध और भ्रामक अथवा कहीं कहीं अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरों में उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशों की तुलना में शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक अग्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर में अनेकत्र उदाहरणों का सहयोग लिया गया है; परंतु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन संस्करण में भी संभव नहीं हो सका। इस संबंध की असमर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी ओर व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एवं अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर में अत्यंत प्रौढ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर संस्कृत कोशों का व्यापक प्रभाव है और प्राय अधिकाधिक यौगिक पदों का उल्लेख भी संस्कृत व्याकरण पर अधिकत आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोगपरंपरा का आकलन और संकलन भी बड़े यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरों और लोकोक्तियों या प्रयोगों अथवा क्रियाप्रयोगों की प्रयोगपरंपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी--इसमें पर्याप्त प्रौढ़ है।

अर्थनिर्धारण में व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है। पर साथ ही मुख्य शब्दों के अंतर्गत अधिकत पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढंग का पर्यायवाची और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परंपरागत अनेक प्रकार के परिचय एवं विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्र तत्र स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसपृक्त अर्थच्छाया (शेडस आव मीनिंग) की भिन्नता को भी अनेक स्थलो पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य श्रमी और श्रम अपेक्षित करता है। शब्दो के समस्त अर्थों की प्रयोगपुष्टि और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नही हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रथो के नाममात्र ही निर्दिष्ट हैं। उनके प्रसगस्थल और सस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलो पर बोलचाल के स्वनिर्मित उदाहरण भी नियोजित किए गए हैं। सब मिलाकर इसमे शब्दसग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथासभव व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र मे विभिन्न पेशे और वर्ग के जनजीवन से सगृहीत शब्दभडार की सयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ गया है।

हिंदी शब्दसागर के अनतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम सस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी मे अंग्रेजी आदि न जाननेवालो के सामन कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत प्रौढ और विकसित रूप का प्रतिमान उद्भासित हुआ।

सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशो का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक सस्करण कह सकते है। इसमे मुख्यत सक्षेपीकरण ही किया गया है। बाद के सस्करणो म थोडा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। षष्ठ सस्करण मे अवश्य ही व्युत्पत्ति क निर्देश मे कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परतु ज्ञानमडल का वृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवीनता लेकर सामने आता है। इस कोश मे सस्कृत कोशो स लेकर हजारो शब्द—मूल और यौगिक—बढ़ाए गए हैं। इनम बहुधा ऐस दिखाई पडत हैं जो हिंदी मे अप्रयुक्त है। इस कोश का नवीनता है सस्कृत कोशो के अनुकरण पर पेटेवाली पद्धति का यथाशक्ति अपनान की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द क अतर्गत उससे बन अनेक व्युत्पन्न रूपो और यौगिक पदो का समावेश किया गया है। इसम पूर्णता न होन पर भी इस सरणि का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश मे प्रयोग हुआ है। अगरजी, सस्कृत आदि के कोशो का यह पद्धति हिंदी मे लाकर इस कोश न हिंदी कोशो के निर्माण म नवीनता पैदा की। पर इसक अनुसरण म हिंदी कोशो क लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती है। व्युत्पन्न और समासयुक्त यौगिक पदो क मूल शब्द के अतर्गत समावेशन स आनुपूर्वी क अनुसार शब्दक्रम क स्थापन म पूर्ण व्यवस्था कठिन हो जाती है। व्याकरणिक ध्वनिविकारो और साधमूलक ध्वनिपरिवर्तना क कारण शब्द-क्रम योजना अस्तव्यस्त होन लगती है। उदाहरण क लिय वचन शब्द के अंतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहास क अतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण क अतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हो, 'सर्व' के अतर्गत 'सार्वदेशिक', सार्वभौम आदि शब्द रख दिए जाय तो शब्द-क्रम-स्थापना की जो पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाती है। इसका सर्वमान्य निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशो म उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन हो जाता है। फिर भी ज्ञानमडल क कोश मे यह प्रयास नवीन ही कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयो का प्रश्न भी उक्त कोश के सपादको के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत न हो, तब तक उसका ग्रहण सर्वत्र नहीं हो सकता। कोशो मे गृहीत या नवरूपाविष्ट शब्दों के अतिरिक्त अधिकत हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक सपादको मे श्री रामचद्र वर्मा जी भी थे। सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के बाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होने एक ग्रथ सपादित और प्रकाशित किया। सक्षिप्त-शब्दसागर के आरभिक अनेक सस्करणो का उन्होंने सपादन भी किया था। हिंदी कोश से सबद्ध अनेक प्रश्न और सक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कमियो की ओर उनका ध्यान जाता रहा। उनके निराकरण की चेष्टा मे भी वे यथासाध्य प्रामाणिककोश के सपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुत सभा के सक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमे नूतन विकास नहीं हो पाया। नालदाविशाल शब्द सागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बडे विज्ञापन और बडे प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पूर्णत लेकर और मनमाने ढग से उसके अगो, अशो को काट छाटकर यत्रतत्र कुछ अनावश्यक नए शब्दो को जोडकर इसका ढाँचा खडा किया गया। पर शब्दसख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर मे कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे खिसक आई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचद्र वर्मा के सपादकत्व एव निर्देशन मे निर्मित मानक हिंदी कोश—इस दिशा मे एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रथ है। इसके आरंभिक निवेदन मे सपादक ने उक्त कोश का अनेक विशेषताओ का निर्देश किया है जिन्हें उन्होन (१) शब्दो के रूप और अक्षरी, (२) निरुक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दो के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थो का क्रम, (५) अर्थो का वर्गीकरण, (६) अर्थो के सूक्ष्म अतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्यान्य सशोधन और (१०) अंगरेजी पर्याय, इन शीर्षको के अतर्गत निर्दिष्ट किया है। पर स्वय इन्होंने कहा है कि मानक हिंदी कोश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशो की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातो और विवरणो मे अनेक परिवर्तनो के कारण उक्त कृति मे कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने सपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको बिल्कुल नया, युक्तिसगत वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन मे केवल अन्य कोशो का आधार न लेकर उनके प्रयोगो के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

आधुनिक कोश नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति से होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इससे श्रम करना पडता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्णन के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिमश धन अपेक्षित रहता है। भाषा-विज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। सकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की सही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-सन्निधि-मूल शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थों के भेद पर आधारित अर्थच्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और सदर्भगर्भित सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दवाच्य अर्थ का भावधारा या संयुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दों, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसगगर्भित अर्थ भी व्यक्त करना पडता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

हिंदी कोश में शब्दसकलन—कुछ समस्याएँ

निर्मेय कोश के अनुरूप शब्दसकलन भी बडी सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पडता है। साथ ही अर्थसकलन भी करना पडता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचित्रों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यजन होता है। अत शब्दसकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचित्रों, विचार-बिंबों और अर्थबोध के रूपों का सकलन, शब्दसकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में संयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये सकलयिता और संपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रौढ ज्ञान और तटस्थ्यबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के सग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठ नितांत उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के सग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एव विलक्षण—शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पडे हों, उनका सग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका सग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बडे भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अचल की पूर्णरूपेण मातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड जनता के व्यवहार में इसका प्रयोग होता है। इसके अतर्गत अनेक आचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होता है तब आचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का सग्रह और त्याग दुष्कर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

सख्यावृद्धि

शब्दसग्रह का ही दूसरा पहलू है शब्दसख्या की वृद्धि। इसमें कभी तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रष्ट रूपों के कारण सख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जीवित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोध्यार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकथित (न्यूकाएड) शब्दों के माध्यम से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यजनीय विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवित भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उसकी बोधसीमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वर्तमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थबिंबों की दुर्ग अभिव्यक्ति के लिये—इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की सैकडों शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यजना का वह प्रयास कर रही है। अत हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदैव तब तक निर्माण प्रक्रिया के क्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवत भाषा बनी रहेगी। अत यथाशक्ति शब्द-सख्या-वृद्धि भी सर्वदैव अत्यत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बडे विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविज्ञों के सहयोग से अंग्रेजी हिंदी के शब्दसग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसग्रह,' 'विज्ञान शब्दावली' (साइंस ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुवीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनाए हैं।

शब्दसागर के अनतर बननेवाले निर्दिष्ट कोशों में प्राय सर्वत्र सख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परतु यह कार्य इसलिये अत्यत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थ के सग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही वैदुष्य-

साद्ध, साधनसाद्धय और श्रम्साद्धय है। शब्दसागर के नवीन सस्करण मे सगृहीन नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकाश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङमय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रथो से कम शब्द ही जोडे गए हैं। पारिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दो का इसलिये सग्रह नही किया जा सका है कि उसका सर्वसमत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नही हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि सबधी हिंदी ग्रथो के विभिन्न लेखको द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमे अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अग्रेजी शब्दो के अर्थानुवाद की भावना से लेखको द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रो की पारिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयो के शब्दो के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के बाद कुछ शब्दावलियो का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशो की शब्दसख्या मे वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी क्रिया है जिसकी निरतर गतिशीलता नितात अपेक्षित है। पदार्थों के सग्रह और त्याग के मर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन सस्करणो या नवीन परिशिष्टो द्वारा शब्दसख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेवाली पद्धति के उपायो से यद्यपि अनावश्यक शब्द-सख्या वृद्धि से बचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशो मे उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जब हिंदी के प्रौढ कृशकारो द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

मानक रूप

शब्दो के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दो के नाना रूप भी शब्दार्थनिर्योजन मे कठिनाई उपस्थित करते हैं। सज्ञा और क्रिया के नाना रूपो मे विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आचलिक बोलियो के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदो के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अत उनका ग्रहण सभव नही हो पाता। हिंदी मे सामान्य अथवा क्रियार्थक्रिया के नाकारात रूपो द्वारा क्रिया पदो की निर्मापक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा की कोशोपसमिति ने क्रियार्थक्रिया के रूपो को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभावित सज्ञारूपो को अपनाया है। परतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छोड देना पडा है। सज्ञाओ और विशेषणो के प्रसग मे स्त्री लिंग के विशिष्ट रूपो का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपो के कारण भी कभी कभी शब्दवद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भूगोलिक शब्दो के बजाय कुछ लोग 'इतिहासिक,' भौगोलिक आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूप को ही परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दो के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारो के लिये इनमे भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यो ने विचार विनिमय के अनतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर सपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिवर्धित सशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन सस्करण के रूप मे प्रस्तुत हो रहा है।

१८।१२।६५

नागरी प्रचारिणीसभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी

[सयोजक, सपादक मडल]

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र मे भारतीय भाषाओ के दिशानिर्देशक के रूप मे प्रतिष्ठित है। तीन दशको तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओ ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन १९२८ ई० मे मूर्त रूप दिया। तबसे निरतर यह ग्रथ इस क्षेत्र मे गभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज मे प्रकाशस्तभ के रूप मे मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रथ के रूप मे इसका मूल्य लोगो को सहस्र मुद्राओ से भी अधिक देना पडा। ऐसी स्थिति मे अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशो का प्रकाशन हिंदी जगत् मे हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरतर इसकी पुन अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव मे अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मातक पीडा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बडे व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप मे डा० श्री संपूर्णानद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एव हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दो मे इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी मे एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् सस्करण निकालने की आवश्यकता है।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण मे सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया सस्करण निकालने का निश्चिय किया है। जब से पहला सस्करण छपा, हिंदी मे बहुत बातो मे और हिंदी के अलावा ससार मे बहुत बातो मे बडी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वचित नही रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियो के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयो का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों मे बीस-बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम मे अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन सपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामत्रालय ने अपने पत्र स० एफ। ४-३।५४ एच० दिनाक ११।५।५४ को एक लाख रुपया पाँच वर्षों मे प्रति वर्ष २०-२० हजार रुपए करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमडल का गठन किया गया जिसमे सर्वश्री डा० सपूर्णानद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, राहुल साकृत्यायन, अमरनाथ झा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, नददुलारे वाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामअवध द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस सबध मे देश के विभिन्न क्षेत्रो के अधिकारी विद्वानो की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यो का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानो की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नही उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमडल के सदस्यो ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गभीरतापूर्वक मथकर निम्नांकित सिद्धात शब्दसागर के सपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामत्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश मे जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओ और व्याख्याओ मे सगत सशोधन किए जायँ, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अग बन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हो, मूलस्थान का विना विचार किए रखे जायँ। पूर्वसस्करण मे

गृहीत शब्द निकाले न जायँ, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम संस्करण के बाद प्रचलन में आए हों, समाविष्ट किए जायँ।

(३) विभिन्न व्यावसायिक धंधों के जनसाधारण में प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासंभव उनके उद्गम स्रोतों का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कहीं आवश्यक और संभव हो, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायँ।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दों को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन में थे।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयों, कोशशालाओं एवं संदर्भग्रंथों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एवं सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये निम्नांकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरंभ किया गया

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों में विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अंतर्गत (क) सभी स्वतंत्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्ट्य के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्ण आदि)। उपशब्द के अंतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आब्सोलीट) रूप, बिगड़े या बिगाड़े हुए शब्द, संदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अंतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों में कोई वैशिष्ट्य हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अंतर्गत रहे, अंतर्भूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसंग्रह में निम्नांकित नियमों का पालन किया गया -

(क) व्यक्तिवाचक और स्थानवाचक संज्ञाओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसंबंधी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का ही संग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसंग्रह बहुत कम किया गया है।

(घ) संज्ञा के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासो, विद्यापति आदि के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण में बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों में, जहाँ संभव हुआ है, संदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दादू, दरिया आदि के ग्रंथों में फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के साथ मिश्रित रूप में।
(२) पूरी पंक्ति या पूरे छंद में अविकल रूप में।

शब्दसागर में इनमें से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से प्रगृहीत किए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दों का संकलन भी किया गया है जो हिंदी में पर्याप्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के संबंध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्रायः सर्वत्र शब्दसागर में प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित है, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसंग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दों के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों में वैशिष्ट्यनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है, जैसे संगीत शास्त्र के लिये (संगी०) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (व०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रंश में शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपों, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अंतर्गत निरुक्ति या व्युत्पत्ति है, बड़े कोष्ठ [ ] में देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपांतरित शब्दों के व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या भ्रांतिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह संस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अँगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दों के संबंध में जो रचे या निर्मित किए हुए कोशों से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आंग्ल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्तलाहाते पेशेवारां (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दों के संबंध में उनके मूल और समस्त पदों का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दों की बात हुई। उप शब्दों के संबंध में शब्द का विलुप्त या मुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप अज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विच्छिन्न रूप में ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ में परिवर्तन नहीं है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशों के संदिग्ध और अशुद्ध, भ्रांतिमूलक शब्द जिनका क्वचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदों के अंतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासंभव गृहीत किए गए हैं। उनमें प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नों अथवा अर्थसंबंधों से संयुक्त हों। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपो मे किया जा सकता है

(क) वे समस्त पद जिनमे प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है।

(ख) वे जिनमे अर्थगत विशेषता सपृक्त है, पर सयुक्त शब्दो द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रशस्त इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के बोधक हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अतर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर मे प्रस्तुत किए गए हैं।

मुहाविरो की स्वतत्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मूल या प्रधान शब्द के रूप मे ग्रहण किया गया है।

व्युत्पत्तिनिर्देश के सबध मे सामान्यतया जिन सिद्धातो का परिपालन किया गया है, वे निम्नांकित है

(क) जो शब्द सस्कृति मे उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति सस्कृत तक ही रखी जाय। सस्कृतेतर शब्दो का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय।

(ख) हिंदी मे कहाँ से शब्द आया, इसका उल्लेख हो। यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने सस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनो का उल्लेख हुआ करे। उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी मे यह शब्द इस अर्थ मे सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्थवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति मे प्राय. सभी स्रोत दिए जायँ।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हो तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियो की खोज की जाय।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण सक्षेप मे दिए जायँ।

(च) शब्दो की व्युत्पत्ति मुख्यत सस्कृत से दी जाय।

शब्दसागर का व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश क पहले हिंदी या सस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है। उन शब्दो को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्य है और जो भिन्न उद्गम के हैं, भूखडों के सबधवशात् देशी निर्दिष्ट किया गया है।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दो के अर्थलेखन मे केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है। अर्थों मे अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पुष्टि साहित्य के प्रयोगों से की गई है। ऐसे तद्भव शब्दो का भी निर्देश किया गया है, जिनका अर्थ परिवर्तित हो गया है। सशोधन के सबध मे यथासाध्य उदाहरण दिया गया है। शब्दो के विविध, नवीन, अर्थ रखे गए हैं और विभिन्न ग्रथो स पूरे सकत के साथ उदाहरण दिए गए हैं।

जो अर्थ मूल मे अस्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अर्थ की भाषा सरल रखी गई है। शब्दार्थ म व्याख्या क साथ अत्यत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि म रखे गए हैं। उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दे दिए गए हैं जिनके प्रयोग में रूपगत अथवा अर्थगत विशेषता है। मुहावरो के उदाहरण भी, जहाँ आवश्यक हैं, दिए गए हैं। पुरानी हिंदी के ग्रथों, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं। सभा के स्वीकृत नियमो के अनुसार मूल विदेशी शब्दो की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति मे शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे बिंदी आदि भी लगाई गई है। जिन ग्रथो से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं। शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण सक्षिप्त किए गए हैं, परतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने मे सदर्भ की पूर्णता खडित न होने पाए। प्रसिद्ध एव प्रचलित शब्दो के नए उदाहरण प्राय. नहीं रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हो।

समितियो और मडलो द्वारा स्वीकृत इन तत्वो के आधार पर शब्द-सागर की रचना हुई। इस कार्य मे सभा को ११ वर्ष का समय लगा है तथा सैकडो व्यक्तियो ने सहयोग प्रदान किया है। इसकी अपनी एक कहानी है।

मूल सस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन सस्करण मे दे दी गई है जिससे मूल सस्करण का सक्षिप्त इतिहास है। इस नवीन सस्करण का सपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था। सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है। इसलिये दोनो के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरभ और सचालन हुआ। यद्यपि इस कोश के सपादन कार्य को पाँच वर्ष मे ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षों मे पूरा हुआ। सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय मे कार्य पूरा न कर सकी। किंतु उसे इस बात का सतोष है कि विलब से ही सही, यह महत्वपूर्ण काय सपन्न हुआ। इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासगिक न होगा।

१५ जून १९५४ को कोश कार्य आरभ हुआ और उसके कार्यालय का व्यवस्था की गई। यह कार्य १३ अप्रैल, १९५९ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दो पर व्युत्पत्तिसशोधन तथा अपभ्रश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रथों स ७२,९०० शब्दो का सकलन किय गया।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के सकलित शब्दको अक्षरक्रम से सयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दो का अर्थलेखन किया गया। सगृहीत शब्दो मे ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भा दिए गए और १०,००० शब्दो पर व्युत्पत्तिशोधन का कार्य हुआ। मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दो पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसशोधन कार्य भी किया गया। इस वर्ष से विभागीय समस्याओ पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठको की व्यवस्था आरभ की गई।

तीसरे वर्ष, अर्थात् सवत् २०१३ विक्रमी मे, पुराने सगृहीत शब्दो पर अर्थलेखन काय चलता रहा। व्युत्पत्ति क क्षेत्र म १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गइ। इस अवधि तक प० करुणापति त्रिपाठी

[illegible] अर्थात् [illegible] [illegible] [illegible]

२१-५-५७–१५-४-५८, १ वर्ष, १२ शालग्राम उपाध्याय सहायक सपादक, १५-१-५७–२-८ ५७, २१-५-५७–१५-४ ५८, १ वर्ष, १४ श्यामसुदर शुक्ल, सहायक, सपादक, ८-१ ५७–२१-५-५७ ४½ मास, १५ हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक सपादक, १५-१-५७–२-८-५७, २१-५-५७ १-१२-५७, ८ माह, १६ बद्रीप्रसाद मिश्र, सहायक सपादक, २८-२-५७–२१-५-५७ ३ माह, १७ लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक सपादक, २८-२-५७–२१-२-५७, ३ मास, १९ तिलकधारी पाडेय सहायक सपादक, ११-३-५७–२१-५ ५७, २½ मास २० किशोरीदास वाजपेयी, सहायक सपादक, २४-२-५७–१५-४-५८, १ वर्ष २ मास, २१ दयाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६ ३-५७–२१-५-५७ २½ मास, २३. छन्नूराम गुप्त, टकक, २-८-५७–१६-१०-५७, २½ मास, २४ नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक सपादक, १-८-५७–१५-४-५८, ८½ मास, २५. विष्णुचद्र शर्मा, सहायक सपादक, १-१०-५७–१५-४-५८, ६½ मास, २६ ब्रजेंद्रनाथ पाडेय, सहायक सपादक' १५-११-५७–१५-४-५८, ५ मास, २७ हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८–१३-४-५९, १ वर्ष, १ मास, २८ जयशकर मिश्र, टकक, २-७-५४–१०-२-५५, ७½ मास।

ता० १३।४।१९५९ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओ ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि स० २०१५ मे समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृखला बनी रहे, इसलिये स्वय अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी बचे २० हजार के स्वीकृत अनुदान मे से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५९ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। स० २०१६ मैं सभा वेतन पर १६२६ रुपया ४३ पैसा और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसा लगा चुकी थी। इस प्रकार सवत् २०१६ के अत तक १२३३० रुपया ३९ पैसा व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५९ से ४ फरवरी सन् १९५९ तक अब तक किए गए कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमे वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुदर सुझावो से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गभीरतापूर्वक विचार किया और इस सकल्प पर दृढ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप मे करना है कि भले ही वह ससार का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प से आधार पर शेष कार्य को उसको मूल सिद्धातो के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का सरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिंता मे हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुन आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२ तक का समय इसमे बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

सवत् २०१८ के अत तक इतस्तत जो कार्य इस सबध मे सभा कर रही थी उसमे एक लाख के अतिरिक्त ९५८३ रुपया ७३ पैसा सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुरुता को पहचान चुकी थी और उसे अधूरा छोडना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने उसमे से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यही से सभा मे कार्य की पुन नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनरावलोकन और पुनर्मूल्याकन आरभ किया गया और पुराने काम को, जिसमे से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुव्यवस्थित और सुनियोजित करने मे लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बडा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्याकन मे तथा योजनाबद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने मे व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य सवत् २०२१ से आरभ किया गया उसकी गति निश्चय ही सतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब सपादन का कार्य ३१ दिसबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरभ के अश से ही सकलन, सशोधन, सपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचिंतन सशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अवैतनिक, दोनो प्रकार के कार्यकर्ता अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एकरस हो हिंदी हितचिंतन को आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि मे कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओ ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनकी सूची, पद तथा कार्यावधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१ श्रीत्रिलोचन शास्त्री, सहायक सपादक १-११-५९–३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह, २ श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक सपादक १-११-५९–१-१-६४. २-५-६०–३१-१२-६५ (स्थानातरण) २ वप ७ मास, ३ श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक सपादक १४-२-६४–१५-४-६५, १ वर्ष १।। मास, ४ स्व०श्रीरघुनदनप्रसाद शुक्ल 'अटल', सहायक सपादक, १-२-६४–३०-९-६५, १ वर्ष ८ मास, ५ श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी, सहायक सपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ६ श्रीप्रसाद, सहायक सपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ७ श्रीराधाविनोद गोस्वामी, सहायक सपादक, १५-९-६४–३१-१२-६५ १ वर्ष ३।। मास, ८ श्रीशारदाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ९-३-६५-३१-१२-६५, ९ मास, ९, श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक सपादक, २७-७ ६५–१९-११-६५, ३।। मास १० श्रीरामबला पाडेय, सहायक सपादक, ७ ७-६४–३०-१-६५, ६ मास, ११ श्रीविजयबली मिश्र, लेखक, ४-२-६३-३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास, १२ श्रीरामेश्वरलाल लेखक, १५-६-६४–१२-८-६४, २ मास, १३ श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४–

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, १४ श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १० १०-६४–३१-१२ ६५ १ वर्ष ३ मास, २५ श्रीराम मेहरोत्रा,लेखक ११-१०-६४–३०-९-६५, १वर्ष, १६ रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५,१ वर्ष, १७ लज्जाशकर लाल,लेखक १६-३-६५-३१ १२-६५-९।।मास, १८ श्रीमनोरजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास, १९ श्रीगुदावलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७।। मास, २० श्रीवशिष्टनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास, २३ श्रीउदयशकर दूबे, लेखक, २०-७-६५-३१,१२-६५, ५।। मास, २४ श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास, २५ श्री अशर्फीराम मिश्र लेखक, १८-९-६५ ३१-१२ ६५,३ ।मास २६ श्रीश्यामाकात पाठक, लेखक, १८ ९-६५-३१-१२-६५, ३।। मास, २७ श्रीसदानद शास्त्री, लेखक, १८ ९ ६५-३१-१२-६५, ३।। मास, २८ श्रीवद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास। चपरासी –स्व राम सुदर १-११-५९ से, रघुनाथ ८-८-६४-३१ १२ ६५, १।। वर्ष । वुद्धू राम (लगभग २ मास) । ३१-१२-१९६५ को विभागसमाप्ति ।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओ की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नही दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भाँति दत्तचित्त होकर कार्य किया है उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी । हमे इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नही हैं । तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मगलकामना उनके साथ है ।

सवत् २०१९ मे ३२,५००) के प्राप्त अनुदान मे से जो व्यय किया गया उसके उपरात भी २०,६४३)३३ और स० २०२० मे उसी मे से व्यय करने के उपरात १६,१२९) ८९ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा। सवत् २०२१ मे हिंदी शब्दसागर पर सभा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१)७७ था । १५ दिसबर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१)६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसबर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है । इधर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००)मे से १० ०००) भेजा है । इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का सपादन कार्य समाप्त हो जायगा । केवल 'स' और 'ह' अक्षरो की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी ।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री डा० राजवली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है । कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता बराबर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', डा० भोलाशकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पडित करुणापति त्रिपाठी सयोजक के रूप मे [illegible] र गुरुतापूर्वक अपने इस उत्तरदायित्व का वहन । एक साथ बैठकर सभा के अतिथि-भवन के कक्ष मे कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओ के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एव मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं । इस कार्य के लिये हम सबने सभा की सेवा मे अपने को अर्पित कर बल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है । इस प्रसग मे सपादकमडल मे सरकार के शिक्षा मत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एव सुझाव बहुत अधिक सहायक हुआ है । इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेंद्रदेव, डा० अमरनाथ झा एव प० गोविंद वल्लभ पत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है । जिन्होंने शब्दसागर के नवीन सस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते । सभा के सरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के अश से सहज ही जाना जा सकता है । उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित मे किए गए ऐसे कार्यो द्वारा ही चुकाया जा सकता है ।

सभा के सरक्षक डा० सपूर्णानद जी उसके प्रत्येक सुदर कार्य के मूल मे आत्मा की भाँति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नही है । हमारे वर्तमान सभापति प० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्बोधन ही सभा की आज की गति के मूल मे है । यद्यपि देश और समाज के कार्य मे वे व्यस्त रहते है, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य मे रुचि लेते है। इस कोश के कार्य मे उन्होने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का सपन्न होना सभव हुआ है।

भारत के प्रधान मत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से सबध बडा पुराना है । वे सदैव अपनी व्यस्तता मे भी सभा को उन्नत करने मे योगदान करते रहते हैं । इस सभा के वे सरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खड का उद्घटन करने की स्वीकृति देकर हमे जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कायकर्त्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसकल्प ।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्त्तमान उपशिक्षामत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य मे जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कायकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं ।

हो सकता है इस कार्य के सपन्न होने मे कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो । इस अप्रियता का कारण स्वप्न मे भी किसी को कष्ट पहुँचाना नही रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अवधि तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक कार्य के मूल मे थी । फिर भी यदि इस सबध मे कही कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रो पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उनके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन सस्करण के लिये जिन सदर्भ ग्रथो से सहायता ली गई है उनके लेखको, सपादको तथा प्रकाशको के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रथो मे से कुछ विशेष सहायक ग्रथो के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं.

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (१३ खड)। शार्टर ऑक्शफोर्ड डिक्शनरी (२ खड)। कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। थार्नडाइक इग्लिश डिक्शनरी। चेंबर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी। सस्कृत वोर्टेरबुख, शाटो वोथलिंग रुडोल्फ राय। मस्कृत इग्लिश डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी वी० एम० आप्टे। आप्टे कृत प्रैक्टिकल मस्कृत इग्लिश डिक्शनरी (३ खड), सपादक—पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे। मैकडानेल प्रैक्टिकल सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी। पर्शियन इग्लिश डिक्शनरी स्टाइनगास। ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी फैलन। हिंदुस्तानी ग्रेवर्ब फैलन। नेपाली डिक्शनरी टर्नर। शब्दार्थ कल्पतरु मामिडि वेंकटार्य। अल्फरायद उल् दुरियत उल-तुलाव (अरबी अग्रेजी डिक्शनरी), फरहग आमफिया (४ खड)। नूर उल् लुगात (४ खड)। करीम उल् लुगात। तखमीस उल् लुगात। लुगात किशोरी। अमरकोश। हलायुधकोश। मेदिनी कोश। शब्दकल्पद्रुम (५ खड)। वाचस्पत्यम् (८ खड)। पूर्णचद्र ओडिया महाकोश (७ खड)। बाङ्गला भाषार अभिधान ज्ञानेंद्रमोहन दास (२ भाग)। चलतिका राजशेखर वसु। विनीत जोडणी कोश (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद), मराठी व्युत्पत्ति कोश कृष्णाजी पाडुजी कुलकर्णी। इस्तेलहाते पेशेवारां (आठ खड)। राजस्थानी सबद कोश. सीताराम लालस। अवधी कोश रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'। विहार पीजेंटस लाइफ, कृषिकोश विहार राष्ट्रभाषा परिषद्। कृषि जीवन सबधी व्रजभाषा शब्दावली (२ खड), अवधप्रसाद सुमन। व्रजभाषा सूरकोश (पाँच खड)। तुलसी शब्दसागर हरगोविंद तिवारी। मानस शब्दसागर बद्रीदास अग्रवाल। सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी. डॉ० विलसन। अग्रेजी सस्कृत डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स। सस्कृत थियोडोर बेन्फे। पाली इग्लिश डिक्शनरी सोसायटी। अर्धमागधी कोश मुनि श्री रत्नचद्र। जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी ऐंड इग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी। प्रसाद काव्यकोश श्री सुधाकर पाडेय। वृहत् अग्रेजी हिंदी कोश ज्ञानमडल। उर्दू हिंदी शब्दकोश मद्दाह। पाइय सद्द महण्णवो हरगोविंद सेठ। अभिधान राजेंद्र (५ खड)। पाली हाइब्रिड डिक्शनरी। रूपनिघटु, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी। शालिग्राम निघटुभूषणम्। अश्ववैद्यक। अश्वशास्त्र। रगीनामा। डिंगल कोश। इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स—हेस्टिंग्ज। विश्वकोश (हिंदी तथा बँगला) सपादक—नगेंद्रनाथ वसु। तेलुगू डिक्शनरी गैलेटी। पोर्चुगीज ऐंड इग्लिश डिक्शनरी (२ खड)। इन्फ्लुएन्स ऑव पोर्चुगीज वोकेबुलरी इन एशियाटिक लाग्वेज वी० भट्टाचार्य। पर्शियन वोकेबुलरी लेथर्टन। बर्ड्स गजेटियर ऐंड जियोग्रैफिकल डिक्शनरी। डिक्शनरी ऑव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स. टी० शिप्ले। लटाइनिशेज एटिमोलोगाशेज वोर्टेरबुख रिलीफ उट इन्सक्रिप्ट (२ खड)। मुडारी इग्लिश डिक्शनरी। ऐटिमालागिशेल वोर्टेरबुख डेस आर्ल्टिडिशेन. मानफ्रेड मायर होफर (६ खड)। आर्ल्टिडिशे ग्रामाटीक (५ खड), वाकरनागेल। गुरु-शब्दरत्नाकर (४ खड)। हिंदी राष्ट्रभाषा कोश। वैद्यक शब्दसिंधु। आयुर्वेदीय विश्वकोश (३ खड)। वनौषधि चद्रोदय (८ खड)। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (३४–३५)।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग मे पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे। सभा के सहायकमत्री श्री शभुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पाडेय ने प्रूफ सशोधन के कार्य मे जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ। हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ सबधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमे स्थान न पा सकें किंतु कहीं कहीं सभव है कुछ प्रूफ सबधी भूलें आ गई हो जिसका हमे आतरिक क्लेश है। हम इसे अगले सस्करण मे दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य मे न हो। फिर भी नागरी मुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियो ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है।

इस ग्रथ के सपादन का ही नहीं, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भारत सरकार ने वहन किया है। इसलिये ही यह ग्रथ इतना सस्ता निकालना सभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मत्रालय के अधिकारियो का प्रशसनीय सहयोग हमे प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं।

जिस रूप में यह ग्रथ हिंदी जगत् के समुख प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमे अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना सभव न था। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशो मे शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओ के कोशो मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसख्या मे दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खड मे प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दो की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन सामान्यत सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रथो से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रथो से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए है। शब्दसागर मे दी गई व्युत्पत्तियो या अर्थो तथा दृष्टातो मे व्यापक रूप से सशोधन भी किया गया है, तथा उसमे एतत्सबधी लगे प्रश्नचिह्नो का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

अत मे शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के सस्थापक डा० श्यामसुदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन दुहराते है कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा, और इस क्षेत्र मे वह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मौर ३ पौष, स० २०२२ वि०।

सुधाकर पाडेय
प्रकाशन मत्री

—o—

संकेतिका

[उद्धरणो मे प्रयुक्त सदर्भ ग्रथो के इस विवरण मे क्रमश ग्रथ का सकेताक्षर, ग्रथनाम, लेखक या सपादक का नाम और प्रकाशन के विवरणदिए गए हैं]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अजात०	अजातशत्रु, जयशकर प्रसाद, १६ वां स०
अणिमा	अणिमा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', युग-मदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० स०
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, प्र० स०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमजरी और नाममाला, सपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० २०१४
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', कला-
अष्टाग (शब्द०)	अष्टांग योगसहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, पचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, प० स०
आचार्य०	आचार्य रामचद्र शुक्ल, चद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० स०
आदि०	आदिभारत, जुंन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स० १९५३
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनदघन (शब्द०)	कवि आनदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, सपूर्णानद, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इद्र०	इद्रजाल जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
इद्रा०	इंद्रावती, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
इशा०	इशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवां स० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
इरा०	इरावती जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
उत्तर०	उत्तर रामचरित नाटक अनु० प० सत्यनारायण

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढी०	कढी मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० स०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रथावली, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी०	कबीर साहब की बानी
कबीर	कबीर बीजक, सपा० हसदास, कबीर ग्रथ प्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
कबीर म०	कबीर मसूर (२ भाग), वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बबई, सन् १९०३
कबीर रे०	कबीर साहब की ज्ञानगूदडी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श०	कबीर साहब की शब्दावली (४ भाग)
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीरसागर (४ भा०), सपा० स्वा० श्री युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बबई
कबीर सा० स०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१–४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशकरप्रसाद, भारती भडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पचम स०
कामाय्नी	कामायनी, जयशकरप्रसाद, नवम स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ स०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मदिर, प्रयाग २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर०	किन्नर देश मे, राहुल साकृत्यायन, इडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कीर्ति०	कीर्तिलता, मं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० स०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्र०	केशव ग्रथावली, सपा० ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूट
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
गग ग्र०	गग कवित्त [ग्रथ वली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वाँ सं०
गि०दा०गि०दास(शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारतीभडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुजन	गूजन, सुमित्रानदन पत, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचद्र)
गोरख०	गोरखबानी, डा० संपा० पीतावरदत्त बडथ्वाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानद	घनानद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

चंद०	चंद हसीनों के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चद्र०	चंद्रगुप्त, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना प्र० सं०
चरणचद्रिका (शब्द०)	चरणचद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचद्र शुक्ल, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग।
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०।
चुभने०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, „ „ „
चोटी०	चोटी की पकड, 'निराला', किताबमहल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद.०	छद प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई	छिताई वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
छीत०	छीत स्वामी, सपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जय० प्र०	जयशकर प्रसाद, नददुलारे वाजपेयी, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जायसी ग्र०	जायसी ग्रथावली, सपा० रामचद्र शुक्ल,
जिप्सी	जिप्सी, इलाचद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
ज्ञानदान	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ,
ज्ञानरत्न	१९४२ ई० ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
ठडा०	ठडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, सवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
तितली	तितली, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भडार, लीडर
तुलसी ग्र०	प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
	तुलसी ग्रथावली, सपा० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी तृतीय सं०
तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, १९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोप (शब्द०)	कवि तोप
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० स०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०

दादू०	(श्री) दादूदयाल की बानी, सपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रथावली, सपा० श्याम सुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ, प्रकाशन गृह प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्र०	देव ग्रथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरौली प्रथम सं०
द्वद्व०	द्वद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजता प्रेस लि०, पटना ४
नद० ग्र० नददास ग्र०	नददास ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १८५३
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी, विद्यामदिर, वाराणसी, २०११
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशकर प्रसाद लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, १९६१ वि०
पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, सपा० सूर्यकात शास्त्री, पजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा० प० रासो	परमाल रासो, सं० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
परमानद०	परमानद सागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पत, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
पारिजात०	परिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानद तिवारी शास्त्री, भारतीनदन, मगल भवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धात, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्व० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय-भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पडया, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खड], सपा० कविराज मोहनसिंह, साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्र०	पोद्दार अभिनदन ग्रथ, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय व्रज साहित्यमडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्र०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रथावली, सपा० विजयशकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबध०	प्रबध पद्म, 'निराला', गगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसगली, सपा० सत सपूरण सिंह, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम एड सस, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशकर प्रसाद भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, नू० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचद और गोर्की, सपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमाजलि	प्रेमाजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बगाल	बगाल का काल, हरिवश राय बच्चन, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँको० ग्र० / बाँकीदास ग्र०	बाँकीदास ग्रथावली [चार भाग], सपा० नारायण दूगड, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बदन०	बदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बघेंदरा	बघेंदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गगा ग्रथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रथप्रकाशन समिति, वाराणसी, २००७ वि०
बी० रासो	बीसलदेव रासो, सपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बीसल० रास०	बीसलदेव रास, सपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिंह, ओरिएटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्सहिता (शब्द०)	बृहत्सहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मणी, सपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रथावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, सवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, सवत् १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राज मेवाड, प्र० सं०, १९५१ वि०

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम् स० ।
भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचद्र विद्यालकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८१ वि०
भा० भू०,	
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रथावली [४ भाग], सपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग],सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्र०	भूषण ग्रथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गगा पुस्तक माला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवश राय बच्चन, सुषमा निकुज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवश राय बच्चन, सुषमा निकुज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास) चरणदास
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बबई चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकदला, बोधा कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९८ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल साकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, सपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवश राय बच्चन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र० स०, १९५० ई०
मुशी अभि० ग्र०	मुशी अभिनदन ग्र० सपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी , वृदावन लाल वर्मा ,मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, ममता प्रकाशन , पटना – ४ , प्र० स०
मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र०स०
यामा	यामा, महादेवीवर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
युगपथ०	युगपथ " " " "
युगात	युगात, सुमित्रानदन पत, इद्र प्रिटिंग प्रेस, अल्मोडा, प्र० स०
रगभूमि	रगभूमि, प्रेमचद, गगा ग्रथागार, लखनऊ, प्र० स०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतावली, म० महतावचद्र खारेड ना० प्र० सभा०, काशी, प्र० स०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजत शिखर, सुमित्रानदनपत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञान सागर प्रेस, बबई १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १८९२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०,१९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा काशी, चतुर्थ और द्वि० स०
रस०	रसमीमासा, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, मा० प्र० सभा, काशी, द्वि सं०

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, स० बा० अमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० स०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० स०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशकर हीराचद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० स०
रा० रू०	राजरूपक, सपा० प० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रा० वि०	राजविलास, स० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ स०
राम च०	सक्षिप्त रामचद्रिका, स० लाला भगवानदीन ना० प्र० सभा, वाराणसी षष्ठ स०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) बडारामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म सग्रह, स० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहस्थल) बडारामद्वारा, बीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानद०	रामानद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतावरदत्त बडथ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रथकार मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० स०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लू लाल
लहर	लहर, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पचम स०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, स० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०
विशाख	विशाख, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नू० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्राम सागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानदन पत, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० स०
वेनिस (शब्द)	वेनिस का बाँका
वैशाली० या वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० स०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अबिकादत्त व्यास
श० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शकर०	शकरसर्वस्व, सपा० हरिशकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड सस, आगरा, प्र० स०
शकु०	शकुतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुतला	शकुतला नाटक, अनू० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, चतु० स०
शार्ङ्गधर स०	शार्ङ्गधर सहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुबई वैभव मुद्रणालय, स० १९७१
शिखर०	शिखर वशोत्पत्ति, स० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० स०, स० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रथ	शुक्ल अभिनदन ग्रथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समेलन,
शृ० सत० (शब्द०)	शृगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, स० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्र०	श्री निवास ग्रथावली, सपा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
सतति०	चद्रकाता सतति, देवकी नदन खत्री, वाराणसी
सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
स० दरिया, सत दरिया	सत कवि दरिया स० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०
सत र०	सत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासघ, हरिद्वार प्र० स०
सतवाणी० सत० सार०	सतवाणी-सार-सग्रह [२ भाग] बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
सन्यासी	सन्यासी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
सपूर्णा० अभि० ग्रं०	सपूर्णानद अभिनदन ग्रथ, संपा० आचार्य नरेंद्र देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
सवल (शब्द०)	सवल सिंह चौहान।
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०,
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, सं०पा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० स०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
सुंदर० ग्र०	सुंदर दास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १९०२
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूर सागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय स०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, सपा० राधाकृष्ण दास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्रथम सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार' नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९१४ ई०
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्ण किरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०
हस०	हसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिक, सपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर इंडियन प्रेस लि० प्रयाग
ह० रासो हम्मीर रा०	हम्मीर रासो, सपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना,
हिंदी आ० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिं० प्रेमा० हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, सपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०१ ९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० स०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० स०

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवान-दीन, ना० प्र० काशी, सभा, द्वि० सं०	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरो का विवरण]

अ०	अग्रेजी	दे०	देखिए
अ०	अरबी	देश०	देशज
अनु०	अनुकरण शब्द	देशी०	देशी
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	धर्म०	धर्मशास्त्र
अप०	अपभ्रंश	नाम०	नामधातु
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी	ना० धा०	नामधातुज क्रिया
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव०	अवधी	न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
अव्य०	अव्यय	प०	पजाबी
इव०	इबरानी	परि०	परिशिष्ट
उ०	उदाहरण	पा०	पाली
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पुं०	पुलिंग
उडि०	उडिया	पुर्त०	पुर्तगाली
उप०	उपसर्ग	पु० हिं०	पुरानी हिंदी
उभ०	उभयलिंग	पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
एकव०	एक वचन	पृ०	पृष्ठ
कहावत	कहावत	प्रत्य०	प्रत्यय
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्रा०	प्राकृत
कोक०	कोकणी	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि०	क्रिया	फ०	फरासीसी भाषा
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फा०	फारसी
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बग०	बगाली भाषा
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बरमी०	बरमी भाषा
क्व०	क्वचित्	बहुव०	बहुवचन
गीत०	लोकगीत	बु० ख०	बुदेल खड की बोली
गुज०	गुजराती	बोल०	बोलचाल
चो०	चीनी भाषा	भाव०	भाववाचक सज्ञा
छं०	छद	भू०	भूमिका
जापा०	जापानी	भू० कृ०	भूत कृदत
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मरा०	मराठी
जी०, जीवन०	जीवन चरित	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्या०	ज्यामिति	मला०	मलायम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मि०	मिलाइए
डिं०	डिंगल	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
त०	तमिल	मुहा०	मुहावरा
तर्क०	तर्कशास्त्र	यू०	यूनानी
तु०	तुर्की	यौ०	यौगिक
दू०	दूहा या दूहला	राज०	
		लक्ष०	

ला०	लाक्षणिक	सर्व०	सर्वनाम
लै०	लैटिन	स्पे०	स्पेनी भाषा
व० कृ०	वर्तमान कृदंत	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
वि०	विशेषण	स्त्री०	स्त्रीलिंग
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक	हिं०	हिंदी
वै०	वैदिक	ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्या०	व्याकरण	>	व्युत्पन्न
शब्द	शब्दसागर	†	प्रांतीय प्रयोग
सं०	संस्कृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
सयो०	सयोजक अव्यय	√	धातुचिह्न
सयो क्रि०	सयोजक क्रिया	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
स०	सकर्मक		
सघु०	सघुक्कड़ी भाषा		

हिंदी शब्दसागर

अ

अ– संस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कंठ से होता है इससे यह कंठ्य वर्ण कहलाता है। व्यंजनों का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला में क, ख, ग आदि वर्ण अकार-संयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष––अक्षरों में यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदों में इसकी बड़ी महिमा लिखी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है––'अक्षराणामकारोस्मि'। वास्तव में कंठ खुलते ही बच्चों के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्रायः सब वर्णमालाओं में इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणों ने मात्राभेद से इसे तीन प्रकार का माना है, ह्रस्व जैसे—अ, दीर्घ जैसे––आ, प्लुत जैसे—अ३। इन तीनों में से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं, सानुनासिक और निरनुनासिक। सानुनासिक का चिह्न चंद्रबिंदु ँ है। तंत्रशास्त्र के अनुसार यह वर्णमाला का पहला अक्षर इसलिये है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले सृष्टिकर्ता की अकुल अवस्था को सूचित करता है।

अंक––संज्ञा पुं० [सं० अङ्क] [वि० अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य] १ संख्या। अदद। २ संख्या का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०–रामनाम को अंक है सब साधन है सून। ––तुलसी ग्रं०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निशान। छाप। आँक। उ०––सीय राम पद अंक बराए। लषन चलहिं मगु दाहिन लाए। –मानस, २।२१३। ४ दाग। धब्बा। उ०–जहाँ यह श्यामता को अंक है मयंक में।–भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ४९। ५ बालक की डिठी जिसे नजर से बचाने के लिये बच्चों के माथे पर लगा देते हैं। डिठौना। अनखी। ६. अक्षर। उ०–अद्भुत रामनाम के अंक।––सूर०, १।९०। ७ लेख। लिखावट। उ०––खंडित करने को भाग्य अंक। देखा भविष्य के प्रति अशंक।––अनामिका, पृ० १२३। ८ भाग्य। लिखन। किस्मत। उ०– जो विधना ने लिखि दियो छठी रात को अंक। राई घटै न तिल बढ़ै रहूरे जीव निसंक।–किरसा०, पृ० ८०। ९ गोद। क्रोड। कोली। उ०–जिस पृथिवी से निकली सदोष वह सीता–अंक में उसी के आज लीन।––तुलसी०, पृ० ४४। १०. बार। दफा। मर्तबा। उ०––एकहु अंक न हरि भजेसि रे सठ सूर गँवार।–सूर (शब्द०)। ११ नाटक का एक अंश जिसकी समाप्ति पर जवनिका गिरा दी जाती है। १२ दस प्रकार के रूपकों में से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार उलटफेर कर सकता है। इसके रसयुक्त आख्यान में प्रधान रस करुण और एक ही अंक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छोटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई सामयिक प्रति। १४ नौ की संख्या (क्योंकि अंक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की संख्या (को०)। १६ एक संख्या। शून्य (को०)। १७ पाप। दुःख। १८. शरीर। अंग। देह। जैसे––'अंकधारिणी' में 'अंक'। १९. बगल। पार्श्व। जैसे––'अंकपरिवर्तन' में 'अंक'। २०. कटि। कमर। उ०––सहज सूर स्यामत बढ़ैति अंक।––पृ० रा०, ५१।१२०। २१ वक्र रेखा। उ०––भृकुटि अंक बकुरिय।––पृ० रा०, ६१।२४५७। २२ हुक या हुब जैसा टेढ़ा औजार (को०)। २३ मोड़। झुकाव (को०)। २४ कंठ। गला। गर्दन। उ०–अवरमाला इक्क अंक पहिराइ कहाँ इह।––पृ० रा०, ७।२६। २५ विभूषण (को०)। २६ स्थान (को०) २७ चित्रयुद्ध। नकली लड़ाई (को०)। २८ प्रकरण (को०)। २९ पर्वत (को०)। ३० रथ का एक अंश या भाग (को०)। ३१ पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२ सहस्थिति (को०)।

मुहा०––अंक देना = गले लगाना। आलिंगन देना। अंक भरना = हृदय से लगाना। लिपटाना। गले लगाना। दोनों हाथों से घेरकर प्यार से दबाना। परिरंभण करना। आलिंगन करना। उ०––उठी परजंक तें मयंक बदनी को लखि, अंक भरिबे को फेरि लाल मन ललकै।–भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० २४५। अंक मिलाना = दे० 'अंक भरना'। उ०– नारी नाम बहिन जो आही। तासों कैसे अंक मिलाही।––बंदीर सा०, पृ० १०१०। अंक लगना = दे० 'अंक देना'। अंक लगाना = दे० 'अंक भरना।' उ०–बावरी जो पै बलक लग्यौं तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावती ––इति०, पृ० २६३। अंक में समाना = लीन होना। सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना। उ०––जैसे बनिका काटि कंआ है राई। ऐसे हरिजन अंकि समाई।––प्राण०, पृ० १५८।

अंकक––संज्ञा पुं० [सं० अङ्कक] [स्त्री० अङ्किका] १. गिनती करनेवाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अंककरण––संज्ञा पुं० [सं० अङ्ककरण] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अंकन [को०]।

अंककार––संज्ञा पुं० [सं० अङ्ककार] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अकगणित--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कगणित] सख्याओ का हिसाब। सख्या की मीमासा। वह विद्या जिससे सख्याओ का जोड, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाब।

अकगता--वि० स्त्री० [अङ्क + गता] पार्श्व मे स्थित। उ०—अकगता तुम करो विश्वमगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अकज--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कज] पुत्र। सतान। उ०—विधि अकज उपदेस दिय रघुपति गुन जस गाव।--पृ० रा०, १।२।

अकतत्र--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कतन्त्र] सख्याओ की विद्या। अकगणित और बीजगणित।

अकति--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कति] १ ब्रह्मा। २ वायु। ३ अग्नि। ४ अग्निहोत्री [को०]।

अकधारण--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कधारण] तप्त मुद्रा के चिह्नो का दगवाना। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के साप्रदायिक चिह्न गरम धातु से छपवाना।

क्रि० प्र०—करना।

अकधारणा--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कधारणा] शरीर या अक को धारण करने की स्थिति [को०]।

अकधारिणी--वि० स्त्री० [सं० अङ्कधारिणी] १ शरीर मे धारण करनेवाली। उ०--असख्य पत्नावलि अकधारिणी।-प्रिय प्र०, पृ० १०२। २ तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे० 'अकधारी'।

अकधारी--वि० [सं० अङ्कधारिन्] [स्त्री० अङ्कधारिणी] तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाला। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के साप्रदायिक चिह्नो को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अकन--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कन] [वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्कय] १ चिह्न करना। निशान करना। २ लेखन। लिखना। जैसे--'चित्राकन', 'चरित्राकन' मे 'अकन'। ३ शख, चक्र, गदा, पद्म या त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से बाहु पर छपवाना।

विशेष--वैष्णव लोग शख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार आयुधो के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या शिवलिंग के। रामानुज सप्रदाय के लोगों मे इसका चलन बहुत है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४ गिनती करना। ५ श्रेणीनिर्धारण (को०)।

क्रि० प्र०—करना।--होना।

अकना (५)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] १ निश्चित करना। ठहराना। आँकना। उ०—इहै बात साँची सदा देव अकी।--पृ० रा०, २।२११। २ ढकना। मुद्रित करना। मूँदना। उ०—समझि दासि सिरवर तिन ढक्यो। करपल्लव तिन द्रग वर अक्यो।--पृ० रा०, ६१।७१६।

अकनीय--वि० [सं० अङ्कनीय] १ अकन के योग्य। चिह्न करने योग्य। २ छापने लायक। ३ चित्रण करने योग्य।

अकपट्टी--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क + हिं० पट्टी] काठ की लबोतरी चिकनी पटिया जिसपर बालक आरभ मे अक्षर लिखना सीखते हैं। पाटी। उ०—यही पर भगवान् कृष्ण अकपट्टी पर लिखना सीखे थे।-प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अकपरिवर्तन--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कपरिवर्तन] १ एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट बदलना। करवट फिरना। २ गोद के बच्चे को एक बगल से दूसरी बगल करना। ३ एक अक की समाप्ति के बाद दूसरे अक का आरभ (नाटक)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकपलई--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपल्लव] वह विद्या जिसमे अको को अक्षरो के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उसी प्रकार अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दो और वाक्यों से। इसमे इकतीस अक्षर लेकर उनकी सख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प' अक्षर समझते हैं।

अकपालिका--सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकपाली'।

अकपाली--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपाली] १ दाई। धाय। २. आलिगन (को०) ३ वेदिका नाम का गधद्रव्य (को०)।

अकपाश--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कपाश] गणित ज्योतिष मे सख्याओं को विशिष्ट ढग से रखने की एक क्रिया [को०]।

अकमाल--सज्ञा पुं० [सं० अङ्क + माला] आलिगन। भेंट। परिरभण। गले लगना। उ०—भगति हेत भगता के चले, अकमाल ले बीठल मिले।—रै० बानी, पृ० ५७।

मुहा०--अकमाल देना = आलिगन करना। भेंटना। गले लगाना। उ०—आजु आए जानि सब अकमाल देत हैं।—तुलसी ग्र०, पृ० १७०।

अकमालिका--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कमालिका] १ आलिगन। भेंट। २ छोटा हार। छोटी माला।

अकमुख--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कमुख] नाटक का आरभिक अश जिसके द्वारा सभी अक तथा बीज रूप मे कथानक सूचित किया जाता है, जैसे—भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अक (सा० दर्पण)।

अकविद्या--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० 'अकगणित'।

अकशायी--वि० पुं० [सं० अङ्कशायिन्] [स्त्री० अङ्कशायिनी] अक या गोद मे सोनेवाला। उ०—अकशायी तुम बनोगे दूर होंगे नैश सशय।-क्वासि, पृ० ११६।

अकस[1]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कस] १ शरीर। देह। जिस्म। तन २. चिह्न। निशान [को०]।

अकस[2]--वि० चिह्नयुक्त [को०]।

अकाक--सज्ञा पुं० [सं० अङ्काङ्क] जल। पानी [को०]।

अकावतार--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कावतार] नाटक के किसी अक के अत मे कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अक के आरभिक दृश्य तथा पात्रो की सूचना या आभास देनेवाला अश (सा० दर्पण)।

क्रि० प्र०—होना।

अकास्य--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कास्य] अक के अत मे प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी ससूचक अश (सा० दर्पण, दश०)।

अकिका--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किका] १ चिह्न रखनेवाली। १ गिनती करनेवाली। ३ हिसाब रखनेवाली।

अंकित—वि० [सं० अङ्कित] १ निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०—भूमि विलोकु राम पद अंकित बन बिलोकु रघुवर बिहार थलु।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६६। २ लिखित। खचित। उ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर। —मानस, ५।१३। ३ वर्णित। उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।—मानस, १।१०। ४ गिना हुआ (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंकिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किनी] १ चिह्नों का समूह। चिह्न-राशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [को०]।

अंकिनी[2]—वि० अंकन करनेवाली। उ०—होकर भी वह चित्र अंकिनी आप रंकिनी आशा है।—साकेत, पृ०, ३६६।

अंकिल†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क+हिं० इल (प्रत्य०)] बधिया किया हुआ बैल। बधिया किया हुआ साँड। साँड।

अंकी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्की] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

अंकुट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुट] कुंजी। ताली [को०]।

अंकुडक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुडक] १ कुंजी। ताली। २. नागदंत। खूँटी [को०]।

अंकुर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [वि० अंकुरित, हिं० अंकुरना] १. अँखुआ। गाभ। अँगुसा। उ०—पाइ कपट जल अंकुर जामा। —मानस, २।२३। २. डाभ। कल्ला। कनखा। कोंपल। आँख। ३ यव का नया नया अँखुआ जो मांगलिक होता है। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। —मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०—आना। उगना।—जमना।—निकलना।—फूटना। —फोड़ना।—फेंकना।—लेना।

४. कली। ५ संतति। संतान। उ०—(क) 'हमारे नष्ट कुल मे ये एक अंकुर बचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'—श्रीनिवास ग्र० पृ० १४६। (ख) ये अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन। —साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७ जल। पानी। ८ रुधिर। रक्त। खून। ९ रोम। रोआँ।

अंकुर[2]—संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] मांस के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अंगूर।

अंकुरक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] घोंसला। खोता [को०]।

अंकुरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] अंकुर निकलना। बीज आदि का अंकुरयुक्त होना [को०]।

अंकुरना—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुर फूटना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०—उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी।—मानस, १।२१९।

अंकुराना—क्रि० अ० दे० 'अंकुरना'।

अंकुरित—वि० [सं० अङ्कुरित] १ जिसमे अंकुर हो गया हो। अँखुआ आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०—सृष्टि बीज अंकुरित प्रफुल्लित सफल हो रहा हरा भरा।—कामायनी, पृ० १८२। २. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०—अंकुरित तरु पात उकठि रहे जे गात, बनबेली प्रफुलित कलिनी कहर के।—सूर०, १०।३०।

क्रि० प्र०—करना।

अंकुरितयौवना—वि० [सं० अङ्कुरितयौवना] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हो। किशोरी।

अंकुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकुर+ई] चने की भिगोई हुई घुंघनी।

अंकुल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अंकुर'—१। उ०—अंकुल बीज नसाय कै भए बिदेही थान।—कबीर बी०, पृ० १३। (ख) बीज बिन अंकुल पेड़ बिनु तरिवर, बिनु फूले फल फरिया। —कबीर बी०, पृ० ३५।

अंकुश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक मे गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमुहाँ काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। अंकुस। गजबाग। शृणि।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

२. प्रतिबंध। रोक। दबाव। नियंत्रण। जैसे, अंकुश मे रखना =प्रतिबंध मे रखना। ३. अंकुश के आकार की हाथ पैर की रेखा। उ०—अंकुश बरछी शक्ति पवि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलबीर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २१।

अंकुशग्रह—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश ग्रह] महावत। हाथीवान। निषादी। फीलवान।

अंकुशदंता—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदन्त] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियों से बलवान् और क्रोधी होता है तथा झुंड मे नहीं रहता। इसे गुंडा भी कहते हैं।

अंकुशदुर्धर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदुर्धर] अंकुश से भी जल्दी वश मे न आनेवाला मतवाला हाथी। मत्त हाथी।

अंकुशधारी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशधारी] महावत। फीलवान [को०]।

अंकुशमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशमुद्रा] तंत्र शास्त्र मे अंगुलियों को अंकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अंकुशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशा] २४ जैन देवियों मे एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अंकुशित—वि० [सं० अङ्कुशित] अंकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ाया हुआ [को०]।

अंकुशी[1]—वि० [सं० अङ्कुशी] १. अंकुशवाला। अंकुश से युक्त। २. अंकुश से वश मे करनेवाला [को०]।

अंकुशी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकुशा'।

अंकुस[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश, प्रा० अंकुस] १ दे० 'अंकुश'[1]। उ०—महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब।—मानस, १।२५६।

मुहा०—अंकुस देना = ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०—क्रोध गजपाल के ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यो। —सूर०, १०।३०५४।

२. दे० 'अंकुश'-२। उ०—कुल अंकुश आरज पथ तजि के लाज संकुच दई डेरै। सूर स्याम कैं रूप लुभाने कैसेहुँ फिरत न फेरे।—सूर०, (पार०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अंकुश' ३.। उ०—याका सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।— भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८।

अकुसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—सूल अकुसा छुरी सुधारी तिप्प कुठारी।—सुजान०, पृ० १५७।

अकूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कूर] दे० 'अकुर'। उ०—(क) तव भा पुनि अकूर, दीपक सिरजा निरमला।—जायसी (शब्द०)। (ख) सौ सामत प्रमान, उग्गि अकूर वीर रस।—पृ० रा०, ३१।६३।

अकूरी(पु)—वि० [सं० अङ्कूर+ई (प्रत्य०)] अकुरवाला। ज्ञान के अंकुरवाला (पूर्वजन्म के सस्कार से)। उ०—अकूरी जिव मेटे निज गेहा। नूवा नाम जो प्रथम सनेहा।—कबीर सा०, पृ० ८१।

अकूलना(पु)—क्रि० अ० [सं० अङ्कूरण, हिं० अँकुरना] जनमना। पैदा होना। उ०—सालिग्राम गडक अकूला। पाहन पूजत पडित भूला।—कबीर सा०, पृ० १८।

अकूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कूष] १ अकुश। २ नेवले की जाति का एक जानवर। घूस [को०]।

अकोट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कोट] दे० 'अकोल'।

अकोटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कोटक] दे० 'अकोल'।

अकोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] एक पेड जो सारे भारतवर्ष मे प्राय पहाडी जमीन पर होता है।

विशेष—यह शरीफे के पेड से मिलता जुलता है। इसमे बेर के बराबर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते है। छिलका हटाने पर इसके भीतर बीज पर लिपटा हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने मे कुछ मीठा होता है। इस पेड की लकड़ी कडी होती है और छडी आदि बनाने के काम मे आती है। इसकी जड की छाल दस्त लाने, वमन कराने, कोढ और उपदश आदि चर्मरोगो को दूर करने तथा सर्प आदि विषैले जतुओ के विष को हटाने मे उपयोगी मानी जाती है।

पर्या०—अकोटक। अकोट। ढेरा। अकोला।

अकोलसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कोलसार] अकोल के वृक्ष से तैयार किया गया विष [को०]।

अकोलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कोलिका] आलिगन। अँकवार [को०]।

अक्य¹—वि० [सं० अङ्क्य] १ चिह्न करने योग्य। निशान लगाने लायक। अकनीय। २ गिनने योग्य। [को०]।

अक्य²—सञ्ज्ञा पुं० १ दागने योग्य अपराधी।

विशेष—प्राचीन काल मे राजा लोग विशेष प्रकार के अपराधियो के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे। इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई बेर सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं।

२ मृदग, तबला, पखावज आदि बाजे जो अक मे रखकर बजाए जायँ।

अख(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०—आज नीरालइ सीय पडचो। च्यारि पहूर माँही नू मीली अख।—बी० रासो, पृ० ४८।

अखि(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्खि] दे० 'अख'। उ०—करि क्रोध अखि सुरत्त, हवि जानि लग्गिय लत्त।—पृ० रा०, १।१०४।

अखिका(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। नेत्र। उ०—लजै भजै मन गतीयपुव्वता कवी कहै। सु अखिका कुरग गत्ति भान देषिता रहै।—पृ० रा०, ११ ५४।

अखे—क्रि० वि० [सं० अक्षि; (लाक्ष०)] आगे। समक्ष। आँख में। उ०—न अखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है।—दखिखनी, पृ० ४४८।

अग¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १ शरीर। बदन। देह। गात्र। तन। जिस्म। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अग।—कामायनी, पृ० १६२। २ शरीर का भाग। अवयव। उ०—भूषन सिथिल अग भूषन सिथिल अग—भूषण ग्र०, पृ० १२६।

मुहा०—**अग उभरना**—युवावस्था आना। **अग करना**=स्वीकार करना। ग्रहण करना। उ०—(क) जाको मनमोहन अग करै।—सूर (शब्द०)। (ख) जाको हरि दृढ करि अग करयो।—तुलसी (शब्द०)। **अग छूना**=शपथ खाना। माथा छूना। कसम खाना। उ०—सूर हृदय से टरत न गोकुल अग छुवत हौ तेरो।—सूर (शब्द०)। **अग टूटना**=जम्हाई के साथ आलस्य से अगो का फैलाया जाना। अँगडाई आना। **अग तोडना**—अँगडाई लेना। **अग धरना**=पहनना। धारण करना। व्यवहार करना। **अग मे मास न जमना**=दुबला पतला रहना। क्षीण रहना। उ०—नैन न आवै नींदडी, अग न ज मै मासु।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३। **अग मोडना**=(१) शरीर के भागों को सिकोडना। लज्जा से देह छिपाना। (२) अँगडाई लेना। उ०—अगन मोरति भोर उठी छिति पूरति अग सुगध झकोरन।—व्यगार्थ (शब्द०)। (३) पीछे हटना। भागना। नटना। बचना। उ०—रे पतग निःशक जल, जलत न मोडै अग। पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै पतग (शब्द०)। **अग लगना**=(१) आलिगन करना। छाती से लगाना। (२) शरीर पुष्ट होना। उ०—'वह खाता तो बहुत है पर उसके अग नही लगता' (शब्द०)। (३) काम मे आना। उ०—'किसी के अग लग गया, पढा पढा क्या होता' (शब्द०)। (४) हिलना। परचना। उ०—'यह बच्चा हमारे अग लगा है' (शब्द०)। **अग लगाना या अग लाना(पु)**=(१) आलिगन करना। छाती से लगाना। परिरभण करना। लिपटाना। उ०—पर नारी पैनी छुरी कोउ नहिं लाओ अग। (शब्द०) (२) हिलाना। परचाना। (३) विवाह देना। विवाह मे देना। उ०—'इस कन्या को किसी के अग लगा दे' (शब्द०)। (४) अपने शरीर के आराम मे खर्च करना।

३ भाग। अश। टुकडा। ४ खड। अध्याय। जैसे—'गुरुदेव को अग', 'चितावनी को अग', 'सूषिम मारग को अग'।—कबीर ग्र०। ५ ओर। तरफ। पक्ष। उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अग।—तुलसी (शब्द०)। ६ भेद। प्रकार। भाँति। तरह। उ०—(क) को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अग बल विहीन को।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६४। (ख) अग अंगनी के भाव गूढ भाव के प्रभाव, जानै को सुभाव रूप पचि पहिचानी है।—केशव (शब्द०)। ७. आधार। आलबन। उ०—राधा राधारमन को रस सिंगार

मे अग।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४। ८ सहायक। सुहृद। पक्ष का। तरफदार। उ०--रौरे अग जोग जग को है।--मानस, २।२८४। ९ एक सबोधन। प्रिय। प्रियवर। उ०--यह निश्चय ज्ञानी को जाते कर्ता दीखै करै न अग। --निश्चल (शब्द०)। १० जन्मलग्न (ज्यो०)। ११. प्रत्यय-युक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग। प्रकृति। (व्या०)। १२. छह की सख्या। उ०--बरसि अचल गुण अग ससी सवति, तवियो जस करि श्रीमरतार।--वेलि, दू० ३०५। १३ वेद के ६ अग, यथा-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। दे० 'वेदाग'। १४. नाटक मे शृगार और वीर रस को छोडकर शेष रस जो अप्रधान रहते है। १५ नाटक मे नायक या अगी का कार्यसाधक पात्र, जैसे--'वीरचरित' मे सुग्रीव, अगद विभीषण आदि। १६ नाटक की ५ सधियो के अतर्गत एक उपविभाग। १७ मन। उ०--सुनत राव इह कथ्य फुनि, उपजिय अचरज अग। सिथिल अग धीरज रहित, भयो दुमति मति पग।--पृ० रा०, ३।१८। १८ साधन जिसके द्वारा कोई कार्य सपादित किया जाय। १९ सेना के चार अग वा विभाग, यथा--हाथी, घोडे रथ और पैदल। दे० 'चतुरगिणी'। २० राजनीति के सात अग, यथा--स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष राष्ट्र, दुर्ग और सेना। २१ योग के आठ अग, यथा--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। दे० 'योग'। २१. बगाल मे भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चपापुरी थी। कही कही इसका विस्तार वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर (उडीसा, उत्कल) प्रदेश तक लिखा है। २३ ध्रुव के वश का एक राजा। २४. एक भक्त का नाम। २५. उपाय। २६. लक्षण। चिह्न (को०)।

अग[2]--वि० १ अप्रधान। गौण। २ उलटा। प्रतीप। ३ प्रधान। ४ निकट। समीप (को०)। ५ अगोंवाला (को०)।

अग[3] ⑤--सज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आज्ञा। आदेश। उ०--सो निज स्वामिनि अग सुनि अमिय सुपथ्थह कव्व।--पृ० रा०, ६१।७६६।

अंगकर्म--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गकर्म] शरीर को सँवारना या मालिश करना।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अगक्रिया--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गक्रिया] अगकर्म (को०)।

अगग्रह--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गग्रह] १ एक रोग जिससे देह मे पीडा होती है। २. स्थापत्य मे पत्थरो के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोडो को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बैठाया जानेवाला कबूतर की पूँछ के आकार का लोहे या ताँबे का एक टुकडा। पाहू।

अगचालन--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गचालन] हाथ पैर हिलाना। अग डुलाना।

अगच्छवि--सज्ञा स्त्री० [अङ्ग + छवि] अगो की शोभा। उ०--'अग-च्छवि से होते थे स्वय अलकृत।--पार्वती, पृ० २००।

अगच्छेद--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + छेद] अग कटना। अगभग। उ०--शरीर छोटे से बडा होता है, उसका कभी कभी अगच्छेद हो जाता है।--चिद्०, पृ० २०७।

अगज[1]--वि० [सं० अङ्गज] शरीर से उत्पन्न। तन से पैदा। उ०--कु अगजों की बहु कष्टदायिता बता रही थी जन नेत्रवान को। --प्रिय० प्र०, पृ० १०३।

अगज[2]--सज्ञा पुं० [स्त्री० अगजा] १ पुत्र। बेटा। लडका। उ०--कृष्ण गेह कै काम, काम अगज जनु अनुरध।--पृ० रा०, १।७२७। २ पसीना। ३ बाल। केश। रोम। ४ काम, क्रोध आदि विकार। ५ साहित्य मे स्त्रियो के यौवन सबधी जो सात्विक विकार हैं उनमे हाव, भाव और हेला ये तीन 'अगज' कहलाते हैं। कायिक। ६ कामदेव। ७ मद। ८ रोग। ९. रक्त। खून (को०)।

अगजा--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गजा] कन्या। पुत्री। बेटी।

अगजाई--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + हिं० जाई] पुत्री। बेटी। कन्या।

अगजात--सज्ञा पुं० दे० 'अगज'।

अगजाता--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगजा'।

अगज्वर[1]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गज्वर] राजयक्ष्मा। क्षय रोग (को०)।

अगज्वर[2]--वि० ज्वरोत्पादक (को०)।

अगड खगड[1]--वि० [अनु ध्व०] १ बचा खुचा। गिरा पडा। इधर उधर का। २ टूटा फूटा। उ०--'अयोध्या की अगड खगड बीहड और बेढगी बस्ती।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४।

अगड खगड[2]--सज्ञा पुं० काठकबाड। टूटा फूटा सामान।

अगड़ा ⑤--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'अग' १। उ०--तेरा अगडा पेखो रै, तेरा मुखडा देखो रे।--दादू०, पृ० ५०४।

अगढग--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० ढग] अगो की बनावट या रचना। उ०--अगढग औ रग भूरि भँवरी सुभ लच्छन।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३।

अगण--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] १ घर के बीच का खुला हुआ भाग। आँगन। सहन। चौक। अजिर। उ०--(क) सदेसे ही घर भर्यउ कई अगणि कई बार।--ढोला०, दू०, ८००। (ख) आवी द्वार तजे ग्रह अगण।--राज०, पृ० १८।

विशेष--शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए है, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लबा हो, दूसरा 'चद्रवेधी' जिसकी लबाई उत्तर दक्षिण हो। चद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है।

२ यान। सवारी (को०)। ३ सचरण। गमन (को०)।

अगति--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गति] १ अग्निहोत्री। २. विष्णु। ३. ब्रह्मा। ४. अग्नि। ५. जिसके द्वारा गमन किया जाय। वाहन (को०)।

अगत्राण--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गत्राण] १. शस्त्रास्त्रो से अग की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा। कवच। बख्तर। वर्म। जिरह। २ अँगरखा। कुरता।

अगद--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गद] १. वालि नामक बदर का पुत्र जो रामचद्र की सेना मे था। २. बाहु पर पहनने का एक गहना। बिजायट। बाजूबद। उ०--उर पर पदिक कुसुम बनमाला अगद खरे बिराजै।--सूर०, १०।४५१। ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों मे से एक। ४. दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा।

अगदा[1]—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदा] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी।

अगदा[2]—वि० स्त्री० अगदान करनेवाली (स्त्री)।

अगदान—संज्ञा पुं० [अङ्ग + दान] १ पीठ दिखलाना। युद्ध से भागना। लडाई से पीछे फिरना। २ तनुदान। अगसमर्पण। सुरति। रति। (स्त्रियों के लिये प्रयुक्त)।

क्रि० प्र०—करना = (१) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना। (२) रति करना, समाग करना।

अगदीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदीया] कारुपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अगद को मिली थी।

अगद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्गद्वार] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद।

अगद्वीप—सञ्ज्ञा पुं० [अङ्गद्वीप] छह द्वीपों में से एक।

अगधारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + धारिन्] शरीर धारण करनेवाला। शरीरी। प्राणी।

अगन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गन] १ आँगन। सहन। चौक। उ०—घर अगन गायन बिरकि जमुना जल बन कुज।—पृ० रा०, २।५५६।

अगना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] २ सुदर अगवाली स्त्री। २. स्त्री। कामिनी। उ०—बीच परी अगना अनेक आँगननि के।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८३। २ सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री। ४ कन्या राशि (को०)। ५ वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ (को०)।

अगनाप्रिय[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गनाप्रिय] १ अशोक का पेड। २. उत्तर दिशा का हस्ती [को०]।

अगनाप्रिय[2]—वि० स्त्रियों का प्यारा [को०]।

अगन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गन्यास] तत्रशास्त्र के अनुसार मत्रों को पढते हुए एक एक अग छूना। सध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि।

अगपाक—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्गपाक] अगों का पकना या सडकर उनमे मवाद भरना। अग पकने का रोग।

अगपालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकमालिका' [को०]।

अगपाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाली] १. आलिगन। अँकवार। २ वेदिका नामक गधद्रव्य [को०]।

अगप्रायश्चित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रायश्चित्त] स्मृतियों मे कथित अशौच मे दान के रूप मे किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है [को०]।

अगप्रोक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्गप्रोक्षण] अग पोछना। देह पोंछना शरीर को गीले कपडे से मलकर साफ करना।

अगफुरन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + स्फुरण, प्रा० अप० फुरण] अग का फडकना। उ०—अगफुरन तैं निज मतग मन रग पिछानत।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७।

अगबी—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] मधु। शहद। उ०—ताअत मे ता रहें न मय ओ अगबीं की लाग।—शेर०, भा० १, पृ० ५२७।

अगभग[1]—सञ्ज्ञा सं० [सं० अङ्गभङ्ग] १ किसी अवयव का खडन या नाश। अग का खडित होना। शरीर के किसी भाग की हानि। २ मोहित करने की स्त्रियों की चेष्टा। स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया। अगभगी।

अगभग[2]—वि० जिसके शरीर का या कोई भाग खडित हो या टूटा हो। जिसके हाथ पैर टूटे हों। अपाहज। लँगडा लूला। लुज।

क्रि० प्र०—करना। उ०—अगभग करि पठवहु बदर।—तुलसी (शब्द०)।—होना। जैसे—उसका अगभग हो गया।—(शब्द०)।

अगभगि—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अगभगी'। उ०—अगभगि मे व्योम मरोर, भौहों मे तारों के झोर।—पल्लव, पृ० ३३।

अगभगिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अगभगी'। उ०—ममोहन विभ्रम अगभगिमा मे अपठित।—ग्राम्या, पृ० २०।

अगभगी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्गी] स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा। स्त्रियों की चेष्टा। अदा। उ०—वह अनगपीडा अनुभव सा अगभगियों का नर्तन।—कामायनी, पृ० ११।

अगभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गभाव] सगीत मे नेत्र, भृकुटि और हाथ आदि अगों से मनोविकार का प्रकाशन। गाने मे शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति।

अगभू[1]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गभू] १. पुत्र। २. कामदेव [को०]।

अगभू[2]—वि० शरीर या मन मे उत्पन्न [को०]।

अगभूत[1]—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्गभूत] पुत्र। बेटा।

अगभूत[2]—वि० १ अग मे उत्पन्न। देह से पैदा। २ अंतर्गत। भीतर। अतर्भूत। ३. गौण। अप्रधान।

अगभग ⓤ—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्ग + भङ्ग या अङ्ग, प्रा० अंगभग] अग प्रत्यग। हर एक अवयव। उ०—कुदन ओपति अगभग जनु चद किन्नि सिर।—पृ० रा०, १४।७४।

अगम ⓤ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आगम] आगम। आना। अवाई। उ०—तिन रिषि पूछी ताहि वचन कारन इत अगम।—पृ० रा०, १।२६४।

अगमना ⓤ—क्रि० स० दे० 'अगवना'। उ०—(क) पायान राय जयचद को बिगरि पिथ्य कुन अगमै।—पृ० रा०, ६१।१०६०। (ख) को अगमै सु जम्म अग्म को करै सँघारन।—पृ० रा०, ६१।१०६०।

अगमर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्द]। १ अग मलनेवाला या हाथ पैर दबानेवाला नौकर। सवाहक। सेवक। २. एक प्रकार का वातरोग। हड्डियों का दर्द। हडफूटन रोग।

अगमर्दक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दक] अगमर्द। सवाहक [को०]।

अगमर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दन] अगों की मालिश। देह। दबाना। हाथ पैर दबाना।

अगमर्दी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दी] सवाहक। अगमर्दक।

अगमर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्ष] अगों की पीड़ा। वातरोग [को०]।

अगयज्ञ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गयज्ञ] प्रधान यज्ञ का अगीभूत यज्ञ [को०]।

अगयष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गयष्टि] शरीर की पतली आकृति [को०]।

अगरक्षक--सज्ञा पुं० [स० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्त सैनिक। बाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अगरक्षणी--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गरक्षिणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अगरक्षा--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का बचाव। बदन की हिफाजत।

अगरक्षिणी--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगरक्षणी'।

अगरस--सज्ञा पुं० [स० अङ्ग+रस] किसी पत्ती या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। रौंग।

अगराग--सं० पु० [सं० अङ्गराग] १. चदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगधित द्रव्यो का मिला हुआ लेप जो अग मे लगाया जाता है। उबटन। बटना। २ वस्त्र और आभूषण। ३ शरीर की शोभा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४ स्त्रियो के शरीर के पाँच अगो की सजावट--माँग मे सिंदूर, माथे पे रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप, और हाथ पैर मे मेहँदी वा महावर। ५ एक प्रकार की सुगधित देसी बुकनी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चौसठ कलाओं मे से एक।--वर्ण०।

अगराज--सज्ञा पुं० [स० अङ्गराज] १ अग देश का राजा कर्ण। २ राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शाता ऋष्यशृग को ब्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अगरुह--सज्ञा पुं० [स० अङ्गरुह] १ शरीर के रोएँ, केश आदि। २ ऊन [को०]।

अगरेजी[1]--सज्ञा स्त्री० [फा० पुर्त० आग्लेज, इगलेज] अँगरेज लोगो की भाषा। इग्लैंड और अमेरिका के निवासियो की भाषा।

अगरेजी[2]--वि० अँगरेजो की। विलायती।

अगरेजीबाज--वि० [हिं० अगरेजी+फा०बाज] कुछ कुछ अँगरेजी जाननेवाला। उ०--'बहुतेरे अगरेजीबाज सँवले साहित्य लोग'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गलिपि] अग देश मे लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अगलेप--सज्ञा पु० [स० अङ्गलेप] दे० 'अगराग'--१ [को०]।

अगलोडच--सज्ञा पुं० स० [अङ्गलोडच] १ एक प्रकार की घास। चिचिडा। २ अदरक या उसकी जड [को०]।

अगवना(यू)--क्रि० स० दे० 'अँगवना'--३। उ०--एक कोटि अगवन धरत हर उर सुध्यान वर।--पृ० रा०, ६१।१६०।

अगवस्त्र--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०--जो जो अग ऊपर अगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।

अगवारा--सज्ञा पुं० [स० अङ्ग=भाग, सहायता+कार] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २ खेत की जोताई मे एक दूसरे की सहायता।

अगविकल--वि० [स० अङ्गविकल] १ मूर्छायुक्त। मूछित। २ विकलाग [को०]।

अंगविकृति--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अगविक्षेप--सज्ञा पुं० [स० अङ्गविक्षेप] १ अग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तृता देते वा गाते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २ नृत्य। नाच। ३ नृत्यकालीन अग-सचालन। कलाबाजी।

अगविद्या--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गविद्या] १ शरीर के लक्षणो और रेखाओ को देखकर जीवन की घटनाओ को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओ से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २ छह वेदाग।

अगविभ्रम--सज्ञा पु० [स० अङ्गविभ्रम] १ रोग जिसमे रोगी अगो को और का और समझता है। अगभ्राति। २ शृगार रस मे नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अगवैकृत--सज्ञा पुं० [स० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अगो की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अगश--क्रि० वि० [सं० अङ्गश] अग या विभाग के अनुसार [को०]।

अगशुद्धि--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अगशैथिल्य--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गशैथिल्य] बदन की सुस्ती। अग का ढीलापन। थकावट।

अगशोष--सज्ञा पुं० [स० अङ्गशोष] एक रोग जिसमे शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखडी रोग।

अगसग--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+सङ्ग] रति। सयोग। मैथुन। सभोग।

अगसधि--सज्ञा स्त्री० दे० 'सध्यग'

अगसपेख(यू)--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग+सम्प्रेक्ष] अग नामक देश (डिं०)।

अगसवाहन--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गसवाहन] अगमर्दन। मालिश। देह दबाना। उ०--'चार सेवक आवनूस के बेलन से उसका अग-सवाहन करते थे'।--चद्र० (भू०), पृ० २२।

अगसस्कार--सज्ञा पुं० [अङ्गसस्कार] अगो का सँवारना। देह का बनाव सजाव। उबटन, स्नान या सुगधित द्रव्यो आदि से शरीर की सजावट।

अगसस्क्रिया--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगसस्कार' [को०]।

अंगसहति--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहति] अगो का गठन। अगो की रचना या बनावट। अगो का सुढारपन [को०]।

अगसहिता--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहिता] किसी शब्द मे व्यजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसबध [को०]।

अगसख्य--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अगसिहरी--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग=शरीर+हर्ष=कप] १ ज्वर आने के पहले देह की कँपकँपी। कप। कँपकँपी। २ जूडी।

अंगसुप्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुन्न होना [को०]।

अगसेवक--सज्ञा पु० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अगरक्षक [को०]।

अगस्कंध--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्कन्ध] रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार नामक शरीर के पाँच स्कंध (बौद्ध) ।

अगस्पर्श--संज्ञा पु० [सं० अङ्गस्पर्श] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि संचयन के बाद दूसरों के द्वारा छुने के योग्य होना [को०] ।

अगहानि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गहानि] दैव, भ्रम या अनवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवांतर का कार्यों में हुई असावधानी या त्रुटि [को०] ।

अगहार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहार] १ अंगविक्षेप । चमकना । मटकना । हाथ पैर हिलाना । २ नृत्य । नाच ।

अंगहारि--संज्ञा पुं० १ दे० 'अगहार' । २ रंगमंच । रंगस्थल [को०] ।

अगहीन[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहीन] अनंग । कामदेव [को०] ।

अगहीन[2]--वि० जिसको कोई एक वा अनेक अंग न हों । जिसके शरीर का कोई भाग खंडित वा टूटा हो । लूला लँगड़ा । लूज आदि । अवयवरहित ।

अगांगिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाङ्गिता] दे० 'अगांगिभाव' [को०] ।

अगांगिभाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गाङ्गिभाव] १ अवयव और अवयवी का परस्पर संबंध । उपकारक उपकार्य-संबंध । अंश का संपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप संबंध अर्थात् ऐसा संबंध कि उस अंश का अवयव के बिना संपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो, जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ संबंध । २ गौण और मुख्य का परस्पर संबंध । ३ अलंकार में संकर का एक भेद । जहाँ एक ही पद्य में कुछ अलंकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी आ जाएँ । उ०--अब ही तो दिन दस बीते नाहिं नाह चले अब उठि आई कहँ कहाँ लौं बिसरिहैं । आओ खेलें चौंपर बिसारैं मतिराम दुख खेलन को आई जानि बिरह को चूरि है । खेलत ही काहू कह्यो जुग जिन फूटौ प्यारी । न्यारी भई सारी को निबाह होनो दूर है । पासे दिए डारि मन सांसे ही में बूडि रह्यो बिसरयो न दुख, दुख दूनो भरपूर है । यहाँ 'जुग जनि फूटौ' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलंकार और इस स्मरण के कारण विरहनिवृत्ति के साधन से उलटा दुख हुआ अर्थात् 'विषम' अलंकार की सिद्धि हुई । अत यहाँ स्मृति अलंकार विषम का अंग है ।

अगांगीभाव--संज्ञा पुं० दे० 'अगांगिभाव ।'

अगा[1]--संज्ञा पु० [सं० अङ्ग] १ पहिनावा जो घुटनों के नीचे तक लंबा होता है और जिसमें बंद लगे रहते हैं । अंगरखा । चपकन ।

अगा[2]--संज्ञा पुं० [स० अङ्ग] दे० 'अंग' । उ०--देवी गंगा लहर तुरंगा । तुहरे लहर परमू, भीजे आठो अंगा ।--शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १३८ ।

अगाकडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार + हिं० कडी] अंगारों पर सेंकी हुई मोटी रोटी । लिट्टी । बाटी ।

क्रि० प्र०--करना ।--लगाना = बाटी तैयार करना या पकाना ।

अगाकर(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--कोस पयाए उ पाणियो जाहि । सात अगाकर बैठो हो खाय ।--बी० रासो, पृ० ७८ ।

अगाकरी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--रवा केरु आमोदनं दे बनाए । घने घृत्त अगाकरी खोभि लाए ।--पृ० रा० ६३।८६ ।

अगार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । बिना धुएँ की आग । निर्धूम अग्नि । उ०--धवनि धवती रहि गई बुझि गए अगार ।--कबीर ग्र०, पृ० ५७ । २ स्फुलिंग । चिनगारी । उ०--अति अगिनि झार भभार धुधार करि उचटि अगार झंझार छायौ ।--सूर०, १०।५६६ ।

मुहा०--अगार उगलना = कडी कडी बातें मुँह से निकालना । ऐसी बात बोलना जिससे सुननेवाले को अत्यंत क्रोध उत्पन्न हो । अगार बनना = (१) खा पीकर लाल होना । मोटा ताजा होना । (२) क्रोध में भरना । अंगार बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पडना । (२) दैवी आपत्ति आना ।

३ कोयला (को०) । ४ मंगल । उ०--चर आए ढिल्लिय नगर, दसमि सुदिन अगार । --पृ० रा०, ६६।१६१८ । ५. लाल रंग (को०) । ६ हिंतावली नाम का पौधा (को०) ।

अगार[2]--वि० लाल रंगवाना [को०] ।

अगारक--संज्ञा पुं० [सं० अगारक] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । २ चिनगारी (को०) । ३ मंगल ग्रह । ४ मृगराज । भँगरैया । भँगरा । ५ कटभरैया का पेड . कुरंटक । पियावासा । ६ एक प्रकार का तैल जो सभी ज्वरों का नाश करनेवाला होता है (को०) ।

अगारकमणि--सं० पुं० [सं० अङ्गारकमणि] मूँगा । प्रवाल ।

अगारकवार--संज्ञा पुं० [सं अङ्गारकवार] मंगल का दिन । भौमवार [को०] ।

अगारकारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकारी] काठ को जलाकर बेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अगारकित--वि० [सं० अङ्गारकित] दग्ध । जला हुआ । भुना हुआ । [को०] ।

अगारकृत--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकारी' [को०] ।

अगारधानी--संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गारधानी] आग रखने का बरतन । अँगीठी । बोरसी [को०] ।

अगारधानिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारधानी' [को०] ।

अगारपरिपाचित--संज्ञा पुं० दे० 'अगारपरिपाचित' [को०] ।

अगारपर्ण[1]--संज्ञा पु० [स० अङ्गारपर्ण] चित्ररथ गंधर्व का एक नाम ।

अगारपर्ण[2]--वि० दे० 'चित्ररथ'

अगारपाचित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपाचित] अंगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कबाब, नानखताई इत्यादि ।

अगारपात्री--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारपात्री] अँगीठी । अगारधानी [को०] ।

अगारपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपुष्प] इंगुदी वृक्ष जिसके फूल अंगार के समान लाल होते हैं । हिंगोट का पेड ।

अगारमंजरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमञ्जरी] वह करंज जिसकी मंजरी लाल होती है । लाल करंज की बेल [को०] ।

अगारमंजी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारमंजरी' [को०] ।

अगारमणि--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकमणि' ।

अंगारमती--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमती] कर्ण की स्त्री ।

अंगारवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' [को०]।

अंगारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुंजा की लता। घुंघची की बेल। चिरमटी की बेल।

अंगारवेणु—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का बाँस। बाँस का एक भेद [को०]।

अंगारशकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारशकटी] अँगीठी। अंगारपात्री। गोरसी। बोरसी [को०]।

अंगारा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] दे० 'अंगार'।

मुहा०—अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना। गुस्से में होना। अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना'। अंगारा होना = क्रोध से लाल होना। अंगारे उगलना = कटु वचन कहना। जली कटी सुनाना। अंगारे फाँकना = असह्य कष्ट देनेवाला काम करना। अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पड़ना। आग बरसना। (२) दैवी कोप होना। अंगारों पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना या अपने को संकट में डालना। (२) जमीन पर पैर न रखना। इतराकर चलना। अंगारों पर लोटना = (१) अत्यंत रोष प्रकट करना। आग बबूला होना। भन्नाना। (२) डाह से जलना। ईर्ष्या से व्याकुल होना। उ०—'वह मेरे बच्चे को देखकर अंगारों पर लोट गई' (शब्द०)। (३) तड़पना व्याकुल होना। उ०—शाम से ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज। —भ्रमर०, भा० १, पृ० ६५६। अंगारों पर लोटाना = (१) जलाना। दाह करना। (२) तड़पाना। दुखी करना। लाल अंगारा = (१) बहुत लाल। खूब सुर्ख। उ०—'काटने पर तरबूज लाल अंगारा निकला' (शब्द०)। (२) अत्यंत क्रुद्ध। उ०—'यह सुनते ही वह लाल अंगारा हो गई' (शब्द०)।

अंगारावक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारावक्षेपण] अंगार या जलता हुआ कोयला निकालने और बुझाने का एक पात्र। चिमटा [को०]।

अंगारि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारि] अँगीठी। बोरसी।

अंगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १ अँगीठी। २ इक्षु। ईख। ३ ईख का छोटा टुकड़ा। ४ कली। ५. पलाश की कली [को०]।

अंगारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १ अँगीठी। बोरसी। आतिशदान। २ वह दिशा जिसपर डूबे हुए सूर्य की लाली छाई हो। ३ एक लता (को०)।

अंगारित—वि० [सं० अङ्गारित] १ भूना हुआ। २ दग्ध (एक प्रकार का भोजन जो जैन मुनियों के लिये त्याज्य है)। ३ जला हुआ [को०]।

अंगारितें[२]—संज्ञा पुं० पलाश की ताजी कली [को०]।

अंगारिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १ अँगीठी। २ कली। ३ पलाश की ताजी कली। ४ एक लता। ५ एक नदी का नाम [को०]।

अंगारी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारी] १ दहकते हुए कोयले का छोटा टुकड़ा। २ चिनगारी। ३. अंगार या दहकती हुई चिना लपट की आग पर पकाई हुई रोटी। लिट्टी। बाटी। ४ अँगीठी। बोरसी।

अंगारी[२]—वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा)।

अंगारीय—वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य (काष्ठादि) [को०]।

अंगार्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०]।

अंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती। अँगिया। चोली। कचुकी। छोटा कपड़ा। २ सर्प की केंचुल (को०)।

अंगित(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'इंगित'। उ०—की कीरति अंगित काजे। —विद्यापति, पृ० ५३३।

अंगिन्—वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी'।

अंगिनी—वि० [सं० अङ्गिनी] अंगवाली।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे, अर्धांगिनी।

अंगिया(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिका'—१।

अंगिर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिर] १ दे० 'अंगिरस'। २. तीतर पक्षी [को०]।

अंगिरस्—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ एक प्राचीन ऋषि का नाम जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं।

विशेष—ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं। इसी से इनका नाम अथर्वा भी है। इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ हैं। कहीं इनके पिता को उरु और माता को आग्नेयी लिखा है और कहीं इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है। स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

२ बृहस्पति का नाम। ३. ६० संवत्सरों में छठे संवत्सर का नाम। ४. कटीला। कटीला गोंद। कतीरा।

अंगिरस—संज्ञा पुं० [सं० [अङ्गिरस्] १ परशुराम का एक शत्रु २ दे० 'अंगिरस'—२ [को०]।

अंगिरसी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०]।

अंगिरा—संज्ञा पुं० दे० 'अंगिरस्'।

अंगिर्—संज्ञा पुं० [सं० अंगिर्] एक ऋषि जिन्होंने अथर्वण ऋषि से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके शिष्य थे [को०]।

अंगी[१]—वि० [सं० अङ्गी] १ शरीरी। देहधारी। शरीरवाला। २. अवयवी। उपकार्य। अंशी। समष्टि। ३ प्रधान। मुख्य।

अंगी[२]—वि० स्त्री० अंगवाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वंगी, कोमलांगी आदि)।

अंगी[३]—संज्ञा पुं० १ नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चंद्र में हरिश्चंद्र। २. प्रधान रस। नाटकों में शृंगार और वीर ये दो रस अंगी (प्रधान) कहलाते हैं और शेष रस अंग (अप्रधान)।

अंगी[४]—संज्ञा स्त्री० [डिं०] चौदह विद्याएँ।

अंगी(पु)[५]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिया'।

अंगीकति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकति] दे० 'अंगीकृति'। उ०—जो चाचा जी में श्रीनाथ जी गुसाईं जी की अंगीकति को संबंध दृढ़ है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६५।

अंगीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकरण] १ दे० 'अंगीकार'। उ०—

अस्वीकरण और अगीकरण दोनो की क्षमता अपने प्राणो मे जगानी होती है।—सुनीता, पृ० २३७।

अगीकार—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकार] स्वीकार। मजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना। उ०—जाकौं हरि अगीकार कियौ।—सूर०, १।३७।—होना।

अगीकृत—वि० [सं० अङ्गीकृत] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०—जौं न अगीकृत करैं वै होइ हौं रिन दास।—सूर०, १०।३४३१।

अगीकृति—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गीकृति] स्वीकृति। मजूरी। अगीकरण।

अगीय—वि० [सं० अङ्गीय] १ शरीर या अग सबधी। २ अग देश का [को०]।

अगुण—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुण] बैंगन। भटा [को०]।

अगुर(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अगुल'—१। उ०—अगुर द्वै घटि होत सबनि सौं पुनि पुनि और मँगायौ।—सूर०, १०।३४२।

अगुरि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरि] उँगली। उ०—मुँह अगुरि दै दै मुसुकावति।—नद ग्र०, पृ० २४३।

अगुरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली। उ०—(क) भरति नीर सुदरी। सु पानि पत्त अगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई व्रज के रूखन के पतीआ तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अगुरी हो तोरेंगो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

अगुरीय—सज्ञा पुं० [स० अङ्गुरीय] अँगूठी। मुँदरी [को०]।

अगुरीयक—संज्ञा पुं० दे० 'अगुरीय' [को०]।

अगुल—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] १ लबाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जौ के पेट की लबाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०—साठि सु अगुल लेहय किल्ली।—पृ० रा०, ३।२२।

विशेष—१२ अगुल का एक बित्ता और दो बित्ते का एक हाथ होता है।

२ ग्रास या बारहवाँ भाग (ज्यो०)। ३ उँगली। अगुलि। ४. अँगूठा। ५ चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अगुलक—वि० [सं० अङ्गुलक] अगुल सबधी। जो अगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अगुलप्रमाण[1]—सज्ञा पुं० [स० अङ्गुलप्रमाण] अगुलियो की लबाई या चौड़ाई [को०]।

अगुलप्रमाण[2]—वि० अगुली की लबाईवाला [को०]।

अंगुलमान—सज्ञा पुं०, वि० दे० 'अगुलप्रमाण'[को०]।

अगुलि—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] १ दे० 'अगुली'। उ०—तडित करिग अगुलि धरम वान भग्गि प्रथिराज।—पृ० रा०, ५७।८७।

मुहा०—अगुलि करना = बदनामी करना। अगुल्यानिर्देश करना। उ०—जिहि प्रियजन अगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।—पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की सख्या (को०)।

अंगुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका] १ उँगली। एक प्रकार की चीटी [को०]।

अगुलिगण्य—[सं० अङ्गुलिगण्य] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। विरला। उ०—गोपाल का सच्चा भक्त अगुलिगण्य ही हो सकता है।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३१२।

अगुलितोरण—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलितोरण] त्रिपुट तिलक। तीन पतली अर्द्धचद्राकार समानातर रेखाओ का तिलक जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अगुलित्र—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्र] १ वह तत या तारो वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली मे मिजराब पहनकर बजाया जाता है, जैसे—सितार, बीन, एकतारा आदि। २ दे० 'अगुलित्राण' (को०)।

अगुलित्राण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्राण] गोह के चमडे का बना हुआ दस्ताना जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड से बचाने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमडे का एक आवरण। गोह के चमडे का दस्ताना।

अगुलित्रान(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अगुलित्राण'। उ०—अगुलित्रान कमान बान छवि सुरनि मुखद असुरनि उर सालति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अगुलिनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिनिर्देश] १ उँगली से सकेत करने का कार्य। २ बदनामी। निंदा [को०]।

अगुलिपचक—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपञ्चक] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं—अगुष्ठ, प्रदर्शनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अगुलिपर्व—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपर्वन्] उँगलियो की पोर। उँगली की गाँठ या जोड।

अगुलिमुख—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमुख] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अगुलिमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिमुद्रा] १ अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामाकित अँगूठी। २ मुहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका—सज्ञा स्त्री० दे० 'अगुलिमुद्रा' [को०]।

अगुलिमोटन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमोटन] अँगुली चटकाने या फोडने का काम। उँगली पुटकाना [को०]।

अगुलिवेष्ट—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्ट] दस्ताना [को०]।

अगुलिवेष्टक—सज्ञा पुं० दे० 'अँगुलिवेष्ट' [को०]।

अगुलिवेष्टन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्टन] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियो को ढाँकने का आवरण। २ अगुलित्राण।

अगुलिसगा—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसङ्गा] उँगलियों मे लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अगुलिसज्ञा—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसज्ञा] उँगली का इशारा [को०]।

अगुलिसंदेश—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसन्देश] उँगली की मुद्रा से या उँगली चुटकाकर सकेत करना [को०]।

अगुलिसभूत—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख [को०]।

अंगुलिस्फोटन--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलिस्फोटन] उँगलियों को फोड़ना या पुटकाना [को०]।

अंगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] १. उँगली। उ०--अरुन बरन अंगुली मनोहर।--तुलसी ग्र०, पृ० ३६४। २. हाथ का अंगूठा (को०)। ३ पाँव की उँगली (को०)। ४ पाँव का अँगूठा (को०)। ५ अंगुल का परिमाण (को०)। ६. हाथी के अगले सूँड का उँगलीनुमा सिरा या भाग। ७. एक नदी का नाम।

अंगुलीक--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलीक] अँगूठी [को०]।

अंगुलीपचक--संज्ञा पु० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०]।

अंगुलीपर्व--संज्ञा पु० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०]।

अंगुलीमुख--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलीमुख] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुलीय--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलीय] अँगूठी। उ०--जैसे अंगुलीय में मरकत --तुकुम, पृ० ६४।

अंगुलीयक--संज्ञा पु० दे० 'अंगुलीय' [को०]।

अंगुलीसंभूत--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख। नाखून [को०]।

अंगुल्यग्र--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुल्यग्र] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुल्यादेश--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुलि+आदेश] उँगली का इशारा। उँगली से अभिप्राय प्रगट करना। इशारा। संकेत।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुल्यानिर्देश--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुल्यानिर्देश] बदनामी। कलंक। लांछन। अंगुलतनुमाई। बुराई। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुल्ल--संज्ञा पु० [फा०] उँगली। अंगुली। उ०--अपने के तई बड़ाइत अंगुल्ल आह बस है।--कविता कौ०, भा०, ४, पृ० १६।

अंगुल्लतनुमा--वि० [फा०] निंदनीय। बदनाम। कुख्यात [को०]।

क्रि० प्र०--करना--निंदा करना।--हैना = निंदित होना। बदनाम होना।

अंगुल्लतनुमाई--संज्ञा स्त्री० [फा०] बदनामी। कलंक। लांछन। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुल्लतरी--संज्ञा स्त्री० [फा०] अँगूठी। मुँदरी। मुद्रिका। उ०--जब सुलेमाँ पाय यो अंगुल्लतरी।--दक्खिनी०, पृ० १८४।

अंगुल्लाना--संज्ञा पु० [फा०] १ उँगली पर पहनने की पीतल या लोहे की एक छोटी टोपी जिसमें छोटे छोटे गड्ढे बने रहते हैं। इसे दरजी लोग कपड़ा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय। इसी से वे सूई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं। २ सोने या चाँदी की एक प्रकार की मुँदरी जो हाथ के अँगूठे में पहनी जाती है। ३. उँगली की रक्षा के लिये उसमें पहनने का धातु, कपड़े, सींग आदि का खोल। अंगुलित्राण (को०)

अंगुल्लेनर--संज्ञा पु० [फा०] अँगूठा [को०]।

अंगुष्ट--संज्ञा पु० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--अंगुष्ट दक्ष उत्तरे सुकंठ।--हम्मीर रा०, पृ० ५।

अंगुष्ठ--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुष्ठ] १ हाथ या पैर की सबसे मोटी उँगली। अँगूठा। २. अँगूठे की पोरुआ से उँगली के पोरों की लंबाई के बराबर मानी जाती है [को०]।

अंगुष्ठमात्र--वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्र] अँगूठे की लंबाई या मोटाई का अँगूठे जैसा [को०]।

अंगुष्ठमात्रक--वि० [स्त्री० अङ्गुष्ठमात्रिका] दे० 'अंगुष्ठमात्र' [को०]।

अंगुष्ठा--संज्ञा पु० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--जय विदुरी पग अंगुष्ठा मात्रा अधिक अपार।--वीर सा०, पृ० ८६।

अंगुष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका] एक पौधे का नाम [को०]।

अंगुष्ठ्य--संज्ञा पु० [सं० अङ्गुष्ठ्य] अँगूठे का नाखून [को०]।

अंगूठा--संज्ञा पु० दे० 'अँगूठा'। उ०--उदयास्त पर उँगली प्राय, अंगूठे के बल हुए खड़े।--गुमात, पृ० ४१।

अंगूर--संज्ञा पु० [फा०] एक लता और उसके फल का नाम। द्राक्षा। दाख।

विशेष--यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा कश्मीर आदि प्रदेशों में बहुत लगाया जाता है। हिमालय के पश्चिमीय भागों में यह आपसे आप भी होता है। उत्तर प्रदेश के मुसाखे, कनायर और देहरादून तथा आंध्र और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर औरंगाबाद, पूना और नासिक आदि स्थानों में भी इसकी उपज होती है। बंगाल में पानी अधिक बरसने के कारण इसकी बेल वैसी नहीं बढ़ सकती। बिहार प्रदेश में हिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ टट्टियाँ तैयार की जाती हैं।

अंगूर की बेल होती है जो टट्टियों पर फैलती है। इसकी पत्तियाँ पुरहड़े या नेनुए की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे कई आकार के होते हैं। कई नर्म के फल की तरह लंबातरे और बड़े मकोय का लगे गाम होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। अंगूर की मिठास तो प्रसिद्ध ही है। भारतवासी इसे 'द्राक्षा' और 'मुद्दीखा' के नाम से कहते हैं। वैद्यक और तिब्बत में इसका उल्लेख है। पर भारतवर्ष में इसकी खेती कम हुई थी। फल प्रायः बाहर से ही मँगाए जाते थे। मुसलमान बादशाहों के समय अंगूर का और अधिक ध्यान किया गया। आजकल हिंदुस्तान में सबसे अधिक अंगूर काश्मीर में होते हैं जहाँ से बर्फ के दिनों में बराबर आते हैं। बर्फ इनकी रक्षा करती है और सिरका भी पड़ता है। महाराष्ट्र देश में जो अंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं जैसे--साहबी, फकीरी, हबशी, साहबी साहेबी इत्यादि। अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और सिंध में अंगूर बहुत अधिक और कई प्रकार के होते हैं--जैसे, हैटा, किशमिशा, कंधारी, हुसैनी इत्यादि। किशमिश में बीज नहीं होता। कंधारी हैटा अंगूरों को पका और कंधारी अनार के साथ बरफ वाले में दुहकर 'आबजात' और किशमिशी का धूप में सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

मुख्यता, रक्तपित्त के रोग में अच्छा है, सुखाया हुआ अंगूर है। यह दस्तावर है और उदर की व्याधि का नाश करता है। खाँसी के लिये भी अच्छा है। 'आसवारिष्ट' आदि कई आसव,

वैदिक औषधियों इससे तैयार होती हैं। हकीमो मे इसका बहुत व्यवहार है।

अगूर का मडवा वा अगूर की टट्टी = (१) अगूर की बेल के चढने और फैलने के लिये बाँस की खपचियो का बना हुआ मडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०—अगूर खट्टे होना = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली अच्छी चीज को बुरा बताना। उ०—अत मे यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अगूर।—खिलौना १९२७।

अगूर¹—सज्ञा पुं० मास के छोटे छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय दिखाई पडते हैं। दे० 'अकुर'²।

मुहा०—अगूर आना = घाव के ऊपर चमडे की पतली झिल्ली पडना। घाव पुरना। घाव भरना। अगूर तडकना = भरते हुए घाव पर बधी हुई मास की झिल्ली का फट जाना। अगूर फटना = दे० 'अगूर तडकना'। अगूर बँधना = घाव के ऊपर मास की नई झिल्ली चढना। घाव भरना। अगूर-भरना = दे० 'अगूर बँधना'।

अगूर²—सज्ञा पुं० [सं० अकुर] अकुर। अँखुआ।

अगूरशेफा—सज्ञा पुं० [फा०] एक जडी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे सग अगूर, सूची, जवराज तथा गिरबूटी कहते हैं। इसकी जड और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अगूरी¹—वि० [फा०] १. अगूर से बना हुआ। २. अगूरी रग का।

अगूरी²—सज्ञा पुं० कपडा रँगने का एक हरा रग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अगूरी³—सज्ञा स्त्री० [अगूर की शराब का सक्षिप्त रूप] शराब।

अगूरी बेल—सज्ञा स्त्री० [फा० अगूरी + हिं० बेल] कपडे आदि पर काढी जानेवाली या छापी जानेवाली अगूर की लता की आकृति।

अगूप—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गूप] १ घूस नाम का जतु। २ बाण। तीर (को०)।

अगोच—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गोञ्च] अगोछा [को०]।

अगोचन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गोचन] दे० 'अगोच' [को०]।

अगोछना Ⓤ—क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०—करि मजन अगोछि तन धूप बासि बहु अग। —पृ० रा०, १४। ५३।

अगोट—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० वट्ट] अग का गठन। शरीर की बनावट।

अगोटी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अगोट'।

अग्य—वि० [सं० अङ्गय] अग का। अग सबधी [को०]।

अगेज—सज्ञा पुं० दे० 'अँगरेज'।

अग्रेजियत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अग्रेजो अथवा अग्रेजी का प्रभाव। अग्रेजीपन। उ०—अग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड दिया है। —प्रेमघन०, भा० १, (भू०)।

अग्रेजी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरेजी'। उ०—अग्रेजी पढिके जदपि सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिनु रहत हीन के हीन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७३२।

अंघ—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ] अघ। पाप [को०]।

अघस—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घस्] पाप। पातक। अपराध।

अघारि—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घारि] १ पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३ दीप्तिशील ज्योति से युक्त [को०]।

अघ्रि—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रि] १ पैर। चरण। पाँव। २ पेड की जड। मूल (को०)। ३ छद का चतुर्थ चरण (को०)।

अघ्रिकवच—सज्ञा पुं० [अङ्घ्रिकवच] जूता। उपानह [को०]।

अघ्रिज—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिज] क्षुद्र। निम्न [को०]।

अघ्रिनाम—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिनाम] १ वृक्ष की जड। २ पैर। पाँव [को०]।

अघ्रिनामक—सज्ञा पुं० दे० 'अङ्घ्रिनाम' [को०]।

अघ्रिप—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिप] पादप। वृक्ष। पेड।

अघ्रिपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णिका] सिंहपुच्छी नाम की लता [को०]।

अघ्रिपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णी] दे० अङ्घ्रिपर्णिका' [को०]।

अघ्रिपान—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिपान] पैर का अँगूठा चूसने का कार्य [को०]।

अङ्घ्रिवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिवल्लिका] सिंहपुच्छी लता। अघ्रिपर्णी [को०]।

अघ्रिवल्ली—सज्ञा स्त्री० दे० 'अघ्रिवल्लिका' [को०]।

अघ्रिस्कध—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिस्कन्ध] टखना। गुल्फ [को०]।

अच¹—वि० [सं० अञ्च] घुंघराला। घूमा हुआ। [को०]।

विशेष—केवल 'रोमाच' मे प्राप्त तथा समास का अतिम शब्द।

अच²—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि, प्रा० अच्चि, अच्च, अप० अच] १ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०—तन सट्टै सटि मुकति बोल भारथ्थी बोलै। लोह अच्च हड्डत पत्त तरवर जिमि डोलै।—पृ० रा०, २७।२४। २. दे० 'आँच'। उ०—जा ते अतर गुरुमति आई। ताँ कौं अच न लागै काई।—प्राण०, पृ० ३।

अचति—सज्ञा पुं० [सं० अञ्चति] १ वायु। २. अग्नि। ३ वह व्यक्ति जो गतिशील हो [को०]।

अचती—सज्ञा पुं० दे० 'अचति' [को०]।

अचन—सज्ञा पुं० [सं० अञ्चन] झुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अचना Ⓤ—क्रि० स० दे० 'ऐंचना'। उ०—(क) गहे इत उत्त सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अचि सिवाल अतिद्ध।—पृ० रा०, ६६।१४०३। (ख) चौतेगी सहबाज बान अरि प्रान सु अचै। —पृ० रा०, २७।४३।

अचर Ⓤ—सज्ञा पुं० दे० 'अचल'। उ०—कौन निरासी दीठि लगाई लै लै अचर झारै।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—राजन अचर छोरु करि जैत प्रसन काज। दिल्ली घर अगर इहै जूझ पर्यो घर आज।—पृ० रा०, ६६।१२४७।

अचल—सज्ञा पुं० [सं०] साडी वा ओढनी का वह भाग जो सिर अथवा कधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हुआ हो। साडी का छोर। आँचल। पल्ला। छोर। अँचरा। उ०—बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी।—मानस, २।११७। २ दुपट्टा। उपरना। उ०—लोचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अचल कर माल। —सूर०, १।१८९। ३ किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०—वन गूहा- कुज मरु अचल

मे हूँ खोज रहा अपना विकास ।—कामायनी पृ० १५८ । ४ किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६ कोर, जैसे 'नयनाञ्चल' मे अचल । ७ तलहटी । घाटी । उ०—उसकी वह जलन भयानक फैली गिरि अचल मे फिर ।—कामायनी, पृ० २८१ ।

मुहा०—अचल जोरना = दीनता व्यक्त करना उ०—अचल जोरे करत दीनता मिलिवे को सब दासी ।—सूर० (शब्द०) । अचल-देना = आँचल की ओट करना । लज्जा व्यक्त करना । परदा करना । उ०—पीतावर वह सिर से ओढत अचल दै मुसकात । —सूर०, १०।३३८ । अचल पसारना = दे० 'अँचरा पसारना' । उ०—पुर नारि सकल पसारि अचल विधिहि वचन सुनावही । —मानस, १।३११ । अचल (मे) गाँठ देना = याद रखने के लिये आँचल मे ग्रथि देना । बराबर स्मरण रखना । कभी न भूलना । उ०—अचल गाँठि दई दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठयो ।—सूर०, ९।१६४ । अचल रोपना = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना । अँचरा पसारकर याचना करना । निहोरा करना । उ०—चरन नाइ सिर अचल रोपा ।—मानस, ६।६ । अचल लेना = दे० 'अचल देना' । उ०—रुद्र को देखि कै मोहिनी लाज करि लियो अचल रुद्र तब अधिक मोह्यो ।—सूर०, ८।१० । अचल भरना = (१) मगलाशसा के साथ वधू या पुत्री के आँचल में अन्न, दूब, हल्दी आदि डालना । एक मगल कृत्य । (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद । (३) गोद भरना ।

अचला—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँचरा' । उ०—मन बधे अचला मिसि । —बेलि, दू० १५८ ।

अचित—वि० [सं० अचिन्त्य, प्रा० अचिंत] चिंतन मे परे । अचिंत्य । उ०—अचित पुरुष को मगल हसा गावै हो ।—धर्म० श०, पृ० ५४ ।

अचित—वि० [सं० अञ्चित] १ पूजित । आराधित । समानित । २ विशिष्ट । प्रधान । ३ झुका हुआ । घुमावदार । ४ धनुषाकार । ५ सुदर । ६ गत । गया हुआ । ७ ग्रथित । गूँथा हुआ [को०] ।

अचितपत्र—सज्ञ पुं० [सं० अञ्चितपत्र] टेढे दल वाला कमल [को०] ।

अचितपत्राक्ष—वि० [सं० अञ्चितपत्राक्ष] कमल की तरह नेत्र-वाला [को०] ।

अचितभ्रू—वि० स्त्री० [सं० अञ्चितभ्रू] वक्र भौहोवाली या धनुषाकार भौहोवाली [को०] ।

अचितलागूल—वि० [सं० अञ्चितलाङ्गूल] टेढी दुमवाला (जैसे बदर) [को०] ।

अची—सज्ञा स्त्री० दे० 'अच' । उ०—जिने लोहची लगि अची न कव्य ।—पृ० रा०, २४।२६१ ।

अचुता—वि० [सं० अच्युत] जो विचलित न हो । अडिग । उ०—पारब्रह्म वारे एह लटका अचुता चुत मे लूटा ।—सत दरिया, पृ० ११३ ।

अचुर—सज्ञा पुं० [सं० अनुचर] सेवक । दास । उ०—फुलवारी मो कीजे वासा । अचुर भेज देहि तेहि पासा ।—इद्रा०, पृ० १२७ ।

अच्छया†—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] कामना । इच्छा । उ०—मन अच्छया पूरन भई सबको मिटयो री मदन दुख दद ।—ब्रजनिधि ग्र०, पृ० १६६ ।

अछ—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष] आँख ।—उ० इछिनि अछ बखानि कै मोहि सुनावहु एह ।—पृ० रा०, १४।१३७ ।

अछर—सज्ञा पुं० [सं० अक्षर] १ मुँह के भीतर का एक रोग जिसमे काँटे से उभर आते हैं । २ अक्षर । ३. मत्र । टोना । जादू ।

मुहा०—अछर मारना = जादू करना । टोना करना । मत्रप्रयोग करना । उ०—मेरे अछर मारि परान लिए, सुध लाग रही भइ बावरिया । —गीत (शब्द०) ।

अछि—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] आँख । नेत्र । उ०—इच्छइ जु अछि बकै करन, सका लज्ज बसकरी ।—पृ० रा०, ५८।१२३ ।

अछया—सज्ञा पुं० [सं० इच्छा, गु० इछा] लोभ । लालच । इच्छा । कामना । लालसा ।—डिं० ।

अज[1]—सज्ञा पुं० [सं० अब्ज, प्रा० ❀ अज्ज, >अप० ❀ अज] कमल । कमल का फूल ।—अनेकार्थ० ।

अज[2]—सज्ञा पुं० [स० अञ्जस] क्रोध । उ०—मजु काम सब रूप, अज गजवध महाबल ।—पृ० रा०, १।२३० ।

अजन[1]—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] [क्रि० अँजवाना, अँजाना] १ श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलकों के किनारे पर लगाने की वस्तु । काजल । आँजन । उ०—अजन रजन हूँ बिना खजन गजन नैन ।—बिहारी० र०, ४६ । २. सुरमा । उ०—अजन आड तिलक आभूषण सचि आयुधि बड छोट ।—सा० लहरी, (उ०, १६) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लगाना ।—सारना ।

३. सोलह शृगारो मे एक । ४. स्याही । रोशनाई । ५ रात । रात्रि । उ०—उदित अजन पै अनोखी देव अगिन जराय ।—सा० लहरी, ३२ । ६ सिद्धाजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन मे गडे खजाने आदि दीख पडते हैं । उ०—यथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १ ।१।७ लेप । उ०—निरजन बने नयन अजन ।—परिमल, पृ० १५८ । ८ माया । ९ अलकारो मे प्रयुक्त व्यजना वृत्ति का एक भेद जिसमे कई अर्थोवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ मे हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो । अभिधामूलक व्यजना वृत्ति । १० पश्चिम दिशा का दिग्गज । ११ एक पर्वत का नाम । कृष्णाजनगिरि । सुलेमान पर्वत शृखला । १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम । १३ छिपकली । विस्तुइया । १४ अग्नि (को०) । १५. पश्चिम दिशा (को०) । १६. एक देश का नाम । १७ एक जाति का बगला जिसे नटी भी कहते हैं । आंजन । १८. एक पेड जो मध्य प्रदेश, बुदेलखड, मद्रास, मैसूर आदि मे बहुत होता है । इसकी लकडी श्यामता लिए हुए लाल रग की और बडी मजबूत होती है । यह पुलो और मकानो म लगती है । इससे अन्य सामान भी बनते हैं । १९ एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०) । २० आँख मे अजन लगाने का कार्य (को०) ।

अजन[2]—वि० काला । सुरमई । उ०—उडत फूल उडगन नभ अतर अजन घटा घनी ।—सूर० २।२८ ।

यौ०—अजनकेश । अजनकेशी । अजनशलाका । अजनसार । अजनहारी ।

अजन[3]—सज्ञा पुं० [अ० एजिन दे० 'इजन'। उ०—जो जान देना हो अजन से कट मरो एक दिन।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३२।

अजन[4]—सज्ञा पुं० [सं० अर्जन, प्रा० अज्जण] उपार्जन। कमाना।

अजनक—सज्ञा पुं० [अञ्जनक] सुरमा [को०]।

अजनकेश—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जनकेश] दीपक। दीया। चिराग।

अजनकेशी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनकेशी] नख नामक सुगधद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है। हट्टविलासिनी। नखी।

अजनकेशी[2]—वि० स्त्री० अजन सदृश काले बालवाली स्त्री [को०]।

अजनगिरि—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जनगिरि] नीलगिरि पर्वत।

अजनता—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनता] पहचान [को०]।

अजननामिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जननामिका] पलकों पर होनेवाली फुसी। बिलनी।

अजनशलाका—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनशलाका] अंजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा सीसे की सलाई। सुरमचू।

अजनसार—वि० [सं० अजन + हिं० सारना] सुरमा लगा हुआ। अजन युक्त। आंजा हुआ। जिसमे अजन सारा या लगाया गया हो। उ०—एक तो नैना मद भरे दूजे अजनसार। ए बोरी कोउ देत है मतवारे हथियार (शब्द०)।

अजनहारी—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जन + कारिन्] १ आंख की पलक के किनारे की फुसी। बिलनी। गुहाजनी। गुहाई। अजना। एक कीडा। भृगी। २ एक प्रकार का उडनेवाला कीडा। भृगी नामक एक कीडा।

विशेष—इसे कुम्हारी या बिलनी भी कहते हैं। यह प्राय दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है। कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की बिलनी अच्छी हो जाती है। इसी कीडे के विषय मे यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीडों को पकडकर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भृग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखौं रघुराई। —तुलसी० (शब्द०)।

अजना[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जना] १ कुजर नामक वदर की पुत्री और केसरी नामक वदर की स्त्री जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। हनुमान की माता। कहीं कहीं अजना को गौतम की पुत्री भी लिखा है। २ आंख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटा फुसी जिसमे जलन और सूई चुभने के समान पीडा होती है। बिलनी। गुहाजनी। ३. दाद रोग की छिपकली। ४ उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०)।

अजना[2]—सज्ञा पुं० १. एक जाति का मोटा धान जो पहाडी प्रदेशो मे होता है। २. एक पहाड।

अजना[3]ⓤ—क्रि० स० [स० अञ्जन] दे० 'आंजना'। उ०—(क) कालिंदी ह्वावहिं न नयन अजै न मृगमद।—पृ० रा०, २।३४६। (ख) जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान।—मानस, १।१।

अजनागिरि—सज्ञा पुं० दे० 'अजनगिरि' [को०]।

अजनाद्रि—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जनाद्रि] अजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख सस्कृत ग्रथो मे है। यह पश्चिम दिशा में माना जाता है।

अजनाधिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनाधिका] एक प्रकार की छिपकली [को०]।

अजनानदन—सज्ञा पुं० [स० अञ्जनानदन] अजना के पुत्र। हनुमान।

अजनावती—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनावती] १ उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री। २ कालाजन नामक एक वृक्ष [को०]।

अजनिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनिका] १ एक प्रकार की छिपकली। २ छोटी चुहिया। ३ दे० 'अजनावती' [को०]।

अजनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनी] १ हनुमान की माता अजना। उ०—दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू, अजनी को नदन प्रताप भूरि भानु सो। —तुलसी ग्र०, पृ० २४८। २ माया। ३ वह स्त्री जिसने चदनादि का लेप लगाया हो। ४ एक काष्ठौषधि। कुटकी। ५ कालाजन नामक वृक्ष (को०)। ६ आंख की पलक की फुसी। बिलनी।

अजनीकुमार—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जनी + कुमार] अजनी के पुत्र। हनुमान। उ०—बिगरी सवार अजनीकुमार कीजै मोहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं।—तुलसी० ग्र०, पृ० २५१।

अजवार—सज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारो पर होनेवाला एक पौधा जिसकी जड का काढा और शर्बत हकीम लोग सर्दी और बर्फ के रोगो मे एव रक्तस्राव बद करने के लिये देते हैं। इद्राणी।

अजर[5]ⓤ—वि० [स० उज्ज्वल]। उज्ज्वल। उजला उ०—सित अजर रजनीय पुरनि गधव पग धारिय।—पृ० रा०, १।३४८।

अजरपजर—सज्ञा पुं० [अनुध्व० सं० पञ्जर] देह का बद। शरीर का जोड। ठठरी। पसली। हड्डी पसली।

मुहा०—अजर पजर ढीला होना = शरीर के जोडो का उखडना या हिल जाना। देह का बद बद टूटना। शिथिल होना। लस्त होना। अजर पजर तोड देना = अग भग करके बेकाम कर देना।

अजरपजर—क्रि० वि० अगल बगल। पार्श्व मे।

अजरि—सज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'।

अजल[1]—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जलि] दोनो हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ सपुट या गड्ढा जिसमे पानी या और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—अजल भर आँटा साईं का। बेटा जीवै माई का।—(फकीरो की बोली)।

अजल[2]—सज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अजलⓤ—सज्ञा पुं० दे० 'अब्रजल'। उ०—जब अजल मुँह सोवा समुद न सँवरा जागि। अब धरि काढ मच्छ जिमि पानी काढत आगि।—जायसी (शब्द०)

अजला—सज्ञा पुं० दे० अजल।

अजलि—सज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अंजलिक—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिक] अर्जुन के बाणो मे से एक का नाम [को०]

अजलिकर्म—सज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिकर्म] जुडे हाथो से नमस्कार करने का कार्य [को०]।

अजलिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिका] १. एक प्रकार की छोटी चुहिया। २. लजाधुर। छुईमुई [को०]।

अजलिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिकारिका] १ नमस्कार करने की मुद्रावाली मिट्टी की छोटी मूर्ति (को०)। २ लजाधुर लता।

अजलिगत—वि० [सं० अञ्जलि+गत] १ अजली मे आया हुआ। हाथ मे पडा हुआ। दोनो हथेलियो पर रखा हुआ। उ०—अजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगध-कर दोउ। —मानस, १।३।

अजलिपुट—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिपुट] दोनो हथेलियो को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान जिसमे पानी वा कोई और वस्तु भर सकते हैं। अँजली।

अजलिबधन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिबन्धन] माथे तक उठाई हुई अजलि से प्रणमन [को०]।

अजलिबद्ध—वि० [सं० अञ्जलिबद्ध] हाथ जोडे हुए।

अजली—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जली] १ दोनो हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ सपुट। दोनो हथेलियो का मिलाने से बना हुआ खाली स्थान वा गड्ढा जिसमे पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—निज विस्तार समेटि अजली आनि समानी। —रत्नाकर, भा० १, पृ० २१७। २ उतनी वस्तु जितनी एक अजलि मे आए। प्रस्थ। कुडक। दो प्रसृति। एक नाप जो बीस मागधी तोले या सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है। दो पसर। ३ अन्न की राशि मे से तौलते समय दोनो हथेलियो से दान के लिये निकाला हुआ अन्न।

अजस्—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जस्] मलहम [को०]।

अजस—वि० [सं० अञ्जस] १. सीधा। सरल। २ निश्छल। ईमानदार [को०]।

अजसा—क्रि० वि० [सं० अञ्जसा] १ शीघ्रता से। तुरत। २ ठीक ठीक। यथावत्। ३ सीधे मे। साक्षात् [को०]।

अजसायन—वि० [सं० अञ्जसायन] सीधी गतिवाला। ऋजुगामी [को०]।

अजहा†—वि० [हि० अनाज+हा (प्रत्य०)] (स्त्री० अजही) अनाज का। अन्न के मेल मे बना हुआ।

अजही†[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बाजार जहाँ अन्न बिकता है। अनाज की मडी।

अजही†[2]—वि० अनाज की। अनाज से बनी हुई।

अजाम—संज्ञा पुं० [फा०] १ समाप्ति। पूर्ति। अत। आखीर। उ०—अजाम की मजिल है बडी देखिए क्या हो।—कविता को०, भा ४, पृ० ५७५। २ परिणाम। फल। नतीजा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पर पहुँचना या पहुँचाना=पूरा करना। समाप्त करना। निपटाना। प्रबध करना। उ०—काम क्या अजाम देगा दूसरा। जब नहीं सकते हमी अजाम दे।—चोखे०, पृ० ६६।

अजारना—क्रि० स० [सं० अर्जन] कमाना। सचित करना।

अजि[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जि] १ प्रेरक। भेजनेवाला। २ आदेशदाता। ३ त्रिपुड [को०]।

अजि[2]—संज्ञा स्त्री० १ अगराग। २ रग। ३ जननेंद्रिय [को०]।

अजिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिक] सूर्य। रवि [को०]।

अजित[1]—वि० [सं० अञ्जित] १ अजन लगाए हुए। अजनसार। माँजे हुए। उ०—रज रजित अजित नयन घूंटन डोलत भमि। —पृ० रा०, १।७१८।

अजित[2]—वि० [सं० अञ्चित] पूजित। आराधित (डिं०)।

अजिवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार'

अजिव—वि० [सं० अञ्जिव] पिच्छिल। चिकना। फिसलाहट [को०]।

अजिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिष्ठ] सूर्य [को०]।

अजिष्ण्—संज्ञा पुं० दे० अजिष्ठ'।

अजिसना—क्रि० अ० [सं० अञ्जसा] शीघ्रता करना। उ०—अजिसिय हँसिय अतर गसिय मसिय सद्द उद्धर धँमिय।—पृ० रा०, ६७।३५७।

अजिहिषा—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जिहिषा] जाने की इच्छा [को०]।

अजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जी] १ पीसने का एक यत्र। २ आशिष आशीर्वाद [को०]।

अंजीर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जीर, फा० अजीर] एक प्रकार का पेड तथा उसका फल।

विशेष—यह गूलर के समान होता है और खाने मे मीठा होता है। यह भारतवर्ष मे बहुत जगह होता है। पर अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं। इसके लगाने के लिये कुछ चूना लगी हुई मिट्टी चाहिए। लकडी इसकी पीली होती है। इसके कलम फागुन मे काटकर दूर दूर क्यारियो मे लगाए जाते हैं। क्यारियाँ पानी से खूब तर रहनी चाहिएँ। लगने के दो ही तीन वर्ष बाद इसका पेड फलने लगता है और १४ या १५ वर्ष बराबर फल देता रहता है। यह वर्ष मे दो बार फलता है। एक बार जेठ-असाढ मे और फिर फाल्गुन मे। माला मे गूथे हुए इसके सुखाए हुए फल अफगानिस्तान आदि से हिंदुस्तान मे बहुत आते हैं। सुखाते समय रग चढाने और छिलके को नरम करने के लिये या तो गधक की धनी देते हैं अथवा नमक और शोरा मिले हुए गरम पानी मे फलो को डुबाते हैं। भारतवर्ष मे पूना के पास खेड-शिवापुर नामक गाँव के अजीर सबसे अच्छे होते हैं। पर अफगानिस्तान और फारस के अजीर हिंदुस्तानी अजीरो से उत्तम होते हैं। सुखाया हुआ अजीर का फल स्निग्ध, पुष्टिकर और रेचक होता है। यह दो तरह का होता है, एक जो पकाने पर लाल होता है और दूसरा काला।

अजीर[2]—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] आँगन। उ०—ऐन अजीर एक करु मेला।—सत दरिया०, पृ० ३।

अजु—वि० [सं० ऋजु, प्रा० अजु] सरल। स्पष्ट। उ०—पहुपजलि अजु सुरग बन।—पृ० रा०, २।३४८।

अजुवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार' [को०]।

अजुमन—संज्ञा पुं० [फा०] सभा। समाज। मजलिस। मडली।

अजुल—संज्ञा पुं० दे० 'अजली'। उ०—मायर मध्य सुठाम करन त्रिभुवन तन अजुल।—पृ० रा०, २।६२

अजुलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'। उ०—मजुल अजुलि भरि भरि पिय कौं दिय जल मेलन।—नद० ग्र०, पृ० २८।

मुहा०—अजुलि करना=प्रणाम करना। उ०—दटव्रत अजुलि करिय मम आनद सधीर।—पृ० रा०, ६।३८। अंजुलि जोरना=हाथ

जोड़ना। उ०—अंजुलि जोरि हरात टरात। कहन लगे विप्रनि सो बात।—नंद० ग्र०, पृ० ३०१।

अंजुली—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०—अंजुली जल घटत जैसें तैसें ही तन यह गयौ।—सूर०, १०।३८६५।

मुहा०—अंजुली करना = आचमन करना। उ०—हरि चरन अब अंजुली कीन।—पृ० रा०, १।४३६।

अंजू—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू। उ०—समदर एक आँख के अंजू मे।—दक्खिनी०, पृ० १६६।

अंझा—संज्ञा पुं० [सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ] नागा। तातील। छुट्टी। काम न करने का दिन। उ०—(क) मन को मसूमि मनभावन सो रुसि सखी दासिन को दूसि रही रंग झुकि झंझा सी। सोवै, सुख मोवै, सुक सारिका लचावै चोवै न रुचिर बानि मानि रहै अंझा सी।—देव (शब्द०)। (ख) अंझा सी दिन की भई संझा सी सकल दिसि गगन लगन रही गरद छवाय है।—भूषण (शब्द०)। (ग) काम मे चार दिन का अंझा हो गया (शब्द०)।

अंझू—संज्ञा पुं० दे० 'अंजू'।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

अटमट—वि० दे० 'अट्ट सट्ट'।

अटा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, प्रा० अडअ] १ बड़ी गोली।

विशेष—इसका प्रयोग अफीम और भग के संबंध मे अधिक होता है। जैसे अफीम का अटा चढ़ा लिया, अब क्या है ?

२ सूत वा रेशम का लच्छा। ३ बड़ी कौड़ी। ४ एक खेल जिसे अँगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियो से मेज पर खेला करते हैं। बिलियर्ड।

यौ०—अटागटगुड। अटाघर। अटाचित। अटावधू।

अटागुडगुड—वि० [हिं० अटा + गुडगुड] नशे मे चूर। संज्ञाशून्य। बेहोश। बेसुध। अचेत।

क्रि० प्र०—होना।

अटाघर—संज्ञा पुं० [हिं० अटा + घर] वह कमरा जिसमे गोली का खेल खेला जाय। इस खेल को अँगरेजी मे बिलियर्ड कहते हैं।

अटाचित—क्रि० वि० [हिं० अटा + चित] पीठ के बल। सीधा। पीठ जमीन पर किए हुए। पट और औंधा का उलटा।

क्रि० प्र०—गिरना। पड़ना।—होना।

मुहा०—अटाचित होना = (१) स्तंभित होना। अवाक् होना। (२) पीठ के बल गिर पड़ना, जैसे, इस खबर को सुनते ही वह अटाचित हो गया (शब्द०)। (३) बेकाम होना। बरबाद होना। किसी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार मे उसे ऐसा घाटा आया कि वह अटाचित हो गया (शब्द०)। ४ नशे मे बेसुध होना। बेखबर होना। अचेत होना। चूर होना। उ०—वह भंग पीते ही अटाचित हो गया (शब्द०)।

अटाधार—संज्ञा पुं० दे० 'बटाधार' उ०—'फैशन ने तो दिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी डूब ही चुकाया।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७६।

अटावधू—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड + बन्धक] जुए मे फेंकने वाली कौड़ी जिसे जुआरी सब कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है।

अटी—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] [क्रि० अँटियाना] १ उँगलियो के बीच का स्थान। अतर। घाई। २ धोती की वह लपेट जो कमर पर होती है और जिसमे पैसा भी रखते हैं। गाँठ। मुरी।

मुहा०—अटी करना—किसी का माल उड़ा लेना। धोखा देकर कोई वस्तु ले लेना। अटी चढ़ाना = अपने मतलब पर लाना। वश मे करना। अपने दाँव पर लाना। अटी पर चढ़ाना = अपने दाँव मे लाना। अटी मारना = (१) जुआ खेलते समय कौड़ी को उँगलियो के बीच मे छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे से दूसरे की वस्तु खिसका लेना। धोखा देकर कोई चीज उड़ा लेना। (३) तराजू की डाँडी को इस ढंग से पकड़ना कि तौल मे चीज कम चढ़े। कम तौलना। डाँडी मारना। अटी रखना = छिपा रखना। दबा रखना। प्रगट न होने देना।

३ एक दूसरे पर चढ़ी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ। तर्जनी के ऊपर मध्यमा को चढ़ाकर बनाई हुई मुद्रा। डेंडिया। डंडोइया।

विशेष—इसका चलन लड़को मे है। जब कोई लड़का किसी अपवित्र वस्तु वा अत्यज से छू जाता है तब उसके साथ के और लड़के उँगली पर उँगली चढ़ा लेते हैं जिसमे यदि वह उन्हे छू ले तो छूत न लगे और कहते हैं कि दाँ दाल की अटी काला वाला छू लें'।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बाँधना। लगाना।

४ लच्छा। अट्टी। सूत वा रेशम की लच्छी।

क्रि० प्र०—करना = अटेरना। लटियाना। लपेटना। लच्छा बाँधना।

५ अटेरन। वह लकड़ी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं। ६ विरेध। बिगाड़। लड़ाई। शरारत। ७ बान मे पहनने की छोटी बनी जिसे धोबी, कछी, बेहार आदि नीच जाति के मर्द पहनते हैं। मुरकी। छोटी बाली। ८ जेब। खलीता (को०)।

अटीबाज—वि० [हिं० अटी + फा० बाज] धूर्त। चालाक (को०)।

अठ—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ठ = गमन] गति। चाल। उ०—धवै अठ भारी —पृ० रा०, ३१। ११२।

अठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्र० अट्ठि, अठि] १ चीयाँ। गुठली। बीज। २ गाँठ। गिरह। ३ नवेड़ा के निकलते हुए रतन। अँठली। ४ गिलटी। कड़ापन।

अठुल—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठी] खुर। सुम। उ०—हैं अठुल दल पग वीर अवरत्त हलाइस।—पृ० रा०, ६१।२१४५।

अड—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] १ अंडा। उ०—अललपच्छ का अड ज्यो उलटि चले असमान।—रत्न०, पृ० ६१। २ 'अंडकोश'। फोता। २ ब्रह्मांड। लोकपिंड। लोकमंडल। विश्व। उ०—जिअन मरन फल दसरथ पावा। अड अनेक अमल जस छावा।—मानस, २।१५६। ४ वीर्य। शुक्र। ५ कस्तूरी का नाफा। मृगनाभि। नाफा। ६ पंच आवरण। दे० 'कोश'। ७. कामदेव। उ०—अति प्रचंड यह अड महाभट जहि सबै जग जानत। सो मतहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष शर तानत।—सूर (शब्द०)। ८ मकानो की छज्जन के ऊपर के गोल बलश जो शोभा के लिये बनाए जाते हैं। उ०—(क) अड टूक जाके भस्मति सौं ऐसा राजा त्रिभुवनपति।—दक्खिनी, पृ० ३०। (ख) बटे बर पग बमद्ध निसार। तुटै बर देवल अड अधार।—पृ० रा०, २४।२३६। १० शिव का एक नाम (को०)।

अडक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] १. अंडकोश। २. छोटा अंडा। [को०]

अडककडी—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] दे० 'अडकर्कटी' [को०]।

अडकटाह—सज्ञा पुं० [सं० अण्डकटाह] ब्रह्माड। विश्व। लोकमडल। उ०—एहि विधि देखत फिरउँ मैं अडकटाह अनेक।—मानस, ७।८०।

अडकर्कटी—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] पपीता। अड खरबूज [को०]।

अडकोटरपुष्पा—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पा] दे० 'अडकोटरपुष्पी' [को०]।

अडकोटरपुष्पी—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पी] नील अपराजिता। नीलवृल्ला। नीलपुष्पी। अजाद्री [को०]।

अडकोश—सज्ञा पुं० [सं० अण्डकोश] १ लिंगेंद्रिय के नीचे चमडे की वह दोहरी थैली जिसमे वीर्यवाहिनी नसें और दोनो गुठलियाँ रहती हैं। दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवो को यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनो अड वा गुठलियाँ पेडू से बाहर होती हैं। फोता। खुशिया। आँड। वैजा। वृषण। २ ब्रह्माड। लोकमडल। सपूर्ण विश्व। उ०—जा बल सीस धरत सहसानन। अडकोश समेत गिरि कानन।—तुलसी (शब्द०)। ३ सीमा। हद। ४ फल का छिलका। फल के ऊपर का बोकला। ५ फल (को०)।

अडकोष—सज्ञा पुं० [सं० अण्डकोष] दे० 'अडकोश' [को०]।

अडकोषक—सज्ञा पुं० [सं० अण्डकोषक] दे० 'अडकोश-१' [को०]।

अडकोस—सज्ञा पुं० दे० 'अडकोश-२'। उ०—अडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।—मानस, ७।८१।

अडज[1]—सज्ञा पुं० [सं० अण्डज] अडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे सर्प, पक्षी, मछली, कछुआ इत्यादि। ये चार प्रकार के जीवो मे से हैं।

अडज[2]—वि० [सं० अण्डज] अडे से उत्पन्न [को०]।

अडजराय—सज्ञा पुं० [सं० अण्डज+प्रा० राय] पक्षियो के राजा। गरुड। उ०—उदर माझ सुनु अडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया।—मानस, ७।८०।

अडजा—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डजा] कस्तूरी।

अडजात[1]—सज्ञा पुं० [सं० अण्डजात] अडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प, मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०]।

अडजात[2]—वि० दे० 'अडज' [को०]।

अडजेश्वर—सज्ञा पुं० [सं० अण्डजेश्वर] पक्षिराज। गरुड [को०]।

अडदल—सज्ञा पुं० [सं० अण्डदल] अडे का छिलका या खोल [को०]।

अडधर—सज्ञा पुं० [सं० अण्डधर] शिव [को०]।

अडबड—सज्ञा पुं० [सं० अकाण्डविकाण्ड, प्रा० अड विअड] १. असबद्ध प्रलाप। बे सिर पैर की बात। ऊटपटाँग। अनाप शनाप। अगडबगड। व्यर्थ की बात। २ गाली। बुरी बात। अपशब्द।

क्रि० प्र०—कहना।—बकना।—बोलना।

अडबड[2]—वि० असबद्ध। बे सिर पैर का। इधर उधर का। अस्तव्यस्त। व्यर्थ का। प्रयोजन रहित। उ०—'जब उसने उन प्रश्नो के उत्तर अडबड दिए तो उसपर"।'—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० १६७।

अडर सेक्रेटरी—सज्ञा पुं० [अ०] वह मत्री जो मुख्य मत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मत्री। जैसे, अडर सेक्रेटरी फार इडिया (सहकारी भारत सचिव)।

अडवर्धन—सज्ञा पुं० [सं० अण्डवर्धन] दे० 'अडवृद्धि' [को०]।

अडवृद्धि—सज्ञा पुं० [सं० अण्डवृद्धि] एक रोग जिसमे अडकोश वा फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है। फोते का बढना।

विशेष—शरीर की बिगडी हुई वायु या जल नीचे की ओर चलकर पेडू के एक ओर की सधियों से होता हुआ अडकोश मे जा पहुँचता है, और उसको बढाता है। वैद्यक मे इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं।

अडस†—सज्ञा पुं० [सं० अन्तस् प्रा० अडस् = बीच मे, दाब मे] कठिनता। कठिनाई। मुश्किल। सकट। असुविधा।

अडसू—वि० [सं० अण्डसू] अडे से पैदा होनेवाला। अडज [को०]।

अडा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अण्डक, प्रा० अडअ] [वि० अडैल] १ बच्चो को दूध न पिलानेवाले जतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमे से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है। वह गोल वस्तु जिसमे से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अडज जीवो के बच्चे फूटकर निकलते हैं। वैजा। उ०—अडा पालै काछुई बिनु थन राखै पोक।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० ८१।

मुहा०—अडा उडाना=(क) बहुत झूठ बोलना। बे पर की उडाना। (ख) असभव को सभव कर दिखाना। अडा खटकना=अडा फूटने के करीब होना। जब अडे से बच्चा निकलने मे एक आध दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अडे के छिलके पर चोच मारना। अडा ढीला होना=(क) नस ढीली होना। थकावट आना। शिथिल होना। जैसे, यह काम सहज नही है, अडा ढीला हो जायगा (शब्द०)। (ख) खुश्क होना। निर्द्रव्य होना। दिवालिया होना। जैसे, खर्च करते करते अडे ढीले हो गए (शब्द०)। अडा सरकना=(क) दे० 'अडा ढीला होना'। (ख) हाथ पैर हिलाना। अग डोलाना। उठना। जैसे, बैठे बैठे बताते हो, अडा नही सरकता (शब्द०)। अडा सरकाना=हाथ पैर हिलाना। अग डोलाना। उठना। उठकर जाना। जैसे, अब अडा सरकाओ तब काम चलेगा (शब्द०)। प्राय मोटे या बडे अडकोशवाले आदमी को लक्ष्य कर यह मुहावरा बना है। अडे लडाना=जुवारियो का एक खेल जिसमे दो आदमी अडे के सिरे लडाते हैं। जिसका अडा फूट जाता है वह हारा समझा जाता है। अडे का मलूक=सीधा सादा आदमी। अनुभवहीन व्यक्ति। अडे का शाहजादा=वह व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो। वह जिसे कुछ अनुभव न हो। अडे सेना=(क) पक्षियो का अपने अडे पर गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना। (ख) घर मे बैठ रहना। बाहर न निकलना। जैसे, क्या घर मे पडे पडे अडे सेते हो (शब्द०)।

अडा[2]—सज्ञा पुं० [सं० अण्डक] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन बासन मानुष अडा। भए चौखड जो ऐस पखडा।—जायसी (शब्द०)।

अडाकर्षण—सज्ञा पुं० [सं० अण्डाकर्षण] नपुसक बनाना [को०]।

अडाकार—वि० [सं० अण्डाकार] अडे के आकार का। बैजावी। उस परिधि के आकार का जो अडे की लबाई के चारो ओर रेखा खींचने से बने। लबाई लिए हुए गोल।

अडाकृति[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डाकृति] अंडे का आकार। अंडे की शकल।

अडाकृति[2]—वि० अडे के आकार का। अडाकार। अड इव।

अडालु—सज्ञा पुं० [सं० अण्डालु] अडे से भरी हुई मछली [को०]।

अडिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिका] चार यव के परिमाण की एक तौल [को०]।

अडिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिनी] स्त्रियो का एक योनिरोग जिसमे कुछ मास बढ़कर बाहर निकल आता है। इसे योनिकद रोग भी कहते हैं।

अडी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] १. रेंडी। रेंड के फल का बीज। २. रेंड या एरड का पेड।

अडी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० अण्डक या अण्डिका] एक प्रकार का रेशमी कपडा जो रद्दी रेशम और छाल आदि से बनता है।

अंडीर[1]—सज्ञा पुं० [सं० अण्डीर] १ वयस्क पुरुष। युवक। जवान व्यक्ति। २ दृढ व्यक्ति [को०]।

अडीर[2]—वि० बली। समर्थ [को०]।

अंडल—वि० स्त्री० दे० 'अडैल'।

अडैल—वि० स्त्री० [हिं० अडा + ऐल (प्रत्य०)] जिसके पेट मे अडे हो। अडेवाली।

अत—अव्य० [सं० अन्तः] 'अतर्' के अर्थ मे समस्त पदो मे कुछ स्थितियो मे प्रयुक्त 'अतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अत शल्य, अत सार आदि आदि [को०]।

अत कक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कक्ष] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो। उ०—'देवी अत कक्ष मे अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई...।' —दिव्या, पृ० २१४।

अत करण—सज्ञा पुं० [सं० अन्त करण] १ वह भीतरी इद्रिय जिसके विषय सकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दु खादि का अनुभव करती है।

विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे सकल्प विकल्प होता है। (ख) बुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना। (ग) चित्त, जिससे बातों का स्मरण होता है। (घ) अहकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सबध देख पडता है।

२ हृदय। मन। चित्त। बुद्धि। उ०—अत करण मे तीव्र अभिमान के साथ विराग है।—स्कद०, पृ० ५६। ३ नैतिक बुद्धि। विवेक, जैसे—हमारा अत करण इस बात को कबूल नही करता (शब्द०)।

अत करन Ⓤ—सज्ञा पुं० दे० 'अत करण'। उ०—'जो आजहू तेरो अत.-करन सुद्ध भयो नही है।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १८।

अत कलह—सज्ञा पुं० [सं० अन्त.कलह] दे० 'गृहकलह'।

अंत कुटिल[1]—वि० [सं० अन्त कुटिल] भीतर का कपटी। खोटा। धोखेबाज। छली।

अत कुटिल[2]—सज्ञा पुं० शख [को०]।

अत कोण—संज्ञा पुं० [सज्ञा अन्त कोण] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

विशेष—जब एक रेखा दो रेखाओ को स्पर्श करती या काटती है तब उन रेखाओ के मध्य मे बने हुए कोण को अत.कोण कहते हैं।

अत कृमि[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कृमि] शरीरस्थ कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाला एक रोग [को०]।

अंत कृति[2]—वि० जिसमे कीडे हो (फलादि) किनहा [को०]।

अत कोटरपुष्पी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त कोटरपुष्पी] दे० 'अण्डकोटर-पुष्पी' [को०]।

अत कोप—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कोप] प्रकट न होनेवाला क्रोध। भीतरी गुस्सा [को०]।

अतकोश—सज्ञा पुं० [सं० अन्त कोश] कोशागार या भाडार का भीतरी हिस्सा (को०)।

अत क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त क्रिया] १ भीतरी व्यापार। अप्रगट कर्म। २ अत करण को शुद्ध करनेवाला आतरिक कर्म।

अंत पट—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पट] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियो (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मुहूर्त के पूर्व सयुक्त करने के पहले डाला जाता है। वह परदा जो विवाह के अवसर पर वर और वधू के बीच उनको मिलाने के पहले डाला जाता है। अतरपट। २ अतर्वस्त्र। अँतरौटा (को०)।

अत पटल—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पटल] १ आँखो के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा। २ भीतरी परदा [को०]।

अत.पटी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पटी] १ किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य। २ नाटक का परदा।

अत पद—अव्य० [सं० अन्त पदम्] विकारी शब्द के मध्य मे [को०]।

अत पदवी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पदवी] सुषुम्णा नाडी के मध्य की राह [को०]।

अत पदे—अव्य० दे० 'अत पदम्' [को०]।

अत परिधान—संज्ञा पुं० [सं० अन्त परिधान] अतर्वस्त्र। अँतरौटा [को०]।

अत परिधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त परिधि] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकडियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान।

अंत पवित्रा[1]—वि० स्त्री० [सं० अन्त पवित्रा] शुद्ध अत करणवाली। शुद्ध चित्त की।

अत पवित्रा[2]—सज्ञा स्त्री० सोमरस जब वह छानने के लिये छनने मे रखा हो।

अत पशु—सं० पुं० [सं० अन्त पशु] पशुओ की गोशाला या बथान पर रहने का सायकाल से प्रात काल तक का समय [को०]।

अत पात—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पात] १ यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तभ या खभा (को०)। २ व्याकरण मे किसी अक्षर का मध्य मे आना [को०]।

अत पातित—वि० [सं० अन्त पतित] दे० 'अन्तःपाती' [को०]।

अत पाती—वि० [सं० अन्त पातिन्] १ मध्यवर्ती। बीच में। २. समिलित [को०]।

अत पाल—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पाल] १ अन्त पुर या रनिवास का रक्षक। २ कचुकी [को०]।

अत पुर—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुर] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमे रानियाँ या स्त्रियाँ रहती हों। जनानखाना। जनाना या भीतरी महल। रनिवास। हरम। उ०—'दुर्ग का तो नहीं, अत पुर का भार तुम्हारे ऊपर है'।—स्कद० पृ० ५६।

अत पुरचर--सज्ञा पुं० [सं० अंत पुरचर] अंत पुर मे आने जाने के अधिकारी, कचुकी आदि [को०] ।

अत पुरचारिणी--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्पुरचारिणी] [सज्ञा पुं० अन्त पुरचारिन्] अत पुर या हरम मे निवास करनेवाली स्त्री । उ०—'एक समय कुलवधू की सज्ञा थी अत पुरचारिणी' ।—टैगोर सा०, पृ० ३६ ।

अत पुरजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरजन] अत पुर मे रहनेवाली स्त्रियाँ आदि [को०] ।

अत पुरप्रचार—सज्ञा पुं० [सं० अन्त·पुरप्रचार] औरतों की गप्प-बाजी [को०] ।

अत पुररक्षक—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुररक्षक] दे० 'अत पाल' [को०] ।

अत पुरवर्ती--सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरवर्तिन्] अत पाल [को०] ।

अत पुरसहाय—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरसहाय] अत पुर मे कार्य करनेवाले खोजा नपुसक, माणवक, विदूषक आदि [को०] ।

अत पुराध्यक्ष--सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुराध्यक्ष] अत·पुर का रक्षक । रनिवास का अध्यक्ष [को०] ।

अत पुरिक—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरिक] अत पुर का रक्षक । कचुकी [को०] ।

अत पुरिका—संज्ञा पुं० [सं० अन्त पुरिका] अत पुर में रहनेवाली नारी [को०] ।

अत पुष्प—सज्ञा पुं० [सं० अन्त पुष्प] वह रज जो १२ वर्ष की रजस्राव की निश्चित अवधि के बीत जाने पर भी प्रगट नही होता [को०] ।

अत पूय--वि० [सं० अन्त पूय] पीव या मवाद से भरा हुआ । जिसके भीतर मवाद हो [को०] ।

अत प्रकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त·प्रकृति] १ आतरिक प्रकृति । भीतरी या मन का स्वभाव । अतवृत्ति । मूल स्वभाव । उ०—उसी प्रकार अत प्रकृति मे दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्निग्ध, शीतल आभा मे सौदर्य लहराता हुआ पाते हैं ।—रस०, पृ० ३२ । २. आत्मा । ३ राज्याग । राजा के समीपवर्ती अमात्य, सुहृद् आदि । ४ राजधानी की प्रजा [को०] ।

अत प्रज्ञ--सज्ञा पुं० [सं० अन्त·प्रज्ञ] जिसकी आतरिक अथवा आत्म-विषयिणी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो । आत्मज्ञ नी । तत्वदर्शी ।

अत प्रतिष्ठित—वि० [सं० अन्त प्रतिष्ठित] हृदय मे बसा हुआ [को०] ।

अत प्रवाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्त प्रवाह] वह धारा या प्रवाह जो भीतर ही भीतर बहता हो [को०] ।

अत प्रविष्ट—वि० [सं० अन्त·प्रविष्ट] १. भीतर घुसा हुआ । २. हृदगत । मनोगत [को०] ।

अत प्रातीय—वि० [सं० अन्त + प्रातीय] किसी भी देश के दो या उससे अधिक विभागो या प्रदेशो मे सबध रखनेवाला अथवा उनसे अवस्थित ।

अत.प्राचीर—सज्ञा पुं० [सं० अन्त प्राचीर] प्राचीर के भीतर की दीवाल । भीतरी दीवार [को०] ।

अत प्रादेशिक—वि० [सं० अन्त प्रादेशिक] दे० 'अत प्रातीय' ।

अत.प्रेरणा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रेरणा] भीतरी या स्वाभाविक प्रेरणा ।

अत राष्ट्रीय—वि० [सं० अन्त + राष्ट्रीय] जिसका दो या अधिक राष्ट्रो से सबध हो । भिन्न भिन्न राष्ट्रो से सबधित ।

अत शर[1]--सज्ञा पु० [सं० अन्त शर] १ वनभूमि का भीतरी भाग जहाँ शर (बेत) उगे हो । २. एक रोग [को०] ।

अत शर[2]—वि० दे० अत·शल्य' [को०] ।

अत शरीर—सज्ञा पुं० [सं० अन्त शरीर] वेदात और योग के अनुसार स्थूल शरीर के भीतर का सूक्ष्म शरीर । लिगशरीर ।

अत शल्य[1]—वि० [सं० अन्त शल्य] भीतर चुभे काँटे की तरह सालनेवाला । गाँसी की तरह मन मे चुभनेवाला । मर्मभेदी ।

अत शल्य[2]--सज्ञा पुं० शत्रु के वश मे पडी हुई सेना ।

अत शुद्ध—वि० पुं० [सं० अन्त शुद्ध] [स्त्री० अन्त·शुद्धा] जिसका अत करण, मन या चित्त शुद्ध हो ।

अत शुद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त शुद्धि] अत.करण की पवित्रता । चित्त की स्वच्छदता । दिल की सफाई । चित्तशुद्धि ।

अत सज्ञ—वि० पुं० [सं० अन्त·सज्ञ] जो जीव अपने सुख दुख का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्पष्ट प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष, तृण आदि ।

अत सत्व—वि० [सं० अन्त सत्व] जिसके भीतर शक्ति या गुरुता हो । अत सार [को०] ।

अंत सत्वा[1]—वि० स्त्री० [सं० अन्त·सत्वा] गर्भवती । गर्भिणी ।

अत सत्वा[2]—संज्ञा स्त्री० भिलावाँ । भल्लातक ।

अत सलिला—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःसलिला] दे० 'अतस्सलिला' । उ०—क्या हो सूने मरु अचल मे अत सलिला की धारा सी । कामायनी, पृ० ६७ ।

अत साक्षी—सज्ञा स्त्री० [स० अन्तः + साक्षिन्] भीतरी प्रमाण । आतरिक गवाही । उ०—सूत्रो की अत·साक्षी इसी पक्ष मे है ।—पाणिनि०, पृ० ४ ।

अत सार[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्त सार] भीतरी तत्व । गुरुता । भीतरी सार । उ०—'ऐसे मामलो का अत·सार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं' । —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३६२ ।

अत सार[2]—वि० जिसके भीतर कुछ तत्व हो । जो भीतर से पोला न हो । जो सारयुक्त हो । जिसके भीतर कुछ प्रयोजनीय या महत्व की वस्तु हो ।

अत सारवान--वि० पुं० [सं० अन्त·सारवत्] १ जिसके भीतर कुछ तत्व या सार हो । जो पोला न हो । जिसके भीतर प्रयोजनीय वस्तु हो । २ तत्वपूर्ण । सारगर्भित । प्रयोजनीय । काम का ।

अत सुख[1]—सज्ञा पुं० [स० अन्त सुख] बाह्य सुख से रहित आत्मानु-सधान रूपी सुख । आतरिक सुख [को०] ।

अत सुख[2]—वि० जिसे आतरिक सुख प्राप्त हो [को०] ।

अत सौंदर्य—सज्ञा पुं० [सं० अन्त + सौन्दर्य] भीतरी सौंदर्य । हृदय की अच्छाई । उ०—'जहाँ कोई सौंदर्य नही वहाँ अत सौंदर्य देखा जाता है' । —जय० प्र०, पृ० ३६ ।

अत स्थ—सज्ञा पुं०, वि० [स० अन्तःस्थ] दे० 'अतस्थ' [को०] ।

अत.स्थित—वि० [सं० अन्त स्थित] मध्य मे स्थित या बैठा हुआ । भीतर बैठा हुआ [को०] ।

अत.स्वर—सज्ञा पुं० [सं० अन्तः + स्वर] आंतरिक ध्वनि । भीतरी आवाज । हृदय का स्वर । दिल की आवाज । उ०—'गूँजते से तप्त अंत.स्वर तुम्हारे तरल कूजन मे' ।—हरी घास०, पृ० ३२ ।

अत स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अन्त स्वेद] वह जीव जिसके भीतर स्वेद या मदजल हो। मदस्रावी हाथी।

अत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्त] [वि० अतिम, अत्य] १ वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अत हो। समाप्ति। आखीर। अवसान। इति। उ०—वन कर अत कतहुँ नहिं पावहिं।—तुलसी (शब्द०)। २ वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०— दिन के अत फिरी दोउ अनी'।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द मे 'मे' और 'को' विभक्ति लगने से आखिरकार', 'निदान' अर्थ होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ शेष भाग। अतिम भाग। पिछला अश। उ०—'रजनी सु अत मुहुरत्त बभ'।—पृ० रा०, ६६।१६६२।

मुहा०—अत बनना = अतिम भाग का अच्छा होना। अत बिगडना = अतिम वा पिछले भाग का बुरा होना]

४ पार। छोर। सीमा। हद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०—'अस अंबराउ सघन बन, बरनि न पारौं अत'।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०— करना = हद करना। उ०—तुमने तो हँसी का अत कर दिया (शब्द०)।—पाना।—होना।

५ अतकाल। मरण। मृत्य। उ०—(क) 'जान्यो सु अत प्रथिराज अप्प। पिन्नौ जुगति दुग्गा सु जप्प'।—पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अत राम कहि आवत नाही'।—तुलसी (शब्द०)। ६ नाश। विनाश। उ०—'कहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारौं डारत करेई जातुधानन को अत हौं।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

७ परिणाम। फल। नतीजा। उ०—(क) अत भले का भला। —कहावत (शब्द०)। (ख) 'बूरे काम का अत बरा होता है' (शब्द०)। ८ प्रलय (डिं०) ९ सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पडोस (को०)। ११ निघटारा। निघटाव (को०)। १२ किसी समस्या का समाधान या निर्णय (को०)। १३ निश्चय (को०)। १४ समास का अतिम शब्द (को०)। १५ शब्द का अतिम अक्षर (को०)। १६ प्रकृति। अवस्था (को०)। १७ स्वभाव (को०)। १८ पूर्ण योग या राशि (को०)। १९. वह सख्या जिसे लिखने में १२ अक लिखने पडें। एक खरब या सौ अरब की सख्या।—मा० प्रा० लि०, पृ० १२। २० भीतरी भाग (को०)।

अत[2]—वि० १ समीप। निकट। २ बाहर। दूर। ३ अतिम (को०)। ४ सुदर। प्यारा (को०)। ५ सबसे छोटा (को०)। ६ निम्न। भ्रष्ट (को०)।

अतः[3]—क्रि० वि० अत मे। आखिरकार। निदान। उ०—(क) उघरे अत न होहि निबाहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीच। नल बल जल ऊँचो चढै अत नीच को नीच।—बिहारी (शब्द०)।

अतः[4]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] १. अत करण। हृदय। जी। मन। जैसे 'तुम अपने अत की बात कहो', 'मैं तुम्हे अत से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०—'काहू को न देती इन बातन को अत लै इकत कत मानि कै अनत सुख ठानती'।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५६।

मुहा०—अत पाना = भेद पाना। पता पाना। अत लेना = भेद लेना। मन का भाव जानना। मन छूना। उ०—हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयो तव अना।—विश्र म० (शब्द०)।

अतः[5]—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्र, प्र० अत] आँत, अँतडी। उ०—(क) जिमि जिमि अत रुलत लप्प दल तिन गनि तिम तिम।—पृ० रा०, ६१।२२७३। (ख) भर शोन धारा परे पेट ते अत।—सुजान (शब्द०)।

अतः[6]—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत्त, अन्नत, हिं० अनत-अत] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और कही। दूर। अलग। जुदा। उ०—(क) कुज कुज मे क्रीडा करि करि गोपिन को सुख दैहौं। गोप सखन सँग खेलत डोलौं ब्रज तजि अत न जैहौं।—सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि थिर न रहाही। रस लै खेलि अत कहुँ जाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कज तजि अत बसि कहा भौर को भाय।—रहीम (शब्द०)।

अतक[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तक] १ मृत्यु जो प्राणियो के जीवन का अत करती है मौत। २ यमराज। काल। उ०— गिरा रहित बृक ग्रसिन अजा लौं अतक आनि गह्यौ।—सूर०, १।२०१।३ सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमे रोगी को खाँसी, दमा और हिचकी होती है और वह किसी वस्तु को नही पहचानता। उ०—व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अतक दसा भयौ भय आकुल।—सूर०, १०।३११५। ४ ईश्वर जो प्रलय मे सबका सहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६ सीमा। हद्द (को०)।

अतक[2]—वि० अत करनेवाला। नाश करनेवाला।

अतकर—वि० [सं० अन्तकर] अत या नाश करनेवाला। सहार करनेवाला।

अतकरण—वि० [सं० अन्तकरण] दे० 'अतकर' [को०]।

अतकर्ता—वि० [सं० अन्तकर्तृ] दे० 'अतकर'।

अतकर्म—सज्ञा पुं० [सं० अन्तकर्मन्] मरण। मृत्यु। [को०]।

अतकारी—वि० [सं० अन्तकारिन्] स्त्री० [अन्तकारिणी] अत या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। सहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०—भक्त भय हरन असुरअतकारी।—सूर०, १०।४१९४।

अतकाल—सज्ञा पुं० [सं० अन्तकाल] १ अतिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ० —घर घर मतर देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना। गूरू सहित सीष सभ बूडे अतकाल पछिताना।—कबीर बी०, पृ० ३०।

अतकृत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकृत] यमराज। धर्मराज। काल। उ०—भूमिजा दुख सजात रोषातकृत (रोष + अतकृत) यातना जतुकृत यातुधानी।—तुलसी (शब्द०)।

अतकृत[2]—वि० अत या विनाश करनेवाला। अतकर।

अतक्क—सज्ञा पुं० [सं० अन्तक, प्रा० अतक्क] यमराज। काल। उ०—प्रथिराज सव्व देष्यौ सु आव। अतक्क रूप सब गुन सहाव।—पृ० रा०, ६७।४६०।

अतक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तक्रिया] अत्येष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिंडदान आदि कर्म। हिंदुओं के षोडश सस्कारों मे अतिम।

अतग—वि० [सं० अन्तग] १ जानकारी मे पूरा । पारगत । पारगामी निपुण । अतगामी । २ मृत । मरा हुआ (को०) ।

अतगत—वि० [सं० अन्तगत] १ सीमा पर गया हुआ । २ समाप्ति को पहुँचा हुआ (को०) ।

अतगति[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तगति] अतिम दशा । मृत्यु । मरण । मौत ।

अतगति[2]—वि० अत को प्राप्त होनेवाला । नाश होनेवाला (को०) ।

अतगमन—सज्ञा पुं० [स० अन्तगमन] १ अत तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य । २ जीवन के अत तक जाने की स्थिति । मौत । मृत्यु [को०] ।

अतगामी—वि० [सं० अन्तगामिन्] [स्त्री० अन्तगामिनी] १ दे० 'अतग' । २ मरणशील (को०) ।

अतगुरु—सज्ञा पुं० [सं० अन्तगुरु] वह शब्द जिसके अत मे दो मात्राएँ या गुरु हो । उ०—गज अभरन प्रहरन असनि चकल अतगुरु नाम ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६६ ।

अतघाई—वि० [स० अन्त+घाती, प्रा० अत+घाइ] अत मे धोखा देनेवाला । विश्वासघाती । दगाबाज । उ०—सांझ ही सर्म तें दूरि बैठी परदानि देखै सक मोहि एकै या कलानिधि कसाई की । कत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैनि रचक बिहानी या बसत अतघाई की ।—कोई कवि (शब्द०) ।

अतघाती—वि० [सं० अत+घातिन्] धोखा देनेवाला । वचक । दगाबाज ।

अतचर—वि० [सं० अन्तचर] १ सीमा पर जाने या चलनेवाला । २ कोई भी कार्य पूरा करनेवाला [को०] ।

अतच्छद—सज्ञा पुं० [स० अन्तच्छद] भीतरी आच्छादन । अदरूनी परदा ।

अतज—वि० [स० अन्तज, अन्त्यज] जो अत मे उत्पन्न हो । सबसे बाद मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतजा—वि० स्त्री० [स० अन्तजा, अन्त्यजा] अत मे पैदा होनेवाली । सबसे पीछे की । उ०—अत मत्ति सो मत्ति अतजा मत्ति अमत्तिय ।—पृ० रा०, ३१।१०१ ।

अतजाति[1]—वि० [स० अन्तजाति, अन्त्यजाति] अतिम जाति का । निम्न जाति का [को०] ।

अतजाति[2]—सज्ञा पु० जातिविभाजन मे अतिम जाति [को०] ।

अतत—अव्य० [स० अन्तत] १ अत मे । आखिरकार । निदान । सबसे पीछे । उ०—मिला परमार्थ मुझको अतत इस वृद्ध वय में ।—पार्वती, पृ० ३८ । २ कम से कम । अशतः (को०) । ३. भीतर (को०) । ४. निचले या निम्न मार्ग मे । मुख्य एव मध्य के बाद मे (को०) ।

अतत—अव्य० [स० अन्तत'] अत मे । आखिरकार । उ०—जाति स्वभाउ मिटै नहिं सजनी अतत उबरी कुबरी ।—सूर० (राधा०), पृ० ५३२ ।

अततर—वि० [स० अन्ततर] अतिम के बाद का । अत के बाद-वाला [को०] ।

अततम—वि० [स० अन्ततम] सबसे बाद का । सबसे बादवाला [को०] ।

अतता—क्रि० वि० दे० 'अतत' । उ० —दूध भात घृत सकरपारे । हरते भूक नहि अतता रे ।—दक्खिनी०, पृ० १०५ ।

अततोगत्वा—क्रि० वि० [स० अन्ततस्+गत्वा] अत मे जाकर । आखिरकार । निदान । उ०—'शोकार्त हृदयवाले का अततो-गत्वा ईश्वर मे अनन्य प्रौढ प्रेमप्रदर्शन उत्तम है' ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४२ ।

अंतदीपक—सज्ञा पुं० [स० अन्तदीपक] काव्यो मे प्रयुक्त दीपकालकार का एक भेद [को०] ।

अतपाल—सज्ञा पु० [स० अन्तपाल] १ द्वारपाल । डयोढीदार । पौरिया । दरवान । २ सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी । सरहद का पहरेदार । उ०—'सरहदों का प्रबध अतपाल करते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६ ।

अतपुर—सज्ञा पुं० दे० 'अतपुर' । उ०—अतपुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न बेगि, चिर निसि अक मैं निसापति डरे रहै ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८ ।

अतवर—सज्ञा पु० [स० अन्त्र+अवलि] आँतो का समूह । उ०—मस हड्ड रद गूद अतवर बाच गज्ज नर ।—पृ० रा०, ७।१५२।

अतभव—वि० [स० अन्तभव] अत मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतभाक्—वि० [स० अन्तभाज्] किसी शब्द के अत का या अत मे होनेवाला [को०] ।

अतभूत—वि० [स० अन्तर्भूत] दे० 'अतर्भूत' ।

अतभेदी—सज्ञा पु० [स० अन्तभेदी] एक प्रकार का व्यूह । मध्य-भेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह ।

अतम—वि० [स० अन्तम] अति समीप का । घनिष्ठ (मित्र) [को०] ।

अंतमन—सज्ञा पु० [स० अन्तर्मन] आभ्यतर मन । भीतरी मन । उ०—सुनि आनदधाँ कवि जिय धरिय अतमन ध्यान ।—पृ० रा०, ६७।२७४ ।

अतमान—सज्ञा पु० दे० 'अतमन' । उ०—लोयन राखौ घूँघट हेरी । अतमान कौं राखे फेरी —चित्रा०, पृ० १५४ ।

अतरग[1]—वि० [स० अन्तरङ्ग] १ अत्यत समीपी । आत्मीय । निकटस्थ । दिली । जिगरी । उ०—'वह अपने अतरग लोगो का परिचय भी नहीं बताती' ।—स्कद०, पृ० ११६ । २ मानसिक । ('बहिरग' इसका उलटा है) ।

अतरग[2]—सज्ञा पु० १ मित्र । दिली दोस्त । आत्मीय । स्वजन । उ०—'अनवरी आज इतनी अतरग बन गई है' ।—तितली' पृ० १२४ । २ हृदय । उ०—वरदान आज उस गत युग का कपित करता है अतरग ।—कामायनी, पृ० १६२ । ३ राजाओ के अत पुर मे जानेवाले अधिकारी ।—वर्ण०, पृ० ६ । ४. भीतरी अग । प्रच्छन्न अग । उ०—फुनि पुच्छति इछिनि सु वहि सौंत रूप मनि साल । नौं पुच्छा कैसी कहै अतरग सु विसाल ।—पृ० रा०, ६२।१०४ ।

यौ०—अतरग मत्री=निजी सचिव । अतरग सचिव=प्राइवेट सेक्रेटरी । अतरग मित्र=दिली दोस्त । अतरग सभा=सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रबधकारिणी सभा जिसमे मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी सख्या नियत रहती ।

अतरगिनी—वि० स्त्री० [स० अन्तरङ्गिणी] अत्यत समीप की । आत्मीया । उ०—'यह सुनत ही श्री गुसाई जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेवकिनी के घर सखडी महाप्रसाद क्यो नाही लियो ?'—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १० ।

अतरगी[1]—वि० [स० अन्तरङ्गिन्] दिली । भीतरी । जिगरी । उ०—'हे अतरगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई, वह दूसरे को समर्पित हुई थी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अतरगी[2]—सज्ञा पु० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०—वही अतरगी सुरगी निनार । वहे राज राजीव लोचन सार ।—पृ० रा०, २।७७६ ।

अतरस—सज्ञा पु० [स० अन्तरस] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अतर[1]—सज्ञा पु० [स० अन्तर] १ फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगाव । फेर । उ०—(क) सत भगवत अतर निरतर नहीं किमपि मति-मलिन कह दास तुलसी ।-तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद मे कुछ अतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=फर्क या भेद करना । उ०—मोहि चद चरदाय सु अतर मति करयो ।-पृ० रा० ५८।१२६ ।—देना । —पडना ।—रखना=भेदभाव रखना । उ०—ब्रजवासी लोगन सो मैं ता अतर कछू न राख्यो ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२ बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०—'यह विचारो कि मथुरा और वृदावन का अतर ही क्या है' ।—प्रेमसागर (शब्द०) । ३ दो घटनाओं के बीच का समय । मध्य वर्ती काल । उ०—(क) इहि अतर मधुकर इक आयो ।—सूर०, १० ३४८७ । (ख) 'इस अतर मे रतन दूध से भर जाते हैं' । —वनिताविनोद (शब्द०) । ४ दो वस्तुओ के बीच मे पडी हुई चीज । ओट । आड । परदा । उ०—काठन बचन सुनि स्रवन जानकी मकी न हिये सँभारि । तृन अतर दै दृष्टि तरौंधी दई नयन जल ढारि ।—सूर०, ९।७९ ।

क्रि० प्र०—करना=आड करना । उ०—अपने कुल को बलइ क्यो देखहिं रवि भगवत । यहै जानि अतर कियो मानो मही अनत ।—केशव (शब्द०) ।—डालना ।—देना=ओट करना । उ०—पट अतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ । —सूर०, १०।२६१ ।— पडना ।

५ छिद्र । छेद । रध्र । दरार । ६. भीतर का भाग । उ०—'दास' अँगिराति जमुहाति तकि झुकि जाति, दीने पट, अतर अनत आप झलकै ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४३ । ७ प्रवेश । पहुँच (को०) । ८ शेष । बाकी । गणित मे शेषफल (को०) । ९ विशेषता । उ०—अतरो एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।—पृ० रा०, १२।१६८ । १०. निबलता (को०) । ११ दोष । त्रुटि (को०) । १२ अभाव (को०) । १३ प्रयोजन (को०) । १४ लिहाज (को०) । १५. छिपाव (को०) । १६ निश्चय (को०) । १७. प्रतिनिधि (को०) । १८ वस्त्र (को०) । १९ हृदय । अत करण । जी । मन । चित्त । उ०—जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा अतर की गति जानत ।—सूर०, १।१३ । (ख) अतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीन्ह सुजाना ।—तुलसी (शब्द०) । २० आत्मा (को०) । २१ परमात्मा (को०) । २२ स्थान (को०) । २३ आशय (को०) ।

अतर[2]—वि० १ अतर्धान । गायब । लुप्त । उ०—कृपा करी हरि कुँवरि जिमाई । अतर आप भए सुरराई ।—महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—होना=अदृश्य होना । उ०—मोही ते परी री चूक अतर भए हैं जातें तुमसो कहति बातें मैं ही कियो दूदन ।—सूर (शब्द०) ।

२ दूसरा । अन्य । और ।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्दों में मिलता है, जैसे, अथातर, रथ नातर, बालातर, देशांतर, पठा-तर, मतातर, यज्ञातर इत्यादि ।

३ समीप । आसन्न । निकट (को०) । ४ आत्मीय । प्यारा (को०) । ५ समान (स्वर या शब्द), (को०) । ६ भीतरी । भीतर का (को०) ।

अतर[3]—क्रि० वि० १ दूर । अलग । जुदा । पृथक् । विलग । उ०—कहाँ गए गिरिधर तजि मोकौं ह्याँ मैं कैसे आई । सूर श्याम अतर भए मोते अपनी चूक सुनाइ ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=दूर करना । पृथक् करना । उ०—सूरदास प्रभु को हियरे तें अतर करी नहीं छिनही । —सूर (शब्द०) । —होना ।

२. भीतर । अतर । उ०—(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । बसत सुचित अतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाइ । प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अतर धुधुआइ ।—दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखौंगी अतर करौंगी समाधि ।'—हरिश्चद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—मीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०—फिरि चमक चोप लगाइ चचल तनहिं तब अतर करै (शब्द०) ।

अतर[4]—सज्ञा पु० दे० 'अतर' । उ०—जवादि केसर सुर । पल सु सत्त अतर ।—पृ० रा०, ६६।६० ।

अतर[5]—सज्ञा पु० [स० अन्त्र, प्रा० अत, अप० अन्तडी] आँत । अँतडी । उ०—(क) करत हक्क हुक्कय । क्रमत धक्क धक्कय । चढत देत दत्तर । अरू अफत अतरं ।—पृ० रा०, ९।१७५ । (ख) बूहत सार बार पारता रुरत अतर । ग्रहत दत दत एक कठ कठ मतरं ।—पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अतर अयण—सज्ञा पु० [स० अन्तर+अयण] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अतर अयन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर+अयन] १ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अतर्गृही । २ एक देश का नाम । ३ काशी का मध्य भाग । उ०—अतर अयन अयन भल, धन फल, बच्छ वेद विस्वासी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ ।

अतरकालीन—वि० [सं० अन्तर+कालीन] दो कालविभागो के बीच का । किन्हो दो स्थितियो का मध्यवर्ती [को०] ।

अतरख—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] अतरिक्ष । शून्य । अतर । आकाश । उ०—रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद । गगन न होता तब अतरख रहिता चद ।—गोरख०, पृ० १८९ ।

अतरगत[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गत] मन । हृदय । अत करण । उ०—(क) ज्यों गूगे मीठे फल रस को अतरगत ही भावै ।—सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सबै अतरगत की बात ।—घनानद, पृ० ५६ ।

अतरगत[2]—वि० अतर्गत । भीतर आया हुआ । उ०—जैसे जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै ।—सूर०, १।११७ ।

अतरगति(यु)—संज्ञ स्त्री [सं० अन्तर्गति] चित्तवृत्ति। भावना। उ०—अतरगति राँचै नहीं बाहर करै दिखाव। ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास —संत रै०, पृ० ६५।

अतरग्नि—संज्ञ स्त्री [सं० अन्तराग्नि] पेट की अग्नि। पेट की गरमी जिससे खाई हुई वस्तु पचती है। जठराग्नि।

अतरचक्र—संज्ञ पुं० [सं० अन्तरचक्र] १ दिशाओं और विदिशाओं के बीच के अंतर को चार चार भागों में बाँटने से बने हुए ३२ भाग। २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न विभागों में चिड़ियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या। जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन कहने की विद्या। ३ तंत्र के अनुसार शरीर के भीतर माने हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र। षट्चक्र। ४ आत्मीय वर्ग। स्वजन वर्ग। भाई बंधुओं की मंडली।

अंतरछाल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+हिं० छाल] छाल के नीचे की कोमल छाल या झिल्ली। बाकले के भीतर का कोमल भाग।

अतरजातीय—वि० दे० 'अंतर्जातीय'।

अतरजानी—वि० [सं० अन्तर्+ज्ञानी, प्रा० अंतर+जाणि] भीतर की बात जाननेवाला। अंतर्यामी। उ०—नैन स्रवन मुख नासिका तुम अंतरजानी हो।—केशव ग्रं०, पृ० ७।

अतरजामी[1](यु)—वि० [सं० अंतर्यामी] १ भीतर की बात जाननेवाला। उ०—तुम सबहिं के अंतरजामी।—मानस ७।८४। २ अंतःकरण स्थित प्रेरक। उ०—अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें।—तुलसी ग्रं०, भा० २।

अतरजामी[2](यु)—संज्ञ पुं० दे० 'अंतर्यामी'। उ०—दया करौ गुरु पूरन स्वामी। मैं नहिं जाना अंतरजामी।—कबीर सा०, पृ० १०१४।

अतरजाल—संज्ञ पुं० [हिं०] बसरत करने की एक लकड़ी।

अंतरज्ञ—वि० [सं० अन्तरज्ञ] १ भीतर की बात जाननेवाला। अंतःकरण का आशय जाननेवाला। हृदय की बात जाननेवाला। अंतर्यामी। २. भेद या फर्क जाननेवाला।

अतरण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरण] व्यवधान डालना। अंतरित करना। निगूहन [को०]।

अंतरत—क्रि० वि० [सं० अन्तरत] बीच में। मध्य में। बीचो बीच।

अतरत—वि० [सं० अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला। नाश में आनंद माननेवाला [को०]।

अतरतम—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या हिस्सा। अंतस्तल। उ०—छिपी रहेगी अंतरतम में सबके तू निगूढ़ धन सी।—कामायनी, पृ० ६।

अंतरतर[1]—वि० [सं० अन्तरतर] अति समीपी। अत्यंत घनिष्ट [को०]।

अतरतर[1]—संज्ञा पुं० १ अंतस्तल। उ०—अपनी अलख अलक आभा से मम अंतरतर भर दो।—अपलक। २ ईश्वर (को०)। पृ० १६।

अतरदंद(यु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] दे० अंतर्द्वंद। उ०—अंतरदंद चंद मनि मंजिय —पृ० रा०, ६७।१८५।

अतरद—वि० [सं० अन्तरद] हृदय को कष्ट पहुँचानेवाला [को०]।

अतरदाह—संज्ञ पुं० [सं० अन्तर्दाह] भीतर होनेवाला दुःख। मानसिक ताप। उ०—अंत दहे जु मिटयो न्यारो मोरो चित्त हुँ भागवत किए।—सूर०, १।८६।

अतरदिशा—संज्ञ स्त्री० [सं० अंतरदिशा] दो दिशाओं के बीच की दिशा। कोण। विदिशा।

अंतरदीठि—संज्ञ स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि, प्रा० अंतरदिट्ठि] अंतर्दृष्टि। विवेक।

अतरद्वार—संज्ञ पुं० [सं० अन्तर्द्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा। अंतःपुर का दरवाजा। उ०—अंतरद्वार आइ भए ठाढ़े सुनत तिया की बातैं —सूर०, १०।२६६६।

अतरदृष्टि—संज्ञ स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] ज्ञानचक्षु। हिय की आँख। उ०—यह अंतरदृष्टि से भली भाँति निगाह कर लेता है कि मैं अपने कर्मों का कर्ता नहीं।—कबीर सा०, पृ० ६६७।

अतरदेशीय—वि० [सं० अन्तर+देशीय] १ दो या अधिक देशों से संबद्ध। २ राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों से संबंधित, जैसे—'अंतरदेशीय पत्र'।

अतरधन—संज्ञ पुं० [सं० अन्तर्धन] छिपाकर बचाया हुआ धन। उ०—बिष्टु अंतरधन हुतो जु साथ। सो दीनो माता के हाथ।—अर्ध०, पृ० ७।

अतरधान(यु)—वि० दे० अंतर्धान' उ०—पुनि पुनि अंस गहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना।—मानस, १।१५२।

अंतरध्यान[1](यु)—वि० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक मन या चिंतन। उ०—अंतरध्यान नाम निज हीरा जिन भक्तिया तिन पाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७८।

अतरध्यान[2](यु)—वि० [सं० 'अन्तर्द्धान' का विकृत रूप] अंतर्हित। लुप्त। उ०—(क) पटमास निमानिसि नृत्य किय। तब गोबिंद अंतरध्यान हुय।—पृ० रा०, २।३४५। (ख) भए अंतरध्यान बीते पाछिली निसि जाम।—सा० ल०, पृ० ११४।

अंतरपट—संज्ञ पुं० [सं० अन्तःपट] १ परदा। आड़। ओट। उ०—उघरेहुँ अंतपट राखत अगनै गुनहि गहौं।—घनानंद, पृ० ५४७। २ विवाहमंडप में यज्ञ की आहुति के समय अग्नि और वर कन्या के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिससे वे दोनों उस आहुति को न देखें। इस परदे को अंतरपट कहते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—देना।

मुहा०—अंतरपट डालना=छिपाव बैठना। सामने न रहना। ओट में रहना।

३ परदा। छिपाव। दुराव। भेद। ४ धातु या औषध को फूँकने के पहले उसकी डंडी या नेपट पर गीली मिट्टी के लेप के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपड़मिट्टी। कपरौटी। कपरोटी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. गीली मिट्टी का लेप देकर लपेटा हुआ कपड़ा।

अंतरपतित आय—संज्ञ पुं० [सं० अन्तरपतित आय] सौदा पटाने की दस्तूरी। दलाली।

अंतरपाट—संज्ञ पुं० [सं० अन्तर+पट] परदा। ओट। आड़। उ०—नूपुर रसनै मानु बँधावौगे मैं। दृष्टि अंतरपाट दिवावैगे मैं।—कबीर सा०, पृ० ४३२।

अतरपुरुष--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरपुरुष] १ आत्मा । २ परमात्मा । अतर्यामी । परमेश्वर ।

अतरपूरुप--सज्ञा सं० [सं० अन्तरपूरुष] दे० 'अतरपुरुष' ।

अतरप्रकाश--सज्ञा पु [पुं० अन्त प्रकाश] भीतरी प्रकाश । आत्मज्ञान । उ०—'यह भी बिना अतरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ ।--कबीर सा०, पृ० ६७१।

अतरप्रतीहार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रतीहार] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार । अभ्यतर परिजन [हर्ष०] ।

अतरप्रभव--सज्ञा पु० [सं० अन्तरप्रभव] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता मे उत्पन्न हो । वर्णसकर ।

अतरप्रश्न--सज्ञा पुं० [स० अन्तरप्रश्न] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रसग मे निहित हो [को०] ।

अतरप्रातीय--वि० [सं० अन्तर + प्रान्तीय] दे० 'अन्तरप्रादेशिक' ।

अतरप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तरप्रादेशिक] १. जिसका सबध अपने प्रदेश या प्रात से हो । अपने प्रात मे होनेवाला । जैसे, अतरप्रादेशिक अपराध । २ देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशो या राज्यो मे सबध रखनेवाला ।

अतरबरन--सज्ञा पु० [सं० अन्तर + वर्ण] बीच के अक्षर । उ०—या कवित्त अतरबरन लै तुकन द्वै छडि ।--भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अतरबल--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर + बल] भीतरी शक्ति । आतरिक बल । उ०—रथ विभजि हति केतु पताका । गरजा अति अतरबल थाका ।--मानस, ६ । ६१ ।

अतरबाधा--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर + बाधा] मानसिक कष्ट । उ०—खेलौ जाइ स्याम सग राधा । यह सुनि कुँवरि हरष मन कीनौ मिटि गई अतरबाधा ।—सूर०, १० । ७०५ ।

अतरबानी--सज्ञ स्त्री० [सं० अन्तर्वाणी] अतर की वाणी । आत्मा की आवाज । उ०—सुनु हिरदे यह अतरबानी ।--रत्न०, पृ० ७ ।

अतरबास ⓤ--सज्ञ पुं० [स० अन्त + वास] अतपुर । रनिवास । उ०—दुरग चीतोट पहुँचो राइ । अतरबासइ गम कियो ।--बीसल० रा०, पृ० ११२ ।

अतरबासी--वि० [स० अतर् + वासी] भीतर रहनेवाला । उ०—उरगाना उर अतरबासी । जाका नाम कहे अविनासी ।--रत्न०, पृ० १६५ ।

अतरबेद--सज्ञा पु० [सं० अन्तर्वेद] दे० 'अतर्वेद' ।

अतरभाव ⓤ--सज्ञा पुं० [स० आन्तर् + भाव] भावातर । भिन्न भाव । उ०—कछु पुनि अतरभाव तें कही नायिका जाहि ।-भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अतरभेद ⓤ--सज्ञा पु० [स० अतर् + भेद] आतरिक तत्व या रहस्य । भीतरी भेद । उ०—ए रस अतरभेद प्रीय जानै त्रिय जो रस ।--पृ० रा०, ६२।१०३ ।

अतरमतर--सज्ञा पुं० [सं० यत्र मत्र] जादू टोना । झाड फूँक । जतर मतर ।

अतरमत--सज्ञा पु० [स० अन्तर + मत] आतरिक विचार । निगूढ या गुह्य मत । उ०—बचन पछिना मिट्टया अतरमत खोला । --पृ० रा०, पृ० २६ ।

अतरमुख ⓤ--वि० [सं० अन्तर्मुख] भीतर की ओर उन्मुख । आतरिक ध्यानयुक्त । उ०-बरनै दीनदयाल मिलै नहि बहर टेरे। अतरमुख ह्वै ढूढ सुगध सबै घट तेरे।-दीन० ग्र०, पृ० २३० ।

अतरय--सज्ञा पु० [स० अन्तरय] दे० 'अतराय' [को०] ।

अतरयण--सज्ञा पु० [स० अन्तरयण] अयनो [मार्गों] के सान्निध्य मे सूर्य की स्थिति का काल । उ०--सूत्र 'अयनञ्च' मे अतरयण का उल्लेख है ।--पाणिनि०, पृ० १७८ ।

अतरयन—सज्ञा पु० दे० 'अतरयण' । उ०--अयनाशो के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अतरयन' शब्द का प्रयोग किया है ।--पाणिनि०, पृ० ४१ ।

अतररति--सज्ञा स्त्री० [स० अन्तर् + रति] सभोग के सात आसन, यथास्थिति, तिर्यक्, समुख, विमुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान ।

अतरराष्ट्रीय—वि दे० 'सार्वराष्ट्रीय' । उ०-'हिंदुस्तानी उस अतरराष्ट्रीय सेना से मिलकर लड रहे हैं जिसने मैड्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है ।'--'आज', १९३९ ।

अतरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [स०अन्तर्वर्तिन्] मध्यस्थ । बीच की । उ०-तिय पिय की हितकारिनी अतरवर्तिनि होई ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३ ।

अतरवासक--सज्ञा पु० [स० अन्तर्वासक] कपडे के नीचे पहना जाने वाला कपडा । भीतरी वस्त्र । अँतरौटा । उ०--अवधपुरी ने तीन डुबकियाँ लगाईं, महीन अतरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया ।--चैं० न०, पृ० ४ ।

अतरविश्वविद्यालय--वि० [स० अन्तर् + हिं० विश्वविद्यालय] (अं० इटर युनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से सबध रखनेवाला । उ०--'इस साल अतरविश्वविद्यालय फुटबाल टूर्नामेंट काशी मे हुआ ।'--'आज', १९५१ ।

अतरशायी--सज्ञा पु० [सं० अन्तरशायी] अतरस्थ जीव। जीवात्मा ।

अतरसचारी--सज्ञा पुं० [स० अन्तरसचारी] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच मे आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों मे से किसी की सहायता वा पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं। इसे केवल सचारी भी कहते हैं । [अतर' शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अतर्गत सात्विक भाव को तनसचारी लिखा है ।] ये ३३ माने गए हैं । दे० 'सचारी' ।

अतरसाखी--सज्ञा स्त्री० [स० अन्त साक्षी] अत साक्ष्य । गुप्त गवाही । साक्षी । उ०--सीता प्रथम अनल महु राखी । प्रगट कीन्हि चह अतरसाखी ।--मानस, ६।१०७ ।

अतरस्थ—वि० [सं० अन्त स्थ] भीतर का । भीतरी । अदर का । भीतर रहनेवाला (जीवात्मा) ।

अतरस्थायी—वि० [सं० अन्त स्थायी] दे० 'अत स्थ' ।

अतरस्थित—वि० [सं० अन्तरस्थित] दे० 'अतरस्थ' ।

अतरबेध ⓤ--सज्ञा पुं० [सं०अन्तर्वेध] गगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग । अन्तर्वेद । उ० अतरबेध कूरम आइ । सब मेर जेर होइ लगे पाय ।--पृ० र०, १।२११ ।

अतरहित ⓤ--वि० [सं० अन्तर्हित] दे० 'अतर्हित' । उ०--अतरहित सुर आसिष देही ।--मानस, १।३५१ ।

अतरहीन—वि० सं० [अन्तर+हीन] जिसमे फासला न हो। व्यवधान रहित। उ०—उस अतरहीन सामीप्य मे किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।—वो दुनिया, पृ० १३।

अतरहेत—वि० दे० 'अतर्हित'। उ०—तुम तहँ एता सिरजा आपकै अतरहेत।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अतरास—सज्ञा पुं० [स० अन्तरास] स्कध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अतरा[१]—क्रि० वि० [सं० अन्तरा] १. मध्य। बीच। २ इसी बीच (को०)। ३ समीप। निकट। ४ अतिरिक्त। सिवा। ५ पृथक्। ६ बिना। ७ मार्ग मे (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९ यदातदा। जब तब (को०)। १० कुछ काल के लिये (को०)।

अतरा[२]—सज्ञा पुं० १. किसी गीत मे स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २ किसी गीत मे स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। †३ प्रात काल और सध्या के बीच का समय। दिन।

अतरा[३]—[सं० अन्तर] मध्यवर्ती। बीच का। उ०—जब लगि हरत निमेष अतरा युग समान पल जात।—सूर० (राधा०), १३४७।

अतरा[४]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] फर्क। भेद। अतर उ०—सब्द सब्द बहु अतरा सार सब्द मन लीजै।—कबीर बी०, पृ० ९२।

अतराइ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराय, प्रा० अतराइ] विघ्न। अतराय। बाधा। उ०—'तब श्री चद्रावली जी कह्यो, जो तैने श्री ठकुर जी के मिलन मे अतराइ कियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०९।

अतराकाश—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराकाश] १ मध्य भाग या स्थान। २ हृदय मे स्थित ब्रह्म [को०]।

अतराकूत—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराकूत] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अतरागार—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरागार] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतरात्मा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरात्मा] १ जीवात्मा। जीव। २ आत्मा। प्राण। उ०—'वह मेरी स्त्री जिसके अभावो का कोप कभी खाली नही, उससे मेरी अतरात्मा काँप उठती है'।—स्कद०, पृ० ३२। ३ अतःकरण। मन।

अतरादिक्—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरादिक्] दो दिशाओ के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अतरापण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरापण] नगर के मध्य भाग मे स्थित बाजार। उ०—'श्रेणियो का माल अतरापण मे बिकता था'।—वै० न०, पृ० २।

अतरापत्या—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरापत्या] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अतराभवदेश—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेश] दे० 'अतराभवदेह' [को०]।

अतराभवदेह—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेह] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अतराय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] १ विघ्न। बाधा। अडचन। २ ओट। आड [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४ योग की सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा—(क) व्याधि। (ख) स्त्यान = सकोच। (ग) सशय। (घ) प्रमाद। (च) आलस्य (छ) अविरति = विषयो मे प्रवृत्ति। (ज) भ्रातिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जड मे चेतन और चेतन मे जड बुद्धि। (झ) अलब्ध भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५ जैन दर्शन मे दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदो मे से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने मे अतराय वा विघ्न होते हैं। ये अतराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं—दानातराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय और वीर्यातराय।

अतरायाम—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरायाम] एक रोग जिसमे वायुकोप से मनुष्य की आँखें ठुड्डी और पसली स्तब्ध हो जाती है और मुँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पडते हैं।

अतरााराम—वि० [स० अतरााराम] हृदय मे आनद का अनुभव करनेवाला [को०]।

अतराल—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराल] १ घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मडल। उ०—तुम कनक किरण के अतराल मे लुक छिपकर चलते हो क्यो।—चद्र०, पृ० ६३। २ मध्य। बीच। उ०—वह देखो वन के अतराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।—साकेत, पृ० २२१। ३ भीतर। ओट। उ०—'कुलपुत्रो को चुप देखकर किसी ने साल के अतराल से सुकोमल कठ से कहा'।—इद्र०, पृ० १३२।

अतरालक—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरालक] दे० 'अतराल' [को०]।

अतरालदिक्—सज्ञा [स० अन्तरालदिक्] दो दिशाओ के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अतरालदिशा—सज्ञा स्त्री० [स० अन्तरालदिशा] दे० 'अतरालदिक्'।

अतरावेदी—सज्ञा स्त्री० [स० अन्तरावेदी] खभो पर बनी हुई ओसारी या मदिर [को०]।

अतरिद्रिय—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिन्द्रिय] आतरिक इद्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अतरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिका] दो घरो के मध्य की गली।

अतरिक्ख—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] दे० 'अतरिक्ष'। उ०—भुई उडि अतरिक्ख मृतमडा। खड खड धरती वरम्हडा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

अतरिक्ष[१]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] १ पृथिवी और सूर्यादि लोको के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहो वा तारो के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अधर। रोदसी। शून्य। उ०—सौरभ से दिगत पूरित था अतरिक्ष आलोक अधीर।—कामायनी, पृ० ११। २ स्वर्ग लोक। ३ प्राचीन सिद्धात के अनुसार तीन प्रकार के केतुओ मे से एक जिसके घोडे, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हो। ४ एक ऋषि का नाम। ५ पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश मे स्थान।

यौ०—अतरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयर प्लेन (अ०)।

अतरिक्ष[२]—वि० अतर्धान। गुप्त। अप्रकट। उ०—(क) मरुत तें अतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हीं।—केशव (शब्द०)। (ख) फलोदो

आडों अतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। (ग) अविलाइनो इतने समय मे अतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

अतरिक्षक्षित—वि० [सं० अन्तरिक्षक्षित] अन्तरिक्षवासी। अतरिक्ष मे रहनेवाला [को०]।

अतरिक्षग[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षग] अतरिक्ष या आकाश मे गमन करनेवाला [को०]।

अतरिक्षग[2]—सज्ञा पुं० पक्षी। विहग। खग [को०]।

अतरिक्षचर[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षचर] दे० अतरिक्षग' [को०]।

अतरिक्षचर[2]—सज्ञा पु० पक्षी [को०]।

अतरिक्षचारी[1]—वि० [स० अतरिक्षचारी] दे० 'अतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचारी[2]—सज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अतरिक्षजल—सज्ञा पुं० [पुं० अन्तरिक्षजल] ओस। अवश्याय नीहार [को०]।

अतरिक्षसत्[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षसत्] अतरिक्ष या शून्य आकाश मे गमन करनेवाला। आकाशचारी।

अतरिक्षसत्[2]—सज्ञा पुं० १ आत्मा। २ पक्षी।

अतरिक्षायतन[1]—स्त्री० पुं० [सं० अन्तरिक्षायतन] अतरिक्ष मे निवास करनेवाले देवता [को०]।

अतरिक्षायतन[2]—वि० आकाशवासी। क्षतरिक्षवासी (को०)।

अंतरिखⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] १ दे० 'अतरिक्ष'। २ (ला०) झूला। उ०—रसदायिनी सुदरी रमतीं सेज अतरिख भूमि सम।—वेलि०, दू० २६७।

अतरिच्छⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] १ आकाश। उ०—जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी। किंकर करि धान, लच्छ अतरिच्छ काटी।—सूर०, ६।६८। २ अधर। ओठ। उ०—अतरिच्छ श्री वधू लेत हरि त्यों ही आप आपनो घाती।—सा० लहरी, पृ० ५६।

विशेष—अतरिक्ष का पर्याय अधर' = ओठ है और अधर का अतरिक्ष है, अत पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ।

अतरित[1]—[वि० अन्तरित] १ भीतर किया हुआ। भीतर रखा हुआ। भितराया हुआ। छिपाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना। भीतर ले जाना। छिपाना।—होना = भीतर होना। अदर जाना। छिपना।

२, अतर्धान। गुप्त। गायब। तिरोहित।

क्रि० प्र—करना। होना।

३ आच्छादित। ढका हुआ।

क्रि० प्र०—करना।-होना।

४. बीच मे आया हुआ (को०)। ५ अलग किया हुआ। पृथक्कृत (को०)। ६ तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ (को०)। ७ नष्ट किया हुआ।

अतरित[2]—सज्ञा पुं० १ शेष। बाकी। २ स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [को०]।

अतरिम—वि० [अ० इंटेरिम] १. मध्यवर्ती। दो समय के बीच का। २ अस्थायी।

यौ०—अतरिम सरकार = मध्यवर्ती या अस्थायी सरकार [अ० इंटेरिम गवनमेंट]।

अतरीकⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख, अतरिक्क] आकाश। अतरिक्ष।—डिं०।

अतरीक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] दे० 'अतरिक्ष' [को]।

अतरीछⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] आकाश। गगन। उ०—पारस, मनि नृप नखियाँ, करि कचन के ग्राम। अतरीछ उडिके गयौ, नरवाहन के धाम —परमाल रा०, पृ० ३४।

अतरीप—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीप] १ द्वीप। टापू। २ पृथिवी का वह नोकीला भाग जो समुद्र मे दूर तक चला गया हो। रास।

अतरीय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरीय] कमर मे पहनने का वस्त्र। अधोवस्त्र। धोती।

अतरीय[2]—वि० भीतर का। अदर का। भीतरी।

अतरुⓊ†—सज्ञा पुं० दे० अतर'। उ०—अत अत रु के डवर।—रघु० रू० पृ० २४१।

अतरैक्य—सं० पुं० [सं० अन्तर्+ऐक्य] हार्दिक एकता। आतरिक एकत्व। उ०—लोकतत्र की सुदृढ नीव रख अतरैक्य पर।—रजतशि०, पृ० ११३।

अतर—वि० [सं० अन्तर्] भीतर। बीच मे।

विशेष—समस्त पदो मे इस शब्द के अन्, अतर्, अतस् और अतस रूप यथानियम हो जाते हैं।

अतर्कथा[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःकथा] प्रसग द्वारा या सदर्भ में सकेतित कथा।

अतर्कथा[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्+कथा] गुप्त कथा। भीतरी बात। उ०—'साहित्यकार का जीवन, अन्तर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भग हो जाती है'।—भा० शिक्षा, पृ० १२६।

अतर्गंगा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गङ्गा] गुप्त गगा। छिपी हुई या लुप्त गगा [को०]।

अतर्गडु—वि० [सं० अन्तर्गडु] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। बेकार। निरर्थक। वृथा [को०]।

अतर्गत[1]—वि० [सं० अन्तर्गत] १. भीतर आया हुआ। समाया हुआ। शामिल। अतर्भूत। अतर्गहीत। सम्मिलित। उ०—(क) 'और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बडे-बडे वृक्ष इन्ही छोटे बीजो के अतर्गत हैं'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १२५। (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलावार के अतर्गत है'।—सरस्वती (शब्द०)। २ भीतरी। छिपा हुआ। गुप्त। उ०—'यह फोडा कभी प्रत्यक्ष, कभी अतर्गत रहता है'।—अमृतसागर (शब्द०)। ३ हृदय के भीतर का। अत.करणस्थित। उ०—'उनके अतर्गत भावो को कौन जान सकता है' (शब्द०)।

अतर्गत[2]—सज्ञा पुं० मन। जी। हृदय। चित्त। उ०—(क) रुक्म रिसाइ पिता सो कह्यो। सुनि ताको अतर्गत दह्यो।—सूर०, (शब्द०)। (ख) तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहिं निहारति। मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह विचारि अतर्गत हारति।—तुलसी (शब्द०)।

अतर्गति—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गति] मन का भाव। चित्तवृत्ति। भावना। चित्त की अभिलाषा। हार्दिक इच्छा। मनकामना। उ०—(क) रही आन चहुँ विधि भगतन की जनु अनुराग भरी

अतर्गति।—तुलसी (शब्द०)। (ख) 'श्री पार्वती जी ने कृपा की अतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर ममभाय के कहा'।—प्रेमसागर (शब्द०)।

अतर्गर्भ—वि० [सं० अन्तर्गर्भ] गर्भयुक्त [को०]।

अतर्गा धार—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गान्धार] सगीत मे तीसरे स्वर के अतर्गत एक विकृत स्वर जो प्रसारिणी नामक श्रुति से आरभ होता है और जिसमे चार श्रुतियाँ होती हैं।

अतर्गृह—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गृह] भीतर का घर। भीतर की कोठरी। घर का भीतरी खड।

अतर्गृहगता—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + गता] भक्तिमार्ग मे ठाकुर जी को कामबुद्धि से भजनेवाली सेविका। उ०—'और लीला के भाव मे हू देखें तो प्रभु की इच्छा होइ तब अतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४६।

अतर्गृही—सज्ञा स्त्री० [स० अन्तर्गृह + ई (प्र०)] तीर्थस्थान के भीतर पड़नेवाले प्रधान स्थलों की यात्रा।

अतर्गेह—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गेह] घर या मकान का भीतरी खड [को०]।

अतर्घट—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घट] शरीर के भीतर का भाग। अत:करण। हृदय। मन।

अतर्घन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घन] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०]।

अतर्घात—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घात] दे० 'अन्तर्घन' [को०]।

अतर्ज—वि० [सं० अन्तर्ज] अतर या भीतर उत्पन्न (जैसे, शरीर मे कीडा) [को०]।

अतर्जगत्—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जगत्] अतस्तल। भीतरी जगत्। मन का ससार। उ०—अधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड का चेतन से, और बाह्य जगत् का अतर्जगत् से सबध कौन कराती है? कविता ही न?—स्कद०, पृ० २१।

अतर्जठर—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जठर] कोख। पेट [को०]।

अतर्जलन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + हिं० जलन] भीतरी जलन। अतर्दाह। उ०—जानती अतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुदर नही।—रेणुका, पृ० १००।

अतर्जात—वि० [सं० अन्तर्जात] भीतर उत्पन्न। उ०—'कला उच्चता की अतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है'।—पा० सा० सि०, पृ० ६७।

अतर्जातीय—वि० [स० अन्तर् + हिं० जातीय] भिन्न वर्णों अथवा जातियों सबधी। दो या दो से अधिक जातियों के बीच का। उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अतर्जातीय व्याह अवश्य होते थे'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५६।

अतर्जानी—वि० दे० 'अतरजानी'। उ०—आए तुम समर्थ हो अतर्जानी सत्य कहौ हम निश्चय मानी।—कबीर सा०, पृ० २२३।

अतर्जानु—वि० [सं० अन्तर्जानु] हाथों को घुटने के बीच किए हुए।

अतर्जामी—वि० दे० 'अतरजामी'।

अतर्जीवन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जीवन] आतरिक जीवन। बौद्धिक या वैचारिक जीवन। उ०—अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित।—स्वर्ण०, पृ० ६०।

अतर्जीवी सं० [सं० अन्तर्जीवी] आंतरिक जीवनवाला। जिसकी वृत्ति आतरिक हो। विचारप्रधान। उ०—आज मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अतर्जीवी है।—रजत शि०, पृ० ७०।

अतर्ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्ञान]। १. अत करण की बात का जानना। दूसरे के दिल की बात जानना। परोक्षदर्शन। २. परिज्ञान। अत करण का अनुभव। अतर्बोध।

अतर्ज्योति[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्योतिस्] अतर्यामी। परमेश्वर

अतर्ज्योति[2]—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो। [को०]

अतर्ज्वलन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्वलन] भीतरी ताप। आभ्यतर अग्नि [को०]।

अतर्ज्वाला—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्वाला] १ भीतरी आग। भीतर की अग्नि। २ चिंता। सताप [को०]।

अतर्दग्ध—वि० [सं० अन्तर्दग्ध] भीतर भीतर जला हुआ [को०]।

अतर्दधन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दधन] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [को०]।

अंतर्दधान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

अतर्दर्शक—वि० [सं० अन्तर्दर्शक] दे० 'अतर्दर्शी'। उ०—पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अतर्दर्शक कहते हैं।—पा० सा० सि०, पृ० १८६।

अतर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दशा] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन मे जो ग्रहो के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं। मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है। इस १२० वर्ष के पूरे समय मे प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग सख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चद्रमा की १० वर्ष इत्यादि। अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा महादशा के अतर्गत भी नवग्रहो के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अतर्दशा कहते हैं। जैसे सूर्य के ६ वर्ष मे सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चद्रमा का ६ महीने इत्यादि। कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं। २ मन स्थिति। चित्त की वृत्ति। उ०—अनेक भाव तथा अतर्दशाएँ उसके सचारी के रूप मे आती हैं।—रस०, पृ० ६५।

अतर्दशाह—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दशाह] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप मे रहती है और प्रेत कहलाती है। इन दस दिनो के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकाड किए जाते हैं उन्हें अतदशाह कहते हैं।

अतर्दर्शी—वि० [सं० अन्तर्दर्शी] १. अत:करण की वृत्ति समझनेवाला। मन के भाव जाननेवाला। दिल की बात जाननेवाला। २. आत्मनिरीक्षक। तत्ववेत्ता। ३ भीतर देखने या परखनेवाला [को०]।

अतर्दाह—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] १. आंतरिक दु ख। मानसिक वेदना। उ०—अतर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन मे।—कामायनी, पृ० ११६। २. एक प्रकार का सन्निपात।—माधव, पृ० २०।

अंतर्दृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १. ज्ञानचक्षु। प्रज्ञा। हिए की आँख। उ०—बिना नवीन अभ्यास और अतर्दृष्टि के साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है।—जय० प्र०, पृ० ८६। २ आत्मचिंतन। आत्मा का ध्यान।

अतर्देशीय—वि० [सं० अन्तर्देशीय] १ देश के भीतर का। जैसे अतर्देशीय पत्र। २ दो या दो से अधिक देशो के मध्य का। दो या अधिक देश सबधी।

अतर्द्धान[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्धान] लोप। अदर्शन। छिपाव। तिरोधान।

अतर्द्धान[2]—वि० गुप्त। अलक्ष्य। गायब। अदृश्य। अतर्हित। अप्रकट। लुप्त। छिपा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना। दूर हटाना। = नजर से गायब करना। उ०—ताते महा भयानक भूप। अतर्द्धान करो सुर भूप। —सूर (शब्द०)।—होना = छिपना। लोप होना। उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अतर्द्धान।—बुद्ध० च०, पृ० १६।

अतर्द्वंद्व—सज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] १ चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आतरिक सघर्ष। मन मे उठनेवाले भावो अथवा विचारो का सघर्ष। उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अतर्द्वंद्व, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है।—हिं० आ० प्र०, पृ० २४५। २ घर या देश का आपसी झगडा [को०]।

अतर्द्वार—सज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वार] घर के भीतर का गुप्त द्वार। घर मे आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार। पीछे का दरवाजा। खिडकी। चोर दरवाजा।

अतर्धा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धा] १ अपवारण। २ सगोपन। आच्छादन [को०]।

अतर्धान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। अदृश्य। अतर्हित। उ०—कै हरि जू भए अतर्धान। मोसौं कहि तू प्रगट बखान।—सूर०, १।२८६।

अतर्धापन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धापन] सगोपन। छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०]।

अतर्धापित—[स० अन्तर्धापित] सगोपित। छिपाया हुआ [को०]।

अतर्धारा—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धारा] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणो से व्यक्त न हो। आतरिक धारा। उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अतर्धारा। जीवन का मृदु मर्म सीचतो रही अमृत रस द्वारा।—पार्वती०, पृ० २१।

अतर्धि—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धि] १ दो सघर्षशील राज्यो के बीच मे पडनेवाला राज्य। २ दे० 'अतर्धा' [को०]।

अतर्ध्यान—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ध्यान] आतरिक एव गंभीर समाधि [को०]।

अतर्नगर—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नगर] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०]।

अतर्नयन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नयन] दे० 'अतर्दृष्टि'। उ०—खोल अतर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान।—पार्वती०, पृ० ८३।

अतर्नाद—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नाद] अतरात्मा की पुकार। हृदय की आवाज।

अतर्निर्भरता—सज्ञा पुं० [सं० अतर् + निर्भरता] पारस्परिक निर्भरता। एक दूसरे का भरोसा या सहारा। उ०—स्वाधीनता ध्येय नही, साधन मात्र है, ध्येय है अतर्निर्भरता तथा एकता। —रजत शि०, पृ० १२१।

अतर्निविष्ट—वि० [सं० अन्तर्निविष्ट] १. भीतर बैठा हुआ। अदर रखा हुआ। २ अत करण मे स्थित। मन मे जमा हुआ। हृदय मे बैठा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठना। अदर ले जाना। भीतर रखना। (२) मन मे रखना। जी मे बैठाना। हृदयगत करना। दिल मे जमाना।—होना = (१) भीतर बैठना। भीतर जाना। भीतर पहुँचना। (२) मन मे धँसना। चित्त में बैठना। दिल मे जमना। हृदयगत होना।

अतर्निष्ठ—वि० [सं० अन्तर्निष्ठ] आत्मीय या विषयीगत (सब्जेक्टिव)। उ०—प्रेमचद के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेंद्र का जो कुछ है अपना है। एक बहिर्निष्ठ और दूसरा अतर्निष्ठ।—प्रेम० गोर्की, पृ० २१७। २ आतरिक चिंतन मे लगा हुआ [को०]।

अतर्निहित—वि० [सं० अन्तर्निहित] विलीन। समाविष्ट। उ०—उधर पराजित कालरात्रि भी जल मे अतर्निहित हुई।—कामायनी, पृ० २३।

अतर्वाष्प[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वाष्प] दबाए गए अश्रु। रोका हुआ आँसू। निरुद्ध वाष्प [को०]।

अतर्वाष्प[2]—वि० अश्रुमय [को०]।

अतर्बोध—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बोध] १ आत्मज्ञान। आत्मा की पहचान। २ आतरिक अनुभव।

अतर्भवन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भवन] घर का भीतरी भाग। अतर्गृह। अतरभवन। उ०—छोड सभी विलास औ अतर्भवन निज किस विजन मे।—पार्वती०, पृ० १५१।

अतर्भाव—सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भाव] [वि० अन्तर्भावित, अन्तर्भूत, सज्ञा अन्तर्भावना] १ मध्य मे प्राप्ति। भीतर समावेश। अतर्गत होना। शामिल होना।—उ० अन्य अर्थालकारो का उपमा, दीपक और रूपक में अतर्भाव है। (अर्थात् अन्य अलकार उपमा दीपक आदि के अतर्गत हैं)—(शब्द०)। २ तिरोभाव। विलीनता। छिपाव। ३ नाश। अभाव। ४ आर्हत या जैन दर्शन मे आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ भीतर का भाव। आतरिक अभिप्राय। आशय। मशा।

अतर्भावना—सज्ञा स्त्री० [अन्तर्भावना] १ ध्यान। सोच विचार। चिंता। चिंतवन। २ गुणनफल के अतर से सख्याओ को ठीक करना।

अतर्भावित—वि० [सं० अन्तर्भावित] १ अतर्भूत। अतर्गत। शामिल। भीतर। २ भीतर किया हुआ। छिपाया हुआ। लुप्त।

अंतर्भुक्त—वि० [सं० अन्तर्भुक्त] शामिल। समाविष्ट। उ०—इन जातियो और इनकी समस्त आचार परपरा को धीरे धीरे इन टीकाओ तथा ऋषियो के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रथो मे अतर्भूत किया गया।—हि० सा० भू०, पृ० १३।

अतर्भूत[1]—वि० [सं० अन्तर्भूत] अंतर्गत। शामिल। उ०—जिनके अतर्भूत हैं मुद्रावध समस्त।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३२।

अंतर्भूत[2]—संज्ञा पुं० जीवात्मा। प्राण। जीव।

अंतर्भूमि—संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भूमि] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्भेद—संज्ञा पुं० [अन्तर्भेद] भीतरी मनमुटाव [को०]।

अंतर्भेदिनी—वि० [सं० अन्तर्भेदिनी] हृदय का भेदन करनेवाली। भीतर तक पहुँचनेवाली। उ०—उसकी सर्वदर्शिनी अन्तर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी।—प० रानी, पृ० ८।

अंतर्भौम—वि० [सं० अन्तर्भौम] जमीन के अंदर का। भूगर्भ में स्थित [को०]।

अंतर्मन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मन] भीतरी मन। मन की भीतरी चेतना अवचेतन। उ०—(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयंकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था।—प० रानी, पृ० ३६। (ख) अंतर्मन के भूमिकंप से ध्वस्त अंश हो । शिखर सनातन शिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर —युगपथ, पृ० ११०।

अंतर्मना—वि० [सं० अन्तर्मनस्, अन्तर्मना] १ व्याकुलचित्त। घबड़ाया हुआ। विकल। २ उदास। रंजीदा। ३. अंतर्मुखी।

अंतर्मल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मल] १ भीतर का मल। पेट के भीतर का मैला। पेट के अंदर की अलाइश। २ चित्त-विकार। मन का दोष। हृदय की बुरी वासना।

अंतर्मुख[1]—वि० [सं० अन्तर्मुख] [स्त्री० अन्तर्मुखी] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो। भीतर मुँहवाला। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। उ०—यह फोड़ा अति कठोर और अंतर्मुख होता है।—अमृतसागर (शब्द०)। २ जिसकी वृत्ति बहिर्मुख न हो। अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला। उ०—'वह अंतर्मुख और आत्मरत था'।—भग्नि० चि०, पृ० १०।

अंतर्मुख[2]—क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

क्रि० प्र०—करना = भीतर की ओर ले जाना या फेरना। भीतर नियुक्त करना। उ०—अकामी पुरुष इंद्रियों को हटाय अंतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्षात् अनुभव करता है—कठ० उप० (शब्द०)।

अंतर्मुद्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मुद्र] भक्ति का एक प्रकार [को०]।

अंतर्मुद्र[2]—वि० भीतर से मुहरबंद [को०]।

अंतर्मृत—वि० [सं० अन्तर्मृत] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [को०]।

अंतर्य—वि० [सं० अन्तय] भीतर का। बीच का [को०]।

अंतर्यज्ञ—संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्याग' [को०]।

अंतर्यच्छद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्यच्छद] भीतर का आवरण [को०]।

अंतर्याग—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्याग] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [को०]।

अंतर्यामी[1]—वि० [सं० अन्तर्यामिन्, अन्तर्यामी] [वि० स्त्री० अन्तर्यामिनि] १. भीतर की बात जाननेवाला। हृदय की बात का ज्ञान रखनेवाला। उ०—(क) जो अंतर्यामी, वही इसे जानेगा।—साकेत, पृ० २३३। (ख) किसने तुमको अंतर्यामिनि! बतलाया उसका आना?—वीणा, पृ०, ५८। २ अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला। चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला। ३ भीतर तक पैठनेवाला। भीतर पहुँच रखनेवाला। उ०—वाण के सांस्कृतिक अध्ययन का अंतर्यामी सूत्र कुछ गहराई तक उनके शास्त्र में पैठने पर हमारे हाथ आया।—हर्ष० पृ० २।

अंतर्यामी[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा। चैतन्य। परमेश्वर। पुरुष।

अंतर्योग—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्योग] ध्यान। अखंड ध्यान [को०]।

अंतर्राष्ट्रीय—वि० दे० 'अंतरराष्ट्रीय', 'अंतरराष्ट्रीय'। उ०—उनके काम करने के घंटे और काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अंतर्राष्ट्रीय ढंग पर हों।—भा० वि०, पृ० ३६।

विशेष—यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है।

अंतर्लंब—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्लम्ब] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्लापिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसी पहेली के अक्षरों में हो। उ०—(क) कौन जाति सीता रती, दई कौन वहँ तात। कौन ग्रंथ बरण्यो हरी, रामायण अवदात।—केशव (शब्द०)। इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थीं? उत्तर—रामा = स्त्री। फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया? उत्तर 'रामाय = राम को। फिर पूछा किस ग्रंथ में हरण लिखा गया है। उत्तर हुआ 'रामायण'। (ख) चार महीने बहुत चले औ आठ महीने थोरी। अमीर खुसरो यों कहैं तू बूझ पहेली मोरी।—(शब्द०)। इसमें 'मोरी' शब्द ही उत्तर है।

अंतर्लीन—वि० [सं० अन्तर्लीन] १ मग्न। भीतर छिपा हुआ। डूबा हुआ। गर्क। विलीन। २. तन्मय। ध्यान में मग्न (को०)।

अंतर्वंश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वंश] अंतःपुर [को०]।

अंतर्वंशिक—वि० [अन्तर्वंशिक] अंतःपुर या अंतर्वंश का निरीक्षक [को०]।

अंतर्वण—वि० सं० [अन्तर्वण] वन के भीतर बना हुआ [को०]।

अंतर्वती—वि० [सं० अन्तर्वती] १ गर्भवती। अंतर्वत्नी। गर्भिणी। हामिला। २ भीतरी। भीतर की। अंदर रहनेवाली। अंतरस्थित।

अंतर्वत्नी—वि० स्त्री० [सं० अन्तर्वत्नी] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। उ०—निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अंतर्वत्नी रानी।—पार्वती, पृ० ५१।

अंतर्वमि—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वमि] अजीर्ण [को०]।

अंतर्वर्ग—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वर्ग] किसी वर्ग या समूह के भीतर का वर्ग [को०]।

अंतर्वर्ती—वि० [सं० अन्तर्वर्ती] [वि० स्त्री० अंतर्वर्तिनी] भीतरी। भीतर का। अंदर रहनेवाला [को०]।

अंतर्वस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वस्तु] किसी पुस्तक, पात्र, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [को०]।

अंतर्वस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वस्त्र] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [को०]।

अंतर्वाणी—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वाणी] शास्त्रज्ञ। पंडित। शास्त्रवेत्ता शास्त्रों का जाननेवाला। विद्वान्।

अतर्वायु--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वायु] हृदयस्थ वस्तु। प्राणवायु। उ०--अतर्वायु निरोध पूर्णत कर रत अविरत तप, मे।--पार्वती०, पृ० १२१।

अतर्वाष्प[1]--सज्ञा पुं० [अतर्वाष्प] दे० 'अतरवाष्प'।

अतर्वाष्प[2]--वि० आसू से भरा। अश्रुपूरित [को०]।

अतर्वास--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वास] दे० 'अतर्वस्त्र' [को०]।

अतर्वासक--सज्ञा पु० [सं० अन्तर्वासक] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र। अँतरौटा। उ०--(क) फिर चाहे आप त्रिपिटक मे ही प्रमाण क्यो न दें कि बिना अतर्वासक, चीवर इत्यादि के गारत का कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले।--आँधी, पृ० ८। (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला अतर्वासक हवा मे फडफडा रहा था।--वे० न०, पृ० १३६।

अतर्विकार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विकार] शरीर का धर्म। मन का शरीर सबधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीडा इत्यादि।

अतर्विद्रोह--सज्ञा पु० [सं० अन्तर् + विद्रोह] विद्रोह। गृहयुद्ध। उ०--तात! विपत्तियो के बादल घिर रहे हैं, अतर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नही।--स्कद० पृ०, ७६।

अतर्विरोध--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विरोध] आतरिक विरोध। भीतरी झगडा। उ०--आर्य साम्राज्य के अतर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गए हैं।--स्कद०, पृ० ७०।

अतर्वृत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + वृत्ति] मनोवृत्ति। आतरिक प्रवृत्ति। उ०--जो कविता रमणी के रूपमाधुर्य मे हमे तृप्त करती है वही उसकी अतर्वृत्ति की सुदरता का आभास देकर हमे मुग्ध करती है।--रस०, पृ० ३१।

अतर्वेग--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + वेग] मनोवेग। मनोविकार। [अ० इमोशन] उ०--परतु मनोविज्ञान मे कलामीमांसा सबधी अतर्वेग जैसे मानसिक तत्व का कोई स्थान नहीं है।--पा० सा० सि०, पृ० २००। २ भीतरी ज्वर (वैद्यक)।

अंतर्वेगी ज्वर--सज्ञा पु० [सं० अन्तर्वेगी ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमे भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर मे दर्द और पेट मे शूल होता है। इसमे रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त होता है। इसे कष्टज्वर भी कहते हैं।

अतर्वेद--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेदि] [वि० अतर्वेदी] १ देश जिसके अतर्गत यज्ञो की वेदियाँ हो। २ गगा और यमुना के बीच का देश। गगा यमुना के बीच का दोआब। ब्रह्मावर्त देश। उ०--तुम आज से अतर्वेद के विषयपति नियत किए गए।--स्कद०, पृ० ८१। ३ दो नदियो के बीच का देश या भूखड। दोआब।

अतर्वेदना--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वेदना] आतरिक व्यथा। भीतरी दुःख या पीडा। उ०--क्या यह सारी अतर्वेदना इसी विलासप्रेम के कारण है।--काया०, पृ० ५२०।

अतर्वेदि--वि० [सं० अन्तर्वेदि] दे० 'अतर्वेदी' [को०]।

अतर्वेदी[1]--वि० [सं० अन्तर्वेदीय] अतर्वेद का निवासी। गगा यमुना के बीच के देश मे रहनेवाला। गंगा यमुना के दोआब मे बसनेवाला।

अतर्वेदी[2]--सज्ञा स्त्री० गगा यमुना के बीच की भूमि या देश। ब्रह्मावर्त देश।

अतर्वेध--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेध] शरीर की गाँठ या जोड मे होने वाला दर्द [को०]।

अंतर्वेशिक--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेशिक] अतःपुर का रक्षक। जनानखाने की रखवाली करनेवाला। दरबाजा।

अतर्वेश्म--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेश्म] भीतरी घर। गृह का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतर्वेश्मिक--सज्ञा पुं० [अन्तर्वेश्मिक] अतःपुर का निरीक्षक। अतर्वेशिक [को०]।

अतर्व्याधि--सज्ञा स्त्री० [सं० अतर्व्याधि] भीतर की व्याधि। आतरिक रोग [को०]।

अतर्व्रण--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्व्रण] शरीर के भीतर होनेवाला फोडा [को०]।

अतर्हस्त--क्रि० वि० [सं० अन्तर्हस्त] हाथ मे। हाथ की पहुँच के भीतर [को०]।

अतर्हस्तीन--वि० [सं० अन्तर्हस्तीन] जो हाथ की पहुँच के भीतर हो या जो हस्तगत हो [को०]।

अतर्हास--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हास] भीतरी हँसी। भीतर ही भीतर हँसना। मन ही मन की हँसी। अप्रकट हास। गूढ हास।

अतर्हित--वि० [सं० अन्तर्हित] तिरोहित। अतर्धान। गुप्त। गायब। छिपा हुआ। अदृश्य। अलक्ष्य। लुप्त।

क्रि० प्र०--करना।--होना = अतर्धान होना। उ०--अहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अतर्हित प्रभु भयऊ।--तुलसी (शब्द०)।--रहना = गायब या गुप्त रहना। छिपा हुआ रहना। उ०--'कुछ प्रवृत्तियाँ अतर्हित रहती हैं'।--रस०, पृ० १७५।

अतर्हृदय--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हृदय] हृदय का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतलघु--सज्ञा पुं० [सं० अन्तलघु] १ छद का वह चरण जिसके अत मे लघुवर्ण या मात्रा हो। २ वह शब्द जिसका अतिमवर्ण लघु हो।

अतलीन--वि० [सं० अन्तलीन] छिपा हुआ [को०]।

अतलोप--वि० [सं० अन्तलोप] (शब्द) जिसका अतिम अक्षर लुप्त हो (व्या०) [को०]।

अतवत--वि० [सं० अन्तवत्, अन्तवन्त.] नष्ट या समाप्त होनेवाला। मरणधर्मा। विनाशी। उ०--अतवत तम की माया यह सतत क्यो ठहरे।--अपलक, पृ० १०४।

अतवर्ण[1]--सज्ञा पुं० [सं० अन्तवर्ण] ? वर्ग का अतिम अक्षर। पचम वर्ण, जैसे, ट, ठ, ण, न, म आदि [को०]। २. शूद्र।

अतवर्ण[2]--वि० अतिम वर्ण का। चतुर्थ वर्ण का।

अतवह्नि--सज्ञा पुं० [सं० अन्तवह्नि] प्रलय की अग्नि [को०]।

अतवासी[1]--सज्ञा पुं० [सं० अन्तेवासी] दे० 'अतेवासी' [को०]।

अतवासी[2]--वि० १. सीमात पर रहनेवाला। २. समीप रहनेवाला [को०]।

अंतविदारण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तविदारण] सूर्य और चंद्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्षमार्ग गए हैं उनमें से एक।

विशेष--इसमें चंद्रमा के बिंब के चारों ओर निर्मलता और मध्य में गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (बुआर) की खेती का विनाश वराहमिहिर ने माना है।

अंतवेला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तवेला] अंतकाल। अंत समय [को०]।

अंतव्याप्ति--संज्ञा स्त्री० [अन्तव्याप्ति] किसी शब्द के अंतिम अक्षर का परिवर्तन, जैसे--'मिह' का 'मघ' [को०]।

अंतशय्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तशय्या] १ नमिशय्या। २ मृत्यु-शय्या। मरनसेज। मरनखाट। ३ श्मशान। मसान। मरघट ४ मरण। मृत्यु। ५ चिता [को०]।

अंतश्--'अंतर्' वि० [सं०] शब्द का कुछ स्थितियों में परिवर्तित रूप।

अंतश्चेतन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + चेतन] मन का वह भाग (मनोवैज्ञानिकों के अनुसार) जिसमें दबी हुई इच्छाओं आदि से युक्त वे बातें रहती हैं जो बाह्य अनुभूति में न आ सकें। उ०--जब से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढ़कर उपचेतन और अंतश्चेतन मनोविज्ञान की शोधें हुई हैं, तब से साहित्यिकों के लिये नई वृत्तियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है।--नं० सा० नं० प्र०, पृ०, १८।

अंतश्चेतन[२]--वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०--ऊर्ध्व मुक्त, अंतश्चेतन बन जाता जन मन।--रजत शि०, पृ० ७०।

अंतश्चेतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + चेतना] अंतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०- रजत शिखर मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।--रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अंतश्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + छद] १ भीतरी तल। २ भीतरी आच्छादन। ३ मिहराब के नीचे का तल।

अंतश्छिद्र--संज्ञा० पुं० [सं० अन्तश्छिद्र] भीतरी छेद या अदरूनी सूराख [को०]।

अंतश्छिन्न--वि० [सं० अन्तश्छिन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अंतस्[१]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] अंतःकरण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०--(क) तुही मानव देव दानव सिधान। तुही कोटि ब्रह्मादि अंतस् समान।--पृ० रा०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम! अंतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।--रस०, पृ० १६।

अंतस्[२]--वि० 'अंतर्' शब्दक। समासगत रूप, जैसे, अंतस्तल, अंतस्तप्त आदि में।

अंतस्श्लेप--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्श्लेप] संधि। जोड़ [को०]।

अंतस्संक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस्संक्रिया] अंतिम संस्कार। अंतिम संस्कार [को०]।

अंतस्सद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्सद्] शिष्य। चेला।

अंतस्समय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्समय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अंतस्तप्त--वि० [सं० अन्तस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २ खिन्न। संतप्त [को०]।

अंतस्तल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + तल] १ मन हृदय। चित्त। उ०--उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कांत।--कामायनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०--पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष विहारी से नहीं हो सकता।--इतिहास, पृ० २५१।

अंतस्ताप--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का संताप। आंतरिक दुःख। भीतरी खेद। उ०--असुरों के धोता पद सागर निज मर्यादा छोड़। अंतस्ताप दग्ध बड़वा सा करता करुणिम क्रोड़।--पार्वती, पृ० १०१।

अंतस्तुषार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्तुषार] ओस की बूँद से युक्त [को०]

अंतस्तोय--वि० [सं० अन्तस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अंतस्त्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्त्य] आँत। अँतड़ी [को०]।

अंतस्थ[१]--वि० [सं० अन्तस्थ] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ बीच में स्थित। मध्य का मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारों वर्ण अंतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच में है।

अंतस्थ[२]--संज्ञा पुं० स्पर्श और ऊष्म वर्ण के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्ण।

अंतस्थल--संज्ञा पुं०, [सं० अन्तस्थल] अंतःकरण। उ०--आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्थल को देखा।--काया०, पृ० १६६।

अंतस्था--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्था] दे० अंतस्थ[२]।

अंतस्थित--वि० [सं० अन्तस् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अंतःकरण का।

अंतस्स्नान--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्स्नान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अंतस्संज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + संज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव में स्पष्ट न हुई हो। उ०--उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश (काशस) में रहता है और कुछ अंतस्संज्ञा के क्षेत्र (सब काशस रीजन=अवचेतन) में छिपा रहता है --रस०, पृ० ६५।

अंतस्सत्ता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + सत्ता] आंतरिक सत्ता। अंतःकरण। चेतना। उ०--हमारी अंतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।--रस०, पृ० २६।

अंतस्सलिल--वि० [सं० अन्तस्सलिल] [स्त्री० अन्त सलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पड़े, भीतर हो। उ०-- अंतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अंतस्सलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस्सलिला] १ सरस्वती नदी। २ फल्गू नदी।

अंतस्साधना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + साधना] आंतरिक साधना। गुप्त साधना। उ०--हृदयपक्षशून्य सामान्य अंतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपंथी कर चुके थे, यह हम कह चुके हैं।--इतिहास, पृ० ६४।

अंतस्सार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्सार] १ आंतरिक सार। तत्व। २. ठोसपन। ३ मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ४ अंतरात्मा [को०]।

अतहकर्ण(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंत करण'। उ०—सुंदर हरि के भजन तैं निर्मल अंतहकरण।—सुंदर ग्र०, पृ० ६७६।

अतहपुर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंत पुर'। उ०—(क) पूछत पूछत ग्यो अंतहपुरि। हुआँ सुदरसण तणौ हरि।—वेलि, दू० ५२। (ख) उठिव नृपति दीवान तैं, अंतहपुर मे जाय।—प० रासो, पृ० ६८।

अतहार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र + हार] आँतों की माला। आँत का हार। उ०—करि अनुराग चरबी बसा अंतहार आभार दिय।—सुजान च०, पृ० २३।

अंतराष्ट्रिय—वि० [सं० अन्तर् + राष्ट्रिय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंतराष्ट्रीय—वि० [सं० अन्तराष्ट्रीय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताल—संज्ञा पु० [सं० अन्ताल] आँत। अँतड़ी।—परि फूक सु फूक, डंकिनि ढूक, गिद्ध गहूक अंताल।—पृ० रा०, २।२६०।

अंतावरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंतावरी'।

अंतावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र + अवली] अँतड़ियाँ। आँतों का समूह।—अंतावरी गहि उडन गीध पिसाच कर गहि धावहीं।—मानस, ३।१८।

अंतावशायी—संज्ञा पु० [सं० अन्तावशायी] १ गाँव की सीमा के बाहर बसनेवाला। २ प्राचीन काल मे अस्पृश्य कहे जानेवाले वर्ण जैसे—चांडाल।

अंतावसायी—संज्ञा पु० [सं० अन्तावसायी] १ नाई। हज्जाम। २ हिंसक। चांडाल।

अंतित(पु)—वि० [सं० अत्यन्त] दे० 'अत्यन्त'। उ०—पुच्छन सु बाल बुल्यो बलिय। करि सु चित अंतित चित। पृ० रा०, १।२७५।

अंति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ति] बड़ी बहन [को०]।

अंति[2](पु)—वि० [सं० अन्तिक, प्रा० अंतिअ] १ समीप। निकट। उ०—खड़े अंति चहुवान के बैन बोले।—प० रा०, पृ० ८५। २. अंत मे। उ०—जु कछु तत को मत अंति कहि कहि समझायो।—पृ० रा०, ६७।४५५।

अंति[3](पु)—दे० 'अत्यंत'। उ०—सहस सात हय पेत रहि परे पंच से दंति, लुथ्थि कोस पंचह प्रचर परे सु पाइल अंति।—पृ० रा०, १६।२४४।

अंतिक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तिक] १ पड़ोस। २ निकटता। सामीप्य [को०]।

अंतिक[2]—वि० १ पास। २ निकट। समीप [को०]।

अंतिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिकता] सामीप्य। निकटता [को०]।

अंतिकस्थ—वि० [सं० अन्तिकस्थ] निकटस्थ। पास या समीप पहुँचा हुआ [को०]।

अंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिका] १ अंति। बड़ी बहन। २ चूल्हा। भट्ठी। ३ एक पौधा। शालिंचा [को०]।

अंतिकाल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंतकाल'। उ०—गुर परसादै भिष्या पाइवा, अंतिकालि न होइगी भारी।—गोरख०, पृ० ३७।

अंतिकाश्रय—संज्ञा पुं० [अन्तिकाश्रय] समीपस्थ का सहारा या अवलंबन [को०]।

अंतिज(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंत्यज'। उ०—कहि जो अहै देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौ प्रानी।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३७४।

अंतिम—वि० [सं० अन्तिम] १ जो अंत मे हो। अंत का। आखिरी। सबसे पिछला। सबके पीछे का। २ चरम। सबसे बढ़ के। हद दरजे का।

अंतिम यात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिम यात्रा] महायात्रा। महा प्रस्थान। आखिरी सफर। अवसान। मृत्यु। मरण। मौत। मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जीवात्मा की यात्रा जहाँ अपने कर्मानुसार उसे रहकर वर्षों का फल भोगना पड़ता है।

अंतिमाक—स्त्री० पुं० [सं० अंतिमाङ्क] नौ की संख्या [को०]।

अंतिमेत्थम्—[अ० 'अंटिमेटम्' का हिंदीकरण] आखिरी चेतावनी।

अंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अंत्र] आँत। उ०—हरे सूर अंती मल मामदंती वहै भूमि छंती सु गांधर्व बंती।—पृ० रा०, ६६। १०४७।

अंते(पु)—क्रि० वि० [सं० अन्ते] दे० 'अनत'। उ०—अंतर महल पर बैठक पायौ, अंते जाय बतायौ।—गुलाल०, पृ० ३८।

अंतेउर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंतःपुर, प्रा० अंतेउर; अंतेपर] घर के भीतर का भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। अंतःपुर। जनानखाना। निवास। उ०—मीजइ फेरइ फेरिवइ गाय। मगनउ अंतेउर रीयइ रे बुलाइ।—बीसल० रा० पृ० ८७।

अंतेवर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंतेउर'। उ०—दूजउ फेरी जय फेरइ गाय, सहु अंतेवर हियो बलाइ।—बी० रा०, पृ० २३।

अंतेवासि(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंतेवासी'। उ०—गोपालानंद भजौ पुनि उन अंतेवासि।—अनंत, पृ० ६०८।

अंतेवासी—संज्ञा पुं० [सं० अंतेवासी] १ गुरु के समीप रहनेवाला। शिष्य। चेला। २ ग्राम के बाहर रहनेवाला। चांडाल। अंत्यज। उ०—आचार्य और अंतेवासी अर्थात् पढ़ाने और पढ़नेवाले दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित हुआ करते हैं।—पाणिनि०, पृ० २६८।

अंत्य[1]—वि० [सं० अन्त्य] अंत का। अंतिम। आखिरी। सबसे पिछला। यौ०—अंत्यजन्मा, अंत्यजाति, अंत्यजातीय = अंतिम वर्ण का।

अंत्य[2]—संज्ञा पुं० वह जिसकी गणना अंत मे हो, जैसे—१ लग्नों मे मीन। २ नक्षत्रों मे रेवती। ३. वर्णों मे शूद्र और ४ अक्षरों मे 'ह'। ५ एक संख्या। पद्म की संख्या। दस सागर की संख्या (१०००,००० ०००,०००,०००) दस करोड़ करोड़। ६ यम [को०]।

अंत्यक—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यक] अंतिम वर्ण का मनुष्य। अंत्यज [को०]।

अंत्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यकर्मन्] अंत्येष्टि क्रिया।

अंत्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यक्रिया] अंत्यकर्म। अंत्येष्टि [को०]।

अंत्यगमन—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यगमन] सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ सहवास [को०]।

अंत्यज—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यज] [वि० स्त्री० अंत्यजा] वह व्यक्ति जो अंतिम वर्ण मे उत्पन्न हुआ हो। वह शूद्र जो प्राचीन युग में छूने के योग्य नहीं माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जल द्विज उन दिनों ग्रहण नहीं करते थे, जैसे—धोबी, चमार, नट, बसोड़, डोम, मेद, भिल्ल इत्यादि।

यौ०—अन्यजगमन = सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन सबध।

अत्यजन्मा—वि० [स० अन्त्यजन्मा] अत्य जाति का। निम्न जातीय [को०]।

अंत्यजा—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्यजा] शूद्रा। अतिम वर्ण मे उत्पन्न स्त्री [को०]।

यौ०—अत्यजागमन = सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन सबध।

अत्यजाति—वि० [सं० अन्त्यजाति] अतिम जाति का। निम्न जाति का [को०]।

अत्यजातीय—वि० [सं० अन्त्यजातीय] दे० 'अत्यजाति' [को०]।

अत्यधन—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्यधन] गणना की अतिम राशि [को०]।

अत्यपद—स्त्री० पुं० [स० अन्त्यपद] अतिम या सबसे बडा वर्गमूल। अत्यमूल (गणित) [को०]।

अत्यभ—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्यभ] १ अतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती। २ मीन राशि।

अत्यमद—सज्ञा पुं० [स० अन्त्यमद] मदात्यय रोग का एक भेद।

विशेष—इसमे रोगी बडो का तिरस्कार करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन मे जो गुप्त बातें हुती हैं उन्हे प्रकट करने लगता है। मदात्यय तीन प्रकार का होता है। पूर्वमद, मध्यमद और अत्यमद। —मा० नि०, पृ० ११५।

अत्यमूल—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यमूल] दे० 'अत्यपद'।

अत्ययुग—सज्ञा पुं० [स० अन्त्ययुग] गणनाक्रम से युगो अत मे आनेवाला युग। कलियुग।

अत्ययोनि—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्ययोनि] अतिम या निम्न योनि [को०]।

अत्ययोनि—वि० निम्न योनि का [को०]।

अत्यलोप—सज्ञा वि० [स० अन्त्यलोप] किसी शब्द के अतिम वर्ण या अक्षर का लोप (भा० वि०)।

अत्यवर्ण—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यवर्ण] १. अतिम वर्ण। शूद्र। २ अत का वर्ण 'ह'। ३. पद के अत मे आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर।

अत्यविपुला—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्यविपुला] आर्या छद का एक भेद।

विशेष—इसके दूसरे दल के प्रथम तीन गणो तक चरण पूर्ण नही होता और दोनों दलों मे दूसरा और चौथा गण जगण होता है। इसे अत्यविपुला महाचपला, अत्यविपुला जघनचपला या अत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं।

अत्यविराम—सज्ञा पुं० [स० अन्त्यविराम] अत का या अतिम विराम। उ०—गिरजाकुमार माथुर अत्यविराम रहित पक्तियो के मुक्त छद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं।—हिं० का० आं० प्र०, पृ० २६१।

अत्या—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्या] चाडाली। चाडाल की स्त्री। चाडालिनी।

अत्याक्षर—सज्ञा पुं० [स० अन्त्याक्षर] १ किसी शब्द या पद के अत का अक्षर। २ वर्णमाला का अतिम वर्ण 'ह'।

अत्याक्षरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्य + हिं० अक्षरी] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अतिम अक्षर से आरभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढना। किसी श्लोक या पद्य के अतिम पद के अत्य अक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरभ।

विशेष—विद्यार्थियो मे इसकी चाल है। एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अतिम अक्षर मे आरभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढता है। फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अतिम अक्षर लेता है और उससे आरभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता है। अत मे जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप हो जाता है उसकी हार मानी जाती है।

अत्यानुप्रास—सज्ञा पुं० [स० अन्त्यानुप्रास] पद्य के एक चरण के अतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल। पद्य के चरणों के अतिम अक्षरों का मेल। तुक। तुकबदी। तुकात। उ०—श्रुतिकटु मानकर, कुछ वर्णों का त्याग, वृत्तविधान, लय, अत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है।—रस०, पृ० ४६।

विशेष—जैसे, सिय सोभा किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिन बानी।—तुलसी (शब्द०)। इस चौपाई के दोनो चरणो का अतिम अक्षर 'नी' है। हिंदी कविता मे ५ प्रकार के अत्यानुप्रास मिलते हैं। (१) सर्वात्य, जिसके चारो चरणो के अतिम वर्ण एक हो। उ०—न ललचहु। सब तजहु। हरि भजहु। यम करहु। (शब्द०)। (२) समात्य विषमात्य, जिसके सम से सम और विषम से विषम के अत्याक्षर मिलते हो। उ०—जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन। करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभ गुणसदन।—तुलसी (शब्द०)। (३) समात्य जिसके सम चरणो के अत्याक्षर मिलते हो विषम के नही। उ०—सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा (शब्द०)। (४) विषमात्य, जिसके विषम चरणो के अत्याक्षर एक हो, सम के नही। उ०—लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। तुलसी के मन राम, ऐसे हुँ कब लागिहौ।।—तुलसी (शब्द०)। (५) समविषमात्य, जिसके प्रथम पद का अत्याक्षर द्वितीय पद के अत्याक्षर के समान हो। उ०—जगो गुपाला। सुभोर काला। वहँ यसोदा। लहै प्रमोदा (शब्द०)।

अत्यावसायी—सज्ञा पुं० [स० अन्त्यावसायिन्] [स्त्री० अत्यावसायिनी] १ हिंदुओ की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यत नीच जाति का व्यक्ति। चाडाल। मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चाडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति। २ अगिरा के अनुसार चाडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ।

अत्याश्रम—सज्ञा पुं० [स० अन्त्याश्रम] अतिम आश्रम। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास—इन चारो आश्रमो मे अतिम। सन्यासाश्रम [को०]।

अत्याश्रमी[1]—वि० [सं० अन्त्याश्रमिन्] अंतिम आश्रम मे स्थित। सन्यास आश्रमवाला [को०]।

अत्याश्रमी[2]—सज्ञा पुं० अंतिम आश्रम का व्यक्ति। सन्यासी [को०]।

अत्याहुति—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्याहुति] यज्ञ या चिता की अंतिम आहुति [को०]।

यौ०—अत्याहुति क्रिया = अत्येष्टि कर्म।

अत्येष्टि—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्येष्टि] मृतक का शवदाह से सपिंडन तक कर्म। क्रिया कर्म। अत्यक्रिया। उ०—अंतिम समय मे यमुना और घटी रूपी सौभाग्य देवयाँ विजय की अत्येष्टि का प्रबंध करती हैं।—ककाल, पृ० १०५।

यौ०—अत्येष्टि क्रिया = मृतक का शवदाह आदि कर्म। अत्येष्टि। उ०—महादेवी की अत्येष्टि क्रिया राजसमान से होनी चाहिए। —स्कंद०, पृ० ११५।

अत्रधमि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रध्मि] अजीर्ण। अपच। पेट का फूलना। वायु के कारण पेट का फूलना [को०]।

अत्र[1]—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्र] आँत। अँतडी। रोधा।

अत्र[2] ⑤—सज्ञा पुं०, कहीं कहीं 'अतर' का अपभ्रंश। जैसे 'अत्रध्यान' मे 'अत्र'।

अंत्रकूज—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूज] दे० 'अत्रकूजन' [को०]।

अत्रकूजन—सज्ञा पुं० [स० अन्त्रकूजन] आँतो का शब्द। अँतडियो की गुडगुडाहट अँतडियो की कुडकुडाहट।

अत्रध्यान⑤—संज्ञा पुं० दे० 'अतर्धान'। उ०—इम कहिय ईस हुअ अत्रध्यान, जग्गयौ राज भौ वर विहान।—पृ० रा० ६६।१६६६।

अत्रपाचक—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्रपाचक] एक औषधोपयोगी क्षुप जिसके छाल, सार और निर्यास का प्रयोग होता है [को०]।

अत्रवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्लिका] महिषवल्ली [को०]।

अत्रवल्ली—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्ली] सोमवल्ली लता [को०]।

अत्रविकूजन—सज्ञा पुं० [सं० अन्त्रविकूजन] दे० 'अत्रकूजन' [को०]।

अत्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवृद्धि] आँत उतरने का रोग। आँत का उतरकर अडकोश मे चले जाना।

अत्रस्रज—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रस्रज्] आँतो की माला, जो नरसिंह ने धारण की थी [को०]।

अत्राडवृद्धि—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्राण्डवृद्धि] एक रोग जिसमे आँत उतरकर अंडकोश मे चली आती हैं और फोता फूल जाता है।

अत्राद—सज्ञा पुं० [स० अन्त्राद] आँत का कीडा। अँतडियों मे रहकर उसे खानेवाला कृमि [को०]।

अत्रालजी—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रालजी] पीव से भरी एक प्रकार की ऊँची गोल फुंसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप से होती है।

अत्रि—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्र] अँतडी। आँत।

अत्री[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अन्त्री] एक वनौषधि का नाम। उदरशूल या पेट की वाई में दी जानेवाली औषधि का पौधा।

अत्री[2]—सज्ञा स्त्री० दे० 'अत्रि'।

अथवना⑤—क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०—जौ पच्छिम दिसि उय पुव्व अथवै दिनकर।—पृ० रा० ६१।१००६।

अदरसा⑤—सज्ञा पुं० दे० 'अँदरसा'। उ०—लौंग कपूर खाँडघृत धारे। अदरसे खटमिठे सिधारे।—सूर० परि० १, पृ० ५०।

अदरी—वि० [फा०, अन्दर + हिं० ई] भीतरी अदरूनी।

अदरूनी—वि० [फा० अदरूनी] भीतरी। भीतर का। आभ्यतरिक।

अदलीव—सज्ञा स्त्री० [अ०] बुलबुल। उ०—पूछे हैं फूलो फल की खबर अब तो अदलीब। टूटे झडे खिजाँ हुए फूले फले गए।—क० को०, भा० ४, पृ० १०८।

अदाज—सज्ञा पुं० [फा० अदाज] १ अटकल। अनुमान। उ०—गुप्त जी एक युग पहले का मध्यवर्गीय सतोष हमे सिखाते हैं, उन्हें आज की आग का अदाज नही है।—जय० प्र०, पृ० ८। २. कान। नापजोख। कूत। तखमीना। ३ ढब। ढग। तौर। तर्ज। उ०—इस्से यह बात नहीं निकलती कि बिलकुल मेहनत न करो सब काम अदाज सिर करने चाहिए। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८५।

क्रि० प्र०—करना। —लगाना। —होना।

मुहा०—अदाज उड़ाना = दूसरे की चाल ढाल पकडना। पूरी पूरी नकल करना।

४ मटक। भाव नाज। चेष्टा। ठसक उ०—अदाज अपना देखते हैं आइने मे वोह। और ये भी देखते हैं कोई देखता न हो।—शेर०, भा० १, पृ० ६०६।

अदाजन—क्रि० वि० [फा० अंदाज + अ० अन् (प्रत्य०)] १ अदाज से। अटकल से। तखमीनन २ लगभग। करीब।

अदाजपट्टी—सज्ञा पुं० [फा० अदाज + हिं० पट्टी (भूभाग)] खेत मे लगी हुई फसल के मूल्य कूतना। कनकूत।

अदाजपीटी—सज्ञा स्त्री० [फा० अदाज + हिं० पिटना (हैरान होना)] वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे। अपनी सुदरता और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री।

अंदाजा—संज्ञा पुं० [फा० अदाज़ह्] १ अटकल। अनुमान। २ कूत। नापजोख। परिमाण तखमीना। उ०—उपनिषद मे तो ब्रह्मानद के सुख के परिमाण का अदाजा कराने के लिये उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था।—इतिहास, पृ० ११।

अदिका—संज्ञा स्त्री० [स० अन्दिका] १ बडी बहन। अतिका। २ अँगीठी। वोरसी [को०]।

अदु—सज्ञा पुं० [स० अन्दु] १ पैर मे पहनने का स्त्रियों का एक गहना। पाजेब। पैरी। पैंजना। २ साँकडा। हाथी को बाँधने की साँकल। अलान। उ०—छुटे अदु हस्ती मदजा जरान। —पृ० रा०, १२।३२१। ३ बाँधने की रस्सी या जजीर।

अंदुक—सज्ञा पुं० [स० अन्दुक] दे० 'अदु'।

अदू—सज्ञा पुं० [स० अन्दू] बेडी। निगड। उ०—(क०) विरदावलि विरदाई पाय अदू कर ढीले। तामस बुझधन काज बोलि मधु बचन रसीले।—पृ० रा०, ६६।१६२८। (ख) क्रीडा समदू गज्ज अदू ग्राह फदू रच्चए। —राम० धर्म०, पृ० २६।

अदूक—सज्ञा पुं० [स० अन्दूक] दे० 'अदू' [को०]।

अदेश[1]—संज्ञा पुं० [फा० अदेशह्] सोच। चिंता। फिक्र। उ०—सिय अदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर। टूटत धनु नृप लूके जहाँ तहँ ज्यो तारागन भोर।— (शब्द०)।

अंदेश[२]—प्रत्य० [फा० अंदेश] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखनेवाला। द्रष्टा। जैसे, बद अंदेश। खैर अंदेश। दूर अंदेश आदि [को०]।

अंदेशा—संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] १. सोच। चिंता। फिक्र। उ०—मोमिन ये असर सियाह मस्ती का न हो। अंदेशा कभी बलद व पस्ती का न हो।—कविता कौ०, भाग ४, पृ० ४८७। २ संशय। अनुमान। संदेह। शक। ३ खटका। आशंका। भय। डर। ४ हर्ज। हानि। ५ दुविधा। असमंजस। आगा-पीछा। पसोपेश।

अंदेस(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंदेशा'। उ०—(क) कितक रूप गुन आगरो सुनत मोहि अंदेश।—पृ० रा०, १४।७। (ख) सो अंदेश होत मन मारें कब धौं मिलबौ आनि रे।—जग० बानी, भा० २, पृ० ३।

अंदेसडा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अंदेशा > अंदेस + डा (प्रत्य०)] दे० 'अंदेशा'। उ०—अंदेसडा न भाजिसी संदेसौ कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।—कबीर ग्र०, पृ० ८।

अंदेह(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंदेस'। उ०—पुत्र प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अंदेह।—पृ० रा०, १।१५३।

अंदोअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] हलचल। अंदोर। उ०—सुन अंदोअन राव दिठ। रिझ्झाए सब साइ।।—पृ० रा०, ६१।१२१६।

अंदोर—संज्ञा पुं० [सं० अन्दोल = हलचल] हलचल। शोर। हल्ला। कोलाहल। हुल्लड़। हल्लागुल्ला। उ०—झहरात झहरात दवानल आया। घेरि चहु ओर करि सार अंदोर बन धरनि आकास चहुँ पास छायो।—सूर०, १०।५९६।

क्रि० प्र०—करना = शोर मचाना। उ०—चीन्हो रे नर प्रानी याका निस दिन करत अंदोर।—कबीर श०, पृ० ११९।—मचना या होना = कोलाहल होना। उ०—बहु लौलीन होइ सब धुन करत है, घट घनघोर अंदोर ह्वै।—कबीर० रे०, पृ० २५।

अंदोरा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंदोर'।

अंदोल—वि० [सं० अन्दोलन] कंपित। हिलती डुलती। उ०—सुभ उच्च अंदोल बीच बिराज। मनो स्वर्ग आरोह सोपान साज।—पृ० रा०, ६।८३।

अंदोलना(पु)—क्रि० स० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०—मुष पाय पानि अंदोलि वारि। अच्चयौ अप्प आतम अधारि।—पृ० रा०, ६१।१६१७।

अंदोलित—वि० [सं० आन्दोलित] आंदोलित। हिली डुली। उ०—जल अंदोलित सो भई उदै होत वर भान।—पृ० रा०, २।९०।

अंदोह—संज्ञा पुं० [फा०] १. शोक। दुःख। रंज। खेद। उ०—सिंघ विनास्यौ धनिक सुत कन्या किय अंदोह।—पृ० रा०, १।३४८। २. तरद्दुद। खटका। असमंजस। संदेह।

अंद्रससत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशस्त्र] वज्र [डिं०]।

अंद्रि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अद्रि] अद्रि। पर्वत। उ०—अंबर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषदाई।—रामानंद०, पृ० १३।

अंध[१]—वि० [सं० अन्ध] १. नेत्रहीन। बिना आँख का। अंधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०—गुर सिष अंध बधिर कह लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा।—मानस, ७।९९। २. अज्ञानी। अजानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०—तव आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अंध मैं मंद व्यालादगामी।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफिल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०—ठौर ठौर झौरत झँपत भौंर भौंर मधु अंध।—बिहारी र०, ४९६। ५ प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष—समस्त पदों में ही प्रायः प्रयुक्त, जैसे कामांध, मोहांध, क्रोधांध, जन्मांध दिवांध, राज्यंध, मदांध आदि।

यौ०—अंधकूप। अंधखोपड़ी।

अंध[२]—संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अंधा। २. जल। पानी। ३ उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अंधकार। अंधेरा। ६. कवियों के बाँधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य संबंधी दोष। ७. ज्योतिष् के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अंधक—संज्ञा पुं० [सं० अन्धक] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अंधा। २ कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष—इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अंधों की नाईं चलने के कारण यह अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अंधकारि वा अंधकरिपु कहते हैं।

३. क्रोष्टा नामक यादव के पौत्र और युधाजित् के पुत्र।

विशेष—अंधक नाम की यादवों की शाखा इन्हीं से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवंशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४ बृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अंधकघाती—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकघातिन्] अंधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [को०]।

अंधकरिपु—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकरिपु] १. अंधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २ अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य। २ चंद्रमा। ४ अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अंधकशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकशत्रु] शिव [को०]।

अंधकार—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] १. अँधेरा।

विशेष—महा अंधकार को अंधतमस, सर्वव्यापी वा चारों ओर के अंधकार को सतमस और थोड़े अंधकार को अवतमस कहते हैं। २ अज्ञान। मोह। ३ उदासी। कांतिहीनता। जैसे—उसके चेहरे पर अंधकार छाया है (शब्द०)।

अंधकारमय—वि० [सं० अन्धकारमय] अंधकार से युक्त [को०]।

अंधकारसंचय—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारसञ्चय] घना अंधकार। महा अंधकार [को०]।

अंधकारि—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारि] शिव। शंकर [को०]।

अंधकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकारी] भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अधकाल(पु)--सज्ञा पुं० दे० 'अधकाला'।

अधकाला(पु)--सज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अधकार। अँधेरा। उ०—ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अधकाला।--सूर०, १० ८५५।

अधकासुहृद्—सज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अधकारि शिव [को०]।

अधकूप--सज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १ वह कूआँ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो। अधा कूआँ। सूखा कूआँ। अँधेरा कूआँ। उ०—यह कूप कूप भव अधकूप, वह रक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे।—तुलसी०, पृ० २८। २. अँधेरा। अधकार। उ०—जैसे अधो अधकूप मे गनत न खाल पनार। तैसेहि सूर बहुत उपदेसै सुनि सुनि गे कै बार।--सूर०, १।८४। ३ घनाधकार। निविड तम। अधागुप्प। उ०—अधकूप भा आवँ, उडत आव तस छार। ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार।--जायसी ग्र०, पृ० २२७। ४. एक नरक का नाम।

अधकूपता--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अँधेरापन। मूर्खता। अज्ञान। उ०—उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए।--चिंतामणि, भा० २, पृ० ५१।

अधकोठरी--सज्ञा स्त्री० [स० अन्ध+हिं० कोठरी] अँधेरा और तग कमरा (बोल०)।

अधखोपडी--वि० [स० अन्ध+हिं० खोपडी] जिसके मस्तिष्क मे बुद्धि न हो। मूर्ख। गाउदी। भोदू। अज्ञानी। नासमझ।

अधड़--सज्ञा पुं० [स० अन्ध+हिं० ड़ (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कडे झोके की वायु। वेगयुक्त पवन। आँधी। तूफान। उ०—अधड या बढ रहा प्रजादल सा झुँझलाता।—कामायनी, पृ० २००।

अधतम—सज्ञा पुं० [स० अन्धतमस्] घना अँधेरा। अँधेरागुप्प। उ०—जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अधतम मे बहते।--पल्लव, पृ० ५७।

अधतमस--सज्ञा पुं० [स० अन्धतमस्] दे० 'अधतम'। उ०—अधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खीच रहा।--कामायनी, पृ० २२७।

अधता--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धता] अधापन। दृष्टिहीनता। उ०—चल न सकै चाल लागे दुख दैन बाल बैन, लटपटे भए नैन अधता छई।--दीन० ग्र०, पृ० १३८।

अधतामस्--सज्ञा पुं० [स० अन्धतामस्] दे० 'अधतमस' [को०]।

अधतामिस्र--सज्ञा पुं० [स० अन्धतामिस्र] १. घोर अधकारयुक्त नरक। बडा अँधेरा नरक। २१ बडे नरको मे से दूसरा या १८ वाँ। २ जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (साख्य)।

विशेष--साख्य मे इच्छा के विघात अर्थात् जो इच्छा मे आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं। इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमे से अंतिम को अधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं।

३ योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशो मे से एक। मृत्यु का भय। अभिनिवेश। ४ मृत्यु के बाद आत्मा का अनस्तित्व [को०]।

अधत्व--सज्ञा पुं० [स० अन्धत्व] अधापन [को०]।

अधधी--वि० [स० अन्धधी] मूर्ख। नासमझ। मदबुद्धि [को०]।

अधधुध[1]--सज्ञा पुं० [स० अन्ध=अन्धकार+धूम=धूआँ अथवा अन्ध+धूनन (कपन हलचल), स० अन्ध+हिं० धुध] १ अधकार। अँधेरा। उ०--(क) अति विपरीत तृणावर्त आयो। वातचक्र मिस ब्रज के ऊपर नद पँवरि मे भीतर आयो। अधधुध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायो।--सूर०, (शब्द०)। (ख) काउ लै ओट रहत वृक्षन की अधधुध दिसि विदिसि भुलाने।--सूर०, १०। ८६०। २ अराजकता। अधेर। अनरीति। दुराचार। अनियमित व्यापार। उच्छृखल कर्म। उ०--ममुझि न परै तिहारी मधुकर, हम अजनारि गँवार। सूरदास ऐसी क्यो निबहै अधधुध सरकार।--सूर०, १०।३६०६।

अधधुध[2]--वि० विशाल। अपार। उ०—देखत मदध दसकध अधधुध दल बधु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरिबट।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३२।

अधधुध[3]—क्रि० वि० बहुत। अत्यधिक। उ०--अधधुध माँ बाप, रुवै रे, बहुरि नहीं अम अवसर पाय।--जग० श०, भा० २ पृ० ११०।

अधधू—सज्ञा पुं० [देश०] कूप। कूआँ [को०]।

अधपरपरा--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धपरपरा] बिना समझे बूझे पुरानी चाल का अनुकरण। एक को कोई काम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना। लीक पिटौअल। भेडियाधँसान।

अधपूतना--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धपूतना] दे० 'अधपूतना ग्रह'।

अधपूतनाग्रह--सज्ञा पुं० [स० अन्धपूतनाग्रह] बालको का रोगविशेष।

विशेष--इसमे वमन, ज्वर, खाँसी, श्याम आदि की अधिकता होती है। बालक के शरीर से चरबी की सी गध आती है और वह बहुत रोता है। दे० 'पूतना'।

अधप्रभजन--सज्ञा पुं० [स० अन्धप्रभजन] ऐसी तेज हवा जिसमे कुछ न सूझ पडे। आँधी। तूफान। उ०--बहता अधप्रभजन ज्यो, यह त्योही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चचल आकाश।—अनामिका, पृ० ६७।

अधवाई(पु)--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पडे। आँधी। तूफान।

अधमति--वि० [स० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला। नासमझ। मूर्ख। उ०—रे दसकध अधमति तेरी आयु तुलानी आनि।--सूर०, ६।७६।

अधमूषिका--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धमूषिका] 'देवताड' नामक पौधा।

विशेष--वैद्यक में माना गया है कि इसके सेवन से अधापन चला जाता है।

अधर(पु)--वि० [स० अन्धकार, अधार] अँधेरा। अधकारमय। प्रकाश रहित। उ०—नखत चहूँ दिसि रोवहि, अधर धरति अकास।--जायसी (शब्द०)।

अधराजा—पुं० [स० अधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र मे राजा के दो भेद किए हैं--एक अंधराजा दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझकर शास्त्र की मर्यादा का उल्लघन करता हो। इन दोनो मे चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है, जो योग्य मंत्रियो के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधरात्री--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्धरात्री] अंधेरी रात। अंधकार से काली रात [को०]।

अंधरोष--सज्ञा पुं० [सं० अन्ध + रोष] भीषण क्रोध। अतिक्रोध। उ०--भृकुटि के कुडल वक्र मरोर, फुहुँकता अंधरोष फन खोल।--पल्लव, पृ० १२१।

अंधल[1]--वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधल] अंधा। नेत्रहीन।

अंधल[2]--सज्ञा पुं० अंधकार। अंधेरा।

अंधली--सज्ञा स्त्री० [प्रा० अंधल] [पुं० अंधला] अंधी स्त्री। अंधी। उ०--अँधली आखिन काजल कीया। मुडली माँग सँवारे।--सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ८७३।

अंधविंदु--सज्ञा पुं० [सं० अन्धविन्दु] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नही करता और जिसके सामने पडी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानतंतु पीछे से आकर शिराओ के रूप मे फैले हुए हैं और मुडकर शंकु और छडियो के आकार मे हो गए हैं। मनुष्य की आँख मे इन शंकुओ की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है। ये छडियाँ वा शंकु आकार और रंग का परिज्ञान कराने मे काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पडे जहाँ कोई शंकु न हो तो कुछ देख नही पडता। यही स्थान अंधविंदु कहलाता है।

अंधविश्वास--सज्ञा पुं० [सं० अन्धविश्वास] बिना विचार किए किसी बात का निश्चय। बिना समझे बूझे किसी बात पर प्रतीति। संभव-असंभव विचाररहित धारणा। विवेकशून्य धारणा।

अंधश्रद्धा--सज्ञा पुं० [सं० अन्धश्रद्धा] बिना विचार की श्रद्धा। विवेकहीन आस्था। उ०--अंधश्रद्धा और अश्रद्धा आदि इसी के परिणाम हैं।--जय० प्र०, पृ० ५३।

अंधस--सज्ञा पुं० [सं० अन्धस] १ पका हुआ चावल। भात। २. भोजन (को०)। ३ जडी बूटी (को०)। ४ सोम नामक लता (को०)। ५ सोमरस (को०)। ६ रस (को०)। ७. घृत (को०)।

अंधसैन्य--सज्ञा पुं० [सं० अन्धसैन्य] अशिक्षित सेना। दे० 'भिन्नकूट'।

अंधा[1]--सज्ञा पुं० [सं० अन्धक, प्रा० अन्धअ] [स्त्री० अंधी] बिना आँख का जीव। वह जिसको कुछ सूझता न हो। वह जीव जिसकी आँखो मे ज्योति न हो। दृष्टिरहित जीव। उ०--जानता बूझा नहीं बूझि किया नहीं गौन। अंधे को अंधा मिला राह बतावै कौन।--कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४।

अंधा[2]--वि० १ बिना आँख का। दृष्टिरहित। उ०--अंधा बाँटे रेवडी फिर फिर अपने देय (कहावत) २. विचाररहित। अविवेकी। अज्ञानी। उ०--ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय। अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय।--कबीर सा० स०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०--करना।--बनना।--बनाना।--होना। भले बुरे का विचार खो बैठना। उ०--क्रोध मे मनुष्य अंध हो जाता है। (शब्द०)।

मु०--अंधा करना = (१) दे० 'अंधा बनाना' (२) शंका और जोश या आवेश से विवेकहीन बना देना। अंधा बनना = जान बूझकर किसी बात पर ध्यान न देना। अंधा बनाना = आँख मे धूल डालना। बेवकूफ बनाना। धोखा देना। अंधा मुल्ला टूटी मस्जिद = बुरे को बुरी चीज का मिलना। जैसे को तैसा मिलना। अंधा क्या चाहे दो आँखें = जरूरतमंद की अपनी जरूरत पूरी होने की आकांक्षा करना। अंधे की लकडी या लाठी = (१) एकमात्र आधार सहारा। आसरा। (२) वह लडका जो कई लडको मे बचा हो। इकलौता लडका। अंधे के हाथ बटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित रूप से प्राप्त होना। उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत से नही पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई --मान०, भा० १, पृ० ८२। अंधो मे काना राजा या सरदार = थोडी सी जानकारी से मूर्खो या अनजान लोगो के बीच श्रेष्ठ बनना। अंधो का राज = विवेकहीन शासन। उ०--राव रंक अंधा सबै फिर अंधो ही का राज --दरिया, बानी, पृ० ६।

३ मतवाला। उन्मत्त। जैसे--आदमी अपने मतलब मे अंधा है। ४ जिसमे कुछ दिखाई न दे। अंधेरा। प्रकाशशून्य।

यौ०--अंधा आइना = वह दर्पण जिसमे चेहरा साफ दिखाई न दे। धुंधला शीशा। अंधा कूआँ = (१) दे० 'अंधकूप' १। (२) लडको का एक खेल जो चार लकडियो से खेला जाता है। अंधा कूप = दे० अंधकूप'। उ०--तन मे जो अंधा कूप है। वोही तुम्हारा रूप है।--संत तुलसी, पृ० २५। अंधा घर = वह मकान जिसकी बाहरी रौनक खत्म हो चुकी हो। अंधा घोडा = उपानह। जूता (साधु फकीर)। अंधा चिराग = वह चिराग जिसकी ज्योति मे प्रसार न हो। धुंधली ज्योति का दीपक। अंधा तारा = नेपचून नामक तारा। अंधा दरबार = दे० 'अंधाराज'। अंधा दीया = दे० 'अंधा चिराग'। अंधा भैंसा = लडको का एक खेल जिसमे एक लडका दूसरे लडके की पीठ पर चढकर उसकी आँखे बंद कर लेता है और दूसरे लडके उस भैंसा बने हुए लडके के बीच से एक एक करके निकलते हैं। सवार लडका ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लडके का नाम पूछता जाता है। भैंसा बना हुआ लडका जिसका नाम ठीक बता देता है उसे फिर वह भैंसा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी करता है। अंधा राज = वह राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। अन्यायी राज्य। अंधा शीशा = दे० 'आइना'।

कहा०--अंधा गाए बहरा बजाए = जब किसी काम के करने मे अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हो। अंधी पीसे कुत्ता खाय = निष्प्रयोजन काम को बडे परिश्रम से करना। अंधे के आगे रोए, अपनी आँखें खोए = अरण्यरोदन। अंधे को दूर की सूझना = असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढकर काम करना या अनजान होकर भी जानकारो से भी अधिक समझ की बात बताना।

अंधाई--सज्ञा स्त्री० [हि० अंधा + ई] अंधापन। विवेकहीनता। उ०--भेष रता अंधा सबै अंधाई का राज।--दरिया बानी, पृ० ३६।

अधाधुंध[1]--सज्ञा स्त्री० [हिं० अधा + धुंध] १ बड़ा अँधेरा। घोर अधकार। उ०—अधाधुंध भयो सब गोकुल, जो जहँ रह्यो सो तहीं छपायो।--सूर० १०।७७। २ अँधेर। अविचार। अन्याय। गड़बड़। धींगाधींगी। कुप्रबंध। भौंसा। उ०—वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अधाधुंध मची है (शब्द०)।

अधाधुंध[2]—वि० बिना सोच विचार का। विचारशून्य। बेधड़क। बेहिसाब। बेअंदाज। बेठिकाने। उ०—वह किसी कोरे स्वप्न-द्रष्टा की काल्पनिक अधाधुंध उड़ान नहीं है।--जय० प्र०, पृ० ४।

अधाधुंध[3]— क्रि० वि० १ बिना सोचे विचारे। बेरोकटोक। बेतहाशा। मारामार। उ०—अधाधुंध धर्म के मारग सब जग गोते खाता।—संत तुरसी०, पृ० २२३। २ अधिकता से। बहुतायत से, जैसे—वह अधाधुंध दौड़ा आता है। वह अधाधुंध खाए चला जाता है। (शब्द०)।

अधानुकरण—सज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुकरण] बिना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अधानुवृत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + अनुवृत्ति] दे० 'अधानुकरण'। उ०—'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ' नामक लेख में अपनी अधानुवृत्ति और अनगलता से 'न भूमि स्यात्-सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्' का अनुवाद यों दिया है--भूमि व्यक्तिगत सपत्ति नहीं है —काव्य प० प्र०, पृ० ४०।

अधानुसरण--सज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुसरण] दे० 'अधानुकरण'। उ०—उन्होंने भारतीय परपरा को मानते हुए भी अधानुसरण' कहीं नहीं किया है--रस०, पृ० ५।

अधार⑤—सज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधआर, अधार] दे० 'अधकार'। उ०—गिरद्द उडी भांन अधार रैन।—पृ० रा०, २०।६५।

अधारी[1]⑤--वि० [प्रा० अन्धार + हिं० ई (प्रत्य०)] अधकारयुक्त। अँधेरी। अँधेरिया। उ०--अधारी दारुन निसा, भू सपनतर आइ।—पृ० रा०, १७।७१।

अंधारी[1]—सज्ञा स्त्री० घोड़े, हाथी अथवा बैलों की आँखों पर डालने का पर्दा। अँधेरी। उ०--इभ कुभ अधारी कुच सुकचुकी, कवच सभु काम क कलह।—बेलि, दू० ६०।

अधालजी— सज्ञा स्त्री० [सं० अन्धालजी] अतर्मुख फोड़ा। अधा फोड़ा। अतर्मुख पिटक [को०]।

अंधाहि[1]--सज्ञा पुं० [सं० अन्धाहि] विषहीन सर्प [को०]।

अधाहि[2]--सज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली। कूचिका [को०]।

अधाहिक--सज्ञा पुं० [सं० अन्धाहिक] एक विषरहित सर्प [को०]।

अधाहुली--सज्ञा स्त्री० [सं० अधपुष्पी] चोरपुष्पी नामक क्षुप। दे० 'चोरपुष्पी'।

अधिका--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्धिका] १ रात। रात्रि। २ द्यूत। जूआ का खेल। ३ एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४ आँख का एक रोग। ५. सर्षपी जिसके अत्यत सेवन से दृष्टिक्षय होता है (को०)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को०)।

अधियारी--सज्ञा स्त्री० [सं० अधकार प्रा० अन्धआर, अन्धयार + हिं० ई (प्रत्य०)] १ अधकार। अँधेरा। २ वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, शिकारी पक्षियों और चीते आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी का देखकर उपद्रव न करें।

अधी[1]--सज्ञा स्त्री० [हिं० पुं० अधा, स्त्री० अधी] बिना आँख की स्त्री। जो स्त्री देख न सके।

अधी[2]—वि० स्त्री० १ दृष्टिहीन। विवेकशून्य। विचाररहित।

यौ०--अधी सरकार = १ राज्य जिसका प्रबंध दूषित हो। २ मालिक जो नौकरों को तनख्वाह ठीक समय पर न देता हो।

मुहा०--अधी बैठना = बिना अदाज के कहीं बात का ठीक होना। बिना अदाज के किसी चीज का ठीक स्थान पर बैठना। उ०--एक बार उनकी अधी बैठ गई तो सब जगह उसे काम ही दिखाने लगी।—अपरे०, पृ० १५०।

३. प्रकाशहीन। अधकारपूर्ण। उ०—जहाँ युगानयुग की एक बड़ी अधी गुफा थी।--प्रेमसागर (शब्द०)। ४ मतवाला। उन्मत्त।

अधु[1]--सज्ञा पु० [सं० अन्धु] १. कूआँ। कूप। २ छिद्र। पुरुष की जननेंद्रिय [को०]।

अधु[2]—वि० अँधेरा। प्रकाश का अभाव। प्रकाशहीन। उ०—मुख-दाता मुक्ति गृह बधु। तुम्हारी कृपा बिनु सब जग अधु।—सूर०, १०।१८०।

अधुल—सज्ञा पुं० [सं० अन्धुल] गिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

अधूला⑤—वि० दे० 'पधना'। उ०—पाँचे मिलकर अँधूले, बाजी मुल्ला कारू। तिनों पास न भिटीयै, जो नजदे दे चोरू।--सतबानी०, पृ० ७०।

अधेर--सज्ञा पुं० [सं० अन्धकार (अन्ध इव करोति-इति), प्रा० अधयार < अन्धइयार, अप०, पुं० हिं० अधेर, अधियार] १. अन्याय। अविचार। अत्याचार। जुल्म। २ उपद्रव। गड़बड़। कुप्रबंध। भौंसा। अधाधुंध। धींगाधींगी। अनर्थ।

क्रि० प्र०—करना।--मचाना --होना = अविचार या गड़बड़ होना। धींगाधींगी होना। उ०--इनकी फिरंगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक न हिली और हम आपस में कटे मरते हैं, क्या अधेर है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

अधरखाता--सज्ञा पुं० [हिं० अधेर + खाता] १ हिसाब किताब और व्यवहार में गड़बड़ी। व्यतिक्रम। २ अन्यायाचार। अन्याय। अविचार। कुप्रबंध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार।

अंधेरगर्दी--सज्ञा स्त्री० [हिं० अधेर + फा० गर्दी] बेहद अधेर। अनाचार (बोल०)।

अधेरनगरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अधेर + सं० नगरी] १. वह स्थान, सस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्याय-पूर्ण राज्य। २. अशाति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ०—अधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा। --भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अधरा—सज्ञा पुं० [हिं० अधेर + आ (प्रत्य०)] गड़बड़। अधेर। अनर्थ। अन्याय। उ०—महामत्त बुधिबल की हीनौं देखि करै अधेरा।—सूर० १। १८६।

अंधेरी¹--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधेरी'।

अंधेरी²--संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान।

अध्यार Ⓤ†--संज्ञा पु० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] अँधियार। अँधेरा।

अध्यारी Ⓤ†--संज्ञा० स्त्री० दे० 'अँधियारी'¹।

अध्र--संज्ञा पुं० [स० अन्ध्र] १ बहेलिया। व्याधा। शिकारी। २ वैदिहिक पिता और मागधी माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे। ३ दक्षिण का एक देश जिसे आंध्र तिलंग भी कहते हैं। इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण में कृष्णा नदी है। आंध्र देश। ४ अंध्र देश के निवासीजन ५ मगध का एक राजवंश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कण्व वंश के अंतिम राजा को मारकर स्थापित किया था। अंध्र वंश का अंतिम राजा पुलोम था।

अंध्रभृत्य--संज्ञा पु० [स० अन्ध्रभृत्य] मगध देश का एक राजवंश।

विशेष--अंध्रवंश के अंतिम राजा पुलोम के गंगा में डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचंद्र और फिर प्रतापचंद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे। इन सेनापतियों का वंश अंध्रभृत्य कहलाया।

अन Ⓤ--संज्ञा पु० [स० अन्न] दे० 'अन्न'। उ०--(क) अन का मास अग्नि का हाड तत का भपिवा बाई --गोरख० पृ० ४१। (ख) पंच दिवस च्यारी बरन भुजत अन अपार।--पृ० रा०, १४।१२०।

यौ०--अनदान=अन्न दान करने का कार्य। उ०--करि सनान गंगोदकहू दिय सु गाइ दस दान। दस तोला तुलि हेम दिय अनदान अ [प्र] मान।--पृ० रा०, ६।१३१।

अननास Ⓤ--संज्ञा पु० दे० 'अनन्नास'। उ०--सु अननास जीरय। सतूतय जँभीरय ॥--पृ० रा०, ५६।६।

अनी Ⓤ--संज्ञा स्त्री० दे० 'अनी'। उ०--दिसा वाइय साद हुस्सेन अनी। --पृ० रा० ६ १४०।

अनेक Ⓤ--वि० दे० 'अनेक'। उ०--अनेक भाव दिप्पहिं सु दिव, दिव दिवान दुंदुभि बजइ।--पृ० रा०, १४।७३।

अन्य Ⓤ--वि० दे० 'अन्य'। उ०--और बधाई ऊमरा करी आइ सुरतान। अन्य सबन कीनी पयर पुजिय पीर ठटान।--पृ० रा०, ६।२१०।

अन्योअन्य Ⓤ--सर्व दे० 'अन्योन्य'। उ०--अन्योअन्य सहं नाम।--पृ० रा०, ६।८६।

अब¹ Ⓤ--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बा] अंबा। माता। उ०--कबहुंक अंब अवसर पाइ'--तुलसी ग्रं०, पृ० ४७५।

अंब² Ⓤ--संज्ञा पुं० [स० आम्र, प्रा० अम्ब, अंब] दे० 'आम्र'। आम का पेड़ या फल। उ०--अंब सुफल छाँडि कहाँ सेमर को धाऊँ। --सूर० १।१६६।

अंब³--संज्ञा पु० [स० अम्ब] १ पिता। २ स्वर। ३ स्वर करनेवाला। ४. आँख। वेद। ५ तांबा [को०]। ६. आकाश। उ०--ग्रीषम भाजै गात अंब बरसात उलट्टौं।--रा० रू, पृ० ३४३। ७ जल। उ०--हरिचरन अंब अंजुली कीन।--पृ० रा०, १।३६६।

अंब⁴ Ⓤ--संज्ञा पु० [स० अम्बु] रक्त। खून। रुधिर। उ०--अरि अंब अंचन अंगथि करार।--पृ० रा०, ६१।२२३।

अंबक--संज्ञा पु० [स० अम्बक] १ आँख। नेत्र। उ०--नव अंबुज अंबक छवि नीकी'--मानस १।१४७।

यौ०--त्र्यंबक=शिव।

२ पिता। ३ तांबा। ४ शिवनेत्र [को०]।

अंबखास Ⓤ--संज्ञा पुं० दे० 'आमखास'। उ०--सावंत नै साहि अंबपास मे बुलाया। हाजिर उमराव मीर सो तमाम आया --शिखर०, पृ० ६२।

अंबजा Ⓤ--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा]-कमलिनी। उ०--अलीन जुथ्थ आवर। मनो विहंग सावर। चुवंत पत्त रत्त जा। उवंत जानि अंबजा।--पृ० रा० २५।३२४।

अंबडि Ⓤ--संज्ञ पुं० [सं० अम्बर] अंबर। आकाश। उ०--तिस अंबडि कोय न सकई उहु ऊंचा अपरु अपार।--प्राण०, पृ० २०८।

अंबमौर--संज्ञा पुं० [स० अम्ब+मुकुर, प्रा० अंब+मउर] आम्र की मंजरी। बौर। उ०--बन उपवन फुल्लहि अति घठौर। रहे जोर मौर रस अक्कमौर॥--ह० रा०, पृ० १८।

अंबया--संज्ञ स्त्री० [स० अम्बया] १ माता (कोषी०)।

अंबर¹--संज्ञा पुं० [स० अम्बर] १ आकाश। आसमान। शून्य। उ०--अंबर कुंजा कुरलियां गरजि भरे सब ताल।--कबीर ग्रं०, पृ० ७।

मुहा०--अंबर के तारे डिगना=आकाश से तारे टूटना। असंभव बात का होना। उ०--अंबर के तारे डिगैं, जूआ लाहै बैल। पानी में दीपक बलै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०)।

यौ०-अंबरचर=(१) पक्षी। (२) विद्याधर। अंबरचारी=ग्रह। अंबरद=कपास। अंबरपुष्प=आकाशकुसुम। अंबरशैल=ऊँचा पहाड़। अंबरस्थली=पृथ्वी।

२ बादल। मेघ (डिं०)। उ०--आषाढ मे सोवै परी सब खाव देखै कामिनी। अंबर नवै, बिजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी--(शब्द०)। ३ वस्त्र। कपड़ा। पट। उ०--नभ पर जाइ विभीषन तबही। गहि दिए मनि अंबर सबही।--मानस, ७।११६। ४ स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरंगी किनारेदार धोती। उ०--करपत सभा द्रुपद तनया की अंबर अछय कियो। --सूर० १।१६१। ५ कपास। ६ अभ्रक धातु। अंबरक। ७ राजपूताने का एक पुराना नगर (संभवत जयपुर की राजधानी आमेर)। ८ प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश। ९ शून्य (को०)। १० गंध द्रव्य। कश्मीरी केसर। उ०--पचीस छाव अंबर, असीम मुक्कली भर।--पृ० रा०, ६६।५८। ११ परिधि। मंडल (को०)। १२ पड़ोस। सामीप्य। पास का देश (को०)। १३ ओष्ठ। ओठ (को०)। १४ दोष। बुराई (को०) १५ हाथियों का नाश करने- वाला (को०)।

अवर[2]--सज्ञा पुं० १ एक सुगधित वस्तु।

विशेष--यह ह्वेल मछली की तथा कुछ और समुद्री मछलियो की अँतड़ियो मे जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और चीन के समुद्री किनारो पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेल का शिकार भी इसके लिये होता है। अबर बहुत हल्का और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा आँच दिखाने रहने से बिलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियो मे होने के कारण यह नीकोबार (कालापानी का एक द्वीप) तथा भारत समुद्र के और और टापुओ से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इसमे राजसिंहासन का सुगधित किया जाना लिखा है। उ०--जिनन पास अबर है इस शहर बीच। खरीद करनहार है सब वही च।--दक्खिनी०, पृ० ७६। २ एक इत्र। उ०--तेन फुलेल सुगध उबटनो अबर अतर लगावै रे।--भक्ति०, पृ० ३६०।

अवर[2] ⑤--सज्ञा पुं० [स० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अबरि] अमृत। सुधा।--अनेकार्थ०, पृ० ११४।

अवर[3] ⑤--सज्ञा पुं० [अ० अमारी, हिं० अबारी] हाथी की पीठ पर का हौदा जिसपर छज्जेदार मडप होता है। अबारी। उ०--चढी चौटोल अबर। मनो कि मेघ घुम्मर।--पृ० रा०, ६६।५७।

अवरग--वि० [स० अम्बरग] आकाशगामी [को०]।

अवरचर[1]--वि० [स० अम्बरचर] आकाशगामी [को०]।

अवरचर[2]--सज्ञा पुं० १ पक्षी। खग। २ विद्याधर [को०]।

अवरचारी--वि० [स० अम्बरचारी] ग्रह [को०]।

अवरडवर--सज्ञा पुं० [स० अम्बर + हिं० डबर] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा मे दिखाई देती है। उ०--बिनमत बार न लागई ए छे जन की प्रीति। अबर डबर साँझ के ज्यो बादल की भाँति।--स० सप्तक, पृ० ३१२।

अवरद--सज्ञा पुं० [स० अम्बरद] कपास [को०]।

अवरपुर--⑤ सज्ञा पुं० [स० अम्बरपुर] आकाश। उ०--आरोपि प्रथ्वि अबरपुरह सत माइर ससै परिय। कहि चद दद करि दैत सों धरनिधार अद्धर धरिय।--पृ० रा०, २।१५३।

अवरपुष्प--सज्ञा पुं० [स० अम्बरपुष्प] आकाशकुसुम। असभव बात। खपुष्प। अस्तित्वहीन पदार्थ। [को०]।

अवरवानी--सज्ञा पुं० [स० अम्बर (=मेघ) + वानी] मेघगर्जन। बादलो का गर्जन। उ०--अबरबानी भई मजल बादर दल छए।--सूर० (राधा०), ४८०६।

अवरवारी--सज्ञा स्त्री० [स० अमरवल्लरी, प्रा० अम्मर वाली] एक झाड़ी।

विशेष--यह हिमालय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड और छाल मे बहुत ही अच्छा पीला रग निकलता है जिससे कभी कभी चमड़ा भी रँगते है। इसके बीज मे तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दारुहल्द या दारुहल्दी कहते है, औषधियो मे काम आती है तथा इसकी जड और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं जो रसवत या रसौत कहलाता है। पर्या०--चित्रा। दारुहल्द। आँबाहरदी अमाहरदी)।

अवरबेल--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली] दे० अम्बरबेलि'।

अवरबेलि--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली प्रा०, अमरवल्ली] आकाश बेल। आकाश बौर। अमरबेल।

विशेष--हकीमी नुसखो मे इसे इफ्तीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक बेल जो प्राय पेडो पर लिपटी मिलती है जिसकी जड पृथ्वी मे नही होती और इसमे पत्ते और कनखे भी नही निकलते। जिस पेड पर यह पड जाती है उसे लपेटकर सुखा डालती है। यह बाल बढाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगो मे देते हैं।

अवरमणि--सज्ञा पुं० [सं० अम्बरमणि] आकाश के मणि अर्थात सूर्य।

अवरमाला--सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरमाला] मोतियो की विशेष प्रकार की माला। उ०--अबरमाला इक्क अक्क पहिराइ कह्यो इह।--पृ० रा०, ७।२६।

अवरयुग--सज्ञा पुं० [सं० अम्बरयुग] स्त्रियो का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [को०]।

अवरलेखी--वि० [स० अम्बरलेखिन्] आकाशस्पर्शी। गगनचुबी [को०]।

अवरशैल--सज्ञा पुं० [स० अम्बरशैल] अति उच्च पर्वत। बहुत ऊँचा पहाड [को०]।

अवरसारी--सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कर या टैक्स जो पहले घरो के ऊपर लगता था।

अवरस्थली--सज्ञा स्त्री० [स० अम्बरस्थली] पृथ्वी [को०]।

अवरात--सज्ञा पुं० [स० अम्बरान्त] १ कपडे का छोर। २ वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अवराधिकारी--सज्ञा पुं० [स० अम्बराधिकारी] अबर या परिधान का अध्यक्ष [को०]।

अवरीक⑤--सज्ञा पुं० [स० अम्बरीष, देश० अबरीख > अबरीक] दे० 'अबरीष'। उ०--माफ करे अबरीक बचोगे तब दुर्वासा।--पलटू०, १।१६।

अवरीष--सज्ञा पुं० [स० अम्बरीष] १ भाड। २ वह मिट्टी का बरतन जिसमे भडभूजे लोग गरम बालू डालकर दाना भूनते हैं। ३ विष्णु। ४ शिव। ५, सूर्य। ६ किशोर अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। ७ एक नरक। ८ अयोध्या के एक सूर्यवशी राजा।

विशेष--ये प्रशुश्रुक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से २८वी पीढी मे हुए थे। पुराणो मे ये परम वैष्णव प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हरिवश मे अबरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है।

९ आमडे का फल और पेड। १० अनुताप। पश्चात्ताप। ११ समर। लडाई। १२ छोटा जानवर। बछडा [को०]।

अवरीसक--सज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] भाड। भरसायँ (डि०)।

अवरौक--सज्ञा पुं० [स० अम्बरौक] देवता।

अवरौकस्--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरौक] दे० 'अवरौक [को०]।

अवल--संज्ञा पुं० [सं० अम्ल, हिं० अवल] १ मादक पदार्थ। अमल। २ खट्टा रस। अवल।

अवला--संज्ञा स्त्री० दे० 'अबला'। उ०--साँझ समय राइ बोलसी। हँसि हँसि बोल (ई) अवला मूँध।--वी० रासो०, पृ० १६।

अवली--संज्ञा स्त्री० दे० 'अमली'--२। उ०--'आव अंवली रे अवली, ववूर चढी नग बेली रे।--कबीर ग्र०, पृ० ११२।

अवष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अम्बष्ठ] [स्त्री० अम्बष्ठा] १ एक देश का नाम पजाब के मध्य भाग का पुराना नाम। २ अवष्ठ देश मे बसनेवाला मनुष्य। ३ ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न एक जाति। इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे। ४. महावत। हाथीवान। फीलवान। हस्तिपक। ५ कायस्थो का एक भेद।

अवष्ठकी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठकी] दे० 'अवष्ठा'।

अवष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा] १ अवष्ठ जाति की स्त्री। २. एक लता का नाम। पाढा। ब्राह्मणी लता। ३ जूही (को०)। ४. अवाडा (को०)। ५ चूक (को०)।

अवष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठिका] ब्राह्मी लता [को०]।

अवहर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर, डिं० अदहर] मेघ बादल। उ०--चातक रटै बलाहकि चचल। हरि सिणगारै अवहर। बेलि०, दू० १६४।

अवा[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] १ माता। जननी। माँ। अम्मा। उ०--जौं सिय भवन रहइ कह अवा। मोहि पहँ होइ बहुत अवलवा।--मानस, १।६०। २. गौरी। पार्वती। देवी। दुर्गा। ३ अवष्ठा। पाढा। ४ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सबसे बडी कन्या।

विशेष--काशिराज की तीन कन्याओ को भीष्म पितामह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। अवा राजा शाल्व के साथ विवाह करना चाहत थी। इससे भीष्म ने उसे शाल्व के पास भिजवा दिया। पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया और वह हताश होकर भीष्म से बदला लेने के लिये तप करने लगी। शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू दूसरे जन्म मे बदला लेगी। यही दूसरे जन्म मे शिखडी हुई जिसके कारण भीष्म मारे गए।

५ ससुर खदेरी नदी।

विशेष--यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोडी दूर पर यमुना मे मिली है। ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज की बडी कन्या अवा है, जो गगा के शाप से नदी होकर भागी थी।

अवा[2]--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अव] आम। रसाल। उ०--मारू अवा मउर जिम, कर लगइ कुँमलाइ।--ढोला०, दू० ४७१।

यौ०--अवाझोर=तीखे और लगातार चलनेवाली हवा जिससे पेडो से आम के फल गिर जायँ (बैस०)।

अवाडा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बाडा] माता। जननी [को०]।

अवापोली--संज्ञा स्त्री० [सं० यौ० आम्र + पौलि > प्रा० अवा + पोली=रोटी, पोतला] अमावट। अमरस।

अवावन--संज्ञा पुं० [स० अंबा + वन] इलावृत खड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था। उ०--पुनि सुद्युम्न वसिष्ठ सौ कह्यौ। अवावन मैं तिय ह्वै गयौ।--सूर०, ९।२।

अवायु--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बायु] १ माता। जननी। २ भद्र या शिष्ट महिला [को०]।

अवार--संज्ञा पुं० [फा०] ढेर। समूह। राशि। अटाला। उ०--रीढ़ वकिम किए निश्चल किंतु लोलुप खडा वन्य विलार, पीछे, गोयठो के गधमय अवार।--इत्यलम्।

अवारखाना--संज्ञा पुं० [फा०] गोदाम। भडार। कबाडखाना [को०]।

अवारी[1]--संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] १. हाथी के पीठ पर रखने का हौदा। २ (ऊँट के पीठ का) मोहमिल जिसके ऊपर एक छज्जेदार मडप बना रहता है। उ०--कुदन नगन जटित अवारिय।--प० रा०, पृ० ११२। ३ छज्जा। मडप।

अवारी[2]--संज्ञा स्त्री० पटमन। (दक्षिण)।

अवालय--संज्ञा पुं० [स० अम्बालय] अबाला शहर। उ०--सो रूपमुरारीदास अवालय मे एक खत्री के जन्मे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४१।

अवाला--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बाला] माता [को०]।

अवालिका--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बालिका] १ माता। माँ। जननी। २. अवष्ठा लता। पाढा। पाठा। ३ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सबसे छोटी।

विशेष--इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब पाडु उत्पन्न हुए।

अवाली--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बाली] माता [को०]।

अविका--संज्ञा स्त्री० [स० अम्बिका] १ माता। माँ। उ०--अविका माता को कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन को कहिये तातें विरुद्ध मतिकृत भयो।--भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० २२५। २ दुर्गा। भगवती। देवी। पार्वती। उ०--बासी नरनारि ईस अविका सरूप हैं।--तुलसी ग्र०, पृ० २४१। ३ जैनो की एक देवी। ४ कुटकी का पेड। ५ अवष्ठा लता। पाढा। ६. काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्याओ मे मझली।

विशेष--भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओ को हर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए।

अविकापति--संज्ञा पुं० [स० अम्बिकापति] शिव [को०]।

अविकापुत्र--संज्ञा पुं० [स० अम्बिकापुत्र] काशिराज की मझली कन्या अविका के पुत्र धृतराष्ट्र [को०]।

अविकावन--संज्ञा पुं० [स० अम्बिकावन] १ इलावृत खड मे एक पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे। उ०--एक दिवस सो अबेटक गयौ। जाइ अविकावन तिय भयौ।--सूर०, १।२। २ व्रज के अनर्गत एक वन।

अविकालय--संज्ञा पुं० [स० अम्बिकालय] देवी का मदिर। उ०--पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अविकालय नगर आरात।--बेलि०, दू० ६६।

अविकासुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकासुत] धृतराष्ट्र। अंबिकापुत्र [को०]

अविकेय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकेय] अंबिका के पुत्र—१ गणेश। २. कार्तिकेय। ३. धृतराष्ट्र।

अविष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा+'जूही'] राजवल्ली।—नद० ग्र०, पृ० १०५।

अबु[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] १ जल। पानी। उ०—अबु तू हौं अबुचर, अब तू हौं डिंभ।—तुलसी ग्र०, पृ० २६६। २. आँसू। अश्रु। उ०—सारगमुख ते परत अबु ढरि मनु सिव पूजति तपति विनास।—सा० लहरी, पृ० १७३। ३ रक्त का जलीय तत्व (को०)। ४ सुगंधवाला। ५ कुडली के बारह स्थानो या घरो मे चौथा। ६ चार की संख्या, क्योंकि जल तत्वो की गणना मे चौथा है। ७ एक छंद (को०)।

अबु[2]—संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम। रसाल। उ०—जबू वृक्ष कहौ क्यो लपट फलवर अबु फरै।—सूर० (राधा०), ३३११।

अबुअ Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक, प्रा० अबुअ] जल। पानी। उ०—उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बहुरि पवन अबुअ उपजावा।—हिं० प्रेमा०, पृ० २२६।

अबुकटक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण्टक] जलजतुविशेष। मगर।

अबुक[1] Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक ?] मछली। मास। उ०—सुरा पान अबुक भखे, नित्त कर्म विभिचार।—दया० बानी, पृ० २८।

अंबुक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्बक] आँख। नयन। उ०—पहिले घन के अबुक माहीं। अजन स्याम रहा है नाही।—इद्रा०, पृ० ७१।

अबुकण—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण] जलबिंदु। पानी का छीटा [को०]।

अबुकिरात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरात] एक जलजतु। मगर।

अबुकीश—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकीश] एक जलजतु। सूस। शिशुमार।

अबुकूर्म—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकूर्म] दे० 'अबुकीश' [को०]।

अबुकेशर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशर] नीबू का पेड [को०]।

अबुकेशी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशी] एक जलजतु। ऊद। ऊदबिलाव।

अबुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुक्रिया] पितृतर्पण [को०]।

अबुग[1]—वि० [सं० अम्बुग] पानी मे निवास करनेवाला। जलचर [को०]।

अबुग[2]—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अबुघन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुघन] उपल। ओला। बनौरी [को०]।

अबुचत्वर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु+चत्वर] झील [को०]।

अबुचर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचर] जलचर। उ०—अबु तू हौ अबुचर, अब तू हौं डिंभ।—तुलसी ग्र० भा० २, पृ० २५६।

अबुचामर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामर] शैवाल। सेवार।

अबुचारी[1]—वि० [सं० अम्बुचारिन्] जलचर [को०]।

अंबुचारी[2]—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अबुज[1]—वि० [सं० अम्बुज] जल मे उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अंबुज[2]—संज्ञा पुं०, १ जल से उत्पन्न वस्तु या जतु। २. कमल। जलज। उ०—नव अबुज अबक छवि नीकी।—मानस १।१४७। ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड। हिज्जल। ईजड। पनिहा। ४. वेत। ५ वज्र। ६ ब्रह्मा। ७. शख। ८. चंद्रमा (को०)। ९ सारस नाम का पक्षी (को०)।

अंबुजतात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजतात] ब्रह्मा। उ०—सुनि के बोल्यो अबुज तात। सुनहु अमरगन मो तैं बात।—नद० ग्र०, पृ० २२०।

अबुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अबुजन्मन्] कमल [को०]।

अबुजसुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजसुत] ब्रह्मा। अबुज तात। उ०—अबुज सुत उमया विलोकि, वेद पढ़त खलि बीरज।—पृ० रा०, ६१।३१५।

अबुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] १ एक रागिनी जिसे संगीतशास्त्र वाले मेघ राग की पुत्रवधू कहते हैं। २ सरस्वती। उ०—तुही अबुजा अबुकामिन्नि काम।—पृ० रा० २४। ३ कमलिनी। उ०—ढरत रक्त एडिय। उपम्म कव्वि टेरिय। मनौ कि रक्त रत्तजा। चिकत पत्र अबुजा —पृ० रा०, २५।३३०।

अबुजाक्ष[1]—वि० [सं० अम्बुजाक्ष] कमल के समान नेत्रवाला।

अबुजाक्ष[2]—संज्ञा पुं० विष्णु।

अबुजाक्षी—वि० स्त्री० [सं० अम्बुजाक्षी] कमल जैसी आँखवाली [को०]।

अबुजात[1]—वि० [सं० अम्बुजात] जल मे उत्पन्न।

अबुजात[2]—संज्ञा पुं० कमल। दे० अबज।

अबुजासन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजासन] वह जिसका आसन कमल पर हो। ब्रह्मा।

अबुजासना—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजासना] वह स्त्री जिसका आसन कमल पर हो। लक्ष्मी। कमला सरस्वती।

अबुजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजिनी] कमलिनी [को०]।

अबुतस्कर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुतस्कर] सूर्य [को०]।

अबुताल—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुताल] शैवाल सेवार।

अबुद[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद] १ जल देनेवाला—बादल मेघ। उ०—विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखन अबुद आट दिये।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २७२। २ मोथा। नागरमोथा।

अबुद[2]—वि० जल देनेवाला। जो जल दे।

अबुदेव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदेव] १ वे लोग जो जल को देवता मानते हैं। २. ज्योतिष के अनसार पूर्वाषाढ का एक विभाग [को०]।

अबुदैव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदैव] दे० 'अबुदेव' [को०]।

अबुधर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधर] जल को धारण करनेवाला—मेघ। बादल। उ०—नव अबुधर बर गात अबर पीत सुर मन मोहई।—मानस, ५।१२।

अबुधर[2]—वि० जल को धारण करनेवाला।

अबुधार—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधार] जलधारा। उ०—कुतल चिहुर चुवहिं ज्यों घाला। अबुधार कैधो अलिमाला।—माधवानल०, पृ० १९०।

अबुधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधि] १ समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)। ३. जलपात्र (को०)।

अबुधिकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिकामिनि] समुद्र की स्त्री या नदी [को०]।

अबुधिस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवा] घृतकुमारी। घीकुआँर। ग्वारपाठा।

अबुनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनाथ] १. समुद्र। सागर। २. वरुण देवता।

अंबुनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनिधि] समुद्र । सागर ।

अंबुनिवह[1]—वि० [सं० अम्बुनिवह] जल ले जानेवाला [को०] ।

अंबुनिवह[2]—संज्ञा पुं० बादल [को०] ।

अंबुनेत्रा—वि० स्त्री० [सं० अम्बुनेत्रा] आँसू भरी आँखोंवाली । अश्रुपूरित नेत्रोंवाली । उ०—आसीना थी निकट पति के अंबुनेत्रा यशोदा ।—प्रिय प्र०, (सर्ग १०) ।

अंबुप[1]—वि० [सं० अम्बुप] पानी पीनेवाला ।

अंबुप[2]—संज्ञा पुं० १. समुद्र । सागर । २ वरुण । ३ शतभिषा नक्षत्र । ४ चकवड का पौधा । चक्रमर्द । चकौंड ।

अंबुपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपक्षिन्] जल मे रहनेवाले पक्षी [को०] ।

अंबुपति—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपति] १ समुद्र । उ०—आनन अनल अंबुपति जीहा ।—मानस, ६।१५ । २ वरुण ।

अंबुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपत्रा] नागरमोथा । मोथा । उच्चटा ।

अंबुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपद्धति] जलमार्ग । धारा । जल प्रवाह । जलप्रपात [को०] ।

अंबुपात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपात] दे० 'अंबुपद्धति' [को०] ।

अंबुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपालिका] पनिहारिन । पानी भरनेवाली लडकी उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अंबुपालिका ।—अनामिका, पृ० १७७ ।

अंबुप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसाद] निर्मली । निर्मली का पौधा । गँदले पानी को साफ करनेवाली ओषधि । कतक ।

अंबुप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसादन] दे० 'अंबुप्रसाद' [को०] ।

अंबुबसा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासा] पाटल । पाडर ।—नददास ग्र०, पृ० १०२ ।

अंबुभव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभव] कमल [को०] ।

अंबुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभृत्] १. बादल । २ मोथा । ३ समुद्र । ४. अभ्रक ।

अंबुमत्—वि० [सं० अम्बुमत्] जलयुक्त [को०] ।

अंबुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुमती] एक नदी का नाम [को०] ।

अंबुमात्रज[1]—वि० सं० अम्बुमात्रज] जल मे ही उत्पन्न होनेवाला । जलीय [को०] ।

अंबुमात्रज[2]—संज्ञा पुं० घोंघा । शख । शबूक [को०] ।

अंबुर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुर] दरवाजे का काष्ठ । चौखट [को०] ।

अंबुरय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरय] धारा । प्रवाह [को०] ।

अंबुराज—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराज] दे० 'अंबुपति' [को०] ।

अंबुराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराशि] जल की राशि अर्थात् समुद्र । सागर ।

अंबुरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरुह] कमल ।

अंबुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहा] स्थल कमलिनी [को०] ।

अंबुरुहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहिणी] कमल । कमलिनी । कुई कोई [को०] ।

अंबुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरोहिणी] दे० 'अंबुरुहिणी' ।

अंबुल[1]—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल > प्रा० अम्मल > अंबल,] १ अम्ल । अम्बल । खट्टा रस । उ०—पन बहु अंबुल जंबुअ मेलि ।—पृ० रा०, ६३।१०६ । २ आम ।

अंबुल[2]—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] आमला [को०] ।

अंबुवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाची] आषाढ़ मे आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरभ के तीन दिन और २० घडी जिनमे पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और बीज बोने का निषेध है ।

यौ०—अंबुवाची त्याग = आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०] ।

अंबुवाची पर्व = आषाढ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०] ।

अंबुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिनी] पुष्पविशेष । पाडर का फूल । पाटला [को०] ।

अंबुवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिन्] दे० 'अंबुवासिनी' [को०] ।

अंबुवाह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाह] १ बादल । मेघ । २ मोथा । नागरमोथा । ३. जलवाहक व्यक्ति (को०) । ४. अभ्रक (को०) । ५ सत्रह की सख्या (को०) । ६ झील (को०) ।

अंबुवाहक[1]—वि० [सं० अम्बुवाहक] जल ले जानेवाला [को०] ।

अंबुवाहक[2]—संज्ञा स्त्री० १ बादल । २ मोथा । नागरमोथा (को०) ।

अंबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाहिनी] १ नाव का जल उलीचने या फेंकने का बरतन जो प्राय काठ या कछुए के खोपडे का होता है । २ जल लानेवाली स्त्री० [को०] ।

अंबुवाही—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाहिन्] १ मेघ । बादल । २ मोथा । मुस्तक [को०] ।

अंबुविस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुविस्रवा] घृतकुमारी । ग्वारपाठा । घीकुआँर [को०] ।

अंबुविहार—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुविहार] जलक्रीडा । जलविहार [को०] ।

अंबुवेतस—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवेतस] एक प्रकार का बेत जो पानी मे होता है । बडा बेत ।

विशेष—यह बेत पतला पर बहुत दृढ होता है । इसकी छडियाँ बहुत उत्तम बनती हैं । दक्षिण बगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, बर्मा आदि मे यह पाया जाता है ।

अंबुशायी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुशायिन्] जल या समुद्र मे शयन करनेवाले, विष्णु । नारायण ।

अंबुशिरीषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषिका] एक विशेष पेड । जलशिरीष । ढाटोन । टिटिनी । [को०] ।

अंबुशिरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषी] दे० 'अंबुशिरीषिका' [को०] ।

अंबुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुसर्पिणी] जोक ।

अंबुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुसेचनी] जल सीचने या उलीचने का पात्र [को०] ।

अंबूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बूक] लकुच । बडहर [को०] ।

अंबूकृत—वि० [सं० अम्बूकृत] निष्ठीवनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०] ।

अंबूज—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुज] कमल । अंबुज । उ०—परे सीस भार चहूआन धार । मनो इभ्भ झकोर अंबूज झार ।—पृ० रा०, २५।७६१ ।

अंबूजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुज + हिं० ई (प्रत्य०) कमलिनी । कुमुदिनी । उ०—अनुदिन काम विलास विलासिनि, चैं अलि तू अंबूजी ।—सूर०, १०।२८२६ ।

अंबूदीप—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद्वीप, प्रा० अंबूदीअ] कबीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम । उ०—अंबूदीप हम को थाना । —कबीर सा०, पृ० ५ ।

अंबोह—संज्ञा पुं० [फा०] भीड़भाड़ । जमघट । झुड । समाज । समूह । उ०—इक दम की पैठ लगी है यह अंबोह मजा चरचा कहिये । —राम० धर्म०, पृ० ६३ ।

अंब्रित—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] सुधा । अमृत । उ०—पुहुप पक रस अंब्रित साँधे । कैं ये सुरँग पुरैनि बाँधे ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६२ ।

अंभ—संज्ञा पुं० [स० अम्भ] अभस् का समासगत रूप, जैसे, अभ-पति, अभ-सार में।

अभ पति—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ पति] जलपति। वरुण [को०]।

अभ सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सार] मोती [को०]।

अभ सू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सू] दे० 'अभसू' [को०]।

अभ स्थ—वि० [सं० अम्भ स्थ] जल में स्थित [को०]।

अभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] १ जल। पानी। उ०—नौ तत्वनि को लिंग पुनि माँहि भरयौ है अभ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८१। २ पितृलोक। ३ पितर। ४ लग्न से चौथी राशि। ५ चार की संज्ञा। ६ सांख्य में आध्यात्मिक तुष्टि के चार भेदों में से एक। दे० 'अभस्तुष्टि'। ७ देव। ८ असुर। ९. एक राक्षस या असुर (को०)। १०. शक्ति (को०) ११ तेज (को०)। १२ मनुष्य। मानव (को०) १३ एक वैदिक छंद (को०)। १४ आकाश। उ०—करि मत साह गोरी अचभ। आरभ चक्र भुजदंड अभ।—पृ० रा०, १९।८४।

अभनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + निधि] दे० 'अभोनिधि'।

अभस्—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] पानी [को०]।

अभसार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सार] मोती।

अभसू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + सु] १ धूआँ। २. भाप।

अभस्तुष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + तुष्टि] सांख्य में चार आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक। जब कोई व्यक्ति माया के प्रपंच में फँसकर यह संतोष करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस तुष्टि को अंभस्तुष्टि कहते हैं।

अभस्सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्सार] मोती। मुक्ता [को०]।

अभु—संज्ञा पुं० [स० अम्बु] पानी। ओप। तेज। कांति। उ०—सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अभु।—भूषण ग्र०, पृ० ६।

अभो—संज्ञा पुं० [स० अम्भस्] 'अभस्' का समासगत रूप।

अभोज[1]—संज्ञा पुं० [स० अम्भोज] १. कमल। पद्म। २ सारस पक्षी। ३ चंद्रमा। ४ कपूर। ५ शंख।

अभोज[2]—वि० जल में उत्पन्न।

अभोजखंड—संज्ञा पुं० [स० अम्भोजखंड] कमल समूह [को०]।

अभोजजनि—संज्ञा पुं० [स० अम्भोज + जनि] अंभोजजन्मा ब्रह्मा। चतुरानन [को०]।

अभोजजन्म—संज्ञा पुं० [स० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजजन्मा—संज्ञा पुं० [स० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अभोजयोनि—संज्ञा स्त्री० [स० अम्भोजयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अभोजा—संज्ञा स्त्री० [स० अम्भोजा] १. कमलिनी। २ जेठी मधु। मुलेठी [को०]।

अंभोजिनी—संज्ञा स्त्री० [स० अम्भोजिनी] १ कमल का पौधा। कमलिनी। पद्मिनी २ कमल का समूह। ३. वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों।

अभोद—संज्ञा पुं० [स० अम्भोद] १ बादल। मेघ। २. मोथा। नागरमोथा।

यौ०—अभोदनाद = मेघनाद। रावण का पुत्र। अभोदनादघ्न = अभोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण।

अभोधर—संज्ञा पुं० [स० अम्भोधर] १. बादल। २ मोथा।

अभोधि—संज्ञा पुं० [स० अम्भोधि] अबुधि। समुद्र। उ०—जयति अजनी गर्भ अभोधि संभूत विधु विबुध कुल कैरवानंदकारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ३९०।

अभोधिपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिपल्लव] विद्रुम मूँगा। प्रवाल [को०]।

अभोधिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिवल्लभ] मूँगा। प्रवाल।

अभोनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोनिधि] समुद्र। सागर।

अभोयोनि—संज्ञा पुं० [स० अम्भोयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अभोराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोराशि] समुद्र।

अभोरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोरुह] १ कमल। उ०—वदन इंदु, अभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सरीर।—तुलसी ग्र०, पृ० २९६। २ सारस पक्षी।

अम—सर्व० [सं० अस्मत्, प्रा० अम्ह] हमारा। मेरा। उ०—जं जंपि ताम पेरभ राव। बूझै न मंत्र को अंम ठाव।—पृ० रा०, १२।१९८।

अमर[1]—संज्ञा पुं० [स० अम्बर] आकाश। नभ। उ०—चालुक्क राह चालत दल अमर घुमर घुमर वर।—पृ० रा०, १२।७६।

अमर[2]—संज्ञा पुं० [स० अमर] देवता। उ०—समरि सौं लग्गे समर अमर कीतिग एव।—पृ० रा०, १२।३२६।

अमर[3]†—वि० दे० 'अमर'।

अमर[4]†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, अम्मरअ] अमृत।

अमर डमर—संज्ञा पुं० दे० 'अवर डवर' उ०—घन अमर डमर दिसि प्रमान। उठै जल तीनौ निधान। पृ० रा०, १४।९१।

अंमरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अमरी = देवांगना] देवांगना। अप्सरा। उ०—अमरिय रहसि दल दुअ विहसि। करसि वीर लग्गे सु वर।—पृ० रा०, ३१।१५४।

अमह—सर्व० [सं० अस्मत्; प्रा० अम्मह] हमें। उ०—अमह एत्ता दुक्ख सुनि।—कीर्ति०, पृ० ७२।

अमृत†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] अमृत। सुधा। उ०—गगन मंडल में ऊंधा कूवा तहाँ अमृत का वासा।—गोरख०, पृ० ९।

अमृत्त—संज्ञा पुं० दे० 'अमृत'। उ०—अमृत्त आवहि जाहि, पप्पील रगहि चाहि।—पृ० रा, भा० २, पृ० ५६४।

अमोल—वि० [हिं० अनमोल] दे० 'अमोल'। उ०—इसे अस्व अमोल लिये पृथीर चंद कहि।—पृ० रा०, ६४।४२०।

अम्रित—संज्ञा पुं० दे० अमृत। उ०—मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सोवन्निय। बाल वेस ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय।—पृ० रा०, २०।५।

अवटना†—क्रि० स० दे० 'औटना'। उ०—अवटि छीर अनल पर जाई। जोरन दे तब दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० ६।

अंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। खंड। अवयव। अंग। २ दाय या उत्तराधिकार का भाग। हिस्सा। बखरा। बाँट। ३. भाज्य अंक। ४ भिन्न की लकीर के ऊपर की संख्या। ५. चौथा भाग। ६ सोलहवाँ भाग। ७ वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण बताया जाता है।

विशेष--पृथ्वी की विषुवत् रेखा को ३६० भागों मे बाँटकर प्रत्येक विभाजक बिंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण को खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरो को ३६० भागों मे बाँटकर विभाजक बिंदुओ पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरो के परस्पर अंतर को अंश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अंशो मे बाँटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इससे प्रत्येक राशि प्राय ३० अंश की होती है। अंश के ६०वें भाग को कला और कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं।

८ कथा। ९ सूर्य। १२ आदित्यो मे से एक, जैसे--अंशसुता=अर्थात् सूर्य की पुत्री यमना। १० किसी कारबार का हिस्सा। ११ फायदे का हिस्सा। १२ राग का मुख्य स्वर (संगीत)। १३ एक यदुवंशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यौ०--अंशवंश=धन परिवार।

अंशक[1]--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अंशिका] १. भाग। टुकडा। २. दिन। सौर दिवस। ३ हिस्सेदार। साझीदार। पट्टीदार। उ०--दाय या उत्तराधिकार मे कई व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाले हों तो प्रत्येक का भाग अंश और पानेवाला अंशक कहलाता था।--पाणिनि०, पृ० ४१३।

अंशक[2]--वि० १. अंश धारण करनेवाला। अंश रखनेवाला। अंशधारी। २ बाँटनेवाला। विभाजक।

अंशकरण--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। बँटवारा या विभाग करने का कार्य [को०]।

अंशकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] अंश या विभाग प्रदान करने का कार्य [को०]।

अंशत--क्रि० वि० [सं० अंशतस्] किसी अंश तक। कुछ हद तक। आंशिक रूप मे। खंडो मे। टुकडो मे। खंडशः। असपूर्ण रूप से।

अंशतीर्थ--संज्ञा पुं० [देश०] एक तीर्थ का नाम।

अंशधारी--वि० [सं०] अंश धारण करनेवाला। अंशक। उ०--प्रगट्यो कवीद्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुणकी प्रभाते हैं।--अवधरी०, पृ० ७५।

अंशन--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। विभाग या बँटवारा करने का कार्य [को०]।

अंशपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसमें पट्टीदारो का अंश या हिस्सा लिखा हो।

अंशप्रकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंशकल्पना' [को०]।

अंशप्रदान--संज्ञा पुं० [सं०] हिस्सा या अंश देने का कार्य। अंशकल्पना [को०]।

अंशभागी--वि० [सं०] दे० 'अंशभाग'।

अंशभाग्--वि० [सं०] अंशी। दायाद। हिस्सेदार। [को०]।

अंशभू--वि० [सं०] पट्टीदार। साझीदार [को०]।

अंशभूत--वि० [सं०] अंशरूप। अंशमय। अंश [को०]।

अंशयिता--वि० [सं० अंशयितृ, अंशयिता] हिस्सा बाँटनेवाला दायाद। हिस्सेदार।

अंशल--वि० [सं०] १ हिस्सेदार। दायाद। २. पुष्ट कंधोवाला। बलवान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

अंशवत्--संज्ञा पुं० [सं०] अंशुमत्। सोम का एक भेद [को०]।

अंशसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

अंशस्वर--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत मे मुख्य स्वर [को०]।

अंशहर--वि० [सं०] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [को०]।

अंशहारी--वि० [अंशहारिन्] दे० 'अंशधारी' [को०]।

अंशांश--संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश का भाग (किसी देवता का)। २ अमुख्य, अपूर्ण या गौण अवतार। अंशावतार [को०]।

अंशांशि--क्रि० वि० [सं०] विभागशः। विभागानुक्रम से [को०]।

अंशावतरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अंशावतार'। २ महाभारतके आदि पर्व के ६४ से ६७ अध्यायों का अभिधान [को०]।

अंशावतार--संज्ञा पुं० [सं०] वह अवतार जिसमे परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्णावतार से भिन्न।

अंशी[1]--वि० [सं० अंशिन्] [वि० स्त्री० अंशिनी] १ अंशधारी। अंश रखनेवाला। २ शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अंशी--संज्ञा पुं० १ हिस्सेदार। साझीदार। २ अवयवी।

अंशु--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरण। प्रभा।

यौ०--अंशुधर, अंशुपति, अंशुमर्ता, अंशुमत्, अंशुस्वामी, अंशुहस्त=सूर्य।

२ लता का कोई भाग। ३ सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४ तागे का छोर। छोर। ५ लेश। बहुत सूक्ष्म अंश या भाग। ६ लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७ सूर्य। ८ एक ऋषि या राजा का नाम। ९ वेग (को०)। १० वेश (को०)। ११. आभूषण वस्त्र (को०)।

अंशुक--संज्ञा पुं० [सं०] १ कपडा। वस्त्र। २ पतला कपडा। महीन कपडा। ३ किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४ रेशमी कपडा। ५ उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६ धोती या अधोवस्त्र। ७ ओढना। ओढनी। ८ मुखवस्त्र, घूँघट (को०) ९ तेजपात।

अंशुकोष्णीषपट्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुक+उष्णीषपट्टिका] उष्णीष पर बाँधी जानेवाली अंशुक नामक महीन वस्त्र की पट्टी।--हर्ष०, पृ० १७।

अंशुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [को०]।

अंशुनाभि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें।

विशेष--सूर्यमुखी शीशे को जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्ही किरणो का समूह गोल वृत्त या बिंदु बन जाता है जिसमे पडने से चीजे जलने लगती है।

अंशुपट्ट--संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपडा [को०]।

अंशुमंत--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. अंशुमान राजा।

अंशुमती--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [को०]।

अंशुमत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष और उसका फल [को०]।

अंशुमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष मे ग्रहयुद्ध के चार भेदो मे से एक। इस ग्रहयुद्ध मे राजाओं से युद्ध, रोग और भूख की पीडा आदि होती है। दे० 'ग्रहयुद्ध'।

अंशुमान्[1]—वि० [सं०] १. रेशेदार। २. सोम से सपन्न। सोमरस से भरा हुआ। ३ चमकीला। दीप्तिमान्। ४. नुकीला [को०]।

अंशुमान्[2]—संज्ञा पुं० [सं० अंशुमत्] १ सूर्य। २. चद्रमा (डिं०)। ३ अयोध्या के सूर्यवशी राजा सगर के पौत्र, असमजस के पुत्र और दिलीप के पिता। सगर के अश्वमेध का घोडा ये ही ढूंढकर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रो के शव को इन्हीं ने पाया था।

अंशुमाला—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिर्वलय। प्रकाश का घेरा। तेजोवलय [को०]।

अंशुमाली—संज्ञा पुं० [सं० अंशुमालिन्] १ सूर्य। २ बारह की सख्या [को०]।

अंशुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाणक्य मुनि। २ मुनि [को०]।

अंशुल[2]—वि० प्रकाशपूर्ण [को०]।

अंशुविमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] किरणो के मद या धुंधली होने की स्थिति [को०]।

अंशूदक—संज्ञा पुं० [सं०] धूप या चाँदनी मे रखा हुआ जल [को०]।

अंश्य—वि० [सं०] १ बाँटने योग्य। विभाजनीय। २ विभाग। प्राप्य [को०]।

अंस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाग। अश। खड। अवयव। उ०—ईश्वर अंस, जीव अविनासी।—मानस, ७।११७। २ स्कध। कधा। उ०—अभयद भुजदड मूल, अंस पीन सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री।—सूर०, १०।१३८४। ३ चतुर्भुज का कोई कोण (को०)। ४ वेदी के कोई दो स्कध या कोण (को०)।

अंस[2]—संज्ञा पुं० [सं० अंश] १ कला। उ०—तापर उरग ग्रसित तव सोभित पूरन अंस ससी।—सूर०, १०।११९६। २. सूर्य। जैसे 'अंससुता' मे। ३ अपनत्व। सबध। अधिकार। उ०—अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस।—सूर०, १०।३५८७।

अंस[3]—संज्ञा स्त्री० [स० अंशु] किरण। उ०—सित कमल बस सी सीतकर अंस सी।—भिखारी० ग्र०, भा०, १, पृ० २३४।

अंस[4]—संज्ञा पुं० [स० अश्रु या अस्रु] आँसू। अश्रु। उ०—भुज फरकनि तरकनि कचुकि कच छुरि जु रहे ढुरि अंस।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८३।

अंसकूट—संज्ञा पुं० [स०] साँड के कधो के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड। कुब। ककुद।

अंसटपाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनशन + हिं० पाटी] दे० 'खटपाटी'।

क्रि० प्र०—लेना=खटपाटी लेना। क्रोध या हठ के कारण काम-काज न करना। काम धाम से विरक्त होना। उ०—तौ वाकी मा अंसटपाटी लै के परि गई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १००६।

अंसत्र—संज्ञा पुं० [स०] १. स्कधत्राण। कधो की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लौहपट्ट। २. धनुष [को०]।

अंसधन—संज्ञा पुं० [सं० अंशधन] हिस्से का धन। उ०—जु कछु अंसधन हुती जो साथ। सो दीनो माता के हाथ।—अर्ध०।

अंसपुरसा—संज्ञा पुं० [स० अंश + पुरुष] अंशपुरुष। बलवान् व्यक्ति। उ०—तदवार अंसपुरसा तणी, आय वणी जग ऊपरा।—रा० रू०, पृ० २३।

अंसफलक—संज्ञा पुं० [स०] पीठ का ऊपरी भाग [को०]।

अंसभार[1]—वि० कधो पर बोझा ढोनेवाला। बहँगीदार [को०]।

अंसभार[2]—संज्ञा पुं० [स०] कधो का बोझ। बोझ जो कधे पर ढोया जाय [को०]।

अंसभारिक—वि० [स०] कधो पर बोझ ढोनेवाला [को०]।

अंसभारी—वि० [स०] दे० 'अंशभारिक' [को०]।

अंसर—संज्ञा पुं० [अ० उन्सुर] तत्व। उ०—के हैं पांच अंसर सू फला योतन, के माटी होर पानी व वारा तू गिन।—दक्खिनी०, पृ० २०८।

अंसल—वि० [स०] पुष्ट कधोवाला। दृढस्कध। बलवान् [को०]।

अंससुता—संज्ञा स्त्री० [स० अंशु (=सूर्य) + सुता] कालिंदी। जमुना। सूर्यतनया। उ०—सूरदास प्रभु अंससुता तट क्रीडत राधा नदकुमार।—सूर०, १०।१८०२।

अंसिक—[स० अंशक] अंश धारण करनेवाला। अंशभूत। उ०—सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा।—मानस, ६।११३।

अंसी—वि० [स० अंशी] अंशवाला। अंशधारी। उ०—द्वारपाल इहै कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदत धरे सर ब्रह्म असी।—सूर०, १०।३०७४।

अंसु[1]—संज्ञा पुं० [स० अंशु, प्रा० अंसु] किरण। उ०—सरद निसि को अंसु अगनित इदु आभा हरनि।—सूर०, १०।३५१।

यौ०—अंसुपति, अंसुमान, अंसुमाल=सूर्य।

अंसु[2]—संज्ञा पुं० [स० अंश] भाग। अश। उ०—लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल ही को अंस अत है क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २१२।

अंसु[3]—संज्ञा पुं० [स० अंस] स्कध। कधा। उ०—सखा अंसु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अधर मधुर विश्व भरन।—सूर०, १०।६२४।

अंसु[4]—संज्ञा पु० [स० अश्रु, प्रा० अस्सु, अंसु] आँसू। अश्रु। उ०—गहत बाल पिय पानि सु गुरु जन सभरे। लोचन मोचि सुरग सु अंसु बहे खरे।—पृ० रा०, २५।२७५।

अंसु[5]—संज्ञा पु० [स० अश्व, प्रा० अस्स] अश्व। घोडा। उ०—पय मडिहि अंसु धरै उलटा। मनौ विटप देषि चलै कुलटा।—पृ० रा०, २७।३५।

अंसुक—संज्ञा पु० [स० अंशुक, प्रा० अंसुक, अंसुग] वस्त्र। कपडा। उ०—औ अंसुक जिमि फूल सलोना।—इद्रा०, पृ० १२८।

अंसुग—संज्ञा पु० दे० 'अंसुक'। उ०—कासमीर अंसुग दए सब जोधन पहिराय।—प० रा०, पृ० १६४।

अंसुमाल—संज्ञा स्त्री० [स० अंशु, प्रा० अंसु + स० प्रा० माल] किरण समूह। उ०—जागिये गोपाललाल, प्रगट भई अंसुमाल मिट्यो अधकाल, उठो जननी सुखदाई।—सूर०, १०।६१६।

अंस्य[1]—वि० [सं० अस्य] विभाज्य ।

अस्य[2]—वि० [सं०] कधा सबधी [को०]।

अंह—सज्ञा पुं० [सं० अहस्] १ पाप । दुष्कर्म । अपराध । २ दु ख । चिंता । कष्ट । व्याकुलता । ३ विघ्न । बाधा ।

अंहति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दान । त्याग । परित्याग । २ रोग । ४ कष्ट । दुख [को०]।

अंहती—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहति' [को०]।

अंहद—वि० [हिं० अन + अ० हद] जिसकी हद न हो । असीम । अनत । अनहद । उ०—नाद अनाहद अंहद, सुनै अनाहद कौन । —इद्रा०, पृ० १२१।

अंहस्पति—सज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास [को०] ।

अंहिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

अंहिती—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहिति' [को०]।

अंहि—सज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव । पैर । २ वृक्ष की जड या मूल [को०]।

अंहिप—सज्ञा पुं० [सं०] पादप । पेड [को०]।

अंहिशिर—सज्ञा पुं० [सं०] 'अंहिस्कंद' [को०]।

अंहिस्कंध—सज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ । घुट्ठी टखना [को०]।

अँकखरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] ककड या पत्थर का महीन टुकडा या चूरा । अँकटी । अँकरी । अँकरोरी ।

अँकटा†—सज्ञा पुं० [स० कर्कर, प्रा० कक्कर या स० अंकुर, हिं० अकुर > अँकड अथवा स० अक + काण्ड, > प्रा० अक्क + अड = अकड, या देश] १ ककड का छोटा टुकडा । २ ककड पत्थर आदि का महीन टुकडा या चूरा जो अनाज मे से चुनकर निकाल दिया जाता है ।

अँकटी†—सज्ञा स्त्री० [अँकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकटा ।

अँकड—सज्ञा स्त्री० [स० हुङ्कार > प्रा० उकड > अँकड़] अकड । ऐंठ । उ०—अँकड जीव लव सुक सु किया था जुल्लाव । —दक्खिनी०, पृ० १४६।

अँकडा†—सज्ञा पुं० दे० 'अँकटा' (बोल०) ।

अँकडी—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्कुर = अँखुआ = टेढी नोक; अथवा सं० अङ्कुटक, प्रा० अङ्कुडग, अकुडय] १ अँकटी । २ हुक । कँटिया । ३ तीर का मुडा हुआ फल । टेढी गाँसी । ४ बेल । लता । ५ लग्गी । फल तोडने का बाँस का डडा जिसके सिरे पर फँसाने के लिए एक टेढी छोटी लकडी बँधी रहती है ।

अँकना[1]—क्रि० स० [सं० अङ्कन] दे० 'आँकना' ।

अँकना[2]—क्रि० अ० १ आँका जाना या कूता जाना । २ लिखा जाना या अकित होना ।

अँकना[3]—क्रि० स० [सं० आकर्णन] सुनना । श्रवण करना । उ०—अवध सकल नर नारि बिकल अति अँकनि बचन अनभाए । —तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३६२ ।

अँकमाल—सज्ञा पुं० दे० 'अकमाल' । उ०—सूर स्याम बन तें ब्रज आए जननि लिए अँकमाल । —सूर०, १०।१३६० ।

अँकरवरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अकर + वरी या औरी (प्रत्य०)] अँकडी । ककडी । उ०—काँट न चुभै न गडै अँकरवरी । —जायसी ग्र० (गुप्त), छद १३७।

अँकरा—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [स्त्री० अँकरी] १ एक खर वा कुधान्य ।

विशेष—यह रबी की फसलो मे गेहूँ के पौधो के बीच जमता है । इसे काटकर बैलो को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते हैं । इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के बराबर होता है और प्राय गेहूँ के साथ मिल जाता है । इसे गरीब लोग खाते भी हैं । खेसारी इसी का एक रूपातर है ।

२ ककड ।

अँकरास†—सज्ञा पुं० दे० 'अकरास' ।

अँकरी—सज्ञा स्त्री० [अँकरा का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकरा या ककडी ।

यौ०—अँकरी + पथरी = ककडी । अँकटी ।

अँकरोरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककडी । सिटकी । ककड या खपडे का बहुत छोटा टुकडा । अँकरवरी ।

अँकरौरी†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरौरी' । उ०—अँकरौरी सम गनौं पहारा, लेखौ समुद हिये महँ नारा ।—चित्रा०, पृ० २१५ ।

अँकवरी†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी' ।

अँकवाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० + आँकना + वाई (प्रत्य०)] १ अँकवाने की क्रिया या स्थिति । २ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी । अँकाई (बोल०) ।

अँकवाना—क्रि० स० [हिं० आँकना का प्रेरणार्थक] १ मूल्य निर्धारित करना । २ कुतवाना । अदाज कराना । ३ परीक्षा कराना । जँचवाना । परखवाना । ५ चिह्न, छाप आदि लगवाना ।

अँकवार—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, अङ्कमाल, प्रा० अकवालि, अकवाल] १ गोद । अक । २ छाती । वक्षस्थल ।

मुहा०—देना = गले लगना । छाती से लगना । आलिगन करना । भेंटना । —भरना = आलिगन करना । भेंटना । गले मिलना । उ०—बनमाला पहिरावत स्यामहि बार बार अँकवार भरत धरि ।—सूर०, १०।४०६ । —भरी होना = गोद मे बच्चा रहना । सतानयुक्त होना । उ०—बहू तुम्हारी अँकवार भरी रहे, (आशीर्वाद) (शब्द०) ।

३ आलिगन । भेंट । मिलना । जैसे—चिट्ठी मे हमारी भेंट अँकवार लिख देना ।—(शब्द०) ।

अँकवारना†—क्रि० स० [हिं० अकवार + ना] गले लगाना । भेंटना । आलिगन करना ।

अँकवारि—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्कपालि, प्रा० अकवालि] उ०—खेलत तैं मोहि बोलि लियौ इहि दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि । —सूर०, १०।३०४ ।

अँकवारी[1]—सज्ञा स्त्री० १ दे० 'अँकवार' । उ०—अब के गोना बहुरि नहिं औना करि ले भेंट अँकवारी ।—सतवाणी, भा० २, पृ० ६ । २ हाथापाँई । हाथापाई । मुठभेड । सघर्ष (लाक्षणिक प्रयोग) । उ०—वीर अगुमने भुजा पसारी । दुइ दल माँह भई अँकवारी ।—चित्रा०, पृ० १४३ ।

अँकस†—सज्ञा पुं० दे० 'अकस' ।

अँकसदीया†—सज्ञा पुं० दे० 'अकासदीया' ।

अँकाई--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्क, हिं० अक (आंक, आँकना, अकना) + आई (प्रत्य०)] १ कूत। अदाजा। अटकल। तखमीना। २ फसल में से जमींदार और काश्तकार के हिस्सो का ठहराव। मूल्य लिखा जाना।

क्रि० प्र०--करना। --होना।

३ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना--क्रि० स० [स० अकन] [सज्ञा--अँकाई अँकाव] १ अदाज कराना। कुतवाना। २ परीक्षा कराना। परखाना। ३ मूल्य निर्धारित कराना। उ०--मन आग्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।--झरना, पृ० ७४। ४ चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव--सज्ञा पुं० [स० अङ्क + हिं० आव (प्रत्य०) [क्रि०--अँकाना] कूतने वा आँकने का काम। कुताई। अदाज वा तखमीना करने का काम।

क्रि० प्र० --होना।

अँकावना Ⓤ†--क्रि० स० दे० 'अँकवाना', 'अँकाना'। उ०--यह प्रेम बजार के अतर सो पर नैन दलाल अँकावने हैं। --ठ कुर०, पृ० २५।

अँकिया Ⓤ†--सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख, अँखिया] आँख। नेत्र। उ०--अँकिया के नहर सूँ दीदे का पनी वर ऐसे लागे गम की दाग-दार्नी।--दक्खिनी०, पृ० २३७।

अँकुडा--सज्ञा पुं० [स० अङ्कुर] १ लोहे का झुका हुआ टेढा काँटा। २ लोहे का झुका हुआ टेढा छड जिससे चुडिहार लोग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३ टेढी झुकी हुई कील वा काँटिया जिसमे तागे अँटकाकर पटवा वा पटहार काम करते हैं। ४ लोहे का एक टेढा काँटा जो लकडी आदि तौलनेवाली बडी तराजू की डाँडी के बीचोबीच लगा रहता है। ५. कुलावा। पायजा। ६ लोहे का एक गोल पच्चड जो किवाड की चूल मे ठोंका रहता है। ७ लोहे का एक छड जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढा और झुका हुआ। चिपटे सिरे को काँटे मे किवाड के पल्ले मे जड देते हैं और झुके हिस्से को साहे के कोटो मे डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् खुलता और बद होता है। ८ रेशमी कपडा बुननेवाली का मछली के आकार का काठ का एक औजार जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इस छेद मे एक खूँटी गडी रहती है जिसमे दलपमन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९. गाय बैल के पेट का दर्द या मरोड जिसे ऐंचा भी कहते हैं। १० खूँटी। नागदत।--(कौ०)।

अँकुडी--सज्ञा स्त्री० [हिं० अँकुडा का अल्पार्थक प्रयोग] [वि० अँकुडीदार] १ छोटा अँकुडा। टेढी काँटिया। हुक। २ लोहे का एक छड जिसका सिरा कुछ झुका रहता है और जिससे लोहार लोग भट्ठी की आग खोदते हैं। ३ हल की वह लकडी जिसमे फाल लगाया जाता है। ४ एक्के के पहिए के जोडों पर लगी हुई साहे की कील या जाँघी।

अँकुडीदार--वि० [हिं० अँकुडी + फा० दार] १ जिसमे अँकुडी वा काँटिया लगी हो। जिसमे अँटकाने के लिये हुक लगा हो। हुकदार। २, एक प्रकार का पर्सादा जिसे गडारी भी कहते हैं।

अँकुर Ⓤ--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अकुर। अँखुआ। उ०--अदभुत राम नाम के अक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू टाटक॥ --सूर०, १।९०।

अँकुरना Ⓤ--क्रि० अ० [स० अङ्कुरण] अकुरित होना। अकुर का उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना¹ Ⓤ--क्रि० स० [स० अङ्कुरण] पानी मे भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने मे प्रवृत्त करना। अकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना² Ⓤ--क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना³ Ⓤ--क्रि० अ० [स० आकुल] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०--माइ बापे दय हलु नेपुर गढइ। नेपुर भँगवइते जिव अंकुराई।--विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी†--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्कुर + ई (हिं०)] १ भिगोकर अकुरित किए गए चने, मूँग, गेहूँ आदि की घुँघनी। २ वश मे एकमात्र बची हुई सतान।

अँकुवार--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्कुर, हिं० अँखुआ + आर (प्रत्य०)] अकुर। अँखुआ। उ०--प्रेम बिना नहीं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार--रसखान० पृ० १।

अँकुसा--सज्ञा पुं० दे० 'अकुश'।

अँकुसी--सज्ञा स्त्री० [स० अङ्कुश, हिं० अकुस + ई (प्रत्य०)] १ टेढी करके झुकाई हुई लोहे की कील जिसमे कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। बटिया। २ पीतल वा लोहे का एक लबा छड जिसका एक सिरा घमावदार होता है। इससे ठठेरे भट्ठी की राख निकालते हैं। ३ लोहे का टेढा छड जिसको किवाड के छेद मे डालकर बाहर से अगरी या सिटकिनी खोलते हैं। यह कुजी का काम देता है। ४ वह छोटी लकडी जो फल तोडने की लग्गी के सिरे पर बँधी रहती है। ५ लोहे का एक चिकना लबा सूजा जिसका सिरा झुका होता है। इससे नारियल के भीतर की गरी निकालते हैं।

अँकूर--सज्ञा पुं० [स० अङ्कुर] १ अक। भाग्य। उ०--जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर।--स० सप्तक, पृ० ३४१। २ अकुर। अँखुवा। उ०--जु वकिय भोह न तुच्छ गरुर। उठे मन मच्छ घनक अँकूर।--पृ० रा०, २१।२२।

अँकोडा--सज्ञा पुं० [स० अङ्कुर या प्रा० अकुडग] १ एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रस्सी खीचने मे काम आता है। २ एक प्रकार का लगड। बडी काँटिया। कोढा।

अँकोर¹ Ⓤ--सज्ञा पुं० [स० अङ्कुमाल या अङ्कपालि, हिं० अँकवार] १ अक। गोद। छाती। उ०--खेलत रहौं कबहु मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी ओर। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।--सूर० (शब्द)। २ दे० 'अँकवार'। ३ भेंट। नजर। उपहार। उ०--सूरदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल सो करति अँकोर।--सूर (शब्द)। ३ घूस। रिशवत। उ०--(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ --जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ख) बिथुरित सिरुह बरूथ, कुचित बिच सुमन जुथ मनि जुत सिसु फनि

अनीक, समि समीप आई। जनु समीत दै अँकोर, राखे जुग रुचिर मोर, कुंडल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अँकोर[2]†—संज्ञा पुं० [सं० कवल; हिं० कौर अथवा कोर (देश०)] खोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पास भेजा जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि प्रा० अकवालि, अथवा सं० अङ्कोलिका] १ गोद। अंक। २ आलिंगन। अँकवार। कोली। उ०—गावत हँसत रिझावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत अँकोरी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६७।

अँकोर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपालि या अङ्कोलिका, प्रा० अकवालि] आलिंगन। अँकवार। उ०—मुख चूमत ललचाइ कबहूँ पुनि कबहूँ भरत अँकोर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६६।

अँकोल—संज्ञा पुं० दे० 'अंकोल'।

अँखडी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, अक्ख, डिं० और प० अख + डी (प्रत्य०), अथवा हिं० आँख + डी (प्रत्य०)] १. आँख। नेत्र। उ०—मेरी इन दुखिया अँखडियों के सामने।—लहर, पृ० ७२। २ चितवन। उ०—तुझ अँखडियाँ के देखे आलम खराब होगा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अँखमीँचनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मीचनी] दे० 'आँख-मिचौली'।

अँखमूदन—संज्ञा पुं० दे० 'अँखमुदनी'।

अँखमूदनी—संज्ञा पुं० [हिं० आँख + मूँदना] आँखमीचनी। आँख-मिचौली।

अँखाना—क्रि० अ० दे० 'अनखाना'।

अँखि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अखि'। उ०—जिम सुकिया दुति वचन, दूत तरिय अँखि अग्गी।—पृ० रा०, ६१।१०११।

अँखिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, हिं० आँखि, अँखिया, प० अख] १. आँख। नेत्र। उ०—अँखिया निरखि स्याम मुख भूली।—सूर०, १०।२४०१।

विशेष—दुलार या स्नेहयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्राय इस रूप का प्रयोग होता है।

२ लोहे का एक ठप्पा या कमल जिससे बरतन पर हथौडी से ठोक ठोककर नक्काशी बनाते हैं।

अँखियारा‡—वि० [हिं० अँखिया + रा (प्रत्य०)] आँखवाला (अंधा का विलोम)।

अँखुआ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढी नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती हैं। अकुर। उ०—खोल खेत में आँख वही अँखुआ कहलाता मिट्टी मुह में डाल फूल अंगों न समाता।—बुद्ध० च०। २ बीज से पहले पहल निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाभ। कल्ला। कनखा। कोपल। फुनगी।

क्रि० प्र०—आना। —उगना। —जमना। —निकलना।—फूटना। —फेंकना। —फोडना। —लाना। —लेना।

अँखुआना—क्रि० अ० [हिं० अँखुआ से नाम०] १ अकुर फोडना या फेंकना। उगना। जमना। अकुरित होना। २. उभडना। उठाना।

अँग—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. शरीर। देह। अवयव। अग। उ०—फले अँग न समात, सवन को भाग उघरि रह्यो।—नंद० ग्र०, पृ० ३३३। २ पक्ष। तरफ। उ०—अपने अँग कै जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।—बिहारी र०, दो० २।

अँगऊँ†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगौंगा'।

अँगऊ†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रिम] दे० 'अँगौंगा'।

अँगडाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगडाना + ई (प्रत्य०)] [क्रि० अँगडाना] आलस से जम्हाई के साथ अगों को फैलाना, मरोडना या तानना। देह के बद या जोड के भारीपन को हटाने के लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना। अँगडाने की क्रिया या भाव। देह टूटना। ऐंठन टूटना। उ०—जलधि लहरियों की अँगडाई बार बार जाती सोने।—कामायनी, पृ० २३।

विशेष—सोकर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्राय आती है।

क्रि० प्र०—आना।—लेना। उ०—खुदा के वास्ते तगयर न ले तू अँगडाई। कि बद बद बुते बेहिजाब चटकेगा (फैं०)।

मुहा०—अँगडाई तोडना = (१) आलस्य में बैठे रहना। कुछ काम न करना। (२) किसी के कधे पर हाथ रखकर अपने शरीर का भार उसपर देना।

अँगडाना—क्रि० अ० [सं० अङ्ग + अट्] शरीर के बद या जोडों के भारीपन को हटाने के लिये अगों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना या तानना। देह तोडना। सुस्ती से या थकावट में ऐंठना या ऐंडाना।

अँगधातु—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गधातु] प्रस्वेद। पसीना। उ०—मुकुट उतारि धरयो लै मंदिर पोंछति है अँगधातु।—सूर० १०।५११।

अँगन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आंगन। चौक। उ०—डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन जलज अँगन जनु फूले॥—नंद० ग्र०, पृ० ३०२।

अँगनई—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०—और अब तरक्की करते करते सेक्रेटरियट की अँगनई में दाखिल हो बैठे थे।—नई पौ०, पृ० ८।

अँगनवाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० अँगन + वाँ (प्रत्य०)] दे० 'अँगन'। उ०—खेलत रहनू अँगनवाँ गयी, गेंद गायो हो।—धरम० शतक०, पृ० ६४।

अँगना[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आंगन। चौक। उ०—पर अँगना करि टारयौ मो घर सब छिन जोरे हाय।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] स्त्री। नारी। उ०—उदित गुटी लखि लखन की अँगना अँगना माँह।—बिहारी र०, दो० ३७३।

अँगनाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन, हिं० अगन, अँगना + ई (प्रत्य०)] आंगन। अजिर। अँगना। उ०—जननि न जाद रुचिर अँगनाई।—मानस ७।७६।

अँगनैत†—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना + ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी। घर का मालिक। गृहस्वामी। गृहपति।

अँगनैया†—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गन, हिं० आँगन-अँगन + ऐया (प्रत्य०)] आँगन। अँगना। उ०—मनि खभनि प्रतिबिंब झलक, छवि छलकिहै भरि अँगनैया। —तुलसी ग्र०, पृ० २७३।

अँगबदन—सज्ञा पुं० [स० अङ्ग + बन्धन, तु० फा० बद] अगबधन। शरीर का बधन। उ०—ज्यो अहिपति केंचुरि कौं लघु लघु छोरत है अँगबदन। —सूर०, १०।११५८।

अँगबलित—वि० [स० अङ्गवलित] अगो से लिपटा हुआ। उ०—ब्रज अधिप अगबलित सुरति समय सोहती बाला —भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३१।

अँगरँग—सज्ञा पुं० [स० अङ्गरङ्ग] शरीर की कांति या दीप्ति। उ०—तेरेही नव जोबन के अँगरँग सुभ लागत परम सुहाए।—नद० ग्र०, पृ० ३४६।

अँगरखा—सज्ञा पुं० [स० अङ्ग = देह + रक्षक = बचानेवाला, प्रा० रक्खअ, हिं० रखा] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनो के नीचे तक लबा होता है और जिसमे बाँधने के लिये बद टँके रहते हैं। बददार अगा। चपकन।

विशेष—इसे हिंदू और मुसलमान दोनो बहुत दिनो से पहनते आते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) छहकलिया, जिसमे छह कलियाँ होती हैं और चार बद लगे रहते हैं। इसके बगल के बद भीतर वा नीचे की ओर बाँधे जाते हैं, ऊपर नही दिखाई पडते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बद बगल मे बाँधा जाता है भीतर वा नीचे होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है जिसका बद सामने छाती पर बाधा जाता है। (२) बारा बर, जिसमे चार कलियाँ होती है और छह बद लगे रहते हैं। इसका बगल मे बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल मे जाकर बाँधा जाता है। अत. उसके सामने के और एक बगल के बद दिखाई पडते हैं।

अँगरखी†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरखा'।

अँगरना†—क्रि० अ० दे० 'अँगराना'।

अँगरा†—सज्ञा पुं० [स० अङ्गार] १ अँगार। अँगारा। दहकता हुआ कोयला। २ कोयला।

मुहा०—अँगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना। अशोभन या अशुभ कार्य करना।

विशेष—स्त्रियाँ परस्पर कलह मे सोहागिनो के प्रति अशुभ भाव व्यक्त करती हुई 'माँग मे अँगरा दर दूँगी', प्राय ऐसा कहती हैं।

३ बैल के पैर टपकने या रह रहकर दर्द करने का एक रोग। इस रोग मे बैल बार बार पैर उठाया करता है।

अँगराई†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगडाई'। उ०—है रात घूम आई मधुवन यह आलस की अँगराई है। —लहर, पृ० २०।

अँगराग—सज्ञा पुं० दे० 'अगराग'—१। उ०—नृप द्वार कुमारि चली पुर की, अँगराग सुगंध उडै गहरी।—बुद्ध च०, पृ० २४।

अँगराना†—क्रि० अ० दे० 'अँगडाना'। उ०—(क) बारबधू पिय पथ लखि अँगरानी अँग मोरि।—मति० ग्र०, पृ० ३०६। (ख) पलक अधखुली दृगनि सो अँग अगरात जम्हात। —ब्रज० ग्र०, पृ० ६३।

अँगरी—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्ग + री] कवच। झिलम। बख्तर। बक्तर। उ०—अँगरी पहिरि कूँडी सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं। —मानस, २।१६१।

अँगरी—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुरीय] उँगलियो को धनुष की रगड से बचाने के लिये गोह के चमडे का दस्ताना। अगुलित्राण।

अँगरेज—सज्ञा पुं० [फ्रे० आगलेज, पुर्त० इगलेज, अ० इगलिश] [वि० अँगरेजी] इगलैंड देश का निवासी। इगलिस्तान का रहनेवाला आदमी। उ०—अमिवर अँगरेज घलि घलि तेज अरिगन भेगे सुरपुर को। —हिम्मत०, पृ० ४२।

अँगरेजियत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अगरेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अँगरेजीपन। अँगरेजी ढगढग की। उ०—हममे तो भाई यह अँगरेजियत नही देखी जाती —रभन, पृ० ११२।

विशेष—कभी कभी शासक और शासित के बीच अँगरेज शासको की अकड या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ मे मिला रहता है।

अँगरेजी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँगरेज + ई (प्रत्य०)] अँगरेजो की भाषा। इगलिश भाषा।

अँगरेजी[2]—वि० अँगरेज सबधी। अगरेजो का।

अँगलेट—सज्ञा पुं० [स० अङ्ग, हिं० अग + लेट ?] शरीर की गठन। काठी। उठान। देह का ढाँचा। अँगेट।

अँगवना†—क्रि० स० [स० अङ्ग से नाम०] १ अगीकार करना स्वीकार करना। उ०—दीप पतँग होइ अँगएउ आगी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८। २ ओढना। अपने सिर पर लेना। ३ सहना। बरदाश्त करना। उ०—अपना घर सुख छाडि के अँगवै दुख को भार।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २७। ४ उठाना। उ०—धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हाल। कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल।—जायसी (शब्द०)।

अँगवनिहारा—वि० हिं० अँगनवा + हारा (प्रत्य०)] सहनेवाला। सहन करनेवाला। बरदास्त करनेवाला। उ०—सूल कुलिस असि अगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे। —मानस, २।२५।

अँगवाना—क्रि० स० [हिं० अँगवना। अग मे लगाना या मलना। उ०—चदन और अरगजा आन्यौ अपनै कर बल कै अँगवान्यौ। —सूर०, १०।१२१३।

अँगवारा†—सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार या हिं० वारा = वाला] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या हिस्सेदार। २ खेत की जुताई मे एक दूसरे की सहायता।

अँगसँग—सज्ञा पुं० दे० 'अगसग'। उ०—यह जग अँगसँग मे मतवारा, चावै विषय भोग अनुसारा। —रत्न०, पृ० ६०।

अँगाकरि—सज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी'। उ०—अबही अँगाकरि तुरत बनाई। जे भजि भजि ग्वालिनि सँग खाई।—सूर०, १०।१२१३।

अँगाना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग] अंगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—मनहुँ एक को रंग एक निज अंग अँगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १८२।

अँगार(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगार'। उ०—जनु अँगार शशिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ।—मानस, ६।५२।

अँगारा(पु)—संज्ञा पु० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारय] आग का जलता टुकड़ा। अंगार। उ०—नभ चढ़ बरषै बिपुल अँगारा।—मानस, ६।५१।

विशेष—'अंगारा' शब्द के मुहावरों का प्रायः 'अँगारा' शब्द के साथ भी प्रयोग होता है।

अँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका प्रा० अंगालिय, इंगाली] १ ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं को खिलाते हैं। २ गड़ाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकड़े जो पत्थर के कोल्हू में पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं गँडेरी। गेंडी। ३ चिनगारी। अग्निकण। उ०—खुले घाव पै ताके मानो परी अँगारी।—बुद्ध च०, पृ० १५१। दे० 'अंगारी'।

अँगाली(पु)—वि० [सं० अग्रणी, प्रा० अग्गाणी, हिं० अगाड़ी, अगारी] आगे। प्रथम। उ०—मुअज्जम इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

अँगिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका, प्रा० अंगिआ] स्त्रियों का एक पहिनावा जिससे केवल स्तन ढके रहते है, पेट और पीठ खुली रहती है। इसमे चार बंद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं। छोटा कपड़ा। चोली। कचुकी। काँचली। उ०—अँगिया नील, मोंडनी राती, निरखत नैन चुराई।—सूर०, १०।१०५३।

यौ०—**अँगिया का कठा या अँगिया की कठी**=दे० 'अँगिया का घाट'। **अँगिया की कटोरी या मुलकट**=अँगिया का वह भाग जो स्तनों के ऊपर पड़ता है। **अँगिया की खवासी या खसी**=वह सीवन जो कटोरियों को आस्तीन से मिलाती है। **अँगिया का घाट**=अँगिया का गला या गरेबान, गले के नीचे का खुला हिस्सा। **अँगिया की चिड़िया**=दोनों कटोरियों के बीच की सीवन। **अँगिया का ठर्रा**=वह बटा हुआ धागा जो अँगिया के नीचे की गोट मे लगाया जाता है। **अँगिया की डोरी**=कंठे और पुट्ठे मे शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी। **अँगिया की दीवार**=दे० 'अँगिया का पान'। **अँगिया का पछुआ**=अँगिया की पीठ की ओर के टुकड़े। **अँगिया का पान**=अँगिया की कटोरी का छोटा टुकड़ा। **अँगिया का पुट्ठा**=अँगिया की आस्तीन की चौड़ी गोट। **अँगिया के बंद**=पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अँगिया कसी जाती है। **अँगिया का बँगला**=कटोरी की कली या फाँक जो जोड़ो पर गोखरू टाँकने से बन जाता है। दो कलियाँ होने पर बँगला और दस बारह होने पर खरबूजा कहते है। **अँगिया के बाजू**=अँगिया का वह भाग जो दोनों बगल छिपाता है। **अँगिया की लहर**=कटोरियो पर तिकोनी कटी हुई सज्जा।

अँगिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधिया] झीने कपड़े से मढ़ी हुई चलनी।

अँगिरना(पु)†—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण?] स्वीकार करना। उ०—जे अँगिरिअ तो न होइअ उदास।—विद्यापति, पृ० ४४।

अँगिराना—दे० 'अँगड़ाना'। उ०—लागि गरें अँगिरात जँभात हैं, आरस गात भरे गिरि जात हैं।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४२।

अँगीठ(पु)—संज्ञा पुं० [स० अग्निष्ठ, पा०, प्रा० अग्गिट्ठ] दे० 'अँगीठा'। उ०—या मन को विसमिल करूँ दीठ करूँ अदीठ। जो सिर राखूँ आपना पर सिर जलो अँगीठ।—कबीर (शब्द०)।

अँगीठा—संज्ञा पु० [सं० अग्नि=आग+स्था=ठहरना>अग्निस्था, अग्निष्ठा, प्रा० अग्गिट्ठा अथवा स० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिया] बड़ी अँगीठी। बड़ा आतिशदान। बड़ी बोरसी। आग रखने का बरतन।

अँगीठि(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—सुदर एक अचभा हूवा पानी माँहि जरै अँगीठि।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५२१।

अँगीठी—संज्ञा स्त्री० [स० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] आग रखने का छोटा बरतन। आतिशदान। उ०—धरी अँगीठी स्वच्छ घूम बिन गावत अपने रंग।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८३०।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूँटी अठपहली आदि कई आकारों की बनती है।

मुहा०—**अँगीठी होना**=अँगीठी के समान तप्त होना। उ०—सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जरि बरि भई अँगीठी।—सूर०, १०।३६७२।

अँगु(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंग'[1]। उ०—सैल सँभार्यो लला अँगुरी धरि पै अबला अँगु री न सँभार्यो।—देव ग्र०, पृ० ११।

अँगुछा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा[1]'। उ०—'तब वा माली ने याको अँगुछा तो फेरि दियो'।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२६।

अँगुछाना—क्रि० स० [सं० अँगुछा से नाम०] दे० 'अँगोछना' उ०—मनन सुनीर अन्हवाय अँगुछाय दया, नवनि बसन प्रन सोधी ले लगाइये —भक्तमाल (प्रि०), छ० ३।

अँगुठा—संज्ञा पु० दे० 'अँगूठा'। उ०—कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।—सूर०, १०।६४।

मुहा०—**अँगुठा चटाना**=दे० 'अँगूठा चटाना'। उ०—अँगुठा चटाय दफादार के रे साँवलिया।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३४०।

अँगुठी—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अँगुट्ठी] १ काँसे का ढालकर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अँगूठे में अनवट के स्थान पर पहना जाता है। इसका व्यवहार नीच जाति की स्त्रियो मे है। २ दे० 'अँगूठी'।

अँगुरि(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगुरी'। उ०—कानन कुडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन मैं कछु झलकैं।—नंद० ग्र०, पृ० ३५२।

अँगुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका, प्रा० अंगुलिया] छोटी उँगली। उ०—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत।—सूर०, १०।१२२।

अँगुरियाना—क्रि० स० [हिं० अँगुरी से नाम०] हैरान करना। तंग करना। परेशान करना (बोल०)।

अँगुरिया बेल—सज्ञा पुं० [फा० अंगूर] कालीन या गलीचे के किनारे पर की एक बेल या नक्काशी जो अगूर की लता के ढग पर बनाई जाती है।

अँगुरी†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] १ उँगली। उ०—तीजे मास हस्त पग होहिं चौथ मास कर अँगुरी सोहिं। —सूर०, ३।३। क्रि० प्र०—चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना'। उ०—योवन के मद सग ढरैं अँग अग मुरैं अँगुरी चटकावैं।—देव ग्र०, पृ० १२।

२ वरक पीटने की चाँदी। यौ०—अँगुरी की चाँदी = यह चाँदी सिल की चाँदी को खूब साफकरके बनाई जाती है। इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं।

अँगुली—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली, प्रा० अगुली] †१. अँगुली। उँगली। २ हाथी की सूँड का अगला भाग। ३ एक नदी का नाम।

अँगुष्ठ Ⓤ—सज्ञा पुं० दे० 'अगुष्ठ'। उ०—सुभग अँगुष्ठ अगुली अविरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अँगुसा†—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश = टेढी नोक, प्रा० अकुसय] अकुर। अँखुआ।

अँगुसाना†—क्रि० अ० [हिं० 'अँगुसा से नाम०] बोए हुए अनाज का अँखुआ फोडना। जमना। अकुरित होना। अँखुआना।

अँगुसी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँगुसा + ई (प्रत्य०)] १ हल का फाल। २ सोनारों की बकनाल या टेढी नली जिससे दिए की लौ को फूंककर टाँका जोडते हैं।

अँगूठा—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अगुट्ठ] १ मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और मोटी उँगली। पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है। तर्जनी की बगल मे छोर पर की वह उँगली जिसका जोड हथेली मे दूसरी उँगलियों के जोडो के नीचे होता है। उ०—हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुदरियों से सब भर, आरसी अँगूठे मे देकर।—ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेष—मनुष्य के हाथ मे दूसरे जीवों के हाथो से इस अँगूठे की बनावट मे बडी भारी विशेषता है। यह बडी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेष चार उँगलियो मे से प्रत्येक पर सटीक बैठ जाता है। इस प्रकार यह पकडने मे चारो उँगलियो को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है। बिना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड सकतीं।

मुहा०—अँगूठा चूमना = १ आदर करना। विनय प्रकट करना। २ अधीन होना। ३ खुशामद करना। सुश्रूषा करना। अँगूठा चूसना = बडा होकर बच्चो की सी नासमझी करना। अँगूठा दिखाना = १ किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नही करना। २ किसी कार्य को करने से हट जाना। किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना। ३ अवज्ञा करना। ४ चिढाना। उ०—ऐसी उपाय गई निमुकाय, चितै मुमुकाय दिखाय अँगूठो। —सुधानिधि, पृ०। अँगूठा नचाना = चिढाना। अँगूठे पर मारना = तुच्छ समझना। परवाह न करना।

२ मनुष्य के पैर की सबसे मोटी उँगली।

अँगूठी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा + ई (प्रत्य०)] १ उँगली मे पहनने का एक गहना। एक प्रकार का छल्ला। मुँदरी। मुद्रिका। अँगुश्तरी। उ०—औ पहिरे नगजरी अँगूठी।—पदु०, पृ० ५०।

यौ०—अँगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु। उ०—देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुदर अँगूठी के नगीने सा नगर बनाया है। —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२।

२ उँगली मे लपेटा हुआ राछ मे जोडने का तागा।

विशेष—जुलाहे जब पाई को राछ मे जोडने लगते हैं तब पाई के थोडे थोडे तागो को ऐंठकर उँगली मे लपेट लेते हैं और फिर उँगली मे से एक एक तागा निकालकर राछ मे जोडते हैं। इस उँगली मे लपेटे हुए तागे को अँगूठा या अँगूठी कहते हैं।

अँगूर[1] Ⓤ—सज्ञा पुं० दे० 'अगूर'। उ०—चूसे अधर अँगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८६३।

अँगूर[2] Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अकुर। अँखुवा। उ०—सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अँगूर।—जायसी (शब्द०)।

अँगे Ⓤ—क्रि० वि० [सं० अग्रे, प्रा० अग्गे] आगे। भविष्य मे। उ०—के जैसा अँगे होनेहारा है काम।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

अँगेजना Ⓤ—क्रि० स० [सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कँपना] १ सहना। बरदाश्त करना। उठाना। उ०—रह सका काम का सुखी सुदर, कौन सा अग दुख अँगेजे पर।—चोखे०, पृ० २१। २ अगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—इक मरिबै की छाडि कहा जौ नाहिं अँगेज्यौ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ८०।

अँगेट Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग] अगों की दीप्ति या काति। उ०—(क) एडी तें सिखा लौ है अनूठिए अँगेट आछी।—रसखान०, पृ० १२०। (ख) साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।—घनानद०, पृ० ४७।

अँगेठा†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेठी†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेरना Ⓤ—क्रि० स० [सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना, अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या स० अङ्गीकरण, प्रा० अगीअरण या अगीरण] १ अगीकार करना। स्वीकार करना। मजूर करना। २ सहना बरदाश्त करना।

अँगोछना—क्रि० स० [स० अङ्गोञ्छन] गीले कपडे से देह पोछना। शरीर पर गीला वा भीगा वस्त्र रखकर मलना। गीला कपडा फेरकर बदन साफ करना। उ०—पीत पट लै लै के अँगोछत सरीर करु कजन सौं पोछत भुसुड गजराज कौ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १००।

अँगोछा—सज्ञा पुं० [स० अङ्गोञ्छ] [स्त्री० अँगोछी] [पू० गमछा· गमछी] १ देह पोछने का कपडा। तौलिया। २ ऊपर रखने के लिये एक कपडे का टुकडा। इसे प्राय लोग कधे पर रखते हैं। उपरना। उपवस्त्र। उ०—बासन माँकि अँगोछा डारा। ह्याँ से भाजन काढि निकारा।—रत्न०, पृ० १६८।

क्रि० प्र०—लेना = पोछना। उ०—चरन पखारि अँगोछा लीन्हा। —कबीर सा०।

अँगोछी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गोछा + हिं० ई (प्रत्य०)] १ देह पोंछने के लिये छोटा कपडा २ बच्चो की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्राय छोटे लडके लडकियो के लिये होती है।

अँगोजना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँगेजना'।

अँगोट(पु)--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म,, प्रा० अग + वट्ट], शरीर की गठन। देह की बनावट।

अँगोटना(पु)--क्रि० स० दे० 'अगोटन'। उ०--देखि री देखि अँगोटि कै नैननि कोटि मनोज मनोहर मूरति।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १३७।

अँगोरा[1]†--सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अँगोरा[2]--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] अँगारा। अँगार। उ०--भयउ अदग सो लाल अँगोरा। कहे आगि मे अगिनि अँजोरा।--सं० दरिया, पृ० २३।

अँगोरी--सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अँगारी'।

अँगौंगा--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र = अगला + अग = भाग] अन्न या और किसी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ बाँटने या देवता को चढाने के लिये अलग निकाला हुआ अश। अँगऊँ। पुजौरा।

अँगौछना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०--उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ, ओदे वसन अँगौछि।--सूर०, १०।६०६।

अँगौछा†--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा'। उ०--अँगौछे मे माम और पोथी के चोंगे मे मद्य छिपाई जाती है।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८२।

अँगौछी†--सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोछी'। उ०--एक अँगौछी अपने अपने गले मे डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे।--कबीर म०, पृ० ५०६।

अँगौटी†--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाकृति या अङ्गवर्त्म ?] अग का गठन। आकृति। बनावट। अँगोट।

अँगौडा†--सञ्ज्ञा पुं० [?] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवाश।

अँगौरिया--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग] १ वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बैल देते है जिनसे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २ मजदूरी के स्थान पर हल बैल माँगनी देना।

अँग्रेज--सञ्ज्ञा पुं० दे० अँगरेज।

अँघडा†--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अघ्रि] काँसे का एक प्रकार का छल्ला जिसे एक वर्ग की स्त्रियाँ पैर के अँगूठे मे पहनती हैं।

अँघराई†--सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक कर जो पहले पशुओ पर लगाया जाता था।

अँघिया--सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] झीने कपडे से मढी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अँगिया। आखा

अँचना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँचवना'। उ०--पुट एकै इत मद उत अमृत आपु अँचै अँचवावै।--सूर०, १०।१२४६।

अँचर(पु)--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अँचरा'। उ०--गज गति चाल अँचर गति धुजा।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४७।

यौ०--अँचर धरैया = दे० 'अँचरा पकडाई'।

अँचरा(पु)†--[स० अञ्चल] १ साडी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साडी या ओढनी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २ दुपट्टे या दुशाले के दोनो छोर। छोर। उ०--कब मेरी अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसौं झगरे।--सूर०, १०।७६।

यौ०--अँचरा पकडाई = विवाह की एक प्रथा जिसमे वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अचल पकडता है और कुछ लेने पर छोडता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अँचरा पकडाई या अँचर धरैया कहते हैं।

मुहा०--अँचरा पसारना = (१) किसी बडे या देवता से कुछ माँगते समय (स्त्रियो का) अपने अचल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०--ए विधिना तो सो अँचरा पसारि माँगो जनम जनम दीजो या ही ब्रज बसिबो--छीतस्वामी (शब्द०)। (२) भीख माँगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अचल रोपना। (३) दीनता और विनय के साथ माँगना।

अँचल(पु)--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अचल--१'। उ०--अँचल ध्वज अवलाकि नाही धरत पिय मन धीर।--सूर०, १०।२४४६।

अँचला--सञ्ज्ञा पुं० [स० अञ्चल] १. दे० 'अँचरा'। २ कपडे का एक टुकडा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अँचली(पु)--सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अचल + ई (प्रत्य०)] दे० 'अँचरा', 'अँचला'। उ०--उलटन पलटत जग की अँचली। जैसे फेरै पान तमोली।--मलूक०, पृ० १३।

अँचवन(पु)†--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अचवन'। उ०--हसन को विश्राम, पुरुष दर्श अँचवन सुधा।--कबीर सा०, पृ० १५।

अँचवना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवना'। उ०--परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को।--तुलसी ग्र०, पृ० १०७।

अँचवनी(पु)--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आचमनी] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अँचवाना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवाना'। उ०--अँचवाइ दीन्हे पान गवने व स जहँ जाको रह्यो।--मानस, १।९९।

अँचार(पु)†--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अचार[1]'।--उ०--पापर, बरी, अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वैहै रुचि।--सूर०, १०।१२१३।

अँचुली(पु)--सञ्ज्ञा स्त्री० दे० अजली १'। उ०--जनम यहि धोखे बीता जात, जस जल मै अँचुली मे भल सीझै।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७।

अँजना(पु)--क्रि० अ० [सं० अञ्ज, प्रा० अज] स्निग्ध होना। उ०--देखत रूप निरजन अँजेऊ।--द० सागर, पृ० ६४।

अँजली†--सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अँजवाना--क्रि० स० [हिं० आँजना का प्रेर०] अजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अँजाना--क्रि० स० दे० 'अँजवाना'। उ०--आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी, हारे मोहन गिरधारी।--भारतेंदु ग्र०, भा २, पृ० ३८१।

अँजोर(ए)—संज्ञा पु० [सं० अजिर] अजिर। आँगन। उ०—अमृत बुंद तहँ झरै निकदा। नैन अँजोर मगन मन चंदा।—द० सागर, पृ० ६८।

अँजुरी(ए)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'। उ०—जीवन मेरा जात है ज्यों अँजुरी का नीर।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ६८५।

अँजुली(ए)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँजली'। उ०—जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं।—सतबानी०, भा० २, पृ० १६३।

अँजोर(ए)†—संज्ञा पु० [सं० उज्ज्वल] उजाला। उजेला। प्रकाश। रोशनी। चाँदनी। उ०—मारग हुता अँधेर अमूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।—पदु०, १।१३६।

अँजोरना(ए)[1]—क्रि० स० [हिं० अँजुरी से नाम०] १ बटोरना। समेटना। उ०—करौ जो कछू धरौ सचि पचि नृहत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दस लेत अँजोरि।—तुलसी (शब्द०)। २ छीनना। हरण करना। ले लेना। मूसना। उ०—ठाढी भई दियकि मारग में माँझ हाट मटकी सो फोरि। सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि चित चितामणि लियो अँजोरि।—सूर (शब्द०)।

अँजोरना†—क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन; हिं० 'अँजोर' से नाम०] जलाना। प्रकाशित करना। बालना। जैसे—'दीपक अँजोरना' (शब्द०)।

अँजोरवा(ए)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँजोर + वा (प्रत्य०)] उजाला। प्रकाश। उ०—जब लगि तेल दिया मे बाती, ये ही अँजोरवा दिठाय चलतू।—सतबानी०, भा० २, पृ० २३।

अँजोरा[1]†—वि० [सं० उज्ज्वल, हिं० अँजोर] उजेला। प्रकाशमान।
यौ०—अँजोरा पाख = शुक्ल पक्ष।

अँजोरा(ए)†—संज्ञा पुं० प्रकाश। रोशनी। उ०—दिया मँदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहि घर मूसहि चोरा।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरिया[1](ए)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + इया (प्रत्य०)] चाँदनी। ज्योत्स्ना।

अँजोरिया[2](ए)†—वि० उजेली। शुक्ल पक्ष की।
यौ०—अँजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात।

अँजोरी[1](ए)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + ई (प्रत्य०)] १ प्रकाश। रोशनी। चमक। उजाला। उ०—महिमा अमित मोरि मति थोरी। रवि मनमुख खद्योत अँजोरी।—मानस, ३।५ (क)। २ चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का प्रकाश।

अँजोरी[2](ए)—वि० स्त्री० उजियाली। उजेली। प्रकाशमय। उज्ज्वल। देदीप्यमान। उ०—(क) अँजोरी रात आने दो (शब्द०)। (ख) पंडित पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरना(ए)—क्रि० स० दे० 'अँजोरना[1]'। उ०—सूर स्याम की बुधि चतुराई लीन्ही सबै अँजोरी।—सूर०, १०।१२४३।

अँट(ए)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट] लागडाँट। हठ। जिद। उ०—निकसे स्याम सदन मेरे तैं इनि अँट करि पहिचानी।—सूर०, १०।२०४३।

अँटकना—क्रि० अ० [देश०] १ रुकना। अड़ना। उ०—गोरख अँटके कालपुर कौन कहावै साहु। —कबीर बी०, पृ० ६५। २. फँसना। उलझना। उ०—सूर सनेह स्वालि मन अँटक्यो अंतर प्रीति जाति नहिं तोरी।—सूर०, १०।३०५। दे० 'अटकना'।

अँटकाना†—क्रि० स० दे० 'अटकाना'।

अँटना—क्रि० अ० [देश०] १ समाना। किसी वस्तु के भीतर आना। उ०—(क) दूध इस बरतन में न अँटेगा (शब्द०)। (ख) आनंद हृदय में अँटता नहीं था। —भक्तमाल (श्री०) पृ० ५५०। २ किसी वस्तु के ऊपर सटीक बैठना। ठीक चपकना। उ०—यह जूता मेरे पैर में नहीं अँटता है (शब्द०)। ३ भर जाना। ढँक जाना। छा जाना। उ०—कूड़े से कूआँ अँट गया (शब्द०)। ४ पूरा पड़ना। काफी होना। बस होना। चलना। उ०—(क) इतना कमाते हैं पर अँटता नहीं (शब्द०)। (ख) अकेले हम इतने कामों को नहीं अँट सकते (शब्द०)। ५(ए). पूरा होना। खपना। लग जाना।

अँटिया—संज्ञा स्त्री० [प्रा० अट्ठा, 'आँट', हिं० अंटी + इया (प्रत्य०)] घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। छोटा गट्ठा। गठिया। पूली।

अँटियाना—क्रि० स० [हिं० 'अँटिया' से नाम० या अंटी] १ उँगलियों के बीच में छिपाना। हथेली में छिपाना। २. चारों उँगलियों में लपेटकर डोरे की पिंडी बनाना। ३ घास, खर या पतली लकड़ियों का मुट्ठा बाँधना। ४ पेट में रखना। अंटी में रखना। ५. गायब करना। हजम करना।

अँटीतल—संज्ञा पुं० [देश०] ढक्कन जिन्हें तेली लोग कोल्हू में जोतने के समय बैल की आँखों पर चढ़ा देते हैं।

अँठई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपदी प्रा० अट्ठअई, अंठई] एक छोटे कीड़े जो प्रायः कुत्तों के बदन में चिपटे रहते हैं। किलनी। चिचड़ी।

अँठली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ठि = गुठली, गाँठ, अष्ठीलिका] नवयुवती के निकलते हुए स्तन।

अँठियाना†—क्रि० स० [सं० अष्ठि प्रा० अट्ठि, 'अंठि' से नाम०] १ गुठली पड़ना। गिलटी पड़ना। गाँठ पड़ना। २ दही का थक्का जमना।

अँड(ए)—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडा। बैजा। उ०—जिन सब्द सोध सिंहार साँचे अचल अँड उलटे सही।—रत्न०, पृ० ६।

अँडखँड—संज्ञा पुं० दे० 'अंड खंड'। उ०—कम कुरम सेस अकार अँडखँड नौ निरंजन बस रह्यौ।—रत्न०, पृ० १।

अँड़दार—वि० [हिं० अड़ना + दार (प्रत्य०)] रुकनेवाला। अड़नेवाला। उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को लिये जात गँडदार।—मति० ग्र०, पृ० ३१२।

अँडरना†—क्रि० अ० [देश०] धान के पौधे का उस अवस्था में पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना। गरभाना।

अँडलाना†—क्रि० अ० [हिं० अड़ना] डटलाना। शेखी दिखाना।

अँडवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंड या अंडा + वाई (प्रत्य०)] मुर्गी या कोई अन्य चिड़िया जो अंडा देनेवाली हो।

अँड़ाना—क्रि० स० दे० 'अड़ाना'। उ०—माया जाल में बाँधि अँड़ाया गया जानै नर अंधा।—मलूक०, पृ० २०।

अँड़िया†—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ बाजरे की पकी हुई बाल। २ परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकडी।

अँडुआ[1]—सज्ञा पुं० [स० अण्ड, हिंदी अँड + उआ (प्रत्य०)] वह पशु जो बधिया न किया गया हो। आंडू।

अँडुआ[2]—वि० जो बधिया न किया गया हो। आंडू।

अँडुआना—क्रि० स० [स० अण्ड से नाम०] बैल के अडकोश को कुचलना जिसमे वह नटखटी न करे और ठीक चले। बधियाना। बधिया करना।

अँडुआ बैल—सज्ञा पुं० [हिं० अडुआ + बैल] १ बिना बधिया किया हुआ बैल। साँड। २ बहुत बडे अडकोशवाला आदमी जो उसके बोझ मे चल न सके। ३ सुस्त आदमी।

अँडुवा†—वि० दे० 'अँडुआ'।

अँडुवारी—सज्ञा स्त्री० [स०अण्डज>अडअ>अडव>अँडउ+वारी> एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अँतडी—सज्ञा स्त्री० [प्रा० अप० अन्तडी] आँत। नली। दे० 'आँत'।

मुहा०—अँतडी टटोलना = १ भूख को समझना। उ०—जोरू टटोले गदही, माँ टटोले अँतडी (कहावत)। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। अँतडी जलना = पेट जलना। बहुत भूख लगना। अँतडी गले मे पडना = किसी आपत्ति मे फँसना। सकटग्रस्त होना। अँतडियो का बल खोलना = बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। अँतड़ियो को मसोसकर रह जाना = भूख की कठिन तकलीफ सहना। अँतडियो मे आग लगना = दे० 'अँतडी जलना'। अँतडियो मे बल पडना = अँतडियो का ऐठना या दुखना। पेट मे दर्द होना। उ०—हँसते हँसते अँतडियो मे बल पड गए। (शब्द०)।

अँतर[1]—सज्ञा पुं० [हिं० अतर] दूरी। अतर। उ०—आरोपित हार बणो थियाँ अँतर उरस्थल कुभस्थल आज।—वेलि० दू०, ९४।

अँतर[2]†—सज्ञा पुं० दे० 'इत्र'।

अँतरजामी—वि० दे० 'अतरजामी'। उ०—कमल नैन करुनामय सकल अँतरजामी। विनय कहा करै सूर कूर कुटिल कामी।—सूर०, १।१२४।

अँतरधान—वि० दे० 'अतरधान'। उ०—ह्वै अंतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ बन माँहि दीन्हें दिखाई।—सूर०, ८।१०।

अँतरपट—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] १ ओट। आड। उ०—सीय भीख रावन कहँ दीन्हीं। तू असि निठुर अँतरपट कीन्ही।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२९। २ छिपाव। दुराव। उ०—तासौं कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।—जायसी ग्र०, पृ० १३८। ३ कपडमिट्टी। कपडौटी। उ०—का पूछौ तुम धातु निछोही, जो गुरु कीन्ह अँतरपट आही।—जायसी (शब्द०)।

अँतरा[1]†—सज्ञा पुं० [स० अन्तरा] १ अभ्रा। नागा। अतर। बीच।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पडना।

२ वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०—उ०—आना उसे अँतरा आता है। ३ कोना।

अँतरा[2]†—वि० एक बीच मे छोडकर दूसरा।

विशेष—विशेषण मे इसका प्रयोग साधु भाषा मे केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रातीय भाषाओ मे कालसूचक शब्दो के साथ होता है; जैसे, अँतरा ज्वर। अँतरे दिन।

यौ०—अँतरे खोतरे = बीच मे नागा करते हुए। दूसरे तीसरे। उ०—अँतरे खोतरै डड करै, तालु नहाय ओस माँ परै। देव न मारै अपुत्र [न] इ मरै।—घाघ०, पृ० ४७।

अँतराना[1]—क्रि० स० [सं० अन्तर से नाम०] १ अलग करना। जुदा करना। २ भीतर करना। भीतर ले जाना।

अँतराना[2]—क्रि० अ० अतर या भेद डालना। फर्क डालना। उ०—हौ हौ कहत धोख अँतराही। ज्यौ भा सिद्ध कहाँ परिछाही। —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८४।

अँतरिख—सज्ञा पुं० दे० 'अतरिख'। उ०—चद सुरुज औ नखत तराई। तेहि उर अँतरिख फिरै सबाई।—जायसी ग्र०, पृ० २२९।

अँतरिछ—सज्ञा पुं० दे० 'अतरिच्छ'। उ०—जाकी कुरिया अँतरिछ छाई। सो हरिचद देखल नहि जाई।—कबीर बी०, पृ० १८।

अँतरी[1]—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँतडी'।

मुहा०—अँतरी का बल खोलना = जी भर खाना। पेट भर खाना। कडी भूख मिटाना। अँतरियाँ जलना = जोरो की भूख लगना। अँतरियो मे आग लगना = दे० 'अँतरियाँ जलना'।

अँतरीखा—सज्ञा पुं० दे० 'अतरिक्ष'—१'। उ०—बहुतक फिरा करहिं अँतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।—पदु०, पृ० १२०।

अँतरौटा—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] महीन साडी के नीचे पहनने का कपडा। वह कपडे का टुकडा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर मे लपेट लेती हैं जिसमें महीन साडी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अस्तर। छनना। उ०—चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मद माते (हो)।—सूर०, १।४४।

अँतहकरण—सज्ञा पुं० दे० 'अतहकरण'। उ०—वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अँतहकरण जई।—वेलि दू० १७२।

अँतरिख†—सज्ञा पुं० [सं०अन्तरिक्ष] आकाश। अतरिक्ष। उ०—दूजी अमर वेलि जग आई। जहाँ तहाँ अँतरिख लपटाई। —चित्रा०, पृ० १४२।

अँथऊ†—सज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।

अँथवना—क्रि० अ० दे० अथवना'। उ०—केहँ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अँथवा लै तारा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।

अँदरसा—सज्ञा पुं० [फा० अदर + स० रस, अथवा स० अन्न + रस] एक प्रकार की मिठाई। उ०—सुदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।—सूर०, १०।१८३।

विशेष—यह मिठाई चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चौरेठे को चीनी के कच्चे शीरे मे डालकर थोडा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पोस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।

अदली†--वि० [प्रा० अधल] अधा । उ०--यहाँ वी अँदली आखिर कुं वी अँदले ।—दक्खिनी० पृ० ४३३ ।

अँदाज(पु)--सज्ञा पुं० दे० 'अदाज'' । उ०--एकै जीव जीवत हैं उमर अँदाज भर एकै जीव होतै हिसु होत चटपट है ।--ठाकुर० पृ० १३ ।

अँदाना(पु)--क्रि० स० [स० अद या अदि = बाँधना, बधन करना] बचाना । बरकाना । उ०--पञ्चमी नवमी पुरुख न भाए । दूइज दसमी उतर अँदाए ।--जायसी (शब्द०) ।

अँदुआ--सज्ञा पुं० [स० अन्दुक, प्रा० अदुया] हाथियो के पिछले पैरो मे डालने के लिये लकडी का बना एक काँटेदार यत्र ।

विशेष--यह दो धनुषाकार लकडियो का बना होता है जिनके मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं । इसे हाथी के पैर में डालकर दूसरे छोरो को भी बाँध देते हैं ।

अँदेशा—सज्ञा पुं० [फा० अदेशह्] आशका । खटका । उ०—मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पथ का क्या अँदेशा ।--क्वासि, पृ० १० ।

अँदेस(पु)†--सज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा' । उ०—जिम करमनि करि अधिक कलेस । फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस ।--नद० ग्र०, पृ० ३०१ ।

अँदेसवा†--सज्ञा पुं० दे० अँदेशा' । उ०--तुम बिन प्रान रहै वा नाहीं यह जिय मह अँदसवा रे ।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३७४ ।

अँदोरा(पु)†--सज्ञा पुं० दे० 'अदोर' । उ०--धरी एक सुठि भयउ अँदोरा । पुनि पाछे बीता हाइ रारा ।--जायसी (शब्द०) ।

अँदोल(पु)—सज्ञा पु० [प्रा० अदोल = झूलना] आनद । प्रसन्नता । उ०—चहल पहल सी देखि कै मान्यो बहुत अँदोल ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३१६ ।

अँदोलना(पु)—क्रि० स० [स० अन्दोलन] हिलाना । डुलाना । उ०—लगि सिगरु तन अग वारि पिन्नी अँदोलि कर ।—पृ० रा०, १।५५६ ।

अँधकाल(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अन्ध + काल] अधकार । अँधेरा । उ०—सूर कचन गिरि बिचनि मनु रह्यो है अँधकाल ।—सूर० १० । १०८३ ।

अँधवाई(पु)--सज्ञा स्त्री० दे० 'अँधवाई'

अँधवाई(पु)--सज्ञा स्त्री० [स० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन । ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पडे । आँधी तूफान । उ०--श्याम अकेले आँगन छाँडे आपु गई कछु काज घरै । यहि अतर अँधवाई उठी इक गरजत गगन सहित घहरै । --सूर (शब्द०) ।

अँधरा[1](पु)†—सज्ञा पुं० [स० अन्ध, प्रा० अधरअ] अधा । नेत्रविहीन प्राणी । दृष्टिरहित जीव ।

अँधरा[2](पु)†--वि० अधा । बिना आँख का । दृष्टिरहित ।

अँधरी[1]†—सज्ञ स्त्री० [हिं० अँधरा + ई (प्रत्य०) अधी । अधी स्त्री ।

अँधरी[2]†--सज्ञा स्त्री० [स०आधारित,प्रा० आधारिअ > आधरी > अँधरी] पहिए की पुट्टियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली धनुषाकार लकडियो की चूल जो दूसरी पुट्ठी के भीतर ऐसे घुसी रहती है कि ऊपर से मालूम नहीं देती ।

अँधला(पु)--सज्ञा पुं० [प्रा० अधल] दे० 'अँधरा'--१ । उ० (क) तिवै उद्र महि दुख सहै अँधलउ कालि ग्रसीतु ।—प्राण०, पृ० २१० । (ख) कौने भ्रम भूले अँधला ।--सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६०६ ।

अँधवायु(पु)--सज्ञा पुं० [स० अन्धवायु] आँधी । उ०--तेरा पुत अँधवायु उठायो ।—ब्रज०, पृ० ३८ ।

अँधवाह(पु)--सज्ञा पुं० दे० अँधवाई' । उ०—धावहु नद गोहारि लगी किन तेरी सुत अँधवाह उठ यो ।--सूर०, १०।७७ ।

अँधार[1](पु)†—सज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधार] अधकार । तम । अँधेरा । अँधियारा । उ०—मृगनैनी कामिनि बिना लागत सबै अँधार ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६६ ।

अँधार[2](पु)†--सज्ञा पुं० [स० आधार = सहारा] रस्सी का जाल जिसमे घास भूसा आदि भरकर बैल की पीठ पर लादते हैं ।

अँधारी(पु)--सज्ञा स्त्री० आँधी । तेज हवा । तूफान (डिं०) ।

अँधिअर(पु)—वि० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] अँधेरा । अधकारमय । उ०--हिएँ की जोति दीप वह सूझा । यह जो दीठि अँधिअर भा बूझा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०८ ।

अँधिआरा(पु)--सज्ञा पुं० [स० अधकार, प्रा० अधयार] अधकार । अँधेरा । उ०—बरषि घूरि कीन्हेसि अँधियारा ।—कानम ६।५१ ।

अँधिआरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अन्ध + कारी] आँख बद करने का आवरण या पट्टी । अँधेरी । उ०--छलि आँखिन्ह अधिआरी मेली । धक्कारहिं गरदार सहेली ।—चित्रा०, पृ० २०२ ।

अँधियरवा(पु)†--सज्ञा पुं० [हिं० अँधियर + वा (प्रत्य०)] दे० 'अँधियार' । उ०--अँधियरवा मे ठाढि गोरी का करलू । जब लगि तेल दिया मे बाती, ये हीं अँजोरवा बिछाय धलतू ।--सत बानी०, भा० २ पृ० २३ ।

अँधियरिया(पु)†--सज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियर + इया (प्रत्य०)] १ अँधेरी रात । २ अँधेरा । तम । उ०—खुनी किवरिया मिटि अँधियरिया । —धरम०, पृ० ३३ ।

अँधियार[1]†--सज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अधयार] [स्त्री० अँधियारी] अँधेरा । अधकार । तम । उ०--पसरि परयो अँधियार सकल ससार घुमडि घिरि । –नद ग्र०, पृ० ४ ।

अँधियार[2]--वि० प्रकाश रहित । अँधेरा । तमाच्छादित । दे० 'अँधेरा' । उ०—भय उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार । —सूर०, १।८८ ।

अँधियारक टोला--सज्ञा पुं० [स० अँधियारक + हिं० टोला] अधक नामक यदुवशियों की एक शाखा का निवासस्थान । अधको का निवास ।

अँधियारा[1](पु)†—सज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] १ अँधेरा । अधकार । तम । २ धुधलापन धुध ।

अँधियारा[2](पु)†--वि० १ प्रकाशरहित । अँधेरा । तमाच्छादित । उ०—पक्ष अँधियारा जगत का जब मनुज अघ मे निरत था ।—हस०, पृ० ११ । २ धुधला । ३. उदास । सूना ।

मनहूस। उ०—वीर कीर, सिय राम लखन विनु लागत जग अधियारो।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३५१।

अँधियारी[1] ⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियार] १. अधकार। उ०—जब करि थकौं सरलौं नहिं एकौं नाहिं मिटी अँधियारी।—जग० श०, भा० २, पृ० १०८। २ अधकार फैला देनेवाली आँधी। उ०—अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहि तें न निहारी।—सूर०, ६।१७४। ३. दे० 'अधिआरी'। उ०—जोवन गज अपमर मद कीन्हें। अब न रहै अँधियारी दीन्हें। चित्रा०, पृ० १६४।

अँधियारी[2]—वि० स्त्री० अधकारपूर्ण। उ०—अँधियारी भादौं की रात।—सूर०, १०।१२।

अँधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियारी + कोठरी] १ अँधेरा छोटा कमरा। २ पालकी का अगला कहार जब रास्ते मे पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये 'अँधियारी कोठरी' कहता है। ३ पेट। उदर। गर्भस्थान। कोख। धरन।

अँधियाली—वि० दे० 'अधियारी'[2]।—उ०—आधी रात का समा, बडी अँधियाली रात, सब ओर सन्नाटा, इसपर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी न सूझता।—ठेठ, पृ० ३२।

अँधुला ⑤—वि० दे० 'अँधरा'। उ०—जैनी अँधुले अमत खे कालु।—प्राण०, पृ० १८०।

अँधेर—संज्ञा पुं० दे० अँधेरा[1]। उ०—वहि देसवा मे नित्त पूनिमा, कबहु न होइ अँधेर।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ६४।

अँधेरना ⑤—क्रि० स० [अधेर + ना] अँधेरा करना। अधकारमय करना। तमाच्छादित करना। उ०—अरी, खरी सटपट परी, विधु आधे मग हेरि। मग लगै मधुपनु लई भागन गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अँधेरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अधयार] १. अधकार। तम। प्रकाश का अभाव। उजाले का विलोम। उ०—मौन, नाश, विध्वस अँधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव।—कामायनी, पृ० १८। २ धधलापन। धुध। उ०—उसकी आँखो मे अँधेरा छाया रहता है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—दौडना।—पडना।—फैलना।—होना।

मुहा०—अँधेरा छँटना = प्रकाश के सामने से हट जाना। उजाला छाँडना।

२. छाया परछाई। उ०—चिराग के सामने से हट जाओ, तुम्हारा अँधेरा पडता है (शब्द०)। ४ उदासी। शोक। उ०—उसके मरते ही समाज मे अँधेरा छा गया (शब्द०)।

अँधेरा[2]—वि० अधकारमय। प्रकाशरहित। तमाच्छादित।

यौ०—अँधेरा कुप = कूएँ की तरह अँधेरा। बहुत गहरा अँधेरा। अँधेरा पाख, अँधेरा पक्ष = कृष्ण पक्ष। बदी। अँधेरे उजाले, अँधेरे उजेले = अबेर सबेर। समय कुसमय। वक्त बेवक्त। उ०—अच्छा जमादार अँधेरे उजाले समझ लूँगा।—फिसाना०, पृ० ४८६। अँधेरे मुहँ, मुँह अँधेरे = सूर्योदय के पहले जब मनुष्य एक दूसरे का मुँह अच्छी तरह न देख सकते हों। बडे तडके। बडे सबेरे।

मुहा०—अँधेरे घर का उजाला = (१) अत्यत कातिमान। अत्यत सुदर। (२) शुभ लक्षणवाला। सुलक्षण। कुलदीपक। वश की मर्यादा बढानेवाला। (३) इकलौता बेटा। अँधेरे घर का चिराग या दिया = दे० 'अँधेरे घर का उजाला'।

अँधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] एक खिलौना जो श्वेत और रगीन कागजो से बनता है। रात दिन का खिलौना।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों मे लपेटकर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रगीन होते हैं और जो हाथ की चारो उँगलियो की सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका सादा अश दिखाई पडता है और कभी रगीन।

अँधेरा गुप—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + कूप] इतना अधिक अधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अधकार, जैसे—इस कोठरी मे तो बिलकुल अँधेरा गुप है (शब्द०)।

अँधेरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार] १. अधकार। अँधेरा। उ०—झलकि चमकि तहँ रूप विराजै मिटिगै सकल अँधेरियाँ री।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

अँधेरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा + ई] [पु० अँधियरिया] १ अधकार। तिमिर। प्रकाश का अभाव। तम। अधियारी। उ०—मालती कुज मे मिलती चद्रिका अँधेरी जैसे।—आँसू पृ० ४८। २ काली रात। अधकार भरी रात्रि।

क्रि० प्र०—छाना।—झुकना।—दौडना।—फैलना।

३ आँधी। अधड। ४. घोडो और बैलो की आँख पर डाला जानेवाला पर्दा। अधारी।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

मुहा०—अँधेरी डालना, अँधेरी देना = (१) किसी की आँखो को मूँदकर उसकी दुर्गति करना। इसी को कवल ओढाना भी कहते हैं। (२) आँख में धूल डालना। धोखा देना।

अँधेरी[2]—वि० प्रकाशरहित। अधकारयुक्त। बिना उजेले की। उ०—रजनी अँधेरी है न सूझति हथेरी रच चोर करे फेरी लखि मुख ना लुकोवै तूँ।—दीन० ग्र०, पृ० १३८।

यौ०—अँधेरी कोठरी = १. पेट। गर्भ। कोख। धरन। २ गुप्त भेद। रहस्य।

मुहा०—अँधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी। जार।

अँधोटी—संज्ञा स्त्री० [स० अन्ध + पटी, प्रा० अधवटी, अँधोटी, अँधोटी] बैल या घोडे की आँख बद करने का ढक्कन या परदा।

अँधौटा—संज्ञा पुं० [स० अन्ध + पट्टक, प्रा० अधवट्टअ] दे० 'अँधोटी'। उ०—रहट बिसह एह मूढ मन दिएँ अँधौटा बैल।—चित्रावली, पृ० १७५।

अँधौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँध्यार ⑤†—सज्ञा पुं० दे० अँधियार। उ०—दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८।

अँध्यारी—[1] ⑤†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधियारी'। उ०—भई एक बार अपार अँध्यारी।—हम्मीर रा०, पृ० २०।

अँध्यारी[२]—वि० अंधकारयुक्त। अंधेरी। उ०—भादौं की अँधराति अँध्यारी।—सूर०, १०।११।

अँव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम। उ०—तहाँ सु अँव तर रिप्प इक क्रम तम अंग सुरंग।—पृ० रा०, ६।१७।

अँवराई†—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र=आम+राजी=पंक्ति, प्रा० अंब+राई] आम का बगीचा। आम की वाटी।

अँवराउँ(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—घन अँवराउँ लाग चहुँ पासा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २७।

अँवराव(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—अस अँमरावं सघन वन, वरनि न पारौं अंत।—जायसी (शब्द०)।

अँवली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गुजराती कपास जो ढोलेरा नामक स्थान मे होती है।

अँववा†—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब हिं० अँव+वा (प्रत्य०)] आम। आम्र। उ०—यहाँ अँववा तरे रुकै एक पल विश्राम लेना।—उडा०, पृ० १९।

अँवा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—व्रज करि अँवा जोग ईंधन करि सुरति आगि सुलगाए।—सूर०, १०।३७८१।

अँवाडा—संज्ञा पुं० दे० 'आमड़ा'।

अँवारी—संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] दे० 'अंबारी—१'। उ०—कलित करिवरन्हि परी अँवारी।—मानस, १।३००।

अँविया—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र, प्रा० अंब+इया (प्रत्य०)] आम का छोटा कच्चा फल जिसमे जाली न पड़ी हो। टिकरा। केरी। अमिया।

विशेष—इसकी खटाई कुछ हलकी होती है। इसे लोग दाल मे डालते तथा चटनी और अचार भी बनाते हैं।

अँविरती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका, प्रा० अमिरितिआ] तार का एक पुराना बाजा। अमृत कुंडली। उ०—वीन पिनाक किंनाइच कही। बाज अँविरती अति गहगही।—पदमावत, पृ० ५६२।

अँविरथा(पु)†—वि० [सं० वृथा+अं (उच्चा०) (पु) बिरथा] वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। फजूल। उ०—प्रेम कि आगि जरै जो कोई। ताकर दुख न अँविरथा होई।—जायसी (शब्द०)।

अँविलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका, प्रा० अंबिलिया] इमली का वृक्ष। उ०—कोइ अँविलि कोई महुव खजूरी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अंब+उवा (त्य०)] आम्र। आम। उ०—मौरे अँवुआ अरु द्रुम वेली मधुकर परिमल भूले।—सूर० (राधा०), २३९१।

अँभौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँमर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अवर—६'। उ०—दाहिने अतर और अँमर तमोर लीन्हें। सामुहे लपेटे लाज भोजन के थार गहें।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६८।

अँवदा(पु)—†वि०—[सं० *अवाध, (पु) अँवधा] १ नीचे की ओर मुँह-वाला। उ०—आकाशे अँवदा कुआ पाताले पनिहार।—कबीर (शब्द०)। २ औंधा। उलटा।

अँवधाना(पु)—क्रि० स० [(पु) अँवधा से नाम०] औंधा करना। उलटा करना। उ०—मूरत मनोज देखि कै हारा। निज अँवधाय सो रख्यो नगारा।—हिं० प्रेमा०, पृ० २५५।

अँवरा†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'। उ०—कोई अँवरा कोई बेर करौंदा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँवराई'। उ०—सत सभा चहुँ दिसि अँवराई।—मानस, १।३७।

अँवलउँ—वि० [सं० प्रा० अबल] अस्वस्थ। व्यथित। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी पडहउ वाज्यउ द्रग। काँही रली वधामणाँ, काँही अँवलउ अग।—ढोला०, दू० ३५१।

अँवला†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'।

अँवली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० आमलकी, प्रा० आमलई] छोटा आँवला। उ०—पक गये सुनहले मधुर बेर, अँवली से तरु की डाल जड़ी।—ग्राम्या, पृ० ३६।

अँवली—(पु)[२] वि० [?] उलटा। उ०—लगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अँवली रीति।—सत० सार०, भा० २, पृ० ७४।

अँवहलदी—संज्ञा स्त्री० दे० आमा हल्दी। उ०—आलूचा, अमिली अँवहलदी, आल आँवरा साल अफलदी।—सुजान०, पृ० १६१

अँवा—(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—अँवा अगिनि जिमि अंतर जरै।—नद० ग्र०, पृ० १३३।

अँवारना(पु)—क्रि० सं० [हिं० वारना] न्योछावर करना। वारना। उ०—अब रामियो शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अँवारी।—राम० धर्म०, पृ० ३२२।

अँविरथा—(पु)†—वि० दे० 'अंविथा'। उ०—उघर न नैन तुमहिं विनु देखे। सबहि अँविरथा मोरे लेखे।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अँस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०—बाम भुजहिं सखा अँस दीन्हें, दच्छिन कर द्रुम डरियाँ।—सूर०, १०।४७०।

अँसुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० असु, असुय] आँसू। अश्रु। उ०—तन काँप लोचन भरे अँसुआ झलके आय।—श्यामा०, पृ० १२८।

अँसुपात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रुपक्ति] आँसुओं की कतार। आँसू की पंक्ति या पाँत। उ०—इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे अँसुपात।—सूर०, ९।३८।

अँसुवा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँसुआ'। उ०—यह छवि निरखि रही नँदरानी अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि।—सूर०, १०।१८७।

अँसुवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० आँसू से नाम०] अश्रुपूर्ण होना। डबडबा आना। आँसू से भर जाना। उ०—उनही बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी, अँसुवानी रहैं।—रसखान (शब्द०)।

अँहडा†—संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बटखरा।

अँहस—संज्ञा पुं० [सं० अहस्] दे० 'अह'।

अँहुडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जिसमे छोटी छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियो की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा मे पड़ते हैं। वाकला।

अ¹—उप० संज्ञा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों मे फेरफार करता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्राय अभाव सूचित करता है, जैसे, अकर्म, अन्याय, अचल। कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है जैसे—अभागा, अकाल, अदिन। स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना होता है तब उसे 'अन' कर देते हैं, जैसे, अनंत, अनेक अनीश्वर। पर हिंदी मे कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन्' के 'न्' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं, जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी आदि।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूचक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों मे माना है (१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण=ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य। (२) अभाव, यथा—अफल=फलरहित, अगुण=गुणरहित। (३) अन्यत्व, यथा—अघट=घट से भिन्न, पट आदि। (४) अल्पता, यथा—अनुदरी कन्या=कृशोदरी कन्या। (५) अप्राशस्त्य, बुरा, यथा—अराग। अधन=बुरा धन। (६) विरोध, यथा—अधर्म=धर्म के विरुद्ध आचरण। अन्याय, आदि। हिंदी मे इसका प्रयोग कुछ लोग स्वार्थिक रूप मे भी मानते हैं, जैसे अलोप=लोप।

अ²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २ शिव (को०)। ३ ब्रह्मा। ४ विराट। ५ इंद्र। ६ वायु। ७ कुबेर। ८ अग्नि। ९ विश्व। १० सरस्वती। ११ अमृत। १२ कीर्ति। १३ ललाट। १४ प्रणव (को०)। १५ यम (को०)। १६ प्राण (को०)।

अ³—वि० १ रक्षक। २ उत्पन्न करनेवाला।

अइ—सर्व० [सं० एतत्, अप० एइ, एअ] ये। उ०—करि कइरां ही पारणउ अइ दिन यूं ही ठेलि।—ढोला०, दूहा०, ४३०।

अइयपन—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन'। उ०—पउ अनाल अइयपन भल भेल।—विद्यापति, पृ० २२१।

अइया†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइल†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला'।

अइला†—संज्ञा पुं० [देश०] चूल्हे का मुँह या छेद।

अइस†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसइ†—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही। इस प्रकार ही।

अइसन†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसना† वि० [अप० अइश] दे० 'अइसन'। उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये।—विद्यापति, पृ० ११०।

अइसा†—वि० दे० 'ऐसा'।

अइसिउँ—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी। इस प्रकार की भी

अइहइ†—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा। इस प्रकार का। उ०—मृगरिपु कटि सुंदर वणी, मारू अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

अईगई†—वि० [हिं० अई+गई] दे० 'आई गई'।

मुहा०—अईगई करना='आई गई करना'। उ०—चित आन की आन कहीं चहै पै हित जान अईगई कीजतु है।—ठाकुर०, पृ० ३।

क्रि० प्र०—करना।

अउंध†—वि० दे० 'औंधा'। उ०—फिरहुँ का फूले फूले फूले। जब यम मास अउंध मुख होते सो दिन काहे भूले।—कबीर बी०, पृ० ५४।

अउंरा†—संज्ञा पुं० दे० 'औंरा'। उ०—कोइ अउंरा कोइ राइ करउँदा।—पदुमा०, पृ० ८५।

अउ¹—संयो० अव्य० [सं० अपर या अवर] और। तथा। उ०—जस हथ्थ मुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सभरिय।—अकबरी०, पृ० ७४।

अउ—²सर्व० १. वह। उ०—सारीखी जोडी आ जूडी नारी अउ नाह।—ढोला०, दू० ६। २ यह। उ०—राजा राणी सूँ कहइ कीजइ अउ वीमाँह।—ढोला०, दू० ६।

अउखतु—संज्ञा पुं० दे० 'औषध'। उ०—अैसा अउखतु खाह गवाँरा। जितु खाधे तेरे जाँहि विकारा।—प्राण०, पृ० २७४।

अउगाह†—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह'। उ०—नयन हि जानउं नीअरे कर पहुँचत अउगाह।—पदुमा०, पृ० ५४।

अउगुण—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण'। उ०—मजण मिल्या मण ऊमग्यउ, अउगुण सहि गलियाह।—ढोला०, दू० ५६०।

अउझक†—क्रि० वि० दे० 'औझक'। उ०—मारू दीठी अउझकइ जाणि खिवी घण सज्ज।—ढोला०, दू० ८६।

अउठा—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकडी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं।

अउत¹—वि० दे० 'अकृत'। उ०—नानक लेखै मांगिअै अउत जणेंदी जाय।—प्राण०, पृ० २१८।

अउत²—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित। अयुक्त। उ०—अउत होइ घरि छोड हे राय।—बी० रा०, पृ० ४९।

अउधान†—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गर्भाधान। गर्भस्थिति।

अउधू†,अउधूत†—संज्ञा पुं० दे० 'अवधूत'।

अउपन†—संज्ञा पुं० [प्रा० ओप्पा] सान पर घिसना। सान देना।

अउर†—अव्य० दे० 'और'। उ०—मकरध्वज वाहणि चढ्यो अहिमकर उत्तर वाउ वाए अउर।—वेलि०, दू० २२२।

अउरउ†,अउरौ†—क्रि० वि० [सं० अपर+अपि] और भी।

अउलग†—संज्ञा पुं० [सं० अपालग प्रा० अवलग्ग,अप० अउलग] प्रवास। दूर गमन।

अउलगना†—क्रि० सं० [अउलग से नाम०] प्रवास करना। यात्रा करना। उ०—ईहर की घर अउलगउं, जइतूं कहइ तु जाँह।—ढोला०, दू० २२४।

अउहेर†,अउहरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] अवहेलना। अपमान।

अउहेरना†—क्रि० अ० [हिं० अवहेर से नामधातु] अपमान करना। तिरस्कार करना।

अऊत¹—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता। बिना पुत्र का। निसंतान। उ०—(क) धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया वैष्णव पूत। राम सुमिरि निर्भय भया, और सब गया अऊत।।—कबीर (शब्द०)। (ख) गये हुये मांगन को पूत। यहु फल दीनों सती अऊत।—अर्घ०, पृ० ६।

अऊत²—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व। निपुत्रता। उ०—यह ताको निस्तारहि, उनते जाइ अऊत।—सुंदर ग्र०, भा १, पृ० १८३।

अऊलना[1]—क्रि० अ० [सं० उल्=जलना] १, जलना। गरम होना। २ गरमी पड़ना। दे० 'औलना'।

अऊलना[2]—क्रिया अ० [सं० आ=अच्छी तरह+शूल, प्रा० सूल, हिं० हूलना] छिलना। छिदना। चुभना। उ०—छत आजु की देखि कहैंगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है।—रघुनाथ (शब्द०)।

अऋण—वि० [सं०] बिना कर्ज का। जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अऋणी—वि० [सं०] जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अएरना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अगीअरण, हिं० अँगेरना] अंगीकार करना। अँगेरना। स्वीकार करना। धारण करना। उ०—दियौ सुसीस चढाइ लै आछी भाँति अएरि। जापै सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहि न फेरि।—बिहारी०, पृ० ३८।

अओध(पु)—वि० दे० 'अँउध'। उ०—अधर मगइते अओध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ।—विद्यापति, पृ० २८३।

अओधा(पु)—वि० दे० 'औंधा' उ०—अओधा कमल कांति नहि पूरए हेरहू त जुग बहि जाइ।—विद्यापति, पृ० ३६।

अकटक—वि० [सं० अकण्टक] १ बिना काँटे का। कटकरहित। २ बाधारहित निर्विघ्न। बिना रोक टोक का। बेखटक। उ०—समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकटक साधक जोगी।—मानस, १।८७। ३ शत्रुरहित। उ०—जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकटक राज सुखारी।—मानस, २।१८६।

अकठ—वि० [सं० अकण्ठ] १ कठरहित। जिसे कठ न हो। स्वरहीन। कर्कश [को०]।

अकड—वि० [हिं० अकड] तेज। अकड़दार। उ०—'इशा' बदल के काफिये रख खेडछाड के, चढ बैठ एक और बछेडे अकड पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७८।

अकप—वि० [सं० अकम्प] न काँपनेवाला। स्थिर। उ०—सत्य भी शव-सा अकप कठोर।—साकेत, पृ० १६१।

अकपत्व—सज्ञा पुं० [सं० अकम्पत्व] १ काँपने का अभाव। न काँपने की दशा। कपहीनता। २ वशी बजाने मे उँगलियों का एक गुण। अकंपत्व। न काँपना।

अकपन[1]—वि० [स० अकम्पन] [वि० अकम्पित, अकम्प्य, सज्ञा अकम्पत्व] न काँपनेवाला। स्थिर।

अकपन[2]—सज्ञा पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था।

अकपित[1]—वि० [सं० अकम्पित] जो काँपा न हो। अटल। निश्चल।

अकपित[2]—सज्ञा पुं० बौद्ध गणाधिपों का एक भेद।

अकंप्य—वि० [सं० अकम्प्य] न काँपनेवाला। हिलने या डिगनेवाला। अटल स्थिर। अचल।

अक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। पातक।

यौ०—अकहीन=पापहीन। उ०—बरबस करत विरोध हठि होन चहत अकहीन।—स० सप्तक, पृ० ४७। अकबस=पापवश।

उ०—तुलसी मठ अकबस बिहठि दिन दिन कद मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

२. दुख। ३ सर्प (को०)। ४ चिह्न (को०)।

अक[2](पु)—वि० दे० 'एक'। उ०—कहौ फकीर अक खुदा गुसाई।—घट०, पृ० ८५।

अकच[1]—वि० [सं०] बिना बाल का। गंजा। खल्वाट।

अकच[2]—सज्ञा पुं० केतुग्रह।

अकचकाना—क्रि० अ० [सं० (अव० अवस्मात्)+चक्=चकितहोना] विस्मित होना। हक्काबक्का होना। उ०—(क) युवक के रहन पर बालक भी अकचकाना हुआ बैठ गया।—छाया, पृ० १०७। (ख) वह अकचकाकर अवपाली की ओर ताकता रह गया।—बैं० न०, पृ० २५५।

अकच्छ—वि० [सं० अ—रहित+कच्छ या कक्ष=धोती, परिधान] १ नग्न। नगा। २ व्यभिचारी। परस्त्रीगामी।

अकटुक—वि० [सं०] १ जो कटु न हो। मधुर। २ अम्लान। अक्लांत [को०]।

अकटोटा—सज्ञा पुं० [सं० अङ्क=छाप, तिलक+देश० टोटा=कटोरा, ढेला] कटोरा, मिट्टी से तैयार किया हुआ चदन। उ०—अकटोटा को घसि तिलक, लखी त्रिये लगाया।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५२।

अकठोर—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मुलायम। कोमल [को०]।

अकडम—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र [को०]।

अकडमचक्र—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकडोडा—सज्ञा पुं० [सं० अर्क+तुड, प्रा० अक्क+तोड] मदार का फल। मदार की डोंडी। उ०—आवन की होड कैसे अकडोडे जात है।—सुदर०, ग्र, भा० २, पृ० ४५७।

अकडत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड+अंत (प्रत्य)] अकड। दर्प। घमड। उ०—तकने की तरह बल निकल जावे। तेरे आगे जो दो करे अकडत।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४।

अकड[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० आ=अच्छी तरह+काण्ड=गाँठ, पोर,> अकड=गाँठ की तरह कडा] ऐंठ। तनाव। मरोड़। बल।

अकड[2]—सज्ञा स्त्री० [देश०] १. घमड। अहंकार। शेखी।

मुहा०—अकड दिखाना=घमड या शेखी दिखाना। उ०—मार खाय तो बदन झाडकर फिर भी अकड दिखाए।—प्रेमघन०, भा० २, ३०८।

२. धृष्टता। ढिठाई। ३. हठ। अड। जिद।

अकड तकड—सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड+तकड<तगडा] १. ऐंठन। २ तेजी। ताव। घमड। अभिमान। उ०—'अकड तकड उसमे बहुत सारी थी'।—इशा०, पृ० ६१।

अकडना[1]—क्रि० अ० [हिं० 'अकड से नाम०] १ सूखकर सिकुडना और कडा होना। खरा होना। ऐंठना। जैसे, पटरियाँ धूप मे रखने से अकड गईं (शब्द०)। २ ठिठुरना। स्तब्ध होना। सुन्न होना, जैसे—सरदी से अकड जाओगे (शब्द०)। ३. छाती को उभाडकर डील को थोडा पीछे की ओर झुकाना। तनना, जैसे—वह अकडकर चलता है (शब्द०)

अकडना[2]—क्रि० अ० [देश०] १ शेखी करना। घमड दिखाना। अभिमान करना, जैसे—वह इतने ही मे अकडा जाता है (शब्द०)। २ ढिठाई करना। ३ हठ करना। जिद करना। अडना। जैसे—सब जगह अकडना ठीक नही, दूसरे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०)। ४ फिर पडना। मिजाज बदलना। चिटकना जैसे—तुम तो जरा सी बात पर अकड जाते हो (शब्द०)।

अकडफो—वि० [हिं० अकड + फो = फुफकारना] ऐंठ और अभिमान से भरा हुआ [को०]

अकडवाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + वाई = वायु] शरीर की नसो का पीडा के सहित एकबारगी खिचना। ऐंठन। कुडल।

अकडबाज—वि० [हिं० अकड + फा० बाज = वाला] अकड़ दिखानेवाला। अपने को लगानेवाला। नोक झोकवाला। ऐंठदार। शेखीबाज। अभिमानी।

अकडबाजी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + फा० बाजी] अकडने की प्रवृत्ति। ऐंठ। अभिमान। शेखी।

अकडा[1]—सज्ञा पु० [सं० *अकाण्डक या हिं० अकड] चौपायो का एक छूतवाला रोग।

विशेष—जब चौपाए तराई की धरती मे बहुत दिनो तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घास पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है।

अकड़ा[2]—वि० [हिं० अकड] अकड से भरा। ऐंठ भरा। उ०—हिंसा गर्वोन्नत हारो मे ये अकडे अरुण टहल रहे।—कामायनी, पृ० २६६।

अकड़ाव—सज्ञा पु० [हिं० अकड़ + आव (प्रत्य०)] ऐंठन। खिचाव।

अकडू†—वि० [हिं० अकड + ऊ (प्रत्य०)] अकडबाज। अकड दिखानेवाला।

अकडैत—वि० [हिं० अकड + ऐत। (प्रत्य०)] अकडबाज। अकडू।

अकत[1]†—वि० [सं० अक्षत, प्रा० अप० अक्खत अथवा स० अकृत, प्र० अकत्त, हिं० अकत] समग्र। समूचा। आखा। सारा।

अकत[2]—† क्रि० वि० बिलकुल। सरासर।

अकती—सज्ञा स्त्री० दे० 'अखती'। उ०—अकती की तीज तजवीज के महेली जुरीं।—ठाकुर (शब्द०)।

अकत्थ्य ⓤ†—वि० स० अकत्थ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०—मसि नैना लिखनी बरुनि रोई रोई लिखा अकत्थ।—जायसी (शब्द०)।

अकत्थन—वि० [सं०] जो डीग न हाँके। अविकत्थन [को०]।

अकथ—वि० [स० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। कहने की सामर्थ्य के बाहर। अकथनीय। अवर्णनीय। अनिर्वचनीय। उ०—नाम रूप दुई ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।—मानस, १।२१।

यौ०—अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्यान।

अकथनीय—वि० [सं०] न कहे जाने योग्य। जो कहने मे न आ सके। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। वर्णन के बाहर। जिसका वर्णन न हो सके। उ०—एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी।—मानस, २।६०।

अकथह[1]—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकथह[2] ⓤ—वि० दे० 'अकथ'। उ०—नानक गुर मिल अकथह कथै।—प्राण०, पृ० ५३।

अकथित—वि० [सं०] जो न कहा गया हो।

अकथ्य ⓤ—वि० दे० 'अकत्थ्य'। उ०—बालबच पुनि आलह सी आनंद कियव अकथ्य।—प० रा०, पृ० १३६।

अकथ्य—वि० [सं०] न कहने योग्य। अवर्णनीय अनिर्वचनीय।

अकद—सज्ञा पु० [अ० अक्द] इकरार। प्रतिज्ञा। वादा।

अकदन[1]—क्रि० वि० दे० 'कदन'।

अकदन[2]—वि० [स० अ + कदन] बिना शरहित। उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन अचन क्लेशाहि। दुख जनि दे अब जानि दे कत बैठी अनखाहि।—नददास (शब्द०)।

अकदबदी—सज्ञा स्त्री० [अ० अक्द + फा० बदी] करारनामा। प्रतिज्ञापत्र।

अकधक ⓤ†—सज्ञा पु० [देश० अनु०] आशका। आगा पीछा। सोच विचार। भय। डर। उ०—ह्वै कै लोभी लाभ बस, छवि मुकुताहन लैन। कूदत रूप समुद्र मैं अकधक करत न नैन।—रतन०, दो० ४५२।

अकनना†—क्रि स० [स० आकर्णन प्रा० आकण्णण] १ सुनना। कर्णगोचर करना। उ०—पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।—मानस १।३४४। २ आहट लेना। उ०—नगर सर अकनत सुनत अति रुचे उपजावत। —सूर० (राधा०), २५६१। ३ कान लगाकर सुनना। चुपचाप सुना। उ०—आलस गात जानि मनमोहन बैठे छाँह करत सुख चैन। अकनि रहत कहुँ सुनत नहीं कछु नहिं गौ रभन बालक बैन।—सूर० (शब्द०)।

अकना[1]†—क्रि अ० [सं० या देश०] उबना। उकताना। घबराना। उ०—दौड दौड आने से जुअरत के अकोमत क्या करे। उस बिचारे की तबियत तुम पे है आई हुई।—जुअरत (शब्द)।

अकना[2]—सज्ञा पु० [सं० अङ्कुरण] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिये गए हो।

अकनिष्ठ[1]—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो। कनिष्ठ भिन्न। २. जिससे कोई कनिष्ठ न हो। सबसे छोटा [को०]।

अकनिष्ठ[2]—सज्ञा पु० १ गौतम बुद्ध का एक नाम। २ बौद्ध देवगणो का एक वर्ग [को०]।

अकनिष्ठग—सज्ञा पु० [सं०] बुद्ध [को०]।

अकन्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०]।

अकपट—वि० [सं०] कपट से रहित। निष्कपट। उ०—हरी डाल के सुखद हिंडोले मे परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है कैसी आनदमयी।—प्रेम०, पृ० ७।

अकबक[1]—सज्ञा पु० [हि० अनु० अक+बक=असंबद्ध बकना] [क्रि० अकबकाना] १ निरर्थक बातचीत। असंबद्ध प्रलाप। अड बड। अनाप शनाप। उ०—जैसे कछु अकबक बकत है आज हरि, तैसई जानि नावें मुख राहु को निकसी जाय।—केशव (शब्द०)। २ घबडाहट। चिंता। धटका। खटका। उ०—इद्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक, शभु जू के सकपक, केसोदास को कहै। जब जब मृगया लोक को राम के कुमार चढै, तब तब कोलाहल होत लोक है।—केशव (शब्द०)। ३ होश हवास। छक्का पजा। अक्की बक्की। चतुराई। सुध। उ०—सकपक होत पकजासन परम दीन, अकबक भूलि जात गरुडनसीन के।—चरणचद्रिका (शब्द०)।

अकबक[1]—वि० [सं० आवाक्] भौचक्का। चकित। निस्तब्ध, जैसे—'यह वृत्तात सुन वह अकबक रह गया' (शब्द०)।

अकबकाना—क्रि० अ० [हि० अकबक से नाम०] चकित होना। भौचक्का होना। घबराना। उ०—(क) सकपकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढे। सूर उपँग सुत बोलत नाही अति हिरदै ह्वै गाढे।—सूर (शब्द०)। (ख) 'रामेसरी अकबका गई, कौन सी ऐसा बात उसके मुह से निकली जिससे बीसो के जी को आघात पहुँचा है'।—नई धोध, पृ० ६६।

अकबत—सज्ञा स्त्री० दे० 'आकबत'। उ०—अकबति अलह सो जानि सुबुक सो बोलना।—गुलाल०, पृ० ६२।

अकबर[1]—वि० [अ०] श्रेष्ठतम [को०]।

अकबर[2]—सज्ञा पु० मुगल सम्राट् अकबर जिसने भारत मे १५५६ ई० से १६०५ ई० तक शासन किया।

अकबरी[1]—सज्ञा स्त्री० [अ० अकबर+फा० ई० (प्रत्य०)] १ एक फलाहारी मिठाई। तीखुर और उबाली अरुई का बी के साथ फेंटकर उसकी टिकिया बनाकर, घी मे तलकर चाशनी मे पाग देते है। कहीं कहीं इसे चौगुठे से भी बनाया जाता है। २ एक प्रकार की लबडी पर की नक्काशी जिसका व्यवहार पजाब मे बहुत है। सहारनपुर के कारखानो मे भी इसका चलन है।

अकबरी[2]—वि० अकबर सबधी।

यौ०—अकबरी अशरफी = सोने का एक पुराना सिक्का जिसका मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है। अकबरी मोहर = १ एकाक्ष व्यक्ति। एक आँख का आदमी। २ अकबरी अशरफी।

अकबार[1]—सज्ञा पु० दे० 'अखबार'। उ०—बालदेव भी अकबार पढता है'।—मैं० औ०, पृ० २५४।

अकबाल—सज्ञा पु० दे० 'इकबाल'।

अकर[1]—वि० [सं०] १ हस्तरहित। बिना हाथ का। उ०—अकर कहावत धनुख धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १५१। २ बिना कर या महसूल का। जिसका महसूल न लगता हो। ३. दुष्कर। न करने योग्य। कठिन। विकट। उ०—भारथ अकर करतूतिन निहारि लही, यातें घनस्याम लाल होते बाज आये री।—बिहारी र०, भा० २, पृ० १६०। ४ क्रियारहित। निष्क्रिय।

अकर[2]—सज्ञा पु० [सं० आकर] १ स्थान। आकर। २ समूह। राशि। उ०—हिमकर सो तेरे जस के अकर सो।—भूषण ग्र०, पृ० १०।

अकरकरा—सज्ञा पु० [सं० आकरकरभ] एक पौधा जो अफ्रिका के उत्तर अल्जीरिया मे बहुत होता है। इसकी जड पुष्टि और कामोद्दीपक औषधि है। इसमे मुख मे थूक आता है और दाँत की पीडा मे लाभ होती है।

पर्या०—आकल्लक।

अकरखन—सज्ञा पु० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण'। उ०—किया अकरखन मन मा पंखी धुनि बुद्धराज। उठि उठि दौरी बालसब तेज बाज गृहराज।—बिहारी र०, भा० १, पृ० ७६।

अकरखना—क्रि० स० [हि० अकरखन से नाम०] १ खींचना आकर्षण करना। तानना। २ चढाना।

अकरण[1]—सज्ञा पु० [सं०] १. कर्म का न किया जाना। कर्म के फल का न होना। कर्म का अभाव।

विशेष—शास्त्र के अनुसार सम्यक् ज्ञानप्राप्ति हो जाने पर फिर कर्म करना अर्थात् बिना किए हुए के समान हो जाते हैं और उनका कुछ फल नहीं होता।

२ इद्रियों से रहित। ईश्वर। परमात्मा।

अकरण[2]—वि० १. न करने योग्य। कठिन। २. इद्रियरहित [को०]

अकरण[3]—वि० [सं० अकारण] बिना कारण। अकारण वेसबब।

अकरणि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ नैष्क्रिय। अकर्मण्यता। अपूर्णता २ अक्षोभ विशेष। शाप [को०]।

अकरणीय—वि० [सं०] न करने योग्य। न करने लायक। करने के अयोग्य।

अकरन[1]—वि० [सं० अकारण] बिना कारण। बेसबब। उ०—कर पुटार मैं अकरन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।—तुलसी (शब्द०)।

अकरन[2]—वि० [सं० अ+करण=कर्म] न करने योग्य। जिसका करना कठिन या असभव हो। उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै। धर्म अधर्म, अधर्म, धर्म करि अकरन करन करै।—सूर०, १।१०८।

अकरना—क्रि० अ० दे० 'अकडना'। उ०—मिथ्यावाद आपजस सुनि सुनि मूछहि पकरि अकरतौ।—सूर०, १०।२०३।

अकरनीय—वि० दे० 'अकरणीय'।

अकरव—सज्ञा पु० [अ० अकरब] १ घोडा जिसके मुँह पर सफेद रोएँ होते हैं। और उन सफेद रोओं के बीच बीच मे दूसरे रग के भी रोएँ होते है। यह घोडा ऐबी समझा जाता है। २ बिच्छू (को०)। ३ वृश्चिक राशि (को०)।

अकरम—सज्ञा पु० दे० 'अकर्म १'। उ०—अकरम करम करै मन आपहि पीछे जिव दुख पावै।—कबीर ग्र०, भा० ४, पृ० २६।

अकरमी(पु)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकर्मी'। उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि लेहु मुकुताय।—कबीर सा०, पृ० ५५०।

अकरा[1]—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आमला की। आँवला [को०]।

अकरा[2]†—वि० [सं० अक्रय्य प्रा० अकरय्य, अकरय] [स्त्री० अकरी] १ न मोल लेने योग्य। महँगा। अधिक दाम का। कीमती। उ०—लै आये हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।—सूर०, १०।३१०४। २ खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य। उ०—आरतपालु कृपालु जा राम, जेही सुमिरे, तेहि को तहँ ठाढे। नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छाटेउ बाढे।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २२६।

अकराथ(पु)—वि० [सं० अकार्य्यार्थ, पा० अकारियत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। उ०—आपा राखि प्रवाधिए, श न सुनै अकराथ।—कबीर (शब्द०)।

अकराम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० करम का ब० व०] बख्शिश। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अकरार(पु)—वि० [हिं० अकराल] भयानक। उ०—कह्यौ प्रिया एकत सुपन पायौ अकरारिय।—पृ० रा०, ६६।२१०५।

अकरार[2]†—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकरार या करार] कौल। प्रतिज्ञा इकरार।

अकराल[1]—वि० [सं०] जो भयकर न हो। सौम्य। सुदर। अच्छा।

अकराल[2](पु)—वि० [सं० कराल] भयकर। भयानक। डरावना। [डिं०]।

अकरास[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अकड+आस (प्रत्य०)] अँगडाई। देह टूटना।

अकरास[2]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य। सुस्ती। कार्यशिथिलता।

अकरासा†—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकरास[2]'। उ०—छुट्टी मे आपउ चली गई रही। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।—भस्मा० चि०, पृ० ६१।

अकरासू†—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकरी[1]—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आ = भलीभाँति + किरण (√कृ) बिखेरना] बीज गिराने के लिये हल मे जो पोला बाँस लगा रहता है उसके ऊपर का लकडी का चोगा जिसमे बीज डाला जाता है।

अकरी[2]—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] असगध की जाति का एक पौधा या झाडी जो पजाब सिंध और अफगानिस्तान आदि देशो मे होती है।

अकरी[3](पु)—वि० [हिं० अकर+ई] न करनेवाला। अकर्ता। अक्रिय। उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नही उजियारा। —चरण०, भा० २, पृ० १४०।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। उ०—अकरुण वसुधा से एक झलक। वह स्मित मिलने को रहा उ०—ललक।—लहर, पृ० ३४।

अकरुर(पु)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अक्रूर'। उ—लै अकरुर चले मधुवन को, सब ब्रज अति भै भात।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २३७।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मृदु। मुलायम। नरम [को०]।

अकर्ण[1]—वि० [स०] १ कान से रहित। कर्णहीन। उ०—जो अकर्ण अहि को भी सहसा कर दे मत्रमुग्ध नतफन।—प्रवध०। २ छोटे कानोवाला। लघकर्ण (को०)। ३ सुनने की शक्ति से रहित। बधिर। बहरा (को०)। ४ पतवार विहीन। बिना पतवार का।

अकर्ण[2]—सञ्ज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

अकर्णक—वि० [सं०] कान से रहित। कर्णहीन [को०]।

अकर्णधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित। चालकविहीन [को०]।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानो न सुना जाय। अश्राव्य [को०]।

अकर्तन—वि० [सं०] १ बोना। २ जो न काटे [को०]।

अकर्तव्य[1]—वि० [सं०] न करने योग्य। करने के अयोग्य। जिसका करना उचित न हो।

अकर्तव्य—सञ्ज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य। अनुचित कर्म। उ०—सिद्ध होत बिनहू जतन मिथ्या मिश्रित काज। अकर्तव्य से स्व नहू मन न धरो महाराज।—अर्थ निवास ग्र०, पृ० ७६७।

अकर्ता[1]—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला। कर्म से अलग। उ०—चेतन ज्यो को त्यो सदा सदा अकर्ता होय।—भक्ति० पृ० २८०।

अकर्ता[2]—सञ्ज्ञा पुं० साख्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से निर्लिप्त रहता है।

अकर्तृक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बिना कर्ता का। जिसका कोई कर्ता या रचयिता न हो। जो किसी के द्वारा रचा न गया हो। कर्ता-विहीन।

अकर्तृत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तृत्व का अभाव। २ कर्तृत्व का अभिमान न होना [को०]।

अकर्तृभाव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कुछ न करने का भाव। कर्म से पृथक्ता।

अकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म। बुरा काम। उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है।—कबीर सा०, पृ० ६६४। २ कर्म का अभाव।

अकर्मक[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण मे क्रिया के दो मुख्य भेदो मे से एक। यह उस क्रिया को कहते है जिसे किसी कर्म की आवश्यकता न हो कर्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाय, जैसे—'लडका दौडता है,' इस वाक्य मे 'दौडता है' अकर्मक क्रिया है।

अकर्मक[2]—सञ्ज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अकर्मण्य—वि० [स०] कुछ काम न करनेवाला। बेकाम। निकम्मा। आलसी। उ०—'सब ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य साम्राज्य के सिहासन पर नही देखना चाहता।—स्कद० पृ० १४०।

अकर्मण्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अकर्मण्य होने का भाव। निकम्मापन। आलसीपन [को०]।

अकर्मभोग—संज्ञा पुं० [स०] कर्मफल के भोगन मे मुक्ति या स्वातत्र्य [को०]।

अकर्मशील—वि० [स०] काम न करनेवाला। आलसी। सुस्त [को०]।

अकर्मा--वि० [स०] १ काम न करनेवाला। निकम्मा। बेकाम। कार्य के लिये अनुपयुक्त। २ कुकर्मी। बुरा काम करनेवाला (को०)। ३ स्वेच्छाचारी (को०)।

अकर्मान्वित--वि० [स०] १ दुष्कर्मी। अपराधी। २ अयोग्य। बेकार (को०)।

अकर्मिणी--संज्ञा स्त्री० [स०] पाप करनेवाली। पापिन। अपराधिनी।

अकर्मी--वि० [स० अकर्मिन्] [स्त्री० अकर्मिणी] बुरा काम करनेवाला। पापी। दुष्कर्मी। अपराधी। उ०--राजा वेश्या जात शिकारी। महा अकर्मी विषय विकारी।--कबीर म०, पृ० ४५६।

अकर्षण--संज्ञा पुं० दे० 'आकर्षण'।

अकर्षना--क्रि० अ० [स० आकर्षण] आकर्षण करना। खींचना। आकर्षना। उ०--देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी आप वास करि लीनो। सूर०, १०।६२२।

अकलंक--वि० [स० अकलङ्क] [संज्ञा अकलंकता, वि० अकलंकित] निष्कलंक। दोषरहित। बेऐब। निर्दोष। बेदाग। उ०--अस विचारि रघुबंस तजहु असका। सबहि भाँति संकर अकलंका।--मानस, १।७२।

अकलंक--संज्ञा पुं० एक जैन लेखक जिनका नाम भट्ट अकलंक देव था (को०)।

अकलंक†--संज्ञा पुं० [स० अकलङ्क] दाग। लांछन। ऐब। दाग। उ०--ठाकुर अठान जेठानिन हूँ सब लोगन ह अकलंक लगाए। --कवि (शब्द०)।

अकलंकता--संज्ञा स्त्री० [स० अकलङ्कता] निर्दोषता। सफाई। कलंकहीनता। उ०--लोभा लुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।--तुलसी (शब्द०)।

अकलंकित--वि० [स० अकलङ्कित] निष्कलंक। निर्दोष। बेदाग। साफ। शुद्ध। बेऐब। उ०--तामहँ पैठि जो नींवसै, अकलंकित सो साधु।--जायसी ग्रं०, पृ० १५०।

अकलंकी--वि० [स० अकलङ्किन्] जिसपर कोई कलंक न हो। निर्दोष। बेऐब (को०)।

अकल--वि० [स० अ+कल] १ जिसके अवयव न हों। अवयवरहित। उ०--ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद --मानस १।५०। २ जिसके खंड न हों। संपूर्ण। अखंड। उ०--अकल कला को खेल बनाया, अनंत रूप दिखाइया।--गुलाल०, पृ० ३८। ३ जिसका अनुमान न लगाया जा सके। परमात्मा का एक विशेषण। उ०--व्यापक अकल अनीह अज निरगुन नाम न रूप।--मानस, १।२०५। ४. विना गुण का चतुराई का। बलाहीन।

अकल--संज्ञा पुं० [स० अ+हिं० कल=चैन] विकल। व्याकुल। बेचैन। उ०--कामिनी के अकल नूपुर, भामिनी के हृदय में भय।--अर्चना, पृ० ६३।

अकल--संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--मरदूद तुमे मरना सही। वाहिम अकल के कहीं --मत तुर्सी० पृ० १४।

मुहा०--अकल गुद्दी में होना=बुद्धि का काम न करना। अक्ल का छिप रहना। उ०--इन्होंने सब कुछ कहा। आपकी अकल क्या गुद्दी में थी? आपको क्या हो गया था?'--सैर०, पृ० ४१। अकल घास चरने जाना=दे० 'अकल का चरने जाना'। उ०--'यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है, इसलिये अकल घास चरने चली गई है'।--परदेशी अभि० ग्र०, पृ० ८९७। अकल गुजर जाना=बुद्धि खत्म हो जाना। समझ का न रह जाना। उ०--अकल जाती है इस कूचे में अय 'जामिन' गुजर पहले।--कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५६२।

अकलखुरा--वि० [हिं० अकेल+फा० खोर=खानेवाला] १ अकेले खानेवाला। स्वार्थी। मतलबी। लालची। २ जो मिलनसार न हो। रूखा। मनहूस। ३ ईर्ष्यालु। उ०।--'अकलखुरा किसी को देख नहीं सकता'। 'अकलखुरा जग से बुरा (शब्द०)।

अकलना--क्रि० स० [सं० अवलन] जानना। समझना। उ०--बीसल नरिंद इह भय अकलि, लहैं न कहु निसदिन चयन।--पृ० रा० १।२०४।

अकलप--वि० [सं० अकल्प्य] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पनातीत। उ०--मैमता अविगत रता अकलप आसा जीति। राम अमलि माता रहै जीवत मुकति अतीति।--कबीर।

अकलप--संज्ञा पुं० [सं० आकल्प] कल्प पर्यंत। अनेक युगों तक। उ०--अ सत तजि अनत जिनि जावो। अकलप झिलघा बैठा खावो।--गोरख०, पृ० २३६।

अकलवर--संज्ञा पुं० दे० 'अकलबीर'।

अकलबीर--संज्ञा पुं० [सं० वत्सनाभ] भाँग की तरह का एक पौधा।

विशेष--यह हिमालय पर काश्मीर से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड़ रेशम पर पीला रंग चढ़ाने के काम में आती है।

पर्या०--कलबीर। वज्र। भगजल।

अकलीम--संज्ञा स्त्री० [अ० इक्लीम] १ महाद्वीप। उ०--साह तणा खूनी सबल आय बचै इण ठार। औ सातू अकलीम में चावो गढ़ चीतोड़।--बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ९२। २ बादशाहत। राज्य। उ०--आवै जो अकलीम सात हेक सुरतराणैं। नहीं जिका दे नीम ईछै लेवा आठमी।--बाँकी ग्र०, भा० २ पृ० ५८।

अकलुष--वि० [सं०] कलुषता से रहित। निर्मल। शुद्ध। साफ। उ०--स्नेह सुख में बढ़ सखि चिरकाल, दीप की अकलुष शिखी समान।--गुंजन, पृ० ३१।

अकलुषित--वि० [सं०] जो कलुषित न हुआ हो। पवित्र। उ०--फिरन चाहो घरा पै मैं धरि अकलुषित पाँव। धरि हौं सेज मेरी, वास सूनो ठाँव।--बुद्ध० च०, पृ० ८६।

अकलेस--वि० [सं० अखिलेश] समग्र विश्व के स्वामी। उ०--ॐ नामो सिव सबल। नमो अकलेस अकल मति।--पृ० रा०, १।१८४।

अकलैमूल--वि० [प्रा० एक्कलइ=एक ही+सं० मूल] जिसके आगे पीछे कोई न हो। अकेला। तनहा उ०--सबला अकलैमूल पातर खाउँ खाउँ करै भूखा।--सूर०, १।१८६।

अकल्क—वि० [सं०] [स्त्री० अकल्का] १ बिना तलछट का। शुद्ध। २. पापरहित। निष्पाप [को०]।

अकल्कक—वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कन—वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कल—वि० [सं०] १ विनम्र। सरल। २ अहंकारशून्य। दंभ रहित। ३. ईमानदार [को०]।

अकल्कता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईमानदारी। शुद्धता [को०]।

अकल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्स्ना। चाँदनी। [को०]।

अकल्प—वि० [सं०] १ जो नियम और प्रतिबंध का विषय न हो। अनियंत्रित। निर्बंध। २ दुर्बल। कमजोर। ३. जिसकी तुलना न की जा सके। अतुलनीय। ४ अयोग्य। अक्षम [को०]।

अकल्पनीय—वि० [सं०] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पना से परे। उ०—विपुल अलौकिक कलान ते कलित बनि, रेल तार काज क्यों अकल्पनीय करते।—रसक०, पृ० ३१६।

अकल्पित—वि० [सं०] १ कल्पनारहित। अकल्पनीय। उ०—वीर-कुल बाल ह्वै न सिहौं त्रिकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की अकल्पित कुचाली को।—रसक०, पृ० ३२३। २ अकृत्रिम। स्वाभाविक (को०)। ३ प्राकृतिक। नैसर्गिक (को०)।

अकल्मष—वि० [सं०] पापरहित। निर्दोष। निर्विकार। बेऐब।

अकल्य—वि० [स०] १ अस्वस्थ। रुग्ण। २ असत्य। सच [को०]।

अकल्याण[1]—संज्ञा पुं० [स०] अमंगल। अहित।

अकल्याण[2]—वि० १ कल्याणरहित। अशुभ। २ असुंदर [को०]।

अकव—वि० [स०] १ अवर्णनीय। २ अतुच्छ। ३ अकृपण। जो कृपण न हो [को०]।

अकवच—वि० [स०] बिना कवच का। कवचरहित [को०]।

अकवन†—संज्ञा पुं० [हिं० आक] आक का पेड़। मदार।

अकवाम—संज्ञा पुं० [अ० अकवाम कौम का बहुवचन] जातियाँ। उ०—'दोनों अकवाम मिस्ल शीर व शकर के मिल जायँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९०।

अकवार†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवार'। उ०—धरमदास से छुटल भव-सागर, सब सों भेंटि अकवार हो।—धरम० शब्दा०, पृ० ५१।

अकवारि—वि० [स०] दे० 'अकवारी' [को०]।

अकवारी[1]—वि० [स०] १ निस्स्वार्थ। स्वार्थहीन। २ अकृपण। जो कंजूस न हो। ३ जिसे शत्रु तुच्छ न समझे। ४ प्रबल शत्रुवाला [को०]।

अकवि—वि० [स०] जो बुद्धिमान या सुबुद्ध न हो। मूर्ख [को०]।

अकस[1]—संज्ञा पुं० [अ० अक्स] १ बैर। अदावत। विरोध। शत्रुता। उ०—काम कोह लाई कै देखाइयत आँखि मोहि, ऐते मान अकस कीवे को आपु आहि को।—तुलसी ग्र०, पृ० २२२। २ लाँगडाँट। होड़। स्पर्धा। उ०—हानि लाहु अनखु उछाहु बाहुबल कहि बदी बोले बिरद अकस उपजाइकै।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१२। ३ ईर्ष्या। डाह। उ०—मोर मुकुट की चंद्रि-कनु यों राजत नँदनंद। मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद।—बिहारी र०, दो० ४१९।

अकस[2]—संज्ञा पुं० [स० आकाश] नभ। आकाश। उ०—सकसे का जैतवार अकसे का बाई।—रा० रू०, पृ० ९७।

क्रि० प्र०—ठानना।—दिलाना।—पड़ना।—मानना—रखना।

यौ०—अकसदीया। अकसदियता।

अकसना—क्रि० स० [हिं० अकस से नाम०] १ अकस रखना। बैर रखना। शत्रुता रखना। २ लाँगडाँट रखना। बराबरी करना। आँट रखना। उ०—साहनि सों अकसिबो हाथिन को बकसिबो, राव भाव सिंह जू को सहज सुभाव है।—मतिराम ग्र०, पृ० ४३५।

अकसमात—क्रि० वि० दे० 'अकस्मात्'। उ०—(क) ऐसे मे इह भावई अकसमात हुअ आइ।—पृ० रा०, ६।२८। (ख) जे द्रुम नभ सो बातें करैं। ते तरु अकसमात भुई परैं।—नंद० ग्र०, पृ० २७६।

अकसर[1]—क्रि० वि० [अ०] प्राय। बहुधा। अधिकतर। बहुत करके। विशेष करके, उ०—बदन पर अरसर गाते, भौं मिहदी से रँगते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २४९।

अकसर[2]†—[स० एक + सर (प्रत्य०)] अकेले। बिना किसी को साथ लिए। तनहा। उ०—धनि सो जीव दगध जमि सहा। अकसर जरइ न दूसर कहा।—जायसी (शब्द०)।

अकसर[3]†—वि० अकेला। एकाकी। उ०—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात। कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात।—मानस, ३।१८।

अकसरुआ†—वि० [हिं० अकसर] अकेला। बिना साथ का।

अकसवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकास] दे० 'आकाश'। उ०—ना हुवाँ धरती न पौन अकसवा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४७।

अकसी†—वि० [हिं० अकस] अकस रखनेवाला। बैरी।

अकसीर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० इक्सीर] १ वह रस या भस्म जो धातु को सोना या चाँदी बना दे। रसायन। कीमिया। उ०—हमसे हो जरो सीम की तदबीर सो क्या खाक? दुनियाँ मे बड़ी चीज है अकसीर सो क्या खाक।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४४। २ वह औषधि जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे। वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य कभी बीमार न हो। उ०—अगर अक-सीर बिन रोगी दर्द चबहूँ न जावेगा—सत तुरसी०, पृ० ३३।

अकसीर[2]—वि० अव्यर्थ। अत्यंत गुणकारी। अत्यंत लाभकारी।

अकसीरगर—वि० [हिं० अकसीर + फा० गर] कीमिया बनानेवाला। रसायनी [को०]।

अकस्मात्—क्रि० वि० [स०] १. अचानक। एकबारगी। यकायक। उ०—सब उतरना चाहते हैं, कुआ मे अकस्मात् जल बढ़ जाता है, सब बहते हुए दिख ई देते हैं।—स्कंद०, पृ० १०७। २. संयोगवश। दैवयोग से। उ०—महादेवी! आज मैंने अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है।—स्कंद०, पृ० २८।

अकस्मात—क्रि० वि० [स० अकस्मात्] १ अचानक। अनायास। एकबारगी। यकायक। सहसा। तत्क्षण। बैठे बिठाए। अचेतक। अनचिंते में। २ दैवात्। दैवयोग से। संयोगवश। हठात्। आपसे आप। अकारण।

अकह[1]—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह] न कहने योग्य। जो कही न जा सके। अकथनीय। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। उ०—नहीं ब्रह्म, नहिं जीव, न माया ज्यों का त्यों वह जाना। मन, बुधि, गुन, इंद्रिय, नहिं जाना अलख अकह निर्वाना।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—अकह कहानी = अनिर्वचनीय कथा। उ०—निज दल जागै ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है। पूरण प्रताप दीप अंजन की राजै रेख राजत श्री रामचंद्र पानिन कृपानी है।—केशव (शब्द०)।

अकह[2]Ⓟ—वि० [स० अकत्थ्य] मुँह पर न लाने योग्य। बुरी। अनुचित। उ०—शील सुधा वसुधा लहिकै अकहै कहिकै यह जीभ बिगारिए।—देव (शब्द०)।

अकहन‡—वि० [हिं०] कहना न माननेवाला। बेकहला।

अकहनी—वि० [हिं० अकह] न कहने योग्य। उ०—जो सब कहनी अकहनी थी'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९४।

अकहुआⓅ†—वि० दे० 'अकहुवा'।

अकहुवाⓅ†—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०)] जो कहा न जा सके। अकथनीय। उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई। ताकर कही रमैनी भाई।—कबीर (शब्द०)।

अकाड[1]—वि० [स० अकाण्ड] बिना डाली या शाखा का।

अकाड[2]—क्रि० वि० अकस्मात्। सहसा। बिना कारण।

अकाडजात—वि० [स० अकाण्डजात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाडताडव—संज्ञा पुं० [स० अकाण्ड + ताण्डव] १ असामयिक उद्धत नृत्य। आकस्मिक उद्धत नृत्य। उ०—हर औघ हर के अकाड ताडवो के भये, भाड के समान सारो ब्रह्माड फूटैगो।—रसक०, पृ० ३५१ २ व्यर्थ की उछल कूद। व्यर्थ की बकवाद। वितंडा।

अकाडपात—वि० [सं० अकाण्डपात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाडपातजात—वि० [स० अकाण्डपातजात] जन्म लेते ही मरने वाला [को०]।

अकाडशूल—संज्ञा पुं० [स० अकाण्डशूल] आकस्मिक तीव्र पीडा या वेदना [को०]।

अकात—वि० [स० अकान्त] जो कांत न हो। जो सुंदर न हो। उ०—हरिऔध कांत को अकांत अवलोकिहै तो, मृदुल करेजो कुल-कामिनी को छिलिहै।—रसक०, पृ० २९५।

अकाउंट—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब। लेखा। हिसाब किताब।

अकाउंटबुक—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब की किताब। बही खाता। लेखा।

अकाउंटेंट—संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब जाँचनेवाला। निरीक्षक। मुनीम। लेखा लिखनेवाला।

अकाज[1]—संज्ञा पुं० [स० अकार्य; प्रा० अकज्ज] १ कार्य की हानि। नुकसान। हर्ज। विघ्न। बिगाड। उ०—हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।—तुलसी (शब्द०)। २, बुरा कार्य। दुष्कर्म। खोटा काम (बक०)।

अकाज[2]—क्रि० वि० [हिं० अ + काज] व्यर्थ। बिना काम। निष्प्रयोजन। उ०—बीति जैहै बीति जैहै जनम अकाज रे।—तेगबहादुर (शब्द०)।

अकाजना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [हिं० अकाज से नामधातु] १ हानि होना। खो जाना। २ गत होना। जाता रहना। मरना। उ०—लोक विकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।—तुलसी (शब्द०)।

अकाजना[2]—क्रि० स० अकाज करना। हर्ज करना। हानि करना। विघ्न करना। नुकसान करना।

अकाजीⓅ—वि० [हिं० अकाज + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० अकाजिन अकाजिनी] अकाज करनेवाला। हर्ज करनेवाला। कार्य की हानि करनेवाला। नुकसान करनेवाला। बाधक। विघ्नकारी। उ०—लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी।—देव (शब्द०)।

अकाट—वि० [हिं० अ + काटना] जिसकी काट न हो। जिसका खंडन न हो। अखंडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि)।

अकाट्य—वि० [स० अ + काट्य] न काटने योग्य। जिसका खंडन न हो सके। दृढ़। मजबूत। अटल। उ०—भाई कहने को तुम अकाट्य तुम्हारा। पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा।—साकेत पृ० २१९।

यौ०—अकाट्य युक्ति।

अकातर—वि० [स०] जो कायर न हो। जो भयभीत न हो। उ०—गति अनाहत तू सखा मत सहज संयत रे अकातर।—अर्चना, पृ० ८८।

अकाथ[1]Ⓟ—क्रि० वि० [स० अकृतार्थ प्रा० अकआरथ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। निरर्थक। वृथा। फजूल। उ०—रह्यो न परै प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथ।—सूर (शब्द०)।

अकाथ[2]Ⓟ—वि० [स० अकथ्य] न कहने योग्य। अकथनीय। अनिर्वचनीय। उ०—आपनो ज्यौ हीरा सो परयो हाथ रजनाथ। दै कै तो अकाथ हाथ मैंने ऐसो मन लेहु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७४।

अकादर†—वि० [स० अकातर] जो कादर न हो। शूरवीर। साहसी। हिम्मतवर।

अकाम[1]—वि० [स०] बिना कामना का। कामनारहित। इच्छा-रहित। निस्पृह। उ०—हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।८९।

अकाम[2]Ⓟ—त्रि० वि० [स० अ + हिं० काम] बिना काम के। निष्प्रयोजन व्यर्थ। उ०—बिना मान नर जगत में डोलत फिरे अकाम।—(शब्द०)।

अकाम[3]—संज्ञा पुं० दुष्कर्म। बुरा काम (बक०)। उ०—गज परयो धरनि साहन सिंगार। दिल्ली अकाम परताप पार—पृ० रा०, ५।२४।

अकामत—क्रि० वि० [स०] अनिच्छापूर्वक। अनचाहे [को०]।

अकामत—संज्ञा पुं० [अ० इकामत] ठहरने का स्थान। निवास। आवास। उ०—अब अपनी रवाँ है तो अकामत से सरकार। समझे अगर इसान तो दिन रात सफर है।—नजीर (शब्द०), भा० ४, पृ० ५७४।

अकामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम या इच्छा का अभाव [को०]।

अकामनिर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों में से एक। यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हें बहुत से क्लेशों को विवश होकर सहना पड़ता है।

अकामहत—वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो। अक्षुब्ध। शांत [को०]। जो काम से आहत न हो। [को०]।

अकामा[1]—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसमें काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो। यौवनावस्था के पूर्व की।

अकामा[2]—संज्ञा स्त्री० कामचेष्टा से रहित स्त्री।

अकामी—वि० [सं० अकामिन्] [स्त्री० अकामिनी] १. कामनारहित। इच्छाविहीन। निस्पृह। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। निःस्वार्थ। उ०—भजामि ते पदांबुजम्। अकामिनां स्वधामदम्। —तुलसी (शब्द०)। २ जो कामी न हो। जितेंद्रिय।

अकाय—वि० [सं०] १ बिना शरीरवाला। देहरहित। उ०—सत्त पुरुष एक रहै अकाया। अस तास सोइ निरगुन आया।—घट०, पृ० २७४। २ अशरीर। शरीर न धारण करनेवाला। जन्म न लेनेवाला। ३ रूपरहित। निराकार। उ०—मांगत बामन रूप धरि परबत भयो अकाय। सत्त धर्म सब छांडि के धरयो पीठ पै पाय।—नंद० ग्र०, पृ० १८१।

अकायिक—वि० [सं० अ+कायिक] शरीर से संबंध न रखनेवाला। उ०—आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज अपार्थिव अति अकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो।—अपलक, पृ० ४६।

अकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर 'अ'।

अकार[2]—संज्ञा पुं० [सं० आकार] आकार। स्वरूप। आकृति। उ०—बिना अकार रूप नहिं रेखा कौन मिलेगी आय।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७४।

अकार[3]—वि० [सं० अ+हिं० कार=कार्य] क्रियारहित [को०]।

अकारक मिलाव—संज्ञा पुं० [सं० अकारक+हिं० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमें मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहें और वे अलग की जा सकें।

अकारज—संज्ञा पुं० [सं० अकार्य] कार्य की हानि। हानि। नुकसान। हर्ज। उ०—(क) आप अकारज आपनो करत कुसगत साथ। पायं कुल्हाड़ी देत है मूरख अपने हाथ।—सभाविलास, (शब्द०)। (ख) तातें न मान, समान, अकारज जाको अयानु बड़ो अधिकारी, देव कहै कहिहीं हित की हरि जू सो हितू न कहूँ हितकारी।—देव (शब्द०)।

अकारण[1]—वि० [सं०] १. बिना कारण का। हेतुरहित। बिना वजह का, जैसे, 'संसार में अकारण प्रीति दुर्लभ होती है'।—(शब्द०)। उ०—'तात! कहाँ थे? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे?'—स्कंद०, पृ० ७८। २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो। जो किसी से उत्पन्न न हो। स्वयंभू।

अकारण[2]—क्रि० वि० बिना कारण के। बेसबब। व्यर्थ। अनायास। निष्प्रयोजन, जैसे—'क्यों अकारण हँसते हो?' (शब्द०)।

अकारत—वि० दे० 'अकारथ'।

अकारथ[1]—वि० [सं० अकार्यार्थ प्रा० अकारयत्थ, अकारअथ] बेकाम। निष्फल। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। उ०—बिना व्याह यह तपस्या अकारथ होती है।—सदल मिश्र (शब्द०)।

क्रि० प्र० करना।—होना।

अकारथ[2]—क्रि० वि० व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन। फजूल। बेफायदा। उ०—स्वारथ हू न कियो परमारथ यों ही अकारथ बैस बिताई।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खोना।—गारना=व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना। उ०—आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सो जन्म जुआ ज्यों हारयो।—सूर (शब्द०)।—जाना उ०—ते दिन गये अकारथ सगति भई न संत।—कबीर (शब्द०)।

अकारन—वि० दे० 'अकारण'। उ०—जिमि चह कुसल अकारन कोही।—मानस, १।२६७।

अकारना—क्रि० स० दे० 'करना'। उ०—करि साधन इह साध, व्याधि नासत फल धारिय। गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीम अकारिय।—पृ० रा०, ६।२६।

अकारांत—वि० [सं० अकारान्त] जिसके अंत में 'अ' अक्षर हो [को०]।

अकारादि—वि० [सं०] 'अ' वर्ण से आरंभ होनेवाला [को०]।

अकारी—वि० [सं० अ+कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला। अनर्थकारी। उ०—गौर मुख्य वपु स्याम गिरन सम नख्य अकारिय।—पृ० रा०, २।२८७। २ तीक्ष्ण (डिं०)। उ०—आरंभ अति फौज अकारी दिल्लीपति पूगो रहवारी।—राज रू०, पृ० ५६।

अकार्पण्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणता का अभाव। २ दीनता का अभाव [को०]।

अकार्पण्य[2]—वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए बिना प्राप्त हो [को०]

अकाय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य का अभाव। अकाज। हर्ज। हानि। २ बुरा कार्य। कुकर्म। दुष्कर्म।

अकार्य[2]—वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो। फलरहित। २. अकरणीय। न करने लायक।

अकार्यचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार। अपराध करने की मनोवृत्ति [को०]।

अकाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अकालिक] १. अनुपयुक्त समय। अनवसर। अनियमित समय। ठीक समय से पहले या पीछे का समय। उ०—तूँ रहि, हौं हा सखि! लखौं, चढ़ि न अटा, बलि बाल। सबहिनु बिनु ही ससि उदय, दीजतु अरघु अकाल।—बिहारी र०, दो० २६८। २. दुष्काल। दुर्भिक्ष। महँगी। कहत। जैसे—'भारतवर्ष में कई बार अकाल पड़ चुका है।'—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. घाटा। अत्यधिक कमी। न्यूनता। जैसे—यहाँ कपड़ों का अकाल नहीं है।'—(शब्द०)। ४. अशुद्ध समय (ज्यो०)।

अकाल[२]--वि० १ जो काला न हो। श्वेत। २ अनवसर का। असामयिक [को०]।

अकालकुसुम--[सं०] १ बिना समय या ऋतु मे फूला हुआ फूल। उ०--भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।--मानस, ३।१८।

विशेष--यह दुर्भिक्ष या उपद्रवसूचक समझा जाता है। २ असमय मे किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पडना (लाक्ष०)। ३ बेसमय की चीज।

अकाल कुष्माड--सज्ञा पुं० [सं० अकाल कुष्माण्ड] १ असमय या बेमौसम का कुम्हडा। २ वह कुम्हडा जो बलिदान के काम न आए। ३ बेकार वस्तु। ४ व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को०]।

अकाल कूष्माड--सज्ञा पु० [सं० अकालकूष्माण्ड] दे० 'अकाल कुष्माड' [को०]।

अकालज--वि० [सं०] दे० 'अकालजात' [को०]।

अकालजलद--सज्ञा पुं० [सं०] असामयिक मेघ। असमय के बादल। उ०--सुखदेव चौबे ने अकालजलद की तरह उसके सयम के दिन को मलिन कर दिया था।--तितली, पृ० १५३।

अकालजलदोदय--सज्ञा पुं० [सं०] १ असमय मेघों का छा जाना। २ कुहरा [को०]।

अकालजात--वि० [सं०] जो नियत समय पर उत्पन्न न हो [को०]।

अकालज्ञ--वि० [सं०] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञानविहीन [को०]।

अकालपक्व--वि० [स०] समय से पूर्व पका हुआ [को०]।

अकालपुरुष- सज्ञा पुं० [स० अकाल+पुरुष] परमात्मा। ईश्वर (सिख)।

अकालभृत्--सज्ञा पुं० [स०] स्मृति के अनुसार १५ दासो मे से एक। दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुर्भिक्ष मे की गई हो। अकाल मे मिला हुआ दास।

अकालमूर्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] पुरुष जिसकी स्थापना काल या समय मे न हो सके। नित्य। अविनाशी।

अकालमृत्यु--सज्ञा स्त्री [स०] बेसमय की मृत्यु। ठीक समय से पहले की मृत्यु। थोडी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु। असामयिक मृत्यु। उ०--अकालमृत्यु सो मरे। अनेक नर्क मों परै।--राम च०, पृ० १६६।

अकालमेघोदय--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कालजलदोदय' [को०]।

अकालवृद्ध--वि० [स०] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को०]।

अकालवेला--सज्ञा स्त्री० [स०] १, उचित या नियत समय का अभाव। २ बुरा समय [को०]।

अकालसह--वि० [स०] १ जो देर या विलब न सह सके। अधीर। २ जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को०]।

अकालिक--वि० [सं०] असामयिक। बिना समय का। बेमौके का।

अकाली--सज्ञा पुं० [सं० अकाल+ई (प्रत्य०)] नानकपथी साधु जो सिर मे चक्र के साथ काले रग की पगडी बाँधे रहते हैं।

अकालोत्पन्न--वि० [सं०] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को०]।

अकाल्य--वि० [स०] असामयिक। असमय का [को०]।

अकाव--सज्ञा पुं० [स० अर्क, प्रा० अक्क] आक। मदार।

अकाश--सज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--हरि कर तू गमने महि माही। मैं आकाश ह्वै चलौं तहाँही।--रामरसिक०, पृ० ८५६।

अकास--सज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--रामचरन अवलबन बिनु परमारथ की आस। चाहत बारिद बूद गहि तुलसी चढन आकास।--स० सप्तक, पृ० ४।

मुहा०--अकाश गहना = अनहोनी या असभव बात करना। उ०--बातनि गहो अकास, सुनहि न आवै माँस। बोला तो कछू न आवै ताते मौन गहिय।--सूर (राधा०), १२७३। अकास बाँधना = असभव काम करने की कोशिश करना।

अकासकृत--सज्ञा पुं० [सं० आकश+कृत] बिजली (अनेका०)।

अकासदीया--सज्ञा पुं० [स० आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो बाँस के ऊपर आकाश मे लटकाया जाता है। आकाशदीप।

अकासनदी--सज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशनदी'। उ०--उछलै जल उच्च अकास चढ़ै जल जार दिसा बिदिमान मढ़ै। जनु सिंधु अकासनदी अरि कै, बहु भाँति मनावत पाँ परि कै।--राम च०, पृ० १०६।

अकासनीम--सज्ञा पुं० [स० आकाशनिम्ब] एक पेड जिसकी पत्तियाँ बहुत सुदर होती हैं। उ०--कुहरा झीना और महीन, झर झर पडे अकासनीम।--हरी घास०, पृ०।

अकासबानी--सज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशवाणी'। उ०--परसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला।--मानस, १।१७३।

अकासबेल--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+वेल्लि] अमरबेलि। अमरबेल। अकासबौर।

अकासबादी--सज्ञा स्त्री० दे० अकासबानी'। उ०--दस हत्थी सुविहान साहि गोरी मुख त्रिन्नौ। कर अकासबादी ततार चवकोद सदिन्नौ।--पृ० रा०, २७।१२५।

अकासी--सज्ञा स्त्री० [स० आकाश] १. चील नामक पक्षी।

यौ०--धौरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अग लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ०--बाएँ अकासी धौरी आई।--जायसी (शब्द०)।

२ ताड के वृक्ष या फलों का रस। ताडी।

अकाह--वि० दे० 'अकाथ[२]'। उ०--कबहूँ यों बियोग बिथा को सहै जो उ जोगिन हूँ कौं अकाह-सी है।--ठाकुर०, पृ० १०।

अकिंचन[१]--वि० [स० अकिञ्चन] १ जिसके पास कुछ न हो। निर्धन। धनहीन। दीन। कगाल। दरिद्र। गरीब। मुहताज। उ०--देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।--कामायनी, पृ० ४०। २ आवश्यकता से अधिक धन का सग्रह न करनेवाला। परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रह गए हों। कर्मशून्य।

अकिंचन[२]--सज्ञा पुं० १ निर्धन मनुष्य। गरीब आदमी। दरिद्र मनुष्य। २. जैन मत के अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मों में से एक है। ३ वह वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को०)।

अकिंचनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अकिञ्चनता] १ दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०—हरिसंध कंसे अकिंचनता तृनावली में लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।—रस क० पृ० ३३१। २ परिग्रह का त्याग जो योग का एक यम है।

अकिंचनत्व—संज्ञा पुं० [सं० अकिञ्चनत्व] १ निर्धनता। गरीबी २ अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिंचिज्ञ—वि० [सं० अकिञ्चिज्ज्ञ] जो कुछ न जानता हो। ज्ञान शून्य [को०]।

अकिंचितकर—वि० [सं० अकिञ्चित्कर] १ जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २ तुच्छ। अशक्त। उ०—जो अकिंचितकर था वह भी अपरूप हो गया।'—टैगोर०, पृ० २४।

अकि†—अव्य [हिं० कि] या। अथवा। कि। उ०—(क) पानक शत्रु विनाशकरी अकि राघव की उघरी तरवार है।—श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरौ अकि पानी परौ अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौं।—घनानंद, पृ० १२७।

अकितव—वि० [सं०] १ जो जुआरी न हो (को०)। २ निश्छल। सरल [को०]।

अकिति—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अपयश। अकीर्ति। उ०—क्रम बढ़त बढ़ै अकिति। अकिति बढ़हि तब दिज नै।—पृ० रा०, ६१।१५६२।

अकिन—संज्ञा दे० 'यकीन'। उ०—आरति बुद अकिन जब वारा। सुरति बिसुरति गयो सब भारा।—गुलाल०, पृ० १२६।

अकिल—संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०—(क) अकिल आरसी लै के सजनी पिया को रूप निहार हा।—कबीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियाँ साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है'।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६७७।

यौ०—अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०—चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजारन रोग।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकिल + दाढ] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर ३२ दाँतों के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष—कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकिलवहार—संज्ञा पुं० [अ० अकीलकुल बहर] वैजयती का पौधा या दाना

अकिलवान—वि० [हिं० अकिल + वान] बुद्धिमान्। अक्लवाला। अक्लमंद। उ०—सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। सदा अकिलवानै गनै गनै वाल किय दास।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला—वि० [स्त्री० अकिली] दे० 'अकेला १'। उ०—(को०) अकिले घूमत तर अस अधे।—नंद० ग्र० पृ० १४०। (ख) अकिली बन घन बसि न डेराई।—नंद० ग्र० पृ० १४०।

अकिल्बिष'—वि० [सं०] १ पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २ निर्मल। शुद्ध।

अकिल्बिष'—संज्ञा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक—संज्ञा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष—इसपर मुहर भी खोदी जाती है। यह बसरा, बांदा और खंभात से आता है। इसकी कई किस्में यमन और बगदाद से भी आती हैं।

अकीदत—संज्ञा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०—'मौलाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था।'—गोदान, पृ० २५।

अकीदतमंद—वि० [अ० अकीदत + फा० मंद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा—संज्ञा पुं० [अ० अकीदह्] श्रद्धा। विश्वास। उ०—दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा। एक अकदा लै रहे ऐसे मन धीरा।—मलूक० पृ० ७।

अकीधा—वि० [सं० अकृत] बिना किया हुआ। न किया हुआ। उ०—जिम सिणगार अकीधै मोहति प्रा अगमि जाणियै प्रिया।—वेलि० दू० २२८।

अकीन—संज्ञा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०—अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारियै रे।—सं० दरिया, पृ० ६८।

अकीरति—संज्ञा स्त्री० दे० 'अकीर्ति'।

अकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर—वि० [सं०] अकीर्ति करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकीर्ति'।

अकुठ—वि० [सं० अकुण्ठ] १ जो कुंठित या गुठला न हो। तेज। चोखा। २ तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०—गएउ गरुड जहँ बसइ भुसुंडी। मति अकुठ हरि भगति अखंडी।—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०—जीवत ही विधिलोक जीवत हो शिवलोक जीवत बैकुंठ लोक जो अकुंठ गायो हैं।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६२३। ४ कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५ नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)

अकुंठधिष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं० अकुण्ठधिष्ण्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुठि—वि० [सं० अकुण्ठ] दे० 'अकुंठ'।

अकुंठित—वि० [सं० अकुण्ठित] १ जो कुंठित न हो। तेज। उ०—परम अकुंठित विरोधिनी सकठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता में ढाली है।—रसक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०—हैं दानव दल दंडन खल खंडन ए। अरि-कुल कठ-कुठार अकुंठित व्रत धरे।—पारिजात, पृ० ७।

अकुचना—क्रि० अ० [सं० आकुञ्चन] आकुंचित होना। सकुचित होना। उ०—काहे कौं पीय सकुचत हौ। अब ऐसे जिनि काम करौ कहुँ जौ अति ही जिय अकुचत हौ।—सूर०, १०।२७३२।

अकुटिल—वि० [सं०] १. जो कुटिल या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २ साफ दिल का। निष्कपट। निश्छल। भोला भाला। सीधा साधा।

अकुटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटिलता का अभाव। सिधाई। २. सादापन। निष्कपटता।

अकुठाना (पु)—[स० कुण्ठन] शिथिल होना । सुस्त होना । उ०—का सो कहौ कहे को मानै अग अग अकुठाई ।—धरनी० बा०, पृ० ५ ।

अकुताना (पु)—क्रि० अ० दे० 'उकताना' । उ०—पलटू कौनो कछु कहै तनिकौ ना अकुताहिं ।—पलटू०, भा० १, पृ० १२ ।

अकुतोभय—वि० [स०] जिसे किसी से अथवा कहीं भय न हो । निर्भय । निडर [को०] ।

अकुत्सित—वि० [स०] जो निंदित वा निम्न न हो [को०] ।

अकुप्य—सज्ञा पुं० [स०] १ जो धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या चाँदी । २ कोई भी साधारण धातु, तांबा, पीतल आदि [को०] ।

अकुप्यक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अकुप्य' [को०] ।

अकुमार[1]—वि० [स०] जो कुमार या बालक न हो । वयस्क । प्राप्तवय [को०] ।

अकुमार[2]—सज्ञा पुं० इद्र [को०] ।

अकुल[1]—वि० [स०] १ जिसको कुल मे कोई न हो । कुलरहित । परिवारविहीन । उ०—निर्गुन निलज कुवेष कपाली । अकुल अगेह दिगबर व्याली ।—मानस, १।७।६ २ बुरे कुल का । नीच कुल का । अकुलीन । उ०—अकुल कुलीन होत, पाँवर प्रवीन होत, दिन होत चक्रवै चलत छत्रछाया के ।—देव, (शब्द०) ।

अकुल[2]—सज्ञा पुं० १ बरा कुल । नंच कुल । बुरा खानदान । २. परम तत्व । शिव । उ०—अकुल शरनि पूरी मति होय ।—प्राण०, पृ० १८१ ।

अकुलता—सज्ञा स्त्री० [स०] कुल की निम्नता [को०] ।

अकुला—सज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिजा । पार्वती [को०] ।

अकुलात (पु)—वि० [स० आकुल] अकुलता से युक्त । व्याकुल । उ०—गज्जि भग्ग प्रथिराज चित्त करयौ अकुलात ।—पृ० रा०, २७।१२७ ।

अकुलाना—क्रि० अ० [स० आकुलन] १. उबना । जल्दी करना । उतावला होना । उ०—(क) 'चलते हैं, क्यों अकुलाते हो' (शब्द०) । (ख) पुनि पुनि मुनि उर सहि अकुलाहीं ।—मानस, १।३५ । २ घबड़ाना । व्याकुल होना । व्यग्र या बेचैन होना । दुखी होना । उ—(क) अतिसै देखि दसा सकै ग्लानी । परम सभीत धरा अकुलानी ।—मानस, १।१८३ । (ख) इन दुखिया अँखियानु कौं सुख सिरजोई नाहिं । देखें बनै न देखतै अनदेखे अकुलाहिं ।—बिहारी र०, दो ६६३ । ३. विह्वल होना । मग्न होना । लीन होना । आवेग में आना । उ०—बोलि गुरु ससुर समाज सो मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ।—तुलसी ग्र०, पृ०, २६६ ।

अकुलिनी (पु)—वि० स्त्री० [स० अकुलीना] जो कुलवती न हो । कुलटा । व्यभिचारिणी ।

अकुलीन—वि० [स०] १ बुरे कुल का । नीच कुल का । तुच्छ वश मे उत्पन्न । कमीना । क्षुद्र । उ०—कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनी कुनारी हौं ।—ब्रजमाधुरी, पृ० ३१४ । २. धरती से असबद्ध । अपार्थिव (को०) ।

अकुशल[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अमगल । अशुभ । बुराई । अहित । २ बुरा शब्द । अपशब्द (को०) ।

अकुशल[2]—वि० १. जो दक्ष न हो । अनिपुण । अनाड़ी । २ भाग्यहीन । अभागा (को०) । ३ अप्रिय (को०) ।

अकुशलधर्म—सज्ञा पुं० [स०] बौद्ध धर्मानुसार प्राणियो का पाप करने का स्वभाव ।

अकुसल (पु)—वि० दे० 'अकुशल-१' उ०—कवि या भाँति, चितेरनि लौं लिखिबै मैं अकुशल ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१ ।

अकुसीद—वि० [स०] सूद न लेनेवाला । लाभ न लेनेवाला [को०] ।

अकुसुम—वि० [सं०] पुष्पहीन । बिना फूल का [को०] ।

अकुह—सज्ञा पु० [सं०] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता । ईमानदार व्यक्ति [को०] ।

अकुहक—वि० [स०] दे० 'अकुह' [को०] ।

अकूज—वि० [स०] चुप । कूजन रहित । शात [को०] ।

अकूट—वि० [स०] [स्त्री० अकूटा] १ जो प्राकृतिक हो । अकृत्रिम । दिव्य । अलौकिक । उ०—उतर को देइ देव मनि गएऊ । सतद अकूट मँडप महँ भएऊ ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५० । २ जो व्यर्थ न हो अमोघ (शस्त्र) (को०) । ३ जो खोटा या नकली न हो (सिक्का) (को०) ।

अकूत—वि० [स० अ + हि० कूतना] जो कूता न जा सके । जिसकी गिनती या परिमाण न बतलाया जा सके । बेअदाज । अपरिमित । अगणित । उ०—धन्य भूमि, बनजवासी धनि धनि, आनंद करत अकूत ।—सूर०, १०।३६ ।

अकूपार[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र । २ वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना जाता है । बड़ा कछुआ ।३. पत्थर या चट्टान । ४ सूर्य (को०) ।

अकूपार[2]—वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त । शुभ परिणाम वाला (को०) । २ असीम । अपरिमित (को०) ।

अकूफ—(पु) सज्ञा पुं० [अ० बुकूफ] ज्ञान । बुद्धि । समझ । उ०—तिल मे बास केहु नहिं जाना । कोइ अकूफ हीं सो पहचाना ।—सत० दरिया, पृ० ४१ ।

अकूर (पु)—सज्ञा पु० दे० 'अकुर' । उ०—पुनि यहँ अकूर नाहीं ऊर प्रेम हिलूर बरषाही ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २४१ ।

अकूर्च[1]—वि० [सं०] १ कपट या धोखा न करनेवाला । अकपटी । २ गजा । खल्वाट । ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०] ।

अकूर्च[2]—सज्ञा पुं० बुद्ध [को०] ।

अकूल—वि० [सं० अ + कूल] १ जिसका किनारा या ओर छोर न हो । उ०—आकुल अकूल बनने आती, एक तक तो है वह आती ।—लहर, पृ० १२ । २ अनत । असीम । उ०—सखी मैं हो गया अकूल का, भूल गया निज सीमा ।—अनामिका, पृ० ६६ ।

अकूवार—सज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अकूपार' [को०] ।

अकूहल (पु)—वि० [देश०] बहुत अधिक । असख्य । उ०—खेलत हँसत करत कौतूहल । जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल —सूर (शब्द) ।

अकृच्छ्र¹—संज्ञा पुं०, [स०] १ क्लेश का अभाव। २ आसानी। सुगमता। असकोच।

अकृच्छ्र²—वि० १ क्लेशशून्य। जिसे किसी प्रकार का सकोच या कष्ट न हो। २ आसान। सुगम।

अकृच्छ्री—वि० [स०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त। क्लेश-विहीन [को०]।

अकृत¹—वि० [स०] १ बिना किया हुआ। असपादित। २ अन्यथा किया हुआ। अडबंड किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। ३ जो किसी का बनाया न हो। नित्य। स्वयंभू। ४ प्राकृतिक। ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो। निकम्मा। बेकाम। कर्महीन। बरा। मंद। उ०—नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन कमल बिनु ठाउँ। हौं असाँच, अकृत, अपराधी समुख होत लजाउँ।—सूर (शब्द०)। ६ कच्चा। अपक्व (भोजन) (को०)। ७ अविक्रमित। जो विक्रमित न हो (को०)।

अकृत²—संज्ञा पुं० १ कारण। २ मोक्ष। ३ स्वभाव। प्रकृति। ४ जो पूर्ण न किया गया हो। अधूरा या अपूर्ण कार्य (को०)।

अकृतकार—क्रि० वि० ऐसे ढंग से जो पहले न किया गया हो [को०]।

अकृतकार्य—वि० [स० अ + कृतकार्य = सफल] असफल। विफल। उ०—'चाबी मुझे कहीं मिली नहीं। अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई'।—सुखदा, पृ० १९९।

अकृतकाल—वि० [स०] आधि या गिरवी के दो भेदों में से एक। जिसके लिये काल नियत न हो। जिसके लिये कोई समय या मियाद न बाँधी गई हो। बेमियाद।

विशेष—धर्मशास्त्र में आधि या गिरवी के दो भेद किए गए गए हैं जिनमें एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ाने के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता। गैरमियादी (रेहन)।

अकृतचिकीर्षा (संधि)—संज्ञा स्त्री० [स०] साम आदि उपायों से नई संधि करना तथा उसमें छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

अकृतज्ञ—वि० [स०] १ जो कृतज्ञ न हो। किए हुए उपकारों को जो न माने। कृतघ्न। नाशुकरा। २ अधम। नीच।

क्रि० प्र०—होना।

अकृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [स०] उपकार न मानने का भाव। कृतघ्नता। नाशुकरापन।

क्रि० प्र०—करना—होना।

अकृतधी—वि० [स०] अपरिपक्व बुद्धिवाला [को०]।

अकृतबुद्धि—वि० [स०] अनजान। अज्ञ। अपरिपक्व बुद्धि। उ०—असहाय (सहायकों—मंत्रियों—से रहित), मूढ, लुब्ध, अकृतबुद्धि और विषयासक्त (राजा) उस (दंड) का न्याय से संचालन नहीं कर सकता'।—भा० इ० रू०, पृ० ९९५।

अकृतबुद्धित्व—संज्ञा पुं० [स०] अज्ञान। अज्ञता [को०]।

अकृतव्रण—वि० [स०] जिसे घाव या व्रण न हो [को०]।

अकृतशुल्क—वि० [स०] १ जिसने महसूल या चुंगी न दी हो। २. जिसपर महसूल न लगा हो (माल)।

अकृता—संज्ञा स्त्री० [स०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो।

अकृतात्मा—वि० [स०] अपरिपक्व मतिवाला। अज्ञ। असयत। उ०—'दंड का बड़ा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते'।—भा० ई० रू०, पृ० ९९५। २ ब्रह्म को न जाननेवाला। जो ब्रह्मज्ञ न हो (को०)।

अकृताभ्यागम—संज्ञा पुं० [स०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति।

विशेष—न्याय या तर्कशास्त्र में यह दोष माना गया है।

अकृतार्थ—वि० [स०] १. जिसका कार्य न हुआ हो। जिसका कार्य पूरा न हुआ हो। अकृतकार्य। २ जिसको कुछ फल न मिला हो। फल से वंचित। फलरहित। ३ कार्य में अदक्ष। अपटु। अकुशल।

अकृतार्थता—संज्ञा स्त्री० [स०] असफलता। विफलता। उ०—'असत-र्कता कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उसका बदला अकृतार्थता देकर लेती है।'—टैगोर० पृ० ४१।

अकृतास्त्र—वि० [स०] जो अस्त्र का प्रयोग करने में कुशल न हो [को०]।

अकृतित्व—संज्ञा पुं० [स०] अकर्मण्यता [को०]।

अकृती¹—वि० [स० अकृतिन्] [स्त्री० अकृतिनी] काम न करने योग्य। निकम्मा। उ०—कहाँ जायँ, क्या करें, अभागे अकृती हम ये ?—साकेत, पृ० ४०५।

अकृती²—संज्ञा पुं० वह आदमी जो किसी काम लायक न हो। निकम्मा मनुष्य।

अकृतेनस्—वि० [स०] निष्पाप। निरपराध [को०]।

अकृतोद्वाह—वि० [स०] अविवाहित [को०]।

अकृत्त—वि० [स०] जो कटा न हो। जिसमें कोई काट छाँट न की गई हो [को०]।

अकृत्य¹—संज्ञा पुं० [स०] बुरा काम। अपराध।

अकृत्य²—वि० जो करने योग्य न हो। अकरणीय [को०]।

अकृत्यकारी—वि० [स०] अकृत्य करनेवाला। दुष्कर्मी [को०]।

अकृत्रिम—वि० [स०] १ अपने आप उत्पन्न। प्रकृतिसिद्ध। बे बनावटी। प्राकृतिक। नैसर्गिक। स्वाभाविक। २. असली। सच्चा। यथार्थ। वास्तविक। ३ हार्दिक। आंतरिक। जैसे—'हमारा उसके ऊपर अकृत्रिम प्रेम है।' (शब्द०)।

अकृत्स्न—वि० [स०] जो पूरा या समग्र न हो। अपूर्ण [को०]।

अकृप—वि० [स०] कृपारहित। निर्दय। निष्ठुर [को०]।

अकृपण—वि० [स०] जो कृपण या कंजूस न हो। उदार [को०]।

अकृपणता—संज्ञा स्त्री० [स०] कृपणता का अभाव। उदारता [को०]।

अकृपा—संज्ञा स्त्री० [स०] कृपा का अभाव। कोप। क्रोध। नाराजी। उ०—'पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है।'—प्रेमघन, भा० २, पृ० ५१।

अकृपालु—संज्ञा पुं० [स० अ + कृपालु] जो कृपालु न हो। कृपारहित। निर्दय। उ०—दीनबंधु दूसरो कहँ पावौं ? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, अलायक जहँ जहँ चितहि डोलावौं ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४७ ।

अकृश– वि० [स०] कृशतारहित । स्वस्थ्य । भरापूरा । उ०— जोवन मे पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पहली कांति अकृश । —झरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी[1]—वि० [स०] प्रभूत लक्ष्मीवाल । समृद्ध । सपन्न । वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी[2]—सज्ञा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल—वि० [स०] जो खेतिहर न हो । गैर किसान । कृषकेतर [को०] ।

अकृष्ट[1]—वि० [स०] १ जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो जोता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट[2]—सज्ञा पुं० वह भूमि जो जोती न जाती हो । परती भूमि [को०] ।

अकृष्टपच्य—वि० [स०] [स्त्री० अकृष्टपच्या] विना जोती हुई भूमि मे पैदा होने और पक जानेवाला । जो विना जोते पैदा हो । उ०—फसलें दो प्रकार की थीं, कृष्टपच्य जो खेत से उत्पन्न हो, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जगली धान्य ।—पाणिनि०, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्या—वि० [स०] १ (विशेषत भूमि) जो विना जोते हुए धान्य, फल आदि पैदा करे । २ अत्यधिक उपजवाली । बहुत उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही—वि० [स०] अकृष्ट या परती भूमि मे स्वत उगने या अकुरित होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण[1]—वि० [स०] १ जो कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद २ शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण[2]—सज्ञा पुं० निष्कलक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा– वि० [स०] काला (पाप) कर्म न करनेवाला । निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यात्मा [को०] ।

अकेतन—वि० [स०] विना घरबार का । खानबदोश । बेठिकाना ।

अकेतु—वि० [स०] १ जिसका कोई चिह्न न हो । आकारशून्य । २. अपरिचेय । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेल—वि० दे० 'अकेला' । उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।— मानस, १।१७० ।

अकेला[1]—वि० [स० एकल, प्रा० अवकेल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली] जिसके साथ कोई न हो, विना साथी का । दुकेले का उलटा । एकाकी । तनहा, जैसे—'वह अकेला आदमी इतनी चीजें कैसे ले जायेगा' (शब्द०) । उ० –मैं अकेला, देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सान्ध्य वेला ।—अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०—अकेला चना भाड नहीं फोडता = एकाकी या अकेले व्यक्ति द्वारा बडा काम न होना । अकेला हँसता भला न रोता = एकाकी या तनहा किसी प्रकार बात न बन पडना ।

२ अद्वितीय । यकता । निराला, जैसे—'वह इस हुनर मे अकेला है ।'—(शब्द) ।

यौ०—अकेला दम = एक ही प्राणी । बिलकुल एकाकी । जैसे—'हमारा तो अकेला दम है, जब तक जीते हैं खर्च करते हैं ।'—(शब्द०) । अकेला दुकेला = (१) एक या दो । इक्का दुक्का । (२) एकाकी ।

अकेला[2]—सज्ञा पुं० निराला । एकात । शून्य स्थान । निर्जन स्थान; जैसे—'वह तुम्हें अकेले मे पा लेगा तो जरूर मारेगा' (शब्द०) ।

अकेली—वि० स्त्री० १ दे० 'अकेला—१' । उ०—अकेली भूलि परी वन माहिं ।—सूर०, १०।११०४ । २ केवल । सिर्फ । मात्र । उ०—इद्रिन सहित चित्त हू लै गई रही अकेली हमहीं ।—सूर०, १०।२०९६ ।

मुहा०—अकेली लकडी भी नहीं जलती = अकेले कोई भी काम नही हो सकता ।

यौ०—अकेली कहानी = एक पक्ष की ओर से किसी ऐसे समय कही गई बात जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो । एकतरफा बात । एकपक्षीय वार्ता, जैसे—'अकेली कहानी गुड से मीठी' (शब्द०) । अकेली दुकेली = दे० 'अकेला दुकेला', जैसे—कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना (शब्द०) अकेली जान = दे० अकेला दम' ।

अकेले—क्रि० वि० [हिं० अकेला] १ किसी साथी के बिना । एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०—अदेखे अकेले बिते दिन हूँ गए, चाह गई चित सो कहि सोऊ ।—ठाकुर० पृ०७ । २ मात्र । सिर्फ । केवल, जैसे—'अकेले चिट्ठा लिखने मे काम न चलेगा' (शब्द०) ।

यौ०—अकेले अकेले = अलग अलग । उ०—बिना समाजबद्ध हुए देश की दशा सुधारने का प्रयत्न अकेले अकेले व्यर्थ होगा' —प्रेमघन० भा० २, पृ० २७१ । अकेले दम = दे० 'अकेल दम', जैसे—'हम तो अकेले दम हैं, चाहे जहाँ रहें' (शब्द०) । अकेले दुकेले = दे० अकेला दुकेला' । उ० –किंतु जहाँ अकेले दुकेले या थोडे आदमी कोई नया धधा अख्तियार करते ' —भा० इ० रू०, पृ० १०२१ ।

अकेश—वि० [सं०] १ बिना केश का । केशरहित । २ अल्पकेश । थोडे केशवाला । ३ बुरे या असुदर बालोंवाला [को०] ।

अकेहरा†—वि० दे० 'एकहरा' ।

अकैतव[1]—सज्ञा पुं० [सं०] कपट का अभाव । निष्कपटता । सिधाई ।

अकैतव —वि० कपटरहित । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया†—सज्ञा पुं० [स० अक्ष = प्रा० अक्ख, अक्क, हिं० अक + ऐया (प्रत्य०)] वस्तु लादने के लिये थैला या टोकरा । खरजी । गान । कजावा ।

अकोट[1]—वि० [स० कोटि] करोडो । असख्य । उ०—बाजे तबल अकोट जुझाऊ । चढा कोप सब राजा राऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

अकोट[2]—सज्ञा पुं० [स०] पूगीफल का वृक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोढई†—सज्ञा स्त्री० [स० अवठोर = सरल, + ई (हिं० प्रत्य०)] वह भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी झर जाती है । वह भूमि जिसमे पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसौ—वि० [स० एकोत्तरशत] सौ के ऊपर । एक सौ एक । उ०—खँडरा खाँड जो खडे खडे । बरी अकोतर सौ कह हडे ।— जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसौ[2]—सज्ञा पुं० एक सौ एक की सख्या—१०१ ।

अकोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ कोप का अभाव । प्रसन्नता । खुशी । २ राजा दशरथ के आठ मत्रियो मे से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [स०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित । अक्रोधी [को०] ।

अकोप्यापणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] सिक्कों का चलन । सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना ।

अकोविद(पु)—वि० दे० 'अकोविद' । उ०—अज्ञ अकोविद अंध अभागी । काई विषय मुकुर मन लागी ।—मानस, १।११५ ।

अकोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० कोड>हिं० अकोर अथवा सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अंककोड, अक्कोर>हिं० अँकोर, अकोर] १ आलिंगन । अँकवार । उ०—पान करत कहुँ तृप्ति न मानत पलकनि देत अकोर ।—सूर०, १० । १७६१ । २ भेंट । नजर । उपहार । उ०—माया प्रान अकोर देकर सतगुरु पूरा । —कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७ । ३ रिश्वत । घूस । उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दै हँसनि अकोर । —सूर० (राधा०), २१३१ ।

अकोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अकोर से नाम०] आलिंगन करना । उ०—मौन भली कहि कौन सकै घन आनँद जान सुनाक सकोरैं । रीझ बिलोइए डारति हैं हिय, मोहति टोहति थारी अकोरैं ।—घनानंद, पृ० ५७ ।

अकोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवारी' । उ०—यहि ते जो नेक लघुधियाँ री । गहत सोई जो समात अकोरी ।—सूर० (राधा०), ३३४५ ।

अकोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकोर] भेंट । नजर । उपहार । उ०—अछै रंग मे रंगिया दीन्हो प्रान अकोल ।—सतवानी०, भा०१, पृ० १४० ।

अकोला[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] अँकोल का पेड ।

अकोला[2]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्गर, अकर>हिं० अकोर अथवा सं० कोटि प्रा० कोर> हिं० अकोर, अकोला] ऊख के सिरे पर की पत्ती । अँगारी । अकोला । अगौला । गेंडा ।

अकोविद—वि० [सं०] जो जानकार न हो । मूर्ख । अज्ञानी । अनाडी ।

अकोसना†(पु)—क्रि० स० [सं० आक्रोशन, प्रा० अक्कोस] बुरा भला कहना । गालियाँ देना । कोसना ।

अकौआ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अक्क+औआ (वा) (प्रत्य०)] १ मदार । आक । २ ललरी । घंटी । कौआ ।

अकौटा†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्ख, अक्क, अक=धुरा+ अटन = घूमना] डंडा जिस पर गंडेरी घूमती है । धुरा ।

अकौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव । निष्कपटता । सिधाई । सरलता ।

अकौता†—संज्ञा पुं० [हिं० उकवत] दे० 'उकवत' ।

अकौवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकौआ] दे० 'अकौआ' ।

अकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव । अदक्षता [को०] ।

अक्क[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्क प्रा० अक्क] १. सूर्य । रवि । उ०—गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरंजित अवर अक्क ऐन ।—सुजान०, पृ० १८ । २. आक । मदार । उ०—दहिसी गात कुवाँरियाँ, थल जाली वलि अक्क ।—ढोला०, दू० २८६ ।

अक्क[2]—संज्ञा पुं० [सं०] घर का कोना [को०] ।

अक्क[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप, जैसे—'हे अक्क ।'

अक्का[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता । माँ ।

अक्का[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहन [को०] ।

अक्कास—संज्ञा पुं० [अ०] चित्रकार । फोटोग्राफर [को०] ।

अक्कासी[1]— वि० [अ०] चित्रकारी । चित्र उतारना [को०] ।

अक्कासी[2]†—संज्ञा स्त्री०] [हिं० अकास] वह डाल जो नीचे झुकी हुई हो । उ०—अक्कासी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक डंडे से टेककर ।—कुकुर०, पृ० ५५ ।

अक्कित्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अकीर्ति । अपयश । उ०—अक्कित राह पच्छै फिरग । चक्र तेग सद्धिय सुबुधि ।—पृ० रा०, २५। ३३५ ।

अक्किल†—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल, हिं० अकिल] दे० 'अकल' । उ०—मेरी बिटिया के कुछ अक्किल नहीं है । बड़ी सीधी है । —दहकते०, पृ० ७६ ।

अक्के दुक्के†—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के' ।

अक्ख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष; प्रा० अक्ख] आँख । नेत्र । उ०—जो कोई मेरे बच्चे को तक्के । उसकी फूटें दोनों अक्के (शब्द०) ।

अक्खड—वि० [सं० अक्षर=न टलनेवाला । डटा रहनेवाला, प्रा० अक्खड] १ न मुड़नेवाला । अड़नेवाला किसी का कहना न माननेवाला । उग्र । उद्धत । उच्छृंखल । २. बिगड़ैल । झगड़ालू । ३ निडर । निर्भय । बेडर । उ०—'कहीं बनारसी गुंडे और अक्खड़ों की बोली ठोलियाँ उड़ती' ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४ । ४. असभ्य । अशिष्ट । दुःशील । ५ उजड्ड । अनगढ । जड मूर्ख । ६. जिसे कुछ कहने या करने में संकोच न हो । स्पष्टवक्ता । खरा ।

अक्खडपन—संज्ञा पुं० [हिं० अक्खड+पन (प्रत्य०)] १ अक्खड होने का भाव । अशिष्टता । असभ्यता । दुःशीलता । उच्छृंखलता । २ जडता । उजड्डपन । अनगढपना । ३ उग्रता । कड़ाई । उद्धतपन । कलहप्रियता । ४ निडरता । निर्भयता । स्पष्टवादिता । खरापन ।

अक्खना(पु)—क्रि० स० [स० आख्यान, प्रा० अक्खाण, पं० आखना] कहना । बोलना । उ०—जो उपजै यहि बार मोहि प्रभु आपनु अभिप्राय—हम्मीर रा०, पृ० ६४ ।

अक्खर(पु)—संज्ञा पुं० [स० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर । हरफ । वर्ण । उ०—अक्खर आवै जाय अखर को ताहि ठिकाना ।—पलटू० पृ० ११० ।

अक्खरिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अक्षरिका] एक प्रकार की क्रीडा या खेल । उ०—'बौद्धों के 'शील' ग्रंथ में बौद्ध साधुओं के लिये जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका नामक खेल भी शामिल है' ।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४ ।

अक्ल काम न देना। (२) घबरा जाना। अक्ल उडाना= (१) हैरान करना। (२) त्रस्त करना। अक्ल उलटी होना= (१) मूर्ख या नासमझ होना। (२) कुछ का कुछ समझना। अक्ल औंधी होना= दे० 'अक्ल उल्टी होना'। अक्ल का अंधा=अत्यंत मूर्ख। अक्ल का काम न करना=समझ में न आना। कर्तव्य-ज्ञान शून्य होना। उ०— महरी, हुजूर अक्ल नहीं काम करती'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। अक्ल का चक्कर में आना=(१) घबराना। (२) विस्मित होना। अक्ल का चरने जाना=(१) समझ जाती रहना। (२) बदहवास होना। अक्ल का चिराग गुल होना=समझ में फर्क आना। अक्ल का दुश्मन=अत्यंत मूर्ख। बुद्धिविरोधी काम करनेवाला। अक्ल का पुतला=बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी। उ०— वस, सारी बात यह है कि यह लोग अक्ल के पुतले हैं। कोई शै दुनियाँ के पर्दे पर ऐसी नहीं जिससे यह वाकिफ न हों।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७। अक्ल का पूरा=बुद्धू। मूर्ख। (व्यंग्य)। अक्ल का मारा=बहुत ही मूर्ख। अक्ल की कोताही=बुद्धिहीनता। मूर्खता। अक्ल की मार=बेवकूफी। अक्ल के घोडे दौडाना=(१) बहुत सोचना या विचार करना। (२) खयाली पुलाव पकाना। अक्ल के तोते उडना=होश ठिकाने न रहना। घबरा जाना। अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरना=बुद्धिविरोधी काम करना। अक्ल के बखिए उधेडना=अक्ल गँवा देना। अक्ल के होश उड़ना=दे० 'अक्ल के तोते उडना'। उ०— और मुकाम बुलंद इस कदर कि अक्ल के होश उडते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३। अक्ल को रोना=नासमझी पर अफसोस करना। उ०— अक्ल को तो हुस्नआरा रो चुकी'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। अक्ल खर्च करना=सोचने समझने की कोशिश करना। अक्ल गुम होना=हवाइवास जाते रहना। अक्ल गुद्दी में होना=बेवकूफ या कमअक्ल होना। अक्ल छू जाना=थोडी सी समझ होना। अक्ल जाती रहना=दे० 'अक्ल जाना'। अक्ल जाना=(१) समझ न रहना। (२) घबरा जाना। अक्ल ठिकाने रहना=होशहवास दुरुस्त होना। उ०— अब मैं, उसका समझाऊँ कि बहन अक्ल ठिकाने किसकी है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। अक्ल ठिकाने न रहना=होश दुरुस्त न रहना। अक्ल ठीक करना=शक्ति या नीति द्वारा किसी का गर्व तोडना। अक्ल दंग होना=दे० 'अक्ल हैरान होना'। उ०—'बेगम' अक्ल दंग है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५। अक्ल देना=सीख देना समझाना बुझाना। अक्ल दौडाना=सोच विचार करना। जुगत बैठाना। अक्ल पर झाड़ू फेरना=नासमझी का व्यवहार करना। अक्ल पर पत्थर पडना=निहायत बेअक्ल होना। अक्ल पर पर्दा पडना=समझ जाती रहना। उ०—पूछा जो उनसे आपका पर्दा, वो क्या हुआ, कहने लगी कि अक्ल पै मर्दों के पड़ गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४१। अक्ल भिडाना=दे० 'अक्ल दौडाना'। अक्ल मारी जाना=बुद्धि का बेकार होना। अक्ल रफूचक्कर होना=अक्ल का काम न करना। अक्ल लडाना=दे० 'अक्ल दौडाना'। अक्ल सठियाना=बुद्धि भ्रष्ट हो जाना, जैसे—'इस बुड्ढे की अक्ल तो सठिया गई है'।—(शब्द०)।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है।

अक्ल से दूर होना=समझ या बुद्धि से बाहर होना। 'अक्ल से बाहर होना'=दे० 'अक्ल से दूर होना'।

यौ०—अक्ले इंसानी=मनुष्य की बुद्धि। अक्ले कुल=(१) देवदूत। फरिश्ता। (२) मूर्ख। घामड (व्यंग्य)। अक्ले सलीम=सतुलित बुद्धि। सद्बुद्धि। अक्ले हैवानी=पशुतुल्य बुद्धि। पशुबुद्धि।

अक्लमंद—वि० [अ० अक्ल+फा० मंद] बुद्धिमान्। चतुर। सयाना। विज्ञ। समझदार। होशियार।

मुहा०—अक्लमंद की दुम=मूर्ख (व्यंग्य)।

अक्लमंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल+फा० मंदी] बुद्धिमानी। समझदारी। चतुराई। सयानापन। विज्ञता।

अक्लम[1]—वि० [सं०] जो थका न हो। अक्लांत। उ०—लाज का आज भूषण, अक्लम नारी का।—तुलसी०, पृ० ५०।

अक्लम[2]—संज्ञा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [को०]।

अक्लांत—वि० [सं०] १ जो थका न हो। क्लांतिरहित। उ०— भाभी की अक्लांत परिचर्या से प्राय एक सप्ताह बाद मैं ज्वर-मुक्त हो गया'।—जिप्सी, पृ० ५५३। २। अम्लान, जो मुरझाया न हो (को०)।

अक्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा [को०]।

अक्लिन्न—वि० [सं०] जो गीला या नम न हो [को०]।

अक्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें पलकें चिपक जाती हैं।

अक्लिष्ट—वि० [सं०] १ बिना क्लेश का। कष्टरहित। २ सुगम। सहज। आसान। सरल। सीधा। ३. विवादरहित। निर्विवाद (को०)। ४ क्लांतिरहित। जिसे थकान न हो (को०)।

अक्लिष्टकर्मा—वि० [सं०] जो कार्य करते हुए न थके [को०]।

अक्लिष्टकारी—वि० [सं०] [स्त्री० अक्लिष्टकारिणी] दे० 'अक्लिष्ट-कर्मा' [को०]।

अक्लिष्टवर्ण—वि० [सं०] जो संदेहास्पद न हो। प्रामाणिक [को०]।

अक्लिष्टव्रत—[सं०] जो व्रत करने में न थके [को०]।

अक्ली—वि० [अ०] १ अक्ल का। बुद्धिसंगत। २. बुद्धिसंबंधी [को०]।

मुहा०—अक्ली गद्दा या रूदा लगाना=अटकल से बात करना।

अक्लीब[1]—वि० [सं०] १ जो नपुंसक या नामर्द न हो। २. जो कायर या कम हिम्मतवाला न हो। ३ सच्चा। जो झूठा न हो [को०]।

अक्लीब[2]—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [को०]।

अक्लेद[1]—वि० [सं०] जो आर्द्र या गीला न हो। २. अलिप्त (ला०)। उ०—'अरूप अंश, वर्णनाभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अक्लेद रहा'।—प्रबंध०, पृ० १६४।

अक्लेद[2]—संज्ञा पुं० गीलेपन या आर्द्रता का अभाव [को०]।

अक्लेद्य—वि० [सं०] जो भिगोया न जा सके [को०]।

अक्लेश[1]—सज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।

अक्लेश[2]—वि० क्लेशरहित [को०]।

अक्षतव्य—वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे क्षमा न किया जा सके। क्षमा न करने योग्य। अक्षम्य। उ०—यह सुदर ग्रथावली टीका टिप्पणी, जीवनचरित्र, भूमिका, चित्रादि सहित अक्षतव्य विलव और दीर्घसूत्रता के साथ सामने आई है'।—सुदर० ग्र०, भा० १, (भू०), पृ० २०२।

अक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २ पासो का खेल। चौसर। ३ छकडा। गाडी। ४ किसी गोल वस्तु के बीचोबीच पिरोया हुआ वह छड या दड जिसपर वह वस्तु घूमती है। धुरी। ५ पहिए की धुरी। ६ वह कल्पित स्थिर रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार दोनो ध्रुवो पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई, मानी गई है। ७ तराजू की डाँडी। ८. व्यवहार। मामला। मुकदमा। ९ इद्रिय। १०. तूतिया। ११ सोहागा। १२ आँख। नेत्र। उ० एक कह्या अनुमानि करि एक देखिए अक्ष। सुदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ८१४। १३ बहेडा। १४ रुद्राक्ष। १५ साँप। १६ गरुड। १७ आत्मा। १८. कर्ष नाम की १६ माशे की एक तौल। १९ जन्माध। २० रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ०—रुख निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।—तुलसी ग्र०, पृ० २८। २१ साँचर्चल या सोचर नमक (को०)। २२ कानून (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४ ज्ञान (को०)। २५ नाप का एक मान (को०)। २६ किसी मदिर का निचला हिस्सा (को०)। २७ शिव (को०)।

अक्षक—सज्ञा पु० [स०] तिनिश का वृक्ष [को०]।

अक्षकर्ण—सज्ञा पु० [स०] समकोण त्रिभुज मे समकोण के सामने की भुजा, विशेषतया धूपघडी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा, जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्यो०)।

अक्षकाम—वि० [स०] जिसे द्यूतक्रीडा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।

अक्षकितव—वि० [स०] द्यूत कुशल [को०]।

अक्षकुमार—सज्ञा पु० [स०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने लका का प्रमोदवन उजाडते समय मारा था।

अक्षकुशल—वि० [स०] जुआ खेलने मे प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।

अक्षकूट—सज्ञा पु० [स०] आँख की पुतली। अक्षितारा [को०]।

अक्षकोविद—वि० [स०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पासे का खेल। चौसर। चौपड। २. द्यूतक्रीडा (को०)।

अक्षचक्र—सज्ञा पु० [स०] इद्रियो का समूह [को०]।

अक्षज—सज्ञा पु० [स०] १ हीरा। २. वज्र। ३ प्रत्यक्ष ज्ञान। ४. विष्णु [को०]।

अक्षण—वि० [स०] असमय। अनवसर [को०]।

अक्षणा—क्रि० वि० [स० अक्षणा (अक्षि का तृतीया एक व०)] आँख द्वारा। उ०—सुनै न कान और की दृशै न और अक्षणा।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २५।

अक्षणिक—वि० [सं०] १ दृढ। स्थिर। स्थायी। २ जो क्षणिक न हो [को०]।

अक्षत[1]—वि० [स०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०—'ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर अक्षत केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०। २ बिना टूटा हुआ। अखडित। सर्वांगपूर्ण। समूचा।

अक्षत[2]—सज्ञा पु० १ बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओं की पूजा में चढाया जाता है। २ धान का लावा। ३ जौ। ४ कोई भी धान्य (को०)। ५ हानि या अशुभ का अभाव। कल्याण (को०)। ६ शिव (को०)। ७ हिजडा (को०)।

अक्षततत्व—सज्ञा पु० [स० अक्षततत्व] द्यूत। द्यूत विद्या। जुआ [को०]।

अक्षतयोनि[1]—वि० स्त्री० [स०] जिसका पुरुष से ससर्ग न हुआ हो।

अक्षतयोनि[2]—सज्ञा स्त्री० १ वह कन्या जिसका पुरुष से समर्ग न हुआ हो। २ वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो, किंतु पति से समागम न हुआ हो।

अक्षतवीर्य[1]—वि० [स०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-ससर्ग न किया हो।

अक्षतवीर्य[2]—सज्ञा पु० १ शिव। २ क्षयाभाव। ३ नपुसक। पुस्त्व-विहीन (व्यग्य) [को०]।

अक्षता[1]—वि० [स०] जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो।

अक्षता[2]—सज्ञा स्त्री० १ वह स्त्री जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो। २ धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३ काकडासींगी।

अक्षत्र—वि० [स०] १. क्षत्रियरहित। २ राजाहीन [को०]।

अक्षदड—सज्ञा पु० [सं० अक्षदण्ड] धुरी [को०]।

अक्षदर्शक—सज्ञा पु० [स०] १ धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता। २ द्यूत क्रीडा का निरीक्षक (को०)।

अक्षदाय—सज्ञा पु० [स०] पासे को दूसरे के हाथ मे देना [को०]।

अक्षदृक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।

अक्षदेवी—वि० [स०] जूआ खेलनेवाला। जुआरी।

अक्षद्यू—सज्ञा पु० [स०] द्यूत। जुआ [को०]।

अक्षद्यूत—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।

अक्षद्यूतिक—सज्ञा पु० [स०] द्यूतक्रीडा मे होनेवाला झगडा [को०]।

अक्षद्रुग्ध—वि० [स०] १ जुए के कारण तिरस्कृत। २ जुए मे असफल रहनेवाला। ३ जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।

अक्षद्वार—सज्ञा पु० [स०] धुरी का सूराख [को०]।

अक्षधर[1]—वि० [स०] चक्र या धुरा को धारण करनेवाला [को०]।

अक्षधर[2]—सज्ञा पु० १. पहिया। २. एक वृक्ष। शाखोट। सिहोर। ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अक्षधुर—सज्ञा पुं० [सं०] पहिए की धुरी।

अक्षधूर्त—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षधूर्तिल—सज्ञा पुं० [सं०] वृष। बैल [को०]।

अक्षनैपुण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षनैपुण्य' [को०]।

अक्षनैपुण्य--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता। अक्षकौशल [को०]।

अक्षपटल--संज्ञा पुं० [स०] १ न्यायालय। २ न्यायसबधी कागज पत्र रखने का स्थान। ३ न्यायकर्ता। न्यायाधीश। ४ अभिलेखो (रेकार्ड्स) को सुरक्षित रखने का स्थान। ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०]।

अक्षपटलाधिकृत--संज्ञा पुं० [स०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षपटलिक--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।

अक्षपराजय--संज्ञा पुं० [स०] जुए की हार। जुए मे हार [को०]।

अक्षपरि--संज्ञा पुं० [स०] हार का पासा। पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।

अक्षपाट--संज्ञा पुं० [स०] १ जुआखाना। द्यूतगृह। २ अखाडा। मल्लशाला [को०]।

अक्षपाटक--संज्ञा पुं० [स०] न्यायाधीश। धर्माध्यक्ष [को०]।

अक्षपात--संज्ञा पुं० [स०] पासा फेकने या डालने का कार्य [को०]।

अक्षपातन--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षपात' [को०]।

अक्षपाद--संज्ञा पुं० [स०] १ सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि।

विशेष--ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होने अपने चरणो मे नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ।

२. तार्किक। नैयायिक।

अक्षपीडा--संज्ञा स्त्री० [स०] १. इद्रियो की वा शरीर की पीडा। २ एक लता। यवतिक्त लता [को०]।

अक्षप्रिय--वि० [स०] जुआरी। जुआबाज [को०]।

अक्षवत्व--संज्ञा पुं० [स०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते। नजरबदी।

अक्षाभा--संज्ञा स्त्री० [स०] अक्षाश की छाया [को०]।

अक्षाभाग--संज्ञा पुं० [स०] अक्षाश का विभाग [को०]।

अक्षाभार--संज्ञा पुं० [स०] गाडी का बोझ [को०]।

अक्षाभूमि--संज्ञा स्त्री० [स०] जुआ खेलने का स्थान [को०]।

अक्षम--वि० [स०] १ क्षमारहित। असहिष्णु। २ असमर्थ। अशक्त। लाचार। ३ ईर्ष्यालु (को०)।

अक्षमता--संज्ञा स्त्री० [स०] १ क्षमा का अभाव। असहिष्णुता। २. ईर्ष्या। डाह। ३ असामर्थ्य।

अक्षमद--संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।

अक्षमा[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधैर्य। अधीरता। २. क्रोध। रोष। ३ ईर्ष्या। डाह। ४ असमर्थता। लाचारी [को०]।

अक्षमा[2]--वि० क्षमारहित [को०]।

अक्षमात्र--संज्ञा पुं० [स०] निमेष। निमिष [को०]।

अक्षमापक--संज्ञा पुं० [स०] ग्रह नक्षत्रो के निरीक्षण का यत्र [को०]।

अक्षमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरो की वर्णमाला। ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुधती।

अक्षमाली[1]--वि० [सं०] जो रुद्राक्ष की माला धारण करे।

अक्षमाली[2]--संज्ञा पुं० शिव [को०]।

अक्षम्य--वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०--'यह तुम्हारा अक्षम्य अपराध है'।--स्कद०, पृ० ८२।

अक्षय[1]--वि० [सं०] १ जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। कभी न चुकनेवाला। २ कल्पतस्थायी। कल्प के अत तक रहनेवाला। उ०--दिवा रात्रि या मित्र वरुण की बाला का अक्षय शृगार।--कामायनी पृ० ३६।

अक्षय--संज्ञा पुं० १ परमात्मा। २ सन्यासी। ३ दरिद्र। ४ एक योग जिसमे किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।

अक्षयकुमार(यु)--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षयगुण[1]--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अक्षयगुण[2]--वि० क्षय न होनेवाले गुणो से युक्त [को०]।

अक्षयता--संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।

अक्षयतूणीर--संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नही होते। उ०--'अक्षय तूणीर, अक्षय कवच सब लोगो ने सुना होगा, परतु इस अक्षय मजूषा का हाल मेरे सिवा कोई नही जानता।--स्कद०, पृ० १७।

अक्षयतृतीया--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया। आखा तीज। सतयुग के प्रारभ की तिथि।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पडे तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।

अक्षयधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुठ। २ मोक्ष [को०]।

अक्षयनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते है। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।

अक्षयनीवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि। वह मूल सपत्ति जिसका ब्याज मात्र व्यय किया जाय। उ०--साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस सबध मे हिंदी मे उत्तमोत्तम ग्रथो के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।--मु० द०, परिचय, पृ० २।

अक्षयपद--संज्ञा पुं० [स०] मोक्ष [को०]।

अक्षयपुरुहूत--संज्ञा पुं० [स०] शिव का एक नाम [को०]।

अक्षयलोक--संज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग। वैकुठ [को०]।

अक्षयवट--संज्ञा पुं० [स०] प्रयाग और गया मे एक बरगद का पेड।

विशेष--यह अक्षय इस लिये कहलाता है कि पौराणिक लोग इसका नाश प्रलय मे भी नही मानते।

अक्षयवृक्ष--संज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षयवट'।

अक्षया--संज्ञा स्त्री० [स०] एक पुण्य तिथि [को०]।

अक्षायिणी[1]--संज्ञा स्त्री० [स०] उमा। पार्वती [को०]।

अक्षयिणी[2]--वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०]।

अक्षयी--वि० [स०] जिसका नाश न हो। अनश्वर [को०]।

अक्षय्य--वि० [स०] १ अक्षय। अविनाशी। २ सदा बना रहनेवाला। समाप्त न होनेवाला।

अक्षय्यनवमी--संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०]।

अक्षय्योदक--संज्ञा पु० [स०] श्राद्ध मे पिंडदान के अनतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोडा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल।

अक्षर[1]--वि० [स०] १ अच्युत। स्थिर। अविनाशी। नित्य। २. क्रियाशून्य [को०]।

अक्षर[2]--संज्ञा पु० १ अकारादि वर्ण। हरफ। मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का सकेत या चिह्न।

क्रि० प्र०--जानना।--जोडना।--टटोलना।--पढ़ना।--लिखना।

मुहा०--अक्षर घोटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना। अक्षर से भेंट न होना = अपढ रहना। मूर्ख रहना। विधना के अक्षर = कर्मरेख। भाग। लिखन।

२ ओंकार। ॐ। उ०--बिनु अक्षर कोई न छूटे अक्षर अगम अगाध।--कबीर सा०, पृ० ९६०। ३. आत्मा। ४. ब्रह्म। चैतन्य पुरुष। ५ आकाश। ६ जल। ७ धर्म। ८ तपस्या। ९ मोक्ष। १० अपामार्ग। चिचडा। ११ शिव (को०)। १२ विष्णु (को०)। १३ जीव (को०)। १४ परमात्मा (को०)। १५ खड्ग (को०)। १६ स्वर (को०)। १७ शब्द (को०)। १८ समय का एक परिमाण। काष्ठा का पाँचवाँ हिस्सा (को०)।

अक्षरक--संज्ञा पु० [स०] अक्षर। स्वर [को०]।

अक्षरकर--संज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०]।

अक्षरक्रम--संज्ञा पु० [स०] अक्षरो का अनुक्रम। वर्णानुक्रम [को०]।

अक्षरगणित--संज्ञा पु० [स०] बीजगणित [को०]।

अक्षरचचु--संज्ञा पु० [स० अक्षरचञ्चु] साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति। सुलेखक [को०]।

अक्षरचट्टा(ऊ)--वि० [स० अक्षर + देश० चट्ट = चाटना] अक्षर चाटने-वाला। कोरा पढा लिखा। पठित मूर्ख। उ०--'तब रूपचद नदा ने अपने मन मे विचारी, जो यह बात परमानद सोनी कहा जाने? यह तो अक्षरचट्टा है'।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १९०।

अक्षरचरण--संज्ञा पु० [स०] सुलेखक [को०]।

अक्षरचन--संज्ञा पु० दे० 'अक्षरचरण' [को०]।

अक्षरचुचु--संज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरचचु' [को०]।

अक्षरच्युतक--संज्ञा पु० [स०] किसी अक्षर को हटा देने से भिन्न अर्थ देनेवाला अक्षरो का एक प्रकार का खेल [को०]।

अक्षरछदे--संज्ञा पु० [स० अक्षरछन्द] वर्णिक छद। वर्णवृत्त (को०)।

अक्षरजननी--संज्ञा स्त्री० [स०] लेखनी। कलम (को०)।

अक्षरजीवक--संज्ञा पु० [स०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति। लेखक। लिपिकार [को०]।

अक्षरजीविक--संज्ञा पु० [स०] अक्षरजीवक। लेखक [को०]।

अक्षरजीवी--संज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०]।

अक्षरज्ञान--संज्ञा पु० [स०] लिखने और पढने की योग्यता। अक्षरबोध [को०]।

अक्षरतूलिका--संज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर जननी। लेखनी [को०]।

अक्षरधाम--संज्ञा पु० [स०] १. मोक्ष। निर्वाण। २ ब्रह्मलोक [को०]।

अक्षरन्यास--संज्ञा पु० [स०] १ लेख। लिखावट। २ तत्र की एक क्रिया जिसमे किसी मत्र के एक एक अक्षर को पढकर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं। ३ वर्ण। अक्षर (को०)।

अक्षरपक्ति--संज्ञा स्त्री० [स० अक्षरपङ्क्ति] पक्ति नामक वैदिक छद का एक भेद जिसके चार पादो के वर्णों का योग २० होता है।

अक्षरपूजक--वि० स० [स०] पुराण आदि प्राचीन धर्मग्रथो मे लिखी बातो को पूरी तौर से माननेवाला [को०]।

अक्षरबध--संज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०]।

अक्षरभूमिका--संज्ञा स्त्री० [स०] लिखने की वस्तु। पटिया। पाटी [को०]।

अक्षरमाला--संज्ञा स्त्री० [स०] वर्णमाला [को०]।

अक्षरमुख[1]--वि० [स०] जो अक्षरो का अभ्यास करता हो। अक्षर सीखनेवाला।

अक्षरमुख[2]--संज्ञा पु० १ शिष्य। छात्र। २. अक्षरो का आरभ अर्थात् 'अ' (को०)।

अक्षरमुष्टिका--संज्ञा स्त्री० [स०] चौसठ कलाओ मे से एक कला। मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरो को जानने की कला। उँगलियो के सकेत द्वारा भावव्यजना की पद्धति। उ०--'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहदकरण'।--वर्ण०, पृ० २०।

अक्षरयोजना--संज्ञा स्त्री० [स०] वर्णों की योजना। अक्षरविन्यास [को०]।

अक्षरवर्जित--वि० [स०] १. अपढ। निरक्षर। २. परमात्मा का एक विशेषण [को०]।

अक्षरविन्यास--संज्ञा पु० [स०] १ लिपि। लिखावट। २. हिज्जे। वर्णविन्यास। वर्ण क्रम [को०]।

अक्षरवृत्त--संज्ञा पु० [स०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०]।

अक्षरव्यक्ति--संज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०]।

अक्षरश--क्रि० वि० [स०] अक्षर अक्षर। एक एक अक्षर। लफ्ज व लफ्ज। सपूर्णतया। बिलकुल। सब। उ०--'उसका कहना अक्षरश सत्य है (शब्द०)।

अक्षरशत्रु[1]--संज्ञा पु० [स०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति। अनपढ और जाहिल आदमी।

अक्षरशत्रु[2]--वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो। निरक्षर। अक्षर-शून्य। उ०--हमारा सगीत अक्षरशत्रु अपढ व्यक्तियो के हाथ मे चला गया।--सपूर्णा० अभि० ग्र० पृ० २३२।

अक्षरसस्थान--संज्ञा पु० [स०] लिखावट। लिखन। लिपि [को०]।

अक्षरसमाम्नाय—संज्ञा पुं० [सं०] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०]।

अक्षाराग—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरराङ्ग] १ लिखावट। लिपि। २. लिखने का साधन। [को०]।

अक्षारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाषा। २ शब्द [को०]।

अक्षराक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०]

अक्षराज—संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत क्रीडा मे आसक्त व्यक्ति [को०]।

अक्षारारभ—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरारम्भ] एक संस्कार जिसमे पहले पहल बालको को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०]।

अक्षरार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णों का अभिप्राय। शब्दो का अर्थ। वाच्यार्थ वा यौगिक अर्थ [को०]।

अक्षरी[1] (यु)—वि० [सं० अक्षर + ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०—द्वै अक्षरी दूजी नाडी। दोय पप पान अमान।—गोरख०, पृ० २५१।

अक्षरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २ किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने मे अक्षरो का क्रम। हिज्जे।

अक्षरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीधी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनो पृष्ठो पर लंब रूप मे गिरे। धुरी की रेखा।

अक्षरोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन, प्रा० अक्खरावट्टन] १ वर्णमाला। २ लेख लिपि का ढग। अछरौटी। ३ सितार पर गीत निकालने या बोल बजाने की क्रिया।

अक्षार्य[1]—वि० [सं०] वर्ण या अक्षर से संबद्ध [को०]।

अक्षार्य[2]—संज्ञा पुं० साम का एक भेद [को०]।

अक्षवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूत क्रीडा। पासो का खेल [को०]।

अक्षवाट—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २ वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३ कुश्ती लडने की जगह। अखाडा।

अक्षवाम—संज्ञा पुं० [सं०] वेईमान जुआडी। वह जो द्यूतकर्म मे कपट करे [को०]।

अक्षविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष + विक्षेप] कटाक्ष। अपाग दृष्टि [को०]।

अक्षविद्—वि० [सं०] [स्त्री० अक्षवेद्री] १ जुआ खेलने के ढग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २ व्यवहारकुशल [को०]।

अक्षविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्यूतकला। २ जुआ [को०]।

अक्षवृत्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र रूपी कोणविहीन क्षेत्र [को०]।

अक्षवृत्त[2]—वि० १ जुआ खेलने का शौकीन। द्यूतासक्त। २ जुए के समय घटित [को०]।

अक्षशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूतक्रीडागृह। जुआखाना [को०]।

अक्षशालिक—संज्ञा पुं० [सं०] जुआघर का प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षशाली—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षशालिक' [को०]।

अक्षशौंड—संज्ञा पुं० [सं० अक्षशौण्ड] दे० 'अक्षकुशल [को०]।

अक्षसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अंतर्गत अक्ष या द्यूत संबंधी सूक्त [को०]।

विशेष—यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मडल १०, अध्याय ३ का ३४ वाँ सूक्त है जिसमे १४ ऋचाएँ हैं। इनमे १, ७, ९ और १२ वीं ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और १३ वीं कृषि की स्तुति मे है। शेष ऋचाओ मे जुए का खेल और जुआडियों की स्थिति का अकन किया गया है।

अक्षसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ जपमाला जिसमे गूँथी जाय वह सूत (को०)।

अक्षसेन—संज्ञा पुं० [सं०] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मैत्र्युपनिषद् मे आया है।

अक्षस्तुष—संज्ञा पुं० [सं०] बहेडा [को०]।

अक्षहीन—वि० [सं०] नेत्ररहित। अधा।

अक्षहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुए के खेल की दक्षता। २ जुए की भीतरी बातें या चालें [को०]।

अक्षहृदयज्ञ—वि० [सं०] जुए मे पूरी तौर से दक्ष [को०]।

अक्षांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान्ति] १ ईर्ष्या। डाह। जलन। हसद। २ दे० 'अक्षमा' (को०)।

अक्षांश—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूगोल पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अंशो पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानांतर मानी गई हैं जिनको अक्षांश कहते हैं। अक्षांश की गिनती विषुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३ भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के बीच मे याम्योत्तर का पूर्ण झुकाव या अंतर। ४ किसी नक्षत्र का क्रांतिवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणांतर। ५ कोई स्थान जो अक्षांशो के समानांतर पर स्थित हो।

अक्षाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] धुरा या धुरे का सिरा [को०]।

अक्षाग्रकील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुए और लट्टू को जोडनेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०]।

अक्षाग्रकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षाग्रकील' [को०]।

अक्षार[1]—वि० [सं०] क्षारशून्य। जिसमे क्षार न हो।

अक्षार[2]—संज्ञा पुं० प्राकृतिक लवण या नमक [को०]।

अक्षारलवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह लवण जिसमे क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकला हो।

विशेष—कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और व्रतादि मे उसको ग्राह्य समझते है।

२ वह हविष्य भोजन जिसमे नमक न हो और जो अशौच और यज्ञ मे काम आता हो, जैसे—दूध, घी, चावल, तिल, मूंग जौ आदि।

अक्षावपन—संज्ञा पुं० [सं०] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०]।

अक्षावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्राक्ष की जपमाला [को०]।

अक्षावाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २ द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षण। ३ द्यूत का निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०]। ४ आय व्यय का गणनाध्यक्ष।—हिंदु० स०, पृ० १०५।

अक्षावापन--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षपटल' [को०]।

अक्षि--संज्ञा स्त्री० [स०] १ आँख। नेत्र। २ दो की संख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्षिकंप--संज्ञा पुं० [स० अक्षिकम्प] पलकों के काँपने की स्थिति। आँख की फड़कन। आँख चमकाना [को०]।

अक्षिक--संज्ञा पुं० [स०] १ एक वृक्ष। आल का पेड़। २ दे० 'अक्षक' (को०)।

अक्षिकूट--संज्ञा पुं० [स०] १ आँख के ऊपर का ललाट का मुख्य भाग। २ आँख की पुतली। ३ नेत्रगोलक [को०]।

अक्षिकूटक--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षिकूट' [को०]।

अक्षिगत--वि० [स०] १ देखा हुआ। दृष्ट। २ विद्यमान। उपस्थित। ३ द्वेष का पात्र। द्वेष्य [को०]।

अक्षिगोल--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षिगोलक' [को०]।

अक्षिगोलक--संज्ञा पुं० [स०] आँख का डेला। आँख की पुतली।

अक्षिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से संबद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [को०]।

अक्षित[1]--वि० [सं०] १ क्षय न होनेवाला। जिसका क्षय न हुआ हो। २ अघट। न घटनेवाला। ३ जिसे चोट आदि न लगी हो [को०]।

अक्षित[2]--संज्ञा पुं० १ जल। २ दस लाख की संख्या [को०]।

अक्षितर--संज्ञा पुं० [सं०] पानी। जल [को०]।

अक्षितवसू--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०]।

अक्षितारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितारा' [को०]।

अक्षितारा--संज्ञा स्त्री० [स०] आँख की पुतली।

अक्षितावसु--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षितवसु'। [को०]।

अक्षिति[1]--संज्ञा स्त्री० [स०] दे० अनश्वरता [को०]।

अक्षिति[2]--वि० अनश्वर। नाश न होनेवाला [को०]।

अक्षिनिमेष--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की चमक। २ क्षण। पल [को०]।

अक्षिपक्ष्म--संज्ञा पुं० [स०] आँख की पलकों के अग्रभाग के बाल। बरौनी [को०]।

अक्षिपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के कोए पर की झिल्ली। आँख का परदा। २ आँख का एक रोग। मांडा (को०)।

अक्षिपाक--संज्ञा पुं० [स०] आँख की सूजन [को०]।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षिभू--वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष। दृश्य। प्रगट। २ सत्य। वास्तविक [को०]।

अक्षिभेषज--संज्ञा पुं० [स०] १ आँख की दवा। २ पट्टिकालोध्र नामक वृक्ष [को०]।

अक्षिमत्--वि० [सं०] आँखवाला [को०]।

अक्षिलोम--संज्ञा पुं०, [स०] दे० 'अक्षिपक्ष्म' [को०]।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [स०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षिविकूणित--संज्ञा पुं० [स०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिविकूशित--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षिविकूणित' [को०]।

अक्षिविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिश्रवा--संज्ञा पुं० [स० अक्षिश्रवस्] सर्प। चक्षुश्रवा [को०]।

अक्षिस्पंदन--संज्ञा पुं० [स० अक्षिस्पन्दन] आँख फड़कना।

अक्षीक--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [को०]।

अक्षीण--वि० [स०] १ जो न घटे। क्षीण न होनेवाला। जो कम न हो। २ अविनाशी। नाशरहित।

अक्षीव[1]--वि० [स०] जो मतवाला न हो। चैतन्य। धीर। शांत।

अक्षीव[2]--संज्ञा पुं० १ सहिजन का पेड़। २ समुद्री नमक।

अक्षीव--संज्ञा पुं०, वि० [स०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षु[1]--वि० [स०] शीघ्र। तुरत। [को०]।

अक्षु[2]--संज्ञा पुं० एक प्रकार का जाल [को०]।

अक्षुण--वि० [स०] दे० 'अक्षुण्ण' [को०]।

अक्षुणता--संज्ञा स्त्री० [स०] १ अक्षयता। २ अनुभवहीनता [को०]।

अक्षुण्ण--वि० [स०] १ बिना टूटा हुआ। अभग्न। उ०--अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की।--साकेत, पृ० २१६। २ अकुशल। अनुभवशून्य। अनाड़ी। ३ अपराजित। सफल (को०)। ४. समूचा। अन्यून (को०)। ५ लगातार। व्यवधान रहित (को०)।

अक्षुद्र[1]--वि० [स०] १ जो क्षुद्र या छोटा न हो। २ जो नीच या तुच्छ न हो [को०]।

अक्षुद्र[2]--संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अक्षुध्य--वि० [स०] १ जिससे क्षुधा न लगे। भूख मिटानेवाला, भूख नष्ट करनेवाला। २ जिसको भूख न लगती हो। क्षुधारहित [को०]।

अक्षुब्ध--वि० [स०] क्षोभरहित। जिसे क्षोभ न हो [को०]।

अक्षेत्र[1]--वि० [स०] १ क्षेत्रशून्य। बिना क्षेत्र का। २ परती। अकृष्ट [को०]।

अक्षेत्र[2]--संज्ञा पुं० १ निकृष्ट या बुरी भूमि। २ ज्यामिति की विकृत आकृति। मंद बुद्धि का छात्र। उपदेश के अयोग्य शिष्य [को०]।

अक्षेत्रज्ञ--वि० [स०] १ पथभ्रांत। भटका हुआ। २ आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य। ३ क्षेत्र या शरीर के तत्व को न जाननेवाला। देहाभिमानी [को०]

अक्षेत्रविद्--वि० [स०] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [को०]।

अक्षेत्री--वि० [स०] बिना क्षेत्र का। बिना खेतवाला [को०]।

अक्षेम--संज्ञा पुं० [स०] अमंगल। अशुभ। अकुशल। बुराई।

अक्षै(पु)--वि० [स० अक्षय] दे० अक्षय'। उ०--अक्षै वृक्ष एक राशि बनाई। अग्रबास तहाँ रही समाई।--कबीर मा०, पृ० १५३४।

अक्षोट--संज्ञा पुं० [स०] अखरोट का वृक्ष या फल।
पर्या०--कर्परालु। कदरालु। अक्षोड। आक्षोट। आक्षोड।

अक्षोड--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोडक--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोधुक--वि० [स०] जो भूखा न हो। क्षुधारहित। क्षुधाहीन [को०]।

अक्षोनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [स० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी'। उ०--जुरे नृपति, अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी।--सूर (शब्द०)।

अक्षोभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षोभ का अभाव। अनुद्वेग। शांति। दृढ़ता। धीरता। स्थिरता। २ हाथी बाँधने का खूँटा।

अक्षोभ[2]—वि० १ क्षोभरहित। चचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २. शात। स्थिर गभीर।

अक्षोभ्य[1]—वि० [सं०] धीर। शात। गभीर [को०]।

अक्षोभ्य[2]—संज्ञा पुं० १ तत्रोक्त एक ऋषि। २ बुद्ध का एक नाम। ३ बौद्धो के मत से एक बहुत बड़ी सख्या [को०]।

अक्षोभ्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] तत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का कवच [को०]।

अक्षौरिम—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमे क्षौर-कर्म वर्जित है [को०]।

अक्षौहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूरी चतुरगिनी सेना। सेना का एक परिमाण। सेना की एक नियमित सख्या। इसमे १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे। २ ग्यारह की सख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्ष्ण[1]—वि० [सं०] अखड। व्यापक [को०]।

अक्ष्ण[2]—संज्ञा पुं० काल। समय [को०]।

अक्स—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रतिबिंब। छाया। परछाईं। उ०—नाजुक है, न खिचवाऊँगा तस्वीर मैं उसकी। चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६९२।

क्रि० प्र०—आना।—डालना।—पड़ना।—लेना।

२ तसवीर। चित्र। उ०—आईनए दिल मे है तेरा अक्स। दिन रात मैं तुझको देखता हूँ।—शेर०, भा० १, पृ० ३०९।

क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।

३. फोटो [को०]।

अक्सर—क्रि० [अ०] वि० दे० 'अकसर'। उ०—आँखो मे अक्सर उनकी आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन मे जल गए हैं।—शेर०, भा० ४, १८२।

अक्सी—वि० [फा०] १ प्रतिबिंब या छाया सबधी। २. अक्स सबधी। अक्स से बना [को०]।

अक्सी तसवीर—संज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।

अक्सीर[1]—वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०—जाहिद शराबे नाब की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे उतर गई।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५५।

अक्सीर[2]—संज्ञा पुं० कीमिया। अकसीर। एक दवा [को०]।

अखग—वि० [सं० अखण्ड] न खंगनेवाला। न चुकनेवाला। कम न होनेवाला। अविनाशी।

अखड—वि० [सं० अखण्ड] १ जिसके खड या टुकड़े न हो। अटूट। अविच्छिन्न। सपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०—ज्ञान अखड एक सीतावर। मायावस्य जीव सचराचर।—मानस, ७।७८। २ जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच मे न रुके। लगातार। अनवरत। उ०—जहाँ अखड शांति रहती है वहाँ सदा स्वच्छद रहें।—प्रेम०, पृ० ३२। ३ निर्विघ्न। बेरोक। उ०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचड। जरत विभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखड।—मानस, ५।४९।

यौ०—अखंड ऐश्वर्य। अखड कीर्ति। अखड पुण्य। अखंड प्रताप। अखड यश। अखड राज्य। अखंड वृष्टि।

अखड द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [स० अखण्डद्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी। मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की बारहवी तिथि [को०]।

अखडधार—संज्ञा पुं० [सं० अखण्डधार] न टूटनेवाली धार। झड़ी। लगातार वृष्टि। उ०—सलिल अखडधार धर टूटत किए इद्र मन सादर।—सूर० १०।८५८।

अखडन[1]—वि० [सं० अखण्डन] १ खडित न होनेवाला। अखडनीय। २ समग्र। पूर्ण। ३ अखडित। अविच्छिन्न [को०]।

अखडन[2]—संज्ञा पुं० १ विरोध का अभाव। अविरोध। २ काल। समय। ३ परमात्मा। ४ खडन न करना [को०]।

अखडनीय—वि० [स० अखण्डनीय] १ जिसके टुकड़े न हो सकें। जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २ जिसके विरुद्ध न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।

अखडपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अखण्ड+पाठ] वह पाठ जो बिना क्रम टूटे लगातार चले।

अखडर—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इद्र। सुरपति। उ०—नहिं सुमत कैमास राय गोयद अखडर।—पृ० रा०, ६६। २३८।

अखडल[1]—वि० [सं० अखण्ड+हिं० ल (प्रत्य०)] १ अखड। अटूट। अविच्छिन्न। उ०—मनु नखत मडल मे अखडल पूर्ण चद्र सुहाय।—रघुनाथ (शब्द०) २ समूचा। सपूर्ण। पूरा। उ०—तवा सो तपत धरा मडल अखडल औ मारतड मडल हवा सो होत भोर तें।—बेनी (शब्द)।

अखडल[2]—संज्ञा पुं० [स० आखण्डल; प्रा० अखडल] इद्र। सुरपति। उ०—जाय वृजमडल के बीच मैं अखडल ह्वाँ मरजी तिहारी मानि रह्यो बहु भाँति हैं।—दीन० ग्र०, पृ० ६०।

अखड सौभाग्य—संज्ञा पुं० [स० अखंड+सौभाग्य] जीवन पर्यंत स्त्रियो के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा रहने की स्थिति [को०]।

अखड सौभाग्यवती—वि० [स० अखण्ड+सौभाग्यवती] जीवन पर्यंत सुहागिनी रहनेवाली [को०]।

अखडा द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [स० अखण्डा द्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी दे० 'अखडद्वादशी' [को०]।

अखडानद—वि० [स० अखंड+आनद] पूर्ण आनदस्वरूप। उ०—जदपि अखडानद नदनदन ईश्वर हरि।—नद० ग्र०, पृ० ४६।

अखडित—वि० [स० अखण्डित] जिसके टुकड़े न हो। विभाग-रहित। अविच्छिन्न। उ०—सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पडित। सोइ गुन गृह विज्ञान अखडित।—मानस, ७।४९। २ सपूर्ण। समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०—वे हरि सकल तीर के वासी। पूरन ब्रह्म अखडित मडित पडित मुनिन विलासी।—सूर०, १०।३०६६। जिसमे कोई रुकावट न हो। बाधा-रहित। निर्विघ्न, जैसे—उसका व्रत अखडित रहा (शब्द०)।

उ०—सुआ अमीस दीन्ह वड साजू । वह परताप अखडित राजू ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२ । ४ लगातार । अनवरत । सिलसिलेवार । उ०—(क) धार अखडित बरसत झर झर । कहत मेघ धावहु व्रज गिरिवर ।—सूर०, १०।६३६ । (ख) उमडी अँखियान अखडित धार ।—कोई कवि (शब्द०) ।

अख—सज्ञा पु० [देश०] बाग । बगीचा (डिं०) ।

अखगर—सज्ञा पुं० [फा० अख्गर] चिनगारी । अग्निकण । स्फुलिंग । उ०—अखगर को छिपा राख मे मैं देख के समझा । 'तावाँ' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१८ ।

अखगरिया—सज्ञा पु० [फा० अख्गर+हिं० इया (प्रत्य०)] वह घोडा जिसके बदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है ।

विशेष—अश्वशास्त्र या शालिहोत्र के अनुसार ऐसा घोडा ऐबी समझा जाता है ।

अखज Ⓤ—वि० [स० अखाद्य; प्रा० अखज्ज] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य । उ०—झख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत । विहरत पख फुलाय नहीं खज अखज विचारत ।—दीन० ग्र०, पृ० २०६ । २ निकृष्ट । बुरा । खराब । उ०—वैरागी अस चाल बताऊँ । तजे अखज तब हस कहाऊँ ।—कबीर सा०, पृ० २२१ ।

अखट्ट—संज्ञा पु० [स०] प्रियाल का पेड [को०] ।

अखट्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अशिष्ट व्यवहार । २ बचपन की बात [को०] ।

अखडा†—सज्ञा पुं० [स० अखात] ताल के बीच का गडहा जिसमे मछलियाँ पकडी जाती हैं । चँदवा ।

अखड़ैत[1] Ⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा+ऐत (प्रत्य०)] मल्ल । पहलवान । बलवान पुरुष । उ०—जंगा जीत तपोबल जालम ओप बडै अखडैत ।—रघु० रू०, ६२ ।

अखड़ैत[2]†—वि० अखाडा मे कुश्ती लडनेवाला जोर करनेवाला । अखाडिया ।

अखत—वि० [स० अक्षत] बिना टूटा हुआ । अक्षत । सपूर्ण । समग्र । उ०—गिणजै सद ज्यारी जिंदगाणी, उभै विरद धरियाँ अखत ।—रघु० रू०, पृ० २४ ।

अखतियार Ⓤ†—सज्ञा पु० [अ० इख्तयार] दे० 'इख्तियार' उ०—अब नाटक करनेवालों को अखतियार है कि सब नाटक हिंदी भाषा मे करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाडी और व्रजभाषा मे करें ।—श्रीनिवास ग्र० (नि०), पृ० १० ।

अखती†—सज्ञा स्त्री० [स अक्षय तृतीया, प्र० अक्खय—तइया, तं य] अक्षय तृतीया । उ०—अखती की तीज तजवीज कै सहेली जुरी, वर के निकट ठाढी भावते को घेर के । ठाकुर०, पृ० १७ ।

अखतीज—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया' प्रा० अक्खय-तइया, तीय] अक्षय तृतीया, । आखातीज ।

अखत्यार†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार' । उ०—'हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरी, हमारो का अखत्यार है' ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४४७ ।

अखनकुमारी Ⓤ†—वि० स्त्री० [सं० अक्षत, अक्षय+कुमारिका] अक्षत कुमारी । जिसका कौमार्य भग न हुआ हो । उ०—सुदर सबही सौं मिली कन्या अखनकुमारि । वेश्या फिरि पतिव्रत लियो भई सुहागनि नारि ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५५ ।

अखना Ⓤ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आखना' । उ०—आद चरण की कला अठारह अरट गीत कवि मुख अखै ।—रघु० रू०, प० ६२ ।

अखनी—सज्ञा स्त्री० [अ० यखनी] मास का रसा । शोरवा । उ०—अपनी वटि वासति मास परे । हठिवास सुवासिनी आस भरै ।—पृ० रा०, ६३।१०० ।

अखबार—सज्ञा पुं० [अ० खबर का बहु०] १ समाचारपत्र । सवाद पत्र । उ०—खीचो न कमानो का न तलवार निकालो । जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो ।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ६२० । २ दे० 'खबर' । उ०—हैगे इस गाव मे बहुत अखबार । कुछ मैं लिखता हूँ उनसते यार ।—दखिनी०, पृ० २१८ ।

अखबारनवीस—सज्ञा पुं० [अ० अख्बार, फा०+नवीस] वह जो समाचार लिखता हो । समाचारलेखक । समाचारपत्र सपादक । पत्रकार ।

अखबारनवीसी—सज्ञ स्त्री० [अ० अख्बार+फा० नवीसी] अखबारनवीस का काम । पत्रकारिता [को०] ।

अखबारी—वि० [अ० अख्बार+हिं० ई (प्रत्य०)] अखबार सबधी । अखबार का [को०] ।

अखय Ⓤ—वि० [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय] जिसका क्षय न हो । न छीजनेवाला । अविनाशी । नित्य । चिरस्थायी । उ० —खसमहि छोडि छेम ह्वै रहई । होय अखीन अखय पद गहई ।—कबीर (शब्द०) ।

अखयकुमारी Ⓤ—वि० स्त्री० [सं० अक्षयकुमारी] दे० 'अखनकुमारी' । उ०—माह मास सीय पडे अति सार । समजती धन अखय कुमारि ।—बी० रासो० पृ० २१ ।

अखयवट Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट] दे० 'अक्षयवट' । उ०—सगम सिंघासन सुठि सोहा । छत्र अखयवट मुनि मन मोहा ।—मानस, २।१०५।

अखर[1] Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अक्षर; पा०, प्रा० अक्खर] अक्षर । वर्ण । हर्फ । उ०—म द प अखर ए मध्य तज झ ट क अत मत आण ।—रघु० रू०, पृ० ८ ।

अखर[2] Ⓤ—वि० दे० 'अक्षर' ।

अखर[3]—सज्ञ स्त्री० [हिं० अखरना] अखरने का भाव या स्थिति । उ०—'हाँ, सदूक खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं । अखर तो उसे होती है जिसे कुआँ खोदना पडता है ।—काया०, पृ० ३० ।

अखरताली†—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर+ताल] हस्ताक्षर । हस्तलेख ।

अखरना—क्रि० अ० [सं० खर=तीव्र, कटु] १ दुखदाई होना । कष्टकर होना । उ०—चहचह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर सुनते अखरिहै ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २२६ । २. बुरा लगना । खलना । उ०—'चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को अखरता ।'—बिल्हे०, पृ० १६ ।

अखरा[1] (पु)—वि० [सं० अ=नहीं+खरा=सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। झूठा। कृत्रिम। बनावटी। उ०—वार विलासिनी ती के जपे अखरा अखरा नखरा अखरा के।—पद्माकर (शब्द०)।

अखरा[2] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] वर्ण। अक्षर। हरफ। उ० (क)—जीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कैकै, कहा कहै अरु मीत राखै कहा कहि चाप दम।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १९६। (ख) रसवंत कवितन का रस ज्यो अखरान के ऊपर ह्वै झलके।—कोई कवि (शब्द०)।

अखरा†—संज्ञा पुं० [देश०] बिना कुटे हुए जौ का भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखरावट—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरावलि, अक्षरावर्त] १ वर्णमाला। अक्षरसमूह। २ वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह, जैसे जायसी का अखरावट।

अखरावटी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अखरावट+ई (प्रत्य०)] दे० 'अक्षरौटी'—१। उ०—पंडित पढ़ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि।—जायसी ग्र०, ३०३।

अखरावलि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावलि] अक्षरपंक्ति। उ०—प्रकटित पृथिमी पृथु मुख पंकज अखरावलि मिसि थाउ एकत्र।—वेनि०, पृ० २९३।

अखरोट[1] (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखरावट'—१। उ०—पुणजै, सुध अखराट पिण अै दस दाप अगाध।—रघु० रू०, पृ० १३।

अखरोट[2]—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोट, प्रा० अक्खोड] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—खासिया की पहाड़ियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबूत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारियाँ पड़ी होती है। इसकी मेज, कुरसी, बंदूक के कुंदे, संदूक आदि बनते हैं। इसकी छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल अंडाकार, बहेड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत कड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढ़ा मेढ़ा गूदा व मींगी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलता है। डंठल और पत्तियों को गाय बैल खाते हैं। अखरोट बहुत गर्म होता है।

अखरोट जंगली—संज्ञा पुं० [हिं०] जायफल।

अखरौटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अखरावटी'।

अखर्व—वि० [सं०] १. जो छोटा न हो। बड़ा। लंबा। २. जो क्षुद्र या बौना न हो [को०]।

अखर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अखल—संज्ञा पुं० [सं०] गुणी एवं अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

अखलाक—संज्ञा पुं० [अ० अखलाक] १ सदाचार। उत्तम आचार। २. सुजनता। शिष्टता [को०]।

अखलि—वि० [देश० अखलिय] आकुल व्याकुल। उ०—दुतिया ह्वै कुल उघरन धीर, उनमन मनवाँ अखलि सरीर।—गोरख०, पृ० १८१।

अखसत—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत] चावल (डिं०)।

अखाँगना[1] (पु)—क्रि० स० [हिं० खाँगना] मारना। उ०—कहै पद्माकर अखाँग्यो तुम लकपति।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४८।

अखाँगना[2] (पु)—क्रि० स० [सं० अ=नहीं+हिं० खाँग=कमी, त्रुटि] त्रुटि न करना। कोताही या कमी न करना। उ०—हमहूँ कलकपति ह्वै बोई अखाँग्यो है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४८।

अखा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आखा'।

अखाज (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०—गम्य अगम्य विचार न करही, खाज अखाज नही चित धरही।—कबीर सा०, पृ० ४६४।

अखाड (पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अखाड़ा'। उ०—छुद्र घटि मोहहि नर राजा। इद्र अखाड आइ जनु साजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ४७।

अखाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अक्षवाट; प्रा० अक्खाडय] १. वह स्थान जो मल्लयुद्ध के लिये बना हो। कुश्ती लड़ने या बसरत करने के लिये बनाई हुई चौखूँटी जगह जहाँ की मिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ०—'चौदह पंद्रह साल के लड़के अखाड़ा गोड़ चुके थे छप्पर की थूनियाँ पकड़े हुए बैठक कर रहे थे'।—काले०, पृ० ३। २ साधुओं की साप्रदायिक मंडली। जमायत, जैसे—निरंजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा, पंचायती, अखाड़ा। ३ साधुओं के रहने का स्थान। मतों का अड्डा। ४ तमाशा दिखानेवालों और गाने-बजाने वालों की मंडली। जमायत। जमावड़ा। दल, जैसे—'आज पटेबाजों के दो अखाड़े निकले' (शब्द०)। ५ सभा दरबार। मजलिस। ६ रंगभूमि। रंगशाला। परियों का अखाड़ा। नृत्यशाला। उ०—लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३५४। ७ आँगन। मैदान।

मुहा०—अखाड़ा उखाड़ना = अखाड़े के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। अखाड़ा न जमना। अखाड़ा गरम होना=अखाड़े में काफी लोगों का आना या भीड़भाड़ होना। अखाड़ा जमना= १ अखाड़े का काम ठीक ढंग से होना। २. अखाड़े में शामिल होनेवाले और दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। अखाड़ा न लगना = अखाड़े का काम न होना। अखाड़ा बंद रहना। उ०—'और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दे कि अखाड़ा न लगेगा'।—काले०, पृ० २७। अखाड़ा निकलना = अखाड़े से संबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। अखाड़ा बदना = चुनौती देना। ललकारना। अखाड़ा लगना = दे० 'अखाड़ा जमना'। अखाड़े का जवान = कुश्ती या कसरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। अखाड़े में आना = लड़ने के लिये सामने आना। अखाड़े में उतरना = दे० 'अखाड़े में आना'।

अखाड़िया[1]—वि० [हिं० अखाड़ा+इया (प्रत्य०)] १ अखाड़े के कामों में सधा हुआ। दंगली पहलवान। २. केवल खाड़ अपने में ही लड़नेवाला। दंगल में न लड़नेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजोड़।

अखाड़िया[2]—संज्ञा पुं० कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

अखाढ़ (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अषाढ़'। उ०—मास अखाढ उनत नवमेघ —विद्यापति, पृ० १३१।

अखात[1]—संज्ञा पुं० [पु०] १ बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय। ताल। झील। २ खाड़ी। ३ मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०]।

अखात[2]—वि० बिना खोदा हुआ [को०]।

अखाद (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०—खाद अखाद न छाँडै अब लौं सब मैं साधु कहावै।—सूर०, १।१८६।

अखाद्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य। अभक्ष्य, जैसे, गोमांस आदि। २ खाने की वस्तु से भिन्न (को०)।

अखाधि (पु)—वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य'। उ०—की ब्रह्म ज्ञान होये मेथुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा। —सं० दरिया, पृ० १२१।

अखानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखान+हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढ़ी छड़ी या लकड़ी जिससे दँवरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए डठलों को बीच मे करते जाते हैं।

अखार[1]—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा०, प्रा० अक्ख=धुरी+हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोंदा जिसे कुम्हार लोग चाक के बीच मे रख देते हैं और जिसपर थोथा रखकर नरिया उतारते है।

अखार[2] (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा] दे० 'अखाड़ा' उ०—नट नाटक पतुरिन ओ बाजा। आनि अखार सबै तहँ साजा।—पदमावत, पृ० ६०१।

अखारना†—क्रि० स० [सं० अक्षालन] चारो ओर से अच्छी तरह धोना; जैसे अखारना, पखारना।

अखारा (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाड़ा'। उ०—तहाँ देखि अप्सरा अखारा। नृपति कछू नहिं बचन उचारा।—सूर०, ६।४।

अखित (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षत'। उ०—दिय अखित सीस केदार साज।—पृ० रा०, ५८ ६१।

अखिद्र—वि० [सं०] जो थका न हो। खेदरहित [को०]।

अखिन्न—वि० [सं०] १ खिन्नतारहित। खेदविहीन। उ०—सकेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुडली छिन्न भिन्न।—अनामिका, पृ० १२५। २ क्लेशरहित। दुखरहित। ३ प्रसन्न। विमल। उ०—तेहिं प्रौढोक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ४६।४ अश्रांत। अक्लांत (को०)।

अखियात[1] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आख्यात] आश्चर्य। अचभा। उ०—ए अखियात जु आउधि आउध, सजे रुकम हरि छेद सोजि।—वेलि०, दू० १३३।

अखियात[2] (पु)—वि० १ प्रसिद्ध। आख्यात। उ०—अखियातौं बातौं बचै जरा काल डर छड्ड।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ४६। २ समग्र। सब। सपूर्ण। उ०—रिण पडियां भ्रम राख अभंग अखियात उबारै।—रा रू०, पृ० ३८। ३ दे० 'अक्षय' उ०—पात सुजस अखियात पयपै दातव असमर बात दुवै।—रघु० रू०, पृ० १६।

अखिर (पु)—वि० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर, (पु)अरिखर+हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला। आखर। उ०—ब्यड ब्रह्मांड सम तुलि ब्यापीले, एक अखिरी हम गुरमुपि जाणी।—गोरख०, पृ०१०१।

अखिल—वि० [सं०] १. संपूर्ण। समग्र। बिलकुल। पूरा। सब। उ०—अखिल विश्व यह मोर उपाया।—मानस, ७।८७। २ सर्वांगपूर्ण। अखड। उ०—तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी भक्तन सदा सहाय।—सूर (शब्द०)। ३ जो अकृष्ट या बिना जोता हुआ न हो। खेती के योग्य (को०)।

यौ०—अखिल विग्रह=समग्र विश्व जिसका शरीर हो, ईश्वर।

अखिलात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] समग्र विश्व जिसकी आत्मा हो। विश्वात्मा। ब्रह्म [को०]।

अखिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनस्पति। करेली [को०]।

अखिलेश—संज्ञा पुं० [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी। ईश्वर [को०]।

अखिलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अखिलेश'। उ०—मग सती जग जननी भवानी। पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी।—मानस, १।४८।

अखीन (पु)—वि० [सं० अक्षीण, अक्षीण] न छीजनेवाला। न घटनेवाला। चिरस्थायी। अविनाशी। नित्य। स्थिर। उ०—खसमहि छोडि छेम ह्वै रहई। हाथ अखीन परमपद गहई।—कबीर (शब्द०)।

अखीर[1]—संज्ञा पुं० [अ० अखीर] १. अत। छोर। २ समाप्ति।

अखीर—वि० खत्म। समाप्त। उ०—अखीर हो गए गफलत मे दिन जवानी के, वहारे उम्र हुइ कब खिजाँ नही मालूम।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३८०।

अखीरी[1]—वि० [अ० अखीर+ई (प्रत्य०)] दे० 'आखिरी'।

अखीरी[2] (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अखिरी'। उ०—एक अखीरी ओंकार जपीला, सुनि अस्थूल दोइ वाणी।—गोरख०, १०१।

अखुटना (पु)—क्रि० अ० [सं० क्ष+आ+√क्षोट (क्षेपे), प्रा० क्ष खोट खुट (ला०) अथवा देश०] लडखडाना। उ०—अखुटत परत सु विहवल भयो, डरत डरत सूती गृह गयो।—नद० ग्र०, पृ०२३१।

अखुटित (पु)—वि० [सं० अ+कुण्ठ, प्रा० क्षअखुट, >अखुट, अथवा सं० अ=नहीं+√क्षोट=क्षय, प्रा० क्ष अखोट >अखुट+इत (प्रत्य०)] लगातार। अनवरत। निरतर। उ०—अखुटित रटत सभीत ससकित, सुकृत शब्द नहिं पावै।—सूर०, १।४८।

अखूट—वि० [सं० अ+√खुड्=तोडना अथवा सं० क्षअखोडय, प्रा० क्षअखुड्ड, अखुड्ड>अखूट] १ जो तोड़ा या खडित न किया जा सके। अटूट। उ०—सात दीप सात सिधु थरक थरक करै जाकै डर टूटत अखूट गढ राना के।—अकबरी०, पृ० १४३। २ जो न घटे या न चुके। अखड। अक्षय। बहुत। अधिक। उ०—(क) नैना अतिही लोभ भरे। सगहिं सग रहत वै जहँ तहँ बैठत चलत खरे। काहू की परतीति न मानत जानत सबहिनि चोर। लूटत रूप अखूट दाम को स्याम वस्य यौं भोर।—सूर०, १०।२८८४। (ख) झूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए झूठ। साहबै तो मानै नही लागै पाप अखूट।—दादू (शब्द०)।

अखेट (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखेट] दे० 'आखेट'। उ०—मत्री कहै अखेट सो करै, विषय भोग जीवन सहरै।—सूर०, ४।१२।

अखेटक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक'। उ०—(क) एक दिवस को अखेटक गयो, जाइ अबिका बन तिय भयो।—सूर०, ६।२। (ख) इक दिन राव अखेटक चढ़्यो, बिरही मृग मारन रिस भरयो।—नद० ग्र०, पृ० १४०।

अखेटकी(पु)—वि० [हि० अखेटक + ई (प्रत्य०)] शिकारी। बहेलिया। आखेटी। उ०—पेट को पेखत, पूत सहत, पढ़ा सिखि, अटत गहन वन अहन अखेटकी।—तुलसी ग्र०, पृ० २८०।

अखेटिक—संज्ञा पु० [सं० आखेटिक] १ शिक्षित शिकारी कुत्ता। २. कोई भी कुत्ता (कों०)।

अखेद[1]—संज्ञा पु० [सं०] दुःख का अभाव। प्रसन्नता। निर्दुःखता।

अखेद[2]—वि० दुःखरहित। प्रसन्न। हर्षित। उ०—है हरता करतार प्रभु कारण करन अखेद। यह विचारि सहुँपान के मन उपज्यौ निरवेद।—हम्मीर०, पृ० ६८।

अखेदित्व—संज्ञा पु० [सं०] जैन मत में तपस्वियों के आचरण योग्य वाणी का एक गुण (कों०)।

अखेदी—वि० [सं०] खेदरहित। अथकित [को०]।

अखेलत(पु)—वि० [सं० अ + खेल = खेलना = बिना खेले हुए] १ अचंचल। अलोल। भारी। २ आलस्य भरा हुआ। उ०—भारी रस भीजे भाग आयनि भूजन अंगे, भावते सुभट उपभोग रस मोहगे। खेलत ही खेलत अखेलत ही आखिन माँ खिनखिन खीन हैं खरे ही खिन खोहगे।—देव (शब्द०)।

अखै(पु)—वि० [सं० अक्षय, पा०, प्रा० अक्खय] अक्षय। अविनाशी। उ०—मन मस्त हस्ती मिल्यो अखै खंभ लै बाँधि। अंकुश गुरु के ज्ञान को, सहजै आवै साधि।—गोरख०, पृ० २७।

यौ०—अखैपद = निर्वाण। अखैपुरुष = ईश्वर। अखैवट, अखैवर = अक्षयवट।

अखै तीज(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया] अक्षय की तीज। अक्षय तृतीया। उ०—अखै तीज तिथि के दिना गुरु हैं वै सजूत। तौ भावै यों कहुरी निपजै नाज बहूत।—ब० ब०, पृ० १४५।

अखैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान] चार पाँच हाथ लंबी बाँस की लग्गी जिसके एक छोर पर एक टेढ़ी छोटी लकड़ी चोंच की तरह बँधी होती है। खलिहान में जब अनाज बटकर आता है तब इसी से उलट फेरकर उसे सुखाते हैं। अखनी।

अखैवट(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अक्षयवट' उ०—सु अखैवट बीज सों फैलि परयो वनमाली यहाँ धौ रमेय फले।—घनानंद, पृ० ११४।

अखैवर†—संज्ञा पु० [सं० अक्षयवट, प्रा० अक्खयवड] अक्षयवट।

अखैवट(पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० अखैवट'। उ०—अखय अखैवट विमल, प्रलै सागर निर सोभै।—ब० ब०, पृ० ५६।

अखोट—वि० [सं० अ + √खोट, प्रा० खोट] दोषरहित। शुद्ध। निश्छल। उ०—कही अटारी बाम यह किधौ प्रनाम अखोट। तनि किरन तें दुगत कौं कर सरोज की ओट।—मति० ग्र०, पृ० २८८।

अखोर[1](पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + फा० खार] १. अक्षुब्ध। शुद्ध। सज्जन। २ सुंदर। रूपवान। ३. बुराई से बचा हुआ। निर्दोष। बेऐब।

अखोर[2]—वि० [फा० अखोर] निडर। दुष्ट। धूर्त। हद दर्जे का। आखोर।

अखोर[3]—संज्ञा पु० १ कड़ा कपड़ा। निरर्थक चीज, जैसे—कपड़े का अखोर बाजार से उठा लाए।—(व्यं०)। २. घृणित नाम। घृणित भाव। बुरा भाव। क्रियाओं। उ०—आज अखोर मुख लिन टारी, आठ गाठ की। सखी सिखए।—कबीर (शब्द०)।

अखोल(पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + खोलना] जिसे खोला न जा सके। बंधा हुआ। दृढ़। उ०—सखा सुनत रघुनाथ के बोल। कमल बैठि तमाल अली, सुलझ्यो अखोल।—सूर० १०।२१३२।

अखोला—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अखोल'

अखोह—संज्ञा पु० [सं० खोम = असमानता] ऊँची नीची भूमि। ऊबड़ खाबड़ पृथ्वी। असम भूमि।

अखोट—संज्ञा पु० [सं० अक्ष, पा० प्रा० अक्ख = धुरा + हिं० खोट (प्रत्य०)] १ गाड़ी या चक्की के बीच की वह लंबी लकड़ी जिसपर ठप्पा या पाट घूमता है। जाँते की किल्ली। २. कपड़ी या चर्खे का टेढ़ा जिसपर सूतार, घूमती है।

अखोटा—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अखोट'।

अखोना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अखना'।

अखर—संज्ञा० पु० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हर्फ। वर्ण। उ०—एकै अखर पीव का सतगुरु दीन्हा भेखि। राम नाम सतगुरु कहा याद रे, परकासि।—दादू०, भा० १, पृ० ३२।

अखाह—अव्य० [अ० अल्लाह्] ईश्वर या आश्चर्यसूचक शब्द। उ०—'अखाह। आपने बेटिए। अखाह! आप भी इसमें लगे हुए हैं।—(शब्द०)।

विशेष—जब एक व्यक्ति किसी से कहता सिद्ध करता है, अथवा उसे स्वभावविरुद्ध काम करते देखता है, तब इस शब्द का प्रयोग करता है। वास्तव में यह अल्लाह का बिगड़ा हुआ 'अह' शब्द का प्रकार है।

अखियर(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० अखरा'। उ०—जे तेपे पुर अखियर तिनि समा चुनि चुनि खाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२।

अखर्व(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अखरा'। उ०—पैरि सरह पुनिगाइ सु आवौं। समा समा अर्थ बखाना।—पृ० रा०, ५।१।

अगज—संज्ञा पु० [सं० अगज] पेड़। वृक्ष।

क्रि० प्र०—करना = पेड़ लेना। बहुत बढ़ना। २. विस्तृत निकलना। सायक निकलना।

अगतयार—संज्ञा पु० [अ० इख्तियार] दे० 'इख्तियार'। उ०—जिसने को तुमसे कि ना मेरा बेकरार है। तू अपने दिल से पूछ ले तेरा अगतयार है।—कबीर, भा० ५, पृ० २६३।

अगर—संज्ञा पु० [फा० अगर] अगर। लाग। लिहाज। उ०—मीर ए-पर्दा से तुर अगर कर दिए हैं मेरा कद। कद्दे हुआ अगर दर से कमाँदा हुआ।—कबीर श०, भा० ५, पृ० १६२। २. शक। आशंका। संदेह (क्व०)।

मुहा०—अगर करना = आशंका करना। संदेह करना। शक में डाल देना।

अख्तरशुमार--सज्ञा पुं० [फा० अख्तरशुमार] नक्षत्रो की विद्या का जानकार। ज्योतिषी [को०]।

अख्तरशुमारी--सज्ञा स्त्री० [फा० अख्तरशुमारी] १ नक्षत्रगणना की विद्या। भाग्य जानने की विद्या २ आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना। बेचैनी से रात काटना। उ०—शब उसने तोडकर मोती के सुमरन मुझसे गिनवाए। दिखाया दस्ल मे आलम नया अख्तरशुमारी का। —शेर०, भा० १, पृ० २१७।

अख्तावर--सज्ञा पुं० [फा० आख्ता + वर (प्रत्य०)] वह घोडा जिसे जन्म से ही अडकोश की कोडी न हो या कृत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो।

विशेष —जन्म से नपुसक घोडा ऐसी समझा जाता है।

अख्तियार--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०--कुछ हाथ उठा के माँग न कुछ हाथ उठा के देख। फिर अख्तियार खातिरे बेमुद्दआ के देख।—शेर० भा० ४, पृ० ५८।

अख्त्यार--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—कीजे क्या हाली न कीजे साद्गी गर अख्त्यार। बालना आए न जब रगीं बयानो की तरह।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५६६।

अख्यात--वि० [स०] १ अप्रसिद्ध। अज्ञात। २ जिसे कोई जानता न हो। अविदित। ३ अख्यातियुक्त। अप्रतिष्ठित [को०]।

अख्याति--सज्ञा स्त्री० [स०] अप्रसिद्धि। प्रसिद्धि का अभाव [को०]।

अख्यातिकर--वि० [स०] १ अपमानकर। अप्रसिद्धि करनेवाला। अकीर्तिकर। बदनामी फैलानेवाला।

अख्यान--सज्ञा पुं० [स० आख्यान; प्रा० अक्खाण] दे० 'आख्यान'। उ० --अब अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान।—रामरसिक०, पृ० ६६६।

अख्यायिका--सज्ञा स्त्री० [स० आख्यायिका] दे० 'आख्यायिका'।

अगज--वि० [स० अ = नहीं + √गज्ज] न जीता जानेवाला। अपराजेय। उ०—पवह सहस पसवान साहि। अगन अगज को सकै गाहि।—पृ० रा०, १३।१६।

अगड--सज्ञा पुं० [स० अगण्ड] बिना हाथ पैर का कबध। धड जिसके हाथ पैर कट गए हो।

अगत--क्रि० वि० [स० अग्रत प्रा० अग्गत > अगत] सामने। आगे। उ०—मेल्हन उजोर पहुँच्यो छुरत रनथभ कोट देख्यो अगत।—हम्मीर०, पृ० १७।

अगता[1]—वि० [स० अगन्ता] चलने या गमन न करनेवाला [को०]।

अगता[2]†—वि० [स० अग्र + गता] १. आगे बढा हुआ। अगाडो। २ पेशगी। अगता। अग्रिम।

अगध—वि० [सं० अगन्ध] गधरहित। गधहीन [को०]।

अग[1]—वि० [स०] १. न चलनवाला। अचर। स्थावर। उ०—तव विषम माया वस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।—मानस, ७।१३। २ टेढा चलनेवाला। ३ पहुँच के बाहर। [को०]।

अग[2]—सज्ञा पुं० १ पेड। वृक्ष। २ पर्वत। पहाड। उ०—गए पूरि सर घूरि भूरि भय अग थल जलधि समान।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८१। ३. पत्थर (को०)। ४. वृक्ष। पादप (को०)। ५. सूर्य (को०)। ६ जलपात्र (को०)। ७ सात की सख्या का वाचक शब्द (को०)।

अग[3]--वि० [स० अज्ञ] अनजान अनाडी। मूढ।

अग[4]--सज्ञा पुं० [स० अङ्ग] शरीर। अग (डि०)।

अग[5]†--सज्ञा पुं० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] ऊख के सिर पर का पतला भाग जिसमे गाँठ बहुत पास पास होती हैं और जिसका रस फीका होता है। अगौरा।

अग[6]†--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—मवत नव मत अट वरप दस तीय मत्त अग। पुर प्रविष्ट वीसल नरिंद राजत सयल जग।—पृ० रा०, १।४७२।

अगइं†—वि० [स० अग्रिम] अगला। आगे का। अग्रिम। उ०—राजा पाड्यो लाया हो, व लाई। अगइ वात वहाँ समझाय।—वी० रासो, पृ० ८६।

अगई—सज्ञा पुं० [देश०] चलता जाति का एक पेड।

विशेष--यह अवध, बगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास मे बहुतायत से होता है। इसकी लकडी भीतर सफेदा लिए हुए लाल रग की होती है और जहाजो तथा मकानो मे लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसके पत्ते दोने पुटने के काम देते हैं। इसकी कली और कच्चे फलो की तरकारी भी बनती है।

अगच्छ[1]—वि० [स०] जो न चले। अगमनशील [को०]।

अगच्छ[2]--सज्ञा पुं० वृक्ष। पेड [को०]।

अगज[1]—वि० [स०] पर्वत मे उत्पन्न होनेवाला। २. वृक्ष से उत्पन्न (को०)। ३ पर्वतो पर घूमनेवाला। गिरिचर (को०)।

अगज[2]--सज्ञा पुं० १ शिलाजीत। २ हाथी।

अगज[3]--सज्ञा पुं० [अ० अगश] श्वेत रग के सिरवाला अश्व। उ०—अवलक अवसर अगज सिराजी। चौधर चाल समुंद सब ताजी।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगजग—सज्ञा पुं० [सं० अग + जग] चराचर। जड चेतन। उ०—अगजन उनका कण कण उनका पल भर वे निर्मम हो। झरते नित लोचन मेरे हो।—यामा, पृ० १८१।

अगजा--सज्ञा स्त्री० [स० अग = पर्वत + जा = पुत्री] हिमालय की पुत्री, पार्वती [को०]।

अगट[1]—सज्ञा पु० [देश०] चिक या मास बेचनेवाले की दूकान।

अगट[2]--क्रि० अ० [स० एकत्र, एकस्थ, प्रा० एकट्ठ] इकट्ठा होना। एकत्र होना। जमा होना।

अगड--सज्ञा पु० [स० अर्गल, प्रा० अग्गल] सिक्कड जिसमे हाथी बाँधे जाते हैं। उ०—चिहूँ ओर हरषी छुटै, परै अगड सुमार। गोला लगै गिलोल गुरु छुटै न तो इमरार।—पृ० रा०, ६।३२५।

अगड--सज्ञा पु० [हिं० अकड़ या अ० मा० अगड] अकड। ऐंठ। दर्प। उ०--सोभ मान जग पर किए सरजा सिवा खुमान। साहिन सो विनु उर अगड विनु गुमान को दान।—भूषण (शब्द०)।

अगड़धत्ता—वि० [हिं०] दे० 'अगडधत्ता'।

अगड़धत्ता--वि० [देशी] १. लबा तडगा। ऊँचा। २ श्रेष्ठ। बढ़ा-चढ़ा। उ०--एक पेड़ अगडधत्ता। जिसमे जड न पत्ता।—पहेली [उत्तर—अमरबेल।]

अगडवगड[1]—वि० [सं० अकृत+विकृत, प्रा० अकड+विकड, अगड़ विकड] अड बड। बे सिर पैर का। ऊलजलूल। क्रमविहीन।

अगड़वगड[2]—सञ्ज्ञा पुं० १ अडबड बात। बे सिर पैर की बात। प्रलाप। २ अडबड काम। व्यर्थ का कार्य। अनुपयोगी कार्य। उ०—'वह दूकान पर नहीं बैठता, दिन रात अगडवगड़ किया करता है (शब्द०)।

अगडम वगडम[1]†—वि० [हिं०] दे० 'अगडवगड'।

अगडम वगडम[2]—सञ्ज्ञा पुं० [स० अकृतम्+विकृतम् अथवा अनु०] १ दे० 'अगडवगड'। २ टूटे फूटे सामान और काठकबाड का ढेर।

अगड़ा[1]†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकण अथवा देश०] ज्वार बाजरा आदि अनाजों की बाल जिसमें से दाना झाड लिया गया हो। खुखडी। अखरा।

अगडा[2]—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गला] दे० 'अगरा', 'अगला'।

अगडी†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगरी २'।

अगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अशुभ गण। बुरा गण।

विशेष—पिंगल या छदशास्त्र में तीन तीन अक्षरों के जो आठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्—जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गए हैं और अगण कहलाते हैं। इनको कविता के आदि में रखना बुरा समझा जाता। पर यह गणा-गण का दोष मात्रिक छदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं। उ०—इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि।—छद०, पृ० ११०।

अगणत(पु)†—वि० [हिं०] दे० अगणित। उ०—हेक बिदर पैदा हुवै अगणत मिलिया अम।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

अगणन—वि० [सं०] असख्य। अनगिनत। उ०—प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्माड ग्रास करके। —अनामिका, पृ० १०१।

अगणनीय—वि० [सं०] १ गिनने योग्य। सामान्य। २ अन-गिनती। असख्य। बेशुमार।

अगणित—वि० [सं०] १ जिसकी गणना न हो। अनगिनत। असख्य। बेशुमार। बहुत। बेहिसाब। अनेक। उ०—ऐसे ही अगणित रत्नों से तुम्हें जगत ने पाया है।—साकेत, पृ० ३७०। २ जो गिना न गया हो। जो गिनती में न आया हो (को०)। ३ उपेक्षित। तुच्छ (को०)।

अगणित प्रतियात—वि० [सं०] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [को०]।

अगणितलज्ज—वि० [स०] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला। निर्लज्ज [को०]।

अगण्य—वि० [सं०] १ न गिनने योग्य। सामान्य। तुच्छ। २ असख्य। बेशुमार। उ०—गूँजे गगनागण में ये अगण्य गान। —गीतिका, पृ० ८७।

अगत[1](पु)—वि० [स० अगति] जहाँ गति न हो। अगम्य। उ०—(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाई जिनन।—संत तुरसी०, पृ० ४३।

अगत[2]—अव्य० [सं० अग्रत, प्रा० अग्गत] आगे चलो। हाथियों को आगे बढाने के लिये महावतों द्वारा प्रयुक्त शब्द। महावत लोग हाथी को आगे बढाने के लिये 'अगत', 'अगत' कहते हैं।

अगत[3](पु)†—स्त्री० [स० अगति] बुरी गति। दुर्दशा। दुर्गति। उ०—मन प्रकार सुख शक्र लख जन रामा हरि बिन अगत।—राम० धर्म, पृ० २४५।

अगता[1]—वि० [स० अग्रत] १ आगे स्थित। अगाडी। उ०—बाएँ सो दहिने पीछे सोइ अगता। अर्ध उर्ध सम घटत न बढता।—भीखा श०, भा० ३, पृ० ४८। २ अग्रिम। पेशगी।

अगता[2]—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आख्त] बधिया किया हुआ घोडा [को०]।

अगति[1]—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरी गति। दुर्गति। दुर्दशा। दुरवस्था। उ०—ऋधि सिधि विधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। —तुलसी ग्र० पृ० ३६०।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गति का उलटा। मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना। मृत्यु के पीछे की बुरी दशा। मोक्ष की अप्राप्ति। बधन। नरक। उ०—काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना उ०—कहो तो मारि सहारि निशाचर रावण करौ अगति को।—सूर० (शब्द०)।

३ स्थिर या अचल पदार्थ। केशव के अनुसार २८ वर्ण्य विषय हैं। इनमें से जो स्थिर या अचल हों उनकी अगति सज्ञा दी है, यथा—अगति सिंधु गिरि ताल तरु बापी कूप बखानि।—केशव (शब्द०)। उ०—कौनौं राखौ थिर बपु, बापी कूप सर सम, हरि बिनु कीन्हें बहु बासर व्यतीत मैं।—केशव (शब्द०)। ४ गति का अभाव। स्थिरता। उ०—न तो अगति ही है न गति आज किसी भी ओर, इस जीवन के झाड में रही एक झकझोर।—साकेत, पृ० २८९। ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०)। ६ पूर्णता का अभाव या कमी (को०)।

अगति[2]—वि० १ जिसकी गति न हो। निरुपाय। अगतिक। उ०—इस पिता ही की चिंता के साथ, मुझ अगति को भी मिले चिरवास।—साकेत, पृ० २००। २ बिना सहायता का। असहाय (को०)।

अगतिक—वि० [स०] १ जिसकी कहीं गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। बेठिकाना। अशरण। अनाथ। निरा-श्रय। उ०—अगतिक की गति दीनदयाल।—कोई कवि (शब्द०)। २ मरने पर जिसकी अत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो।

अगतिकगति—वि० [स०] गतिहीन या निरुपायों का आश्रय। अशरण शरण (भगवान्) [को०]।

अगतिमय—[वि० स० अगति+मय] गतिहीन। जड। उ०—अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवसाद।—कामायनी, पृ० १८।

अगती[1](पु)—वि० [स० अगति] १. जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो। बुरी गतिवाला। २ पापी। कुमार्गी। दुराचारी। कुकर्मी। ३ दे० 'अगति'।

अगती[2]—सज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव वेनी। जगहित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति देनी।—सूर०, ६।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं।—केशव (शब्द०)।

अगती[3]—सज्ञा स्त्री० चकवँड। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती[4]†—वि० स्त्री० [स० अग्रत] अगाऊ। पेशगी।

अगती[5]—क्रि० वि० आगे से। पहले से।

अगतीक—वि० [स०] १ जिसपर चलना। अनुचित हो। कुपथ। कुमार्ग। २ दे० 'अगतिक' [को०]।

अगत्तर†—वि० [स० अग्रतर] आनेवाला।

अगत्ती†—सज्ञा पुं० [स० अग्रतीक] शरारती। नटखट।

अगत्या—क्रि० वि० [स०] १ आगे से। भविष्य में। २ आगे चलकर। पीछे से। अत मे। अकस्मात्। सहसा।

अगदकार—सज्ञा पुं० [स० अगदङ्कार] वैद्य। चिकित्सक [को०]।

अगद[1]—वि० [स०] १ नीरोग। चगा। स्वस्थ। २ न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३ न्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४ व्याधिरहित। निष्कटक। निर्दोष। उ०—रीझि दियौ गुरु जाहि अगद वृदावन पद कौं।—ब्रजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद[2]—सज्ञा पुं० १ औषधि। दवा। २ स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३ अष्टाग आयुर्वेद का एक अग। अगद तत्र (को०)।

अगदतत्र—सज्ञा पु० [स० अगदतत्र] आयुर्वेद के आठ अगो मे से एक जिसमे सर्प, बिच्छू आदि के विष से पीडित मनुष्यो की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज—सज्ञा पु० [स०] १ ओषधियो का राजा। चद्रमा। उ०—एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग ससार।—नद० ग्र०, पृ० २५९। २ उत्तम या अव्यर्थ ओषधि (को०)।

अगदवेद—सज्ञा पु० [स०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित—वि० [स०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगन[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] १ दे० 'अग्नि'। उ०—इम लगन ऊपर आविया मझ अगन लागो मेह।—रघु० रू०, पृ० ३७। २ अग्नि नाम की एक चिडिया। उ०—अगन से मेरे पुलकित प्राण, सहस्रो सरस स्वरो मे कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।—पल्लव, पृ० १९।

अगन[2]—सज्ञा पु० [स० अगण] दे० 'अगण'। उ०—मन यम शभ चारि हैं र स ज त अगनौ चारि।—भिखारी० ग्र०, भा० १ पृ० १७०।

अगन[3]†—सज्ञा पु० [स० अङ्गण] दे० 'आँगन'।

अगन—वि० [स० अगण्य, प्रा० अगञ्ञ] असख्य। बेशुमार। उ०—(क) सावँ कौ लक्ष्मना सहित ल्याए बहुरि दियो दाइज अगन गनि न जाई।—सूर०, १०।४२०९। (ख) ससि अखड मडल जु गगन मैं। राजत भयौ नक्षत्र अगन मैं।—नद० ग्र०, पृ० २९२।

अगन[4]—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अगनेत'।

अगनत—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'।

अगनि—सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—अगनि तें दीपक अनगन बरै। बहुरि आनि सब तिन मैं ररै।—नद० ग्र०, पृ० १४४।

अगनिउ—सज्ञा पुं० [स० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोना। उ०—तीज एकादसि अगनिउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत वोर।—जायसी (शब्द०)।

अगनित—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०—उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।—मानस, पृ० २६।

अगनिया†—वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०—बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि, व्यजन विविध अगनिया।—सूर०, १०।२३८।

अगनी[1]†—सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं ज्यौ घृत नाए अगनी।—सूर०, १०।४१२५।

अगनी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अग्र] घोडे के माथे पर की भौंरी या घूमे हुए बाल।

अगनी[3]—वि० [स० अगणित] अनगिनत। असख्य।

अगनू—सज्ञा स्त्री० [स० आग्नेय] अग्निकोण। उ०—तीज एकादसि अगनू मारी। चौथ दुआदश नैऋत वारी।—जायसी (शब्द०)।

अगनेउ—सज्ञा पुं० [स० आग्नेय, अप० अगनेउ] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—छठएँ नैऋत दच्छिन सर्तें। बसे जाय अगनेउ सो अर्ठें।—जायसी (शब्द०)।

अगनेत—सज्ञा पुं० [स० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—भौम काल पच्छिम बुध नैरिता। दच्छिन गुरु शुक्र अगनेता।—जायसी (शब्द०)।

अगनेव—वि० [स० आग्नेय] अग्नि सबधी। उ०—सीत भीत आदीत बास अगनेव कोण किय।—पृ० रा०, ६३। १९९०।

अगवान—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—वज्जि गहर नीसान अग्नि अगवान विछुट्टिय।—पृ० रा०, १।६२९।

अगम[1]—वि० [स० अगम्य] १ जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बाहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०—(क) अब अपने यदुकुल समेत लै दूरि सिधारे जीति जवन। अगम सुपथ दूरि दक्षिण दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।—सूर (शब्द०)। (ख) है आगे परवत की पाटी। बिषम पहार अगम सुठि घाटी।—जायसी (शब्द०)। २ विकट। कठिन। मुश्किल। उ०—एक लालसा बडि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०—सुनु मुनीस्वर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।—तुलसी (शब्द०)। ४ अपार। अत्यत। बहुत। उ०—समुझि अब निरखि जानकी मोहि। बडो भाग गुनि अगम दसानन सिव बर दीनो तोहि।—सूर०, ९।७७।५ न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन लीला पद गावै।—सूर०, १।९। ६ बहुत गहरा। अथाह। उ०—यहाँ पर नदी मे अगम जल है' (शब्द०)। उ०—तिन कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ।—

मानस, १।३८। ७ विशाल। बड़ा। उ०—कैसे बचे अगम तरुकैतर मुख चूमनि यह कहि पछिनावति ।—सूर०, १०।३६०। ८. जिसे वश में न किया जा सके। सुदृढ़। उ०—लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर।—सूर०, ६।८६।

अगम[3] ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आगम] १ शास्त्र। आगम। उ०—तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम ह्वै को जानिबो गहनु है ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३७।

यौ०—अगम निगम = आगम निगम। उ०—चितयौ चित्त दुजराज तव अगम निगम करि कढ्यौ ।—पृ० रा०, ३।२०।

२ आगम। अवाई। उ०—देखौ माई स्याम सुरति अब आवै। दादुर मोर कोकिला बोलै पावस अगम जनावै ।—सूर०, १०।३३१२।

अगम[3]—संज्ञा पु० [सं०] १ वृक्ष। २. पर्वत [को०]।

अगम[4]—वि० १, न चलनेवाला। चलने के अयोग्य। अगता। २. अजगम। स्थावर (को०)।

अगमति ⓤ—वि० [सं० अगम + अति] बहुत विशाल। अत्यत अगम। उ०—मोहन, मुर्छन, वर्मीकरन पटि अगमति देह बढाउँ ।—सूर०, १०।४६।

अगमन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गति या गमन का अभाव। न चलना [को०]।

अगमन[2]—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भूला मारग जाय। काल्ह गडैगा काँटवा अगमन कस न कराय।—कबीर सा०, पृ० ७३। (ख) तब अगमन ह्वै गोरा मिला। तुइ राजा लै चल बादला ।—जायसी (शब्द०)। (ग) पग पग मग अगमन परत चरन अरुनदुति झलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी र०, दो० ४६०। २ आगे से। पहले से। उ०—पिय आगम ते अगमनहिं करि बैठी तिय मान।—पद्माकर (शब्द०)।

अगमना ⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आगमना'।

अगमनीया—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य (स्त्री)। जिस स्त्री के साथ सभोग करने का निषेध हो। अगम्या।

अगमने ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० अगमन'। उ०—पौढे हुत पर्यंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नैन भरि आए नीर।—सूर० (शब्द०)।

अगमनो ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—निसिचर सनभ कृसान राम-सर उडि उडि परत जरत खल जैहैं। रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत मकुचैहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६३।

अगमानी[1] ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + मानी] अगुआ। नायक। सरदार। उ०—(क) है यह तेरे पुत्र कौ रन अगमानी भूप। नाम जासु दुष्यंत है कीरति जासु अनूप ।—शकुतला, पृ० १४८। (ख) जीत्यो गयो न इंद्र पै बल सो जो रिपु बस। रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वस।—शकुतला, पृ० १२६।

अगमानी[2] ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०—जवती करने आइया हम भी यह जानी, बीबी साहब सगलै हूवे अगमानी।—सुजान०, पृ० ६६।

अगमासी ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवांसी'।

अगमी†—वि० [हिं०] दे० 'आगमी'। उ०—ना मैं पडित पढ़ि गुणि जानौं ना कुछ ज्ञान विचारा। ना मैं अगमी जोतिग जानौं ना मुख रूप सिंगारा।—दादू०, पृ० ५६६।

अगमैया ⓤ†—वि० [सं० अगम्य] बुद्धि से परे। न जानने योग्य। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—ब्रज मैं को उपज्यो यह भैया। सग सखा सब कहत परसपर इनके गुन अगमैया।—सूर०, १०।८२८।

अगम्य—वि० [सं०] १ न जाने योग्य। २ जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर। अवघट। गहन। ३ विकट। कठिन। मुश्किल। ४ अपार। बहुत। अत्यत। ५ जिसमे बुद्धि न पहुँचे। बुद्धि के बाहर। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—गम्य अगम्य अरथ दो रहई। तीन देव वहाँ लगि कहई ।—कबीर सा०, पृ० ६०६। ६ अथाह। बहुत गहरा। ७ जिससे विषय भोग अनुचित हो [को०]।

अगम्यगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात्र पुरुष से सप्रयोग किया हो [को०]।

अगम्यरूप—वि० [सं०] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे हो [को०]।

अगम्या[1]—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य। मैथुन के अयोग्य।

अगम्या—संज्ञा स्त्री० १ न गमन करने योग्य स्त्री। वह स्त्री जिसके साथ सभोग करना निषिद्ध है, जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माँ, माँ, कन्या, पतोहू, साम, गर्भवती स्त्री, बहिन, सती, सगे भाई की स्त्री, भाजी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भाजे की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि। २. अत्यज स्त्री। अत्यजा (को०)।

अगम्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] अगम्या स्त्री से सहवास। उस स्त्री के साथ मैथुन जिसके साथ सभोग का निषेध है।

अगम्यागमनीय—वि० [सं०] अगम्यागमन से सबधित [को०]।

अगम्यागामी—वि० अगम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [को०]।

अगयार—वि० [अ० गैर का बहु० व०] पराया। गैर। उ०—हो यार वही उसका जो इस जग मे सबसे अगयार बने।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६५।

अगर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अगरु] एक पेड जिसकी लकडी सुगधित होती है। ऊद। उ०—चदन अगर सुगध और घृत विधि करि चिता बनायो।—सूर०, ६।५०।

विशेष—यह पेड भूटान, आसाम, पूर्वी बगाल, खासिया और मर्तबान की पहाडियो मे होता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है। जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकडी अगर के लिये काटी जाती है। पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकडी ५०-६० वर्ष के पहले नहीं पकती। पहले तो इसकी लकडी बहुत साधारण पीले रग की और गधरहित होती है, पर कुछ दिनों मे गढ और शाखाओ मे जगह जगह एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थानों की लकडियाँ भारी हो जाती हैं। इन स्थानो से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अगर के नाम

से विकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकडी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किस पेड मे लकडी अच्छी निकलेगी। विना मारे पेड काटे इसका पता नही लग सकता। एक अच्छे पेड मे ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड का हल्का भाग जिसमे यह रस या गोद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और सस्ता अर्थात् १) २) सेर विकता है, पर असली काली काली लकडी, जो गोद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहलाती है और १६) या २०) सेर विकती है। यह पानी मे डूब जाती है। लकडी का बुरादा धूप, दसाग आदि मे पडता है। बबई मे जलाने के लिये इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट मे अगर का इत्र बहुत बनता है। चोवा नाम का सुगधित लेप इसी से बनता है।

अगर[2]—सज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डि)। उ०—उठारे सहज जोधार असुमरा लडे हरि चापडे मार लीधा उचार दध अगर रो।—रघु० रू०, पृ० १३१।

अगर[3]—सज्ञा पुं० [सं० आगार टि० अग्गर] आगार। गृह। उ०—जे सँसार अँधियार अगर मे भए मगनवर।—का० कौमुदी १,।

अगर[4]—अव्य [फा०] यदि। जो। उ०—उसे हमने बहुत ढूँढा न पाया। अगर पाया तो खोज अपना न पाया।—शेर०, भा० १, पृ० ४१२।

मुहा०—अगर मगर करना = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगर[5]Ⓤ—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गर] आगे। जैसे 'अगरज' मे 'अगर'।

अगरई—वि० [हिं० अगर + ई (प्रत्य०)] श्यामता लिए हुए सुनहले सदली रग का। अगर के रग का।

अगरचे—अव्य० [फा०] गो कि। यद्यपि। हरचद। बावजूद कि। उ०—कावा अगरचे टूटा क्या जाय गम है शेख।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ९८।

अगरज Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अग्रज] दे० 'अग्रज'। उ०—ताही ते अगरज भयउ सब विधि तेहि परचार।—सं० सप्तक, पृ० ४३।

अगरजानी‡—वि० [सं० अग्र + ज्ञानी] पहले से ही किसी बात को समझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ०—ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला० पृ० ३७४।

अगरना Ⓤ†—क्रि० अ० [सं० अग्र] आगे होना। आगे जाना। अगाडी बढना। आगे आगे भागना। उ०—प्यारी अगरि चली हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द०)।

अगरपार Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अग्र ?] क्षत्रियो की एक जाति। उ०—खत्री औ बचवान बघेली। अगरपार चौहान चँदेली।—जायसी, (शब्द०)।

अगर बगर Ⓤ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगल बगल'।

अगरबत्ती—सज्ञा स्त्री० [सं० अगरुवर्त्तिका] सुगध के निमित्त जलाने की पतली सींक या बत्ती।

विशेष—इसमे अगर तथा कुछ और सुगधित वस्तु पीसकर लपेटते हैं। इसका व्यापार मद्रास और बबई मे बहुत होता है।

अगरवाला—सज्ञा पुं० [हिं० अगरोहावाला, आगरेवाला] [स्त्री० अगरवालिन] वैश्यो की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अगरोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अग्रवाल।

अगरसार—सज्ञा पुं० [सं० अगरु + सार] अगर। ऊद।

अगरा[1] Ⓤ†—वि० [स० अग्र] [स्त्री० अगरी] १ अगला। प्रथम। अगुआ। उ०—सूर स्याम तेरी अति गुननि माहिं अगरी।—सूर० १०।३३६। २ बढा चढा। बढकर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—हम तुम सब एक बैस काते कौन अगरी। लियौ दियौ सोई कछू डारि देहु झगरौ।—सूर०, १० ३३६। ३. अधिक। ज्यादा। बडा। भारी। ४. उग्र। ५ अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। उ०—बैल लीजे कजरा, दाम दीजै अगरा।—घाघ०, पृ० १०७।

अगरा[2] Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आकर] खान। आकर। उ०—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरी।—सूर० (राधा०), १ ५६।

अगरा[3]—सज्ञा पुं० [हिं० अँगरा] रगरा। अडबड बात। अनुचित व्यवहार। उ०—दल्ल कहा अगरा कह कीजै। साहब बचन मानि के लीजे।—सत दरिया, पृ० ५।

अगराई—सज्ञा स्त्री० [हिं० अगरना] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ०—गोविद गुमाई यौं ही माँगत हौं गोद गेह गिरा अगराई गुन गरिमा गगन को।—घनानद पृ० १६४।

अगरान—सज्ञा पुं० [हिं०] पीला लिए हुए लाल रग का घोडा जिसमे सफेदी विशेष न झलकती हो। उ०—खुरमुज नोकिरा जरदा भले। औ अगरान बालसिर चले।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगराना[1] Ⓤ—क्रि० स० [देशी] १ अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगराना[2] Ⓤ—क्रि० अ० स्नेहाधिक्य मे ढिठाई करना।

अगराना[3]‡ Ⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अँगडाना'।

अगरासन†—सज्ञा पुं० [सं० अग्र + अशन] दे० 'अग्राशन'। उ०—'सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे।—बिल्ले० पृ० ८४।

अगरी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की घास या पौधा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड। २ विष हरनेवाला कोई भी द्रव्य [को०]।

अगरी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अर्गला, अर्गलिका] लकडी या लोहे का छोटा डडा जो किवाड के पल्ले मे कोढा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खीचने से किवाड खुलते और बद होते हैं। किल्ली। ब्योडा।

अगरी[3]—सज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] फूस की छाजन का एक ढग जिसमें जड ढाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगरी[4] Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [सं० अगीर्य = अवाच्य] १ अड बड बात। बुरी बात। अनुचित बात। २ ढिठाई। धृष्टता।

अगरी[5] Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अगरना] अगराई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया उ०—गोदुरि दइ फटकारि कै हरि करत है लँगरी। नित प्रति ऐसई ढग करै हमसों कहै अगरी।—सूर० (शब्द०)।

अगरु—संज्ञा पुं० [सं० अगुरु] अगर लकड़ी। ऊद। उ०—अगरु चदन की चिता थी सेज।—साकेत, पृ० १६८।

अगरू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगर' [को०]।

अगरे†—क्रि० वि० [स० अग्रे] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरू कहैं तेहि कस अगरे होइ।—जायसी (शब्द०)।

अगरेल†—वि० [हिं० अगर + ऐल (प्रत्य०)] अगर संबंधी। अगर की। उ०—रवि मैरख जावणी, घणे आणद चहक्की। मग वेन सूरमा, वाम अगरेल महक्की।—रा० रू०, पृ० १७३।

अगरो—वि० [स० अग्र] १. अगला। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह स्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दिये परत नहि पगरो। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सब तें भाग यही को अगरो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। ब्रजवासी नर नारि अत नहि मानो सिंधु समान।—सूर (शब्द०)।

अगर्चे—अव्य० [फा० अगरचे] दे० 'अगरचे'। उ०—अगर्चे उम्र की दस दिन से लब रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जबानी का।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२।

अगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अगर्व—वि० [सं०] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अगर्हित—वि० [सं०] १. जो गर्हित या निंदित न हो। २ शुद्ध [को०]।

अगल[1]—क्रि० वि० [स० अग्रत, प्रा० अग्गल] १ आगे। उ०—यकायक कहे काफिरों साथ चला अबू जहल आया नबी के अगल।—दक्खिनी०, पृ० ३४८।

अगल[2]—वि० [प्रा० अग्गल] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन वरष्प अमी आल।—पृ० रा०, ५६।५५।

अगल बगल—क्रि० वि० [फा०] १ दोनों पार्श्व में। दोनों ओर। दोनों किनारे। २ इधर उधर। आसपास।

अगलहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

अगला[1]—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गल] [स्त्री० अगली] १ आगे का। सामने का। अगाड़ी का। पिछला का उलटा। जैसे—घोड़े का अगला पैर सफेद है (शब्द०)। उ०—वह अगला समतल जिसपर है देवदारु का कानन।—कामायनी, पृ० २७६। २ पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवै औरंगसाह नूं अगली मुहरां याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३ विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब। कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२२।

यौ०—अगले समय। अगले लोग।

४. आगामी। आनेवाला। भविष्य। जैसे—मैं अगले साल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५ अपर। दूसरा। एक के बाद का। जैसे—'उससे अगला हमारा घर है' (शब्द०)।

अगला[2]—संज्ञा पुं० १ अगुआ। अग्रगण्य। प्रधान। जैसे—'वे सब बातों में अगले बनते हैं। (शब्द०)। २ चतुर आदमी। चालाक। चुस्त आदमी। जैसे—'अगला अपना काम कर गया, हम लोग देखते ही रह गए (शब्द०)। ३ पूर्वज। पुरखा (बहु० व० में ही प्रयुक्त)। जैसे—जो अगले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अगले पिछलों को रोना = पूर्वजों और औलाद के नाम रोना या मातम करना। उ०—'खाक अच्छा गाती है। गाती है या रोती है अपने अगले पिछलों को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०। ४ अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जंजीर। ६ गाँव और उसकी हद के बीच में पड़नेवाले खेतों का समूह।

अगलूँणी†—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग, (राज० आगलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली)] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिण दिन ढोलउ आवियउ तिण अगलूँणी रात। मारू सुहिणउ लेहि कह्यउ, सखियाँ सूँ परभात।—ढोला०, ५०१।

अगवड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ़'।

अगवढ़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ़'।

अगवन—संज्ञा पुं० [सं० आगमन] दे० 'आगमन'।

अगवना†—क्रि० अ० [हिं० आगे + ना] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगवनिहरवा—वि० [हिं० अगवना] किसी को बुलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अगवनि हरवा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अगवाँई[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अगुआ] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाई। सफदरजंग भये अगवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अगवाँई[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] दे० 'अगवाई'।

अगवाँसी—संज्ञा स्त्री० [स० अग्रवासी] १ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २ हलवाहे को पैदावार में से अंशरूप में मिलनेवाली मजदूरी।

अगवा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। अगाड़ी। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवा सी, ह्यां हूवै कढ़ै चाहौं मोहि काम घनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अगवाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे + हिं० आई] अगवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अगवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी।—बुद्ध च०, पृ० १८०।

अगवाई[2]—संज्ञा पुं० [स० अग्रगामी] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अगुवा। अग्रसर।

अगवाड़ा—संज्ञा पुं० [स० अग्रवाट् अथवा अग्रवर्त्त (प्रत्य०)] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाड़ा शब्द का उलटा।

अगवान[1]—संज्ञा पुं० [स० अग्र + हिं० वान (आवना आदि के मूल में स्थित द्विधातु का अंश)] १ अगवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २ विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो बरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।—मानस, १।३०५। (ख) सहित बरात राउ सनमाना। आयेसु माँगि फिरे अगवाना।—मानस, १।३०६।

अगवान[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. आगे से जाकर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। उ०—महाराज जयसिंह जय मे सिंह के समान, निरयान समय जासु गग लीनी अगवान।—रघुराज (शब्द०)। २ विवाह में कन्यापक्ष के लोगो का बरात की अभ्यर्थना के लिये जाना। उ०—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए।—मानस, १।६९।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।—होना।

अगवानी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना। आगे बढ़कर लेना। अभ्यर्थना। पेशवाई। २ विवाह मे जब बारात लडकीवाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धजकर बाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं। इसी को अगवानी कहते हैं। उ०—नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।—तुलसी ग्र०, पृ० १३५।

अगवानी[2]ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति। दूत। उ०—(क) सखी री पूरनता हम जानी। याही तै अनुमान करति हैं षट्पद से अगवानी।—सूर०, १०।४०३९। (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक। पीछे हरि भी आयँगे भारी सौंज समेक।—कबीर (शब्द०)।

अगवानी[3]—संज्ञा पुं० आगे रहनेवाला। अगुवा। पेशवा। उ०—विरह अथाह होत निसि हम कौं बिनु हरि समुद समानी। क्यो करि पावहि बिरहिनि पारहि बिनु केवट अगवानी।—सूर०, १०।३२७१।

अगवार[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० वार (प्रत्य०)] १ खलिहान मे अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है। २. वह हल्का अन्न जो ओसाने मे भूसे के साथ चला जाता है। ३ गाँव का चमार।

अगवार[2]†—संज्ञा पुं० दे० 'अगवाडा'। उ०—बेऊ आये द्वारे हौं हूँ हुती अशवारें और, द्वारें अगवारें कोऊ तौ न तिहि काल मैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० २००।

यौ०—अगवार पछवार।

अगवाह—वि० [सं० अग्र+वाह] आगे पहुँचानेवाला। पहले पहुँचनेवाला। उ०—'कपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड लेती'।—नई पौध, पृ० १११।

अगवैया†—वि० [सं० अग्र+हिं० वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलनेवाला। किसी के आगमन की पूर्वसूचना देनेवाला। उ०—अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर।—इत्यलम्, पृ० २०९।

अगव्यूति—वि० [सं०] जहाँ पशुओ का चरागाह न हो। बजर [को०]।

अगसत ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य'। उ०—आकिल गुरु अगसत है, सिख समुद मन लीन।—रज्जब०, पृ० ९।

अगसर ⓤ—क्रि वि० [सं० अग्रसर] आगे। पहले। उ०—अगसर खेती अगसर मार। कहै घाघ ते कबहुँ न हार।—घाघ०, पृ० ४१।

अगसरना ⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगुसरना'।

अगसार ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगसारी'।

अगसारी ⓤ—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे। सामने। उ० —हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवंत तबै लँगूर पसारी।—जायसी ग्र०, पृ० ११६।

अगस्त[1]—संज्ञा पुं० [अ० औगुस्ट,] रोम के सम्राट् औगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अंग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादो मे पडता है।

अगस्त[2]—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि। उ०—मघवानल वहि अगिन समानी। अगिन अगस्त साखावत पानी।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २७५। २ अगस्त्य तारा। उ०—उदित अगस्त पथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोखै सतोषा।—तुलसी (शब्द०)। ३ अगस्त्य वृक्ष। उ०—फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अमृत सम।—सूर०, १०।१२१३।

अगस्ति ⓤ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अगस्त्य तारा। उ०—उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढे रन राजा।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६। २ अगस्त्य ऋषि। उ०—हुत जो अपार विरह दुख दोखा। जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा।—जायसी ग्र०, पृ० ३४०। ३ अगस्त्य या वक वृक्ष [को०]।

अगस्तिद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्ति या वक वृक्ष [को०]।

अगस्तिया†—संज्ञा पुं० [सं० अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३'। उ०—द्वैज सुधा दीधिति कला वह लखि दीठि लखाई। मनौ अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।—बिहारी र०, दो० ९२।

अगस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे।

विशेष—ऋग्वेद मे लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीडित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। सायणाचार्य ने अपने भाष्य मे लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घडे मे हुई। इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुभज, घटोद्भव और कुभसभव कहते हैं। पुराणो मे इनके अगस्त्य नाम पडने की कथा यह लिखी है कि इन्होने बढते हुए विंध्य पर्वत को लिटा दिया। अत इनका एक नाम विंध्यकूट भी है। पुराणो के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू मे भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताब्धि भी कहलाते हैं। कही कहीं पुराणो मे इन्हे पुलस्य का पुत्र भी लिखा है। ऋग्वेद मे इनकी अनेक ऋचाएँ हैं।

२ एक तारे या नक्षत्र का नाम।

विशेष—यह भादो मे सिंह के सूर्य के १७ अश पर उदय होता है। इसका रग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नही दिखाई देता। आकाश के स्थिर तारो मे लुब्धक को छोडकर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नही चमचमाता। यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है।

३ एक प्रसिद्ध पेड।

विशेष—यह पेड ऊँचा और घेरेदार होता है। इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं। इसके टेढे मेढे फूल अर्धचद्राकार, लाल और सफेद होते है। इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर में दिया जाता है। पत्तियाँ इसकी रेचक हैं। पत्ती और फूल के रस को नास लेने से विनाम फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। आँखों में फूल का रस डालने से ज्योति बढती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४ शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत में एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व में अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहरीतकी—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य हरीतकी] कई द्रव्यों के संयोग से जिनमें हरें मुख्य हैं, बनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।

अगस्त्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अगस्त्य नामक तारे का उदय। २ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थ ⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १। उ०—मुनता तठै कर सनमान, आया अगस्थ रे असथान।—रघु० रू०, पृ० १२४।

अगह ⓤ—वि० [सं० अग्राह्य] १ न पकड़ने योग्य। हाथ में न आने लायक। उ०—अलह को लहना, अगह को गहना।—दरिया० बानी, पृ० ६७। २ चंचल। उ०—माधव जू नेकु हटकौ गाय। निसि बासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाय।—सूर (शब्द०)। ३. जो वर्णन और चिंतन के बाहर हो। उ०—कहँ गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सो नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।—तुलसी (शब्द०)। ४. न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०—ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग यांचना जबहिं अगह गहि तबहीं सो है त्यायो। सूर (शब्द०)।

अगहन—संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०—अगहन अम्मर देखेउ जुग जुग जीवै सोइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष—गुजरात आदि में यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत में गणना चैत्र मास से आरंभ होती है। इस कारण यहाँ नवाँ मास पड़ता है।

अगहनिया—वि० [सं० आग्रहायणीक] अगहन में होनेवाला।

अगहनी[1]—वि० [सं० अग्रहायणीय] अगहन में तैयार होनेवाला।

अगहनी[2]—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन में काटी जाती है। जैसे जड़हन धान, उरद इत्यादि। उ०—जब लौं पृथिवी है तब लौ बोना और लोना, शादी और गमी, अगहनी और बैशाखी, दिन और रात बद न होंगे।—कबीर म०, पृ० १६५।

अगहर ⓤ†—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० हर (प्रत्य०)] १ आगे। २ पहले। प्रथम। उ०—राजन दाँवा रायमनि, बाईं तरफ अडोल। उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल।—लाल (शब्द०)।

अगहाट—संज्ञा पुं० [सं० अग्राह्य अथवा सं० अग्रहार] वह भूमि जो किसी के अधिकार में चिरकाल के लिये हो और जिस वह अलग न कर सके।

अगहार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड[1]—वि० [सं० अग्र पा० अग्ग+हिं० हुँड (प्रत्य०)] अगुआ। आगे चलनेवाला। उ०—त्रिलोके दूरि तें दोउ वीर। मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४६।

अगहुँड[2]—क्रि० वि० आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड' का उलटा। उ०—कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुँड परै न पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

अगा[1]—वि० [सं०] न चलनेवाला [को०]।

अगा[2]—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। पहले। उ०—मोवत कहा चेत रे रावन अब क्यों खात दगा। कहत मंदोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा।—सूर०, ९।१४४।

अगाई†—वि० [सं० अग्र, हिं० आई (प्रत्य०)] आगे। पहले। उ०—अगाई सो सवाई।—घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी[1] ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगौनी-१'। उ०—मुरली मृदंगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गुन आगरे।—देव (शब्द०)।

अगाउनी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगौनी-२'।

अगाऊँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०—न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ[1]—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आऊ (प्रत्य०)] †१. अग्रिम। पेशगी। जैसे, 'उसे कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २ ⓤ अगला। आगे का। उ०—धरि बाराह रूप रिपु मार्‌यो लै छिति दंत अगाउ।—सूर० (शब्द०)।

अगाऊ[2] ⓤ—क्रि० वि० १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) कबिरा करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद्र आड़ा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। (ख) 'उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत गाजे बाजे से अगाऊ जाय मिले'।—लल्लू० (शब्द०)। २. अगाड़ी में। आगे से। उ०—(क) साखि सखा सब सुवन सुदामा देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ। यह तौ मोहिं खिझाइ कोटि विधि उलटि विवादन आइ अगाऊ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजै तातें भयो अगाऊ।—सूर० (शब्द०)।

अगाड़—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आड़ (प्रत्य०)] १. हुक्के की दो दी या कुहनी में लगाने की सीधी नली जिसे मुँह में

रखकर धुआँ खींचते हैं। निगाली। २ खेत सींचने की ढेंकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी। ३ किसी वस्तु के आगे का भाग। अगाड़ी।

अगाड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अगाड, तुल० कुमा० गाडा=खेत] कगार। तरी।

अगाड़ा[2]—संज्ञा पुं० [अग्र+हिं० आड़ा (प्रत्य०)] १ यात्री का वह सामान जो पहले से आगे के पड़ाव पर भेज दिया जाता है। पेशखेमा। २ आगे का भाग या हिस्सा।

अगाड़ा[3]†—वि० आगे का। आगेवाला।

अगाड़ी[1]—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग+हिं० आड़ी (प्रत्य०)] १ आगे, जैसे—इस घर के अगाड़ी एक चौराहा मिलेगा (शब्द०)। २ भविष्य में, जैसे—अभी से इसका ध्यान रखो नहीं तो अगाड़ी मुश्किल पड़ेगी (शब्द०)। ३ पूर्व। पहले, जैसे—अगाड़ी के लोग बड़े सीधे सादे होते थे (शब्द०)। ४ सामने। समक्ष, जैसे—उनके अगाड़ी यह बात न कहना (शब्द०)।

अगाड़ी[2]—संज्ञा पुं० १ किसी वस्तु के आगे का भाग। २ अँगरखे या कुरते के सामने का भाग। ३ घोड़े के गरांव में बंधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूँटों से बँधी रहती हैं। ४. सेना का पहला धावा। हल्ला; जैसे—फौज की अगाड़ी आँधी की पिछाड़ी (शब्द०)।

यौ०—अगाड़ी पिछाड़ी आगे और पीछे का भाग।

अगाड़ू—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग अग्ग+हिं० आड़ू (प्रत्य०)] दे० 'अगाड़ी'।

अगाता—वि० [सं०] अच्छा न गानेवाला [को०]।

अगात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शैलपुत्री। पार्वती [को०]।

अगाद—वि० दे० 'अगाध'। उ०—आवसनि वत अगाद भय त निव्वलह द्रिग छिनक कर।—पृ० रा० ६१।१२६५।

अगाध[1]—वि० [सं०] १ अथाह। बहुत गहरा। अतल स्पर्श। उ०—जलधि अगाध मौलि बह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनु।—मानस, १।१६७।२. अपार। असीम। अत्यंत। बहुत। अधिक उ०—देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत सधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसका कोई पार न पा सके। समझ में न आने योग्य। दुर्बोध। उ०—अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अरूपा।—मानस, १ २३।

अगाध[2]—संज्ञा पुं० १ छेद। २ गड्ढा। ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०]।

अगाधजल—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा तालाब या झील। ह्रद [को०]।

अगाधरुधिर—संज्ञा पुं० [सं०] रुधिर का आधिक्य। अत्यधिक। रक्त [को०]।

अगाधसत्व—वि० [सं०] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०]।

अगाधा—वि० स्त्री० [सं०] अत्यंत। बहुत। अधिक। उ०—लाल गुलाल घलाघल में दृग ठाकर दै गई रूप अगाधा।—पद्माकर (शब्द०)

अगाधित्व—संज्ञा पुं० [पुं०] गाभीर्य। गहराई [को०]

अगान[1]—वि० [सं० अज्ञान] अनजान। अज्ञान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और की न माने बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

अगान[2]—संज्ञा पुं० ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अगामें—क्रि० वि० [सं० अग्रिम, प्रा० अग्गम्मि] आगे।

अगार[1]—संज्ञा पुं० [सं० आगार] १ निवासस्थान। धाम। गृह। उ०—दुख आवत कछु अटक न मानत, सूनो देखि अगार।—सूर०, १०।३३८६। २ ढेर। राशि। समूह। अटाला। उ०—मींजि मींजि हाथ धुनै माथ दसमाथ तिय, तुलसी तिलो न भयो बाहिर अगार का।—तुलसी ग्र०, पृ० १७३।

अगार[2]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र] आगे का स्थान। अगला हिस्सा। अग्रभाग। उ०—अरु जो तुमरे मन मे यह बात तो काहे को मोहि अगार दयो।—सूजान०, पृ० ७१।

अगार[3]—क्रि० वि० आगे। अगाड़ी। पहले। प्रथम। उ०—प्रीतम को अरु प्रानन को हरु देखनो है अब होत मरागे। कैधौं चलैगो अगार सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारो।—कोई कवि (शब्द०)।

अगार[4]—वि० [सं० अग्रय?] अगुआ। नेता। मुखिया। उ०—नव सि-सिनवार दे अवारिया अगार और खुटैला जुझार वीर चाहर अपार।—सूजान०, पृ० ६७।

अगारदाही—संज्ञा पुं० [सं० अगारदाहिन्] मकान को जलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अगारि—वि० [सं० अ=नहीं+अ० गार=गड्ढा] अगभीर। कम गहरा। उ०—दिन दिन सरोवर होइ अगारि, अबहु नई वरिषउ मही भरि वारि।—विद्यापति, पृ० ५२६।

अगारी[1]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाड़ी'[1]। उ०—देखो दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अगारी। रावति पीटति जाति नदी की ओर सिधारी।—बुद्ध च०, पृ० ७०।

अगारी[2]—वि० [सं० अगारिन्] मकान मालिक। मकानवाला [को०]।

अगारू—क्रि० वि० [हिं० अगार] आगे। पहले प्रथम। उ०—जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबो को, तौ, लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलि गो।—गग ग्र० पृ० १।

अगाव†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमे गाँठे बहुत पास पास होती हैं। अगौरा। अगौरी। अँगौरी।

अगास[1]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग+आस (प्रत्य०)] द्वार के आगे का चबूतरा।

अगास[2]—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश। उ०—हौं सँग साँवरे के जैहौं। का यह सूर अजिर अपनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौं। का यह ब्रज बापी क्रीड़ा जल भजि नंदनद सबै सुख लैहौं।—सूर० (शब्द०)।

अगासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकासी'। उ०—दौड़े बदर बने मुछदर कूदै चढ़ै अगासी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३३३।

अगाह[1]—वि० [सं० अगाध, प्रा० अगाह] १. अथाह। बहुत गहरा। उ०—अब लइ गए देइ ओहि सूरी। तेहि सौ अगाह किया तुम्ह पूरी।—पद्मावत, पृ० २६२। २ अत्यंत। बहुत। उ०—जो जो सुनै धुनै सिर राजहि प्रीति अगाह।—जायसी (शब्द०)। ३ गभीर। चिंतित। उदास। उ०—जबहि सुरुज कह लागा राहू। तबहि कमल मन भयो अगाहू।—जायसी (शब्द०)।

अगाह² ⓖ—क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से। पहले से। उ०—पंडित के गहन अगाह बखाना।—जायसी (शब्द०)।

अगाह³ ⓖ—वि० [फा० आगाह] विदित। प्रकट। ज्ञात। मालूम। उ०—जग सुख माया कीन्ह अगाह। सो सब मूल गहै भयउ अगाह।—जायसी (शब्द०)।

अगाही¹—संज्ञा स्त्री० [फा० आगाह] किसी बात की पहले से सूचना या संकेत।

अगिⓖ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] अग्नि। उ०—बहु-आना रे सेत समुद्र बिच अग्गि मोर। अगि सुलगत सगरो मूल सरन धन धन मोर।—प० रा०, १२।५१६।

विशेष—पुरानी हिंदी तथा बोलचाल में यह समस्त रूप में मिलता है। जैसे अगिदधा, अगिदाह आदि।

अगिआ¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आदेश। हुक्म।

अगिआनाⓖ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगियाना'। उ०—धीर पवन अवधन अब धाए। जोग समाधि लगाई। इंद्र पद आनि रूप दसे की आगि उठै अगिआई।—सूर (शब्द०)।

अगिदधा¹—वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग में जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहि सीता कहँ भा अगिदधा।—जायसी (शब्द०)।

अगिदाहⓖ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निदाह'। उ०—तन मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद भयउ मोहि राहू।—जायसी ग्र०, पृ० १५३।

अगिनतⓖ—वि० [सं० अगणित] अगणित। बेशुमार। उ०—जलचरा थलचरा नभचरा जंत जा। स्वादि हू पानि के जीव अगिनत जी।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २६०।

अगिन¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] [वि० अगियाना] ⓖ १ आग। उ०—तुरी बीन ऐरान तेज तन अगिन पवन मन।—पृ० रा०, १।७२४। २ गोरैया या लवा के आकार की एक टिटिहरी चिड़िया।

विशेष—इसका रंग मटमैला होता है। इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे बच्चों के खेलने के लिये पिंजड़े में रखते हैं।

३ एक प्रकार की आग जिसमें बालू की सी कंकड़ी महीन रहती है। अगिया बान।

अगिन²—संज्ञा स्त्री० [सं० अगस्तिका] ईख के ऊपर का पत्ता जो आग। अगौरी।

अगिन³—वि० [सं० अ- नहीं + हिं० गिनना] अगणित। बेशुमार। उ०—नाँघि गए अनगना सरि। लाए सूरि, लिए लाखन अगिन गिनी न जाई।—सूर (शब्द०)।

अगिनगोला—संज्ञा पुं० [हिं० अगिन + गोला] वह बम जो फटने पर आग लगा दे।

अगिनभास¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगिन- भास] दे० 'अग्निभास'।

अगिनबाय—संज्ञा पुं० [हिं० अगिन—बाय = वायु] एक रोग का नाम जो पीलापन से, जिसमें आँख, मुँह, हाथ आदि पीले पड़ जाते हैं।

अगिनबोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगिन + बोट] एक प्रकार की छोटी नाव जो प्रायः आग से बचाने के काम में लाई जाती है। स्टीमर। धुआँकश।

अगिनहोत्रⓖ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निहोत्र'। उ०—बरसहि अगन मघ मेघ। अगिनहोत्र करि सकहिं सब।—कबीर श०, पृ० २४४।

अगिनिⓖ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि; प्रा० अग्गिनि] आग। उ०—अगर चंदि पुहप। सिंदि। पर ते मेरु अगिनि।—सूर० १।६६।

अगिनिगोलⓖ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निगोल'। उ०—पुनि तिन्ह दीन्ह अगिनिबान मेघहु।—तिमिर० प०, पृ० १ पृ० ८८।

अगिनितⓖ—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०—कनक कोटि, मनि पुरुषो, सत सनमान परखी, सूर को हिसाब अगिनित कौनो।—सूर०, ६।१०६।

अगिनिबानⓖ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—अगिनिबान पुहुप नौ साधे। कनक कोटि मनि पुरुषो बाँधे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अगिनिबायⓖ—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + हिं० बाय] १ आग की आँच का एक रोग। उ०—उनका जो होगा सहे अब अगिनिबाय। नीचता हुआ सुख किसी का।—किशोरी० ग्रं०, भा० २, पृ० १२० २ अग्निवात। लकवा।

अगिनीⓖ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गिनि] दे० 'अग्नि'। उ०—पाप ताप जैसे सब की तैसे, जगत अगिनी तप की है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८८

अगिनेयⓖ—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] वह दिशा जो पूरब और दक्षिण के बीच में पड़ती है। आग्नेय कोण। उ०—अगिनेय दिसा दच्छिन्न मद्दह। ते कुंभ मनिय निपूर नद्दह।—पृ० रा०, २५।७०।

अगिया¹—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि, अग्गि + या] १. एक प्रकार का धान। २. एक प्रकार का पान।

विशेष—इसके पौधे पान के पौधों से बहुत कुछ मिलते हैं, पर उनसे छोटे होते हैं और पत्ते भी उनसे छोटे होते हैं।

३ अग्नि। आग।

अगिया²—संज्ञा पुं० १ बड़ के पेड़ पर होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

विशेष—यह कीड़ा बड़ के फलों में छेद करके उनके भीतर के गूदे को खाता है। इसके पंख और डंक होते हैं। यह कीड़ा बड़ के फलों में छेद करके उनके भीतर के गूदे को खाता है। इसके पंख और डंक होते हैं।

२ एक प्रकार का कीड़ा जो पेड़ों पर होता है। ३ एक प्रकार का कीड़ा जो पेड़ों पर होता है। ४ एक प्रकार का कीड़ा।

अगिया कौड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० अग्नि + कौड़ी] एक प्रकार का कीड़ा जो पेड़ों पर होता है। इसके पंख और डंक होते हैं।

अगियाना—क्रि० अ० [हिं० अगिया से नाम०] जल उठना। गरमाना। जलन या दाह से युक्त होना, जैसे—चलते चलते उसका पैर अगिया गया (शब्द०)।

अगिया बैताल—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि हिं० अगिया + सं० बैताल] १ विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक। २ एक कल्पित बैताल जिसके संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था। ३ मुहँ से लुक या लपट निकालनेवाला भूत। उल्कामुख प्रेत। ४ दलदल या तराई में इधर उधर घूमते हुए फासफरस के अंश जो दूर से जलते हुए लूक के समान जान पड़ते हैं। ये कभी कभी कबरिस्तानों में भी अँधेरी रात में दिखाई देते हैं। ५ वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो। क्रोधी व्यक्ति।

अगियार¹†—वि० [हिं० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कंडा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।

अगियार²—संज्ञा पुं० दे० 'अगियारी'।

अगियारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिये डाली जाय। धूप देने की वस्तु।

अगियासन—संज्ञा पुं० [हिं० अगिया + सन] १. एक प्रकार का सन की जाति का पौधा। २ एक कीड़ा जिसके छू जाने से शरीर में जलन होती है। ३ एक चर्म रोग जिसमें झनझनाते हुए फफोले निकलते हैं।

अगिर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ स्वर्ग। ४ एक राक्षस [को०]।

अगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग। द्वार। उ०—तुलसी सेव जाति चवि छाए। बरसाने मनमोहन आए। चारि दुआरे उन्नत भारे। कनिवर बहु झूमत मतवारे। इमि देखत अगिरी छवि छाए। अंत पुर महँ माधव आए—गोपाल० (शब्द०)।

अगिरौकस्—वि० [सं०] १ स्वर्ग में निवास करनेवाला (देवतादि)। २ शोर गुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०]।

अगिला†—वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

अगिलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + हिं० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०—जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।—घनानंद पृ० ६४।

अगिवाँण†—वि० [सं० अग्र + वान्] प्रधान। मुख्य। अगुआ उ०—तेंहि लवोदर वीनमूँ। चउसठि जोगिनि का अगिवाँण।—वी० रासो, पृ० ३।

अगिवान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान-२'। उ०—आदर सयुत बोल मुखिक मंत्री अगिवान।—पृ० रा०, १२।६७।

अगिहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + गृह, प्रा० अग्नि + हर] अग्नि का निवास। चिता। उ०—विनति करओं महिलोलिनिरे मोहि देहे अगिहर साजि।—विद्यापति, पृ० १५८।

अगिहाना†—संज्ञा पुं० [सं० अग्निधान, अग्न्याधान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो। आग रखने का स्थान।

अगीठा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। उनमें कैथ की तरह का एक प्रकार का कुछ मिठास फल लगता है जिसकी गुठली पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगीठा²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + दृष्ट] आगे का भाग।

अगिठि—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर = आगे प्रथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० दृष्टि] आगे का भाग। अगवाड़ा। आगे। उ०—मंगल मूरति कंचन पत्र है मैन रच्या मन मोहन नीठि है। काटि लियो कवनी दत गोंफ को गोन्हों बनाय निहारि अगीठि है।—लिखारी० ग्र० भा० १ पृ० ६८।

अगीठी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठा'। उ०—तापनि उनै, अगीठी तापै जिन वैसंतर बरहर गाँठी।—गोरख०, पृ० १४२।

अगीत¹—वि० [सं० अग्र.?] आगे का आगामी। उ०—आइ अगीत पछीत गई लिय रहा गाँठि नगेर के कूकन।—ठाकुर०, पृ० १।

अगीत²—वि० [सं० अ + गीत] गीतरहित। न गाया हुआ। उ०—एक अस्पृष्ट परस्पृष्ट अगी। सुधि की दे स्वधिन मुकुलान।—पल्लव पृ० २।

अगीतपछीत¹—वि० वि० [सं० अग्र न पश्चात्] आगे और पीछे की ओर। आगे पीछे। उ०—रोहट की सिरिया तौ रहौं सिरियो रहा पीतर माँज पखेरा। और इतो बिनती तुम मोंहरि आइ अगीतपछीत न घेरा।—ठाकुर०, पृ० ७।

अगीतपछीत²—संज्ञा पुं० आगे का भाग और पीछे का भाग। अगवाड़ा पिछवाड़ा।

अगीह(पु)—वि० [सं० अगृह] गृहहीन। अगेह। उ०—जब प्रनय लोपत नीह। धर बिथरि होत अगीह।—पृ० रा०, ६१।१०७१।

अगुंठित—वि०—[सं० अ + गुंठित = आवृत्त] अनावृत्त। खुला हुआ। उ०—भारत की नारी उषा सी आज अगुंठित, भारत की मानवता नव आभा में मंडित।—युगपथ, पृ० ८६।

अगु—¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ राहु ग्रह। २. प्रकाश का अभाव। अंधकार (को०)।

अगु²—वि० १ जिसके पास गाय न हो। गोहीन। २ गरीब। ३. दुष्ट। बदमाश [को०]।

अगुआ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० उआ (प्रत्य०)] [क्रि० अगुआना। संज्ञा अगुआई, अगुआनी] १. अग्रज। आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रणी। २ मुखिया। प्रधान। नायक। सरदार। नेता। ३ पथप्रदर्शक। मार्ग बतानेवाला। रहनुमा। उ०—तखत बोला सुआ नरेसा। अगुआ सोइ पंथ जेइ देखा। —जायसी ग्र०, पृ० ५७। ४. विवाह की बातचीत चलानेवाला। विवाह ठीक करनेवाला। घटक। कौतुकी। ५. आगा। आगे का भाग।

अगुआई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + आई (प्रत्य०)] १. अगुआ होने की क्रिया। अग्रसरता। २ प्रधानता। सरदारी। ३ मार्ग प्रदर्शन। रहनुमाई। उ०—किएउ निषादनाथ अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई।—मानस, २।२१२।

अगुआना¹—क्रि० स० [हिं० 'अगुआ' से नाम०] [संज्ञा अगुआनी] आगे करना। अगुआ बनाना। सरदार नियत करना।

अगुआना[2]†—क्रि० अ० आगे होना या बढना ।

अगुआनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी' । उ०—यह महीप मेरी अगुआनी के लियें महासागर तक आया ।—श्यामा०, पृ० ७६ ।

अगुण[1]—वि० [सं०] १ सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित । धर्म या व्यापारशून्य । गुणरहित । निर्गुण । २. निर्गुणी । अनाडी । मूर्ख । बेहुनर ।

अगुण[2]—संज्ञा पुं० अवगुण । बुरा गुण । दूषण । दोष ।

अगुणज्ञ—वि० [सं०] जो गुणज्ञ न हो । जिसे गुण की परख न हो । अनाडी । गँवार । नाकदरदान ।

अगुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुणहीनता । गुणों का अभाव । उ०—सेंद्रिया में, अगुणता से नित्य उकता ही रही थी, सजन में आ ही रही थी ।—कबासि, पृ० ८५ ।

अगुणत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] अगुणता । गुणराहित्य [को०] ।

अगुणवादी—वि० [सं०] अवगुण कहनेवाला । दोष निकालने या कहनेवाला । छिद्रान्वेषी [को०] ।

अगुणवान्—वि० [सं०] गुणरहित [को०] ।

अगुणशील—वि० [सं०] विशेषतारहित । अयोग्य । अगुणी [को०] ।

अगुणी—वि० [सं०] १. निर्गुणी । गुणरहित । २. अनाडी । मूर्ख ।

अगुताना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकताना' । उ०—तू जानि मोहि अगुतावहु रंक जनि नावहु हो ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ७४ ।

अगुन[1](पु)—वि० [सं० अगुण] १ सत्व रज तम आदि गुणों से रहित । निर्गुण । उ०—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा ।—मानस, १।२३ । २ अनाडी । बेहुनर । निर्गुणी । उ०—अगुन अमान जानि तेहिं दीन्ह पिता बनवास ।—मानस, ६।३० ।

अगुन[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अगुण] दे० 'अगुण' २ । उ०—खल अघ अगुन साधु गुनगाहा ।—मानस, १।६ ।

अगुनी(पु)—वि० [सं० अ+हिं० गुनना] जिसे गुना या विचारा न जा सके । जिसका वर्णन न किया जा सके । उ०—ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहैं । आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०० ।

अगुमन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० अगमन[1] । उ०—मन हित अगुमन दिहल चलाई ।—धरनी०, पृ० २ ।

अगुरु[1]—वि० [सं०] १. जो भारी न हो । हलका । सुबुक । २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो । बिना गुरु का । निगुरा । ३ लघु या ह्रस्व (वर्ण) ।

अगुरु[2]—संज्ञा पुं० १ अगर वृक्ष । ऊद । २ शीशम का पेड ।

अगुवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगुआ' । उ०—अगुवा भयउ सेख बुरहानू । पथ लाइ मोहि दीन गियानू ।—जायसी ग्र०, पृ० ८ ।

अगुवानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी' ।

अगुसरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अग्रसरण] अग्रसर होना । आगे बढना । उ०—एकौ परग न सो अगुसरई ।—जायसी (शब्द०) ।

अगुसारना(पु)†—[सं० अग्रसारण] आगे बढना । आगे रखना । उ०—रोग कै राजै दुख अगुसारा । जियत जीव नहिं करौ निनारा ।—पदमावत, पृ० ७०३ ।

अगुठना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगुण्ठन] चारो ओर से घेर लेना ।

अगूठा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठक] घेरा । मुहासिरा ।

अगूठी (पु)—वि० [सं० अवगुण्ठित अथवा हिं० अगूठ] घेरायुक्त । उ०—जेहि कारन गढ कीन्ह अगूठी ।—जायसी (शब्द०) ।

अगूठी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगूठा] कारागार । बधन ।

अगूढ[1]—वि० [सं० अगूढ] जो छिपा न हो । स्पष्ट । प्रकट । सहज । आसान ।

अगूढ[2]—संज्ञा पुं० अलकार मे गुणीभूत व्यग्य के आठ भेदो मे से एक ।

विशेष—यह वाच्य के समान ही स्पष्ट होता है । जैसे—'उदयाचल चुवत रवी, अस्ताचल को चद ।' यहाँ प्रभात का होना व्यग्य होने पर भी स्पष्ट है ।

अगूढगध—संज्ञा पुं० [सं० अगूढगन्ध] हीग [को०] ।

अगूढगधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अगूढगन्धा] हीग । गाँधी ।

अगूढभाव—वि० [सं० अगूढभाव] जिसका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके ।

अगूता(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र+हिं० ऊता (प्रत्य०)] आगे । सामने । उ०—बाजन बाजहिं होइ अगूता । दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता ।—जायसी ग्र०, पृ० २९९ ।

अगृभीत—वि० [सं०] १ अगृहीत । जो पकडा या गिरफ्तार न किया गया हो २ अपराजित । अपराभूत [को०] ।

अगृह[1]—वि० [सं०] गृहविहीन । बिना घर का । उ०—क्या पूछो हो पता हमारा ? हम है अगृह, अकाम ।—अपलक, पृ० ७३ ।

अगृह[2]—संज्ञा पुं० गृहस्थाश्रम के बाद का आश्रम । वानप्रस्थ [को०] ।

अगृहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना घर का होने की स्थिति या दशा । बेघरबारपन [को०] ।

अगेंथ—संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थ] अरनी का पेड । गनियारी ।

अगद्र—संज्ञा पुं० [सं० अगेन्द्र] पर्वतों का राजा । हिमालय ।

अगेज[1]—वि० [फा० अगेज] मिला हुआ ।

अगेज[2]—संज्ञा स्त्री० सहन । अँगेज ।

अगय—वि० [सं०] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को०] ।

अगेयान(पु)†—वि० [सं० अज्ञान] अज्ञ । अजान । अनजान । उ०—ए सखि पिआ मोर बडा अगेयान, बोलथि बदन तोर चाँद समान ।—विद्यापति, पृ० २८ ।

अगेला—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० एला (प्रत्य०)] १ आगेवाली मठिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई मे पहनती है । इसका उलटा 'पछेला' है । २. हलका अन्न जो ओसाते समय भूसे के साथ आगे जा पडता है और जिसे हलवाहे आदि ले जाते है ।

अगेह—वि० [सं०] जिसे घर द्वार न हो । गृहरहित । बेठिकाने का । उ०—अकुल अगेह दिगबर व्याली ।—मानस, १।७२ ।

अगौरा†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] नई फसल की पहली आँटी जो प्राय जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई[1] Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती] अगुआ। सरदार। नायक। उ०—उदैकरन रन भयौ अगोई।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई[2] Ⓤ—वि० स्त्री० [सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हिं० अगोइ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—सतन की गति अगत अगोई।—घट०, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अगोच Ⓤ—वि० [सं० अगोचर] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मझे देव पायो, वस्तु अगोच लखायो।—दादू० पृ० ५३०।

अगोचर[1]—वि० [स०] १ जिसका अनुभव इंद्रियों को न हो। जिसका बोध न हो सके। इंद्रियातीत। उ०—मन बुद्धि वर वानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै।—मानस, १।३२। २ अप्रगट। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है।—रस०, पृ० ४१।

अगोचर[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २ वह वस्तु जो इंद्रियों का विषय न हो। ३ वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना न जा सके [को०]।

अगोचरी Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर] हठयोगियों की पाँच मुद्राओं में से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।—रामानंद०, पृ० ५।

अगोट[1]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = आगे + हिं० ओट = आड] [क्रि० अगोटना] १ रोक। ओट। आड। उ०—रही दै घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दै दृग द्वार अगोट।—सूर०, १०।२७६६।

अगोट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० ओट = सहारा] आश्रय। आधार। उ०—रहिहैं चचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट। बिहारी र०, पृ० ३६५।

अगोट[3]— वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गोट = जोट, साथी] एकाकी। अकेला।

अगोटना[1] Ⓤ†—क्रि० स० [हिं० अगोट से नाम० अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १. रोकना। छेंकना। उ०—सबु कोट जो पाय अगोटी। मीठी खाँड़ जेंवाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २ बद कर रखना। रोक रखना। पहरे में रखना। कैद रखना। उ०—जौ गुनही, तौ रखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी र०, दो० २५०। ३ छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन ब्यौंत अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटना Ⓤ[2]—क्रि० स० [सं० आक्रोड, प्रा० अक्कोड, हिं० 'अगोट' से नाम०] १ अंगीकार करना। स्वीकार करना। २ पसंद करना। चुनना। उ०—लगत कल्प शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन मे लेहि अगोटि जो सुंदर नीको लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटना Ⓤ[3]—क्रि० अ० [हिं० अगोट (= रोक) से नाम०] रुकना ठहरना। अड़ना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिं घाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१६५।

अगोणी†—वि० [हिं० अगौनी] आगेवाली। आगे की। उ०—एता कमाम लै अगोणी भूमि आया।—शिखर० पृ० ६।

अगोता[1] Ⓤ—क्रि० वि० [सं० अग्रत] दे० 'अगूता'।

अगोता[2] Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अगवानी। पेशवाई।

अगोत्र—वि० [सं०] कारण रहित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [सं०] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपि Ⓤ—वि० [सं० अगोप्य] प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—गोपि कहूँ तौ अग पि कहा यह गोपि अग पि न ऊभौ न बैसा।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ९१७।

अगोरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोरना] १ खेत आदि की देखभाल करने की मजदूरी। २ अगोरने की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना + फा० दार] रखवाली करनेवाला पहरा देनेवाला चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना[1]—क्रि० स० [सं० आघूर्णन = देखना या सं० अग्र + रक्ष या देशी] १ रह देखना बाट जोहना। इंतजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तेरी बाट अगरतें आँखें हुई चकोर की।—हरि० घास०, २ रखवाली करना। पहरा देना। चौकसी करना। उ०—कुँवरि लाख दुइ बार अगोरे। दुहु दिसि पँवर ठाढ कर जोरे।—जायसी (शब्द०)।

अगोरना—क्रि० स० [हिं०] रोकना। अगोरना। छेंकना। उ०—जउ मैं कोटि जतन करि राखति, घूघट ओट अगोरि। तउ उडि मिले बधिक के खग ज्यौं, पलक पींजरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७

अगोरा†—संज्ञा पुं० [हिं अगोर + आ (प्रत्य०) १ अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। २ खेत की कटाई या फसल की दँवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगोराई Ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोर + आई (प्रत्य०)] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + इया (प्रत्य०)] खेत की रखवाली करनेवाला फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही†—संज्ञा पुं० [स० अग्रवर्ती या अग्रवाही] वह बैल जिसके सींग आगे की ओर निकले हों।

अगोह्य— वि० [सं०] जो गोपनीय या ढँका न हो। प्रकट [को०]।

अगौडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अग + औड़ी (प्रत्य०)] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगाव। अगौरा।

अगौका[1]—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगौका[2]—१ शरभ। २. सिंह। ३ पक्षी [को०]।

अगौढ†—संज्ञा पुं० [सं० अगु, प्रा० अग्ग + बढ़ (प्रत्य०)] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगौनी¹ ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाउनी'। उ०—देव दिखावत कचन सो तन औरन को मन लावै अगौनी —देव (शब्द०)।

अगौनी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] १ अगवानी। पेशवाई। २ वह आतिशबाजी जो बरात आने पर द्वारपूजा के समय छोड़ी जाती है।

अगौरा¹—संज्ञा पुं० [स० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] ऊख के ऊपर का पतला नरम भाग जिसमे गाँठे नजदीक होती हैं। अगाव। अगौड़ी। कोचा।

अगौरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगौरा'। २ दे० 'अगौली'।

अगौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ ईख की एक छोटी और कड़ी जाति।

अगौवा ⓤ—क्रि० वि० [हिं० अग + औवा (प्रत्य०)] आगे। उ०—विरच्यो विकट रायमनि दौवा। घाई खाइ अरि हनै अगौवा।—छत्र०, पृ० २१५।

अगौहें ⓤ¹—क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे की ओर। आगे। अगाड़ी। उ०—(क) भीतर भौन तें प्रान प्रिया सो कितो चहै पैंग पर्दै न अगौहें।—बेनी प्रवीन (शब्द०)।

अग्ग ⓤ—क्रि० वि० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग] अगाड़ी। आगे। उ०—अग्ग गयौ गिरि निकट विकट उद्यान भयकर—पृ० रा०, ६।९४।

अग्गई—संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्राय: हाथ भर लबी होती हैं। यह नेपाल भूटान, बरमा और जावा मे भी पाया जाता है। इसमे पीले रग के २—३ इच चौड़े फूल और छोटे अमरूद के आकार के फल लगते हैं।

अग्गम†—[स० अग्रम्या] दे० 'अगम'। उ०—अग्गम बदरिया आई रसिया, पच्छम बरस गये मेंहु।—शुक्ल, अभि० ग्र०, पृ० १५६।

अग्गय ⓤ—क्रि० वि० [स० अग्र्] दे० 'अग्र' या 'आगे'। उ०—तहाँ अप्प अग्गय धर तत रथ्थ।—पृ० रा०, ६४।१००।

अग्गर¹ ⓤ—वि० [देश० अगल] [वि० स्त्री० अगरी] अगुआ। अग्रणी। उ०—गय सलषानी राव वीर अग्गर गढ रथ्थे।—पृ० रा०, १२।५८।

अग्गर ⓤ²—संज्ञा पुं० [स० आगार] निवास। धाम। प्रासाद। उ०—अग्गर जेहा झूंपडा तउ आसगे मोइ।—ढोला० दू० ३१४।

अग्गाल ⓤ—संज्ञा पुं० [स० अकाल] असमय। अनवसर। उ०—कंइ तू सींची सज्जणे, कंइ वूठउ अग्गाल।—ढोला० दू०, ३८१

अग्गि ⓤ—संज्ञा पुं० [स० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि'। उ०—पवन अग्गि जलधर अकाश। सरिता समुद्द तिथि गिरि निवास।—पृ० रा०, १।१९।

अग्गिया ⓤ—संज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'। उ०—अग्गिया दीन जद्दवह जाम।—पृ० रा०, ६१।१६०७।

अग्ग ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—वहुराइ देव कवियन प्रवल मिलन पिथ्थ अग्गै चलिय।—पृ० रा०, ६।९३।

अग्गायी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. त्रेतायुग (को०)।

अग्नि—संज्ञा स्त्री० [स०] १. आग। तेज का गोचर रूप। उष्णता। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पचभूतो या पचतत्वो मे से एक। २. वैद्यक के मत से तीन प्रकार की अग्नि।

विशेष—आयुर्वेद मे अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं। यथा— (क) भौम, जो तृण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है। (ख) दिव्य, जो आकाश मे बिजली से उत्पन्न होती है। (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है। इसी प्रकार कर्मकाड मे भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है। यथा—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि। सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि—इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमे प्रथम तीन प्रधान हैं।

३ वेद के प्रधान देवताओ मे से एक।

विशेष—ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है। वेद मे अग्नि के मत्र बहुत अधिक हैं। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे—काली, करालो, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। भिन्न भिन्न ग्रथो मे ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं। यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालो मे से एक है। पुराणो मे इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है। इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनो पुत्रो के भी पैंतालीस पुत्र हुए। इस प्रकार सब मिलाकर ४९ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण मे विस्तार के साथ दिया है।

क्रि० प्र०—जलना। जलाना।—डालना।—फूँकना।—बालना।—बुझना।—बुझाना।—भडकना।—भडकाना।—लगना।—लगाना।—सुलगाना।

४ जठराग्नि। पाचन शक्ति। जैसे—'अग्नि तो मद हो गई है। भूख कहाँ से लगे (शब्द०)। ५ पित्त। ६ तीन की सख्या क्योकि कर्मकाड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य है। ७. सोना। ८ चित्रक। चीता। ९ भिलावा। १० नीबू। ११. अग्नि-कर्म (को०)। १२ 'र्' का गूढ प्रतीक (को०)। १३ प्रकाश (को०)।

अग्निक—संज्ञा पुं० [स०] १ वीरबहूटी नाम का कीड़ा। २. एक प्रकार का पौधा (को०)। सर्पो की एक किस्म (को०)।

अग्निकण—संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निकर्म—संज्ञा पुं० [स०] १. अग्निहोत्र। हवन। २. अग्निसस्कार। शवदाह। ३ गरम लोहे से दागने का कार्य (को०)।

अग्निकला—संज्ञा स्त्री० [स०] अग्नि की दस कलाओ मे कोई एक [को०]।

अग्निकल्प—वि० [स०] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला [को०]।

अग्निकाड—संज्ञा पुं० [स० अग्नि + कांड] आग लगाना।

अग्निकारिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त जो 'अग्निदूत पुरोदधे' से प्रारभ होता है। २. अग्निकार्य [को०]।

अग्निकार्य—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'प्रतिसारण' २।

अग्निकाष्ठ—संज्ञा पुं० [स०] अगर का पेड़।

अग्निकीट--सज्ञा पुं० [सं०] समदर नाम का कीडा जिसका निवास अग्नि मे माना जाता है।

अग्निकुड--सज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुड [को०]।

अग्निकुक्कुट--सज्ञा पुं० [स०] जलता हुआ तृण या पयाल का पूला। लुकारी। लुक।

अग्निकुमार--सज्ञा पुं० [स०] १ कार्तिकेय। षडानन। २ आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपानो के साथ देने से अरुचि, मदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगो को दूर करता है।

अग्निकुल--सज्ञा पुं० [स०] क्षत्रियो का एक कुल या वशविशेष।

विशेष--ऐसी कथा है कि ऋषियो के तप मे जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता मे आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चालुक्य या सोलकी और चौहान। इन चार क्षत्रियो का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु--सज्ञा पुं० [स०] १ शिव का एक नाम। २ रावण की सेना का एक राक्षस। ३ धूम्र। धुआँ [को०]।

अग्निकोण--सज्ञा पुं० [स०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया--सज्ञा स्त्री० [स०] १ शव का अग्नि मे दाह। मुर्दा जलाना। २ अग्निहोत्र या अग्निकर्म [को०]।

अग्निक्रीडा--सज्ञा स्त्री० [स०] आतशबाजी।

अग्निगर्भ[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्यकात मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पौधा [को०]।

अग्निगर्भ[2]--वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत।

अग्निगर्भ पर्वत--सज्ञा पुं० [स०] ज्वालामुखी पहाड।

अग्निगर्भा--सज्ञा स्त्री० [स०] १ शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३ महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह--सज्ञा पुं० [स०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत--सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र--सज्ञा पुं० [स०] १ योग मे शरीर के भीतर माने हुए छ चक्रो मे से एक।

विशेष--इसका स्थान भौहों का मध्य, रग बिजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र मे जिस कमल की भावना की गई है उसके दलो (पखुडियो) की सख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०--विमल व्योम मे देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।--कानन०, पृ० २४।

अग्निचय--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन--सज्ञा पुं० [स०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याधान। २. अग्न्याधान कार्य मे प्रयुक्त होनेवाले मत्र [को०]।

अग्निचित्--सज्ञा पुं० [स०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड--सज्ञा पुं० [स०] अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी। कुक्कुट। अरुणचूड [को०]।

अग्निज[1]--वि० [स०] १ अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३ अग्निसदीपक। पाचक।

अग्निज[2]--सज्ञा पुं० १ अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड। २ कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. सोना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा--सज्ञा पुं०, वि० [स०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात--सज्ञा पुं०, वि० [स०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार--सज्ञा पुं०, वि० [स०] समुद्र फल का पेड।

अग्निजाल--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अग्निज्वाल' [को०]।

अग्निजित्--सज्ञा पुं० [स०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व[1]सज्ञा पुं० [स०] १ देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व[2]--वि० अग्नि के समान जीभवाला [को०]।

अग्निजिह्वा--सज्ञा स्त्री० [स०] १ आग की लपट। २. अग्नि देवता की सात जिह्वाएँ।

विशेष--मुडकोपनिषद् मे इनके नाम ये दिए हैं--काली, कराली, मनोजवा, लोहिता, धूमवर्णा, स्फुलिगिनी और विश्वरूपी। वृहत्सहिता मे अतिम दो नामो के स्थान मे उग्रा और प्रदीप्ता ३ कलियारी विष। लागली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी--सज्ञा पुं० [स०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे --लुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाल--सज्ञा पुं० [स०] शिव। शकर [को०]।

अग्निज्वाला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ आग की लपट। उ०--इडा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।--कामायनी, पृ० १८१। २ धव का पेड जिसमे लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड।

अग्निझाल--सज्ञा पुं० [सं० अग्नि+ज्वाल प्रा० झाल] जलपिप्पली का पेड।

अग्नितुडावटी--सज्ञा स्त्री० [स० अग्नितुण्डावटी] वैद्यक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा--वि० [स०] अग्नितुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय--सज्ञा पुं० [स०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदड--सज्ञा पुं० [स० अग्निदण्ड] आग मे जलाने का दड।

अग्निद--सज्ञा पुं० [स०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध[1]--वि० [स०] चिताग्नि मे सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध[2]--सज्ञा पुं० पितृगणो का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी--सज्ञा स्त्री० [स०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता--सज्ञा पुं० [स०] चिता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान--सज्ञा पुं० [स०] चिता मे अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग मे जलाने का कार्य। भस्म करने का कार्य। जलाना। भस्मीकरण। २ शवदाह। मुर्दा जलाना।

अग्निदिव्य- सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय। अग्निपरीक्षा [को०]।

अग्निदीपक--वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला। पाचन शक्ति बढानेवाला।

अग्निदीपन--सज्ञा पुं० [स०] १ अग्निवर्धन। जठराग्नि की वृद्धि। पाचनशक्ति की बढती। २ अग्निवर्धक औषध। पाचनशक्ति को बढानेवाली दवा। वह दवा जिसके खाने से भूख लगे।

अग्निदीप्ता--सज्ञा स्त्री० [स०] महाज्योतिष्मती। अग्निगर्भा [को०]।

अग्निदूत--संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ मे आवाहित देवगण। २ यज्ञकार्य। यजन [को०]।

अग्निदूषित--वि० [सं०] दग्ध। जला हुआ [को०]।

अग्निदेव--सज्ञा पुं० [सं०] १ देवरूप मे अग्नि को प्रधान माननेवाले अग्निपूजक। २ अग्नि [को०]।

अग्निदेवा--सज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०]।

अग्निद्वार--सज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण मे स्थित मकान का दरवाजा [को०]।

अग्निधान--सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०]।

अग्निनक्षत्र--सज्ञा पुं० [स०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०]।

अग्निनयन--सज्ञा पुं० [स०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक सस्कार करना [को०]।

अग्निनिर्यास--संज्ञा पुं० [स०] अग्निजार वृक्ष [को०]।

अग्निनेत्र--सज्ञा पुं० [स०] देवगण [को०]।

अग्निपक्व--वि० [स०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०]।

अग्निपरिक्रिया--सज्ञा स्त्री० [स०] अग्नि मे हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०]।

अग्निपरिग्रह--सज्ञा पुं० [स०] अग्निहोत्र लेना [को०]।

अग्निपरिधान--सज्ञा पुं० [स०] यज्ञ की अग्नि को परदे से आवृत्त करना या घेरना [को०]।

अग्निपरीक्षा--सज्ञा स्त्री० [स०] १ जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच। जलती हुई आग पर चलाकर अथवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की जाँच।

विशेष—प्राचीन काल मे जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ मे दोषी है या नही, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, अथवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे। उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आवेगी।

२ भयप्रदायक एव कठिन परीक्षा। ३ सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग मे तपा कर परख।

अग्निपर्वत--सज्ञा पुं० [स०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

अग्निपुराण --सज्ञा पुं० [स०] १८ पुराणो मे से एक।

विशेष—इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने वशिष्ठ जी को पहले पहल सुनाया था। इसके श्लोकों की सख्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कोई १६,००० मानते हैं। इसमे यद्यपि शिव का माहात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकाड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अलकार, छद शास्त्र, व्याकरण, तत्र आदि अनेक फुटकर विषय भी इसमे सम्मिलित हैं।

अग्निपूजक--सज्ञा पुं० [स०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म।

अग्निप्रणयन--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अग्निनयन' [को०]।

अग्निप्रतिष्ठा--सज्ञा स्त्री० [स०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०]।

अग्निप्रवेश--सज्ञा पु० [स०] १ शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि मे प्रवेश करना। २ किसी स्त्री का पति के शव आदि के साथ चिता मे प्रवेश करना [को०]।

अग्निप्रस्तर--सज्ञा पु० [स०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर। वह पत्थर जिससे आग निकले। चकमक पत्थर।

अग्निबाण--सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का अस्त्र। वह बाण जिसमे से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। वह तीर जिससे आग की लपट निकले। भस्म करनेवाला बाण।

विशेष--ऐसा कहा कहा जाता है यह बाण मत्र द्वारा चलाया जाता था और इससे अग्नि की वर्षा होने लगती थी।

अग्निबाव--संज्ञा पु० [स० अग्नि + वायु, प्रा० बाव] १ घोडो और चौपायो का एक रोग जिसमे उनके शरीर पर छोटे आबले निकलते हैं और फूट फूटकर फैलते हैं। यह रोग अधिकतर घोडो को ही होता है। २ मनुष्यो का एक चर्मरोग जिसमे शरीर पर बडे बडे लाल चकत्ते या ददोरे निकल आते हैं। पित्ती। जुडपित्ती। ददरा। ३ अग्नि की ज्वाला या लपट। उ०--पुडीर चद जनु अग्निबाव।--पृ० रा०, ८।१६।

अग्निबाहु--सज्ञा पु० [स०] १ धूम्र। धुआँ। २ प्रथम मनु के पुत्र [को०]।

अग्निबीज--सज्ञा पु० [सं०] १ सोना।

विशेष--मनु आदि प्राचीन ग्रथो मे सोने की उत्पत्ति अग्नि के सयोग से लिखी है।

२. अग्नि का बीजाक्षर 'र' [को०]।

अग्निभ[1]--सज्ञा पु० [स०] १. अग्निसबधी नक्षत्र। कृत्तिका। २. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निभ[2]--वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निभू--सज्ञा पुं० [स०] कार्तिकेय।

अग्निभूति--सज्ञा पु० [स०] अतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०]।

अग्निमथ--सज्ञा पुं० [सं० अग्निमथ] १ अरणी वृक्ष जिसकी लकडी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है। २ अरणी नामक यत्र जिसमे यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है।

अग्निमथन--सज्ञा पु० [स० अग्निमन्थन] दे० 'अग्निमथ' [को०]।

अग्निमणि--सज्ञा पु [स०] १ सूर्यकात मणि। एक बहुमूल्य पत्थर। २ सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

अग्निमथ—संज्ञा पु० [सं०] १. यज्ञ में अरणि का मथन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण। २ अरणिमथन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र। ३ अरणि का काठ [को०]।

अग्निमाद्य—संज्ञा पु० [सं० अग्निमान्द्य] मंदाग्नि। जठराग्नि की कमी। पाचनशक्ति की कमी। भूख न लगने का रोग।

अग्निमान्[1]—संज्ञा पु० [सं०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज। अग्निहोत्री [को०]।

अग्निमान्[2]—वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०]।

अग्निमारुति—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्यमुनि का नाम।

अग्निमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुंग वंशीय पुष्यमित्र का पुत्र। मालविकाग्निमित्र नाटक में इसकी कथा है [को०]।

अग्निमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २. अग्निहोत्री (को०)। ३ प्रेत। ४ ब्राह्मण। ५ चीते का पेड़। ६ भिलावे का पेड़। ७ वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई वस्तुओं के मेल से बनता है। ८ एक रस औषधि का नाम जिससे वातशूल दूर होता है। ९ खटमल (को०)।

अग्निमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भल्लातक। भिलावाँ। २ गायत्री का मंत्र। ३ ब्राह्मण। ४ अग्नि आदि देवगण। ५ पाकशाला [को०]।

अग्नियंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यंत्र। बंदूक [को०]।

अग्नियान—संज्ञा पुं० [सं०] विमान। व्योमयान। वायुयान [को०]।

अग्नियुग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो बारह युग माने गए हैं। उनमें से एक। इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं।

अग्नियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०]।

अग्निरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्याधान' [को०]।

अग्निरजा—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीरबहूटी कीड़ा। २. स्वर्ण [को०]

अग्निरहस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अकल्प की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रंथ। २ शतपथ ब्राह्मण का दशम काँड [को०]।

अग्निरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मासरोहिणी नामक लता [को०]।

अग्निरूप—वि० [पुं०] अग्नितुल्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०]।

अग्निरेता—संज्ञा पुं० [सं० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज। सोना [को०]।

अग्निरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान झलकते हुए फफोले पड़ते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है।

अग्निलिंग—संज्ञा पुं० [सं० अग्निलिङ्ग] आग की लपट की रंगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या।

अग्निलोक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वत के शृंग के नीचे का लोक [को०]।

अग्निवंश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकुल।

अग्निवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की स्त्री स्वाहा [को०]।

अग्निवर्च[1]—संज्ञा पु० [सं० अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०]।

अग्निवर्च[2]—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निवर्ण[1]—संज्ञा पु० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो रघु के प्रपौत्र तथा सुदर्शन के पुत्र थे।

अग्निवर्ण[2]—वि० आग के रंग का। अंगारे के समान। रक्तवर्ण। लाल।

अग्निवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखी मदिरा। तेज शराब [को०]।

अग्निवर्तक—संज्ञा पु० [सं०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का मेघ [को०]।

अग्निवर्धक—वि० [सं०] जठराग्नि को बढ़ानेवाला। पाचन शक्ति को बढ़ानेवाला [को०]।

अग्निवर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युद्ध में आग्नेयास्त्रों की वर्षा या प्रयोग। २ भयंकर धूप पड़ना।

अग्निवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ साल का वृक्ष। साखू का पेड़। २ साल से निकली हुई गोंद। राल। धूप।

अग्निवासा—वि० [सं० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०]।

अग्निवाह[1]—संज्ञा पु० [सं०] १. बकरा। छाग। २ धूम्र [को०]।

अग्निवाह[2]—वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०]।

अग्निवाहन—संज्ञा पु० [सं०] बकरा। छाग [को०]।

अग्निविंदु—संज्ञा पु० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निविद—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवित्] अग्निहोत्री।

अग्निविद्—वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०]।

अग्निविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि। अग्निहोत्र।

यौ०—पंचाग्निविद्या = छांदोग्य उपनिषद् में सूर्य, बादल, पृथ्वी पुरुष और स्त्री संबंधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है।

अग्निविश्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार केतु तारकाओं का एक भेद। ये ज्वाला की माला से युक्त और संख्या में १२० कहे गए हैं।

अग्निविसर्प—संज्ञा पु० [सं०] शोथ या फोड़े के कारण होनेवाली जलन या दर्द (को०)।

अग्निवीर्य[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ अग्नितुल्य पराक्रम। २ स्वर्ण (को०)।

अग्निवीर्य[2]—वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०]।

अग्निवेश—संज्ञा पु० [सं०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।

अग्निव्रत—संज्ञा पु० [सं०] वेद की एक ऋचा का नाम।

अग्निशरण—संज्ञा पु० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशर्मा[1]—वि० [सं०] बहुत शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०]।

अग्निशर्मा[2]—संज्ञा पु० एक ऋषि [को०]।

अग्निशाल—संज्ञा पु० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो। उ०—देखते थे अग्निशाला से कुतूहलयुक्त।—कामायनी, पृ० ८३।

अग्निशिख—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या बर्रे का पेड़। २. कुकुम। केसर। ३ सोना। ४ दीपक। ५ बाण। तीर। ६. अग्निबाण [को०]।

अग्निशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०—अग्निशिखा बुझ गई जागने पर जैसे सुख सपने।—कामायनी पृ० १३८। २ कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड में विष होता है।

अग्निशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया। आग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना। २ अग्निपरीक्षा।

अग्निशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या बर्रे का पेड। २ केसर। ३ जागली वृक्ष। ४ सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निश्री—वि० [स०] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाला [को०]।

अग्निष्टुत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है। यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है।

अग्निष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है।

विशेष—इसका काल वसंत है। इसके करने का अधिकार अग्निहोत्री ब्राह्मण को है। द्रव्य इसका सोम है। देवता इसके इंद्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की संख्या १६ है। यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है।

अग्निष्ठ—संज्ञा पुं० [स०] १ रसोईघर। २ अँगीठी [को०]।

अग्निष्वात्ता—संज्ञा पुं० [स०] १ पितरों का एक भेद। २ अग्नि, विद्युत् आदि विद्याओं को जाननेवाला।

अग्निसकाश—वि० [स०] अग्नितुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०]।

अग्निसदीपन—वि० [स०] दे० 'अग्निवर्धक' [को०]।

अग्निसंभव[1]—वि० [स०] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०]।

अग्निसंभव[2]—संज्ञा पुं० १ स्वर्ण। २ अरण्य कुसुम। ३ कार्तिकेय। ४ भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०]।

अग्निसंस्कार—संज्ञा पुं० [स०] १ आग का व्यवहार। आग जलाना। २ तपाना। तप्त करना। ३ शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान। ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया। दाहकर्म। ५ श्राद्ध में पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया।

अग्निसंहिता—संज्ञा स्त्री० [स०] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संबंधी एक ग्रंथ [को०]।

अग्निसखा—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अग्निसहाय'।

अग्निसहाय—संज्ञा पुं० [स०] १ जंगली कबूतर (क्योंकि उसके मांस से जठराग्नि तीव्र होती है)। २ वायु। हवा। ३ धुआँ [को०]।

अग्निसाक्षिक—वि० [सं०] १ जिसका साक्षी अग्नि हो। २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो। जो अग्नि देवता के सामने संपादित हो।

विशेष—जो बात अग्नि के सामने उसको साक्षी मानकर कही जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्मविचार से अत्यंत आवश्यक होता है। विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञाएँ होती हैं वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती हैं।

अग्निसात्—वि० [सं०] आग में जलाया हुआ। भस्म किया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अग्निसार—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध। रसांजन (को०)।

अग्निसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] आग तापना।

अग्निस्तंभ—संज्ञा पुं० [स० अग्निस्तम्भ] १. अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य। २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मंत्र। ३ अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०]।

अग्निस्तंभन—संज्ञा पुं० [स० अग्निस्तम्भन] दे० 'अग्निस्तंभ' [को०]।

अग्निस्तोक—संज्ञा पुं० [स०] स्फुलिंग। चिनगारी [को०]।

अग्निहोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया। एक यज्ञ। उ०—जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर।—कामायनी, पृ० ३१।

अग्निहोत्री—वि० संज्ञा पुं० [सं० अग्निहोत्रिन्] अग्निहोत्र करनेवाला। सवेरे संध्या अग्नि में वेदोक्त विधि से हवन करनेवाला। आहिताग्नि।

अग्निहोत्री[2]—संज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्त गाय [को०]।

अग्नीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में ऋत्विकविशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है। २ स्वायंभुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम। ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा। उ०—प्रियव्रत के अग्नीध्र सु भयो।—सूर० ५।२।४। दे० 'आग्नीध्र'।

अग्नीय—वि० [सं०] १. अग्नि का समीपवर्ती। २ अग्निसंबंधी। अग्नि का [को०]।

अग्न्यगार—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान। अग्निहोत्र का गृह [को०]

अग्न्यस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + अस्त्र] १ मंत्र द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले। अग्निघटित अस्त्र। आग्नेयास्त्र। २ वह अस्त्र जो आग से चलाया जाय, जैसे बंदूक।

अग्न्यागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यगार' [को०]।

अग्न्याधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना। २ अग्निहोत्र।

अग्न्यालय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यागार' [को०]।

अग्न्याशय—संज्ञा पुं० [स०] जठराग्नि का स्थान। पक्वाशय।

अग्न्याहित—संज्ञा पुं० [स०] अहिताग्नि। अग्निहोत्री [को०]।

अग्न्युत्पात—संज्ञा पुं० [स०] १ आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव।

विशेष—नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, बिजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है।

२ अग्निकांड। आग लगना [को०]।

अग्न्युत्सादी—वि० [स०] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०]।

अग्न्युद्धार—संज्ञा पुं० [स०] अरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०]।

अग्न्युपस्थान—संज्ञा पुं० [स०] १. अग्नि की पूजा या प्रार्थना। २ अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मंत्र [को०]।

अग्य(पु)†—वि० [स० अज्ञ, पु० हिं० अग्य] राम विरोधा विजय चह सठ हठ बस अति अग्य ।—मानस, ६।८३ ।

अग्याँ(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा, पु० अग्यां] दे० 'आज्ञा' । उ०—अग्याँ भई रिसान नरेसू ।—पदमावत, पृ० ४६३ ।

अग्यान(पु)†—सज्ञा पुं० [स० अज्ञान, पु० अग्यान, अगेयान] दे० अज्ञान' । उ०—जोवन गुन गर्वित सुनि सजनी तज्यो नाहिं अग्यान ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १४८ ।

अग्या(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्यां' । उ०—जो अग्या सामत स्वामि दीनी सु मानि लिय ।—पृ० रा०, ३१।४८ ।

अग्याकारिनि(पु)—वि० स्त्री० [स० आज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली । सेविका । उ०—हूँ तौ तिहारी अग्याकारिनि साँचि बात मोसौं कहा करौ महराज ।—नद० ग्र०, पृ० ३६८ ।

अग्यात(पु)—क्रि० वि० [स० अज्ञात, पु० अग्यात] दे० 'अज्ञात' ।

अग्यान(पु)—वि० दे० [हिं०] 'अग्यान' । उ०—मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत मांझ घृत नायौं ।—सूर०, १।१५४ ।

अग्यारी†—सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्गिआरिया = होमकर्म] १ अग्नि मे धूप, गुड आदि सुगध द्रव्य देने की क्रिया । धूपदान । २ अग्निकुड ।

अग्यौन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान' २ । उ०—सुनि आवत चहुआँन, करिय अग्यौन सलप वर ।—पृ० रा०, १४।२२ ।

अग्र[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । आगा । उ०—बहुरि करि कोप हल अग्र पर दक्ष धरि कटक को सकल चाहत डुबायो ।—सूर० (शब्द०) । २. सिरा । नोक उ०—जैसे जव के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट ।—सूर (शब्द०) । ३ स्मृति के अनुसार अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अडो के बराबर होता है । ४ शृग । शिखर (को०) । ५ श्रेष्ठता । उत्कर्ष (को०) । ६. आलबन । अवलबन (को०) । ७ प्रारभ । शुरुआत (को०) । ८. समूह । मड (को०) । ९ पल नाम की एक तौल (को०) । १० अपने वर्ग या जाति का सर्वोत्तम पदार्थ (को०) । ११. सूर्य का घेरा या मडल (को०) ।

अग्र[2]—क्रि० वि० आगे । उ०—चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीत पुरातन लखइ न कोई ।—तुलसी० (शब्द०) ।

अग्र[3]—वि० १ अगला । प्रथम । २ श्रेष्ठ । उत्तम । ३ प्रधान । मुख्य । ४ अधिक । ज्यादा । [को०] ।

अग्रकर—सज्ञा पुं० [स०] १ हाथ का अगला भाग । २ हाथ की उँगलियाँ । ३ सूर्य की प्रथम किरण । प्रकाश [को०] ।

अग्रकाय—सज्ञा पुं० [स०] शरीर का अगला भाग [को०] ।

अग्रग—सज्ञा पुं० [स०] अगुआ । नेता [को०] ।

अग्रगण्य—वि० [स०] जिसकी गिनती पहले हो । प्रधान । मुखिया । श्रेष्ठ । बडा ।

अग्रगामी[1]—सज्ञा पुं० [स० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले । प्रधान व्यक्ति । अग्रसर । अगुआ । नेता ।

अग्रगामी[2]—वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला । अगुआ । उ०—रहे नदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो ।—साकेत, पृ० ३९६ ।

अग्रगामी दल—सज्ञा पुं० [स०] [अँ० फारवर्ड ब्लाक] वह सस्था वा सघटन जिसकी स्थापना सुभाषचद्र वसु ने काग्रेस से सबध-विच्छेद करने के बाद की ।

अग्रजघा—सज्ञा स्त्री० [स० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०] ।

अग्रज[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ जो भाई पहले जन्मा हो । बडा भाई । ज्येष्ठ भ्राता । अनुज का उलटा । उ०—अग्रज परतिग्या करी तुव उरु तोडन हेत ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११४ । २ (पु) नायक । नेता । अगुआ । उ०—सेना अग्रज हत्यो पच भट अक्ष कुमारहि घाता ।—रामस्वयवर (शब्द०) । ३ ब्राह्मण ।

अग्रज[2](पु)—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । उ०—बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाई । देखी वसत ऋतु सुदर मोददाई ।—केशव (शब्द०) । २ आगे पैदा होनेवाला । उ०—रोवत तै बरजे सबै मोहन अग्रज भाइ ।—सूर०, १०।५८९ ।

अग्रजन्मा—सज्ञा पुं० [स०] १ बडा भाई । २ ब्राह्मण । ३ ब्रह्मा ।

अग्रजा—सज्ञा स्त्री० [स०] बडी बहन । उ०—प्रभु कहाँ, कहाँ किंतु अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा ।—साकेत, पृ० ३१२ ।

अग्रजात—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्राह्मण । २ बडा भाई [को०] ।

अग्रजातक—सज्ञा पु० [स०] ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजाति—सज्ञा पुं० [स०] अग्रजातक । ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] जीभ का अगला भाग [को०] ।

अग्रणी—वि० [स०] अगुआ । श्रेष्ठ । प्रधान । मुखिया ।

अग्रणी[2]—सज्ञा पुं० १ प्रधान पुरुष । मुखिया । अगुआ । २. वह्नि । अग्नि [को०] ।

अग्रत—क्रि० वि० [स०] आगे से । पहले से ।

अग्रदानी—सज्ञा पुं० [स०] वह पतित ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे ।

अग्रदूत—सज्ञा पुं० [स०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आनेवाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे । उ०—मैं ही वसत का अग्रदूत ।—अपरा, पृ० २६ ।

अग्रनख—सज्ञा पुं० [स०] नख का अगला भाग [को०] ।

अग्रनिरूपण—सज्ञा पुं० [स०] भविष्य या भावी का कथन [को०] ।

अग्रनी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अग्रणी' । उ०—बीटन को नायक सहायक बरूथिनी को अनुज विराग वर अग्रनी बनायो है ।—दीन० ग्र०, पृ० १३४ ।

अग्रपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] अजलोमा । केवाँच [को०] ।

अग्रपा—वि० [स०] सबसे प्रथम पानेवाला [को०] ।

अग्रपाद—सज्ञा पुं० [स०] पैर का अगला हिस्सा । अँगूठा [को०] ।

अग्रपूजा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सबसे पहले पूजन । सर्वप्रथम अर्चना । २. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०] ।

अग्रबीज[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने से लग जाय । पेड जिसकी कलम लगे । २. कलम ।

अग्रबीज[2]—वि० कलम से होनेवाला [को०] ।

अग्रभाग—सज्ञा पुं० [स०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । २. सिरा । नोक । छोर । ३ श्राद्ध आदि मे पहले दिया जानेवाला द्रव्य [को०] । ४. शेष अश या भाग [को०] ।

अग्रभागी—वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०]।

अग्रभुक्—वि० [सं०] १ देवपितर को अर्पण किए बिना पहले स्वयम् खानेवाला। २ पेटू। औदरिक। ३. सबसे पहले भोजन करनेवाला [को०]।

अग्रभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०]।

अग्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की छत। पाटन। २ लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०]।

अग्रमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी। पटरानी [को०]।

अग्रमांस—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदर के भीतर मांसवृद्धि का एक रोग। २. हृदय [को०]।

अग्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग। मुखाग्र [को०]।

अग्रयान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का आगे बढना। सेना का पहला धावा। २. आगे बढती हुई सेना। धावा करती हुई फौज।

अग्रयान[2]—वि० अग्रगामी। अगुआ [को०]।

अग्रयायी—संज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अगुआ। अग्रसर। २ प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

अग्रयोधी—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढकर युद्ध करनेवाला वीर। २ प्रधान योद्धा। प्रमुख वीर [को०]।

अग्रलेख—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रो मे सर्वोपरि स्तभ के अतर्गत सपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख। उ०—'जीवन चरित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र'।—अपरा, पृ० ६३।

विशेष—यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है।

अग्रलोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या बथुआ नामक शाक [को०]।

अग्रवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत मे वर्णित चीरफाड का एक यत्र।

अग्रवर—क्रि० वि० [सं० अग्र+पर, प्रा० वर] आगे। पहले। उ०—उमडि अग्रवर पैयर दिन्ह्यउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्ह्यउ।—हिम्मत०, पृ० ६५७।

अग्रवर्ती—वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला। अगुआ।

अग्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एव ताजा वायु [को०]।

अग्रवान्—वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०]।

अग्रवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] अगरवाला।

अग्रश—क्रि० वि० [सं०] आगे से ही। पहले से ही। शुरू से ही [को०]।

अग्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अगला भाग। ओसारी [को०]।

अग्रशोची—संज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला। दूरदर्शी। दूरदेश, जैसे—'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०)।

अग्रशोभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट सौंदर्य। अपूर्व शोभा [को०]।

अग्रसख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०]।

अग्रसंधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पंजिका जिसमे प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०]।

अग्रसध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल। प्रभात। ऊषाकाल। २. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०]।

अग्रसर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जानेवाला व्यक्ति। अग्रगामी। अगुआ। २. आरभ करनेवाला। पहले पहले करनेवाला व्यक्ति। ३ मुखिया। प्रधान व्यक्ति।

क्रि० प्र०—होना=आगे बढ़ना। उ०—हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे।—कामायनी, पृ० १०६।

अग्रसर[2]—वि० १ जो आगे जाय। अगुआ। २ जो आरभ करे। ३ प्रधान। मुख्य। उ०—अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रही टूट।—कामायनी, पृ० २३६।

अग्रसारण—संज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना। किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य।

अग्रसारा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बिना फल या पत्ते की टहनी। २. अनत सख्याओ की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०]।

अग्रसारित—वि० [सं० अग्रसर] आगे बढाया हुआ।

अग्रसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अगला भाग या हिस्सा। सूच्यग्र [को०]।

अग्रसोची—संज्ञा पुं० [स० अग्र+हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी। दूरदेश। दूरदर्शी। उ०—पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी।—किन्नर०, पृ० ७७।

अग्रस्थान—संज्ञा पुं० [स०] शीर्षस्थान। प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०]।

अग्रह—संज्ञा पुं० [स०] १ गार्हस्थ्य को न धारण करनेवाला पुरुष। २ वानप्रस्थ। ३ ज्ञानशून्य (को०)। ४ गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०)।

अग्रहर—वि० [स०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय। सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०]।

अग्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अग्रकर'। २ हाथी के सूँड का अगला सिरा या नोक [को०]।

अग्रहायण—संज्ञा पुं० [स०] वर्ष का अगला या पहला महीना। अगहन। मार्गशीर्ष।

विशेष—प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरभ अगहन से माना जाता था। यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशो मे है। पर उत्तरीय भारत मे वर्ष का आरभ चैत्र मास से लेने के कारण यह नवाँ पडता है।

अग्रहार—संज्ञा पु० [स०] १ राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान। २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय। ३ ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०)।

अग्रहारिक—संज्ञा पु० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०]।

अग्रांश—संज्ञा पु० [सं० अग्र+अंश] १. आगे का भाग। २ चद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नही दिखाई पडता वरन् कभी कभी चद्रमा की अनियमित गति या रूप से दिखाई पड जाता है।

विशेष—ज्योतिष में यह विश्वास किया जाता है कि इसका प्राय एक नियत मार्ग से होकर पृथ्वी की ओर आता है। केवल कभी कभी यह इस मार्ग के लिये दिए हुए समय से पहले या पीछे भी दिखाई पड़ जाता है।

अघांत—संज्ञा पु० [सं०] शिव का संहार के द्र [को०]।

अघांतक—संज्ञा पु० [सं०] अघासुरनाशन [को०]।

अघांशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पद्माक्षी' [को०]।

अघाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० सा+मर्यादा] मर्यादा। उ०—अवर की अघाइ हूँ, केहू सीमा करत।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० १०।

अघानीक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अग्रानीक' [को०]।

अघान²—संज्ञा पु० [सं०] क्रोध की स्थिति या भाव। हैरान। उ०—किसी सुनी सुनाई में इतना अघान हो गया कि कुछ कहना कठिन प्रतीत होने लगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अघानीक—संज्ञा पु० [सं०] सेना का आगे जानेवाला भाग [को०]।

अघाम्य—वि० [सं०] १ आगोचर। न कहा। नगर का। शहरी। २ जंगली। ३ जो पाला पोसा न हो। जंगली [को०]।

अघासन—संज्ञा पु० [सं०] भोजन का वह अंश जो देवता के लिये पहले निकाल दिया जाता है। यह अग्रासन पशुओं और मनुष्यों का दिया जाता है।

अघासन—संज्ञा पु० [सं०] प्रधान आसन। मुख्य स्थान। सबसे आगे का या सर्वश्रेष्ठ आसन।

अघ्राय—वि० [सं०] १ न ग्रहण करने योग्य। अग्रहणीय। धारण न करने योग्य। २ न सेवनीय। ३ त्याज्य। छोड़ने योग्य। ४ न मानने योग्य। अविचारणीय (को०)। ५. विवाह के अयोग्य। परिणयनीय (को०)।

अघ्राह्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शौचादि के कार्य में प्रयुक्त न होनेवाली मृत्तिका (को०)।

अग्रिम¹—वि० [सं०] १ अगला। पेशगी। २. आगे आनेवाला। भविष्यत्। उ०—यही बात अग्रिम सूत्रों में सिद्ध करेंगे।—हिंदुत्व (शब्द०)। ३ प्रधान। श्रेष्ठ। उत्तम। ४ सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम (को०)। ५ अगला। आगे का (को०)।

अग्रिम²—संज्ञा पु० अगला भाग। अग्रभाग।

अग्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौरवपन। लघिमा या लघुत्व (को०)।

अग्रिय¹—वि० [सं०] १ पहले उत्पन्न। पहले होनेवाला। २ श्रेष्ठ। ३ प्रधान।

अग्रिय²—संज्ञा पु० १ अगला भाग। २ पहला फल। ३ सर्वोत्तम भाग [को०]।

अग्रीय¹—वि० [सं०] दे० 'अग्रिय¹' [को०]।

अग्रीय²—संज्ञा पु० दे० 'अग्रिय²' [को०]।

अग्रु—संज्ञा पु० [सं०] (स्त्री० अग्रू) वह स्त्रीपुरुष जिसका विवाह न हुआ हो। (प्रायः गाली के रूप में)।

अग्रे—अव्य० [सं०] १. आगे। सामने। २ पहले से। आगे से [को०]।

अग्रेगा—संज्ञा पु० [सं०] नेता। अगुआ। [को०]।

अग्रेदिधिषु¹—संज्ञा पु० [सं०] ऐसी स्त्री से विवाह करनेवाला पुरुष जो पहले किसी और को ब्याही रही हो।

अग्रेदिधिषु²—संज्ञा स्त्री० वह कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहिन के पहले हो जाय।

अग्रेसर—वि० [सं०] दे० 'अग्रसर' [को०]।

अग्रेसरिक—संज्ञा पु० [सं०] १ नेता। अगुआ। २. अपने मालिक के आगे आगे जानेवाला सेवक [को०]।

अग्रसुर—संज्ञा पु० [सं० अग्र+ईश्वर] देवताओं में अग्रणी या प्रथम पूज्य गणेश। उ०—सभरि तिण पाछे अग्रेसुर दया करा कर श्री लवोदर।—राज०, पृ० ४।

अग्र्य¹—वि० [सं०] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अगला। ३ कुशल [को०]।

अग्र्य²—संज्ञा पु० १ बड़ा भाई। २ सबसे बड़ा भाई (को०)। ३ सब वेदों को अनन्यमना होकर एकरस पढ़ने में समर्थ ब्राह्मण, जो श्रद्धा के साथकों में गिना गया हो। ४ छत। पाटन (को०)।

अघनिका—वि० [सं० अघ] पापयुक्त। पापिनी। उ०—प्रसिद्ध हों अघनिका —भिखारी० ग्र० भा० १, पृ० १८।

अघ¹—वि० [सं०] १ पापात्मा। २ बुरा। बदमाश। ३ दोषी। दुष्कर्मी [को०]।

अघ²—संज्ञा पु० १ पाप। पातक। अधर्म। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—मानस १।२६। २ दोष। गुनाह। दुष्कर्म। उ०—जेहिं अघ बधेउ व्याध जिमि बाली।—मानस, १।२६। ३ दुख विपत्ति। उ०—बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघ घाम।—तुलसी ग्र०, पृ० १३४। ४ व्यसन। ५ अघौंच (को०)। ६ मथुरा के राजा कंस का सेनापति अघासुर जिसे कृष्ण ने मारा था।

अघओघ—संज्ञा पु० [सं० अघौघ] पातकसमूह। पापराशि। उ०—नित निंदक अघओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए।—मानस १।१६।

अघकृच्छ—संज्ञा पु० [सं०] एक व्रत जो प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। अघमर्षण कृच्छ्र [को०]।

अघकृत्—वि० [सं०] पातकी। पाप करनेवाला [को०]।

अघघ्न¹—वि० [सं०] अघ या पाप का विनाशक [को०]।

अघघ्न²—संज्ञा पु० विष्णु [को०]।

अघट¹—वि० [सं० अ=नहीं+घट्=होना] १. जो कार्य में परिणत न हो सके। जो घटित न हो। न होने योग्य। उ०—अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट, भूमि, पाताल, जल, गगन गता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६७। २ दुर्घट। कठिन। ३ जो ठीक न घटे। जो ठीक न उतरे। अनुपयुक्त। बेमेल। अयोग्य। उ०—भूषण पट पहिरे विपरीता। कोउ अंग अघट कोउ अंग रीता।—विश्रामसागर (शब्द०)।

अघट²—वि० [सं० अ=नहीं+घट्=हिंसा] १ जो न घटे। जो कम न हो। न चुकने योग्य। अक्षय। उ०—माटी मिसै न गगन बिलाई। अघट गहतरस रहा न जाई।—दादू०, पृ० ५७३। २ जो समभाव रहे। एकरस स्थिर। उ०—(क) कबिरा यह

गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटै, अघट भए ठहराय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३ पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० घटना] कम न होगा। न घटना। कम न होने का भाव।

अघटित¹—वि० [सं०] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रों में प्रेम अटल अघटित सा।—साकेत, पृ० २२६। २ जिसके होने की संभावना न हो। न होने योग्य। असंभव। कठिन। उ०—हरि माया बस जगत भ्रमाही। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही।—तुलसी (शब्द०)। ३ (पु) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। ना मुनासिब। उ०—रसना स्वाद सिथिल लपट ह्वै अघटित भोजन करतो।—सूर०, १।२०३।

अघटित²(पु)—वि० [सं० अ+घटित] अवश्य होनेवाला। अमिट। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित³(पु)—वि० [हिं० अघट] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित विराजत।—गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [सं०] जो कभी न हुआ हो उसे भी करने में पटु या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(पु)—वि० [सं० अघट्य] जो न घटे या न चुके। अक्षय। उ०—दीपक दीन्हा तेल भरि बाती दई अघट्ट। कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ६।

अघड(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+घट, प्रा० घड, हिं० घड़] जो गढा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड घडावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [सं०] १ जो घना या ठोस न हो। तरल। २ जो अशिथिल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अघघन' [को०]।

अघनाशन¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन²—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(पु)—वि० स्त्री० [सं० अघ+नाशिन्] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—बासी, अविनासी अघनासी ऐसी कामी है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [सं० अघभोजिन्] १ देवपितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरषण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अघमर्षण] दे० 'अघमर्षण'। उ०—बाढ़ै पुन्य अघ अघमरषण आखरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१२।

अघमर्षण¹—वि० [सं०] पापनाशक।

अघमर्षण²—संज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण सध्यावंदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते हैं। २. मंत्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूबकर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है—(स्मृति)।

अघमार—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—संज्ञा पुं० [सं० अघ+रूप] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [सं०] उष्णतारहित। शीतल [को०]।

अघर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चंद्रमा [को०]।

अघल—वि० [सं०] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [सं०] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० स० [हिं० अघाना का प्रे०] १ भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २ संतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीनों घमसान समसान फर मंडल में घाइनु अघाइ अघवाए वीर वास में।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २ दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशंसी—वि० [सं०] बुराई या पाप की वार्ता करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [सं० अघ+हर] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकंद।—भारतेंदु ग्र०, पृ० २५०।

अघहरन(पु)—वि० [सं०] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नंद० ग्र०, पृ० ३२६।

अघहार—संज्ञा पुं० सं० १ कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०]।

अघाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अघाना] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सो नैन लगे अब प्रेम सो क्यों न अघाँवरी री।—ठाकुर श०, पृ० १८।

अघा(पु)—संज्ञा पुं० हिं० दे० 'अघासुर'। उ०—बीते वर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघा मारयो नँदलाला।—ब्रज०, पृ० १३३।

अघा²—संज्ञा स्त्री० सं० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी को०।

अघाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० अग्घव = पूरा करना] संतुष्ट या तृप्त होने का भाव। संतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अघाट—संज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जिसे बेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति या घात का अभाव को०।

अघात[1] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आघात] चोट। मार। प्रहार। उ०—बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।—मानस, ४।१४।

अघाना[1]—क्रि० [हिं० अघाना] पेट भर। गूद। ज्यादा। अधिक। दूध। उ०—तब उन माँगी इन नहि दीन्हीं बाढ्यो बैर अघा।—सूर० (शब्द०)।

अघाती—वि० [सं०] पाप या क्षति न करनेवाला [को०]।

अघाना[1]—क्रि० अ० [सं० आघ्राण] १ भोजन या पान से तृप्त होना। पेट भर खाना या पीना। छकना। अघरना। उ०—पुरुष को भोग सम्यक सुख मिलि पाइए। जुग जुग छुधा बुझाइ ता पाइ अघाइए।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—सं० आ + घ्रा' का अर्थ अच्छी तरह सूँघना है। यहाँ 'घ्राणेंद्रिय सूँघकर तृप्त होना' लाक्षणिक अर्थ धीरे धीरे अर्थ-विस्तरण प्रक्रिया से 'अघाना' का अर्थ देने लगा।

२ संतुष्ट होना। तृप्त होना। मन का भरना। इच्छा का पूर्ण होना। उ०—नयनसिंध रुचिर बिंदु माधव छवि निरखहि नयन अघाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१। ३ प्रसन्न होना। हर्ष से परिपूर्ण होना। उ०—ब्याल दली ताड़का देखि ऋषि देत असीस अघाई।—तुलसी ग्र०, पृ० २६६। ४ (पु) थकना। ऊबना। उ०—प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ। मानस, ७।८८। ५. (पु) पूर्णता को पहुँचना। उ०—सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।—मानस २।६३।

अघाना[2]—क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—पर्‌यो अहराइ भक्तन हित पाइ सों करि कदन रुधिर भैरों अघाऊ।—सूर०, १।१२६।

अघायु—वि० सं० १ हिंसानिरत। २ दूसरे की अहितकामना करनेवाला। पापमय जीवन व्यतीत करनेवाला। ३. सभी अवस्थाओं में पापकर्म करनेवाला [को०]।

अघारी[1]—वि० [सं० अघारिन्] व्यसन या दुःख से युक्त [को०]।

अघारी[2]—संज्ञा पुं० [सं० अघ + अरि] १. पाप का शत्रु। पापनाशक। पाप दूर करनेवाला। उ०—तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी।—मानस, ३।७। २ अघ नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण या विष्णु।

अघाल (पु)—वि० [सं० अघालु] पापी। दुष्कर्मी। उ०—साखी कथ कुलाह अघाल मतम दुनियाँ भार। गरीबदास शाह यों कहे यमका अवसी मार।—कबीर स० पृ० १२७।

अघावना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अघाना] अघाने की स्थिति या भाव।

अघावना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० अघा + वना (प्रत्य०)] १. अघाने या पूर्ण तृप्त होने की स्थिति या भाव। २. तृप्ति।

अघासुर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का सेनापति अघ नामक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

अघी—वि० [सं०] पापी। पातकी। दुष्कर्मी। उ०—कूर, कुजाति, कुपूत, अघी सबरी सुधरै जो करैं पर पूजो।—तुलसी (शब्द०)।

अघेरना—संज्ञा पुं० [देश०] जी का मो-ना खाना।

अघोर[1]—वि० [सं०] १ जो भयंकर या भयानक न हो (वै०)। २. सौम्य। शिवस्वरूप। सुहावना।—उ०—'नव श्रीकृष्ण ने अघोर वर्ण बनाई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३।

अघोर[2]—वि० [सं० घोर] १. पार। कठिन। कठोर। उ०—जैसो राम धनुष पर्‌यो अनेरो। महा प्रचार भार भयो तबही।—कबीर सा०, पृ० ३७। २ भयकर। भयानक। उ०—दर्व हरहि पर सोक न हरही। सो गुरु नर्क अघोरहि परही।—सं० दरिया, पृ० ७।

अघोर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का नाम या एक रूप। २. एक पथ या संप्रदाय।

विशेष—इसके अनुयायी न केवल मद्य मास का व्यवहार अत्यधिक करते हैं, वरन् वे नरमास, मल मूत्र आदि तक से घिन नहीं करते। कीनाराम इस संप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं।

३ अघोर पथ का उपासक। अघोरी। उ०—मति के कठोर मानि धरम को तोर करैं, करम अघोर डरैं परम अघोर को।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ३४।

अघोरघोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अघोरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] भूतनाथ। शिव।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं० अघोर + पथ] अघोरियों का पथ या संप्रदाय वि० दे० 'अघोरमार्ग'।

अघोरपथी—संज्ञा पुं० [सं० अघोरपथी] अघोर मत का अनुयायी। अघोरी। औघड़।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का उपासक एक संप्रदाय [को०]।

अघोरप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर परीक्षा या शपथ [को०]।

अघोरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अघोर मतावलंबियों की साधना का ढंग। अघोरियों का साधन मार्ग। उ०—सारूप्य मुक्ति सो तब पावै, अघोरमार्ग को जो कोई ध्यावै।—कबीर सा०, पृ० ६०५।

विशेष—अघोरमार्ग में शिव की अघोरीश्वर रूप में उपासना होती है। श्मशानसाधन, शवसाधन, मद्यसाधन, पंचमकार सेवन, चितभस्म और रुद्राक्षधारण आदि इस मार्ग में विहित है। तांत्रिक वीराचारियों से इनके आचार विचार मिलते हैं।

अघोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण चतुर्दशी। भादों बदी चौदस।

विशेष—इस तिथि का शिवपूजन का विशेष महत्व है।

अघोरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अघोरिन्] १. अघोर मत का अनुयायी। अघोर पथ पर चलनेवाला साधक जो मद्य मास के सिवाय मल, मूत्र, शव आदि घिनौनी वस्तुओं को भी खा जाता है और अपना वेश भी भयंकर और घिनौना बनाए रहता है। औघड़। कीनारामी। २ घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करनेवाला व्यक्ति। भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। सर्वभक्षी। घृणित व्यक्ति।

अघोरी[2]—वि० जो घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करे। घृणित। घिनौना। उ०—धन्यो धर्म आपहिं तुम हित चंडाल अघोरी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६२।

अघोष[1]—वि० [सं०] १ शब्दरहित। नीरव। २ अल्पध्वनि युक्त। ३ श्वास या अहीरों से रहित।

अघोष[2]—संज्ञा पुं० १ व्याकरण में एक वर्णसमूह का नाम।

विशेष—इसमें प्रत्येक वर्ग का पहला और दूसरा अक्षर तथा श, ष, स भी हैं, यथा—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स।

२. तेरह की संख्या का सूचक शब्द क्योंकि अघोष वर्ण १३ होते हैं [को०]।

अघोषित—वि० [सं०] बिना कहा या घोषणा किया हुआ।

अघोषितयुद्ध--संज्ञा पुं० [सं०] दो राज्यों का वह सशस्त्र संघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य संघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते ।

अघौघ--संज्ञा पुं० [सं०] पापों का समूह । पाप का ढेर । उ०- पावस समय कछु अवध बरनत मुनि अघौघ नसावहीं ।--तुलसी ग्र०, पृ० ४१६ ।

अघ्न्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ बलीवर्द । साँड [को०] ।

अघ्न्य[2]--वि० न हनने या मारने के योग्य ।

अघ्न्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ । गाय [को०] ।

अघ्रान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] १. गंध लेने की क्रिया या भाव । सूँघने का कार्य । गंधग्रहण । २ गंध । महक । अरघान । उ०--नर अघ्रान तहाँ तिन्ह लागी । सत सुकृत बोले अनुरागी । --कबीर सा०, पृ० ६७ ।

अघ्रानना(पु)--क्रि० स० [सं० आघ्राण] आघ्राण करना । महँक लेना । सूँघना । उ०--असख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज अघ्रानियाँ ।--कबीर (शब्द०) ।

अघ्रेय[1]--वि० [सं०] न सूँघने योग्य ।

अघ्रेय[2]--संज्ञा पुं० मद्य । शराब [को०] ।

अचंचल--वि० [सं० अचञ्चल] [स्त्री० अचंचला, संज्ञा अचंचलता] १ जो चंचल न हो । चंचलतारहित । स्थिर । ठहरा हुआ । उ०--भए विलोचन चारु अचंचल ।--तुलसी (शब्द०) । २ धीर । गंभीर ।

अचंचलता--संज्ञा स्त्री० [सं० अचञ्चलता] १ स्थिरता । ठहराव । २ धीरता । गंभीरता ।

अचंड--वि० [सं० अचण्ड] [स्त्री० अचंडी] जो चंड न हो । उग्रता रहित । शांत । सुशील । सौम्य ।

अचंडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अचण्डी] १ सीधी गाय । शांत गौ । २. अकोपना स्त्री [को०] ।

अचंती(पु)--वि० [सं० अचिन्तित, प्रा० अचिंतिय, अचिंतिइ] अतर्कित । आकस्मिक । उ०--का, प्री, रांगा, प्राँण करि, काँइ अचंती हाँण ।--ढोला दू० ६७ ।

अचंद्र--वि० [सं० अचन्द्र] चंद्रमा से रहित । बिना चाँद का [को०] ।

अचंभर्म(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचंभव' । उ०--हुअ धरा नरा नर हैमरा, उरध अचंभम अम्मग ।--रा० रू०, पृ० २५ ।

अचंभव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ, अचंभव] अचंभा । आश्चर्य । विस्मय । तअज्जुब । उ०--अगम अगोचर समुझि परै नहिं भयो अचंभव भारी ।--कबीर (शब्द०) ।

अचंभा--संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ] १ आश्चर्य । अचरज । विस्मय । तअज्जुब । २ विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात । उ०--एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई । --कबीर ग्र०, पृ० ६१ ।

अचंभित(पु)--वि० [हिं० अचंभा] आश्चर्यित । चकित । विस्मित ।

अचंभो--संज्ञा पुं० [सं० असंभव अथवा हिं० अचंभव] दे० 'अचंभा' । उ०--(क) देखत रहे अचंभो, योगी हस्ति न आंय । योगिहि कर अस जूझव भूमि न लागत पाय ।--जायसी (शब्द०) । (ख) अचंभो इन लोगनि को आवै । छाँडि खान अमीरस फलको माया विष फल भावै ।--सूर (शब्द०) ।

अचंभी(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचंभव' । उ०--नमैं धर्म मन वचन काय करि सिंधु अचंभौ करई ।--सूर०, ६।७८।

अच्--संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत व्याकरण में स्वरों के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को०] ।

अचक[1]--वि० [सं० चक्र, प्रा० चक्क=समूह, ढेर] भरपूर । पूर्ण । ज्यादा । जैसे--'जिनके घर अचक माया धरी है' ।- हिं० प्र० (शब्द०) ।

अचक[2]†--क्रि० वि० [सं० अ=नहीं चक्+आत होना] बिना आतंकित हुए । बिना हिले डुले । उ०--घोडी लै चलु अचक बैठारि, सजन के खेत मे ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३५ ।

अचक[3]--संज्ञा पुं० [सं० √चक्=आतंक होना] घबराहट । भौंचक्कापन । विस्मय । उ०--नोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हे छाई है अचक सी ।--सूदन (शब्द०) ।

अचकचाना--क्रि० अ० [हिं० अचक[3] से नाम०] घबराना । विस्मित होना ।

अचकचाहट--संज्ञा स्त्री० [हिं० अचक] घबराहट । भौंचक्कापन । उ०--'अपनी अचकचाहट का मुसकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था' ।--दहकते० पृ० २७ ।

अचकन--संज्ञा पुं० [अ० 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लंबा अंगा ।

विशेष--इसमें पाँच कलियाँ और एक बालाबर होता है । जहाँ बालाबर मिलता है वहाँ दो बंद बाँधे जाते हैं । अब बंदों के स्थान पर बटन भी लगाने लगे हैं ।

अचकना पचकना--क्रि० वि० [हिं० अचक+अनु० पचक] हिचकिचाना । घबराना । उ०--अचक पचक यो धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने ।--मिट्टी०, पृ० ३५ ।

अचकाँ(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचानक, अचक्का] अचानक । अचक्के में । एकाएक । सहसा । उ०--जानत हौं तुम हौ बल पूरे । पै अचकाँ आए नहिं सूरे ।--सदन (शब्द०) ।

अचकित--वि० [सं०] जो चकित या विस्मित न हो [को०] ।

अचक्का--संज्ञा पुं० [सं० अ=भले प्रकार+चक्=भ्रांति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो । असावधानी की अवस्था । अनजान ।

यौ०--अचक्के में=अचानक । सहसा । एकाएक ।

अचक्र--वि० [सं०] १. बिना चक्का या पहिए का । चक्रहीन । २ स्थिर । अचल । निष्कंप [को०] ।

अचक्षु[1]--वि० [सं०] १. बिना आँख का । नेत्ररहित । अंधा । २ अतींद्रिय । इंद्रियरहित ।

अचक्षु[2]--संज्ञा पुं० असौम्य नेत्र [को०] ।

अचक्षुदर्शन--संज्ञा पुं० [सं०] आँख को छोड अन्य आभ्यंतरिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

अचक्षुर्दर्शनावरण--संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो । अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म ।

अचक्षुर्दर्शनावरणीय--वि० [सं०] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक । अचक्षुर्दर्शन नामक ज्ञान का बाधक ।

अचक्षुविषय—वि० [सं०] जो नेत्र का विषय न हो। दृष्टि से परे [को०]।

अचक्षुष्क—वि० [सं०] चक्षुविहीन। नेत्रहीन [को०]।

अचख(५)—वि० [सं० अचक्षु, प्रा० अचक्खु] नेत्रहीन। दृष्टिरहित। उ०—भय युत बालक प्रिय अचख सुनत अनाथ सदीव।—राम० धर्म० पृ० ५६।

अचगरा—वि० [सं० अत्यर्गल, प्रा० अच्चगल, देश०] छेड़खानी करनेवाला। नटखट। शोख। चचल। उ०—ऐसी नाहिं अचगरौ मेरी कहा बनावनि बात।—सूर०, १०।२६०।

अचगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचगरा] ज्यादती। नटखटी। शरारत। छेड़छाड़। उ०—(क) जौ लरिका कछु अचगरि करही।—मानस, १।२७७। (ख) माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्ही।—सूर० १०।२६७।

अचतुर—वि० [सं०] १. जो चतुर न हो। २ अनाड़ी। अकुशल। ३. चार से रहित [को०]।

अचना(५)—क्रि० स० [सं० आचमन अथवा हिं० अचवना] १. आचमन करना। पीना। उ०—(क) पैठि बिवर मिलि तापसिहि अचई पानि, फलु खाई—तुलसी ग्र०, पृ० ८०। २. छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना, जैसे—'तुम तो लाज शरम अचे गए (शब्द०) उ०—लाज काँ अचे कै कुलधरम पचे कै विया वृदनि सचे कै भई मगन गुपाल मैं।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६।

अचपल[1]—वि० [स०] अचचल। धीर। गभीर। उ०—मेरे श्रम-सिंचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनो से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात।—गीतिका।

अचपल[2]†—वि० [स० अ+चपल] [स्त्री० अचपली] चचल। शोख। उ०—क्या काम उन्हें जो हँस बोले या शोखी मे अचपल निकले।—नजीर (शब्द०)।

अचलपता—संज्ञा स्त्री० [स०] अचचलता। स्थिरता। धीरता। गभीरता।

अचपलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ चपलता का अभाव। अचापल्य। २† शोखपन। चुलबुलाहट।

अचपली[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचपल] अठखेली। किलोल। क्रीडा। उ०—गुलाल अबीर से गुलजार हैं सभी गलियाँ। कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ।—नजीर (शब्द०)।

अचपली[2]†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अचपल[2]'। उ०—जाकी छोटी नँनद बड़ी अचपली।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२१।

अचभौन(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभा'। उ०—कहा कहत तू नद ढुटौना। सखी सुनहु री बातें जैसी करत अतिहि अचभौना।—सूर (शब्द०)।

अचमन(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचमन'। उ०—भोजन करि नँद अचमन लीन्हो माँगत सूर जुठनिया।—सूर०, १०।३४१।

अचर[1]—वि० [स०] न चलनेवाला। स्थावर। जड़।

अचर[2]—संज्ञा पुं० १. न चलनेवाला पदार्थ। जड़ पदार्थ। स्थावर द्रव्य। उ०—जे सजीव जग चर अजर, नारि पुरुष अस नाम।—मानस १।८४। २ ज्योतिष के अनुसार वृष, सिंह वृश्चिक और कुभ राशियाँ जो स्थिर हैं (को०)।

अचरचे[1]—क्रि० वि० [स० अ=नहीं+हिं० चरचना] बिना पूजा के। अपूजित। उ०—और तौ अचरचे पाइ धरौ मो तो कहौ कौन के पेड़ भरि।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २६०।

अचरज[1]—संज्ञा पुं० [स० आश्चर्य, प्रा० अच्चरिय] आश्चर्य। अचभा। विस्मय। उ०—अचरज कहा पार्थ जो देखै तीनि लोक इक बान।—सूर०, १।२६८।

अचरज[2]—वि० आश्चर्ययुक्त अनोखा।

क्रि० प्र०—करना। उ०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।—मानस १।११०।—मानना।—मे आना।—मे पड़ना।—होना। उ०—वह अगाध यह क्यों कहै भारी अचरज होय।—कबीर (शब्द०)।

अचरम—वि० [स०] जो चरम या अतिम न हो [को०]।

अचरा(५)—वि० [स० अचला] दे० 'अचला'। उ०—अचरा न चरै धेन कटरा न पाई।—गोरख०, पृ० १४८।

अचरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँचरा'। उ०—अचरा डारयो वदन पै मधुर मधुर मुसिकाई।—नद० ग्र०, पृ० १६६।

अचरिज(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०—मित्र कहत अचरिज मो हिए।—नद० ग्र०, पृ० ३०८।

अचरित[1](५)—वि० [सं०] १ जिसपर कोई चढ़ा न हो। २ जो खाया न गया हो। ३ अछूता। नया।

अचरित[2]—संज्ञा पुं० कामकाज छोड़ अड़कर बैठना। धरना देना। गतिनिरोध।

अचर्ज(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०—वेनु के वस भई वेंसुरी जो अनर्थ करै तो अचज कहा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८२१।

अचल[1]—वि० [स०] १ जो न चले। स्थिर। जो न हिले। ठहरा हुआ। निश्चल। उ०—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यो, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।—सूर०, १।३४। २. सदा दिन रहनेवाला। चिरस्थायी। उ०—लका अचल राज तुम्ह करहू।—मानस ६।२३।

यौ०—अचल कीर्ति। अचल राज्य। अचल समाधि।

३ न डिगनेवाला। न बदलनेवाला। अटल। ध्रुव। दृढ़। पक्का। उ०—(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम।—तुलसी ग्र० पृ० ४६२। (ख) 'उसकी यह अचल प्रतिज्ञा है' (शब्द०)। ४, जो नष्ट न हो। मजबूत। पुख्ता। अटूट। अजेय। उ०—(क) गरब भाजि गढ़वै गई तिय कुच अचल मवास।—बिहारी र०, दो० ३४४। (ख) 'अब इसकी नीव अचल हो गई (शब्द०)।

अचल[2]—संज्ञा पुं० १ पर्वत। पहाड़। उ०—जितना चढ़ौं उतरजनि अचल कटि कटि केहर वेस।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ६। २ शिव। स्थाणु (को०)। ३ ब्रह्मा (को०)। ४. आत्मा (को०)। ५. शकु। खूँटी। कील (को०)। ६. सात की सख्या का वाचक शब्द (को०)।

अचलकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमवान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरित्री।

विशेष—पृथिवी का यह नाम प्राचीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड़ कीलों के समान जड़े हुए हैं।

अचलज—वि० [सं०] पर्वतोत्पन्न [को०]।

अचलजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलजात—वि० [सं०] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा [को०]।

अचलत्विट्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०]।

अचलत्विट्[2]—वि० नदी समान शोभावाला। स्थिर कांतिवाला [को०]

अचलदुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के शत्रु इंद्र [को०]।

अचलधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा—पट दस लघु हि अचलधृति मन गुनि'।—भिखारी० ग्र०, भा० १ पृ० १९८। उ०—लखि भव भयद छवि पुर बटु वहन। सुघनि वर लखि जिन वपु जिउ रहत (शब्द०)।

अचलन—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=बुरा+हिं० चलन] कुचाल। बुरा आचरण। उ०—तिन्ह की नारि रमहिं पचीस मग अचलनि बहुत करहिं री।—जग० बानी, पृ० ८२।

अचलपति—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] अमहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संपत्ति जो चल न हो। स्थिर संपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह संपत्ति। गैरमनकूला जायदाद, जैसे—मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचला[1]—वि० स्त्री० [सं०] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला[2]—संज्ञा स्त्री० पृथिवी। धरती।

विशेष—प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। आर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दबा दिया। अचला नाम का कारण आर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतों का होना अथवा उसका अपनी कक्षा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन†—संज्ञा पुं० [सं० आचमन, अप० अचवन] [क्रि० अचवना] १ आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०—अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीन्हो।—सूर (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अचवना†—क्रि० स० [सं० आचमन] १ आचमन करना। पान करना। पीना। उ०—सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीहहिं प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को।—तुलसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३ छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना।

अचवाई—वि० [हिं० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०—रूप सरूप सिंगार सवाई। अप्सर कैसी रहि अचवाई।—जायसी (शब्द०)।

अचवाना—क्रि० स० [हिं० अचवना का प्रेर०] १ आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २ भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुँह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०—अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीनो।—सूर (शब्द०)।

अचाक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०—जो अचाक मग भेंटती विहँसति करि बहुरंग।—श्यामा पृ० १६७।

अचाचक—क्रि० वि० [हिं० अचान+स० √चक्=भाति] बिना पूर्वसूचना के। अचानक। एकबारगी। सहसा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०—कई गनीमत का मौका हाथ आया देख अचानक अपने यार वफादार को पाकर।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११४।

अचानचक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाचक'। उ०—परिहै वज्रागि ताके ऊपर अचानचक धरि उडि जाइ कहूँ ठौहर न पाइहै।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाका'।

अचाका†—क्रि० वि० [सं० आ+चक्=भाति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०—(क) दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चंद्र रथ हाँका।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर नहीं तो यमकोरैं लगैं औरे लौ अचाका बिन धोरे धूरि जायगी।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुष—वि० [सं०] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० चाखना] न चखा जा सकने-वाला। खाने के अयोग्य। उ०—तीखा तेज महा अचाख।—प्राण० पृ० ४०।

अचातुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाड़ीपन [को०]।

अचान—क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—देव अचान भई पहिचान चितौत ही श्याम सुजान के सौंहें।—देव (शब्द०)।

अचानक—क्रि० वि० [सं० आ=अच्छी तरह+चक्=भात अथवा स० अज्ञानात्] बिना पूर्वसूचना के। एकबारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। औचट में। अनचिते में। उ०—(क)

...न दे दिन नहीं लगाए। तबहिं अवधि मैं कहत न समुझी मन अचानक आए।—सूर०, १०।४२८८। (ख) नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।—बिहारी र०, दो० ४६६।

अचानित—वि० क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०—आइ अचानित ह्वै पर्‌यो मनो गरुड़ प्रभुपति।—पृ० रा० १।३८६।

अचापल—वि० [सं०] चपलतारहित। अचंचल (को०)।

अचापल्य—सञ्ज्ञा पुं० चपलता का अभाव। स्थिरता। अचंचलता (को०)।

अचापल्य—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचापल' (को०)।

अचार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [सं० आचार] मिर्च, राई, लहसुन आदि मसालों के साथ तेल, नमक, सिरका या अर्कताना में कुछ दिन रस करके डाला हुआ फल या तरकारी। कचूमर। अथाना।

अचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आचार] आचरण। आचार। उ०—दंभ रहित अति प्रेम मय, छल समेत व्यवहार। स्वारथ रहित सनेह मय रुचि अनुहरत आचार।—तुलसी ग्र०, पृ० १५०।

अचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० चार] चिरौंजी का पेड़। पियाल द्रुम।

अचारज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्राचार्य प्रा० आचारज] दे० 'आचार्य'। उ०—ईश्वरपुरी प्रभु भट्ट रघुनाथ अचारज। त्रिपुर गंग श्री जदु प्रबोधानंद सु आरज।—भारतेन्दु ग्र० भा० २, पृ० ६३०।

अचार विचार—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचार विचार'। उ०—ऐसे मद मांस लिहार भरे तें अचार विचार समीप न जाहीं।—तुलसी ग्र०, पृ० २२०।

अचारी—वि० [सं० आचारी] अचार करनेवाला।

अचारी—सञ्ज्ञा पुं० आचार विचार से रहनेवाले आदमी। वह व्यक्ति जो अपना नित्यकर्म विधि और शुद्धतापूर्वक करता है।

अचारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आचार्य] १ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक। ऋत्विज। उ०—पाँचजन्य मुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी।—धर्मी०, पृ० ५। २ रामानुज सम्प्रदाय का वैष्णव जिसका काम हरिमंदिर में विशेष विधानों का सम्पादन करना है।

अचारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अचार का अल्पा०] छिले हुए कच्चे आम की फाँक या लवण और मसाला के साथ घृत में सिझाकर तैयार की जाती है। यह मीठी भी बनाई जाती है।

अचारु—वि० [सं०] सुन्दर। मनोहर (को०)।

अचालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+चालन] अनचालू जहाज। कम चलनेवाला भारी जहाज।

अचालु—वि० अचालक। प्रवर्तनरहित।

अचाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+प्रा० चाह] अनिच्छा। अरुचि। अप्रीति। उ०—नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन चाहत तोरे।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ६८।

अचाह—वि० जिसे कुछ अभिलाषा न हो। बिना चाह का। इच्छा रहित। निस्पृह।

अचाहा—वि० [हिं०] [स्त्री० अचाही] १. चाहा हुआ। अवांछित। अभिप्रेत। २. जिसपर रुचि या प्रीति न हो। जो प्रेमपात्र न हो।

अचाहा—सञ्ज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो। वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र न हो। २ न चाहने या प्रीति न करनेवाला व्यक्ति। निर्मोही। उ०—रावलि कहाँ हौ किन, कहत हौ काते अरी रोष तज, रोष कै कियो मैं का अचाहे को।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाही—वि० [हिं० अचाह] किसी बात की चाह न रखनेवाला। निरीह। निस्पृह। निष्काम।

अचाही—सञ्ज्ञा स्त्री० न चाही गई या अवांछित बात। उ०—कवि ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसही नहियाँ।—ठाकुर०, पृ० २५।

अचित—वि० [सं० अचिन्त] चिंतारहित। निश्चित। बेफिक्र। उ०—चिंता न करु अचित रहु, देनहार समरत्थ।—कबीर (शब्द०)।

अचितनशील—वि० [सं० अचिन्तन+शील] चिंतारहित। विचारशक्तिहीन। उ०—वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड या अचिंतनशील ही रह जाता।—शैली, पृ० ५।

अचितनीय—वि० [सं० अचिन्तनीय] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। दुर्बोध। २. आकस्मिक। अतर्कित (को०)।

अचिंता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अचिन्ता] चिंता का अभाव। लापरवाही (को०)।

अचिंतित—वि० [सं० अचिन्तित] १ जिसका चिंतन न किया गया हो। जिसका विचार न हुआ हो। बिना सोचा विचारा। २ अनभाविन। आकस्मिक। ३ निश्चिंत। बेफिक्र। ४ उपेक्षित (को०)।

अचिंत्य—वि० [सं० अचिन्त्य] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। बोधागम्य। अज्ञेय। कल्पनातीत। २ जिसका अंदाजा न हो सके। अकूत। अतुल। ३. आशा से अधिक। ४ बिना सोचा विचारा। आकस्मिक।

अचिंत्य—सञ्ज्ञा पुं० १ एक अलंकार।

विशेष—इसमें अविलक्षण या साधारण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कहा जाता है, जैसे—'कोकिल को वाचालता विरहिनि मौन अनंत। देनहार यह देखिए आयो समय वसंत (शब्द०)। इस दोहे में साधारण वसंत के आगमन रूप कारण से मौन और वाचालता रूप विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति है।

२ वह जो चिंतन से परे हो। ईश्वर। उ०—छठौं कमल अचिंत्य को बासा।—कबीर सा०, पृ० ११। ३ शिव (को०)। ४. पारद। पारा (को०)।

अचिंत्यकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्यकर्म] वह कर्म या कार्य जो चिंतन से परे हो (को०)।

अचिंत्यकर्मा—वि० [सं० अचिन्त्यकर्मा] अचिंत कार्य करनेवाला (को०)।

अचिंत्यरूप—वि० [सं० अचिन्त्यरूप] जिसका चिंतन या ध्यान न हो सके ऐसे रूप तथा आकारवाला (को०)।

अचिंत्यात्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्य+आत्मा] वह जिसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यान में न आ सके। परमात्मा। ईश्वर।

अचिकित्स्य—वि० [स०] चिकित्सा के अयोग्य। जिसकी दवा न हो सके। असाध्य।

अचिकीर्षु—वि० [स०] न करने की इच्छावाला। काम न करने की इच्छावाला। कार्य मे अनिच्छुक [को०]।

अचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [स० आश्चर्य] अचरज। अचभा। उ०—सतपत्र पुत्त अचिज्ज सुहित्त निय तप्प लग्ग हरे वच्छ भग्ग। —पृ० रा०, २।६१।

अचित्[१]—संज्ञा पुं० [स०] १ जडप्रकृति। अचेतन। 'चित्' का उलटा। २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों मे से एक।

विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जडात्मक और भोग्यत्व विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अचित्[२]—वि० अचेतन। चेतनारहित। जड [को०]।

अचित—वि० [स०] १ गया हुआ। २. जो सोचा न गया हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो [को०]।

अचितवन—वि० [स० अ=नहीं+हिं० चितवन] चितवन रहित। निर्निमेष। अपलक।

अचित्त—वि० [स०] १ विचार या ध्यान मे न आने योग्य। २. बुद्धिरहित। अज्ञ। ३ अविचारित। जिसपर विचार न किया गया हो। ४ चेतनारहित। अचेत [को०]।

अचित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान का अभाव [को०]।

अचित्र—वि० [सं०] १ जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके। २ जो चित्र न हो। जो बहुरगा न हो [को०]।

अचिर[१]—क्रि० वि० [सं०] १ शीघ्र। जल्दी। २ थोडा ही समय पूर्व। कुछ काल पहले (को०)।

अचिर[२]—वि० १. थोडे समय का। क्षणस्थायी। २. हाल का। ताजा। ३ नया [को०]।

अचिरज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०—ऐ परि याकी नेम सुनहि जो। लाडिलि अचिरज लाड रहै तो।—नद० ग्र०, पृ० १३३।

अचिरता—संज्ञा स्त्री० [स०] अचिर का भाव। क्षणिकता।

अचिरद्युति—संज्ञा स्त्री० [स०] क्षणप्रभा। बिजली।

अचिरप्रभा—संज्ञा स्त्री० [स०] बिजली।

अचिरप्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सद्य प्रसूता गौ। हाल की ब्याई गाय [को०]।

अचिरभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् [को०]।

अचिरम्—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचिरमृत—वि० [सं०] कुछ समय पूर्व मृत [को०]।

अचिररोचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौदामिनी। बिजली [को०]।

अचिराश—संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत्। बिजली [को०]।

अचिरात्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्दी। तुरत। २ कुछ समय पूर्व। कुछ पहले (को०)।

अचिराभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणप्रभा। बिजली [को०]।

अचिरेण—क्रि० वि० [स०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचीतिया(पु)†—वि० [सं० अचिंतित; प्रा० अचिंतिय] आकस्मिक। असभावित। उ०—आवी खबर अचीतियां विसमै जैसी वत्त। —रा० रू०, पृ० ६२।

अचीता[१]—वि० [स० अचिंतित] [स्त्री० अचीती] १ बिना सोचा विचारा। असभावित। आकस्मिक। जिसका पहले से अनुमान न हो। २ अचिंत्य। जिसका अदाजा न हो। बहुत। अधिक। उ०—लिखी खबर जैसी इत बीती। परी मुलक पर धार अचीती।—लाल (शब्द०)।

अचीता[२](पु)—वि० [स० अचिन्त] निश्चित। बेफिक्र। उ०—सुनो मेरे मीता सुख सोइए अचीता कहो सीता सोधि लाउँ कहो सी मिलाऊँ राम को।—हृदयराम (शब्द०)।

अचीर—वि० [स०] चीरविहीन। वस्त्ररहित [को०]।

अचुवाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अचवाना'। उ०—पुनि जल शीतल अचुवावै। ता माहि सुगध मिलावै।—सुदर० ग्र० भा० १, पृ० १३५।

अचूक[१]—वि० [स० अच्युत अथवा स० अ=नही+प्रा० √चुक्क=चूकना] १. जो न चूके। जो खाली न जाय। जो ठीक बैठे। जो अवश्य फल दिखावे। जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे। उ०—बाँकी तेग कबीर की, अनी परै दै टूक। मारे बीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक।—कबीर (शब्द०)। २. निर्भ्रांत। जिसमे भूल न हो। ठीक। भ्रमरहित। निश्चत पक्का। उ०—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निर्भ्रांत कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी।'—(शब्द०)।

अचूक[२]—क्रि० वि० १ सफाई से। पटुता से। कौशल से। उ०—मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै। नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी को ग्रीवका अचूक मुख चूमत चितै चितै।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६५। २ निश्चय। अवश्य। जरूर। उ०—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सबै सुखधूप तहाँ है अचूक जानकी —हृदयराम (शब्द०)।

अचेत[१]—वि० [स०] १ चेतनारहित। सज्ञाशून्य। बेसुध। बेहोश। मूर्च्छित। २ व्याकुल। विह्वल। विकल। उ०—माँ यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।—बिहारी र०, दो० ५१६। ३ असावधान बेपरवाह। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)। ४ अनजान। बेखबर। उ०—वृंदावन की वीथिन तकि तकि रहत गुमान समेत। इन बातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत। —सूर (शब्द०)। ५ नासमझ। मूढ। उ०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तसु बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी (शब्द०)। (पु) ६ जड। उ०—(क) असम अचेत पखान प्रगट लै बनचर जल महँ डारत।—सूर (शब्द०)। (ख) कामातुर होत हैं सदा ही मतिहीन तिन्हैं चेत औ अचेत माँह भेद कहाँ पावैगो।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

अचेत[२](पु)—संज्ञा पुं० [स० अचित्] १. जड प्रकृति। जडत्व। २ माया। अज्ञान। उ०—कह लौं कहौं अचेत गयऊ। चेत अचेत झगर थक भयऊ।—कबीर (शब्द०)।

अचेतन¹—वि० [सं०] १ चेतनारहित। जिसमें चेतना का अभाव हो। जिसमें सुख दुःख आदि किसी प्रकार के अनुभव की शक्ति नहीं। जड़। 'चेतन' का उलटा। उ०—सब में एक अचेतन सोई जिसमें बिछुरा दरसै समीर।—रामायनी, पृ० ११। २ अज्ञान (सं०)। ३. जीवरहित। निर्जीव (को०)। ४ मूर्छित। मूर्च्छित। जैसे—'वह अचेतन अवस्था में पाया गया।' (शब्द०)।

अचेतन²—संज्ञा पुं० अचैतन्य पदार्थ। जड़ द्रव्य।

अचेना—वि० [सं० अचेतस्] १ चेतनाविहीन। अचेत। २ चित्तरहित। चित्तविहीन। ३ जीवरहित। निर्जीव (को०)।

अचेनान—वि० [सं०] १ ज्ञानविहीन। न जाननेवाला। २. मूर्ख। अज्ञ (सं०)।

अचेती—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० चेत + ई (प्रत्य०)] असावधानी। बेखबरी। गफलत।

अचेलक—संज्ञा पुं० [सं० अचेलक] वस्त्र न रखनेवाला या स्वल्प और जीर्ण वस्त्र रखनेवाले भिक्षु। भिक्षुओं का एक भेद। उ०—भिक्षुओं! कुछ अचेलक, आजीविक, निगंठ आदि भिक्षु हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३१।

अचेलपरीसह—संज्ञा पुं० [सं० अचेलपरिसह] आगम में कहे हुए वस्त्रादि ग्रहण करने और उनके फटे और पुराने होने पर भी चित्त में ग्लानि न लाने का नियम।

अचेष्ट—वि० [सं०] १ चेष्टारहित। २ बिना प्रयास का। ३. गतिहीन (सं०)।

अचेष्टित—वि० [सं०] प्रयत्न या चेष्टारहित। २ बिना प्रयास का (को०)।

अचैतन्य¹—वि० [सं०] चेतनारहित। आत्माविहीन। जड़।

अचैतन्य²—संज्ञा पुं० १. निश्चेतनता। चेतना का अभाव। २ अज्ञान। ३. चेतनाविहीन द्रव्य या वस्तु। जड़ पदार्थ (सं०)। ४ होश हवास न रहना। बेहोशी (को०)।

अचैन¹—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + देश० चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता। दुःख। कष्ट। उ०—खिवै मान अपराध हौं चलिये, बहौं अचैन। जुरत दीठि तजि रिस खिसी, हँसि दुहुनु के नैन।—बिहारी र०, दो० ६२६।

अचैन²—वि० [हिं० अ = नहीं + चैन = आराम] [स्त्री० अचैनी] बेचैन। व्याकुल। विकल। उ०—नीके चितै चितवै चहुँ ओर अचानक सबल चित्त अचैनी।—देव (शब्द०)।

अचैना—संज्ञा पुं० [सं० छिन्न = कटा हुआ] १ लकड़ी का मोटा कुंदा जो नाँद में लगा रहता है और जिसपर रखकर गँड़ासे से चारा काटा जाता है। पाटा। निहा। ठीहा। हँसुआ। २ लकड़ी का कुंदा जिसपर रखकर बढ़ई दूसरी लकड़ी को चीरते और छीलते हैं। निहा। ठीहा।

अचोना—संज्ञा पुं० [सं० आचमनम् प्रा० आचयनअ < आचउनअ < अचौना] आचमन करने का पात्र। पीने का बरतन। लोटा। उ०—ना चित दान दियो द्विज, अंजलि न लगत पल, मार्ग न चले जो साधु संत सनेही मैं। देखि देखि गावन को अंत न अघंत मन भरि पी न सक्यो जो जीवन अमान ही।—देव (शब्द०)।

अचौकी—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चौंकना = चकित होना] अचकित। स्थिर। उ०—रहत अचौकी चित्त नित ही ध्यान सुरावरो।—ब्रज० ग्र०, पृ० ३८।

अचौन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन'। उ०—चातक उमाहै घन आनँद अचौन को।—घनानंद, पृ० १५८।

अचौनि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन'।

अच्चड़†—वि० [सं० आश्चर्य; प्रा० अच्चर] अचंभा। अचरज। उ०—भाण तणाँ हरनाथ महाभड आया परब उवारण अच्चड।—रा० रू०, पृ० १३४।

अच्छद—वि० [सं अच्छन्दस्] १ वेदाध्ययन न करनेवाला। २ वेदाध्ययन के अधिकार से विहीन। ३ छंद या पद्य से रहित। छंदविहीन। ४ छलविहीन छद्मरहित (को०)।

अच्छ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्फटिक। २ भालू। ३ स्वच्छ जल (डिं०)। ४ आभिमुख्य। समुख होना (को०)। ५ एक प्रकार का पौधा (को०)।

अच्छ²—वि० स्वच्छ। निर्मल। पवित्र। अच्छा। उ०—(क) उदधि नाकपति अच्छ को, उदित जानि बलवंत। अंतरिक्ष ही लंक पर अच्छ छुयो हनुमंत।—केशव (शब्द०) (ख) मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिबै काज। दृग-मग-पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज।—बिहारी र० दो० ४१३।

अच्छ³ Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष प्रा० अच्छ] १ आँख। नेत्र। उ०—(क) कहँ पदमाकर न अच्छन प्रतच्छ होत अच्छन न आगे हू अविच्छ गाइयतु है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) जो तब अच्छ समच्छ सकत कर पकरि कृपानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १०१। २ रुद्राक्ष। उ०—माँजी औ उरबीत अच्छ कंठा बल धारे।—रत्नाकर, भा० १ पृ० १०१। ३ अक्षकुमार नामक रावण का बेटा। उ०—रखवार हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा।—तुलसी (शब्द०)।

अच्छत¹†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत] बिना टूटा हुआ चावल जो मंगल द्रव्यों में गिना जाता है और देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंगल तुलसि बिराजा।—मानस १।१४।

अच्छत²—वि० अखंडित। लगातार। उ०—राधौ हेरत जो गयो, अच्छत हिये समाधि। वह तन राघव घाघ भा, सकै न कै अपराध।—जायसी (शब्द०)।

अच्छत³ Ⓤ—क्रि० वि० [हिं० अछत] रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। उ०—जुद्धौं कौं करत छत्रजन नहीं है तुम्हैं सुनि महाराज अच्छत हमारे।—सूर०, १०।८१६४।

अच्छभल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। भल्लक (को०)।

अच्छम Ⓤ—वि० [सं० अक्षम] असमर्थ। अशक्त। लाचार। उ०—सबहि समरथहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२।

अच्छय Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—पैं रत्नछक रत्न दच्छ देखि अच्छय बर मानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १६४।

अच्छयतृतिया Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षय तृतीया'। उ०—अच्छय तृतिया, अच्छय सुखनिधि पिय को प्यारी चढ़ावै चंदन।—नंद० ग्र०, पृ० ३७१।

अच्छर[1] ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, पा० अक्खर, प्रा० अच्छर] अक्षर। वर्ण। हर्फ। उ०—द्वादस अच्छर महामंत्र के अविकल जापी।— रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६।

अच्छर[2] ⓤ—वि० दे० 'अक्षर[1]'। उ०—अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।— कबीर श०, पृ० ५८।

अच्छर[3] ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर] अप्सरा। उ०—का सरद चंद निसार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।—जायसी (शब्द०)।

अच्छरा ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। उ०—तारि कै छरा सो अच्छरा सी यों निचारि कहै 'तमनै कहे तें कन मुकता मे पानी है'।—भूषण ग्रं०, पृ० २२४।

अच्छरि ⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अच्छरी'। उ०—घन अच्छरि अच्छ कुलच्छ करै।—पृ० रा०, २४।१ ६४।

अच्छरी ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—बनि नाचती सुर अच्छरी जिन भाव मोह। सिद्ध हैं।—गुमान (शब्द०)।

अच्छा[1]—वि० [सं० अच्छक, प्रा० अच्छअ = स्वच्छ, निर्मल] १ उत्तम। भला। बढिया। उमदा। खरा। चोखा।

मुहा०—अच्छा आना = (१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना। जैसे—तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०)। (२) ठीक उतरना। सुंदर बनना, जैसे—इस कागज पर चित्र अच्छा नहीं आता (शब्द०)। अच्छा करना = अच्छा काम करना। जैसे,—तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आए (शब्द०)। अच्छा कहना प्रशंसा करना, जैसे—कोई तुम्हें अच्छा नहीं कहता (शब्द०)। अच्छा घर = संपन्न घर। प्रतिष्ठित कुल। अच्छा दिन = सुख संपत्ति का दिन जैसे—उसने अच्छे दिन देखे हैं (शब्द०)। अच्छी काटना, गुजरना या बीतना = अच्छी तरह बीतना। आनंद से दिन कटना, जैसे—यहाँ से वहाँ अच्छी बीतेगी (शब्द०)। अच्छा रहना = अच्छी दशा में रहना। लाभ वा आराम में रहना, जैसे—तुम से तो हमी अच्छे रहे जो कहीं नहीं गए (शब्द०)। अच्छा लगना = (१) भला जान पड़ना। सजना। सोहना, जैसे—तुम्हारे सिर पर यह टोपी नहीं अच्छी लगती (शब्द०) (२) रुचिकर होना। पसंद आना, जैसे—हमें यह फल नहीं अच्छा लगता। हम तुम्हारी यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०)। अच्छे वक्त = ठीक समय से। आवश्यकता के समय। जरूरत के वक्त। अच्छे से पाला पड़ना = बेढंगे व्यक्ति से काम पड़ना। अच्छे हाल गुजरना = साधारणतः सुख से दिन बीतना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्यंग्य रूप से बहुत होता है। जैसे—'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले'। जब कोई बात किसी को नहीं जँचती तब वह उसके कहने वा करनेवाले के प्रति प्रायः कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले'।

२ स्वस्थ। चंगा। तंदुरुस्त। नीरोग। आरोग्य, जैसे—'तुम किसकी दवा से अच्छे हुए' (शब्द०)?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अच्छा[2]—संज्ञा पुं० १ बड़ा आदमी श्रेष्ठ पुरुष। जैसे—मैंने अच्छे अच्छों को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०)। २ गुरुजन। बापदादा। बड़ा बूढ़ा, जैसे—दोगे क्यों नहीं? मैं तो तुम्हारे अच्छे अच्छों से लूँगा (शब्द०)।

अच्छा[3]—क्रि० वि० अच्छी तरह। पूर्ण। बहुत। जैसे—तुमने यहाँ बुलाकर हमें अच्छा तंग किया (शब्द०)।

अच्छा—अव्य० १ प्रार्थना या आदेश के उत्तर में (प्रश्न के नहीं) स्वीकृतिसूचक शब्द। जैसे—'(आदेश)—तुम कल आना (उत्तर)—अच्छा' (शब्द०)। उ०—फिर बोले—अच्छा यहीं कै कर सेवन तन।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३। २. इच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर अथवा उस होती हुई या होनेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता है। जैसे—(क) अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आगे से सावधान रहना चाहिए। (ख) अच्छा हम देख लेंगे (शब्द०)।

अच्छाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा + ई (प्रत्य०)] अच्छापन। उत्तमता। श्रेष्ठता। सुंदरता। सुघराई।

अच्छाखासा—वि० [हिं० अच्छा + खासा] पूर्णतः स्वस्थ। तंदुरुस्त। काफी अच्छा। पूरा। बढ़ा चढ़ा।

अच्छापन—संज्ञा पुं० [हिं० अच्छा + पन] (प्रत्य०)] अच्छे होने का भाव। उत्तमता। सुघराई।

अच्छाबुरा—वि० [हिं०] सुंदर या खराब। भला बुरा।

अच्छावाक—संज्ञा पुं० [सं० अच्छावाक्] १ आह्वान करनेवाला। यज्ञ करानेवाले होता, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों में से एक। २ दे० ऋत्विज'।

अच्छाबिच्छा—वि० [हिं० अच्छा + बीछना = चुनना] १ दुरुस्त। खासा। चुना हुआ। २ भला चंगा। नीरोग।

अच्छि ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] नेत्र। आँख। उ०—जयचंद राज की अच्छि पिष इक भई सर्व खत।—पृ० रा०, ६३।१४६।

अच्छित ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्छत'। उ०—कंचन थार में कुंकुम अच्छित तिलकु करति नंदलाल के।—छीत०, पृ० ३०।

अच्छिद्र[1]—[सं०] १. छिद्ररहित। रंध्रविहीन। २ अखंडित। अक्षत। ३ फूट प्रमाद आदि से रहित। ४ सच्चा। ५. त्रुटिरहित (को०)।

अच्छिद्र[2]—संज्ञा पुं० १ अक्षुण्ण स्थिति या अवस्था। २ दोषरहित कार्य (को०)।

अच्छिन्न—वि० [सं०] १ छिद्ररहित। २ जो कटा न हो। अखंडित। साबित। ३ जो टूटा या विभक्त न हो। अविभक्त (को०)। ४ लगातार गतिशील (को०)।

अच्छिन्नपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ सदाबहार वृक्ष जिसमें पत्तियाँ बराबर रहती हैं। २. बिना कटे टूटे पत्तोंवाला पक्षी (को०)।

अच्छिन्नपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्छिन्नपत्र' (को०)।

अच्छिय ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—देइ द्रव्य लै अच्छी अच्छिय।—पृ० रा०, १।४०२।

अच्छिर ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—बंभि विनारिय दाहिमा निम्मित अच्छिर नूत।—पृ० रा० (उ०), भा० १, पृ० २१२।

अच्छुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की १६ देवियों में से एक।

अच्छरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मंडल या घेरा। २. चक्र या रथांग [को०]।

अच्छेदिक—वि० [सं०] काटने या छेदने के अयोग्य [को०]।

अच्छेद्य—वि० [सं०] अविभाज्य। विभाग न करने लायक [को०]।

अच्छैदिक—वि० [सं०] दे० 'अच्छेदिक' [को०]।

अच्छै बिरिछ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षय वृक्ष'। उ०—सत पुरुष अच्छै बिरिछ निरजन डारा।—संतवाणी०, भा० २, पृ० १८।

अच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार [को०]।

अच्छोत—वि० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत ?] १ पूरा। २ अधिक। बहुत। उ०—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ कर्यो तासो या भाइ। मेरे हेतु दुखी तू होत। कै अधर्म तुम पर अच्छोत।—सूर (शब्द०)।

अच्छोद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बाणभट्ट द्वारा कादंबरी में उल्लिखित हिमालयस्थ एक सरोवर।

अच्छोद[2]—वि० स्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०]।

अच्छोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणों में वर्णित एक नदी [को०]।

अच्छोहिन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षौहिणी'।

अच्छोहिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अक्षौहिणी सेना।

अच्यत—वि० [हिं०] दे० 'अचित्य[1]'। उ०—अच्यत च्यत ए माधो सो मन माहि समाना।—कबीर ग्र०, पृ० १००।

अच्यता—क्रि० वि० [सं० अचिन्तित] अकस्मात्। आकस्मिक रूप से। उ०—काल अच्यता झडपसी ज्यूं तीतर को बाज।—कबीर ग्र०, पृ० ७२।

अच्युत[1]—वि० [सं०] १. जो गिरा न हो। २. दृढ़। अटल। स्थिर। ३ नित्य। अमर। अविनाशी। ४. जो न चूके। जो त्रुटि न करे। जो विचलित न हो। ५ न चूने या टपकने वाला (को०)।

अच्युत[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु और उनके अवतारों का नाम। २ वासुदेव। कृष्ण (को०)। ३. जैनियों के चार श्रेणी के देवताओं में चौथी अर्थात् वैमानिक श्रेणी के कल्पभव नामक देवताओं का एक भेद। ४. एक पौधे का नाम। ५ एक प्रकार की पद्य रचना जिसमें १२ वर्ण होते हैं (को०)।

अच्युतकुल—संज्ञा पुं० [सं० अच्युत+कुल] वैष्णवों का समाज और उनकी शिष्यपरंपरा। विशेषकर रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव लोग अपने को अच्युतकुल या अच्युतगोत्र कहते हैं।

अच्युतगोत्र—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्युतकुल'।

अच्युतज—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक देववर्ग जो विष्णु से उत्पन्न कहा गया है [को०]।

अच्युतपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामदेव। अनंग। २ कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मार्जनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

अच्युतवास—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जिसमें अच्युत अर्थात् विष्णु का निवास हो। पीपल का वृक्ष [को०]।

अच्युतषड्ज—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो छदंत्य नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतागज—संज्ञा पुं० [सं० अच्युताङ्गज] १ कामदेव। २ कृष्णपुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युतागज—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु के बड़े भाई इंद्र। २ श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम।

अच्युतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्युतपुत्र' [को०]।

अच्युतानंद[1]—वि० [सं० अच्युतानन्द] जिसका आनंद नित्य हो।

अच्युतानंद—संज्ञा पुं० आनंदस्वरूप परमात्मा। ईश्वर।

अच्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल वृक्ष [को०]।

अछभो—संज्ञा पुं० [सं० असम्भव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्चभुअ> अचानव] दे० 'अचभो' (डिं०)।

अछक—वि० [सं० अ=नहीं+चष, प्रा० चख, चक, छक,] बिना छका हुआ। अतृप्त। भूखा। उ०—तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौलौं जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं।—भूषण (शब्द०)।

अछकना—क्रि० वि० [हिं० अछक से नाम०] अतृप्त होना। तृप्त न होना। न अघाना। उ०—चपक बेलि चमेलिन में मधु छाक छक्यो अछक्यो अनुकूलै। मालती मंजु गुलाब समीर धरयो नहिं धीर मनोज की हूलै।—(शब्द०)।

अछगग—वि० [हिं०] दे० 'अछक'। उ०—परै के अछगगे। न बैरीन सगे।—पृ० रा०, ८।५२।

अछत[1]—क्रि० वि० [सं०क्ष√आक्षि, प्रा०√अच्छ] [क्रि० अ० 'अछना' का कृदंत रूप जिसका प्रयोग क्रि० वि० की तरह होता है।] १. रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। समक्ष। सामने। उ०—(क) खसम अछत बहु पीपर जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) आपु अछत जुवराज पद रामहि देउ नरेसु।—मानस, २।१। (ग) तिनहि अछत तुम अपने आलस काहें कत रहत हरि गात।—सूर०, १०।४२१५। २. सिवाय। अतिरिक्त।—लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।—मानस १।२७४।

अछत[2]—क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छइ=है] न रहते हुए। अनुपस्थित। उ०—गनती गनिबे तें रहे छतहूँ अछत समान।—बिहारी र०, दो० २७५।

अछताना पछताना—क्रि० अ० [सं० पश्चात्ताप, प्रा० पच्छाताव से विषम द्विरुक्त नाम०] बार बार किसी भूल या किसी बीती हुई बात पर खेद करना। पछताना। उ०—ऐसे सोच समझ अछताय पछताय भेवों सहित इंद्र अपने स्थान को गया।—लल्लूलाल (शब्द०)।

अछन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ+क्षण] क्षण मात्र नहीं। बहुत दिन। दीर्घकाल। चिरकाल। उ०—दैन कहहि फिर देत न जो है। भजन अछन को भाजन सो है।—पद्माकर (शब्द०)।

अछन[2]—क्रि० वि० [अ० (उच्चा०)+सं० क्षण, प्रा०, अप० छन] धीरे धीरे। ठहर ठहरकर। उ०—प्यारे इन घन गलियन आव। नैनन जल सों घाइ संवारी अछन अछन धरि पाव।—रसिक-बिहारी (शब्द०)।

अछना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस् का समानार्थक √सं० आक्षे, √प्रा० अच्छ, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना। उ०—(क) आतम तुझ पासइ अछइ ओलग रूडा रंग।—ढोला०, ११४। (ख) अछहि बेहम तबूल सो राती। जनु गुलाल देखे बिहँ राती।—जायसी (शब्द०)।

अछप(पु)—वि० [सं० अ + *छद्य = छिपना] न छिपने योग्य। प्रकट। प्रकाशमान। जाहिर। उ०—खोइ ख्याल समरत्थ कर, रहे सो अछप छपाइ। मोड सधि लै आयउ मोवत जगहि जगाइ।—कबीर (शब्द०)।

अछय(पु)—वि० [सं० अक्षय] दे० 'अछय'। उ०—करत सभा द्रुपद तनया की अबर अक्षय कियो।—सूर०, १।१३१।

अछयकुमार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयवृच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०—तिरवेनी से नीर मंगावो अछय वृच्छ के डार हो।—धरम०, पृ० ५७।

अछर[1](पु)—वि० [सं० अक्षर] दे० अक्षर[1]। उ०—अछर अच्युत अविकार है निराकार है जोइ।—सूर०, १०।११७५।

अछर[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर'। उ०—मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैन अछर से डोलै।—श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(पु)—क्रि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हिं० उछरना] उपटना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। अंकित देख पड़ना। उ०—बैठि भँवर कुच नारँग लारी। लागीं मुख अछरैं रँगराती।—जायसी (शब्द०)।

अछरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—ओहि भउँहहिं सरि कोउ न जीता। अछरइँ छपी, छपी गोपीना।—जायसी (शब्द०)।

अछरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर, प्रा० अच्छर + ई (प्रत्य०)] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—(क) मानउँ मयन मूरती, अछरी बरन अनूप।—जायसी (शब्द०)। (ख) सुता एक अछरी कै नाईं।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरौटी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर, प्रा० अच्छर + हिं० औटी (प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०—रसिक पपीहा साछी आछो अछरौटी के।—घनानंद, पृ० २०५।

मुहा०—अछरौटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल—वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। सीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा < अच्छ + वाई (प्रत्य०)] अच्छाई। सुंदरता। उ०—रति सींचे ढरी अछवाई भरी पिटुरीन गुराइये पेखि पगै।—घनानंद, पृ० १५।

अछवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अछ से नाम०] साफ करना। सँवारना। उ०—रूप सरूप सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।—जायसी (शब्द०)।

अछवानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका वा यमानी हिं० अजवाइन] अजवाइन, सोंठ तथा गेवों को पीसकर घृत में पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(पु)—वि० [सं० अक्षाम] १ जो पतला न हो। मोटा। बड़ा। भारी। २ जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा बलवान्।

अछित(पु)—क्रि० वि० [हिं० अछत] दे० 'अछत'। उ०—जीव अछित जोवन गया, कछू किया न नीका।—कबीर ग्र०, पृ० १४८।

अछिद्र—वि० [सं०] १ छिद्र या रंध्रहित। २ बेऐब। निर्दोष (को०)।

अछियार—संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा ?] एक प्रकार की गजी की साड़ी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] आम का पेड़।

अछूत[1]—वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त छुआ हुआ, प्रा० छुत्त] १. बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०—भीजे हार चीर हिय चोली। रही अछूत कंत नहिं खोली।—जायसी (शब्द०)। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०—अस के अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४४। ३ न छूने योग्य। नीच जाति का। अत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे—'मेहतर, डोम, चमार, आदि अछूत जातियाँ भी अपना संगठन कर रही हैं।'—(शब्द०)।

अछूत[2]—संज्ञा पुं० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। जैसे—'आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।—(शब्द०)।

अछूतपन—संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का भाव। जैसे—'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता है'।—आ० अ० रा०, पृ० ८७।

अछूता—वि० [हिं० अछूत] [स्त्री० अछूती] १ बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र उ०—दधि माखन दूँ, माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियो।—सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार—संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + उद्धार] १ अस्पृश्य जातियों के सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातिवत् व्यवहार कार्य। २. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद[1](पु)—वि० [सं० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद। अखंड्य। उ०—अभिन अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर०, ३।१३।

अछेद[2]—संज्ञा पुं० अभेद। अभिन्नता। छल छिद्र का अभाव। उ०—चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सौं करै अछेद।—जायसी ग्र०, पृ० १०९।

अछेदन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आच्छादन'। उ०—पाँच बासन श्वेत वस्तर कदलिपत्र अछेदना।—कबीर सा०, पृ० ५९।

अछेद्य—वि० [सं०] १ जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद्य। अखंड्य। २ अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्छेर] विस्मयजनक। अपूर्व। उ०—जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गत्त।—बाकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ९।

अछेवा—वि० [सं० अच्छेद्य या अछिद्र] छिद्र या दूषणरहित, निर्दोष। बेदाग। उ०—बरन सपद स्वच्छ पैन्हे आभूषण सब हीरन ही मानिक को रचि अछेव को।—रघुनाथ (शब्द०)।

अछेह—वि० [सं० अच्छेद्य] १ अखंड्य। निरंतर। लगातार। उ०—या बिरहीं मन मैं, आनि इहाँ बिन्हा धरे। आठौं जाम अछेह उर जुवान बरसत रहत।—बिहारी र०, दो० ४०५। २ अनंत। बहुत अधिक। अत्यंत। ज्यादा। उ०—(क) घरे रूप गुन दोउ बड़ु फिरै अछेह उछाह।—बिहारी र०, दो० ६००। (ख) दान दीरि पिय पग परनि, आदर कियो अछेह।—नंददास ग्र०, पृ० ६३।

अछैय—वि [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—उर मेटे सब विषम कोल का, अछै अमर पद लहिए।—कबीर ग्र०, पृ० २६।

अछोप—वि० [सं० अ+छुप] आच्छादनरहित। नंगा। नीच। तुच्छ। दीन। उ०—सेवा सजम कर जप पूजा, सबद न तिनको सुनावै। मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै।—दादू (शब्द०)।

अछोभ—वि० [सं० अक्षोभ] १ क्षोभरहित। चचलतारहित। उद्वेगशून्य। उ०—धीर धरी तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।—तुलसी (शब्द०)। २ स्थिर। गंभीर। शात। ३ मोहरहित। मायारहित। खेदरहित। उ०—जबते ब्राह्मण जनमिया, तब तें परधन लोभ। दे अक्षर कबहूँ नहीं उन्ह तें कौन अछोभ। कबीर—(शब्द०)। ४ निडर। निर्भय। ५ जिसे बुरा कर्म करते हुए क्षोभ या ग्लानि न हो। नीच।

अछोर—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० छोर=किनारा] अपार। अतुल। बिना आर छोर का।

अछोह[1]—सज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] १ क्षोभ का अभाव। २. शांति स्थिरता। ३ मोह का अभाव। दयाहीनता। करुणाशून्यता। निर्दयता।

अछोह[2]—वि० १ क्षोभरहित। २. स्थिर। शात। ३ मोहशून्य। ४ करुणारहित। निर्दय।

अछोही—वि० [हिं०] दे० 'अछोह'।

अजगम—सज्ञा पुं० [सं० अजगम] छप्पय नामक मात्रिक छंद के ७१ भेदों में से एक।

विशेष—इसमें कुल ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ लघु होते हैं। मात्राओं की संख्या १५२ है।

अजट—सज्ञा पुं० [अ एजेंट] १ प्रतिनिधि। किसी दूसरे की ओर से कार्य करनेवाला। २ किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूसरे राजा या सरकार के यहाँ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका कर्तव्य आवश्यकतानुसार अपने राजा या सरकार की इच्छाओं को प्रकट करना और उनके अनुसार कार्य करना है। ३ किसी कोठी की ओर से कमीशन या कुछ द्रव्य लेकर उसका सौदा बेचनेवाला। मुनीम। अढतिया।

अजटी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अजट+ई (प्रत्य०)] १ अजट का कार्यालय। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २. अजट का पद या काम।

अजत—वि० पुं० [सं० अच्+अन्त=अजत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्याहार हो। वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो। स्वरांत (व्या०)।

अजता—सज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाली वाघुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १९ कलात्मक गुफामंदिरों के लिये जगद्विख्यात है।

विशेष—मध्य रेलवे की इटारसी बंबई शाखा पर स्थित जलगाँव स्टेशन से उतरकर फरदापुर होते हुए अजंता जाने का मार्ग है। गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस पहाड़ों को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं। वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माणकाल ई० पू० दूसरी शती (गुहा संख्या १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (विहार गुहा १, २) है। आरंभिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है। १९वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है। इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सधे हाथों से अंकित हैं। रंग गहरे पक्के और चटकीले हैं, मानो कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है। ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है। अन्यान्य गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है। ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

अजतुक—वि० [सं० अजन्तुक] जंतुविहीन। प्राणीरहित। उ०—अजतुक, जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८।

अजभ[1]—वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का। दंतरहित।

अजभ[2]—सज्ञा पुं० १ मेंढक। २ सूर्य (को०)। ३. बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०)।

अजमत्त—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजमत'। उ०—अजमत्त भारी हमीर सु जानी।—ह० रासो, पृ० ८५।

अजसी—सज्ञा स्त्री० [अ० एजेंसी] १ अजट के रहने का स्थान। अजट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २ आढत। आढत की दूकान। वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सौदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखी जाय।

अज[1]—वि० [सं०] जिसका जन्म न हो। जन्म के बंधन से रहित। अजन्मा। स्वयंभू। उ०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।१४०।

अज[2]—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। उ०—लगन बाचि अज सबहि सुनाई।—मानस, १।९१। २ विष्णु। ३ शिव। ४ ईश्वर (को०)। ५. कामदेव। ६. चंद्रमा (को०)। ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे।

८. बकरा। उ०—तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१६। ९. मेंढ़ा। १०.

माया शक्ति। ११ जीव (को०)। १२. ज्योतिष मे शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रो की जो एक एक वीथी मानी गई है, उनमे से एक, जो हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्र मे होती है। १३. एक ऋषि (को०)। १४ मेषराशि (को०) १५ अग्नि (को०)। १६ एक प्रकार का धान्य (को०)। १७ माक्षिक धातु (को०)। १८ सूर्य का रथ (को०)।

अज[3] पु—क्रि० वि० [स० अद्य, प्रा० अज्ज] अब। अभी तक।

विशेष—इस शब्द को 'हूँ' के साथ देखा जाता है, स्वतत्र रूप मे नही, जैसे—(क) उठी कबीरा विरहिनी अजहूँ ढहै खेह।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निमि भोर।—जायसी (शब्द०)। (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै।—सूर० १।६३। (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमारा।—मानस, १।८०।

अज[4]—प्रत्य० [फा० अज] से। उ०— लिये खाँटि ऊपर अज जान होर दिल।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

अजक[1]—वि० वि० [स० अ = नहीं + फा० जक = पराजय] अपराजेय। उद्धत। उ०—अजक अपीधा अनल ज्यूँ विरण कीधा रणताल।—राज०, पृ० ७४।

अजक ‡—सज्ञा स्त्री० रोग। पीडा। उ०—एक जडी तोइ ऐसी री दुखो, मिटि जाइ अजक तिहारी।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६६५।

अजक[3]—सज्ञा पुं० [स०] पुरुरवा के वश का एक राजा [को०]।

अजकजा—सज्ञा पुं० [फा० अज + अ० कजा] सयोगवश। उ०—अजकजा जब शेख गए बस्ती भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २८१।

अजकर्ण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजकर्णक' [को०]।

अजकर्णक—सज्ञा पुं० [स०] १. साल का पेड। सालवृक्ष २. अमन का वृक्ष [को०]।

अजकव—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजगव'।

अजका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कम उम्रवाली बकरी। २ बकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रथि। अजागलस्तन। ३ नेत्रो का एक रोग। अजकाजात [को०]।

अजकाजात—सज्ञा पुं० [स०] आँख मे होनेवाली लाल फुली जो पुतली को ढँक लेती है। टेंडव या ढेंढड। नाखुना।

अजकाव—सज्ञा पुं० [स०] १ शिव का धनुष। अजगव। २ बबूल का वृक्ष। ३ काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से सबद्ध है (को०)। ४ एक नेत्ररोग। अजकाजात [को०]। ५ अजका रोग का विष [को०]।

अजखुद—क्रि० वि० [फा०]। स्वय। आप से आप। उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१।

अजगधा—सज्ञा स्त्री० [स० अजगन्धा] अजमोदा।

अजगधिका—सज्ञा स्त्री० [स० अजगन्धिका] १ वनतुलसी का पौधा। बर्बरी।

अजगधिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अजगन्धिनी] १ काकडासीगी। २ वनतुलसी का पौधा [को०]।

अजग—सज्ञा पुं० [स०] १ शिव का धनुष। २ विष्णु का नाम। ३ अग्नि [को०]।

अजगर—सज्ञा पुं० [स०] १ बकरी निगलने वाला साँप। बहुत मोटी जाति का एक सर्प। उ०—(क) बैठि रहेसि अजगर इव पापी।—मानस, ७।१०७। (ख) बिन आशा बिन उद्यम कीने अजगर उदर भरै।—सूर०, १।१०५। अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम। दास मलूका कहि गए सब के दाता राम —मलूक (शब्द०)।

विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से इधर उधर टल नही सकता और बकरी, हिरन ऐसे बडे पशुओ को निगल जाता है। और सर्पों के समान इसके दाँतो मे विष नही होता। यह जतु अपनी स्थूलता और निरुद्यमता के लिये प्रसिद्ध है। २, एक दानव (को०)।

अजगरी—सज्ञा स्त्री० [स० अजगरीय] अजगर की सी निरुद्यम वृत्ति। बिना परिश्रम की जीविका। उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन। कहै कबीर ताके गहे महा परम सुख चैन।—कबीर (शब्द०)।

अजगरी[2]—वि० १ अजगर की सी। २ बिना परिश्रम की।

अजगरी[3]—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधे का नाम [को०]।

अजगरीवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] बिना श्रम की जीविका। अजगरी।

अजगलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] मूँग के दाने के बराबर छोटी पीडा-रहित फुसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है

अजगलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजगलिका' [को०]।

अजगव—सज्ञा पुं० [स०] १ शिव जी का धनुष। पिनाक। उ०—नही इसी से चढी शिजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी।—कामायनी पृ० १०५। २ अजवीथी (को०)।

अजगाव—सज्ञा पुं० [स०] १ शिव का धनुष। २ नागो के एक गुरु। ३ एक प्रकार यज्ञपात्र। ४ अजवीथी [को०]।

अजगुत—सज्ञा पु० [स० अयुक्त हिं० अजुगुति] १ युक्ति विरुद्ध बात। अचभे की बात। आश्चर्यजनक भेद। असाधारण बात। अस्वाभाविक व्यापार। अप्राकृतिक घटना उ०—आई करगी भो अजगूता। जनम जनम जम पहिरे बूना।—कबीर (शब्द०)। २ अयुक्त बात। अनुचित बात। बेजोड बात। उ०—सरबस लूटि हमारो लीनो राज कुवरी पावै। तापर एक मुनी री अजगुत लिख लिख जोग पठावै —सूर (शब्द०)।

अजगुत[2] पु ‡—वि० १, आश्चर्यजनक। अद्भुत। विलक्षण। २ अनुचित। अयुक्त। बेजोड। उ०—पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत बात विचारी। सिंह को भक्ष्य शृगाल न पावै हौं समरथ की नारी।—सूर (शब्द०)।

अजगुथ्या पु ‡—वि० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—विभीषण भेद कही अजगुथ्या।—कबीर सा०, पृ० ४१।

अजगैव[1]—क्रि० वि० [फा०] अलक्षित स्थान से। गैब से। अदृष्ट से [को०]।

अजगैव[2] पु—सज्ञा पुं० [फा० अज + अ० गैब] अलक्षित स्थान। अदृष्ट स्थान। उ०—दादू टरिए लोक तें, कैसी घरहि उठाइ। अनदेखी अजगैव, कैसी कहइ बनाइ।—दादू (शब्द०)।

अजगैवी(यु)—वि० [फा० अज+अ० गैबी+ई (प्रत्य०)] रहस्यपूर्णता। अलौकिकता। उ०—कहै पदमाकर त्यो तारन विचारन की विगर गुनाह अजगैवी गैर आव की।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२४।

यौ०—अजगैबी गोला, अजगैबी तमाचा=दैवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट। अजगैबी तमाशा=आश्चर्य करनेवाला खेल। अजगैबी मार=दे० 'अजगैबी गोला'।

अजघन्य—वि० [स०] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अनिम या उपेक्ष्य न हो [को०]।

अजघोष—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमे रोगी के शरीर से बकरे की गध आती है।—(माधव०)।

अजजीव—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजजीविक' [को०]।

अजजीविक—सज्ञा पुं० [स०] बकरे पालकर उनके विक्रयादि के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] भूम्यामलकी। कपिकच्छू [को०]।

अजड¹—वि० [सं०] जो जड न हो। चेतन।

अजड²—सज्ञा पुं० चेतन पदार्थ।

अजड³—वि०, सज्ञा पुं० [स० अजड] दे० 'अजड'

अजण—सज्ञा पुं० [सं० अर्जुन] राजा सहस्रार्जुन।—(डिं०)।

अजथ्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीले रग की जूही का पेड और फूल। २ पीली चमेली। जर्द चमेली। ३ बकरो का समूह (को०)।

अजदडी—सज्ञा स्त्री० [सं० अजदण्डी] एक प्रकार का पौधा। ब्रह्मदडी [को०]।

अजदर—सज्ञा पुं० [फा० अजदर] दे० 'अजदहा'। उ०—अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२२।

अजदहा—सज्ञा पुं० [फा०] बडा मोटा और भारी साँप। अजगर।

अजदाह—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० अजदहा'। उ०—सत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले बिन फिरे आहार आवै।—पलटू०, पृ० २६।

अजदेवता—सज्ञा पुं० [स०] १ अग्नि। २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०]।

अजधाम—सज्ञा पु० [स० अज+धाम] ब्रह्मलोक। उ०—(क) पद पाताल सीस अजधामा।—मानस ६।१५। (ख) पद हैं पताल दिग श्रुति अजधाम भाल बाल घन माल काल भृकुटी विलास है।—दीन० ग्र०, पृ० १५५।

अजनदन—सज्ञा पुं० [स० अज+नन्दन] रघुवश के राजा अज के पुत्र दशरथ। उ०—त्याग दिया आज अजनदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्रण सत्य कारण अपत्य है।—साकेत, प० २०१।

अजन¹—वि० [स०] १ जन्म के बधन से मुक्त। जन्मरहित। अजन्मा। अनादि। स्वयभू। उ०—सकललोक नायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयो।—सूर०, १०।४। २ निर्जन। सुनसान। उ०—मो उर अजन अजिर मैं निज जोतिहि जमाय जागौगे।—घनानद, पृ० १६२।

अजन²—सज्ञा पुं० [सं०] १ अयोग्य व्यक्ति। अप्रिय व्यक्ति। तुच्छ जन। उ०—हँसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के बने मगल।—अर्चना, पृ० २७। २ पितामह। ब्रह्मा (को०)। ३ गति गमन (को०)।

अजनक—वि० [स०] उत्पादन न करनेवाला। अनुत्पादक [को०]।

अजननि—सज्ञा स्त्री० [स०] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति। उत्पन्न न होना [को०]।

अजननीय—वि० [स०] जनन के अयोग्य। जो उत्पादनीय न हो।

अजननी—वि० [अ०] १. अज्ञात। अपरिचित। जिसे कोई जानता न हो। बिना जान पहिचान का। नया। परदेशी। २ अनजान। नावाकिफ।

अजनबीपन—सज्ञा पुं० [अ० अनजबी+हिं० पन (प्रत्य०)] अजनबी होने का भाव। उ०—उसपर दो भाषाओ के अजनबीपन की छाप दिखाई पडी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४२।

अजनयोनिज—सज्ञा पुं० [स०] दक्ष प्रजापति [को०]।

अजनाभ—सज्ञा पुं० [स०] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजनामक—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०]।

अजनाशक—सज्ञा पुं० [स०] भेडिया [को०]।

अजन्मी¹—वि० [स० अजन्मा] दे० 'अजन्मा'। उ०—आतम अजन्म सदा अविनासी। ताको देह मोह बड फाँसी।—सूर० ५।१४।

अजन्म²—सज्ञा पुं० [स०] जन्म का अभाव। जन्म न होना [को०]।

अजन्मा—वि० [स०] जन्मरहित। जिसका जन्म न हुआ हो। जो जन्म के बधन मे न आवे। अनादि। नित्य। अविनाशी।

अजन्य¹—सज्ञा पुं० [स०] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे—भूकप आदि।

अजन्य²—वि० १ जन्य या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त। २ उत्पादन के अयोग्य। अजननीय [को०]।

अजप—सज्ञा पुं० [स०] १ कुपाठक। बुरा पढनेवाला ब्राह्मण। २ बकरी, भेड पालनेवाला। गडेरिया।

अजपति—सज्ञा पुं० [स०] १ उत्तम एव श्रेष्ठ बकरा। २ भौम। मगल [को०]।

अजपथ—सज्ञा पुं० [स०] १ छायापथ। अजवीथी (को०) २ वह पथ जिसपर केवल बकरी ही चल सके। अत्यत सँकरा मार्ग।

विशेष—अजपथ के विषय मे बृहत्कथा श्लोकसग्रह मे लिखा है कि यह रास्ता इतना कम चौडा होता था कि आमने सामने से आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे।

अजपथ्य—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजपथ' [को०]।

अजपद—सज्ञा पुं० [स०] अजैकपाद नामक रुद्र [को०]।

अजपा¹—वि० [स०] १ जिसका उच्चारण न किया जाय। उ०—जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।—अपारा, पृ० ४१। २ जो न जपे या भजे।

अजपा²—सज्ञा पुं० १ उच्चारण न किया जानेवाला तात्रिकों का मत्र। वह जप जिसके मूल मत्र 'हस' का उच्चारण श्वास-प्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय। हस मत्र। उ०—अजपा जपत सुनि अभिअतरि, यहु तत जानै सोई।—कबीर ग्र०, पृ० १५६।

विशेष—इसका देवता अर्धनारीश्वर अर्थात् शिव और शक्ति का संयुक्त रूप है। इस जप की संख्या एक दिन और रात में २१, ६०० मानी गई है।

यौ०—अजपाजप, अजपाजाप = इस मंत्र का जप। उ०—अजपा-जाप उनमनी तारी।—कबीर ग्र०, पृ० १५८। अजपामाला = अजपा जपने की माला या प्रक्रिया। उ०—सिद्धक उनमनी भल जपत है अजपा माला।—पलटू०, भा० १, पृ० १००। २ बकरियों का पालक। गड़ेरिया।

अजपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र (को०)।

अजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी पालने का व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति। उ०—'कृषक, अजपाल और व्यापारी लोगों के लिये शुभाशीर्वाद सूचक मंत्र है'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ६२।

अजबघु—संज्ञा पुं० [सं० अजबन्धु] सूर्य। अज के समान मंद बुद्धि-वाला व्यक्ति (को०)।

अजब[1]—वि० [अ०] विलक्षण। अद्भुत। आश्चर्यजनक। विचित्र। अनोखा। अनूठा। उ०—कारी निसि कारी घटा, बरत रति कारे नाग। कारे कन्हर पै चली, अजब लगन की लाग।—पद्माकर (शब्द०)।

अजब[2]—संज्ञा पुं० अचभा। अचरज (को०)।

अजबस—क्रि० वि० [फा०] एकाएक। उ०—लगे गुलजन पे अजबस गम के हाथों।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

अजभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़ जिसकी पत्ती बकरियाँ अधिक चाव से खाती हैं।

अजम—संज्ञा पुं० [अ०] अरब के अलावा ईरान, तूरान आदि देश अथवा वहाँ के निवासी। उ०—अरब और अजम तुर्क ताजिक व रूम।—दक्खिनी, पृ० २१३।

अजमत—संज्ञा पुं० [अ० अजमत] १. प्रभुत्व। प्रताप। शान। महत्व। उ०—आपकी उल्का ईसा की सब अजमत साज मिटाएगी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५६। २. चमत्कार।

अजमाइश†—संज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] दे० 'आजमाइश'।

अजमाना†—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'आजमाना'।

अजमायु—वि० [सं०] बकरे की तरह मिमियानेवाला (को०)।

अजमार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसाई। २ अजमेर का एक नाम। ३. एक जाति (को०)।

अजमी[1]—वि० [अ०] अजम संबंधी। अजम का। [को०]।

अजमी[2]—संज्ञा पुं० अजम का निवासी व्यक्ति। ईरानी तूरानी [को०]।

अजमीढ—संज्ञा पुं० [सं० अजमीढ] १ अजमेर का पुराना नाम। २ पुरुवंशीय हस्ति के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ३ पुरुवंश के एक राजा का नाम। ४ सृष्टि की उत्पत्ति [को०]।

अजमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का एक नाम [को०]।

विशेष—यज्ञ में शिव का अपमान करने पर सती के प्राणत्याग के बाद वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का ध्वंस किया और उसे मार डाला। बाद में शिव की आज्ञा से उसे जीवित करने के लिये बकरे का सिर लगा दिया था। 'शिवपुराण' में इसका विस्तृत विवरण है।

अजमुख[2]—वि० बकरी की तरह मुखवाला। बकरमुहाँ [को०]।

अजमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की अनोखी वाद्य में गाने की प्रणाली जिसे मियाँ तानसेन ने चलाया था [को०]।

अजमूदा—वि० [फा० खामूदा] दे० 'आजमूदा'।

अजमोद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अजमोदिका] अजवायन की तरह का एक पेड़ और उसका फल। बनी अजवायन।

विशेष—यह जाड़े में बोया जाता है। इसके बीज या फल मसाले और औषधि के काम आते हैं। यह अजीर्ण, कफरोग तथा शरीर का फीलापन दूर करने के लिये प्रसिद्ध है।

पर्या०—उग्रगंधा। गंधफला। सिंधिमोदा। वह्निदीपिका। मयटी। मागुरी। वनयमानी। हस्तिकारवी।

अजमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' [को०]।

अजमोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' [को०]।

अजय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पराजय। हार। जय का अभाव। २. अग्नि (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४. एक कोलसार का नाम (को०)। ५. छप्पय छंद के ७१ भेदों में से पहला जिसमें ७० गुरु और १२ लघु मिलाकर ८२ वर्ण और १४२ मात्राएँ हैं।

अजय[2]—वि० न जीतने योग्य। जो जीता न जा सके। अजेय। उ०—जीति को सकै अजय रघुराई। माया तें अति प्रबल न जाई।—मानस, ६।१३।

अजयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ संगीत में भैरव राग का पुत्र।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ एक राजा का नाम। ३. जयपालगोटा।

अजया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजया। भाँग। २. दुर्गा की एक सखी का नाम (को०)। ३. माया (को०)।

अजया[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अजा] बकरी। उ०—छोड़ परहि विश्वास गृह, धनी सिखैगे काम। अजया सद्द मनाय चढ़ी, सिंघ पोषन धाम।—कबीर (शब्द०)।

अजय्य—वि० [सं०] १. अजेय। जो जीता न जा सके। २. सीमा में अजेय (को०)।

अजर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिरस। देवता (को०)। २ परमात्मा। ईश्वर का एक नाम। ३ पुराणानुसार एक जीवितपुत्रिका नामक पौधा (को०)।

अजर[2]—वि० १ जरारहित। जो बूढ़ा न हो। उ०—अजर अमर सो होहि न जाई। सदा सुखी जेहि जियहि खाई।—मानस, १।८१। २. नाशरहित। अक्षयहित।

अजर[3]—वि० [सं० अ+जीर्ण+तृ (भर)+अपत्ता] अपच। अजीर्ण। उ०—अजर अमर अविगत का पूरी कर्म का अपार। निरंजन सब ही ते न्यारा कबीर विचार।—कबीर (शब्द०)।

अजर[4]—संज्ञा पुं० [सं०] दालचीनी। पुन्नाग। पत्र। उ०—पै अजर के अजर का आगर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६३।

अजर[5]†—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] दे० 'अजिर'। उ०—आजर न मेरे माँ न मेरे बाप, सुत, और सखा नहीं है कोई। मेरे तो एक अजर की।—सुंदर०, पृ० ६६।

अजरक--सज्ञा पुं० [स०] अग्निमाद्य। मदाग्नि [को०]।

अजरद्रुम--सज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०]।

अजरा--सज्ञा स्त्री० [स०] १ घृतकुमारी। घीकुआर। २ विधारा। ३ गृहगोधा। छिपकली (को०)।

अजरायल[1]--वि० [सं० अजर+हिं० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न हो। जो पुराना न हो। जो सदा एक सा रहे। अमिट। पक्का। चिरस्थायी। उ०—दिना चारि में सब मिटि जैहैं। श्याम रग अजरायल रैहैं।—सूर० (शब्द०)।

अजरायल[2]†--वि० [स० अ=नहीं+दर=भय] १ निर्भय। बेडर। निशक। उ०—तस कुठार द्रग तायल राह बरात ईख अजरायल।—रघु० रू० पृ० ८६। २ बलवान्। शक्तिशाली। उ०—रीठ बागो उभय ओड अजरायला।—रघु० रू०, पृ० १८३।

अजराल--वि० [सं० अ=नहीं+जू पुराना पड़ना] बलवान्। जोरावर।--डिं०।

अजरावन--वि० [स० अजर+आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर'। उ०—भलै सु दिन भयो पूत अमर अजरावन रे।—सूर०, १०।२८।

अजरावर(यु)—वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित। उ०—आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूं अजरावर होय आपु जीया।—रामानद०, पृ० ५।

अजर्य[1]—वि० [सं०] १ जरारहित। २ पचाने के अयोग्य। अपाच्य। ३ चिरकाल तक रहनेवाला। चिरस्थायी [को०]।

अजर्य[2]--सज्ञा पुं० मैत्री। दोस्ती [को०]।

अजलवन--सज्ञा पुं० [सं० अजलम्बन] सुरमा [को०]।

अजल--सज्ञा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु। मौत। उ०--ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है बसा, है अजल भी तो खफा।--श्यामा०, पृ० १०२।

अजलचर--वि० [सं० अ=नहीं+जलचर] जो जलचर न हो। जो जल मे न रहता हो। स्थलचर। थलचर उ०--अरु तहँ बहुत जुगनि की कह्यौ। सर्प अजलचर क्यो जल रह्यौ।--नद० ग्र०, पृ० २७६।

अजलोमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड।

अजलोमी--सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०]।

अजव—वि० [सं०] वेगरहित। गतिहीन [को०]।

अजवल्ली—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजशृगी' [को०]।

अजवाइन--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजवायन'। उ०--रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि।—सूर०, १०।१२१३।

अजवायन—सज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी। एक पौधा। जवाइन।

विशेष--यह पौधा सारे भारत मे, विशेषकर बगाल मे लगाया जाता है। यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि देशो मे भी होता है। भारतवर्ष मे इसकी बोआई कार्तिक, अगहन मे होती है। इसके बीज जिनमे एक विशेष प्रकार की महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और दवा के काम आते हैं। भभके पर उतारने से बीज मे से अर्क (अमूम का पानी) और तेल निकलता है। भभके से उतारते समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जमें जाती है जो बाजार मे 'अजवायन के फूल' के नाम से बिकती है। अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीडा आदि मे किया जाता है।

अजवाह[1]—सज्ञा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजवाह[2]--वि० अजवाह देश का [को०]।

अजवीथि--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजवीथी' [को०]।

अजवीथी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी मार्गों मे से एक। छायापथ। गगनसेतु। २. बकरे के चलने की राह या मार्ग [को०]।

अजशृगी—सज्ञा स्त्री० [स० अजशृङ्गी] एक वृक्ष। मेढासिंगी।

विशेष--यह भारतवर्ष मे प्राय समुद्र के किनारे होता है। इसकी छाल 'सकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगो मे दी जाती है। इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है।

अजस(यु)--सज्ञा पुं० [स० अयश प्रा० अजस] अयश। अपयश। अपकीर्ति। बुरी ख्याति। बदनामी। उ०--सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुबि कहाइ अजस को लेई।—मानस, १।२४७।

यौ०--अजस पेटारी=अपयश की भागिनी। उ०—अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।—मानस २।१२।

अज सरे नौ—क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से। नए ढग से [को०]।

अजसी(यु)—वि० [स० अयशिन्] जिसकी बुरी कीर्ति हो बदनाम। निंद्य। अपयशी। उ०—कौल कामबस कृपन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।—मानस, ६।३१।

अजस्र—क्रि० वि० [स०] सदा। निरतर। हमेशा। लगातार। उ०—'आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा।'—लहर, पृ० ५६।

अजस्रता--सज्ञा स्त्री० [स० अजस्र+ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का भाव या क्रिया। नैरतर्य। उ०--'तुममे या मुझमे या हमारे प्रेम मे ही अजस्रता नही है'।--चिंता०, पृ० ६४।

अजहत्—वि० [स०] त्याग न करनेवाला। न छोडनेवाला [को०]।

अजहति--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजहत्स्वार्था'।

अजहल्लक्षणा--संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजहत्स्वार्था' [को०]।

अजहल्लिग—सज्ञा पुं० [स० अजहल्लिङ्ग] सस्कृत व्याकरण मे वह शब्द या संज्ञा जो अन्य लिंग के शब्द के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होने पर भी अपने लिंग का त्याग न करे [को०]।

अजहत्स्वार्था--संज्ञा स्त्री० [स०] अलकार शास्त्र मे लक्षणा के दो भेदो मे से एक।

विशेष—इसमे लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोडकर उससे सपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे। जैसे--'भालो के आते ही शत्रु भाग गए'। यहाँ भालो से तात्पर्य भाला लिए सिपाहियो से है। इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं।

अजहद—क्रि० वि० [फा० अज+अ० हद्द] हद से ज्यादा। बहुत अधिक। उ०--सब पखियो मे मैं हूँ अजहद पाक तन।--दक्खिनी०, पृ० १७६।

अजहुँⓤ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजहूँ'। उ०—तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तारा गयद जाके अर्थनार्थ। --तुलसी ग्र०, पृ० ५०२।

अजहूँⓤ--क्रि० वि० [स० अद्य, प्रा० अज्ज + हिं० हूँ (प्रत्य०)] अब भी अद्यपि। आज भी। उ०—किती वार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छ टी।—सूर०, १०।१७५।

अजाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजाक्षी] नीलपुष्पी नामक पौधा [को०]।

अजाविका--संज्ञा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है।

अजाँ--संज्ञा स्त्री० [अ० अजाँ] दे० 'अजान[3]'। उ०--तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है।--भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८५१।

अजा[1]--वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो। जो उत्पन्न न की गई हो। जन्मरहित। उ०—अजा अनादि सक्ति अविनासिनि।--मानस, १।९७।

अज[2]--संज्ञा स्त्री० १ बकरी। २ साख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नही की गई और अनादि है। ३ शक्ति। दुर्गा। ४ भादो वदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है।

अजा[3]--संज्ञा पुं० [अ० अजा] १ मृत्यशोक। मातम। २ मातमपुर्सी [को०]।

अजाइबⓤ—संज्ञा पुं० [अ० अजायब] दे० 'अजायब'। उ०--अजब अजाइब नूर दीदम दादू है हैरान।--दादू, पृ० ५७७।

अजाखाना--संज्ञा पुं० [अ० अजाखानह्] वह स्थानविशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया रखा जाय या मर्सिया पढा जाय [को०]।

अजागर[1]--वि० [सं०] न जागनेवाला [को०]।

अजागर[2]--संज्ञा पुं० भृगराज। भँगरैया [को०]।

अजागलस्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी के गले मे लटकने वाली मास की स्तनकार छीमी। २ देखने मे उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०]।

अजाचⓤ--वि० [हिं०] दे० 'अयाच्य'। उ०--जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए।--रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४।

अजाचकⓤ[1]--संज्ञा पुं० [सं० अयाचक] न माँगनेवाला। वह जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो। सपन्न व्यक्ति।

अजाचकⓤ[2]--वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। सपन्न। भरापूरा। उ०--विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।--मानस, ७।१३।

अजाचीⓤ[1]†--संज्ञा पुं० [स० अयाचिन्] न माँगनेवाला। सपन्न पुरुष।

अजाचीⓤ[2]--वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। धन धान्य से पूर्ण। संपन्न। भरापूरा उ०—(क) कपि सबरी सुग्रीव विभीषन को जो कियो अजाची।--तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरुसुत आनि दिए जमपुर तै विप्र सुदामा कियौ अजाची। --सूर०, १।१८।

अजाजि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजाजी' [को०]।

अजाजी--संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा। जीरा।

अजाजील—संज्ञा० पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०]।

अजाजीव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीवक' [को०]।

अजात—वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २ जन्मरहित। अजन्मा।

अजातककुत्--संज्ञा पुं० [सं०] वह बछडा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो। छोटा बछडा। बछवा। उ०--जब तक बछडा बडा नही हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नही निकल आता था तब तक वह अजातककुत् और युवा होने पर पूर्णककुत् कहलाता था।--सपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

अजातदत—वि० [स० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हो। बिना दाँत का। दतविहीन [को०]।

अजातपक्ष--वि० [सं०] बिना पखवाला। जिसे पख उत्पन्न न हुए हो [को०]।

अजातरिपु--वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु [को०]।

अजातव्यजन—वि० [सं० अजातव्यञ्जन] अस्पष्ट आकृति या चिह्नवाला। जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०]।

अजातव्यवहार--वि० [स०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो बालिग न हो [को०]।

अजातशत्रु[1]--वि० [स०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो। बिना वैरी का। शत्रुविहीन।

अजातशत्रु[2]--संज्ञा पुं० १. राजा युधिष्ठिर। २ शिव। ३ वृहदारण्यक उपनिषद् मे वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो बडा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य बालाकि ऋषि को बहुत से उपदेश दिए थे। ४ राजगृह (मगध) के राजा बिंबिसार का पुत्र जो गौतमबुद्ध का समकालीन था।

अजातश्मश्रु—वि० [सं०] जिसे दाढी मूछ न निकली हो। छोटी उम्रवाला। अल्पवय [को०]।

अजातारि--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजाति[1]--वि० [सं०] १ जाति से निकला हुआ। जाति से बाहर। जातिरहित। पतित। पक्तिच्युत। उ०--कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहि। अगुन अमान अजाति मातुपितु हीनहि --तुलसी ग्र०, पृ० ३३। २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०]।

अजाति[2]--संज्ञा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव। अनुत्पत्ति [को०]।

अजाती[1]--वि० [स० अजाति] दे० 'अजाति'। उ०—चद न सूर दिवस नहिं राती। वरन भेद नहिं जाति अजाती।--कबीर सा०, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना। जैसे--'उसको बिरादरी ने अजाती कर दिया है।'—(शब्द०)।--होना।

अजाती[2]--संज्ञा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी। जातिच्युत व्यक्ति।

अजादⓤ—वि० [फा० आजाद] दे० 'आजाद'। उ०--हमैं नँदनदन मोल लिए। जम के फद काटि मुकराए, अभय अजाद किए। --सूर०, १।७१।

अजादनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०]।

अजादार—वि० [अ० अजा + फा० दार] मृत्युशोक करनेवाला। मातम मनानेवाला [को०]।

अजादारी—सज्ञा स्त्री० [अ० अजा + फा० दार + ई (प्रत्य०)] शोक। मातम [को०]।

अजान[1]—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाण [स्त्री० अजानी] १ जो न जाने। अनजान। अबोध। अनभिज्ञ। अबूझ। नासमझ। उ०—(क) तुम प्रभु अजित, अनादि लोकपति, हौं अजान मतिहीन।—सूर०, १।१८१। (ख) भक्त अरु भगवत एक है बूझत नहीं अजान।—कबीर (शब्द०)। २ न जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात। उ०—उसे दिखाती जगती का सुख, हँसी और उल्लास अजान।—कामायनी पृ० ३०।

अजान[2]—सज्ञा पुं० १ अज्ञानता। अनभिज्ञता। उ०—(क) 'मुझसे यह काम अजान मे हो गया।'—(शब्द०)। (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखो के अजान मे ललाई मे ही छिपती।—लहर, पृ० ७४।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे 'मे' के साथ ही होता है और दोनो मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं। कही कही इसका स्वतत्र प्रयोग भी प्राप्त होता है, जैसे—'जान अजान नाम जो लेइ। हरि बैकुठ वास तिहिं देइ।—सूर०, ६।४।

२. एक पेड जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उ०—कोइ चदन फूलहिं जनु फूनी। कोइ अजान बीरउ तर भूली।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—यह पीपल के बराबर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं। इसमे लबे लंबे सींर लगते हैं।

अजान[3]—सज्ञा स्त्री० [अ० अजान] वह पुकार जो प्राय मसजिद की मीनारो पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिदो मे बुलाने के लिये की जाती है। बाँग।

मुहा०—अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर मे नमाज करने के समय की सूचना देना। (२) प्रात काल मुर्गे का बोलना। मुर्गे का बाँग देना।

अजानता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञता। अजानपन। नासमझी। उ०—मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता है, जानराय जानत हौं सकल कला प्रवीन।—घनानद, पृ० ३६।

अजानपन—सज्ञा पुं० [हिं० अजान + पन] (प्रत्य०)] अनजानपन। अज्ञानता। नासमझी। उ०—जो लोग औरो की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने में औरो की निंदा करते हैं'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३२६।

अजानि—सज्ञा पुं० [स०] १ बिना पत्नी का व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो। २ विधुर [को०]।

अजानिक—सज्ञा पुं० [स०] १. गडेरिया। छागपालक। २ दे० 'अजानि'। [को०]।

अजानी—वि० [हिं०] दे० 'अज्ञानी'। उ०—रानी मैं जानी अजानी महा पवि पाहन हू ते कठोर हियो है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६।

अजानीय—वि० [स०] दे० 'अजानेय'। उ०—गाधार के दश नागरिको का शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था।—वैशाली०, पृ० १२३।

अजानेय[1]—सज्ञा पुं० [सं०] अच्छी नस्ल का घोडा [को०]।

अजानेय[2]—वि० अच्छी जाति का। ताकतवर। निर्भय (घोडा)।

अजापक्व—सज्ञा पुं० [सं०] औषधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०]।

अजापालक—सज्ञा पुं० [सं०] गडेरिया। मेषपालक [को०]।

अजापुत्र—सज्ञा पु० [सं०] बकरी का बच्चा। बकरा। उ०—नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप मे बढती जाय।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ७३।

अजाब—सज्ञा पुं० [अ० अजाब] १ सजा। पीडा। यातना। उ०—कर अब तो रहम अजाब के बदले।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३। २ पाप। कष्ट। प्रायश्चित्त। उ०—पलटू खुदा हक राह यही। और खाना अजाब है जी॥—पलटू०, पृ०१०।

मुहा०—मोल लेना = व्यर्थ झझट मे पडना।

यौ०—अजाब के फरिश्ते = पापियो को दड देने के लिये नियुक्त यमदूत।

अजामिल—सज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पापी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया।

अजाय[1] Ⓤ—वि० [स० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह] बेजा। अनुचित। बुरा। उ०—द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कह्यो अनखाय। भए पुत्र द्वै रंक मम, कीन्हो कत अजाय।—रघुराज (शब्द०)।

अजाय[2]—वि० [स०] जायारहित। पत्नीविहीन [को०]।

अजायब[1]—सज्ञा पुं० [अ० 'अजब' का बहुवचन] अद्भुत वस्तु। विलक्षण पदार्थ या व्यापार। विचित्र वस्तु या कार्य।

अजायब Ⓤ[2]—वि० अजीब। विचित्र। विलक्षण। उ०—अविगत रूप अजायब बानी। ता छवि का कहि जाई।—भीखा श०, पृ० ३७।

अजायबखाना—सज्ञा पुं० [अ० अजायब + फा० खाना] वह भवन या घेरा जिसमे अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं। अद्भुत-वस्तु-सग्रहालय। म्यूजियम।

अजायबघर—सज्ञा पुं० [अ० अजायब + हिं० घर] दे० 'अजायबखाना'।

अजायबी Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अजायब[2]'। उ०—अग सुबमूल, रग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकुल तूलपूरित अजायबी।—घनानद, पृ० २०६।

अजाया Ⓤ—वि० [स० अजातक] गतप्राण। मृत। मरा हुआ।

अजार Ⓤ—सज्ञा पुं० [फा० आजार] १ रोग। बीमारी। उ०—कबकी अजब अजार मे, परी बाम तन छाम। तित कोऊ मति लीजियो चद्रोदय को नाम।—पद्माकर (शब्द०)। २. कष्ट। दु.ख (को०)। ३ दुर्व्यसन। लत (को०)।

अजारा†—सज्ञा पुं० [अ० इजारा] दे० 'इजारा'। उ०—कृपण सतोष करैं नहीं लालच अक। सुपण वभीषण सूँ मिलै लिए अजारे लक।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ३१।

अजावन Ⓤ—वि० [सं० अजायमान] न जनमनेवाला। उत्पन्न न होनेवाला। अजन्मा। उ०—(क) निरमल अभी क्राति अद्भुत छवि अकह अजावन सोई।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६। (ख) पुरुष अजावन रहा जो देहा।—कबीर सा०, पृ० १५३३।

अजि[1]—वि० [सं०] चलनेवाला। गमन करनेवाला, जैसे—पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०]।

अजि[2]—संज्ञा स्त्री० १ चलना की क्रिया या स्थिति। गति। २ फेंकने की क्रिया। फेंकना [को०]।

अजिआउर†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अजिआरा'।

अजिआरा†—संज्ञा पुं० [सं० आर्यिका + पुर, प्रा० अज्जिया + आरा (प्रत्य०)] आजी या दादी के पिता का घर।

अजित[1]—वि० [सं०] १. अपराजित। जो जीता न गया हो। उ०—इंद्री अजित बुद्धि विपयारत मन की दिन दिन उलटी चाल। —सूर०, १।१२९। २ जो जीता न जा सके। अजेय (को०)।

अजित[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव। ३ बुद्ध। ४ विषघ्न ओषधि (को०)। ५ जहरीला मूसा (को०)। ६ प्रथम मन्वतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग (को०)।

अजितनाथ—संज्ञा पु० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम।

अजितबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन सप्रदाय की एक देवी [को०]।

अजितविक्रम[1]—वि० [सं०] अपराजित विक्रमवाला [को०]।

अजितविक्रम[2]—संज्ञा पुं० चद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०]।

अजिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादो वदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है।

अजितात्मा—वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०]।

अजितापीड—वि० [सं० अजितापीड] अजेय मुकुटवाला। बेजोड मुकुट का [को०]।

अजितेंद्रि—वि० [सं० अजितेन्द्रिय] दे० 'अजितेंद्रिय'। उ०—असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई। सूर०, १।४३७।

अजितेंद्रिय—वि० [स० अजितेन्द्रिय] जिसने इंद्रियों को जीता न हो। जो इंद्रियों के वश में हो। इंद्रियलोलुप। विषयासक्त। उ०—कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसे। अजितेंद्रिय दुख भरत हैं तैसे।—नंद० ग्र०, पृ० २९१।

अजिन—संज्ञा पुं० [स०] १ चर्म। चमडा। खाल। उ०—गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४। २ ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म। उ०—अजिन वसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।—मानस, २।२११। ३ चमडे का एक प्रकार का थैला (को०)। ४ भाथी। धौंकनी (को०)। ५. छाल।

अजिनपत्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] जिसके पख अजिन की तरह सुश्लिष्ट हों। चमगादड [को०]।

अजिनपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अजिनपत्री' [को०]।

अजिनपत्री—संज्ञा स्त्री० [स०] चमगादड। गादुर [को०]।

अजिनफला—संज्ञा स्त्री० [स०] भाथी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०]।

अजिनयोनि—संज्ञा पुं० [स०] मृग। हिरन।

अजिनवासी—वि० [स०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०]।

अजिनसंधि—संज्ञा पुं० [स० अजिनसन्धि] मृगचर्म का व्यापारी। अजिन का व्यवसायी [को०]।

अजिर[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ आँगन। सहन। उ०—घुटुरुनि चलत, अजिर महँ विहरत, मुख मंडित नवनीत।—सूर०, १०।९७। २ वायु। हवा। ३ शरीर। ४ मेढक। ५ इंद्रियों का विषय। ६ छछूंदर (को०)।

अजिर[2]—वि० शीघ्रगामी [को०]।

अजिरा—संज्ञा वि० [स०] १ दुर्गा का एक नाम। २ वेगवती नदी [को०]।

अजिरीय—वि० [स०] आँगन से संबंधित। सहन या आँगन का [को०]।

अजिह्म[1]—वि० [स०] १. जो जिह्म या टेढा न हो। सीधा। सरल। २ ईमानदार। सच्चा। खरा [को०]।

अजिह्म[2]—संज्ञा पुं० १ एक मछली। २ मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्मग[1]—वि० [स०] सीधा चलनेवाला। टेढे मेढे न चलनेवाला [को०]।

अजिह्मग[2]—संज्ञा पुं० बाण। इषु [को०]।

अजिह्मग[3]—संज्ञा पुं० [स०] मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्म[2]—वि० जीभरहित। जिह्वाविहीन [को०]।

अजी—अव्य० [स० अयि!] संबोधन शब्द। जी। जैसे—'अजी, जाने दो' (शब्द०)।

अजीकव—संज्ञा पुं० [स०] शिव का धनुष [को०]।

अजीगर्त—संज्ञा पुं० [स०] १ एक ऋषि जो शुनःशेप के पिता थे। २ वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो। साँप। सर्प [को०]।

अजीज[1]—वि० [अ० अजीज] प्यारा। प्रिय।

अजीज[2]—संज्ञा पुं० १ संबंधी। २ मित्र। सुहृद्।

क्रि० प्र०—करना = प्रिय समझना।—जानना या रखना = समान करना। प्रिय समझना।—होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में संकोच होना।

अजीजदार—संज्ञा पुं० [अ० अजीज + फा० दार] दे० 'अजीज' [को०]।

अजीजदारी—संज्ञा० स्त्री० [अ० अजीज + फा० दारी] १ मित्रता। दोस्ती। २ संबंध। रिश्तेदारी [को०]।

अजीटन—संज्ञा पुं० [अ० अडजुटेंट] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति को सहायता देता है।

अजीत[1]—वि० [सं०] जो कुम्हलाया हुआ या मद न हो [को०]।

अजीत[2]—वि० [हिं०] दे० 'अजित'। उ०—जीति उठि जायगी अजीत पाडूपूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी। —रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२।

अजीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि। अभ्युदय। २. क्षय का अभाव [को०]।

अजीब—वि० [अ०] विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अनूठा। आश्चर्यजनक। विस्मयकारक।

अजीब वो गरीब—वि० [अ० अजीब + फा० ओ + अ० गरीब] १ अनूठा। आश्चर्यजनक। २ दुष्प्राप्य [को०]।

अजीमुश्शान—वि० [अ० अजीम + उल् + शान] बहुत ही शानदार। उ०—'एक बडी अजीमुश्शान सुर्ख पत्थर की मस्जिद थी'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५८।

अजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट। पीडा। उ०—जो मुझे देवेगा अजीयत गम।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अजीरन[1]—वि० [सं० अजीर्ण प्रा० अजीरण] दे० अजीर्ण । उ०—होइ न कहूँ अनद अजीरन । तासो धरु धीरज चचल मन । —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६०७।

अजीरन[2]—सज्ञा पुं० दे० 'अजीर्ण' ।

मुहा०—अजीरन होना = दुर्वह होना । कठिन होना ।

अजीर्ण[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपच । अध्यसन । बदहजमी ।

विशेष—प्राय पेट मे पित्त के बिगडने से यह रोग होता है जिससे भोजन नही पचता और वमन, दस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं । आयुर्वेद मे इसके छह भेद बतलाए हैं —(१) आमाजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे । (२) विदग्धा जीर्ण = जिसमे अन्न जल जाता है । (३) विष्टब्धाजीर्ण = जिसमे अन्न के गोटे या कडे बँधकर पेट मे पीडा उत्पन्न करते हैं । (४) रसशेषाजीर्ण = जिसमे अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है । (५) दिनपाकी अजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न दिन भर पेट मे बना रहता है और भूख नही लगती । (६) प्रकृत्याजीर्ण या सामान्य अजीर्ण ।

२ अत्यत अधिकता । बहुतायत (व्यग्य) । जैसे—'उसे बुद्धि का अजीर्ण हो गया है ।'—(शब्द०) । ३ शक्ति । ताकत (को०) । ४, जीर्ण न होने का भाव । क्षयाभाव (को०) ।

अजीर्ण[2]—वि० जो पुराना न हो । नया ।

अजीर्णि—सज्ञा स्त्री० [सं०] बदहजमी [को०] ।

अजीर्णी—वि० [सं०] अपच या अजीर्ण रोगवाला [को०] ।

अजीर्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजीर्ण' [को०] ।

अजीव[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १. अचेतन । जीव तत्व से भिन्न जड पदार्थ । २ मृत्यु । मौत (को०) । ३ जैन मतानुसार जड जगत् (को०) । ४ अस्तित्वविहीनता (को०) ।

अजीव[2]—वि० १ बिना प्राण का । मृत । २ जड (को०) ।

अजीवकल्प—सज्ञा पुं० [स० अजीव + कल्प] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नही रहते थे । उ०—बहुत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प (एजोइक एज) कहते हैं ।—भारत० नि०, पृ० १८ ।

अजीवन[1]—वि० [सं०] जीविकाहीन । योगक्षेम की व्यवस्था से रहित [को०] ।

अजीवन[2]—सज्ञा पु० जीवन का अभाव । मृत्यु [को०] ।

अजीवनि—सज्ञा स्त्री० [सं०] अस्तित्व का अभाव । मृत्यु [को०] ।

अजीवित[1]—वि० [सं०] मृत । जीवनहीन [को०] ।

अजीवित[2]—सज्ञा पुं० मृत्यु । अजीवन [को०] ।

अजु—अव्य० [हिं०] दे० 'और' । उ०—अति अब मौर तोरण अजु अबुज । कली सु मगल कलस करि । —वेलि०, दू० २३३ ।

अजुगत—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत ।'

अजुगति†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजगुत' ।

अजुगुत[1]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत' । उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा । भा अजुगुत दलगजन छूटा ।—चित्रा०, पृ० १८६ ।

अजुगुत[2]†—वि० [स० अयुक्त] दे० 'अयुक्त' । उ०—तोर नयन एँ पथहु न सचर अजुगुत कह न जाइ ।—विद्यापति०, पृ० ३८७ ।

अजुगुप्सित—वि० [स०] जो निंदित, घृणित या बुरा न हो । जो नापसद न हो [को०] ।

अजुष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आनद या प्रसन्नता का अभाव । २. असतुष्टि । निराशा [को०] ।

अजू[1]†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं', 'अजहूँ' । उ०—नमुझै क्यों न अजूँ समझाऊँ मूल मती हिव भाया ।—रघु० रू०, पृ० १६ ।

अजू[2]†—अव्य० [स० अयि] सबोधन शब्द । 'अजी !' का ब्रज रूपातर । उ०—जीतौ जी चहै अजू तौ रीतौ घरौ लै चलु नहीं तौ नहीं तो सिर अजस वै परे मरै ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ११० ।

अजूजा—सज्ञा पुं० [देश०] बिज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाता है । उ०—कहँ कवि दूलह समुद बढे सोनित के जुगिनि परेतै फिरै जबुक अजूवा मे ।—दूलह (शब्द०) ।

अजूनी—वि० [स० अयोनि] उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०—अमर अजूनी थिर धनी काल कर्म सिरि नाहि ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

अजूब—वि० [अ० अजूबह्] दे० 'अजूबा' । उ०—वाकिफ हो सो गमि लहै वाजिब मखुन अजूब ।—कबीर श०, पृ० ३० ।

अजूबा[1]—वि० [अ० अजूबह्] अद्भुत । अनोखा । अनूठा ।

अजूबा[2]—सज्ञा पुं० अनूठी वस्तु । अद्भुत चीज [को०] ।

अजूरा[1]—वि० [स० अ + जुट = जोडना] १ बिना जुटा हुआ । पृथक् । अलग । जुदा । उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा । केह क सिंहासन केह क पटूरा ।—जायसी (शब्द०) । २ अप्राप्त । अनुपस्थित ।

अजूरा[2]—सज्ञा पुं० [अ० अजूरह् = पारिश्रमिक] मजदूरी । भाडा । उ०—आठ पहर रहै ढाढ सोई है चाकर पूरा । का जानी केहि घरी हरी दै देइ अजूरा ।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ४५ ।

यौ०—अजूरादार = भाडे या मजदूरी पर काम करनेवाला ।

अजूह—सज्ञा पुं० [स० युद्ध, प्रा० जुज्झ, जूझ, जूह] युद्ध । लडाई । उ०—ताको जु हिमाऊँ साहि हूऊ । तासो पठान सो भयो अजूह ।—सूदन (शब्द०) ।

अजे[1]—क्रि० वि० [स० अद्यापि, प्रा० अज्जवि] आज भी । अभी भी । उ० —तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाल ।—ढोला०, दू० ११ ।

अजे[2]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय' ।

अजे[3]—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—मुनि मानस पकज भृग भजे, रघुवीर महा रन धीर अजे ।—मानस, ७।१४ ।

अजेइ—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—कियौ सबै जगु कामबस जीते जिते अजेइ । कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ ।—बिहारी र०, दो० ४६५ ।

अजेतव्य—वि० [स०] अजेय । जो जीता न जा सके [को०] ।

अजेय[1]—वि० [स०] न जीते जाने योग्य । जिसे कोई जीत न सके । उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय ।—राम च०, पृ० २६० ।

अजय[२]—संज्ञा पुं० सुश्रुत में कथित एक विघघ्न घृत [को०]।

अजै[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।

अजै[२]—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—हौं हार्‌यौ करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०४।

अजैकपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकादश रुद्र में से एक। २ उक्त रुद्र द्वारा अधिष्ठित पूर्वाभाद्रपदा नाम का नक्षत्र। ३ विष्णु [को०]।

अजैव—वि० [सं०] जीव से असंबंधित। जो जीव संबंधी न हो [को०]।

अजोख—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० जोखना] जो जोखा न जा सके। अमाप। उ०—लीन्ही जिन मोल भाय चोखै। दीन्ही तुमको विद्या अजोखै।—विश्वनाथ० ग्र०, भा० १, पृ० २१५।

अजोग—वि० [सं० अयोग्य, प्रा० अजोग] १ जो योग्य न हो। अनुचित। नामुनासिब। बे ठीक। उ०—सुनि यह बात अजोग जोग की ह्वै है समुद नदी वै।—विश्वनाथ० ग्र०, भा० १, पृ० २१०। २ अयुक्त। बेजोड़। बेमेल। उ०—जोगहि जोग मिलाइऐ हम या जाग अजाग।—सूर०, १०।३५२१। ३ नालायक। निकम्मा। उ०—पत्नी नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नहीं कह सकती।—ठेठ०, पृ० ४३।

अजोगी—वि० [सं० अयोगी] जोग को न जाननेवाला। जोग से रहित। उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै। चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६।

अजोड—वि० [सं० अ = नहीं + जोड़ना] जिसे जोड़ा न जा सके उ०—नि मर भरै अजोड को जोड़े।—प्राण०, पृ० ६४।

अजोत†—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० जोत] वह भूमि जो जोतने के उपयुक्त न हो। परती भूमि।

अजोतर—वि० [हिं० अजोता] स्वच्छंद। निरर्गल। उ०—आनँद घन पिय नई घमंड सों देन दरबार्‌यो डालत अर्जी अजातर।—घनानंद, पृ० २६०।

अजोता[१]—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] चैत की पूर्णिमा का दिन। इस दिन बैल नहीं नाधे जाते।

अजोता†—वि० बिना जोता या नाधा हुआ। स्वच्छंद।

अजोनि—वि० [सं० अयोनि] जो योनि से उत्पन्न न हो। स्वयंभू। उ०—जग जस पुरुष प्रगटे अजोनि। कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—हम्मीर रा०, पृ० ११।

अजोन्य—वि० [सं० अयोनि] अयोनिज। स्वतः संभूत। उ०—अजोन्य अनायास पाए अनादू। नमो देव दादू नमो देव दादू।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० २५६।

अजोरना—क्रि० स० [हिं० हिं० अँजोर से नाम०] दे० 'अँजोरना'।

अजोष—वि० [सं०] अपरितोष। अतृप्ति [को०]।

अजौ†—क्रि० वि० [हिं० अजहुँ] अब भी। अद्यापि। अब तक। उ०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर। मन ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर।—बिहारी र०, दो० ६०१।

अज्ज[१]—संज्ञा पुं० [सं० आर्य या अज] ब्रह्म। उ०—हूँ बंदो जाकूँ सदा सबकी सुणै पुकार। अज्ज कोट पर्यंत लों भय भंजन भरतार।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

अज्ज[२]—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज। उ०—जेहा सज्जण कालह्या तेहा नाँही अज्ज।—ढोला०, दू० २१६।

अज्ज[३]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्झल' [को०]।

अज्जाण—वि० [सं० अज्ञान] दे० 'अजान'। उ०—गाफिल समझ रे अज्जाण। मार्‌यं राख पति कूँ जाण।—राम० धर्म०, पृ० १६६।

अज्जान—वि० [सं० आजानु] घुटने तक लंबा। जानु पर्यंत लंबा उ०—राजीव नयन विशाल। अज्जानबाहु रसाल।—पृ० रा०, पृ० ७६।

अज्जुका—संज्ञा स्त्री [सं० 'आर्यिका' का प्राकृत रूप संस्कृत में गृहीत] वेश्या। वारवधू [को०]।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल रूपकों में प्राप्त होता है

अज्जूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अज्जुका [को०]।

अज्झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामल की [को०]।

अज्झल—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलता हुआ कोयला। अंगारा। २ ढाल [को०]।

अज्ञ[१]—वि० [सं०] १ अज्ञानी। ज्ञान रहित। २ जड़। अचेतन। मूर्ख ३ अनजान। नासमझ। नादान। उ०—तैसइ आपु तैसेइ लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।—सूर०, १।८७१।

अज्ञ[२]—संज्ञा पुं० मूर्ख मनुष्य। जड़ व्यक्ति। अनजान मनुष्य। नादान आदमी। उ० अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू।—(शब्द०)।

अज्ञका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ख औरत। नादान या अनजान स्त्री [को०]

अज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता। नादानी। नासमझी। अजानपन। अनाड़ीपन। २ जड़ता। अचेतनता।

अज्ञताई—संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञता + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'अज्ञता'। उ०—अहो! अज्ञताई नीति मन में न आइए।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६।

अज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्ञता' [को०]।

अज्ञा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आज्ञा'।—उ० (क) होइ अज्ञा बनवास तौ जाऊँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुरु को सिर पर राखिए चलिए अज्ञा माँही।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २।

अज्ञाकारी—वि० [हिं०] दे० 'आज्ञाकारी'। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। जिनकै दस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी। सूर०, १।१६३।

अज्ञात[१]—वि० [सं०] १ बिना जाना हुआ। अविदित। अप्रकट। नामालूम। अपरिचित। उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन।—झरना, पृ० २८। २ जिसे ज्ञात न हो। उ०—सो अज्ञात जोबन वर बाला।—नंद० ग्र०, पृ० १२२। ३ अप्रत्याशित। आकस्मिक (को०)।

अज्ञात[२]—क्रि० वि० बिना जाने। अनजान में। उ०—अनुचित बहुत कहेऊँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।—मानस, १।२८५।

अज्ञातक--वि० [स०] अविदित । अप्रसिद्ध । अज्ञात [को०] ।

अज्ञातकुल--वि० [स०] जिसके वश कुल आदि का पता न हो [को०] ।

अज्ञातचर्या--सज्ञा स्त्री० [स०] अज्ञातवास [को०] ।

अज्ञातजौवना ⓤ--सज्ञा स्त्री० [स० अज्ञातयौवना] दे० 'अज्ञात-यौवना' । उ०--इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञात-जौवना कहिए ।।--नद ग्र०, पृ० १४६ ।

अज्ञातनामा--वि० [स०] १ जिसके नाम का पता न हो । जिसका नाम विदित न हो । २ जिसे कोई न जानता हो । अवि-ख्यात । तुच्छ ।

अज्ञातपितृक--वि० [स०] जिसके पिता का पता न हो । नामालूम बापवाला [को०] ।

अज्ञातपूर्व --वि० [स०] जो पहले से जानकारी मे न हो । जिसका पहले से ज्ञान न हो [को०] ।

अज्ञातयौवना --सज्ञा स्त्री० [स०] मुग्धा नायिका के दो भेदो मे से एक । जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान न हो ।

अज्ञातवास--सज्ञा पुं० [स०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास जहाँ कोई पता न पा सके, जैसे--'विराट के यहाँ पाडवो ने एक वर्ष अज्ञातवास किया था' (शब्द०) ।

अज्ञातस्वामिक (धन)--सज्ञा पुं० [स०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो । जैसे, मार्ग मे पडा हुआ या जमीन मे गडा धन ।

अज्ञाता--वि० स्त्री० [स० अज्ञात] जिसे ज्ञात न हो । मुग्धा । उ०--अज्ञाता--की केशराशि मे इन्हे न कस कम बँधवाओ । वीणा, पृ० १ ।

अज्ञाति--सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या सबध का न हो । अन्य जातीय व्यक्ति । परजात [को०] ।

अज्ञान[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ बोध का अभाव । जडता । मूर्खता । अविद्या । मोह । अजानपन । उ०--अज्ञान भला जिसमे सोह तो क्या, स्वय अह भी कब है ।--साकेत, पृ० ३१६ । २ जीवात्मा का गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का अविवेक । ३ न्याय मे एक निग्रहस्थान । यह उस समय होता है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे विषय को समझने मे असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हो ।

अज्ञान[2]--वि० ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । नासमझ । अनजान । उ०--मैं अज्ञान कछु नहिं समुझ्यौ, परि दुख पुज सह्यौ ।--सूर० १।१६ ।

अज्ञानकृत--वि० [स०] १ अज्ञान मे किया हुआ । अनजाने मे किया हुआ । २ अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।

अज्ञानत --क्रि० वि० [स०] अज्ञान या मूर्खता के कारण । मोहवश । २ अनजान मे । नासमझी के कारण [को०] ।

अज्ञानता--सज्ञा स्त्री० [स०] निर्बोधता । जडता । मूर्खता । अविद्या । नासमझी । नादानी । उ०--'इन सब बातो मे बहुत सी स्वर्थपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है' ।--श्रीनिवास० ग्र०, पृ० २०० ।

अज्ञानतिमिर--सज्ञा पुं० [स०] अज्ञानरूपी अधकार । मोहरूपी अँधेरा [को०] ।

अज्ञानपन--सज्ञा पु० [स० अज्ञान + हिं० पन (प्रत्य०)] मूर्खता । जडता । नादानी । नासमझी । अजानपन ।

अज्ञानी--वि० [स०] ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड । अविद्याग्रस्त । अनाडी । नादान । नासमझ । अबोध ।

अज्ञेय--वि० [स०] न जानने योग्य । जो समझ मे न आ सके । बुद्धि की पहुँच के बाहर का । ज्ञानातीत । बोधागम्य ।

अज्ञेयवाद--सज्ञा पुं० [स०] परमतत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञे-यता का प्रतिपादक मत [को०] ।

अज्ञेयवादी--वि० [स०] अज्ञेयवाद का माननेवाला । अज्ञेयवाद का अनुयायी [को०] ।

अज्म--सज्ञा पुं० [अ०] सकल्प । दृढ निश्चय । उ०--यों अज्म किया था वह शैतान ता कर देने वाला वीरान ।--रश्मिवती०, पृ० २२० ।

अज्यास ⓤ--सज्ञा पुं० [स० अध्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति] अविश्वास । धूर्तपन । ठगहाई । उ०--जग गामवास अज्यास दिस विदिस प्राण उदास ।--रा० रू०, पृ० ६८ ।

अज्यासुत ⓤ--सज्ञा पुं० [स० अजासुत] बकरा । उ०--बडे ब्रह्म ओ काध जनेऊ अज्यासुत कह मारी ।--स० दरिया पृ० ११६ ।

अज्येष्ठ--वि० [स०] १ जो सबसे जेठा न हो । २. जिसे बडा भाई न हो (को०) । ३ जो सर्वश्रेष्ठ न हो (को०) ।

अज्येष्ठवृत्ति--वि० [स०] १ बडे भाई का कार्य या व्यवहार न करने-वाला । २ उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला । जिसे बडा भाई न हो [को०] ।

अज्यौ ⓤ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं' ।

अज्र--सज्ञा पुं० [स०] भलाई का बदला । प्रत्युपकार [को०] ।

अज्वाल--वि० [अ + ज्वाल] ज्वालाविहीन । लपटरहित । ज्वालारहित । लपटविहीन । उ०--ज्वाल उपजावन अज्वाल दरसावन मुआल यह पावक न जावक दिखाए हौ ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १२८ ।

अझर ⓤ--वि० [स० अ = नहीं + झरना = गिरना] जो न झरे । जो न गिरे । जो न बरसे । उ०--चलि सुकेलि घर घन अझर कारी निसी सुखदानि । कामिनि सोभावानि तूँ, दामिनि दीपति वानि ।--स० सप्तक, पृ० २४३ ।

अझुरना ⓤ+--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' । उ०--कामिनि कनक तला लपटाना । अझुरत सझुरत सेंत सुजान ।--नं० ग्रं० दरिया पृ० १२ ।

अझना ⓤ[1]--सज्ञा पुं० [स० अग्नि = जलती हुई अग्नि] आग । अग्नि । उ०--बिलखत छाडी बीस चारिक चिन्हारी करि, वारि दियौ हिए मे उसेग को अझनो है ।--घनानद पृ० १३८ ।

अझूना ⓤ[2]--वि० [स० अजीर्ण, प्रा० अजण्ण = अजुन] जो जीर्ण न हो । जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा रहनेवाला । उ०--तुम्हें बिन साँवरे ये नैन सूनें, हिये मैं लै दिए बिरहा अझूनें ।--घनानद, पृ० १६७ ।

अझोरी ⓤ--सज्ञा स्त्री० [स० दोल = झूलना] झोली । कपडे की लबी थैली जो कधे पर लटकाई जाती है । उ०--बोझरी अझोरी काँधे आँतिन्ह की मेली बाँधे, मूड के कमडल खपर किए कोरि कै ।--तुलसी (शब्द०) ।

अटवर--सज्ञा पुं० [स० अट्ट = अधिक, फा० अंबार = ढेर] अटाला । ढेर । राशि । उ० लागि गए अवर लौं अखिल अटवर पै, द्रुपद-सुता को अजौं न अखूटयौ है ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १११ ।

अट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] शर्त । कैद । प्रतिबंध । रुकावट । उ०—तुम तो हर बात मे एक अट लगा देते हो ।—(शब्द०) ।

अटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+टिक=चलना अथवा स० आ+टक=बंधन, अथवा सं० हठ+क (प्रत्य०), प्रा० *अटक] [क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ] १ रोक । रुकावट । अड़चन । विघ्न । बाधा । उलझन । उ०—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कै, पुर लै जाहि । घाट बाट कहुँ अटक होइ नहि सब कोउ देहि निबाहि ।—सूर० (शब्द०) । २ संकोच । हिचक । उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई अटक न हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।—ठेठ० (शब्द०) । ३. सिंध नदी । ४ सिंध नदी पर एक छोटा नगर जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है । ५ अकाज । हर्ज । बड़ी आवश्यकता ।

क्रि० प्र०—पड़ना । उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी ।—सूर (शब्द०) ।

अटक[2]—वि० [स० अट] घूमनेवाला । चक्रमणशील [को०] ।

अटकन Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अटक' ।

अटकन बटकन—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे लड़कों का एक खेल ।

विशेष—इसमें कई लड़के अपने दोनों हाथों की उँगलियों को जमीन पर टेककर बैठ जाते हैं । एक लड़का सबके पंजों पर एक एक करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है—अटकन बटकन दही चटाकन, पनला भूले बाबा भूले, सावन मास करेला फूले, फल फूल की बतियाँ बाबा गए गंगा, लाए सात पियलियाँ, एक पियाली फूट गई, नेवुले की टाँग टूट गई, खड़ा मारूँ या छुरी ।' पूरब में इसको इस प्रकार कहते हैं—उक्का बुक्का तीन तलुक्का, लौवा लाठी चंदन काठी, चंदन लावै दूली दूला, भादो मास करेला फूला, इजइल बिजइल पान फूल पचक्का जा ।' जिस लड़के पर अंतिम शब्द पड़ता है वह छूटता जाता है । जो सबसे पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर खेल खेला जाता है ।

अटकना—क्रि० अ० [स० अ=नहीं+टिक्=चलना] १ रुकना । ठहरना । अड़ना । उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यों जाते हो ?—(शब्द०) । २ फँसना । उलझना लगा रहना । उ०—इहीं आस अटक्यो रहतु अलि गुलाब के मूल ।—बिहारी र०, दो० ४३७ । प्रेम में फँसना । प्रीति करना । उ०—फिरत जु अटकत कटनि बिनु, रसिक सुरस न खियाल । अनत अनत नित नित हितनु, चित सकुचत कत लाल ।—बिहारी र०, दो० ५२८ । ४ विवाद करना । झगड़ना । उलझना । उ०—जब गजराज ग्राह सों अटक्यों, बली बहुत दुख पायो । नाम लेत ताही छिन हरि जू गरुड़हि छाँड़ि छुड़ायो ।—सूर०, १।३२ ।

अटकर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अटकल' । उ०—(क) जैसें तैसें ब्रज पहिचानत । अटकरही अटकर करि जानत ।—सूर०, १०५० (राधा०) । (ख) अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोई । —सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७६० ।

अटकरना Ⓤ—क्रि० स० [हिं० 'अटकर' से नाम०] दे० 'अटकलना' ।

उ०—बार बार राधा पछितानी । निकसे श्याम सदन तें मेरे हनि अटकरि पहिचानी ।—सूर (शब्द०) ।

अटकल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट=घूमना+कल्=गिनना] १. अनुमान । कल्पना । २ अंदाज । तखमीना । कूत । उ०—वह करोड़ों रुपए के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २२८ ।

क्रि० प्र०—करना ।—बैठना ।—लगाना ।

अटकलना†—क्रि० स० [हिं० 'अटकल' से नाम०] अटकल लगाना । अंदाज करना । अनुमान करना ।

अटकलपच्चू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अटकल+देश० पच्चू=पकाना] मोटा अंदाज । कपोल कल्पना । अनुमान । जैसे—इस अटकलपच्चू से काम न चलेगा ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू[2]—वि० अंदाजी । खयाली । ऊटपटाँग, जैसे—ये अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू[2]—क्रि० वि० अंदाज से । अनुमान से । जैसे,—रास्ता नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं ।—(शब्द०) ।

अटकलबाज—वि० [हिं० अटकल+फा० बाज (प्रत्य०)] अंदाज लगानेवाला । निराधार बात करने में निपुण ।

अटकलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटकल+बाजी] अंदाज लगाना । कल्पना करना ।

अटका[1]—संज्ञा पुं० [सं० अट=खाना, उड़ि० आटिका] जगन्नाथ जी को चढ़ाया हुआ भात जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की भाँति भेजा जाता है । जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया हुआ धन । उ०—अटका द्विशत रुपैया केरो । तुमहिं चढ़ैहौं अस प्राण मेरो ।—रामरसिक०, पृ० ८५४ ।

अटका†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] दे० 'अटक' ।

अटकाना—क्रि० स० [हिं० 'अटकना' का प्रे० रूप] [संज्ञा अटकाव] १ रोकना । ठहराना । अड़ाना । लगाना । उ०—गए तबहिं तें फेरि न आए । सूर स्याम वै गहि अटकाए ।—सूर०, १०।२२७८ । २ फँसाना । उलझाना । उ०—तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई । जुवती गई घरनि सब अपनै गृह कारज जननी अटकाई ।—सूर०, १०।३८३ । ३. डाल रखना । पूरा करने में विलंब करना । जैसे,—उस काम को अटका मत रखना ।—(शब्द०) ।

अटकाव—संज्ञा पुं० [हिं० अटक+आव] (प्रत्य०)] १ रोक । रुकावट । प्रतिबंध । अड़चन । बाधा । विघ्न । उ०—या समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव, थी प्रगति, पर अड़ा रहता था सतत अटकाव ।—कामायनी, पृ० ८१ । २ मासिक धर्म । उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो ।—दो सौ बावन०, पृ० २९८ ।

अटखट Ⓤ—वि० [अनुध्व०] अटूसट्ट । अड़बड़ । टूटा फूटा । उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५५३ ।

अटखेली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठखेली' ।

अटट Ⓤ†—वि० [हिं० अटूट] निपट । नितांत ।

अटन—संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। चलना फिरना। डोलना। यात्रा। भ्रमण। उ०—चले राम वन अटन पयादे।—मानस, २।३१०।

अटना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० अट् = चलना अथवा अटन] १ घूमना। चलना। फिरना। उ०—जीव जलथल जिते बेष धरि धरि तितें अटत दुरगम अचल भारे।—सूर०, १।१२०। २ यात्रा करना। सफर करना। उ०—जोग जाग जप विराग तप सुतीरथ अटन।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२०। ३ पूरा पड़ना। काफी होना। अँटना।

अटना²—क्रि० अ० [सं० उट = घास फूस अथवा हिं० ओट] पड़ना। आड़ करना। ओट करना। छेकना। उ०—(क) फटी जो घूँघट आट अटै, सोइ दीठि फुरी अधिकी जु घँसाई।—केशव (शब्द०)। (ख) नेकु अटे पट फूटन आँखि रु देखन हैं कबको ब्रज सोनो।—केशव (शब्द०)।

अटनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अटन'। २ दे० 'अटनी'।

अटनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनुष के सिरे का वह भाग या खाँचा जहाँ प्रत्यंचा या डोरी बाँधी जाती है (को०)।

अटनी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० अटन = घूमना] अटन की क्रिया। कलाबाजी। उ०—जैसे बरत बाँस चढ़ि नटनी। बारहबार करै तहाँ अटनी।—सुंदर० ग्र०, भा० १ पृ० ९८।

अटपट—वि० [सं० अट = चलना + पट् = गिरना अथवा अनु०] [स्त्री० अटपटी। क्रि० अटपटाना] १ टेढ़ा। विकट। कठिन। मुश्किल। दुरुस्त। २ गूढ़। जटिल। गहरा। अनोखा। उ०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।—तुलसी (शब्द०)। ३ ऊटपटाँग। अड़बड़। उलटा सीधा। बेठिकाने। उ०—अटपट आसन बैठि कै, गोधन कर लीन्हो। धार अनत हीं के देखि कै ब्रजपति हँसि दीन्हों।—सूर० १०।४०९। ४ गिरता पड़ता। लड़खड़ाता। उ०—वाही की चित्त चटपटी धरत अटपटे पाइ।—बिहारी र०, दो० ३३।

अटपटा†—वि० [हिं०] दे० 'अटपट'।

अटपटाना—क्रि० अ० [हिं० अटपट से नाम०] १ अटकना। अटबड होना। लड़खड़ाना। घबड़ाना। उ०—आलस हूँ भरे नैन, बैन अटपटात जात, ऐंडात जम्हात गात अंग मोरि बहियाँ झेलि।—सूर (शब्द०)। २ हिचकना। सकोच करना। आगा पीछा करना। जैसे—आप कहने में अटपटाते क्यों हैं?—(शब्द०)।

अटपटी(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटपट + ई (प्रत्य०)] नटपटी। अनरीति। उ०—सूधे दान न काहे लेत। और अटपटी छाँडि नंदसुत रहहु कँपावन बेत।—सूर०, १०।१४६८।

अटपटी²—वि० [हिं० अटपट] बेढंगी। उलटी सीधी। उ०—मधुकर छाँडि अटपटी बातैं।—सूर०, १०।३५४७।

अटब्बर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० आडम्बर] आडंबर। दर्प। उ०—बाँधत पाग अटब्बर को।—श्रीपति (शब्द०)।

अटब्बर(पु)²—संज्ञा पुं० [प० टब्बर = परिवार] खानदान। परिवार। कुटुंब। उ०—बब्बर के वंश के अटब्बर के रच्छक हैं तच्छक अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर।—सूदन (शब्द०)।

अटम—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट] ढेर। अंबार।

अटरनी—संज्ञा पुं० [अं० एटर्नी] १ एक प्रकार का मुख्तार जो कलकत्ता और बंबई हाईकोर्ट में मुअक्किलों से मुकदमे लेकर उन्हें ठीक करता है और उनकी पैरवी के लिये बैरिस्टर नियुक्त करता है। २ उच्च न्यायालय में सरकारी मुकदमों की पैरवी करनेवाला वकील।

अटरिया‡(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटारी + इया (प्रत्य०)] दे० 'अटारी'। उ०—पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।—कबीर ग्र०, पृ० ५५।

अटरुष—संज्ञा पुं० [सं०] अडूसा नाम का क्षुप वासक (को०)।

अटरूष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुष' (को०)।

अटरूषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुष' (को०)।

अटल—वि० [सं०] १ जो न हटने। जो न डिगे। स्थिर। निश्चल। उ०—तुम सीस पवन नंदन अटल कुद्ध बुद्ध कौतुक करै—तुलसी (शब्द०)। २ जो न मिटे। जो सदा बना रहे। नित्य। चिरस्थायी। उ०—करि किरपा दीन्ह करुनानिधि अटल भक्ति, शिव राज।—सूर (शब्द०)। ३ जो अवश्य हो। जिसका होना निश्चित हो। अवश्यंभाव। जैसे—यह बात अटल है, अवश्य होगी।—(शब्द०)। ४ ध्रुव। पक्का। जैसे—उनका इस बात में अटल विश्वास है।—(शब्द०)।

अटलस—संज्ञा पुं० [अं० ऐटलस] वह पुस्तक जिसमें पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों के मानचित्र हों।

अटवाटी खटवाटी—संज्ञा [अनु० + हिं० खाट + पाटी] खटखटोला। बोरिया बँधना। साज सामान।

मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना या लेना = खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठकर अलग बैठना।

अटवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अटवी' (को०)।

अटविक—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली। आटविक (को०)।

अटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जंगल। वन। उ०—अटवी हिल डोलने लगी, सरसी सौरभ घोलने लगी।—साकेत, पृ० ३४८। २ लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल—संज्ञा पुं० [सं०] वनवासियों की सेना।

अटसट(पु)†—वि० [अनु०] दे० 'अटपट'।

अटहर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = ऊँचा ढेर, अटाला] १ अटाला। ढेर। २ फेंटा। लपेट। पगड़ी। उ०—आप चढ़ी शीश मोहिं दीन्ही बकसीस औ हजार शीश वारे की लगाई अटहर है।—(शब्द०)।

अटहर²—संज्ञा पुं० [हिं० अटक] कठिनाई। अड़चन। अटकाव। दिक्कत।

अटा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टा] घर के ऊपर की कोठरी या छत। अटारी। कोठा। उ०—छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि। चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु छटा सी नारि।—बिहारी र०, दो० ३८४।

अटा²—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिशय] अटाला। ढेर। राशि। समूह। उ०—ए री! बलवीर के अहीरन के भीरन में सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो।—पद्माकर (शब्द०)।

अटा³—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमणशीलता (संन्यासियों की भाँति)। भ्रमण की क्रिया। घूमना (को०)।

अटाउ (पु)--सज्ञा पुं० [स० अट्ट = अतिक्रमण करना + हिं० आउ (प्रत्य०)] १ बिगाड। बुराई। २ नटखटी। शरारत। उ०—आप ही अटाउ कै ये लेन नाम मेरो, वे तो बापुरे मिलाप के सँताप कर दीने हैं (शब्द०)।

अटागर—सज्ञा पु० [स० अट्ट + आगार] समूह। अटाला। ढेर। उ०—हुआँ साँमेनी जहार जुहार। पान अटागर काथ श्री कार। —बीसल०, पृ० १८।

अटाटूट—वि० [स० अट्ट = ढेर + हिं० अटूट अथवा स० अट्ट + हिं० अटूट] नितात। बिल्कुल।

अटाना[1]—क्रि० स० [हिं० अटक = रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पडना। उ०—आगे आइ सिंधु नियराना। पार जाइ कह गाढ अटाना।—इद्रा०, २६।

अटाना[2]—क्रि० स० [हिं० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु मे समा देना। रखना अँटा देना।

अटारी—सज्ञा स्त्री० [स० अट्टालिका] कोठा। दीवारो पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सबके ऊपर की कोठरी या छत। चौबारा। उ०—निपुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।—मानस ५।२५।

अटाल—सज्ञा पुं० [स० अट्टाल] बुर्ज। धरहरा (डिं०)।

अटाला—सज्ञा पुं० [स० अट्टाल] १. ढेर। कूरा। राशि। अबार। २ समान। असबाब। सामग्री। ३ कस इयो की बस्ती या मुहल्ला।

अटाव—सज्ञा पुं० [स० अट्ट + हिं० आव (प्रत्य०)] १ वैर। वैमनस्य। द्वेष। २ शरारत। पाजीपन। दुष्टता। ३ अँटना। समाना। पूरा पडने का भाव।

अटित[1]—वि० [सं० अटा] जिसमें अटा या अटारी हो। अटारीवाला।

अटित[2]—वि० [स० अटन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार (पु)—वि० [हिं० अटना + हार (प्रत्य०)] अँटनेवाला। पूरा पडनेवाला। उ०—अटिहार कोई पूज्जै नही बल अमूत आतम करचौ।—पृ० रा०, २४ १६७।

अटी—सज्ञा स्त्री० [सं० अडी] एक चिडिया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट—वि० [स० अ = नहीं + त्रुट = टूटना] १ न टूटने योग्य। अखडनीय। अछेद्य। दृढ। पुष्ट। मजबूत। २ जिसका पतन न हो। अजेय। ३ अखड। लगातार। उ०—छूटै जटाजूट सौं अटूट गगधार धौल मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अटेरन—सज्ञा पुं० [स० अहिण्डन, प्रा० * अहिणडन * अइडरन * अटइरन * अटेरन, अथवा सं० अट = घूमना एकत्र करना] [क्रि० अटेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यत्र। ओयना।

विशेष—६ इच की एक लकडी के दोनों सिरो पर सूत लपेटने के लिये दो आडी लकडियाँ लगाई जाती हैं जो दोनो ओर प्राय तीन तीन इच बढ़ी रहती हैं। इन लकडियो मे से नीचे की लकडी कुछ बडी और ऊपर की लकडी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती हैं।

मुहा०—अटेरन होना = हड्डी हड्डी निकलना। अत्यत दुर्बल होना।

२ घोडे को कावा या चक्कर देने का एक ढग या तरीका। क्रि० प्र०—फेरना।

३ कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०—अटेरन कर देना = दाँव मे डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अटेरना—क्रि० स० [हिं० अटेरन से नाम०] १ अटेरन से सूत की आँटी बनाना। २ मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,—क्या कहना है लाला जी खूब अटेरे हैं।—(शब्द०)।

अटोक (पु)—वि० [स० अ + तर्क, पा० तक्क = टोकना] बिना रोक टोक का। उ०—(क) अरु अटोक डचाढी करी, पैठत बखत तमाम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अटोक टोना टारै लगी।—कविता कौ०, २।१०२।

अटोट (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अटूट'। उ०—चोली चारु छीट की छाजति उपमा देत अटूट।—सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अटोप (पु)—सज्ञा पुं० [स० अटोप] दे० 'आटोप'। उ०—अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सो धरैं —पद्माकर ग्र०, पृ० २८४।

अट्ट (पु)—सज्ञा पुं० [स० हट्ट = बाजार] १. हाट। बाजार। उ०—देव दपति अट्ट देख सराहते।—साकेत, पृ० ३।

अट्ट[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ बुर्ज। उ०—अट्टो पर चढ चढकर सब ओर पथो मे बढकर बढकर।—साकेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३ एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५ पका हुआ चावल। भात। ६ भोज्य पदार्थ। ७ पहरा देने का ऊँचा स्थान या मीनार। ८ महल। प्रासाद। ९ रेशमी वस्त्र। १० दुर्ग मे सेना के रहने का स्थान या भाग (को०)।

अट्ट[2]—वि० १ ऊँचा। २ शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३ उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छत के ऊपरवाला कमरा। बँगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट—वि० [स०] १ बहुत ऊँचा। २ बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास—सज्ञा पु० [स०] बडे जोर की हँसी। ठठाकर हँसना। क्रि० प्र०—करना।—होना।

अट्टन—सज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २ अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]

अट्टसट्ट—वि० [अनुध्व०] १ ऊटपटाँग। अडबड। जैसे—तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो।—(शब्द०)। २ बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कोठरी मे बहुत सा अट्टसट्ट सामान पडा है।—(शब्द०)।

अट्टहसित—सज्ञा पुं० [स०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास—सज्ञा पुं० [स०] ठहाका। जोर की हँसी। खिलखिलाना उ०—अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।—मानस, ६। ३९। क्रि० प्र०—करना—होना।

अट्टहासक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुद का फूल और पेड।

अट्टहासक[2]—वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी[1]—सज्ञा पुं० [स० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी²—वि० अट्टहास करनेवाला [को०]।
अट्टहास्य—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अट्टहास' [को०]।
अट्टा—संज्ञा पुं० [स० अट्ट = बुर्ज] मचान।
अट्टाट्ट हास—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अट्टट्टहास'
अट्टाल—संज्ञा पुं० [स०] १ ऊपरी मंजिल का कोठा। २ बुर्ज। उच्च स्थान। ३ प्रासाद। महल [को०]।
अट्टालक—संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज।
अट्टालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अटारी। कोठा।
अट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढाना] १ अटेरन पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। लच्छा। पोला। किरची। २ आटा। उ०—जमदग्ढ दट्टी। मनौ नोन अट्टी।—पृ० रा०, १०।२१।
अट्ठ—वि० [सं० अष्ट] आठ की संख्या। ८। उ०—घन मिकार राजन करिय हनि वराहु अनि अट्ठ।—पृ० रा०, २४।३५१।
अट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक, प्रा० अट्ठय] ताश का एक पत्ता जिसपर किसी भी रंग की आठ बूटियाँ होती हैं।
अट्ठाइस—वि० [अप०] दे० 'अट्ठाईस'।
अट्ठाइसवाँ—वि० [सं० अष्टाविंशतम्, हिं० अट्ठाइस] जिसका स्थान सत्ताइसवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अट्ठाइसवाँ हो।
अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति, पा० अट्ठावीस; प्रा० अट्ठाईस, अप० अट्ठाइस] एक संख्या। बीस और आठ। २८।
अट्ठानवे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवइ] एक संख्या। नब्बे और आठ। ९८।
अट्ठानवेवाँ—वि० [सं० अष्टानवतितम; देश० अट्ठानवे] जिसका स्थान सत्तानवे के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठानवेवाँ हो।
अट्ठारह—वि० [स० अष्टादश, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अठारह'।
अट्ठावन—वि० [स० अष्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्ठावण्ण, अट्ठावन्न] एक संख्या। पचास और आठ। ५८।
अट्ठावनवाँ—वि० [स० अष्टपञ्चाशतम्, देश० अट्ठावन] जिसका स्थान सत्तावन के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठावनवाँ हो।
अट्ठासिवाँ—वि० [स० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि > हिं० अट्ठासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठासिवाँ हो।
अट्ठासी—वि० [स० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि, अट्ठासीइ] दे० 'अठासी'।
अट्ठे—वि० [हिं० आठ से] आठगुना। जैसे, पाँच अट्ठे चालीस, सात अट्ठे छप्पन।
अठग—संज्ञा पुं० [स० अष्टांग] अष्टांग योगी। उ०—उठत उरोजन उठाए उर ऐंठ भुज ओठन अमेठे अंग आठ हू अठग सी।—देव (शब्द०)।
अठ—वि० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ। (हिंदी समास में प्रयुक्त) जैसे—अठपतिया, अठपहला, अठकोना आदि।
अठएँ—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०—अठएँ आठ अष्ट कँवल मे, उरध निरखै सोई।—धरम०, पृ० ७७।
अठइसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अट्ठाइस] २८ गाहियो अर्थात् १४० फलो की संख्या जिसे फलों के लेनदेन में सैकडा मानते हैं।
अठई—संज्ञा स्त्री० [स० अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ०—सतमी पूनिउँ वा सब आछी। अठई अमावस दीन लाछी।—जायसी (शब्द०)।
अठकठ—वि० [हिं०] दे० 'अटपट'। उ०—अठकठ लाज बरनि नहि जाई। सगी सो इक एक सोहाई।—भीखा श०, पृ० ७४।
अठकपाली—वि० [स० अष्ट + कपाल] अठगुनी बुद्धिवाला। चतुर। धूर्त। चालाक। उ०—बड़े बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल गए।—चुभते चौ० (भू०), पृ० २।
अठकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठन्नी'²।
अठकोन—वि० [हिं०] दे० 'अष्टकोण'²। उ०—अयुम अरघ रेख अब्ज अठकोन अमलतर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६६०।
अठकौशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अठकौसल'।
अठकौसल—संज्ञा पुं० [हिं० आठ + अ० कौंसिल] १ गोष्ठी। पंचायत। २ सलाह। मंत्रणा। उ०—हेरत फिरत बारिवृच्छ कहलाने सबै होति अठकौसल कुरंगी औ अन्नाका मैं।—रत्नाकर, भा० २ पृ० ११८।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
अठखेलपन—संज्ञा पुं० [स० अष्टक्रीडा, या क्ष अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] चंचलता। चपलता। चुलबुलापन।
अठखेली—संज्ञा स्त्री० [स० अष्टक्रीडा या क्ष अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] १ विनोद। क्रीडा। चपलता। कल्लोल। चंचलता। चुलबुलापन। २ मतवाली चाल। मस्तानी चाल।
क्रि० प्र०—करना।
मुहा०—अठखेलियाँ सूझना = चुलबुलापन करना। उ०—तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६३।
अठताल—संज्ञा पुं० [स० अष्टताल] १ एक प्रकार का गीत। उ०—यो अठतालो गीत उचारै, कहै मछ प्रभु गुण इक धारै।—रघु० रू०, पृ० २०६।
विशेष—इनमें आठ चरण होते हैं। प्रथम तीन चरण चौदह चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का रहता है जिसके तुकांत में लघु गुरु रहता है। इसी प्रकार चार चरणों का दूसरा ढाला बनाया जाता है। इसमें चौथे और आठवें चरण का तुकांत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम के साथ मिलता है। प्रथम ढाले के प्रथम पद में अठारह मात्राएँ होती हैं।
२ दे० 'अष्टताल'। वाद्य। उ०—बाजत वेनु विषान बाँसुरी डफ मृदंग अठताल।—नंद० ग्रं०, पृ० २९६।
अठत्तर—वि० [हिं०] दे० 'अठहत्तर'।
अठन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + अन्नी = आनावाली] १ सन् १९५९ तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का। २. पचास पैसे का सिक्का।
अठपतिया—संज्ञा स्त्री० [स० अष्टपत्रिका, पा० अट्ठपत्तिका, प्रा० अट्ठपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं।

अठपहरा(पु)—वि० [सं० अष्टप्रहर] रात दिन का। आठो पहर का। लगातार। उ०—सवर तखत पर बैठ तूर अठपहरा बाजै पलटू०, पृ० ७५।

अठपहला—वि० [सं० अष्टपटल, पा० अट्ठपहल अथवा सं० अष्ट + फा० पहल] आठ कोनेवाला। जिसमे आठ पार्श्व हो

अठपाव(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, पा० अट्ठपाद; प्रा० अट्ठपाव] उपद्रव। ऊधम। शरारत। उ०—भूपन क्यो अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।—भूषण ग्र०, पृ० २५३।

अठवन्ना—सज्ञा पुं० [सं० अट = घूमना + बन्धन] वह बाँस जिसपर जुलाहे करघे की लबाई से बढा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यो ज्यो बुनते जाते हैं उसपर से सूत खीचते जाते हैं।

अठमासा¹—सज्ञा पुं० [सं० अष्टमासिक, प्रा० अट्ठ + मासअ] १ वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय। अठवाँसा। २ गर्भ के आठवें मास मे होनेवाला सीमत सस्कार। ३ आठ मास पर होनेवाला प्रसव।

अठमासा²—वि० दे० 'अठवाँसा'।

अठमासी—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमाश] आठ माशे का सोने का सिक्का। सावरेन। गिनी।

अठयौ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०—अठयौ गर्भ सु तेरौ हता। —नद० ग्र०, पृ० २२१।

अठलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ऐंठ + लाना] १. ऐंठ दिखाना। इतराना। गर्व जताना। ठसक दिखाना। उ०—काहे को अठिलात कान्ह, छाँडी लरिकाई।—सूर (शब्द०)। २. चोचला करना। नखरा करना। उ०—जैये चले अठिलैये उतै इत कान्ह! खरी वृषभानुकुमारि है।—सभ (शब्द०)। ३ मदोन्मत्त होना। मस्ती दिखाना। उ०—देखौ जाय और काहू को हरि पै सबै हरित मँडरानी। सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानी।—सूर (शब्द०)। ४ छेडने के लिये जान बूझकर अनजान बनना।

अठवना(पु)—क्रि० अ० [सं० आस्थापन, पा० ठान = ठहराव अथवा सं० आस्थान] जमना। ठनना। उ०—मै आवत या थान दुग की होय तयारी। करो मोरचा सबै तोपखानो सब जारी। सब जारी करि देहु सत्रु आवत है अठयो। सिंह बहादुर पास साँडिया को लिख पठयो।—सूदन (शब्द०)।

अठवाँस¹—सज्ञा पुं० [स० अष्टपार्श्व] अठपहली वस्तु। अठपहले पत्थर का टुकडा।

अठवाँस²—वि० अठपहला। अठकोना।

अठवाँसा¹—वि० [स० अष्टमास, पा० अट्ठमास] वह गर्भ जो आठ ही महीने मे उत्पन्न हो जाय।

अठवाँसा²—सज्ञा पुं० १. सीमत सस्कार। २. वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय। अठमासा।

अठवारा—सज्ञा पुं० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ > अठ + स० वार] १. आठ दिन का समय। पक्ष का आधा भाग। सप्ताह। हफ्ता। २. अनिश्चित दिनो तक। उ०—नहिं घन अठवारन लौं वैसी झरी लगावै।—प्रेमघन०, पृ० ५५१।

अठवारी—सज्ञा स्त्री० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ अठ + स० वार + हिं० ई (प्रत्य०)] वह रीति जिसके अनुसार असामी जोताई के समय प्रति आठव दिन अपना हल बैल जमीदार का खेत जोतने के लिये देता है।

अठवाली—सज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + वाली] १ वह लकडी का टुकडा जो किसी भारी चीज में बाँधा जाता है और जिसमे सँगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं। २ वह पालकी जिसे आठ कहार उठाते है। अठकरी।

अठसठ—वि० [हिं०] दे० अठसठ'। उ०—अडसठ तीरथ मध के बरनन कोट गया और कासी।—कबीर श०, पृ० ७८।

अठसिल्या(पु)—सज्ञा पुं० [स० अष्टशिला, पा० अट्ठसिला] सिंहासन। उ०—देखि सखिन हँसि पाँव पखारे। मणिमय अठसिल्या बैठारे।—विश्राम (शब्द०)।

अठहत्तर—वि० [स० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि] एक सख्या। सत्तर और आठ। ७८।

अठहत्तरवाँ—वि० [हिं० अठहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तरवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो।

अठाई(पु)—वि० [स० अस्थायी अथवा स० अ + स्थानिक] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ०—है हरि आठहु गाँठ अठाई।—केशव (शब्द०)।

अठान(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं० ठानना] १ न ठानने योग्य कार्य। अकरणीय कर्म। अयोग्य या अनुचित कर्म। उ०—(क) तजतु अठान न, हठ परयो सठमति, आठौ जाम।—बिहारी र०, पृ० १७०। (ख) हनुमान परोसिन हू हित की कहती तो अठान न ठानती मैं।—हनुमान (शब्द०)। २ वैर। शत्रुता। विरोध। झगडा। उ०—खाँ सगै करत उमगै ठानि अठान पठान चढै।—सूदन (शब्द०)।

अठाना(पु)¹—क्रि० स० [सं० अर्ति = पीडा, प्रा० अट्टि + अट्ट से नाम०] १ सताना। पीडित करना। उ०—आजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठाए।—रघुनाथ (शब्द०)।

अठाना(पु)²—क्रि० स० [सं० स्थान = स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान] मचाना। ठानना। जमाना। छेडना। उ०—(क) जानि जुद्ध अमनेक अठायो। तहवर खाँ इहि देस पठायो।—लाल (शब्द०)। (ख) घासहरै था कुँवर जी रन रग अठाया। तिस कागज के बाँचते सूरज मुसकाया।—सूदन (शब्द०)।

अठानी(पु)—वि० [हिं० अठान + ई (प्रत्य०)] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला। उ०—द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानी के।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४५।

अठार(पु)—वि० [सं० अष्टादश, हिं० अठारह, अट्ठार] अठारह की सख्या। दस और आठ। १८। उ०—प्रव्व अठार सवालष लप्पै, तौ भारथ गुर तत्त विसप्पै।—पृ० रा०, १।८७।

अठारह¹—वि० [सं० अष्टादश, पा० अट्ठादस, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] एक सख्या। दस और आठ। १८। उ०—पदुम अठारह जूथप बदर।—मानस, ५।५५।

अठारह²—सज्ञा पुं० १ काव्य मे पुराणसूचक सकेत या शब्द। २. चौसर का एक दाँव। पासे की एक सख्या। उ०—ठारि

पासा साधु मगति केरि रसना सारि। दाँव अबके परेरचो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सबह सुनि अठारह चोर पाँचो मान।—सूर० (शब्द०)।

अठारहवाँ—वि० [सं० अष्टादशम, प्रा० अट्ठारसवं, अप० अट्ठारहवं, अट्ठारहवाँ] जिसका स्थान सत्रहवें के उपरान्त हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अठारह पर हो।

अठासिवाँ -वि० [सं० अष्टाशीति + हिं० वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरान्त हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अठासिवाँ हो।

अठासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासि] एक संख्या। अस्सी और आठ। ८८।

अठिलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० अठलाना। उ०—रहिमन निज मन की व्यथा मनही राखो गोय। सुनि अठिलैहै लोग सब बाँटि न लैहै कोय।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६५।

अठिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत का एक छंद। दे० 'अरिल्ल' [को०]।

अठेल—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठेलना] बलवान्। मजबूत। जोरावर (डिं०)।

अटेसा—वि० [हिं०] दे० 'अट्ठाइस'। उ०—विनसत सबै भया बिस चारि अठसा। सो सब पलटू देखिया हम जैसे के तैसा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६६।

अठोठ—संज्ञा पुं० [देश०] ठाट। आटवर। पाखंड। उ०—लाज के अठोट कै कै, बैठती न ओट दै दै, घूँघट कै काहे को कपट पट तानती। डारि देती डर करि ऐंचनी न कोप करि डीठ चोरि पीठि मोरि हौं न हठ ठानती।—देव (शब्द०)।

अठोतरसो—वि० [सं० अष्टोत्तरशत प्रा० अट्ठुत्तरसत] आठ के ऊपर सौ। एक सौ आठ।

अठोतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एक सौ आठ दानों की जपमाला।

अठोर—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठोर] जिसमें धार न हो। कुंद। भोंतरा। उ०—अठोर धार बनस्पति। मालती छिन में बरोढा मेघमाला पानी हरिया।—दक्खिनी०, पृ० ३०।

अठौंडी—संज्ञा पुं० [सं० अष्टपदी] एक प्रकार का आठ पैरोंवाला कीड़ा जो पशुओं के शरीर में लगता है।

अठौरा—संज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ, अठ + हिं० औरा (प्रत्य०)] लगे हुए पान के आठ बीड़ों की खोंगी।

अडग—वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०—तपसीरो रूप धरो अतताई अडग कुटी गई सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अडग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडगा'। उ०—धक्कों की धड़ाधड़ अडग की अड़ाअड़ में ह्वै रहैं कड़ाकड़ सुदतों की कड़ाकड़ी।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७।

अडँगबडँग+—वि० [हिं० अडग + बेढग] टेढ़ा मेढ़ा। अडबड। अव्यवस्थित। उ०—अडँग बडँग कर आत्मा मेटै साँची सूध।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

अडगा—संज्ञा पुं० [हिं० अड + अग = (अगवाला) रुकावट डालने वाला] टाँग अड़ाना। अटकाव। रुकावट। अड़चन। हस्तक्षेप। उ०—क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने जाल जे कुबुद्धि तनै उद्धत अडगा को।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६५।

अडड—वि० [सं० अदृश्य + द न वह देने योग्य] १. अदर्शनीय। जिसका दर्शन न हो सके। २. निर्लज्ज। निर्दय।

अडबर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० आडंबर। उ०—(क) मुख की माल दीया माल पर ज्वाल दीया छीन लीया अंबर आडंबर जहाँ जैसा।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०१। (ख) धारि कै हिमत कै सजीले रजपूत अबरी, आपने प्रताप की अडबर बढ़ाए लेति।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।

अडभर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडंबर'। उ०—धुर अडभर धुधरिय झलमल जल रुखहार—पृ० रा०, १४।६५।

अड—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० हठ = जिद अथवा अडट = समाधान = अभियोग] [क्रि० अडना, अडाना, वि० अडबाज, अडियल] हठ। टेक। जिद। अड़न। अड़ने की स्थिति।

अडकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अड़ाना'।

अडग—वि० [हिं० अडिग + अग] अडिग। न डिगनेवाला। अटल। अचल।—(डिं०)। उ०—अजाघातीनाथ दशमाथ रावण अडग महा वे अरि भारथ मानो।—रघु० रू०, पृ० २०।

अडगडा—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. बैलगाड़ियों और मालगाड़ी आदि के ठहरने का स्थान। २. वह जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अडगरिध—वि० [हिं०] दे० 'अडगरिधू'।

अडगरिधू—वि० [हिं० अडिग + पुं० रिधू] स्थिर (डिं०)।

अडगोटा—संज्ञा पुं० [हिं० अड = रोक + हिं० गोड = पाव] एक लकड़ी का टुकड़ा जिसे एक सिरे पर छेदकर बटबाट चौपायों के गले में बाँधते हैं जो दौड़ते समय उनके अगले पैरों में लगता है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकते। ठगुर। ठेकुर। ठेंगना।

अडचन—संज्ञा पुं० [देश०] १ रुकावट। अटक। बाधा। आपत्ति। कठिनाई। दिक्कत। उ०—आगे चलकर इस काम में बड़ी बड़ी अड़चनें पड़ेंगी।—(शब्द०)।

अडचल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अड़चन'। उ०—क्रोध, भय, जुगुप्सा और करुणा के संबंध में साहित्यप्रेमियों को शायद कुछ अड़चन दिखाई पड़े।—रस०, पृ० २७३।

अडट—वि० [हिं० अ = नहीं + डाँट] डाँट में न रहनेवाला। न दबनेवाला। उ०—अडटनि डटन सुदड बपुष थिर करत अप्पवर।—पृ० रा०, ३।५५।

अड़डडा—संज्ञा पुं० [हिं० अड़ = टिकाव + डडा] वह लकड़ी या बाँस का डंडा जिसके दोनों छोरों पर लट्टू बने रहते हैं। यह डंडा मस्तूल पर चिड़ियों के अड्डे की तरह बँधा रहता है और इसी पर पाल चढ़ाई जाती है।

अड़डपोपो—संज्ञा पुं० [देश०] १ सामुद्रिक विद्या जाननेवाला। हाथ देखकर जीवन की घटनाओं को बतलानेवाला। २ पाखंडी। धर्मध्वजी। झूठमूठ आडंबर करनेवाला। ३ वृथालापी। बकवादी। गप्पी।

अडतल—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + सं० तल] १. ओट। ओझल। आड़। २. छाया। शरण। ३. बहाना। हीला। उज्र।

मुहा०--अटतल पकडना या अडतल लेना = (१) पनाह लेना। शरण में जाना। (२) बहाना करना।

अडतालिस--वि० [हिं०] दे० अडतालीस'।

अड़तालिसवाँ--वि० [स०अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठ = अत्तालिस<हिं० अडतालिस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतालीस के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अड़तालिसवाँ हो।

अडतालीस--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठचत्तालीस, अट्ठतालीस] एक संख्या। चालीस और आठ। ४८।

अडतीस--वि० [अष्टत्रिंशत् प्रा० अट्ठतीस, अठतीस] एक संख्या। तीस और आठ। ३८।

अडतीसवाँ- वि० [हिं० अडतीस + वाँ (प्रत्य०)] जिनका स्थान सैंतीसवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अड़तीसवाँ हो।

अडदार--वि० [हिं० अड + फा० दार (प्रत्य०)] १ अड़ियल। रुकनेवाला। उ०- अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिंगार। ज्यों मतंग अड़दार को लिए जात गड़दार --मतिराम (शब्द०)। २ ऐंड़दार। मस्त। मतवाला। उ०--दावदार निरखि रिसानों दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।--भूषण ग्र०, पृ० ६।

अडन--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] अड़ने का भाव या क्रिया। अड़ने की स्थिति। उ०--साधु को ऐसा चाहिए ज्यो सिमु अडन अड़ै।--पलटू०, पृ० ५४।

अडना--क्रि० अ० [देश० अथवा सं० हठ, प्रा० ० अठ>हिं० अड से नाम०] १ रुकना। अटकना। ठहरना। उ०--इहि उर माखन चोर गड़े। अब कैसे निकसत सुनि ऊधौ तिरछे ह्वै जु अड़े।--सूर०, १०।३७३१। २ हठ करना। टेक बाँधना। ठानना। उ०--बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान। --कबीर (शब्द०)।

अडपायल--वि० [हिं० अड + पाँव × ल (प्रत्य०)] जोरावर। बलवान् (डिं०)।

अडबग[1]--वि० पुं० [हिं० अड़ना + सं० वक्र, प्रा० वक = टेढा] १ टेढा मेढा। ऊँचा नीचा। अडबड। अटपट। उ०--वेद को न मानै ना पुरान भेद जानै कछू ठानै ठान आपने लवेद अडबगा की।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १९६। २ विकट। कठिन। दुर्गम। जैसे रास्ता अडबग है।--(शब्द०)। ३ विलक्षण। अनोखा अद्भुत। उ०--नहिं जागत उपाय कछु लागत कुमकरण अडबगा।--रघुराज (शब्द०)।

अडबद--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० आडबद। उ०--दया प्रेम का अडबद बाँधो आतम खोल लगाई।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ४९१।

अडबड[1]--वि० [हिं० अटपट अथवा अडबड] टेढा। विकट। कठिन। मुश्किल। दुस्तर। उ०--आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ अडबड ह चढना।--कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

अडबल--वि० [हिं०] अड़नेवाला। अड़ियल। हठी।

अडभग--वि० [हिं०] दे० 'अटबग'। उ०--मुल्कों पो चडके दुश्मन घाँतल मँचाया देखो अडभंगे पन से पडको मुर्दार आया देखो। --दक्खिनी०, पृ० २९६।

अडभगी--वि० [हिं०] १. टेढा मेढा। अडबड। २ विकट। कठिन। दुर्गम। ३. विलक्षण।

अडर[1]--वि० [सं० अ = नहीं + दर - भय] निडर। निर्भय। बेडर। बेखौफ। उ०--अडर भेष धरि चढत जो अगा।--कबीर सा०, पृ० ३०९।

अडर[2]--संज्ञा पुं० [अं० आर्डर] राजकीय आदेश। राजाज्ञा। सरकारी आदेश।

अडव--संज्ञा पुं० [सं० औडव, ओडव] वह राग जिसमे षडज, गांधार मध्यम, धैवत और निषाद ये पाँचो स्वर आवें।

अडवा--संज्ञा पुं० [सं० अड्ड = रोक, बाधा] मनुष्य का आकार जो जानवरो को डराने के लिये खेत मे खड़ा किया जाता है। उ०--दरिया ऐसा भेष है जैसा अडवा खेत। बाहर चेतन की रहन, भीतर जड़ड अचेत।--दरिया० बानी, पृ० ३६।

अडवोकेट--संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जिसे वकालतनामा दाखिल करने की जरूरत नही होती। निचले न्यायालयों से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष मे बहस करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति। वकील। अब सब वकील ऐडवोकेट होते हैं।

अडसठ--वि० [सं० अष्टषष्ठि, प्रा० अट्ठसट्ठि] एक संख्या। साठ और आठ की संख्या। ६८।

अडसठवाँ- वि० [हिं० अडसठ + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सडसठवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या मे जिसका स्थान अडसठवाँ हो।

अडहुल--संज्ञा पुं० [सं० ओण + फुल्ल, हिं० ओणहुल्ल] जपा वा जवा पुष्प। देवी फल। गुड़हर।

विशेष--इसका पेड ६-७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं। फूल इसका बहुत बडा और खूब लाल होता है। इसके फूल मे महक (गंध) नहीं होती।

अडाअड--संज्ञा पुं० [हिं०] अड़ने का क्रिया या भाव। उ०--धक्को की धडाधड अडग की अडाअड मे ह्वै रहैं कडाकड सु दतो की कडाकडी।--पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७।

अड़ाक--वि० [हिं०] अड़नेवाला। अड़ियल। उ०--साहब सूम, अड़ाक तुरग, किसान कठोर, दिवान नकारो।--इतिहास, पृ० २०३।

अडाकी--वि० [हिं० अड़ाक] अड़नेवाला। उ०--आखेटा मजबूत अडाकी जात किया खल जेर।--रघु० रू०, पृ० ६३।

अडाड[1]--संज्ञा पुं० [हिं० आड] चौपायो के रहने का होता जो प्राय बस्ती के बाहर होता है। लकडियो का घेरा जिसमे रात को चौपाए हाँक दिए जाते हैं। खरिक।

अडाड[2]--संज्ञा पुं० [हिं० दे० 'अडार']।

अडाड[3]--संज्ञा पुं० [अनु०] टूटने या गिरने की आवाज। उ०--एक ऊँचा टीले का टीला अडाड करके फट पडा।--सैर कु०, पृ० ३८।

अडान--संज्ञा पुं० [हिं० अड + आन (प्रत्य०)] १ रुकने की जगह। २ पडाव। वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें।

अडाना[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ान] खडी या तिरछी लकडी जो गिरती हुई छत, दीवार या पेड आदि को गिरने से बचाने के लिये लगाई जाती है। डाट। चाँड़। थूनी। ठेवा टेका।

अडाना[2]—सज्ञा पुं० एक राग जो कान्हडा का भेद है।

अडाना[3]—क्रि० स० [हिं० अडाना] १ टिकाना। ठहराना। फँसाना। उलझाना। २ टेकना। डाट लगाना। ३ कोई वस्तु बीच मे देकर गति रोकना। जैसे,—पहिए मे रोडा अडा दे।—(शब्द०)। ४ ठूँसना। भरना। जैसे,—'इस बिल मे रोडा अडा दे—(शब्द०)। ५ गिराना। ढरकाना।

अडानी[1]—सज्ञा पुं० [देश०] १ बडा पखा। उ०—बहु छत्र अडानी कलस धुज, रावत राजत कनक के।—गिरिधरदास (शब्द०)।

अडानी[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडाना] १ कुश्ती का एक पेंच। अडगा। दूसरे की टाँग मे अपनी टाँग अडाकर पटकने का दाँव। २ लकडी की रोक जो खिडकी या दरवाजे के पल्लो को रोकने के लिये लगाई जाती है।

अडायती—वि० [हिं० आड या अड+आयती (प्रत्य०)] [स्त्री० अडायती (व्रज०)] जो आड करे। ओट करनेवाला। अडैती। उ०—क्यो न गडि जाहु गाड गहिरी गडति जिन्हें गोरी गुरुजन लाज निगोडि गडायती। ओडी न परति री निगोडिन की ओडी दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अडायती।—देव (शब्द०)।

अडार[1]—वि० [सं० अराल] १ अडनेवाला। स्थिर रहनेवाला। उ०—जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अडार जाहि पल माहाँ।—जायसी ग्र० पृ० ४२। २ टेढा। तिरछा।

अडार[2]—सज्ञा पुं० [सं० अट्टाल=बुर्ज, ऊँचा स्थान] १ समूह। राशि। ढेर। उ०—क्रम पितु अन्न अडार जुहायो। क्रम क्रम ते सब जतन बटायो।—विश्राम (शब्द०)। २ ईंधन का ढेर जो बेचने के लिये रखा हो। ३ लकडी या ईंधन की दूकान। ४ गायो भैसो के रहने का घेरा या बाडा।

अडारना—क्रि० स० [हिं० डालना] डालना। देना। उ०—पीउ सुनत धनि आपु बिसारे। चित्त लखै तनु खाइ अडारे।—जायसी (शब्द०)।

अडाल—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। चिडियो के पख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना। मयूरनृत्य।

अडाव—सज्ञा पुं० [हिं० अड] १ स्तभ। आधार। २ ऊँचाई। उ०—राजमहलूँके अडाव अरस सेती अडे।—रघु० रू०, पृ० २३८।

अडिग—वि० [स० अ=नहीं+हिं० डिगना] जो हिले डुले नही। निश्चल। स्थिर।

अडिग्ग—वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०—धीरजवत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ आदू।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ३८४।

अडियल—वि० [हिं० अडना+इयल (प्रत्य०)] १ रुकनेवाला। अड अडकर चलनेवाला। चलते चलते रुक जानेवाला। उ०—मधुवन अडियल टट्टू की तरह रुक गया।—तितली, पृ० २२९। २ सुस्त। काम मे देर लगानेवाला। मट्ठर। ३ जिद्दी। हठी।

अडिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] अड्डे के आकार की एक लकडी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं। साधुओ की कुबडी या तकिया।

मुहा०—अडिया करना=जहाज के लगर की रस्सी खीचना।

अडिल्ल—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरिल्ल'।

अडी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] १ अडान। जिद। हठ। आग्रह। २ रोक।

क्रि० प्र०—करना=हिरन की तरह छलाँग मारना।

३ ऐसा अवसर जब कोई काम रुका हो। जरूरत का वक्त। मौका। ४. पासा या चौपड के खेल मे एक ही घर मे दो गोटियो के पहुँचने पर अन्य खेलाडियो की चालो का रुकना। उ०—चौरासी घर फिरै अडी पौ बारह नावौ।—पलटू०, पृ० ३४।

अडी[2]—वि० अडनेवाला। टेकी। जिद्दी।

अडीखभ—वि० [हिं० अडी+खभ] जोरावर। बली।—डिं०।

अडिठ—वि० [सं० अदृष्ट, पा० अदृट्ठ, प्रा० अडिट्ठ] १ जो दिखाई न पडे। लुप्त। २ छिपा हुआ। अतर्हित। गुपचुप।

अडुक—सज्ञा पुं० [सं०] हिरन। मृग (को०)।

अडुचल—सज्ञा पुं० [सं०] हलचल का एक भाग (को०)।

अडूलना—क्रि० स० [देश० अथवा हिं० उँडेलना] ढालना। उडेलना। डालना। गिराना। उ०—जहाँ आठ हू भाँति के कज फूलै। मनो नीर आकास तारे अडूलै।—सूदन (शब्द०)।

अडूसा—सज्ञा पुं० [सं० अटरूष, प्रा० अठरूस] एक ओषधि विशेष।

विशेष—इसका पेड ३—४ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पत्ता हलके हरे रग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं। इसके सफेद रग के फूल जटा मे गुथे हुए निकलते हैं जिनमे थोडा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगों मे दिया जाता है।

अडैच—सज्ञा स्त्री० [देश०] शत्रुता। द्वेष। मनमुटाव।

अडैता—वि० [हिं०] दे० 'अडायती'।

अडैल—वि० [हिं०] दे० 'अडियल'। उ०—ऐल परी गैल मैं मतग मतवारनि की, भीड अडत अडैलनि तुरगा तरजत हैं।—हम्मीर० पृ० २४।

अडोर—सज्ञा पुं० [सं० आन्दोल=हलचल] तुमुल शब्द। शोर। गुल। दे० 'अदोर'। उ०—बाजन बाजे होय अडोरा। आवहि बहल हस्ति औ घोरा।—जायसी (शब्द०)।

अडोल—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डोलना] १ अटल। जो हिले नही। निश्चल। उ०—प्रेम अडोलु डूलै नहीं, मुँह बोल अनखाई। चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाई।—बिहारी र० दो० ६३१। २ स्तब्ध। ठकमारा। उ०—त्यो पदमाकर खालि रही दृग बोलै न बोल अडोल दशा है।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५१। ३ स्थिर। ध्रुव। उ०—मुख बोल कहत अडोल है गज बाजि देत अमोल है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६।

अडोस पडोस—सज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेस (=पडोस) से वि० द्वि० मू०] आसपास। करीब।

अडोसी पडोसी—सज्ञा पुं० [हिं० अडोस पडोस] आसपास का रहनेवाला। हमसाया।

अड्ड—वि० [देश० अड्ड=आडे आनेवाला] बाधा। रोक। आड। उ०—काल पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

अड्डन--सज्ञा पुं० [सं० अड्डनम्] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र। अट्टन [को०]।

अड्डा--सज्ञा पुं० [सं० अट्टाल = ऊँची जगह] १ टिकने की जगह। ठहरने का स्थान। २ मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३ बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ सवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रंडियों के इकट्ठा होने का स्थान या कुटनियों का डेरा जहाँ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६ केंद्र। प्रधान स्थान। जैसे--वही तो इन सब बुराइयों का अड्डा है (शब्द०)। ७ लकड़ी या लोहे की छड़ जो चिड़ियों के बैठने के लिये पिंजड़े के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. बुलबुल, तोता आदि चिड़ियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९ पचास साठ तह के कपड़े का गद्दा जिसको छीपी चौकी पर बिछाकर उसी के ऊपर कपड़ा रखकर छापते हैं। १० चौखूटा लकड़ी का ढाँचा जिसपर इजारबद वगैरह बुने जाते हैं और कारचोबी का काम भी होता है। चौकठा। ११ चार हाथ लंबी, चार अंगुल चौड़ी और चार अंगुल मोटी लकड़ी जिसके किनारे पर बहुत सी खूँटियाँ, जिनपर बाले का ताना ताना जाता है लगी रहती हैं। १२ ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कबूतरों के बैठने के लिये होती है। कबूतरों की छतरी। १३ एक लंबा बाँस जो दो बाँसों को गाँठकर उनके सिरे पर आटा बाँध दिया जाता है। १४ लोहे या काठ की एक पटरी जो बीचोबीच लगी हुई एक लकड़ी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर रुपयों को टिकाकर सुनारनेवाले खराद्ते हैं। १५ खँडसाल में काम आनेवाला बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रेहट में इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटा न घूम सके। १७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर जुलाहे सूत चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८ एक लकड़ी जिसपर नवार बुनकर लपेटी जाती है।

अड्डी--सज्ञा स्त्री० [हिं० अड्डा] १ एक बरमा जिससे गटगटा आदि लंबी चीजों में छेद करते हैं। २ जूते का किनारा।

अड्रेस--सज्ञा पुं० [अं० एड्रेस] १ अभिनंदनपत्र। वह लेख या प्रार्थनापत्र जो किसी महापुरुष के आगमन के समय उसे संबोधन करके सुनाया जाय। २ पता। ठिकाना। ३ भाषण। वक्तृता।

अढउल--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडहुल'।

अढतिया--सज्ञा पुं० [हिं० आढत + इया (प्रत्य०)] १ वह दुकानदार जो ग्राहकों या दूसरे महाजनों को माल खरीदकर भेजता है और उनका माल मँगाकर बेचता है। इसके बदले में वह कुछ कमीशन या आढत पाता है। आढत करनेवाला। आढत का व्यवसाय करनेवाला। २ दलाल। एजेंट।

अढन ⓤ--सज्ञा पुं० [देश०] धाक। मर्यादा। उ०--चारिउ बरन चारि आश्रम हूँ मानत श्रुति की अढन --देवस्वामी (शब्द०)।

अढर ⓤ--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ढरना] न ढलनेवाला। उ०--अढर ढुरहि गढ़ ढुरहि मेर परभर सुपरहिं भर।--पृ० रा०, ५५।८।

अढ़वना ⓤ--क्रि० स० [सं० आ + √ज्ञा = बोध कराना, आज्ञापन, प्रा० आणपन] आज्ञा देना। कार्य में नियुक्त करना। काम में लगाना। उ०--कैसे बरजो करन को समरनीति की बात। अति साहस के काम को अढवत हियो सकात।--उत्तर-चरित (शब्द०)।

अढ़वायक ⓤ--सज्ञा पुं० [हिं० अढवना] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०--पहिलेइ रचे चारि अढवायक। भए सब अढवैयन के नायक।--जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अढवैया ⓤ-- सज्ञा पुं० [हिं० अढ + वा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'अढवायक'। उ०--भे सब अढवैयन के नायक।--जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अढाई--वि० [सं० अर्धतृतीय, प्रा० अड्ढाइय] दो और आधा। ढाई। उ०--मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई।--मानस, २।२७७।

अढार (५ †-- वि० [सं० अ० = नहीं + हिं० ढरना = ढलना] १. किसी की ओर न ढलने या अनुरक्त होनेवाला। २ कठोर। निर्मोही निर्दय।

अढारटकी ⓤ--सज्ञा पुं० [?] धनुष (डिं०)।

अढिया--सज्ञा स्त्री० [सं० आधानिका, प्रा० आढाइया > अढइया] १. काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या लोहे का पात्र जिसमें मजदूरों के लटके गारा या कपसा उठाकर ले जाते हैं।

अढ़ी ⓤ--वि० [प्रा० अड्ढाई] ढाई। दो और आधे की संख्या। उ०--तिन भूभुत निरभै गयो अढ़ी कोस चहुआन।--पृ० रा०, ६१।२२१६।

अढ़ुक--सज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। चोट। उ०--फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।--तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

अढ़ुकना--क्रि० अ० [सं० आ = अच्छी तरह + टक = बंधन या रोक अथवा हिं० अढ़ुक से नाम०] १ ठोकर खाना। उ०--अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम वियोग विकल दुख तीछे।--मानस, २।१४३। २ सहारा लेना। टेकना।

अढ़ैया[1]--सज्ञा पुं० [हिं० अढाई, ढाई] १ एक तौल जो ढाई सेर की होती है। पसेरी का आधा। २ ढाई गुने का पहाड़ा।

अढ़ैया[2]--सज्ञा पुं० [हिं० अढवना] काम करानेवाला। अढवैया।

अढौना--सज्ञा पुं० [हिं० अढवना] करने के लिये कहा गया या दिया हुआ काम। उ०--छोटा सा अढौना भी करेगी तो भुनभुना कर।--गोदान, पृ० ३०।

अणक[1] ⓤ--वि० [सं०] कुत्सित। निंदित। अधम। नीच (डिं०)।

अणक[2]--सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता†--वि० [सं० अन्, प्रा० अण + हिं० करता] अकर्ता। निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०--करता है सो करेगा दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।--दादू०, पृ० ४५७।

अणकीय--वि० [सं०] कुत्सित, निंदित, नगण्य, अधम आदि से संबंधित [को०]।

अणद(पु) सज्ञा पुं० [स० आनन्द] आनद। उल्लास। चित्त की प्रसन्नता (डिं०)।

अणमण(पु)—वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण्ण+मण] १. अप्रसन्न। दुखित। नाराज। २ बीमार। रोगी (डिं०)।

अणरता(पु)—वि० [प्रा० अण+रत्त] जो अनुरक्त न हो। अनासक्त। उ०—अणरता सुख सोवणा रातै नीद न आइ।—कबीर ग्र०, पृ० ५१।

अणरस(पु)—वि० [प्रा० अण+रस] दे० 'अनरस'। उ०—रस को अणरस अणरस को रस मीठा खारा होइ।—दादू०, पृ० ५५४।

अणव्य—सज्ञा पुं० [स०] चीना, साँवाँ आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०]।

अणसक(पु)—वि० [स० अन्=नहीं+शका=डर, प्रा० अण+सक] जो डरे नही। निर्भय। निशक। निडर (डिं०)।

अणास(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० अडस] अडस। कठिनाई (डिं०)।

अणि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कोर। नोक। मुनई। २ धार। बाढ। ३ वह कील जिसे धुरे के दोनो छोरो पर चक्के की नाभि मे इसलिये ठोकते हैं जिसमे चक्का धुरी के छोरो पर से बाहर न निकल जाय। धुरकीली। धुरी की कील। ४ सीमा। हद। सिवान। मेड। ५ किनारा। ६ अत्यत छोटा। ७ गाडी के वम के अगले सिरे पर लगी कीली या बाल्टू।

अणिमाडव्य—सज्ञा पुं० [स० अणिमाण्डव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डडा चुभाए रहते थे जिसके कारण उनका यह नाम लोक मे प्रसिद्ध हुआ [को०]।

अणिमा—सज्ञा स्त्री० [स०] अष्ट सिद्धियो मे पहली सिद्धि।

विशेष—इस सिद्धि के द्वारा योगी अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नही पडते। इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते है और समीप होने पर भी दिखाई नही देते तथा कठिन से कठिन अभेद्य पदार्थ मे भी प्रवेश कर जाते हैं।

२ सूक्ष्मता। ३ अणुता या अणु का भाव।

अणिमादिक—सज्ञा स्त्री० [स०] अष्टसिद्धियाँ—अर्थात् १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व और ८. वशित्व।

अणियाली(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अणि=धार+हिं० याली=वाली (प्रत्य०)] कटारी (डिं०)।

अणी[1](पु)—सज्ञा० [देश०] अरी। अनी। एरी। हेरी। उ०—डोलती डरानी खतरानी वतरानी वेवे, कुडियन पेखी अणी माँ गरुन पावा हौं।—सूदन (शब्द०)।

अणी[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अणि'।

अणीय—वि० [स० अणु+ईयस्=अणीयस्] अतिसूक्ष्म। बारीक। भीना।

अणु[1]—१ सज्ञा पुं० [स०] द्वयणुक से सूक्ष्म, परमाणु से बडा कण जिसका विना किसी विशेष यत्र के खड नही किया जा सकता। २ ६० परमाणुओं का सघात या बना हुआ कण। ३ छोटा टुकडा। कण। ४ परमाणु। ५ सूक्ष्म कण। ६ रज। रजकण। ७. सगीत मे तीन ताल के काल का चतुर्थांश काल। ८ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा। ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग।

अणु[2]—वि० १ अतिसूक्ष्म। क्षुद्र। २ अत्यत छोटा। ३ जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पडे।

अणुक—वि० [स०] अणु सबधी। अतिसूक्ष्म। उ०—अणुक द्वयणुक जड जीव आदि जितने हैं, देखा।—अनामिका, पृ० ३८। २ एक प्रकार का छोटे दानोवाला अन्न (को०)। ३ चतुर (को०)।

अणुतर—वि० [स०] बहुत बारीक या सूक्ष्म। कोमल [को०]।

अणुता—वि० [स०] दे० 'अणुक' [को०]।

अणुतैल—सज्ञा पुं० [स०] एक औषध का तेल [को०]।

अणुत्व—वि० [स०] अतिसूक्ष्मता। अणु जैसी सूक्ष्मता [को०]।

अणुवम—सज्ञा पुं० [स० अणु+अ० वाम्ब] एक विनाशक अस्त्र। दे० 'परमाणु वम'।

अणुभा—सज्ञा स्त्री० [स०] बिजली। विद्युत्।

अणुभाष्य—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०]।

अणुमध्यवीज—सज्ञा पुं० [स०] एक मत्र का नाम [को०]।

अणुमात्र—वि० [स०] अणु के समान छोटे आकारवाला [को०]।

अणुमात्रिक—वि० [स०] १ दे० 'अणुमात्र'। २ अणु के अश या मात्रा से युक्त [को०]।

अणुरेणु—सज्ञा पुं० [स०] आणविक या अणु सबधी धूल जैसी सूर्य की किरणो मे दिखाई पडनी है [को०]।

अणुरेणुजाल—सज्ञा पुं० [स०] आणविक धूलिकणो समूह [को०]।

अणुरेवती—सज्ञा स्त्री० [स०] दंती नामक क्षुप। करोटन का वृक्ष [को०]।

विशेष—इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रग के होते हैं।

अणुवत—सज्ञा पुं० [स० अणुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०]।

अणुवाद—सज्ञा पुं० [स०] १ वह दर्शन या सिद्धात जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो। वल्लभाचार्य का मत। २ वह शास्त्र जिसमे पदार्थों के अणु नित्य माने गए हों। वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी—सज्ञा पुं० [स० अणुवादिन्] १ नैयायिक। वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला। २ वल्लभाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

अणुवीक्षण—सज्ञा पुं० [स०] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यत्र। खुर्दबीन। माइक्रोस्कोप। उ०—बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से।—युगपथ, पृ० १२०। २ बाल की खाल निकालना। छिद्रान्वेषण।

अणुवेदात—सज्ञा पुं० [स०] एक ग्रथ का नाम [को०]।

अणुव्रत—सज्ञा पुं० [स०] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अग।

विशेष—इसके ५ भेद हैं—(१) प्राणातिपात विरमण, (२) मृषावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मैथुन विरमण और (५) परिग्रह विरमण। पातजलि योगशास्त्र मे इनको 'यम' कहते हैं।

अणुव्रीहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ़ जाता है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है और महँगा बिकता है मोतीचूर।

अणुह—संज्ञा पुं० [स०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अणोरणीयान्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उस मंत्र का नाम जिसके आदि में ये शब्द आते हैं। वह मंत्र यह है—अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन'।

अणोरणीयान्[2]—वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यंत सूक्ष्म २. छोटे से छोटा।

अतक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतंक'। उ०—सक सों सिमिटि चित्र अंक से भए हैं सबै बक अरि उर पै अतक इमि छायो है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतका[1]—वि० [आतङ्कित, प्रा० आतंकिअ] आतंकित। भयभीत। उ०—बाढी सीत सका कांपै कर ह्वै अतका।—गंग ग्र०, पृ० २३६।

अतका[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतंक'। उ०—सोहै अज ओडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज के अतका मे। —पद्माकर ग्र०, पृ० २२४।

अतत[1]—वि० [हिं०] दे० 'अत्यंत'। उ०—मन पछी सो एक है पारब्रह्म को अतत '—केशव० अमी०, पृ० १३।

अतत्र—वि० [स० अ + तन्त्र] १ अनियंत्रित। २ सिद्धांतरहित। ३ तंत्र या ततु से रहित [को०]।

अतत्रत्व—संज्ञा भा [सं० अतन्त्रत्व] अर्थराहित्य। अर्थशून्यता।

अतद्र—वि० [सं० अतन्द्र] १ तंद्रारहित। सजग। २ सतर्क [को०]।

अतद्रमा—वि० [सं० अतन्द्रिम] तंद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०—देत छवि को है कोकनद में नदी में कहो नखत विराजै कौन निसि में अतद्रमा।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८०।

अतद्रिक—वि० [सं० अतन्द्रिक] १ आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्त। चंचल। उ०—बिखरि जात पखुरी गरूर जनि करि अतद्रिका। सुकवि दसा सब ह्वै है हरि सिर मोरचद्रिका।—व्यास (शब्द०)। २ व्याकुल। विकल। बेचैन।

अतद्रित—वि० [स० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चंचल। उ०—पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय संगीत रहा उच्छ्वसित अतंद्रित।—रजत शि०, पृ० ११४।

अतद्रिल—वि० [स० अतन्द्रिल] तंद्राविहीन। अतंद्र [को०]।

अत—क्रि० वि० [स०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०—शुचिते, पहनाकर चीनांशुक, करसका न तुझे अत दधिमुख।—अनामिका, पृ० ११०।

अत—वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरन' मयंक वदन की मदनमोहिनी अत है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९४।

अतऊर्ध्वम्—अव्य० [स०] इसके आगे या बाद में [को०]।

अतएव—क्रि० वि० [स०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट[1]—संज्ञा पुं० [स०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। अतल (को०)।

अतट[2]—वि० तटहीन। खड़ी ढालवाला [को०]।

अटतप्रपात—संज्ञा पुं० [स०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत[1] ⓤ—वि० [स० अतथ्य, अथवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतथ्य'। उ०—चित्रग राव रावर कहे अतत मत मत्री कहे।—पृ० रा०, ५६।५०।

अतत[2] ⓤ—वि० [स० अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतत्व'। उ०—अतत निरसन कीजिए तौं द्वैत नहिं ठहराई।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८४०।

अततायी ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—तपसी रो रूप धरे अततायी अडग कुटी गइ सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अतत्व[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ + तत्त्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व[2]—वि० सारहीन। तत्वरहित [को०]।

अतथ्य—वि० [सं०] १ अन्यथा। झूठ। असत्य। अयथार्थ। २. अतद्वत्। असमान।

अतद्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुण को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यंत निकट हो। जैसे—गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात। हंस रहत तब शुभ्रता तैसिय बढि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्—वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्—वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनंग। उ०—धूम धमारिन की मची अगन अतन उमंग। अरी आज बरसत घनो ब्रजवीथिन रसरंग।—सं० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु—वि० [सं०] १ शरीररहित। बिना देह का। बिना अंग का। उ०—रति अति दुखित अतनु पति जानी।—मानस १।२४६। २ मोटा। स्थूल।

अतनु[1]—संज्ञा पुं० अनंग। कामदेव।

अतप—वि० [स०] १. जो तप्त न हो। ठंढा। शांत। २. दिखावा न करनेवाला। आडंबररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त—वि० [स०] १. जो तपा न हो। ठंढा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु[1]—वि० [स०] रामानुज संप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण की हो। जिसने विष्णु के चार आयुधों के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हों। बिना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु[2]—संज्ञा पुं० बिना छाप का मनुष्य।

अतमा—वि० [स० अतमस्] अंधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट—वि० [स० अ + तम + आविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अंधकाराच्छन्न न हो या अंधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्र—वि० [स०] जो अंधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरंग—संज्ञा पुं० [देश०] लंगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

अतर[1]– सज्ञा पुं० [अ० इत्र] निर्यास। पुष्पसार। भभके द्वारा खिचा हुआ फूलो की सुगध का सार। उ०--करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि। रे गधी, मतिअध तूं अतर दिखावत काहि।--विहारी र० दो० ८२।

विशेष--ताजे फूलों को पानी के साथ एक बद देग मे आग पर रखते हैं जो नल के द्वारा उस भभके से मिला रहता है जिसमे पहले से चदन का तेल, जिसे जमीन या मरवा कहते हैं, रखा रहता है। फूलो से सुगधित भाप उठकर उस चदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहते हैं। जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे—गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि।

अतर[2]ⓤ--सज्ञा पुं० [स० अस्त्र, प्रा०अत्र] दे० 'अस्त्र'। उ०—कनक पाट जनु बइठेउ राजा। सबइ सिंगार अतर लेइ साजा।--पदुमा०, पृ० ४६।

अतरकⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अतर्क्य'। उ०—अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अत अनदा।—रै० बा०, पृ० ४५।

अतरजⓤ†--सज्ञा पुं० [स० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०--आजु की बात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसरांम की बानु कुंमरि नें धरयो एकई हात।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६७१।

अतरदान--सज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० दान (तुल० बं० 'धान')] सोने, चांदी या गिलट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमे इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलो मे सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है। उ०--सब राजा बराबर बराबर कुर्सियो पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मत्री ने अतरदान ले रक्खा है।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६२।

अतरल—वि० [स०] जो तरल या पतला न हो। गाढ़ा।

अतरवन--सज्ञा पुं० [स० अन्तर] १ पत्थर की पटिया जिसे घोड़िए के ऊपर बैठाकर छज्जा पाटते हैं। २ वह खर या मूंज जिसे ठाट पर फैलाकर ऊपर से खपडा या फूस छाते हैं।

अतरसो--कि० वि० [स० *इतर+श्व] १ परसो के आगे का दिन। वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन। उ०—खेलत मे होरी रावरे के कर परसों जो भीजी है अतर सो सो आइहै अतरसो।--रघुनाथ (शब्द०)। २ गत परसो से पहिले का दिन। वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन।

अतराफ--सज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ का बहुवचन। उ०—उस अतराफ मे था जिसे तख्तो ताज इताअत करे मलिक देवे खिराज।--दक्खिनी०, पृ० १५६।

अतरिख--सज्ञा पुं० [स० अतरिक्ष, प्रा० अतरिख] दे० 'अतरिक्ष'।

अतरौटाⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँतरौटा'। उ०--'दास' उलटीयै वेदी उलटीयै आँगी उलटोई अतरौटा पहिरे हौं उतलाई मे।--भिखारी ग्र०, पृ० २७३।

अतर्क[1]--वि० [स०] तर्कहीन। असगत [को०]।

अतर्क[2]—सज्ञा पुं० तर्कहीन बात करनेवाला [को०]।

अतर्कित--वि० [स०] १. जिसका पहले से अनुमान न हो। २ आकस्मिक। ३ बे सोचा समझा। जो विचार में न आया हो। जिसपर विचार न किया गया हो।

अतर्क्य--वि० [स०] जिसपर तर्क वितर्क न हो सके। जिसके विषय मे किसी प्रकार की विवेचना न हो सके। अनिर्वचनीय। अचिंत्य। उ०--राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।—मानस, १।१२०।

अतर्सⓤ—वि० [स० अ+त्रास, अथवा हिं० अ+फा० तर्स] निर्भय। निष्ठुर। उ०—यह जम तीन लोक का राजा बाँधे अतर्स होई।--कबीर श०, पृ० १४।

अतल[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ सात पातालो मे दूसरा पाताल। २. शिव [को०]।

अतल[2]--वि० तलविहीन। अथाह [को०]।

अतलता[1]—वि० तलरहित। अथाह। उ०—अतल सिंधु मे लगा लगा कर जीवन की बेडी बाजी।--झरना, पृ० ५१।

अतलता[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] गहराई। उ०—ये किन स्वच्छ अतलताओ की मौन नीलिमाओ मे बहते।--अतिमा, पृ० १२।

अतलस--सज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपडा जो बहुत नरम होता है। उ०--अतलस लहँगा जरद रँग सारी। चोलिअन्हि बद सँवारी री।—स० दरिया, पृ० १७०।

अतलस्पर्शी--वि० [स०] अतल को छूनेवाला अत्यत गहरा। अथाह। अतलस्पृक्।

अतलस्पृक्--वि० [स०] अत्यत गहरा।

अतलात--वि० [स० अतल+अत] जिसके तल का अत न हो। अत्यत गहरा। उ०—अतलात महा गभीर जलधि तजकर अपनी वह नियत अवधि।—लहर, पृ० १२।

अतवानⓤ—वि० [स० अतिवान्] अधिक। अत्यत। उ०--सावन बरस मेह अतवानी। भरन परी हौं विरह भुरानी।—जायसी (शब्द०)।

अतवार--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्तवार'। उ०—दरबार के दिन जो अतवार और मगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे।--दुर्गेश०, पृ० ५७।

अतस[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वायु। पवन। २ आत्मा। ३ अतसी के रेशो से बना हुआ वस्त्र। ४ एक प्रकार का अस्त्र। ५ एक क्षुप [को०]।

अतस[2]ⓤ—वि० [स० 'अतिशय' का सक्षिप्त रूप] बहुत अधिक। अतिशय। उ०—तौ पण प्रताप मेछा तणो अतस दाप बाधे अकस।--राज० रू०, पृ० २१।

अतसवाजीⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतिसबाजी'। उ०—छुटत अतसवाजी रगरगी।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ७०५।

अतसी—सज्ञा स्त्री० [स०] अलसी। तीसी।

अतहार[1] सज्ञा पुं० [अ० तुह्र का बहुव०] पवित्रता। उ०—मुज कू दर बावे इज्जत अतहार।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अतहार[2]—वि० [अ० ताहिर का बहुव०] पवित्र [को०]।

अता— स्त्री० [अ० अता=अनुग्रह] अनुग्रह। दान।

क्रि० प्र०—करना, फरमाना=देना।—होना=दिया जाना। मिलना।

अतावखश—वि० [अ० अता + फा० बख्श] दान देनेवाले। दाता। उदार [को०]।

अताई[1]—वि० [अ०] १ दक्ष। कुशल। प्रवीण। २ धूर्त। चालाक। ३. अर्धशिक्षित। अशिक्षित। जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे। पंडितमन्य।

अताई[2]—संज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे। उ०—और स्वतंत्र व्यसनशील वा अताई उनसे भी बढ़ जाते हैं।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३।

अताई[3]—वि० [हिं०] दे० 'आततायी'।

अतान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—कुज गई न विथा गई कुमुमित ताकि अतान। बहुरि दई दूनी भई लगे अतन के बान।—स० सप्तक, पृ० २६४।

अताना—संज्ञा पुं० [?] मालकोस राग की एक रागिनी।

अतानामा—संज्ञा पुं० [अ० अता + फा० नामह] दानपत्र [को०]।

अतापता—संज्ञा पुं० [हिं० पता का अनु० वि० द्वि०] हालचाल। ठौर ठिकाना। उ०—दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर अतापता मिला।—सुनीता पृ० ४४।

अतापी(पु)—वि० [स०] तापरहित। दुःखरहित। शांत।

अताव—संज्ञा पुं० [अ० इताब] गुस्सा। क्रोध। उ०—लाखो लगाव एक चुराना निगाह का। लाखो बनाव एक बिगड़ना अताव का।—शेर०, भा० १, पृ० १२।

अतार—संज्ञा पुं० [अ० अत्तार] दे० 'अत्तार'।

अतालीक—संज्ञा पुं० [अ०] शिक्षक। गुरु। उस्ताद। अध्यापक।

अतित(पु)—वि० [सं० अत्यंत] दे० 'अत्यंत'। उ०—ज्यों कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भंचक आन्यो—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५८१।

अति[1]—वि० [सं०] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—अति डर तें अति लाज तें जो न चहै रति बाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८६।

अति[2]—संज्ञा स्त्री० अधिकता। ज्यादती। सीमा का उल्लंघन या अतिक्रमण। उ०—(क) गंगा जू तिहारो गुनगान करैं अजगैंद आनि होति बरखा सु आनँद की अति है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५८। (ख) उनके ग्रंथ में कल्पना की अति है।—व्यास (शब्द०)।

अतिअत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अत्यंत'। उ०—लाभ होत अतिअत किसोरी कृष्न चरन को।—ब्रजनिधि ग्र०, पृ० ११।

अतिउकुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति, हिं० उकति] दे० 'अत्युक्ति'। उ०—सुनि अतिउकुति पवनसुत केरी।—मानस, ६।१।

अतिउक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति] अत्युक्ति।

अतिकदक—संज्ञा पुं० [स०] हस्तिकद नाम का पौधा [को०]।

अतिकथ—वि० [स०] १ अविश्वनीय। अतिरंजित। २. अश्रद्धेय। ३. सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवाला। ४. मृत। नष्ट [को०]।

अतिकथा—संज्ञा स्त्री० [स०] अतिरंजित कथा। निरर्थक बात [को०]।

अतिकर्षण—संज्ञा वि० [स०] अत्यधिक परिश्रम [को०]।

अतिकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है, अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष। ब्रह्मकल्प। उ०—सत्य संकल्प, अतिकल्प, कल्पातकृत।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८५।

अतिकांत—वि० [स० अतिकान्त] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिकाय[1]—[स०] वि० दीर्घकाय। बहुत लंबा चौड़ा। बड़े डीलडौल का। स्थूल। मोटा।

अतिकाय[2]—संज्ञा पुं० रावण का एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था। उ०—भट अतिकाय अकंपन भारी।—मानस, ६।६१।

अतिकाल—संज्ञा पुं० [स०] १ विलंब। देर। २. कुसमय। ३ काल का अतिक्रमण करनेवाला महाकाल। काल के भी काल। शिव। उ०—काल अतिकाल, कलिकाल, व्यालाद खग, त्रिपुर-मर्दन भीम कर्म भारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६०।

अतिकिरिट—वि० [स०] बहुत छोटे दाँतोंवाला [को०]।

अतिकिरीट—वि० [स०] दे० 'अतिकिरिट' [को०]।

अतिकृच्छ—संज्ञा पुं० [स०] १ बहुत कष्ट। २ छह दिन का एक व्रत।

विशेष—इस व्रत में पहले दिन एक ग्रास प्रातःकाल, दूसरे दिन एक ग्रास सायंकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं।

अतिकृति[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पचीस वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—सुंदरी सवैया और झींच। २ मर्यादा का अतिक्रम (को०)।

अतिकृति[2]—वि० जिसे करने में अति या मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो [को०]।

अतिकेशर—संज्ञा पुं० [स०] कुब्जक नाम का पौधा [को०]।

अतिकोप—वि० [स०] क्रोधरहित। शांत [को०]।

अतिक्रम—संज्ञा पुं० [स०] नियम या मर्यादा का उल्लंघन। विपरीत व्यवहार। उ०—देवपाल का क्रोध सीमा का अतिक्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया।—आकाश०, पृ० ३६।

अतिक्रमण—संज्ञा पुं० [स०] १. उल्लंघन। पार करना। हद के बाहर जाना। उ०—बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड़ चले।—कामायनी, पृ० २०८। २ प्रबल आक्रमण (को०)। ३ जीतना। अधिकार करना (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिक्रांत[1]—वि० [स० अतिक्रान्त] १ सीमा का उल्लंघन किए हुए। हद के बाहर गया हुआ। बढ़ा हुआ। २ बीता हुआ। व्यतीत। गया हुआ।

अतिक्रांत[2]—संज्ञा पुं० बीती हुई बातों या कथन [को०]।

अतिक्रांतनिषेध—वि० [स० अतिक्रान्तनिषेध] निषेधाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला [को०]।

अतिक्रांतभावनीय—संज्ञा पुं० [स० अतिक्रान्तभावनीय] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियों में से एक। वैराग्य-संपन्न योगी।

अतिक्रामक—संज्ञा पुं० [स०] क्रम या नियम का उल्लंघन करनेवाला। उ०—कृतियों में इस कमी के रहते हुए भी अनेक अतिक्रामक गुण हैं।—शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १०।

अतिक्रुद्ध[1]—वि० [सं०] अत्यंत रुष्ट। अधिक नाराज [को०]।
अतिक्रुद्ध[2]—संज्ञा पुं० तंत्रोक्त एक मंत्र [को०]।
अतिक्रूर[1]—वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०]।
अतिक्रूर[2]—संज्ञा पुं० १ एक तंत्रोक्त मंत्र। २ शनि आदि क्रूर ग्रह [को०]।
अतिक्षिप्त[1]—वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फेंका हुआ [को०]
अतिक्षिप्त[2]—संज्ञा पुं० मोच। मुरकन [को०]।
अतिखट्व—वि० [सं०] चारपाई से रहित। बिना खाट के काम चलानेवाला।
अतिगंड[1]—वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोंवाला [को०]।
अतिगंड[2]—संज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल। २ बड़े कपोलवाला व्यक्ति। ३ एक नक्षत्र या तारा। ४ एक योग [को०]।
अतिगंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १ चंपा का पेड़ या फूल। २ भूततृण। मुद्गर, बटगोरा आदि (को०)।
अतिगंध[2]—वि० तीक्ष्ण गंधवाला [को०]।
अतिगंधालु—संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम। पुत्रदात्री [को०]।
अतिगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिगन्धिका] दे० 'अतिगंधालु' [को०]।
अतिगत—वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ। बहुत। अधिक। ज्यादा। अत्यंत। उ०—अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल बिनु मीन।—दादू (शब्द०)।
अतिगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति। मोक्ष। मुक्ति। उ०—जनक कहत सुनि अतिगति पाई। तृणावर्त को हौ मुनिराई।—गि० दा० (शब्द०)।
अतिगव—वि० [सं०] १ अत्यंत मूर्ख। २ वर्णन के परे। वर्णनातीत [को०]।
अतिगहन—वि० [सं०] अधिक गहरा। प्रवेश करने में दुष्कर [को०]।
अतिगह्वर—वि० दे० 'अतिगहन' [को०]।
अतिगुण[1]—वि० [सं०] १ सद्गुणी। बहुत अच्छे गुणवाला। २. अयोग्य। निकम्मा [को०]।
अतिगुण[2]—संज्ञा पुं० सद्गुण। बहुत अच्छा गुण [को०]।
अतिगुरु[1]—वि० [सं०] अत्यंत भारी। बहुत वजनी [को०]।
अतिगुरु[2]—संज्ञा पुं० अत्यंत आदरणीय व्यक्ति। पिता माता आदि [को०]।
अतिगुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी नाम की लता [को०]।
अतिग्रह[1]—वि० [सं०] बाधागम्य। दुर्बोध [को०]।
अतिग्रह[2]—संज्ञा पुं० १ ज्ञानेंद्रियों का विषय। २. उपयुक्त या सही ज्ञान। ३ आगे बढ़ जाना। ४ अधिक ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०]।
अतिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०]।
अतिग्राह्य[1]—वि० [सं०] नियंत्रण में रखने योग्य [को०]।
अतिग्राह्य[2]—संज्ञा पुं० ज्योतिष्टोम यज्ञ में लगातार तीन बार किया जानेवाला तर्पण [को०]।
अतिघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का आयुध। २. क्रोध [को०]।
अतिघ्न—वि० [सं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०]।
अतिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विस्मृति जिसमें अतीत की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०]।
अतिचमू—वि० [सं०] सेनाओं को जीतनेवाला [को०]।
अतिचर—वि० [सं०] अधिक परिवर्तनशील [को०]।
अतिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास। जितना करना हो उससे अधिक करना [को०]।
अतिचरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है। २ वैद्यक मतानुसार वह योनि जो अत्यंत मैथुन से तृप्त न हो।
अतिचरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी नाम की लता [को०]।
अतिचार—संज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा से आगे बढ़ जाना। अतिक्रमण करना। उ०—मेरा अतिचार न बंद हुआ उन्मत्त रहा सबको घेरे।—कामायनी, पृ० ७१। २ ग्रहों की शीघ्र चाल।
विशेष—जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगकाल को समाप्त किए बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी गति को अतिचार कहते हैं।
३ जैनमतानुसार एक विचार। व्यतिक्रम। ४ तगाशबीनी और मर्यादा भंग करने का जुर्म। नाचरंग के समाजों में अधिक सम्मिलित होने का अपराध।
विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में सम्मिलित होते थे, उनपर तीन पण जुर्माना होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।
अतिचारी—वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अतिक्रमण करनेवाला। अतिचार करनेवाला। उ०—अतिचारी मिथ्यामान इसे परलोक वंचना से भर जा।—कामायनी, पृ० १६६।
अतिच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रा] भूतृण। छत्रक [को०]।
अतिच्छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रिका] दे० 'अतिच्छत्र' [को०]।
अतिच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढ़ा हुआ होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में आ जायँ [को०]।
अतिजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—तारक, मंजुभाषिणी, माया आदि।
अतिजन—वि० [सं०] जो आबाद न हो। जनावासरहित [को०]।
अतिजव[1]—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला। अत्यंत वेगवान्।
अतिजव[2]—संज्ञा पुं० असाधारण गति। अतिशय वेग [को०]।
अतिजागर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगला। नील बक।
अतिजागर[2]—वि० १ निरंतर जागते रहनेवाला। २. जागरूक [को०]।
अतिजात—वि० [सं०] पिता से आगे बढ़ा हुआ [को०]।
अतिडीन—संज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०]।

अतितत—वि० १ [सं०] १ अत्यत दूर फैलनेवाला। २ अपने को अधिक बडा दिखानेवाला। ३ आडबरी [को०]।

अतितरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ पार करना। २ पराभूत या पराजित करना [को०]।

अतितारी—वि० [सं० अतितारिन्] पार कर जानेवाला। विजयी [को०]।

अतितीक्ष्ण[1]—वि० [सं०] अत्यत तेज [को०]।

अतितीक्ष्ण[2]—सज्ञा पुं० शोभाजन नाम का वृक्ष [को०]।

अतितीव्र[1] सज्ञा पुं० [सं०] सगीत मे वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो।

अतितीव्र[2]—वि० अत्यत तेज [को०]।

अतितीव्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब [को०]।

अतितृण्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला। जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०]।

अतितृष्ण[1]—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा। २ अत्यत लोभी [को०]

अतितृष्ण[2]—सज्ञा स्त्री० १ तेज प्यास। अत्यधिक लोभ [को०]।

अतिस्नस्नु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०]।

अतिथि—सज्ञा पुं० [सं०] १ घर मे आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति। वह जिसके आने का समय निश्चित न हो। अभ्यागत। मेहमान। पाहुन। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य मे चुपचाप।—शकु०, पृ० ८। २ वह सन्यासी जो किसी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे। नित्य। ३ मुनि (जैनसाधु)। ४ अग्नि का एक नाम। ५ अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचद्र के पौत्र थे। ६ यज्ञ मे सोमलता को लानेवाला व्यक्ति।

अतिथिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य। अतिथि की आवभगत [को०]।

अतिथिगृह—सज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल अतिथियो के ठहरने के लिये बना हो। अतिथिशाला [को०]।

अतिथिग्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ आतिथेय। २ राजा दिवोदास की उपाधि। उ०—राजा दिवोदास अतिथियो का ऐसा स्वागत करता था कि उसे अतिथिग्व की उपाधि दी गई थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५६।

अतिथिदेव—वि० [सं०] अतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०]।

अतिथिद्वेष—सज्ञा पुं० [सं०] अतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०]।

अतिथिधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०]।

अतिथिधर्मी—वि० [सं० अतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०]।

अतिथिपति—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथेय। मेजबान [को०]।

अतिथिपूजन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिथिपूजा'। उ०—अतिथिपूजन भली भाँति हुई (आ) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए।—श्यामा०, पृ० ७६

अतिथिपूजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार। मेहमानदारी। अतिथिसत्कार।

विशेष—यह पचमहायज्ञो मे से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है।

अतिथिभवन—सज्ञा पुं० [सं० अतिथि + भवन] दे० 'अतिथिगृह'।

अतिथियज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार जो पचमहायज्ञो मे पाँचवाँ है। नृयज्ञ। अतिथिपूजा। मेहमानदारी।

अतिथिशाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिगृह' [को०]।

अतिथिसविभाग—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतो मे से एक जिसमे बिना अतिथि को दिए भोजन नहीं करते।

विशेष—इसमे पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२) सचित पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) अन्योपदेश।

अतिथिसत्कार—सज्ञा पुं० [सं०] अभ्यागत अतिथि की आवभगत। मेहमान की खातिरदारी [को०]।

अतिथिसत्क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिथिसेवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिदतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बढे हो या मुँह से बाहर निकले हो [को०]।

अतिदर्प[1]—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०]।

अतिदर्प[2]—सज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान। २ एक सर्प [को०]।

अतिदर्शी—वि० [सं० अतिदर्शिन्] अधिक दूरदेश। अत्यत दूरदर्शी [को०]।

अतिदाता—सज्ञा पुं० [सं० अतिदातृ] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०]।

अतिदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक दान। २ अति उदारता [को०]।

अतिदाह—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०]।

अतिदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसमे या जिसका अतिदेशन हुआ हो। २ जो अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढा हुआ हो। ३ प्रभावयुक्त। प्रभावित। ४ आकृष्ट। खिचा हुआ। ५ किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०]।

अतिदीप्य[1]—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०]।

अतिदीप्य[2]—सज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०]।

अतिदुःसह—वि० [सं०] जिसका सहना अत्यत कठिन हो। असह्य [को०]।

अतिदुर्गत—वि० [सं०] जिसकी बहुत बुरी गति हो। अत्यत दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अतिदुर्धर्ष—वि० [सं०] १ जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। २ अतिप्रबल। प्रचट। बहुत उग्र। अत्यधिक उद्दड [को०]।

अतिदूर—वि० [सं०] दश, काल या सबध आदि के विचार से बहुत दूरी या अतर पर [को०]

अतिदेव—सज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता अर्थात् विष्णु, शिव।

अतिदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण। २ वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानो मे काम आवे। वह नियम जो अपने निर्दिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयो मे भी काम आए। ३ विस्तारण (को०)। ४ भिन्न तथा विरोधी विषयो या वस्तुओ मे कुछ विशेष तत्वो की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निमित्त, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि मीमासासूत्र के सातवें और आठवें अध्याय मे इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—सज्ञा पुं० [स०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—सज्ञा पुं० [स०] बहुत बडा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [स०] १ दो से आगे बढा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—सज्ञा पुं० [स० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २ वह व्यक्ति जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३ एक वैदिक आचार्य का नाम [को०]।

अतिधर्म—सज्ञा पुं० [स०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उन्नीस वर्ण के वृत्तो की सज्ञा। जैसे—शार्दूलविक्रीडित। २ उन्नीस की सख्या (को०)।

अतिधेनु—वि० [स०] अपनी गायो के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—सज्ञा पुं० [स०] सकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—सज्ञा पुं० [स०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रो मे से एक।

अतिनाष्ट्र—वि० [स०] भय से परे। खतरे बाहर से बाहर [को०]।

अतिनिद्र—वि० [स०] १ अत्यत निद्रालु। २ बिना निद का। निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [स०] बहुत ही आकर्षक (गध) [को०]।

अतिनु—वि० [स०] नौका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [स०] दे० 'अतिनु' [को०]।

अतिपचा—सज्ञा स्त्री० [स० अति + पञ्चा पाँच] वर्ष की वय पूरी करनेवाली लडकी [को०]।

अतिपथ—सज्ञा पुं० [स० अतिपन्थ] सन्मार्ग। अच्छी राह। सुपथ।

अतिपटीक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] नाटक के अतर्गत पर्दे के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—सज्ञा पुं० [स०] १ दे० 'अतिपात'। २. सीमा से बाहर उडना (को०)। २ गिरना (को०)। ३ अतिक्रमण (को०)। ४ भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [स०] १ अतिक्रात। २ मर्यादा से च्युत। ३ भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिक्रमण। २ समय का बीत जाना। ३ कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—सज्ञा पुं० [स०] हस्तिकद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—सज्ञा पुं० [स० अति + पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। सन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [स०] १ पदरहित। जिसके पैर न हो। २. वर्णवृत्त के अनुसार अधिक पदवाला। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपन्न[1]—वि० [स०] १ अतिक्रात। २ विस्मृत। ३ बीता हुआ [को०]।

अतिपर[1]—वि० [स०] शत्रुओ को जीतनेवाला। जिसने अपने शत्रुओ को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर[2]—सज्ञा पुं० भारी शत्रु। बढा चढा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [स०] १ दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २ जो गुप्त न हो प्रकट [को०]।

अतिपाडुकवला—सज्ञा स्त्री० [स० अतिपाण्डुकम्बला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थंकर बैठते है।

अतिपात—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिक्रम। अव्यवस्था। गडबडी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३ बीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्यार्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्ध आयु का किया।—प्रतिमा, पृ० १६६। ४ उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५ विरोध (को०)। ६ लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वस। नाश (को०)।

अतिपातक—सज्ञा पुं० [स०] धर्मशास्त्र मे कहे हुए नौ पातकों मे सबसे बडा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और बहू के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित[1]—वि० [स०] १ स्थगित। रोका हुआ। २ पूरी तरह से तोडा हुआ [को०]।

अतिपातित[2]—सज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [स० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २ गति मे आगे बढ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [स०] कुछ विलब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [स० अति + पाप] महापापी। उ०—कौन हूँ मुझ सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपूरुष—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [स०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यत प्रसिद्ध। २ बुरे कार्यों के लिये मशहूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [स०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढा हुआ [को०]।

अतिप्रबध—सज्ञा पुं० [स० अतिप्रबन्ध] अविच्छिन्नता। निरतरता [को०]।

अतिप्रभंजनवात—सज्ञा पुं० [स० अतिप्रभञ्जनवात] अत्यत प्रचड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घटे मे ४० या ५० कोस होती है।

अतिप्रमाण—वि० [स०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २ बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [स०] अत्यधिक अहकारी। २ बहुत अधिक बढा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पु० स०] अमर्यादित प्रश्न। उपयुक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न। अनावश्यक प्रश्न [को०]।

अतिप्रसग--सज्ञा पु० [स० अतिप्रसङ्ग] १ अत्यधिक आसक्ति २ बहुत ही घनिष्ठ सबध। ३ धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। ४ किसी नियम की अतिव्याप्ति। ५ प्रचुरता। आधिक्य। विस्तार [को०]।

अतिप्रसक्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अतिप्रसग' [को०]।

अतिप्राण--सज्ञा पुं० [स०] असामान्य जीवन। असाधारण व्यक्तित्व [को०]।

अतिप्रौढा--सज्ञा स्त्री० [स०] विवाह करने योग्य लडकी। युवावस्था प्राप्त कन्या [को०]।

अतिवरवै--सज्ञा पु० [सं० अति+हिं० वरवै] वरवै छद का एक भेद।

विशेष--इसके पहले और तीसरे चरणो मे बारह तथा दूसरे और चौथे चरणो मे नौ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम पदो के आदि मे जगण न आना चाहिए और सम पदो के अत का वर्ण लघु होना चाहिए।

अतिवरसण(पु)--सज्ञा पुं० [स० अतिवर्षण] मेघमाला। घटा (डिं०)।

अतिवल[१]--वि० [स०] प्रबल। प्रचड। बली। उ०--नारी अतिबल होत है, अपने कुल को नाम।--गिरधर (शब्द०)।

अतिवल[२]--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक शक्ति। २ शक्तिसपन्न सेना [को०]।

अतिवला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राचीन युद्धविद्या।

विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नही रहता था और पराक्रम बढता था। विश्वामित्र ने इसे रामचद्र को सिखाया था।

२ एक ओषधि। कँगही या ककही नामक पौधा।

अतिवात--सज्ञा पु० [स० अतिवात] तेज हवा। तूफान। उ०--प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अतिवात बह डोलति मही।--मानस ६।१००।

अतिवालक[१]--वि० [स०] बालको जैसा। बच्चो जैसा। बाल्य [को०]।

अतिवालक[२]--सज्ञा पु० छोटी वय का बालक। शिशु [को०]।

अतिवाला--सज्ञा स्त्री० [स०] दो वर्ष की गाय (को०)।

अतिबाहु[१]--वि० [स०] १. असाधारण बाहोवाला। आजानुबाहु [को०]।

अतिवाहु[२]--सज्ञा+पु० १ चौदहवें मन्वतर के एक ऋषि का नाम। २ एक गधर्व का नाम [को०]।

अतिब्रह्मचर्य[१]--वि० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला। ब्रह्मचर्य व्रत को तोडनेवाला [को०]।

अतिब्रह्मचर्य[२]--सज्ञा पु० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०]।

अतिभर--सज्ञा पु० [सं०] १ बहुत अधिक बोझ। उ०--मति डिग परै दबै सब व्रज जन भयो है हाथ पै अतिभर।--नंद० ग्र०, पृ० ३६२। २ दे० 'अतिभार' [को०]।

अतिभव--सज्ञा पुं० [स०] आगे बढ जाना। पराजित करना। विजय करना [को०]।

अतिभार--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक बोझ। २ गति। चाल। ३ वाक्य की अस्पष्टता [को०]।

अतिभारग[१]--वि० [स०] अधिक मात्रा मे बोझ ढोनेवाला [को०]।

अतिभारग[२]--[स०] खच्चर [को०]।

अतिभारारोपण--सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओ पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०]।

अतिभी--सज्ञा स्त्री० [स०] इद्र के वज्र की ज्वाला। विद्युत की चमक [को०]।

अतिभू[१]--वि० [स०] सबको पार कर जानेवाला [को०]।

अतिभू[२]--सज्ञा पु० [सं०] १ विष्णु का एक नाम। २ दे० 'अतिभव' [को०]।

अतिभूमि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकता। २ श्रेष्ठता। ३ मर्यादा का अतिक्रमण। ४ अधिक विस्तृत भूमि [को०]।

अतिभोग--सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग। २ स्वत्व की भाँति किसी सपत्ति का बहुत दिनो तक उपयोग [को०]।

अतिभोजन--सज्ञा पु० [स०] आवश्यकता से अधिक खाना। पेटूपन [को०]।

अतिमगल्य[१]--वि० [स० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०]।

अतिमगल्य[२]--सज्ञा पु० बिल्व वृक्ष [को०]।

अतिमत--सज्ञा पुं० [स०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धात [को०]।

अतिमति[१]--वि० [स०] अत्यधिक घमडी। अहकारी। उ०--जो अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी करु प्रेम।--स० सप्तक, पृ० २०।

अतिमति[२]--सज्ञा स्त्री० १ अहकार। अत्यधिक गर्व। २ हठ [को०]।

अतिमध्यदिन--सज्ञा पुं० [स० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न। खडी दुपहरी [को०]।

अतिमर्त्य--वि० [स०] १ इस लोक से परे। अलौकिक। २ मानवीय शक्ति से परे। अमानुषिक [को०]।

अतिमर्श--सज्ञा पु० [स०] अत्यधिक सपर्क। अत्यत निकट का सबध [को०]।

अतिमास--वि० [स०] अत्यधिक मासवाला। [को०]।

अतिमा--सज्ञा स्त्री० [स० अतिमान] अपरिमेय वह मन स्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सास्कृति परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो। उ०--यह अतिमा, तन से जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर।--अतिमा, पृ० ४४।

अतिमात्र--वि० [सं०] अतिशय। बहुत। ज्यादा। मात्रा से अधिक।

अतिमान[१]--वि० [स०] अपरिमेय। अति विस्तृत [को०]।

अतिमान[२]--सज्ञा पु० [स०] दे० 'अतिमति' [को०]।

अतिमानव—सज्ञा पु० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों से सपन्न मनुष्य [को०]।

अतिमानवी—वि० [स० अतिमानव+ई (प्रत्य०)] मानव से संबध न रखनेवाली। अलौकिक। देवी। उ०—उनकी अत्यत हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६।

अतिमानुष[१]—वि० [सं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर। अमानुषी। दैवी

अतिमानुष[२]—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिमानव' [को०]।

अतिमाय—वि० [स०] जो मायावी न हो। माया से रहित। वीतराग मायातिक्रात [को०]।

अतिमित[१]—वि० [स०] अपरिमित। अतुल। बेअदाज। बहुत अधिक। बेहिसाब। बेठिकाना।

अतिमित[२]—वि० [स०] जो मितभाषी या कम बोलनेवाला न हो [को०]।

अतिमित्र—सज्ञा पु० [स०] अत्यत घनिष्ठ मित्र। २ अत्यधिक शुभ ग्रह [को०]।

अतिमिर्मिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०]।

अतिमुक्त[१]—वि० [स०] १ जिसकी मुक्ति हो गई हो। निर्वाणप्राप्त। २ निष्पाप। विषयवासनारहित। वीतराग।

अतिमुक्त[२]—सज्ञा पुं० १ माधवी लता। २ तिगुना। तिरिच्छ। ३ मरुआ का पौधा।

अतिमुक्तक—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिमुक्त[२]' [को०]।

अतिमुक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] परम निर्वाण। मोक्ष [को०]।

अतिमुशल—सज्ञा पु० [सं०] किसी नक्षत्र में मगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशल कहते हैं।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय तथा अनावृष्टि होती है।

अतिमूत्र—सज्ञा पुं० [स०] वैद्यक मे आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों मे से एक। बहुमूत्र।

विशेष—इसमे अधिक मूत्र उतरता है और रोगी क्षीण होता जाता है। इसे बहुमूत्र भी कहते हैं।

अतिमैथुन—सज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक सभोग [को०]।

अतिमृत्यु—सज्ञा पुं० [स०] मोक्ष। मुक्ति।

अतिमोदा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सुगध की बहुत अधिक मात्रा। २ नवमल्लिका। नेवारी। मोगरी।

अतियव—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का जौ [को०]।

अतियात—वि० [स०] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्र गतिवाला [को०]।

अतियोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकता। अतिशयता। २. किसी मिश्रित औषधि मे किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट।

अतिरंजन—सज्ञा पु० [स० अतिरजन] दे० 'अतिरजना'।

अतिरजना—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिरजना] अत्युक्ति। बढा चढाकर कहने की रीति।

अतिरजित—वि० [स० अतिरञ्जित] १ अतिरजना से युक्त। अत्युक्तिपूर्ण। उ०—यह अतिरजित सी तूलिका चितेरी सी फिर भी कुछ कम थी।—लहर, पृ० ७१। २ अत्यत रागमय। उ०—देखा मनु ने वह अतिरजित विजन विश्व का नव एकात।—कामायनी, पृ० १४।

अतिरक्त—वि० [स०] १ बहुत अधिक लाल। २ अत्यधिक अनुरक्त [को०]।

अतिरक्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] अग्नि की एक जीभ का नाम। अग्नि की सात जीभों मे से एक। [को०]।

अतिरथ—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अतिरथी' [को०]।

अतिरथि⑤—सज्ञा पु० [स० अतिरथिन्] दे० 'अतिरथी'। उ०—अमरन करि जु न जीते जाही। भीषमादि अतिरथि जिति माही।—नद ग्र०, पृ० २१६।

अतिरथी—सज्ञा पुं० [स० अतिरथिन्] रथ पर चढकर लडनेवाला योद्धा। वह जो अकेले रथियों से लड सके। उ०—अतिरथी महारथी सरव कालानल चारा।—राम० धर्म० पृ० १४७।

अतिरभस—सज्ञा पु० [स०] असामान्य गति। अत्यधिक शीघ्रता [को०]।

अतिरसा—सज्ञा स्त्री० [स०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूर्क, रास्ना और कलीतनक [को०]।

अतिराग—सज्ञा पु० [स०] प्रबल उत्सुकता [को०]।

अतिरात्र—सज्ञा पु० [पु०] १ ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अग। २ वह मत्र जो अतिरात्र यज्ञ के अत मे गाया जाय ३ चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम। ४ मध्य रात्रि।

अतिराष्ट्र—सज्ञा पुं० [स०] पुराण के अनुसार एक नाग या सर्प।

अतिरिक्त[१]—क्रि० वि० [सं०] सिवाय। अलावा। जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नही जानता (शब्द०)।

अतिरिक्त[२]—वि० १ अधिक। ज्यादा। बढती। शेष। बचा हुआ। जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम मे लगाओ (शब्द०)। २ न्यारा। अलग। जुदा। भिन्न। जैसे,—जो सब मे पूर्णपुरुष और जीव मे अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०)।

अतिरिक्तकवला—सज्ञा स्त्री० [स०] जैन मत के अनुसार सिद्धशिला के उत्तर का सिंहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते है।

अतिरिक्तपत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह विज्ञापन समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय। विशेष पत्र। कोडपत्र।

अतिरिक्तलाभ—सज्ञा पु० [स० अतिरिक्त+लाभ] वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा से अधिक हो।

अतिरुचिर—वि० [स०] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिरुचिरा—सज्ञा स्त्री० [स०] अनिजगती और चूडिलिका नामक दो वृत्त [को०]।

अतिरूक्ष[१]—वि० [सं०] १ बहुत रूखा। २ क्रूर। ३ प्रेमहीन। ४ अत्यधिक स्नेही [को०]।

अतिरूक्ष[२]—सज्ञा पु० एक प्रकार का अन्न [को०]।

अतिरूप[1]—वि० [स०] १ आकृतिहीन, जैसे वायु। २ परम रूपवान। अत्यत सुदर। ३. रूप से परे, जैसे ईश्वर [को०]।

अतिरूप[2]—सज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०]।

अतिरेक—सज्ञा पुं० [स०] १ आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति। २ आधिक्य। अतिशयता। उ०—प्राणो मे विस्मृति है उर मे सुख श्री का अतिरेक। ३ भेद। अतर (को०)।

अतिरोग—सज्ञा पु० [स०] राजयक्ष्मा। क्षयी राग।

अतिरोमश[1]—वि० [सं०] बहुत अधिक बालोवा ा [को०]।

अतिरोमश[2]—वि० १ एक प्रकार का जगली बकरा। २ एक तरह का बडा बदर [को०]।

अतिरोहण—सज्ञा पु० [स०] जीवन। जिंदगी।

अतिलघन—सज्ञा पु० [स० अतिलङ्घन] १ दीर्घ काल तक का उपवास। २ अतिक्रमण। उल्लघन [को०]।

अतिलघी—वि० [स० अतिलङ्घिन] भूल करनेवाला (को०)।

अतिलोमश—वि०, सज्ञा पु० [सज्ञा] दे० 'अतिरोमश' [को०]।

अतिलोमशा—सज्ञा स्त्री० [स०] नीलबुटना, शखवेल नाम का पौधा [को०]।

अतिलौल्य—सज्ञा पुं० [स०] १ उत्कट इच्छा। अतिलोभ। अतिचावल्य। २ जैन सिद्धात के अनुसार भोग के समय अधिक आसक्ति। उ०—भोगोपभोग व्रत के भी पाँच अतिचार हैं—अनुपेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव। —हिं० सभ्यता, पृ० २३१।

अतिवत(प्र)—वि० [स०अत्यत, प्रा० अतिअत, अतिवत] दे० 'अत्यत'। उ०—फिरि वेपिय रवन्न मुप। अतिवत दुपी दुप मानी मुप।—पृ० रा०, ६१।२०६५।

अतिवक्ता—वि० [सं० अतिवक्तृ] बहुत अधिक बोलनेवाला। बकवादी [को०]।

अतिवक्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियो मे से एक।

विशेष—इसका एक राशि पर वर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है।

अतिवय—वि० [स० अतिवयस्] १ अतिशय वृद्ध २ पुरानी वय का। ३ कई वर्षो आगे का [को०]।

अतिवर्तन—सज्ञा पुं० [स०] १ क्षमा करने योग्य अपराध। २ दड से छुटकारा। ३ अधिक आगे बढ जाने की क्रिया या भाव। ४ किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा मे होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०]।

अतिवर्ती—वि० [सं० अतिवर्तिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला। २ सबसे आगे बढ जानेवाला। ३ क्षम्य अपराध के दोषवाला [को०]।

अतिवर्तुल[1]—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०]।

अतिवर्तुल[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न। कलाय [को०]।

अतिवात—सज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु। प्रचड आँधी [को०]।

अतिवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ खरी बात। सच्ची बात। २. पक्ष वचन ३. बढ़ी चढ़ी बात। डींग। ४. औचित्य या मर्यादा का अतिक्रमण कर जाने का सिद्धात। उ०—छोडकर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से जो सुगति सुधार।—लहर, पृ० १३।

अतिवादिक—वि० [सं०] अतिवाद सबधी [को०]।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १ सत्यवक्ता। खरी बात कहनेवाला। २ कटुवादी। ३ बढ बढकर बात करनेवाला। डीग मारनेवाला। ४ पर पक्ष का खडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला (को०)।

अतिवास—सज्ञा पु० [सं०] श्राद्ध के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०]।

अतिवाह—सज्ञा पु० [सं०] १ सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर मे प्रवेश करना २ परलोकवास। ३. आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०]।

अतिवाहक—सज्ञा पु० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अतर्गत प्रवेश कराने मे सहायक देवता। [को०]।

अतिवाहन—सज्ञा पुं० [स०] १ बिताना। गुजारना। २ बहुत अधिक बोझ ढोना। ३. भेजना। [को०]।

अतिवाहिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ लिंग शरीर। २ पाताल निवासी।

अतिवाहित[1]—वि० बिताया हुआ [को०]।

अतिवाहित[2]—सज्ञा पु० दे० 'अतिवाहिक' [को०]।

अतिविकट[1]—वि० [स०] अतिशय भीषण [को०]।

अतिविकट[2]—सज्ञा पुं० दुष्ट हाथी [को०]।

अतिविपिन—वि० [स०] १ घने जगलोवाला। २ प्रवेश मे कठिन या दुर्गम [को०]।

अतिविश्रब्ध नवोढा—सज्ञा स्त्री० [स०] रसमजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे पति पर अतिशय प्रेम हो।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यग्य और अधीर अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है।

अतिविष[1]—वि० [स०] अत्यधिक विषवाला। बहुत अधिक जहरीला। विषैला (साँप) (को०)।

अतिविष[2]—सज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा'।

अतिविषा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक जहरीली औषधि। अतीस।

अतिविस्तार—सज्ञा पुं० [स०] बहुत अधिक विस्तार। व्याप्ति [को०]।

अतिहिवृंत—वि० [स०] दृढ। पुष्ट। मजबूत।

अतिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आगे बढ जाना। २ अतिक्रमण। ३ अतिरजना। ४ वेग से निकलना (रक्त)

अतिवृद्ध[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १ बहुत अधिक बूढा २ अधिक वय का [को०]।

अतिवृद्ध[2]—सज्ञा पु० तत्र मे प्रयुक्त एक मत्र [को०]।

अतिवृद्धा—सज्ञा स्त्री० [स०] घास चबाने तक मे असमर्थ अत्यधिक बूढी गाय [को०]।

अतिवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] ६ ईतियो मे से एक। पानी का बहुत बरसना जिससे खेती को हानि पहुँचे। अत्यत वर्षा। उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं यह जानत सब कोई।—सु०, १०।४१६१।

अतिवेगित—वि० [स०] १ तेजी से चलाया हुआ। २ तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक निकट का सबध। २ दशमी और एकादशी का योग [को०]

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यत। असीम। बेहद। २ मर्यादा का उल्लघन करनेवाला (को०)। ३ उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विलब। देर। २ अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—सज्ञा पुं० [स०] तीव्र यातना अत्यधिक पीडा [को०]।

अतिव्यथा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—सज्ञा पुं० [स०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय मे एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चौपाए सब पिंडज हैं', इस कथन मे मगर और घडियाल आदि चार पैरवाले अडज भी आ जाते हैं। अत इसमे अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—सज्ञा स्त्री० [स०] १५ वर्ण के वृत्तो की सज्ञा। इसके सपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पद्रह अतिशक्करी सहस बत्तीस सात सै अठसठि कीय।—भिखारी० ग्र० भा० १, पृ० २३६।

अतिशय[1]—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यत।

अतिशय[2]—सज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारो के अनुसार। एक अलकार।

विशेष—इसमे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असभावना दिखलाई जाती है जैसे—'ह्वै न, होय तो थिर नहीं, थिर तो विन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति समान, (शब्द०)। कोई कोई इस अलकार को अधिक अलकार के अतर्भुक्त मानते हैं।

अतिशयता—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता मे अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छद [को०]

अतिशयालु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १ अत्यधिक। २. आगे बढा हुआ [को०]।

अतिशयी—वि० [सं० अतिशयिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी बात को बढा चढाकर कहना। २, एक अलकार।

विशेष—इसमे उपमान से उपमेय का निगरण लोकसीमा का उल्लघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ बढिकै, नदियाँ नद ह्वै गईं काटि किनारे। बेगि चलो तो चलो ब्रज मे कवि तोख कहै ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल सारे' (शब्द०)। इनके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं, यथा—(१) रूपकातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) सबधातिशयोक्ति (४) असबधातिशयोक्ति और (५) पचम भेद के अतर्गत क्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति तथा अत्यतातिशयोक्ति है।

अतिशयोपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] उपमा अलकार का भेद।

विशेष—इसमे यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु सदा अपने विषय मे एक है, दूसरी वस्तु मे उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'केसोदास प्रगट प्रकास सो अकास पुनि, ईस हू के सीस रजनीस अवरेखिऐ। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु बरन विसेखिऐ। मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जग वसुधा सुधा हू नियं अधरन लेखिऐ। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि, तेरो सो बदन तैसो तोही बिपै देखिऐ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [स०] शस्त्र से भी तेज या बढा हुआ [को०]।

अतिशायन—सज्ञा पु० [स०] १ प्रधानता। श्रेष्ठता। २ आधिक्य। ३ आगे बढ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [स० अतिशायिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अत्यधिक। आगे बढ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—सज्ञा पु० [स०] ठढ का अतिक्रमण। भयकर जाडा [को०]।

अतिशीलन—सज्ञा पुं० [स०] अभ्यास। मश्क। बारबार मनन या सपादन।

अतिशूद्र—सज्ञा पु० [स०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अत्यज।

अतिशेष—सज्ञा पुं० [स०] बहुत थोडा बचा हुआ अश [को०]।

अतिश्रुत—वि० [स० अति+श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचकचाकर अवपाली की ओर ताकता रह गया।—वै० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [स०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्व—वि० [स० अतिश्वन्] कुत्तो से तेज दौडनेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तो को बहुत पीछे छोड देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

अतिसध—सज्ञा पुं० [स०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसधान—सज्ञा पुं० [स० अतिसन्धान] १ अतिक्रमण। २ विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अतिसन्धि] १ सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। २ एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि० [स० अतिसन्धित] १ अतिक्रात। २ धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वासघात किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—सज्ञा स्त्री० [स० अतिसन्ध्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिस(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—पाँवरी स्याम मूरति सुवर अतिस पुहुप समान वर।—पृ० रा०, २।३४७।

अतिसक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आशक्ति [को०]

अतिसय(पु)—वि० [स० अतिशय] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोनवी साहब जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०८।

अतिसर[1]—वि० [स०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ जानेवाला। नेता [को०]।

अतिसर[2]—सज्ञा पु० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग[1]—सज्ञा पु० [स०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २ इच्छानुसार काम करने की आज्ञा देना। ३ पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग[2]—वि० १ स्थायी। नित्य। २ मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—सज्ञा पु० [स०] १ अधिक दान। दान। २ उदारता। त्याग (को०)। ३. धोखा। वचना (को०)। ४ पार्थक्य। विलगाव (को०)। ५ वध (को०)।

अतिसर्पण—सज्ञा पु० [स०] १ तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २ गर्भाशय मे बच्चे का इधर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व[1]—वि० [स०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व[2]—सज्ञा पु० ईश्वर [को०]।

अतिसातपन कृच्छ्र—सज्ञा पु० [सं० अतिसान्तपनकृच्छ्र] प्रायश्चित के निमित्त एक व्रत।

विशेष—इसमे दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसावत्सर—वि० [स०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य[1]—सज्ञा पु० [सं०] जो बात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लघन करे।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलो पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण सपत्'। पर विद्याचरण सपत्ति कही ब्राह्मण मे मिलती है और कही नही। इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लघन करनेवाला है, अत अतिसामान्य।

अतिसामान्य[2]—वि० अत्यत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—सज्ञा स्त्री० [स०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०]।

अतिसार—सज्ञा पुं० [स०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमे मल बढकर उदराग्नि को मद करके शरीर के रसो को लेता हुआ बार बार निकलता है। इसमे आमाशय की भीतरी झिल्लियो मे शोथ हो जाने के कारण खाया हुआ पदार्थ नही ठहरता और अँतडियो मे से पतले दस्त के रूप मे निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजो के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, विष से, भय और शोक से, अत्यत मद्यपान से तथा कृमिदोष से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) सन्निपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—अतिसार होकर निकलना = दस्त के रास्ते निकलना। किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [स० अतिसारकिन्] अतिसार से पीडित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [स० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अतसी] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति जुग भखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यौ हरि कैं मय रवि ससि फिरैं। वायु वेग अतिसै नहिं करैं।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ[1]—वि० [स०] अत्यधिक सुगधित [को०]।

अतिसौरभ[2]—सज्ञा पु० १ अत्यधिक सुगध। २ आम [को०]।

अतिसौहित्य—सज्ञा पु० [स०] अधिक मात्रा मे भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल[1]—वि० [स०] १ बहुत मोटा। २ मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल[2]—सज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमे चरबी के बढने से शरीर अत्यत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श[1]—वि० [सं०] १ कजूस। २ नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श[2]—सज्ञा पु० [स०] व्याकरण मे उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—सज्ञा पुं० [स०] १ बहुत अधिक स्वप्न देखना। २ अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १ पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २ अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—सज्ञा पु० [स०] हास के छह भेदो मे से एक जिसमे हँसने वाला ताली पीटे, बीच बीच मे अस्पष्ट वचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखो से आँसू निकल पडे।

अतीद्रिय[1]—वि० [सं० अतीन्द्रिय] जो इद्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इद्रियो द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतीद्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतीद्रिय[2]—सज्ञा पुं० १ आत्मा। २ प्रकृति। ३ मन [को०]।

अती—वि० [स०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत[1]—वि० [सं०] १ गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २ निर्लेप। असग। विरक्त। पृथक्। जुदा। अलग। न्यारा। उ०—अनि धनि साँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ ह्वै केर है अतीत। —कबीर (शब्द०)। ३ मृत। मरा हुआ।

अतीत[2]—क्रि० वि० परे। बाहर। उ०—गुन अतीत अविगत अविनासी सो ब्रज मे खेलत सुखरासी।—सूर (शब्द०)।

अतीत(पु)[3]—सज्ञा पु० वीतराग सन्यासी। यति। विरक्त साधु। उ०—(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार। निश्चय होय दरिद्री, कहै कबीर विचार। कबीर शब्द०)। (ख अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति साति लयलीन।—तुलसी ग्र०, पृ० १४।

अतीत(पु)[4]—सज्ञा पुं० [स० अतिथि] १ अभ्यागत। अतिथि पाहुन। मेहमान। उ०—आरत दुखी सीत भयभीता। आयो ऐसो गेह अतीता।—सबल (शब्द०)। २ सगीत मे वह स्थान जो सम से दो मात्राओ के उपरात आता है। यह स्थान कभी कभी सम का काम देता है। उ०—मुर स्रुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०, १।१२६६। ३ तबले के किसी बोल या टुकडे की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीतना[1](पु)—क्रि० अ० [स० अतीत] बीतना। गुजरना। गत होना। उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-सकुल बडि वय वृथहि अतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७४।

अतीतना[2](पु)—क्रि० स० बिताना। व्यतीत करना। विगत करना। छोडना। त्यागना। उ०—कृच्छ्र उपवास सब इद्रियन जीतही। पुत्र सिख लीन, तन जौ लगि अतीतही।—केशव (शब्द०)।

अतीति—सज्ञा स्त्री० [स० अतीत] आधिक्य। प्राचुर्य। उ०—राजन की नीति गई पच प्रतीति गई, अब तौ अतीति सो अनीत होन लागी है।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३२।

अतीथ[1](पु)†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अतिथि'। उ०—बधु कुबुद्धि पुरोहित लपट चाकर चोर अतीथ धुतारो।—इतिहास, पृ० २०१।

अतीथ[2](पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतीत'। उ०—कहै गुलाल अतीथ राम गुन गाइया।—गुलाल०, पृ० ६०।

अतीम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'यतीम'। उ०—रहै गरीब अतीम होई तिनकौं कही फकीर। सत वाणी०, पृ० १३५७।

अतीव—वि० [स०] अधिक। ज्यादा। बहुत। अतिशय। अत्यत। उ०—हो के रुष्ट अत अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे।—शकु० पृ० २१।

अतीस—सज्ञा पु० [स०] एक पौधा।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक पाया जाता है। इसकी जड कई प्रकार की दवाओ मे काम आती है और खाने मे कुछ कडवी तथा चरपरी होती है। यह पाचक, अग्निसदीपक और विषघ्न है तथा कफ, पित्त, आम, अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगो को दूर करती है। बालरोगो के लिये यह बहुत उपकारी है। यह तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३) लाल। इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा, उपविषा, घुणवल्लभा, शृगी महौषध, भृगी, श्वेतकदा, भगुरा, मृद्वी, शिशुभैषज्य, शोकापहा, श्यामकदा, विश्वा।

अतीसार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अतिसार'।

अतुग—वि० [स०] जो ऊँचा न हो। ठिगना [को०]।

अतुद—वि० [सं०] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [को०]।

अतुकात[1]—[हिं० अ+तुक+अत] तुकरहित। जिसके अतिम चरणो का तुक या अनुप्रास न मिलता हो। उ०—प्रसाद जी हिंदी मे छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकात कविता के आरभकर्ता भी वे ही हैं।—करुणा० (प्रका०)।

अतुकात[2]—सज्ञा पु० [हिं० अ+तुक+अत] छदोबद्ध कविता जिसमे तुक या अनुप्रास न हो।

अतुर[1]—वि० [स०] १ जो धनवान न हो। २ अनुदार [को०]।

अतुर[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आतुर'। उ०—पाण जोडे हुकुम पावै अतुर। वारै भरथ आवै।—रा०, पृ० ११६।

अतुर[3](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतुन'।—उ०—तब मुनि भान नरिंद सबद उम्मार अतुर वर।—पृ० रा०, ३५।१०४५।

अतुराई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० आतुर+हिं० पाई (प्रत्य०)] १ आतुरता। जल्दी। शीघ्रता। उ०—कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई।—सूर०। १।१३७५। २ घबराहट। हडबडी। ३ चचलता। चपलता। उ०—नैनन की अतुराई, बैनन की चतुराई गात की गोराई ना दुरति दुति चाल की।—केशव (शब्द०)।

अतुराना(पु)—क्रि० अ० [स० आतुर, हिं० अतुर से नाम०] आतुर होना। घबडाना। हडबडाना। जल्दी मचाना। अकुलाना। उ०—(क) तुरत जाइ लै आउ, उहाँ ते, बिलब न करि मो भाई। सूरदास प्रभु बचन सुनतही हनुमत चल्यौ अतुराई।—सूर०, ९।१४९। (ख) आए अतुराने, बाँधे बाने, जे मरदाने समुहाने।—सूदन (शब्द०)।

अतुरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतुरता'।

अतुल[1]—वि० [सं०] १ जो तोला या कूता न जा सके। जिसकी तौल या अदाज न हो सके। २ अमित। असीम। अपार। बहुत अधिक। बेअदाज। उ०—आवत देखि अतुल बलसीवा।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसकी तुलना या समता न हो सके। अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। उ०—मुनि रघुपति छवि अतुल विलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।—मानस ७।३२।

अतुल[2]—सज्ञा पु० १ केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा नाम। उ०—ये गुण केशव जाहि मे, सोई नायक जान। अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि बखान।—केशव (शब्द०)। २ तिल का पेड। ३ तिलक। तिलपुष्पी। ४ कफ। श्लेष्मा। बलगम।

अतुलनीय—वि० [स०] १ जिसका अदाजा न हो सके। अपरिमित। अपार। बेअदाज। बहुत अधिक। २ अनुपम बेजोड। बेजोड। अद्वितीय।

अतुलित—वि० [स०] १ बिना तौला हुआ। २ बे अदाज। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। उ०—बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन पाही।—मानस, १।१८७।३—असख्य। उ०—जो पै अलि अत इहै करिबे हो। तौ अतुलित अहीर अबलनि को हटि न हिये हरिबे हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४४४।

४ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। उ०—कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अनिधि राम लघुभाई।—मानस २।२१३।

अतुल्य—वि० [सं०] १ असमान। असदृश। २ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। निराला।

अतुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण तुल्ययोगिता की संभावना दिखाई पड़ने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विशेष गुण बतलाकर उसकी विलक्षणता दिखलाई जाय वहाँ इस अलंकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है। उ०—हय चले हाथी चले सग छोडि साथी चले, ऐसी चलाचली मे अचल हाडा ह्वै रह्यो।—भूषण ग्र०, पृ० १३३।

अतुष—वि० [सं०] भूसी रहित। बिना भूसी का [को०]।

अतुषार—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। गर्म [को०]।

अतुषारकर—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [को०] अतृप्ति। असंतोष [को०]।

अतुष्टिकर—वि० [सं०] असंतोषजनक [को०]।

अतुहिन—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। तप्त [को०]।

अतुहिनकर—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुहिनधाम—संज्ञा पु० [सं० अतुहिनधामन्] दे० 'अतुहिनकर' [को०]।

अतुहिनरश्मि—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतुहिनकर'।

अतुहिनरुचि—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतुहिनरश्मि' [को०]।

अतूथ⑤—वि० [सं० अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] अपूर्व। उ०—देखौ सखि अकथ रूप अतूथ। एक अबुज मध्य देखियत बीस दधिसुत जूथ।—सूर० परि०, १।६।

अतूल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'। उ०—नेह उपजावन अतूल तिल फूल कैधौं, पानिय सरोवरी की उरमि उतग है।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० १०१।

अतूल[2]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल्य'। उ०—हित हरषत करषत वमन परषत उरज अतूल।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६५।

अतूणादे—संज्ञा पु० [सं०] तुरत का जन्मा बछडा [को०]।

अतृपत⑤—वि० [हिं०] दे० 'अतृप्त'। उ०—अतृपत सुत जु छुभित तव भयौ। भाजत भाँजि भवन दुरि गयौ।—नद० ग्र०, पृ० २४६।

अतृप्त—वि० [सं०] १ जो तृप्त या संतुष्ट न हो। असंतुष्ट। जिसका मन न भरा हो। उ०—होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोडने के लिये।—झरना, पृ० ६४। २ भूखा। बुभुक्षित।

अतृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] असंतोष। मन न भरने की अवस्था। उ०—यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद।—कामायनी पृ० ६१।

अतृष्ण—वि० [सं०] तृष्णा रहित। निस्पृह। कामनाहीन। निर्लोभ।

अते⑤—वि०[सं० अत्यत] परम। अत्यधिक। उ०—अतेरूपमूरति परगटी पुनिजैं समि सो छीन होइ घटी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ५१।

अतेज—वि० [सं० अतेजस] १ तेजरहित। अधकारयुक्त। मद। धुँधला। २. हतश्री। प्रतापरहित।

अतेव—वि० [हिं०] दे० 'अतीव'। उ०—या विधा फिरै निकुज कुज पुज भामरो। कामधेनु पाय रो रहै अतेव चामरो।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० १३६।

अतोर—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० तोड=टूटना] जो न टूटे। अभग दृढ। उ०—जनु माया के बधन अतोर।—गुमान (शब्द०)।

अतोल—वि० [हिं० अ+तोल] [स्त्री० अतोली] १ बिना तौला हुआ। बिना अदाज किया हुआ। जो कूता न हो। उ०—साज सहित एक घुटिला लैयो गैया दूध अतोली जू।—नद ग्र०, पृ० ३३७। २ जिसकी तौल या अदाज न हो सके। बे अदाज। बहुत अधिक। उ०—चलैं गोल गोली अतोली सनकैं, मनो भौर भीरैं उडाती सनकैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०। ३ अतुल्य। अनुपम। बेजोड। उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावै धरि, लावै निज ऊपर अतोल बल धारे ते।—हम्मीर०, पृ० २३।

अतोषणीय—वि० [सं०] जो तोषणीय न हो [को०]।

अतौल—वि० [हिं०] दे० 'अतोल'।

अत्क—संज्ञा पु० [सं०] १ पथिक। २ अवयव। अग। ३ जल। ४ बिजली। ५ परिधान। पहनावा। ६ कवच। ७ घर का कोना [को०]।

अत्त[1]⑤—वि० [सं० आत्त] प्राप्त। उपलब्ध।

अत्त[2]⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० अति] अति। अधिकता। ज्यादती। उ०—यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई। अत्त भी तो बडी भई।—भारतेंदु ग्रथ, भाग १, पृ० ३६७।

अत्तवार‡—संज्ञा पु० [सं० आदित्यवार प्रा० आइच्चवार,* आइत्तवार <इत्तवार <अतवार] रविवार। सप्ताह का पहला दिन।

अत्तव्य—वि० [सं०] खाने योग्य [को०]।

अत्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चराचर का ग्रहण करनेवाला। ईश्वर का एक नाम।

अत्ता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जेठी बहिन। २ माम। माता। ३ मौसी। मातृष्वसा।

अत्तार—संज्ञा पुं० [अ०] १ गधी। सुगध या इत्र बेचनेवाला। २ यूनानी दवा बनाने और बेचनेवाला। उ०—परम पिता हमही वैद्यन के अत्तारन के प्रान।—भारतेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ४७६।

अत्ति[1]—वि० [हिं०] दे० 'अति[1]'। उ०—ठिले अत्ति हैं मद्द मातग माते। उमगत तैयार तूरग ताने।—पद्माकर ग्र० पृ० २८०।

अत्ति⑤[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अत्त[2]'।

अत्ति[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बडी बहन [को०]।

अत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अति[3]'।

अतिवारे⑤—वि० [हिं अति+वाले] अत्यत साहस का काम करनेवाले। उ०—चढैं हैं जिन्हीं पै महा बश्य मारे बमैं यों किलाएँ मनौ अत्तिवारे। पद्माकर ग्र०, पृ० २८०।

अत्थ⑤—संज्ञा [सं० अर्थ प्रा० अत्थ] प्रयोजन। हेतु। उ०—एकै रिपुन के जुत्थ जुत्थ करे उलटि बिन अत्थ के।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०।

अत्थडी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अर्थ, प्रा० अत्थ+डी० (प्रत्य०)]धन। सपत्ति। उ०—उधम हत्था अत्थडी काणा सुण निण कीत।—वाँकी० ग्र० भाग १, पृ० ५१।

अत्थवना(पु)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अथवना'। उ०—जो ऊगे सो अत्थवै फूलै सो कुम्हिलाय।—कबीर सा० स०, पृ० ७८।

अत्थि(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अस्ति] अस्तित्व मे आने की स्थिति सत्ता [को०]।

अत्न—सज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। २ सूर्य। ३ पथिक [को०]।

अत्नु—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अत्न'

अत्यकुश—वि० [स० अत्यङ्कुश] अकुश कोन माननेवाला। नियत्रण मे न रहनेवाला [को०]।

अत्यत—वि० [सं० अत्यन्त]बहुत अधिक। बेहद। अतिशय। हद से ज्यादा।

अत्यतग—वि०[स० अत्यन्तग] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्रगामी[को०]।

अत्यतगत–वि० [स० अत्यन्तगत] जो सदा के लिये चला गया हो या पृथक हो गया हो [को०]।

अत्यतगति—सज्ञा स्त्री० [सं०अत्यन्तगति] पूर्णता [को०]।

अत्यतगामी—वि० [स० अत्यन्तगामिन्] १ अत्यधिक तेज चलने वाला। २ बहुत अधिक [को०]।

अत्यनता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आधिक्य। २ उग्रता। ३ प्रचडता [को०]।

अत्यततिरस्कृत अर्थ—सज्ञा पु० [स० अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ] दे० 'अत्यत तिरस्कृत वाच्यध्वनि'। उ०—अत्यत तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कपित करना बार बार।—लहर, पृ० ३४।

अत्यततिरस्कृत वाच्यध्वनि—सज्ञा स्त्री० [स० अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि] एक ध्वनि जिसमे वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है। [को०]।

अत्यतनिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० स० [अत्यन्तनिवृत्ति] पूर्णतया मुक्त हो जाना। पूर्ण रूप से पृथक् हो जाना [को०]।

अत्यतनिवृत्ति—सज्ञा पु० [स० अत्यन्तभाव] किसी अवस्था मे अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव। सदा बनी रहनेवाली सत्ता। अपरिमित अस्तित्व।

अत्यंतवासी—सज्ञा पुं० [स० अत्यन्तवासिन्] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०]।

अत्यंतसपर्क—सज्ञा पुं० [स० अत्यन्त सम्पर्क] अत्यधिक सभोग [को०]।

अत्यतसुकुमार[1]—वि० [स० अत्यन्तसुकुमार] अतिशय कोमल [को०]

अत्यंतसुकुमार[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०]।

अत्यतातिशयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [स० अत्यतिशयोक्ति] दे० अतिशयोक्ति'। उ०—अत्यनातिशयोकति चीती। जहँ पूरब पर क्रम विपरीती।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४०।

अत्यताभाव—सज्ञा पु० [स० अत्यन्ताभाव] १ किसी वस्तु का बिल्कुल न होना। सत्ता की नितात शून्यता। प्रत्येक दशा मे अनस्तित्व २ वैशेषिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावो मे से चौथा जो प्रागभाव, प्रध्वसाभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनो कालो मे समव न हो। जैसे—आकाशकुसुम, वध्यापुत्र, शशविषाण मे आदि। ३ बिल्कुल कमी।

अत्यतिक—वि० [स० अत्यन्तिक] १ समीपी। नजदीकी। २ जो बहुत घूमे। घुमक्कड। ३ बहुत चलनेवाला [को०]।

अत्यतिन—वि० [स० अत्यन्तीक] १ बहुत अधिक चलनेवाला। २ अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला। ३ चिरकालव्यापी। चिरस्थायी [को०]।

अत्य(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अति] दे० 'अति'। उ०—कमलपत्र दृग मत्त हैं रैन रति के अत्य। प्रीतम लखि थकि नित रहैं यहै कहति हौं सत्य।—ब्रज ग्र०, पृ० ६३।

अत्यग्नि[1]—वि० [सं०] अग्नि से भी अधिक तापवाला [को०]।

अत्यग्नि[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०]।

अत्यधिक—वि० [स० अति+अधिक] बहुत ज्यादा। सीमा से आगे [को०]।

अत्यम्ल[1]—सज्ञा पुं० [स० अति+अम्ल] १ इमली का पेड। २ विषाधिन। ३ बिजौरा नीबू।

अत्यम्ल[2]—वि० बहुत खट्टा [को०]।

अत्यम्लपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] रामचना या खट्टुआ नाम की बेल।

अत्यम्ला—सज्ञा स्त्री० [स०] जगली बिजौरा नीबू।

अत्यय—सज्ञा पु० [स०] १ मृत्यु। ध्वस। नाश। २ अतिक्रमण। हद से बाहर जाना। ३ दड। सजा। ४ कृच्छ्र। कष्ट। ५ दोष। ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदड या जुर्माना।

अत्ययिक—वि० [स०] दे० 'आत्ययिक'।

अत्ययी—वि० [सं० अत्ययिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला। २ सबसे आगे बढ जानेवाला [को०]।

अत्यर्थ—वि० [स०] उचित परिणाम से अधिक। अत्यधिक [को०]।

अत्यष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १७ वर्ण के वृत्तो की सज्ञा। शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मदाक्राता मारीक्राता और मालाधार, आदि छद इसके अतर्गत हैं।

अत्यह्न—वि० [सं० अति+अह्न] एक दिन से अधिक समय का [को०]।

अत्याकार[1]—वि०[स० अति=बडा+ आकार] विशाल आकार का। भारी डीलडौलवाला [को०]।

अत्याकार[2]—सज्ञा पुं० १ अवज्ञा। २ घृणा। ३ निंदा। ४ विशाल डीलडौल [को०]।

अत्याग—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। स्वीकार। उ०—श्रवन-सुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग।—भारतेंदु ग्र०, भाग १, पृ० ४१४।

अत्यागी—वि० [सं० अत्यागिन्] दुर्गुणो को न छोडनेवाला। विषयासक्त। दुर्व्यसनी।

अत्याचार—सज्ञा पु० [स०] १ आचार का अतिक्रमण। विरुद्धाचरण। अन्याय। निठुराई। ज्यादती। जुल्म। २ बुराचार। पाप। ३ आचार की अधिकता। पाखड। ढोग। ढकोसला। आडबर।

अत्याचारी[1]—वि० [सं० अत्याचारिन्] १ अत्याचार करनेवाला। दुराचारी। अन्यायी। निठुर। जालिम। २ पाखडी। ढोगी। ढकोसलेबाज। धर्मध्वजी।

अत्याचारी[1]—सज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे। अन्यायी व्यक्ति।

अत्याज्य—वि० [स०] १ न छोडने योग्य । जिसका त्याग उचित न हो । २ जो कभी छोडा न जा सके ।

अत्यादित्य—वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०] ।

अत्याधान—सज्ञा पुं० [स०] १ रखने की क्रिया । २ अतिक्रमण । ३ होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०] ।

अत्यानद—सज्ञा पु० [अत्यानन्द] आनद का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप । परमानद [को०] ।

अत्यानदा—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनियो का एक भेद ।

विशेष—वह योनि जो अत्यत मैथुन से भी सतुष्ट न हो । यह एक रोग है जिससे स्त्रियाँ वध्या हो जाती हैं । इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है ।

अत्याय—सज्ञा पुं० [स०] १ सीमा का उल्लघन । मर्यादा का अतिक्रमण । अधिक आमदनी या लाभ [को०] ।

अत्यायु—सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०] ।

अत्यारूढ—वि० [स०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ । अत्यत प्रसिद्ध [को०] ।

अत्यारूढि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अत्यत ऊँचा पद । २ अतिप्रसिद्धि [को०] ।

अत्याल—सज्ञा पुं० [स०] रक्तचित्रक नामक वृक्ष [को०] ।

अत्यावाय—सज्ञा पु० [स०] राजद्रोहियो की अधिकता [को०] ।

अत्याहित[1]—वि० [स०] असहमति के योग्य । अस्वीकार्य [को०] ।

अत्याहित[2]—सज्ञा पुं० १ अरुचि । अप्रियता । २ सकट । ३ भय । ४ दुःसाहस [को०] ।

अत्याहितकर्मा—वि० [स० अत्याहित+कर्मन्] दुष्ट । नीच । दुराचारी [को०] ।

अत्युक्त—वि० [स०] बहुत बढा चढ़ाकर कहा हुआ । अत्युक्तिपूर्ण ।

अत्युक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्युक्था' [को०] ।

अत्युक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बढा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली । मुबालिगा । बढावा । २ एक अलकार जिसमे शूरता, उदारता आदि गुणो का अद्भुत और अतथ्य वर्णन होता है । जैसे—जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप (शब्द०) ।

अत्युक्था—सज्ञा स्त्री० [स०] दो वर्णों के वृत्तो की सज्ञा ।

विशेष—इसके चार भेद कहे गए हैं । कामा, मही, मार और मधु ।

अत्युग्र[1]—वि० [सं०] अति प्रचड । अतिशय भयानक [को०] ।

अत्युग्र[2]—सज्ञा पु० हीग [को०] ।

अत्युग्रगधा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा ।

अत्युत्तम—वि० [स०] सबसे श्रेष्ठ । अधिक उत्कृष्ट [को०] ।

अत्युपध—वि० [स०] १ परीक्षित । अदाजा हुआ । २ विश्वस्त [को०] ।

अत्यूर्मि—वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर बहनेवाला [को०] ।

अत्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक ऊहापोह । तर्क वितर्क २ अधिक जोर से बोलनेवाला पक्षी । मोर [को०] ।

अत्यूहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०] ।

अत्र[1]—क्रि० वि० [स०] यहाँ । इस स्थान पर ।

अत्र[2] ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अस्त्र, अप० अत्र] दे० 'अस्त्र' । उ०—सोहैं अत्र जोडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज की अतका मे ।—पद्माकर ग्र० पृ० २२४ ।

अत्र[3] ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अतर' ।

अत्र[4] ⓤ—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतडी ।

अत्र[5]—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस । २ भोजन [को०] ।

अत्रक—वि० [सं०] १ यहाँ का । २ इस लोक का । लौकिक । ऐहिक ।

अत्रत्य—वि० [सं०] यहाँ का । यहाँवाला ।

अत्रप—वि० [स० अ=नहीं+त्रपा] निर्लज्ज । उदड [को०] ।

अत्रभवान्—वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय । पूज्य । श्रेष्ठ ।

अत्रय ⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्रि' । उ०—पिरभू किना वासर पाय । अत्रय तणो आश्रम आय ।—रघु० रू०, पृ० १२२ ।

अत्रस्त—वि० [स०] निर्भीक । भयरहित । निडर [को०] ।

अत्रस्थ—वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला । इस स्थान का । यहाँवाला । यहाँ उपस्थित रहनेवाला । यहाँ का ।

अत्रस्नु—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्त' [को०] ।

अत्रास—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्नु' [को०] ।

अत्रि—सज्ञा पुं० [स०] १ सप्तर्षियो मे से एक ।

विशेष—ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं । इनकी स्त्री अनुसूया थी । दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे । इनका नाम दस प्रजापतियों मे भी है ।

२ एक तारा जो सप्तर्षिमडल मे है । ३ सात की सख्या (को०) ।

अत्रिगुण—वि० [स० अ+त्रिगुण] त्रिगुणातीत । सत्व, रज, तम नामक तीनो गुणो से पृथक् ।

अत्रिज—सज्ञा पुं० [स०] अत्रि के पुत्र—१ चद्रमा २ दत्तात्रेय । ३ दुर्वासा ।

अत्रिजात—सज्ञा पुं० [स०] १ दे० 'अत्रिज' । २ प्रथम तीन वर्णों मे से किसी एक मे सबधित मनुष्य । द्विज [को०] ।

अत्रिदृग्ज—सज्ञा पुं० [स०] १ अत्रि के नेत्र मे उत्पन्न चद्रमा ऋषि । २ गणित मे एक की सख्या [को०] ।

अत्रिनेत्रज—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अत्रिदृग्ज' ।

अत्रिनेत्रप्रभव—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अत्रिनेत्रज' [को०] ।

अत्रिनेत्रभू—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अत्रिनेत्रप्रभव' को ।

अत्रिनेत्रसूत—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रभू' [को०] ।

अत्रिप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनसूया जो अत्रि ऋषि को ब्याही थी । उ०—अत्रिप्रिया निज तपबल आनी ।—मानस, २।१३२ ।

अत्रिसहिता—सज्ञा स्त्री० [स०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०] ।

अत्रिस्मृति—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अत्रिसहिता' [को०] ।

अत्री[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अत्रिप्रिया' [को०]

अत्री[2]—सज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०] ।

अत्रेय⑤—संज्ञा पुं० [सं० आत्रेय] दे० 'आत्रेय'।

अत्रैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव।

विशेष—सांख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है।

अत्वक्क—वि० [सं०] चर्मरहित [को०]।

अत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी। मंदता [को०]।

अथ—अव्य [सं०] १ एक मंगलसूचक शब्द जिसमें प्राचीन काल में लोग किसी ग्रंथ या लेख का आरंभ करते थे। जैसे—(क) 'अथतो धर्म व्याख्यास्याम'।—वैशेषिक। [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'।—ब्रह्मसूत्र। पीछे से यह ग्रंथ के आरंभ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा। जैसे—'अथ विनयपत्रिका लिख्यते'। २ अब। ३ अनंतर। तदनंतर।

अथऊ—संज्ञा पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते हैं।

अथक—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० थकना] जो न थके। अश्रांत। उ०—शासन कुमारिका से हिमालय शृंग तक अथक अबाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चल रहा था।—नहर, पृ० ७६।

अथकिम्—अव्य० [सं०] और क्या। हाँ [को०]।

अथग—वि० [सं० अत्यग प्रा० अत्थग] अगाध। गंभीर। अथाह। उ०—अखंड सरोवर अथग जल हंसा सरवर न्हाहि।—दादू पृ० ६७।

अथच—अव्य० [सं०] और। और भी। इसके अतिरिक्त।

अथना⑤—क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्थ से नाम०] १. अस्त होना। डूबना। उ०—सूरुज उवै विहानहि आई। पुनि सो अथै कहा कह जाई।—जायसी [शब्द०]। २ कम होना। घट जाना। समाप्त हो जाना (को०)।

अथमना†—संज्ञा पुं० [सं० अस्तमन, प्रा० अत्तमण] पश्चिम दिशा। उगमना का उलटा।

अथरवन⑤—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद। अथर्ववेद। उ०—[क] यहु परमारथ कहौ हो पंडित, रुग जुग स्याम अथरवन पठिया।—गोरख०, पृ० १०६। [ख] रिग, जजु, साम, अथरवन माहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ४४।

अथरा—संज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक बरतन या नाँद।

विशेष—इसमें रँगरेज कपड़ा रँगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते हैं और जुलाहे सूत भिगोते और ताने में लेई लगाते हैं।

अथरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'अथरा का अल्पा०] १ छोटा अथरा। २ मिट्टी का वह बरतन जिसमें कुम्हार हाँडी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं। ३. मिट्टी का वह बरतन जिसमें दही जमाते हैं।

अथर्व—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद।

विशेष—इसके मंत्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अंगिरा गोत्रवाले थे जिस कारण इसको 'भृग्वंगिरस' और 'अथर्वांगिरस' भी कहते हैं। इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मदेव' भी कहते हैं। इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार आदि प्रतिपादन विशेष है। प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि इसमें मिलते हैं। इसकी नौ शाखाएँ थीं—पैप्पला, दामा, प्रदाता, स्नौता, ब्रह्मदावला, शौनकी, देवदर्शनी और चारण विद्या। कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं—पिप्पलादा, शौनकीया, दामोदा, तौतायना, जाजला, ब्रह्मपालाशा, कौनखिना, देवदर्शिना और चारण विद्या। इन शाखाओं में से आजकल केवल शौनकीय मिलती है जिसमें २० काँड, ११९ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७६३ मंत्र हैं। पिप्पलाद शाखा की संहिता प्रोफेसर बूलर को काश्मीर में भोजपत्र पर लिखी मिली थी पर वह छपी नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है। इसके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुंडक और माण्डूक्य हैं। इसका गोपथ ब्राह्मण आजकल प्राप्त है। कर्मकांडियों को इस वेद का जानना आवश्यक है।

२ अथर्ववेद का मंत्र।

अथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद के अनुसार कर्मकांड करनेवाला ब्राह्मण। २ यज्ञ करानेवाला पुरोहित। यज्ञ का ब्रह्मा [को०]।

अथर्वन्—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र थे और अग्नि को स्वर्ग में लानेवाले समझे जाते हैं। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वन⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथर्व'। उ०—नातर वेद अथर्वन हारू।—कबीर सा०, पृ० ७७

अथर्वनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद' का मर्मज्ञ [को०]।

अथर्वनी⑤—संज्ञा पुं० [सं० आथर्वणि] दे० 'अथर्वणि'। उ०—आपु बसिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी।—तुलसी ग्र०, पृ० २७०।

अथर्वविद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वनिधि' [को०]।

अथर्वशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिर—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वशिरस्] १ एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी। २ एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वशिरस्] १ वेद की एक ऋचा का नाम। २ एक उपनिषद [को०]।

अथर्वांगिरस—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वाङ्गिरस] दे० 'अथर्व'

अथर्वांगी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वणि' [को०]।

अथल†—संज्ञा पुं० [अ (उच्चा०)+सं० स्थल, प्रा० थल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय।

अथवना⑤†—क्रि० अ० [सं० अस्तमन=डूबना प्रा० अत्थवण अत्थवण] १ अस्त होना। डूबना। उ०—[क]—जो आगें सो अथवै फूलै सो कुम्हिलाय। जो चुनिए सो ढहि परै जामैं सो मरि जाय।—कबीर [शब्द]। [ख] केइ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।—जायसी [शब्द०]। २ लुप्त होना। तिरोहित होना। नष्ट होना। गायब होना। चला जाना। उ०—कहत ससोक बिलोकि बधू मुख बचन प्रीति गथए हैं। सेवक सखा भगति, भायप गुन चाहत अब अथए हैं—तुलसी [शब्द०]।

अथवा—अव्य० [सं०] एक वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण अभीष्ट हो। या। वा। किंवा। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।—मानस, १।८।

अथाई—सज्ञा स्त्री० [सं० *आस्थायिका अथवा *आस्थायी, प्रा० अत्थाई] बैठने की जगह। घर का वह बाहरी चौपाल जहाँ लोग इष्ट मित्रो से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं। बैठक। चौबारा। उ०—हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लुगाई।—मानस, २।१०। २ वह स्थान जहाँ किसी गाँव या बस्ती के लोग इकट्ठे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं। उ०—कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पयौ गयो।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३७। ३ घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं। ४ गोष्ठी। मडली। सभा। जमावडा। दरबार। उ०—गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडुगण मडन वारिद पर नव ग्रह रची अथाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२१।

अथाग—वि० [स० अस्ताघ, प्र० अत्थग्घ] दे० 'अथाह'। उ०—हूँकल दल गज हैवरां अमरख नरां अथाग।—रा० रू०, पृ० ५५३।

अथान—सज्ञा पु० [स० अस्थाणु = स्थिर] अचार। कचूमर। उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै विधि क्षीर सो माँगि लियो।—केशव (शब्द०)।

अथाना[1]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—निबुआ, सूरन आम अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी।—सूर० १०।२४१।

अथाना[2]—क्रि० अ० [स० अस्तार्य, प्रा० अत्था, अत्थाअ] डूबना। अस्त होना। दे० 'अथवना'।

अथाना[3]—क्रि० स० [स० आ + स्थापन] १ थहाना। थाह लेना। गहराई नापना। २ ढूँढना। छानना। उ०—फिरत फिरत वन सकल अथायो। कोऊ जीव हाथ नहिं आयो।—सबल (शब्द०)।

अथाय—वि० [हिं०] दे० 'अथाह'। उ०—अद्वै अचल अखड है, अगम अपार अथाय। व्रज माधुरी०, पृ० २८६।

अथार—वि० [सं० आ (उप०) + स्तार < स्तृ] फैला या बिखरा हुआ।

अथावत—वि० [स० अस्तमित = डूबा हुआ] अस्त। डूबा हुआ। उ०—बेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो। चदहु आयो अथावतो होत अजहुँ मनभावतो क्यो नहिं आयो।—रघुनाथ (शब्द०)।

अथाह[1]—वि० [सं० अस्ताघ, प्रा० अत्थाह अथवा सं० अ = नहीं + √स्था = ठहरना] १ जिसकी थाह न हो। जिसकी गहराई का अत न हो। बहुत गहरा। अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है (शब्द०)। २ जिसका कोई पार या अत न पा सके। जिसका अदाज न हो सके। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। ३ गभीर। गूढ। समझ मे न आने योग्य। कठिन। उ०—(क) करै नित्य जप होम औ जानत वेद अथाह (शब्द०)। (ख) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पडता।—कानन०, पृ० ७१।

अथाह[2]—सज्ञा पुं० १ गहराई। गड्ढा। जलाशय। २ समुद्र। उ०—वा मुख के फिर मिलन को, आस रही कछु नाहिं। परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहिं।—शकुनला, पृ० ११४।

मुहा०—अथाह मे पडना = मुश्किल मे पडना। जैसे—हम अथाह मे पड़े हैं, कुछ नही सूझता [शब्द०]।

अथिर—वि० [स० अस्थिर, प्रा० अत्थिर, अथिर] १ जो स्थिर न हो चलायमान। चचल। उ०—काची काया मन अस्थिर थिर थिर काम करत।—कबीर ग्र०, पृ० ७६। २ क्षणस्थायी। टिकनेवाला।

अथीर—वि० [हिं०] दे० 'अथिर'। उ०—नहिं तर्क वितर्क अधीर धीर। नहि शून्य अशून्य अथीर थीर।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७८।

अथैव—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अथाई'। उ०—आजी हमारे बुलबुल की अथैया इन देखिबे आइए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२७।

अथोर—वि० [सं० अ + स्तोक = थोडा प्र० थोक, अप० थोक + ड [प्रत्य०] [स्त्री० अथोरी] कम नहीं। अधिक। ज्यादा। बहुत। पूरा। उ०—भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।—भारतेंदु ग्र० २।५७७।

अदक—सज्ञा पुं० [सं० आतङ्क, हिं० अतक] डर। भय। त्रास। उ०—जसुमति बूझति फिरति गोपालहिं। जब ते तृणावर्त्त व्रज आयो तब ते मोहिं जिय सक। नैननि ओट होत पल एकौ मैं मन भरति अदक।—सूर [शब्द०]।

अदड[1]—वि० [सं० अदण्डय] १ जो दड के योग्य न हो। जिसे दड देने की व्यवस्था न हो। सजा से बरी। २ जिसपर कर या महसूल न लगे। कररहित। ३ निर्द्वद्व। निर्भय। स्वेच्छाचारी। उ०—उदधि अपार उतरत हूँ न लागी बार, केसरीकुमार सो अदड ऐसो डाँडिगो।—तुलसी [शब्द०]।

अदड[2]—सज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे। मुआफी।

अदडनीय—वि० [स० अदण्डनीय] जो दड पाने के योग्य न हो। जिसके दड का विधान न हो। अदडय।

अदडमान—वि० [स० अदण्डमान] दड के अयोग्य। दड से मुक्त। सजा से बरी। उ०—अदडमान दीन गर्व दडमान भेद वै। अपठ्ठमान पाप ग्रथ, पठ्ठमान वेद वै।—केशव [सब्द०]।

अदड्य—वि० [स० अदण्डय] दड न पाने योग्य। जिसे दड न दिया जा सके। दडमुक्त। सजा से बरी।

अदत[1]—वि० [स० अदन्त] १ वेदांत का। जिसे दाँत न हो। २ जिसे दाँत न निकला हो। बहुत थोडी अवस्था का। दुधमुहाँ। ३ जिसने दाँत न तोडा हो (चौपाया)।

अदत[2]—वि० १ बारह आदित्यो मे एक। २ जोंक [को०]।

अदत्य—वि० [स० अदन्त्य] जो दाँत सबधी न हो। २ जो दाँतो के अनुकूल न हो। ३ दाँतो के लिये अहितकर [को०]।

अदब—वि० [स० अदब्ध] पवित्र। शुद्ध। उ०—यौं पद्माकर मत्र मनोहर जै जगदब अदब अए री।—पद्माकर ग्र० पृ० ३२५।

अदभ[1]—वि० [स० अदम्भ] १ दभरहित। पाखडविहीन। सच्चा। बिना आडबर का। २ निश्छल। निष्कपट। ३ प्राकृतिक। स्वाभाविक। अकृत्रिम। स्वच्छ। शुद्ध। उ०—नीति नग हीर, नग हीरन की कानि सो रतन खंभ पातिन अदभ छवि छाई सी।—देव [शब्द०]।

अदंभ[२]—सज्ञा पुं० १ शिव । २ दंभ का अभाव (को०) । ३. शुद्धता (को०) ।

अदंभित्व—सज्ञा पुं० [स० **अदम्भित्व**] दभशून्यता । दभ का अभाव । पाखड या आडबर का न होना । सात्विक जनो का एक गुण ।

अदष्ट्र[१]—वि० [सं०] दतहीन । बिना दाँत का [को०] ।

अदष्ट्र[२]—सज्ञा पुं० १ बिना विषैले दाँत का सर्प । विषदतहीन सर्प [को०] ।

अदक्ष—वि० [स०] १ अकुशल । जो निपुण न हो । २ भद्दा । कुरूप [को०] ।

अदक्षिण—वि० [सं०] १ बायाँ । जो दाहिना न हो । २ प्रतिकूल । विरुद्ध । ३ बिना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [यज्ञ इत्यादि] । ४. अकुशल अनाडी । अनुदार ।

अदक्षिणीय—वि० [स०] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [को०] ।

अदक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'अदक्षिणीय' [को०] ।

अदग्ध—वि० [स० **अदग्ध** प्रा० **अदग्ध**] १ बेदाग । निष्कलक । शुद्ध । २ निरपराध । निर्दोष । जिसे पाप न छू गया हो । ३ अछूता । अस्पृष्ट । साफ । बचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट माहँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग गया नहिं कोय ।—कबीर [शब्द] ।

अदग्ध—वि० [सं०] १ न जला हुआ । २. जिसका दाह सस्कार न किया गया हो [को०] ।

अदत्त[१]—सज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[१] **भय** जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [२] **क्रोध**—लडके आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [३] **शोकावेग** मे । [४] **रुक्**—असाध्य रोग से घबराकर [५] **उत्कोच**—घूस के रूप मे । [६] **परिहास**—हँसी हँसी मे । [७] **व्यत्यास**—बढावे मे आकर अथवा देखादेखी । [८] **छल**—जो धोखे मे उचित से अधिक दे दिया गया हो । [९] **बाल**—देनेवाला यदि बालक या नाबालिग हो । [१०] **मूढ़**—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो । [११] **अस्वतत्र**—जो दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो । [१२] **आर्त**—जो बेचैनी या दुख से घबड़ाकर दिया गया हो । [१३] **मत**—जो नशे की झोक मे दिया गया हो । [१४] **उन्मत्त**—जो पागल होने पर दिया गया हो । [१५] **कार्य**—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त किया गया हो और [१६] **अधर्म काम्य**—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त[२]—वि० [सं० **अदाता** अथवा स० **अदत्त**] जिसने दिया न हो । न देनेवाला । कृपण । उ०—कहूँ चोर कहुँ साह कहावत, कहुँ अदत्त, कहुँ दानी ।—जगा० बानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । डकैती ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[१] द्रव्यादत्तदान [२] भावादत्तदान, [३] द्रव्य भावादत्तदान और कोई चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [३] तीर्थंकर अदत्तदान और [४] गुरु अदत्तदान मानते हैं। इससे बचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुँवारी कन्या । वह लडकी जिसकी मँगनी न हुई हो [को०] ।

अदत्ता[१]—वि० स्त्री० [स०] न दी हुई ।

अदत्ता[२]—सज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—सज्ञा पुं० [अ०] १. सख्या । अक । गिनती । २ सख्या का चिह्न या सकेत ।

अदन[१]—सज्ञा पु० [अ०] १ यहूदी, ईसाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उपवन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अजन की रेखा राजै कुच बिच चित्र साजै, एहैं बेली, रेखी, ही, उचित अदन मैं ।—छीत०, पृ० ३६ । २ अरब सागर का एक बदरगाह ।

अदन[२]—सज्ञा पुं० [स०] खाना । भक्षण उ०—[क] भारती बदन बिष अदन ससि पतग पावक नयन ।—तुलसी ग्र० पृ० २३६ । [ख] बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।—घनानद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [अ०] [स्त्री० **अदनी**] १ तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हलाकू चगेजो तैमूर, हमारे अदना, अदना सूर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७४ । २ सामान्य । मामूली उ०—करना किसी पै रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०९ ।

अदनीय—वि० [सं०] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफरⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजरी धार मैं अदफर भीर भुलान ।—स० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदब—सज्ञा पुं० [अ०] १ शिष्टाचार । कायदा । बडो का आदर, समान । उ०—दौलते दीवार जाए पर अदब जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०९ ।

मु०—**अदब की जगह**—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

अदबकायदा—सज्ञा पु० [अ०] शिष्ट व्यवहार [को०] ।

अदब लिहाज—सज्ञा पुं० [अ०] आदर समान [को०] ।

अदबदकर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अदबदाकर' । उ०—मैं यो तो ये काच लेता या न लेता पर अब उनकी जिद से अदबदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० १६३ ।

अदबदाकर—क्रि० वि० [सं० **अधि + वद = वचन देना, कहना** अथवा **अनुध्व०**] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यो तो हम न जाते, अब अदबदाकर जाएँगे (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप मे क्रि० वि० के समान आता है परतु वास्तव मे यह क्रि० अ० है ।

अदबुद[1]ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अदबुद रूप जाति की बानी। कबीर बी०, पृ० २५।

अदबुद[2]ⓤ—वि [हिं०] दे० 'अधबुध'। उ०—वाके बदन करू सब कोई। बुद अदबुद अचरज बड होई।—कबीर बी०, पृ०२५८।

अदब्ब[1]ⓤ—सज्ञा पुं० [अ० अदब] दे० 'अदब'।—आदर अदब्ब सथ्थीन देत।—पृ० रा०, ११७२१।

अदब्ब[2]—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० दबना] न दबनेवाला।—अदब्ब गब्बियान के सरब्ब गब्ब को हरे।—पद्माकर ग्र० पृ० २८३।

अद्भुतⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी।—मानस १।४३।

अदभूⓤ—[सं० अद्भूत] दे० 'अद्भुत'। उ०—रज्जब निरजहि इदर गुरु अदभू आदर ऐन। पहुप पत्र फल पूजिये सुर नर पावहि चैन।—रज्जब० बानी०, पृ० ८।

अदभ्र—वि० [सं०] १. बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—सुनु अदभ्र करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१५। २ अपार। अनत। उ०—अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।—मानस ७।१२।

अदम—सज्ञा पुं० [अ०] १ अनस्तित्व। अभाव। लोप। २. अनुपस्थिति। ३ देवलोक। परलोक। जन्नत। उ०—अदम की राह सीधी है, बुलदी है, न पस्ती है।—शेर० भा १, पृ० ५८६।

मुहा०—अदम की राह लेना, अदम को पधारना या अदम की सिधारना=मर जाना।

अदमआबाद—सज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ लोग मरने के बाद जाते हैं। परलोक [को०]।

अदमखाना—सज्ञा पुं० [अ० अदम+फा० खानह] दे० 'अदमआबाद' [को०]।

अदमगाह—सज्ञा पु० [अ० अदम+फा० गाह] दे० 'अदमआबाद'। [को०]।

अदमतामील—सज्ञा स्त्री० [अ०] समन आदि का अमल मे न आना [को०]।

अदमपैरवी—सज्ञा स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे मे जरूरी कार्रवाई न करना। अभियोग मे पक्षप्रतिपादन का अभाव। जैसे—वह मुकदमा तो अदमपैरवी मे खारिज हो गया।

अदमफुरसत—सज्ञा स्त्री० [फा० [अवकाश न होना। अनवकाश [को०]।

अदममौजूदगी—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति। गैरहाजिरी [को०]।

अदमवसूली—सज्ञा स्त्री० [अ०] मालगुजारी आदि का वसूल न होना।

अदमवाकफीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुभवहीनता [को०]।

अदमसबूत—सज्ञा पु० [फा०] किसी मुकदमे मे सबूत का न होना। प्रमाण का अभाव।

अदमहाजिरी—सज्ञा स्त्री० [अ०] गैरहाजिरी। अनुपस्थिति।

अदम्य—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके। न दबने योग्य प्रचड। प्रबल। अजेय।

अदय—वि० [स०] १ दयारहित। करुणाशून्य (व्यापार)। २ निर्दयी। निष्ठुर। कठोरहृदय (व्यक्ति) उ०—अनजानी भूलो पर भी वह अदय दड तो देती है।—पचवटी, पृ० ७।

अदया—सज्ञा स्त्री० [स० अ+दया] कोप। नाराजी दया का अभाव। उ०—अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूब।—कबीर ग्र०, पृ० २५।

अदरक—सज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक, फा० अदरक] तीन फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लबी और जड या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक गर्म भाग मे तथा हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है। इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओ मे काम आती है। यह गर्म और कटु होता है तथा कफ, वात, पित्त और शूल का नाश करती है। अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है। गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोठ कहते हैं।

पर्याय—शृगवेर, कटुभद्र, कटूत्कट, गुल्ममूल, मूलज, कदर, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, प्रपाकशाक, चद्राख्य, राहुच्छत्र, सुशाकक, शाङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक।

अदरकी—सज्ञा स्त्री० [स० आर्द्र की] सोठ और गुड मिलाकर बनाई हुई टिकिया। सोठौरा।

अदरखⓤ—स० पु० [हि] दे० 'अदरक'। उ०—हीग हरद अिच छाँके तेले। अदरख और आँवले मेले।—सूर०, १०।१०१४।

अदरस[1]ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अदर्शन'। उ०—भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस काहु। तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद लाहु।—स० सप्तक, पृ० ३४।

अदरस[2]ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अदृश्य'।

अदरा सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) बरसै अदरा के बुँदवा, ठाढि भीजै गुजरी।—प्रेमघन०, भाग २ पृ० ३४०। (ख) अदरा माहि जो बोवउ साठी। दुख के मार निकालउ लाठी।—घाघ०, पृ० १२२।

अदराना[1]—क्रि० अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढ़ना। फूलना। इतराना। आदर या मान चाहना। जैसे—वे आजकल अदराए हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नही करते (शब्द)।

अदराना[2]—क्रि० स० आदर देकर शेखी पर चढाना। फुलाना। घमडी बनाना।

अदरु—सज्ञा पुं० [स० आदर] दे० 'आदर'। उ०—राजे बिना बुलाई गति जाऊँ, अदरु नहि होई।—पोद्दार अभि० ग्र० पृ० ६१७।

अदर्श—सज्ञा पुं० [स०] १ वह दिन जिसकी सध्या को चद्रमा दिखाई न पडे। २ आदर्श। दर्पण [को०]।

अदर्शन[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १. अविद्यमानता। असाक्षात्। २ लोप। विनाश। ३ उपेक्षा [को०]।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदर्शन[2]—वि० अदृश्य। लुप्त [को०]।

अदर्शनीय—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य। जो देखने लायक न हो। बुरा। कुरूप। भद्दा।

अदल[1]—सज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। इंसाफ। उ०—अदल कहौं पुहुमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द)।

अदल[2]—सज्ञा पु० [स०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल[3]—वि० १ विना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. विना फौज का। सेनारहित। ३ भागरहित (को०)।

अदल[4]—वि० [हिं० अ+दल] जो किसी दल मे न हो। तटस्थ।

अदल[5]Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स०अदल=अपर्णा] पार्वती। उ०—अदल-पति-रिपु पिता-पतिनी अब न जैहैं फेर।—सा० लहरी, पृ० ११६।

अदलखाना—सज्ञा पु० [अ० अदल+फा० खानह्] न्यायालय। कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन औगुन विचारे विना वदल न जैहै वडे अदलखाने मे।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा+—वि० [अ० अदालत+हिं० हा (प्रत्य०)] मुकदमेवाज। मुकदमा लडनेवाला।

अदल वदल—सज्ञा पुं० [अ० वदल का अनुव्व० अवल] उलट पुलट। हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल वदल भूषण प्रिया यातें परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किंकिनी पाइ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४५।

अदला—सज्ञा स्त्री० [स०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलावदली—सज्ञा स्त्री० [हिं० अदल वदल] १ एक वस्तु लेने के लिये उसके वदले दूसरी वस्तु देना। २ एक चीज के स्थान पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली[1]Ⓤ—सज्ञा पु० [अ० अदल+हिं० ई (प्रत्य०)] न्यायी। इसाफवर। उ०—कप कदली मे वारि वुद वदली, सिवराज अदली के राज मे यो राजनीति है।—भूषण (शब्द)।

अदली[2]Ⓤ—वि० [स० अदल] विना पत्ते का।

अदलीय—वि० [स० अ+दल+ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल का सदस्य न हो। किसी दल से सवध न रखनेवाला।

अदवान—सज्ञा स्त्री० [स० अध.=नीचे+वान=रस्सी अथवा देशी] चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे विनावट को कसी रखने के लिये करधनी के छेदो मे से ले जाकर सीरो मे तानकर लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—सज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह्यⓊ—वि० [अदाय] न जलनेवाला।

अदहन—सज्ञा पु० [स० आदहन] खौलता हुआ पानी। आग पर चढा हुआ वह पानी जिसमे दाल, चावल आदि पकाते हैं।

अदहय—वि० [सं०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [स० अदान्त] १ जो इंद्रियो का दमन न कर सके। अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २ जो वश मे न किया जा सके। दुर्दात (को०)।

अदाँतⓊ—वि० [सं० अदन्त] विना दाँत का। जिसे दाँत न आए हो (प्राय पशुओ के लिये)। उ०—अदाँत वरदै, दो दाँत खाय। आप जाय खसमै खाय।—कहावत (शब्द)।

अदा[1]—वि [अ०] चुकता। वेवाक। दिया हुआ। उ०—जान दी, दी हुई उसी की थी। हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।—शेर०, भा० १, ४९३।

क्रि प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया (शब्द)।

मुहा०—अदा करना=पालन करना या पूरा करना। जैसे—सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यौ०—अदाए जर डिगरी=डिगरी के देने या रुपए को देना। अदाबदी=किसी रुपए के वेवाक करने या देने के लिये किस्त या समय का नियत करना। किस्तवदी। अदा या वेवाक करना=सब चुकता कर देना। कौडी कौडी दे डालना। अदाएमालगुजारी=मालगुजारी का देना। अदाए शहादत=गवाही देना।

अदा[2]—सज्ञा स्त्री० १ भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उ०—सगरव गरव खिचै सदा चतुर चितेरे आय। पर वाकी वाँकी अदा नेकु न खींची जाय।—सं० सप्तक०, पृ० २६५। २ ढग। तर्ज। आन। अदाज। उ०—इस अदा से मुझे सलाम किया। एक ही आन मे गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—सज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई[1]Ⓤ—वि० [अ० अदा+हिं ई (प्रत्य०)] १ ढगी। चालवाज। चतुर। उ०—ऊधो नेकु निहारो। हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ रहति समीप सदाई। सो तजि कहत और की और, तुम अलि वडे अदाई।—सूर० १०।३९००।

अदाई[2]Ⓤ—वि० [हिं०अ+दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवचित। उ०—कहहु मोहि अब वाल सुहाई। केहि अवगुन मोहि कीन्ह अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—सज्ञा पुं० [हिं० अद+फा० कार] अभिनेता। कलाकार [को०]।

अदागⓊ—वि० [हिं० अ=नहीं+अ० दाग=धब्बा] १. वेदाग। निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग। त्याग को भूषन शातिपद तुलसी अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २ निष्कलक। निर्दोष। ३ पवित्र। शुद्ध।

अदागीⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अदाग'।

अदाता[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कजूस। २ विवाह मे (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३ वह व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता[2]—वि० न देनेवाला। कजूस।

अदान[1]Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अ+दान] १ अदाता। न देनेवाला व्यक्ति। कजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरव जन्म अदान जानिकै ताते कछू मँगायो। मूठिक तदुल बाँधि कृष्ण को वनिता विनय पठायो।—सूर (शब्द)। २ वह हाथी जिसका दान अर्थात् मद स्रवित न होता हो (को०)।

अदान[2]—वि० [स० अ=नहीं+फा० दानह=जानकार] अजान। नादान। नासमझ। उ०—ये अदान जानती नही, कछु पालेहु भूल बिसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहत ये अदानियाँ अबूझ भोदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तें। —ठाकुर श०, पृ० २७। (ख) ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं,अदानियाँ मसुर के।—इतिहास,पृ० ३८२।

अदानी(पु)—वि०, [सं० अ+दानिन्] जो दान न दे। कजूस। सूम। कृपण। उ०—श्रवण नैन कोनही तौं आँसु को निवास होत जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।

अदाव(पु)—सज्ञा पुं० [अ० आदाब] दे० आदाब'। उ०—अदब आदाव सलाम जो करई।—दरिया-बानी०, पृ० ४०।

अदाय—वि० [सं०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।

अदायगी—सज्ञा स्त्री० [फा० अदाइगी] १ चुकता करना। भुगतान करना। २ पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अँगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।

अदायाँ(पु)—वि० [हिं० अ+दायाँ=दक्षिण, दाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न भाए। दूइज दसमी उतर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।

अदाया(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहस, अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।—मानस, ६।१७।

अदायाद—वि० [सं०] १ जो सपिंड न हो। २ उत्तराधिकार रहित [को०]।

अदायिक—वि० [सं०] १ दाय या उत्तराधिकार से सबध न रखनेवाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।

अदार—वि० [सं०] पत्नीरहित। विधुर। रँडुआ [को०]।

अदारिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अदालत—सज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व सबधी झगडो पर विचार करता है।

विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अतर्गत ही समझना चाहिए।

यौ०—**अदालत अपील**=वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। **अदालत खफीफा**=एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। **अदालत दीवानी**=वह अदालत जिसमे सपत्ति या स्वत्व संबधी बातो का निर्णय होता है। **अदालत मराफाऊला**=वह अदालत जिसमे पहले पहल दीवानी मुकदमा दायर किया जाय। **अदालत मराफासानी**=वहअदालत जिसमे अदालत मराफाऊल की अपील हो। **अदालत मातहत**=जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत मे हुई हो। **अदालत माल**=वह अदालत, जिसमे मालगुजारी वा लगान सबधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मुहा०—**अदालत करना**=मुकदमा लडना। **अदालत होना**=अभियोग चलना।

अदालती—वि० [अ० अदालत+हिं० ई० (प्रत्य०)] १ अदालत विषयक। न्यायालय सबधी। २ जो अदालत करे। मुकदमा लडनेवाला।

अदावँ(पु)—सज्ञा पुं०—[स० अ० दुरा+हिं० दावँ] बुरा दाँवपेंच। असमजस। कठिनाई। उ०—यह ऐसा अदावँ परयो या घरी घरहाईन के परि पुजन मे। मिस कोउ न आनि चढे चितवँ इनकी वतियाँन की गुजन में।—राम (शब्द०)।

अदावत—सज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। वैर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यो न हो। —शेर० भाग १, पृ० ५२१।

कि० प्र०—करना।—रखना।—निकालना।—होना।

अदावती—वि० [अ० अदावत+हिं० ई (प्रत्य०)] जो अदालत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २ विरोधजन्य। द्वेषमूलक।

अदास—वि० [सं०] जो दास या परतत्र न हो। स्वाधीन [को०]।

अदाह[1](पु)—सज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तें आनि धरी क्यो। एती अदाह धरी तो धरी पर ये अखियाँ रिझवारि करी क्यो।—(शब्द०)।

अदाह[2](पु)—वि० [सं० अदाह] दाहरहित। जिसमे ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ जो त्री दुख तापा। सूखे जी अदाह औ झापा।—इद्रा०, पृ० १५१।

अदाहक—वि० [सं०] न जलानेवाला। जिसमे जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।

अदाह्य—[सं०] १ जो जलने योग्य न हो। २ जो चिता पर जलाने योग्य न हो। ३ आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।

अदिक्—वि० [सं०] दिशाओ से परे। दिशारहित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल नित्य अदिक्, हे अनूप।—क्वासि, पृ० ९१।

अदिढ(पु)—वि० दे० 'अदृढ'। उ०—कछु मन दिढ कछु अदिढ लहीये, प्रौढा धीराधीरा कहिये।—नद० ग्र०, पृ० १४८।

अदित(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'।

अदिति[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकृति। २ पृथ्वी। ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।

विशेष—इनसे सूर्य आदि तैंतीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओ की माता कहलाती हैं।

४ असीमता। ५ निर्धनता। ६ स्वतत्रता। ७ सुरक्षा। ८ पूर्णता। ९ पुनर्वसु नक्षत्र। १० गाय। ११ वाणी। १२ उत्पन्न करने की शक्ति। १३ दूध। १४ माता। १५ द्युलोक। १६ अतरिक्ष।

अदिति[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ ईश्वर का एक विशेषण। २ प्रजापति। ३ देवताओ का विश्वदेवा नामक गण। ४ काल। ५ मृत्यु [को०]।

अदितिज—सज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ आदित्य। सूर्य [को०]।

अदितिनदन—सज्ञा पुं० [सं० अदितिनन्दन] दे० 'अदितिज' [को०]।

अदितिसुत—सज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ सूर्य।

अदिन—सज्ञा पुं० [सं०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। सकट या दुख का समय। अभाग्य। उ०—यो कही बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है। अपनो अदिन देखि हो डरपत जेहि विप बेलि वई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५९।

अदिव्य[1]—वि० [स०] १ लौकिक। साधारण। सामान्य। २ स्थूल जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो।

अदिव्य[2]—संज्ञा पु० तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो लौकिक हो। मनुष्य नायक। जैसे—मालती माधव नाटक में माधव।

अदिव्या—संज्ञा स्त्री० [स०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह नायिका जो लौकिक हो। जैसे—मालती माधव में मालती।

अदिष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ+दिष्ट=भाग्य] अभाग्य। उ०—कन्या एक जु पाछै भई। सु पुनि अदिष्ट लई उठि गई।—नंद० ग्र०, २३६।

अदिष्ट[2]—वि० [सं० अदृष्ट] दे० 'अदृष्ट'।

अदिष्टी—वि० [सं० अ=नहीं+दिष्ट=भाग्य] १ अभागा। बदकिस्मत। २ अदूरदर्शी। मूर्ख। अविचारी। दुष्ट।

अदिस्ट—वि० दे० 'अदृष्ट[1]'। उ०—प्रेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा। ज्ञान दिस्टि सौं जाइ पहूँचा।—जायसी ग्र०, पृ० १२२।

अदिस्स—वि० [सं० अदृश्य, प्रा० अदिस्स] लुप्त। गायब। ओझल। उ०—भूषनिप्रताप रिपु रन अदिस्स।—पद्माकर ग्र०, पृ० २७८।

अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो। जो दीक्षित न हो [को०]।

अदीठ—वि० [सं० अदृष्ट प्रा० अदिट्ठ] बिना देखा हुआ। अप्रत्यक्ष। अनदेख। गुप्त। छिपा हुआ। उ०—इस मन कौं विसमल करौं दीठा करौं अदीठ।—कबीर ग्र०, पृ०, २८।

अदीत—पु० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'। उ०—मोह महातम रहतु है, जो लौं ज्ञान न होत। कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत।—सं० सप्तक, पृ० ३५६।

अदीदा—वि० [सं० अ+फा० दीदह] बिना आँख का। नेत्र-रहित। उ०—दादू देखा अदीदा। सब कोई कहत सुनीदा।—घट०, पृ० १६८।

अदीठा—वि० [सं० अदृष्ट] जिसे देखा न गया हो। उ०—मारवणी कह कारणइ देस अदीठा दिट्ठ।—ढोला०, पृ० १२५।

अदीन—वि [सं०] [स्त्री० अदीना] १ दीनतारहित। अनम्र। उग्र। अविनीत प्रचंड। निडर। २ उच्चाशय। ऊँची तबीयत का। उदार। उ०—निठुर, ठुकराओ न मेरी इस अदीना याचना को।—क्वासि, पृ० ५०।

यौ०—अदीनात्मा=जो प्रकृत्या अदीन हो।

अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृया दीन न हो। तेजस्वी [को०]।

अदीनसत्व—वि० [सं० अदीनसत्व] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०]।

अदीव[1]—वि० [अ०] १ अदब सिखानेवाला। २ सुशील [को०]।

अदीव[2]—संज्ञा पु० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०]।

अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय। उ०—अदीयमान दुख सुख दीयमान जानिए।—केशव (शब्द०)।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो बड़ा न हो। छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १ काम करने में विलंब न करनेवाला। २ आलस्य न करनेवाला ३ स्फूर्तिवाला [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०]।

अदीह—वि० [सं० अ=नहीं+दीर्घ, प्रा० दीह] दे० 'अदीर्घ'। उ०—राधिका रूप विधान के पानिप आनि सबै छिति की छवि छाई। दीह अदीहन सूछम थूल गई दृग गोरी की दौरि गोराई।—केशव (को०)।

अदुद—वि० [सं० अद्वंद्व, प्रा० अदुद] १ द्वंद्वरहित। निर्द्वंद्व। बिना झगड़े का। बाधारहित। २ शांत। निश्चित। ३ बेजोड़। अद्वितीय। उ०—गोपन बनकर्षे कनक वसुधाधर गुधाधर बरन मधुराधर सदुर री। (शब्द०)।

अदुखव—वि० [सं०] जो दुखी न हो। दुःख से रहित [को०]।

अदुखनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०]।

विशेष—इस दिन दुःख निवारण के लिये स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं।

अदुहन—वि० [सं० अद्वैत] दे० 'अद्वैत'। उ०—अदुहन रूहम विराग मत ब्रह्मज्ञान निर्लेप।—गो० दरिया, पृ० ८०।

अदुग्ध—वि० [सं०] १ दूध रहित। २ न दुही हुई [को०]।

अदुर्ग—वि० [सं०] १ दुर्गरहित। २ दुर्गम न हो [को०]।

अदुर्गविषय—संज्ञा पु० [सं०] वह देश जिसमें किले का अभाव हो [को०]।

अदुष्ट—वि० [सं०] १ दूषणरहित। निर्दोष। शुद्ध। ठीक। यथार्थ। वास्तविक। उ०—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह, लक्षन को नाम आन्यो चाहो तातें सब अदुष्ट हैं।—भिखारीग्र० भा० २, पृ० २४०। २ सज्जन। भला।

अदू—संज्ञा पु० [सं०] शत्रु। बैरी। दुश्मन। उ०—दोस्तों के लिये शादी हो अदू के लिये गम हो।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ७४७।

अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०]।

अदूर[1]—क्रि० वि० [सं०] समीप। निकट। पास।

अदूर[2]—वि० पास का। समीपी [को०]।

अदूर[3]—संज्ञा पुं० सामीप्य [को०]।

अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न सोचे। अनअगोची। जो दूर के परिणाम का विचार न करे। अविचारी। स्थूलबुद्धि। नासमझ।

अदूरदरसी—वि० [हिं०] दे० 'अदूरदर्शी'। उ०—हेरत हिरायेसे परमपर मचित्य चूर पारय जो मारयो अदूरदरसीनि लौं।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३।

अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित। निर्दोष। बेऐब। शुद्ध। स्वच्छ। अच्छा।

अदूषन—वि० [हिं०] दे० 'अदूषण'। उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिय समिहि चापसर मकर अदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१४।

अदूषित—वि० [सं०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ० वह पूर्णतया अदूषित और निर्विकार है।—कबीर ग्र० पृ० ३।

अदूषितधी—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [को०]।

अदृढ—वि० [सं० अ+दृढ] १ जो दृढ न हो। कमजोर। अस्थिर। चचल।

यौ०—अदृढचित्त।

अदृप्त—वि० [स०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सौम्य।

अदृश्य—वि० [स०] १ जो दिखाई न दे। अलख। २ जिसका ज्ञान पाँच इद्रियो को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अतर्धान।

क्रि० प्र०—करना। —होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उसी मे हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट[1]—वि० [स०] १—न देखा हुआ। अलक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अतर्धान। तिरोहित। गायब। ओझल। उ०—यह कहिकै भागीरथी केशव भई अदृष्ट।—राम च०, पृ० ९३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट[2]—सज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। किसमत। भावी। जन्मातर का सस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी लकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—राम-च०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से।—लहर पृ० ५३। २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य सबधी अनुभव से रहित [को०]।

अदृष्टगति—वि० [स०] १ जिसकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास सरीर की आकरषन विधि जानु। अति अदृष्टगति दूतिका, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २६२। २ चालबाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—सज्ञा पुं० [सं०] वह सधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनो पक्ष स्वीकार कर लें [को०]।

अदृष्टनरसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्टनरसन्धि] वह सधि जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदृष्टपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अदृष्टनर' [को०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [स०] १ जो पहले न देखा गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण।

अदृष्टफल[1]—वि० [स०] अज्ञात फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [को०]।

अदृष्टफल[2]—सज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का भविष्य मे उपलब्ध होने-वाला फल [को०]।

अदृष्टरूप[1]—वि० [सं०] अदृश्य आकारवाला। [को०]।

अदृष्टरूप[2]—सज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [को०]।

अदृष्टलिपि—सज्ञा स्त्री० [स० अदृष्ट+लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगो की अदृष्ट लिपि लिखी-पढी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह सिद्धात जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष बातो पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क किए बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [स०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बडे अदृष्टवादी हैं।—आँधी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—सज्ञा पुं० [स० अदृष्ट+आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्य-मडल समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—सज्ञा पु० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढे जाएँ।

विशेष—ऐसे अक्षर प्राय प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नही पडते। विशेषत आँच पर रखने से उगड आते और पढे जाते हैं।

अदृष्टार्थ[1]—सज्ञा पुं० [स०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इस ससार मे न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ[2]—वि० आध्यात्मिक या गूढ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इद्रियो के ज्ञान से परे हो [को०]।

अदृष्टि[1]—वि० [स०] दृष्टिहीन। अधा [को०]।

अदृष्टि[2]—सज्ञा स्त्री० १ दिखाई न पडने की स्थिति। २ क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [को०]।

अदृष्टि[3]—सज्ञा पु० शिष्यो के तीन भेदो में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अदृष्टि' [को०]।

अदेखⓤ—वि० [स० अ=नहीं+हिं० <देख] १ जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २ न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊहै अदेख केहू नहिं देखा, कवन फन दहुँ पाय।—जग० बानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ विसुआस।—स० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी[1]—वि० [अ=नहीं+देखी] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू करु बीत जु देखें अदेखिन के दृग दागैं। जामे निसक ह्वै मोहन को भरिए निज अक कलक न लागैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० ९७।

अदेखी[2]—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हिं०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई चित सो कहि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [स०] १ न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४९। २ (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

जिसके थान की लंबाई साधारण नजेब या नैनसुख के थान की आधी होती है।

अद्भुत[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अद्भुतता अद्भुतत्व] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत[2]—संज्ञा पुं० १ आश्चर्य। विस्मय (को०)। २ विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३ किसी ऊँचाई की माप के ५ समभागों में से एक, जिसमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४ काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवार्यतः विस्मय की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलंबन असंभावित वस्तु, उद्दीपन उसके गुणों की महिमा तथा अनुभाव संभ्रमादिक हैं। ५ केशव के अनुसार रूपक के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप में एक रस होना दिखलाया जाता है। जैसे—सोभा सरवर माहिं फूल्योई सखि, राजै राजहंसिनी समीप सुखदानिऐ। केसोदास आस पास सौरभ के लोभी घने, भ्रानंनि के देव और भ्रमन बखानिऐ। होति जोनि दिन दूनी निसी में सहस गुनी, सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिऐ। रवि को सदन, छूइ सकै न मदन ऐसो कोमलसदन जग जानकी को जानिऐ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्मा—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करनेवाला उ०—और सब लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते हैं।—रामक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन।

अद्भुतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। अनोखापन। उ०—चमत्कार में हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व या वैलक्षण्य से नहीं।—रस० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक [को०]।

अद्भुतब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के एक ब्राह्मण का अंश [को०]।

अद्भुतरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—जाको थाई आचरज सो अद्भुतरस गाव।—पद्माकर ग्र० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रामायण जिसकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है [को०]।

अद्भुतसार—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर वृक्ष का फल [को०]।

अद्भुतस्वन[1]—वि० [सं०] विचित्र स्वरवाला [को०]।

अद्भुतस्वन[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अद्भुतालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ संसार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद।

विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में त्रिकाल में भी संभव न हो। जैसे—श्रीराम को अपमाननि गान सयाननि रीझि रिझावै। अक बिलोकन बोलि अमोननि बोलि के केशव मोद बढ़ावै। हावहु भाव बिभाव प्रभाव सुभाव के माहनि चित्र चुरावै। ऐसे बिलास जु होहिं मरोज में तो उपमा मुख तेरे की पावै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८६।

अद्मनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अद्मर—वि० [सं०] अत्यधिक खानेवाला। पेटू [को०]।

अद्य[1]—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य[2]—संज्ञा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार [को०]।

अद्य[3]—वि० खाने योग्य। भोज्य [को०]।

अद्यतन—वि० [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन[1]—संज्ञा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—वि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का [को०]।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन [को०]।

अद्यदिवस—अव्य० [सं०] दे० 'अद्यदिन' [को०]।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज से पहले [को०]।

अद्यप्रभृति—क्रि० वि० [सं०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [सं०] आज या कल के अंतर्गत घटित होनेवाला [को०]।

अद्यश्वीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल निकट हो। आसन्नप्रसवा [को०]।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक [को०]।

अद्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आज और कल, का दिन [को०]।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपार्जित [को०]।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय [को०]।

अद्रव[1]—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढ़ा। घना। ठोस।

अद्रव[2]—संज्ञा पुं० ठोस पदार्थ [को०]।

अद्रव्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। अवस्तु। असत्। शून्य। अभाव।

अद्रव्य[2]—वि० द्रव्य या धनरहित। दरिद्र।

अद्रा(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रा, हिं अर्द्रा] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) तपनि मृगसिरा जे सहे वे अद्रा पलुहंत।—जायसी ग्र०, पृ० १५६। (ख) अद्रा धान पुनर्वसु पैया, गरा किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३।

अद्रि—संज्ञा पु० [सं०] १ पर्वत। पहाड़। २ पत्थर (को०)। ३ मेघ। बादल (को०)। ४ विष्णु। शिव (को०)। ५ सात की संख्या (को०)। ६ सात। ७ एक प्रकार की मछली (को०)। ८ एक प्रकार की मछली (को०)। ९ पृथु का एक पौत्र (को०)।

अद्रिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता बेल (को०)।

अद्रिकील—संज्ञा पु० [सं०] शिखर पर्वत (को०)।

अद्रिकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती।

अद्रिकुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। कंदरा (को०)।

अद्रिद्रि—संज्ञा पु० [सं०] पर्वत। गिरि।

अद्रिज[1]—वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न होनेवाला (को०)।

अद्रिज[2]—संज्ञा पु० १ शिलाजीत। २ हीरा (को०)।

अद्रिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती। २ गंगा नदी। ३ शिव की पत्नी। शिवजी की पत्नी (को०)।

अद्रितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती। गंगा। ३ पर्वत के एक पुत्र का नाम। इसे मैनाक भी कहते हैं। कहते हैं कि पर्वतों के पंख निकले तब इन्द्र ने इसे काट डाला। इसी से यह नाम पड़ा (हरिवं०)।

अद्रिद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पहाड़ी घाटी। २ मेरी या उदुंबर (को०)।

अद्रिद्विष—संज्ञा पु० [सं०] पर्वतों का शत्रु। इंद्र (को०)।

अद्रिनद्रिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्रिनन्दिनी] दे० 'अद्रिजा' (को०)।

अद्रिपति—संज्ञा पु० [सं०] पर्वतों का स्वामी। पर्वतों का राजा। हिमालय।

अद्रिभिद्—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र का एक नाम।

अद्रिम—संज्ञा पु० [सं०] अपराजिता या सफेद कोयल बेल (को०)।

अद्रिमंडल—संज्ञा पु० [सं०] पर्वत समूह। उ०—तिन मंदिर सो सिखरो अद्रिमंडल गह्यो। —सं० सुधा, पृ० ५।

अद्रिराज—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अद्रिपति' (को०)।

अद्रिवह्नि—संज्ञा पु० [सं०] दावाग्नि (को०)।

अद्रिशय्य—संज्ञा पु० [सं०] शिव (को०)।

अद्रिशिखर—पु० पु० [सं०] पर्वत की चोटी। उ० इस तरह सब दूर तक फैले हुए उदयगिरि अद्रिशिखर। —सुधा, पृ० १२।

अद्रिशृंग—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अद्रिशिखर' (को०)।

अद्रिसानु—संज्ञा पु० [सं०] अद्रिशृंग (को०)।

अद्रिसार[1]—वि० [सं०] पर्वत जैसा दृढ़ (को०)।

अद्रिसार[2]—संज्ञा पु० १ लोहा। २ शिलाजीत।

अद्रिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रीद्र—संज्ञा पु० [सं० अद्रीन्द्र] हिमालय पर्वत (को०)।

अद्रीश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अद्रीद्र' (को०)।

अद्रोघ—वि० [सं०] १ सत्य। २. द्वेषविहीन। द्वेषरहित (को०)।

अद्रोह—संज्ञा पु० [सं०] द्रोह या द्वेष का अभाव। सद्भाव (को०)।

अद्रोहकृत्तम—वि० [सं०] द्रोह या द्वेष का सर्वथा अभाव करनेवाला (को०)।

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] किसी के साथ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला (को०)।

अद्रु—संज्ञा पु० [सं०] लकड़ी।

अद्रुपत्तर—वि० [सं०] बहुत कम पत्तों या पंखोंवाला। थोड़े पंखों का। कम पंखवाला।

अद्रुप्त—वि० [सं०] अहंकार से रहित। अभिमान से शून्य।

अद्रुह—वि० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला। २ सत्य। ३ सरल। सीधा।

अद्रोहक—संज्ञा पु० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता का अभाव। २ सत्य। ३ सरलता। सीधापन।

अद्रोहकृत्तम—वि० [सं०] द्रोह या शत्रुता का सर्वथा अभाव करनेवाला।

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] किसी के साथ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला (को०)।

अद्रु—संज्ञा पु० [सं०] लकड़ी।

अद्रुपत्तर—वि० [सं०] बहुत कम पत्तों या पंखोंवाला। थोड़े पंखों का। कम पंखवाला।

अद्रुप्त—वि० [सं०] अहंकार से रहित। अभिमान से शून्य।

अद्रुह—वि० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला। २ सत्य। ३ सरल। सीधा।

अद्रोहक—संज्ञा पु० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता का अभाव। २ सत्य। ३ सरलता। सीधापन।

अद्रोहकृत्तम—वि० [सं०] द्रोह या शत्रुता का सर्वथा अभाव करनेवाला।

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] किसी के साथ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला (को०)।

अद्रु—संज्ञा पु० [सं०] लकड़ी।

अद्रुपत्तर—वि० [सं०] बहुत कम पत्तों या पंखोंवाला। थोड़े पंखों का। कम पंखवाला।

अद्रुप्त—वि० [सं०] अहंकार से रहित। अभिमान से शून्य।

अद्रुह—वि० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला। २ सत्य। ३ सरल। सीधा।

अद्रोहक—संज्ञा पु० [सं०] १ द्रोह या शत्रुता का अभाव। २ सत्य। ३ सरलता। सीधापन।

अद्रोहकृत्तम—वि० [सं०] द्रोह या शत्रुता का सर्वथा अभाव करनेवाला।

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] किसी के साथ द्रोह या शत्रुता न करनेवाला (को०)।

अद्वंद—संज्ञा पु० [सं०] १ द्वंद्वरहित। अकेला। २ सुख का अभाव। दुःख का अभाव। मोक्ष। ३ ब्रह्म।

अद्वंद्व—संज्ञा पु० [सं०] १ द्वंद्वरहित। अकेला। २ सुख का अभाव। दुःख का अभाव। मोक्ष। ३ ब्रह्म।

अद्वंद्वातीत—वि० [सं०] द्वंद्व या द्वैत से परे। द्वैतातीत।

अद्वंद्वी—वि० [सं० अद्वंद्विन्] द्वंद्वरहित। अकेला।

अद्वंद्वेतर—वि० [सं०] द्वंद्व या द्वैत से संबंधित। द्वैतात्मक।

अद्वंद्वोपी—वि० [सं०] १ द्वंद्वरहित। अकेला। २ द्वैत या द्वंद्व का अभाव। ३ द्वैत का अभाव। ४ द्वैत का अभाव। ५ द्वैत का अभाव। ६ द्वैत का अभाव। ७ द्वैत का अभाव। ८ द्वैत का अभाव। ९ द्वैत का अभाव। १० द्वैत का अभाव।

अद्वंद्वोपी—वि० [सं०] १ द्वंद्वरहित। अकेला। २ द्वैत या द्वंद्व का अभाव। ३ द्वैत का अभाव। ४ द्वैत का अभाव। ५ द्वैत का अभाव। ६ द्वैत का अभाव। ७ द्वैत का अभाव। ८ द्वैत का अभाव। ९ द्वैत का अभाव। १० द्वैत का अभाव।

अद्वंद्वी—वि० [सं० अद्वंद्विन्] द्वंद्वरहित। अकेला।

अद्वंद्वेतर—वि० [सं०] द्वंद्व या द्वैत से संबंधित। द्वैतात्मक।

अद्वंद्वोपी—वि० [सं०] १ द्वंद्वरहित। अकेला। २ द्वैत या द्वंद्व का अभाव। ३ द्वैत का अभाव। ४ द्वैत का अभाव। ५ द्वैत का अभाव। ६ द्वैत का अभाव। ७ द्वैत का अभाव। ८ द्वैत का अभाव। ९ द्वैत का अभाव। १० द्वैत का अभाव।

अद्वैत—संज्ञा पु० [सं०] १ द्वैत का अभाव। अभेद। एकता। २ अद्वैतवाद। ३ एक। अकेला। ४ ब्रह्म। परमात्मा।

अद्वैतवाद—संज्ञा पु० [सं०] १ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। २ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ३ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ४ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ५ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ६ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ७ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ८ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ९ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। १० वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है।

अद्वैतवादी—संज्ञा पु० [सं० अद्वैतवादिन्] १ अद्वैतवाद का समर्थक। २ अद्वैतवाद का अनुयायी। ३ अद्वैतवाद का प्रचारक। ४ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ५ अद्वैतवाद का प्रचारक। ६ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ७ अद्वैतवाद का प्रचारक। ८ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ९ अद्वैतवाद का प्रचारक। १० अद्वैतवाद का प्रवर्तक।

अद्वैतवादी—संज्ञा पु० [सं० अद्वैतवादिन्] १ अद्वैतवाद का समर्थक। २ अद्वैतवाद का अनुयायी। ३ अद्वैतवाद का प्रचारक। ४ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ५ अद्वैतवाद का प्रचारक। ६ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ७ अद्वैतवाद का प्रचारक। ८ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ९ अद्वैतवाद का प्रचारक। १० अद्वैतवाद का प्रवर्तक।

अद्वैतवादी—संज्ञा पु० [सं० अद्वैतवादिन्] १ अद्वैतवाद का समर्थक। २ अद्वैतवाद का अनुयायी। ३ अद्वैतवाद का प्रचारक। ४ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ५ अद्वैतवाद का प्रचारक। ६ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ७ अद्वैतवाद का प्रचारक। ८ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ९ अद्वैतवाद का प्रचारक। १० अद्वैतवाद का प्रवर्तक।

अद्वैतवाद—संज्ञा पु० [सं०] १ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। २ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ३ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ४ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ५ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ६ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ७ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। ८ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है। ९ वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना गया है। १० वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना गया है और जगत् को मिथ्या कहा गया है।

अद्वैतवादी—संज्ञा पु० [सं० अद्वैतवादिन्] १ अद्वैतवाद का समर्थक। २ अद्वैतवाद का अनुयायी। ३ अद्वैतवाद का प्रचारक। ४ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ५ अद्वैतवाद का प्रचारक। ६ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ७ अद्वैतवाद का प्रचारक। ८ अद्वैतवाद का प्रवर्तक। ९ अद्वैतवाद का प्रचारक। १० अद्वैतवाद का प्रवर्तक।

आदि भी। ३. शकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदात दर्शन। इस मत मे 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म' सत्य जगन्मिथ्या' के अनुसार 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-आनदस्वरूप। मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमासा, शकरवेदात आदि पदो से प्राय इसी दर्शन का बोध होता है।

विशेष—इस सिद्धात के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही ससार रूप मे वस्तुत दिखाई देता है। अत मे अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

अद्वैतवादी[1]—वि० [स०] अद्वैत मत को माननेवाला। ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला। शाकरवेदात का अनुयायी।

अद्वैतवादी[2]—सज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धात माननेवाला व्यक्ति।

अद्वैतसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि। २ शाकर वेदात का प्रकरणविशेष [को०]।

अद्वैती—सज्ञा पुं० [सं० अद्वैतिन्] दे० 'अद्वैतवादी' [को०]।

अद्वैध—वि० [सं०] १ जो दो भागो मे विभक्त न हो। अवियुक्त। २ असद् भावना से रहित। ३ खरा। उत्तम [को०]।

अद्वैध्यमित्र—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता मे किसी प्रकार का सदेह न हो।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति मे जिसके साथ छोडने की आशका न हो, वह अद्वैध्यमित्र है।

अधग(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांग'। उ०—सीस गग गिरिजा अधग भूषण भुजगवर।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५।

अधतरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अध+अतरी] मालखम की एक कसरत।

अध[1]—अव्य० [सं०] नीचे। तले।

अध[2]—सज्ञा स्त्री० दश दिशाओं मे से, एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

अध काय—सज्ञा पुं० [सं० अध=नीचे+काय=शरीर] कमर के नीचे के अग। नाभि के नीचे के अवयव।

अध क्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] अपमानित करना। नीचा दिखाना [को०]।

अध पतन—सज्ञा पुं० [स०] १. नीचे गिरना। २ अवनति। अध पात तनज्जुली। ३ दुर्दशा। दुर्गति। ४ विनाश। क्षय।

अध पतित—वि० [स०] १ जिसका पतन हो गया हो। २ दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अध पात—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे गिरना। पतन। २ अवनति। तनज्जुलि। ३ दुर्गति। दुर्दशा।

अध पुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अनतमूल नामक औषधि। २ नीले फूल की एक बूटी जिसे अधाहुली भी कहते हैं।

अध प्रस्तर—सज्ञा पुं० [स०] अशौचवालो के बैठने के लिये तृणो का बना हुआ आसन। कुशासन।

अधोवेद—सज्ञा पु० [स०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०]।

अध शयन—सज्ञा पुं० [स०] पृथ्वी पर सोना। ब्रह्मचर्य का एक नियम

अध शय्या—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अध शयन' [को०]।

अध शिरा[1]—वि० [स० अध शिरस्] सिर नीचे रखनेवाला [को०]।

अध शिरा[2]—सज्ञा पु० एक नरक का नाम [को०]।

अध स्वस्तिक—सज्ञा पुं० [स०] अधोविंदु। देखनेवालो के पैरो के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित विंदु [को०]।

अध[1](पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'अध'। उ०—अध अर्द्ध वानर विदिस दिसि वानर है।—तुलसी ग्र०, पृ० १७४।

अध[2]—वि० [स० अर्ध; प्रा० अद्ध, अध] 'आधा' शब्द का सकुचित रूप। आधा। उ०—हौं जानत जो नाह तुम बोलत अध अखरान।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

विशेष—प्राय यौगिक शब्द बनाने मे इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—**अधकचरा, अधजल, अधबावरा, अधमरा**।

अधकचरा[1]—वि० [हिं० अध+कच्चा] १ अपरिपक्व। अधूरा। अपूर्ण। २. अकुशल। अदक्ष। जिसने पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो। जैसे—उसने अच्छी तरह पढा नही अधकचरा रह गया (शब्द०)।

अधकचरा[2]—वि० [हिं० अध+कचरना] आधा कूटा या पीसा हुआ। दरदरा। अधपिसा। अधकूटा। अरदावा किया हुआ।

अधकच्चा—वि० [हिं०] दे० 'अधकचरा'। उ०—बहुधा इस तरह की बनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरीखे अधकच्चे मनुष्यो से होती है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६४।

अधकच्छा—सज्ञा पुं० [स० अधिकच्छा] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह मे मिल गई हो।

अधकछार—सज्ञा पुं० [स० अर्ध+कच्छ] पहाड के अचल की वह ढालुई भूमि जो प्राय बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है।

अधकट—वि० [हिं० अध+कटना] १ आधा कटा हुआ। २ नियत दूरी या परिणाम का आधा।

अधकपारी—सज्ञा स्त्री० [स० अर्ध+कपाल हिं० अध+कपारी] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारभ होकर दोपहर तक बढता जाता है। फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बद हो जाता है। आधासीसी। सूर्यावर्त।

अधकरी—सज्ञा स्त्री० [स० अर्ध+कर] १ अठन्नियाँ। किस्त। मालगुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय।

अधकहा—वि० [हिं० अध+कहना] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गहकि गाँसु औरे गहे रहे अधकहे बैन। देखि खिसौंहैं पिय नयन किए रिसौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ६५।

अधकी(पु)—वि० [स० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—ज्यो ज्यो चूल्हे झोकिया, त्यो त्यो अधकी बास।—कबीर सा० स०, पृ० ९२।

अधखिला—वि० [हिं० अध+खिलना] [स्त्री० अधखिली] आधा खिला हुआ। अर्धविकसित।

अधखुला—वि० पुं० [हिं० अध+खुलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। उ०—सुभग सिंगार साजे सबै, दै सखीन को पीठि। चलै अधखिले द्वार लौं, खुली अधखुली दीठि।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अधगति—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधोगति'। उ०—महा विपट कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।—मानस, ७।१०७।

अधगो—संज्ञा पु० [स० अध=नीचे+गो=इंद्रिय] नीचे की इंद्रियाँ। शिश्न या गुदा। उ०—उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना।—मानस, ६।१५।

अधगोरा—संज्ञा पु० [हिं० अध+गोरा] [स्त्री० अधगोरी] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न संतान। यूरेशियन।

अधगोहुआँ—संज्ञा पु० [स० अर्ध+गोधूम+क] जौ मिला हुआ गेहूँ। गोजई।

अधघट—वि० [हिं० अध+घट] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०—है कबीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।—कबीर (शब्द०)।

अधचना—संज्ञा पु० [हिं० अधा+चना] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमे आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा—वि० [हिं० अध+चरना] आधा चरा हुआ। अर्धभक्षित। आधा खाया हुआ। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)।

अधजर—वि० [हिं० अध+जरना] दे० 'अधजला'। उ०—कोई परा भौंर होइ बास लीन्ह जनु चोप। कोई पतग भा दीपक कोइ अधजर तन काँप।—जायसी ग्र०, पृ० २४६।

अधजल—वि० [स० अर्ध+जल] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे—अधजल गगरी छलकत जाय [कहा०]।

अधजला—वि० [हिं० आधा+जलना] आधा जला हुआ। जो पूर्ण रूप से भस्म न हुआ हो।

अधडी—वि० स्त्री० [सं० अधर] १ न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २ ऊटपटाँग। बेसिर पैर का। असबद्ध। जिसका कोई सिलसिला न हो। न इधर की न उधर की। उ०—अधडी चाल कबीर की असा धरी नहि जाइ। दादू डाँकहि मिरिग ज्यो उलटि पडइ भू आइ—दादू (शब्द०)।

अधधर—संज्ञा पुं० [स० अर्ध+धार] मध्यधार। बीचोबीच। उ०—पढे गुने उपजै अहँकारा। अधधर डूबे बार न पारा।—कबीर ग्र०, पृ० १३०।

अधन—वि० [स०] १ धनरहित। निर्धन। कगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०—तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरचि सिवहि सदेहा।—मानस, १।१६१। २ स्वतत्र सपत्ति रखने का अनधिकारी [को०]।

विशेष—मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतत्र सपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ—वि० [हिं० आधा+आना+इया (प्रत्यय०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्ना—संज्ञा पुं० [स० अर्ध+आणक=आना] [स्त्री० अधन्नी] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डबल पैसा।

अधन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० अधन्ना'।

अधन्य—वि० [सं०] [स्त्री० अधन्या] १ जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभागा। २ गर्हित। निंद्य। बुरा।

अधप—संज्ञा पुं० [स०] भूखा सिंह। अर्धतृप्त केहरी।

अधपई—संज्ञा स्त्री० [स० अर्ध+पाद=चौपाई] तौलने का एक बाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का बाट या मान। दो छटकी। दसभरी। अधपैया। अधपौवा।

अधपका—वि० [स० अर्धपक्व] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपति—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधिपति'। उ०—खैंची कमर सौं बाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफड—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अधफर'। उ०—टूटे पख बाज मँडराने अधफड प्रान गँवाहीं।—कबीर श०, पृ० २२।

अधफर—संज्ञा पुं० [स० अर्ध+फलक=तख्ता] अतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०—अब अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।—केशव (शब्द०)।

अधबर—संज्ञा पु० [हिं० अध+देश० बर (प्रत्यय०)] अथवा हिं० अध+बाट=मार्ग] १ आधा मार्ग। आधा रास्ता। उ०—जे अनिरुध पर परैं हथ्यार। अधबर कटैं शिखा की धार।—लल्लू (शब्द०)। २ बीच। मध्य। अधर। उ०—उन कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुलसी अधबर के भए ज्यो बधूर के पान।—स० सप्तक, पृ० ३१।

अधबाँच—संज्ञापुं० [हिं० अध+स०*√वञ्च्]१ चमरावत। चमारो का जौरा। २ वह उजरत जो चमारो को चमडे का मोट बनाने के लिये वर्ष भर मे या फसल के समय दी जाती है।

अधबिच—संज्ञा पु० [हिं० अध+बीच] मध्य। बीच। उ०—तरु तमाल अधबीच जनु बिविध कीर पाँति रुचिर, हेमजाल अतर परि तातें न उडाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अधबुध—वि० [स० अर्ध+बुध=बुद्धिमान] अर्धशिक्षित। अधकचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०—दिना सात लौं वाकी सही। बुध अधबुध अचरज एक कही।—कबीर (शब्द०)।

अधबैसू—वि० [स०अर्ध+वयस्+हिं० ऊ (प्रत्य०)] [स्त्री० अधबैसी] अधेड। मध्यम अवस्था का। ढलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधम¹—वि० [स०] [स्त्री० अधमा] [संज्ञा अधमाई, अधमता] १ नीच। निकृष्ट। बुरा। खोटा। २ पापी। दुष्ट। उ०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।—मानस १।११४।

अधम[2]—सज्ञा पुं० १ एक पेड का नाम। २ कवि के तीन भेदो मे से एक। वह कवि जो दूसरो की निंदा करे। ३ ग्रहो का एक अनिष्ट योग (को०)। ४ कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित कामी (को०)।

अधमई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अधम+हिं ई (प्रत्य०)] नीचता। अधमता। खोटापन।—सुनि मेरी अपराध अधमई कोई निकट न आवै।—सूर०, १।१६७।

अधमता—सज्ञा स्त्री० [स०] अधमपना। नीचता। खोटाई।

अधमभृत—सज्ञा पु० [स०] निम्न श्रेणी का सेवक। तीन प्रकार के सेवको मे एक [को०]।

अधमभृतक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अधमभृत' [को०]।

अधमरति—सज्ञा स्त्री० [स०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं। जैसे, वेश्या की प्रीति।

अधमरा—वि० पुं० [स० अर्ध, हिं अध+मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ। अर्धमृत। मृतप्राय। अधमुआ।

अधमर्ण—सज्ञा पुं० [स० अधम+ऋण] ऋण लेनेवाला आदमी। कर्जदार। धरना। ऋणी।

अधमाग—सज्ञा पुं० [स० अवताङ्ग] शरीर का निचला भाग। चरण। पाँव। पैर।

अधमा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'अधमा नायिका'। २ नीच प्रकृति की स्त्री [को०]।

अधमाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अधम+हिं० आई (प्रत्य०)] अधमता। नीचता। खोटाई। उ०—परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।—मानस ७।४१।

अधमादूती—सज्ञा स्त्री० [स०] अधम कुटनी। वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का सदेश एक दूसरे को पहुँचाए।

अधमाधम—वि० [स अधम+अधम] नीच मे नीच। महानीच। उ०—महा बिटप कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई। मानस ७।१०७।

अधमानायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदो से एक। वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे।

अधमार(पु)—वि० [हिं०] आधे मारे हुए। अधमरा। उ०—गए पुकारत कछु अधमारे।—मानस ५।८।

अधमार्ध—सज्ञा पुं० [स०] नाभि के नीचे का भाग [को०]।

अधमुआ—वि० [हिं०] दे० 'अधमरा'।

अधामुख(पु)—वि० [स० अधोमुख] मुँह के बल। सिर के बल। औधा। उलटा। उ०—(क) स्याम भुजनि की सुदरताई। बडे बिसाल जानु लौ परमत इक उपमा मन आई। मनौ भुजग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुनाई।—सूर (शब्द०)। (ख) स्याम बिंदु नहि चिबुक मैं, मो मन यौं ठहराइ। अधमुख ठोढी गाड की, अँधियारी दरसाई।—स० सप्तक, पृ० २४५।

अधमोद्धारक—वि० [स०] पापियो का उद्धार करनेवाला [को०]।

अधरगा—सज्ञा पुं० [हिं० आधा+रग] एक प्रकार का फूल।

अधर[1]—सज्ञा पु० [स०] १ नीचे का ओठ। २ ओठ।

यौ०—बिंबाधर। दयिताधर।

मुहा०—अधर चबाना=क्रोध के कारण दाँतो मे ओठ बार बार दबाना। उ०—तदपि क्रोध नहिं रोक्यो जाई। भए अरुन चख अधर चबाई।—पद्मावत (शब्द०)। ३ भग या योनि के दोनो पार्श्व। ४ शरीर का निचला हिस्सा (को०)। ५ दक्षिण दिशा (को०)।

अधर[2]—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+धृ=धरना] १ बिना आधार का स्थान। अतरिक्ष। आकाश। शून्यस्थान। जैसे—वह अधर मे लटका रहा। (शब्द०)।

मुहा०—अधर मे झूलना, अधर मे पडना, अधर मे लटकना=(१) अधूरा रहना। पूरा न होना। जैसे—यह काम अधर मे पडा हुआ है (शब्द०)। (२) पशोपेश मे पडना। दुविधा मे पडना।

अधर[3]—वि० १ जो पकड मे न आए। चचल। २ नीच। बुरा। तुच्छ। उ०—गूढ कपट प्रिय वचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।—मानस २।१६। ३ विवाद या मुकदमे मे जो हार गया हो। ४ नीचा। नीचे का।

अधरकाय—सज्ञा पु० [स०] शरीर का निचला भाग [को०]।

अधरक्षत(पु)—सज्ञा पु० [स० अधरक्षत] ओठ का व्रण। उ०—नु है अपन्हुति अधरक्षत करत न पिय हिय बाइ।—बिहारी र०, भा० २, पृ० १६।

अधरज—सज्ञा पु० [स० अधर+रज] ओठो की ललाई। ओठो की सुर्खी। ओठों की धडी। पान या मिस्सी के रग की लकीर जो ओठो पर दिखाई देती है।

अधरपान—सज्ञा पु० [स० अधर=ओठ+पान=पीना, चूसना] सात प्रकार की बाहचर क्रियो मे से एक रति। ओठो का चुबन।

अधरबिंब—सज्ञा पु० [स०] कुँदरू के पके फल जैसे लाल ओठ।

अधरबुद्धि—वि० [स०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०]।

अधरम(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अधर्म'। उ०—जब जब होई धरम कै हानी। बढहि असुर अधरम अभिमानी।—मानस १।१२१।

अधरमकाय(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्मास्तिकाय'।

अधरमधु—सज्ञा पुं० [स०] अधरो का रस। अधरामृत [को०]।

अधररस—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अधरमधु' [को०]।

अधरस्वस्तिक—सज्ञा पुं० [स०] अधोबिंदु [को०]।

अधरागा—सज्ञा पुं० [स०] शरीर के नीचे के अग या भाग [को०]।

अधरा(पु)—स्त्री० पु० [स० अधर] दे० 'अधर'। उ०—सूरज जिव मे ईंगुर बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुनारे।—बिहारी र०, भा० १, पृ० ११।

अधरात(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अर्धरात्रि] आधीरात। उ०—अधरात उठत करि हाय हाय।—बिहारी० र०, भा० १, पृ० २२२।

अधराधर—सज्ञा पुं० [स० अधर+अधर] नीचे का ओठ। उ०—बर दत की पगति कुद कली अधराधर पल्लव खोलनि की।—तुलसी,ग्र० पृ० १५५।

अधरामृत—सज्ञा पु० [सं०] ओठो का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०]।

अधरावलोप—सज्ञा पुं० [स०] ओष्ठचर्वण। ओठ चवाना [को०]।

अधरासव—सज्ञा पु० [अधर+आसव] ओठ का मादक रस।—उ०—अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि।—श्यामा०, पृ० १७६।

अधरीण—वि० [स०] १ नीच। तिरस्कृत। २ निंदित [को०]।

अधरेद्यु—सज्ञा पु० [स०] गत दिन के पहले का दिन। परसो।

अधरोथा⑤—वि० [स० अर्ध+रोमन्थ=जुगाली] [स्त्री० अधरोथी] आधा जुगाली किया हुआ। आधा पागुर किया हुआ। आधा चबाया हुआ। उ०—अधरोथी कग दाम गिरावन। थकित खुले मुख ते बिखरावन। शकुतला०, पृ० ८।

अधरोत्तर—वि० [स अधर+उत्तर] ऊँचा नीचा। खडबीहड। ऊबड खाबड। २ अच्छा बुरा। ३ न्यूनाधिक। कमोवेश।

अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे।

अधरोष्ठ—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे का होठ। २ नीचे और ऊपर के दोनो ओठ [को०]।

अधरौष्ठ—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अधरोष्ठ' [को०]।

अधर्म—सज्ञा पु० [स०] [वि० अधर्मी, अधर्मिष्ठ, अधर्मी] पाप। पातक। असद्व्यवहार। अकर्तव्य कर्म। अन्याय। धर्म के विरुद्ध कार्य। कुकर्म दुराचार। बुरा काम।

विशेष—शरीर द्वारा हिंसा चोरी आदि कर्म वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि। यह गौतम का मत है। कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और नैश्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो। जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म। बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो।

२ एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०]।

अधर्ममत्रयुद्ध—सज्ञा पु० [स०] वह युद्ध जो दोनो ओर के लोगो को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो।

अधर्मात्मा—वि० [स०] अधर्मी पापी। दुराचारी। कुकर्मी। बुरा।

अधर्मास्तिकाय—सज्ञा पु० [स०] अधर्म पाप। जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदो मे से एक।

विशेष—यह एक नित्य और अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति का सहायक है। इसके तीन भेद हैं—स्कध, देश और प्रदेश।

अधर्मी—सज्ञा पुं० [स० अधर्मिन्] [स्त्री० अधर्मिणी] पापी दुराचारी

अधर्म्य—वि० [स०] १ धर्मविरुद्ध। जो धर्म की दृष्टि मे उपयुक्त न हो। २ अवैध। अन्यायपूर्ण [को०]।

अधर्षणी—वि० पु० [स०] जिसको कोई दबा या डरा न सके। जिसको कोई पराजित न कर सके। प्रचड। प्रबल। निर्भय।

अधवा—सज्ञा स्त्री० [स० अ+धव=पति] जिसका पति जीवित न हो। विधवा। पतिहीना। बिना पति की स्त्री। सधवा का उलटा।

अधवाना—सज्ञा पु० [हिं० हिंदवाना] तरबूज।

अधवारी—सज्ञास्त्री० [देश०] एक पेड का नाम जिसकी लकडी मकान और असबाब बनाने के काम आती है।

अधश्चर[१]—वि० [स०] जो नीचे नीचे चले।

अधश्चर[२]—सज्ञा पु० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष। सेंधिया चोर।

अधसेरा—सज्ञा पुं० [स० अर्ध+सेटक=सेर] एक बाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है। दो पाव का मान।

अधस्तन—वि० [स०] १ नीचा। नीचे अवस्थित। २ पूर्ववर्ती। पहले का [को०]।

अधस्तल—सज्ञा पु० [स०] १ नीचे का कमरा। नीचे की कोठरी। २ नीचे की तह। तहखाना।

अधस्स्वस्तिक—सज्ञा पु० [स०] नीचे की ओर का वह स्थान या विंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या विंदु के ठीक नीचे हो। शीर्षविंदु से ठीक विपरीत दिशा का विंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधाँगा—सज्ञा पु० [स० अर्धाङ्ग] एक खाकी रंग की चिडिया जिसकी गरदन से ऊपर का सारा भाग लाल होता है और डैने तथा पैर सुनहले होते हैं।

अधाधुध—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधाधुध'।

अधाना—सज्ञा पु० [स० अर्ध] स्थान (अस्थायी) का एक भेद। यह तिलवाडा नाल पर बजाया जाता है।

अधान्यवाय—सज्ञा पुं० [स०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमे धान न पैदा होता हो।

विशेष—वाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमे धान पैदा होता हो। परतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बडा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधामार्गव—सज्ञा पु० [स०] अपामार्ग [को०]।

अधार⑤—सज्ञा पु० [स० आधार] दे० 'आधार'। उ०—उप अधार सब सृष्टि भवानी।—मानस, १।७३।

अधारणक—वि० [स०] जो लाभप्रद न हो। [को०]

अधारिया—सज्ञा पुं० [स० आधार] बैलगाडी मे गाडीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढा भी कहते हैं।

अधारी[१]—⑤सज्ञा स्त्री० [स० आधार या आधारिका] १ आश्रय। सहारा। आधार की चीज। २ काठ के डडे में लगा काठ का पीढा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं। उ०—ऊधोयोग सिखावन आए। शृगी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए।—सूर (शब्द०)। ३ यात्रा का सामान रखने का झोला या थैला जिसे मुसाफिर लोग कधे पर रखकर चलते हैं। उ०—मेखल, सिंधी, चक्र धधारा। जोगवाँट, रुदराक्ष अधारी।—जायसी ग्र०, पृ० ५३।

अधारी[२]—वि० स्त्री० सहारा देनेवाली। प्रिय। सुख देनेवाली। भली। उ०—की मोहि लै पिय कठ लगावै। परम अधारी बात सुनावै।—जायसी (शब्द०)।

अधारी[3]—संज्ञा पु० [हिं० आधा+आरियसंस्य] बेनिकाला हुआ बैल।

अधार्मिक—वि० [सं०] १ अधर्मी। धर्मशून्य। २ पापी। दुराचारी।

अधावट—वि० पु० [स०अर्ध=आधा+आवृत्त, प्रा० अध+आवट्ट, आउट्ठ] आधा औटा हुआ। जो औटाते या गरम करते करते गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो। उ०—कछु बनदाऊ को दीजै, अरु दूध अधावट पीजै।—सूर० १०।१८३।

अधि—उप० [सं०] एक संस्कृत उपसर्ग।

विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और इसके ये अर्थ होते हैं—(१) ऊपर। ऊँचा। पर। जैसे—अधिराज। अधिकरण। अधिष्ठान। (२) प्रधान। मुख्य। जैसे, अधिपति। (३) अधिक। ज्यादा। जैसे, अधिमास। (४) संबंध में। जैसे, आध्यात्मिक। अधिदैविक। आधिभौतिक।

अधिक[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अधिकता, अधिकाई, क्रि० अधिकाना] १ बहुत। ज्यादा। विशेष। २ अतिरिक्त। सिवा। फालतू। बचा हुआ। शेष। जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे अच्छे काम में लगाओ (शब्द०)।

अधिक[2]—संज्ञा पु० १ वह अलंकार जिसमें आधेय को आधार से अधिक वर्णन करते हैं। जैसे—तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यह नाम। कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम।—राम च०, पृ० १००। २ न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु और उदाहरण का प्रयोग होता है।

अधिकई—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिक+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिकाई'। उ०—हितनी के लाह की, उछाह की, विनोद मोद सोभा की अवधि नहिं। अब अधिकई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३२०।

अधिककोण—संज्ञा पुं० [सं० अधिक+कोण] वह कोण जो समकोण से बड़ा हो (ज्यामिति)।

अधिकत—क्रि० वि० [सं०] अधिकतर। विशेषकर। उ०—अधिकन बँधना यह ध्यान था, व्रजविभूषण है शतरंग बने। प्रिय०, पृ० १६३।

अधिकतम—वि० [सं०] परिमाण, माप, संख्या आदि में सबसे अधिक [को०]।

अधिकतर[1]—वि० [सं०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ। और ज्यादे [को०]।

अधिकतर[2]—क्रि० वि० ज्यादातर। बहुत करके [को०]।

अधिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकपना। ज्यादती। बढ़ती। वृद्धि।

अधिक तिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो अपने समय के पश्चात् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०]।

अधिक दिन—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०]।

अधिक दिवस—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अधिक तिथि'।

अधिक मास—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक महीना। मलमास। लौंद का महीना। पुरुषोत्तम मास। असंक्रांतमास। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें संक्रांति न पड़े।

विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चांद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चांद्र वर्ष में जोड़ दिया जाता है।

अधिकरण—संज्ञा पु० [सं०] १ आधार। आसरा। सहारा। २ व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार। सातवाँ कारक। इसकी विभक्तियाँ 'में' और 'पर' हैं। ३ प्रकरण। शीर्षक। ४ दर्शन में आधार विषय। अधिष्ठान। जैसे—ज्ञान का अधिकरण आत्मा है (शब्द०)। ५. मीमांसा और वेदांत के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धांत पर विवेचना की जाय और जिसमें ये पाँच अवश्य हों—विषय संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय। ६ सामान। पदार्थ। ७ न्यायालय। ८ प्रधानता। प्राधान्य। ९ अधिकारप्रदान।

अधिकरणभोजक—संज्ञा पु० [सं०] न्यायाधीश [को०]।

अधिकरणमंडप—संज्ञा पु० [सं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय। अदालत [को०]।

अधिकरणविचाल—संज्ञा पु० [सं०] व्यतिक्रम करते जाना। किसी वस्तु के गुण में ह्रास अथवा वृद्धि करते जाना [को०]।

अधिकरण सिद्धांत—संज्ञा पु० [सं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ भी स्वयं सिद्ध हो जायँ।

विशेष—जैसे, आत्मा देह और इंद्रियों से भिन्न है, इस सिद्धांत के सिद्ध होने में इंद्रियों का अनेक होना, उनके विषयों का नियत होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का साधक होना, इत्यादि विषयों की सिद्धि स्वयं हो जाती है।

अधिकरणिक—संज्ञा पु० [सं० अधिकरणिक या अधिकारणिक] मुंसिफ। जज। फैसला करनेवाला। न्यायकर्ता।

अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १ अध्यक्ष। २ निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अधिकरण्य—संज्ञा पु० [सं०] अधिकार [को०]।

अधिकर्द्धि—वि० [सं० अधिक+ऋद्धि] ऐश्वर्यशाली [को०]।

अधिकर्म—संज्ञा पु० [सं०] १ देखरेख। निरीक्षण। २ श्रेष्ठ कर्म ३ निरीक्षक [को०]।

अधिकर्मकर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अधिकर्मकृत' [को०]।

अधिकर्मकृत—संज्ञा पु० [सं० अधिकर्मकृत] काम करनेवालों का जमादार।

अधिकर्मिक—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुंगी उगाहनेवाला अधिकारी [को०]।

अधिकर्मी—संज्ञा पु० [सं० अधिकर्मिन्] मजदूरों आदि के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अधिकवाक्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़ा चढ़ाकर कहना। अतिरंजना [को०]।

अधिकसंवत्सर—संज्ञा पु० [सं०] अधिक मास। मलमास [को०]।

अधिकाग[1]—संज्ञा पु० [सं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग। नियत संख्या से विशेष अवयव।

अधिकाग[2]—वि० जिसमें कोई अवयव अधिक हो। जैसे—छागुर।

अधिकाश[1]—संज्ञा पु० [सं०] अधिक भाग। ज्यादा हिस्सा। जैसे—लूट का अधिकांश सरदार ने लिया (को०)।

अधिकाश[२]—वि० वहुत ।

अधिकाश[३]—क्रि० वि० १ ज्यादातर । विशेषकर । वहुधा । २ अक्सर । प्राय । जैसे—अधिकाश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अधिक+हिं० आई (प्रत्य०)] १ ज्यादती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । वहुतायत । वटती । उ०—लहहि सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १ । ११ । २ वडाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिकै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [स०] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना(पु)—क्रि० अ० [स० अधिक से नाम०] अधिक होना । ज्यादा होना । वढना । विशेष होना । वृद्धि पाना । उ०—सुक से मुनि सारद से वकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—सज्ञा पु० [सं०] 'चद्रालोक' के अनुसार रूपक अलकार के तीन भेदो मे से एक ।

विशेष—इसमे उपमान और उपमेय के वीच वहुत सी वातो मे अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय मे कुछ विशेषता या अधिकता वतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, धरै वास मृदु मजु । उपज्यो नहिं पुनि पक ते प्यारी को मुख कज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के वीच सुवास आदि गुणो मे समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पक से न उत्पन्न होने की विशेषता दिखाई गई है ।

अधिकार[१]—सज्ञा पु० [स०] १ कार्यभार प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्ही के हाथ मे सौपा गया है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जमाना ।—देना ।—सौंपना ।

२ स्वत्व । हक । अख्तियार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हे नही है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३ दावा कब्जा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—करना ।—जमाना ।

४ क्षमता सामर्थ्य । शक्ति । ५ योग्यता । परिचय । जानकारी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विषय मे उसे कुछ अधिकार नही है' (शब्द०) । ६ प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७ नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८ कर्तव्य (को०) । ९ निरीक्षण (को०) । १० स्थान (को०) । ११ व्याकरण मे एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र मे आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते है ।

विशेष—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिहावलोकित, (२) मडूकप्लुत और (३) गगाप्रवाह के सदृश ।

अधिकार[२](पु)—वि० पु० [स० अधिक] अधिक । वहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [सं०] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारविधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] मीमासा मे वह विधि या आज्ञा जिससे यह वोध हो कि किस फल की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किस कर्म का अधिकारी है । जैसे,—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [स०] अधिकार सपन्न जिसमे अधिकार निहित हो [को०] ।

अधिकारा(पु)—वि० [स० अधिक+आरा (प्रत्य०)] अत्यधिक । उ०—चढे त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निश्चल (शब्द०) ।

अधिकारी[१]—सज्ञा पु० [स० अधिकारिन्] [स्त्री० अधिकारिणी] १ प्रभु । स्वामी । मालिक । २ स्वत्वधारी । हकदार । ३ योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्त पात्र । जैसे—'सब मनुष्य वेदात के अधिकारी नही हैं (शब्द०) । ४ नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिससे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होना है । ५ एक जातीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी[२]—वि०— स्वत्व या क्षमता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारी[३]—वि० स्त्री० [हिं० अधिकार] अधिकता । वाहुल्य । उ०—(क) जेहि कौं आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यो मुख अधिकारी ।—जग० वानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामे पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ८५ ।

अधिकारी[४](पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] जवर्दस्ती । उ०—त्यो पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१६ ।

अधिकार्थ—सज्ञा पु० [स०] कोई वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ मे विशेषता आ जाय ।

अधिकार्थवचन—सज्ञा पुं० [स०] अत्युक्ति । अतिरजना [को०] ।

अधिकी(पु)—वि० [सं० अधिक+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिक' । उ०—अधिकी हमको नाही चाहियत है ।—दो सौ वावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत[१]—वि० [स०] १ अधिकार मे आया हुआ । हाथ मे आया हुआ । उपलब्ध । २ जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—झरना, पृ० ९३ ।

अधिकृत[२]—सज्ञा पु० अधिकारी । अध्यक्ष । जैसे—महावलाधिकृत मे 'अधिकृत' ।

अधिकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकार । स्वत्व [को०] ।

अधिकौहाँ(पु)—वि० [स०अधिक+हिं० औहाँ (प्रत्य०)] अधिकतम । अत्यधिक । उ०—जनु कलिदनदिनि मनि-इद्रनील सिखर परसि धँसति लसति हससेमि सकुल अधिकौहैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—सज्ञा पु० [स०] आरोहण । चढाव । चढाई ।

अधिक्रमण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक्रम' [को०] ।

अधिक्षिप्त—वि० [पुं०] १ फेंका हुआ । २ निंदित । तिरस्कृत । अपमानित । वुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ फेकना । २ तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३ तानाजनी । व्यग्य ।

अधिगंतव्य—वि० [स० अधिगन्तव्य] १ प्रापणीय। प्राप्तव्य। २ समझने योग्य। ज्ञेय [को०]।

अधिगंता—वि० [स० अधिगन्तृ] १ प्रापक। पानेवाला। २ समझनेवाला। अध्ययन करनेवाला [को०]।

अधिगणन—सज्ञा पुं० [स०] १ अधिक गिनना। २ किसी चीज का अधिक दाम लगाना।

अधिगत—वि० [स०] १ प्राप्त। पाया हुआ। २ जाना हुआ। ज्ञात। अवगत। समझा बूझा। पढा हुआ।

अधिगम—सज्ञा पु० [स०] १ प्राप्ति। पहुँच। ज्ञान। गति। २ जैन दर्शन के अनुसार व्याख्याने आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान ३. ऐश्वर्य। बडप्पन।

अधिगमनीय—वि० [स०] दे० 'अधिगतव्य' [को०]।

अधिगम्य—वि० [स०] दे० 'अधिगमनीय' [को०]।

अधिगव—वि० [स०] गाय मे अथवा गाय से प्राप्त [को०]।

अधिगुण[1]—वि० [स०] विशिष्ट गुण मे भूषित। सुयोग्य [को०]।

अधिगुण[2]—सज्ञा पु० [स०] विशिष्ट गुण [को०]।

अधिगुप्त—वि० [स०] रक्षित। रखा हुआ। छिपाया हुआ। दबा हुआ।

अधिचरण—सज्ञा पुं० [सं०] किसी के ऊपर चलना। अतिक्रमण करना [को०]।

अधिच्छ(पु)—वि० [स० अदृक्ष] दे० 'अदृश्य'। उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाडयतु है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६६।

अधिज—वि० [स०] १ जनमा हुआ। २ उच्च कुल मे उत्पन्न [को०]।

अधिजनन—सज्ञा पुं० [सं०] जन्म [को०]।

अधिजिह्व—सज्ञा पुं० [स०] १ एक से अधिक जीभवाला जीव। साँप आदि। २ जीभ मे होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०]।

अधिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक बीमारी जिसमे रक्त मिले हुए कफ के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है। यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है। २ गले का कौआ।

अधिजिह्विका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अधिजिह्वा' [को०]।

अधिज्य—वि० [सं०] जिसकी डोरी खिची हो। धनुप, जिसकी प्रत्यचा या जिसका चिल्ला चढ़ा हो।

अधिज्यकार्मुक—वि० [सं०] जिसके धनुप की प्रत्यचा चढी हुई हो [को०]।

अधिज्यधन्वा—वि० [सं०] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०]।

अधित्यका—सज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड के ऊपर की समतल भूमि। ऊँचा पथरीला मैदान। टेबुल लैंड। 'उपत्यका' का उलटा। उ०—(क) हरी भरी घासन सो अधित्यका छवि छाई।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३। (ख) इसकी कैसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का।—कानन०, पृ० १०५।

अधिदंडनेता—सज्ञा पु० [सं० अधिदण्डनेतृ] यमराज [को०]।

अधिदंत—सज्ञा पुं० [सं० अधिदन्त] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०]।

अधिदार्व—वि० [सं०] काष्ठ का। काठ मे बना [को०]।

अधिदिन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अधिक तिथि' [को०]।

अधिदीधित—वि० [सं०] अत्यधिक प्रभा या कातिवाला [को०]।

अधिदेव[1]—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अधिदेवी] इष्टदेव। कुलदेव।

अधिदेव[2]—वि० देव सबधी [को०]।

अधिदैव—वि० [स०] दैविक। दैवयोग से होनेवाला। आकस्मिक।

अधिदैवत[1]—सज्ञा पुं० [स०] वह प्रकरण या मत्र जिसमे अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओ के नामकीर्तन मे इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थों के गुण आदि की शिक्षा मिले। पदार्थविज्ञान सबधी विषय या प्रकरण।

अधिदैवत[2]—वि० देवता सबधी।

अधिदैविक—वि० [स०] १ अधिदेव सबद्ध। अधिदैविक। २ आध्यात्मिक [को०]।

अधिनाथ—सज्ञा पु० [स०] १ सबका मालिक। सबका स्वामी। २. सरदार। अफसर। प्रधान अधिकारी।

अधिनायक—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अधिनायिका] १ अफसर। सरदार मुखिया। २ मालिक। स्वामी। ३ किसी प्रदेश, देश, जाति या राष्ट्र का सर्वाधिकार सपन्न शासक। तानाशाह। डिक्टेटर।

अधिनायकतत्र—सज्ञा पुं० [स० अधिनायक+तन्त्र] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय। तानाशाही। डिक्टेटरशिप।

अधिनायकी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अधिनायक+हिं० ई (प्रत्य०)] अधिनायक का पद या कार्य [को०]।

अधिनायकी[2]—वि० अधिनायक सबधी [को०]।

अधिनियम—सज्ञा पु० [स० अधि+नियम] लोकसभा या सर्वोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून। ऐक्ट। जैसे, भारतीय शासक सबधी सन् १९३५ ई० का अधियम।—भारतीय०, पृ० १।

अधिनियमन—सज्ञा पुं० [स० अधि+नियमन] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०]।

अधिप—सज्ञा पु० [स०] मालिक। २ अफसर। सरदार। मुखिया। नायक। ३ राजा।

अधिपति[1]—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अधिपत्नी] १ सरदार। मालिक। अधीश। नायक। अफसर। स्वामी। मुखिया। हाकिम। २ राजा। ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है।

अधिपति[2]—वि० बौद्ध दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) वित्ताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति।

अधिपतिप्रत्यय—सज्ञा पुं० [स०] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या सयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होता है।

अधिपत्नी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वामिनी। २ शासिका [को०]।

अधिपाशुल—वि० [स०] धूलिधूसरित। धूल मे भरा [को०]

अधिपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] परमपुरुष। परमात्मा। ईश्वर [को०]।

अधिप्रज—वि० [सं०] बहुत अधिक सतान उत्पन्न करनेवाला [को०]।

अधिबल—सज्ञा पु० [स०] गर्भसधि के तेरह अगो मे से एक। वह धोखा जो किसी को वेश बदले हुए देखकर होता है (नाटयशास्त्र)।

अधिविन्ना—सज्ञा स्त्री० [स० अधिविन्ना] १ अध्यूढा । पहली पत्नी । प्रथम विवाह की स्त्री । वह स्त्री जिसके रहते उसका पति दूसरा विवाह कर ले ।

अधिभू—सज्ञा पु० [स०] स्वामी । प्रधान व्यक्ति [को०] ।

अधिभूत[1]—वि० [स०] भूत सबधी [को०] ।

अधिभूत[2]—सज्ञा पु० [स०] १ ब्रह्म । २ सृष्टि के समस्त पदार्थ [को०] ।

अधिभोजन—सज्ञा पुं० [स०] अति भोजन । बहुत अधिक खाना [को०] ।

अधिभौतिक Ⓤ—वि० हिं० दे० 'आधिभौतिक' । उ०—अधिभौतिक बाधा भई तिकर तोरे, वेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४५७ ।

अधिमथ—सज्ञा पु० [स० अधिमन्थ] अभिष्यद रोग का एक अश ।

अधिमथन[1]—सज्ञा पु० [स० अधिमन्थन] अग्नि उत्पन्न करने के लिये अरणी की लकडियो को परस्पर रगडना [को०] ।

अधिमथन[2]—वि० रगड से अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकडी) [को०]

अधिमथित—वि० [स० अधिमन्थित] अधिमथ रोग से पीडित (को०) ।

अधिमास—सज्ञा पु० [स०] आँख के सफेद भाग मे या मसूडो के पिछले भाग मे होने वाला रोग विशेष [को०] ।

अधिमासक—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग ।

विशेष—कफ के विकार से नीचे की दाढ मे विशेष पीडा और सूजन होकर मुँह से लार गिरती है ।

अधिमात्र—वि० [स०] परिणाम से अधिक । बहुत ज्यादा [को०] ।

अधिमास—सज्ञा पु० [स०] दे 'अधिक मास' ।

अधिमित्र—सज्ञा पु० [स०] १ परस्पर मित्र । २ ज्योतिष मे परस्पर मित्र ग्रहो के योग का नाम ।

अधिमुक्त—वि० [स०] विश्वासयुक्त [को०] ।

अधिमुक्तक—सज्ञा पुं० [स०] मधुमाधवी नाम का पौधा [को०] ।

अधिमुक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] विश्वास [को०] ।

अधिमुक्तिक—सज्ञा पु० [स०] बौद्धो के अनुसार महाकाल [को०] ।

अधिमुक्तिका—सज्ञा स्त्री० [स०] मुक्ता । सीप । मोती का सीप [को०] ।

अधिमुह्य—सज्ञा [स०] चौंतीस पूर्वजन्मो मे बुद्ध का एक नाम [को०] ।

अधियज्ञ[1]—वि० [स०] यज्ञ सबधी । यज्ञ से सबध रखनेवाला ।

अधियज्ञ[2]—सज्ञा पु० प्रधान यज्ञ [को०] ।

अधिया[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अर्धिका] १ आधा हिस्सा । गाँव मे आधी पट्टी की हिस्सेदारी । २ एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मालिक को और आधा उसके सबध म परिश्रम करने वाले को मिलता है । उ०—खेती करै अधिया, न बैन न बधिया ।—घाघ, पृ० ८६ ।

अधिया[2]—सज्ञा पु० [सं० अधिक] आधा हिस्सेदार । गाँव मे आधी पट्टी का मालिक । अधियार ।

अधियान Ⓤ—सज्ञा पु० [सं०] जपनी । गोमुखी । एक थैली जिसमे हाथ डालकर माला जपते हैं २ छोटी माला । सुमिरनी ।

अधियाना—क्रि० स० [हिं० आधा से नाम०] आधा करना । दो बराबर हिस्सो मे बाँटना ।

अधियार[1]—सज्ञा पु० [हिं० अधिया+आर] (प्रत्य०)] १ किसी जायदाद मे आधा हिस्सा । २ आधे का मालिक । वह जमींदार या आसामी जो किसी गाँव के हिस्से या जोत म आधे का हिस्सेदार हो । ३ वह जमींदार या असामी जिसका आधा सबध एक गाँव मे और आधा दूसरे गाव मे हो और जो अपना समय दोनो गाँवो के काम मे लगावे ।

अधियारिन Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार+इन (प्र०)] १ सौत । सपत्नी । २ बराबर का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री ।

अधियारी Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार+ई (प्र०)] किसी जायदाद मे आधी हिस्सेदारी । २ किसी जमीदार या असामी की जमीदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गाँवो मे होना ।

अधियोग—सज्ञा पुं० [स०] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला ग्रहो का एक योग [को०] ।

अधिरथ[1]—सज्ञा स० [स०] सारथी । जो रथ को हाँकनेवाला हो । गाडीवान ।

अधिरथ[2]—वि० १ रथारूढ । रथ पर चढा हुआ । २ कर्ण को पालनेवाले सूत का नाम ३ बडा रथ । उत्तम रथ ।

अधिराज—सज्ञा पु० [स०] राजा । बादशाह । महाराज । प्रधान राजा । चक्रवर्ती । सम्राट् ।

अधिराज्य—सज्ञा पु० [स०] साम्राज्य । चक्रवर्ती राज्य ।

अधिरात Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] आधीरात । उ०—पिउ पिउ अधिरात पुकारत ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १७० ।

अधिरूढ—वि० [स०] १ आरूढ । चढा हुआ । २ बढा हुआ [को०] ।

अधिरोपण—सज्ञा पु० [स०] ऊपर उठाने या चढाने का कार्य [को०] ।

अधिरोह—सज्ञा पुं० [स०] १ हाथी पर चढना । २ ऊपर चढना । ३ सीढी [को०] ।

अधिरोहण—सज्ञा पु० [सं०] चढना । सवार होना । ऊपर उठना ।

अधिरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [स०] सीढी । निसेनी । जीना ।

अधिरोही—वि० [सं०] अधिरोहण करनेवाला । ऊपर चढनेवाला [को०] ।

अधिलोक[1]—सज्ञा पु० [स०] ससार । ब्रह्माड ।

अधिलोक[2]—वि० ब्रह्माड सबधी ।

अधिवक्ता—सज्ञा पु० [स० अधिवक्तृ] १ न्यायालय मे किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला । वकील । २ वक्ता [को०] ।

अधिवचन—सज्ञा पु० [सं०] १ बढाकर कही हुई बात २ नाम । सज्ञा ३ पक्ष का समर्थन ।

अधिवसित—वि० [स० अधिवस+इत (प्रत्य०)] बसा हुआ । आबाद [को०] ।

अधिवाचन—सज्ञा पु० [स०] नामजदगी । निर्वाचन । चुनाव ।

अधिवास—सज्ञा पु० [स०] १ निवासस्थल । स्थान । रहने की जगह । २ महासुगध । खुशबू । ३ विवाह से पहले तेल हलदी चढाने की रीति । ४ उबटन । ५ अधिक ठहरना । अधिक देर तक रहना । ६ दूसरे के घर जाकर रहना ।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियो के ६ दोषो मे से एक ।

७ यज्ञारंभ के पूर्व देवता का आवाहन (को०)। ८ हठ (को०)। ९ बसावट (को०)। १० निवासी (को०)। ११. पड़ोसी (को०)। १२ ऊपर रखवाना (को०)।

अधिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०—अधिवासित] १ सुगंधित करने की क्रिया। २ देवता की मूर्ति का प्राणप्रतिष्ठा से पहले सुगंधित जल चंदन आदि में भिगो कर रात भर किसी स्थान में वस्त्र से ढाँककर और जल में डुबोकर रख छोड़ने की रीति।

अधिवासभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्ती। वासस्थान (को०)।

अधिवासित—वि० [सं०] १ सुगंधित। वासयुक्त। २ सुसज्जित (को०)

अधिवासी—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवासी। रहनेवाला। २. उत्तरप्रदेश का वह कृषक जिसका नाम सरकारी कागजपत्रों में सन् १३५९ फसली और १३५९ फसली में चढ़ गया हो।

अधिविन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति उसके रहते दूसरा विवाह कर ले (को०)।

अधिवीत—वि० [सं०] लपेटा हुआ। ढका हुआ (को०)।

अधिवेत्तव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके विद्यमान रहते दूसरा विवाह कर लेना उचित हो (को०)।

अधिवेत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] पहली स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला व्यक्ति।

अधिवेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला।

अधिवेद[2]—वि० [सं०] वेद में संपठित (को०)।

अधिवेदन—संज्ञा पुं० दे० 'अधिवेद[1]' (को०)।

अधिवेदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेत्तव्या' (को०)।

अधिवेदवेद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेदनीया' (को०)।

अधिवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] बैठक। सभा। सभा। जलसा।

अधिशय—संज्ञा पुं० [सं०] योग। जोड़। मिलाई गई या दी हुई वस्तु (को०)।

अधिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज पर लेटना। सोना (को०)।

अधिशयित—वि० [सं०] १ लेटा या सोया हुआ। २ लेटने या सोने के उपयोग में आनेवाला (को०)।

अधिशस्त—वि० [सं०] कुख्यातिप्राप्त। बदनाम (को०)।

अधिश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधार। पात्र। २ उबालना। गरम करना (को०)।

अधिश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग पर चढ़ाना। आग पर रखना २ चूल्हा। भाड़। अँगीठी। चूल्हा।

अधिश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी। निसेनी। निःश्रेणी। जीना।

अधिश्रित—वि० [सं०] १ आग पर रखा हुआ। २ आसादित (को०)।

अधिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोमरस निचोड़ने की क्रिया। २ सोमरस निचोड़ने का साधन (को०)।

अधिष्ठाता—संज्ञा पुं०[सं० अधिष्ठातृ] [स्त्री० अधिष्ठात्री] १ अध्यक्ष। मुखिया। प्रधान नियंता। उ०—इस भूमि का एकमात्र अधिष्ठाता देवता 'प्रेम' है।—रस०, पृ० ८०। २ किसी कार्य की देखभाल करनेवाला। वह जिसके ऊपर किसी कार्य का भार हो। ३. प्रकृति को जड़ से चेतन अवस्था में लानेवाला पुरुष। ईश्वर।

अधिष्ठात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिष्ठाता का स्त्रीलिंग रूप —उ०—प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी, कहीं विकृति का नाम नहीं।—पंचपदी, पृ० १०।

अधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रयस्थान। वह जो सहारा दे। २ नगर। शहर। जनपद। बस्ती। ३ स्थिति। रहाव। पड़ाव। मुकाम। ठिकाना। ४ आधार। सहारा। उ०—मनोवृत्तियों के अधिष्ठान नाम और रूप में परिवर्तन भी और धीरे धीरे वैसा ही उनका स्वभावधर्म और उनका जीवन भी बदलता है।—रस पृ० ६१। ५ वह वस्तु जिसमें भ्रम का आरोप हो।

विशेष—जैसे रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत। यहाँ रज्जु और शुक्ति दोनों अधिष्ठान हैं क्योंकि इन्हीं में सर्प और रजत का भ्रम होता है।

६ सांख्य में भोक्ता और भोग का संघात।

विशेष—जैसे, आत्मा का शरीर के साथ और इंद्रियों का विषय के साथ।

७ अधिकार। शासन। राजसत्ता। ८ वह जिसपर जमा या पाया आदि बनाया जाय (वास्तु)।

अधिष्ठानदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह मृत्यु शरीर जिसमें कर्म के उपरांत पितृलोक में आत्मा का निवास रहता है।

अधिष्ठानशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिष्ठानदेह'।

अधिष्ठित—वि० [सं०] १ ठहरा हुआ। बसा हुआ। स्थापित। २. नियोजित। नियुक्त।

अधिस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च श्रेणी की स्त्री (को०)।

अधीकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकार' [वि०]।

अधीक्षक—संज्ञा पुं० [सं० अधि+ईक्षक] अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी (को०)।

अधीत—वि० पुं० [सं०] पढ़ा हुआ। सीखा हुआ। उ०—प्रकृति प्रत्यय पदम है पुनि विभक्ति। विधि धरा। स्वरूप पुनि, चतुर्थ प्रयोजन।—भूषण ग्रं०, भा १, पृ० ४८।

अधीतविद्य—वि० [सं०] जिसने वेदों का अध्ययन कर लिया हो या जिसका अध्ययन समाप्त हो गया हो (को०)।

अधीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्ययन। २ स्मृति। ३ पठन (को०)।

अधीती—वि० [सं० अधीतिन्] जिसने वेदों आदि का अध्ययन किया हो (को०)।

अधीन[1]—वि० [सं०] १ आश्रित। सहारे। वशीभूत। पराधीन। दबैल। वश का। ताबे का। उ०—दास तुलसी, सहज सुख सपने नहीं अधीन कहे जग (सो) को।—सं० दरिया, पृ० २५६। २ विनम्र। नम्र। दीन। उ०—किए मोर गुन साँच को को अवगुन न बिचार। स्वामी सुत अपराध जग जननी जनक अधीन भयो है, सिसु सहित उपचार।—सूर०, १। ८७।

अधीन[2]—संज्ञा पुं० स्वामी। मालिक।

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवशता। पराधीनता। गुलामी। २ नम्रता। दीनता। आजिजी। मातहती।

अधीनता(ख)—वि० प्र० [सं० अधीन से नाम०] अधीन होना। वशवर्ती होना। उ०—यह प्रीति करन दुख हरन सुंदर स्याम कदंब सिरौनी री। यह करना को बिरद बंधु जेहि अनिकर दीनता हरी।—सूर (शब्द०)।

अधीनस्थ—वि [सं० अधीन+स्थ] किसी के अधीन रहनेवाला (को०)

अधीमथ—संज्ञा पु० [स० **अधीमन्थ**] दे० 'अधिमथ' [को०]।

अधीयान[1]—संज्ञा पु० [स०] १ विद्यार्थी। अध्ययन करनेवाला व्यक्ति। २ विद्यार्थी या अध्यापक रूप मे वेदो का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अधीयान[2]—वि० पढनेवाला [को०]।

अधीर—वि० पु० [सं०] १ धैर्यरहित। घबराया हुआ। उद्विग्न। व्यग्र। बेचैन। व्याकुल। विह्वल। २ चचल। अस्थिर। बेसब्र। उतावला। तेज। आतुर। ३ असतोषी।

यौ०—अधीराक्षी। अधीर विप्रेक्षित।

अधीरा[1]—वि० स्त्री० [स०] जो धीर न धरे।

अधीरा[2]—संज्ञा स्त्री० १ मध्या और प्रौढा नायिकाओ के तीन भेदो मे से एक। वह नायिका जो नायक मे नारीविनाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे। २ विद्युत्। बिजली।

अधीवास—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय। लबादा [को०]।

अधीश—संज्ञा पु० [स०] १ स्वामी। मालिक। सरदार। २ राजा।

अधीश्वर—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० **अधीश्वरी**] १ मालिक। स्वामी। पति। अध्यक्ष। २ अधिपति। भूपति। राजा।

अधीष्ट[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य मे लगाना। नियोग।

अधीष्ट[2]—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित। आदर के साथ बुलाकर किसी काम मे लगाया हुआ।

अधीस⑤—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अधीश'। उ०—परम अधीस बस भूमि थल देखिये।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १९९।

अधीसारक—संज्ञा पु० [स०] वेश्याओ के पास बार बार जानेवाला व्यक्ति। चद्रगुप्त के समय मे इन्हे कठोर दड दिया जाता था।

अधुना—क्रि० वि० [सं०] इस समय। सप्रति। आजकल। अब। इन दिनो।

अधुनातन—वि० [स०] सामयिक। वर्तमान समय का। अब का। हाल का। 'सनातन' का उलटा।

अधुर—वि० [स०] भाररहित। २ चिंतामुक्त [को०]।

अधूत—वि० [स०] १ अकपित। २ निर्भय। निडर। ढीठ। उचक्का। उ०—शखचूड धनपति का दूता। लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०)।

अधूमक[1]—वि० [सं०] धूमरहित [को०]।

अधूमक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जलती हुई आग जिसमे धुआँ न हो [को०]।

अधूरा—वि० पु० [स० **अर्ध**, हिं० **अध+पूरा या ऊरा** (प्रत्य०)] [स्त्री० **अधूरी**] अपूर्ण। जो पूरा न हो। अधा। असमाप्त अधकचरा।

मुहा०—**अधूरा जाना**=असमय गर्भपात होना। कच्चा बच्चा होना। जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०)।

अधृत[1]—वि० [स०] १ धारण न किया हुआ। २ अनियत्रित [को०]।

अधृत[2]—संज्ञा पु० [पु०] विष्णु के सहस्र नामो मे से एक [को०]।

अधृति[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १ धृति की विपरीतता। अधीरता। उद्वेग। दृढ़ता का अभाव। घबराहट। २. आतुरता। असयम। ४ दुःख।

अधृति[2]—वि० [स०] अस्थिर [को०]।

अधृष्ट—वि० [स०] १ जो ढीठ न हो। २ विनम्र। लज्जाशील। ३ अजेय। ४ क्षतिरहित [को०]।

अधृष्य—वि० [स०] १ अजेय। २ सलज्ज। गर्वयुक्त [को०]।

अधेगा†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अधाँग'।

अधेड—वि० [स० **अर्ध**, हिं० **अध+ऐड** (प्रत्य०)] वि० आधी उम्र का। उतरती अवस्था का। ढलती जवानी का। बुढापे और जवानी के बीच का।

अधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध न देनेवाली गाय। ठाँठ गाय [को०]।

अधेला—संज्ञा पु० [हिं० **आधा+एला** (प्रत्य०)] आधा पैसा। एक छोटा ताँबे का सिक्का जो सन् १९५९ तक चलता था। जो पैसे का आधा होता है।

अधेलिका†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँधियार'।

अधेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आधा+एली** (प्र०)] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रुपए के बराबर था और सन् १९५९ तक चलता था।

अधैर्य[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ धैर्य का अभाव। घबडाहट। व्याकुलता। उद्विग्नता। चचलता। उतावलापन।

अधैर्य[2]—वि० १ धैर्यरहित। व्याकुल। उद्विग्न। चचल। २ उतावला। आतुर।

अधैर्यवान—वि० [स० **अधैर्यवान्**] १ धैर्यरहित। व्यग्र। उद्विग्न। घबडानेवाला। २ आतुर। उतावला।

अधोशुक—संज्ञा पुं० [स० **अधस्=अंशुक**] १ नीचे पहनने का वस्त्र। जैसे पायजामा, धोती इत्यादि। २ अस्तर।

अधो—अव्य० [स० **अधस्** का समासरूप] दे० 'अध'। जैसे, अधोमुख अधोगति आदि मे 'अधो'।

अधोक्षज—संज्ञा पु० [स०] विष्णु का एक नाम। कृष्ण का एक नाम।

अधोगति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पतन। गिराव। उतार। उ०—मूतन ही की जहाँ अधोगति गाढया।—रामच०, पृ० ८। २ अवनति। दुर्गति। दुर्दशा।

अधोगमन—संज्ञा पु० [सं०] १ नीचे जाना। २ अवनति। पतन। दुर्दशा।

अधोगामी—वि० [स० **अधोगामिन्**] [स्त्री० **अधोगामिनी**] १ नीचे जानेवाला। २ अवनति की ओर जानेवाला। बुरी दशा को पहुँचनेवाला।

अधोघटा—संज्ञा स्त्री० [स० **अधोवण्टा**] बिवडा। अपामार्ग।

अधोछज⑤—संज्ञा पु० [सं० **अधोक्षज**] दे० 'अधोक्षज'। उ०—इद्री दृष्टि विकार तें रहित अधोछज जोति।—नद० ग्र० पृ० १७८।

अधोजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [स०] गले का कौआ [को०]।

अधोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—बाजत ताल दग अधोटी बिच मुरली धुनि थोरी।—छी०, पृ० २६।

अधोतर—संज्ञा पु० [देश०] एक देशी कपडा जो गर्जी गाढ़े से भी मोटा होता है। उ०—सिरी साफ बाफना अधोतर मेख कहिये।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अधोदिशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण दिशा। २ अधोबिंदु [को०]।

अधोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीची दृष्टि। केवल नीचे की ओर देखना। उ०—सबै अंग लै अंग ही में दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रु धारा बहायो।—रामच०, पृ० ६६।

अधोदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का स्थान। नीचे की जगह। २ शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा।

अधोद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अधोनिलय—संज्ञा पु० [सं०] नरक [को०]।

अधोभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल। नीचे का लोक।

अधोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के नीचे की जमीन। नीची भूमि। [को०]।

अधोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० अधोमण्डल] भूमि से साढे सात मील तक का ऊँचा वायुमंडल [को०]।

अधोमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गुह्यद्वार [को०]।

अधोमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का रास्ता। सुरंग का मार्ग। २ गुदा।

अधोमुख[1]—वि० [सं०] नीचे मुख किए हुए। मुँह लटकाए हुए। २ औंधा। उलटा।

अधोमुख[2]—क्रि० वि० औंधा। उलटा। मुँह के बल। जैसे—वह अधोमुख गिरा (शब्द०)। उ०—गरभ बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो विस्राम।—सूर०, १।४७।

अधोमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिह्वा [को०]।

अधोमूल—वि० [सं०] जिसकी जड नीचे हो [को०]।

अधोयंत्र—संज्ञा पु० [सं० अधोयन्त्र] भभका [को०]।

अधोरव—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्ध्व'। उ०—दिशि पूरब पच्छिम दाहिने बाएँ अधोरव मकन मेरी फिरै।—मेवक (शब्द०)।

अधोर्ध्व—क्रि० वि० [सं० अध+ऊर्ध्व] नीचे ऊपर। तले ऊपर।

अधोलंब—संज्ञा पुं० [सं० अधोलम्ब] १ वह खडी रेखा जो किसी दूसरी सीधी आडी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व के दोनो कोण समकोण हो। लंब। २ साहुल। सूत में बँधा हुआ लोहे या पत्थर का वह गोला या घंटे के आकार का लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के लिये काम में लाते हैं।

विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे से नीचे की ओर लटकाते हैं और इस सूत और दीवाल के अंतर का मिलान करते हैं। यह यंत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है।

अधोलिखित—वि० [सं० अधस्+लिखित] नीचे लिखा हुआ। उ०—अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि में पूर्ण नहीं ठहरते।—बीसवीं० रामा०, पृ० ४५।

अधोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे का लोक। पाताल।

अधोवदन—वि० [सं०] दे० 'अधोमुख' [को०]।

अधोवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग में पहना जानेवाला वस्त्र [को०]।

अधोवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधोगति'। उ०—यह दो सूत्र हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं और इस अधोवस्था में भी हम उन्हें अपनाए हुए हैं।—प्रेम० और गोर्की पृ० १५१।

अधोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अधोवायु के वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग।

विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना, अफरा चढना, गुदा, मूत्राशय, लिंगेंद्रिय में पीडा तथा बाँदी से पेट में अन्य रोगों का होना।

अधोवायु—संज्ञा पुं० [सं०] अपना वायु। गुदा की वायु। पाद। गोज। नीचे की हवा।

अधोबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० अधोबिन्दु] पैर के ठीक नीचे माना जानेवाला बिंदु [को०]।

अधोहीं—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+ओही (प्रत्य०)] जानवरों की खाल का वह आधा भाग जो जानवर की लाश ढोनेवालों को मिलता है [को०]।

अधौडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अध+औडी (प्र०)] १ आधा चमडा। चमडे या पूरे चमडे का सिझाया हुआ आधा टुकडा।

विशेष—सिझाने के लिये चमडे के दो टुकडे करने की आवश्यकता होती है इसी से एक एक टुकडा अधौडी कहलाता है।

२ मोटा चमडा। 'नरी' का उलटा जो प्रायः बकरी आदि के पतले चमडे का होता है।

यौ०—अधौडी अस्तर=(१) जूते के तले के ऊपर का मोटा चमडा जिसपर नरी न हो। (२ वह जूता जिसपर केवल अधौडी का मोटा स्तर हो। ऊपर से नरी का खाल चमडा न हो। ३ आमाशय। पक्वाशय। उ०—नरी अधौडी भावरी, बैंडा पेट फुलाइ। दादू सूकर स्वान ज्यों जो आवै सो खाइ।—दादू०, पृ० २६।

मुहा०—अधौडी तनना=अघाना। खूब पेट भर जाना। जैसे—आज तो निमंत्रण था खूब अधौडी तनी होगी।

अधौडी तानना=खूब पेट भरकर खाना।

अधौन—वि० [हिं० आधा+ऊन] आधा भाग या अंश [को०]।

अधौरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बडा वृक्ष। बकरी। धौरा। शेन।

विशेष—हिमालय की तराई में जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बर्मा के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी तथा खाकी रंग की होती है। छाल और पत्तियाँ चमडा सिझाने के काम आती हैं। लकडी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकडी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोंद निकलता है।

अधौरी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधौरी'। उ०—बाजत ताल मृदंग अधौरी, कूजत बेनु रसाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १९६।

अध्मान—संज्ञा पु० [सं०] रोगविशेष। पेट का अफरा।

विशेष—इस रोग में पेट अधिक फूल जाता है दर्द होती है, अधोवायु का छूटना बंद हो जाता है।

अध्यंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यण्डा] अजशृंगी और भूमि आमलकी नामक पौधे (को०)।

अध्यांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यण्डा] दे० 'अध्यंडा' [को०]।

अध्यक्ष[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ स्वामी। मालिक। २ अफसर। नायक। सरदार। प्रधान। मुखिया। ३ मुख्य अधिकारी। अधिष्ठाता। ४ सफेद मदार। श्वेतार्क। ५ क्षीरिका। खिरनी।

अध्यक्ष[2]—वि० १ गोचर। दृश्य। २ निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अध्यक्षर[1]—क्रि० वि० [सं०] अक्षरशः। अक्षर अक्षर। जैसे—यह बात अध्यक्षर सत्य है (शब्द०)।

अध्यक्षर[2]—संज्ञा पु० [सं०] ओम् मंत्र या शब्द [को०]।

अध्यक्षीय—वि० [सं०] अध्यक्ष से संबंधित। अध्यक्ष का [को०]।

अध्यग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्त्रीधन। यौतुक या दायज।

विशेष—यह अग्नि को साक्षी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालों की ओर से दिया जाता है।

अध्यच्छ(पु)—संज्ञा पु० [सं० अध्यक्ष] दे० 'अध्यक्ष'।

अध्ययन—संज्ञा पु० [सं०] १ पठन पाठन। पढ़ाई। २ ब्राह्मणों के षट्कर्मों में से एक कर्म।

अध्ययनीय—वि० [सं०] पढ़ने के योग्य। पठनीय [को०]।

अध्यर्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो सबको धारण करनेवाली और बढ़ानेवाली है और सारे संसार में व्याप्त है।

अध्यर्ध[2]—वि० [सं०] एक और उसका आधा। डेढ़।

अध्यर्बुद—संज्ञा पु० [सं०] रोगविशेष।

विशेष—जिस स्थान पर एक बार अर्बुद रोग हुआ हो उसी स्थान पर यदि फिर अर्बुद हो तो उसे अध्यर्बुद कहते हैं।

अध्यवसान—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रयत्न। २ दृढ़ता। ३ अध्यवसाय। ४ प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०]।

अध्यवसाय—संज्ञा पु० [सं०] १ लगातार उद्योग। अविश्रांत परिश्रम। निःसीम उद्यम। दृढ़ता पूर्वक किसी काम में लगा रहना। २ उत्साह। ३ निश्चय। प्रतीति।

अध्यवसायित—वि० [सं०] जिसके लिये प्रयास किया गया हो [को०]।

अध्यवसायी—वि० [सं० अध्यवसायिन्] १ लगातार उद्योग करनेवाला। परिश्रमी। उद्योगी। उद्यमी। २ उत्साही।

अध्यवसायित—जिसने संकल्पपूर्वक किसी कार्य के लिये प्रयत्न किया हो [को०]।

अध्यवसिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध्यवसाय' [को०]।

अध्यशन—संज्ञा पु० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना। अजीर्ण। अनपच।

अध्यस्त—वि० [सं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो।

विशेष—जैसे—रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत और स्थाणु में पुरुष का भ्रम। यहाँ सर्प, रजत और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है।

अध्यस्थ—संज्ञा पु० [सं०] अस्थि के ऊपर का भाग [को०]।

अध्यस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि। हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०]।

अध्याइ(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अध्याय'। उ०—अब सुनि लै द्वितीय अध्याइ। जामैं ब्रह्मादिक सब आइ।—नंद० ग्र०, पृ० २२३।

अध्यातम(पु)—संज्ञा पु० दे० 'अध्यात्म'। उ०—अरु अध्यातम दीप जु कोई। बुद्ध्यादिक परकासक सोई।—नंद० ग्र०, २२६।

अध्यात्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मविचार। ज्ञान तत्व। आत्मज्ञान। २ परमात्मा। ३ आत्मा।

अध्यात्म[2]—वि० आत्मा से संबद्ध [को०]।

अध्यात्मज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा तथा परमात्मा से संबंध रखनेवाला ज्ञान [को०]।

अध्यात्मदर्शी—वि० [सं० अध्यात्मदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०]।

अध्यात्मयोग—संज्ञा पु० [सं०] मन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर केंद्रित करना [को०]

अध्यात्मरति—वि० [सं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०]।

अध्यात्मा—संज्ञा पु० [सं० अध्यात्मन्] परमात्मा। ईश्वर।

अध्यात्मिक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आध्यात्मिक'।

अध्यापक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक। गुरु। पढ़ानेवाला। उस्ताद।

अध्यापकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यापक + हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़ाई। पढ़ाने का काम। मुदर्रिसी।

अध्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षण। पढ़ाने का कार्य।

अध्यापयिता—संज्ञा पु० [सं० अध्यापयितृ] शिक्षक। अध्यापक [को०]।

अध्यापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढ़ानेवाली। शिक्षिका [को०]।

अध्याय—संज्ञा पु० [सं०] १ ग्रंथविभाग। २ पाठ। सर्ग। परिच्छेद।

अध्यायी[1]—वि० [सं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०]।

अध्यायी[2]—संज्ञा पु० विद्यार्थी [को०]।

अध्यारूढ—वि० [सं० अध्यारूढ] १ आरूढ़। चढ़ा हुआ। सवार। २ आक्रांत। ३ अत्यधिक। ४ किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ। ५ नीचे या निम्नतर [को०]।

अध्यारोप—संज्ञा पु० [सं०] १ एक के व्यापार का दूसरे में लगाना। अपवाद। दोष। अध्यास। २ झूठी कल्पना। वेदांत के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का अभाव या भ्रम, जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानंद अनंत अद्वितीय है, अज्ञानादि सकल जड़ समूह का आरोपण। ३ सांख्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना। जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इंद्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उसको उनका कर्ता मानना।

अध्यारोपण—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अध्यारोप' [को०]।

अध्यारोपित—वि० [सं०] अध्यारोपण किया हुआ। भ्रमवश आरोपित [को०]।

अध्यावाहनिक—संज्ञा पु० [सं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

अध्याम—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्यारोप। भ्रांत ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। कल्पना। और वस्तु में और वस्तु की धारणा।

अध्यासन—संज्ञा पु० [सं०] १ उपवेशन। बैठना। २ आरोपण। ३ स्थान।

अध्याहरण—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अध्याहार' [को०]।

अध्याहार—संज्ञा पु० [सं०] १ तर्क वितर्क। ऊहापोह। विचिकित्सा। विचार। वहस। २ वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें और कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रसंगानुकूल आक्षेप अथवा अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३। ३ अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।

अध्याहृत—वि० [सं०] अध्याहार किया हुआ [को०]।

अध्युषित—वि० [सं०] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अध्युष्ट—वि० पु० [सं०] १ बसा हुआ। आबाद। २ साढ़े तीन। तीन और आधा (को०)। ३ साढ़े तीन वलय की सर्प की कुंडली [को०]।

अध्युष्ट्र—संज्ञा पु० [सं०] ऊँटगाड़ी [को०]।

अध्यूढ[1]—वि० [सं० अध्यूढ] १ उच्च। उन्नत। २ समृद्ध। ३ अत्यधिक [को०]।

अध्यूढ[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।

अध्यूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यूढा] प्रथम विवाहिता स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।

अध्यूहन—संज्ञा पु० [सं०] परत डालना (राख आदि की) [को०]।

अध्येन—संज्ञा पु० [सं० अध्ययन] दे० 'अध्ययन'। उ०—दस पंच दिन अध्येन कीन्ह। दस च्यारि मार मंत्र सीख लीन।—पृ० रा०, १।७३१।

अध्येतव्य—वि० पु० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येता—संज्ञा पु० [सं० अध्येतृ] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।

अध्येय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येषण—संज्ञा पु० [सं०] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत्त करना [को०]।

अध्येषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना। माँगना। मंगनपन। निवेदन।

अध्रि—वि० [सं०] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में न किया जा सके [को०]।

अध्रियमाण—वि० [सं०] १ जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।

अध्रिगामणी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कटार। कटारी।

अध्रुव[1]—वि० पु० [सं०] १ चल। चंचल। चलायमान। डावाँडोल। अस्थिर। २ अनित्य। अनिश्चित। बेठौर ठिकाने का।

अध्रुव[2]—संज्ञा पु० अनिश्चय [को०]।

अध्रुव[3]—संज्ञा पु० [सं०] गले का रोगविशेष [को०]।

अध्व—संज्ञा पुं० [सं० अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पथ। २ यात्रा। ३ दूरी। ४ काल। ५ साधन। ६ वेद की शाखा। ७ आकाशगंगा। ८ स्थान। ९ आकाश। १० वायु। [को०]।

अध्वग—संज्ञा पु० [सं०] १ बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर। २ ऊँट। ३ खच्चर। ४ सूर्य। [को०]।

अध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

अध्वगामी—वि० [सं० अध्वगामिन्] यात्रा करनेवाला [को०]।

अध्वनिवेश—संज्ञा पु० [सं०] पड़ाव।

अध्वनीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यात्री। मुसाफिर [को०]।

अध्वनीन[2]—वि० यात्रा करने योग्य। २ यात्रा में तेज चलनेवाला [को०]।

अध्वन्य—संज्ञा पु० वि० [सं०] दे० 'अध्वनीन'।

अध्वपति—संज्ञा पु० [सं०] १ सूर्य। २ मार्ग का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अध्वर[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ यज्ञ। सोमयज्ञ। २ आकाश। ३ वायु [को०]।

अध्वर[2]—वि० १ मरता। २ सावधान। ३ अबाध। ४ पुष्ट [को०]।

अध्वरकल्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम्येष्टि यज्ञ [को०]।

अध्वरकांड—संज्ञा पुं० [सं० अध्वरकाण्ड] शतपथ ब्राह्मण का एक भाग [को०]।

अध्वरग—वि० [सं०] यज्ञ के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अध्वरथ—संज्ञा पु० [सं०] १ यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २ यात्रा में कुशल दूत [को०]।

अध्वर्यु—संज्ञा पुं० [सं०] चार ऋत्विजों या यज्ञ करानेवालों में से एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। उ०—करोड़ों बलोन्मत्त नृशंसों के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु थे।—कंकाल, पृ० १५९।

अध्वर्युवेद—संज्ञा पु० [सं०] यजुर्वेद [को०]।

अध्वशल्य—संज्ञा पु० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

अध्वशोषि—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न यक्ष्मा रोग।

अध्वात[1]—संज्ञा पु० [सं० अध्वान्त] १ हलका अँधेरा। २. छाया [को०]।

अध्वात[2]—संज्ञा पुं० [सं० अध्व+अन्त] यात्रा या मार्ग का अंत [को०]।

अध्वाति—संज्ञा पु० [सं०] १ पथिक। यात्री। २ कुशल व्यक्ति [को०]।

अध्वाधिप—संज्ञा पु० [सं०] मार्ग का निरीक्षक [को०]।

अध्वायन—संज्ञा पु० [सं०] यात्रा। सफर [को०]।

अध्वेश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अध्वाधिप' [को०]।

अन्—अव्य० [सं०] संस्कृत व्याकरण में यह निषेधार्थक 'नञ्' अव्यय का स्थानादेश है और अभाव या निषेध सूचित करने के लिये स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है। जैसे—अनुकूल, अनंत, अनधिकार, अनीश्वर आदि। हिंदी में यह अव्यय या उपसर्ग संस्कृत होता है और व्यंजन तथा स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी, अनअहिवात, अनऋतु आदि।

अनंकुश—वि० [सं० अनङ्कुश] १ अंकुश या नियंत्रण में न रहने। अनियंत्रित। जो वश में न हो। २ अंकुश न माननेवाला। छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनग[1]—वि० [स० अनङ्ग] १. विना शरीर का। देहरहित। उ०—(क) अगी अनग कि मूढ अमूढ उदास अमीत कि मीत सही को। सो अथवै कवहँ जनि केशव जाके उदोत उदै सबही को।—केशव (शब्द०)। (ख) मुझको प्यारी के पास पहुँचने के लिये अनग, अर्थात् शरीरविहीन क्यो नही बना देते।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२।

अनग[2]—सज्ञा पु० १ कामदेव। उ०—आगे सोहै साँवरो कुँवर गोरो पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनग है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६५। २, आकाश (को०)। ३ मन (को०)। ४ वह जो अग न हो (को०)।

अनग अरातिⓊ—सज्ञा पुं० [स० अनङ्ग+अराति] अनग का शत्रु। महादेव। शिव। उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। मानस—१।१०८।

अनगक—सज्ञा पु० [स० अनङ्गक] मन (को०)।

अनगक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गक्रीडा] १ रति। २ छद शास्त्र मे मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदो मे से एक जिसके पूर्व दल मे १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल मे ३२ लघु वर्ण हो। जैसे—आठौ जामा शभू गाओ। भौ फदा ते मुक्ति पाओ। सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर। भज नर हर हर हर हर हर हर (को०)।

अनगद—वि० [स० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक (को०)।

अनगनाⓊ—क्रि० अ० [स० अनङ्ग] विदेह होना। शरीर की सुधि छोडना। बेसुध होना। सुध बुध भुलाना। उ०—गागरि नागरि जल भरि घर लीन्हे आवै। भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि पुनि हरिहिं लगावै। जाको निरखि अनग अनगत ताहि अनग बढावै।—सूर (शब्द०)।

अनगरग—सज्ञा पु० [स० अनङ्गरङ्ग] कामशास्त्र सबधी ग्रथ जिसमे मैथुन सबधी आसनो का विवरण है (को०)।

अनगलेख—सज्ञा पु० [स० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र (को०)।

अनगलेखा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र (को०)।

अनगवती—वि० स्त्री० [स० अनङ्गवती] कामिनी (को०)।

अनगशत्रु—सज्ञा पु० [स० अनङ्गशत्रु] शिव (को०)।

अनगशेखर—सज्ञा पु० [स० अनङ्गशेखर] दडक नामक वर्णवृत्त का एक भेद जिसमे ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु का कोई क्रम नही होता। जैसे—गरजि सिंहनाद सो निनाद मेघनाद वीर कुद्ध मान सो कृसानु बाण छडिय (शब्द०)।

अनगारि—सज्ञा पु० [स० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव।

अनगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गिनी] अनग की स्त्री। रति। उ०—लीला रसरगिनि श्रीराधा, अनुराग अनगिनि श्रीराधा। —घनानद,—पृ० २४५।

अनगी[1]—वि० [स० अनङ्गिन्] [स्त्री० अनगिनी] १ अगरहित। विना देह का। अशरीर। २ अगविहीन। लूला लँगडा। अपाहिज। उ०—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद परतगी, सूरदास यह विरद स्रवन सुनि गरजन अधम अनगी—सूर०, १।२१।

अनगी[2]—सज्ञा पु० १ परमेश्वर। २ कामदेव।

अनंगुरि—वि० [स० अनङ्गुरि] विना उँगलियो का। उँगलियो से हीन या रहित (को०)।

अनगुलि—वि० [स० अनङ्गुलि] अगुलिहीन (को०)।

अनजन—वि० [स० अनञ्जन] अजनरहित। अजनशून्य (को०)।

अनझⓊ—वि० [देश०] अनधीन। जो अधीन न हो। निर्बाध। उ०—चहुआन जोग छत्री अनझ, अन्यन कोस सितए मझ। —पृ० रा०, ५५।४२।

अनछित्तⓊ—वि० [स० अन्+छित्त] जो छेदा हुआ या कटा हुआ न हो। अच्छिन्न। उ०—अनच्छित्त अग वर अत्तताई, भई जीत चहुआन प्रथिराज राई।—पृ० रा०, २५।७७३।

अनत[1]—वि० [स० अनन्त] १ जिसका अत न हो। जिसका पार न हो। असीम। बेहद। अपार। २ बहुत अधिक। असख्य। अनेक। ३ अविनाशी। नित्य।

अनत[2]—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शेषनाग। ३ लक्ष्मण। ४ बलराम। ५ आकाश। ६ जैनो के एक तीर्थंकर का नाम। ७ अभ्रक। ८ एक गहना जो बाहु मे पहना जाता है। ९ एक सूत का गडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमे चौदह गाठ देकर बनाया जाता है। इसे भादो सुदी चतुर्दशी या अनतव्रत के दिन पूजित कर बाहु मे पहनते हैं। १० अननचतुर्दशी का व्रत। ११ रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम। १२ विष्णु का शख (को०)। १३ कृष्ण (को०)। १४ शिव (को०)। १५ रुद्र (को०)। १६ सीमाहीनता। अतहीनता (को०)। १७ नित्यत्व (को०)। १८ मोक्ष (को०)। १९ वासुकि (को०)। २० बादल (को०)। २१ सिंदुवार (को०)। २२ अभ्रक। अबरक (को०)। २३ श्रवण नक्षत्र (को०)। २४ ब्रह्म (को०)।

अनतकर—वि० [स० अनन्तकर] बढाकर सीमाहीन कर देनेवाला। अधिक कटनेवाला (को०)।

अनतकाय—सज्ञा पु० [स० अनन्तकाय] जैनियो के अनुसार उन वनस्पतियो का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है।

विशेष—इसके अतर्गत वे पेड या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तो, औ फूलो की नसें इतनी सूक्ष्म हो कि देख न पडें, जिनकी सधिया गुप्त हो, जो तोडने से एकबारगी टूट जायँ, जो जड से काटने पर फिर हरे हो जायँ, जिनके पत्ते मोटे, दलदार और चिकने हो अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हो। ये सख्या मे बत्तीस हैं।

अनतग—वि० [स० अनन्तग] नित्य या अतहीन जानेवाला। नित्य गतिशील रहनेवाला (को०)।

अनतगुण—वि० [स० अनन्तगुण] बहुत अधिक गुणो से युक्त (को०)।

अनतचतुर्दशी—सज्ञा स्त्री० [स० अनन्तचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस दिन हिंदू अनोना व्रत करते हैं और चौदह तागो के अनतसूत्र को, जिसमे चौदह गाँठे दी होती हैं, पूजन कर बाँधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं। यह व्रत मध्याह्न पर्यंत का है।

अनतचरित्र—सज्ञा पुं० [स० अनन्तचरित्र] एक बोधिसत्व (को०)।

अनतजित्—सज्ञा पु० [स० अनन्तजित्] १ वासुदेव। २ वर्तमान अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थकर (को०)।

अनंततटंक—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तटङ्क] एक रागविशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

अनतता—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तता] असीमत्व। अमितत्व। अत्यंत अधिकता।

अनततान—वि० [सं० अनन्तवान्] असीम। अपार [को०]।

अनततीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ततीर्थकृत्] दे० 'अननजित्' [को०]।

अनततृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्ततृतीया] भाद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनतत्व—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तत्व] अनंतता [को०]।

अनतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदर्शन] जैन मत के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातों का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनतदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदृष्टि] इंद्र का एक नाम।

अनतदेव—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदेव] १ शेषनाग। २ शेषशय्या पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनतनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तनाथ] जैन लोगों के चौदहवें तीर्थंकर।

अनतपार—वि० [सं० अनन्तपार] जिसका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनतमति—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमति] एक बोधिसत्व [को०]।

अनतमायी—वि० [सं० अनन्तमायिन्] अनंत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनतमूल—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमूल] एक पौधा या बेल जो सारे भारतवर्ष में होती है और ओषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और किनारे पर नुकीले होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक तथा मदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, क्षय, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमें बहुत है। इसी से इसे हिंदी में सालसा या उशबा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनंता। गोपी। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। करांला। गोपवल्ली। सुगंधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहारिका। आस्फोता।

अनतर[1]—क्रि० वि० [सं० अनन्तर] १ पीछे। ठीक बाद। उपरांत। बाद। २ निरंतर। लगातार।

अनतर[2]—वि० १ अंतररहित। निकटस्थ। पड़ोसी। २ अखंडित। ३ अपने वर्ण में ठीक बादवाले वर्ण का (को०)।

यौ०—अनन्तरज। अनन्तरजात।

अनतर[3]—संज्ञा पुं० १ समीपता। निकटता। अंतर का अभाव। २. ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनतरज—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊँचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वैश्य अथवा माता वैश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्राणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनंतरजात—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरजात] दे० 'अनंतरज'।

अनंतरय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरय] अंतर का अभाव [को०]।

अनतराय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनतरित—वि० [सं० अनन्तरित] १ जिसमें बीच न पड़ा हो। निकटस्थ। २ अखंडित। अटूट।

अनतरिति—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तरिति] न त्यागना या अनजाना [को०]।

अनतरीय—वि० [सं० अनन्तरीत] क्रमानुक्रम में ठीक बादवाला [को०]।

अनतर्हित—वि० [सं० अनन्तर्हित] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। निकटस्थ। पास का। २ शृंखलाबद्ध। अखंडित। ३ जो छिपा न हो। प्रकट (को०)।

अनतवान्[1]—वि० [सं० अनन्तवान्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनंतवान्[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक [को०]।

विशेष—पृथ्वी, अंतरिक्ष, अनंत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनतविजय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तविजय] युधिष्ठिर के शंख का नाम।

अनतवीर्य[1]—वि० [सं० अनन्तवीर्य] अपार पौरुषवाला।

अनतवीर्य[2]—संज्ञा पुं० जैनों के तेइसवें तीर्थंकर का नाम।

अनता[1]—वि० स्त्री० [सं० अनन्ता] जिसका अंत या पारावार न हो।

अनता[2]—संज्ञा संज्ञा १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ करियारी का पौधा। ४ अनंतमूल। ५ दूब। ६ पीपर। ७ जवासा। ८ अरणीवृक्ष। ९ अनंतमूल।

अनतानुबधी—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तानुबन्धिन्] जैन मतानुसार वह दोष या दुःस्वभाव जो कभी न जाय, जैसे अनंतानुबंधी क्रोध,—लोभ,—माया, मान।

अनताभिधेय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ताभिधेय] वह जिसके नामों का अंत न हो। ईश्वर।

अनती—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का गहना जिसे वे बाएँ बाजू पर बाँधती हैं [को०]।

अनत्य[1]—वि० [सं० अनन्त्य] जिसका अंत या सीमा न हो [को०]।

अनत्य[2]—संज्ञा पुं० १. नित्यत्व। नित्यता। २ हिरण्यगर्भ का चरण [को०]।

अनद[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्द] १४ वर्णों का एक वृत्त जिसका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु।

अनद[2]Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनंद'। उ०—मुनि पुर भयउ अनद अति बधाव बजावहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२।

अनदना Ⓤ—क्रि० अ० [सं० आनन्द] आनंदित होना। उ०—पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनदी[2]Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'आनंदी'।

अनवर[1]—वि० [सं० अनम्बर] वस्त्रहीन। नग्न। नंगा (को०)।

अनवर[2]—संज्ञा पुं० एक जैन साधु संप्रदाय। दिगंबर [को०]।

अनभ[1]—वि० [सं० अन=नहीं + अम्भस्=जल] बिना पानी का।

अनभ²ⓤ—वि० [स० अन्=नहीं+अंह=पाप, विघ्न, बाधा] निर्विघ्न। बाधारहित। बे आँच। उ०—मोहन वाण हमार है, देखन मोहन शमु। मोहन वाण तुम्हार जो हमको करत अनभु।—सबल (शब्द०)।

अनभ—वि० [स०] १ जो पैत्रिक सपत्ति पाने का अधिकारी न हो। २ जिसका अशभाग या खड न हो (आकाश या ब्रह्म का विशेषण) [को०]।

अनशुमत्फला—सज्ञा स्त्री० [स०] केला। कदली [को०]।

अन¹ⓤ—क्रि० वि० [स० अन्] बिना। बगैर। उ०—हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छटि गयो एही छोर राधिका रमन को।—केशव (शब्द०)।

अन²ⓤ—वि० [स० अन्य=दूसरा] अन्य। और। दूसरा। उ०—अनजल सीचे रूख की छाया तें बरु घाम। तुलसी चातक बहुत है यह प्रवीन को काम।—तुलसी ग्र० पृ० १२८।

अन³ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अन्न] अनाज। अन्न। उ०—जैसे हैं गिरिराज ज् तैसो अन को कोट। मगन भये पूजा करैं, नर नारी बड छोट।—सूर०, १०।८४१।

यौ०—अनधन=अन्न और सपत्ति। उ०—कहत कबीर सुनहु रे सतहु अनधन कछु अँने न गयो।—कबीर ग्र०, पृ० ३१०।

अनअहिवातⓤ—सज्ञा पुं० [स० अन=नहीं+हिं० अहिवात] अहिवात का अभाव। वैधव्य। विधवापन। रँडापा। उ०—कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी। अनअहिवात सूच जनु भाबी।—मानस, २।२५।

अनइच्छितⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अनिच्छित'। उ०—राम भजत सोइ मुकुति गुसाई। अनइच्छित आवै बरिआई।—मानस, ७।११९।

अनइसⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] अनिष्ट। अनैस। उ०—आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा।—मानस। २।१६३।

अनइसाⓤ अनइसीⓤ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनैसा'।

अनऋतु—सज्ञा पुं० [स० अन्+ऋतु] १ विरुद्ध ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। बेमौसिम। अकाल। असमय। उ०—(क) चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत।—सूर(शब्द०)। (ख) सब तरु फरे राम हित लागी। ऋतु अनऋतुहि काल गति त्यागी।—तुलसी० (शब्द०)। २ ऋतु विपर्यय। ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकपⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकप'।

अनक¹—वि० [स०] दे० 'अणक' [को०]।

अनक²—सज्ञा पुं० दे० 'अणक'।

अनक³ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनक'।

अनकदुदुभ—सज्ञा पुं० [स० अनकदुन्दुभ] कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता का नाम [को०]।

अनकदुदुभिⓤ—सज्ञा पुं० [स० आनकदुन्दुभि] अनकदुदुभ के पुत्र वसुदेव।

अनकनाना—क्रि० स० [स० आकर्णन, प्रा० आकण्णण, हिं०अ कनना >(वर्णव्य०) अनकना] १ सुनना। २ चुपचाप सुनना। छिपकर सुनना।

अनकरीब—क्रि० वि० [अ० अनकरीब] करीब करीब। लगभग। प्राय।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [सं०] जो आकस्मिक, अचानक या अकारण न हो [को०]।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हिं० अन+कहनी] न कहने योग्य। उ०—(क) सबके चरित्र लिखने मे कुछ अनकहनी कहनी भी कह गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०३। (ख) यही बैठ कहती थी तुमने सब कहनी अनकहनी।—ठेठ०, पृ० २०।

अनकहा—वि० [हिं० अन+कहा] [स्त्री० अनकही] बिना कहा हुआ। अकथित। अनुक्त। उ०—सिर्फ अनकहा रहने से तो असत्य हो नही जाता।—सुखदा, पृ० १०७।

मुहा०—अनकही देना=अवाक् रहना। चुपचाप होना। उ०—समुझि परी पटमास बीतीने कहाँ हुती हो आयो। सूर अनकही दै गोपिनि सो स्रवन मूँदि उठि धायो।—सूर०, १०।८१९९।

अनका—सज्ञा पुं० [अ० अन्का] दे० 'उनका' [को०]।

अनकाढा—[हिं० अन+काढना] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहि मरै चहै अनकाढे।—जायसी (शब्द०)।

अनकायमार—वि० [स०] जो बिना इच्छा के न मरा हो। बिना इच्छा के न मरनेवाला [को०]।

अनकीय—वि० [स०] अगकीय [को०]।

अनकुस—सज्ञा पुं० [स० अङ्कुश अथवा हिं० अन+फा० खुश] बुरा। खराब। उ०—बँगले मे शीशे लगी खिडकियो के बाहर घनी जाली लगी देखकर कुछ अनकुस मालूम होता था।—किन्नर०, पृ० ७।

अनक्ष—वि० [स०] १ बिना आँख का। अक्षा। २ जहाँ बहेडा या रुद्राक्ष का वृक्ष न हो [को०]।

अनक्षर¹—वि० [स०] १ अक्षरज्ञान से रहित। निरक्षर। २ न जाननेवाला। अज्ञ। ३ मूक। गूँगा। ४ न कहने योग्य [को०]।

अनक्षर²—सज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०]।

अनक्षर³—क्रि० वि० बिना शब्दप्रयोग किए। बिना शब्द उच्चारण किए। बिना बोले [को०]।

अनक्षि—वि० [स०] बुरी आँख [को०]।

अनक्षिक—वि० [स०] बिना आँख का। अक्षा [को०]।

अनख¹—सज्ञा पुं० [स० अन्=बुरा+अक्ष=आँख, प्रा० अनक्ख अथवा स० अनाकाङ्क्ष प्रा० अनाकख अनक्खख, अनक्ख हिं० अनख] १ झुँझलाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। असतोष। उ०—(क) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए।—सूर (शब्द०)। (ख) भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मगल दिसि दसहूँ।—मानस १।१९।२ दुख। ग्लानि। खिन्नता। उ०—जो पै हिरदय माँझ हरी। कर ककन दरपन लै देखी इहि अति अनख परी। क्यो अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिन बिरह भरी।—सूर०, १०।३७९०। ३ ईर्षा। द्वेष। डाह। उ०—किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाही।—मानस ३।२४। ४ कष्ट। झझटनारीति। उ०—बाबू ऐसो है ससार तिहारो ये कलि है व्यवहारा। को अब अनख सहै प्रति दिन को गाहिन

रहनि हमारा।—कबीर (शब्द०)। ५ डिठौना। काजल की बिंदी जिसे डीठ (नजर) से बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—अनधन देखि तिलरवा, अनख न धार। समलहु दिय दुति मनमिज, भन करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख[2]—वि० [सं० अ=नहीं+नख=नाखून] १ बिना नाखून का। उ०—मिहिर नजर सों भावते, राख याद मरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे, मन मो मनहि करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

अनखना—क्रि० अ० [हिं० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिसाना। रुष्ठ होना। उ०—हम अनखी या बात सो लेत दान को नावें। सहज भाव रहो लाडिले बसत एक ही गाँव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना[1]—क्रि० अ० [हिं० अनख] क्रोध करना। रुष्ठ होना। रिसाना। उ०—(क) कापर नैन चढाए डोलनि, ब्रज मे तिनुका तोर। सूरदास यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गई करुणा भी इक दिन ऊब। कहा अनखाकर उसने खूब।—झरना, पृ० ५६।

अनखाना[2]—क्रि० स० अप्रसन्न करना। नराज करना। खिझाना। उ०—उठन सभा दिन मधि सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात सुख करन माहिनी कैसे करि अनखाऊँ।—सूर० ६। १७२।

अनखावना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अनखाना'। उ०—वा देखत हमकों तुम मिलिहौं, चाहे को ताकों अनखावत।—सूर०, १०।२४१६।

अनखाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनख+आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारयौ मनुहारिनु भरी गारयौ खरी मिठाहि। वाकी अति अनखाहटी मुसुकाहट बिनु नाहि।—बिहारी र०, दो० ४६८।

अनखी†—वि० [हिं० अनख+ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली—वि० स्त्री० [हिं० अनख+ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। बुरा माननेवाली। अनखी। उ०—कहै पद्माकर अगार अनखीलिन की भीरी भीर भारन को भाँज दै री भाँज दै।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२२।

अनखुला—वि० [हिं० अन+खुलना] [अनखुली] १ जो खुला न हो। बद। २ जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केसर केसरि कुसुम के रहे अग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ।—बिहारी र०, दो० १९९।

अनखौहा—वि० [हिं० अनख+औहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखौही] १ क्रोध से भरा हुआ। कुपित। रुष्ट। उ०—रवि बरौं कर जोरिकै, सुनत स्याम के बैन। भए हँसौंहे गवनु के, अति अनखौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० २२८। २ चिडचिडा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिढ जानेवाला। ३ क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारिपानि, मानि त्रास मौनिपन मानौ मौनता गही। रोषे माखे लखन अकनि अनखौंही बातें तुलसी विनीत बानी विहँसि ऐसी कही।—तुलसी ग्र०, पृ० १६०। ४ अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कबहूँ मो को कछू लगावति कबहुँ कहति जनु जाहु कही। सूरदास बातें अनखौंही नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है।—तुलसी ग्र०, पृ० १९९।

अनगढ—वि० [हिं० अन+गढना] १ बिना गढा हुआ। उ०—थे चमक रहे दो खुले नयन ज्यों शिलाजग्न अनगढे रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २ जिसे किसी ने बनाया या हो। स्वयभू। उ०—ऊधौ राखिए यह बात। कहत हौ अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर(शब्द०)। ३ बेडौल। भद्दा। बेढगा। ४ असस्कृत। अपरिष्कृत। ५ उजड्ड। अक्खड। पोगा। अनाडी। जैसे, अनगढ मूर्ख। ६ बेतुका। अटपट। बे सिर पैर का। जैसे, अनगढ बात।

अनगन—वि० सं० [अन्+गणन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारी रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना[1]†—क्रि० स० [स० अनग्न=ढका हुआ] खपडा फेरना। छाजन मे टूटे हुए खपडो के स्थान पर नए लगाना। टपकते हुए खपडैल की मरमत करना।

अनगना[2]—वि० [हिं० अन्+गनना] १ जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २ अगणित। बहुत।

अनगना[3]†—सज्ञा पु० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अब अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना—क्रि० अ० [स० अन्+हिं० अगवना अथवा हिं० अन+गमन=गमन] जान बूझकर देर करना। विलब करना। उ०—मुहुँ धोवति, एडी घसति, हसति, अनगवति तीर। घसति न डीवर नयनि कालिदी के नीर।—बिहारी र०, दो० ६९७।

अनगाना[1]—क्रि० अ० [स० अन्+हिं० अगाना] १ विलब करना। देर करना। २ टालमटोल करना।

अनगाना[2]—क्रि० स० [हिं०] सँभरना। सुनभाना (केश आदि)

अनगाना[3]—क्रि० स० [हिं० अनगना] अनगने या खपडा फेरने का काम कराना।

अनगार[1]—वि० [स०] बिना अगार या घर का। गृहहीन [को०]।

अनगार[2]—सज्ञा पु० घूमने फिरनेवाला। सन्यासी [को०]।

अनगारिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] परिव्राजक या सन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन—वि० [हिं०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूनि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।—कवित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [स० अन्=नहीं+गणित=गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असख्य। बेशुमार। बेहिसाब। बहुत। उ०—शून्यता मम डगर मे अनगिनत कदम बो गई है।—अपलक, पृ० ८९।

अनगिना—वि० पु० [हिं० अन+गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. बिना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २ अगणित। असख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि चुनि खाहिं।—सूर १।३३८।

अनगैरी(पु)—वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजाना। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी। हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे बैरी।—गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करै सबन ते बैरू। मूरख घर राखै अनगैरू।—विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [स०] १ अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३ मदाग्नि का रोगी (को०)। ४ अविवाहिता (को०)।

अनग्निक्र—वि० पु० [स०] [स्त्री० अग्निक्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो। २ चिता पर न जलाया या जलाया हुआ। ३ गाडा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त—वि० [स०] १ जो अग्निदग्ध न हो। २ गाडा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[1]—वि० [स०] १ निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २ पवित्र। शुद्ध।

अनघ[2]—सज्ञा पु० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यो अनघ आगि लागे डाढन।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्=विरुद्ध+घरी=घडी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघैरी(पु)—वि० [स० अन्+हिं० घेर अथवा स० अनाकीरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—सज्ञा पुं० [स० घोर] अधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [स० अन+हिं० चाह] नही चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भली अनचह्यो हौ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अनचाहत[1](पु)—वि० [हिं० अन+चाहना] जो न चाहे।

अनचाहत[2]—सज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को सग। दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवाछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह=परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित्त के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरै अनचीत, सुरती मन मोहि रे रहे।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[1]—वि० [हिं० अन+चीतना=सोचना] १ न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[2]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित। बे पहिचान का। २ चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [स०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद†—सज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[1]—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी। अनभिज्ञ। अज्ञ। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २ बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[2]—सज्ञा पु० १ एक प्रकार की लबी घास जिसे प्राय भैंसें ही खाती है और जिसमे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है। २ अजना नाम का पेड।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या समझते हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५। (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी।—सूर० १०।६४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया=उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुन मेरा ब्याह करा दो अनजाया वर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—सज्ञा पुं० [स० अनृत=अत्याचार अथवा स० अन्+कृत=अनृत, प्रा० अणट्ठ=उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) खेलत सग अनुज बालक नित जागबत अनट उपाय।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [स० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्व—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोजिह्वा। २ अनंतमूल [को०]।

अनडुह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। २ वृषभराशि (को०)। ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही--संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनडुवान्--संज्ञा पु० [सं०] १ बैल। साँड। २ सूर्य (उपनि०)। ३ वृष राशि [को०]।

अनड्वाही--संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु[1]--वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु[2]--संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत[1]--वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2] (५)--क्रि वि० [सं०] अन्यत्र, प्रा० अण्णत, अन्नत्त] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०--राम चपन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ।--मानस, २।२३२।

अनति[1]--वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति[2]--संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा--वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ। उ०--देखौ अनदेखौ किये अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन में सकुचि बैठी चितै जजाइ।--बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष--वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित। प्रदोष। निर्दोष। उ०--अनदोषे को दोष लगावति, दई देहगी टारि।--सूर०, १०।२६२।

अनद्धा--क्रि० वि० [सं०] अवश्यत, अवश्यतया या अवश्यकत [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन--संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य[2]--वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन[1]--वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन[2]--संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बज रात तक का समय जो बीत रहा हो।

विशेष--पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं।

अनद्यतन भविष्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २ संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत--संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनधिक--वि० [सं०] १ जो अधिक न हो। २ सीमाहीन। असीम। ३ पूर्ण। पूरा। ४ जिससे कोई बढ़कर न हो। ५ जिस बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २ बेजा हरकत। ३ अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार[2]--वि० १ अधिकारशून्य। बिना इख्तियार का। २ अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा--संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना।

अनधिकारचेष्टा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २ अक्षमता।

अनधिकारी--वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २ अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे--पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०)।

अनधिकृत--वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २ अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत--वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनजाना। अज्ञात। बे जाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ--वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र--वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य--वि० [सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान--संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित--वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २ जो उपस्थित न हो [को०]।

अनधिष्ठित--वि० [सं०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २ उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन[1]--वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन[2]--संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक--संज्ञा पुं० [सं०] = 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष--वि० [सं०] १ जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २ अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन--संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २ अध्ययनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय--संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्यवसाय का अभाव। अनुद्योग। ढिलाई। २ एक काव्यालंकार।

विशेष--इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे--'स्वेदगात्रि जो पर मम तन पर। ए आली घनमाली को यह'। यह अलंकार वास्तव में 'संदेह' के अंतर्गत ही आता है और इसकी कुछ आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो।

अनगैरी(पु)—वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजाना। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी। हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे बैरी।—गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करै सबल ते बैरू। मूरख घर राखै अनगैरू।—विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [सं०] १ अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३ मदाग्नि का रोगी (को०)। ४ अविवाहिता (को०)।

अनग्निक्त्र—वि० पु० [सं०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [सं०] १ जो आग से न जला हो। २ चिता पर न जलाया या जलाया हुआ। ३ गाडा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त—वि० [सं०] १ जो अग्निदग्ध न हो। २ गाडा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[1]—वि० [सं०] १ निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २ पवित्र। शुद्ध।

अनघ[2]—सज्ञा पु० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यो अनघ आगि लागे डाढन।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्=विरुद्ध+घरी=घडी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघैरी(पु)—वि० [सं० अन्+हिं० घेर अथवा सं० अनाकीरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० घोर] अधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [सं० अन+हिं० चाह] नही चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो मुख सुचन चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भली अनचह्यो हौ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अनचाहत[1](पु)—वि० [हिं० अन+चाहना] जो न चाहे।

अनचाहत[2]—सज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को सग। दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवाछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह=परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित्त के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरै अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[1]—वि० [हिं० अन+चीतना=सोचना] १ न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[2]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित। बे पहिचान का। २ चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात, विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद†—सज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[1]—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी। अनभिज्ञ। अन। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २ बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[2]—सज्ञा पु० १ एक प्रकार की लबी घास जिसे प्राय भैंसे ही खाती हैं और जिसमे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है। २ सजना नाम का पेड।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या नासमझी हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि भयो। —तुलसी ग्र०, पृ० ३६५। (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी।—सूर० १०।६४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया=उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुल मेरा ब्याह करा दो अनजाया वर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अनृत=अत्याचार अथवा सं० अन्+ऋत=अनृत, प्रा० अणट्ठ=उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) बेनत सग अनुज बानक लिए जोगवत अनट उपाय।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [सं० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजिह्वा। २ अनतमूल [को०]।

अनडुह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। २ वृषभराशि (को०)। ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनड्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। सांड। २ सूर्य (उणादि०)। ३ वृष राशि [को०]।

अनड्वाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु[1]—वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु[2]—संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत[1]—वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2] ⑤—क्रि वि० [सं०] अन्यत्र, प्रा० अण्णत, अन्नत्त] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०—राम लषन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।—मानस, २।२३२।

अनति[1]—वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति[2]—संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा—वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ। उ०—देखौ अनदेखौ किये अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन में सकुचि बैठी वितै लजाइ।—बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष—वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित। प्रदोष। निर्दोष। उ०—अनदोषे कौं दोष लगावति, दई देइगौ टारि।—सूर०, १०।२६२।

अनद्धा—क्रि० वि० [सं०] अमत्यन, अवस्तुत या अतीकत [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य[1]—वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन[2]—संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं।

अनद्यतन भविष्य—संज्ञा पुं० [सं०]१ आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २ संस्कृत व्याकरण में भविष्यकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनधिक—वि०[सं०]१ जो अधिक न हो। २ सीमाहीन। असीम। ३ पूर्ण। पूरा। ४ जिससे कोई बढ़कर न हो। ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २ बेबसी लाचारी। ३ अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार[2]—वि० १ अधिकारहीन। बिना इख्तियार का। २ अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टांग अड़ाना।

अनधिकार चेष्टा—संज्ञा स्त्री०[सं०]बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २ अक्षमता।

अनधिकारी—वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २ अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे—पतित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (मनु०)।

अनधिकृत—वि०[सं०]१ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २ अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत—वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनवगत। अज्ञात। बे जाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ—वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र—वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य—वि०[सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २ जो उपस्थित न हो [को०]।

अनधिष्ठित—वि०[सं०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २ उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन[1]—वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन[2]—संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष—वि० [सं०] १ जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २ अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २ अध्ययनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय—संज्ञा पुं०[सं०]१ अध्यवसाय का अभाव। अनुद्योग। हिलाई। २ एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं अपितु किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे—'स्वेदगात्रि जो तू सम तन कर। ए आली बनमाली को यह'। यह अलंकार वास्तव में 'संदेह' के अंतर्गत ही आता है और इसमें कुछ सार्वत्रिकता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पठन पढ़ाने का निषेध हो।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२ छट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [सं०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन धन, भूषन बसन नरत्त।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन[३]—वि० [हिं०][१०] 'अनन्य'। उ०—बाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननि—वि० [हिं०][१०] 'अनन्य'। उ०—राह भगति की अननि है बिरला पावै कोइ।—रामानंद, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [सं०] १ जो अनुकूल न हो। २ प्रतिकूल। विपरीत। उलटा। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अननुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य में आ जाती है वहाँ रसाभास हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१६।

अननुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [सं०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २ जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—संज्ञा [सं०] जो समझने में असमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बोध या ज्ञान का अभाव। २ अबोध। अज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान।

विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायँ, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [सं०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूत पदार्थों का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [सं०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २ नापसंद। अप्रिय। ३ असंगत। अयुक्त [को०]।

अननुषंगी—वि० [सं० अननुषङ्गिन्] जो अनुषंगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननुक्त—वि० [सं०] १ जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननृत—वि० [सं०] जो अनृत या असत्य न हो। सत्य [को०]।

अनन्न—वि० [सं०] चावल या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्नास—संज्ञा पुं० [ब्रं० जी० (अनेनस), पुर्त० अनानाज] रामकाँस की तरह का एक पौधा और उसका फल।

विशेष—यह पौधा दो फुट तक ऊँचा होता है। जड से दो तीन इंच ऊपर डंठल में अंकुरों की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमशः मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अंकुरपिंड का स्वाद खटमीठा होता है।

अनन्य[१]—वि० [सं०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से संबंध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही में लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।—मानस ४।३।

यौ०—**अनन्यभक्त** = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २ अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अंगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य[२]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [सं०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेवहि भगति मन बचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [सं०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो [को०]।

अनन्यगामी—वि० [सं० **अनन्यगामिन्**] किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [सं० **अनन्यचेतस्**] अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]

अनन्यचोदित—वि० [सं०] जो अन्य किसी से प्रेरित न हो। स्वतःप्रेरित (को०)।

अनन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० **अनन्यजन्मन्**] अनंग। कामदेव [को०]।

अनन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्य के संबंध का अभाव। २ एकनिष्ठता। एकाश्रयता। एक ही में लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकांत०, पृ० १३।

अनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना [को०]।

अनन्यदृष्टि[२]—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव[१]—वि० [सं०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव[२]—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [सं०] किसी अन्य से निष्पन्न या संपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्यपरता का अभाव। एकनिष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [सं०] जो अन्य (स्त्री०) में लीन या आसक्त न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [सं०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री० [सं०] १ जो पहले किसी की न रही हो। २ कुमारी। क्वारी। बिनब्याही।

अनन्यभव—वि० [सं०] जिसके अन्य संतान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव[१]—वि० [सं०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २ परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क—वि० [सं०] जो अन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०]।

अनन्यमना—वि० [सं० अनन्यमनस्] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्यमानस—वि० [सं०] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्ययोग[1]—वि० [स०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०]।

अनन्ययोग[2]—क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या बाद में न आने-वाला [को०]।

अनन्यविषय—वि० [स०] एकमात्र विषय या सदर्भ से सबध रखनेवाला [को०]।

अनन्यविषयात्मा—वि० [सं० अनन्यविषयात्मन्] एक विषय पर स्थिर रहनेवाला [को०]।

अनन्यवृत्ति—वि० [स०] १ अन्यवृत्ति न रखनेवाला। एकाग्र। दत्तचित्त। २ जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो। ३ समान वृत्ति या स्वभाववाला [को०]।

अनन्यसाधारण—वि० [सं०] अन्य से न मिलनेवाला। असा-धारण [को०]।

अनन्यसामान्य—वि० [स०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनो से अलग हो। असाधारण [को०]।

अनन्यहृत—वि० [स०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो। सुरक्षित [को०]।

अनन्याधिकार—सज्ञा पुं० [स०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका किसी एक व्यक्ति या कपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनन्यार्थ—वि० [स०] जो अन्य अर्थ या विषय के अतर्गत न हो। जो गौण न हो। मुख्य या आधिकारिक [को०]।

अनन्याश्रित[1]—वि० [सं०] १ जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो। २ स्वाधीन। स्वतत्र [को०]।

अनन्याश्रित[2]—सज्ञा पुं० वह सपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०]।

अनन्वय—सज्ञा पु० [स०] १ अन्वय या सबध का अभाव। २ काव्य मे वह अलकार जिसमे एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप मे कही जाय। जैसे—तेरे मुख की जोड को तेरो ही मुख आहि (शब्द०)।

विशेष—केशवदास ने इसी को अतिशयोपमा लिखा है।

अनन्वित—वि० [स०] १ असबद्ध। पृथक्। विलग। २ अठवट। अयुक्त।

अनन्वै(यु)—सज्ञा पु० [सं० अनन्वय] दे० 'अनन्वय[2]'। उ०—कहाँ करत उपमेय को उपमेयै उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूषन सकल सुजान।—भूषन ग्र०, पृ० १३।

अनप—वि० [सं०] जलहीन। बिना जल का [को०]।

अनपकरण—सज्ञा पुं० [स०] १ हानि करना। २ रुपया न लौटाना [को०]।

अनपकर्म—सज्ञा पुं० [स० अनपकर्मन्] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपकार—सज्ञा पुं० [स०] अपकार या हानि का अभाव [को०]।

अनपकारक—वि० [स०] १ जो हानिकारक न हो। २ निर्दोष [को०]।

अनपकारी—वि० [सं० अनपकारिन्] [स्त्री० अनपकारिणी] अपकार या हानि न करनेवाला [को०]।

अनपकृत[1]—वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०]।

अनपकृत[2]—सज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०]।

अनपक्रम—सज्ञा पुं० [सं०] न जाना या न हटना [को०]।

अनपक्राम—सज्ञा पु० [सं०] १. पीछे न हटना। २ पराङ्मुख न होना [को०]।

अनपक्रामक—वि० [स०] पीछे न हटनेवाला [को०]।

अनपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपच—सज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्य०)+पच] अजीर्ण। बदहजमी।

अनपच्युत—वि० [स०] १ विचलित न होनेवाला। डावाँडोल न होनेवाला। २ विश्वासपात्र। विश्वसनीय [को०]।

अनपढ—वि० [हिं० अन=नहीं+√पढ] बेपढा। अपठित। मूर्ख। निरक्षर।

अनपत्य—वि० [स०] [स्त्री० अनपत्या] निसतान। नाऔलद।

अनपत्यक—वि० [स०] दे० 'अनपत्य'।

अनपत्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] निस्सतान होना [को०]।

अनपत्रप—वि० [स०] निर्लज्ज। बेशर्म [को०]।

अनपदेश—सज्ञा पु० [स०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो। अग्राह्य तर्क [को०]।

अनपधृष्य—वि० [स०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०]।

अनपभ्रंश—सज्ञा पु० [स०] १ जो अपभ्रश न हो। २. शुद्ध शब्द [को०]।

अनपर[1]—वि० [स०] १ अपर या अन्य से रहित। २. जिसका कोई अनुयायी न हो। ३ अकेला। एकमात्र [को०]।

अनपर[2]—सज्ञा पु० ब्रह्म [को०]।

अनपराद्ध—वि० [स०] अपराधशून्य [को०]।

अनपराध—वि० [स०] अपराधरहित। निर्दोष। बेकसूर।

अनपराधी—वि० [स० अनपराधिन्] [स्त्री० अनपराधिनी] निरपराध। निर्दोष। बेकसूर।

अनपसर—वि० [स०] १ जिसमे निकलने का मार्ग न हो। २ जो न्याय न हो [को०]।

अनपसरण—सज्ञा पु० [स०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०]।

अनपाकरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ वचन या इकरार पूरा न करना। २ ऋण या मजदूरी न चुकता करना [को०]।

अनपाकरणविवाद—सज्ञा पु० [स०] १ इकरार पूरा न करने का मुकदमा या अभियोग। २ ऋण या मजदूरी न देने का अभियोग [को०]।

अनपाकर्म—सज्ञा पुं० [स०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियो तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र मे इसका प्रयोग इसी अर्थ मे है। अनपाकर्म तथा भी भगवा दो प्रकार का है। एक

तो वेतन सबधी और दूसरा दान सबधी पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्यानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्यानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद—सज्ञा पु० [स०] मजदूरो और काम करानेवाले पूँजीपतियो के बीच वेतन सबधी झगडा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यो को निश्चित की हुई भृति दे (ना० स्मृ० ६०२)।

अनपाय[1]—वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय[2]—सज्ञा पुं० अनश्वरता। २ नित्यता। ३ शिव [को०]।

अनपायनी—वि० स्त्री० [स० अनपायिनी] विश्लेषरहित। स्थिर। दृढ। उ०—प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।—मानस, ७।३४।

अनपायिपद—सज्ञा पुं० [स०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी—वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ। अनश्वर।

अनपाश्रय—वि० [स०] १ जो किसी का आश्रित न हो। २ स्वतत्र [को०]।

अनपेक्ष—वि० [स०] १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ तटस्थ। ३ निष्पक्ष। ४ सबधहीन। ५ स्वतत्र [को०]।

अनपेक्षा[1]—वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। बेपरवाह।

अनपेक्षा[2]—सज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित—वि० [स०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिसकी चाह न हो।

अनपेक्षी—वि० [स० अनपेक्षिन] दे० 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य—वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यता न हो। जिसे किसी की परवा न हो। उ०—साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, सत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।—साकेत, पृ० १७८।

अनपेत—वि० [स०] १ जो गत न हो। २ अव्यतीत। जो बीता न हो। ३ जो पृथक् या अलग न हो। ४ विश्वासपात्र। विश्वसनीय। ५ निकट। समीप [को०]।

अनप्त—वि० [स०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्रापत—वि० [हिं० अन+स०प्राप्त, हिं० प्रापत, परापत] अप्राप्त। उ०—अनप्रापत को कहा तजे, प्रापत तजे सो त्यागी है।—कबीर रे०, पृ० ४६।

अनप्रासन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।—सूर० १।७०७।

अनफाँस—सज्ञा पुं० [हिं० अन+फाँस=पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।—जायसी (शब्द०)।

अनफा—सज्ञा पु० [यूनानी, स्त्री० अनफे] ज्योतिष के सोलह योगो मे से एक।

विशेष—कुडली मे जिस स्थान पर चद्रमा बैठा हो उससे बारहवें स्थान मे यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनफा कहते हैं।

अनबछी—वि० [हिं० अन+वाछित, प्रा० वछिय] अवाछित। अनचाही। उ०—और सकल यह बरतनि कहिए अनबछी ही आवै जू।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३११।

अनबन[1]—सज्ञा पुं० [हिं० अन=नहीं+√बन=बनना] बिगाड। विरोध। फूट। खटपट।

अनबन[2]—वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक। उ०—(क) अनबन बानी तेहि के माहिं। बिन जाने नर भटका खाहिं।—कबीर (शब्द०)। (ख) पुनि अभरन बहु काढा अनबन भाँति जराव।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनबनता—वि० [हिं० अन+√बन] जिसमे बनत या बनाव या मेल न हो। उ०—कबीर कहते क्यो बनै अनबनता के सग, दीपक को भावै नहिं जरि जरि मरैं पतग।—कबीर सा० स०, पृ० ५८।

अनबना—वि० [हिं० अनबन] [वि० स्त्री० अनबनी] बुरा। खराब। बिगडा। उ०—बन्यो अनबन्यो समुझि कै, सोधि लेहिंगे साधु।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ४।

अनबनियत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनबना] वह जो बननेवाली न हो। उ०—गुरु बिन मिटइ न दुगदुगी अनबनियत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)।

अनबलई—वि० [हिं० अन+√बल] बिना जनाया। जो प्रज्वलित न किया गया हो। उ०—अनबलई दव परजलई।—बीसल० रास०, पृ० ६६।

अनबाद—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनवाद'। उ०—आनदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनबाद करौ निहारी।—घनानद, पृ० ५५५।

अनबिछा—वि० [हिं० अन+√बिछ] बिना बिछाया हुआ। नगा उ०—अपनी कोठरी मे एक अनबिछे तखत पर लेटी थी।—त्याग, पृ० २१।

अनबिधा—वि० [हिं० अन+स० विद्ध] दे० 'अनविधा'।

अनबिधा—वि० [स० अन्+विद्ध] बिना बेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनबीह—वि० [हिं० अन+स० भीत, प्रा० भीअ√बीह] निर्भय। निडर। उ०—लोहाना अनबीह लीय बारत्त समत्थै।—पृ० रा० ४।२०।

अनबूझ—वि० [हिं० अन+√बूझ] अनजान। नासमझ। मूर्ख। उ०—अधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अनबूझा—वि० [हिं०] बेसमझाबूझा। अबूझा।

अनबूडा—वि० [हिं० अन+√बूड] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०—अनबूडे बूडे, तरे जे बूडे सब अग।—बिहारी र०, दो० ६४।

अनबेधा—वि० [हिं०] दे० 'अनविधा'।

अनबोल—वि० [हिं० अन=नहीं+√बोल] १ अनबोला। न बोलनेवाला। २ चुप्पा। मौन। ३ गूँगा। बेजबान। ४ जो अपने सुख दुख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है।

अनबोलता—वि० [हिं०] [स्त्री० अनबोलती] दे० 'अनबोल'।

अनबोला[१]†—वि० [हिं०] दे० 'अनबोलता'।

अनबोला[२]†—संज्ञा पु० [हिं० अन+बोल] बोलचाल या बातचीत का अभाव। अनबन। अनमेल।

अनबोले(ए)—क्रि० वि० [हिं०] बिना बोले हुए। उ०—मैं तौ तुम्हैं हँसऊ खेलतहि छाँडि गई, आई अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ।—सूर०, १०।२७६१।

अनब्बर(ए)—वि० [सं० अन्+अब्बर=अबल] बली। बलवान। उ०—चढ्यौ चहुआन अनब्बर।—पृ० रा०, ५८।७।

अनब्याहा—वि० [हिं० अन+ब्याहा] [स्त्री० अनब्याही] अविवाहित। बिन ब्याहा। क्वाँरा। उ०—अनब्याही कह पुरुष सो अनुरागी जो होइ। ताहि अनूढा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।—रसराज, पृ० १५।

अनभंग(ए)—वि० [हिं० अन+भंग=टूटना] अखंडित। अभंग। परिपूर्ण। उ०—थरहरात उर कर कँपत फरकत अधर सुरंग। परखि पीउ पलकनि प्रगट पीक लीक अनभंग। पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

अनभजता(ए)—वि० [हिं० अन+भजना] न भजनेवाला। न चाहनेवाला। उ०—इक भजते की भजै एक अनभजतन भजही।—नंद० ग्र०, पृ० २०।

अनभया(ए)—वि० [हिं० अन+भया] बिना हुए। बिना सत्ता या स्थिति हुए। उ०—जागेउ नृप अनभएँ बिहाना।—मानस, १।१७२।

अनभल(ए)†—संज्ञा पु० [हिं० अन=नहीं+भल] बुराई। हानि। अहित। उ०—जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।—मानस, २।१६।

मु०—अनभल ताकना=बुराई चाहना। उ०—जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फल परिपाका।—मानस, २।२१।

अनभला(ए)—वि० पु० [हिं० अन+भला] [स्त्री० अनभली] बुरा। निंदित। हेय। खराब। उ०—कटु कहिए गाढे परे सुनि समुझि सुसाई। करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७२।

अनभाउता(ए)—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'। उ०—त्यों पद्माकर सोति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७०।

अनभाया—वि० [[हिं० अन+भावना=अच्छा लगना] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे। जिसकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसद। उ०—अवध सकल नर नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाये। तुलसी रामबियोग सोग बस समुझत नहिं समुझाए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अनभायो(ए)—वि० [हिं०] अप्रिय। अनिष्ट। उ०—गरुड को कहा किधौं अनभायो। जातें यह इहि दह मैं आयो।—नंद ग्र०, पृ० २८२।

अनभाव[१]†—संज्ञा पुं० [[हिं० अन+भाव] भाव या प्रेम का अभाव।

अनभावत(ए)—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'।

अनभावता(ए)—वि० [हिं०] दे० 'अनभाया'। उ०—तेरे लाल माखन खायो। ऊखल चढि, सीके कौ लीन्हो अनभावत भूँमें डरकायो।—सूर० १०।३३१।

अभावरी(ए)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+भावरी] नापसद होने का भाव या स्थिति। उ०—भावरि अनभावरि करौ कोरि बकवादु। अपनी अपनी भाँति कौ छुटै न मुहजु सवादु।—बिहारी र०, दो० ६३७।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या समझने योग्य न हो। अबोध। उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

अनभिग्रह[१]—वि० [सं०] भेदशून्य। समभावविशिष्ट।

अनभिग्रह[२]—संज्ञा पुं० १ भेदशून्यता। एकरूपता। समकक्षता। २ जैन मतानुसार सब मतों को अच्छा और सब में मोक्ष मानने का मिथ्यात्व।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनभिज्ञा, संज्ञा अनभिज्ञता] अज्ञ। जनजान। अनाडी। मूर्ख। उ०—(क) मैं तब कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिबिंबित शशि को पाकर। वीणा, पृ० ३६। २ अपरिचित। नावाकिफ। उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो बहिन, प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा।—ग्रंथि, पृ० ७८।

अनभिज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अज्ञता। अनाडीपन। अनजानपन। मूर्खता। २ परिचय का अभाव। नावाकफियत।

अनभिप्रेत—वि० [सं०] १ अभिप्रायविरुद्ध। अनभिमत। तात्पर्य से भिन्न। और का और। जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०)। २ अनिष्ट। इच्छा के प्रतिकूल। नापसद। जैसे—ऐसी ऐसी कार्रवाइयाँ हमें अनभिप्रेत हैं—(शब्द०)।

अनभिभूत—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। २. अबाधित [को०]।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध। राय के खिलाफ। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। ३ अनभीष्ट। नापसद।

अनभिमान—संज्ञा पुं० [सं० अन्+अभिमान] अभिमान का अभाव। उ०—संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिनकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६४।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०]।

अनभिम्लात—वि० [सं०] जो मुरझाया या कुम्हलाया न हो [को०]।

अनभिम्लातवर्ण—वि० [सं०] जिनका वर्ण या रंग फीका या मंद न हुआ हो [को०]।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो सदृश या समान न हो। २ जो सुंदर न हो [को०]।

अनभिलाष[१]—वि० [सं०] इच्छाशून्य [को०]।

अनभिलाष[२]—संज्ञा पुं० १. भोग या इच्छा का अभाव। २. रस या स्वाद का अभाव [को०]।

अनमनीय—वि० [सं० अ+नमनीय] जो नमनीय न हो। दृढ़। कठोर।

अनमन्न—वि० [हिं०] दे० 'अनमना'। उ०—अढर ढरहिं अनमन्न महि ढरहि अठार प्रकार।—पृ० रा०, ५५।१२८।

अनमस्यु—वि० [सं०] नमस्कार न करनेवाला [को०]।

अनमाँगा—वि० [हिं० अन+माँगना] जो माँगा हुआ न हो। अयाचित।

अनमाप—वि० [हिं० अन+माप] जिसकी माप न की जा सके। अमेय। अपरिमाण। उ०—नमो निरंजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो।—राम० धर्म०, पृ० २२२।

अनमापा—वि० [हिं० अन+मापना] [स्त्री० अनमापी] जिसकी माप न हो सके। जो मापा न जा सके। उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई में।—ठंडा लोहा, पृ० ६९।

अनमाया—वि० [हिं० अन+मायना] जो अँट न सके। जो समा न सके। उ०—भेंटी भालु भरत भरतानुज क्यो कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी (शब्द०)।

अनमारग—संज्ञा पुं० [हिं० अन=बुरा+मारग] १. कुमार्ग। बुरी राह। २ दुराचार। अन्याय। अधर्म। पाप। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सोई करत अनीति।—सूर०, १।१२९।

अनमिख[1]—वि० [हिं०] दे० 'अनिमिष'। उ०—अनमिख लोचन बाल के यातें नदकुमार।—मतिराम ग्र०, पृ० ४५२।

अनमिख[2]—क्रि० वि० दे० 'अनिमिष'। उ०—मद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।—मतिराम ग्र०, पृ० ३३०।

अनमिख[3]—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनमितपच—वि० [सं० अनमितम्पच] १ बिना नाप जोख किए न पकानेवाला। २ कृपण। कंजूस [को०]।

अनमित—वि० [हिं० अन+मित] अमित। अपार। उ०—आरम कान गज आरुहे अनमित गेन उलट्टियौ।—रा० रू० पृ० १५४।

अनमित्त—वि० [हिं०] दे० 'अनमित'। उ०—अनमित्त मत्ति बल अप्रमाइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनमित्ती—वि० [हिं० अन+मिति] दे० 'अनमित'। उ०—आगी फौज लखाँ अनमित्ती, जोवतो मारग जगपत्ती।—रा० रू०, पृ० २२५।

अनमित्र[1]—वि० [सं०] १ जो अमित्र या शत्रु न हो। २ जिसका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०]।

अनमित्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमित्र या शत्रु का अभाव। २ अयोध्या का एक राजा [को०]।

अनमियाँ—वि० [सं० अ+नमित] न झुकनेवाला। अनम्र। उ०—पिच्छम घर सोहै वर पाँमे, नर वस किया अनमियाँ नाँमे।—रा० रू०, पृ० १२।

अनमिल—वि० [हिं० अन+√मिल] १ बेमेल। बेजोड़। असबद्ध। बेतुका। बे सिर पैर का। उ०—(क) अनमिल आखर अरथ न जापू।—मानस, १।१५। (ख) मिल्यौ यवन मदमत्त बकत कछु अनमिल बातें।—मतिराम (शब्द०)। २. पृथक्। भिन्न। अलग। निर्लिप्त। उ०—रहे अदट दट नहिं जुग जुग पार न पावै काला। अनमिल रहे मिले नहिं जग मे तिरछी उनकी चाल। कबीर (शब्द०)।

अनमिलत—वि० [हिं०] [स्त्री० अनमिलती] दे० 'अनमिल'।

अनमिलता—वि० [हिं० अनमिल+ता (प्रत्य०)] [स्त्री० अनमिलती] अप्राप्य। अलभ्य। अदृश्य। उ०—कहै पदमाकर सु जादा कहाँ कौन अब जाती मरजादा है मही की अनमिलती।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६।

अनमिला—वि० [हिं० अन+मिलना] जो मिला न हो। बेमेल। उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियो मे विशेष मेल उत्पन्न करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१।

अनमिष[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनिमिष] मछली। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

अनमिष[2]—वि० [हिं०] दे० 'अनमिष'। उ०—अनमिष नैन सुनै न ये निरखत अनिमिष नैन।—मतिराम ग्र० पृ० ४४७।

अनमिषनैनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अनमिष+नयन+ता (प्र०)] पलको के न गिरने की स्थिति या दशा। बिना पलक गिराए नेत्रो से लगातार देखने की स्थिति। उ०—तो मैं अनमिष-नैनता, मोहन मूरति नैन। अनमिष नैन सुनैन ये निरपत अन मिष नैन।—मतिराम ग्र०, पृ० ३४३।

अनमी—वि० [सं० अ+नमित प्रा० अ+णमित्र] जो अधीन या झुका हुआ न हो। अपराजित। उ०—बारमैं सूर सो करन रग, अनमी नमाइ तिन करै भग।—पृ० रा०, १।७०६।

अनमीच—क्रि० वि० [हिं० अन+मिच] मृत्यु के बिना। बिना मौत के उ०—है घनआनद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबौ।—घनानद, पृ० ४८।

अनमीलना—क्रि० स० [हिं० अन+मीलना=मींचना] (आँख) खोलना। उ०—नयनन मिलि कछू अनमीलनि नैसुक नीद को भाव मुभोयो।—(शब्द०)।

अनमुख—क्रि० वि० [अन्य+मुख] अन्य मुख से। दूसरे के मुँह से। उ०—जीकारो अनमुख जुडै आ जगन् अमिलाख।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७८।

अनमूरति—वि० [हिं० अन+मूरति] अमूर्त। निराकार। मूर्ति-हीन। उ०—अछय अभय अनुभव अनमूरति मन सजीवन नाथ।—गुलाब बानी, पृ० ५२।

अनमेष—वि० [हिं०] दे० 'अनिमेष'। उ०—अनमेष जपत इच्छा मघन, आनद डर भूषन तजै।—पृ० रा०, २५।१०८।

अनमेल—वि० [हिं० अन+मेल] १ बेमेल। बेजोड़। असबद्ध। २ बिना मिलावट का। विशुद्ध। खालिस।

अनमोल—वि० [हिं० अन+मोल] १ अमूल्य। मोलरहित। बेमोल। जिसका कोई मूल्य न हो। बहुमूल्य। २ सुदर। उत्तम। उ०—बिकटी भृकुटी बडरी अँखिया, अनमोल कपोलन की छवि है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४।

अनम्र—वि० [सं०] अविनीत। नम्रतारहित। उद्धत। उद्दड। अकड़वाला। ऐंठवाला।

अनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमगल। दुर्भाग्य। विपद। उ०—सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।—भारतेंदु ग्र०,

अनर्गल—वि० [स०] १ प्रतिबंधशून्य। बेरोक। बेरुकावट। बेखटक। २ विचारशून्य। व्यर्थ। अडबड। ३ लगातार। उ०—वहै अनर्गल अश्रुधार यह ज्यो पावस का मेह।—एकांत, पृ० ४।

अनर्गलप्रलाप—संज्ञा पुं० [स० अनर्गल+प्रलाप] अडबड बोलना या बकना [को०]।

अनर्घ—वि० [स०] १ अमूल्य। कीमती। बहुमूल्य। २ अल्प मूल्य का। कम कीमत। सस्ता।

यौ०—अनर्घराघव।

अनर्घक्रय—संज्ञा पु० [स०] बाजार की कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घराघव—संज्ञा पु० [स०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०]।

अनर्घविक्रय—संज्ञा पु० [स०] बाजार भाव से अधिक या कम दाम पर बेचना।

विशेष—चाणक्य ने इस अपराध मे १००० पण दंड लिखा है।

अनर्घ्य—वि० [स०] १ अपूज्य। पूजा के अयोग्य। २ जिसका मूल्य न लगा सके। बहुमूल्य। अमूल्य। ३ कम मूल्य का (को०)।

अनर्जित—वि० [स०] १ अर्जित या प्राप्त न किया हुआ। न कमाया हुआ। २ अप्राप्त (को०)।

अनर्जित आय—संज्ञा स्त्री० [स०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचने वाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ विरुद्ध अर्थ। अयुक्त अर्थ। उलटा मतलब उ०—उसने अर्थ का अनर्थ किया है (शब्द०)। २ कार्य की हानि। बिगाड। नुकसान। उपद्रव। उत्पात। खराबी। बुराई। आपद्। विपद्। अनिष्ट। गजब। उ०—(क) अनरथ अवध अरंभेउ जब ते।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैं सठ सब अनरथ कर हेतु—तुलसी (शब्द०)। ३ वह धन जो अधर्म से प्राप्त किया जाय। ४ भय की प्राप्ति।

अनर्थ[2]—वि० १ व्यर्थ। निकम्मा। २ अभागा। भाग्यविहीन। ३ खराब। त्रुटिपूर्ण। ४ तुच्छ। गरीब। ५ भिन्न या विपरीत अर्थवाला। अर्थविहीन। निरर्थक [को०]।

अनर्थअनर्थानुबंध—संज्ञा पु० [स० अनर्थअनर्थानुबन्ध] किसी शक्तिशाली राजा को लडने के लिये उभाडकर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदो मे से है।

अनर्थअर्थानुबंध—संज्ञा पु० [स० अनर्थअर्थानुबंध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पडोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थक—वि० [स०] १ निरर्थक। अर्थरहित। जिसका कुछ अभिप्राय या अर्थ न हो। २ व्यर्थ। बेमतलब। बेफायदा। निष्प्रयोजन।

अनर्थकर—वि० [स०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १ बेकार काम करने वाला। २ अर्थकर या लाभदायक न हो [को०]।

अनर्थकारी—वि० [स० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १ विरुद्ध अर्थ करनेवाला। उलटा मतलब निकालनेवाला। २ अनिष्टकारी। हानिकारी। उपद्रवी। उत्पाती। नुकसान पहुँचानेवाला। ३ व्यर्थ काम करनेवाला।

अनर्थत्व—संज्ञा पुं० [स०] १ व्यर्थता। २ अर्थशून्यता [को०]।

अनर्थदर्शी—वि० [स० अनर्थदर्शिन्] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ की ओर दृष्टि रखनेवाला। बुराई सोचने या चाहनेवाला। हित पर ध्यान न रखनेवाला।

अनर्थनाशी—संज्ञा पु० [सं० अनर्थनाशिन्] शिव [को०]।

अनर्थनिरनुबंध—संज्ञा पुं० [स० अनर्थनिरनुबन्ध] अर्थ के भेदो मे से एक। किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाडकर तथा लडने के लिये प्रोत्साहित कर स्वय पृथक् हो जाना।

अनर्थबुद्धि—वि० [स०] जिसकी बुद्धि व्यर्थ या गई बीती हो [को०]।

अनर्थभाव—वि० [स०] दुष्ट प्रकृति। बुरे स्वभाववाला [को०]।

अनर्थलुप्त—वि० [सं०] निस्सार विषयो से सुरक्षित या मुक्त [को०]।

अनर्थसंशय—संज्ञा पु० [स०] १ ऐसा कार्य जिसमे भारी अनिष्ट की शंका हो। २ संपत्ति जो संकट या संदेह से मुक्त हो [को०]।

अनर्थसंशयापद—संज्ञा पु० [स०] शत्रुओ के साथ मित्रो की लडाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र या आकंद्र (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय मे हो) का मेल या संधि।

अनर्थानर्थानुबंध—संज्ञा पु० [सं० अनर्थानर्थानुबन्ध] किसी बलशाली राजा को युद्ध के लिये उभाडकर स्वय अलग हो जाना [को०]।

अनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानुबन्ध] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद—संज्ञा पुं० [स०] चारो ओर से शत्रुओ का भय।

अनर्थार्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमे एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनर्थार्थानुबंध—संज्ञा पु० [स० अनर्थार्थानुबन्ध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पडोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता पहुँचाना [को०]।

अनर्थ्य—वि० [स०] अनर्थक [को०]।

अनर्ह—वि० [सं०] अयोग्य। अनधिकारी। अपात्र।

अनलंकृत—वि० [स० अन्+अलङ्कृत] अलंकारविहीन। उ०—आकर्षित कर रहा विश्व को अनलंकृत भी अमल कमल है, मदरता का रूप सरल है।—नागरिका, पृ० ७६।

अनलंकरिष्णु—वि० [स० अन्+अलङ्करिष्णु] १ जो अलंकृत न हो। २ अलंकार की इच्छा न रखनेवाला [को०]।

अनल—संज्ञा पुं० [स०] १ अग्नि। आग। २ अग्नि के अधिष्ठाता देव (को०)। ३ पाचनशक्ति (को०)। ४ पित्त (को०)। ५ वायु (को०)। ६ अष्टवसुओ मे से पचम वसु (को०)। ७ एक पितृदेव (को०)। ८ परमेश्वर (को०)। ९ जीव (को०)। १० विष्णु (को०)। ११ वासुदेव (को०)। १२ एक वानर (को०)। १३ एक मुनि (को०)। १४ कृत्तिका नक्षत्र (को०)। १५ पचासवाँ संवत्सर (को०)। १६ र वर्ण या अक्षर (को०)। १७ तीन की संज्ञा। १८ माली नामक राक्षस का पुत्र और विभीषण का मंत्री। १९ चीता। चित्रक। २० भिलावाँ।

अनवट[२]—सज्ञा पु० [सं० नयन, हिं० अयन+ओट या स० अध+पट या देशी] कोल्हू के बैल की आँखो की पट्टी या ढक्कन। ढोका।

अनवद्य—वि० [स०] अनिंद्य। निर्दोष। बेऐब। उ०—हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९०।

अनवद्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] निर्दोषिता। दोष का अभाव। उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार मे।—बेला, पृ० ७४।

अनवद्यत्व—सज्ञा पु० [स०] अनवद्यता [को०]।

अनवद्यरूप[१]—सज्ञा पुं० [स०] दोषरहित रूप। वह रूप जिसमे कोई दोष न हो [को०]।

अनवद्यरूप[२]—वि० [स०] निर्दोष रूपवाला [को०]।

अनवद्यांग—वि० [स० अनवद्याङ्ग] [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुदर अगोवाली। सुडौल। खूबसूरत।

अनवद्राण—वि० [सं०] न सोनेवाला। अनिद्रित [को०]।

अनवधर्ण्य—वि० [सं०] जिसको धर्षित न किया जासके [को०]।

अनवधान—संज्ञा पु० [सं०] असावधानी। अमनोयोग। चित्तविक्षेप। प्रमाद। गफलत। बेपरवाही।

अनवधानता—सज्ञा स्त्री० [स०] ध्यानहीनता। लापरवाही। असावधानी। गफलत। उ०—उसने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया।—ककाल, पृ० १४३।

अनवधि[१]—वि० [सं०] असीम। बेहद। बहुत ज्यादा।

अनवधि[२]—क्रि० वि० निरतर। सदैव। हमेशा।

अनवन[१]—वि० [सं०] अरक्षाकर। विपत्तिकारक [को०]।

अनवन[२]—सज्ञा पुं० अरक्षा [को०]।

अनवनामितवैजयत—सज्ञा पुं० [स० अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमे विजयध्वजा बराबर ऊँची रहेगी (बौद्ध)।

अनवपूरण—वि० [स०] असयुक्त पर चारो ओर फैलनेवाला [को०]।

अनववुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०]।

अनवभ्र—वि० [स०] १ जो अक्षुण्ण हो। २ जो नश्वर न हो। ३ स्थायी [को०]।

अनवम—वि० [स०] १ जो तुच्छ या क्षुद्र न हो। २ उदात्त। श्रेष्ठ [को०]।

अनवय(पु)—सज्ञा पुं० [स० अन्वय] वश। कुल। खानदान।

अनवर—वि० [स०] १ जो कनिष्ठ न हो। २ श्रेष्ठ। बडा। ३ जो न्यून न हो [को०]।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरतर। सतत। अजस्र। अहर्निश। सदैव। लगातार। हमेशा। उ०—अनवरत उठे कितनी उमग।—कामायनी, पृ० १६४।

अनवरार्घ्य—वि० [सं०] १ मुख्य। प्रधान। २ सर्वोत्तम [को०]।

अनवरोध[१]—वि० [सं०] विना रोक या बाधा का। निरतर। अबाध। उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर रुधिरपान।—गीतिका, पृ० ७०।

अनवरोध[२]—सज्ञा पु० अवरोध का अभाव [को०]।

अनवलंब[१]—वि० [स० अनवलम्ब] विना अवलंब का। बेसहारा [को०]।

अनवलंब[२]—सज्ञा पु० स्वतत्रता। अवलंब का अभाव [को०]।

अनवलंबन[१]—वि० [स० अनवलम्बन] जिसे अवलंब या सहारा न हो [को०]।

अनवलंबन[२]—सज्ञा पु० स्वतत्रता [को०]।

अनवलंबित—वि० [स० अनवलम्बित] आश्रयहीन। निराधार। बेसहारा।

अनवलाप—वि० [स०] वचनशून्य। मौन। उ०—हुए शीर्ण खो खोकर, अनवलाप रो रोकर।—अर्चना, पृ० १४।

अनवलेप—वि० [स०] १ अभिमानशून्य। २ अवलेप या लेप से रहित [को०]।

अनवलोभन—सज्ञा पुं० [स०] एक सस्कार जो गर्भ के तृतीय मास मे किया जाता है [को०]।

अनवसर—सज्ञा पुं० [स०] १ निरवकाश। फुरसत का न होना। २ कुसमय। बेमौका। उ०—सोइ लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर (सन) ज्यो दई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८८। ३ जसवत जसोभूषण के अनुसार वह काव्यालकार जिसमे किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विषाद न करनेवाला। उ०—सहज रिमझिम बाद रिन रिन अनवसादन।—गीतगुज, पृ० ५८।

अनवसान—वि० [सं०] १ अत से रहित। २ मृत्युहीन [को०]।

अनवसित—वि० [स०] १ असमाप्त। उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०४। २ जो अस्त न हुआ हो (को०)।

अनवसितसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अनवसित सन्धि] जगल या ऊसर जमीन बसाने के सबध मे दो पुरुषो या राष्ट्रो की सधि। औपनिवेशिक सधि।

विशेष—औपनिवेशिक सधि के विषय मे चाणक्य ने लिखा है कि यह प्राय विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि मे उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणत जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है।

अनवसिता—सज्ञा स्त्री० [स०] एक छद या वृत्त [को०]।

अनवस्थ—वि० [स०] १ अस्थिर। चचल। उतावला। अधीर। २ अव्यवस्थित। डावाँडोल।

अनवस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्थितिहीनता। अव्यवस्था। अनियमितता। उ०—यह अनवस्था युगल मिले मे विकल व्यवस्था सदा बिखरती।—कामायनी, पृ० २७१। २ व्याकुलता। आतुरता। अधीरता। ३ न्याय मे एक प्रकार का दोष।

विशेष—इस प्रकार का तर्क और अन्वेषण जिसका कुछ ओर छोर न हो। यह उस समय होता है जब तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो। जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण।

अनवस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अस्थिरता। २ अनिश्चितता। ३. आचरणभ्रष्टता। ४ वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [सं० अनवस्थायिन्] क्षणस्थायी [को०]।

अनवस्थित—वि० [सं०] १ अस्थिर। अधीर। चचल। अशात। क्षुब्ध। २ बेठिकाना। बेसहारा। निराधार। निरवलब।

अनवस्थितचित्त—सज्ञा पु० [सं०] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०]।

अनवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अस्थिरता। चचलता। अधीरता। अनिश्चितता। २ अवलबशून्यता। आधारहीनता। ३ योगशास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का स्थिर न होना।

अनवहित—वि० [स०] असावधान। बेखबर। बेपरवाह।

अनवह्वर—वि० [सं०] जो टेढा न हो। सीधा। ऋजु [को०]।

अनवाँसना—क्रि० स० [स० नव+हिं० वासन [नए बरतन को पहले पहल काम मे लाना।

अनवाँसा—सज्ञा पु० [सं० * अन्नकाडाश > प्रा० * अन आ अश > अनवा अस अथवा स० अण्वश] १ कटी हुई फसल का एक बडा मुट्ठा या पूला। आँसा। २ एक अनवाँसी भूमि मे उत्पन्न अन्न।

अनवाँसी—सज्ञा स्त्री० [स० अणु=छोटा+वश > बाँसा=नाप] एक बिस्वे का $\frac{१}{२०}$ वाँ भाग। बिस्वासी का बीसवाँ हिस्सा।

अनवाद—सज्ञा पुं० [स० अन्=बुरा+वाद=वचन] बुरा वचन। कटु भाषण। कुबोल। उ०—कूँजरी ऊजरी बाल बहेवा सो मेवा के मोल बढावति झूठे। रूप की साठि के तौलति घाटि बदै अनवाद बदै फन जूठे।—देव (शब्द०)।

अनवाप्त—वि० [सं०] न पाया हुआ। अप्राप्त। अलब्ध।

अनवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अप्राप्ति। अनुपलब्धि। न पाना।

अनवाय—वि० [सं०] अबाध। निर्विघ्न [को०]।

अनवेक्ष—वि० [स०] १ लापरवाह। २ उदासीन [को०]।

अनवेक्षक—वि० [स०] दे० 'अनवेक्ष' [को०]।

अनवेक्षण—सज्ञा पु० [स०] १ असावधानता। २ निरखने या निरीक्षण का अभाव। ३ उदासीनता [को०]।

अनवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनवेक्षण' [को०]।

अनशन—सज्ञा पुं० [स०] १ उपवास। अन्नत्याग। निराहार व्रत। २ जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग। ३ राजनीतिक दबाव डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना।

अनश्वर—वि० [स०] नष्ट न होनेवाला। अमिट। अटल। स्थिर। कायम रहनेवाला।

अनसखडी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसखरी'। उ०—बालभोग को महाप्रसाद अनसखडी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी।—दो सौ बावन०, भा० १ पृ० ८।

अनसखरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन=अन्न+सखरी=सस्कृत] निखरी। पक्की रसोई। घी मे पका हुआ भोजन।

अनसत्त—वि० [हिं० अन+सत्त] असत्य। झूठ। उ०—घर जाऊँ तु सोवत हैं, फिर जाउँ तौ नद पै खात बरा दधि प्यारे। सपने अनसत्त किधौं सजनी घर बाहिर होत बडे घरवारे। केशव शब्द०)।

अनसन—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनशन'। उ०—उसके लिये हमको अनसन करना होगा।—मैला०, पृ० १६।

अनसनमाना—वि० [हिं० अन+सनमान] असमानित। उ०—कैइक रहे ताहि अरमाने, अक्रूरादिक अनसनमाने।—नद०, ग्र०, पृ० २२४।

अनसमझ—वि० [हिं० अन+समझ] नासमझ। उ०—तू इतना अनसमझ क्यो है प्रमोद।—त्याग०, पृ० २०।

अनसमझा—वि० [हिं० अन+समझ] १ जिससे न समझा हो। नासमझ। उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का और।—कबीर (शब्द०)। २ अज्ञात। बिना समझा हुआ।

अनसमुझा—वि० [हिं०] दे० 'अनसमझा'। उ०—अनसमुझे अनुसोचनो अवसि समुझिये आपु।—स० सप्तक, पृ० ५२।

अनसहत—वि० [हिं० अन+सहना] असह्य। असहनीय। जो सहा न जाय। उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै मत्त गजराजन के घटा गरजत ही।—चरण (शब्द०)।

अनसाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अनखाना'।

अनसुनी—वि० [हिं० अन+सुनना] अश्रुत। बेसुनी। बिना सुनी हुई।

मु०—अनसुनी करना=जानबूझ कर सुनी हुई बात को बेसुनी करना या टालना। आनाकानी करना। बहटियाना।

अनसूय—वि० [सं०] असूया रहित। पराए गुण मे दोष न देखनेवाला। अछिद्रान्वेषी।

अनसूयक—वि० [स०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पराए गुण मे दोष न देखना। गुणग्राहिता। २ अत्रि मुनि की स्त्री।

अनसूयु—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूरि—सज्ञा पुं० [स०] बुद्धिमान् व्यक्ति। विद्वान् व्यक्ति [को०]।

अनसोची—वि० [हिं० अन+सोची]बिना सोची हुई। उ०—प्रियतम अनसोची ध्यान में भी न आई।—प्रिय प्र०, पृ० ७७।

अनस्त—वि० [स०] जो अस्त न हो। अस्त न होनेवाला। उ०—अनस्त अस्त ह्वै गम दुरुस्त रस्त छोडही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०६।

अनस्तमित—वि० [स०] १ जो अस्त न हुआ हो। २ जिसका पतन न हो [को०]।

अनस्तित्व—वि० पुं० [स०] अविद्यमानता। सत्ता का अभाव। उ०—घू घू करता नाच रहा था अनस्तित्व का ताडव नृत्य।—कामायनी, पृ० २०।

अनस्थ—वि० [स०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थि—वि० [स०] अस्थिहीन। बिना हड्डी का [को०]।

अनस्थिक—वि० [स०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनह—सज्ञा पुं० [स० अनहन्] १ दिन का अभाव। २ अदिन। बुरा दिन [को०]।

अनहक्क—वि० [हिं० अन+अ० हक] बिना हक या सत्य या ईश्वर का। उ०—हरिया एकै हक्क बिन सब दिन जाहि अनहक्क।—राम० धर्म०, पृ०, ६६।

अनहड—वि० हिं० अन+स० घट] १ विचित्र। २ विकट। कठिन। उ०—मीवा ब्रह्ममरूप प्रगट पर अनहड बडा तासु मिलना।—मीखा० बानी, पृ० ७०।

अनहद[1]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—द्वार न धरूँ पवन न रोकूँ नहिं अनहद उरझावै।—कबीर श०, पृ० ४६।

अनहद[2]—वि० [हिं० अन=अभाव+अ० हद=सीमा] सीमारहित। असीम। उ०—ऊधो राखियै वह बात। कहन हौ अनगढी अनहद, सुनत ही चपि जात।—सूर०, १०।३६०२।

अनहद नाद—सज्ञा पुं० [स० अनाहत+नाद] योग का एक साधन। वह नाद या शब्द जो दोनो हाथो के अँगूठो से दोनो काना की लवें बद करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है। उ०—हृदय कलम तें जोति विराजै। अनहदनाद निरतर बाजै।—सूर०, १०।४०६४।

अनहद्द[1]Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अनहद'। उ०—(क) कृत व्यक्त रक्त स्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द भुग्र।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२।

अनहद्द[2]Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' उ०—सहस और द्वादहो रुद्र हे मग मे करत किलोल अनहद्द बजाई।—कबीर म०, पृ० ५७६।

अनहारⓊ†—वि० [हिं० √आन+हार (प्रत्य०)] आननेवाला। ले आनेवाला। उ०—खेलत रहनौं बाबा चौवरिया आइ गए अनहार हो—धरम०, ३४।

अनहितⓊ—सज्ञा पु० [हिं० अन+हित] १ अहित। अपकार। बुराई। हानि। अमगल। उ०—अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २ अहितचिंतक। अपकारी। शत्रु। उ०—बदउँ सत समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।—तुलसी (शब्द०)।

अनहितू—वि० [हिं० अन+हितू 'मित्र'] अहितचिंतक। अमित्र। अबधु। शत्रु। अपकारी। बुराई सोचने या करनेवाला।

अनहुआ—वि० [हिं०+हुआ] अघटित। जो न हुआ हो। उ०—अनहुआ उसे नही किया जा सकता।—सुखदा, पृ० ११३।

अनहूवाⓊ—वि० [हिं० अन+भूत प्रा० हूव, हूअ] अनहोनी। अलौकिक। उ०—अनहूवे की बात कछू प्रकट भई सी जान।—भूषण ग्र०, पृ० ५८।

अनहोता—वि० [हिं० अन+होना] [स्त्री० अनहोती] १ जिसे कुछ न हो। दरिद्र। गरीब। निर्धन। उ०—'हे सखी तेरे इस अग न को अच्छे गहने कपडे चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोती को हैं।—शकुतला, पृ० ६६। २. अनहोना। अलौकिक। अचभे का। उ०—पलुही मैं होती अनहोती करतु है।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ४४३।

अनहोनी[1]—वि० स्त्री० [हिं० अन+होन,] न होनेवाली। अलौकिक। असभव। अनहोती। अचभे की।

अनहोनी[2]—सज्ञा स्त्री० असभव बात। अलौकिक घटना। उ०—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी सुनी न बात। या तो आहि खिलौना सब को खान कहत तिहि तात।—सूर०, १०।१८६

अनाई पठाई—सज्ञा स्त्री० [सं० √आनय+हिं० ई (प्रत्य०)+सं० √प्रस्था>पठ्ठाहिं० ई (प्रत्य०)] विवाह हो जाने पर दुलहिन के तीन बार ससुराल से बाप के घर आने जाने के पीछे बराबर आने जाने को अनाई पठाई कहते है।

अनाकनीⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अनाकानी'। उ०—(क) नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यौ मनौ तारन विरद, बारक बारनु तारि।—बिहारी र०, दो० ११। (ख) कीनी अनाकनी औ मुख मोरि सुजोरि भुजा, भटू भेटत ही बन्यौ।—देव (शब्द०)।

अनाकानी—सज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] सुनी अनसुनी करना। जान बूझकर बहलाना। टालमटोल। बहटियाना। उ०—केती अनाकानी कैजैमानी अँगिरानी पै न अतर की पीर बहराए बहरानी है।—भिखरी० ग्र०, भा० १ पृ०, १४६।

अनाकार—वि० [सं०] १ निराकार। आकाररहित। २ परमात्मा का एक विशेषण (को०)।

अनाकाल—सज्ञा पुं० [स०] अकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अनाकालभृत सज्ञा पु० [सं०] अकाल पडने पर दास कर्म करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अनाक्रात—वि० [सं० अनाक्रान्त[[स्त्री० अनाक्रान्तता] जो अक्रात न हो। अपीडित। अरक्षित।

अनाक्रातता—सज्ञा पु० [सं० अनाक्रान्तता] रक्षा। अपीडा। आक्रातता का अभाव।

अनाखर—वि० [स० अनक्षर] जो छील छालकर दुरुस्त न किया गयो हो। बेडौल। बेढगा।

अनागत[1]—वि० [सं०] १ न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान। अप्राप्त। २ आगे आनेवाला। भावी। होनहार। ३ अपरिचित। अज्ञात। बेजाना हुआ। ४ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—(क) सुने हैं श्याम मधुपुरी जात। सकुचनि कहि न सकति काहू सो गुप्त हृदय की बात। सकित बचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात।—सूर० (शब्द०)। ५ अनादि। अजन्मा। उ०—नित्य अखड अनूप अनागत अविगत अनघ अनत। जाको आदि कोऊ नाहिं जानत कोउ न पावत अत।—सूर० (शब्द०)।

यौ०—अनागत विधाता।

६ अपूर्व। अद्भुत। उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोभागुन अमित अनागत।—सूर०, १०।२१२३।

अनागत[2]—सज्ञा पुं० सगीत के अतर्गत ताल का एक भेद। उ०—सूर सति तान बधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०, १०।६४८।

अनागतविधाता—सज्ञा पुं० [सं०] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला व्यक्ति। अग्रसोची या दूरदेश आदमी।

अनागतार्तवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। गोरी। बालिका। जो कन्या रजोधर्मिणी न हुई हो। अजातरजस्का।

अनागम—सज्ञा पुं० [सं०] आगमन का अभाव। न आना। उ०—सोचै अनागम कारन कत को मोचै उसासनि आँसहू मोचै।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अनागस—वि० [सं० अनागस्] पापरहित। निर्दोष। निर्मल। उ०—सूराभक्त वह मुक्त अनागस।—सधुज्वाल, पृ० १२।

अनाघात--सज्ञा पुं० [स०] सगीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन मे चार मात्राओ के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार[1]--सज्ञा पु० [स०] १ कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निंदित आचरण। कुव्यवहार। २ कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

अनाचार[2]--वि० १ जो विशिष्ट न हो। २ जो भद्र न हो। अभद्र। ३ विचित्र [को०]।

अनाचारिता--सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुष्टता। दुराचारिता। निंदित आचरण। २ कुरीति। कुचाल।

अनाचारी--वि० [स० **अनाचारिन्**] [स्त्री० **अनाचारिणी**] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज--सज्ञा पुं० [स० **अन्नाद्य**, प्रा० **अन्नज्जु > अनाज**] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त--वि० [स०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी--वि० [स० **अनाज्ञप्तकारिन्**] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता--सज्ञा स्त्री० [स०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी--वि० [स० **अनाज्ञाकारिन्**] [**अनाज्ञाकारिणी**] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। बेकहा।

अनाज्ञात--वि० [स०] १ अज्ञात। २ । पूर्व ज्ञात से बढा हुआ [को०]।

अनाडी--वि० पु० [स० **अनार्य=अपठित, अशिक्षित प्रा० अनारिय** अथवा स० **अज्ञानी प्रा० अण्णाणी**] १ नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०--अनाडी के हाथ पडा मोती की सी कपूरमजरी की दशा है।--भारतेंदु ग्र, भा० १, पृ० ३९८। २ जो निपुण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे--यह किसी अनाडी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाढ्य--वि० [वि० स्त्री० **अनाढ्या**] असपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कगाल। गरीब।

अनातत--वि० [स०] १ जो फैला हुआ न हो। २ जो खीचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप[1]--सज्ञा पु० धूप का अभाव। छाया।

अनातप[2]--वि० १ आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २. ठडा। शीतल।

अनातम--वि० [स० **अनात्म**] दे० 'अनात्म'। उ०--सुनि शिष्य यहै मत साखहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै।--सुदर० ग्र०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर--वि० [स०] [स्त्री० **अनातुरा**] १ जो आतुर या उत्कठित न हो। २ उदासीन। ३ अक्लात। ४ अविचलित। धीर। ५ स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म[1]--वि० [स० **अनात्मन्**] आत्मारहित। जड।

अनात्म--सज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पचभूत।

अनात्मक--वि० [स०] १. जो यथार्थ न हो २ क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या ससार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख--सज्ञा पु० [स०] १ अज्ञानजनित दुःख। सासारिक आधिव्याधि। भय। बाधा। २ जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनो के दुःख।

अनात्मज्ञ--वि० [स०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म--सज्ञा पु० [स०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन--वि० [स०] १ जो अपना न हो। २ जो काम या लाभ के लिये न हो। ३ निरर्थार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा--सज्ञा स्त्री० [स०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नही है [को०]।

अनात्मवाद--सज्ञा पुं० [स०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धात। जडवाद। उ०--मैंने भी तीर्थकरो के मुख से आत्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।--इद्र०, पृ० १२५।

अनात्मवाद--वि० [स०[अमयमी [को०]।

अनात्मवेदी--वि० [सं० **अनात्मवेदिन्**] जो आत्मविद् न हो। आत्मज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसपन्न--वि० [सं० **अनात्मसम्पन्न**[मूर्ख। गुणशून्य [को०]।

अनात्म्य[1]--वि० [स०] अशरीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य[2]--सज्ञा पु० १ अपनो या परिवारवालो के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २ शरीर सबधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यतिक--वि० [सं०] जो नित्य न हो। २ जो अतिम न हो। ३ पुन आवर्तनशील [को०]।

अनाथ--वि० [स० [[स्त्री० **अनाथा**] १ नाथहीन। प्रभुहीन। बिना मालिक का। उ०--नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।--तुलसी, ग्र० पृ० ५००। २ जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। बिना माँ बाप का। लावारिस। जैसे--'अनाथ बालको की रक्षा के लिये उन्होने दान दिया (शब्द)। ३ असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४ दीन। दुखी। मुहताज।

यौ०--**अनाथालय**।

अनाथसभा--सज्ञा स्त्री० [स०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी--वि० [स० **अनाथानुसारिन्**] [स्त्री० **अनाथानुसारिणी**] सहायतार्थ अनाथो का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०--अनाथ सुन्यो मैं अनाथानुसारी। वसै चित्त दडी जटी मुडधारी।--केशव (शब्द०)।

अनाथालय--सज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुखियो और असहायो का पालन हो। मुहताजखाना। लगरखाना। २ लावारिस बच्चो की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम।

अनाथाश्रम--सज्ञा पुं० [स० **अनाथ+आश्रम**] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायँ।

अनाद--सज्ञा पु० [स०] १ ध्वनियो मे नाद अश का अभाव। २ वे अघोष ध्वनियाँ जिनमे नादाश नही पाया जाता [को०]।

अनाददान--वि० [स०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर--सज्ञा पु० [स०] १ आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २ तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालकार।

विशेष--इसमे प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे--सर

के तट लखि कामिनी अलि पंकजहि विहाय। ताके अधरन दिसि चल्यो, रसमय गूँज सुनाय (शब्द०)।

अनादरण—संज्ञा पु० [सं०] असम्मानपूर्ण व्यवहार [को०]।

अनादरणीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १ आदर के अयोग्य। असम्माननीय। २ तिरस्कार योग्य। निंद्य। बुरा।

अनादरित—वि० [सं०] वह जिसका अपमान हुआ हो। अपमानित।

अनादरी—वि० [सं० अनादरिन्] जो आदरयुक्त न हो [को०]।

अनादि—वि० [सं०] जिसका आदि न हो। जो सब दिन से हो। जिसके आरंभ का कोई काल या स्थान न हो। स्थान और काल से अबद्ध।

विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति' इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है।

अनादित्व—संज्ञा पु० [सं०] अनादि होने का भाव। नित्यता।

अनादिनिधन—वि० [सं०] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनादिमान्—वि० [सं० अनादिमत्] जिसका आदि न हो [को०]।

अनादिमध्यांत—वि० [सं० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०]।

अनादिष्ट—वि० [सं०] बिना आदेश का।

अनादृत—वि० पु० [सं०] जिसका अनादर हुआ हो। अपमानित।

अनादेय—वि० [सं०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०]।

अनादेश—संज्ञा पु० [सं०] आदेश का अभाव। आदेश न होना [को०]।

अनादेशकर—वि० [सं०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करने-वाला [को०]।

अनाद्यंत[1]—वि० [सं० अनाद्यन्त] जिसका आदि तथा अंत न हो। उ०—अमरों के उस अनाद्यंत आनंदलोक में।—युगपथ, पृ० ११५।

अनाद्यंत[2]—संज्ञा पु० शिव [को०]।

अनाद्य[1]—वि० [सं० अनादि] दे० 'अनादि' [को०]।

अनाद्य[2]—वि० [सं० अन्+√अद्>आद्य] जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनाद्यनंत[1]—वि० [सं० अनाद्यनन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनाद्यनंत[2]—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०]।

अनाधार—वि० पु० [सं०] आधाररहित। निरवलंब। बेसहारा।

अनाधि—वि० [सं०] चिंता से रहित [को०]।

अनाधृष्ट—वि० [सं०] १ जो जीतने योग्य न हो। अजेय। २ जो नियंत्रित या अधीन न हो। अनियंत्रित। ३ अक्षुण्ण [को०]।

अनाधृष्य—वि० [सं०] दे० 'अनाधृष्ट' [को०]।

अनाना—क्रि० स० [सं० आनयन] १ लाना। बुलाना। उ०—(क) जौ कबहूँ हठि नींद अनैये, साँवरे पिय सपने मे पैये।—नंद० ग्र०, पृ० १७१। (ख) केलि रमन मे मिथुन को सुखनींद अनाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१४। २ मँगाना। उ०—लंक दीप के सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई।—जायसी ग्र०, पृ० १२।

अनानुपूर्व्य—संज्ञा पु० [सं०] १ अनुक्रम मे न आना। अनुक्रम का अभाव। किसी समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक अलग करना [को०]।

अनापद—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०]।

अनापशनाप—संज्ञा पुं० [देश०] १ ऊटपटाँग। अटसट। आर्यवार्य। अडबड। २ असंबद्ध प्रलाप। निरर्थक बकवाद।

अनापा(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० √नाप] १ बिना नापा हुआ २ असीम। अतुल।

अनापि[1]—वि० [सं०] बिना मित्र का [को०]।

अनापि[2]—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।

अनाप्त—वि० [सं०] १ अप्राप्त। अलब्ध। २ अविश्वस्त। ३ असत्य। ४ अकुशल। ५ अनिपुण। अनाड़ी। ६ अनात्मीय। अबंधु।

अनाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०]।

अनाप्त्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनाप्लुत—वि० [सं०] जो स्नात या धुला न हो [को०]।

अनाप्लुतांग—वि० [सं० अनाप्लुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०]।

अनाबाध—वि० [सं०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०]।

अनाबिद्ध—वि० [सं० अनाबिद्ध] १ अनबिधा। अनछेदा। बिना छेद का। २ चोट न खाया हुआ।

अनाभ्युदयिक—वि० [सं०] दुर्भाग्यपूर्ण। जो मंगलमय न हो [को०]।

अनाम—वि० [सं० अनामन्] [वि० स्त्री० अनामा] १ बिना नाम का। उ०—आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा।—कबीर सा०, पृ० ८१२। अप्रसिद्ध। २ अप्रख्यात।

अनामय—वि० [सं०] निरामय। रोगरहित। नीरोग। चंगा। स्वस्थ। तंदुरुस्त। २ दोषरहित। निर्दोष। बेऐब। उ०—जय भगवंत अनंत अनामय।—मानस ७।३८।

अनामय[2]—संज्ञा पुं० नीरोगता। तंदुरुस्ती। २ कुशल क्षेम। उ०—गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है।—शकुंतला, पृ० ८९।

अनामा[1]—वि० स्त्री० [सं०] १ बिना नाम की। २ अप्रसिद्ध।

अनामा[2]—संज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। अनामिका।

अनामिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली। अनामा।

अनामिका[2]—वि० स्त्री० [सं०] बिना नाम की। अप्रसिद्ध। उ०—जो प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका।—अनामिका, पृ० २१।

अनामिल—वि० [सं० अनाविल] स्वच्छ। निर्मल। उ०—ओस के धोए अनामिल पुष्प जो खिल किरण चूमे।—गीतिका, पृ० ९४।

अनामिष—वि० [सं०] निरामिष। मांसरहित।

अनामी[1]—वि० [सं० अनाम+हिं० ई (प्रत्य०)] अनाम संबंधी। उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, तो नाम अनामी धारा है।—कबीर श०, पृ० ६०।

अनामी[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा। परब्रह्म। उ०—परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै।—घट०, पृ० ३७४।

अनामृत—वि० [सं०] जो मृत्युवश न हो [को०]।

अनामेल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एनामेल'।

अनायक—वि० [स०] १ नायकरहित। २ जो व्यवस्थित न हो [को०]।

अनायत—संज्ञा वि० [स०] १. जो नियंत्रित न हो। २ अनिवारित। ३ अनाश्रित। बेसहारा। ४ जो विच्छिन्न न हो। अविच्छिन्न। ५ संलग्न। ६ बिना लंबाई का [को०]।

अनायतन[1]—संज्ञा पु० [स०] वह स्थान जो विश्रामस्थान या वेदी न हो [को०]।

अनायतन[2]—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०]।

अनायत्त—वि० [स०] [स्त्री० अनायत्ता] १ अनधीन। अवशीभूत। २ स्वतंत्र। खुद मुख्तार।

अनायास—क्रि० वि० [स०] १. बिना प्रयास। बिना परिश्रम। बिना उद्योग। बैठे बिठाए। उ०—जोई तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान।—मानस ७।१०९। २ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला।—मानस, २।२९६।

अनायुष्य—वि० [स०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०]।

अनारंभ—वि० [स० अन्+आरम्भ] आरंभरहित। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी।—मानस, ७।४६।

अनार[1]—संज्ञा पुं० [फा०] १ एक पेड और उसके फल का नाम। दाडिम।

विशेष—यह पेड १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है। इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते हैं। इसके फूल लाल होते हैं। फल के ऊपर के कडे छिलके को तोडने से रस से भरे लाल सफेद दाने निकलते हैं जो खाए जाते हैं। फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है। गर्मी के दिनों में पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं। फूल रंग बनाने और दवा के काम में आता है। फल का छिलका अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों में दिया जाता है। पेड की छाल से चमडा सिझाते हैं। पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाडियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है। इसका कलम भी लगता है। प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं। काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध हैं।

२ एक आतशबाजी।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमें लोहचून और बारूद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड सा बन जाता है।

यौ०—अनारदाना।

विशेष—दाँतों की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं।

३ वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं।

अनार(यू)[2]—संज्ञा पुं० [स० अन्याय] अनीति। अन्याय।

अनारकिस्ट—संज्ञा पु० [अं० एनार्किस्ट] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी।

अनारज(यू)—वि० [हिं०] दे० 'अनार्य'। उ०—भावै देह छूटौ देश आरज अनारज मैं भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ६४२।

अनारत[1]—वि० [स०] १ निरंतर। अनवरत। २ नित्य। स्थायी [को०]।

अनारत[2]—संज्ञा पु० अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०]।

अनारदाना—संज्ञा पु० [फा० अनारदानह्] १ खट्टे अनार का सुखाया हुआ दाना। २ रामदाना।

अनारपन(यू)—संज्ञा पुं० [हिं० अनारी+पन (प्रत्य०)] गँवारपन। नासमझी। अनाडीपन। उ०—को कब जी सिख देय जू सैन नारगी बान। नवल कुवरि दरि जात हो यह अनारपन जान।—स० सप्तक, पृ० २३०।

अनारभ्य—वि० [स०] जो आरंभ करने योग्य न हो [को०]।

अनारी[1](यू)—वि० [हिं०] दे० 'अनाडी'। उ०—न्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी, बरनै अनारी ये कटारी तरवारी है।—बिहारी० ग्र०, भा० २, पृ० १०२।

अनारी[2](यू)—वि० [हिं० अनार+ई (प्र०)] अनार के रंग का। लाल।

अनारी[3]—संज्ञा पुं० १ लाल रंग की आँखवाला कबूतर। २ एक प्रकार का पकवान। भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा।

अनारोग्य—वि० [स०] १ जो स्वस्थ न हो। २ स्वास्थ्य के लिये हानिकर [को०]।

अनारोग्यकर—वि० [स०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०]।

अनार्की—संज्ञा स्त्री० [अं० एनार्की] १ राज्य या राजा न रहने की अवस्था। शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। २ एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनार्जव—संज्ञा पु० [स०] १ सिधाई का अभाव। टेढापन। २ सरलता का अभाव। अऋजुता। कुटिलता। कपट।

अनार्तव[1]—वि० [स०] बिना ऋतु का। बेमौसम। अनवसर।

अनार्तव[2]—संज्ञा पु० स्त्रियों के ऋतुधर्म का अवरोध। रजोधर्म की रुकावट।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [स०] जो ऋतुमती न हो।

अनार्य—वि० [स०] १ आर्य जाति से रहित। २ अश्रेष्ठ [को०]।

अनार्य—संज्ञा पु० [स्त्री० अनार्या] १ वह जो आर्य न हो। २. म्लेच्छ।

अनार्यक—संज्ञा पु० [सं०] अगुरु की लकडी [को०]।

अनार्यकर्मी—वि० [सं० अनार्यकर्मिन्] आर्योचित कर्म न करने वाला [को०]।

धनार्यज[1]—संज्ञा पुं० [स०] अगुरु का पेड [को०]।

अनार्यज[2]—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १ जो आर्य से उत्पन्न न हो। २ अनार्य देश में उत्पन्न [को०]।

अनार्यजुष्ट—वि० [सं०] जो अनार्य द्वारा आचरित या व्यवहृत हो [को०]।

अनार्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्य धर्म का अभाव। २ अश्रेष्ठता। ३. लघुता। नीचता। ४ म्लेच्छता।

अनार्यतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता [को०]।

अनार्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनार्यता'।

अनार्ष—वि० [सं०] जो ऋषिप्रणीत न हो। जो ऋषिकाल का बना हुआ न हो।

अनार्षेय—वि० [सं०] जो आर्ष या वैदिक न हो [को०]।

अनालंब[1]—[सं० अनलम्ब] अवलंबहीन [को०]।

अनालंब[2]—संज्ञा पुं० अवलंब का अभाव [को०]।

अनालंबन—वि० [सं० अनालम्बन] १ निरवलंब। २ निराश [को०]।

अनालंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बिन] शिव का एक वाद्य [को०]।

अनालंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बुका] दे० 'अनालमुका' [को०]।

अनालभुका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्भुका] रजस्वला स्त्री० [को०]।

अनालस्य—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

अनालापी[1]—वि० [सं०] १ मितभाषी। कम बोलनेवाला [को०]।

अनालाप[2]—संज्ञा पुं० १ मितभाषण। २ अलाप या बातचीत का अभाव [को०]।

अनालोचित—वि० [सं०] १ न देखा हुआ। २ जो विचारित या विवेचित न हो। ३ जिसकी आलोचना न की गई हो [को०]।

अनालोच्य—वि० [सं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०]।

अनावरण—संज्ञा पुं० [सं०] आवरण का अभाव।

अनावर्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न लौटना। २ पुनर्जन्म का अभाव। ३ मोक्ष [को०]।

अनावर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अनावृष्टि। अवर्षा। मेघ के जल का अभाव। सूखा

अनावश्यक—वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता न हो। अप्रयोजनीय। गैरजरूरी।

अनावश्यकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवश्यकता का न होना। अप्रयोजनीय। गैरजरूरत।

अनाविद्ध—वि० [सं०] १ जो विद्ध या विधा न हो [को०]।

अनाविल—वि० [सं०] १ स्वच्छ। निर्मल। साफ। २ स्वास्थ्यकर (देश०)। ३ निष्पंक। पंकरहित। [को०]।

अनावृत—वि० [सं०] [स्त्री० अनावृता] १ जो ढँका न हो। आवरण रहित। खुला। २ जो घिरा न हो।

अनावृत्त—वि० [सं०] १ न लौटा हुआ। २ पीछे न हटा हुआ। ३ जिसकी आवृत्ति न की गई हो। ४ न चुना हुआ [को०]।

अनावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर धारण न करना। मोक्ष [को०]।

अनावृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा का अभाव। अनावर्षण। अवर्षा। सूखा। उ०—सब जादौ मिलि हरि सौं यह कह्यौ सुफलक सुत जहँ होई। अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहीं यह जानत सब कोई।—सूर०, १०।४१९१।

अनावेदित—वि० [सं०] जो ज्ञापित न हो। जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०]।

अनाश—वि० [सं०] १ निराश। २ जिसका नाश न हो। ३ जो नष्ट न किया गया हो। ४ जीवित [को०]।

अनाशक[1]—वि० [सं०] १ अनश्वर। २ नशा या हानि न करनेवाला। २ उपवास करनेवाला। २ भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०]।

अनाशक[2]—संज्ञा पुं० उपवास [को०]।

अनाशकायन—संज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०]।

अनाशस्त—वि० [सं०] जो प्रशंसित न हो [को०]।

अनाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अभाव। नैराश्य [को०]।

अनाशी—वि० [सं० अनाशिन्] १ जो नष्ट न हो। २ न खानेवाला [को०]।

अनाशु—वि० [सं०] मंद। सुस्त। जो तेज न हो। २ अनश्वर [को०]।

अनाश्य—वि० [सं०] अनश्वर [को०]।

अनाश्रमी—वि० [सं० अनाश्रमिन्] १ आश्रमभ्रष्ट। आश्रम धर्म से च्युत। गार्हस्थ्य आदि चारो आश्रमों से रहित। २. पतित। भ्रष्ट।

अनाश्रय—वि० [सं०] निराश्रय। बेसहारा। निरवलंब अनाथ। दीन।

अनाश्रित—वि० [सं०] १ आश्रयरहित। निरवलंब। बेसहारा। उ०—नमालेगा हमें अब कौन? यों अनाश्रित रह सका कब कौन।—साकेत, पृ० १७७। २ जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे।

अनास—वि० [सं०] बिना नाक का। चपटी नाकवाला।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३५।

अनासक्त—वि० [सं०] जो किसी विषय में आसक्त न हो। उ०—त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह।—साकेत, पृ० २५०।

अनासक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य। आसक्ति या अनुरक्ति का अभाव। उ०—मैं कोमल वर्ग की मोहिनी शक्ति से निष्पन्न हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ।—मान०, भा०१, पृ० २८१।

अनासती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय। कुअवसर (डिं०)।

अनासादित—वि० [सं०] १ अप्राप्त। २ जो आक्रांत न हो। ३ जो घटित न हो। ४ अस्तित्वरहित [को०]।

अनासादितविग्रह—वि० [सं०] जिसे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०]।

अनासाद्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनासिक—वि० [सं०] बिना नाक का। नकटा।

अनास्थ—वि० [सं०] १ आस्थारहित। २ उदासीन [को०]।

अनास्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्रद्धा। आस्था का अभाव। २ अनादर। अप्रतिष्ठा। ३ अवज्ञा। ४ उदासीनता।

अनास्राव—वि० [सं०] बिना क्लेश का। क्लेशरहित [को०]।

अनास्वाद[1]—वि० [सं०] स्वादहीन। विरस [को०]।

अनास्वाद[2]—संज्ञा पुं० स्वाद का अभाव। विरसता। नीरसता। [को०]

अनास्वादित—वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०]।

अनास्वाद्य—वि० [सं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०]।

अनाह—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अफरा। पेट फूलना।

अनाहक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नाहक'। उ०—चंद्रमुखी मुनि मद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक।—घनानंद, पृ० १०५।

अनाहक्क⑤—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनाहक'। उ०—अनाहक चदेल नृप, क्यो मडित महि रार।—पृ० रा०, पृ० ४०।

अनाहत[1]—वि० [स०] १ जिसपर आघात न हुआ हो। अक्षुब्ध। २ अगणित। जिसका गुणन न किया गया हो।

अनाहत[2]—सज्ञा पुं० १ शब्दयोग मे वह शब्द या नाद जो दोनो हाथो के अँगूठो से दोनो कानो की लवे बद करके ध्यान करने से सुनाई देता है। २ हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रो मे से एक। इसका स्थान हृदय, रग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं। इसके दलो की सख्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं। ३ नया वस्त्र। ४ द्वितीय वार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर मे देना। दोबारा किसी चीज का अमानत मे दिया जाना।

अनाहतनाद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अनाहत'। उ०—गूँजता तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, सुनता है दास यह भक्तिपूर्वक नत-मस्तक।—अनामिका, पृ० १००।

अनाहदवाणी—सज्ञा स्त्री० [स० अनाहत+वाणी] आकाशवाणी। देववाणी।

अनाहत शब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ एक भीतरी शब्द जिसे योगी सुनते हैं। २ ओऽम की ध्वनि [को०]।

अनाहार[1]—सज्ञा पुं० [स०] भोजन का अभाव या त्याग।

अनाहार[2]—वि० १ निराहार। जिसने कुछ न खाया हो। जैसे—आज हम अनाहार रह गए (शब्द०)। २ जिसमे कुछ खाया न जाय। जैसे, अनाहार व्रत।

अनाहारमार्गणा—सज्ञा स्त्री० [स०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत।

अनाहारी—वि० [स० अनाहारिन्] १ आहार न लेनेवाला। २ उपवास या अनशन करनेवाला [को०]।

अनाहार्य—वि० [स०] १ जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो। २ जो खाने योग्य न हो [को०]।

अनाहिताग्नि—वि० [स०] जिसने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो। जो अग्निहोत्री न हो। निरग्नि।

अनाहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ यज्ञ का अभाव। २ अविहित यज्ञ [को०]।

अनाहूत—वि० [स०] बिना बुलाया हुआ। अनामत्रित। अनिमत्रित उ०—धिक्। आए तुम यो अनाहूत।—प्रपरा, पृ० २०२।

अनाह्लाद[1]—सज्ञा पुं० [स०] आह्लाद या आनद का अभाव [को०]।

अनाह्लाद[2]—वि० आह्लादरहित। मजीदा [को०]।

अनाह्लादित—वि० [स०] जो हर्षित या आनदित न हो [को०]।

अनिगित—वि० [स० अन्+इङ्गित=हिलाना, काँपना] १ अकपित। निश्चल। उ०—काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे कर दो अनिगित, तब निवासस्थान मे अब लौ लगे इसकी अशकित।—क्वासि, पृ० २। २ अनिर्दिष्ट। इगित न किया हुआ। जिसकी ओर इशारा न हो (को०)।

अनिंद⑤—वि० [हिं०] दे० 'अनिंद्य'। उ०—बैठी फिरि पूतनी अनूतरी फिरग कैसी पीठी दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१।

अनिंदित—वि० पुं० [स० अनिन्दित] [स्त्री० अनिन्दिता] १ अपकीर्ति बदनामी से बचा हुआ। २ निर्दोष। उत्तम।

अनिंदनीय—वि० पुं० [स० अनिन्दनीय] [स्त्री० अनिंदनीया] जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। निष्कलक।

अनिंद्य—वि०पुं० [स० अनिन्द्य] [वि० स्त्री० अनिंद्या] १ जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। २ उत्तम। प्रशसनीय। अच्छा।

अनिंद्र—वि० [स० अनिन्द्र] इद्र की पूजा या उपासना न करनेवाला [को०]।

अनि⑤—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—दै द्रव्य रह्यौ माता सिधाय। इह शहर लखि अनि सहर जाय।—पृ० रा०, ६।१३६।

अनि अनी⑤—वि० [स० अन्य+अन्य] अन्यान्य। और और। उ०—अनि अनी सुभट बैठे सु आइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनिआई⑤—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'।

अनिक⑤—वि० [स० अनेक, प्रा० अणिक] दे० 'अनेक'। अनत्य। उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी भूमि मिलाइ। अनिक सियाने पच गए ना निरवारी जाय।—कबीर ग्र०, पृ० २५५।

अनिकेत—वि० [स०] १ स्थानरहित। बिना घर का। उ०—अनारभ अनिकेत अमानी।—मानस, ७।४६। २ सन्यासी। परिव्राजक। ३ खानाबदोश। क्रम फिरकर अनियत स्थानों मे गुजारा करनेवाला।

अनिकेतन—वि० [स० अ+निकेतन] दे० 'अनिकेत'। उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें सुख पीर।—आराधना, पृ० ७२।

अनिक्षिप्तधुर—सज्ञा पुं० [स०] १ एक बोधिसत्व का नाम। २ निकाला हुआ बौद्ध भिक्षु [को०]।

अनिक्षिप्त सैन्य—सज्ञा पुं० [स०] तोडी या सेवा से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनिक्षु—सज्ञा पुं० [स०] जो ईख न हो। ईख जैसी लबी घास या नरकुल [को०]।

अनिगीर्ण—वि० [स०] १ जो निगला न गया हो। २ जो छिपा न हो। प्रकट। व्यक्त [को०]।

अनिग्रह[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अनवरोध। बधन का अभाव। २ दड या पीडा का न होना। ३ वाद या तर्क मे हार का अस्वीकरण [को०]।

अनिग्रह[2]—वि० १ बधनरहित। बेरोक। २ असीम। बेहद। ३ पीडारहित। नीरोग। ४ जिसने दड न पाया हो। अदडित। ५ जो दड के योग्य न हो। अदड्य।

अनिच्छ—वि० [स०] आकाक्षारहित। अनिच्छुक [को०]।

अनिच्छक—वि० [स०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] वि० अनिच्छित, अनिच्छुक] १ इच्छा का अभाव। चाह का न होना। अरुचि। २ अनिवृत्ति।

अनिच्छित—वि० [स०] जिसकी इच्छा न हो। अनिप्सित। अनचाहा उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दु खद खेद।—कामायनी, पृ० १६८। २ अरुचिकर।

अनिच्छु—वि० [स०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छुक—वि० [स०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो। अनभिलाषी। निराकाक्षी।

अनिजक—वि० [स०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित[1]—वि० [हिं०] १ दे० 'अनित्य'। उ०—दारा सुत धिरत अहे सबहि अनित तामो। पोद्दार० अभि० ग्र०, पृ० ४६३। २ अनत। जिसका अत न हो। उ०—महिमा अनित साधु गुरु समुझहु मन सुजान।—कबीर मा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित[2]—वि० [स०] बिना किसी के साथ। अकेला। वचित [को०]।

अनितभा[1]—वि० [स०] कातिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितभा[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्र—वि० [हिं०] दे० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८६४।

अनित्य—वि० [स०] [स्त्री० अनित्या] [सज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता] १ जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चदरोजा। क्षणभगुर। २ नश्वर। नाशवान्। ३ जो स्वय कार्यरूप हो और जिसका कोई कारण हो, अत जो एक सा न रहे। जैसे, 'ससार अनित्य है' (शब्द०)। ४ असत्य। झठा। ५ अनिश्चित। सदेहास्पद (को०)। ६ व्याकरण मे एक नियम जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नही होता। वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—सज्ञा पुं० [स०] यदा कदा समय समय पर किया जानेवाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनित्य अवस्था। नापायदारी। अस्थिरता। अध्रुवता। २ क्षणभगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—सज्ञा पु० [स०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लडका जो गोद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता द्वारा गोद लेनेवालो को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्रिम—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—सज्ञा पु० [स०] परिवर्तनशीलता। क्षणभगुरता।

अनित्यसम—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के २४ भेदो मे से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द मे है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य हो गया, तो इसपर यह कहना कि किसी न किसी बात मे घट का सादृश्य सभी वस्तुओ मे होगा, तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [स०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [स०] जिसका कारण ज्ञात न हो। कारणरहित [को०]।

अनिद्र[1]—वि० [स०] निद्रारहित। बिना नीद का। जिसे नीद न आए। २ जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र[2]—सज्ञा पु० १ नीद न आने का रोग। प्रजागर। २ निद्रारहित। जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३ जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—सज्ञा पुं० [स०] १ जागरूकता। तत्परता। २ दे० 'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [स०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिधृष्ट—वि० [स०] जो रोका न जा सके। प्रतिबधरहित। अबाध। अपराभूत [को०]।

अनिन—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि आचरी हिरदै त्रिभुवन राइ।—कबीर ग्र०, पृ० २६। (ख) सतो अनिन भगति यह नाही।—रे० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नता—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनिन्न+ता (प्रत्य०)] दे० अनन्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कन मुक्त कव दानि।—पृ० रा०, पृ० ६३।

अनिप—सज्ञा पु० [स० अनिक] [हिं० अनी=सेना+प=स्वामी] सेनापति। सेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर। वर विपुल विटप वानैत वीर।—तुलसी ग्र० पृ० ३४६।

अनिपात—सज्ञा पु० [स०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। का लगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [स०] अकुशल। अपटु। जो प्रवीण न हो।

अनिबद्ध—वि० [स०] १ जो बाँधा न हो। अबद्ध। २ असबद्ध। अनर्गल। बेसिलसिला [को०]।

अनिबद्धप्रलाप—सज्ञा पु० [स०] असबद्ध वा बेसिर पैर की बात [को०]।

अनिबद्धप्रलापी—वि० [स० अनिबद्धप्रलापिन्] बेसिर पैर की बात करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिबाध[1]—वि० [स०] बाधारहित। जिसे कोई बाधा न हो। स्वच्छद [को०]।

अनिबाध[2]—सज्ञा पुं० स्वच्छदता। मुक्तता [को०]।

अनिभृत—वि० [स०] १ जो छिपा न हो। जो एकात मे न हो। २ अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३ धृष्ट। असकोची। बेतकल्लुफ। ४ ढुलमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभृत सधि—सज्ञा स्त्री० [स० अनिभृत सन्धि] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को देकर उससे सधि कर ले तो ऐसी सधि को अनिभृत सधि कहते है।

अनिभृष्ट—वि० [स०] अबाधित। बेरोक। जिसपर कोई प्रतिबध न हो [को०]।

अनिम्य—वि० [स०] घनहीन। निर्धन। कगाल।

अनिमन्त्रित—वि० [स० अनिमन्त्रित] बिना न्योता हुआ। बिना बुलाया हुआ। अनामन्त्रित। अनाहूत।

अनिमक—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक। २ कोयल। ३ मधुमक्खी। ४ भौंरा। ५ कमल की केशर। पद्मकेशर। ६ महुए का वृक्ष। [को०]।

अनिमा[1]Ⓖ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा'।

अनिमा[2]—सज्ञा पु० [अ० एनिमा] दे० 'एनिमा'।

अनिमान—वि [स०] असीम। अथाह। अत्यधिक। अपरिच्छिन्न [को०]।

अनिमित्त[1]—वि० [सं०] निमित्तरहित। बिना हेतु का। आकस्मिक।

अनिमित्त[2]—क्रि० वि० १ बिना कारण। २ बिना गरज। बिना किसी प्रयोजन के।

अनिमित्त[3]—सज्ञा पु० [स०] अपशकुन। अनिष्ट [को०]।

अनिमित्तक—वि० [स०] १ बिना कारण का। बिना हेतु का। २ व्यर्थ। प्रयोजनरहित। बेमतलब।

अनिमित्तनिवारक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] अपशकुन या अनिष्ट का निवारण [को०]।

अनिमित्तलिंगनाश—सज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार का नेत्ररोग जिसमे मनुष्य अधा हो जाता है [को०]।

अनिमिप[1]—वि० [स०] १ निमेषरहित। स्थिरदृष्टि। टकटकी बाँधकर देखनेवाला। २ जागरूक (को०)। ३ विकसित। खुला हुआ। जैसे आँख या पुष्प [को०]।

अनिमिप[2]—क्रि० वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। उ०—सुदरता से अनिमिप चितवन छू कोमल मर्मस्थल।—युगवाणी, पृ० ६२। १ निरतर।

अनिमिप[3]—सज्ञा पु० १ देवता। २ मछली। ३ विष्णु (को०)। ४. महाकाल का नाम (को०)। ५ एक रतिबध (को०)।

अनिमिपदृष्टि—वि०[स०] टकटकी बाँधकर देखना। आँख गडाकर देखना। जानबूझ कर या सामिप्राय घूरना [को०]।

अनिमिपनयन—वि० [स०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमिपलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमिपाचार्य—सज्ञा पु० [सं०] देवगुरु। वृहस्पति।

अनिमिपीय—वि० [सं०] देवसबधी [को०]।

अनिमेप[1]—वि० [स०] दे० 'अनिमिप'।

अनिमेप[2]—क्रि०वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। २ निरतर।

अनिमेप[3]—सज्ञा पु० दे० 'अनिमिप'।

अनिमेपदृष्टि—वि० [स०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमेपनयन—वि० [स०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमेपलोचन—वि० [स०] दे० 'अनिमेपदृष्टि' [को०]।

अनियत्रित—वि० [सं० अनियन्त्रित] १ जो जकडा या बाँधा न हो। अवद्ध। प्रतिवधरहित। बिना रोक टोक का। २ मनमाना। स्वच्छद। निरकुश।

अनियत्रित शासन—सज्ञा पुं० [स० अनियन्त्रित शासन] निरकुश राज्य। स्वेच्छाचारी राज्य। एकतत्र [को०]।

अनियत—वि० [स०] १ जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्दिष्ट। अनिर्धारित। २ अस्थिर। अदृढ़। जिसका ठीक ठिकाना न हो। ३ अपरिमित। असीम। ४. असाधारण। गैर मामूली। ५. अवाधित। जो रोका न जा सके [को०]। ६ अनियमित (को०)। ७ अकारण। कारणविहीन [को०]। ८ आकस्मिक [को०]।

अनियतपुस्का—सज्ञा स्त्री० [सं०] अगनी। पुश्चली। शिथिल आचरण वाली स्त्री। व्यभिचारिणी [को०]।

अनियतवृत्ति—वि०[स०]१ अनियमित काम न करनेवाला। जो किसी बँधे काम पर न लगा हो। २ अनिश्चित आयवाला। जिसकी कोई बँधी आमदनी न हो [को०]।

अनियताक—सज्ञा पु० [स० अनियताङ्क] गणित मे आनेवाला अनिश्चित या अज्ञात अक। वह सख्या जिसका मूल्य निश्चित न हो [को०]।

अनियतात्मा—वि० [स० अनियतात्मन्] १ चचल बुद्धि का। डावाँडोल चित्त का। २ जिसका मन वश मे न हो। अजितेंद्रिय।

अनियम[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ नियम का अभाव। नियम का न होना। व्यतिक्रम। २ अव्यवस्था। बेकायदगी। ३ अनियमितता। अनिश्चितता। अस्पष्टता (को०)। ४ अविहित कर्म या अनुचित आचरण (को०)।

अनियम[2]—वि० नियमरहित। व्यवस्थारहित। अव्यवस्थित [को०]।

अनियमित—वि० [स०] १ नियमरहित। विधिहीन। अव्यवस्थित बेकायदा। २ अनिश्चित। अनियत। अनिर्दिष्ट।

अनियाउⓖ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सत्य कहहु तुम मोसौं दहुँ काकर अनियाउ।—जायसी ग्र०, पृ० ३८।

अनियारा—वि० [स० अणि=नोक+हिं० आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनियारी] नुकीला। कटीला। पैना। धारदार। कोरदार। तीक्ष्ण। तीखा। उ०—अनियारे दीरघ दृगन, किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरे कछू, जिहि वस होत सुजान।—बिहारी र०, दो० ५८८।

अनियारीⓖ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारा] अनीदार कटारी। उ०—गहि रोस नखि नर भूमि पर। हनि अनियारिय उभय कसि।—पृ० रा० ७।१५८।

अनियुक्त—वि० [स०] जो नियुक्त न किया गया हो। अनधिकारी। २ न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (असेसर) जिसकी नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मत देने का अधिकार नही होता [को०]।

अनियोग—सज्ञा पुं० [स०] १ नवध का अभाव। २ अनुपयुक्त पद या आयोग [को०]।

अनिर[1]—वि० [स०] जो प्रेरित न किया जा सके। जो ठेला न जा सके। अशक्त। शक्ति की कमी [को०]।

अनिर[2]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा'।

अनिरवसित—वि० [स०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नही माने जाते कि उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया जाय, अर्थात् जिस पात्र मे उन्होने भोजन किया हो उसे स्वच्छ करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०]।

अनिरवा—सज्ञा पु० [स० अ=नहीं+नकिट, प्रा० णिअड, निअट, निअउ] [स्त्री० अनिरिया] बहका हुआ पशु। आवारा चौपाया जो खूँटे पर न रहे। बहेतू।

अनिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन का अभाव । अन्न दरिद्रता । अन्नरहित दरिद्रता । २ दैवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि, अनावृष्टि [को०] ।

अनिराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] निराकरण न करना । दूर न करना [को०] ।

अनिराकृत—वि० [सं०] जिसका निराकरण न किया गया हो । जो दूर न किया गया हो [को०] ।

अनिरुक्त—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट रूप से कहा न गया हो । अस्पष्ट (कथन) । २ जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप से न हुआ हो [को०] ।

अनिरुक्तगान—स्त्री० पुं० [सं०] १ अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना । २ सामगान का एक प्रकार [को०] ।

अनिरुद्ध[1]—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो । अबाध । बेरोक ।

अनिरुद्ध[2]—संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा ब्याही थी ।

अनिरुध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध[2]' । उ०—अनिरुध कहुँ जो लिखी जँमारा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३०६ ।

अनिर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय का न होना । अनिश्चय [को०] ।

अनिर्दश—वि० [सं०] जनन या मरण के अशौच के दस दिन बीतने के पूर्व का (समय) [को०] ।

अनिर्दशा—वि० स्त्री० [सं०] जिसको बच्चा दिए दस दिन न बीते हों ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय गाय के संबंध में देखा जाता है । ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है ।

अनिर्दशाह—वि० [सं०] दे० 'अनिर्दश' [को०] ।

अनिर्दिश्य—वि० [सं०] दे० 'अनिर्देश्य' [को०] ।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १ जो बताया न गया हो । अनिरूपित । अनिर्धारित । अनिर्वाचित । उ०—क्या उनकी कल्पना में किसी अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था ?—रस० क०, पृ० २६८ । २ अनियत । अनिश्चित । ३ असीम । अपरिमित । ४ निश्चित लक्ष्य से रहित [को०] ।

अनिर्दिष्टभोग—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं ।

अनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव [को०] ।

अनिर्देश्य[1]—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण न हो सके । जिसके विषय में कुछ ठीक बतलाया न जा सके । अनिर्वचनीय । अनिर्धार्य । २ जिसकी परिभाषा न हो सके । जिसकी तुलना न हो सके (को०) ।

अनिर्देश्य[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०] ।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिरूपित । अनिश्चित [को०] ।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके । जिसका लक्ष्य स्थिर न किया जा सके । जिसके विषय में कोई बात ठहराई न जा सके । अनिर्देश्य ।

अनिर्बंध—वि० [सं० अनिर्बन्ध] १ बिना बंधन का । अबाध । अनियंत्रित । बेरोकटोक । २ स्वतंत्र । स्वच्छंद । स्वाधीन । खुदमुख्तार ।

अनिर्भर—वि० [सं०] भाररहित । कम वजन का । हलका । कम [को०] ।

अनिर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोलना ।

अनिर्मल—वि० [सं०] गंदा । मैला । अशुद्ध । गँदला [को०] ।

अनिर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम आता है । पिंडिका [को०] ।

अनिर्लोचित—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसपर सावधानी से विचार न हुआ हो । अविचारित [को०] ।

अनिर्लोडित—वि० [सं०] जिसकी पूर्णत परीक्षा न हुई हो । अपरीक्षित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] दे० 'अनिर्वचनीय' । उ०—वह है, वह नहीं, अनिर्वच जग उसमें वह जग में लय ।—गुंजन, पृ० ८३ ।

अनिर्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] मौन । खामोशी । जोर से न बोलना [को०] ।

अनिर्वचनीय[1]—[सं०] १ जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय । अवर्णनीय । उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर । सुनो मेरी भी स्वरलहरी क्या है कह रही ।—कानन०, पृ० ८१ । २. जो कहने योग्य न हो । अकथ्य ।

अनिर्वचनीय[2]—संज्ञा पुं० १ माया । भ्रम । अज्ञान । २ जगत् । संसार [को०] ।

अनिवर्त्यमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो । न लौटनेवाला [को०] ।

अनिर्वाच्य—वि० [सं०] १ निर्वचन के अयोग्य । जिसका निरूपण न हो सके । जो बतलाया न जा सके । जिसके विषय में कुछ स्थिर न हो सके । उ०—पावा अनिर्वाच्य विश्राम ।—मानस, ५।८ । २ जो चुनाव के योग्य न हो । निर्वाचन के अयोग्य ।

अनिर्वात—वि० [सं०] वायुरहित । शांत । उ०—वह श्रुति धारता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात निष्कंप ।—अणिमा, पृ० ३६ ।

अनिर्वाण—वि० [सं०] १ न बुझा हुआ । २. न नहाया हुआ । अस्नात । अप्रक्षालित [को०] ।

अनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूरा न होना । अपूर्णता । २ अनिष्पत्ति । असंगति । ३. आय की कमी या टोटा । साधन की अल्पता [को०] ।

अनिर्वाह्य—वि० [सं०] जो निर्वाह के योग्य न हो । जिसकी व्यवस्था कठिन हो [को०] ।

अनिर्वाह्य पण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिर्विण्ण—वि० [सं०] अलज्जित । जिसने लज्जित होने योग्य कुछ न किया हो [को०] ।

अनिर्विण्ण—वि० [सं०] १ जो थका न हो । निर्वेदरहित । दुःख—रहित । २ विष्णु की एक उपाधि ।—[को०] ।

अनिर्विद—वि० [सं०] अश्रांत । अक्लांत । तरोताजा [को०] ।

अनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अनिर्वृत्ति' । २. दरिद्रता । शरणहीन [को०] ।

अनिर्वृत्त[1]—वि० [स०] [सज्ञा अनिर्वृति] बुरी स्थिति का। दुखी।

अनिर्वृत्त[2]—वि० [स०] दे० 'अनिर्वृत्ति [को०]।

अनिर्वृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] बुरी स्थिति। दुख।

अनिर्वेद—सज्ञा पुं० [स०] १ क्लाति का अभाव। निराशा का अभाव। २ स्वावलबन। साहस [को०]।

अनिर्वेश—वि० [स०] बेरोजगार। दुखी [को०]।

अनिल—सज्ञा पु० [स०] १ हवा। पवन। वायु। २ पवन देवता। ३ वायु के ४९ भेदो मे से एक। ४ अष्ट वसुओ मे एक। पचम वसु। ५ शरीर का एक तत्व। ६ पक्षाघात। लकवा। वातरोग। ७ अक्षर य्। ४९ की सख्या का द्योतक शब्द। ८ स्वाति नक्षत्र। ९ विष्णु का नाम। १० सागौन का वृक्ष। ११ वायु रोग (को०)।

अनिलकुमार—सज्ञा पु० [स०] १ पवन के पुत्र हनुमान। २ जैन शास्त्रो के अनुसार भुवनपति देवताओ का एक भेद।

अनिलघ्न—वि० [स०] वातविकारो को दूर करनेवाला [को०]।

अनिलघ्नक—सज्ञा पु० [स०] विभीतक वृक्ष। बहेडा [को०]।

अनिलपर्यय—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०]।

अनिलपर्याय—सज्ञा पु० [सं०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की सूजन [को०]।

अनिलप्रकृति[1]—वि० [स०] वातप्रकृतिवाला [को०]।

अनिलप्रकृति[2]—सज्ञा पुं० शनि का नाम [को०]।

अनिलभद्रक—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का रथ।

विशेष—मानसार मे बनावट या आकार के अनुसार रथ के सात भेद माने गए है—(१) नभस्वद्भद्रक, (२) प्रभजनभद्रक, (३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिपद्भद्रक, (६) इद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक।

अनिलय—वि० [स०] निवासरहित। आश्रयरहित [को०]।

अनिलवाह—सज्ञा पुं० [स० अनिल+वाह=प्रवाह] वायु का प्रवाह। वायुमडल। उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणो का वह ज्योतिर्मय घर।—तुलसी०, पृ० १९।

अनिलव्याधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वायु कुपित होने से उत्पन्न रोग [को०]।

अनिलसख—सज्ञा पु० [सं०] अग्नि। वायु का सहायक [को०]।

अनिलसारथि—सज्ञा पु० [स०] अग्नि [को०]।

अनिलात्मज—सज्ञा पु० [स०] वायु का पुत्र—१ हनुमान्। २ भीम [को०]।

अनिलातक—सज्ञा पु० [सं० अनिलान्तक] इगुदी का पौधा। अगार-पुष्प [को०]।

अनिलापह—वि० [सं०] दे० 'अनिलघ्न' [को०]।

अनिलामय—सज्ञा पु० [सं०] वातरोग। लकवा। गठिया [को०]।

अनिलायन—सज्ञा पु० [सं०] वायु का मार्ग। हवा की दिशा [को०]।

अनिलहा—वि० [सं० अनिलहन्] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०]।

अनिल्लाशन—वि० [स०] दे० 'अनिलाशी' [को०]।

अनिलाशी[1]—वि० [अनिलाशिन् [वि० स्त्री० अनिलाशिनी] हवा पीकर रहनेवाला।

अनिलाशी[2]—सज्ञा पु० साप। नाग।

अनिलोद्धित[1]—वि० [स०] अनुकरणरहित [को०]।

अनिलोद्धित[2]—वि० [सं०] जिसपर अच्छी तरह विचार न हुआ हो। अपूर्ण परीक्षित [को०]।

अनिवर्तन—वि० [सं०] १ दृढ। स्थिर। २ उचित। अनिवार्य [को०]।

अनिवर्ती—वि० [स० अनिवर्तिन्] [स्त्री० अनिवर्तिनी] १ वापस न लौटनेवाला। २ तत्पर। अध्यवसायी। पुरुषार्थी। ३ वीर। पीठ न दिखानेवाला। ४ विष्णु और ईश्वर का विशेषण (को०)।

अनिवार(ण्)—वि० [स० अनिवार्य] दे० 'अनिवार्य'। उ०—अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेमपथ अनिवार।—रसखान०, पृ० ६।

अनिवारित—वि० [सं०] जिसे रोका नही गया। अबाधित। जिसका विरोध न हो। निर्विरोध [को०]।

अनिवार्य—वि० [सं०] १ जो निवारण के योग्य न हो। जो हटे नही। अटल। २ अवश्यभावी। जो होकर रहे। जो अवश्य हो। ३ जिसके बिना काम न चले। परम आवश्यक। जैसे—उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिवार्य है (शब्द०)।

अनिविशमान—वि० [स०] न बैठनेवाला। विश्राम न करनेवाला। गतिशील [को०]।

अनिवेशन—वि० [स०] जिसके पास विश्राम का स्थान न हो [को०]।

अनिवृत्तिबादर—सज्ञा पु० [स०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिसका परिणाम निवृत्त या दूर हो जाय पर कषाय या वासना रह जाय।

अनिविष्ट—वि० [स०] अविवाहित [को०]।

अनिश—क्रि० वि० [स०] निरतर। अनवरत। लगातार। अविश्रात।

अनिश्चय—सज्ञा पु० [स०] सदेह। निश्चय का अभाव [को०]।

अनिश्चित—वि० [स०] जिसका निश्चय न हुआ हो। अनियत। अनिर्दिष्ट। जिसका कुछ ठीक ठाक न हो। जिसके विषय मे कुछ स्थिर न हुआ हो।

अनिषिद्ध—वि० [स०] जो अवैध या वर्जित न हो। प्रशस्त [को०]।

अनिष्कासिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] पर्दानशीन औरत।

विशेष—चद्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशीन औरतो से घरो के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्ट[1]—[स०] १ जो इष्ट न हो। इच्छा के प्रतिकूल। अनभिलषित। अवाछित। २ बुरा। निषिद्ध (को०)। ३ यज्ञ के लिये वर्जित। जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो (को०)।

अनिष्ट[2]—सज्ञा पु० अमगल। अहित। बुराई। इच्छाविरुद्ध कार्य। खराबी। हानि।

अनिष्टकर—वि० [स०] अनिष्ट करनेवाला। अहितकारी। हानिकारक। अशुभकारक।

अनिष्टकारी—वि० [स० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे० 'अनिष्टकर'।

अनिष्टग्रह—संज्ञा पु० [स०] हानि करनेवाला ग्रह। अशुभ ग्रह [को०]।

अनिष्टप्रवृत्तिक—वि०[स०]राष्ट्र या राज्य के अनिष्टसाधन मे तत्पर। बागी। राष्ट्रद्रोही।

विशेष—चाणक्य के समय मे ऐसे लोगो को अग्नि मे जलाने का दंड दिया जाता था।

अनिष्टप्रसंग—संज्ञा पु० [स० अनिष्टप्रसङ्ग] १ अवांछित या अनिच्छित घटना। २ गणित वस्तु, तर्क, अथवा नियम का संबंध [को०]।

अनिष्टफल—संज्ञा पु० [स०] अवांछित परिणाम। बुरा नतीजा[को०]।

अनिष्टशंका—संज्ञा स्त्री० [स० अनिष्टशङ्का] दुर्भाग्य या अवांछित की आशंका। अहित होने का डर [को०]।

अनिष्टसूचक—वि० [स०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला [को०]।

अनिष्ट हेतु—संज्ञा पु० [स०] बुरा लक्षण। अपशकुन।

अनिष्टानुबंधी—वि० [सं० अनिष्टानुबन्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति का आना। लगातार। विपत्तियो का आगमन [को०]।

अनिष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०]अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति। अवांछित घटना [को०]।

अनिष्टापादन—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०]।

अनिष्टाप्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] अनिष्ट की आप्ति अर्थात् प्राप्ति। अनिष्टापत्ति [को०]।

अनिष्टाशंसी—वि० [स० अनिष्टाशंसिन्] अनिष्ट की सूचना देने वाला। अनिष्टसूचक।

अनिष्टी—वि०[स० अनिष्टिन्] जिसने यज्ञ आदि न किया हो (को०)। २ अभागा। भाग्यहीन।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—संज्ञा पु०[सं०]अनिष्ट की कल्पना। अनिष्ट होने की संभावना [को०]।

अनिष्ठा—संज्ञा पु० [स०] अदृढता। निष्ठा का अभाव [को०]।

अनिष्ठुर—वि० [स०] जो कठोर न हो। जो निर्दय न हो। दयावान। कोमलचित्त [को०]।

अनिपुण—वि० [सं०] जो प्रवीण न हो। अदक्ष। अकुशल [को०]।

अनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपूर्णता। अधूरापन। असिद्धि।

अनिष्पन्न—वि० [स०] १ अधूरा। अपूर्ण। २ असंपन्न। असिद्ध।

अनिस—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनिश'।

अनिसर्ग—वि० [स०] अस्वाभाविक। अप्राकृतिक [को०]।

अनिसृष्ट—वि०[स०] १ जिसने अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो। २ जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता—संज्ञा पु० [स०अनिसृष्टोपभोक्तृ] वह जो मालिक की आज्ञा के बिना धरोहर रखी हुई वस्तु काम मे लाए।

अनिस्तीर्ण—वि०[स०]१ जो पार न किया गया हो। जो अस्वीकृत न किया गया हो। जिसमे छुटकारा न मिला हो। २ अभियोग जिसका उत्तर न दिया गया हो। जिसका खंडन न किया गया हो [को०]।

अनिस्तीर्णाभियोग—संज्ञा पु० [स०] वह अभियुक्त जिसने अभियोग का खंडन कर उससे मुक्ति न पा ली हो [को०]।

अनी[1]—संज्ञा स्त्री० [स० अणि=अग्रभाग, नोक] १ नोक। सिरा। कोर। उ०—सतगुर मारी प्रेम की यही कटारी टूटि। वैसी अनी न सांइई जैसी सालै मूठि।—कबीर (शब्द०)। २ नाव या जहाज का अगला सिरा। मोंगा। माथा। गलही। ३ जूते की नोक। ४ पानी मे निकली हुई जमीन की नोक।

अनी[2]—संज्ञा स्त्री० [स० अनीक=समूह, सेना] १ समूह। झुंड। दल। उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर नर असुर अनी।—सूर०, १।३७१। २ सेना। फौज। उ०—बेपु न नो सखि सीय न मगा। आगे अनी चली चतुरगा।—तुलसी (शब्द०)।

अनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन=मर्यादा] रवानि। खेद। लाग। जैसे—उसने अनी के बस कनी खा ली (शब्द०)।

अनी[4]†—सर्व० स्त्री० [स० अयि प० अनी] री। अरी। ओ।

अनीक[1]—संज्ञा पु० [स०] १ सेना। फौज। २ समूह। झुंड। ३. युद्ध। संग्राम। लड़ाई।

अनीक[2]—वि० [स० अ=नहीं+फा० नेक, हिं० नीक] जो अच्छा न हो। बुरा। खराब।

अनीकिनी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ अक्षौहिणी या पूरी सेना का दसवां भाग जिसमे २१८७ हाथी ५६६१ घोड़े और १०९३५ पैदल होते है। २ कमलिनी। पद्मिनी। नलिनी।

अनीक्षण—संज्ञा पु० [स०] न देखना। दृष्टिनिक्षेप न करना [को०]।

अनीच—वि० [स०] १ जो नीचा न हो। उत्तम। आदर के योग्य। २ जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो। उदात्त स्वर मे उच्चारित [को०]।

अनीचदर्शी—संज्ञा पु० [स० अनीचदर्शिन्] एक बुद्ध का नाम [को०]।

अनीचानुवर्ती—वि० [स० अनिचानुवर्तिन्] १ नीच अथवा अशिष्ट जनो से संपर्क न रखनेवाला। २ निष्ठावान् या विश्वसनीय पति या प्रणयी [को०]

अनीठ—वि०[स०अनिष्ट, प्रा० अणिट्ठ] १ जो इष्ट न हो। अनिश्चित। अप्रिय। २ बुरा। खराब। उ०—(क) जाउ जू जैए अनीठ बडे अरु ईठ बडे पर दीठ बडे हौ।—देव (शब्द०)। (ख) हा हा बनाइ रयो पीठ दै बैठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी।—देव (शब्द०)।

अनीठि—संज्ञा स्त्री० [स० अन+इष्टि] १ अनिच्छा। २ बुराई। ३ क्रोध।

अनीड[1]—वि० [स०] बिना घोसले का। २ आश्रयहीन। जिसका निश्चित आवास न हो। ३. अशरीरी।

अनीड[2]—संज्ञा पुं० अग्नि का एक नाम [को०]।

अनीत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—ऐसी और न जानिबी जग अनीत करनार। जामैं उपज्यो मरन सो ताको वेधत मार।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

अनीति—संज्ञा स्त्री० [स०] १. नीति का विरोध। अन्याय। बेइमानी। २. शरारत। ३. अंधेर। अत्याचार। ४. ईति अर्थात् विप्लव या कष्ट का अभाव (को०)।

अनीतिज्ञ—वि० [सं०] नीति न जाननेवाला। अनुचित कार्य में पटु। जिसे कर्तव्य या नीति का ज्ञान न हो। धृष्ट [को०]।

अनीतिविद्—वि० [सं०] दे० 'अनीतिज्ञ' [को०]।

अनीतिमान्—वि० [सं० अनीतिमत्] [स्त्री० अनीतिमती] अन्यायी। अत्याचारी।

अनीदृश—वि० [सं०] जिसके समान कोई दूसरा न हो। जिसमें समानता न हो [को०]।

अनीप्सित—वि० [सं०] अनिच्छित। अनभिलषित। अनचाहा। बाहर हुआ।

अनीर्ष्यु—वि० [सं०] जिसमें ईर्ष्या न हो। द्वेषरहित [को०]।

अनील—वि० [सं०] जो नीला न हो। श्वेत [को०]।

अनीलयामी—संज्ञा पुं० [सं० अनीलयामिन्] १ सफेद घोड़ेवाला पुरुष। २ अर्जुन।

अनीश[1]—वि० [सं०] १ ईशरहित। बिना अभिभावक या मालिक का। २ जो स्वामी या मालिक न हो। ३ शक्तिरहित। असमर्थ। ४. जिससे ऊपर कोई न हो। सबसे श्रेष्ठ। ५ जो सनाथ या गुरुमुखी न हो [को०]।

अनीश[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ईश्वर से भिन्न वस्तु। जीव। माया।

अनीशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असहायावस्था। असमर्थता। दीन अवस्था [को०]।

अनीश्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनीश'। २ ईश्वर का अस्तित्व या सत्ता न मानना [को०]।

अनीश्वर[2]—वि० १ ईश्वर को न माननेवाला। २ दे० 'अनीश'।

अनीश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनीश्वरवादी] १ ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास। नास्तिकता। २ पूर्व मीमांसा। मीमांसा दर्शन।

अनीश्वरवादी—वि० [सं० अनीश्वरवादिन्] १ ईश्वर को न मानने वाला। नास्तिक। २ मीमांसक।

अनीस[1]—वि० [सं०] १ दे० 'अनीश'[1]। २ जिसका कोई रक्षक। अनाथ। सताया। उ०—मार उमा जेहि दुख पाए। अति अनीस नहिं जाय बताए।—पुरुषी (शब्द०)।

अनीसून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की लौंकी जो उत्तर भारत में बहुत होती है।

अनीह[1]—वि० [सं०] १ इच्छारहित। निस्पृह। उ०—एक अनीह अरूप अनामा।—मानस, १।११३। २ निश्चेष्ट। बेपरवाह। उदासीन।

अनीह[2]—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक नरेश का नाम [को०]।

अनीहा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनिच्छा। निष्कामता। निस्पृहता। २ निश्चेष्टता। बेपरवाही। उदासीनता।

अनीहा[2]—वि० अनिच्छ। जो इच्छा न रखे [को०]।

अनु[1]—उप० [सं०] जिस शब्द के पहले यह उपसर्ग लगता है उसमें यह अर्थ या भाव करता है—१ पीछे। जैसे, अनुगामी, अनुचर। २ तुल्य। जैसे, अनुकार, अनुरूप, अनुजा, अनुभूति। ३. साथ। जैसे, अनुचर, अनुपद, अनुयान। ४ प्रत्येक। जैसे, अनुक्षण, अनुदिन, । ५ बारबार। जैसे, अनुगणन, अनुशीलन। गणरत्न महोदधि में इसके निम्नांकित अर्थ निर्दिष्ट किए गए हैं—वेदाध्ययन, अनुष्ठान, सामीप्य, पश्चाद्भाव, अनुव्रधन, साम्य, अभिमुख, हीन, विसर्ग और लक्षण।

अनु[2]—संज्ञा पुं० १ राजा ययाति का एक पुत्र। २ प्राचीन भारत की एक जाति [को०]।

अनु[3]—संज्ञा पुं० [सं० अणु] दे० 'अणु'। उ०—मिल्यो चंद्र कनि चकिनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १४१।

अनु[4]—अव्य० [हिं०] हाँ। ठीक है। उ०—अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै कुल मोर भँवर जेहि लोभा।—जायसी (शब्द०)।

अनुकंपन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनुकम्पन] १ अनुग्रह। दया। २ सहानुभूति [को०]।

अनुकंपन[2]—वि० दया करनेवाला। कोमलहृदय। सहृदय [को०]।

अनुकंपनीय—वि० [सं० अनुकम्पनीय] दे० 'अनुकंप्य' [को०]।

अनुकंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकम्पा] [वि० अनुकंपित] १. दया। कृपा। अनुग्रह। २ सहानुभूति। हमदर्दी।

अनुकंपित—वि० [सं० अनुकम्पित] जिस पर कृपा की गई हो। अनुगृहीत।

अनुकंप्य[1]—वि० [सं० अनुकम्प्य] दया के योग्य। सहानुभूति का पात्र [को०]।

अनुकंप्य[2]—संज्ञा पुं० १ शीघ्रगामी दूत या समाचारवाहक। २ तपस्वी [को०]।

अनुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक। विषयी। कामी पुरुष।

अनुक[2]—वि० लालची। इच्छुक। २ कामवासनायुक्त। ३ दयालु। ४ अधीन। आश्रित [को०]।

अनुकथन—संज्ञा पुं० [सं०] क्रमबद्ध वचन। कथोपकथन। वार्तालाप बातचीत। उ०—मुनि अनुकथन परमपर होई।—मानस, १।४१।

अनुकनीय—वि० [सं० अनुकनीयस्] सबसे छोटे से बड़ा। कनिष्ठतम से प्रथम [को०]।

अनुकर—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

अनुकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुकरणीय, अनुकृत] १ देखा देखी काम। नकल। समान आचरण। उ०—आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—'अनुकरण कर मेरा'।—लहर पृ० ६७। २ पीछे आनेवाला। वह जो पीछे उत्पन्न हो। उ०—आलंबन उद्दीपन के जे अनुकरण बखाने। ते कहिए अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान।—केशव (शब्द०)।

अनुकरणीय—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकरणीया] अनुकरण करने लायक। नकल करने योग्य।

अनुकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकरण करनेवाला। आदर्श पर चलने वाला। २ नकल करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला।

अनुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकरण। नकल [को०]।

अनुकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गाड़ी या रथ का तला। २. घिसाव। आकर्षण। ३ देवता का आवाहन। ४. विधि से किसी कर्तव्य का पालन।

अनुकर्षण—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुकर्ष'।

अनुकलन—संज्ञा पुं० [सं०] अंकन। लेखन। सज्जा करना। उ०—हिंदी लिखने के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकलन करने के कारण।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० १३१।

अनुकल्प—संज्ञा पु० [सं०] आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट के अभाव में अन्य विकल्प का व्यवहार। जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के व्यवहार का विकल्प। २ कल्प (छह वेदांगों में से एक) से संबंधित ग्रंथ [को०]।

अनुकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकाङ्क्षा] [वि० अनुकांक्षित, अनुकांक्षी] इच्छा। अभिलाषा। आकांक्षा।

अनुकांक्षित—वि० [सं० अनुकाङ्क्षित] इच्छित। अभिलषित। आकांक्षित।

अनुकांक्षी—वि० [सं० अनुकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० अनुकांक्षिणी] इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। आकांक्षी।

अनुकाम—वि० [सं०] १ प्रिय। इच्छानुकूल। २ इच्छुक। विलासी [को०]।

अनुकामी—वि० [सं० अनुकामिन्] इच्छानुसार कार्य करनेवाला। स्वेच्छाचारी [को०]।

अनुकामीन—वि० [सं०] दे० 'अनुकामी' [को०]।

अनुकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकरण'।

अनुकारी—वि० [सं० अनुकारिन्] [स्त्री० अनुकारिणी] १ अनुकर्ता। अनुकरण करनेवाला। देखादेखी करनेवाला। नकल करनेवाला। २ आज्ञाकारी। हुक्म पर चलनेवाला।

अनुकार्य[1]—वि० [सं०] जिसकी नकल की जा सके। नकल किए जाने योग्य।

अनुकार्य[2]—संज्ञा पु० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति। वह जिसकी नकल की जाय। उ०—उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग अनुकार्य समझ लेते हैं।—स० शास्त्र, पृ० ४७।

अनुकाल—वि० [सं०] सामयिक। समयानुकूल [को०]।

अनुकीरतन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन'। उ०—जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकाश।—मतिराम ग्र०, पृ० ४३६।

अनुकीर्तन—संज्ञा पु० [सं०] १ वर्णन। कथन। २ घोषणा। उद्घोष। प्रचार [को०]।

अनुकुंचित—वि० [सं० अनुकुञ्चित] १ झुका हुआ। २ झुकाया हुआ। टेढा किया हुआ [को०]।

अनुकूल[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकूला] १ मुआफिक। २ पक्ष में रहनेवाला। सहायक। हितकर। ३ प्रसन्न। उ०—होउ महेस मोहि पर अनुकूला।—मानस, १। १५।

अनुकूल[2]—संज्ञा पुं० १ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त हो। २ एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय। जैसे—आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन्ह। पिय के हाथ घयिलवा भरि भरि दीन्ह। (शब्द०)। ३ राम के दल का एक बंदर। ४ सबके प्रिय विष्णु।

अनुकूल[3]—क्रि० वि० [हिं०] ओर। तरफ। उ०—ढाहति भूप रूप तरु मूला। चली विपति वारिध अनुकूला।—मानस २।३४।

अनुकूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्रतिकूलता। अविरुद्धता। २ पक्षपात। हितकारिता। सहायता। ३ प्रसन्नता।

अनुकूलन—संज्ञा पु० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव। उ०—अर्वाचीन काल में भी हिंदू सभ्यता ने बड़ी स्थिरता दिखाई है और अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है।—हिंदू सभ्यता, पृ० ५८४।

अनुकूलना—क्रि० स० [सं० अनुकूलन से नाम०] १ अप्रतिकूल होना। मुआफिक होना। २ पक्ष में होना। हितकर होना। ३ प्रसन्न होना। उ०—फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूली। कठ लगाय चली प्रियतम कौं अपने गृह अनुकूली।—सूर (शब्द०)।

अनुकूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, तगण, नगण और दो गुरु (ऽ।। + ऽऽ। + ।।। + ऽऽ) होते हैं। मौक्तिक माला। जैसे—पावक पूज्यौ समिध सुधारी। आहुति दीन्ही सब सुखकारी।—केशव (शब्द०)। २ दंती वृक्ष।

अनुकूलित—वि० [सं०] समानित। जिसका भव्य स्वागत हुआ हो [को०]।

अनुकृत—वि० [सं०] अनुकरण किया हुआ। नकल किया हुआ।

अनुकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समान आचरण। देखा देखी कार्य। नकल। अनुकरण। उ०—हृदय की अनुकृति वाह्य उदार।—कामायनी पृ० ४६। २ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया जाय। यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है।

अनुकृष्ट—वि० [सं०] १ आकृष्ण। खिंचा हुआ। २ समाहृत। समिलित। ३ आरोपित। गर्भित [को०]।

अनुक्त—वि० [सं०] अकथित। बिना कहा हुआ। अनभिहित।

अनुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न बोलना। न कहना। अकथना। २ वह बात जो उचित न हो। अनुचित बात [को०]।

अनुक्रंदन—संज्ञापुं० [सं० अनुक्रन्दन] उच्चार से चिल्लाना। प्रतिक्रंदन [को०]।

अनुक्रकच—वि० [सं०] जिसमें लकड़ी चीरने की आरी जैसे दाँत बने हों। दाँतेदार [को०]।

अनुक्रम[1]—वि० [सं०] क्रमबद्ध। सिलसिलेवार। तरतीबवार। उ०—प्रकृति पुरुष, श्रीपति सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई।—सूर, १०।२८१६।

अनुक्रम[2]—संज्ञा पुं० १ क्रम। सिलसिला। तरतीब। २ एक के बाद एक होने की स्थिति या क्रिया (को०)। ३ दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रमण—संज्ञापु० [सं०] १ क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ना। २ पीछे पीछे चलना। अनुगमन [को०]।

अनुक्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रम। तरतीब। सिलसिला। २. सूची। तालिका। फिहरिस्त। ३ कात्यायन का एक ग्रंथ जिसमें मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४ अक्षरो और मात्राओ के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, ग्र थ, नाम या विषय आदि की सूची ।

अनुक्रमणी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रात—वि० [स० अनुक्रात] १ पारायण किया हुआ। पढा हुआ। २ विधिपूर्वक सपन्न। ३ अनुक्रमणी आदि मे समाविष्ट। परिगणित [को०]।

अनुक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'अनुक्रम'। २ 'अनुकर्म' (को०)।

अनुक्रोश—सज्ञा पुं० [स०] अनुकपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे आर्त जान के, अधिप ने अनुक्रोश मान के, घर दिया तुम्हे भेज आपही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—क्रि० वि० [स०] १ प्रतिक्षण। २ लगातार। निरतर।

अनुक्षत्ता—सज्ञा पु० [स० अनुक्षत्तृ] द्वाररक्षक अथवा सारथी का अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—सज्ञा सज्ञा [स० अनुक्षपम्] एक रात के बाद दूसरी रात का अनवरत क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—सज्ञा पु० [स०] उडीसा के मदिरो से पुजारियो को देवोत्तर सपत्ति मे से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—सज्ञा पु० [स० अनुख्यातृ] अनुसधान करनेवाला। पता लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुसधान। पता लगाना [को०]।

अनुगतव्य—सज्ञा पुं० [स० अनुगन्तव्य] १ अनुगमन किए जाने के योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का सहमरण। २ अनुकरण किए जाने योग्य। ३ अनुसधान करने योग्य। जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग[1]—वि०[स०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैरोकार उ०—वन मे अगज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुग[2]—सज्ञा पु० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०२।

अनुगत[1]—वि० [स०] १ पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी उ०—चिर अनुगत सौदर्य के समादर मे।—लहर, पृ० ६५। २ अनुकूल। मुआफिक। जैसे,—नियमानुगत कार्य होना उत्तम है (शब्द०)।

अनुगत[2]—सज्ञा पु० १ सेवक। अनुचर। नौकर। २ सगीत मे मध्यम लय या समय (को०)।

अनुगतार्थ—वि० [स०] प्राय समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते जुलते अर्थ का।

अनुगत—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनुगमन। अनुसरण। पीछे पीछे चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि०[स०]अनुसरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—सज्ञा पु० [स०] १ पीछे चलना। अनुसरण। २ समान आचरण। ३ विधवा का मृत पति के शव के साथ जल मरना। ४ सहवास। समोग। ५ स्वीकरण। स्वीकार। मानना [को०]।

अनुगम्य—सज्ञा पु०[स०] वह व्यक्ति जिसका अनुसरण अथवा अनुकरण किया जाय [को०]।

अनुगर्जित[1]—वि० [स०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित[2]—सज्ञा पु० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—सज्ञा पु० [स०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगाग—वि० [स० अनुगाङ्ग] गगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [स० अनुगादिन्] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के शब्दो को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि०[स० अनुगामिन्][वि० स्त्री० अनुगामिनी]१ पश्चाद्वर्ती पीछे चलनेवाला। उ०—नही आप होते अनुगामी निरय को।—करुणा०, पृ० २२। २ समान आचरण करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन अनुगामी।—मानस, १।२८१। ४ सहवास या समोग करनेवाला। ५ जैन सिद्धात के अनुसार क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान के छह भेदो मे प्रथम। यहाँ अनुगामी उसे कहा गया है जो दूसरे क्षेत्र या जन्म मे भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो दूसरे क्षेत्र या जन्म मे भी जीव के साथ जाता है'। हिंदू०स०, पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [सं०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने वाला [को०]।

अनुगीत—सज्ञा पुं० [स०] एक छद का नाम। दे० 'गीता'। २ गीत के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ से ९२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—सज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण मे २७ और द्वितीय चरण मे ३२ मात्राएँ होती हैं।

अनुगुण[1]—सज्ञा पु० [स०] एक काव्यालकार जिसमे किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के ससर्ग मे बढना दिखाया जाय। जैसे—मुक्तमाल सिय हाम ते अधिक श्वेत ह्वै जाय।—(शब्द०)। २ स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुण[2]—वि० १ समान गुणोवाला। समान प्रकृतिवाला। २ अनुकूल। मनपसद। ३ आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [स०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ[को०]।

अनुगृह—सज्ञा पु० [स० अनुगृहम्] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [सं०]१ जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपकृत। उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और कहूँ क्या देवी।—साकेत,पृ०२४३। २ कृतज्ञ।

अनुगौन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।—भा० तेंदु ग्र० भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—सज्ञा पुं० [स०] १ दूसरे का दु:ख दूर करने की इच्छा। उ०—कृपा अनुग्रह अगु अघाई।—मानस, २।२९९।२ कृपा। दया। अनुकपा। उ०—करौं अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।१। ३ अनिष्ट निवारण। उ०—मकर दीन दयाल अब, येहि पर होहु कृपाल। नाथ अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७।१०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रिआयत। ५ पृष्ठ भाग का रक्षक [को०]।

अनुग्रही—वि० [स० अनुग्रहिन्] जादूगरी में पटु। बाजीगरी में निपुण [को०]।

अनुग्रासक—संज्ञा पु० [स०] ग्रास। कौर। नेवाला [को०]।

अनुग्राहक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुग्राहिका] अनुग्रह करनेवाला। कृपालु। सहायक। उपकारी।

अनुग्राही—वि० [स० अनुग्राहिन्] दे० 'अनुग्राहक'।

अनुग्राह्य—वि० [स०] कृपा का पात्र। अनुग्रह के योग्य [को०]।

अनुघटन—संज्ञा पु० [स०] आपस में जोड़ना। मिलाना। सबद्ध स्थापित करना [को०]।

अनुघात—संज्ञा पु० [स०] नाश। संहार।

अनुघातन—वि० [सं०] मार डालने या नाश करनेवाला। उ०—अब अरिष्ट धेनुक अनुघातन।—सूर, १०।९८१।

अनुच(पु)—वि० [स० अनुच्च] जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो। अश्रेष्ठ। निम्न। नीच। उ०—इहि विधि उच्च अनुच तन धरि धरि देस विदेस विचरतौ।—सूर०, १।२०३।

अनुचर—संज्ञा पु० [स०] [वि० स्त्री० अनुचरा, अनुचरी] १ पीछे चलनेवाला दास। नौकर। उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया।—करुणा०, पृ० २६। २ सहचर। साथी। उ०—सामने था शैलज मे अनुचर मानिक युवक अब।—लहर, पृ०७२।

अनुचारक—संज्ञा पु० [स०] सेवक। परिचारक। अनुगामी [को०]।

अनुचारिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सेविका। दासी [को०]।

अनुचारी—वि० [स०] दे० 'अनुचर'। उ०—तात, भरत, शत्रुघ्न, माडवी हम सब उनके अनुचारी।—साकेत, पृ० ३८१।

अनुचिंतन—संज्ञा पु० [स० अनुचिन्तन] १ विचार। गौर। २ भूली हुई बात को मन में लाना। ३ लगातार चिंतन। चिंता (को०)।

अनुचित—वि० [स०] १ अयोग्य। अयुक्त। अकर्तव्य। नामुनासिब। बुरा। खराब। उ०—जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं विश्व प्रतिकूल।—मानस, १।२७७। २. पंक्तिबद्ध किया हुआ (को०)।

अनुचिष्ट(पु)—वि० [स० अनुच्छिष्ट] दे० 'अनुच्छिष्ट'। उ०—करुणामृत सुकवित्त युक्ति अनुचिष्ट उचारी।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५३१।

अनुच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पूर्णत पृथक् न होना। २ पूर्णत नष्ट न होना। ३ अनश्वरता [को०]।

अनुच्छिष्ट—वि० [स०] जो जूठा या व्यवहृत न हो। शुद्ध। निर्दोष। ग्रहण करने योग्य [को०]।

अनुच्छेद—संज्ञा पुं० [स०] १ दे० 'अनुच्छित्ति'। २ नियम, अधिनियम आदि का वह अश जिसमे एक बात का विशद विवरण हो। जैसे राष्ट्रसघ के घोषणापत्र की ७ वी धारा का दूसरा अनुच्छेद। ३ किसी रचना या ग्रथ के एक प्रकरण के वे छोटे छोटे अश जिसमे सबद्ध विषय के एक एक अग का विवेचन होता है। पैराग्राफ।

अनुच्छिन(पु)—वि० [स० अनुक्षण] क्षण क्षण। प्रत्येक क्षण। लगातार। उ०—'हरीचद' ते महामूढ जे जनहिं न अनुछिन ध्यावैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८०।

अनुज[1]—वि० [स०] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। उ०—बन मे अग्रज अनुज, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुज[2]—संज्ञा पु० १ छोटा भाई। उ०—राम देखावहिं अनुजहि रचना।—मानस, १।२२५। २ एक पौधा। स्थलपद्म।

अनुजन्मा—संज्ञा पु० [सं० अनुजन्मन] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बहन। उ०—कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ, अनुजा तनुजा।।—मानस, ७।१०२।

अनुजात—संज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अनुजाता] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजीवी[1]—वि० [स० अनुजीविन्] [वि० स्त्री० अनुजीविनी] सहारे पर जीनेवाला। आश्रित।

अनुजीवी[2]—संज्ञा पुं० सेवक। दास।

अनुजीव्य—वि० [स०] सेवा का पात्र। सेव्य। जैसे,—गुरु, स्वामी, माता पिता आदि। २ रहन सहन या आचार व्यवहार मे अनुकरणीय। जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध आदि [को०]।

अनुज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०]।

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। हुक्म। अनुमति। इजाजत। उ०—माँग अनुज्ञा उनसे पीने उस उपवन के फल खाए।—साकेत, पृ० ३८९। २ एक काव्यालकार जिसमे दूषित वस्तु मे कोई गुण देखकर उसके पीने की इच्छा का वर्णन किया जाय। जैसे,—चाहति है हम और कहा सखि, क्यो हूँ कहूँ पिय देखन पावैं। चेरियै सो जु गुपाल रचे तौ चनौरी सनै मिलि चेरि कहावैं।—रसखान (शब्द०)। ३ विवाह के प्रसग मे वाग्दान (को०)। ४ अनुताप। पश्चात्ताप (को०)। ५ अनुरोध (को०)। ६ सद्व्यवहार। अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञात—वि० [सं०] जिसे अनुमति प्राप्त हो। आदेशप्राप्त। २ स्वीकृत। समानित। अनुगृहीत। ३ अधिकृत। जिसे कोई अधिकार मिला हो। ४ पृथक् किया हुआ। ५ पढ़ाया हुआ। निष्णात [को०]।

अनुज्ञातक्रय—संज्ञा पुं० [स०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०]।

अनुज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] १ दे० 'अनुज्ञा'। २ प्रस्थान के लिये स्वीकृति। ३ क्षमा। त्रुटि के लिये अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञापक—वि० [स०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०]।

अनुज्ञापन—संज्ञा पु० [स०] १ आज्ञा देना। हुक्म देना। २ जनाना। बतलाना।

अनुज्येष्ठ—वि० [स०] १ ज्येष्ठतम से कनिष्ठ। सबसे बड़े से छोटा। द्वितीय। २ वरीयता के क्रम मे दूसरा [को०]।

अनुतप्त—वि० [स०] १ तपा हुआ। गरम। २ दुखी। खेदयुक्त। रजीदा।

अनुतर—संज्ञा पु० [सं०] १ पार जाना। दूसरे छोर पर जाना। २ लड़ाई मे तानना। ३ नदी पार करने का किराया [को०]।

अनुतर्ष—सज्ञा पु० [सं०] १ प्यास । पीने की इच्छा। २ अभिलाषा। आकाक्षा। ३ मदिरापान। ४ पीने का पात्र । चषक । ५ मदिरा [को०] ।

अनुतर्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ मदिरापान । २ मदिरा पीने का पात्र [को०] ।

अनुताप—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुतप्त] १ तपन । दाह । जलन । २. दु ख । खेद । रज । ३ पछतावा । अफसोस ।

अनुतापन—वि० [स०] दु ख देनेवाला । पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला। शोकप्रद [को०] ।

अनुतापी—वि० [सं० अनुतापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला । खेदयुक्त [को०] ।

अनुत्क—वि० [स०] [स्त्री० अनुत्का] उत्कठारहित । अनुत्सुक । अभिलाषारहित । विना लालसा का ।

अनुत्कट—वि० [स०] छोटा । सूक्ष्म [को०] ।

अनुत्त—वि० [सं०] १ जो तर या भीगा न हो । सूखा २ अप्रेरित [को०] ।

अनुत्तम[1]—वि० [स०] १ जिससे उत्तम दूसरा न हो । सर्वोत्तम । २ जो सबसे अच्छा न हो । सर्वोत्तम नही। घटिया [को०] ।

अनुत्तम[2]—सज्ञा पुं० १ शिव । २ विष्णु [को०] ।

अनुत्तमता—सज्ञा स्त्री० [सं०] घटियापन । बुराई। उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमे छिपी अनुत्तमता ।—सागरिका, पृ० ७२ ।

अनुत्तर[1]—वि० [स०] १ निरुत्तर। लाजवाब । कायल । उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेष ।—हरी घास०, पृ० ५० । २ प्रधान। मुख्य (को०)। ३ सर्वोत्तम (को०)। ४ दृढ। सलग्न (को०)। ५ जो उत्तरदिशा मे न हो। दक्षिणी (को०) । ६ क्षुद्र। नीच (को०) ।

अनुत्तर[2]—सज्ञा पुं० १ जैन देवताओ का एक वर्ग । २ उत्तर का अभाव (को०) ।

अनुत्तरदायी—वि० [सं० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला। अपना उत्तरदायित्व न समझनेवाला ।

अनुत्तरित—वि० [सं०] उत्तरविहीन । उत्तररहित । उ०—पूछा तुम क्यों छिपे ? प्रश्न रहा अनुत्तरित।—अपलक, पृ० ४८।

अनुत्तान—वि० [सं०] जो उत्तान न हो। पीठ के बल नहीं। छाती के बल लेटा हुआ। चित्त नही। पट [को०] ।

अनुत्ताप—सज्ञा पुं० [स०] बौद्धो के अनुसार दस क्लेशो मे से एक ।

अनुत्थान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव । चेष्टा या श्रम का न होना [को०] ।

अनुत्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति का अभाव । २. विफलता। असफलता [को०] ।

अनुत्पत्तिक—वि० [सं०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०] ।

अनुत्पत्तिसम—सज्ञा पु० [सं०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक ।

विशेष—यदि किसी वस्तु के प्रसग मे कोई हेतु कहा जाय और उत्तर मे उसी के प्रसग मे यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नही हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे । जैसे,-यदि वादी कहे—'शब्द अनित्य है क्योकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।' इसपर प्रतिवादी कहे—'यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नही होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नही हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?

अनुत्पन्न—वि० [स०] जो उत्पन्न न हुआ हो। जो जन्मा न हो। जो उत्पन्न न किया गया हो [को०] ।

अनुत्पाद—सज्ञा पुं० [स०] उत्पत्ति का न होना। अस्तित्व मे न आना [को०] ।

अनुत्पादक—वि० [स०] उत्पन्न करने मे असमर्थ। जिससे उत्पन्न न हो [को०] ।

अनुत्पादन—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुत्पाद' [को०] ।

अनुत्साह[1]—सज्ञा पुं० [सं०] सकल्प और प्रयत्न का अभाव। उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह ।—सागरिका, पृ० ७७ ।

अनुत्साह[2]—वि० १ दृढता या क्षमता से रहित । २ उदासीन। उत्साहहीन [को०] ।

अनुत्सुक—वि० [स०] जो उत्सुक न हो। सामान्य । शात । उत्कठा न दिखानेवाला [को०] ।

अनुत्सूत्र—वि० [स०] १ सूत्रो का अनुगामी। २ नियमो या नीति के अनुसार चलनेवाला [को०] ।

अनुत्सेक—सज्ञा पुं० [स०] १ गर्व का न होना। घमड न होना। २. शालीनता [को०] ।

अनुत्सेकी—वि० [स० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो। घमडरहित [को०] ।

अनुदक—वि० [स०] १ जलशून्य । जल के अभाववाला (जैसे,मरुस्थल)। २ थोडे जलवाला। अल्प जलवाला। ३ जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०] ।

अनुदग्र—वि० [स०] १ जो ऊँचा न हो। नीचा । २ मुलायम। ३ कोमल। दुर्बल । ४ जिसमे तेजी या धार न हो (को०)।

अनुदत्त—वि० [स०] १ लौटाया हुआ । वापस किया हुआ। २ स्वीकार किया हुआ । ३ क्षमा किया हुआ [को०] ।

अनुदर—वि० [स०][वि० स्त्री० अनुदरा] कृशोदर । पतला । पतला ।

अनुदर्शन—सज्ञा पु० [स०] १ निरीक्षण । पर्यवेक्षण । २ स्वीकार आदर [को०] ।

अनुदात्त—वि० [स०] १ छोटा । तुच्छ। जो उच्चाशय न हो। २ नीचा (स्वर)। लघु (उच्चारण)। स्वर के तीन भेदो मे से एक । वह स्वर जिसपर बलाघात न हो ।

अनुदान—सज्ञा पुं० [स० अनुदान] १ किसी कार्य के लिये कुछ प्रतिबधो के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता । सरकारी विभागो द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि । २ लौटाना । प्रत्यावर्तन [को०] ।

अनुदार—वि० [स०] १ क्रूर। कठोर। २ संकुचित हृदयवाला। संकीर्ण विचारवाला। ३ अत्यंत उदार। महान्। ४ जिसकी दारा या पत्नी भली और अनर्गमन करनेवाली हो [को०]।

अनुदित—वि० [सं०] अकथित। जो कहा न गया हो। २ जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३ न कहने योग्य। निंदनीय [को०]।

अनुदिन—क्रि० वि० [स०] नित्यप्रति। प्रतिदिन। रोजमर्रा। उ०—तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावही।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३।

अनुदिवस—क्रि० वि० [स०] दे० 'अनुदिन' [को०]।

अनुदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को०]।

अनुदृष्टि[2]—वि० कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला [को०]।

अनुद्धत—वि० [स०] १ जो उद्धत न हो। अनुग्र। २ सौम्य। शांत। ३ विनीत।

अनुद्धरण—संज्ञा पुं० [स०] १ न हटाना। २ स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को०]।

अनुद्धर्ष—संज्ञा पुं० [स०] उद्वेग का अभाव। शांति।

अनुद्धार—संज्ञा पुं० [स०] १ बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २ दे० 'अनुद्धरण' [को०]।

अनुद्धृत—वि० [स०] १ बिना बँटा। अविभक्त। २ न हटाया हुआ। ३ अनष्ट। अक्षत। दुरुस्त। ४ अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को०]।

अनुद्भट—वि० [स०] मृदु स्वभाववाला। अधृष्ट। २ सौम्य। अहंकार-शून्य। निरभिमानी [को०]।

अनुद्यत—वि० [स०] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्यम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उद्योग या उद्यम का अभाव [को०]।

अनुद्यम[2]—वि० उद्योग या श्रम न करनेवाला। अनुद्यमी [को०]।

अनुद्यमी—वि० [सं० अनुद्यमिन्] उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।

अनुद्यूत—संज्ञा पुं० [स०] १ लगातार जुआ खेलना। २ महाभारत के सभापर्व के अध्याय ७० से ७९ तक का नाम [को०]।

अनुद्योग[1]—संज्ञा पुं० [स०] आलस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को०]।

अनुद्योग[2]—वि० अनुद्योगी। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्योगी—वि० [सं० अनुद्योगिन्] आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को०]।

अनुद्रुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आधा और मात्रा का एक चौथाई समय।

अनुद्रुत[2]—वि० जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को०]।

अनुद्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को०]।

अनुद्विग्न—वि० [सं०] निश्चिंत। शांत। चिंतामुक्त। आशंकारहित [को०]।

अनुद्वेग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को०]।

अनुद्वेग[2]—वि० उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को०]।

अनुधावन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुधावक, अनुधावित, अनुधावी] १. पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुसंधान। खोज। ४ बार बार बुद्धि दौड़ाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई (को०)।

अनुधूपित—वि० [स०] धूना हुआ। गर्वित। अभिमानी [को०]।

अनुध्यान—संज्ञा पुं० [स०] १ किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३ शुभचिंतन [को०]।

अनुध्यायी—वि० [स० अनुध्यायिन्] १ चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २ खोया हुआ। अन्यमनस्क [को०]।

अनुध्येय—वि० [स०] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को०]।

अनुध्वनि—संज्ञा स्त्री० [स०] प्रतिध्वनि। गूँज। उ०—अंबर से टकरा-कर अनुध्वनि आ गई त्वरित।—अपलक, पृ० ४७।

अनुनत—वि० [स० अनु+नत] विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ०—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इंगितों में नाच उठे।—लहर, पृ० ७१।

अनुनय—संज्ञा पुं० [स०] १ विनय। विनती। प्रार्थना। उ०—अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ० ७१। २ मानना।

अननयमान—वि० [स०] विनयशील। शिष्ट। सराधन करने वाला। (को०)।

अनुनयी—वि० [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को०]।

अनुनाद—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुनादित्] प्रतिध्वनि। गूँज। गुंजार।

अनुनादित—वि० [स०] प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो।

अनुनादी—वि० [स० अनुनादिन्] प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुंजायमान [को०]।

अनुनायक—वि० [स०] संकोची। विनम्र [को०]।

अनुनायिका—संज्ञा स्त्री० [स०] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—सखी, दासी, परिचारिका आदि।

अनुनासिक[1]—वि० [स०] जो (अक्षर) मुँह और नाक से बोला जाय।

अनुनासिक[2]—संज्ञा पुं० १ मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ, ञ, अ, ण, न, म और अनुस्वार। २ नाक से बोली जानेवाली ध्वनि।

अनुनीत—वि० [स०] १. मर्यादित। अनुशासित। [को०]। २. गृहीत (को०)। ३. प्रतिष्ठित। पूजित (को०)। ४ संतुष्ट। संराधित (को०)। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ०—किंचित् अनुनीत स्वर में हरिप्रसन्न ने कहा।—सुनीता, पृ० ३२४।

अनुनीति—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुनय' [को०]।

अनुनीय—वि० [स०] १. अनुनययोग्य। सराधन के योग्य [को०]।

अनुनेय—वि० [स०] दे० 'अनुनीय' [को०]।

अनुन्नत—वि० [स०] जो ऊँचा न हो। जो उभरा न हो (नीचा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को०]।

अनुन्नतगात्र—वि० [सं०] अविकसित या अल्प विकसित अंगोंवाला। अपुष्ट अंगोंवाला [को०]।

अनुन्नतानत—वि० [स०] समतल [को०]।

अनन्मत्त—वि० [स०] जो मतवाला या पागल न हो [को०]।

अनुन्मदित—वि० [स०] दे० 'अनुन्मत्त' [को०]।

अनुन्माद[1]—सज्ञा पुं० [स०] पागलपन का न होना। उन्माद का अभाव [को०]।

अनुन्माद[2]—वि० दे० 'अनुन्मत्त' [को०]।

अनुप(पु)†—वि० [स० अनुपम] बेजोड़। उपमारहित। उ०—सकल सत्त दासी अनुप। नृप इद्रावति अप्पि।—पृ० रा०, ३३।७८।

अनुपकार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपकारक, अनुपकारी] १ उपकार का अभाव। २ अपकार। हानि।

अनुपकारी—वि० [सं०] १ उपकार न करनेवाला। अकृतज्ञ। अपकार करनेवाला। हानि पहुँचानेवाला। २ फजूल। निकम्मा।

अनुपकारीमित्र—सज्ञा पु० [स०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपक्षित—वि० [स०] न छीजनेवाला। क्षीण न होनेवाला [को०]।

अनुपगत—वि० [स०] दूर का।

अनुपगीत—वि० [सं०] जिसकी प्रशसा न की गई हो। अप्रशसित [को०]।

अनुपजीवनीय—वि० [स०] जिससे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके। २ जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो। साधनहीन [को०]।

अनुपतन—सज्ञा पुं० [स०] १. गिरना। क्रमश गिरना। एक के बाद दूसरे का पतन। २ पीछा करना। अनुसरण। ३. निश्चित क्रम मे आगे बढना। ४ अनुपात। ५ गणित का त्रैराशिक नियम [को०]।

अनपद[1]—क्रि० वि० [सं०] १ पीछे पीछे। कदम व कदम। उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद् थी।—साकेत, पृ० ८४। २ अनतर। बाद ही।

अनुपद[2]—वि० पीछे पीछे चलनेवाला। कदम व कदम पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला [को०]।

अनुपद[3]—सज्ञा १. गीत मे बार बार दोहराया जानेवाला पद। टेक। २ शब्दश व्याख्या [को०]।

अनुपदवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पथ। मार्ग। सडक [को०]।

अनुपदिक—वि० [सं०] १ पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [को०]।

अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला। खोज करनेवाला। अन्वेषक। पता लगानेवाला [को०]।

अनुपदीना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जूता। मोजरी। पूरे पैर की लबाई का जूता।

अनुपधा—सज्ञा स्त्री० [स०] वचकता।

अनुपधि—वि० [स०] निश्छल। निष्कपट। धोखा, धडो से रहित [को०]।

अनुपनीत—वि० [स०] १ अप्राप्त। न लाया हुआ। २ जिसका उपनयन सस्कार न हुआ हो।

अनुपन्यस्त—वि० [सं०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [को०]।

अनुपन्यास—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपन्यस्त] १ प्रमाण या निश्चय का अभाव। असमाधान। २ सदेह। अनिश्चय [को०]।

अनुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपपत्ति का अभाव। २ असमाधान। असगति। ३ असिद्धि। ४ अप्राप्ति। ५ असपन्नता। असमर्थता।

अनुपपन्न—वि० [स०] १ अप्रतिपादित। २ जो साबित न हुआ हो। ३ अयुक्त। ४ असभव (को०)। ५ जो सही ढग से समर्थित न हो (को०)।

अनुपम—वि० [स०] उपमारहित। बेजोड। जिसकी टक्कर का दूसरा न हो। बेमिसाल। बेनजीर। उ०—अनुपम शोभाधाम आभूषण ये तारका।—कानन०, पृ० ९७।

अनुपमता—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुपम होना। उपमा का अभाव। बेजोडपन।

अनुपमर्दन—सज्ञा पुं० [स०] अभियोग या आरोप का खडन न किया जाना [को०]।

अनुपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के राज। कुमुद की पत्नी [को०]।

अनुपमित—वि० [स०] दे० 'अनुपम' [को०]।

अनुपमेय—वि० [स०] दे० 'अनुपमा'।

अनुपयुक्त—वि० [स] अयोग्य। बेठीक। बेढब।

अनुपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] अयोग्यता। बेढबपन।

अनुपयोग—सज्ञा पु० [स०] १ व्यवहार का अभाव। काम मे न लाना। २ दुर्व्यवहार।

अपनुपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [स०] उपयोगिता का अभाव। निरर्थकता।

अनुपयोगी—वि० [स० अनुपयोगिन्] [सज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम। व्यर्थ का। बेमतलब का। बेमसरफ।

अनुपरत—वि० [स०] १ जो मृत न हो। २ बेरोक। अबाधित [को०]।

अनुपलभ—सज्ञा पुं० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव। जानकारी न होना [को०]।

अनुपल—वि० [स०] प्रतिक्षण। हर समय। हर घडी। उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था।—आदि० भारत, पृ० २५७।

अनुपलब्ध—वि० [स०] १ अप्राप्त। न मिला हुआ। २ अनदेखा। अकल्पित। अज्ञात (को०)।

अनुपलब्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुपलब्ध] १ अप्राप्ति। न मिलना। २ कल्पना या ज्ञान का अभाव (को०)।

अनुपलब्धिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर मे प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपवीती—वि० [सं० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करने वाला [को०]।

अनुपशय—सज्ञा पुं० [स०] रोगज्ञान के पाँच विधानो मे से एक। विशेष—इसमे आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है। वि० दे० 'उपशय'।

अनुपस्कृत—वि० [स०] १ अपरिष्कृत। जिसपर पालिश न की गई हो। २ शुद्ध। निष्कलुष। ३ जो पकाया न गया हो। ४ जिसके सबध मे मन मे कोई भ्रम न हो [को०]।

अनुपस्थान—सज्ञा पु० [स०] अनुपस्थिति [को०]।

अनुपस्थित—वि० [स०] जो सामने न हो। जो मौजूद न हो। अविद्यमान। गैरहाजिर।

अनुपस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] अविद्यमानता। गैरमौजूदगी। गैरहाजिरी। उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति मे हास भी पादपूर्ति सा होता है दुष्काव्य मे।—महाराणा०, पृ० १४।

अनुपहत—वि० [स०] १ अव्यवहृत। कोरा। नया (वस्त्र)। २ जो टूटा न हो। अक्षत [को०]।

अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय। जिसका केवल अनुमान किया जाय। अनुमेय [को०]।

अनुपात—सज्ञा पुं० [स०] १ गणित की त्रैराशिक क्रिया। २ दी हुई तीन सख्याओ मे चौथी को जानना। ३ अनुसरण। पीछा करना (को०)। ३ एक के बाद दूसरे का पतन। लगातार गिरना (को०)।

अनुपातक—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी, झूठ बोलना, परस्त्रीगमन इत्यादि।

अनुपादक—सज्ञा पु० [स०] तत्र के अनुसार आकाश मे भी सूक्ष्म एक तत्व।

अनुपान—सज्ञा पु० [स०] वह वस्तु जो औषध के साथ या उसके ऊपर से खाई जाय।

अनुपानत्क—वि० [स०] पदत्राण से रहित। नगे पैर [को०]।

अनुपानीय[1]—वि० [सं०] औषधि के साथ दिया जानेवाला पेय [को०]।

अनुपानीय[2]—सज्ञा पु० बाद मे पी जानेवाली वस्तु [को०]।

अनुपाय—वि० [सं०] निरुपाय। उ०—राज्य सग तुम्हे कहाँ से हाय। दे सकूँगा आर्य को अनुपाय।—पाकेन, पृ० १९६।

अनुपायी—वि० [स० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला। उपाय न करनेवाला [को०]।

अनुपार्श्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती। बगलगीर [को०]।

अनुपाल—सज्ञा पु० [स०] १ अश्वादि पशुओ का रक्षक। रखवाला [को०]।

अनुपालक—वि० [सं०] १ रक्षा करनेवाला। २ माननेवाला [को०]।

अनुपालन—सज्ञा पुं० [स०] १ रक्षण। २ पालन [को०]।

अनुपाश्रयाभूमि—सज्ञा स्त्री० [स०] वह भूमि जो बसनेवालो के अतिरिक्त और दूसरो को आश्रय देने मे असमर्थ हो अर्थात् जिसमे और लोगो के बसने की गुजाइश न हो।

अनुपासन—सज्ञा पु० [सं०] ध्यान का अभाव। उपेक्षा [को०]।

अनुपासित—वि०[सं०] उपेक्षित। जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०]।

अनुपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ पूर्वकथित व्यक्ति। २ अनुगामी। अनुयायी [को०]।

अनुपुष्प—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०]।

अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम। अनुक्रमिक। सिलसिलेवार।

अनुपूर्वकेश—वि० [स०] सुव्यवस्थित केशोवाला [को०]।

अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडौल अगोवाला [को०]।

अनुपूर्वदष्ट्र—वि० [सं०] सुदर दतपक्तियोवाला [को०]।

अनुपूर्वनाभि—वि० [स०] सुदर नाभिवाला [को०]।

अनुपूर्वपाणिलेख—वि० [स०] जिसके हाथ की रेखाएँ सुस्पष्ट तथा व्यवस्थित हो [को०]।

अनुपूर्ववत्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] नियमित समय पर बच्चा देनेवाली गाय [को०]।

अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित। क्रमबद्ध [को०]।

अनुपेत—वि० [सं०] १ जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ भरती न हुआ हो। अदीक्षित। २ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो। अनुपनीत (को०)।

अनुप्त—वि० [स०] जो बोया न गया हो। बिना बोया हुआ।

अनुप्रशस्य—वि० [स०] बिना बोया। परती [को०]।

अनुप्रज्ञान—सज्ञा पु० [स०] अन्वेषण करना। पता लगाना। खोज करना [को०]।

अनुप्रदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। दान। २ वृद्धि। बढोतरी [को०]।

अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल। भानेवाला। मनपसद [को०]।

अनुप्रवाद—सज्ञा पुं० [स०] किंवदती। अफवाह [को०]।

अनुप्रवेश—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रवेश करना। भीतर जाना। २ अपने अवसर के अनुकूल बनाना। ३ अनुकरण [को०]।

अनुप्रश्न—सज्ञा पुं० [स०] सबधित प्रश्न। प्रसगानुकूल जिज्ञासा [को०]।

अनुप्रसक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ प्रेम। गहरी आसक्ति। २ तर्क शास्त्र के अनुसार शब्दो का निकट सबध [को०]।

अनुप्रस्थ—वि० [स०] चौडाई के अनुसार [को०]।

अनुप्राणन—सज्ञा पुं० [स०] १ प्राण सचारण। २ प्रेरणा। स्फुरण [को०]।

अनुप्राणित—वि० [स०] प्राणवान्। सजीव। प्रेरित। उ०—"भगवद्गीता भी जायसवाल जी के कथनानुसार मनुस्मृतिवाले आदर्शों से ही अनुप्राणित है"।—भा० इ० रू०, पृ० ७२६।

अनुप्राशन—सज्ञा पुं० [स०] खाना। भक्षण। उ०—कछु दिन पवन कियो अनुप्राशन रोक्यो श्वास वह जानी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

अनुप्रास—सज्ञा पु० [सं०] वह शब्दालकार जिसमे किसी पद मे एक ही अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण होता है। वर्णवृत्ति। वर्णसाम्य। वर्णमैत्री। जैसे—काक कहहिं कलकठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसके पाँच भेद है—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अत्यानुप्रास और लाटानुप्रास।

अनुप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नेत्र गड़ाकर देखना। ध्यान से देखना। २ ग्रंथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त से चिंतन।

अनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनुबन्ध] १ बंधन। लगाव। २ अविच्छिन्न क्रम। आगापीछा। सिलसिला। जैसे—किसी कार्य को करने के पहले उसका आगापीछा सोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३ वंशज। अनुवंश (को०)। ४ होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५ उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६ गौण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७ वात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८ वादविवाद या विषयवस्तु को जोड़नेवाली कड़ी। वेदांत का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९ अपराध। त्रुटि (को०)। १० पारिवारिक बाधा, भार या स्नेह (को०)। ११ पिता या गुरु के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२ आरंभ। श्रीगणेश। १३ मार्ग। उपाय (को०)। १४ तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५ मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृषा (को०)। १६ अनुसरण। १७ करार। इकरारनामा। १८ पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह उत्संज्ञक सांकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रत्याहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबंधक—वि० [सं० अनुबन्धक] संबद्ध। संबंधित। २ अनुबंध करनेवाला [को०]।

अनुबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अनुबन्धन] संबंध। अनुक्रम। सिलसिला। उ०—पूर्वापर प्रसंगों के अनुबंधन में व्रजविलास की कला द्रुत-विलंबित गति से प्रवाहित होती है।—पोद्दार० अभि०, ग्र०, पृ० ३४९।

अनुबंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुबन्धिका] जोड़ का दर्द [को०]।

अनुबंधी[1]—वि० [सं० अनुबन्धिन्] [वि० स्त्री० अनुबन्धिनी] १ संबंधी। लगाव रखनेवाला। २ फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुबंधी[2]—संज्ञा स्त्री० १ हिचकी। २ प्यास।

अनुबद्ध—वि० [सं०] १ संबद्ध। लगाव रखनेवाला [को०]।

अनुवर्तन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूरब दिसिहि को जहँ अनुवर्तन होन।—मतिराम ग्र०, पृ० ४२८।

अनुबल—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना [को०]।

अनुवाद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवाद'। उ०—सुनत फिरौं हरि गुन अनुवादा।—मानस, ७।११०। २ जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बनाई जोई बाँह दै उमीमैं सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गंग०, पृ० २६४।

अनुबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्मरण या बोध जो पीछे हो। २ किसी वस्तु की हलकी हो गई सुगंध को पुन तीव्र करना। गंधोद्दीपन।

क्रि० प०—करना—होना।

अनुबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण के समान ग्रंथ। जैसे, ऐतरेय ब्राह्मण से मिलता जुलता ग्रंथ। २ ब्राह्मण जैसा कार्य [को०]।

अनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभिन्न ज्ञान। जैसे—सब जीव पीड़ा का अनुभव करते हैं (शब्द०)। २ परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपार्जित ज्ञान। तजरबा। जैसे,—इसे इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३ समझ। मन का प्राप्त ज्ञान (को०)। ४ परिणाम। फल (को०)।

अनुभवना—क्रि० स० [सं० अनुभव से नाम०] अनुभव करना। बोध करना। उ०—पुन्य फल अनुभवत सुतहि विलोकि कै नंद घरनि।—सूर०, १०।१०६।

अनुभवी—वि० [सं० अनुभविन्] अनुभव रखनेवाला। जिसने देख सुनकर जानकारी प्राप्त की हो। तजरबेकार। जानकार।

अनुभाऊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभाव'। उ०—बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ।—मानस, २।२८८।

अनुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। महिमा। बड़ाई। २ काव्य में रस के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। हाव भी इसी के अंतर्गत माना जाता है।

अनुभावक—वि० [सं०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला [को०]।

अनुभावन—संज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा या भंगिमा द्वारा मन के भावों को प्रकट करना [को०]।

अनुभावित—वि० [सं०] १ अत्यधिक शक्तिसंपन्न। २ रक्षित। ३ अनुभवसंपन्न। अनुभवी [को०]।

अनुभावी—वि० [सं० अनुभाविन्] [वि० स्त्री० अनुभाविनी] १. जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २ वह साक्ष्य जिसने सब बातें खुद देखी सुनी हों। चश्मदीद गवाह। ३ मृतक के वे संबंधी जिन्हें उसके मरने का अशौच लगे या जो आयु आदि में उनके छोटे हों। ४ बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५ भाव दिखानेवाला (को०)।

अनुभाषक—वि० [सं०] उत्तर में बोलनेवाला [को०]।

अनुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ खंडन करने के लिये किसी स्थापना का पुन कथन। २ कथित वस्तु का पुन कथन। पुराकथन। आवृत्ति। ३ वार्तालाप। कथोपकथन [को०]।

अनुभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौआ [को०]।

अनुभूत—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २ परीक्षित। तजरबा किया हुआ। आजमूदा।

यौ०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २ इंद्रियज ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान [को०]।

अनुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बड़ो को छोट भेद अनुभेद न जानैं।—सूर०, १०।१५८९।

अनुभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमती। २ उपभोग।

अनुभौ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभव'। उ०—अनुभौ चेरि रैन दिन डरिया।—केशव० अमी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—सज्ञा पु० [स० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता। छोटा भाई। अनुज [को०]।

अनुमता—वि० [स० अनुमन्तृ] अनुमति देनेवाला। स्वीकृति देनेवाला। चलते कार्य को होने देनेवाला [को०]।

अनुमत—वि० [स०] १ अनुज्ञप्त। समत। स्वीकृत। २ प्रिय। मनपसद। ३ एकमत। एकराय। ४ प्रेमी [को०]।

अनुमति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आज्ञा। अनुज्ञा। हुक्म। २ सम्मति। इजाजत। ३ वह पूर्णिमा जिसमे चद्रमा की कला पूरी न हो। चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा।

अनुमतिपत्र—सज्ञा पु० [स० अनुमति+पत्र] किसी प्रतिबधित कार्य के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र। जैसे, एक देश से दूसरे देश मे जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या विसा [को०]।

अनुमत्त—वि० [स०] आनद के अतिरेक से उन्मत्त। खुशी के मारे पागल [को०]।

अनुमनन—सज्ञा पु० [स०] १ स्वीकृति देना। २ स्वतत्रता [को०]।

अनुमरण—सज्ञा पु० [स०] पश्चात् मरण। पति के साथ विधवा स्त्री का चितारोहण। सती होना [को०]।

अनुमरु—सज्ञा पु० [स०] मरुभूमि के बाद का देश [को०]।

अनुमा—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुमान। अनुमिति [को०]।

अनुमाता—वि० [स० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला। निष्कर्ष निकालनेवाला [को०]।

अनुमात्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] दृढ निश्चय। सकल्प [को०]।

अनुमान—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १ अटकल अदाजा २ विचार। भावना। कयास। ३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदो मे से एक।

विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होती है। इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी जिसमे कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो। जैसे, बादल देखकर यह भावना करना कि पानी बरसेगा। (ख) शेषवत् या व्यतिरेकी, जिसमे कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया जाय। जैसे, नदी की बाढ देखकर अनुमान करना कि उसके चढाव की ओर पानी बरसा है। और (ग) सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी, जिसमे नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है। जैसे, किसी वस्तु को स्थानातर मे देखकर उसके वहाँ लाए जाने का अनुमान।

अनुमानत—क्रि० वि० [सं०] अटकल या अनुमान से [को०]।

अनुमाननाⓊ—क्रि० स० [सं० अनुमान से नाम०] अनुमान करना। सोचना। अदाजा करना। उ०—समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी।—मानस १।१५८।

अनुमानाश्रित—वि० [स० अनुमान+आश्रित] जो अनुमान पर आधारित हो। जिसका कोई ठोस आधार न हो।

अनुमानोक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ तर्क। तर्कना। २ तर्कानुमोदित निष्कर्ष [को०]।

अनुमापक—वि० [स०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान मे सहायक [को०]।

अनुमास—सज्ञा पु० [स०] १ आनेवाला महीना। २ मास प्रति मास [को०]।

अनुमित—वि० [स०] अनुमान किया हुआ। अदाजा हुआ।

अनुमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनुमान। २ नव्य न्याय के अनुसार अनुभूति के चार भेदो मे से एक जिसमे किसी वस्तु के व्याप्त गुणो के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय।

अनुमित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की आकाक्षा [को०]।

अनुमृता—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो गई हो [को०]।

अनुमेय—वि० [स०] अनुमान के योग्य।

अनुमोद—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुमोदन' [को०]।

अनुमोदक—वि० [स०] अनुमोदन करनेवाला। समर्थन करनेवाला। उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं। —साकेत, पृ० ३९५।

अनुमोदन—सज्ञा पु० [स०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन। खुश होना। २ समर्थन। ताईद। उ०—कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।—मानस, ७।१२९।

अनुयाता—सज्ञा पुं० [स० अनुयातृ] अनुगामी। साथी [को०]।

अनुयात्र—सज्ञा पुं० [स०] अनुचरो का दल। २ अर्दली मे रहना। ३ अनुगमन [को०]।

अनुयात्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुयात्र' [को०]।

अनुयात्रिक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुयात्रा' [को०]।

अनुयान—सज्ञा पुं० [स०] अनुगमन। पीछे चलना [को०]।

अनुयायी[१]—वि० [स० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १ अनुगामी। पीछे चलनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला। शिक्षा या आदर्श पर चलनेवाला। ३ समान। तुल्य (को०)।

अनुयायी[२]—सज्ञा पुं० अनुचर। सेवक। दास। पैरोकार।

अनुयुक्त—वि० [स०] १ जिसके सबध मे अनुयोग किया गया हो। जिसके विषय मे कुछ प्रश्न किया गया हो। जिज्ञासित। २ निंदित।

अनुयोक्ता[१]—वि० [स० अनुयोक्तृ] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञासा करनेवाला। पूछताछ करनेवाला।

अनुयोक्ता[२]—सज्ञा पु० १ परीक्षक। २ मृतकाध्यापक। शुल्क लेकर पढानेवाला अध्यापक [को०]।

अनुयोग—सज्ञा पु० [स०] १ प्रश्न। जिज्ञासा। पूछताछ। रोक। बाधा (को०)। ३ उद्यम। श्रम। चेष्टा (को०)। ४ आलोचना। टीका (को०) ५ आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०]।

अनुयोजन—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की क्रिया। प्रश्न करना। पूछना।

अनुयोजित—वि० [स०] जिसके विषय मे पूछताछ की गई हो।

अनुयोज्य[१]—वि० [स] १ प्रष्टव्य। जिसके विषय मे पूछताछ की आवश्यकता हो। २ निंदनीय। बुरा।

अनुयोज्य[२]—सज्ञा पु० विश्वस्त सेवक। भृत्य [को०]।

अनुरजक—वि० [स० अनुरञ्जक] मन बहलानेवाला। प्रसन्न करनेवाला [को०]।

अनुरजन—सज्ञा पु० [स० अनुरञ्जन] १ अनुराग। आसक्ति। प्रीति। २ दिलबहलाव

अनुरजित—वि० [स० अनुरञ्जित] आनदित। अनुरागयुक्त। उ०—मन को अनुरजित करना ही यदि कविता का अतिम लक्ष्य माना जाय तो।—रस०, पृ० २८।

अनुरक्त—वि० [स०] अनुरागयुक्त। प्रेमयुक्त।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो।—कानन, पृ० २६। २ आसक्त। लीन। उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त।—सूर०, ६।५। ३ प्रसन्न। खुश। सतुष्ट (को०)। ४ लालिमायुक्त। रगीन (को०)। ५ हर प्रकार से अनुकूल। भक्त। निष्ठावान् (को०)।

अनुरक्तप्रकृति—वि० [स०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमे अनुरक्त हो। प्रजाप्रिय।

अनुरक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] आसक्ति। अनुराग। प्रीति। भक्ति। उ०—उर मे जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह।—पचवटी पृ० ११।

अनुरणन—सज्ञा पु० [सं०] १ नूपुर, घटा आदि की ध्वनि। २ प्रतिध्वनि। गूँज। ३ शब्दव्यजना [को०]।

अनुरणित—वि० [स०] झकृत। ध्वनित [को०]।

अनुरत—वि० [स०] १ लीन। आसक्त। उ०—चरननि चित्त निरतर अनुरत रसना चरित रसाल।—सूर०, १।१८६। २ अनुरागी। प्रिय।

अनुरति—सज्ञा स्त्री० [स०] लीनता। आसक्ति। अनुराग। प्रीति।

अनुरत्त—वि० [स० अनुरक्त, प्रा० अनुरत्त] दे० 'अनुरक्त' उ०—मजे सूर सावत सब, सुमुख समर अनुरत्त।—हम्मीर, पृ० २३।

अनुरथ्या—सज्ञा स्त्री० [स०] सडक के दोनो ओर पैदल चलने का मार्ग। सडक का किनारा। पटरी। [को०]।

अनुरध—सज्ञा पुं० [स० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध'। उ०—कृष्ण गेह कै काम। काम अगज जनु अनुरध।—पृ० रा०, १।७२७।

अनुरस—सज्ञा पु० [स०] १ गौण रस। अप्रधान रस। २ वह स्वाद जो किसी वस्तु मे पूर्ण रूप से न हो। ३ दे० 'अनुरसित१' [को०]।

अनुरसित१—सज्ञा पु० [स०] प्रतिध्वनि। गूँज [को०]।

अनुरसित२—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०]।

अनुरहस१—वि० [स०] एकात। गुप्त। गोपनीय [को०]।

अनुरहस२—क्रि० वि० गुप्त रूप से। ऐकातिक [को०]।

अनुराग१—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुरागी] प्रीति। प्रेम। आसक्ति। प्यार। मुहब्बत। २ भक्ति भाव (को०)। ३ लाल रग। (को०)।

अनुराग२—वि० लालिमायुक्त। लाल किया हुआ [को०]।

अनुरागना१—क्रि० स० [स० अनुराग से हिं० नाम०] प्रीति करना। प्रेम करना। आसक्त होना। उ०—क्रम कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप विलोकन लागे।—मानस, १।२४२।

अनुरागना२—क्रि० अ० प्रेमयुक्त होना। आसक्तियुक्त होना। उ०—सुनि प्रभुवचन अधिक अनुरागेउँ।—मानस, ७।८४।

अनुरागी—वि० [स० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागिनी] अनुराग रखनेवाला। प्रेमी। उ०—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।—बिहारी र०, दो० १२१।

अनुरात्र—क्रि० वि० [स०] प्रतिरात्रि। रात्रि मे। एक के बाद दूसरी रात [को०]।

अनुराध१—वि० [स०] १ कल्याण करनेवाला। हितकारक। २ अनुराधा नक्षत्र मे उत्पन्न [को०]।

अनुराध२—सज्ञा पु० [हिं०] विनती। विनय। आराधन। प्रार्थना। याचना। उ०—पूर स्याम मन देहि न मेरो पुनि कीन्हौं अनुराध।—सूर०, १०।१८८६।

अनुराधना—क्रि० स० [स०] अनुराध से हिं० नाम०] विनय करना। विनती करना। मनाना। प्रार्थना करना। उ०—मैं आजु तुम्हैं गहि बाँधौं, हा हा करि करि अनुराधौं।—सूर, १०।१८३।

अनुराधग्राम—सज्ञा पुं० [स०] अनुराध द्वारा स्थापित लका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०]।

अनुराधा—सज्ञा स्त्री० [स०] २७ नक्षत्रो मे १७ वाँ नक्षत्र। उ०—मादौ सुकला छट्ठ को, जो अनुराधा होय। नाता सबन सो जुडै, भूखा रहै न कोय (शब्द०)।

विशेष—यह सात तारो के मिलने से सर्पाकार दिखाई देता है। यह नक्षत्र बडा शुभ और मागलिक माना जाता है।

अनुरुद्ध—वि० [स०] १. रोका हुआ। बाधित। जिसका प्रतिवाद किया गया हो। २ तोषित। सतोषित [को०]।

अनुरुहा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की घास [को०]।

अनुरूप—वि० [स०] [सज्ञा अनुरूपता] १ तुल्य रूप का। सदृश। समान। सरीखा। २ योग्य। अनुकूल। उपयुक्त। उ०—निज अनुरूप सुभग वरु माँगा।—मानस, १।२५८।

अनुरूपक—सज्ञा पु० [स०] अनु+रूपक] प्रतिमा। प्रतिमूर्ति। उ०—गोनियन दत रुचि मुख उर आनिए। सत्य जनरूप अनरूप बखानिए।—केशव (शब्द०)।

अनुरूपता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ समानता। सादृश्य। २ अनुकूलता। उपयुक्तता।

अनुरूपना—क्रि० स० [स०अनुरूप से हिं० नाम०] समान या सदृश बनाना।

अनुरूपासिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रो, भाई, बधुओ आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष मे करना।

अनुरेवती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०]।

अनुरोदन—सज्ञा पु० [स०] शोक की अभिव्यक्ति। सहानुभूति [को०]।

अनुरोध—सज्ञा पुं० [स०] १ रुकावट। बाधा। उ०—मोहु बिनु, अनुरोध ऋतु के बोध विहित उपाउ। करत हैं सोइ समय साधन फलति बात बनाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७३। २ प्रेरणा। उत्तेजना। जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पडता है (शब्द०)। ३ आग्रह। दबाव। विनयपूर्वक किसी बात के लिये हठ। जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं अँगरेजी भी पढूँ (शब्द०)। ४ इच्छापूर्ति करना (को०)। ५. समान [को०]। ६. विचार [को०]।

अनुरोधक—वि० [सं०] अनुरोध करनेवाला (को०)।

अनुरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। परिपालन। आज्ञाकारिता। आदर। इच्छापूर्ति। २ किसी का प्रेम प्राप्त करने का साधन (को०)।

अनुरोधी—वि० [सं० अनुरोधिन्] दे० 'अनुरोधक' (को०)।

अनुर्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुर्वरा] १ जिसमें उपज न हो। जो जरखेज न हो। उ०—इस विकराल, अनुर्वर, ऊसर अरण्य काल प्रांतर में।—क्वासि, पृ० १४। २ निष्फल। उ०—अपने में सिमटी हुई मलिन विद्या अनुर्वरा की झाँकी।—सामधेनी, पृ० १७।

अनुलग्न—वि० [सं०] संलग्न। पीछे लगा हुआ। जान बूझकर चिपका हुआ (को०)।

अनुलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ बातचीत। वार्तालाप। उ०—प्राणियों के बीच में होने लगा अनुलाप।—शकु०, पृ० ६। २ पुनरुक्ति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।

अनुलालित—वि० [सं०] अनुरंजित। जिसका मनोरंजन किया गया हो (को०)।

अनुलास—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर (को०)।

अनुलास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलास' (को०)।

अनुलिपि—संज्ञा पुं० [सं० अनु+लिपि] प्रतिलिपि। नकल। उ०—अनुलिपि आदि का कुछ कुछ अभ्यास करना प्रारंभ कर देने से लाभ ही होता है। भाषा वि०, पृ० ६८।

अनुलेख—संज्ञा पुं० [सं० अनु+लेख] अनुलिपि। प्रतिलिपि।

अनुलेप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलेपन'[1]। उ०—समृति के विक्षत पग रे, वह चलती है डगमग रे, अनुलेप सदृश तू लग रे।—लहर, पृ० ५०।

अनुलेपक—वि० [सं०] [स्त्री० अनुलेपिका] जो शरीर पर लेप, उबटन आदि लगाता है (को०)।

अनुलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी तरल वस्तु की तह चढ़ाना। लेपन। उ०—अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था।—कामायनी, पृ० २१५। २ सुगंधित द्रव्यों या औषधों का मर्दन। उबटन करना। बटना लगाना। ३ लीपना। पोतना।

अनुलेपी—वि० [सं० अनुलेपिन्] दे० 'अनुलेपक' (को०)।

अनुलोम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम। उतार का सिलसिला। २ उत्तम से अधम की ओर आता हुआ श्रेणीक्रम। ३ संगीत में सुरों का उतार। अवरोही। ४ प्रतिलोम का उलटा या विलोम (को०)।

यौ०—अनुलोम विवाह।

अनुलोमज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुलोमजा] वह (संतान) जो अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम संकर।

अनुलोमजन्मा—वि० [सं० अनुलोमजन्मन्] दे० 'अनुलोमज' (को०)।

अनुलोमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह औषध जो पेट में पड़े हुए मोटे को ढीले करके गिरा दे। पेटसफाई को दूर करनेवाली रेचक या भेदक औषध। २ स्वाभाविक क्रम। अनुलोम (को०)।

अनुलोम विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।

जैसे—ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा से, क्षत्रिय का वैश्या या शूद्रा से और वैश्या का शूद्रा से विवाह। इस प्रकार के संबंध से जो संतति होती है वह अनुलोम संकर कहलाती है।

अनुलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री (को०)।

अनुलोमा सिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर, जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुल्बण, अनुल्वण—वि० [सं०] १ जो अधिक न हो। न अधिक न अल्प। २ अस्पष्ट (को०)।

अनुवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ वंशवृक्ष। वंशावली। कुरसीनामा। २ आधुनिक या नई पीढ़ी (को०)।

अनुवंश्य—वि० [सं०] वंशवृक्ष या वंशावली में संबंधित। जो कुरसी नामे में हो (को०)।

अनुवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुवक्तृ] उत्तर देनेवाला। प्रतिवक्ता। बाद में बोलनेवाला। पुनः पाठ करनेवाला। दोहराने वाला (को०)।

अनुवक्र—वि० [सं०] १ अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २ कुछ टेढ़ा या तिरछा (को०)।

अनुवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवृत्ति। दोहराना। पठन। २ अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३ अध्याय। पाठ। प्रकरण। ४ भिन्न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार मंत्रपाठ (को०)।

अनुवत्सर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का युग होता है उसका चौथा वर्ष।

अनुवत्सर[2]—क्रि० वि० प्रतिवर्ष। सालाना।

अनुवदना—क्रि० स० [सं० अनु+वद्] बात दुहराना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। कटूक्तिपूर्ण करना। उ०—मम नहि अनुवद सुपद्दु समाज।—विद्यापति, पृ० ३१४।

अनुवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। अनुगमन। २ अनुकरण। समान आचरण। ३ किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार लगना। ४ परिणाम। फल (को०)। ५ कृतज्ञतास्वीकार (को०)।

अनुवर्तिनी[1]—वि० [सं०] अनुगामिनी। अनुसरण करनेवाली।

अनुवर्तिनी[2]—संज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी (को०)।

अनुवर्ती—वि० [सं० अनुवर्तिन्] [स्त्री० अनुवर्तिनी अनुसरण] करनेवाला। अनुसार बरताव करनेवाला। अनुगामी। पैरवी करनेवाला।

अनुवश[1]—वि० [सं०] अनुगत। दूसरे के कहने पर चलनेवाला। वशवर्ती। आज्ञाकारी (को०)।

अनुवश[2]—संज्ञा पुं० आज्ञाकारिता। वशवर्तिता (को०)।

अनुवसित—वि० [सं०] १ कपड़े से ढँका हुआ। वस्त्र द्वारा आच्छादित। २ बाँधा हुआ। संबद्ध। संलग्न (को०)।

अनुवह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम (को०)।

अनुवा[1]—सज्ञा पु० [स० अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव] १ कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खडे होकर पानी खीचते हैं। २ पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौडा। चोआ। ३ ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सीचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा[2]—सज्ञा पुं० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा[3]ⓤ—[हिं० आनना] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू वताइ जोई बाँह दै उसीसैं सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गग०, ग्र० पृ० ७६।

अनुवाक—सज्ञा पु० [स०] १ ग्रथविभाग। ग्रथावयव। ग्रथखड। अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २ वेद के अध्याय का एक अश। ३ दुहराना। पुन पढना (को०)।

अनुवाचन—सज्ञा पुं० [स०] १ यज्ञो मे विधि के अनुसार मत्रो का पाठ। २ पढाना। अध्ययन कराना (को०)। ३ स्वय पढना (को०)।

अनुवाद—सज्ञा पु० [सं०] १ पुनरुक्ति। पुन कथन। दोहराना। २ भाषातर। उल्था। तर्जुमा। ३ न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमे कही हुई वात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—'अन्न पकाओ, पकाओ, पकाओ, शीघ्र पकाओ, हे प्रिय ! पकाओ'।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४ मीमासा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दो मे समर्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमे आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे वायु ही सबसे वडकर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, दही से हवन करे।

५ खबर। जनश्रुति (को०)। ६ व्याख्यान का आरभ (को०)। ७ विज्ञापन। सूचना [को०]।

अनुवादक—सज्ञा पु० [स०] १ अनुवाद करनेवाला। भाषातर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २ सदृश। समान (को०)। ३ समर्थन करनेवाला [को०]।

अनुवादित—वि० [स०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी[1]—सज्ञा पु० [स० अनुवादिन्] सगीत मे स्वर का एक भेद जो किसी राग मे आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी[2]—वि० दे० 'अनुवादक' [को०]।

अनुवाद्य—वि० [स०] अनुवाद के योग्य। व्याख्या के योग्य [को०]।

अनुवास—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुवासन' [को०]।

अनुवासन—सज्ञा पुं० [स०] १ वस्त्रादि को सुगधित करना। महकाना। २ सुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा।

अनुवासनवस्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सुगधित करने का यत्र। पिचकारी। २ शरीर के भीतर तरल औषध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [स०] १ गध से वसाया हुआ। गधद्रव्य मे सुवासित। २ वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ [को०]।

अनुवासी—वि० [स० अनुवासिन्] पडोस मे रहनेवाला। साथ रहनेवाला [को०]।

अनुवित्त—वि० [सं०] प्राप्त। उपलब्ध [को०]।

अनुवित्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] प्राप्ति। उपलब्धि [को०]।

अनुविद्ध—वि० [सं०] १ छेदा हुआ। जिसमें आर पार छेद किया हो। २ खचित। सलग्न। ३ भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। सयुक्त [को०]।

अनुविधान—सज्ञा पु० [स०] १ आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २ आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [स० अनुविधायिन्] [वि० स्त्री० अनुविधायिनी] १ आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २ मिलता जुलता। तद्रूप [को०]।

अनुविनाश—सज्ञा पु० [सं०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना [को०]।

अनुविहित—वि० [स०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुवृत्त[1]—वि० [स०] १ अनुसरण करनेवाला। २ आज्ञापालन करनेवाला। ३ लगातार। अविच्छिन्न। ४ उतार चढाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५ शीलानुगत। ६ जिसकी आवृत्ति की गई हो [को०]।

अनुवृत्त[2]—सज्ञा पुं० [स०] वृतात। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ किसी पद के पहले अश से कुछ वाक्य उसके पिछले अश मे अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—'राम घर गए हैं और गोविद भी (घर गए हैं)'।

२ स्वीकृति। सपुष्टि (को०)। ३. आज्ञाकारिता (को०)। ४ आवृत्ति (को०)। ५ अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—सज्ञा पु० [स०] १ छेदन करना। वेधना। २ सपर्क। मिलन। ३ मिश्रण। ४ बाधा [को०]।

अनुवेल्लित[1]—वि० [स०] नीचे झुका हुआ [को०]।

अनुवेल्लित[2]—सज्ञा पु० १ घाव पर पट्टी बाँधना। २ सुश्रुत के अनुसार घाव बाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियो मे से एक [को०]।

अनुवेश—सज्ञा पुं० [स०] १ अनुसरण। बाद मे प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २ बडे भाई से पहले छोटे का विवाह [को०]।

अनुवेशन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुवेश' [को०]।

अनुवेश्य[1]—सज्ञा पु० [स०] १ वह ब्राह्मण जो मगल या शाति कर्म करनेवाले से एक घर के अतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मगल या शाति कर्म मे ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य[2]—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान मे रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—सज्ञा पुं० [स०] १ मत्रो तथा सूत्रो की व्याख्या। मत्रविवरण। २ ब्राह्मण ग्रथो का वह भाग जिसमे कठिन सूत्रो तथा मत्रो की व्याख्या हो। मत्रो आदि का अनुरूप अर्थप्रकाशक व्याख्यान [को०]।

अनुव्याध—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार दोहराना। पुनरुक्ति। २ किसी प्रसग का प्रसगातर सहित उल्लेख। ३ शाप। अनिष्ट-चिंतन [को०]।

अनुव्याहार—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०]।

अनुव्रजन—सज्ञा पुं० [स०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०]।

अनुव्रज्या—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुव्रजन' [को०]।

अनुव्रत[1]—वि० [स०] १ विश्वासपात्र। कर्तव्यपरायण २ निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित होकर उचित रूप से करनेवाला [को०]।

अनुव्रत[2]—सज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०]।

अनुव्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] सदा पति मे अनुरक्त रहनेवाली स्त्री। पतिव्रता [को०]।

अनुशतिक—सज्ञा पु० [स०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक या अफसर।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हे यह सैनिक शिक्षा देता था।

अनुशप—सज्ञा पु० [स०] काम से ली हुई छुट्टी। रुखसत।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे इसके सबध मे बहुत से नियम दिए हैं।

अनुशय—सज्ञा पु० [स०] १ पूर्वद्वेष। पुराना वैर। अदावत। २ पश्चात्ताप। अनुताप। उ०—लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमे अनुशय बन घुसा तीर।—कामायनी, पृ० २५०। ३ झगडा। वादविवाद। कहासुनी। गर्मागर्मी। ४ दान सबधी झगडो का निर्णय, फल या फैसला (अर्थ०)। ५ घृणा (को०)। ६ लगाव। आसक्ति (को०)। ७ बुरे कर्मों का फल या परिणाम। कर्मविपाक (को०)।

यौ०—क्रीतानुशय = वे नियम जो क्रय विक्रय के झगडे से सबध रखें। नारद स्मृति मे ये बडे विस्तार के साथ कहे गए है।

अनुशयान—वि० [स०] पश्चात्ताप करनेवाला। पछतानेवाला [को०]।

अनुशयाना—सज्ञा स्त्री० [स०] १ परकीया नायिका का एक भेद। वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो।

विशेष— यह तीन प्रकार की होती है। (क) सकेतविघट्टना = वर्तमान सकेत नष्ट होने से दुखी। (ख) भाविसकेतनष्टा = भावी सकेत के नष्ट होने की सभावना से सतापित और (ग) रमणगमना = मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नही पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो।

अनुशयी[1]—वि० [स० अनुशयिन्] १. वैरी। द्वेषी। २ झगडालू। ३ पश्चात्तापयुक्त। पछतानेवाला। ४ चरणो पर पडकर प्रणाम करनेवाला। ५. अनुरक्त। लीन। आसक्त। ६. कर्मफल का भोक्ता (को०)।

अनुशयी[2]—सज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान सबधी झगडों का निर्णय करता था (अर्थ०)।

अनुशयी[3]—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुशय + ई] रोगविशेष। एक प्रकार की फुंसी जो पैर मे होती है।

अनुशर—सज्ञा पु० [सं०] दुष्टात्मा राक्षस।

अनुशासक—सज्ञा पुं० [स०] १ आज्ञा देनेवाला। आदेश देनेवाला। हुक्म देनेवाला। २ उपदेष्टा। शिक्षक। ३ देश या राज्य का प्रबध करनेवाला। हुकूमत करनेवाला।

अनुशासन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १ आदेश। आज्ञा। हुक्म। उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता।—साकेत, पृ० २३५। २ उपदेश। शिक्षा। ३ व्याख्यान। विवरण। ४. महाभारत का एक पर्व। ५ नियम। व्यवस्था।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुशासनपर्व—सज्ञा पुं० [स०] महाभारत का १३वाँ पर्व।

अनुशासनीय—वि० [स०] १ आज्ञा देने के योग्य। आदेश देने के योग्य। हुक्म देने के लायक। २ उपदेश देने के योग्य। शिक्षा देने के योग्य। ३ प्रबध करने के योग्य। हुकूमत करने के लायक।

अनुशासित—वि० [स०] १ जिसको आज्ञा दी गई हो। जिसे आदेश दिया गया हो। २ उपदिष्ट। शिक्षित। ३ जिसका प्रबध किया गया हो। जिसपर हुकूमत की गई हो।

अनुशासी—सज्ञा पुं० [स० अनुशासिन्] दे० 'अनुशासक [को०]।

अनुशास्ता—सज्ञा पु० [स० अनुशास्तृ] दे० 'अनुशासक' [को०]।

अनुशिष्ट—वि० [स०] १ शिक्षित। २ आदिष्ट। निदेशित। ३. पूछा हुआ।

अनुशिष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] आदेश। शिक्षा। शासन [को०]।

अनुशीलन—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १ चिंतन। मनन। आलोचन। उ०—देवो की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन मे अनुदिन मेरे।—कामायनी, पृ० ७१। २ पुन पुन अभ्यास या अध्ययन। आवृत्ति।

अनुशीलनीय—वि० [स०] १ चिंतन करने के योग्य। मनन करने के योग्य। विचार या आलोचना करने के योग्य। २ अभ्यास करने के योग्य।

अनुशीलित—वि० [स०] बार बार अभ्यस्त। सावधानी से अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०]।

अनुशोक—सज्ञा पुं० [स] शोक। पश्चात्ताप। खेद [को०]।

अनुशोचक—वि० [स०] १. पश्चात्तापकर। खेदजनक। पछतानेवाला [को०]।

अनुशोचन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुशोक' [को०]।

अनुशोचना—सज्ञा स्त्री० [स० अनुशोचन] दुख। शोक। खेद। चिंता। उ०—(क) 'क्यो हृदय को दुर्बल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो'।—राज्यश्री, पृ० ६।

अनुशोची—वि० [सं० अनुशोचिन्] दे० 'अनुशोचक' [को०]।

अनुश्रव—सज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परपरा [को०]।

अनुश्रविक—वि० [स०] परंपरा से श्रुति द्वारा परलोक विषयक (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का।

अनुश्रुत—वि० [सं०] परपरा से सुना गया अथवा प्राप्त (ज्ञान आदि) [को०]।

अनुश्रुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया सुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा बात। उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३।

अनुषग—सज्ञा पुं० [स० अनुषङ्ग] [वि० अनुषगी, अनुषगिक] १ करुणा। दया। २ सबध। लगाव। साथ। ३ प्रसग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना। जैसे—'राम वन को गए और लक्ष्मण भी'। इस पद मे "भी" के आगे 'वन को गए' वाक्य अनुषग से समझ लिया जाता है। ४ न्याय मे उपनय के अर्थ को निगमन मे ले जाकर घटाना। किसी वस्तु मे किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय मे कुछ निश्चय करना। जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन)। ५ उत्कट लालसा। तीव्र इच्छा। ६ अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दो की आवृत्ति (को०)। ७ घालमेल। मिश्रण (को०)। ८ अवश्य होनेवाला फल (को०)। ९ एक शब्द का दूसरे से सबध (को०)।

अनुषगिक—वि० [स० अनुषङ्गिक] १ अनिवार्य फलरूप। २ सबध या प्रसगवश प्राप्त। सबद्ध (को०)।

अनुषगी—वि० [स० अनुषङ्गिन्] १ सबधी। २ दे० 'अनुषगिक' [को०]।

अनुषक्त—वि० [सं०] १ घनिष्ठ सबध या लगाववाला। २ सलग्न। सपृक्त [को०]।

अनुषक्ति—वि० [स०] १ सबद्धता। सलग्नता। २ आसक्ति [को०]।

अनुषिक्त—वि० [स०] बार बार सिंचित। [को०]।

अनुषेक—सज्ञा पुं० [स०] बार बार सीचना। फिर फिर पानी डालना या छिडकना [को०]।

अनुषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुषेक' [को०]।

अनुष्टुप्—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टाक्षरपदी छद। बत्तीस अक्षरो का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसमे आठ आठ वर्ण के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणो का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है। शेष वर्णों के लिये कोई नियम नही है। "छद प्रभाकर" के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छद हैं। इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं।

२ सरस्वती (को०)। ३ वाणी। वाक् (को०)। ४ आठ की सज्ञा।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य। अनुष्ठेय।

अनुष्ठाता—वि० [सं० अनुष्ठातृ] कार्य करने या कार्यारभ करनेवाला। अनुष्ठानकर्ता (को०)।

अनुष्ठान—सज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरभ। किसी काम का शुरू। २ नियमपूर्वक कोई काम करना। ३ शास्त्रविहित कर्म करना। ४ किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना। प्रयोग। पुरश्चरण।

अनुष्ठानक्रम—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यो का क्रम [को०]।

अनुष्ठानशरीर—सज्ञा पुं० [स०] मनुष्य के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल शरीर के मध्य की स्थिति जिसे अधिष्ठानशरीर भी कहते है [को०]।

अनुष्ठापन—सज्ञा पुं० [सं०] कार्य मे प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना [को०]।

अनुष्ठायी—वि० [सं० अनुष्ठायिन्] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला [को०]।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ। सपन्न। पूर्ण। उ०—सुप्रभात किया अनुष्ठित राजसूय सुरीति से।—कानन०, पृ० ११३।

अनुष्ठेय—वि० [स०] कर्तव्य। करने योग्य अनुष्ठान योग्य [को०]।

अनुष्ण[1]—वि० [सं०] १ जो गर्म न हो। ठडा। २ आलसी। सुस्त (को०)।

अनुष्ण[2]—सज्ञा पुं० नील कमल [को०]।

अनुष्णक—वि० [सं०] 'अनुष्ण' [को०]।

अनुष्णगु—पक्षी पु० [सं०] शीतल किरणोवाला। चद्रमा [को०]।

अनुष्णवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [स०] नीली दूब। नील दूर्वा [को०]।

अनुष्ण्यद—सज्ञा पुं० [सं०] गाडी का पिछला चक्का [को०]।

अनुसधान—सज्ञा पुं० [सं० अनुसन्धान] [वि० अनुसधानी] पश्चाद्गमन। पीछे लगना। २ अन्वेषण। खोज। ढूँढ। जाँच पडताल। तलाश। तहकीकात। ३ चेष्टा। प्रयत्न। कोशिश। ४ योजना। पूर्वरूप या प्रारूप। खाका (को०)।

अनुसधानकर्ता—वि० [सं० अनुसन्धान+कर्तृ] शोध या खोज का कार्य करनेवाला। उ०—यह सक्षिप्त वर्णन अनुसधानकर्ताओं के सामने एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा।—प्रा० भा० प०, पृ० १२१।

अनुसधानना(यौ)—क्रि० स० [स० अनुसन्धान से हिं० नाम०] १ खोजना। ढूँढना। २ सोचना। विचारना। उ०—हृदय न कछु फल अनुसधाना। पूप विवेकी परम सुजाना।—मानस, १।१५६।

अनुसधानी—वि० [स० अनुसन्धानिन्] १ शोध करनेवाला। तलाश मे रहनेवाला। २ योजनापटु। किसी योजना के कार्यान्वयन में दक्ष [को०]।

अनुसधायक—वि० [स० अनु+सन्धायक] दे० 'अनुसधायी'। उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसधायक परवर्ती अथवा उत्तरार्ध शृगार काल को इसी करण पद्माकर युग तक कहना चाहते हैं।—पद्माकर ग्र० (भू०), पृ० ८।

अनुसंधायी—वि० [सं० अनुसन्धायिन्] दे० 'अनुसधानी' [को०]।

अनुसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुसन्धि] १ परामर्श। २ अनुसधान। ३. गुप्त परामर्श। अतरग मत्रणा। भीतरी बातचीत। षड्चक्र। उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३४।

अनुसंधेय—वि० [सं० अनुसन्धेय] शोध योग्य। खोज के योग्य।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [सं० [अनु+सधान] १ साथ चलना। साथ साथ यात्रा करना। २. गमन। यात्रा। दौरा। ३ बदली या परिवर्तन। उ०—अनुसधान का अर्थ विवादग्रस्त है।—भा० इ० रू०, पृ० ५७८।

अनुसंहित—वि० [सं०] १ जिसकी छानबीन या जाच की गई हो। २ किसी के अनुकूल या अनुरूप [वै०]।

अनुसमापन—संज्ञा पु० [सं०] कार्य की नियमित परिपूर्ति या समाप्ति [वै०]।

अनुसयना—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशयाना] दे० 'अनुसयाना'। उ०—नु तीसरी अनुसयना परिमान।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०४।

अनुसयाना—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुसयाना'। उ०—कही अनुसयाना विविध प्रथम भेद यह जानि।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०४।

अनुसर[1]—वि० [हिं०] दे० 'अनुसार'।

अनुसर—वि० [सं०] अनुगामी। सहयोगी। अनुचर [वै०]।

अनुसरण—संज्ञा पु० [सं०] [क्रि० अनुसरना, अनुसारना] १ पीछे चलना। साथ साथ चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुकूल आचरण।

अनुसरना—क्रि० स० [सं० अनुसरण से हिं० नाम०] १ पीछे चलना। साथ साथ चलना। उ०—जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाही।—मानस, २।१८१। २ अनुकरण करना। नकल करना। उ०—कहहु सो प्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी (शब्द०)।

अनुसर्प—संज्ञा पु० [सं०] १ सर्प जैसा जीव। २ रेंगनेवाला जीव। सरीसृप [वै०]।

अनुसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुख दुःख की स्थिति के तारतम्यानुसार जैन लोग छः काल की जो दो शृंखलाएँ मानते हैं उनमें से एक का नाम। उ०—जैन लोग छह छह कालों की दो महान् शृंखलाएँ मानते हैं—अनुसर्पिणी और अवसर्पिणी।

अनुसार—वि० [सं०] १ परिशोधित। संशुद्ध किया हुआ। अनुकूल। मुताबिक [वै०]।

अनुसार[1]—क्रि० वि० [सं०] १ अनुकूल। मुताबिक। उ०—कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार।—मानस, १।२३। २ सदृश। समान। मुताबिक। जैसे—मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम किया है (शब्द०)।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द संज्ञा है पर हिंदी में इसका प्रयोग क्रियाविशेषणवत् होता है।

अनुसार[2]—संज्ञा पु० [सं०] १ पीछे पीछे जाना। अनुसरण। २ अनुकूल आचरण। ३ किसी वस्तु की स्वाभाविक प्रगति या स्थिति। ४ प्रथा। परंपरा। ५ अभ्यास। अनुकूल [वै०]।

अनुसार[3]—संज्ञा पु० [सं० अनुस्वार] दे० 'अनुस्वार'। उ०—अनुसार से उपजी नीरजन, नीरजन से उपजी जीव।—रामानंद०, पृ० ३०।

अनुसारक—वि० [सं०] अनुसरणकारी। पीछे चलनेवाला। अनुयायी। २ तुल्य। अनुरूप। ३ शोध करनेवाला। खोजनेवाला [वै०]।

अनुसारण—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछा करना। अनुसरण करना [वै०]।

अनुसारना—क्रि० स० [सं० अनुसरण] १. अनुसरण करना। अनुकूल आचरण करना। २ आचरण करना। उ०—ऐसे जनम करम के घोरे मोह ही अनुसारत।—सूर० (शब्द०)। ३. कोई कार्य करना।

विशेष—किसी के सहित्य में प्रयुक्त होने के बाद इस क्रिया को भी संज्ञा शब्द के साथ इस क्रिया को जोड़ दिया है। जैसे—(१) तब कथा जिनकी अनुसारी।—सूर० (शब्द०)। (२) या ते कछु ना अनुसारी।—मानस, २।१८। (३) जिन्ह सोचि परतुति अनुसारी।—मानस, ६।१०४। (४) जौं सुख चाहत नारि आपनो तौ नित याके चरन अनुसारि कै। देव (शब्द०)। (५) हरि पद्माकर कहो जो तहाँ तौ जौं कैसो बरसानो के साथ अनुसारी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६०।

अनुसारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुसरिता'।

अनुसारी—वि० [सं० अनुसारिन्] १. अनुसरण करनेवाला। अनुकरण करनेवाला। उ०—सूर स्याम गम, स्याम नाम सुर सार अनुचर अनुसारी।—सूर०, १०।१७१। २ दे० 'अनुसार'।

अनुसार्यक—संज्ञा पु० [सं०] सुगंधद्रव्य चंदन, अगुरु आदि [वै०]।

अनुसाल—संज्ञा पु० [सं० अनु+हिं० √साल] बदला। पीड़ा। उ०—मधुकैटभ मथन, सुर सोम कंसारिहन, दनुज काल अनुसाल हारी।—सूर (शब्द०)।

अनुसासन—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनुशासन'। उ०—नवौ दुनहिनिहि रयाइ पाइ अनुसासन। तुलसी ग्र०, पृ० ४८।

अनुसुइया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसूया'। उ०—इत्यादिक सब देव बखानहु, अनुसुइया घर मूरति जानहु।—प० रा०, पृ० ३७।

अनुसूचक—वि० [सं०] सूचना करने या देनेवाला [वै०]।

अनुसूचन—संज्ञा पु० [सं०] सूचना देने का कार्य। सूचना देना [वै०]।

अनुसूचित—वि० [हिं० अनुसूची] परिगणित। जिसका नाम सूची में दर्ज हो।

अनुसूची—संज्ञा स्त्री० [सं० अनु+सूची] सामान आदि का सूची।

अनुसृत—वि० [सं०] १ अनुसरण किया हुआ। अनुगमित। २ प्रवाहित होता। बहता। उड़ता। ३ शरणागत [वै०]।

अनुसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुसरण। पीछे जाना। २ बहन। पैरवी। ३. पुरखों। कुलदा [वै०]।

अनुसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनवरत सर्जना। २ प्रत्युत्पन्नमति या हाजिर जवाब। सटिका [वै०]।

अनुसेवी—वि० [सं० अनुसेविन्] किसी वस्तु के सेवन का अभ्यासी। आदि। बन में पला हुआ [वै०]।

अनुसोचना—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशोचना'। उ०—अनमुले अनुसोचना अवधि समुझि जीय जानु।—तुलसी ग्र०, पृ० १८४।

अनुस्तरण—संज्ञा पु० [सं०] बिछावना। बिछौना करना [वै०]।

अनुस्तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आच्छादन। २ सो। वह सो जिसका व्यवहार मृत व्यक्ति के साथ चिता पर या गाड़ने के लिये कब्र में किया जाता है [वै०]।

अनुस्नान—संज्ञा पु० [सं०] पवित्र जलाशय के अनुष्ठान विशेष पर कोई निर्धारित स्नान आरंभ करना।

अनुस्मरण—सज्ञा पु० [सं०] बार बार स्मरण करना। स्मृति मे लाना। उ०—इतिहास मे भूतकाल की घटनाओ का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १। सोचना [को०]।

अनुस्मारक—सज्ञा पु० [स० अनु+स्मारक] स्मृति या याद दिलानेवाली वस्तु।

अनुस्मृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सजोई हुई स्मृति। प्रिय स्मृति। २ अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण। एकात चिंतन [को०]।

अनुस्यूत—वि० [स०] १ सीया हुआ। २ पिरोया हुआ। ३ ग्रथित। गूँथा हुआ। उ०—तीनि अवस्था माहिं है सुदर साक्षीभूत। सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८२। ४ सबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार।

अनुस्वान—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रतिध्वनि। गूँज। २ समध्वनि। समर्थक स्वर। अनुरणन [को०]।

अनुस्वार—सज्ञा पु० [स०] १ स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न (ं) है। निरुक्तकार इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योकि जिस स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा। २ स्वर के ऊपर की बिंदी।

अनुहरण—सज्ञा पु० [स०] १ नकल। अनुकरण। २ सादृश्य। समता [को०]।

अनुहरत—वि० हि० √अनुहार का कृदत रूप] १ अनुसार। अनुरूप। समान। उ०—दम सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत प्रचार।—तुलसी ग्र० पृ० १५०। २ उपयुक्त। योग्य। अनुकूल। उ०—प्रथ तुम्ह बिनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।—मानस, २।१७७।

अनुहरना—क्रि० स० [स० अनुहरण] अनुकरण करना। आदर्श पर चलना। नकल करना। समानता करना। उ०—सहज टेढ अनुहरै न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही।—मानस १।२७।

अनुहरिया[1]—वि० [स० अनुहार+हिं० इया (प्रत्य०)] समान। तुल्य।

अनुहरिया[2]—सज्ञा स्त्री० आकृति। मुखानी। उ०—नाक सिनक सर सोहत भौंह कमान। मुख अनुहरिया केवल चद समान।—तुलसी ग्र० पृ० १६।

अनुहार[2]—वि० [सं०] सदृश। तुल्य। समान। एकरूप। उ०—खजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खजन युग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

अनुहार[2]—सज्ञा स्त्री० १ रूप भेद। प्रकार। उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ गनि, तिनके तीनि बिचार। एक एक की जानिए चार चार अनुहार।—केशव (शब्द०)। २ मुखानी। आकृति।

अनुहार[3]—सज्ञा पुं० दे० 'अनुहरण'।

अनुहारक—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अनुहारिका] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। सदृश कर्म करनेवाला।

अनुहारना—क्रि० स० [स० अनुहार से नाम०] तुल्य करना। सदृश करना। समान करना। उ०—देखि री हरि के चचल तारे। कमल मीन को कहाँ इती छवि, खजन हूँ न जात अनुहारे।—सूर (शब्द०)।

अनुहारि[1]—वि० स्त्री० [स० अनुहारिन्] १ समान। सदृश। तुल्य। बराबर। उ०—(क) गिरि समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।—सूर० १०।४३१। (ख) चुनरी स्याम मतार नभ, मुख ससि की अनुहारि। नेह दबावत नीद नौं, निरखि निमा भी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ योग्य। उपयुक्त। उ०—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।—मानस, १।९२। ३ अनुसार। अनुकूल। मुताबिक। उ०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस विशेषण का लिंग भी 'नाई' के समान है अर्थात् यह शब्द सज्ञा पुं० और सज्ञा स्त्री० दोनो का विशेषण होता है।

अनुहारि[2]—सज्ञा स्त्री० आकृति। चेहरा। उ०—ज्यो मुख मुकुर विलोकिए, चिन न रहै अनुहारि। त्यो सेवकहु निरापने मातु पिता सुत नारि।—तुलसी (शब्द०)।

अनुहारी[1]—वि० [सं० अनुहारिन्] [स्त्री० अनुहारिणी] अनुकरण करने वाला। नकल करनेवाला।

अनुहारी[2]—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनुहारि'[2]। उ०—(क) देखी सासु आन अनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सरयू रामहीं की अनुहारी।—मानस, १।३११।

अनुहार्य—वि० [स०] अनुकरण या नकल करने योग्य [को०]।

अनुहोड—सज्ञा पु० [स०] बैलगाडी [को०]।

अनूअर—क्रि० वि० [स० अनवरत] सतत। निरतर। लगातार।

अनूक—सज्ञा पुं० [स०] १ गत जन्म। पूर्व जन्म। २ कुल। वश। खानदान। ३ शील। स्वभाव। ४ पीठ की हड्डी। रीढ। ५ मेहराब के बीच की ईंट। कीली। ६ यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खँचिया या पात्र। ७ जाति या वशगत विशिष्टता [को०]। ८ यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग (को०)।

अनूकाश—सज्ञा पु० [स०] १ प्रकाश की कौंध या झलक। २ उदाहरण। सदर्भ। हवाला [को०]।

अनूक्त—वि० [स०] १ बाद मे कथित। दोहराया गया। २ जिसने वेदाध्ययन किया हो। अधीत [को०]।

अनूक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई बात। २ वेदाध्ययन [को०]।

अनूचान—सज्ञा पुं० [स०] १ वह जो वेद वेदाग मे पारगत होकर गुरुकुल से आया हो। स्नातक। २ विद्यारसिक व्यक्ति। ३. चरित्रवान् पुरुष।

अनूजर—वि० [हि० अन+ऊजर] [स्त्री० अनूजरी] जो उजला या साफ न हो। मैला। उ०—साझ्य माठी पूतरी अनूजरीऽसह ऊजरी द्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है।—निश्चल (शब्द०)।

अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, पा० अनुट्ठ प्रा० अणुट्ठ=स्थित अथवा देश०] [स्त्री० अनूठी] १. अपूर्व। अनोखा। विचित्र। विलक्षण। अद्भुत। २. सुदर। अच्छा। बढ़िया।

अनूठापन—संज्ञा पु० [हिं० अनूठा+पन (प्रत्य०)] १ विलक्षणता। विलक्षणता। विशेषता। २ सुंदरता। अच्छापन।

अनूढ—वि० [सं० अनूढ] १ अजात। अनुत्पन्न। २ जो ले जाया न गया हो। ३ अविवाहित [को०]।

अनूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनूढा] १ अविवाहिता कन्या। २ बिना ब्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो। उ०—ताहि अनूढ़ा कहत हैं कवि पंडित परवीन।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७।

अनूढागमन—संज्ञा पु० [सं० अनूढागमन] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या संसर्ग [को०]।

अनूढाभ्राता—संज्ञा पु० [सं० अनूढाभ्रातृ] १ अविवाहिता स्त्री का भाई। २ राजा की रखैली या उपपत्नी का भाई [को०]।

अनूतर(पु)—वि० [सं० अनुत्तर] [वि० स्त्री० अनूतरी] १ निरुत्तर। कायल २ चुपचाप बैठनेवाला। मौन धारण करनेवाला। उ०—बैठी फिरि पूतरी अनतरी फिरग कैसी, पीठि दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१।

अनूदक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलहीन स्थान। २ सूखा [को०]।

अनूदर्वा—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव। विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूदित—वि० [सं०] १ कहा हुआ। वर्णन किया हुआ। २ अनुवादित। तर्जुमा किया हुआ। भाषांतरित।

अनूद्य—वि० [सं०] १ पीछे चर्चा करने योग्य। १ अनुवाद योग्य [को०]।

अनून—वि० [सं०] १ अखंड। पूर्ण। पूरा। समग्र। २ जिसमें कोई कमी न हो। ३ अन्यून। अधिक। ज्यादा। बहुत। ३ पूर्ण अधिकारयुक्त [को०]।

अनूप[1]—वि० [सं०] १ जलप्राय। जहाँ जल अधिक हो। २ दलदली [को०]।

अनूप[2]—संज्ञा पु० १ जलप्राय देश। वह स्थान जहाँ जल अधिक हो। २ भैंस। ३ ताल या तालाब। ४ दलदल। ५ कछार। ६ मेढक। ७ हाथी। ७ तीतर या चकोर [को०]। उ०—अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि।—माधव, पृ० १८१।

अनूप[3]—[सं० अनूपम] १ जिसकी उपमा न हो। अद्वितीय। बेजोड़। उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय। जग में जुगुत अनूप है सो सब दई बताय। कबीर (शब्द०)। (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा।—जायसी (शब्द०)। (ग) अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुवासा।—मानस, १।३७। २ सुंदर। अच्छा। उ०—जौ घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।—मानस, १।७१।

अनूपग्राम—संज्ञा पु० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।
विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनियम के अनुसार बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़कर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था।

अनूपनाराच—संज्ञा पु० [सं० अनूप+नाराच] छंद का एक भेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है।

अनूपम(पु)—वि० दे० 'अनुपम'। उ०—(क) अद्भुत एक अनूपम बाग।—सूर०, १०।२११०। (ख) ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १।२६।

अनूपान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुपान'। उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति रूरी।—मानस, १।१२३।

अनूपी(पु)—वि० स्त्री० दे० अनूप'। उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोबन रूप अति अनूपी।—सूर०, १०।१७८८।

अनूमान(पु)—संज्ञा पु० दे० 'अनुमान'। उ०—अनूमान साखी रहित होत नहीं परमान।—सं० सप्तक, पृ० ४०।

अनूरत्त(पु)—वि० दे० अनुरक्त'। उ०—दिपती सुहाग। अनूरत्त राग।—पृ० रा०, ६२।४१।

अनूरु[1]—वि० [सं० अनूरु] उरुहीन। बिना जाँघवाला।

अनूरु[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य का सारथी। अरुण। २ अरुणोदय [को०]।

अनूरुसारथी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अनूर्जित—वि० [सं०] १ शक्तिहीन। अशक्त। कमजोर। २ अभिमानशून्य [को०]।

अनूर्ध्व—वि० [सं०] ऊँचा नहीं। नीचा [को०]।

अनूर्मि—वि० [सं०] १ तरंगशून्य। अचंचल। २ अनतिक्रम्य [को०]।

अनूषर—वि० [सं०] १ क्षारीय। रेहवाला। २ क्षारहीन। रेहशून्य [को०]।

अनूह—वि० [सं०] १ जिसपर विचार न हो सके। अतर्क्य। २. विचारहीन। लापरवाह (को०)।

अनृजु—वि० [सं०] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो। कुटिल। वक्र। २. दुष्ट। अविश्वस्त। बेईमान [को०]।

अनृण—वि० [सं०] जो ऋणी न हो। जिसे कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अनृणता—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज से छुटकारा। ऋणमुक्ति [को०]।

अनृणी—वि० [सं० अनृणिन्] दे० 'अनृण' [को०]।

अनृत[1]—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठा। २ अन्यथा। विपरीत। उ०—तोहि स्याम हम कहा दिखावैं। अमृत कहा अनृत गुण प्रगटैं सो हम कहा बतावैं।—सूर०, १०।२०६६।

अनृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिथ्या। असत्य। झूठ। २ कृषि। खेती [को०]।

अनृतक—वि० [सं०] मिथ्यावादी। झूठ बोलनेवाला [को०]।

अनृतभाषण—संज्ञा पु० [सं०] झूठ बोलना। मिथ्या कथन [को०]।

अनृतवादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनृतभाषण' [को०]।

अनृतवादी—वि० [सं० अनृतवादिन्] [वि० स्त्री० अनृतवादिनी] झूठा। मिथ्यावादी [को०]।

अनृतव्रत—वि० [सं०] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कभी न करनेवाला [को०]।

अनृती—वि० [सं० अनृतिन्] दे० 'अनृतक' [को०]।

अनृतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बेमौसम। असमय। २ रजोदर्शन से पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०]।

अनृतुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो[को०]।

अनृतुप्राप्त सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अनृतुप्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनृशंस—वि० [सं०] क्रूरतारहित। अकठोर। मृदुल [को०]।

अनृशंसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रूरता का अभाव। दयालुता [को०]।

अनेऊ†—वि० [सं० अन्याय, प्रा० > अन्नाअ > अन्नाअ > अनाअ > अनेअ > अनेऊ] बुरा। खराब।

अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक। बहुत। ज्यादा। असंख्य। अनगिनत।

यौ०—अनेकानेक।

अनेककाम—वि० [सं०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०]।

अनेककालावधि—क्रि० वि० [सं०] बहुत काल में या चिरकाल तक [को०]।

अनेककृत—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनेकचर—वि० [सं०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०]।

अनेकचित्त—वि० [सं०] १ अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखने वाला। २ चंचल मनवाला। चपलचित्त [को०]।

अनेकज[1]—वि० [सं०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०]।

अनेकज[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अनेकजन्मा—वि० [सं०] दे० 'अनेकज' [को०]।

अनेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनेकत्व'।

अनेकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक से अधिक होने की स्थिति या भाव। बहुत्व। अनेकता [को०]।

अनेकत्र—क्रि० वि० [सं०] कई जगह। कई स्थान [को०]।

अनेकधा—क्रि० वि० [सं०] कई प्रकार से। कई तरह से [को०]।

अनेकप—संज्ञा पुं० [सं०] द्विज। हाथी [को०]।

अनेकभार्य—वि० [सं०] कई पत्नियोंवाला (को०)।

अनेकमुख—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकमुखी] १ अनेक चेहरेवाला। अनेक मुखवाला। २ कई दिशाओं में जानेवाला [को०]।

अनेकमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अनेकरूप[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकरूपा] १ कई रूपोंवाला। २ परिवर्तनशील [को०]।

अनेकरूप[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर [को०]।

अनेकलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २ शिव। ३ विराट्पुरुष। परमात्मा [को०]।

अनेकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुवचन। २ द्विवचन।

अनेकवर्ण[1]—वि० [सं०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण[2]—संज्ञा पुं० बीजगणित में अज्ञात राशियाँ [को०]।

अनेकविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का। विभिन्न कोटि का।

अनेकशः—क्रि० वि० [सं०] अनेकबार। बार बार। उ०—मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकशः पुनरावृत्ति हो।—गुप्त० अभि० ग०, पृ० १५।

अनेकशफ—वि० [सं०] फटे खुरोंवाला [को०]।

अनेकशब्द—वि० [सं०] पर्यायवाची [को०]।

अनेकसाधारण—वि० [सं०] अनेक में पाया जानेवाला। बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अनेकांगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनेकाङ्गिन्] वह जिसमें कई अंग हों। जिसके बहुत हिस्से या भाग हों।

अनेकांगी[2]—वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०]।

अनेकांत—वि० [सं० अनेकान्त] १ जो एकांत न हो। २ जो स्थिर न हो। चंचल।

अनेकांतवाद—संज्ञा पुं० [सं० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकांतवादी] जैन दर्शन। आर्हत दर्शन। स्याद्वाद।

अनेकांतवादी—वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकांतवाद को माननेवाला [को०]।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक + आकार] अनेक आकारवाला। अनेक आकृतियोंवाला [को०]।

अनेकाकी—वि० [सं० अनेकाकिन्] [वि० स्त्री० अनेकाकिनी] अकेला नहीं। कई लोगों के साथ [को०]।

अनेकाक्षर—वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०]।

अनेकाग्र—वि० [सं०] १ जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो। कई कामों में लगा हुआ। २ उलझा हुआ। अव्यवस्थित [को०]।

अनेकाच्—वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हों। बहुत से स्वरों से युक्त। (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हों।

अनेकार्थ—वि० [सं०] जिसके बहुत से अर्थ हों। बहुत अर्थोंवाला।

अनेकार्थक—वि [सं०] दे० 'अनेकार्थ' [को०]।

अनेकाल—वि० [सं०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला।

अनेकाश्रय—वि० [सं०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०]।

अनेकाश्रित—वि० [सं०] दे० 'अनेकाश्रय' [को०]।

अनेग(पु)—वि० [सं० अनेक] बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—रोकि रहे द्वार नेग माँगन अनेग नेगी, धोवन न खाल व्याल खोलत खहिनि के।—देव शब्द०)।

अनेड[1]—वि० [सं०] १ मूर्ख। २ बुरा। खराब [को०]।

अनेड[2](पु)†—वि० [सं० अनृत] दे० 'अनेरा'।

अनेडमूक—वि० [सं०] १ गूँगा बहरा। २ अंधा। ३ बेईमान। कपटी। दुष्ट। बदमाश [को०]।

अनेडा(पु)†—वि० [सं० अ + निकट, प्रा० नियर, निअड] दूर। असमीप। उ०—जागु सबेरा बाट अनेडा फिर नहिं लागै जोर, बटोही का रे सोवै।—सतवाणी० भा० २ पृ० ३०।

अनेता†—संज्ञा पुं० [देश०] मालगी लता (देहरादून)।

अनेम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनियम'। उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम ठौर जु अनेम।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २३८।

अनेय(पु)—वि० [सं० अनीति, प्रा० अ + णीइ] अन्याय से होनेवाली। अनीतिजन्य। उ०—तुम सुधरम राजन अनेय लज्जा अधिकारिय।—पृ० रा० ६६।४६६।

अनेरा[1] ⓤ— वि० [सं० अनृत, प्रा० * अनिर] [वि० स्त्री० अनेरी] १ झूठ। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—अरी स्वारि मैं मत! वचन बोलन जो अनेरो। कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियो बसेरो।—सूर० (शब्द०)। २ झूठा। अन्यायी। दुष्ट। निकम्मा। उ०—तोहि स्याम की सपद जसोदा आइ देखु गृह मेरो। जैसी हाल करी यहि ढोटो छोटो निपट अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। ३ स्वच्छंद। निरंकुश।

अनेरा[2]—क्रि० वि० व्यर्थ। झूठमूठ। निष्प्रयोजन। उ०—सुनहु स्याम रघुबीर गोसाईं मन अनीति रत मेरो। चरनसरोज बिसारि तुम्हारो निसदिन फिरत अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।

अनेला—वि० [सं० अ+निकट, प्रा० नियड, हिं० नेर] अपरिचित। अनपहचाना। उ०—आपके झाँसे मे कोई अनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

अनेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनेला+पन अथवा हिं० अनेरा] १ न पहचानने की स्थिति। अपरिचित होने का भाव। अजानपना। २. स्वच्छंदता। स्वतंत्रता। उ०—अनेलापन उसका मुझे भा गया। करूँ क्या दिल उसपर मेरा आ गया।—शोख (फैशन)।

अनेव[1]—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा। नहीं तो [को०]।

अनेव[2] ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अनेक'। उ०—गाजिय बज्जि मगल अनव। माननि उबारि मंगुल गेव।—पृ० रा०, ६१।२५२८।

अनेस[1] ⓤ—वि० [सं० अनिष्ट] बुरा। खराब। अनइष।

अनेस[2]—संज्ञा पुं० आगहा। डर। चिंता।

अनेह ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अनेह] अप्रेम। अप्रीति। विरक्ति।

अनेहा—संज्ञा पुं० [सं० अनेहस्] समय। काल। वक्त।

अनै ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनय'। उ०—नाम प्रताप पतित पावन किए जे न प्रवाने अब अनै।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८६।

अनैकांत—वि० [सं० अनैकान्त] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक—वि० [सं० अनैकान्तिक] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक हेतु—संज्ञा पुं० [सं० अनैकान्तिकहेतु] न्याय के पाँच हेत्वाभासों मे से एक। वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधन-भूत न हो। वह बात जिससे किसी वस्तु की एकांतिक सिद्धि न हो। सव्यभिचार हेत्वाभास। जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य है क्योंकि वह स्पर्शवाला नहीं है। यहाँ घर आदि स्पर्शवाले पदार्थों को अनित्य देखकर अस्पर्शता को नित्यता का एक हेतु मान लिया गया है। पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं। अतः इस हेतु मे व्यभिचार आ गया।

अनैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐक्य या एकता का अभाव। एका न होना। २ मनमेद। नाइत्तफाकी। फूट।

अनैच्छिक—वि० [सं०] १ अवांछित। न चाहा हुआ। २ इच्छा के बिना होनेवाला। स्वतः उत्पन्न। शरीर की चेष्टाएँ, जिक्र आदि।

अनैठ—संज्ञा पुं० [सं० अन्=नहीं+पण्यस्थ, प्रा० पण्णट्ठ, हिं० पैठ अथवा देश०] वह दिन जिसमे बाजार बद रहे। 'पैठ' का उलटा।

अनैतिक—वि० [सं०] जो नीति के विरुद्ध हो। अनुचित [हिं०]।

अनैतिहासिक—वि० [सं०] १ जो इतिहासप्रसिद्ध न हो। २ जैसा भूत मे न हुआ हो। अभूतपूर्व [को०]।

अनैपुण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिपुणता। अदक्षता। चतुरता [हिं०]।

अनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐश्वर्य का अभाव। धन दौलत। बड़ाई या संपदा का न होना। २ अनीश्वरता। सिद्धियों की अप्राप्ति।

अनैस[1] ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अन्+एष=एषण] [क्रि० अनैसना] बुराई। अहित।

अनैस[2]—वि० बुरा। उ०—मोह को यह गर्व सागर भरो आठ अनैस।—सा० लहरी, पृ० १६।

क्रि० प्र०—मानना=बुरा मानना। रूठना।

अनैसना ⓤ—क्रि० अ० [हिं० अनैस से नाम०] बुरा मानना। रूठना। उ०—श्यामसुंदर बन सौंह समाने मोरे रहे अनैसे।—सूर० (शब्द०)।

अनैसर्गिक—वि० [सं०] १ जो प्रकृति के विरुद्ध हो। अप्राकृतिक। २. जो स्वभाव के प्रतिकूल हो। अस्वाभाविक [को०]।

अनैसा ⓤ—वि० [हिं० अनैस] [वि० स्त्री० अनैसी] जो इष्ट न हो। अप्रिय। बुरा। खराब। उ०—(क) नाम लिए अगनाइ लियो तुलसी सो कहाँ जग कौन अनैसो।—तुलसी ग्र०, पृ० १९८। (ख) पापिन परम नाउका ऐसी। मायाबिनि प्रति अदय अनैसी।—पद्माकर (शब्द०)।

अनैसे—क्रि० वि० [हिं० अनैस] अनिच्छापूर्वक। बुरे भाव से। बुरी तरह से। उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छोरि छोरि बाँधी पाग आरस सो आरसी लै अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हो।—केशव० ग्र०, भा० १, पृ० १२५।

अनैहा ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० अनैस] उत्पात। उपद्रव। उ०—जा कारण सुत सुत सुंदर वर कीन्हो इतो अनैहो। सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे है, ह्वै।—सूर (शब्द०)।

अनोअन्न ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा'। उ०—छटा ज्यों बिछटै मुजेसेन छूटै। खगे अंग तूटै अनोअन्न फूटै।—रा० रू० पृ० ८६०।

अनोकशायी—संज्ञा पुं० [सं० अनोकशायिन्] जो घर में न सोता हो [को०]।

अनोकह—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपना स्थान न छोड़े। २ पेड़। वृक्ष।

अनोखा ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा'। उ०—श्री उकर्ष मुकर्ष उनही कवि रोष अनोख धरी चतुराई।—रघिराज, पृ० २८२।

अनोखा—वि० [अ० (उच्चा०) सं० नवक, अप० णवअ] [वि० स्त्री० अनोखी], [संज्ञा अनोखापन] १ अनूठा। निराला। विलक्षण। विचित्र। अद्भुत। २ नवीन। नया। ३ सुंदर। खूबसूरत। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में भूलाया। दे दिया उसने हृदय भी मोल अपने आप।—रजत, पृ० ८।

अनोखापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनोखा+पन (प्रत्य०)] १ अनूठापन। निराकापन विलक्षणता। २ नवीनत्व। नयापन। ३ सुंदरता। खूबसूरती।

अनोट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—देखि करोट सु ऐंचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी।—सिंहा० ग्र०, भा० १, पृ० १०५।

अनोदन—वि० [सं०] बिना भोजन के। निराहार [को०]।

अनोदयनाम—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से मनुष्य की बात कोई नहीं मानता।

अनोपम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनुपम'। उ०—सुंदर भाल बिसाल अलक सम माल अनोपम। हित प्रकाश कुंदुहार अरुण वारिज मुख ओपम।—रा० रू०, पृ० २।

अनोसर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अन+सं०अवसर] १ वह समय जब वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं। २ एकांत स्थान। सूना स्थान। उ०—अनोसर करि आम कछुक आरोगे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१।

अनौचित्य—संज्ञा पुं० [सं०] उचित बात का अभाव। अनुपयुक्तता।

अनौजस्य—संज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को०]।

अनौट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—बिछिया अनौट बाँक घूघरी जराइ जरी, जेहरी छबीली छुद्रघंटिका की जालिका।—केशव० ग्र०, ।

अनौद्धत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्छृंखलता या दर्प का न होना। २ नम्रता। ३ शांति। (नदी के जल का) ऊँचा न होना। ऊपर न उठना [को०]।

अनौधि(पु)—अव्य० [सं० अनवधि] शीघ्र। जल्दी। तुरत।

अनौपम्य—वि० [सं०] जिसकी उपमा न दी जा सके। बेजोड़ [को०]।

अनौरस—वि० [सं०] १ जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो। जो औरस संतान न हो, अवैध। २ गोद लिया हुआ (पुत्र) [को०]।

अन्न भट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तर्कसंग्रह के रचयिता।

अन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्यपदार्थ। २ अनाज। नाज। धान्य। दाना। गल्ला। ३ पकाया हुआ अन्न। भात।

यौ०—अन्नकूट। अन्नजल। पक्वान्न। अन्नराशि।

४ वह जो सबका भक्षण या ग्रहण करे। ५ सूर्य। ६ विष्णु। ७ पृथ्वी। ८ प्राण। ९ जल।

मु०—अन्न निट्टी होना—खाना पीना हराम होना। उ०—जेहि दिन नाह छेकै गढ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी।—जायसी (शब्द)।

अन्न[2](पु)—वि० [सं० अन्य प्रा०-अण्ण] दूसरा। विरुद्ध। पर। उ०—जो विधि लिखा अन्न नहिं होई। कित धावै किन रोवै कोई।—जायसी (शब्द०)।

अन्नकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने का समय। अन्न ग्रहण करने का समय [को०]।

अन्नकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नमल' [को०]।

अन्नकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का पहाड़ या ढेर। उ०—गोवर्धन सिर तिलक चढायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ। अन्नकूट ऐसो रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।—सूर०, १०।८३२। २ एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यंत यथारुचि किसी दिन (विशेषत प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ) होता है। उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर भगवान को भोग लगाते हैं।

अन्नकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का स्थान या कोठरी। २ गला। गोला। बखार।

अन्नकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नकोष्ठ' [को०]।

अन्नगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्नगन्धि] अतिसार की व्याधि [को०]।

अन्नगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की प्रणाली या गति [को०]।

अन्नछेत्र†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नसत्र'।

अन्नजल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाना पानी। खाना पीना। खानपान। जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (शब्द०)।

क्रि० प्र०—त्यागना या छोड़ना=उपवास करना।

२ आबदाना। जीविका।

क्रि० प्र०—उठना=जीविका छूटना। जैसे,—अब यहाँ से हमारा अन्नजल उठ गया' (शब्द०)।

३ संयोग। इत्तफाक। जैसे,—जहाँ का अन्नजल होगा वहाँ चले ही जायँगे (शब्द०)।

अन्नजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हिचकी।

विशेष—'माधवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक सेवन करने से वायु अकस्मात् कुपित होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है जिससे यह हिचकी होती है।

अन्नजीवी—संज्ञा पुं० [सं० अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर जीवनयापन करता है। केवल अन्न पर पलनेवाला जीव [को०]।

अन्नया(पु)—वि० [सं० अन्यथा] दे० 'अन्यथा'। उ०—कृत करण अन्नया करण। सगले ही थोके समरत्थ।—वेलि०, दू०, पृ० १३७।

अन्नद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्नदा] अन्नदाता। प्रतिपालक। रक्षक। पोषक।

अन्नदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २ अन्नपूर्णा [को०]।

अन्नदाता—संज्ञा पुं० [सं० अन्नदातृ] [स्त्री० अन्नदात्री] १. अन्न दान करनेवाला। २ पोषक। प्रतिपालक।

अन्नदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य करता है [को०]।

अन्नदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न से उत्पन्न विकार। जैसे, दूषित अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना। २ निषिद्ध स्थान या व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप।

अन्नद्रवशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो। लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा।

अन्नद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्नद्वेषी] अन्न में रुचि न होना। भोजन में अरुचि। भूख न लगना।

अन्नपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का स्वामी। २ शिव। ३ अग्नि। ४ सूर्य [को०]।

अन्नपाक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि पर या पेट में अन्न का पाचन [को०]।

अन्नपाकस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकस्थली'।

अन्नपूरना—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा'। उ०—जौलो देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५।

अन्नपूर्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी। दुर्गा का एक रूप। ये काशी की प्रधान देवी हैं।

अन्नपूर्णेश्वरी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अन्नपूर्णा। २ तत्रोक्त एक भैरवी का एक नाम [को०]।

अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरान्त शरीर का अन्न रूप मे परिवर्तित होना [को०]।

अन्नप्राशन—सज्ञा पु० [सं०] बच्चो को पहले पहल अन्न चटाने का सस्कार। चटावन। पेहनी। पसनी।

विशेष—स्मृति के अनुसार छठे या आठवें महीने बालक को और पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना चाहिए।

अन्नप्रासन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—नामकरण सु अन्नप्रासन वेद बाँधी नीति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२६।

अन्नमयकोश—सज्ञा पुं० [स०] वेदात के अनुसार पचकोशो मे से प्रथम। अन्न से बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय। स्थूल शरीर। बौद्धशास्त्रानुसार रूपस्कध। उ०—अन्नमयकोश सुतौ पिंड है प्रकट यह प्रानमय कोश पचवायु हू बपानिये।—सुदर ग्र०, पृ० ५९८।

अन्नमल—सज्ञा पुं० [सं०] १ यव आदि अन्नो से बनी शराब। २. मल। विष्टा।

अन्नराशि—सज्ञा स्त्री० [स०] अन्न की ढेरी। गज।

अन्नविकार—सज्ञा पु० [स०] अन्न का परिवर्तित रूप। अन्न पचने से क्रमश बने हुए रस, रक्त, मास, मज्जा, चरबी, हड्डी और शुक्र आदि।

अन्नव्यवहार—सज्ञा पुं० [सं०] पारम्परिक भोजन या खानपान का व्यवहार [को०]।

अन्नशेष—सज्ञा पुं० [स०] बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट [को०]।

अन्नसस्कार—सज्ञा पुं० [स०] देवतादि के कार्यों मे अन्न का प्रयोग। देवकार्य मे अन्नोत्सर्ग [को०]।

अन्नसत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया जाता है। अन्नक्षेत्र। लगर।

अन्ना[1]—सज्ञा स्त्री० [स० * अग्निक, प्रा० * अग्निअ > अन्ना] १ वह छोटी अँगीठी या बोरसी जिसमे सुनार सोना आदि रखकर भाथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं।

अन्ना[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा या अल्ला=माँ अथवा देश० दाई] धात्री। दूध पिलानेवाली स्त्री।

अन्नाकाल—सज्ञा पुं० [सं०] अनाकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अन्नाद[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ वह जो सब को ग्रहण करे। ईश्वर। २ विष्णु के सहस्र नामो मे से एक।

अन्नाद[2]—वि० अन्न खानेवाला। अन्नाहारी।

अन्नाम—वि० [हिं०] दे० 'अनाम'। उ०—इह सु नाम अन्नाम। जेन नामह घर जाइय।—पृ० रा०, ३३।१९।

अन्नि—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—अहंत अन्नि एक पति, उर्द्ध जात तथ्थय।—पृ० रा०, ५८।२४१।

अन्नित—वि० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—हूँ नीति जानि अन्नित न करि।—पृ० रा०, ३५।३।

अन्य—वि० [सं०] दूसरा। और कोई। भिन्न। गैर। पराया। उ०—असुर सुर नाग नर यक्ष गधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८७।

यौ०—अन्यजात। अन्यमनस्क। अन्यान्य। अन्योन्य।

अन्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्य' [को०]।

अन्यकारुका—सज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीडा [को०]।

अन्यक्रीत—वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यग—वि० [स०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला। व्यभिचारी [को०]।

अन्यगामी—वि० [स० अन्यागामिन्] दे० 'अन्यग' [को०]।

अन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका मन अन्यत्र लगा हो। अन्यमनस्क [को०]।

अन्यच्च—क्रि० वि० [स०] और भी।

अन्यजात—वि० [स०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यत्—वि० [स०] दे० 'अन्य'।

अन्यत—क्रि० वि० [स० अन्यतस्] १ किसी और से। २ किसी और स्थान से। कही और से।

अन्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना मे और कोई न हो। सर्वश्रेष्ठ। सबसे बडा [को०]।

अन्यतर—वि० [स०] दूसरा। भिन्न। दो मे से एक।

अन्यतस्त्य—सज्ञा पु० [स०] शत्रु। दुश्मन। प्रतिपक्षी [को०]।

अन्यतोपाक—सज्ञा पुं० [स०] दाढी, कान, भौं इत्यादि मे वायु का प्रवेश होने के कारण आँखो की पीडा।

अन्यत्र—वि० [सं०] और जगह। दूसरी जगह। उ०—ना नृप को परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।—सूर० ४।१२।

अन्यत्व—सज्ञा पु० [सं०] परायापन। भिन्नता।

अन्यत्वभावना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझना।

अन्यथा[2]—वि० [स०] १ विपरीत। उलटा। विरुद्ध। और का और। २ असत्य। झूठा। उ०—किएँ अन्यथा होइ नहिं विप्र श्राप अति घोर।—मानस, १।१७४।

अन्यथा[1]—अव्य० नही तो। जैसे,—आप समय पर आइए अन्यथा हमसे भेंट न होगी (शब्द०)।

अन्यथाकारिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत या विरुद्ध करने की प्रवृत्ति। उ०—हा! होती है प्रकृति रुचि मे अन्यथाकारिता भी।—प्रिय० प्र०, पृ० २१९।

अन्यथाचार—सज्ञा पुं० [स०] अनुचित या विपरीत कार्य। विरुद्ध आचरण। उ०—तब उसका परिणाम अन्यथाचार के अतिरिक्त क्या होना है।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३१६।

अन्यथानुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव मे किसी दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की असभावना।

विशेष—जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नही खाता, इस कथन से इस बात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि देवदत्त

रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असभव है। न्याय मे यह अनुमान के अतर्गत और मीमासा मे अर्थापत्ति प्रमाण के अतर्गत है।

अन्यथाभाव—सज्ञा पु० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। भिन्न रूप मे होना [को०]।

अन्यथावादी—सज्ञा पुं० [सं० अन्यथावादिन्] अर्थशास्त्रानुसार बिना चुगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला।

अन्यथासिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय मे एक दोष जिसमे यथार्थ नही किंतु और कोई कारण दिखाकर किसी बात की सिद्धि की जाय। असबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कही कुम्हार, दड या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।'

अन्यदा—अव्य० [स०] १ दूसरे समय। दूसरे अवसर पर। २ एक दिन। एकबार। एक समय। ३ किसी समय। कभी [को०]।

अन्यदीय—वि० [स०] अन्य का। दूसरे से सबधित। उ०—अन्यदीय इच्छा के द्वारा उसका सचालन नही होना।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ११८।

अन्यदुर्वह—वि० [स०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के लिये कठिन [को०]।

अन्यदेशीय—वि० [स०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश का परदेशी।

अन्यधी—वि० [स०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष मे न हो। ईश्वर को न माननेवाला [को०]।

अन्यनाभि—वि० [स०] दूसरे वशवाला [को०]।

अन्यपर—वि० [स०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे मे [को०]।

अन्यपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ दूसरा आदमी। गैर। २ व्याकरण मे पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके सबध मे कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे 'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।

अन्यपुष्ट—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने अडो को सेने के लिये कौओ के घोसलो मे रख आती है।

अन्यपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को ब्याही जाकर या वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से ब्याही जाय। इसके दो भेद हैं—पुनर्भू और स्वैरिणी।

अन्यबीजज—सज्ञा पुं० [स०] दत्तक पुत्र [को०]।

अन्यबीजसमुद्भव—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यबीजोत्पन्न—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यभृत्[1]—वि० [स०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।

अन्यभृत्[2]—सज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।

अन्यभृता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यमन—वि० [स० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।

अन्यमनस्क—वि० [स०] जिसका जी कही न लगता हो। उदास। चिंतित। अनमना। उ०—किंतु अन्यमनस्क होकर वह टहलने ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [सं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।

अन्यमातृज—सज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या सौतेली माता से उत्पन्न। सौतेला भाई [को०]।

अन्यमार्गी—वि० [सं० अन्यमार्गिन्] दूसरा मत या धर्म माननेवाला। उ०—अन्यमार्गी को अहमान मोर लियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१८।

अन्यर्हि—अव्य० [सं०] किसी अन्य समय (को०)।

अन्यवादी—वि० [स० अन्यवादिन्] १ झूठी गवाही देनेवाला। २ प्रतिवादी [को०]।

अन्यवाप—सज्ञा पुं० [स०] कोयल [को०]।

अन्यविवर्धित—वि० [स०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया हो [को०]।

अन्यव्रत—वि० [सं०] अन्यधर्मानुगामी। अनार्य।

विशेष—अनार्यों की अपनी भाषाएँ थीं जो आर्यों को अर्नार्य सी मालूम होती थी। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है जिससे जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, नियम इत्यादि पृथक् थे।

अन्यशाख—सज्ञा पु० [स०] वह ब्राह्मण जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो [को०]।

अन्यशाखक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।

अन्यसक्रात—वि० [स० अन्यसङ्क्रान्त] दूसरी स्त्री से सबध कर लेनेवाला [को०]।

अन्यसगम—सज्ञा पु० [स० अन्यसङ्गम] अवैध यौनसबध [को०]।

अन्यसम्भूयक्रय—सज्ञा पुं० [स० अन्यसम्भूयक्रय] बोझ का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चद्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हे राज्य ही बेचता था।

अन्यसभोगदुःखिता—सज्ञा स्त्री० [स० अन्यसम्भोगदुःखिता] वह नायिका जो अन्य स्त्री मे नायक के चिह्न देखकर और यह जानकर कि इसने हमारे पति के साथ रमण किया है, दुःखित हो।

अन्यसाधारण—वि० [सं०] बहुतो मे पाया जानेवाला [को०]।

अन्यसुरतिदुःखिता—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अन्यसभोगदुःखिता'। उ०—अन्यसुरतिदुःखिता कहौ, करे पेच-रिस-नेह।—नागरीदास ग्र०, पृ० २९२।

अन्याइ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सुनि पावै नीचन कौ राइ। तौ यह होइ बडो अन्याइ।—नद० ग्र०, पृ० २४४।

अन्याई[1]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहिं चरन गिरिधर के बहुत करी अन्याई।—सूर० १।१४७।

अन्याई[2]—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज मे लरिका घने हौंही अन्याई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३०।

अन्याउ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहिं काह को ते सिसु मोहि न भावहि।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।

अन्यादृश—वि० [स०] १ दूसरे प्रकार का। २ परिवर्तित [को०]।

अन्यापदेश—सज्ञा पुं० [स०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ पर घटाया जाय।

अन्योक्ति। जैसे,— हे पिक पचम नाद को नहि भीलन को ज्ञान। यहै रीझिवो मान तू जो न हनै हिय बान। यहाँ कोकिल और भील की बात कहकर मूर्ख दुर्जनो और गुणियो का स्वभाव दिखाया गया है।

अन्यापेक्षी—वि० [स० अन्यापेक्षिन्] दूसरे का आसरा रखनेवाला। दूसरे का अवलब लेनेवाला। उ०—वह मूलत एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है।—नदी०, पृ० २५६।

अन्याय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्यायी] १ न्याय के विरुद्ध आचरण। अनीति। बेइमानी। २ अधेर। अनयाचार। ३ जुल्म।

अन्यायी[1]—वि० [स० अन्यायिन्] अन्यायाचारी। अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी। जालिम।

अन्यायी[2]—वि० [सं०] न्याय के प्रतिकूल। अनुचित।

अन्यारा(पु)—वि० [स० अ=नहीं+हिं० न्यारा] १ जो पृथक् या जुदा न हो। २ अनोखा। निराला। ३ खूब। बहुत। बढ़ बस जग माह अन्यारा। छत्र धर्म धुर को रखवारा।—लाल० (शब्द०)।

अन्यारी(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनियारा'। उ०—काम झूलै उर मे उरोजन मे दाम झूलै, स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२१।

अन्यार्थ—वि० [स०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०]

अन्याव(पु)†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—देवनि हूँ देव परिहरचो अन्याव न तिनको, हौ अपराधी सब केरो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३।

अन्याश्रित—वि० [सं०] दूसरे पर निर्भर या अवलबित [को०]।

अन्यास(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—दास मनि काहे को अन्यास दरसावनी मयावनी भुअगिनी सी बेनी लौटि लौटि है।—भिखारी० ग्र०, पृ० १७४।

अन्यासाधारण—वि० [स०] असाधारण। असामान्य। विचित्र [को०]

अन्यून—वि० [सं०] जो न्यून न हो। जो कम न हो। काफी। बहुत।

अन्येद्यु—क्रि० वि० [स०] [वि० अन्येद्युक] दूसरे दिन।

अन्येद्यु ज्वर—सज्ञा पु० [स०] वह ज्वर जो बीच मे एक एक दिन का अतर देकर चढ़े। एकतरा ज्वर। अँतरिया बुखार।

अन्येद्युष्क[1]—वि० [स०] दूसरे दिन होनेवाला।

अन्येद्युष्क[2]—सज्ञा पु० दे० 'अन्येद्युज्वर'।

अन्योका—वि० [सं० अन्योकस्] अपने घर मे न रहनेवाला [को०]।

अन्योक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय। अन्यापदेश। जैसे,—केती सोम कला करो, करो सुधा को दान। नही चद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान। यहाँ चद्रमा और तेलिया पत्थर के बहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा सज्जन और दुर्जन की बात कही गई है। रुद्रट आदि दो एक आचार्यों ने इसको अलकार माना है।

अन्योदर्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्योदर्या] दूसरे के पेट से पैदा। सहोदर का उलटा।

अन्योन्य[1]—सर्व० [सं०] परस्पर। आपस मे।

अन्योन्य[2]—सज्ञा पुं० वह काव्यालकार जिसमे दो वस्तुओ की किसी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय। जैसे—सर की शोभा हस है, राजहस की ताल। करत परस्पर हैं सदा गुरुता प्रकट विशाल।

अन्योन्यभेद—सज्ञा पु० [स०] आपसी वैर। शत्रुता [को०]।

अन्योन्यविभाग—सज्ञा पुं० [स०] पैतृक सपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०]।

अन्योन्यवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०]।

अन्योन्यव्यतिकर—सज्ञा पुं० [स०] कार्य और कारण का पारस्परिक सबध [को०]।

अन्योन्यसश्रय—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अन्योन्यव्यतिकर' [को०]।

अन्योन्याभाव—सज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना। जैसे—घट पट नही हो सकता और पट घट नही हो सकता।

अन्योन्याश्रय—सज्ञा पुं० [स०] १ परस्पर का सहारा। एक दूसरे की अपेक्षा। २ न्याय मे एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा। सापेक्ष ज्ञान। जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है।

अन्वक्—क्रि० वि० [स०] १ बाद मे। पीछे से। २ मैत्री से। अनुकूलता से [को०]।

अन्वक्ष[1]—वि० [स०] १ प्रत्यक्ष। साक्षात्। २ पीछे या बाद का (को०)।

अन्वक्ष[2]—क्रि० वि० १ सामने। २ पीछे। बाद। उपरात।

अन्वय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्वयी] १ परम्पर। तारतम्य। २ सयोग। मेल। ३ पद के शब्दो को वाक्यरचना के नियमानुसार यथास्थान रखने का कार्य। जैसे—पहले कर्ता फिर कर्म और फिर क्रिया। ४ अवकाश। खाली स्थान। ५ वश। कुल। घराना। खानदान। ६. भिन्न भिन्न वस्तुओ को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि मे लाना। जैसे,—चलने फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जगम के अनर्गत मानना। ७. कार्य कारण का सबध। ८ अनुगमन (को०)। ९ आशय (को०)।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वशपरपरा का ज्ञाता [को०]।

अन्वयव्यतिरेक—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहमति और असहमति। सगति और असगति। २ नियम और अपवाद [को०]।

अन्वयव्यतिरेकसबध—सज्ञा पु० [स० अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध] दो वस्तुओ का वह सबध जिसमे एक के होने पर दूसरी का होना तथा दूसरी के न होनेपर पहली का न होना निर्भर करता है। जैसे, दड और चक्र तथा घडे का सबध। 'दड और चक्र के रहने पर ही घडे का बनना', यहाँ दड और चक्र का घडे के बनने से अन्वय सबध है। साथ ही दड और चक्र के अभाव मे घडे का न बनना यहाँ दड और चक्र के अभाव का घडे के न बनने से व्यतिरेक सबध है।

अन्वयव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०]।

अन्वयागत—वि० [स०] जो वशपरपरा से चला आ रहा हो। वशानुगत [को०]।

अन्वयार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वय से व्यक्त होनेवाला अर्थ (को०)।

अन्वयी—वि० [सं० अन्वयिन्] १ अन्वययुक्त। २ संबद्ध। ३ एक ही वंश का।

अन्वर्थ—वि० [सं०] अर्थ के अनुसार। २ सार्थक। अर्थयुक्त।

अन्ववकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] यथा क्रम उचित ढंग से चारों ओर बिखेरना (को०)।

अन्ववचार—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे की ओर जाना तथा अनुसरण करना (को०)।

अन्ववसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षमा करना। २ अनुज्ञानुकूल व्यवहार या कामचार की आज्ञा (को०)।

अन्ववसायी—वि० [सं० अन्यवसायिन्] १ संलग्न रहनेवाला। २ निर्भर। आश्रित (को०)।

अन्ववसित—वि० [सं०] संलग्न। संबद्ध (को०)।

अन्ववाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाति। वंश। कुल (को०)।

अन्ववेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार। ध्यान। विचार (को०)।

अन्वष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सांमियों के लिये एक सांवत्सर श्राद्ध जो अष्टका के अनंतर पूस, माघ, फागुन और चैत्र की कृष्ण पक्ष की नवमी को होता है।

अन्वाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथा की व्याख्या। २ खंड। अध्याय। पर्व (को०)।

अन्वाचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधान या मुख्य काम करने के साथ साथ किसी अप्रधान काम को भी करने की आज्ञा। जैसे,—गिनती के लिये जाओ और यदि रास्ते में गाय मिले तो उसे भी हाँकते जाना। २ उक्त प्रकार का कार्य या विषय (को०)।

अन्वादेश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक कार्य के लिए आज्ञा देकर पुनः दूसरा कार्य करने का आदेश या उपदेश। जैसे,—इन व्याकरण पढ़ो है अब इनको साहित्य पढ़ाओ।

अन्वाधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्न्याधान के उद्देश से अग्नि को संस्कृत करने के लिये उसमें ईंधन छोड़ने की क्रिया।

अन्वाधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह आदि या परिमाण जो किसी के हाथ में इसलिये दिया जाय कि वह उसे अमुक (तीसरे) व्यक्ति को दे दे। २ पश्चात्ताप। ग्लानि। व्यथा।

अन्वाधेय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के पीछे जो धन स्त्री को उसके पिता या पति के घर से मिले।

अन्वाधेयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाधेय' (को०)।

अन्वाध्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का एक वर्ग (को०)।

अन्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थशास्त्र के अनुसार सेना के किसी एक अंग की अधिकता।

अन्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वारंभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भ] आशीर्वाद देने के लिये यजमान की पीठ का स्पर्श (को०)।

अन्वारंभण—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भण] दे० 'अन्वारंभ'।

अन्वारूढ़—वि० [सं० अन्वारूढ] पीछे चलनेवाला।

अन्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] पति के साथ या उसके बाद चिता पर चढ़ना (को०)।

अन्वालंभन—संज्ञा पुं० [सं० अन्वालम्भन] चुटकिया। मुट्ठा (को०)।

अन्वालंभन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वालंभन' (को०)।

अन्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैठना। बैठ। आसन। २. पति के साथ सती होना। ३ पूजा। उपासना। ४. पूजा का स्थान। ५. ध्यान। चिंतन। ६ पीछे पीछे चलना। अनुसरण (को०)।

अन्वास्यं—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वोक्त को छोड़ के भी आवश्यकता पड़ने पर ग्रहण। २ दे० 'अन्वाधेय' (को०)।

अन्वास्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वास्य' (को०)।

अन्वास्य श्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मासिक श्राद्ध। वह मासिक श्राद्ध जो मासारंभ के अनंतर किया जाता है। उदाहार।

अन्वाहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्वाहिती] देखरेख। सँभाल (को०)।

अन्वाहिती—वि० [सं०] स्मृति के अनुसार (श्राद्ध) ब्राह्मण के घर अमावस्या को होनेवाला श्राद्ध जो पूर्वाह्ण में ही और एक ही ब्राह्मण को निमंत्रित करके किया जाता है।

अन्वाहिती—संज्ञा पुं० नित्य या नैमित्तिक कर्म के अंत में उसके फल की प्राप्ति के लिये उसका दूसरे दिन किया जानेवाला विधान।

अन्विच्छ—वि० [सं०] १ खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ। २ मनचाहा या विचारा हुआ। (को०)। ३ चुना हुआ। संचित। उपार्जित (को०)। ४ संबद्ध (को०)।

अन्विच्छार्थी—संज्ञा पुं० [सं०] खोजने वाला। ढूँढ़नेवाला।

अन्विच्छार्थी—वि० खोजने या ढूँढ़ने की इच्छा रखनेवाला (को०)।

अन्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधेय और उद्देश्य का परस्पर संबंध। परस्पर संबंध। जैसे—'राम जाते हैं' इस वाक्य में 'जाते हैं' विधेय (predicate) का, 'राम' उद्देश्य (subject) के साथ संबंध है। इसी संबंध को अन्विति कहते हैं। (विशेष—इसी को कोई कोई पदार्थों का परस्पर संबंध भी कहते हैं। साहित्यदर्पण, पृ० २ पृ० ६६।

अन्विष्ट—वि० [सं०] खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ। आकांक्षित (को०)।

अन्वीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ खोज। ढूँढ़। तीर। विचार। २. खोज। तलाश। अनुसंधान।

अन्वीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्वीक्षण'।

अन्वीत—वि० [सं०] दे० 'अन्वित' (को०)।

अन्वीय—वि० [सं०] १ पीछे से आनेवाला। पीछे के पास स्थित। २ संबंधयुक्त (को०)।

अन्वेष—संज्ञा पुं० दे० 'अन्वेषण' (को०)।

अन्वेषक—वि० [सं०] [स्त्री० अन्वेषिका] खोजनेवाला। तलाश करने वाला। अनुसंधान करनेवाला (को०)।

अन्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्वेषणा, वि० अन्वेषित, अन्वेषी, अन्वेष्टा] अनुसंधान। खोज। ढूँढ़। तलाश।

अन्वेषित—वि० [सं०] खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ।

अन्वेषी—वि० [सं० अन्वेषिन्] [स्त्री० अन्वेषिणी] ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला।

अन्वेष्टव्य—वि० [सं०] दे० 'अन्वेष्य'। (को०)।

अन्वेष्टा—वि० [सं० अन्वेष्टृ] [स्त्री० अन्वेष्ट्री] खोजनेवाला । तलाश करनेवाला ।

अन्वेष्य—वि० [स०] अन्वेषण के योग्य [को०] ।

अन्हरा(पु)†—वि० [स० अघ, प्रा० अधल] अधा । नेत्रहीन । सूर । उ०—जो कुछ रहा से अन्हरे भाखा, कठवै कहेसि अनूठी । बचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहैं सो झूठी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६ ।

अन्हवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अन्हाना का प्रे रू०] स्नान कराना । नहलाना । उ०—(क) बद करत पूजा हरि देखत । घट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चदन लै भेटत ।—सूर०, १०।२६१। (ख) रामचन्द्र सर बिन अन्हवाएँ ।—मानस, १।११ ।

अन्हवैया(पु)—वि० [हिं० अन्हाना + वैया (प्रत्य०)] स्नान करानेवाला । नहानेवाला । उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित सरित अन्हवैया ।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६ ।

अन्हान(पु)—सज्ञा पु० [स० स्नान, प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान] दे० 'स्नान' । उ०—कै मज्जन तव किएउ अन्हानू । पहिरे चीर गएउ छपि भानू ।—जायसी ग्र० ।

अन्हाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अन्हान से नाम०] स्नान करना । नहाना । उ०—हम लकेश दूत प्रतिहारी समुद नीर कौं जात अन्हाए ।—सूर०, ६।१२० ।

अपकिल—वि० [स० अपङ्किल] १ पकरहित । सूखा । बिना कीचड का । २ शुद्ध । निर्मल ।

अपग—वि० [स० अपाङ्ग = हीनाङ्ग] १ अगहीन । न्यूनाग । २ लँगडा । लूला । ३ काम करने मे अशक्त । बेदम । असमर्थ । उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहि अगहाव भाव सर लरत कटाच्छनि, भृकुटी धनुष अपंग ।—सूर०, १०।२८८ ।

अपचीकृत—वि० [स० अपञ्चीकृत] पच महाभूतो का अमिश्र सूक्ष्म रूप जिसका पचीकरण न हुआ हो ।

अपंजीकृत—वि० [स०अ = नहीं + पञ्जीकृत] जो सूची, बही, रजिस्टर या खाते मे दर्ज न हो ।

अपंडित—वि० [स० अपण्डित] मूर्ख । निरक्षर । ज्ञानहीन ।

अपडी—वि० [स० अ + पिण्डिन्] पिंड या शरीर से रहित (ईश्वर) । उ०—बसै अपडी पड मे ता गति लषै न कोइ ।—कबीर ग्र०, पृ० १८ ।

अपथ—सज्ञा पु० [स० अ = बुरा + हि = पथ] दे० 'अपथ' । उ०—कहैं कबीर यह अचरज बाता । उलटी रीति अपथ जग जाता । —कबीर सा०, पृ० ४३१ ।

अपपर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरपार' । उ०—(क) प्रथम सुमर इण विध परमेश्वर । पूरण ब्रह्म प्रताप अपपर ।—रा० रू०, पृ० ३ । (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपपरम् ।—राम० धर्म०, पृ० ५१ ।

अप प्रवेशन—सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार पानी मे डुबाकर मारने का दड जो राजविद्रोही ब्राह्मणो को दिया जाता था ।

अप्—सज्ञा पु० [स०] १ जल । पानी । २ वायु । हवा (को०) । ३ चित्रा नक्षत्र [को०] ।

अप[1]—उप० [स०] उलटा । विरुद्ध । बुरा । हीन । अधिक ।

विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ मे निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है ।—१ निषेध । जैसे—अपकार । अपमान । २ अपकृष्ट (दूषण) । जैसे—अपकर्म । अपकीर्ति । ३ विकृति । जैसे—अपकुक्षि । अपाग ४ विशेषता । जैसे—अपकलक । अपहरण ।

अप[2]—सर्व० [हिं०] 'आप' का सक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दो मे आता है । जैसे—अपस्वार्थी । अपकाजी । उ०—दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ । घरि के अप अपने हिय महियाँ ।—नद० ग्र०, पृ० २६५ ।

यौ०—अपआप = अपने आप । खुद ब खुद । उ०—नाला अपआप सागर हुआ । काहे के कारण रोता है कुवा ।—दक्खिनी, पृ० २१ ।

अप[3](पु)—सज्ञा पुं० [स० अप्] जल । पानी । उ०—रज अप अनल अनिल नभ जड जानत सब कोइ ।—स० सप्तक, पृ० १६ ।

अपक—सज्ञा पु० [स० अप् + क] पानी । जल । (डिं०) ।

अपकरण—सज्ञा पु० [स०] १ अनिष्ट कार्य । २ दुष्टाचार । दुराचार । ३ बुरा बर्ताव ।

अपकरुण—वि० [स०] निठुर । निर्दयी । बेरहम । कठोरहृदय ।

अपकर्ता—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अपकर्त्री] १ हानि पहुँचानेवाला । हानिकारी । २ बुरा काम करनेवाला । पापी । ३ शत्रु [को०] ।

अपकर्म—सज्ञा पु० [स०] बुरा काम । खोटा काम । कुकर्म । पाप । उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालै, युवती सेवा ही को धर्म । युवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।—सूर (शब्द०) ।

अपकर्मा—वि० [स० अपकर्मन्] दुष्कर्मी भ्रष्टाचारी ।

अपकर्ष—सज्ञा पु० [स०] १ उत्कर्ष का विलोम । नीचे की ओर खिचाव । गिराव । २ घटाव । उतार । कमी । ३ किसी वस्तु या व्यक्ति के मूल्य वा गुण को कम समझना या बतलाना । बेकदरी । निरादर । अपमान ।

अपकर्षक—वि० [स०] अपकर्ष करनेवाला । निरादर करनेवाला । जिससे अपमान होता हो ।

अपकर्षण—सज्ञा पु० [स०] १ अपमान । तिरस्कार । बेकदरी । उ०—धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण ।—साकेत, पृ० ४१६ । दे० 'अपकर्ष' ।

अपकर्षसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक । दृष्टात मे जो न्यूनताएँ हो उनका साध्य मे आरोप करना । जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द मे है तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नही होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नही होता ।'

अपकर्षित—वि० [स०] अपमानित । अपकृष्ट । हटाया गया [को०] ।

अपकलक—सज्ञा पु० [स० अपकलङ्क] अमिट कलक । न मिटनेवाला कलक [को०] ।

अपकल्मष—वि [स०] १ निष्पाप । २ निष्कलक [को०] ।

अपकषाय—वि० [स०] दे० 'अपकल्मष' [को०] ।

अपकाजी(पु)—वि० [हिं० अप+काज] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—श्याम विरह वन माँझ हेरानी। अहंकारि लपट अपकाजी सग न रह्यो निदानी।—सूर (शब्द०)।

अपकार—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपकारक अपकारी] १ अनिष्टसाधन। द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। नुकसान। अनभला। अहित। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होब दुखारी।—तुलसी (शब्द०)। २ अनादर। अपमान। ३ अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [सं०] १ अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला। हानिकारी। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [सं० अपकारिन्] [स्त्री० अपकारिणी] १ हानिकारक। बुराई करनेवाला। अनिष्टसाधक। उ०—खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।—मानस, ७।१२१। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचार(पु)—वि० [सं० अपकार+आचार] हानि पहुँचानेवाला। हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कहँ गौरव मान्य बहु। मन क्रम बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] बिखराना। छितराना [को०]।

अपकीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपकीर्ति'। उ०—मैं अपनी अपकीरति कीन्ही यह बात महीं सब देव महाबी।—हम्मीर०, पृ० २०।

अपकीर्ण—वि० [सं०] बिखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत[1]—वि० [सं०] १ जिसका अपकार किया गया हो। जिसे हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २ अपमानित। बदनाम। ३ जिसका विरोध किया गया हो। उपकृत का उलटा।

अपकृत[2]—संज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपकार। हानि। बुराई। २ अपमान। निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट—वि० [सं०] १ गिरा हुआ। पतित। भ्रष्ट। २ अधम। नीच। निंद्य। ३ घृणित। बुरा। खराब।

यौ०—अपकृष्टचेतन=बुरे विचारोंवाला।

अपकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधमता। नीचता। २ बुराई। खराबी।

अपकीर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] समाचार। संवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कच्चापन। अपरिपक्वता। २ अजीर्ण [को०]।

अपक्रम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यतिक्रम। क्रमभंग। अनियम। गड़बड़। उलट पलट। २ दौड़ना। पीछे हटना [को०]। ३ पीछे हटने का स्थान या सीमा (को०)। ४ (समय) बीतना। व्यतीत होना (को०)।

अपक्रम[2]—वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [सं० अपक्रमिन्] १ जानेवाला। हटनेवाला। २. तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्राम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षति। दुष्कर्म। अहित। २ ऋण-परिशोध [को०]।

अपक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य कहना [को०]।

अपक्व—वि० [सं०] १ बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व जो वृक्ष ते तोर लेत नर कोय। फल को रस पावै नहीं, नास बीज को होय।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २०१। २ अनभ्यस्त। असिद्ध। अनुभवहीन।

यौ०—अपक्वबुद्धि।

अपक्वकलुष—संज्ञा पुं० [सं०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो भेदों में से एक। बद्धजीव, जो संसार में बार बार जन्म ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में ज्वर की वह दशा जिसमें लार गिरना, उबकाई आना, अरुचि, आलस्य, देह का जकड़ना आदि उपद्रव होते हैं।

अपक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पका हुआ न होना। कच्चापन। २ अनभ्यस्तता। असिद्धता।

अपक्ष[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ वह जो राज्य के पक्ष में न हो। २ जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३ वह, जिसका किसी से हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष, न पक्ष अपक्ष, न तूल न भारी।—सुंदर ग्र०, पृ० ६४८।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष[2]—वि० [सं०] १ पखहीन। पंखरहित। २ निष्पक्ष (को०)।

अपक्षपात[1]—संज्ञा पु० [सं०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात[2]—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परंतु नौशेरवाँ खजाची के इस अपक्षपात काम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे निहाल कर दिया।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २२४।

अपक्षपाती—वि० [सं० अपक्षपातिन्] [स्त्री० अपक्षपातिनी] पक्षपात-रहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपक्षीण] १ छीजना। ह्रास। नाश। २ कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि० [सं०] १ अपक्षेपण की क्रिया द्वारा पलटाया वा फेंका हुआ। २ फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [सं०] नष्ट। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपक्षेपण' [को०]।

अपक्षेपण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपक्षिप्त] १ फेंकना। पलटाना। २ गिराना। च्युत करना। ३ पदार्थविज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टकर खाने से व्यावर्तन होना। प्रकाशादि का किसी पदार्थ से टकराकर पलटना। ४ वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुंचन, प्रसारण आदि पाँच प्रकार के कर्मों में से एक।

अपखोरा—संज्ञा पु० [फा० आबखोरा, हिं० अबखोरा] जल पीने का पात्र या बरतन।

अपगड—वि० [सं० अपगण्ड] दे० 'अपोगंड' [को०]।

अपग[1]—वि० [स०] १ जानेवाला। दूर हटनेवाला [को०]।

अपग[2] Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० अपगा] सरिता। नदी।—अनेकार्थ० पृ० ४४।

अपगत—वि० [स०] १ पलायित। भागा हुआ। पलटा हुआ। २ दूरीभूत। हटा हुआ। गत। उ०—अपगत मे नोई अवनि मो पुनि प्रगट पताल।—स० सप्तक, पृ० १५। ३ मरा हुआ। मृत [को०]।

यौ०—**अपगतव्याधि**=रोगमुक्त।

अपगति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गति। अधोगति। दुर्भाग्य [को०]।

अपगम—सज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग। अलग होना। २ दूर होना। भागना। ३ मृत्यु। मरण [को०]।

अपगमन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपगम' [को०]।

अपगर—सज्ञा [स०] पुं० १ निंदा। २ वह जो निंदा करे। निंदक [को०]।

अपगर्जित—वि० [स०] गर्जनशून्य (बादल)। गर्जनारहित [को०]।

अपगल्भ—वि० [स०] १ भीरु। डरपोक। घबडाया हुआ (को०)। २ पार्श्वीय। बगल का [को०]।

अपगा Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

अपगीत—वि० [सं० अप+गीत] बुरा कहा जानेवाला। निंदनीय (को०)। उ०—मैं ही हूँ वह महानिंद्य, अविनीत हा! होगा मुझ सा और कौन अपगीत हा!—शकु०, पृ० ५२।

अपगुण—सज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। ऐब [को०]। २ निर्गुण। गुण अवगुण से रहित [को०]।

अपगोपुर—वि० [स०] द्वारविहीन। द्वाररहित (नगर) [को०]।

अपघन[1]—वि० [स०] मेघरहित। निरभ्र [को०]।

अपघन[2]—सज्ञा पुं० [स०] शरीर का अग (हाथ पैर आदि) [को०]।

अपघात[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ हत्या। हिंसा। २ वचना। विश्वासघात। धोखा। उ०—जीर्ण तुमको जान सहसा तात। कर गया क्या काल यह अपघात।—साकेत, पृ० १७७।

अपघात[2]—सज्ञा पुं० [हिं० अप+स० घात] आत्महत्या। आत्मघात। उ०—(क) कहुरे कुँअर मोंमे मत बाता। काहे लागि करसि अपघाता।—जायसी (शब्द०)। (ख)—नाजन को मारो राजा चाहैं अपघात कियो जियो नहिं जान भक्ति लेशहूँ न आयो है।—प्रिया (शब्द०)।

अपघातक—वि० [स०] १ विनाश करनेवाला। घातक। २ विश्वासघाती। वचक। धोखा देनेवाला।

अपघाती—वि० [स० अपघातिन्] [वि० स्त्री० अपघातिनी] १. घातक। विनाशक। २ विश्वासघाती। वचक।

अपच[1]—सज्ञा पु० [हिं० अ+पच] न पचने का रोग। अजीर्ण। बदहजमी।

अपच[2]—सज्ञा पु० [स] १ पाककार्य मे असमर्थ व्यक्ति। वह जिसे अपने लिये पकाना न आता हो। २ बुरा पाचक [को०]।

अपचय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपचयी] १ क्षति। हानि। २ व्यय। कमी। नाश। ४ पूजा। सम्मान।

अपचरित[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ दोषयुक्त आचरण। दुराचार। बुरा कर्म।

अपचरित[2]—वि० १ गया हुआ। प्रस्थित। २ मृत [को०]।

अपचरितप्रकृति—सज्ञा पु० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से पीडित हो [को०]।

अपचायित—सज्ञा पुं० [स०] १ रोवीला। जिससे लोग डरें। २. पूजित। समानित। आदृत [को०]।

अपचायी—वि० [स० अपचायिन्] बडो का आदर सम्मान न करने वाला [को०]।

अपचार—सज्ञा पु० [स] [वि० अपचारी] १ अनुचित वर्ताव। बुरा आचरण। कुव्यवहार। उ०—बिबुध बिमल बानी गगन हेतु प्रजा अपचारु। रामराज परिनाम भल कीजिय वेगि विचारु।—तुलसी ग्र०, पृ० ९२।२ अनिष्ट। अहित। बुराई। ३ अनादर। निंदा। अपयश। ४ कुपथ्य। स्वास्थ्यनाशक व्यवहार। ५ अभाव। ६ भूल। भ्रम। दोष। ७ मृत्यु। विनाश(को०)।

अपचारक—वि० [स०] अपचार करनेवाला [को०]।

अपचारी—वि० [स० अपचारिन्] [वि० स्त्री० अपचारिणी] विरुद्ध आचरण करनेवाला। दुराचारी। दुष्ट।

अपचाल Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० अप+हिं० चाल] कुचाल। खोटाई। नटखटी। उ०—वारि कै दान सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।—रसखान (शब्द०)।

अपचित—वि० [स०] १ पूजित। समानित। आदृत। २ क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

अपचिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हानि। क्षय। ह्रास। नाश। २. व्यय। ३. दड देना। ४ पृथक्करण। ५ मरीचि की कन्या का नाम। ६ समान करना ७ पूजा [को०]।

अपची—सज्ञा स्त्री० [स०] गडमाला रोग का एक भेद। गडमाला की वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह जगह पर फोडे निकलते और बहने लगते हैं।

अपचेता—वि० [स० अपचेतस्] कजूस। सूम। जो धन न स्वय खर्च करे न करने दे [को०]।

अपच्छत्र—वि० [स०] छत्रविहीन। छत्ररहित [को०]।

अपच्छाय[1]—वि० [स०] १ छायाविहीन। २ दूषित या बुरी छायावाला। जो चमकदार न हो। धुँधला। कातिहीन [को०]।

अपच्छाय[2]—सज्ञा पुं० देवता।

अपच्छाया—सज्ञा स्त्री० [स०] बुरी छाया। भूत प्रेत की छाया [को०]।

अपच्छी[1] Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+पक्षी=पखवाला] विपक्षी। विरोधी। शत्रु। गैर।

अपच्छी[2] Ⓤ—विना पख का। पखरहित।

अपच्छेद—सज्ञा पुं० [स०] १ काट देना। अलग विलग कर देना। २ हानि। ३ बाधा। ४ वह जो टूट गया हो। भग [को०]।

अपच्छेदन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अपच्छेद' [को०]।

अपच्युत—वि० [स०] निपतित। गिरा हुआ। २ बहा हुआ। द्रवित। ३ विनष्ट [को०]।

अपछरा Ⓤ—सज्ञा पु० [स० **अप्सरा, प्रा० अच्छरा**] १ अप्सरा । उ०—कल हस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ।—तुलसी (शब्द०) । २ हिंदुस्तान मे रडियो की एक जाति ।

अपजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पराजय । हार ।

अपजस Ⓤ†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपयश' । उ०—चिंता यह मोहि अपारा । अपजस नहिं होय तुम्हारा ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अपजात—सज्ञा पु० [स०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र । कपूत [को०] ।

अपजोग Ⓤ—सज्ञा पु० [स० अप+**योग**] बुरा योग । बुरा सबध । बुराई । उ०—सब खोटे मधुवन के लोग । जिनके सग स्यामसुदर सखि सीखे हैं अपजोग ।—सूर०, स० १०।३५६० ।

अपज्ञान—सज्ञा पु० [स०] १ अस्वीकार । इनकार । नटना । नही करना । २ सगोपन । छिपाव । दुराव ।

अपज्य—वि० [स० **अप+ज्या**] शिंजिनीहीन । प्रत्यचारहित [को०] ।

अपट Ⓤ—वि० [स० **अपटु**] जो चतुर न हो । अपटु । उ०—मेरे हेरन वेस कपट कौ । रहिहै नहिं पूतना अपट कौ ।—नद० ग्र०, पृ० २३८ ।

अपटन Ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'उबटन' ।

अपटातर—वि० [स० **अपटान्तर**] १ जो पाट या पर्दे द्वारा विभक्त न हो । २ अलग विलग नही । सयुक्त । मिलाजुला [को०] ।

अपटी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ परदा । काडपट । २ कपडे की दीवार । कनात ३ आवरण । आच्छादन ।

अपटीक—वि० [स०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित । वस्त्ररहित [को०] ।

अपटीक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] नाटक मे परदा हटाकर पात्रो का रगभूमि मे सहसा प्रवेश ।

अपटु—वि० [स०] १ जो पटु न हो । कार्य करने मे असमर्थ । २ गावदी । सुस्त । आलसी । ३ रोगी । ४ ज्योतिष के अनुसार (ग्रह) जिसका प्रकाश मद हो जाय ।

अपटुता—सज्ञा स्त्री० [स०] पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाडीपन ।

अपट्ठमान Ⓤ—वि० [स० **अपट्यमान**] १ जो पढा न जाय । न पढने योग्य । उ०—अपट्ठमान पापग्र थ, पट्ठमान वेद हैं ।—केशव (शब्द०) ।

अपटूडेट—वि० [अ० **अप-टु-डेट**] रहन सहन या विचार मे समय के अत्यत अनुकूल । उ०—फैशन के सबध मे अपटूडेट खबर रखते थे ।—सन्यासी, पृ० ६२ ।

अपठ—वि० [स०] १ अपढ । जो पढा न हो २ मूर्ख । ३ बुरा । पढनेवाला । कुपाठक (को०) ।

अपठित—वि० [स०] १ अपढ [को०] । २ जो पढा नहीं गया [को०] ।

अपट्ठ्यमान—वि० [स०] १ जो पढ़ा न जाय [को०] २ न पढने योग्य [को०] ।

अपडर Ⓤ—सज्ञा पु० [स० **अप+हिं० डर**] भय । शका । उ०—समुझि सहम मोहि अपडर अपने । सो सुधि कीन्ह राम नहिं सपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडरना Ⓤ—क्रि० अ० [**हिं० अपडर से नाम**] भयभीत होना । डरना । शकित होना । उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडना Ⓤ—क्रि० अ० [स० **अ+पत्**] पहुँचना । उ०—छोठी बीच न आपडौं, लाँबी लाज मरेहि । सयण बटाऊ बालरे, ल्यउ साद करेहि ।।—ढोला०, दू० ३८४ ।

अपडाना Ⓤ—क्रि० अ० [स० **अपर से नाम०**] खीचातानी करना । उ०—मन जो कहो करै री माई । निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत लराई । इत कुलकानि उतै हरि को रस मन जो अति अपढाई ।—सूर (शब्द०) ।

अपडाव Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० **अपर, हिं० पराधा=पराया**] [क्रि० **अपडाना**] झगडा । रार । तकरार । उ०—(क) हँसत कहत की धौ सतिभाव । यह कहनी औरे जो कोऊ तासो मैं करती अपडाव । सूरदास यह मोहि लगावत सपनेहुँ जासो नहिं दरसाव ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोपी इहै करत चवाउ । सूर कान्हि प्रगट कैहै करन दे अपडाउ ।—सूर (शब्द०) ।

अपढार—वि० [स० **अप+हिं० ढार=ढलना**] १ बेढगे तौर से ढलनेवाला । उ०—अरु जो अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं नकि लागत दोप महा ।—घनानद, पृ० १२६ । २ सरलता से ढलनेवाला । उ०—यह रावरीयै रसरीति अजू अपढार ढरौ इत यामो कहौं ।—घनानद, पृ० १४० । ३ आपसे आप ढलनेवाला । उ०—जमुना जस जैसे मन भायो । जमुना ही अपढार कहायो ।—घनानद, पृ० १८५ ।

अपढ—वि० [स० **अपठ**] बिना पढा । मूर्ख । अनपढ ।

अपण्य—वि० [स०] न बेचने योग्य । जिसके बेचने का धर्मशास्त्र में निषेध है ।

अपतत्र—सज्ञा पु० [स० **अपतन्त्र**] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग ।

विशेष—इस रोग में शरीर टेढा हो जाता है, सिर और कनपटी मे पीडा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले मे घरघराहट का शब्द होता है और आँखे फटी पडती हैं ।

अपतंत्रक—सज्ञा पुं० [स० **अपतन्त्रक**] दे० 'अपतत्र' [को०] ।

अपत[1] Ⓤ—वि० [स० **अ+पत्र** प्रा० **पत्त, हिं पत्ता**] १. पत्रहीन । बिना पत्तो का । उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार । अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ।—बिहारी (शब्द०) । २ आच्छादनरहित । नग्न ।

अपत[2] Ⓤ—वि० [**अ स०=नहीं+हिं० पत=लज्जा**] लज्जारहित । निर्लज्ज । उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज बसत । दै दल सुमन सुफल किए सो भल सुजस लसत ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

अपत[3] Ⓤ—वि० [स० **अपात्र**, प्रा० **अपत्त**] अधम । पातकी । नीच । उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत । पावन किये रावन रिपु तुलसी हू से अपत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागौ, कामी, विषयी, निपट, कुकर्मी ।—सूर०, १।१८६ ।

अपत[४] (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+पति=प्रतिष्ठा, हिं० पत] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। दुर्दशा। उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते। तौ मेरी अपत करत कौरवसुत होत पडवनि ओते। —सूर० १।१५६।

अपत[५] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त+हिं० ई (प्रत्य०)] १. निर्लज्जता। बेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सों ममताई।—सूर (शब्द०)। २ चचलता। उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबन सब जग अपजस कीन्हो (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक मनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पडि गए शकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—संज्ञा पु० [सं०] १ बीमारी के समय का उपवास। लघन। २ तृप्ति का अभाव [को०]।

अपतह (पु)—सर्व० [सं० आत्मत, प्रा० अप्पतह] अपने आप। खुद व खुद। स्वय। अपने तई (को०)। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरै खोज परहु मति कोई।—कबीर ग्र०, पृ० २८७।

अपतानक—संज्ञा पु० [सं०] एक रोग जो स्त्रियो को गर्भपात तथा पुरुषो को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें बार बार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कठ मे कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना+ताना] जजाल। प्रपच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। तनधन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति[१] (पु)—वि० स्त्री० [<सं० अ=नहीं+पति] १ बिना पति या स्वामी की। विधवा। २ अविवाहित। कुमारी (को०)।

अपति[२]—वि० [सं० अ=बुरा+पत्ति=गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर (शब्द०)।

अपति (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अ=नहीं+पत=प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति बिनु पतिनी पतित न मग मे। पति बिनु अपति नारि की जग मे।—सबल (शब्द०)। (ख) पैये निसि बासर कलकित न अक सम, बरनै मरक कविताई की अपति होइ।—भिखारी ग्र०, पृ० ९६।

अपतिक—वि० [सं०] १ पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन [को०]।

अपती—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्राय. एक बालिश्त चौडा एक तख्ता जो नाव की लबाई मे मरिया के दोनो सिरो पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अफसोस'।

अपत्त‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपत ४'।

अपत्नी—वि० [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो [को०]।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित [को०]।

अपत्य—संज्ञा पु० [सं०] सतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—साकेत, पृ० १७५।

यौ०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयी।

अपत्यकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] सतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अपत्यजीव—संज्ञा पु० [स०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहते हैं [को०]।

अपत्यता—संज्ञा स्त्री० [स०] बाल्यावस्था। शैशव [को०]।

अपत्यद—वि० [स०] पुत्र देनेवाला (मत्र) [को०]।

अपत्यदा—संज्ञा स्त्री० [स०] गर्मदात्री नाम का पौधा [को०]।

अपत्यपथ—संज्ञा पु० [स०] योनि [को०]।

अपत्यविक्रयी—वि० [स० अपत्यविक्रयिन्] १. सतान बेचनेवाला। २ रुपए लेकर कन्या को विवाह के लिये बेचनेवाला। बेटी-बेचवा [को०]।

अपत्यशत्रु—संज्ञा पु० [स०] १ अपत्य या सतान जिसका शत्रु हो। केकडा।

विशेष—अडा देने के उपरात केकडी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

२ अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अडे बच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र[१]—वि० [स०] पत्रविहीन। पत्तो से रहित। उ०—बारि बेलि सी फैल अमूल, छा अपत्र सरिता के कूल, विकसा औ सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फूल।—पल्लव, पृ० ३२। २. पखरहित। पक्षहीन (को०)।

अपत्र[२]—संज्ञा पुं० १ बाँस का कल्ला या पूती। २. वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हो। ३ चिडिया जिसे पख न हो [को०]।

अपत्रप—वि० [स०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट [को०]।

अपत्रपण—संज्ञा पुं० [स०] १ लज्जा। सकोच। २ व्याकुलता। आकुलता [को०]।

अपत्रपा—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अपत्रपण' [को०]।

अपत्रस्त—वि० [स०] अत्यत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ [को०]।

अपत्रिका—वि० [स०] पत्तो से हीन। पत्रविरहित (को०)। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गीतिका (भू०), पृ० १३।

अपथ[१]—संज्ञा पुं० [स०] १. वह मार्ग जो चलने योग्य न हो। बीहड राह। विकट मार्ग। उ०—माधौ नैकु हटकौ गाइ। भ्रमत निसि बासर अपथ पथ अगहु, गहि नहिं जाइ।—सूर १।८४। २. कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते क्यो नीति करैं आपुन जिन और न अपथ छुडाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव (को०)। ४. योनि। अपत्यपथ (को०)। ५. किसी प्रचलित मत वा सिद्धात का दृढ़तापूर्वक विरोध (को०)।

अपथ[२]—वि० मार्गहीन। पथविहीन (को०)।

अपथगामी—वि० [स० अपथगामिन्] १ कुमार्गगामी। बुरे रास्ते पर जानेवाला। २ चरित्रहीन [को०]।

अपथप्रपन्न—वि० [स०] १ अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति)। २ दुरुपयोग या दुष्कार्य मे लगा हुआ (धन) [को०]।

अपथ्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो। रोग बढानेवाला आहार विहार।

अपथ्य[2]—वि० १ जो पथ्य न हो। स्वास्थ्यनाशक। २ अहितकर। ३ बुरा। खराब। अयुक्त (को०)।

अपथ्यनिमित्त—वि० [स०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०]।

अपद[1]—सज्ञा पु० [स०] १ बिना पैर के रेंगनेवाले जतु। जैसे—साँप, केंचुआ, जोक आदि। उ०—राजा इक पडित पौरि तुम्हारी। अपद दुपद पसु भाषा बूझत अविगत अलप अहारी।—सूर० ८।१४। २ गलत या बुरा स्थान (को०)। ३ आकाश। नभोमडल (को०)। ४ व्याकरण मे शब्द जो पदसज्ञक नही है (को०)।

अपद[2]—वि० १ बिना पैर का। पादविहीन। बिना किसी पद या ओहदे का।

अपद[3] ⓤ—क्रि० वि० बिना पद या अधिकार के।

अपदम—वि० [स०] १ आत्मनियत्रणहीन। २ जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०]।

अपदरुहा—सज्ञा स्त्री० [स०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौदा [को०]।

अपदरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपदरहा' [को०]।

अपदव—वि० [स०] जगल की आग मुक्त। दावाग्निमुक्त [को०]।

अपदस्थ—वि० [स०] स्थान वा पद से हटाया हुआ। पदच्युत। उ०—इधर मौर्य कारागार मे, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नद की उच्छृखलताओ से असतुष्ट हैं।—चद्र०, पृ० १५७।

अपदातर[1]—वि० [स० अपदान्तर] १ मिलाजुला। सयुक्त। अव्यवहित। २ समीप। सनिकट। ३ समान। बराबर।

अपदातर[2]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तत्क्षण।

अपदाँव ⓤ—सज्ञा पु० [सं० अप=बुरा+हिं० दाँव] बुरा दाँव। चालबाजी। कुघात (को०)। उ०—दूसरे आइ कै इद्रियनि लै गयो, ऐसो अपदाँव सब इनहिं कीन्हे। मैं कह्यो नैन मोकौं सँग देहिंगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे।—सूर०, १०।२२४०।

अपदान—सज्ञा पुं० [स०] १ परिशुद्ध आचरण। सदाचारी जीवन। २ उत्कृष्ट कार्य। ३ पूर्णत सपन्न कार्य [को०]।

अपदार्थ[1]—वि० [सं०] तुच्छ। नाचीज। उ०—अवकाश शून्य फैला है, है शक्ति न और सहारा। अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा।—आँसू, पृ० ४१।

अपदार्थ[2]—सज्ञा पु० १ अस्तित्व का अभाव। २ तुच्छता। ३ वाक्य मे प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०]।

अपदिष्ट—वि० [सं०] तर्कना या बहाने से कथित या प्रयुक्त [को०]।

अपदेखा ⓤ—वि० [हिं० अप=अपने को+देखा=देखनेवाला] १ अपने को बडा माननेवाला। आत्मश्लाघी। घमडी। २ स्वार्थी उ०—अपदेखा जे अहहिं तिनहिं हित गुनि मुँह जोहहिं(शब्द०)।

अपदेवता—सज्ञा पुं० [स०] १ दुष्ट देव। २ दैत्य। राक्षस। असुर। उ०—अरे कोई अपदेवता न हो।—चद्र०, पृ० १७४।

अपदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्याज। मिस। बहाना। २ लक्ष्य। उद्देश्य। ३ अपने स्वरूप को छिपाना। भेष बदलना। ४ छल। धोखा (को०)। ५ अस्वीकार। इनकार (को०)। ६ प्रसिद्धि। ख्याति (को०)। ७ खतरा [को०]। ८ बुरा स्थान। खराब जगह (को०)। ९. निर्देश (को०)। १० वैशेषिक न्याय के अनुसार पाँच अनुमान वाक्यो मे दूसरा। हेतु [को०]।

अपद्रव्य—सज्ञा पु० [सं०] १ निकृष्ट वस्तु। बुरी चीज। कुद्रव्य। कुवस्तु। २. बुरा धन।

अपद्वार—सज्ञा पु० [स०] छिपा हुआ दरवाजा। चोर दरवाजा। बगली खिडकी।

अपधावन—सज्ञा पुं० [स०] वाक्छल। सत्य का अपलाप [को०]।

अपधूम—वि० [सं०] धुआँ रहित। धूमविहीन [को०]।

अपध्यान—सज्ञा पु० [स०] निकृष्ट चिंतन। बुरा विचार। अनिष्ट चिंतन। जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान। यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रौद्र।

अपध्वस—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपध्वसी, अपध्वस्त] १ अधःपतन। गिराव। २ बेइज्जती। निरादर। अवज्ञा। अपमान। हार। नाश। क्षय।

अपध्वसज—सज्ञा पु० [स०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता से ऊँची हो। वर्णसकर [को०]।

अपध्वसी—वि० [स० अपध्वसिन्] [वि० स्त्री० अपध्वसिनी] १ गिरानेवाला। अपमान करनेवाला। निरादरकारी। अपमानकारी। २ नाश करनेवाला। क्षयकारी। ३ पराजित करनेवाला। विजयी।

अपध्वस्त—सज्ञा पु० [स०] १ पराजित। हारा हुआ। परास्त। २ निंदित। अपमानित। बेइज्जत किया हुआ। ३ नष्ट।

अपध्वात[1]—वि० [स० अपध्वान्त] सदोष स्वर छोडनेवाला। कर्कश स्वरवाला [को०]।

अपध्वात[2]—सज्ञा पुं० कर्कश स्वर। गलत स्वर [को०]।

अपन ⓤ—सर्व० [स० आत्मन. प्रा० अप्पणो=अपना] १ दे० 'अपना'। उ०—मद मद हँसि नद महर तव। अपन तात सौं बात कही सब।—नद ग्र०, पृ० १९०। २ हम। (मध्यप्रदेश)।

अपनपो ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—हितहि पराया आपनो अहित अपनपो जाय। बन की औषधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय।—श्रीनिवास ग्र० पृ. २०७।

अपनपौ ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं० अपना+पौ वा पा (प्रत्य०)] १. अपनायत। आत्मीयता। सबंध। उ०—भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भए धरि मौन।—तुलसी (शब्द०)। २. आत्मभाव। आत्मस्वरूप। निज स्वरूप। उ०—(क) अपनपौ आपुही बिसरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) सब हित तजै अपनपौ चेते।—तुलसी (शब्द०)। ३. सज्ञा। सुध। ज्ञान। उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नद महरि के आँगन री। सो मैं निरखि अपनपौ खोयो गई मँथनियाँ माँगन री।—सूर (शब्द०)।

(ख) हरि के बलित बदन निहारु। सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु। तुलसी (शब्द०)। ४ अहंकार। गर्व। ममता। अभिमान। उ०—सदा अपनपौ राहि दुराए। सब विधि कुसल कुबेष बनाए।—तुलसी (शब्द०)। ५ आत्म-गौरव। मर्यादा। मान। उ०—तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।—तुलसी (शब्द०)।

अपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना या हटाना। २ अपकार। ३ अनीति। अन्याय। ४ अर्थशास्त्र के अनुसार संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है [कौ०]।

अपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २. स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३ पक्षांतर करना। गणित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैसे— क+५=क+२५
=२क−क=२५−५
=क=२०

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।

४ खंडन। ५ (रोग आदि) अच्छा करना या दूर करना (कौ०)। ६. कर्ज अदायगी। ऋणपरिशोधन (कौ०)। ७ अन्याय।

अपनर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना[1]—सर्व०[सं० आत्मन्, प्रा० अप्पणी] [स्त्री० अपनी] [क्रि० अपनाना] १ निज का। उ०—गहन्हौं बाँह जुनाएसि सपना। सीतहि मेंट करौं हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—अपना उल्लू सीधा करना=किसी को मूर्ख बनाकर अपना कार्य निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। अपना करके छोड़ना=अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनो करि छाँड़ूँ तब घर जाऊँ रे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३९८। अपना करना=अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य अपने व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (शब्द०)। अपना कहा करना=(१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। वचन के अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। अपना काम देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना]=(१) मूल को भूलकर भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। अपना काम करना=प्रयोजन निकालना। अपना किया पाना=किए को भुगतना। कर्म का फल पाना। अपनापन स्थापित करना=भाईचारा उत्पन्न करना। आत्मीयता बढ़ाना। अपना पराया=शत्रु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पराए की परख नहीं (शब्द०)। अपना पाँव आग में डालना=अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना। अपना पूत पराया धतिंगड़=एक ही गलती पर अपने पुत्र को प्यार करना और दूसरे के बच्चे को डाँटना। अपना बना लेना=(१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) वश में कर लेना। (३) प्रेमी बना लेना। (४) छीन लेना। अपना बेगाना=दे० 'अपना पराया'। अपना रोना रोना=अपना ही दुखड़ा बयान करना, दूसरे की न सुनना। अपना सा करना=अपने सामर्थ्य या विचार के अनुसार करना। भरसक प्रयत्न करना। उ०—(क) दो बक एक करा देति मोहि सखी तू सौंह बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतहि कीन्ही रही न मेरी आन।—सूर० (शब्द०)। (ख) तुलसिदास मरता अपनो सो करि गयो गर्व गँवाई।—तुलसी (शब्द०)। अपना सा पचना=अपनी सी कर चुकना। उ०—छूटहिं न बिषु बिषयी सो पर्यो। कनक सो जनु कि नीलमनि ग्रस्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० २३८। अपना सा मुँह लेकर रह जाना=किसी बात में अकृतकार्य होने पर लज्जित होना। उ०—और सपना सा मुँह लेकर अपनी कुर्सी पर आनकर डट गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। अपनी अकल अपने पास रखना=दूसरे की सलाह की अनावश्यकता। अपनी अपनी कहना=अपना अपना भिन्न विचार प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी कहत हैं, सुने न धरिए ध्यान।—कबीर सा० सं०, पृ० ८६। अपनी अलग खिचड़ी पकाना=सबसे पृथक् कार्य या विचार रखना। अपनी अपनी पर पड़ना=अपनी अपनी चिंता में व्यस्त होना। अपना अपना ख्याल होना। उ०—पद्माकर कछु निज कथा, काहू कही बखान। जाहि लग्यो, सो है परी अपनी अपनी आन।—पद्माकर (शब्द०)। अपनी आग में आप जलना=किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष वा क्रोध से प्रभावित होना। अपनी उँगलियों से अपनी आँखें फुड़वाना=अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना। अपने हाथों अपनी हानि कर लेना।—अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन फुड़वाएगा।—चुभते, पृ० ८। अपनी गाना=अपनी ही बात कहना और किसी की न सुनना। अपनी गुड़िया सँवार देना=अपने सामर्थ्य के अनुसार बेटी का ब्याह कर देना। अपनी नींद सोना=अपने इच्छानुसार काम करना। अपनी बात का एक=वादे का पक्का। दृढ़प्रतिज्ञ। अपनी बात पर आना=हठ पकड़ना। जिद करना। जैसे—अब वह अपनी बात पर आ गया है, नहीं मानेगा (शब्द०)। अपनी बाँह का सहारा होना=स्वावलंबी होना। अपने बल या पौरुष का भरोसा होना। उ०—वह कमाई कर कभी हारा नहीं। जाँघ का अपनी सहारा है जिन।—चुभते०, पृ० ८८। अपनी जान हरदम सूली पर होना=संकट की सदा आशंका होना। हरदम खतरा होना। अपनी बीती या पर बीती कहना=अपने या दूसरे पर घटित बात कहना। उ०—अपनी बीती कहूँ कि पर बीती, यह वही मन हुई।—सौर कु०, पृ० ३३। अपनी मुट्ठी में करना=अपने पंजे या बस में करना। उ०—उसके मन को अपनी मुट्ठी में कर, मनमानी करा लेना।—रस० क० भू०, पृ० ६। अपनी सी करना=मनमानी करना। उ०—यह अपनी सी करता ही चला जा रहा है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३१८। अपने घर का रास्ता लेना=चलते बनना। अपने घर जाना। चला होना। अपने तक रखना=किसी से न कहना। किसी पर प्रकट न करना। भेद छिपाना। जैसे,—कबीर जोग दवा अपने तक रखते हैं। (शब्द०)। अपने घर से लगना=अपने काम में लगना। उ०—दिन को अपने अपने घर से लोग जाते हैं मगर साढ़े पाँच बजे से फिर किसी इंसान की सूरत न देखने में आएगी।—

सैर कु०, पृ० ३४। **अपनेपन पर आना**=अपने दुस्वभाव के अनुसार कार्य करना। **अपने पाँव पर खडा होना**=स्वावलबी होना। उ०—क्यो न हो पाँव पर खडे अपने। और का पाँव किसलिये पकडे।—चुभते०, पृ० १०। **अपने भावें**=अपने अनुसार। अपनी जान मे। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नही रखी (शब्द०)। **अपने मन की करना**=दूसरो की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना**=अपनी प्रशसा आप करना। **अपने लिये बला बनना**=अपनी विपत्ति का स्वय कारण बनना। जान बूझकर सकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न बनें। जो न सिर पर पडी बला टाले।—चुभते०, पृ० ५५। **अपने रग मे मस्त रहना**=दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनद मे पडे रहना। **अपने सिर बला मोल लेना**=अपने लिये झझट, बाधा या बखेडा खडा करना। स्वय को झगडे मे डालना। **अपने सिर पडना**=अपने पर बीतना। उ०—जौ पहिले अपुने सिर परई। सो का काहु कै धरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। **अपने से बाहर होना**=रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। **अपने हलुए माँडे से काम होना**—अपने मतलब से सरोकार रखना। **अपने हाँथ पाग सँवारना**=अपने हाथो अपना काम पूरा करना। **अपने हिसाब से**=अपने विचार से। अपने विवेक से।

यौ०—**अपने आप**=(१) स्वत। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकल अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने मे। अपने पर।

अपना[2]—सज्ञा पु० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आपलो। तो अपने ही हैं, आपसे छिपाव क्या ?—(शब्द०)। उ०—जब लौ न सुनौ अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामच०, पृ० १७।

अपनाइतⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हू सो नही अब परतीत विचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यौ हरि मे डारि।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयतⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० स० [अपना से नाम०] १ अपने अनुकूल करना। अपने वश मे करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रचि प्रपच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २ अपना बनाना। अगीकार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण मे लेना। उ०—(क) सब विधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।—मानस, ६।११६। (ख) ना हमको कछु सुदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—सज्ञा पुं० [हिं० अपना+पन (प्रत्य०)] १ अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आलोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २ आत्माभिमान। उ०—भूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को दे खो।—चोखे०, पृ० १५।

अपनापा—सज्ञा पुं० [हिं० अपना+पा (प्रत्य०)] अपनापन। अपनत्व।

अपनाम—सज्ञा पु० [सं०] बदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [स० अपनामन्] निंदित। बदनाम [को०]।

अपनायत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना+यत (प्रत्य०)] १ अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। करहिं सबै, सिर मेरे ही गिरि परै अनैसी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३३। (ख) जो लोग अपनायत की रीति सँ कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६६। २ आपसदारी का सबध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—सज्ञा पुं० [हिं० अपना+आव (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाशⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनासⓊ—सज्ञा पु० [हिं० अप+नास] अपना नाश। उ०—हाथ चढौं मैं तेहि के प्रथम करै अपनास।—जायसी ग्र० पृ० १००।

अपनाहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना+आहट (प्रत्य०)] अपनापन निजत्व। उ०—खादी की वह मोटी चादर नही चित्त को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि मे मेल न खाती थी।—आर्द्रा, पृ० ६६।

अपनिⓊ—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तनि किन चहौ। वेद पुरानन मैं जो कहौ।—नद० ग्र०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत[1]—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २ निकाला हुआ। ३ खडित (को०)। ४ जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत[2]—सज्ञा पु० १ धोखा। फरेब। २ बुरा आचरण [को०]।

अपनुक‡Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सखि कहब अपनुक दद, सपनहु जनु हो कुरुरुम सग।—विद्यापति, पृ० ४८३।

अपनुत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—सज्ञा पु० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २ खडन। प्रतिवाद। ३ प्रायश्चित्त (को०)। ४ नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्नवⓊ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपह्नव'।

अपह्नुतिⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नुति'। उ०—मिसु करि और कथन छविधि, होत अपन्हुति भाइ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अपपाठ—सज्ञा पुं० [सं०] अष्ट या गलत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि० [स०] १ जिसे सब लोगो के व्यवहार का सामान, बर्तन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिच्युत। २ हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपपाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोवाला। जिसके पैर विकृत हो [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नगे पैरो वाला [को०]।

अपपूत—वि० [स०] १ जिसके नितंबो की रचना विकृत हो [को०]।
अपप्रजाता—संज्ञा स्त्री० [स०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०]।
अपप्रदान—संज्ञा पु० [स०] १ घूस। रिश्वत। उत्कोच। २ अनुचित रूप से दिया धन [को०]।
अपबरग(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु धारी।—मानस०, १।३१५।
अपबर्ग(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सान स्वर्ग अपबग ऊपर ताहि चित्त लगावन—पलटू०, पृ० ६३।
अपबल(पु)—संज्ञा पु० [हिं० अप+बल] आत्मबल। अपनी शक्ति। उ०—इद्र कहा रिसाइ कीन्हौ गयो अपबल गाहि। आइ तिनहूँ पाँइ पकरे समुझि कै मन माहि।—सूर०, (प० १।४७)।
अपबस(पु)—वि० [हिं० अप+बस] अपने वश मे। स्ववश। उ०—(क) जौ विधना अपबस करि पाऊँ तौ सखि कहयो होइ कछु तेरौ अपनी साध पुराऊँ।—सूर०, १०।१०४७। (ख) अपबस कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।
अपबाहुक—संज्ञा पु० [स०] बाहु सबधी एक वातरोग जिसमे कधे मे वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं। २ सदोष वायु [को०]।
अपभय[1]—संज्ञा पु० [स०] १ भय का नाश। निर्भयता। २ व्यर्थ भय। अकारण भय। ३ डर। भय। उ०—(क) कबहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहौ। विनय करौं अपभय हुते तुम परम हितैहौ। तुलसी (शब्द०)। (ख) अपभय कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।
अपभय[2]—वि० [स०] निर्भय। निडर। जो न डरे।
अपभायो(पु)—वि० [हिं० अप+√भाना=अच्छा लगना] अपने को भाने या अच्छा लगनेवाला। आत्मभावित। अपने भाव का। स्वानुकूल। उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।—चरण० बानी, पृ० ६५।
अपभाषण—संज्ञा पुं०[स०] १ अशिष्ट भाषण। २ अपमानकर कथन। ३ गाली देना। दुर्वचन कहना [को०]।
अपभुक्त—वि० [स० अप+भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार मे लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०]।
अपभ्रश[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ पतन। गिराव। २ बिगाड। विकृति ३ बिगडा हुआ शब्द। ४ प्राकृत बोलियो (भाषा) का विकृत स्वरूप [को०]। ५ प्राकृत भाषा के बाद की भाषा [को०]।
अपभ्रश[2]—वि० [स०] विकृत। बिगडा हुआ।
अपभ्रशित—वि० १ गिरा हुआ। २ बिगडा हुआ।
अपभ्रष्ट—वि०[स०] १ विकृत। बिगडा हुआ। २ गिरा हुआ[को०]।
अपमगल—संज्ञा पुं० [स० अप+मङ्गल] अशुभ अकल्याण। अनिष्ट। उ०—अपमगल जिय जानि सु नेन मुष वही।—पृ० रा० २५।३७५।
अपमर्द—संज्ञा पुं० [स०] धूल। गर्द [को०]।
अपमर्दन—संज्ञा पुं०[स० अप+मर्दन]बुरी तरह रौदना या कुचलना।
अपमर्श—संज्ञा पुं० [स०] १ स्पर्श। २ चरना। ३. अर्षण, [को०]।
अपमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवहेलना। बिडबना। अवज्ञा। २ तिरस्कार। दुतकार। बेइज्जती।
क्रि० प्र०—करना। होना।
अपमानता(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अप+मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया। उ०—अतिअध गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस।—मानस, ७।२०६।
अपमानना(पु)—क्रि० स० [स० अपमान से नाम०] अपमान करना। बिडबना करना। निंदा करना। तिरस्कार करना। उ०—(क) सुनि मुनि वचन लषन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख)हारि जीत नैना नहिं मानत। धाए जात तही को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत।—सूर (शब्द०)।
अपमानित—वि० [स०] १ निंदित। अवमानित। २ बेइज्जत।
अपमानी—वि० [स० अपमानिन्] [वि०स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। उ०—सोचिय शूद्र विप्र अपमानी। - तुलसी (शब्द०)।
अपमान्य—वि० [स०] अपमान के योग्य। निंद्य।
अपमारग(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपमार्ग'। उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहि लगावै।—सूर० १।४२।
अपमारगी(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अपमार्गी'।—उ०—नैना लोनहरामी ये। चोर, ढुढ बटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे।—सूर०, १०।२२८५।
अपमार्ग—संज्ञा पु० [स०] १ कुमार्ग। असन्मार्ग। कुपथ। २ देह मलना या धोना। अग का परिमार्जन [को०]।
अपमार्गी—वि० [स० अपमार्गिन्] १ कुमार्गी। कुपथी। अन्यथाचारी। २ दुष्ट। नीच। पापी।
अपमार्जन—संज्ञा पु० [स०] १ शुद्धि। सफाई। संस्कार। सशोधन। २ हजामत। क्षौर (को०)। ३ खड। टुकडा [को०]।
अपमुख—[स०] [स्त्री० अपमुखी] जिसका मुँह टेढा हो। विकृतानन टेढमुहाँ [को०]।
अपमृत्यु—संज्ञा पु० [स०] १ कुमृत्यु कुसमय मृत्यु जैसे, बिजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना। २ बहुत बडा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०]।
अपमृषित—वि० [स०] १ समझ मे न आने योग्य। अस्पष्ट। २ असह्य [को०]।
अपयश—संज्ञा पु० [स० अपयस्] १ अपकीर्ति। बदनामी। बुराई। उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढकर मानता हूँ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १११। २ कलक। लाछन।
अपयशस्क—वि० [स०] अपकीर्तिकारी। अपयशकारी [को०]।
अपयशस्कर—वि० [स०] दे० 'अपयशस्क'।
अपयशी—वि० [स० अप+यश+हिं० ई (प्रत्य०)] कलकित। निंदित [को०]।
अपयसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपयशी'। उ०—सूम सर्वभच्छी दववादी जो कुवादी जड, अपयसी ऐसो भूमि भूपति न सोहिए—रामच० पृ० १२५।
अपयान—संज्ञा पुं० [स०] १ उपेक्षा। उदासीनता। २ पलायन। भागना। हट जाना। निकल जाना [को०]।

अपयोग—संज्ञा पु० [सं०] १ कुयोग। बुरा योग। २. कुसमय। कुवेला। ३ कुशकुन। अमगुन। ४ नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून औषध पदार्थों का योग।

अपरच—अव्य० [सं० अपरञ्च] १ और भी। २ फिर भी। पुनरपि। पुन। ३ दूसरा भी [को०]।

अपरपार—वि० [सं० अपर=दूसरा+हिं० पार=छोर] जिसका पारावार या ओर छोर न हो। असीम। बेहद। अनंत। उ०—खग खोज पाछै नहीं तू तत अपरपार। बिन परचै का जानिऐं सब झूठे अहंकार।—कबीर ग्र०, पृ० २३०।

अपर[1]—वि० [सं०] १ जो पर न हो। पहला। पूर्व का। २. पिछला। जिससे कोई पर न हो ३ अन्य। दूसरा। भिन्न। और। उ०—अपर नाम उडुगण विमल, बसैं भक्त उर व्योम।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४९८। ४ जिससे बढकर या बराबर का अन्य न हो (को०)। ५ जो दूसरा या पराया न हो। स्वपक्षीय। अपना। उ०—को गिनै अपर पर को गिनै। लोह छोह छकके बरन।—पृ० रा०, ३३।२६। ६ अश्रेष्ठ। जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो। निकृष्ट। साधारण (को०)। ७ पश्चिमी। पश्चिम दिशा का (को०)। ८ दूर का। दूरवर्ती। जो पास न हो (को०)।

अपर[2]—संज्ञा पु० १ हाथी का पिछला भाग, जघा, पैर आदि। २ रिपु। शत्रु। ३ न्यायशास्त्र मे सामान्य के दो भेदो मे से एक। ४. भविष्यत् काल या उस काल मे किया जानेवाला कार्य [को०]।

अपरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का पिछला भाग।

अपरकाल—संज्ञा पु० [सं०] बाद का समय [को०]।

अपरक्त—वि० [सं०] १ बदले हुए रग का। रगहीन। ३ रक्तहीन। पीला। ४ असतुष्ट [को०]।

अपरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपरक्त या असतुष्ट होना।

अपरचै—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपरिचय'। उ०—देखा देखी पाकडै जाइ अपरचै छूटि। बिरला कोई ठाहरै सतगुर सामी मूठि।—कबीर ग्र०, पृ० ५१।

अपरछन[1]—वि० [सं० अप्रच्छन्न वा अपरिछन्न] आवरणरहित। जो ढका न हो। बिना वस्त्र का।

अपरछन[2]—[सं० अप्रच्छन्न] आवृत। छिपा। गुप्त। उ०—बाजी चिहर रचाइ के रहा अपरछन होइ। मायापट परदा दिया ताते लखइ न कोइ।—दादू (शब्द०)।

अपरज[1]—वि० [सं०] बाद मे उत्पन्न [को०]।

अपरज[2]—संज्ञा पुं० विध्वसक अग्नि। प्रलयाग्नि [को०]।

अपरतंत्र—वि० [सं० अपरतन्त्र] जो परतत्र या परवश न हो। स्वतत्र। स्वाधीन। आजाद।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त। उदासीन। (को०)।

अपरता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] परायापन।

अपरता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+परता=परायापन] भेदभाव की शून्यता। अपनापन।

अपरता[3]†—वि० [हिं० अप=आप+रत=लगा हुआ] स्वार्थी। मतलबी।

अपरता[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूरी। २ पृथकता। ३ निकटता। समीपता। ४ न्याय मे २४ गुणो में एक [को०]।

अपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरागभाव। विच्छेद। २ असतोष [को०]।

अपरती—संज्ञा स्त्री० [हिं० अप=आप+सं० रति=लीनता] स्वार्थ। बेईमानी।

अपरतीत—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्रतीति] विश्वास का अभाव। अविश्वास। उ०—क्यों अपरतीत के बने बादन। चाँद परतीत को घुमड घेरें।—चोखे०, पृ० १६७।

अपरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ दूसरे समय मे। और कभी। २ अन्यत्र [को०]।

अपरत्व—संज्ञा पु० [सं०] १ पिछलापन। अर्वाचीनता। २ परायापन। बेगानगी। ३ न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणो मे से एक। यह दो प्रकार का है—एक कालभेद से दूसरा देशभेद से। दे० 'अपरता'।

अपरदक्षिण—संज्ञा पु० [सं०] दक्षिण और पश्चिम का कोना। नैर्ऋत्य कोण।

अपरदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम।

अपरना—संज्ञा स्त्री० [सं० अपर्णा] पार्वती का नाम। वि० दे० 'अपर्णा'। उ०—पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना। उमा नाम तब भयउ अपरना।—तुलसी (शब्द०)।

अपरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] वृहत्सहिता के अनुसार एक देश का नाम।

अपरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्ण पक्ष। २ प्रतिवादी। मुद्दालेह। फरीकसानी।

अपरपर—वि० [सं०] एक एव अन्य अनेक। विभिन्न [को०]।

अपरपुरुष—संज्ञा पु० [सं०] वशज। वशगत लोग [को०]।

अपरप्रणेय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०]।

अपरबल†—वि० [<सं० प्रबल] बलवान्। बली। उद्धत। बेकहा। उ०—चली अपरबल बात अपाता। उडे जात कहि बनत न बाता।—नंद० ग्र०, पृ० ३०७।

अपरभाव—संज्ञा पु० [सं०] १ अन्य या भिन्न होने का भाव। अतर। भेद। २ अविरल [को०]।

अपरमित—वि० [सं० अपरिमित] इयत्ताशून्य। असीम। उ०—ऐसी ऐसी बातो से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १९८।

अपररात्र—संज्ञा पु० [सं०] रात्रि का अतिम भाग या प्रहर [को०]।

अपरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक। परलोक। स्वर्ग।

अपरव—संज्ञा पु० [सं०] १ (सगीत सबधी) झगडा या विवाद। २. कुख्याति [को०]।

अपरवक्त्र—संज्ञा पु० [सं०] वह वृत्त जिसके विषम चरण मे दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हो तथा समचरण मे एक नगण, दो जगण और रगण हो। यथा—सब तज रसना गहो हरी। दुख सब भागहि पापहूँ जरी। हरि विमुख मग ना करी। जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०)।

अपरवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०]।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का। परतत्र।

अपरस[1]—वि०[स० अ=नहीं+स्पर्श, हिं० परस] १ जो छुआ न जाय। जिसे किसी ने छुआ न हो। उ०—ऊधो तुम हौ अति बड़भागी। अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी।—सूर०, १०।३९५८। २ न छूने योग्य। अस्पृश्य। उ०—अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसें, वासना न धोवै तौ लौ तन के पखारे कहाँ।—घनानद, पृ० १९८।

अपरस[2]—सज्ञा पु० एक चर्मरोग जो हथेली और तलवे मे होता है। इसमे खुजलाहट होती है और चमडा सूख सूखकर गिरा करता है।

अपरस[3]Ⓟ—सज्ञा पुं० [स० आत्म+रस] आत्मानद। आत्मरस। उ०—पाछे श्री गुसाई जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै सख चक्र धरत हते।—दो सौ बावन०, पृ० ९।

अपरस[4]Ⓟ—सज्ञा पु० [स० अप=बुरा+रस] बुरा रस। विकृत रस। उ०—जनम जनम तें अपावन असाधु महा, अपरस पूति सो न छाडै अजौं छूति कौं।—घनानद, पृ० १९८।

अपरस्पर—वि० [स०] १ निरतर। लगातार। २ अन्योन्य। ३ जो आपस का न हो। जिसमे आपसदारी न हो [को०]।

अपराग—सज्ञा पु० [स० अपराङ्ग] गुणीभूत व्यग्य के ८ भेदो मे से एक जिसमे व्यग्यार्थ अन्य शब्द के अधीन हो।

अपरात—सज्ञा पुं० [सं० अपरान्त] पश्चिम का देश।

अपरातक—सज्ञा पु० [सं० अपरान्तक] वृहत्सहिता के अनुसार पश्चिम दिशा मे एक पर्वत।

अपरातिका—सज्ञा स्त्री० [स० अपरान्तिका] वैतालीय छद का एक भेद जिसमे वैतालीय छद के सम चरणो के समान चारो पद हो और चौथी और पाँचवी मात्रा मिलकर एक दीर्घाक्षर हो जाय। जैसे—शभु को भजहु रे सबै घरी। तज सबै काम रे हिये धरी (शब्द०)।

अपरा[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्यात्म वा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या। लौकिक विद्या। पदार्थ विद्या। २ पश्चिम दिशा। ३ एकादशी जो ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष मे होती है।

अपरा[2]—वि० स्त्री० दूसरी।

अपराग—सज्ञा पुं० [सं०] १ असतोष। २ शत्रुता। ३ अरुचि [को०]।

अपराग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दक्षिण एव गार्हपत्य अग्नि। २ चिता की अग्नि [को०]।

अपराजित[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० अपराजिता] जो पराजित न हुआ हो। अविजित।

अपराजित[2]—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शिव। ३ कृष्ण का एक पुत्र (को०)। ४ एक विषैला कीट (को०)। ५ एकादश रुद्रो मे से एक।

अपराजिता[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विष्णुक्राता लता। कोयल लता। २ दुर्गा। उ०—सरन सरन है सदा सुख साजिता। द्रवहि द्रवहि दास को अपराजिता।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २५४। ३ अयोध्या का एक नाम। ४ चौदह अक्षर का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे दो नगण, एक रगण, एक सगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। न न र स ल ग—।। ।।। ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽ जैसे—न विरस लग राम की जन को कथा। सुनत बढन प्रेम सिधु शशी यथा। रघुकुल करि पावनो सुख साजिता। जिन किय यित कीरती अपराजिता (शब्द०)। ५ एक प्रकार का धूप।

अपराजिता[2]—वि० जिसमे पर को जीता न जा सके। अनिर्णीत।

अपराजेय—वि० [स०] १ जो जीता न जा सके। उ०—रह गया राम रावण का अपराजेय युद्ध।—अपरा, पृ० ३७।

अपराजीⓅ—वि० [स० अपराद्ध, प्रा० अवरज्झ+ई (प्रत्य०)] दे० 'अपराधी'। उ०—मानुस जन्म चुकेहु अपराभी। यह तन केर बहुत है साभी।—कबीर बी०।

अपराद्ध[1]—वि०[स०] १ जिसने अपराध किया हो। दोषी। अपराधी। २ चूकनेवाला। ३ अतिक्रात। अतिक्रमित [को०]।

अपराद्ध[2]—सज्ञा पुं० १ दोष। अपराध [को०]।

अपराद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गलती। दोष। अपराध। २. पाप [को०]।

अपराध—सज्ञा पु० [स०] १ दोष। पाप। २ कसूर। जुर्म। ३. भूल। चूक।

अपराधभजन—सज्ञा पु०[स० अपराधभञ्जन] अपराध का नाश करनेवाले शिव [को०]।

अपराधविज्ञान—सज्ञा पुं०[स०] अपराध के कारण और उसे निवारण करनेवाला विज्ञान [को०]।

अपराधी—वि० पुं० [स० अपराधिन्] [स्त्री० अपराधिनी] दोषी। पापी। मुलाजिम।

अपराधीसाक्षी—सज्ञा पुं० [स० अपराधीसाक्षिन्] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियो के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरापतⓅ—सज्ञा पुं०[स० अप्राप्त] भाग्य। किस्मत। विधि। उ०—काहू सौ नाही मिटै, अपरापत कै अक। ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयक।—स० सप्तक, पृ० ७१०।

अपरापतिⓅ—सज्ञा स्त्री० [स० अप्राप्ति] प्राप्ति का अभाव। अलाभ। अभाग्य। उ०—अपरापति के दिनन मे खरच होत अविचार। घर आवतु है पाहुनो, बिन जन लाभ लगार।—स० सप्तक, पृ० ३३१।

अपरापरण—वि० [स०] मतानहीन। निर्मतति [को०]।

अपरामृष्ट—वि०[स०]१. अछूता। अस्पष्ट। जिसको किसी ने न छुआ हो। २ अव्यवहृत। कोरा। जिसे व्यवहार मे न लाया गया हो।

अपरार्क[1]—वि० [स०] द्वितीय सूर्य जैसा। सूर्य तुल्य तेजस्वी [को०]।

अपरार्क[2]—सज्ञा पुं० [स०] याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध प्राचीनतम टीकाकार जिनकी अपरार्कचद्रिका टीका विख्यात है।

अपरार्ध—सज्ञा पुं० [स०] द्वितीय आधा भाग। उत्तरार्ध [को०]।

अपरावर्ती—वि० [स० अपरावर्तिन्] [वि० स्त्री० अपरावर्तिनी] १ जो बिना काम पूरा किए न लौटे। काम करके पलटनेवाला। २ जो पीछे न हटे। जो किसी काम से मुँह न मोडे। मुस्तैद।

अपरावृत—वि० [सं०] अनिवर्तित। न लौटा हुआ। अपनी जगह न आया हुआ। उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलय विज्ञान ही एकमात्र आलबन होता है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३६६।

अपराह्ण—सज्ञा पु० [सं०] १ दिन का पिछला भाग। दो पहर के पीछे का काल। तीसरा पहर।

अपराह्णतन—वि० [सं०] १ दिन के पिछले भाग से सबद्ध। २ दिन के अतिम काल मे उत्पन्न [को०]।

अपराह्णेतन—वि० [सं०] दे० 'अपराह्णतन'।

अपराह्न—सज्ञा पुं० दे० 'अपराह्ण'।

अपरिकलित—वि० [सं०] अज्ञात। अदृष्ट। अश्रुत। बे देखा सुना।

अपरिक्रम—वि० [सं०] १ चल फिर पाने मे असमर्थ। २ परिश्रम करने के अयोग्य [को०]।

अपरिक्लिन्न—वि० [सं०] सूखा। शुष्क।

अपरिगण्य—वि० [सं०] अनगिनत। बेशुमार [को०]।

अपरिगत—वि० [सं०] १ अज्ञात। अपरिचित। न पहिचाना हुआ। २ अप्राप्त।

अपरिगृहीत—वि० [सं०] अस्वीकृत। त्यक्त। छोडा हुआ।

अपरिगृहीतागमन—सज्ञा पु० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार। कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के लिये और कुमार या रँडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है।

अपरिग्रह—सज्ञा पु० [सं०] १ अस्वीकार। दान का न लेना। दान-त्याग। २ देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग। विराग। ३ योगशास्त्र मे पाँचवाँ यम। सगत्याग। ४ जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग।

अपरिग्राह्य—वि० [सं०] जो ग्रहण करने या अगीकार करने योग्य न हो [को०]।

अपरिचय—सज्ञा पुं० [सं० वि० अपरिचित] परिचय का अभाव। जान-पहिचान का न होना।

अपरिचयिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव। [को०]।

अपरिचयी—वि० [सं० अपरिचयिन्] १ जिसका परिचय न हो। २. जो मिलनसार न हो। असामाजिक [को०]।

अपरिचित—वि० [सं०] १ जिसे परिचय न हो। जो जानता न हो। अनजान। जैसे—वह इस बात से बिलकुल अपरिचित है (शब्द०)। २ जो जानाबूझा न हो। अज्ञात। जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का सहसा विश्वास न करना चाहिए (शब्द०)।

अपरिच्छद—वि० [सं०] १ आच्छादनरहित। आवरणशून्य। जो ढका न हो। नगा। खुला हुआ। २ दरिद्र।

अपरिच्छन्न—वि० [सं०] १ जो ढका न हो। खुला। नगा। २ आवरणरहित। ३ सर्वथा व्यापक।

अपरिच्छादित—वि० [सं०] दे० 'अपरिच्छन्न' [को०]।

अपरिच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका विभाग न हो सके। अभेद्य। २. जो अलग न हुआ हो। मिला हुआ। ३. इयत्तारहित। असीम। सीमारहित।

अपरिच्छेद—सज्ञा पु० [सं०] १ विभाग, विभाजन या बिलगाव का अभाव। २ न्याय या निर्णय का अभाव। ३. अविच्छिन्नता। नैरतर्य [को०]।

अपरिछिन्न—वि० [हिं०] दे० 'अपरिच्छिन्न'। उ०—जौ कहहु कि हम यों करि पाए। अपरिछिन्न नित निगमन गाए।—नद० ग्र०, पृ० २७१।

अपरिणत—वि० [सं०] १ अपरिपक्व। जो पका न हो। कच्चा। २ जिसमे विकार या परिवर्तन न हुआ हो। ज्यो का त्यों। विकारशून्य।

अपरिणय—सज्ञा पु० [सं०] विवाहशून्य अवस्था। अपरिणीत स्थिति। कौमार्य। ब्रह्मचर्य।

अपरिणयन—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपरिणय' [को०]।

अपरिणाम—सज्ञा पु० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव। अपरिवर्तनशीलता [को०]।

अपरिणामदर्शी—वि० [सं० अपरिणामदर्शिन्] अदूरदर्शी [को०]।

अपरिणामी—वि० [सं० अपरिणामिन्] [वि० स्त्री० अपरिणामिनी] १ जिसकी दशा मे परिवर्तन न हो। परिणामरहित। विकार-शून्य। २ जिसका कुछ परिणाम न हो। निष्फल।

अपरिणीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपरिणीता] अविवाहित। क्वाँरा।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १ जो परिपक्व न हो। कच्चा। २ जो भली भाँति पका न हो। अधकच्चा। अधकचरा। अप्रौढ। अधूरा। अव्युत्पन्न। ४ जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वद्व अर्थात सर्दी, गर्मी भूख, प्यास आदि सहन न की हो।

यौ०—अपरिपक्व कषाय। अपरिपक्वधी। अपरिपक्वबुद्धि।

अपरिपणितसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अपरिपणित सन्धि] एक प्रकार की कपट सधि जो केवल धोखे मे रखने के लिये की जाय।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार इसका ढग यह है कि किसी अभिमानी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यो ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे। इस प्रकार उसे सधि के विश्वास मे रखकर उसकी कमजोरियो का पता लगाता रहे और मौका पडते ही उसपर आक्रमण कर दे। इस कपटसधि का उपयोग दो सामत राजाओं को लडाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है।

अपरिबाधा—सज्ञा स्त्री० [सं० अ+परिबाधा] कपट, बाधा या आयास का निवारण।

अपरिमा—वि० [सं० अ+परिमा=परिमाण] जिसका परिमाण न हो। अमित। उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि।—इत्य मृ, पृ० ६७।

अपरिमाण—वि० [सं०] १ परिमाणरहित। बेअदाज। अकूत।

अपरिमित—वि० [सं०] १ इयत्ताशून्य। असीम। बेहद। उ०—मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित।—कामायनी, पृ० २७७। २. असख्य। अनत। अगणित। उ०—अपने जान मैं बहुत करी। कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छमौ सूर तें सब बिगरी।—सूर०, १।११५।

अपरिमेय—वि० [स०] १ जिसका परिमाण न पाया जाय। जिसकी नाप न हो सके। बेअंदाज। अकूत। असख्य। अनगिनत।

अपरिम्लान[1]—वि० [स०] न मुरझानेवाला। जिसका अपक्षय न हो [को०]।

अपरिम्लान[2]—सज्ञा पु० [स०] महासहा नाम का एक वृक्ष [को०]।

अपरिवर्त्तनीय—वि० [सं०] १ जो परिवर्तन के योग्य न हो। जो बदल न सके। २ जिसमे फेरफार न हो सके। ३ जो बदले मे न दिया जा सके। ४ सदा एकरस रहने वाला। नित्य।

अपरिवर्त्य—वि० [स०] दे० 'अपरिवर्त्तनीय'। उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व मे अपरिवर्त्य है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २२४।

अपरिवर्तित—वि० [स०] जिसमे कोई हेरफेर या तबदीली न हुई हो। अविकल। ज्यो का त्यो।

अपरिवाद्य—वि० [सं०] जो निंदायोग्य न हो। अनिंद्य [को०]।

अपरिवृत—वि० [स०] जो ढका या घिरा न हो। अपरिच्छन्न।

अपरिशेष[1]—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो। पूर्ण। अनत। अविनाशी। नित्य।

अपरिशेष[2]—सज्ञा पु० सीमा का अभाव [को०]।

अपरिष्कार—सज्ञा पु० [स०] १ सस्कार का अभाव। असशोधन। सफाई या काट छाँट का न होना। २ मैलापन। ३ भद्दापन।

अपरिष्कृत—वि० [स०] १ जिसका परिष्कार न हुआ हो। जो साफ न किया गया हो। जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। २ मैलाकुचैला। ३ भद्दा। बेडौल। ४ असस्कृत।

अपरिसर—वि० [स०] १ समीप का नही। दूर का। २ अविस्तीर्ण। अप्रशस्त [को०]।

अपरिसर[2]—सज्ञा पु० विस्तार का अभाव [को०]।

अपरिसीम—वि० [सं० अ+परिसीम] १ असीम। २ विस्तीर्ण। उ०—भगवान बादरायण हर हर करती गगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८।

अपरिस्कद—वि० [स० अपरिस्कन्द] गतिशून्य। जो कूद फाँद न सके [को०]।

अपरिहरणीय—वि० [स०] १ अनिवार्य। अवश्यभावी। २ अपरित्याज्य। जिसका परिहार न हो सके। ३ अनादर के अयोग्य [को०]।

अपरिहार—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपरिहारित, अपरिहार्य] १ अवर्जन। अनिवारण। २ दूर करने के उपाय का अभाव।

अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित। अनिवारित। जो दूर न किया गया हो।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १ जिसका परिहार न हो सके। अवर्जनीय। अवाच्य। अनिवार्य। जो किसी उपाय से दूर न किया जा सके। २. अत्याज्य। न छोडने योग्य। ३ अनादर के अयोग्य। आदरणीय। ४ न छीनने योग्य।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० अ+परीक्षणीय] १. जाँच या परीक्षा के अयोग्य।

अपरीक्षित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपरीक्षिता] जिसकी परीक्षा न हुई हो। जो परखा न गया हो। जिसकी जाँच न हुई हो। जिसके रूप, गुण, परिमाण और वर्ग आदि का अनुसधान न किया गया हो।

अपरुष—सज्ञा पु० [स०] [वि० स्त्री० अपरुषा] क्रोधविहीन। रोषरहित। कठोरताशून्य [को०]।

अपरूप[1]—वि० [स०] १ कुरूप। बदशकल। भद्दा। बेडौल। २ अद्भुत। अपूर्व। उ०—पर कैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे।—झरना, पृ० ६३।

अपरूप[2]—सज्ञा पुं० बेडौलपन। भद्दापन। कुरूपता [को०]।

अपरेटस—सज्ञा पु० [अ० एपरेटस] वह यत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो। यत्र। औजार। परीक्षायत्र।

अपरेशन—सज्ञा पु० [अं० ऑपरेशन] शल्यचिकित्सा। चीरफाड। शल्यक्रिया।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १ जो परोक्ष मे न हो। प्रत्यक्ष। जो देखा सुना जा सके। इद्रिय गोचर। २ जो दूर हो [को०]।

अपरोक्षानुभूति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रत्यक्ष ज्ञान। २ वेदात मे निरूपित एक प्रकरण [को०]।

अपरोध—सज्ञा पु० [स०] रुकावट। निषेध। वर्जन। मनाही [को०]।

अपरोप—सज्ञा पु० [स०] १ निष्कासन। २ राज्यच्युति [को०]।

अपर्ण—वि० [स०] पत्तो से रहित [को०]।

अपर्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पार्वती का एक नाम।

विशेष—पुराणो के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप मे प्राप्त करने के लिये तपस्या मे पत्तो तक को खाना छोड दिया था। अत पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ। २ दुर्गा।

अपर्तु—वि० [स०] १ बेमौसमी। असामयिक। २ जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो। निवृत्तरजस्का [को०]।

अपर्वल—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—माया बहुत अपर्वल अलख तुम्हार बनाव।—जग० श०, पृ० ६६।

अपर्यंत—वि० [स० अपर्यन्त] असीम। अपरिमित [को०]।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १ अपूर्ण। २ अयथेष्ट। जो काफी न हो। ३ सीमारहित। असीम (को०)। ४ असमर्थ (को०)।

यौ०—अपर्याप्तकर्म = जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो।

अपर्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपूर्णता। कमी। त्रुटि। २ असामर्थ्य। अयोग्यता। अक्षमता।

अपर्याय[1]—वि० [सं०] क्रमविहीन। अव्यवस्थित [को०]।

अपर्याय[2]—सज्ञा पुं० [सं०] क्रमहीनता [को०]।

अपर्व[1]—सज्ञा पु० [सं० अपर्वन्] वह दिन जो पर्वकाल न हो। अविशिष्ट दिन अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन। २. सधिराहित्य। जोड का अभाव [को०]।

अपर्व[2]—वि० पर्व या सधि से रहित [को०]।

अपर्वक—वि० [सं०] जिसमे जोड न हो। सधिविहीन [को०]।

अपर्वदंड—सज्ञा पुं० [सं० अपर्वदण्ड] ईख की एक किस्म [को०]।

अपर्वा—वि० [सं०] दे० 'अपर्व' [को०]।

अपल[1]—वि० [सं०] पलशून्य । मासहीन ।

अपल[2]—वि० [हिं० अपलक] निमेषहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन=बिना पलक गिराए या अनिमिष दृष्टि । उ०—अपल नयन सुबास यौवन नव, देख रही तरुणी कोमलतन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल[3]—संज्ञा पु० १. पिंड । २. अर्गला या कुंडी [को०] ।

अपलक[1]—वि० [सं० अ+हिं० पलक] जिसकी पलकें न गिरें । निर्निमेष । उ०—द्विधारहित अपलक नयनों की भ्रुवभरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी, पृ० १२ ।

अपलक[2]—क्रि० वि० बिना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक इन नयनों से निरख करता उस छवि को ।—आंसू, पृ० १८ ।

अपलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्षण । बुरा चिह्न । दोष । २ दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष हो ।

अपलट(पु)—वि० [सं० अ+हिं० पलट] १ न मुड़नेवाला । न बदलनेवाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविहड़ रंग विहूंडै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।—दादू०, पृ० ४६४ ।

अपलाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपलापित] १ मिथ्यावाद । बकवाद । बात का बतक्कड़ । बाग्जाल । २ बात बनाना । प्रसंग टालने के लिये इधर उधर की बातें कहना । ३. सत्य को छिपाना (को०) । ४ प्यार । आदर (को०) । ५ कंधे और पसलियों का मध्य भाग [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापिन्] अपलाप करनेवाला [को०] ।

अपलाभ—संज्ञा पु० [सं० अप+लाभ] अनुचित ढंग से किया गया लाभ । बेजा मुनाफा ।

अपलापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिशय प्यास । २ प्रबल तृष्णा या पिपासा [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापिन्] १ तृषित । प्यासा । २. जिसे प्यास या लालसा न हो [को०] ।

अपलापुक—वि० [सं०] दे० 'अपलापी' [को०] ।

अपलोक[1](पु)—संज्ञा पु० [सं० अप+श्लोक=कीर्ति] १. अपयश । अपकीर्ति । बदनामी । उ०—हाय अपलोक ओक पंथहि गह्यो मैं विरहागिनि दहों मैं सोक सिंधुनि बह्योई मैं ।—बिहारी र०, भा० २, पृ० ३२ । २. अपवाद । मिथ्या दोष । उ०—(क) अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहहि निठुर कठोर उर मोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भव अनेक निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक विभूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपलोक[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना+लोक] अपना लोक । उ०—भयो लग्न पूरन जब देव गए अपलोक । चंद्र ब्रह्म राजा भए, रैवत बंसी अलोक ।—ह० रा० सो०, पृ० २२८ ।

अपलक(पु)[1]—वि० [सं० अ+पल=पलक] बिना रोक । निर्विघ्न । उ०—नारंगी बाबा भरे, आया दिए अपल्ल ।—बाँकी ग्र०, भा० २, पृ० २ ।

अपवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्वचन । अपशब्द । गाली । २. निंदा [को०] ।

अपवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम वन । उपवन । बाग ।

अपवन[2]—वि० वायुरहित या वायु से सुरक्षित [को०] ।

अपवरक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री० अपवरका] १. अंतःपुर । अवरोध । २. गवाक्ष । झरोखा [को०] ।

अपवरग(पु)—संज्ञा पु० [हिं] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अरथ धरम अपवरग दियण जग च्यार पदारथ ।—रा० रू०, पृ० ३ ।

अपवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । २ पहनावा । पोशाक [को०] ।

अपवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १ मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाना । उ०-चार स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।—मानस, ५-८ । २. त्याग । ३ दान । ४. क्षेपण । (बाण) छोड़नी (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद (को०) । ६. क्रियाप्राप्ति या समाप्ति [को०] ।

अपवर्गी(पु)—वि० [सं० अपवर्ग] अपवर्ग संबंधी । मोक्ष संबंधी ।

अपवर्जन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपवर्जित] १. त्याग । छोड़ना । २. दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (ऋण आदि) देकर चुकाना । चुकता करना । ५ वादा पूरा करना । वचन पालन [को०] ।

अपवर्जित—संज्ञा पु० [सं०] १. छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । रक्त । २. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—संज्ञा पु० [सं०] १. हटाना । पृथक् करना । २ सामान्य विभाजक [को०] ।

अपवर्तक—संज्ञा पु० [सं०] १. सामान्य नाप । २. हार जिसमें बराबर मोती और सोने की गुरियां पिरोई हों [को०] ।

अपवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपवर्तित] १ परिवर्तन । पलटाव । उलटफेर । २ स्थानांतरण (को०) । ३. विभाजक । ४ वह भाग जो विभक्त न हो [को०] ।

अपवर्तित—वि० [सं०] १. बदला हुआ । पलटाया हुआ । लौटाया हुआ । २ स्थानांतरित (को०) । ३. निक्षेप । विभक्त [को०] ।

अपवर्त्य—वि० [सं०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजन से जो पूर्णतः विभक्त हो जाय [को०] ।

अपवश(पु)—वि० [हिं० अप=अपना+सं० वश] अपने अधीन । अपने वश का । परवश का उलटा । उ०—भली करी उन स्याम बँधाए । मूर गए हरि रूप चुरावन उन अपवश करि पाए ।—सूर (शब्द०) ।

अपवहित—वि० [सं० अपवाहित] दे० 'अपवाहित' ।

अपवाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+वाट, प्रा० वाड] पीछे का द्वार या रास्ता । उ०—दे प्रदक्षणा चढे अपवाड़ । रस सर्प तजि बकी नाड़ि ।—प्राण०, पृ० २३६ ।

अपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । प्रतिवाद । खंडन । उ०—करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थी अपवाद कैकयी कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २ निंदा । अपकीर्ति । बुराई । प्रवाद । उ०—कैकयी चिल्ला उठी सोन्माद, सब करें मेरा महा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७६ । ३ दोष । पाप । कलंक । उ०—राजपद के अपवाद सद । आज तुम्हारा विचार होगा ।—चंद्र०, पृ० १३१ । ४. बाधक शास्त्रविशेष । उत्सर्ग का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगता है पर यह नियम 'लाना' क्रिया मे नही लगता। ५ अनुमति। सम्मति। राय। विचार। ६ आदेश। आज्ञा। ७ वेदात शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु मे सर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८ विश्वास (को०)। ९ प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा सबध (को०)। ११ मृग को धोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियो द्वारा प्रयुक्त वाद्य [को०]।

अपवादक—वि० [स०] १ निंदक। अपवाद करनेवाला। २ विरोधी। बाधक।

अपवादित—वि० [स०] १ निंदित। २ जिसका विरोध किया गया हो।

अपवादी—वि० [स० अपवादिन्] [वि० स्त्री० अपवादिनी] १. निंदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २ बाधक। विरोधी।

अपवारक—सज्ञा पु० [स०] १ पर्दा। आड या ओट का साधन। २ व्यवधान। घिरा स्थान (को०)।

अपवारण—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवधान। रोक। बीच मे पड़कर आघात से बचानेवाली वस्तु। २ हटाने या दूर करने का कार्य। ३ आच्छादन। ओट। छिपाव। ४ अतर्द्धान।

अपवारित—वि० [सं०] १ अतर्हित। तिरोहित। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३ ढका हुआ। छिपा हुआ।

अपवाह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपवाहन' [को०]।

अपवाहक[1]—वि० [स०] स्थानातरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान मे ले जानेवाला।

अपवाहक[2]—सज्ञा पु० एक यत्र जो भारी चीजो को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। गृध्र यत्र।

अपवाहन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपवाहित, अपवाह्य] १ स्थानातरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। २. भिन्न मे घटाना। बाकी (को०)। ३ एक छद (को०)।

अपवाहित—वि० [सं०] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानातरित।

अपवाहुक—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिसमे बाहु की नसें मारी जाती है और बाहु बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुजस्तभ रोग।

अपविद्ध—वि० [स०] १ निर्बाध। निर्विघ्न। अबाधित। [को०]।

अपवित्र—वि० [स०] जो पवित्र न हो। अशुद्ध। नापाक। दूषित। मैला। मलिन।

अपवित्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापाकी।

अपविद्ध—वि० [स०] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। छोडा हुआ। २ बेधा हुआ। विद्ध। ३ निकृष्ट। निम्न (को०)।

अपविद्ध पुत्र—सज्ञा पु० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रो मे वह पुत्र जिसको उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो।

अपविद्धलोक—वि० [सं०] जो इस लोक को छोड चुका हो। परलोकगत [को०]।

अपविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ निकृष्ट विद्या। निषिद्ध विद्या। २ अविद्या [को०]।

अपविष—वि० [सं०] निर्विष। विषहीन। जिसमे विष न हो [को०]।

अपविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विषमुक्त। २ निर्विष नामक पौधा [को०]।

अपवीण—वि० [स०] १ वीणारहित। २. निकृष्ट या खराब वीणावाला [को०]।

अपवृक्त—वि० [सं०] १ समाप्त हुआ। २ पूर्ण हुआ [को०]।

अपवृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] छेद। सूराख। रध्र [को०]।

अपवृत्त—सज्ञा स्त्री० [स०] १ व्यतिक्रमित। २ उलटा पलटा। ३ औंधा। ४ क्षोभित। ५ समाप्त हुआ [को०]।

अपवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूषित वृत्ति। २ अत। समाप्ति।

अपवेध—सज्ञा पुं० [स०] रत्न या मोती का त्रुटिपूर्ण छेदन [को०]।

अपवोढा—वि० [स० अपवोढृ] ढोने या हटानेवाला [को०]।

अपव्यय—सज्ञा पु० [सं०] १ अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २ बुरे काम मे खर्च। उ०—राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।—विशाख०, पृ० ४०।

अपव्ययी—वि० [स० अपव्ययिन्] १ अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २ बुरे कामो मे व्यय करनेवाला।

अपव्रत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अविहित व्रत। हीन व्रत।

अपव्रत[2]—वि० [स०] १ विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अधार्मिक। अपवित्र। २ अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३ पतित। विकृत आचरणवाला।

अपशक—वि० [सं० अपशङ्क] भय, शका या हिचक से रहित। निर्भीक। निडर [को०]।

अपशकुन—सज्ञा पु० [सं०] कुसगुन। असगुन।

अपशद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपसद' [को०]।

अपशब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २ असबद्ध प्रलाप। बिना अर्थ का शब्द। ३ गाली। कुवाच्य। ४ पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५ बिगडा हुआ शब्द। सस्कृत भाषा से भिन्न भाषा। ग्राम्य भाषा [को०]।

अपशम—सज्ञा पु० [स०] विराम। अत। समाप्ति [को०]।

अपशु[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ जो पशु न हो। अर्थात् बलिप्रदान के अयोग्य पशु। २ दुष्ट पशु। कुत्सित पशु। ३ गाय और घोडे से भिन्न पशु [को०]।

अपशु[2]—वि० १ पशुविहीन। २ गरीब (को०)।

अपशुक[1]—सज्ञा पुं० [स० अपशुक्] आत्मा [को०]।

अपशुक[2]—वि० शोकविहीन [को०]।

अपशोक[1]—वि० [स०] शोक या विषादविहीन [को०]।

अपशोक[2]—सज्ञा पुं० अशोक का वृक्ष [को०]।

अपश्चिम—वि० [स०] १ जिसके पीछे कोई न हो। अतिम। २. प्रथम। अतिम नही। ३. चरम या पराकाष्ठा [को०]।

अपश्रय--सज्ञा पु० [स०] तकिया [को०] ।

अपश्री--वि० [स०] शोभाविहीन । श्रीरहित [को०] ।

अपश्रुति--सज्ञा स्त्री० [स० अप + श्रुति] एक ही धातु या शब्द मे अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग मे निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति मे निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि मे हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं ।—जैसे—गान, गीत, गेय आदि ।

अपश्वास--सज्ञा पुं० [स०] अपानवायु [को०] ।

अपष्ठ--सज्ञा पुं० [स०] अकुश का अग्रभाग या नोक [को०] ।

अपष्ठु[1]—वि० [स०] १ विपरीत । उलटा । २ प्रतिकूल । वाम [को०] ।

अपष्ठु[2]—क्रि० वि० १ विपरीत रूप मे । २ गलत ढग से । निर्दोषिता पूर्वक [को०] ।

अपष्ठु[3]--सज्ञा पुं० [स०] समय [को०] ।

अपष्ठुर—वि० [स०] विपरीत । उलटा [को०] ।

अपष्ठुल—वि० [स०] दे० 'अपष्ठुर' [को०] ।

अपसचय--सज्ञा पुं० [स० अपसञ्चय] अनियमित रूप से वस्तु का सग्रह या छिपाकर रखना ।

अपस[1]ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपशु' । उ०—ऊकरडी डोका चुगइ अपस डँमायड आँण ।—ढोला०, दू०, ३३६ ।

अपस[2]ⓤ—सज्ञा पु० [स० अपस्मार] १ मृगी रोग । २ राजस्थानी कविता मे मान्य एक प्रकार का दोष जिसमे शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो । उ०—अपस अमूम्यो अरथ सवद पिण विण हित साजै ।—रघु० रू०, पृ० १४ ।

अपसगुनⓤ—सज्ञा पु० [स० अपशकुन] असगुन । बुरा सगुन । उ०—अर्जुन दुखित बहुत तब भए । इहाँ अपसगुन होत नित नए । सूर० १।२८६ ।

अपसद-सज्ञा पु० [स०] वह पुत्र जो अनुलोम विवाह द्वारा द्विजो से उत्पन्न हो । ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री०, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सतान ।

अपसमारⓤ—सज्ञा पुं० [स० अपस्मार] तैंतीस व्यभिचारी या सचारी भावो मे से एक । उ०—अपसमार सो कवि उर धरई । —भिखारी ग्र०, भा०१, पृ० ७२ ।

अपसनाⓤ—क्रि० अ० [स० अपसरण = खिसकना] १ खिसकना । सरकना । भागना । उ०—राते कवँल करहिं अलि भवाँ । धूमहिं माति चहहिं अपसवाँ ।—जायसी ग्र०, पृ० ४२ । २ चल देना । चपत होना । उ०—(क) जीव काढि लै तुम अपसई । (ख) लै अपसवा जलधर जोगी ।—जायसी (शब्द०) ।

अपसवनाⓤ†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना' ।

अपसरⓤ—वि० [हिं० अप = अपना + सर (प्रत्य०) ।]आप ही आप । मनमाना । अपने मन का । उ०—लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अग सम्हारे । बारबार सरक मदिरा की अपसर रहत उघारे ।—सूर (शब्द०) ।

अपसर[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ अपसरण । पीछे हटना । २ भागना । ३ दूरी (को०) । ४. उचित कारण । सगत तर्क [को०] ।

अपसर[3]ⓤ—वि० [फा० अपसर] मुखिया । प्रधान । उ०—अपसर गज दलगजन गाऊ । छडि मकुनाइ देहिं तेहि ठाऊ ।—चित्रा०, पृ० १८८ ।

अपसरण—सज्ञा पु० [सं०] १ भाग जाना । खिसक जाना । निकल जाना । २ निर्गम । निकास [को०] ।

अपसर्जक—वि० [स०] अपसर्जन करनेवाला [को०] ।

अपसर्जन--सज्ञा पु० [स०] १ विसर्जन । त्याग । २ दान । ३. मोक्ष [को०] ।

अपसर्प—सज्ञा पु० [स०] गुप्तचर । जासूस । खुफिया । भेदिया । —अनेकार्थ० ।

अपसर्पक—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपसर्प' [को०] ।

अपसर्पण—सज्ञा पु० [स०] वि० १ पीछे सरकना । पीछे हटना । २ जासूसी करना [को०] ।

अपसर्पित--वि० [सं०] पीछे हटा हुआ । पीछे खिसका हुआ । पीछे सरका हुआ ।

अपसवनाⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना' ।

अपसव्य—वि० [सं०] १ सव्य का उलटा । दाहिना । दक्षिण । २ उलटा । विरुद्ध । ३ जनेऊ दाहिने कधे पर रखे हुए ।

यौ०--अपसव्य ग्रहण = जब राहु सूर्य वा चद्र के दाहिने होकर चलता है । अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर से लगना है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं । अपसव्य ग्रहयुद्ध = बृहत्सहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदो मे से एक । अपसव्यनीय = तितउीय ।

क्रि० प्र०—होना = बाएँ कांधे से जनेऊ और अँगोछा दाहिने कांधे पर रखना वा बदलना ।—करना = किसी के किनारे चारो ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पडे । दक्षिणावर्त परिक्रमा करना ।

अपसाधारण—वि० [स० अप + साधारण] साधारण से भिन्न (अच्छे या बुरे भाव मे) ।—यदि जयती एक साधारण स्त्री थी तो मैं भी एक अप साधारण पुरुष था ।—सन्यासी पृ० ३६८ ।

अपसार[1]—सज्ञा पु० [स० अप = जल + सार] १ अवुकण । पानी का छीटा । उ०—लेत अवनि रवि अमु कहँ, देत अमिय अपसार । तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीस अधार ।—स० सप्तक, पृ० ३६ । २ पानी की भाप ।

अपसार[2]—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अपसरण' [को०] ।

अपसारक—वि० [सं०] दूर करनेवाला । हटानेवाला ।

अपसारण—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अपसारणा] निकाल बाहर करना । हटा देना । दूरी करण । निवारण [को०] ।

अपसारित—वि० [सं०] निष्कासित । निकाला हुआ । दूरीकृत । उ०—बाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यो वरना । —गीतिका, पृ० १०५ ।

अपसिद्धात—सज्ञा पुं० [स० अपसिद्धान्त] १ अयुक्त सिद्धात । वह विचार जो सिद्धात के विरुद्ध हो । २ न्याय मे एक प्रकार का विग्रह स्थान । जहाँ किसी सिद्धात को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह निग्रह स्थान होता है । ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धात ।

अपसूकनⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशकुन' । उ०—महा अपसूकन होज्यो ए भूवाल ।—वी० रासो, पृ० ५६ ।

अपसृत—वि० [स०] १ युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा। २ हटाया गया (को०)। ३ नीचे फेंका हुआ या च्युत (को०)।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिष्क्रिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

अपसृति—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अपसरण' (को०)।

अपसोच†—संज्ञा पुं० [स० अप+शोच] बुरी चिंता। दुश्चिंता। उ०—सुचिता मर गया तो सहुआइन रोई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ।—नई०, पृ० ८०।

अपसोस[1]ⓤ—संज्ञा पुं० [फा० अफसोस] चिंता। सोच। दुःख। उ०—(क) तातें अब मरियत अपसोसनि। मथुरा हूँ ते गए सखी री। अब हरि कारे कोसनि।—सूर (शब्द०)। (ख) काहू कौं अपसोस मरति हौं नैन तुम्हारे नाहीं।—सूर०, १०।२२३५।

अपसोसना ⓤ—क्रि० अ० [हिं० अपसोस से नाम०] सोच करना। चिंता करना। अफसोस करना। उ०—कहा कहूँ सुंदर घन तोसो। राधा कान्ह एक सँग बिलसत मन ही मन अपसोसो।—सूर (शब्द०)।

अपसौन ⓤ—संज्ञा पुं० [स० अपशकुन] अमंगल। बुरा संगुन।

अपसौना ⓤ†—क्रि० अ० दे० 'अपसवना'।

अपस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए के अलावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा। ढाँचा। २ विष्ठा। मल। ३ योनि। ४ गुदा (को०)।

अपस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने के नीचे का भाग (को०)।

अपस्खल—संज्ञा पुं० [स०] कूदना। फाँदना (को०)।

अपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक ओर स्थित कोश जिसमें प्राणवायु रहता है (को०)।

अपस्तंभ—संज्ञा पुं० [स० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तंब' (को०)।

अपस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+स्तुति] दोषवर्णन। निंदा।

अपस्नात—वि० [स०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ।

अपस्नान—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अपस्नात] १, मृतकस्नान। वह स्नान जो प्राणी के कुटुंबी उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते हैं। २ किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल में नहाना (को०)।

अपस्पर्श—वि० [स०] संज्ञाहीन। चेतनाशून्य (को०)।

अपस्मार—संज्ञा पुं० [स०] एक रोगविशेष। मृगी।

विशेष—इसमें हृदय काँपने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। रोगी काँपकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ता है। वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी गई है। यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज। यह रोग नैमित्तिक है। वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है।

पर्या०—अपविकृति। लालाघ। मूतविकिया। मृगी रोग। २. अपस्मृति। भूलचूकपन। स्मृतिभ्रंश (को०)।

अपस्मारी—वि० [स० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो। उ०—नेत्र टेढ़े बाँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं।—माधव०, पृ० १३१।

अपस्मृत—वि० [स०] भूलचूक। खतानहवास (को०)।

अपस्मृति[1]—वि० [सं०] १ भूलचूक। भूल जानेवाला। २. विभ्रमित। घबड़ाया हुआ (को०)।

अपरमृति—संज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मार[1]' (को०)।

अपस्वर—संज्ञा पुं० [स०] कटु स्वर या ध्वनि (को०)।

अपस्वारथ ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० अप+सं० स्वार्थ] स्वार्थ। अपना मतलब। उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के। और इनहिं पटतर क्यों दीजै जे हैं बस परमारथ के।—सूर०, १०।२२८३। (ख) अपस्वारथ सो बहु विधि लीन्हा। परमारथ काहू नहिं चीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ५८१।

अपस्वारथी—वि० [हिं०] दे० 'अपस्वार्थी'। उ०—नैना लुब्धे रूप कौं अपनै सुख माई। अपराधी अपस्वारथी मोको बिसराई।—सूर०, १०।२२५३।

अपस्वार्थी—वि० [हिं० अप=अपना+सं० स्वार्थी] स्वार्थ साधनेवाला। मतलबी। काम निकालनेवाला। खुदगरज।

अपह—वि० [स०] नाश करनेवाला। विनाशक। उ०—मनोज, वैरि वंदित, अजादि देव सेवित। विशुद्ध बोध विग्रह, समस्त दूषणापह।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द समासांत पद के अंत में प्रायः आता है। जैसे—क्लेशापह। तमोपह। दूषणापह।

अपहड ⓤ†—वि० [सं० अ+प्रहृत या सं० अपहृत] दे० 'अप्रतिहत'। उ०—बड दाता पाता पड़ा, अपहड पूरै आस।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ४८।

अपहृत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ। मारा हुआ। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ।

अपहृतपाप्मा—वि० [सं०] सब पापों से विमुक्त। जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों। पापशून्य। विधूतपाप।

अपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहृत, अपहर्ता] १ छीनना। ले लेना। हर लेना। उ०—इसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो।—विश्राम० पृ० ८३। २ चोरी। लूट। ३ छिपाव। संगोपन। ४ महसूल वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसूल से बचाना (को०)।

अपहरणीय—वि० [सं०] १ न छीनने योग्य। हर लेने योग्य। २ चुराने योग्य। लूटने योग्य। ३ छिपाने योग्य। संगोपन करने योग्य।

अपहरना ⓤ—क्रि० स० [स० अपहरण से नाम०] १ छीनना। ले लेना। २ लूटना। चुराना। उ०—जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरियाई बिमोह मम करई।—तुलसी (शब्द०)। ३ कम करना। घटाना। क्षय करना। नाश करना। उ०—जरदानप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।—तुलसी (शब्द०)।

अपहर्ता—सज्ञा पु० [सं० अपहर्तृ] १ छीननेवाला। हर लेनेवाला। ले लेनेवाला। २ चोर। लूटनेवाला। ३ छिपानेवाला।

अपहसित—सज्ञा पु० [सं०] बेमतलब की हँसी। निरर्थक हँसी। २ हास का एक भेद या प्रकार (को०)।

अपहस्त—सज्ञा पु० [स०] १ गर्दनिया देकर बाहर निकालना। गर्दन पकड़कर बाहर करना। गलहस्त। गलहस्त देकर निकाला हुआ व्यक्ति। २ फेंकना। ले जाना। ३ चोरी करना। लूटना [को०]।

अपहस्तित—वि० [स०] १ गलहस्त देकर निष्कासित। २ परित्यक्त। फेंका हुआ [को०]।

अपहान—सज्ञा पु० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

अपहानि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'अपहान'। २ गायब होना। ३ कम होना [को०]।

अपहार—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अपहारक, अपहारी, अपहारित, अपहार्य] १ चोरी। लूट। २ छिपाव। सगोपन। ३ ले जाना (को०)। ४ दूसरे की सपत्ति खर्च करना। पराया माल उड़ाना (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)। ६ प्राप्त करना। लाना [को०] प्राप्ति [को०]।

अपहारक[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० अपहारिका] छीननेवाला। बलात् हरनेवाला।

अपहारक[2]—सज्ञा पुं० डाकू। चोर। लुटेरा।

अपहारित—वि० [स०] १ छीना हुआ। अपहृत। २ लूटा हुआ। चोरी द्वारा प्राप्त। ३ छिपाया हुआ। सगोपित।

अपहारी[1]—वि० [स० अपहारिन्] [वि० स्त्री० अपहारिणी] १ हरण करनेवाला। २ नाश करनेवाला।

अपहारी[2]—सज्ञा पु० चोर। लुटेरा। डाकू।

अपहार्य—वि० [स०] छीनने योग्य। चोरी करने योग्य।

अपहास—सज्ञा पु० [स०] १. उपहास। उ०—अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमद।—बाँकीदास ग्र०, भा० १ पृ० १६। २ अकारण हँसी।

अपहृत—वि० [स०] छीना हुआ। चुराया हुआ। लूटा हुआ। उ०—हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध, दस्यु मुझमे चाहते हैं मुग्ध सदा निर्बाध।—कामायनी, पृ० ८४।

यौ०—अपहृतज्ञान = सुधबुध हीन। बेखबर।

अपहृतश्री—कातिहीन। छविहीन। उ०—अपहृतश्री सुख स्नेह का सदन।—तुलसी०, पृ० ३८।

अपहेना—सज्ञा स्त्री० [स०] तिरस्कार। फटकार। झिड़की।

अपह्नव—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपह्नुत] १ छिपाव। दुराव। २ मिस। बहाना। टालमटूल। हीला। बातचीत से असली बात को छिपाना। ३ प्रेम। प्यार (को०)। ४ तोषण [को०]।

अपह्नुत—वि० [स०] छिपा हुआ। उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ मे इसके विश्रुत, जो बाधव के अनुकार हैं मजु अपह्नुत।—प्रेमाजलि, पृ० ८३।

अपह्नुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुराव। छिपाव। २ बहाना। टालमटूल। हीला हवाला। ३ एक काव्यालकार जिसमे उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। जैसे,—चुरवा होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद है—शब्दापह्नुति और अर्थापह्नुति इसके अतिरिक्त हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रातापह्नुति, छेकापह्नुति, व्यग्यापह्नुति भी इसके भेद है।

अपह्नुवान—वि० [स०] १ छिपाता हुआ। छिपानेवाला। २. नटनेवाला। इनकार करनेवाला।

अपह्नोता—वि० [स० अपह्नोतृ] १ अस्वीकार करनेवाला। २ सगोप्ता। छिपानेवाला [को०]।

अपाक्त—वि० [अपाङ्क्त] भोजनकाल मे साथ पक्ति मे बैठाने के अयोग्य। पक्ति या जाति से बहिष्कृत। जातिच्युत [को०]।

अपाक्तेय—वि० [सं० अपाङ्क्तेय] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपाक्त्य—वि० [सं० अपाङ्क्त्य] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपाग[1]—सज्ञा पु० [स० अपाङ्ग] आँख का कोना। आँख की कोर। कटाक्ष। उ०—(क) नेत्रो को अपाग से शृगारित किया।—वै० न०, पृ० ४४२। (ख) और फिर अरुण अपागो से देखा कुछ हँस पडी।—झरना, पृ० २५।

यौ० अपांग दर्शन = तिरछी चितवन। अपाग दृष्टि = कनखियो से देखना। अपागधारा = कटाक्षगति। कटाक्षप्रवाह। उ०—(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपागधारा। आज भी न जाने क्यो भूलने मे असमर्थ हूँ।—इद्र०, पृ० ४१। कामदेव (१) सप्रदायसूचक तिलक। (२) अत। समाप्ति। (३) अपामार्ग।

अपाग[2]—वि० अगहीन। अगभग। पगु।

अपागक—सज्ञा पु०, वि० [स० अपाङ्गक] दे० 'अपाग' [को०]।

अपानाथ—सज्ञा पुं० [स०] १ सागर। समुद्र। २ वरुण [को०]।

अपानिधि—सज्ञा पु० [स० अपाम्निधि] १ समुद्र। २ विष्णु [को०]।

अपापति—सज्ञा पु० [स० अपाम्पति] दे० अपानाथ' [को०]।

अपापित्त—सज्ञा पु० [सं० अपाम्पित्त] १ अग्नि। २ चित्रक वृक्ष [को०]।

अपावत्स—सज्ञा पु० [स०] एक बडा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पाँच अश उत्तर विक्षेप मे दिखाई पडता है।

अपाशुला—वि० स्त्री० [सं०] पतिव्रता।

अपा[1]ⓟ—सज्ञा स्त्री० [हिं० आपा] आत्मभाव। अहकार। गर्व। घमड। उ०—आधो छोडि ऊरध को जावे। अपा मेटि कै प्रेम बढावे।—कबीर (शब्द०)। दे० 'आपा'।

अपा[2]ⓟ—सर्व [हिं०] दे० 'अपना'।

यौ०—अपापर = अपना पराया। उ०—अपापर नाहीं चिन्हीला।—दक्खिनी०, पृ० ३४।

अपाइⓟ—सज्ञा स्त्री० [स० अपाय] दे० 'अपाय'।

अपाउⓟ—सज्ञा पु०[सं० अपाय, प्रा० अवाय] अनरीति। अन्यायाचार। उपद्रव। उ०—खेलत मा अनुज बालक नित जोगवत अनट अगाउ। जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अपाक[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ अजीर्ण। अपच। २ कच्चापन।

अपाक[2]—वि० [सं०] अपक्व। अनपका [को०]।

अपाक[3] ⓤ—वि० [सं० अ+फा० पाक] अपवित्र। नापाक।

अपाकज—वि० [सं०] १ जो पका या पकाया न हो। २. जो प्रकृत या मूल रूप मे हो। प्राकृतिक।

अपाकरण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपाकृत] १ पृथक्करण। अलग करना। २ हटाना। दूर करना। निराकरण। निरसन। ३ चुकता करना। अदा या बेबाक करना।

अपाकर्म—संज्ञा पु० [सं० अपाकर्मन्] भुगतान। अदायगी [को०]।

अपाकशाक—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

अपाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपाकरण' [को०]।

अपाक्ष—वि० [सं०] १ आखो के सामने। प्रत्यक्ष। उपस्थित। २. दूषित नेत्रवाला। ३ नेत्रहीन [को०]।

अपाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या पश्चिम [को०]।

अपाचीन—वि० [सं०] १ पिछवाडे। पीछे की ओर। २. जो दिखाई न दे। ३ दक्षिणी। ४ पश्चिमी। विरुद्ध। विपरीत [को०]।

अपाच्य—वि० [सं०] १ जो पक न सके। २ जिसका पाचन न हो सके। ३. दक्षिणी या पश्चिमी [को०]।

अपाटव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुता का अभाव। अकुशलता। अनाडीपन। २ अचचलता। सुस्ती। मदता। ३. कुरूपता। बदसूरती। ४ रोग। बीमारी। ५ मद्य। शराब।

अपाटव[2]—वि० १ अपटु। अनाडी। २ अचचल। सुस्त। ३ कुरूप। बदसूरत। ४ रोगी। बीमार।

अपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अ+पाठ] अपढ। मूर्ख। उ०—पडित पूत अपाठ अमत ह्वै जग मे आदर। इय गति होय हठील मोल के मर्म बेआदर।—राम० धर्म०, पृ० ११५।

अपाठ्य—वि० [सं०] जो पढा न जा सके। जो पढने के योग्य न हो।

अपाढ†—वि० [सं० अपार या अपराह्य] मुश्किल। कठिन। अपार। उ०—उसकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर मे रहना अपाढ कर दे।—गोदान, पृ० २३८।

अपाण ⓤ‡—संज्ञा पु० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, अप्पाण] गर्व। घमड। उ०—विदेही तणेदिवाण, ईम चाप धरे आण। तोडवा अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण।—रघु० रू०, पृ० ७६।

अपाणि—वि० [सं०] पाणिरहित। हस्तविहीन। बिना हाथ का।

अपाणिनीय—वि० [सं०] १ पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार असाधु प्रयोग या उसमे अनुलिखित। २ पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करनेवाला [को०]।

अपात ⓤ—वि० [सं० अ+पात] जो च्युत न हो। अच्युत। उ०—सूखमना सुर की सरिता अब ओघहि दीन दयाल हरे। ता तट साखी अपात है ब्रह्म सुचेतन मैं दल सुद्ध सरै।—दीन० ग्र०, पृ० ७४।

अपात्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेकार या अनुपयुक्त बर्तन। २ अयोग्य व्यक्ति। ३ दान, भोज आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०]।

अपात्र[2]—वि० [सं०] १ अयोग्य। कुपात्र। उ०—नियम पालती एक मात्र तू, सब अपात्र है और पात्र तू।—साकेत, पृ० ३१४। २ मूर्ख। ३. श्राद्धादि निमत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण)।

अपात्रकृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना देनेवाला कार्य [को०]।

अपात्रदायी—वि० [सं० अपात्रदायिन्] [वि० स्त्री० अपात्रदायिनी] कुपात्र को दान देनेवाला।

अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य वा खोटे व्यक्तियो का समर्थक [को०]।

अपात्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है, जैसे—झूठ बोलना, निंदित का दान लेना व्यापार करना, शूद्रो का सपर्क करना आदि।

अपाद—वि० [सं०] पादरहित। बिना। पैरोवाला। पगु [को०]।

अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०]।

अपादान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना। अलगाव। विभाग। २. व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विश्लेषण वा अलगाव सूचित हो। इसका चिह्न 'से' है। जैसे—वह घर से आता है। वृक्ष से फल गिरता है।

अपादान कारक—संज्ञा पुं० [सं० अपादान+कारक] व्याकरण के छह कारकों मे से पाँचवाँ कारक।

अपान[1]—संज्ञा पु० [सं०] १. दस वा पाँच प्राणो मे से एक।

विशेष—निम्नलिखित तीनो वायुओ मे से कोई किसी को और कोई किसी को अपान कहते हैं—१ वह वायु जो नासिका द्वारा बाहर से भीतर की ओर खीची जाती है। २ गुदास्थ वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है। ३ वह वायु जो तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है।

२ वायु जो गुदा से निकले। अधोवायु। गुदस्थ वायु। ३ गुदा।

अपान[3]—वि० १ सब दुखो को दूर करनेवाला। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अपान[3] ⓤ—संज्ञा पु० [प्रा० अप्पाण हिं० अपना] १ आत्मभाव। आत्मतत्व। आत्मज्ञान। उ०—(क) तुलसी भेटो की घँसनि जड जनता सनमान। उपजत हिय अपमान भा, खोवन मूढ अपान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४५। (ख) ऋषिराज राजा आज जनक समान को। गाँठि बिनु गुन की कठिन जड चेतन की, छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१५। २ आपा। आत्मगौरव। भ्रम। उ०—काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३८। ३ मुग्ध। होश हवास। उ०—(क) भए मगन सब देखनहारे। जनक समान अपान बिसारे।—मानस, १।३२५। (ख) बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान। भरत राम की मिलन लखि, बिसरा सबहि अपान।—मानस, पृ० २८५। ४ अहं। अभिमान।

अपान[4] ⓤ—सर्व० [हिं० अपना] निज का। अपना। उ०—पहिचान को केहि जान, सबहि अपान मुदि मोरी भई।—मानस, पृ० ११३२१।

अपान[४] ⓤ—वि० [सं० अ+पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय। उ०—माधौ जू मोतें और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—संज्ञा पु० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्वसनक्रिया। साँस लेना। २ मल-मूत्र का निकलना या वहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीरस्थ अपान नामक वायु। २. गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपाना[१]—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क) साहब लेई चलो देस अपाना।—धरम०, पृ० २८। (ख) लोग सब गेह के, प्रवीन हैं अपानी घाई देह जुवताई नयो नयो नेह जोरिहै।—दीन ग्र०, पृ० १४०।

अपानृत—वि० [सं०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—सग नसैं जिहि भाँति ज्यो उपजै पाप अपाप। तिनसो लिप्त न होहिं ते ज्यों उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप[२]—वि० [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—साकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चिचडा। चिचडी। ऊँगा। ऊँगी। अझाझारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [सं० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप। अपाप [को०]।

अपामार्जन—संज्ञा पु० [सं०] १ शुद्धि। सफाई। २ (व्याधि या दोष का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपायी] १ विश्लेष। अलगाव। २ अपगमन। पीछे हटना। ३ नाश। उ०—सब अपाय भय खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१६। ४ ⓤ अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय सभार कोसल राय। अकनि जाके कठिन करतब अमित अनय अपाय।—तुलसी [को०]। ५ खतरा। विघ्न [को०]। ६ हानि। क्षति (को०)। ७ शब्दांत। शब्द की समाप्ति। ८ गायब होना। लुप्त होना [को०]।

अपाय[२] ⓤ—वि० [सं० अ=नहीं+पाद प्रा० पाय=पैर] १ बिना पैर का। लँगडा। अपाहिज। २ निरुपाय। असमर्थ। उ०—राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए जैसे तम जारिबे को चित्र को तरनि।—तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १ नष्ट होनेवाला। नश्वर। अस्थिर। अनित्य। २ अलग होनेवाला। ३ गायब या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार[१]—वि० [सं०] १ जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम। अनंत। बेहद। उ०—एक दिन सहसा सिंधु अपार। लगा टकराने नगतल क्षुब्ध।—कामायनी, पृ० ५२। २, असख्य। अधिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३, तल्लीन।

अपार[२]—संज्ञा पु० [सं०] १ सांख्य मे वह तुष्टि जो धनोपार्जन के परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २. समुद्र। सागर। [को०]। ३ नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [सं०] असमर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [सं० अ+पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो। जिसके पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, तांबा, सोना, लकडी, ईंट, पत्थर आदि प्रकाश को रोक लेते हैं। इनमे होकर प्रकाश नही निकल सकता अत इन्हे अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें प्रकाश पार न जा सके।

अपादर्शी—वि० [सं० अ+पारदर्शिन्] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [सं०] १ दूरस्थ। २ निकटस्थ [को०]।

अपार्थ[१]—वि० [सं०] १ अर्थहीन। निरर्थक। २ निष्प्रयोजन। व्यर्थ। ३ नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ[२]—संज्ञा पु० १ कविता मे वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष। २ दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के प्रयोग से होता है जो पूर्वापर असबद्ध हो।

अपार्थकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे मे झूठा बयान, दलील या तर्क उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अभौतिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से सबद्ध अथवा उत्पन्न न हो [को०]।

अपालक—संज्ञा पुं० [सं० अपालङ्क] आरम्बध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [सं०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—संज्ञा पुं० [सं० अपाय=नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उपद्रव।

अपावन—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध। मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अपावृति] १ उघारना। खोलना। २ ढाकना। छिपाना। ३ आवृत करना [को०]।

अपावर्त्तन—संज्ञा पु० [सं०] १ पलटाव। वापसी। २ भागना। पीछे हटना। ३ लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १ जो ढका या बद न हो। २ जो ढका, बद या आवृत हो। ३ स्वतत्र। अनियत्रित [को०]।

अपावृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लौटना (घोडे का)। २ (युद्ध मे) बगली काटना [को०]।

अपावृत्त[२]—वि० [सं०] १ पछाडा हुआ। भागा या भगाया हुआ। हराया हुआ। २ तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय[१]—वि० [सं०] बेसहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलब। असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिरहाना। बिस्तर का वह भाग जहाँ सिर को आश्रय दिया जाय। २ चँदोवा या शामियाना। ३ आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १ एकातसेवी। क्षेत्रसन्यस्त। २ जिसने ससार के सब कामो से छुटकारा पा लिया हो। विरक्त। त्यागी। ३ अविवसित [को०]। ४ आवद्ध [को०]। ५ अवलवित [को०]।

अपासग—सज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तरकश। तूणीर [को०]।

अपासन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासित, अपास्त] १ क्षेपण। फेंकना। २ छोड़ना। त्यागना। ३. मारना। वध करना [को०]।

अपासरण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रत्यान। निर्गमन। अपसरण [को०]।

अपासु—वि० [सं०] प्राणहीन। मृत [को०]।

अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित। निर्गमित। [को०]।

अपाहज Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज'। उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजो की सहायता करने मे अभिरुचि रखना था। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०८।

अपाहिज—वि० [स० अपभञ्ज, प्रा० अपहज] १ अग भग। खज। लूला लँगडा। २ काम करने के अयोग्य। जो काम न कर सके। ३ आलसी।

अपिंडी—वि० [स० अपिण्डिन्] पिंडरहित। बिना शरीर का। अशरीरी।

अपि[1]—अव्य [स०] १ भी। ही। २ निश्चय। ठीक। उ०—रामचद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान। ज्ञानवत अपि सोइ नर, पसु बिनु पूँछ, बिखान।—तुलसी ग्र०, पृ० ११४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, सबध आदि अर्थों मे भी मिलता है, जैसे, अपिकक्ष, अपिकक्ष्य, अपिकर्ण आदि। सभावना, प्रश्न, गर्हा, शका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ मे भी इसका प्रयोग विहित है।

अपिगीर्ण—वि० [स०] १ स्तुत। प्रशसित। २ कथित। वर्णित [को०]।

अपिच—अव्य० [स०] १ और भी। पुनश्च। २ बल्कि।

अपिच्छिल—वि० [स०] १ निर्मल। पकहीन। स्वच्छ। २. गभीर। गहरा [को०]।

अपिज[1]—वि० [स०] पुनर्जन्मा। फिर से उत्पन्न [को०]।

अपिज[2]—सज्ञा पु० [स०] ज्येष्ठ मास [को०]।

अपितु—अव्य० [स०] १ किंतु। २ बल्कि। ३ और [को०]। उ०—विविध भाँति को सबद बर बिघट न लट परमान। कारन अविरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान।—स० पप्तक, पृ० २६।

अपितृक—वि० [स०] १ पितृविहीन। २ अपैतृक।

अपित्र्य—वि० [स०] अपैतृक [को०]।

अपित्व—सज्ञा पुं० [स०] विभाग। अश। हिस्सा [को०]।

अपित्वी—वि० [स० अपित्विन्] हिस्सेदार। अश या भाग रखनेवाला [को०]।

अपिधान—सज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। ढक्कन। पिहान। २. ढकना। आच्छादन करना [को०]। ३. आच्छादन वस्त्र [को०]।

यौ०—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन। भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं।

अपिनद्ध—वि० [स०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ। जकडा हुआ। ढँका हुआ।

अपिन्नत—वि० [स०] १. अविभक्त धार्मिक कृत्योंवाला। जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हो। २ रक्त द्वारा सबधित। एक रक्त का [को०]।

अपिहित—वि० [स०][वि० स्त्री० अपिहिता] १ आच्छादित। ढँका हुआ। आवृत। २. जो आवृत न हो। खुला हुआ। स्पष्ट [को०]।

अपी[1]†Ⓤ—सर्व० [हिं० आप] स्वय। खुद। उ०—अपी बैठी सुदर परदे के अदर, बुला मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २४६।

अपी[2]Ⓤ—अव्य [हिं० दे० 'अपि'[1]। उ०—धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस, ७।१०१।

अपीच Ⓤ—वि० [स० अपीच्य] सुदर। अच्छा। उ०—(क) विमल बिछाइत गिलम गलीचा। तबत सिंहासन फरस अपीचा। बाँधहु ध्वज थल थानन अपीचो। नृप मारग चदन जल सीचो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फहर गई धौं कवै रग के फुहारन मे, केधौं तरावोर भई अतर अपीच मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१६।

अपीच्य—वि० [स०] १. अति सुदर। अच्छा। खूबसूरत।

यौ०—अपीच्य वेश। अपीच्य दर्शन।

२. गोप्य। छिपा हुआ। अतर्हित।

अपीत[1]—वि० [स०] १. जिसने मद्य न पी हो। २ जिसे पिया न गया हो। ३. जो पीला न हो [को०]।

अपीत[2]—सज्ञा पुं० पीत से पृथक् वर्ण। पीतेतर वर्ण [को०]।

अपीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रवेश। २ विनय। मृत्यु। ३ प्रलय। ४. विनाश [को०]।

अपीव Ⓤ†—वि० [हिं०] दे० 'अपीत'[1]। उ०—माष कमधा मुग्गला या जुद्धा खग आल। अजक अरीधा अमल ज्यू विण कीधा रणताल।—रा० रू० पृ० ७४।

अपीनस—सज्ञा पुं० [स०] १. नासाशोथ। नाक की शुष्कता। सर्दी जुकाम [को०]।

अपील[1] Ⓤ†—वि० [हिं० अपेल] अटल। अडिग। उ०—गुरु धाम कजा, मनी मैल मजा। धनू तोड भजा, सो लीन अपील।—घट०, पृ० ३८५।

अपील[2]—सज्ञा स्त्री० [अ० एपील] १ निवेदन। विचारार्थ प्रार्थना। २ पुनर्विचारार्थ। प्रार्थना। मातहत अदालत के फैसले के विरुद्ध ऊँची अदालत मे फिर विचार करने के लिये अभियोग उपस्थित करना। ३. वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदालत के फैसले को बदलवाने वा रद्द कराने के लिये उससे ऊँची अदालत मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—अपीलअदालत = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो।

अपीलांट—सज्ञा पुं० [अ० एपैलैंट] अपील करनेवाला व्यक्ति।

अपीली—वि० [अ० एपील + हिं० ई (प्रत्य०)] अपीलसबधी।

अपीव(पु)—वि० [स० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—उलटत पवन अलटत वाणी अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी।—गोरख०, पृ० ३२। २ न पीने योग्य। अपेय। उ०—ह्वै है अधिक अपीव जीव, कोउ नीर न छ्वैहैं।—दीन० ग्र०, पृ० २०२।

अपु(पु)—सर्व० [हिं० आप] १ आप। स्वय। २ आपस मे। उ०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु मे भैया भैया।—ब्रज-माधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ—वि० [स०] पुच्छरहित। विना पूँछ का [को०]।

अपुच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] शिशपा वृक्ष। शीशम का पेड [को०]।

अपुट्ठना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपूठना'।

अपुण्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुण्य[2]—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुषित [को०]।

अपुत्र—वि० [स०] जिसके पुत्र न हो। नि सतान। पुत्रहीन। निपूता।

अपुत्रक—वि० [स०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक—सज्ञा पुं० [स०] ऐसी पुत्रहीना कन्या का पिता जो स्वय पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नही बना सकता [को०]।

अपुत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी पुत्रहीना हो [को०]।

अपुत्रीय—वि० [स०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—जौ हरि व्रत निज उर न धरैगो। तौ को अस त्राता जो अपुन करि, कर कुठाँव पकरैगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'।

अपुनपौ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—वाकौ मारि अपुनपौ राखै, सूर व्रजहिं सो जाइ। सूर०, १०।६०।

अपुनरादान—सज्ञा पु० [स०] वह जो पुन ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन—सज्ञा पु० [स०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष। निर्वाण। २ मृत्यु [को०]।

अपुनर्भव—सज्ञा पु० [स०] १ फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष। निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यो होता। पर, वह गत तो है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २ (रोगादि का) फिर न होना।

अपुनीत—वि० [स०] १ जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध। उ०—सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६९। २ दूषित। दोषयुक्त।

अपुव्व(पु)—वि० [स० अपूर्व] अद्भुत। बेजोड। उ०—सुनि सुदरवर वज्जने अई अपुव्व कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६१।११४७।

अपुराण—वि० [स०] १ पुराना नही। आधुनिक। नया [को०]।

अपुरुव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व' उ०—बहुरि कँवर जो पाछे देखा, अपुरुव रूप चित्र एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुरुष[1]—वि० [स०] अमानवीय। अमानुषिक (को०)।

अपुरुष[2]—सज्ञा पु० नपुंसक। हिजडा [को०]।

अपुष्कल—वि० [स०] १ बहुत नही। थोडा। २. तुच्छ। निम्न। क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट—वि० [स०] १ जिसका ठीक ढग से पोषण न हुआ हो। जो हट्टा कट्टा न हो। दुबला पतला। २ दुर्बल। मद। क्षीण। ३ असमर्थ। कमजोर। ४ एक अर्थदोष जिसमे व्यग्य या अर्थ स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न—सज्ञा पु० [स० अपुष्ट+अन्न] १ वह अन्न या खाद्य जो बल-वर्धक न हो।

अपुष्प[1]—वि० [स०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प[2]—सज्ञा पु० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल[1]—वि० [स०] विना पुष्पित हुए फल देनेवाला। विना फूल फल का [को०]।

अपुष्पफल[2]—सज्ञा पुं० १ कटहल। २ गूलर [को०]।

अपुष्पफलद—वि० सज्ञा पु० [स०] दे० 'अपुष्पफल' [को०]।

अपूजक—वि० [स०] पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अधार्मिक [को०]।

अपूजा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अधार्मिकता। २ असम्मान। अनादर।

अपूजित—वि० [स०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य—वि० [स०] पूजा या सम्मान के अयोग्य। उ०—ब्रह्महि शाप दियो तव जानी। होहि अपूज्य कहि आदि भवानी।—कबीर सा० पृ० २२।

अपूठना(पु)—क्रि० स० [स० अ=नहीं+पृष्ठ, पा० पुट्ठ=पीठ अथवा देश०] १ विदारण करना। विध्वस करना। नाश करना। २ उलटना पलटना।—जननी हौं रघुनाथ पठायो। रामचद्र आए की तुमको देन बधाई आयो। रावन हति लै चलौं साथ ही लका धरौं अपूठी। यातै जिय सकुचात नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।—सूर०, ९।८७।

अपूठा[1](पु)—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुट्ठ] [स्त्री० अपूठी] अपरिपक्व। अजानकार। अनभिज्ञ। उ०—तुम तो अपने ही सुख झूठे। निर्गुण छवि हरि विनु को पावै ज्यौं आँगुरी अँगूठे। निकट रहत पुनि दूर बतावत हौ रस माहिं अपूठे।—सूर (शब्द०)।

अपूठा[2](पु)—[स० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। बेखिला। बँधा। उ०—परमारथ पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कबीर (शब्द०)।

अपूठा[3](पु)—क्रि० वि० [स० आ+पृष्ठ, प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ] १ पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—नग अपूठी क्यु बहई।—वी० रासो, पृ० ६०। २ वापस राजि अपूठा वाहुडउ, मालवणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी(पु)—वि० [स० अपृष्ट प्रा० अपुट्ठि] विना पूछे। विना बात के। विना सवाल किए। उ०—जेठी घी कै गलै छुरी है, वहू अपूठी चाली।—सुदर ग्र०, पृ० ८२९।

अपूत[1]—वि० [स०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत[2](पु)—वि० [स० अ=नहीं+पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत[3](पु)—सज्ञा पु० [स० अ=बुरा+पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा लडका। उ०—तोसें सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।—राम च०, पृ० ११४।

अपूता—वि० [हि०] निपूता। पुत्रहीन।

अपूप—सज्ञा पु० [स०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कमोरे मे पका कर यज्ञ मे देवताओ के निमित्त हवन करते थे। २ लिट्टी [को०]। ३ अनरसा [को०]। ४ मालपुआ [को०]। ५ गेहूँ [को०]। ६ शहद का छत्ता [को०]।

अपूप्य[1]—वि० [स०] अपूप सबधी या उनके काम की [को०]।

अपूप्य[2]—सज्ञा पु० आटा। पिसान [को०]।

अपूर[1]—वि० [सं० आपूर, हिं० पूरा, पूरा] पूरा। भरपूर। उ०—(क) लवग सुपारी जायफर, सब फर फरे अपूर। (ख) जनथल भरे अपूर सब, धरनि गगन मिल एक।—जायसी (शब्द०)।

अपूर[2]†—वि० [हिं०] १ दे० 'अपूर्ण'। २ पूररहित। प्रवाहरहित विना बाढ का।

अपूरणी—सज्ञा स्त्री० [स०] शाल्मली या सेमर का वृक्ष [को०]।

अपूरना†—क्रि० स० [स० आपूर्ण+] १ भरना। २ फूँकना। बजाना। उ०—पुना लख जो विष्णु अपूरा। आगे हनुमत करै लँगूरा।—जायसी (शब्द०)।

अपूरव—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व'। उ०—भरित नेह नव नीर नित बरसत सुर अथोर। जयति अपूरव घन कोऊ लखि नाचत मन मोर।—भारतेंदु ग्र०, पृ० ५७७।

अपूरवता—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपूर्वता'।

अपूरवताई†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपूर्वता'। उ०—दई यह कैसी अपूरवताई।—प्रेमघन ग्र०, पृ० २१२।

अपूरा[1]—सज्ञा पु० [स० आ+पूर] [स्त्री० अपूरी] भरा हुआ। फैला हुआ। व्याप्त। उ०—चला कटक अस चढा अपूरी। अगलहि पानी पिछनहि धूरी।—जायसी (शब्द०)।

अपूरा[2]—[स० अ+पूर] जो पूरा न हो।

अपूर्ण—वि० [स०] १ जो पूर्ण न हो। जो भरा न हो। २ अधूरा। असमाप्त। ३ कम। अल्प।

अपूर्णता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधूरापन। उ०—प्राणहीन वह कला नही जिसमे अपूर्णता शोभन।—युगवाणी, पृ० ३०। २ न्यूनता। कमी। उ०—तुम अति अबोध अपनी अपूर्णता को न स्वय तुम समझ सके।—कामायनी पृ० १६३।

अपूर्णभूत—सज्ञा पु० [स०] व्याकरण मे वह क्रिया का भूतकाल जिसमे क्रिया की समाप्ति न पाई जाय। जैसे—वह खाता था।(शब्द०)।

अपूर्व[1]—वि० [स०] १ जो पहिले न रहा हो। उ०—और शुचिता का अपूर्व सुहाग।—साकेत, पृ० १९३। २ अद्भुत। अनोखा। अलौकिक। विचित्र। ३ अनुपम। उत्तम। श्रेष्ठ।

अपूर्व[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा। परब्रह्म। २. मीमासा के अनुसार अदृष्ट फल। ३ पाप पुण्य [को०]।

अपूर्वता—सज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षणता। अनोखापन। श्रेष्ठता।

अपूर्वत्व—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपूर्वता' [को०]।

अपूर्वपति—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अपूर्वरूप—सज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालकार जिससे पूर्वगुण की प्राप्ति का निषेध हो। यह पूर्वरूप का विपरीत अलकार है। जैसे—'क्षय हो हो करहु ससी, बढत जु बारहि बार। त्यों पुनि यौवन प्राप्ति नहि, न कर मान निति नार।' यहाँ पर दिखाया गया है कि जिस प्रकार चद्रमा क्षय के पश्चात् पुन पूर्णता प्राप्त करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नही आता।

अपूर्ववाद—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म सबधी वादविवाद या परिचर्चा [को०]।

अपूर्वविधि—सज्ञा स्त्री० [स०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणो द्वारा न हो सके। जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे। यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा सिद्ध नही होता।

विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे, अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा। (ख) गुणविधि—जिसमे यज्ञ या कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो। (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य मे इद्र की ऋचा का विनियोग करे। (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या पढकर समावर्तन करे।

अपृक्त[1]—वि० [स०] १ बेमेल। बेजोड। बिना मिलावट का। २ बिना लगाव का। असबद्ध। ३ खालिस अकेला।

अपृक्त[2]—सज्ञा पु० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय।

अपेक्षण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपेक्षा' [को०]।

अपेक्षणीय—वि० [स०] अपेक्षा करने योग्य। वाछनीय।

अपेक्षया—क्रि० वि० [स० अपेक्षया] किसी की तुलना मे अपेक्षाकृत।

अपेक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आकाक्षा। इच्छा। अभिलाषा। चाह। जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो। आवश्यकता। जरूरत। जैसे—सन्यासियो को धन की अपेक्षा नही है। ३. आश्रय। भरोसा। आशा। जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी की अपेक्षा नही करते। ४ कार्य कारण का अन्योन्य सबध। ५ निस्बत। तुलना। मुकाबिला। जैसे—बँगला की अपेक्षा हिंदी सरल है। उ०—बात बनाने मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से चतुर होती है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ९३।

विशेष—इस अर्थ मे यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता है और इसके आगे मे लुप्त रहता है।

६ प्रतीक्षा। इतजार।

अपेक्षाकृत—अव्य० [स०] मुकाबले मे। तुलना मे। निस्बतन्।

अपेक्षाबुद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि। कार्य-कारण सबध जानने की प्रतिभा। भेद बुद्धि [को०]।

अपेक्षित—वि० [स०] १ जिसकी अपेक्षा हो। जिसकी आवश्यकता हो। आवश्यक। उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता अपेक्षित होती है।—रस०, पृ० ७८। इच्छित। वाछित। उ०—वास्तव मे कला की दृष्टि दोनो ही प्रकार के कथ्यो मे अपेक्षित है।—रस०, पृ० ५७।

अपेक्षी—वि० [स० अपेक्षिन्] १ आशा लगा रखनेवाला। २ प्रतीक्षा करनेवाला। ३ आकाक्षी।

विशेष—इसका प्रयोग समासात मे मुख्यत प्राप्त होता है, जैसे,—परबलापेक्षी, विधिबलापेक्षी, परमुखापेक्षी आदि।

अपोहन [सं०] दे० 'अपोह' (को०)।

अपोहना–क्रि० स० [सं० अपोहन] दूर करना। हटाना। उ०—(क) जो अपने पहिचानै सोई। आन दूसरा अपोहै कोई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६। (ख) जो अपने को पहिचानै सो दूसरे को अपोहै।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६।

अपोहवाद–सं० पु० [सं०] बौद्धों का वह सिद्धांत या मत जिसके अनुसार संसार के समस्त भाव वासनाओं और मनोविकारों, इच्छाओं या विषयों का विनाश करना है और जिसमें दुःख-निवृत्ति को ही मुक्ति माना जाता है।

अपौरुष–वि० [सं० अपौरुषेय, पा० अपोरिसेय्य, प्रा० अपोरिसेय] जहाँ पैठ या पहुँच न हो सके। दुर्गम। अगम।

अपौरुषेय–वि० [सं० अ+पौरुषेय] जो पुरुषों से संबद्ध न हो। जो पौरुष न हो (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं०] १ पौरुष या पुरुषार्थ के ऊपर की अवस्था या भाव। २ अलौकिक। ३ ईश्वरीय। निपुण (को०)। ४ पवित्र या स्थूल अंग-भाग। विशेष (को०)। ५. नवीन। अभूतपूर्व (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं० अ+पौरुषेय] पुरुष। उत्तम। उ०—ताहि विषाद भयो अपौरुषेय अति कोप।—सबलसिंह (शब्द०)।

अपौरुषेय–वि० [सं० अ+पुरुष, पा० पुरुस, पुरुस, पोरुस, हिं० अ+पोरुस] पुरुषार्थ से हीन। पौरुष से रहित। उ०—डीठयो दै बोलति, हँसि हेरति, अति अपौरुषेय। खोरयो मन न सिमटयो छूटयो सब नयो छटाए।—सूरसागर (शब्द०), पृ० २८७।

अपौरुषेय–वि० [सं०] दे० 'अपौरुषेय' (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं०] पुरुष का नाक। पाद या पाँव का नाक (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं० अपौरुष] जिसमें पौरुष या पौरुष का भाव न हो। बिना पौरुष का। उ०—अरि गन जानि अपौरुषेय, करि दीन्हे बिनु सस्त्र।—पद्म०, पृ० १२०।

अपौरुषेय–सं० पु० [सं०] १ निवारण। हटाना। निवारण। दूर करना। २ रोकने या हटाने के लिये प्रस्तुत किया हुआ कार्य। ३ पुरुष का कर्म या कला का निवारण (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं० अपौरुषेय] दे० 'अपौरुषेय' (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं०] जिसमें पौरुष का पुनर्वेश न आई हो (को०)।

अपौरुषेय–वि० [सं०] १ पुरुषत्वहीन। पुरुषत्वहीन। २ अपुरुषोचित। कायरतापूर्ण। भीरु। ३ मानवीय या मानवकृत नहीं। दैवी। ईश्वरीय (को०)।

अपौरुषेय–सं० पुं० [सं०] १ पौरुष का अभाव। २ दैवीशक्ति (को०)।

अपौरुषेय–वि० सं० पुं० [सं०] दे० 'अपौरुषेय'।

अप्चर–सं० पु० [सं०] जलजंतु (को०)।

अप्छर(ऊ)†–सं० स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर' उ०—ताहि देखि अप्छरा गन मोहन।—प० रासो, पृ० २६।

अप्छरा(ऊ)†–सं० स्त्री० [हिं०] 'अप्सरा'। उ०—बिरस भए मुनि अप्छरा, भुलियत तप व्रत नेम।—हमीर रा०, पृ० २८।

अप्नु–सं० पुं० [सं०] १ शरीर। गात्र। अंग। २ सोम। ३. वशीर पशु। बलि पशु (को०)।

अप्नोर्याम–सं० पुं० [सं०] अग्निष्टोम यज्ञ का एक अंग।

अप्प(ऊ)–सर्व० [आत्म, प्रा० अप्प] अपना। उ०—भयो अंधकार महाघोर ऐन। गई बुद्धि सुज्झै नहीं अप्प नैन।—हमीर रा० पृ० ३७।

अप्पटि(ऊ)†–वि० [हिं०] दे० 'अटपटी'[2]। उ०—पर प्रपंच परदर्प पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निजु नत्ते। अप्पटि पाग नप्पटि बात निप्पटि अवसि करत निज नत्ते।—अकबरी, पृ० ३२६।

अप्पति–सं० पुं० [सं०] १ सागर। समुद्र। २. वरुण (को०)।

अप्पना(ऊ)†–क्रि० स० [सं० अर्पण] अर्पित करना। देना। उ०—(क) केलि कर बाँधि धरि चरण तल अप्पिआ।—कीर्ति०, पृ० ६६। (ख) इसी विधि अप्पिय आयसु देव।—राम० धर्म० पृ० ३४७।

अप्परमाण(ऊ)†–वि० [हिं०] दे० 'अप्रमाण'। उ०—माया अपुराण अप्परमाण किकर जाण जमराण।—रा० रू०, पृ० २१६

अप्पित्त–सं० पुं० [सं०] १ अग्नि। २ एक प्रकार का पौधा (को०)।

अप्पय–सं० पुं० [सं०] १ बहना (नदी आदि का)। २. जल। नीर। ३. जोड़। मिलन। संधि (को०)।

अप्पयन–सं० पुं० [सं०] १ मेल। योग। संयोग। २ मैत्री (को०)।

अप्र पर(ऊ)–वि० [हिं०] दे० 'अपरंपार'। उ०—पग अधिक पुण वदन अप्पर अबुज अवन सार अभिराम।—रघु० रू०, पृ० २४८।

अप्रकंप–वि० [सं० अप्रकम्प] १ कातरहीन। निडर। २ जिसका उत्तर न दिया जा सके। जिसका खंडन न हो सके (को०)।

अप्रकट–वि० [सं०] जो सामने प्रकट या व्यक्त न हो। अव्यक्त।

अप्रकटित–वि० [सं०] दे० 'अप्रकट'। उ०—अप्रत्यानित अप्रकटित कल्याण विश्व का करता है।—प्रेम०, पृ० २६।

अप्रकर–वि० [सं०] अच्छी तरह से कार्य न करने वाला (को०)।

अप्रकरण–संज्ञा पुं० [सं०] जो मुख्य विषय से संबद्ध न हो। आकस्मिक। अप्रासंगिक विषय (को०)।

अप्रकल्पक–वि० [सं०] अनिर्दिष्ट। अनिर्धारित। (को०)।

अप्रकांड[1]–वि० [सं० अप्रकाण्ड] १. शाखाविहीन। २. लघु (को०)।

अप्रकांड[2]–वि० भारी। गुरु (को०)।

अप्रकाश[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रकाश का अभाव। अंधकार। २. गुप्त बात। रहस्य (को०)।

अप्रकाश[2]—वि० १ प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। २ अप्रकट। गुह्य। ३ स्वत प्रकाशित [को०]।

अप्रकाशित—वि० [स०] १ जिसमे उजाला न किया गया हो। अँधेरा। २ जो प्रकट न हुआ हो। गुप्त। छिपा। ३ जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो। जो छापकर प्रचलित न किया गया हो।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो। गोप्य।

अप्रकृत[1]—वि० [सं०] १ अस्वाभाविक। २ बनावटी। कृत्रिम। गढा हुआ। ३ झूठा। ४ गौण। अप्रासगिक [को०]। ५ आकस्मिक [को०]।

अप्रकृत[2]—संज्ञा पुं० १ उपमान। २ पागल व्यक्ति [को०]।

अप्रकृताश्रितश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष नामक शब्दालकार का एक भेद जिसमे प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेष हो। जैसे—तिय तौ ऐसी चँचलता, जीवन सुखद समच्छ। बसति हृदय घनश्याम के बर सारग सुअच्छ।

विशेष—यह दोहा शब्दो को भग अर्थात् अक्षरो को कुछ इधर उधर कर देने से, स्त्री और बिजली दोनो पर घटता है। स्त्रीपक्ष मे अर्थ करने मे सखी नायिका से कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनसुखदायिनी और कमलनयनी घनश्याम के हृदय मे बसती है। बिजली पक्ष लेने से यह अर्थ होता है कि हे, स्त्री! तेरे समान बिजली है जो जीवन अर्थात् जल देनेवाली है, इत्यादि। इन दोनो पक्षो मे दूसरी स्त्री और बिजली दोनो अप्रस्तुत हैं।

अप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव। विकृति। २ सांख्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा। पुरुष [को०]।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १ अस्वस्थ। बीमार। रोगादि या अन्य भय से ग्रस्त [को०]।

अप्रकृष्ट[1]—वि० [स०] क्षुद्र। नीच। बुरा [को०]।

अप्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस [को०]।

अप्रकेत—वि० [स०] जिसे जाना न जा सके। अविज्ञेय। अप्रतर्क्य। उ०—आदि मे तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकेत (अप्रज्ञायमान) था, और सलिल (जल) था।—आर्यो०, पृ० १८३।

अप्रखर—वि० [सं०] १ मृदु। कोमल। २ जो तेज न हो। अतीक्ष्ण [को०]। ३ सुस्त [को०]।

अप्रगल्भ—वि० [स०] १ अप्रौढ। अपरिपक्व। अपरिपुष्ट। २ निरुत्साह। निरुद्यम। ढीला। सुस्त [को०]।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान। घबडाया हुआ [को०]।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियत्रित। बेलगाम [को०]।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो। अप्रचलित।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो। जिसका चलन न हो। अव्यवहृत। अप्रयुक्त।

अप्रचारित—वि० [स० अ + प्रचारित] जिसका प्रचार या प्रसार न किया गया हो।

अप्रचोदित—वि० [स०] अनिर्दिष्ट। अवाछित। अप्रेरित [को०]।

अप्रच्छन्न—वि० [स०] १. जो प्रच्छन्न न हो। खुला हुआ। अनावृत। २ स्पष्ट। प्रकट।

अप्रच्छिन्न—वि० [स०] जो पृथक् न हुआ हो। अविभक्त [को०]।

अप्रछन्न—वि० [हिं०] दे० 'अप्रच्छन्न'। उ०—इम कहत देवि अप्रछन्न हो।—पृ० रा०, ६४।७२।

अप्रज—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रजा] १ सततिहीन। निस्सतान। २. अजन्मा। ३ जनहीन [को०]।

अप्रजै—वि० [हिं०] दे० 'अपराजेय'। उ०—भाण माण भुजै ऊठियो अप्रजै।—रा० रू०, पृ० २७०।

अप्रज्ञ[1]—वि० [स०] मदबुद्धि। बुद्धिहीन मतिहीन। प्रज्ञाशून्य [को०]।

अप्रज्ञ[2]—संज्ञा पु० मूर्ख या पुरुष [को०]।

अप्रतर्क्य—वि० [स०] जिसके विषय मे तर्क वितर्क न हो सके। जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके।

अप्रति—वि० [स०] १. अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। २ जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वद्वी न हो [को०]।

अप्रतिकर—वि० [स०] विश्वसनीय। विश्वासपात्र। विश्वस्त [को०]।

अप्रतिकार[1]—संज्ञा पुं० [स] [वि० अप्रतिकारी] १ उपाय का अभाव। तदबीर का न होना। २ बदले का न होना।

अप्रतिकार[2]—वि० १ जिसका उपाय या तदबीर न हो सके। लाइलाज २ जिसका बदला न दिया जा सके।

अप्रतिकारी—वि० [स० अप्रतिकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १ —उपाय या तदबीर न करनेवाला। २ बदला न लेनेवाला।

बदला न देनेवाला।

अप्रतिगृह्य—वि० [स०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके [को०]।

अप्रतिगृहीत—वि० [स०] जिसका प्रतिग्रह न किया गया हो। जो लिया न गया हो।

अप्रतिग्रहण—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १ दान न लेना। किसी वस्तु का ग्रहण न करना। २ विवाह न करना। कन्यादान का ग्रहण न करना।

अप्रतिग्राह्य—वि० [स०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो। जो लेने योग्य न हो।

अप्रतिघ—वि० [स०] १ अदम्य। अजेय। २ जिसे रोका न जा सके। अनिवार्य। ३ क्रोधविहीन। अक्रुद्ध [को०]।

अप्रतिघात—वि० [स०] १ बिना प्रतिघात का। जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो। बेरोक। २ बेठोकर। बेचोट। धक्के मे बचा हुआ।

अप्रतिद्वद्व—वि० [स० अप्रतिद्वन्द्व] जिसके मुकाबले का कोई न हो। बेजोड [को०]।

अप्रतिपक्ष—वि० [स०] १ जिसका कोई विरोधी या स्पर्धी न हो। विरोधीविहीन। २. बेजोड। अनुपम [को०]।

अप्रतिपण्य—वि० [स०] जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके [को०]।

अप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अप्रतिपन्न] १ प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता। २. कर्तव्यनिश्चय का अभाव। क्या

करना चाहिए, इसका बोध न होना। ३ निश्चय का अभाव। ४ स्फूर्ति का अभाव [को०]। ५ असफलता [को०]। ६. जडता [को०]।

अप्रतिपन्न—वि० [स०] १ कर्तव्यज्ञानशून्य। २. अनिश्चत। अज्ञात। ३ जो सपन्न न हुआ हो। असपन्न [को०]।

अप्रतिबध[1]—सज्ञा पु० [स० अप्रतिबन्ध] [वि० अप्रतिबद्ध] रुकावट का न होना। स्वच्छदता।

अप्रतिबध[2]—वि० १ प्रतिबधरहित। निर्बाध। २ निर्विवाद प्राप्त। बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०]।

अप्रतिबद्ध—वि० [स०] १ बेरोक। स्वतत्र। स्वच्छद। २ मनमाना।

अप्रतिबल—वि० [स०] बल या शक्ति मे जिसके जोड का दूसरा न हो। बेजोड ताकतवाला [को०]।

अप्रतिभ—वि० [स०] १ प्रतिभाशून्य। चेष्टाहीन। उदास अप्रगल्भ। २ स्फूर्तिशून्य। सुस्त। मद। उ०—हँसे सुलतान, और अप्रतिभ होती मैं जकडी हुई थी अपनी ही लाजशृखला मे।—लहर, पृ० ८०। ३ मतिहीन। निर्बुद्धि। ४ लजालू। लजीला।

अप्रतिभट[1]—वि० [स०] वीरता मे जिसका जोड न हो। अप्रतिम। उ०—अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर।—अपरा, पृ० ४५।

अप्रतिभट[2]—सज्ञा पु० [स०] बेजोड वीर या योद्धा [को०]।

अप्रतिभा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिभा का अभाव। २. न्याय मे वह निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खडन न कर सके। ३ दब्बूपन।

अप्रतिम—वि० [स०] जिसके समान कोई दूसरा न हो। असदृश। अद्वितीय। अनुपम। बेजोड। उ०—यह ग्रथरत्न वस्तुत अपने रग ढग का अप्रतिम ठहरता है।—रस क०, पृ० १३।

अप्रतिमान—वि० [स०] अद्वितीय। बेजोड।

अप्रतियोगी—वि० [स० अप्रतियोगिन्] १ जिसका कोई सामना करनेवाला न हो। जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो। २. जिसके समान दूसरा हिस्सा या भाग न हो [को०]।

अप्रतिरथ[1]—वि० [स०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा न हो [को०]।

अप्रतिरथ[2]—सज्ञा पुं० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०]।

अप्रतिरव—वि० [स०] निर्विरोध। निर्विवाद [को०]।

अप्रतिरूप—वि० [स०] १ जिसका कोई प्रतिरूप न हो। अद्वितीय अनुपम। २ जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०]।

अप्रतिरोध—सज्ञा पुं० [स] प्रतिरोधरहित। बेरोक। निर्बाध।

अप्रतिरोध्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके। जिसका प्रतिरोध सभव न हो। उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अधी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा।—त्याग०, पृ० ४८।

अप्रतिवार्य—वि० [स०] अनिवार्य। निश्चित। उ०—अत मे कैवल्य की प्राप्ति अप्रतिवार्य है।—मृग०, प० ४४२।

अप्रतिवीर्य—वि० [स०] अप्रतिम या बेजोड शक्तिवाला [को०]।

अप्रतिशासन—वि० [स०] १ एकतत्र शासन। २ जिसका कोई विरोधी या प्रतिद्वद्वी शासक न हो [को०]।

अप्रतिषिद्ध[1]—वि० [स०] अनिषिद्ध। समत।

अप्रतिषिद्ध[2]—सज्ञा पु० [स०] वास्तु विद्या मे ९ भागों मे विभक्त स्तभपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर दूसरा पडे।

अप्रतिष्ठ[1]—वि० [स०] १ प्रतिष्ठाहीन। बेइज्जत। २ बेसहारा। तिरस्कृत। फेंका हुआ। ३ अस्थिर। ढुलमुल [को०]। ४ अप्रसिद्ध [को०]।

अप्रतिष्ठ[2]—सज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०]।

अप्रतिष्ठा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिष्ठा का उलटा। अनादर। अपमान। २ अयश। अपकीर्ति। ३ अस्थिरता [को०]।

अप्रतिष्ठित—वि० [स०] १ जो प्रतिष्ठित न हो। तिरस्कृत। उ०—लाला ब्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नही है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४२। २ जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०]।

अप्रतिसख्य—वि० [स० अप्रतिसङ्ख्य] जो ध्यान, दृष्टि या गणना म न आया हो [को०]।

अप्रतिसबद्धाभूमि—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रतिसम्बद्धाभूमि] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो।

अप्रतिहत[1]—वि० [स०] १ जो प्रतिहत न हो। जिसका विघात न हुआ हो। अटूट। उ०—आज भी यह विचारपरपरा अप्रतिहत है।—रस क०, पृ० ४५। २. अपराजित। ३ बिना रोकटोक का। ४ सपूर्ण। समग्र। अनुस्मरण (को०)।

अप्रतिहत[2]—सज्ञा पुं० अकुश।

अप्रतिहतगति—वि० [स०] जिसकी गति रोकी न जा सके। निर्बाध गतिवाला। उ०—अप्रतिहतगति सस्थानो से रहता था जो सदा बढा।—कामायनी, पृ० २०९।

अप्रतिहतनेत्र[1]—सज्ञा पु० [सं०] एक बौद्ध देवता [को०]।

अप्रतिहतनेत्र[2]—वि० निर्बाध दृष्टिवाला [को०]।

अप्रतिहतव्यूह—सज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह असहत व्यूह जिसमे हाथी, घोडे, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों।

अप्रतिहार्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके [को०]।

अप्रतीक—वि० [सं०] १ अग या शरीर से रहित। २ ब्रह्म का विशेषण [को०]।

अप्रतीकार—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अप्रतिकार'।

अप्रतीकारी—वि० [सं० अप्रतीकारिन्] दे० 'अप्रतिकारी'।

अप्रतीघात—वि० [स०] दे० 'अप्रतिघात'।

अप्रतीत—वि० [स०] १ अप्रसन्न। २ अगम्य। ३ निर्विरोध। ४ दुर्बोध्य। एक शब्ददोष [को०]।

अप्रतीतत्व—सज्ञा पुं० [स०] दुरूह पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत प्रयोग। एक काव्यदोष। उ०—आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है।—रस०, पृ० ४४।

अप्रतीति—सज्ञा स्त्री० [स०] अर्थ या रूप आदि का समझ मे न आना या स्पष्ट न होना। २ विश्वास का अभाव। अविश्वास। अनिश्चय। उ०—होई कि नहीं सोच मति माँनहि अप्रीति हृदय तें टारि। करि विस्वास प्रतीति आनि उर यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि।—सुदर ग्र० पृ० ३८।

अप्रतीयमान–वि०[सं०] जो प्रतीयमान या निश्चित न हो। अनिश्चित।

अप्रतुल[1]—वि० [सं०] १ जिसकी तुलना या मान न हो सके। बेहद। २ अनुपम। बेजोड़।

अप्रतुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन या भार का अभाव। २ अभाव। आवश्यकता [को०]।

अप्रत्त—वि० [सं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लौटाया हुआ [को०]।

अप्रत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अप्रत्यक्ष—वि० [सं०] १ जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा। गुप्त। ३ अज्ञात [को०]। ४ अनुपस्थित [को०]।

अप्रत्यनीक—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें शत्रु के जीतने के सामर्थ्य के कारण उससे संबंध रहनेवाली वस्तुओं का तिरस्कार न किया जाय। जैसे–नृप यह पीडत है परहि, नहिं पर प्रजा मुरार। राहु शशी को ग्रसत है, नहिं तारन जु निहार (शब्द०)।

अप्रत्यय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अविश्वास। भरोसे का अभाव। २. (व्याकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [को०]।

अप्रत्यय[2]–वि० १ विश्वासरहित। अविश्वास। २ ज्ञानहीन। बोधरहित। ३ (व्याकरण) प्रत्ययशून्य [को०]।

अप्रत्याशित—वि० [सं०] जिसकी आशा न रही हो। असंभावित। अचानक। आकस्मिक। उ०—उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होना चाहिए।—सं० शास्त्र, पृ० १८२।

अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [को०]।

अप्रधान[1]—वि० [सं०] जो प्रधान या मुख्य न हो। गौण। साधारण। सामान्य।

अप्रधान[2]—संज्ञा पुं० गौण कार्य [को०]।

अप्रबृष्य–वि० [सं०] जिसे दबाया या हटाया न जा सके। अजेय[को०]।

अप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अप्रबन्ध] प्रबंध का अभाव। अव्यवस्था। कुप्रबंध। उ०—ऐसे अप्रबंध, फूट और स्वेच्छाचार की हवा चली कि लोग आपस में कट मरे।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३३३

अप्रबल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—पाणी माहै प्रजनी भई अप्रबल आगि। बहति सलिता रहि गई मछ न्हे जल त्यागी। कबीर ग्र० पृ० १२।

अप्रबल[2]—वि० [सं० अ+प्रबल] जो प्रबल न हो। दुर्बल। कमजोर।

अप्रभ—वि०[सं०] १ कांति या तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २ तुच्छ। नीच [को०]।

अप्रभु—वि० [सं०] १ अधिकार या प्रभावहीन। २. असमर्थ। अयोग्य [को०]।

अप्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वल्प प्रधान [को०]।

अप्रमत्त—वि० [सं०] प्रमाद या लापरवाही से रहित। सावधान। सतर्क [को०]। उ०—आप समझी जाती है अटल, अप्रमत्त और अनिमेष।—गुलशन, पृ० ४१।

अप्रमद—वि० [सं०] प्रमादरहित। असावधानतारहित। स्थिर। उद्यत [को०]

अप्रमय—वि० [सं०] १. अनिश्चर। अनीश। अप्रमेय [को०]।

अप्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमा का न होना। भ्रांत ज्ञान [को०]।

अप्रमाण[1]—वि० [सं०] १ जो प्रमाणसम्मत न हो। अप्रामाणिक। २ बिना सबूत का। साक्षीरहित। ३. अनधिकृत। अविश्वस्त। ४. अनीम। अपरिमित [को०]।

अप्रमाण[2]—संज्ञा पुं० १ जो प्रमाण न बन सके। २ अप्रामाणिकता।

अप्रमाद[1]– वि० [सं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—अवनी की श्यामल घाटी में निर्निमेष गान में अप्रमाद।—कामायनी, पृ० १६७।

अप्रमाद[2]—संज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरूकता [को०]।

अप्रमित—वि० [सं०] १ बेनाप। अनीमित। २ अधिकारी द्वारा जो प्रमाणित न हो [को०]।

अप्रमेय—वि० [सं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार। अनंत। उ०—तू न अछय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्रान लै। आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रमान का।—राम च०, पृ० १३३।

अप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्नता का अभाव। २ तुष्टिनिवारण की अक्षमता [को०]।

अप्रयत्न[1]—वि०[सं०] प्रयत्नहीन। उत्साहहीन। उदासीन। [को०]।

अप्रयत्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न का अभाव। काहिलपन। औदासीन्य [को०]।

अप्रयुक्त–वि० [सं०] जिसका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा की गहराई को बढ़ाने में ही मदद करता है।—रामच० (भू०), पृ० ३४। २ अप्रचलित। ३ शब्दादि का अन्यथा या गलत प्रयोग। ४ दुर्लभ या विरल प्रयोग [को०]।

अप्रयुक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो कोशगत और शुद्ध होते हुए भी व्यवहृत न हो।

विशेष—इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग साहित्यशास्त्र में दोष माना गया है।

अप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रयोग का अभाव। २. दुष्प्रयोग। ३. अव्यवहार [को०]।

अप्रलब्ध—वि० [सं० अप्रलब्ध] फुर्तीला। मनद्द। तत्पर [को०]।

अप्रवर्तक–वि०[सं०] १ कार्य के लिये प्रेरणा न देनेवाला। निष्क्रिय। २ अटूट। अविच्छिन्न [को०]।

अप्रवर्ती—वि० [सं० अप्रवर्तिन्] दे० 'अप्रवर्तक'।

अप्रवानी⑤—वि० [सं० अ+प्रमाण, प्रा० प्रमाण, अप० पमाण+ई (प्रत्य०)] अप्रमेय। अज्ञेय। उ०—अब चेतन ई भेद है, ए तन समुझानी। जब उपजै विनसै सदा चेतन अप्रवानी।—सुंदर ग्र०, पृ० २०७।

अप्रवीन⑤—वि० [सं० अप्रवीण] जो प्रवीन न हो। मूढ़। उ०—ऊधो! प्रीति करि निरमोहिनि सों को न भयो दुखदीन। सुनत समुझत रहत हम सब ही यहि परतीत।—सूरसी० पृ० ४८६।

अप्रवृत्त—वि० [स०] १ जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २ असनद्ध [को०]।

अप्रवृत्तवध—वि० [स०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्रवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का झुकाव न होना। २ किसी सिद्धात वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३ अप्रचार। ४ कोष्ठवद्धता [को०]।

अप्रवेश्य—वि० [स०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमे प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय! मेरे सुदर, अप्रवेश्य सा अधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।

अप्रशसनीय—वि० [स०] निंदनीय। निंदा के योग्य।

अप्रशस्त—वि० [स०] १ जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २ क्षीण (को०)। ३ अविहित। निषिद्ध [को०]।

अप्रशिक्षित—वि० [स०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।

अप्रसंग[1]—सज्ञा पुं० [स० अप्रसङ्ग] १ आसक्ति, प्रयोजन या सबध का अभाव। २ बेमौका [को०]।

अप्रसग[2]—वि० १ सबधरहित। २ प्रसगहीन। बेमौका।

अप्रसक्त—वि० [स०] १ जो आसक्त न हो। बेलगाव। २. असबद्ध। ३ निर्बाध। बिना रोक टोक [को०]।

अप्रसक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्तिहीनता [को०]।

अप्रसन्न[1]—वि० [स०] जो प्रसन्न न हो। असतुष्ट। नाराज। २ खिन्न। दुखी। उदास। विरक्त। ३ पकिल। कीचड से युक्त।

अप्रसन्न[2]—सज्ञा पुं० ब्याई हुई गाय का सात दिन के बाद दूध।

अप्रसन्नता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नाराजगी। असतोष। २ रोष। कोप। ३ खिन्नता। उदासी।

अप्रसाद—सज्ञा पुं० [स०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।

अप्रसिद्ध—वि० [स०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हो। २ गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।

अप्रसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोष नही।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रसूत—वि० सततिविहीन। सतानरहित [को०]।

अप्रसूता—सज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री, जिसे बच्चा न हुआ हो। वध्या नारी। बाँझ।

अप्रस्ताविक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रस्ताविकी] जो मूल विषया का या उससे सबद्ध न हो। अप्रास्ताविक [को०]।

अप्रस्तुत—वि० [स०] १ जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २. जो प्रसगप्राप्त न हो। अप्रासगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३ जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४ गौण। अप्रधान। उ०—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उसी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—सज्ञा [स०] वह अर्थालकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिबधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सार तमाम। तिहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिबधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तू पद नख की दुति कछुक, गइ धोवन जन माथ। तिहि कन मिलि दधि मथन मे चद्र भयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेषनिबधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन सुरतरु धनद हू, गनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यो मानत बुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिबधना—जहाँ विशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीख न मानै गुरन की, अहितहि हित मन मानि। सो पछतावै तासु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिबधना—जहाँ अभीष्ट वस्तु का बोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—बक धरि धीरज कपट तजि, जो बनि रहै मराल। उघरै अत गुनाव कवि, अपनी बोलनि चाल।—गुलाब (शब्द०)।

अप्रहृत—वि० [सं०] १ कोरा (कपडा)। जो (वस्त्र) पहना न गया हो। २ जो (भूमि) जोती न गई हो। बजर। ३ अक्षत। अछूता (को०)। ४ जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राकरणिका, अप्राकरणिकी] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [स०] १ जो प्राकृत न हो। सस्कृत। २ अस्वाभाविक। ३ असामान्य। असाधारण। ४. जो प्राकृत भाषा का या उससे सबद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [स०] स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध। अस्वाभाविक। अलौकिक [को०]।

अप्राख्य—वि० [स०] मुख्य नही। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [सं०] १ जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २ पौर्वात्य नही। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [स०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण[1]—वि० [सं०] १. बिना प्राण का। निर्जीव। मृत। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण[2]—सज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [स०] १ जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अलब्ध। दुर्लभ। अलभ्य। २ जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्तवयस्क, अप्राप्तयौवना, अप्राप्तव्यवहार। ३ अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४ अनागत जो आया न हो। ५ जिसकी उम्र विवाह के योग्य न हो (को०)।

अप्राप्तकाल—सज्ञा पु० [स०] १ आनेवाला समय। भविष्य। २ अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय मे

तर्क के समय क्षोभ के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अडबड कह जाने का दोष। ४ क्रमसिन [को०]।

अप्राप्तयौवन—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राप्तयौवना] जिसकी युवावस्था अभी न आई हो। जो जवान न हो। किशोर [को०]।

अप्राप्तवय—वि०[स० अप्राप्तवयस्]१ नाबालिग। १ कानून की दृष्टि से सामाजिक जिम्मेदारी के अयोग्य। १६ वर्ष के पूर्व का।

विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषों के लिए १८ और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है।

अप्राप्तव्यवहार—वि० [स०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो। नाबालिग।

अप्राप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि या लाभ का अभाव। २ नियम कानून से असिद्ध। ३ अनहोनी। ४. जो लागू न हो। अनुपपत्ति [को०]।

अप्राप्तिसम—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि किसी के उत्तर मे कहा जाय—'तुम्हारा हेतु और साध्य दोनो एक आधार मे वर्तमान हैं या नही? यदि वर्तमान हैं तो दोनो बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य?' तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय —'यदि दोनो एक आधार मे नही रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है?' तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्राप्य—वि० [स०] जो प्राप्त न हो सके। जो मिले न। अलभ्य। उ०—जो यों निज प्राप्य छोड़ देंगे। अप्राप्य अनुग उनके लेंगे।—साकेत, पृ० १४७।

अप्रामाणिक—वि० [स०][वि० स्त्री० अप्रामाणिकी] १ जो प्रमाणसिद्ध न हो। ऊटपटाँग। २ जिसपर विश्वास न किया जा सके।

अप्रामाण्य—सज्ञा पु० [स०] प्रमाण या सबूत का अभाव [को०]।

अप्रावृत—वि० [सं०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो। अनावृत। खुला हुआ [को०]।

अप्राशन—सज्ञा पुं० [स०] आहार ग्रहण न करना। अनशन [को०]।

अप्रासगिक—वि० [सं० अप्रासङ्गिक] जो प्रसगप्राप्त न हो। प्रसग-विरुद्ध। जिसकी कोई चर्चा न हो।

अप्रास्तविक—वि० [सं०] दे० 'अप्रस्ताविक' [को०]।

अप्रियवद—वि० [सं०] कटुभाषी। कठोर शब्द कहनेवाला [को०]।

अप्रिय[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रिय] १ जो प्रिय न हो। अरुचिकर। जो न रुचे। जो पसद न हो। उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८७। २ जो प्यारा न हो। जिसकी चाह न हो। उ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी।—मानस १।२०८। ३. शत्रुतापूर्ण। अमित्र या शत्रुवत् [को०]।

अप्रिय[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ वैरी। शत्रु। २. बेंत। वेतस। निचुल।

यौ०—अप्रियवद। अप्रियकर। अप्रियकारी। अप्रियवादी।

अप्रियकर—वि०[सं०]जो रुचिकर न हो। अहितकर। अमैत्रीपूर्ण [को०]।

अप्रियकारक—वि० [सं०] दे० 'अप्रियकर'।

अप्रियकारी—वि० [स० अप्रियकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रियकारिणी] दे० 'अप्रियकर' [को०]।

अप्रियता—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रिय+ता (प्रत्य०)] बुराई। उ०—हाँ आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम।—साकेत, पृ० ३८४।

अप्रियभागी—वि० [स० अप्रियभागिन्] [वि० स्त्री० अप्रियभागिनी] दुर्भाग्यग्रसित। अभागा।

अप्रियवादी—वि०[स० अप्रियवादिन्][वि० स्त्री० अप्रियवादिनी] कडवी बात कहनेवाला। कटुवादी। कठोरवक्ता [को०]।

अप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] शृंगी मत्स्य [को०]।

अप्रीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्नेह वा प्रेम का अभाव। चाह का न होना। २ अरुचि। ३ विरोध। वैर।

अप्रीतिकर—वि० [सं०] वि० स्त्री० अप्रीतिकारी] १ अप्रिय। नापसद। २. कटु। कठोर अननुकूल [को०]।

अप्रेंटिस—सज्ञा पु० [अ० ऐप्रेंटिस] वह पुरुष जो किसी कार्य मे कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय मे बिना वेतन लिये वा अल्प वेतन पर काम करे। उम्मेदवार।

अप्रत—वि० [स०] न गया हुआ। अगत। मृत नही [को०]।

अप्रतराक्षसी—सज्ञा स्त्री० [स०] तुलसी का पौधा [को०]।

अप्रैल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिल] एक अगरेजी महीना जो प्राय चैत मे पडता है। यह महीना ३० दिन का होता है।

अप्रलफूल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिलफूल] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी मे बेवकूफ बनाया जाय।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं।

अप्रोक्षण—वि०[स० अपरोक्ष] जो परोक्ष न हो। प्रत्यक्ष। दूर न हो। उ०—देहई कौं बध मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५९२।

अप्रोषित—वि० [स०] जो चला न गया हो। जो अनुपस्थित न हो। जो उपस्थित हो [को०]।

अप्रौढ—वि० [स० अप्रौढ़] १ जो पुष्ट न हो। कमजोर २. कच्ची उम्र का। नाबालिग। ३. अप्रगल्भ। अनुद्धत [को०]।

अप्रौढा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रौढ़ा] १ कन्या। कुमारी। २. विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या।

अप्लव—वि० [स०] १. जलयानहीन। २. जो तैरता न हो। न तैरनेवाला [को०]।

अप्सर पति—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के नाथ। इद्र [को०]।

अप्सर[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सर[2]—स्त्री० पुं० [सं०] जलजंतु। जलचर [को०]।

अप्सरा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्सरस्] १. जलकण। वाष्पकण। २. वेश्याओं की एक जाति ३. स्वर्ग की वेश्या। इंद्र की सभा मे नाचनेवाली देवांगना। परी।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मथन के समय उसमे से निकली थी।

अप्सरातीर्थ—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओ के स्नान का पवित्र तालाब या स्थल [को०]।

अप्सरि—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की बाल।—गुजन, पृ० ८७।

अप्सरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सु—वि० [स०] १ आकार या विग्रहहीन। अरूप। २ कुरूप। असुदर [को०]।

अप्सुक्षित—सज्ञा पु० [स०] स्वर्ग एव पृथ्वी के बीच अतरिक्षनिवासी देवता [को०]।

अप्सुचर—वि० [स०] पानी का जतु। जलचर।

अप्सुप्रवेशन—सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दड जिसमें अपराधी जल मे डुबाकर मारा जाता था।

अप्सुयोनि[1]—वि० [स०] जल से उत्पन्न [को०]।

अप्सुयोनि[2]—सज्ञा पु० [स०] १ अश्व। घोडा। २ वेंत या नरकुल [को०]।

अफंड—सज्ञा पु० [स० अ+स्पन्द, अप० फड] १ बखेडा। फरफद। अडगा। उ०—(क) महाजनो ने चैनसुखदास को मिलाकर यह सारी अफड खडा कर दिया।—सुदर ग्र०, पृ० १८६।

अफगन—वि० [फा० अफगन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।

अफगान—सज्ञा पु० [फा० अफगान] अफगानिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। काबुली। पठान।

अफगानिस्तान—स० [फा० अफगानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी काबुल है।

अफगानी—वि० [फा० अफगान+ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से सबद्ध।

अफगार—वि० [फा० अफ्गार] घायल। जखमी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहाँ है?—कबीर ग्र०, पृ० ३२३।

अफजल—वि० [अ० अफजल] १ बहुत बढिया। उत्तमतर। २ बहुत अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अफजूँ[1]—सज्ञा पु० [फा० अफजूँ] वृद्धि। अधिकता।

अफजूँ[2]—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उबरा हुआ। खर्च से बचा हुआ।

अफताब†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताब'। उ०—(क) भरत जहँ नूर जहूर असमान लौं रूह अफताब गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्र०, पृ० ६३।

अफतावा†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आफताब'।

अफतावी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफतावी'।

अफतार—सज्ञा पुं० [अ० इफ्तार, फा० अफ्तार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।

अफतालो—सज्ञा पु० [फा० अफ्तालू] अगले पडाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।

अफनाना—क्रि० अ० [स० उत्+स्फार, स्फाल, हिं० उफनाना] उबाल खाना। उत्तेजित होना। घबराना। उ०—द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती सबै, उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ८।

अफयूँ—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] अफीम। अफयून। उ०—अफ्यूँ मदक चरस के व चडू के बदौलत। प्यारो के सदा रहते हैं रुखसार वसती।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७६२।

अफयून—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] दे० 'अफीम'।

अफयूनी—वि० [अ० अफयून] दे० 'अफीमची'।

अफरन†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।

अफरना—क्रि० अ० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अघाना। उ०—प्रगट मिले बिनु भावतें कैसे नैन अघात। भूखे अफरत कहुँ सुने, सुरति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २ पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कबहूँ पेट न अफरई भावइतेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफरी बीवी दै मारी (रोटी)। ३ ऊबना। उ०—हम उनकी यह लीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।

अफरा—सज्ञा पुं० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ फूलना। पेट फूलना। २ अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।

अफरा तफरी—सज्ञा स्त्री० [अ० अफरा तफरी] १ उलटफेर। गडबड। लुटपोट। २ जल्दी। हडबडी। बदहवासी।

अफराना—क्रि० अ० [हिं० अफरना या स० स्फार] पेट भरने से सतुष्ट होना। अघाना। उ०—गदहा थोरे दिन मे खूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।

अफरावा†—सज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।

अफरीदी—सज्ञा पुं० [फा० अफरीद] पठानो की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाडियो मे रहती है।

अफल[1]—वि० [स०] १ जिसमे फल न हो। बिना फल का। फलहीन। निष्फल। २ व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—परमारथ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहि सिद्धि सई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२८। ३ बाझ। वध्या।

अफल[2]—सज्ञा पु० १ झाऊ का वृक्ष। २ बकरा।

अफला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भूम्यामलकी। भुँइ आँवला। २ घृतकुमारी। घीक्वार।

अफलातून—सज्ञा पु० [फा० अफ़लातून] १ यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २. बडप्पन की शेखी करनेवाला व्यक्ति।

मु०—अफलातून के नाती=दोखी करनेवाला। तीसमार बनने वाला। डीग मारनेवाला।

अफलित—वि० [स०] १ जिसमे फल न लगे। फलहीन। २ निष्फल। परिणामरहित।

अफल्गु—वि० [स०] उत्पादक। लाभदायक। जो फल्गु या सारहीन न हो [को०]।

अफवा—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ० इसी तरह यह सब बातें अफवा की जहरी हवा मे मिलकर चारो ओर उडने लगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६१।

अफवाज—सज्ञा स्त्री० [अ० फौज का बहुव० अफवाज] सेना। फौज। उ०—तूँ जूनो परणे नवी, अमुरारी अफवाज।—बाँकीदास ग्र०, भा २, पृ० १००।

अफवाह—सज्ञा पुं० [अ० अफवाह] १ उडती खबर। बाजारू खबर। किंवदती। २ मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—अफवाह उडाना=निराधार समाचार फैलाना, अफवाह उडाना या फैलाना=१ झूठी बात प्रचारित करना। २, बदनाम करना।

अफशाँ—सज्ञा स्त्री० [फा० अफशाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा सुनहला या रूपहला चूर्ण जो स्त्रियो के मुख पर शोभा के लिये छिडके जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर अफशाँ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—सज्ञा पुं० [फा० अफ़शा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यौ०—अफशायराज=गुप्त मत्रणा का प्रकाश। छिपी बात को खोल देना।

अफसतीन—सज्ञा पु० [यू०] औषध के कार्य मे प्रयुक्त एक कडआ और नशीला पौधा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर मे ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इससे हरे या पीले रग का तेल निकाला जाता है जो झारदार तथा कडआ होता है। विशेष मात्रा मे प्रयोग करने से यह तेल विषैला हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर यूनानी दवाओ के काम आती है।

अफसर—सज्ञा पु० [अ० आफिसर] [सज्ञा अफसरी] १. प्रधान। मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यौ०—अफसरे आला=प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अफसर+ई (प्रत्य०)] १ अधिकार। प्रधानता। २ हुकूमत। शासन।

क्रि० प्र०—करना।—जताना।

अफसाना—सज्ञा पुं० [फा० अफसानह्] किस्सा। कहानी। कथा। आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिडना।—छेडना।—रह जाना।—सुनना —सुनाना

यौ०—अफसानागो=कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१ कहानीकार। कथालेखक। २. उपन्यासलेखक।

अफसूँ—सज्ञा पु० [फा०+अफ्सूँ] जादू टोना। अभिचार। मायाकर्म। इद्रजाल [को०]।

अफसोस—सज्ञा स्त्री० [फा० अफसोस] १ शोक। रज। २. पश्चात्ताप। खेद। पछतावा। दु ख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—सज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १ हलफ। शपथ। २ हलफनामा।

अफीम—सज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफयून, फा० अफ्यून] औषध और नशे के रूप मे प्रयुक्त होनेवाली पोस्ते की डेंढ की गोद।

विशेष—यह काछकर इकट्ठी की जाती है। यह कडवी, मादक और स्तभक होती है। इसके खाने से कोष्ठबद्ध होता है और नींद आती है। विशेष मात्रा मे यह विषैली और प्राणघातक हो जाती है। इसके लेप से पीडा दूर होती है और सूजन उतर जाती है। इसका प्रयोग सग्रहणी, अतिसारादि मे होता है। वीर्यस्तभन की औषधियो में भी इसका प्रयोग होता है। इसके खानेवाले झपकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बडी रुचि रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और वृद्धावस्था मे फुर्ती लाती है।

अफीमची—सज्ञा पु० [हिं० अफीम+पु० ची (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—सज्ञा पु० [हिं० अफीम+इ (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। अफीमची।

अफीर—सज्ञा पुं० [अ० अफीर] प्रतिवेशी। पडोसी। उ०—चले साथ ले मर्दुमाने अफीर।—कबीर ग्र०, पृ० १३१।

अफुल्ल—वि० [स०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफू—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफीम'।

अफेन¹—वि० [सं०] जिसमे फेन न हो। फेनरहित। बिना झाग का।

अफेन²—सज्ञा पुं० [स० अहिफेन] अफीम।

अफोट—वि० [स० आ+स्फोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य अरम्य करी सु धरन्निय। रहे मठ कोट अफोट करन्निय।—पृ० रा०, १।३६०।

अफफना—क्रि० स० [स० अर्पण पा० अप्पण] दे देना, सौंपना। अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अफफउँ पहुमि, इमि च्यतनु मन मह करिय।—पृ० पृ० रा० (उद०), पृ० २११।

अफशा—वि० [फा० अफशा] दे० 'अफशा'। उ०—अब जिद करने मे राज अफशा होता है। मगर क्या करें।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

अवछी—वि० [सं० अवाछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—सुदर तृष्णा कारनै जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक होइ अवछी मीच।—सुदर ग्र०, पृ० ७१३।

अवड—वि० [स० अवण्ड] जो अगहीन या पगु न हो।

अवध—वि० [स०] १ जो किसी बधन मे न हो। अबद्ध बधनहीन। निरकुश। उ०—विधानो मे अवध विधान विचरते हो सुर माया कर।—गीतिका, पृ० ६०।

अवधन—वि० [स० अबधन] अवध। मुक्त [को०]।

अवधु¹—सज्ञा पु० [स० अवधु] अमित्र। शत्रु। उ०—बधु अवधु हिये मँह जानै। ताकर लोग विचार बखानै।—राम च०, पृ० १५१।

अवधु²—वि० १ मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २ अनाथ। जिसके कोई न हो [को०]। २ बध या सीमाहीन। असीम। अपार। उ०—जिन युवको के मणिबधो मे अवध बल इतना भरा था जो उलटता शतघ्नियो को।—लहर, पृ० ६७।

अवध्य—वि० [स० अवन्ध्य] [स्त्री० अवध्या] १ दे० 'अवध'। २ सफल, । अव्यर्थ।

अवध्या—सज्ञा स्त्री० [स० अवन्ध्या] वह जो बाँझ न हो। सतानवाली स्त्री।

अव¹—क्रि० वि० [सं० अथ, प्रा० अह, अथवा स० अध] इस समय। इस क्षण। इस घडी।

मुहा०—अब का = इस समय का। आधुनिक। अबकी = इस बार अब की बात अब के हाथ = समय के अनुसार कार्य करना। जो बात बिगडी नही है उसे सपन्न करना। अब के लोग = आधुनिक जन। अब जाकर = इतनी देर पीछे। उ०—महीनो से इस काम मे लगे हैं, अब जाकर खतम हुआ है। अब तब करना = हीला हवाली करना। अब तब लगना या होना = मरने का समय निकट होना। उ०—जब बैद्य आया तब उसका अब तब लगा था। अब न तब = न इस समय न फिर कभी। अब भी = (क) इस समय भी। (ख) इतने पर भी। उ०—इतनी हानि उठाई अब भी नही चेतते। अब से = इस समय से। आगे। भविष्य मे। उ०—अब से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा।

अव[२]—सज्ञा पु० [अ०] बाप। पिता [को०]।

अवक—सज्ञा पु० [अ + हिं० वक] अनुचित बात। अकथ्य। उ०—राखो आगै रसणरै, राघव नाम रसाल। मुख माँझल आँणो मती, गिरँग अवक ज्यूँ गाल।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७६।

अवका—सज्ञा पुं० [फिलि० अबुका, स० अवका = सेवार] एक पौधा जिसकी डठल की छाल रेशेदार होती है।

विशेष—यह पौधा फिलिपाइन देश का है। अब इसकी खेती अडमान टापू और आराकान की पहाडियो मे भी होती है। खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड से पेड के चारो ओर पौधे भूफोड निकलते हैं। जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तब उन्हे उखाडकर खेतो मे ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं। इसकी फसल तैयार होती है तब इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते है। डठलो से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है। इसकी खँदड का मैनिला पेपर बनता है।

अवक्र—वि० [सं० अ + वक्र] टेढा नही। सीधा। उ०—पुनि स्वाधिष्ठान मु द्वितीय चक्र। नही षट्दल षट् अक्षर अवक्र।—सुदर ग्र०, पृ० ४६।

अवखरा—सज्ञा पुं० [अ० अल्बर (बुखार का बहुव०)] भाप। वाष्प।

क्रि० प०—उठना। चढना।

अवखोरा†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवखोरा'।

अवगत—वि० [स० अविगत] १ जो जाना न जाय। अज्ञात। २ अनिर्वचनीय। ३ नित्य (ईश्वरबोधक)। उ०—नही बाप ना माता भाए। अवगत से ही हम चल आए—कबीर सा०, पृ० ८२५।

अवगति—वि० [हिं०] दे० 'अवगत'।

अवचन—वि० [स० अ + वचन] दुर्वचन। अपशब्द। उ०—वचन अवचन रहित सोई जानिये।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६२५।

अवजरवेटरी—सज्ञा स्त्री० [अ० आवजरवेटरी] वह स्थान जहाँ ग्रहो की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल सबधी घटनाओ का निरीक्षण किया जाता है। वेधायल। वेधशाला। वेधमदिर। मानमंदिर।

अवट—सज्ञा पु० [स० अ + वाट] दुर्गम रास्ता। हीन मार्ग। विषय। उ०—नर तेथ निमाणा, निलजो नारी, अकवर गाहक वट अवट। वेलि० (मू०), पृ० ३१।

अवटना†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उवटन'।

अवड धवड—वि० [अनु०] बेतरतीब। असगत। जल्दबाजी।

अवतर—वि० [अ० अब्तर] [सज्ञा अवतरी] १ बुरा। रद। खराब। २ गिरा हुआ। बिगडा हुआ। उ०—अफसोस ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अवतर। मिलते हो गैर से जा हमसे लुकाइयाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६।

अवतरी—सज्ञा स्त्री० [अ० अब्तरी] १ घटाव। बिगाड। क्षय। अवनति। २ बुराई। खरावी।

अवदार—वि० [फा० आवदार] दे० 'आवदार' उ०—पति ची प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अवदार हजूरी।—रा० रू०, पृ० ३१६।

अवद्ध[१]—वि० [स०] १ जो बँधा न हो। मुक्त। २ स्वच्छद। निरकुश। ३ असबद्ध। निरर्थक।

यौ०—अवद्धवाक्य = वह असबद्ध वाक्य जिसमे अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले। जैसे—कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा बाप ब्रह्मचारी, माता वध्या और पितामह अपुत्र था। अवद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो। अडबड बोलनेवाला। अवद्धमूल = जिसकी जड पुष्ट न हो।

अवद्ध[२]—सज्ञा पुं० असभव या असामान्य वस्तु [को०]।

अवद्धक—वि० [सं०] दे० 'अवद्ध' [को०]।

अवध[१]—वि० [स० अवाध्य] जो रोका न जा सके। अवाध्य। निर्बाध। उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवन चितई है।—तुलसी (शब्द०)।

अवध[२]—वि० [स० अवध्य] जिसे मारना उचित न हो। उ०—तौकौं अवध कहत सब कोऊ तातै सहियत बान। बिना प्रयास मारिहौं ताकौं, आजु रैनि कै प्रात।—सूर (शब्द०)।

अवधू[१]—वि० [सं० अबोध, पुं० हिं० अबोधु] अज्ञानी। अबोध। मूर्ख। उ०—(क) अवधू छोडो मन विस्तारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) अवधू कुदरत की गति न्यारी—कबीर (शब्द०)।

अवधू[२]—सज्ञा पु० [स० अवधूत] त्यागी। सन्यासी। विरागी। अवधूत। सत। साधु। उ०—जिन अवधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन तहईं लै धाया।—कबीर (शब्द०)।

अवधूत—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'।

अवध्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अवध्या] १. न मारने योग्य। जिसे मारना उचित न हो। २ जिसे मारने का विधान न हो। जिसे शास्त्रानुसार प्राणदड न दिया जा सके। जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि। ३ जो किसी से न मरे। जिसे कोई मार न सके।

अवनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवनि'। उ०—इहाँ आनि अवनी कौं भोजन करायौ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३।

अबर[१]—वि० [स० अ + बल] अबल। निबल। उ०—ये अबर कौं पीर जबर सबर बिन मरूँ।—तुलसी० श०, पृ० ५१।

अवर[२] (पु)—वि० [सं० अपर, ब्र० अवर] अन्य। और। दूसरा। उ०—सरिता सिंधु अनेक अवर सखी विलमत पति सहज सनेह।—सूर० (राधा०) २७६७।

अवर[३] (पु)—वि० [सं० अवर] अश्रेष्ठ। अव्यग्य। अधम। उ०—इहाँ उहाह वाक्य तें अवर काव्य होता है।—भिखारी ग्र० भा० भा० २, पृ० २४४।

अवर[४] (पु)—सज्ञा पु० [फा० अब्र, सं० अभ्र] बादल। उ०—अगर यो जान जिंदगानी। अवर ओला घुले पानी।—तुलसी० श०, पृ० ३१।

अवरक—सज्ञा पु० [सं० अभ्रक] १ एक धातु। अभ्रक। भोडल। भोडर। मुखल।

विशेष—यह खानो मे निकलती है और बडे बडे ढोको मे तह पर तह जमी हुई पहाडो पर मिलती है। साफ करके निकालने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है। अवरक के पत्तर कदील आदि मे लगते हैं तथा विलायत मे भी भेजे जाते हैं। वहाँ ये काँच की टट्टी की जगह किवाड के पल्लो मे लगाने के काम आते हे। यह धातु आग से नहीं जलती और लचीली होती है। वैज्ञानिक यत्रो मे भी इसका प्रयोग होता है। यह दो रग की होती है—सफेद और काली। भारतवर्ष मे बगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की पहाडियो मे मिलती है। वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते हैं और औषधियो मे इसका प्रयोग करते हैं। भस्म बनाने मे काले रग का अवरक अच्छा समझा जाता है। निश्चद्र अर्थात् अभ्रारहित हो जाने पर भस्म बनता है।

२ एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है।

विशेष—यह पत्थर बर्तन बनाने के काम आता है। यह बहुत चिकना होता है। इसकी बुकनी चीजो को चमकाने के लिये पालिश या रोगन बनाने के काम मे आती है।

अवरख—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवरक'।

अवरखी[१] †—वि० [हिं० अवरक] १ अवरक के रग का। २ अभ्रक का।

अवरखी[२] †—सज्ञा स्त्री० अभ्रक की बुकनी।

अवरन[१] (पु)—[सं० अवर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके। अकथनीय। उ०—(क) अवरन को का वरनिए मोपे लख्या न जाइ। अपना बाना वाहिया कहि कहि थाके माइ। कबीर० ग्र०, पृ० ६१। (ख) भजि मन नद नदन चरन। सनक सकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन वरन।—सूर० (शब्द०)।

अवरन[२] (पु)—वि० [सं० अवर्ण] १ बिना रग का। वर्णशून्य। उ०—अलख अरूप अवरन सो करता। वह सब सो, सब वहि सो वरता।—जायसी (शब्द०)। २ एक रग का नही। भिन्न। उ०—हद छोड बेहद गया अवरन किया मिलान। दास कबीरा मिल रहा सो कहिए रहमान।—कबीर (शब्द०)।

अवरन[३] (पु)—सज्ञा पुं० [सं० आवरण] दे० 'आवरण'।

अवरन्य—सज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य'। उ०—कहूँ अवरन्यन को कहत भूषन वरनि विवेक।—भूषण ग्र०, पृ० ६१।

अवरस[१]—सज्ञा पुं० [अ० अवरश] १ घोडे का एक रग जो सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद होता है। २ घोड़ा जिसका सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग हो। उ०—अवलक अवरस लखी सिराजी। चौधर चाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)।

अवरस[२]—वि० सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग का।

अवरा[१]—सज्ञा पु० [फा० अबरह्] १. अस्तर का उलटा। दोहरे वस्त्र के ऊपर का पल्ला। उपल्ला। उपल्ली।

क्रि०—प० ।—चढाना।—देना।—लगाना।

२ खुलनेवाली गाँठ। उलझन।

अवरा[२] †—वि० [सं० अबल] बलहीन। कमजोर। निर्बल।

यौ०—अवरा दुवरा=शक्तिहीन। कमजोर। दुबला पतला।

अवरी[१]—सज्ञा स्त्री० [फा० अब्र+ई (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का चिकना कागज जिसपर बादल की सी धारियाँ होती हैं। यह पुस्तको की दफ्ती पर लगाया जाता है और कई रग का होता हैं। २ पीले रग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम आता है। यह जैसलमेर मे निकलता है। इसलिये इसको जैसलमेरी भी कहते हैं। ३ एक प्रकार की नाव की रगाई जो रगबिरगे बादलो के छीटो की तरह होती है।

अवरी[२] †—सज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गडढे या नदी के पानी से मिला हुआ किनारा।

अवरू—सज्ञा पुं० [फा०] भौंह। भ्रू। उ०—आगे बढ़ी चढे थे अवरू खमदार।—कुकुर०, पृ० ३६।

मु०—अवरू मे बल पडना=नाराज होना। अवरू पर मैल न आना=विकार न आना।

अवर्ज (पु)—सज्ञा पु० [सं० अवर+ज] अनुज। छोटा भाई।—अनेकार्थ०, पृ० ८७।

अवर्त †—सज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर। चक्कर।

अवर्न (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण'। उ०—सुदर ब्रह्म अवर्न है व्यापक अग्नि अवर्न।—सुदर ग्र०, पृ० ७८१।

अवर्न्य (पु)—सज्ञा पु० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य[२]'। उ०—आदर घटत अवर्न्य को, जहाँ वर्न्य के जोर।—भूषण ग्र० पृ० २६।

अवल[१]—वि० [सं०] निर्बल। कमजोर। उ०—कैसे निबहै अबल जन करि सबलन सो बैर।—समावि० (शब्द०)।

अवल[२]—सज्ञा पु० १ बलहीनता। २ वरुण नामक वृक्ष।

अवल[३] (पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अवलि] १ पक्ति। समूह। कतार। उ०—अतर नीलवर अवल आभरण अगि अगि, नग नग उदित।—वेलि०, दू० १५६।

अवलक[१]—वि० [अ० अवलक] दे० 'अवलख[१]'। उ०—जो अवलक घोडा अमुके रग की होइ तो तो घोडा उपर चढि कै श्रीनाथजी द्वार जाइए।—दो सौ बावन पृ० १६३।

अवलक[२]—सज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व। अवलख।

अवलख[१]—वि० [अ० अवलक] १ कबरा। दो रगा। सफेद और काला अथवा सफेद और लाल रग का।

अवलख[२]—सज्ञा पुं० १ वह घोडा जिसका रग सफेद और काला हो। उ०—अवलख अवरस लखी सिराजी। चौधर लाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)। २ वह बैल जिसका रग सफेद और काला हो। कबरा बैल।

अवलख[३]—वि० [सं० अवलेक्ष] सफेद। श्वेत।

अवलखा—सज्ञा स्त्री० [अ० अवलक्] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोच का रग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बगाल तथा बिहार मे होता है और पत्तियो तथा परों का घोसला बनाता है। यह एक बार मे चार पाँच अडे देता है। इसकी लबाई लगभग नौ इच होती है।

अवला—सज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री। नारी। उ०—पावस कठिन जु पीर अवला क्यो करि सहि सकै। तेऊ धरत न धीर रक्तबीज सम ऊपजै।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—**अवलासेन**=कामदेव।

अवलावल—सज्ञा पुं० [स०] महादेव शिव। [को०]।

अवलिⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छवि अवलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५३३।

अवलीⓊ—सज्ञा स्त्री० [स० अवली] १ पक्ति। २ समूह। उ०—बर बिहग अवली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २।

अवल्य[१]—सज्ञा पु० [सं०] १ दुर्बलता। कमजोरी। २ बीमारी। रुग्णावस्था [को०]।

अवल्य[२]—वि० जो बलकारक न हो।

अववाव—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २ वह अधिक कर जो लगान पर जमीदार को असामी से मिलता है। भेंजा। अधिक कर। लगता। ३ वह कर जो गाँव के व्यापारियो तथा लोहार सोनार आदि पेशेवालो से जमीदार को मिलता है। घरद्वारी। बसौरी। भिटौरी।

अवस[१]—वि० [सं० अवश] दे० 'अवश'। उ०—चदन मे नाग मद भरयो इद्रनाग, विष भरो शेषनाग, कहै उपमा अवस को।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अवस[२]—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। बेकार [को०]।

अवहिⓊ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—अवहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ९८।

अवाँहⓊ—वि० [हिं० अ+बाँह] १ बिना बाँह का। जिसे बाँह न हो। अबाहु। असहाय। अनाथ। बेसहारा।

अवा—सज्ञा पुं० [अ०] अगे से मिलता जुलता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अगे के बराबर या उससे कुछ अधिक लबा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमे छह कलियाँ होती है और सामने केवल दो घुडियाँ या तुमके लगते हैं। कोई कोई इसमे गरेबान भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानो के समय से चला आता है।

अवाकⓊ—वि० [हिं] दे० 'अवाक'। उ०—रतन अमो क परखर रहा जाहरी थाक। दरिया तहाँ कीमत नही, उनमन भया अवाक।—दरिया० बानी, पृ० २०।

अवाट—सज्ञा पुं० [हिं०] खराब रास्ता। कुपथ। उ०—मन कर्म मर्म अवाट परिहरि बाट घर को देत है—कबीर ना०, पृ० ४०१।

यौ०—**अवाट सवाट**=अडबड। गलत सलत।

अवातⓊ—वि०—[स० अवात] [स्त्री० अवाती] १ बिना वायु का। २ जिसे वायु न हिलाती हो। ३ भीतर भीतर सुलगनेवाला। उ०—आई तजि हौं तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति तातीसी। कहै पद्माकर घरीक ही मे घन श्याम काम तौ कतलबाज कुज ह्वै है काती सी। याही छिन वाही सो न मोहन मिलौगे जौ पै लगनि लगाई एती अगिनि अवाती सी। राउरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि, नेह भरी नागरी की देह दिया बाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अवादⓊ—वि० [सं० अवाद] वादशून्य। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परसाद। रहित रहै पद राखिके जिव से होय अवाद।—कबीर (शब्द०)।

अवादान—वि० [फा० आबादान] बसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अवादान रहे।—(फकीरो की बोली)।

अवादानी—सज्ञा स्त्री० [फा० आबादानी] १ पूर्णता। बस्ती। उ०—भूखे को अन्न पियासे को पानी। जगत जगत अवादानी (शब्द०)। २ शुभचिंतकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अवादानी (शब्द०)। ३. चहल पहल। मनोरजकता। उ०—जहाँ रहैं मियाँ रमजानी, वहीं होय अवादानी (शब्द०)।

अवाध—वि [सं०] १ बाधारहित। बेरोक। उ०—हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध।—कामायनी पृ० ४८। २ निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरुपम निरुपाधी बसै जासु उर सदा अबाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३ असीम। अपरिमित। अपार। बेहद। उ०—अकल अनीह अवाध अभेद नेति नेति कहि गावहिं वेद।—सूर० (शब्द०)।

अवाधगति—वि० [सं० अवाध+गति] जिसकी गति अबाध या बेरोक हो।

अवाधाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अबाध'। उ०—रघुपति महिमा अगुन अबाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अवाधित—वि० [स०] १ बाधा रहित। बेरोक। २ स्वच्छद। स्वतत्र। ३ अनिषिद्ध।

अवाध्य—वि० [स०] १ बेरोक। जो रोका न जा सके। २ अनिवार्य ३ जो वश मे न किया जा सके।

अवानⓊ—वि० [स० अ=नहीं+हिं० बाना=चिह्न] शस्त्ररहित। हथियार छोडे हुए। निहत्था। उ०—चढे पिट्ठ दस कोस लो सब अजवीर अवान। फटे पाय सूरज बली ठाढौ ता मैदान।—सूदन (शब्द०)।

अवाबील—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रग की चिडिया। कृष्ण। कन्हैया। देवबिलाई।

विशेष—इसकी छाती का रग खुलता होता है। इसके पैर बहुत छोटे छोटे होते हैं, जिसके कारण यह बैठ नहीं सकती और दिन भर बहुत ऊपर आकाश मे झुड के साथ उडती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशो मे होती है। इसके घोसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अबार—संज्ञा स्त्री० [स० अ+बार, प्रा० बार=समय] असमय। अधिक देर। विलंब। बेर। कुबेला। उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह लीन्ह अवतार। माता ताकी जमुनजल लेन गई एक बार। लागी तहाँ अबार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार। परसुराम को यो कही माँ को वेगि सहार।—सूर (शब्द०)।

क्रि०प्र०—लगना।—होना। उ०—बहुत अबार कतहुँ खेलत भई कहाँ रहे मेरे सारंगपानी।—सूर (शब्द०)।

अबारजा—संज्ञा पुं० [फा० अबारिजह=बही, अबार्चा, अबारिजह (फं०)] १ रोजनामचा। २ जमाखर्च की बही। उ०—करि अबारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापै आवै।—सूर०, १।१४२।

अबाल[1]—वि० [सं०] १ जो बालक न हो। जवान। २ अबालकोचित। ३ पूर्ण। पूरा। जैसे, अबालेंदु=पूर्ण चंद्रमा।

अबाल[2]†—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जो चरखे की पँखुड़ियों को बाँध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है।

अबाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बंबई प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम में मिलता है। इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है। यह झुंड में रहता है और अपना घोंसला घास और पर का बनाता है। बेंगनकुटी।

अबास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवास] रहने का स्थान। घर। मकान। उ०—(क) ऊँचे अबास बहु छबज प्रकास। सोभा विलास, सोभै प्रकास।—केशव (शब्द०)। (ख) कबिरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अबास।—कबीर ग्र०, पृ० ६४।

अबाह्य—वि० [सं०] १ बाहरी नहीं। भीतरी। २ पूर्णतः परिचित। ३ जिसमें बाहरी स्थिति न हो [को०]।

अबिगि(पु)—वि० [सं० अव्यङ्ग्य] व्यंग्यरहित। उ०—बचन अबिगि कहै रस भोय।—नंद० ग्र०, पृ० १४७।

अबिंधन—संज्ञा पुं० [सं० अविन्धन] १ समुद्र। २ बड़वानल।

अबिंध्य—संज्ञा पुं० [सं० अविन्ध्य] रावण का एक मंत्री। यह बड़ा विद्वान्, शीलवान् और वृद्ध मंत्री था। इसने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था।

अबिकारी—वि० [सं० अविकारी] दे० 'अविकारी'। उ०—अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी।—मानस, १।१२३।

अबिगत(पु)—वि० [सं० अविगत] १ जो विगत न हो। जो जाना न जाय। उ०—अबिगत गति कछु कहत न आवै। ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।—सूर० १।२।

अबिगति[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविगत'। उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अबिगति की गति लखी न जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १०४।

अबिगति[2](पु)—संज्ञा स्त्री० अविगत अवस्था या दशा। उ०—तुलसी राम प्रमाद बिन, अबिगति जानि न जात।—सं० सप्तक, पृ० ४५।

अबिचल(पु)—वि० [सं० अविचल] दे० 'अविचल'। उ०—रघुबीर रबिर पयान प्रीति जानि परम सुहावनी। जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।—मानस, ५।३५।

अबिछीन(पु)—वि० [सं० अविच्छिन्न] जो विच्छिन्न या टूटा न हो। उ०—औरौ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रवीन। जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अबिछीन।—मानस, ७।११६।

अबितालीक(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफ्ताल, हिं० अफ्तालो] सेना का वह दल जो आगे जाकर पड़ाव आदि की व्यवस्था करता है। उ०—काको अयान निकारन को उर आए हैं जोवन के अबितालो।—केशव ग्र०, पृ० १०।

अबिद(पु)—वि० [सं० अवित्=अज्ञ] ज्ञानशून्य। अविद्वान्। मूर्ख। उ०—त्रिविध भाँति को सबद बर, बिघट न नट परमान। कारन अबिरल अल अपितु, तुलसी अबिद भुलान।—सं० सप्तक, पृ० २६।

अबिद्ध—वि० [सं० अविद्ध] अनवेधा। बिना छिदा हुआ। दे० 'अविद्ध'।

अबिद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्धकर्णी'।

अबिद्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्या'।

अबिधा†—वि० [सं० अविधि] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो। अव्यवस्थित।

अबिनय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविनय'। उ०—स्वामिनि अबिनय छमिबि हमारी।—मानस, २।११६।

अबिनासी(पु)—वि० [हिं०] 'अविनाशी'। उ०—अबिनासी मोहि ते चल्या, पुरई मेरी आस।—कबीर ग्र०, पृ० ७०।

अबिबेक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविवेक'। उ०—प्रभु अपने अबिबेक तें, बूझौ स्वामी तोहि।—मानस, ७।९३।

अबिबेकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविवेकी'। उ०—जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि।—मानस, २।१४२।

अबिरल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरल'।

अबिरुद्ध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरुद्ध'। उ०—नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५।

अबिरोध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविरोध'। उ०—समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा।—मानस, २।२९५।

अबिरोधी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरोधी'। उ०—धर्म बिचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अबिरोधि। धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम सुसोधि।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १९१।

अबिर्था(पु)†—वि० [सं० आ=पूरी तरह+व्यर्थ बिरथा, बिर्था] बिरथा, दे० 'वृथा'। उ०—माया कारन बिद्या बेचहु जन्म अबिर्था जाई।—कबीर ग्र०, पृ० ३०३।

अबिलंब—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] दे० 'अविलंब'। उ०—जय, जय, जय बलभद्र बीर धीर गंभीर अबिलंब अलबहारी।—घनानंद, पृ० ५५०।

अबिसेक(पु)—वि० [हिं०] दे० अभिषेक। उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक। स्याम मति से अंग चंदन अमी के अबिसेक।—सा० लहरी, पृ० १८५।

अबिहड(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविहड़'। उ०—आदि मध्य अरु अंत लौं अबिहड़ सदा अभंग। कबीर उस करतार की सेवग तजै न संग।—कबीर ग्र०, पृ० ८६।

अविहित—Ⓤ वि० [सं० अविहित] दे० 'अविहित'। उ०—राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी।—मानस, १।११९।

अवी Ⓤ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—जो तूँ कह्या हमारा मानै नाही अवी करो तुम छाई।—प्राण, पृ० १२२।

अबीज[1]—वि [स०] १ बीजविहीन। २ उत्पादन-क्षमता-रहित। नपुंसक। ३ कारणरहित [को०]।

अबीज[2]—संज्ञा पु० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०]।

यौ०—अबीजविक्रयी।

अबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर की एक किस्म। बेदाना अंगूर। किशमिश।

अबीर—संज्ञा पुं० [अ० अबीर] १ एक रंगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनों में अपने इष्ट मित्रों पर डालते हैं। यह प्रायः लाल रंग की होती है और सिंघाड़े के आटे में हलदी, और चूना मिला कर बनती है। अब अरारोट और अंगरेजी बुकनियों से अधिक तैयार की जाती है। गुलाल। उ०—अगर धूप बहु जनु अँधियारी उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी।—मानस। २ अभ्रक का चूर्ण जिसे होली में लोग अपने इष्ट मित्रों के मुख पर मलते हैं, कहीं कहीं इसे भी अबीर कहते हैं। बुक्का। ३. श्वेत रंग की सुगंध मिली बुकनी जो वल्लभ कुल के मंदिरों में होली में उड़ाई जाती है।

अबीरी[1]—वि० [अ० अबीरी] अबीर के समान या अबीर से बनी। अबीर के रंग का। कुछ कुछ स्याही लिए लाल रंग का।

अबीरी[2]—संज्ञा पु० अबीरी रंग।

अबीह Ⓤ—वि० [सं० अ=नहीं+भीति या भी, प्रा० बीह] भयरहित। निर्भय। निडर। उ०—सांसा सोग संताप तज, आपा होय अबीह। शून्य सेज में पाइया हरिया अविनाशीह।—राम० धर्म०, पृ० ७५।

अबुझ Ⓤ—वि० [हिं०] १ दे० 'अबूझ'। २ न बुझनेवाला।

अबुध—वि० [सं०] १ अबोध। नासमझ। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—भानु बस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।—तुलसी (शब्द०) २ अनजान। उ०—रह जाता नर लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावों से।—साकेत, पृ० ३७१। ३ बेहोश। मूर्च्छित। बेसुध। उ०—एक पहर यों अबुध ह्वै रही।—नंद ग्र०, पृ० १३८।

अबुद्ध—वि० [सं०] दे० 'अबुध' [को०]।

अबुद्धि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार या ज्ञान का अभाव। अज्ञान। अविद्या। २ मूर्खता। बदमाशी [को०]।

अबुद्धि[2]—वि० बुद्धिविहीन। मूर्ख। नादान।

अबुहाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अमुआना'।

अबू—संज्ञा पुं० [अ०] बानिंद। पिता। बाप [को०]।

अबूझ—वि० [सं० अबुद्ध, प्रा० अबुज्झ] अबोध। नासमझ। नादान। उ—(क) कोने परा न छूटिहै सुनु रे जीव अबूझ। कबीर मांड मैदान में करि इंद्रिन सों जूझ।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ।—तुलसी (शब्द०)।

अबे—अव्य० [सं० अयि, पु० हिं अबे] अरे। हे। इस संबोधन का प्रयोग बड़े लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं। जैसे—अबे, सुनता नहीं है, इतनी देर से पुकार रहे हैं। (शब्द०)

मुहा०—अबे तबे करना=निरादर करना। निरादरसूचक वाक्य बोलना। कच्ची पक्की बोलना।

अबेध Ⓤ—वि० [सं० अविद्ध] जो छिदा न हो। बिना बेधा। अनविधा। उ०—नौकै रतन अबेध अलौकिक नहिं गाहक नहिं सांई। चिमिकि चिमिकि चमकै दृग दुहुँ दिसि अरब रहा छरि आई।—कबीर (शब्द०)।

अबेर Ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [सं० अबेला] विलंब। देर। अतिक्रम। उ०—आवत पिय नहिं दीखती मइली बहुत अबेर।—संत बाणी, भा० १ पृ० ११३।

अबेव Ⓤ—वि० [सं० अभेद, प्रा०, अभेव] भेदरहित। समभाव युक्त। उ०—दोऊ मिले अबेव साहिब सेवक एक से।—पलटू०, पृ० २२।

अबेश Ⓤ—वि० [सं० अ=अति+फा० बेश=अधिक] अधिक। बहुत। उ०—कीर कदम मजुका पूरण सौरभ उडत अबेश। भ्रमर धूप सौरभ नासा मुख बरषत परम मुदेश।—सूर (शब्द०)।

अबैं Ⓤ—क्रि० वि० [हिं० अब ही] अभी। तत्काल। इसी समय।

अबैन Ⓤ—वि० [हिं० अ+बैन] १ वाणीविहीन। मौन। चुप। २ दूषित वचन। अवाच्य। कुवचन।

अबैर—संज्ञा पुं० [सं० अवैर] अविरोध। अद्वेष। वैर का अभाव। उ०—वैर से नहीं अवैर से हृदय जीतने की विचारपरंपरा के माननेवाले। किन्नर०। पृ० १०।

अबोध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान। मूर्खता।

अबोध[2]—वि० अनजान। नादान। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके।—कामायनी, पृ० १६३।

यौ०—अबोधगम्य=जो समझ में न आ सके।

अबोध्य—वि० [सं०] जो समझ में न आ सके। समझ में न आने योग्य [को०]।

अबोल[1] Ⓤ—वि० [सं० अ+हिं० बोल] १ मौन। अवाक्। उ०—(क) बोलहिं सुअन ढेंक बक लेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पीरी पाती पावते पीरी चढी कपोल। कोरे बदन विलोकि के मुदिता भई अबोल (शब्द०)। २ जिसके विषय में बोल न सकें। उ० जहाँ बोल अक्षर नहिं आया। जहाँ अक्षर तहँ मनहिं दृढाया। बोल अबोल एक है सोई। जिन या लखा सो बिरला कोई।—कबीर (शब्द०)।

अबोल[2]—संज्ञा पुं० कुबोल। बुरी बोली।

अबोलना—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० बोलना] न बोलने की स्थिति। असंभाषण। उ०—पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँझ लग परभात। अबोलना में अवध बीती, काहे की कुसलात।—संत बाणी०, भा० २, पृ० ७०।

अबोला—सज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० बोलना] रंज से बोलचाल का न होना। उ०—मिलि खेलिय जा सँग बालक तें कहु तासो अबोलो क्यो जात कियो।—केशव (शब्द०)।

अब्ज—सज्ञा पुं० [स०] १ जल मे उत्पन्न वस्तु। २ कमल। पद्म। उ०—अकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमनतर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७। ३ शख ४ निचुल। इज्जल। हिज्जल। ईजड का पेड़। ५ चद्रमा। ६ धन्वतरि। ७ कपूर। ८ एक सख्या। सौ करोड। अरब। ९ अरब के स्थान पर आनेवाली सख्या १,००,००,००,०००।

यौ०—अब्जकर्णिका—कमल का छाता। अब्जज=(१) ब्रह्मा। (२) यात्रा मे एक योग।

विशेष—यह तब होता है जब बुध अपनी राशि और अपने अश का हो और लग्न मे शुक्र या बृहस्पति हो।

अब्जदृक्, अब्जनयन, अब्जनेत्र=कमलनयन। कमल जैसे नेत्रोवाला। अब्जबाधव=सूर्य। अब्जभव=ब्रह्मा। अब्जभू=ब्रह्मा। अब्जभोग=(१) कमल की जड। भँसीड। (२) कौडी। वराटक। अब्जयोनि=ब्रह्मा। अब्जवाहन=शिव। अब्जवाहना=लक्ष्मी। अब्जस्थित=ब्रह्मा। अब्जहस्त=सूर्य। अब्जासन=ब्रह्मा।

अब्जद—सज्ञा पु० [अ०] १ अरबी फारसी वर्णमाला के अक्षर। २ अरबी अक्षरो का वह क्रम जिसमे प्रति अक्षर का मूल्य सख्या में निर्धारित है।

विशेष—इससे लोगो के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है। कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो।

अब्जदख्वा—सज्ञा पुं० [अ० अब्जद+फा० ख्वाँ] अरबी फारसी वर्णमाला पढनेवाला विद्यार्थी। नवसिखिया।

अब्जा—सज्ञा स्त्री० [स०] लक्ष्मी।

अब्जाद—सज्ञा पु० [सं०] हस [को०]।

अब्जिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमलवन। पद्मसमूह। २ पद्मलता। पोनार। ३ कमलिनी (को०)। ४ कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय (को०)।

यौ०—अब्जिनीपति=सूर्य।

अब्द[1]—सज्ञा पु० [अ०] दास। सेवक। गुलाम। अनुचर। भक्त [को०]।

अब्द[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ वर्ष। साल। २ मेघ। बादल। उ०—मर्कट जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहिं। अब्द शब्द करि गर्जि तर्जि झुकि झर्पि झपट्टहिं।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२। ३ एक पर्वत। ४. नागरमोथा। ५ कपूर। ६. आकाश। उ०—जय जय शब्द अब्द अति होई। वर्षत कुसुम पुरंदर सोई।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—अब्दप=वर्षाधिप। इद्र। अब्दज्ञ=ज्योतिषी। अब्दवाहन इद्र। अब्दसार=कपूर।

अब्दकोश—सज्ञा पुं० [स० अब्द+कोश, अं० इयरबुक] १ वह वार्षिक सग्रहग्र थ जिसमे वर्ष के मुख्य व्यक्तियो, घटनाओं, जानकारियो आदि का विवरण मिले। २. वर्ष वर्ष का विवरणसग्रह।

अब्दाली—वि०, सज्ञा पुं० [फा०] अब्दाल का निवासी (व्यक्ति)।

विशेष—अब्दाल वासी होने से अहमदशाह के नाम के आगे यह शब्द जुडता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० मे आक्रमण किया था। इसका युद्ध मराठो से हुआ था जिसमे मराठो की हार हुई थी। इसकी उपाधि दुर्रए दुर्रानी भी थी।

अब्दि—सज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

अब्दुर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग या किला जो चारो ओर से जल से घिरा हो। वह किला जिसके चारो ओर खाई हो।

अब्धि—सज्ञा पुं० [स०] १ समुद्र। सागर। २ सरोवर। ताल। ३ सात की सख्या। ४ चार की सख्या का द्योतक (को०)।

अब्धिकफ—सज्ञा पु० [सं०] समुद्रफेन।

अब्धिज—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अब्धिजा] १ समुद्र से पैदा हुई वस्तु। २ शख। ३ चद्रमा। ४ अश्विनीकुमार। ५ नमक (को०)।

अब्धिजा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लक्ष्मी। २ वारुणी। मदिरा [को०]।

अब्धिद्वीपा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ समुद्र से घिरा भूखड। टापू [को०]।

अब्धिनगरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारकापुरी।

अब्धिनवनीतक—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा [को०]।

अब्धिफेन—सज्ञा पु० [सं०] समुद्री झाग। समुद्रफेन [को०]।

अब्धिमडूकी—सज्ञा स्त्री० [सं० अब्धिमण्डूकी] वह सीप जिसमे मोती रहता है।

अब्धिशय—सज्ञा पु० [सं०] विष्णु।

अब्धिशयन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अब्धिशय' [को०]।

अब्धिसार—सज्ञा पुं० [सं०] रत्न [को०]।

अब्ध्यग्नि—सज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र की अग्नि। वडवानल।

अब्बर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अबल'। उ०—बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सब्बै, अब्बर की छाक लौं सनेही मिसि जायगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८।

अब्बा—सज्ञा पु० [अ० अब=पिता का संबोधन आवा] पिता। बाप।

अब्बाजान—सज्ञा पुं० [अ० आबा+फा० जान] पिता के लिये आदरसूचक सबोधन।

अब्बास—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० अब्बासी] १ एक पौधा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है। गुल अब्बास।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकीली और लबी होती हैं। कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड को चोबचीनी कहते हैं। इसके फूल प्राय लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं। फूलो के झड जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पडते हैं।

२ हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो अब्बासी खलीफाओ के पूर्वज थे।

अब्बासी[1]—सज्ञा स्त्री० [अ०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास।

अब्बासी[2]—वि० [अ०] १ गुलबासी के फूल के रग का। २ हजरत अब्बास के वशज या संबंधी।

अब्बिंदु—सज्ञा पुं० [सं० अब्बिन्दु] १. जलबिंदु। २. ओस। अश्रुबिंदु [को०]।

अब्बीह(पु)—वि० [सं० अप, प्रा० अव्व+बीह] निर्भय। निडर। उ०—दिन सोह अब्बीह आपेट खिल्लै।—पृ० रा०, १।३१२।

अव्बू(पु)—सज्ञा पु० [सं० अर्बुद] आबू। अरवली पर्वतश्रृखला मे स्थित एक स्थान। उ०—अबू वै द्रुग भाग, अव्बु वष्यौं जिहि पायन।—पृ० रा०, १२।३०।

अव्भ(पु)—सज्ञा पु० [स० अव्भ्र, प्रा० अव्भ] दे० 'अभ्र'। उ०—वज्जत सार गज्जत अव्भ।—हम्मीर०, पृ० ८२।

अव्भक्ष[1]—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०]।

अव्भक्ष[2]—सज्ञा पु० [स०] पानी मे रहनेवाला साँप। डेडहा साँप।

अव्भक्षण—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमे केवल जल पीते हैं। जल पीकर रहना [को०]।

अव्भ्र—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभ्र' [को०]।

अव्यगि(पु)—वि० दे० 'अव्यग्य'। उ०—प्रीतम कौं जव सागस लहै। व्यगि अव्यगि वचन कछु कहै।—नद० ग्र०, पृ० १४७।

अव्वाई(पु)†—वि० [सं० अ+हिं० व्याई] जिसने बच्चा न जना हो। जिसे प्रसव न हुआ हो। उ०—जगल मे चरैछी सो अव्याई झोटी आई।—शिखर०, पृ० ३।

अव्याहत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्याहत'। उ०—अव्याहत गति सभु प्रसादा।—मानस, ७।११०।

अव्र—सज्ञा पुं० [फा० तुल सं० आभ्र] वादल। उ०—विना आव जहँ वहु गुल फूले, अव्र विना जहँ वरसै।—मलूक०, पृ० ४।

अव्रन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण'। उ०—अव्रन वरण सो भेद निनारा। घट घट वसे लिप्त तन धारा।—कवीर सा०, पृ० ८७३।

अव्राह्मण्य[1]—सज्ञा पु० [स०] १ वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो। २ हिंसादि कर्म। ३ नाटकादि मे दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के वोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य मे उद्घोषित शब्द। कही कही ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अव्राह्मणयम् शब्द का उच्चारण करता है।

अव्राह्मण्य[2]—वि० [सं०] १ ब्राह्मण के अयोग्य। २ जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण मे न हो। जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो। ब्राह्मणविरोधी।

अव्राह्मण[1]—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो। ब्राह्मणेतर व्यक्ति। उ०—एक अव्राह्मण इतना विवेकवान नही हो सकता।—सं० दरिया, पृ० ६०।

अव्राह्मण्य[2]—वि० [स०] ब्राह्मणविरहित। ब्राह्मणविहीन।

अव्राह्मण्य—सज्ञा पु० [स०] १ ब्राह्मणोचित कर्तव्यो की अवज्ञा या उल्लघन। २ दे० 'अव्रह्मण्य'।

अव्रू—सज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह। भ्रू। दे० 'अवरू'।

अव्रे अवर—सज्ञा पुं० [फा०] दे० 'अवर'।

अभंग[1]—वि० [स० अभङ्ग] १ अखड। अटूट। पूर्ण। उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभग।—अपरा, पृ० ६४। २ अनाशवान्। न मिटनेवाला। उ०—आदि, मध्य अरु अत लौ, अविहड सदा अभग। कवीर उस करता की सेवग तजै न सग।—कवीर ग्र०, पृ० ८६। ३ जिसका क्रम न टूटे। लगातार। उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नही पुकार अभग।—साकेत, पृ० ३८५। ४ जो भग या नष्ट न किया जा सके। सुदृढ। मजवूत। उ०—निपट अभग गढ कोट सब हारे तै।—भूषण ग्र० पृ० ८२।

अभग[2]—सज्ञा पु० १ सगीत मे एक प्रकार का ताल जिसमे एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। २. एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी मे होता है। जैसे—तुकाराम के अभग। ३ एक श्लेप जिसमे शब्द को विभक्त किए विना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो। अर्थश्लेप (को०)। ४ भग या पराजय का अभाव (को०)।

अभगपद—सज्ञा पु० [स० अभङ्गपद] श्लेप अलकार का एक भेद। वह श्लेप जिसमे अक्षरो को इधर उधर न करना पडे और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें। उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन मे रहत सदाय। तिन कमलन की हरत छवि तेरे नैन सुभाय (शब्द०)। यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ विना शब्दो को तोडे हुए हो जाते हैं। (ख) रावन सिर सरोज वनचारी। चलि रघुवीर सिली मुख धारी।—मानस, ६।६१।

अभगिनी—वि० स्त्री० [सं० अभङ्ग+इनी (प्रत्य०)] जो विच्छिन्न न हो। उ०—तन से न सही, अभगिनी, मन से है हम किंतु सगिनी।—साकेत, पृ० ३६४।

अभगी(पु)—वि० [सं० अभङ्गिनी] १ अभग। पूर्ण। अखड। २. जिसके किसी अश का हरण न हो सके। जिसका कोई कुछ न ले सके। उ०—आए माई दुरँग स्याम के सगी। सूधी कहि सवहिनि समुझावत, ते साँचे सरवगी। औरनि कौ सरवस लै मारत आपुन भए अभगी।—सूर०, १०।३५११।

अभगुर—वि० [सं० अभङ्गुर] १ जो टूटनेवाला न हो। दृढ। मजबूत। २ अनाशवान्। न मिटनेवाला।

अभंजन[1]—वि० [सं० अभञ्जन] जिसका भजन न हो सके। अटूट। अखड।

अभजन[2]—सज्ञा पुं० द्रव वा तरल पदार्थ जिनके टुकडे नही हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि।

अभ(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—जिण दिन स्वामी अभ न गभ। ये तो जुग सूना गया।—वी० रासो, पृ० ८२।

अभक्त—वि० [सं०] १ जो भक्त न हो। भक्तिशून्य। श्रद्धाहीन। २ भगवद्विमुख। उ०—भक्त अभक्त सवै पुनि खाई। सबको भर्ता निरजन राई।—कवीर सा०, पृ० ५७। जो बाँटा न गया हो। जो अलग न किया गया हो। जिसके टुकडे न हुए हों। समूचा।

अभक्ष[1]—सज्ञा पुं० [सं०] भोजन न करना। उपवास [को०]।

अभक्ष[2]—वि० दे० 'अभक्ष्य'।

अभक्षण—सज्ञा पु० दे० 'अभक्ष'।

अभक्ष्य[1]—वि० [स०] १ अखाद्य। अभोज्य। जो खाने के योग्य न हो। २ जिसके खाने का धर्मशास्त्र मे निषेध हो।

अभक्ष्य[2]—सज्ञा पुं० भोजन के लिये निषिद्ध खाद्य पदार्थ [को०]।

अभख(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभक्ष्य'। उ०—केचित अभख भखत न सकाही। मदिरा पान मास पुनि खाही।—सुदर ग्र०, पृ० ८२।

अभग—वि० [स०] अभागा। भाग्यहीन [को०]।

अभगत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभक्त'। उ०—तदपि करहिं सम विषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।—मानस, २।२१८।

अभग्गⓊ—वि० [स० अभग्न] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ०—तहँ मु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभग्ग।—पृ० रा०, २०। १।

अभग्न—वि० [स०] अखड। जो खडित न हुआ हो। समूचा। उ०—जगत्तत्व की खोज मे लग्न जहाँ ऋषियो ने अभग्न किया श्रम था।—इतिहास, पृ० ६०६।

अभद्र[1]—वि० [स०] १ अमागलिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २ अश्रेष्ठ। असाधु। अशिष्ट। बेहूदा। कमीना।

अभद्र[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ बुराई। पाप। दुष्टता। २ शोक [को०]।

अभद्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अमागलिकता। अशुभ। २. अशिष्टता। असाधुता। बुराई। खोटाई। बेहूदगी।

अभपदⓊ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—अभपद भुजदड मूल, पीन अस नानुकून, कनक मेखला दुकून दामिनी धरखी री।—सूर०, १०।१३८४।

अभयकर—वि० [स० अभयङ्कर] १ जो भयकर न हो। सौम्य। २ अभय करनेवाला [को०]।

अभय[1]—वि० [स०] [स्त्री० अभया] निर्भय। निडर। बेखौफ। उ०—जिन्ह कर भुज बल पाइ दसानन। अभय भए विचरत मुनि कानन।—मानस, ३।१६।

मुहा०—**अभय देना वा अभय बाँह देना**=भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ०—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहू गयो। उनहूँ ताहि अभय नहिं दयो।—सूर० (शब्द०)। (ख) लछिमन अभयबाँह तेहि दीन्ही।—मानस ४।२०।

यौ०—**अभयदान। अभयवचन। अभयबाँह।**

अभय[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ उशीर। खस। वीरणमूल। २ निर्भयता। ३ परमात्मा। ४ परमात्मविषयक ज्ञान। ५ भौतिक सपत्ति अभाव। सासारिक सपदाविहीनता। ६ अभयसूचक एक मुद्रा। ७ शिव। ८ भय से प्राप्त त्राण। ९ यात्रा सबधी एक योग [को०]।

अभयचारी—सज्ञा पुं० [स० अभयचारिन्] वे जगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिंडिम—सज्ञा पुं० [स० अभयडिण्डिम] १ सुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को०]।

अभयद[1]—वि० [सं०] दे० 'अभयदाता' [को०]।

अभयद[2]—सज्ञा पुं० १ विष्णु का एक नाम। २ जैनों के एक अर्हत [को०]।

अभयदक्षिणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सुरक्षा का वचन, आश्वासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। (को०)।

अभयदाता—वि० [स० अभय+दातृ] अभय देनेवाला। उ०—माडवी चित्त चातक नवाबुदवरण सरन तुलसीदास अभयदाता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७४।

अभयदान—सज्ञा पुं० [स०] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हो। अभयदान प्रहलादहि दीन्हो।—सूर० ७।२।

क्रि० प्र०—देना।

अभयदानी—वि० [सं० अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ०—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लाजै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।—राम च०, पृ० ९२।

अभयपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ सुरक्षा के आश्वासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को०]।

अभयपद—सज्ञा पुं० [सं० अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—पिता वचन खडै सो पापी, सोइ प्रहलादहि कीन्हो। निकसे खभ बीच तै नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हो।—सूर० १।१०४।

अभयप्रद—वि० [सं०] भय से विमुक्ति का आश्वासन देनेवाला। अभय देनेवाला (को०)।

अभयमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक तात्रिक मुद्रा। २ भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक सकेत [को०]।

अभययाचना—सज्ञा स्त्री० [स०] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को०]।

अभयवचन—सज्ञा पु० [सं०] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि० प्र०—देना।

अभयवन—सज्ञा पु० [सं०] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—सज्ञा पु० [स०] रक्षित वन सबधी राजनियम का भग या विघात। जैसे, उसमे घुसना, पेड काटना, लकडी तोडना आदि।

अभया[1]—वि० [सं०] निर्भया। बेडर की। निडर।

अभया[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हरीतकी या हड जिसमे पाँच रेखाएँ होती हैं। उ०—अभया सोठ चिरायत कना। सोचर मिर्चहि चूरन बना।—इद्रा०, पृ० १५१। २ दुर्गा का एक स्वरूप (को०)।

अभरⓊ—वि० [स० अ=अति+भर=भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ०—भाई रे गैया एक विरचि दियो है भार अभर भो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृपा तऊ न बुताई।—कबीर (शब्द०)।

अभरन[1]Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—इतनौ सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई। सूरदास कचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई।—सूर० १०।१६।

अभरन[2]Ⓤ—वि० [सं० अ+हिं० भरम=मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ०—उस बात की कसक हमारे मन से नही जाती जो बलराम ने तुम्हे अभरन किया था।—लल्लू० (शब्द०)।

अभरम[1]Ⓤ—वि० [सं० अ+भ्रम, हिं० भरम] १ भ्रम न करनेवाला। अभ्रात। अचूक। २ निशक। निडर। उ०—कृतवर्मा भट चल्यो अभरमा कचन बरमा।—गोपाल० (शब्द०)।

अभरम[2]—क्रि० वि० नि सदेह। बिना सशय। निश्चय।

अभरीⓊ†—सज्ञा स्त्री० [सं० अ+हिं० भरी] परिपूर्णता। उ०—अभरी थावै आथ सु चित सरसावै चाव।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ५०।

अभर्तृका—वि० स्त्री० [सं०] १ अविवाहिता कुमारी। २ पतिविहीन। विधवा [को०]।

अभर्मⓊ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभरम'। उ०—राम कह्यो जो तुम चह्यो यह दुर्लभ वर पर्म। पै मेरे सतसग ते होइहि सत्य अभर्म।—गोपाल० (शब्द०)।

अभलⓊ—वि० [स० अ+हिं० भल=भला] अश्रेष्ठ। बुरा। खराब।

अभव[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ न होना अनस्तित्व। २ नाश। प्रलय। ३ निर्वाण। मोक्ष (को०)।

अभव[2]—वि० जो उत्पन्न न हो। अजन्मा [को०]।

अभव्य[1]—वि० [स०] १ न होने योग्य। २ विलक्षण। अद्भुत। अनहोना। ३ अमागलिक। अशुभ। बुरा। अभागा। ४ अशिष्ट। बेहूदा। भद्दा। भोडा।

अभव्य[2]—सज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नही प्राप्त कर सकते।

अभाऊⓊ—वि० [स० अ+भाव] १ जो न भावे। जो अच्छा न लगे। उ०—भइ अज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ वरम्हाऊ।—जायसी ग्र०, पृ० ११४। २ जो न सोहे। अशोभित। उ०—काढहु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कुडन कनक जडाऊ।—जायसी (शब्द०)।

अभाग[1]—वि० [स०] १ बिना भाग का। बिना हिस्से का। २ अविभक्त।

अभाग[2]Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभाग्य'। उ०—सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।—मानस, २।२६०।

अभागा—वि० [स० अभाग्य] [स्त्री० अभागिन्, अभागिनी] मदभाग्य। भाग्यहीन। प्रारब्धहीन। बदकिस्मत। उ०—(क) अति खल जे विषई बक कागा। एहि सर निकट न जाइ अभागा।—मानस, १।३८। (ख) कैसे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने?—लहर, पृ० ७२।

अभागी—वि० [सं० अभागिन्] [वि० स्त्री० अभागिनी] १ जिसे कुछ भाग न मिले। जिसे हिस्सा न मिले। २ भाग्यहीन। बदकिस्मत। उ०—करनु राजु लका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।—मानस, ५।५३।

अभाग्य[1]—वि० [सं०] अभागवाला। भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अभाग्य[2]—सं० पु० [सं०] प्रारब्धहीनता। दुर्दैव। बुरा दिन। बदकिस्मती। उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहि हौं हरि पद कमल विछोही।—मानस, ६।९८।

अभाजन—सज्ञा पुं० [सं०] अपात्र। कुपात्र। बुरा आदमी।

अभाजैⓊ—वि० [सं० अविभाजित] जो विभक्त न हो। अखडित। समूचा पूर्ण। उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला। पूछौ म्हारा गुरू नै कहाँ बैसि खाइला।—गोरख०, पृ० १२८।

अभायⓊ—सज्ञा पुं० [स० अभाव] भावशून्यता। अनस्तित्व। असत्ता। उ०—त्यो ही कछु घूमि झूमि वेसुध गए कै हाय, पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११९।

अभारⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अभर'। उ०—दैव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम विचारू।—मानस, २।२६८।

अभाव[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अभता। अनस्तित्व। नेस्ती। अविद्यमानता। न होना। २ आधुनिक नैयायिको के मत के अनुसार वैशेषिक शास्त्र मे सातवाँ पदार्थ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्र थ मे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ये छ पदार्थ ही अभाव' माने गए हैं। अभाव पाँच प्रकार का है, यथा (क) **प्रागभाव**=जो किसी क्रिया और गुण के पहले न हो, जैसे, घडा बनने के पहले न था। (ख) **प्रध्वसाभाव**=जो एक बार होकर फिर न रहे, जैसे 'घडा बन कर टूट गया। (ग **अन्योन्याभाव**=एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ न होना, जैसे, घोडा बैल नही है और बैल घोडा नही है। (घ) **अत्यताभाव**=जो न कभी था, न है और न होगा, जैसे, आकाशकुसुम, वध्या का पुत्र। और (च) ससर्गाभाव=एक वस्तु के सबध मे दूसरे का अभाव, जैसे, घर मे घोडा नहीं है। ३ त्रुटि। टोटा। कमी। घाटा। जैसे, राजा के घर मे द्रव्य का कौन अभाव है। उ०—अपने अभाव की जडता मे वह रह न सकेगा कभी मग्न।—कामायनी, पृ० १५१। ३. नाश। मृत्यु [को०]। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान [को०]।

अभाव[2]—वि० भावरहित। स्नेहरहित। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान (को०)।

अभाव[3]Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अ=बुरा+भाव] कुभाव। दुर्भाव। विरोध। उ०—हम तिनको बहु भाँति खिझावा। उनके कबहुँ अभाव न आवा।—विश्राम (शब्द०)।

अभावन[1]Ⓤ—वि० [स० अ+भावन] सुदर। रुचिर। रुचिकर।

अभावन[2]Ⓤ—वि० [सं० अ=नहीं+भावन] असुदर। अरुचिकर। अप्रिय।

अभावना—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विवेक या निर्णय का अभाव। २ धार्मिक धारणाओ का अभाव (को०)।

अभावनीय—वि० [सं०] १ जो भावना मे न आ सके। अचिंतनीय। २ अशोभनीय। उ०—इसी असामजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे अभावनीय कार्य कर बैठता है।—मृग० पृ० ५५।

अभावपदार्थ—सज्ञा पुं० [सं०] भावशून्य पदार्थ। सत्ताहीन पदार्थ। असत् पदार्थ।

अभावप्रमाण—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे किसी किसी आचार्य के मत से एक प्रमाण जिसमे कारण के न होने से कार्य के न होने का ज्ञान हो। गौतम ने इसको प्रमाण मे नही लिया है।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो।

क्रि० प्र०—रहना।

अभावी—वि० [सं० अभाविन्] [वि० स्त्री० अभाविनी] १. जिसकी स्थिति की भावना न हो सके। २ न होनेवाला।

अभाव्य—वि० [सं०] दे० 'अभावी' [को०]।

अभाषण—सज्ञा पुं० [स०] भाषण का अभाव। न बोलना। मौन। उ०—मैं नही हूँ यो अभाषण योग्य।—साकेत, पृ० १८९।

अभाषित—वि० [स०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अभाष्य—वि० [सं०] न बोलने योग्य बात या व्यक्ति। उ०—लोग उन्हे अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४२।

यौ०—अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना।

अभास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभास'। उ०—कह हनुमत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति विधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।—मानस, ६।१२।

अभासना(पु)—क्रि० अ० [सं० आभास, हिं० अभास से नाम०] भासना। दिखाई देना। जान पडना। उ०—ककन, किंकिनि नूपन जिते। मोहि श्रीकृष्ण अभासत तिते।—नद ग्र० पृ० २६६।

अभितर(पु)—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर, प्रा० अब्भितर] दे० 'अभ्यतर'। उ०—उत्तम पुरुष की दशा जौं किसमिस दाख। बाहिज अभितर बिरागी मृदु अग है।—सुदर ग्र०, पृ० १००।

अभि—उप० [स०] एक उपसर्ग जो शब्दो मे लगकर उनमे इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—१ सामने। जैसे, अभ्युत्थान। अभ्यागत। २ बुरा। जैसे, अभियुक्त। ३ अधिक। जैसे, अभिलाषा। ४ समीप। जैसे, अभिचारिका। ५ बारबार, अच्छी तरह। जैसे, अभ्यास। ६ दूर। जैसे, अभिहरण। ७ ऊपर। जैसे, अभ्युदय।

अभिअतर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यतर'। उ०—प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअतर मल कबहुँ न जाई।—मानस, ७।४६।

अभिकपन—संज्ञा पुं० [सं० अभिकम्पन] तीव्र कपन। बुरी तरह काँपना [को०]।

अभिक[1]—वि० [स०] कामुक। कामी। विषयी।

अभिक[2]—संज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०]।

अभिकरण—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रभाव। २ आकर्षण। खिंचाव [को०]

अभिकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि का एक उपकरण। खेती का एक औजार [को०]।

अभिकाक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिकाङ्क्षा] चाह। इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकाक्षी—वि० [सं० अभिकाङ्क्षिन्] इच्छुक। अभिलाषी। मनोरथवाला [को०]।

अभिकाम[1]—वि० [स०] १ इच्छुक। अभिलाषी। २ प्रेमी। ३ कामुक [को०]।

अभिकाम[2]—संज्ञा पुं० १ प्रेम। प्यार। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकृति—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का छद जिसमे १०० वर्ण या मात्राएँ होती है [को०]।

अभिक्रदन—संज्ञा पु० [स० अभिक्रन्दन] चिल्लाहट। गर्जन। शोर [को०]

अभिक्रम—संज्ञा पुं० [स०] १ सुविचारित आक्रमण। धावा। उ०—देखि देखि विक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के बाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं।—रत्नाकर, भा० २ पृ० १६२। २ आरोहण (को०)। ३ प्रारभ। शुरुआत (को०)। प्रयत्न। चेष्टा (को०)।

अभिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का शत्रु के सम्मुख जाना। चढाई। धावा। २. दे० 'अभिक्रम'।

अभिक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिक्रान्ति] दे० 'अभिक्रमण' [को०]।

अभिक्रांती—वि० [सं० अभिक्रान्तिन्] १ जो पहुँच गया हो। २. जिसने आरभ कर दिया हो। आरभक [को०]।

अभिक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना। कुवाच्य बोलना। २ चिल्लाना।

अभिक्रोशक—संज्ञा पु० [स०] १ जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति। २ आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला

अभिक्षिप्त—वि० [सं०] फेंका हुआ। तिरस्कृत [को०]।

अभिख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाम। यश। कीर्ति। २ शोभा। ३ कुख्याति (को०)। ४ महात्म्य। महिमा (को०)। बुद्धि। धी (को०)। ५ नाम (को०)। ६ पुकारना। सबोधन। ७. बताना। कहना (को०)। ८ शब्द। पर्याय (को०)। व्यक्ति [को०]।

अभिख्यात—वि० [स०] १ कीर्तिशाली। २ विख्यात। मशहूर [को०]।

अभिख्यान—संज्ञा पुं० [स०] नाम। प्रसिद्धि। यश। कीर्ति [को०]।

अभिगम—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिगमन' [को०]।

अभिगमन—संज्ञा पुं० [स०] १ पास जाना। पहुँचना। २ सहवास। सभोग ३ देवताओ के स्थान को झाड़ू देकर और लीप पोत कर साफ करना। ४ समझना।

अभिगम्य—वि० [स०] १ अभिगमन के योग्य। २ बोधगम्य [को०]।

अभिगामी—वि० [स० अभिगामिन्] [स्त्री० अभिगामिनी] १ पास जानेवाला। २ सहवास या सभोग करनेवाला। जैसे—ऋतुकालाभिगामी।

अभिगुजन—संज्ञा पु० [स० अभि + गुञ्जन] मधुर ध्वनि। रसीला स्वर।

अभिगुजी(पु)—वि० [हिं०] अभिगुजन करनेवाली। उ०—मधुर अधर अभिगुजी धरैं। कान्ह मुरलिया सुर सग ररैं।—घनानद० पृ० १८६।

अभिगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ छिपाकर रखना। सँभालकर रखना। २ आत्मसयमन [को०]।

अभिगूँज—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिगुजन'।

अभिगोप्ता—वि० [स० अभिगोप्तृ] छिपा रखनेवाला। बचा रखनेवाला। सरक्षणकर्ता [को०]।

अभिग्रस्त—वि० [स०] शत्रु द्वारा दबाया हुआ। आक्रात [को०]।

अभिग्रह—संज्ञा पु० [स०] १ लेना। आदान। ग्रहण। स्वीकार। २. झगडा। प्रहार। कलह। ३ लूट। डाका। ४ चढाई। धावा। ५ चुनौती (को०)। ६ शिकायत (को०)। अधिकार। शक्ति [को०]।

अभिग्रहण—संज्ञा पुं० [स०] स्वामी की उपस्थिति मे उसकी वस्तु का अपहरण। राहजनी। लूट (को०)।

अभिघट—संज्ञा पु० [स०] प्राचीन काल का एक बाजा जो घडे के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमडा मढा रहता था।

अभिघात—संज्ञा पु० [स०] [वि० अभिघातक, अभिघाती] १ चोट पहुँचना। प्रहार। मार। ताडना। पुरुष की दाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा।

अभिघातक—वि० [स०] चोट पहुँचानेवाला [को०]।

अभिघातकी—वि० [स० अभिघातकिन्] दे० 'अभिघातक'।

अभिघाती—वि० [स० अभिघातिन्] [वि० स्त्री० अभिघातिनी] दे० 'अभिघातक'।

अभिघार—सज्ञा पु० [स०] १ सीचना। छिडकाव। २ घी की आहुति। ३ घी से छौंकना या बघारना। ४ घी।

अभिचर—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अभिचारी] दास। नौकर। सेवक।

अभिचरण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिचार'।

अभिचरणीय—वि० [स०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य'[को०]।

अभिचार—सज्ञा पुं० [स०] अथर्ववेदोक्त मत्र यत्र द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म। पुरश्चरण। २ तत्र के प्रयोग, जो छ प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तभन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृति मे इन कर्मों का उपपातको मे माना गया है। उ०—उसकी आँखो मे अभिचार का सकेत है, मुस्कुराहट मे विनाश की सूचना है।—स्कद०, पृ० २६।

अभिचारक[1]—सज्ञा पु०[स०] यत्र मत्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म।

अभिचारक[2]—वि० यत्र मत्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला।

अभिचारी—वि० [स० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक'।

अभिज—वि० [स०] चारो ओर होनेवाला [को०]।

अभिजन—सज्ञा पु० [स०] १ कुल। वश। २ परिवार। ३. जन्मभूमि। वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो। ४ वह जो घर मे सबसे बडा हो। घर का अगुआ। कुल मे श्रेष्ठ व्यक्ति। ५ ख्याति। कीर्ति। ६ परिजन।

अभिजनन—सज्ञा पु० [स० अभि+जनन] प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। उ०—विश्व के अधिपति ने अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया।—सपूर्णा० अभि ग्र०, पृ० १११।

अभिजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्ण रूप से विजय। पूरी जीत [को०]।

अभिजात[1]—वि० [स०] १ अच्छे कुल मे उत्पन्न। कुलीन। उ०—अत्याचारियो की नृशसता मे यदुकुल के अभिजात वर्ग ने व्रज को सूना कर दिया।—ककाल, पृ० १४८। २ बुद्धिमान्। पडित। ३ योग्य। उपयुक्त। ४ मान्य। पूज्य। ५ सुदर। मनोहर।

अभिजात[2]—सज्ञा पु० १ उच्चवश। कुलीनता। २ जातकर्म [को०]।

अभिजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल मे जन्म। कुलीनता [को०]।

अभिजित[1]—वि० [स० अभिजित्] १ विजयी। २ अभिजित् नक्षत्र मे उत्पन्न (को०)।

अभिजित[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त। दोपहर के पीछे बारह बजे से लेकर साढे बारह बजे तक का श्राद्ध के लिये उपयुक्त समय। २. एक नक्षत्र जिसमे तीन तारे मिलकर सिंघाडे के आकार के होते हैं। ३ उत्तराषाढ नक्षत्र के अतिम १५ दड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दड। उ०—नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।—मानस, १।१९५। ४ विष्णु (को०)। ५ एक यज्ञ (को०)। ६ एक लग्न का नाम (को०)।

अभिज्ञ—वि० [सं०] जानकार। परिचित। विज्ञ। २. निपुण कुशल।

अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जानकारी। विज्ञता। २ निपुणता। कुशलता।

अभिज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पहचानना। जानना। २ याद करना। स्मरण आना। ३ अलौकिक क्षमता या शक्ति। इसके पाँच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना, दूर की बात सुनना, दूर-दर्शन, अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०]।

अभिज्ञात—सज्ञा पु० [स०] १ पुराण के अनुसार शाल्मली द्वीप के सात वर्षों वा खडो मे से एक। २ जाना समझा।

अभिज्ञातार्थ—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान। विवाद या तर्क मे वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या शिष्ट अर्थों के शब्दो द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय।

अभिज्ञान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अभिज्ञात] १ स्मृति। खयाल। २ वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय। लक्षण। पहिचान। ३ वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय। निशानी। सहिदानी। परिचायक चिह्न। उ०—सीता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनूमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०)। ४ मुद्रा की छाप मुहर।

अभिज्ञानपत्र—सज्ञा पुं० स० परिचयपत्र। सिफारिशी चिट्ठी [को०]।

अभिज्ञान शाकुतल—सज्ञा पुं० [स० अभिज्ञानशाकुन्तल] महाकवि कालिदास कृत सात अको का प्रसिद्ध नाटक।

अभिज्ञापक—वि० [स०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०]।

अभित—अ० [स०] १ सनिकट। २ चारो ओर से। सर्वत। ३ पूर्णत। ४ शीघ्रता से। ५ दोनो ओर से। ६ पहले और बाद मे। ७ आमने सामने से [को०]।

अभितप्त—वि० [स०] १ गर्म। जला हुआ। प्रज्वलित। २ पश्चात्तापयुक्त। अनुतप्त [को०]।

अभिताप—सज्ञा पु० [स०] १ मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह। २ प्रबल व्यग्रता, क्षोभ या वेदना [को०]।

अभिद(ख्)—वि० [हिं०] दे० 'अभेद्य'। उ०—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर० ३।१३।

अभिदर्शन—सज्ञा पु० [स०] १ देखना। २ दिखाई देना। ३ व्यक्त या प्रकट होना [को०]।

अभिद्रव—सज्ञा पुं० [स०] आक्रमण। हमला। चढाई [को०]।

अभिद्रवण—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अभिद्रव' [को०]।

अभिद्रुत—वि० [स०] आक्रात। पददलित [को०]।

अभिद्रोह—सज्ञा पुं० [स०] १ हानिकारक विरोध। २ उत्पीडन। ३ निंदा। कुत्सा। ४ क्रूरता। ५ दुःख [को०]।

अभिधर्म—सज्ञापु० [स०] बौद्धो के अनुसार परम सत्य। सर्वोच्च धर्म।

अभिधर्मपिटक—सज्ञा पु० [स०] 'त्रिपिटक'।

अभिधर्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ भूत प्रेतो का आवेश। २ उत्पीडन। ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०]।

अभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे यौगिक या व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ सीधे निकलता हो। मुख्यार्थ। २ शब्द या ध्वनि। ३ नाम (को०)।

अभिधान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिधायक, अभिधेय] १ नाम। संज्ञा। २. कथन। ३ शब्दकोश। ४. गीत। गान (को०)।

अभिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] आवाज। शब्द। ध्वनि (को०)।

अभिधानमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दकोश (को०)।

अभिधायक—वि० [स्त्री० अभिधायिका] १ अभिधेय अर्थ का वाचक (शब्द)। २ नाम रखनेवाला। ३ कहनेवाला। ४ सूचक। परिचायक।

अभिधावक—वि० [सं०] हमला करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रामक (को०)।

अभिधावन—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई। आक्रमण (को०)।

अभिधेय[1]—वि० [सं०] १ अभिधा शक्ति से बोध्य (अर्थ)। प्रतिपाद्य। वाच्य। २ जिसका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३ नाम देने योग्य।

अभिधेय[2]—संज्ञा पुं० १ नाम। अभिधा। १ विषयवस्तु (को०)। ३ भावार्थ (को०)।

अभिध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पराई वस्तु की चाह। २ अभिलाषा। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिलाषा। इच्छा। २ प्राप्ति-कामना। लोभ। ३ निंदा। ४ ध्यानमग्नता।

अभिनतु—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन योग्य। उ०—को अभिनतु रहै रन पग्ग।—पृ० रा०।

अभिनद[1]—वि० [सं० अभिनन्द] प्रसन्न या आनंदित करनेवाला (को०)।

अभिनद[2]—संज्ञा पुं० १ आनंद। २ स्तुति। प्रशंसा। ३ बधाई। ४ अभिलाषा। ५ स्वल्प सुख। ६ प्रोत्साहन। बढ़ावा। ७ परमात्मा का नाम (को०)।

अभिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अभिनन्दन] [वि० अभिनंदनीय, अभिनंदित] १ आनंद। २ संतोष ३ उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४ आकांक्षा। इच्छा। ५ विनीत प्रार्थना। उ०—गुरु के वचन सचिव अभिनंदन। सुने भरत हिय हित जनु चंदन।—मानस, २।१७६। ६ प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०—यह अवसर हमने उनके अभिनंदन के लिये उपयुक्त समझा।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० (ग)।

यौ०—**अभिनंदन ग्रंथ**=वह ग्रंथ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसके जीवन की पचासवीं या साठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। **अभिनंदनपत्र**—वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और संतोष प्रकट करने के लिये सुनाया और अर्पण किया जाता है। (अं०) ऐड्रेस। ७ जैन लोगों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८ आम।

अभिनंदना—क्रि० [सं० अभिनन्दन से हिं० नामं०] सत्कृत करना। मान देना। सम्मानित करना।

अभिनंदनीय—वि० [सं० अभिनन्दनीय] वंदनीय। प्रशंसा के योग्य। उ०—मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनंदनीय।—अपरा, पृ० १८१।

अभिनंदित—वि० [सं० अभिनन्दित] वंदित। प्रशंसित। उ०—लोगों ने साधु साधु कहकर उसे अभिनंदित किया।—इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनंदी—वि० [सं० अभिनन्दिन्] समान करनेवाला। अभिनंदन-कर्ता (को०)।

अभिनंद्य—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन के योग्य। अभिनंदनीय (को०)।

अभिन—वि० [हिं०] दे० 'अभिन्न'। उ०—भिन भिन अभिन वाणि मुख भाखि।—वेलि०, दू० १६८।

अभिनय—संज्ञा पुं० [सं० वि० अभिनीति, अभिनेय] दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्य-मुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। स्वांग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष—इसके चार विभाग हैं—(क) आंगिक, जिसमें केवल अंग-भंगी वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (ख) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने चालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आगे पीछे पगड़ी आदि बाँध कर चोबदार और सिपाहियों का चुपचाप खड़ा रहना। (ग) सात्विक, जिसमें, स्तंभ, स्वेद, रोमांच और कंप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—**अभिनय करना**=नाचना कूदना।

यौ०—**अभिनयाचार्य**=नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्। **अभिनयविद्या**=नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव—वि० [सं०] १ नया। नवीन। उ०—केहरि किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।—कामायनी, पृ० २७७। २ ताजा। ३ अनुभवहीन। अतिनूतन (को०)।

अभिनवगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिसिद्धांत के एक प्रथित व्याख्याकार। ध्वन्यालोक की टीका लोचन के लेखक।

अभिनहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २ अँधौटी। अनवट। ३ अंधा। दृष्टिहीन व्यक्ति (को०)।

अभिनामी—वि० [हिं०] दे० 'अविनाशी'। उ०—हस तो अभि-नासी, काल तो हनाहन, सुन्य तो परम सुन्य।—रामानंद०, पृ० २६।

अभिनिधन[1]—वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो (को०)।

अभिनिधन[2]—संज्ञा पुं० सामवेद की वे ऋचाएँ जिनका मरणासन्न के निकट गान होता है।

अभिनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक संलग्नता। दत्तचित्तता (को०)।

अभिनिर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रस्थान। कूच। २ आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढ़ाई (को०)।

अभिनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यपूर्ति। कार्यसंपन्नता।

अभिनिविष्ट—वि० [सं०] १ धँसा हुआ। पैठा हुआ। गड़ा हुआ। २ बैठा हुआ। उपविष्ट। ३ एक ही ओर लगा हुआ। अनन्य मन से अनुरक्त। लिप्त। मग्न।

अभिनिवेश—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित] १. प्रवेश। पैठ। गति। २ मनोयोग। किसी विषय मे गति। लीनता। अनुरक्ति। एकाग्रचिंतन। ३ दृढ सकल्प। तत्परता। ४ योगशास्त्र के पाँच क्लेशो मे से अंतिम। मरणभय से। उत्पन्न क्लेश। मृत्युशंका। ५ दर्प। घमड। शान। नाक। [को०]। ६ उत्कट लालसा। तीव्र आकाक्षा [को०]।

अभिनिवेशित—वि० [सं०] प्रविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—सज्ञा पु० [सं०] १ बाहर जाना। बहिर्गमन। २ बौद्धो के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहणार्थ गृह का परित्याग।

अभिनिष्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्णता। समाप्ति। अत। परिपूर्णता निष्पन्नता [को०]।

अभिनिष्पन्न—वि० [स०] पूर्ण। समाप्त। सिद्ध [को०]।

अभिनीत—वि०[स०] १ निकट लाया हुआ। २ पूर्णता को पहुँचाया हुआ। सुसज्जित। अलकृत। ३ युक्त। उचित। न्याय्य। ४ अभिनय किया हुआ। खेला हुआ (नाटक)। नकल करके दिखलाया हुआ। ५. विज्ञ। धीर। ६ क्रुद्ध (को०)। ७ दयालु (को०)। ८ स्वीकृत (को०)।

अभिनेतव्य—वि० [स०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य। अभिनय के योग्य [को०]।

अभिनेता—वि० [स०अभिनेतृ] अभिनय करनेवाला। स्वाग दिखानेवाला। नाटक का पात्र। (अ०) ऐक्टर।

अभिनेत्री—सज्ञा स्त्री० [स०] नाटक मे अभिनय करनेवाली स्त्री। नटी। (अ०) ऐक्ट्रेस।।

अभिनेय—वि० [स०] अभिनय करने योग्य। खेलने योग्य (नाटक)।

अभिनै—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभिनय'। उ०—नटवा निपट निपुन रासमडल मैं अभिनै भेद बतावै, गीत रीति परवान सो। —घनानद, पृ० ३६८।

अभिन्न—वि० [स०][सज्ञा अभिन्नता]१ जो भिन्न न हो। अपृथक्। एकमय। २ अप्रभावित (को०)। ३ जो बदला न हो। अपरिवर्तित (को०)। ४ अविभक्त। पूर्ण, जैसे, सख्या (को०)। ५ मिला हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। सबद्ध।

यौ०—अभिन्नपुट=नया पत्ता। अभिन्नहृदय=घनिष्ठ।

अभिन्नता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भिन्नता का अभाव। अपृथक्त्व। २ लगावट। सबध। ३ मेल।

अभिन्नपद—सज्ञा पुं० [स०] श्लेष अलंकार का एक भेद। अभंगपद श्लेष।

अभिन्यास—सज्ञा पु० [स०] सन्निपात का एक भेद जिसमें नींद नही आती, देह काँपती है, चेष्टा बिगड जाती है और इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग हो जाते हैं।

अभिपतन—सज्ञा पु०[स०] १ समीप आना। २. आक्रमण। प्रहार। ३. प्रस्थान [को०]।

अभिप्रत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ समीप आना। २ पूर्ति। ३ रक्षण करना। ४ दे० उपपत्ति [को०]।

अभिपन्न—वि० [स०] १ निकट गया या पहुँचा हुआ। २ भगोड़ा। ३ पराभूत या श्रमित। ४ विपत्तिग्रस्त। अभागा। ५ दोषी। ६ स्वीकृत। ७ मृत। ८ रक्षित। ९ दूर किया हुआ [को०]।

अभिपुष्प[1]—वि० [स०] पुष्प से आवृत। फूलो से ढका, जैसे, वृक्ष।

अभिपुष्प[2]—सज्ञा पुं० सुदर पुष्प। नायाब फूल [को०]।

अभिप्रणय—सज्ञा पुं० [स०] प्रेम। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अभिप्रणयन—सज्ञा पुं० [स०] सस्कार। वेदविधि से अग्नि आदि का सस्कार।

अभिप्रपन्न—वि० [स०] सप्राप्त। उपनद्ध [को०]।

अभिप्राणन—सज्ञा पुं०[स०]सांस बाहर छोड़ना। फूँक मारना [को०]।

अभिप्राय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अभिप्रेत] १ आशय। मतलब। अर्थ। तात्पर्य। गरज। प्रयोजन। उ०—उसने सशंक होकर कुछ अभिप्राय से पूछा।—इद्र०, पृ० १००। २ अर्थ। माने। मतलब। जैसे, शब्द या वाक्य का (को०)। ३. राय। विचार। सलाह (को०)। ४ सबध। लगाव (को०)। ५ विष्णु का एक नाम (को०)।

अभिप्रेत—वि०[स०] १ इष्ट। अभिलषित। चाहा हुआ। २ प्रिय। ३. स्वीकृत।

अभिप्रोक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि मे प्रयुक्त विभिन्न पात्रो और सामानो का जलादि द्वारा सिंचन [को०]।

अभिप्लव—सज्ञा पुं० [स०] १ उपद्रव। उत्पात। फसाद। २ गवामयन यज्ञ मे प्रति मास का पचमाश जो छ छ दिनो का होता था और जिनमे से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव मे होता था। ४ उमड़कर बहना। बाढ़। ५ प्राजापत्य आदित्य।

अभिप्लुत—वि० [सं०] १ आवृत। आच्छादित। २ युक्त [को०]।

अभिभव—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अभिभावुक, अभिभावी, अभिभूत] १ पराजय। २ तिरस्कार। अनादर। ३ अनहोनी बात। विलक्षण घटना। ४ प्राबल्य। अधिकता [को०]।

अभिभाव—वि० [स०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावक—वि० [स०] १ अभिभूत वा पराजित करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। २ जड पर्यंत स्तम्भित कर देनेवाला। ३ वशीभूत करनेवाला। दबाव मे लानेवाला। ४ रक्षक। सरपरस्त। उ०—अभिभावक अब वही हमारे रखते स्नेह सहित मुझको।—प्रेम०, पृ० १६। ५ आक्रमण करनेवाला (को०)।

अभिभावन—वि० [स०]वशीभूत करनेवाला। माननेवाला। स्वीकर्ता। उ०—चले चतुर्दिक् हम अभिभावन।—आराधना, पृ० २६।

अभिभावी—वि० [स० अभिभाविन्] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावुक—वि० [स०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभाषण—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रवचन। भाषण। २ बोलना। भाषण देना। ३ आयोजन आदि मे सर्वमुख्य भाषण। ४ लिखित भाषण [को०]।

अभिभूत—वि० [स०] १ पराजित। हराया हुआ। २ पीडित। उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत। तब पिता क्या थे अधिक

अभिभूत।—साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभाव डाला गया हो। जो वश मे किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किंकर्तव्यविमूढ।

अभिभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अभिभव। पराजय। हार।

अभिमडन—सज्ञा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमडित] १ भूषित करना। सजाना। सँवारना। २ पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमता—वि० [स० अभिमन्तृ] १ डींग हाँकनेवाला आत्मश्लाघक। २ अहमन्य। सर्वज्ञता का दभी (को०)।

अभिमत्रण—सज्ञा पुं० [सं० अभिमन्त्रण] [स्त्री० अभिमत्रणा] १ मत्र-द्वारा सस्कार। २ आवाहन।

अभिमत्रित—वि० [सं० अभिमन्त्रित] १ मत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २ जिसका आवाहन हुआ हो।

अभिमथ—सज्ञा पुं० [सं० अभिमन्थ] एक नेत्ररोग। अभिमथ (को०)।

अभिमत[1]—वि० [सं०] १ इष्ट। मनोनीत। वाछित। पसद का। उ०—जो न होहिं मगलमग सुरविधि बाधक। तौ अभिमत फल पावहिं करि श्रमु साधक।—तुलसी ग्र०, पृ० ३२। २ समत। राय के मुताबिक।

अभिमत[2]—सज्ञा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २. विचार। ३ अभिलषित वस्तु। मनचाही बात। उ०—अभिमत दानि देवतरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।—तुलसी (शब्द०)। ४ इच्छा। आकाक्षा (को०)।

अभिमति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अभिमान। गर्व। अहकार। २. वेदात के अनुसार इस प्रकार की मिथ्या अहकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३ अभिलाषा। इच्छा। चाह। ४ मति। राय। विचार। ५ आदर। समान (को०)।

अभिमन्यु—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष—कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा इसकी माता थी। महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व मे निर्मित चक्रव्यूह का भेदन करते समय सात महारथियो ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यत बली और क्रोधी होने से इसका नाम अभिमन्यु पडा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहार। विनाश। हनन। २ युद्ध। ३ स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४ केश। ५ शेर हाथी आदि से भी भिड़ने के लिये सन्नद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना। चूर चूर करना। २ घस्सा। रगड़। ३. युद्ध।

अभिमर्श—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्पर्श। सपर्क। २. प्रहार। ३. आक्रमण। ४ संभोग। ५. बलात्कार (को०)।

अभिमर्शक—वि० [स०] अभिमर्शन करनेवाला (को०)।

अभिमर्शन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी—वि० [सं० अभिमर्शिन्] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[स०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [स० अभिमर्षिन्] दे० 'अभिमर्शी'।

अभिमाद—सज्ञा पुं० [स०] नशा। मद (को०)।

यौ०—अभिमान।

अभिमान—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अभिमानी] १. अहकार। गर्व। दर्प। घमड। २ स्वाभिमान ३ बुद्धि। ज्ञान (को०)। ४ प्रेम। स्नेह (को०)। ५ कामना। इच्छा (को०)। ६ प्रमाण (को०)।

अभिमानित[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह जिसमे अभिमान हो। २. प्रेम। स्नेह। ३ सभोग। मैथुन (को०)।

अभिमानित[2]—वि० [स०] गर्वित। अभिमानयुक्त।

अभिमानी—वि० [स० अभिमानिन्] [स्त्री० अभिमानिनी] १. अहकारी। घमडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २. स्वात्माभिमानी।

अभिमुख[1]—क्रि० वि० [स०] सामने। समुख। समक्ष।

अभिमुख[2]—वि० [स०] १ प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। सनद्ध। २. ओर। तरफ। ३ निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४ अनुकूल (को०)।

अभिमृष्ट—वि० [स०] १ स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २ मर्दित। ३. मिश्रित। ४. स्नात। ५ ससृष्ट। आक्रात (को०)।

अभिम्लात—वि० [स०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ (को०)।

यौ०—अभिम्लातवर्ण—फीके रगवाला।

अभियाचा—सज्ञा स्त्री० [स० अभियाञ्चा] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन—सज्ञा पुं० [स०] १ माँगना। याचना। २ प्रार्थना करना (को०)।

अभियाचित—वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता—वि० [स० अभियातृ] १ निकट जाने या पहुँचनेवाला। २ आक्रामक। अभियान करनेवाला (को०)।

अभियान—सज्ञा पुं० [स०] १ सामने जाना। २ आक्रमण। चढाई (को०)।

अभियायी—वि० [स० अभियायिन्] दे० 'अभियाता' (को०)।

अभियुक्त—वि० [स०] [स्त्री० अभयुक्ता] १ जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे मे फँसा हो। प्रतिवादी। मुलजिम। अभियोक्ता का उलटा। २ लिप्त। सलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कज्जल अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३ विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (को०)। ४ नियुक्त (को०)। ५ कथित (को०)। ६ उपयुक्त। ठीक (को०)। ७. अध्यवसायी (को०)। ८. आक्रात (को०)।

अभियुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अभियोग (को०)।

अभियोक्ता[1]—वि० [सं० अभियोक्तृ] [स्त्री० अभियोक्त्री] १. अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दई। फरियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २. आक्रामक। आक्रमणकारी (को०)।

अभियोक्ता[2]—सज्ञा पुं० शत्रु। आक्रामक व्यक्ति (को०)।

अभियोग—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १. अपराध की योजना। दोषारोप। उ०—कश्यप मुझपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।—

जनमेजय०, पृ० ५५। २ किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायालय में निवेदन। नालिश। मुकदमा। ३ चढ़ाई। आक्रमण। ४ उद्योग। ५ मनोनिवेश। लगन।

अभियोगी[1]—वि० [सं० अभियोगिन्] १ अभियोग चलानेवाला। नालिश करनेवाला। फरियादी। २ आक्रमणकारी (को०)। ३. लगनवाला।

अभियोगी[2]—संज्ञा पुं० वादी। मुकदमा खड़ा करनेवाला व्यक्ति (को०)।

अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके (को०)। यौ०—अभियोज्यदोष=अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप।

अभिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अभिरञ्जन] रँगना (को०)।

अभिरंजित—वि० [सं० अभिरञ्जित] रँगा हुआ।

अभिरक्त—वि० [सं०] १ लगा हुआ। संबद्ध। अनुरक्त। २. मधुर। प्रिय (को०)।

अभिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या बचाव (को०)।

अभिरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षण'।

अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित (को०)।

अभिरक्ष्य—वि० [सं०] पूर्णत रक्षा या बचाव के योग्य (को०)।

अभिरत—वि० [सं०] १ लीन। अनुरक्त। २ लगा हुआ। ३ युक्त। सहित। उ०—किधौं यह राजपुत्री, वरही वरधो है, किधौं उपदि वरधो है यहि सोभा अभिरत हौं।—राम च०, पृ० ५१। ३ प्रसन्न। प्रमुदित (को०)।

अभिरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुराग। प्रीति। २. लगन। लगाव। लीनता। ३ संतोष। हर्ष। आनंद। ४ कार्य का अभ्यास या पेशा (को०)।

अभिरना—क्रि० स० [सं० अभि=समुख+रण अथवा प्रा० अब्भिडइ=भिड़ना, मिलना] १ भिड़ना। लड़ना। उलझना। उ०—चटपत चटकी डांड कहूँ कोउ भरत पैतरे। लरत लराई कोऊ एक एकन सो अभिरे।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १। २. टेकना। सहारा लेना। उ०—मुसकाति खरी खेंभिया अभिरी, बिरी खाति लजाति महा मन मे।—बेनी (शब्द०)।

अभिरमण—संज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् आनंद लेना या रमण करना (को०)।

अभिराज—वि० [सं० अभिराज] अत्यंत शोभित। उ०—चौका बना चौगान, जगमग अभिराज हो।—धरम०, पृ० ६।

अभिराद्ध—वि० [सं०] भली भाँति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ (को०)।

अभिराम[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरामा] आनंददायक। मनोहर। सुखद। सुंदर। प्रिय। रम्य। उ०—और देखा वह सुंदर दृश्य। नयन का इंद्रजाल अभिराम।—कामायनी, पृ० ४६।

अभिराम[2]—संज्ञा पुं० आनंद। सुख। उ०—(क) तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम। सेए सोक समपई, बिमुख भए अभिराम।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२८। (ख) तुलसिदास चाँचरि सिमहि, गहे राम गुन गाम। गावहिं सुनहिं नारि नर, पावहिं सब अभिराम।—तुलसी (शब्द०)। २. शिव का एक नाम (को०)।

अभिरामिनी—वि० स्त्री० [सं०] मनोहारिणी। सुंदर। उ०—हरित गभीर बानीर दुहुँ तीर बर, मध्य द्वारा विशद विश्व अभिरामिनी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६३।

अभिरामी—वि० [सं० अभिरामिन्] [वि० स्त्री० अभिरामिनी] रमण करनेवाला। संचरण करनेवाला। व्याप्त होनेवाला। उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, थिरचर अनिगामी, कीय जामातु नामी।—केशव (शब्द०)।

अभिरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुचि। चाह। पसंद। प्रवृत्ति। उ०—संतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि समति देती है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १९३। २ प्रसिद्धि की चाह। महत्वाकांक्षा (को०)।

अभिरुत—वि० [सं०] १ ध्वनित। शब्दायमान। २ कूजित। गुंजित (को०)।

अभिरुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत मे मूर्च्छनाविशेष। इसका सरगम यो है—रे, ग, म, प, ध, नि, म। म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स।

अभिरूप[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरूपा] १ प्रिय। रमणीय। मनोहर। सुंदर। सुगठित। २ मिलता जुलता। अनुरूप (को०)। ३ चतुर। विद्वान्। प्रबुद्ध (को०)।

अभिरूप[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ विष्णु। ३ कामदेव। ४ चंद्रमा। ५ पंडित।

अभिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौपायो का एक रोग जिसमे जीभ मे कीड़े पड़ जाते हैं।

अभिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अभिलङ्घन] १ उछलकर अथवा कूदकर पार करना। २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण (को०)।

अभिलक्षित—वि० [सं०] १ चिह्नांकित। चिह्नित। २ चुना हुआ। संकेतित (को०)।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य। ध्यान मे लेने योग्य (को०)।

अभिलषण—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा करना। चाहना। लालायित होना (को०)।

अभिलषिक रोग—संज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरासी भेदों मे से एक।

अभिलषित[1]—वि० [सं०] वांछित। ईप्सित। इष्ट। चाहा हुआ। उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।—कामायनी, पृ० १६४।

अभिलषित[2]—संज्ञा पुं० इच्छा। आकांक्षा। मनोरथ। उ०—अभिलषित अधूरी रह न जाय।—गीतिका।

अभिलाख—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'। उ०—अभिलाख यह जिय पूर्ववत, धन धन्य मोहि सबही कहै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४।

अभिलाखना—क्रि० स० [सं० अभिलषण] इच्छा करना। चाहना। उ०—तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ मन माखे।—तुलसी (शब्द०)।

अभिलाखा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिलाषा का प्रा० हिं० रूप] दे० 'अभिलाषा'। उ०—सबके हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिं तरुसाखा।—मानस, १।८५।

अभिलाखी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभिलाषी'।

अभिलाप—सज्ञा पु० [स०] १ शब्द। कथन। वाक्य। २ मन के सकल्प का कथन वा उच्चारण। ३ वर्णन। भाषण (को०)।

अभिलाव—सज्ञा पुं० [स०] सफल काटना। लवना [को०]।

अभिलाष—सज्ञा पुं० [स०][वि० अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलषित] १ इच्छा। मनोरथ। कामना। चाह। उ०—भाग छोट अभिलाष बड करौं एक विश्वास। पैहैं सुख सुनि सुजन जन खल करिहैं उपहास।—मानस १।८। २ लोभ। ३ वियोग। शृगार के अतर्गत दस दशाओ मे से एक। प्रिय से मिलने की इच्छा।

अभिलाषक—वि० [स०] इच्छा करनेवाला। आकाक्षा करनेवाला।

अभिलाषना—क्रि० स० [स० अभिलक्षण] इच्छा करना। चाहना। उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यो, मन मैं अति गरवाऊ। —सूर० १०।२२१।

अभिलाषा—सज्ञा स्त्री० [स०] इच्छा। कामना। आकाक्षा। दे० 'अभिलाष'। उ०—भूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कलित अतीत।—कामायनी, पृ० ४९।

अभिलाषी—वि० [स० अभिलाषिन्] [स्त्री० अभिलाषिनी] इच्छा करनेवाला। आकाक्षी। इच्छुक।

अभिलाषुक—वि० [स०] दे० 'अभिलाषक'।

अभिलास(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाष'।

अभिलासा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'।

अभिलासी(पु)—वि० [स० अभिलाषिन्] दे० 'अभिलाषी'। उ०—को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी? कैसे बरन, भेष है कैसो, किहि रस मैं अभिलासी।—सूर०, १०।४२४९।

अभिलिखित[1]—वि० [सं०] लिखा हुआ। खोदा हुआ [को०]।

अभिलिखित[2]—सज्ञा पु० १ लिखना। लेखन। २ हस्ताक्षर। ३. लिखित मसविदा [को०]।

अभिलीन—वि० [स०] १ भली भाँति लीन। २ अनुरक्त। आसक्त। ३ आवेष्टित [को०]।

अभिलुलित—वि० [सं०] १ क्षोभित। चचल। अस्थिर। २. विक्रीडित। क्रीडायुक्त [को०]।

अभिलूता—सज्ञा स्त्री० [स०] मकडी का एक भेद [को०]।

अभिलेख—सज्ञा पुं० [सं०] लेख। प्रामाणिक लेख। शिला या धातु-पट्ट पर खोदा लेख।

अभिलेखन—सज्ञा पुं० [सं०] १ लिखना। खोदना या उत्कीर्ण करना [को०]।

अभिलेखित[1]—सज्ञा पुं० [स०] प्रामाणिक रूप से लिखित पट्ट या पत्र आदि [को०]।

अभिलेखित[2]—वि० लिखित। निबद्ध [को०]।

अभिवचन—सज्ञा [स० अभिवञ्चन] ठगना।

अभिवचित—वि० [स० अभिवञ्चित] ठगा गया। छला गया। धोखा खाया हुआ [को०]।

अभिवदन—सज्ञा पुं० [स० अभिवन्दन] [वि० अभिवदनीय, अभिवदित, अभिवद्य] १ प्रणाम। नमस्कार। सलाम। वदगी। २ स्तुति।

अभिवदना—सज्ञा स्त्री० [स० अभिवन्दना] १ नमस्कार। प्रणाम। २ स्तुति। प्रशसा।

अभिवदनीय—वि० [स० अभिवन्दनीय] १ प्रणाम करने योग्य। नमस्कार करने योग्य। २ प्रशसा करने योग्य। स्तुति करने योग्य।

अभिवदित—वि० [स० अभिवन्दित] प्रणाम किया हुआ। नमस्कार किया हुआ। २ प्रशसित। स्तुत्य।

अभिवद्य—वि० [स० अभिवन्द्य] दे० 'अभिवदनीय'।

अभिवचन—सज्ञा पुं० [स०] वादा। इकरार। प्रतिज्ञा।

अभिवदन—सज्ञा पुं० [स०] १ भाषण। कथन। २ नमन। प्रणाम। नमस्कार [को०]।

अभिवद्य—वि० [स०] कथन या निर्वचन योग्य [को०]।

अभिवर्तन—सज्ञा पुं० [स०] १ बढना (किसी ओर)। २ हमला करना। आक्रमण। [को०]।

अभिवाछा—सज्ञा स्त्री० [स० अभिवाञ्छा] अभिलाषा। लालसा। इच्छा [को०]।

अभिवाछित—वि० [स० अभिवाञ्छित] अभिलषित। चाहा हुआ।

अभिवाद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिवादन' [को०]।

अभिवादक—वि० [स०] [स्त्री० अभिवादिका] १ नमस्कार करनेवाला। २ विनीत। आदरान्वित। विनम्र [को०]।

अभिवादन—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रणाम नमस्कार। वदना। २ स्तुति। ३ अतिरजना। अतिवाद। झीग [को०]।

अभिवादयिता—वि० [स० अभिवादयितृ] दे० 'अभिवादन'।

अभिवादित—वि० [स०] वदित। नमस्कृत।

अभिवादी—वि० [स० अभिवादिन्] [वि० स्त्री० अभिवादिनी] दे० 'अभिवादक'।

अभिवाद्य—वि० [स०] नमस्कार योग्य। अभिवादनीय [को०]।

अभिवास—सज्ञा पुं० [स०] चादर। आवरण। वस्त्राच्छादन [को०]।

अभिवासन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिवास'।

अभिविनीत—वि० [स०] १ सुशिक्षित। २ व्यवहारकुशल। शिष्ट। सुशील। ३ शुद्ध। पवित्र [को०]।

अभिविमान—वि० [स०] दिक्कालातीत। निस्सीम आकार का (परमात्मा की एक उपाधि)।

अभिविश्रुत—वि० [स०] बडी ख्याति या प्रसिद्धिवाला (को०)।

अभिवृद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] सफलता, उन्नति या समृद्धि [को०]। उ०—ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नही हो सकता।—हिं० अ० प्र०, पृ० २०६।

अभिव्यजक—वि० [स० अभिव्यञ्जक] प्रकट करनेवाला। प्रकाशक। सूचक। बोधक।

अभिव्यंजन—सज्ञा पुं० [स० अभिव्यञ्जन] [स्त्री० अभिव्यजना] प्राकट्य। अभिव्यक्ति। प्रकाश। विकास।

अभिव्यजना—सज्ञा स्त्री० [स० अभिव्यञ्जना] मन के भावो का शब्दो में चित्रण या रूपविधान। दे० 'अभिव्यजन'।

अभिव्यंजनावाद—संज्ञा पु० [सं० अभिव्यञ्जना+वाद, (अं० एक्सप्रेशनिज्म)] योरप मे प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह सिद्धात जिसमे बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौण और अपनी या पात्रो की आतरिक अनुभूतियो के प्रतीकात्मक चित्रण को प्रधान अग माना जाता है।

विशेष—इसमे अभिव्यजना ही सब कुछ है, जिसकी अभिव्यजना की जाती है वह कुछ नही। इस मत का प्रधान प्रवर्तक इटली का क्रोचे है। अभिव्यजनावादियो के अनुसार जिस रूप मे अभिव्यजना होती है उससे भिन्न अर्थ आदि का विचार कला मे अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि रामायण की इस उक्ति मे 'न स सकुचिन पथा येन वाली हतो गत', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस प्रकार वाली मारा गया उसी प्रकार तुम भी मारे जा सकते हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकडो ! जुड़ते क्यो नही ?' मे इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारतवासियो ! एकता क्यों नही रखते ? यदि तुम एक हो जाओ तो भारत का भाग्योदय हो जाय। साराश यह कि इस मत मे ध्वनि या व्यजना की गुंजाइश नही है।—चितामणि, भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यंजनावादी—वि० [सं० अभिव्यञ्जना+वादिन् (अं० एक्सप्रेशनिस्ट)] अभिव्यजनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यंजित—वि० [सं० अभिव्यञ्जित] सुस्पष्ट प्रकटित। व्यक्त। अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर किया हुआ।

अभिव्यक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार। प्रकट होना। २ उस वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अँधेरे मे रखी चीज का उजाले मे साफ साफ दीख पड़ना। ३ न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य मे आविर्भाव, जैसे, बीज से अकुर का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यक्ति+वाद] जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धात।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं० अभिव्यक्तिवादिन्] अभिव्यक्तिवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अभि+व्यक्तीकरण] प्राकट्य। सामने आ जाना। अभिव्यजना।

अभिव्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अभिव्यापिका] पूर्ण रूप से फैलनेवाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त रहनेवाला।

अभिव्यापक[2]—संज्ञा पु० [सं०] ईश्वर।

यौ०—**अभिव्यापक आधार**=व्याकरण मे वह आधार जिसके हर एक अश मे आधेय हो, जैसे 'तिल मे तेल'।

अभिव्यापी—वि०, संज्ञा पु० [सं० अभिव्यापिन्] दे० 'अभिव्यापक'।

अभिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सन्निवेश। समावेश। २. सर्वव्यापकता [को०]।

अभिशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिशङ्का] [वि० अभिशंकित] १. आशका। सदेह। चिंता। २. भय। व्यग्रता [को०]।

अभिशंसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशस्त] सत्य या झूठ आरोप अथवा दोष लगाना। २ व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना। ३ गाली देना। अपमान करना।

अभिशंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिशंसन'।

अभिशपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाप। २ गभीर आरोप। ३. मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—**अभिशपन ज्वर**=शापजन्य ज्वर।

अभिशप्त—वि० [सं०] १ शापित। जिसे शाप दिया गया हो। उ०—जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशप्त कही जाती है।—आँसू, पृ० ७८। २ जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशस्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अभिशस्ता] १ जिसपर व्यभिचार का मिथ्या दोष लगा हो। २ व्यर्थ कलकित। लाछित।

अभिशस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिशाप। २ निंदा। ३ हिंसा। ४ विपत्ति। ५ प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशापित, अभिशप्त] १ शाप। बद दुआ। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला मे जल रहा आज मन और अग।—कामायनी, पृ० १६२। २ मिथ्या दोषारोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३ बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—संज्ञा पुं० [सं०] शाप देना। बद दुआ देना। कोसना [को०]।

अभिशापित—वि० [सं०] दे० 'अभिशप्त'।

अभिश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टी [को०]।

अभिषग—संज्ञा पुं० [सं० अभिषङ्ग] १ पूर्ण सबध या मिलन (को०)। २ दृढ मिलाप। आलिंगन। ३ सभोग। ४. पराजय। हार। ५ निंदा। आक्रोश। कोसना। ६ शपथ। कसम। ७ मिथ्यापवाद। झूठा दोषारोपण। ८ भूत प्रेत का आवेश। ९ शोक। दुःख।

यौ०—**अभिषगज्वर**=भूत प्रेत आदि के आवेश या प्रभाव से उत्पन्न ज्वर।

अभिषगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिषङ्गन] वेद की एक ऋचा।

अभिषगी—वि० [सं० अभिषङ्गिन्] अभिषग से युक्त। अभिषगवाला।

अभिषजन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषञ्जन] दे० 'अभिषग' [को०]।

अभिषव—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ मे स्नान। २ मद्य खीचना। शराब चुवाना। ३. सोमलता को कुचलकर गारना या निचोड़ना। ४ सोमरस पान ५. यज्ञ। ६ काँजी। ७ स्नान। नहाना [को०]। ८. राज्यारोहण। ९ अधिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २. सोमरस निकालने या निचोड़ने का साधन [को०]।

अभिषवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस निकालने का साधन या यत्र [को०]।

अभिषावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोमरस निचोड़नेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिचन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषिञ्चन] जल छिड़कना। उ०—अभिषिचन ब्राह्मण (अध्वर्यु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १०३।

अभिषिक्त—वि० [स०][वि० स्त्री० अभिषिक्ता]१ जिसका अभिषेक हुआ हो। जिसके ऊपर जल आदि छिडका गया हो। जो जल आदि से नहलाया गया हो। २ बाधाशाति के लिये जिसपर मत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो। ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिडककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो। राजपद पर निर्वाचित।

अभिपुत—वि० [स०] १ निचोडा हुआ। उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिपुत हुआ है।—प्रा० भा० प०, पृ० १३३। २ स्नात। जो स्नान कर चुका हो। (को०)।

अभिषेक—सज्ञा पु० [स०] १ जल से सिचन। छिडकाव। २ ऊपर से जल डालकर स्नान। ३ बाधाशाति या मंगल के लिये मत्र पढकर कुश और दूब से जल छिडकना। मार्जन। ४. विधिपूर्वक मत्र से जल छिडककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। ५ यज्ञादि के पीछे शाति के लिये स्नान। ६ शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घडा रखना जिसके पेदे मे बारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो। रुद्राभिषेक।

यौ०—**अभिषेकपात्र** = अभिषेक का पात्र। **अभिषेकाह** = अभिषेक का दिन। राज्यारोहण का दिन।

अभिषेकना ⓖ—क्रि० स० [सं० अभिषेक] अभिषेक करना। उ०—आजु अभिषेकत पिय को प्यारी। धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे वारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६१८।

अभिषेकशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान या मडप जहाँ अभिषेक हो। राज्याभिषेक मडप (को०)।

अभिषेक्ता—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अभिषेक करे। अभिषेक करनेवाला व्यक्ति (को०)।

अभिषेक्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' (को०)।

अभिषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मत्र से जल छिडककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभुता और प्रार्थना के मत्र पढ़ते पढते पुरोहित जलो से अभिषेचन करते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४।

अभिषेचनीय—वि० [स०] १ अभिषेक योग्य। २ राज्यारोहण योग्य। ३ अभिषेक सबधी (को०)।

अभिषेच्य—वि० [स०] दे० 'अभिषेचनीय' (को०)।

अभिषेणन—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के विरुद्ध बढाव या चढाई (को०)।

अभिषोता—सज्ञा पुं० [सं० अभिषोतृ] दे० 'अभिषावक' (को०)।

अभिष्यद—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्द] १ बहाव। स्राव। २ आँख का एक रोग जिसमे सुई के छेदने के समान पीडा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड निकलता है। आँख आना।

अभिष्यदिरमण—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्दिरमण] उपनगर। बडे नगर से लगा हुआ छोटा नगर। शाखा नगर (को०)।

अभिष्यदी—वि० [सं० अभिष्यदिन्] १ रसने, बहने या चूनेवाला। २ रेचक। दस्तावर। ३ जलापसारक (को०)।

अभिष्वग—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्वङ्ग] घनिष्ठ सबध। प्रेम। अनुराग। उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा मे अभिष्वग उत्पन्न करता है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३६६।

अभिसग—सज्ञा पुं० [स० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसग' (को०)।

अभिसताप—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्ताप] १ युद्ध। सघर्ष। स्पर्धा। २ पीडा (को०)।

अभिसदेह—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्देह] १ अदला बदली। विनिमय। २ जननेंद्रिय (को०)।

अभिसदोह—सज्ञा पु० [स० अभिसदोह] दे० 'अभिसदेह' (को०)।

अभिसध—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्ध] १ ठग। धोखा देनेवाला। वचक। २ निंदक (को०)।

अभिसंधक—सज्ञा पुं० [स० अभिसन्धक] दे० 'अभिसध' (को०)।

अभिसधा—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धा] १ कहना। बतलाना। २ वादा। वचन। ३ बात का पक्का व्यक्ति। ४ धोखा। छल (को०)।

अभिसंधान—सज्ञा पु० [स० अभिसन्धान] १ वचना। प्रतारणा। धोखा। जाल। २ फलोद्देश्य। लक्ष्य। उ०—इस कार्य को करने मे उसका अभिसधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०)। ३ इच्छा या रुचि (को०)। ४ स्वार्थ (को०)।

अभिसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धि] १ प्रतारणा। वचना। धोखा। उ०—भरत मे अभिसधि का हो गध, तो मुझे निज राम की सौगध।—साकेत, पृ० १८७। २ चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियो की सलाह। कुचक्र। षड्यत्र। उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमे अभिसधि है।—चद्र०, पृ० ७५। ३ विशेष समझौता या सधि। ४ लक्ष्य। उद्देश्य। ५ अतर्गमित या सन्निहित अर्थ। अभिप्राय। राय। ६ जोड। योग। ७ घोषणा। वादा।

अभिसधिकृत—क्रि० वि० [स० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ (को०)।

अभिसधिता—सज्ञा स्त्री० [स० अभिसन्धिता] कलहातरिता नायिका। स्वयप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री।

अभिसपात—सज्ञा पुं० [स० अभिसम्पात] १ सम्मिलन। सगम। २ युद्ध। सघर्ष। ३ बददुआ। शाप। ४ पतन (को०)।

अभिसबध—सज्ञा पु० [स० अभिसम्बन्ध] १ घनिष्ठ सबध। २ समागम। सभोग (को०)।

अभिसयोग—सज्ञा पुं० [स०] घनिष्ठ सबध। बहुत नजदीक का सबध (को०)।

अभिसश्रय—सज्ञा पुं० [स०] शरण। आश्रय। त्राण। पनाह (को०)।

अभिसस्कार—सज्ञा पुं० [स०] १ सूझ। विचार। कल्पना। २ व्यर्थ या निष्फल कार्य। ३ विकास। परिष्कार। उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसस्कार करना है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४६।

अभिसमत—वि० [स० अभिसम्मत] माननीय। आदरणीय। समान्य (को०)।

अभिसर—सज्ञा पु० [स०] १ सगी। साथी। २ सहायक। मददगार। ३ सेवक। अनुचर (को०)।

अभिसरण—सज्ञा पुं० [स०] १ आगे जाना। २ समीप गमन। ३ प्रिय से मिलने के लिये जाना।

अभिसरन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अभिशरण] १ शरण। सहाय। सहारा। उ०= सतन को लै अभिसरन, समुझहि सुगति प्रवीन। करम विपरजय कबहुँ नहि, सदा राम रस लीन।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'अभिसरण'।

अभिसरना(पु)—क्रि० अ० [स० अभिसरण] १ सचरण करना। जाना। २ किसी वाछित स्थान को जाना। ३ नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये सकेतस्थल को जाना। उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन-युत गात। कुजटा सध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात।—केशव (शब्द०)।

अभिसार—सज्ञा पुं० [सं०][वि० अभिसारिका, अभिसारी] १ साधन। सहाय। सहारा। बल। २ युद्ध। ३ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेतस्थल मे जाना। ४. सकेतस्थल। सहेट (को०)। ५ आक्रमण (को०)। ६ शक्ति। ताकत (को०)। ७ सहयोगी। साथी। अनुगत (को०)। ८ औजार। उपकरण। साधन (को०)। ९ शुद्ध करने का एक सस्कार (को०)।

अभिसारना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभिसार से नाम०] १ गमन करना। जाना। घूमना। २ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेत स्थल मे जाना। उ०—समय जोग पट भूषन धारै। पिय अभिसारि आप अभिसारै।—नद० ग्र०, पृ० १५६।

अभिसारक(पु)—वि० [स०] अभिसार करनेवाला।

अभिसारिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदो मे एक। वह स्त्री जो सकेत स्थल मे प्रिय से मिलने के लिये स्वय जाय या प्रिय को बुलाए।

विशेष—यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका (जो चाँदनी रात मे गमन करे) और कृष्णाभिसारिका (जो अँधेरी रात मे मिलने जाय) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवाभिसारिका (दिन मे जानेवाली) भी मानते हैं। साहित्य शास्त्र मे अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं—(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा (३) शयनमदिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जगल, (६) तीर्थस्थान, (७) श्मशान। (८) नदीतट या परिसर।

अभिसारिणी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अभिसारिका। २. त्रिष्टुभ् छद का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति से जगती छद के सन्निकट जान पडता है (को०)।

अभिसारी—वि० [स० अभिसारिन्] [सज्ञा स्त्री० अभिसारिका] १. साधक। सहायक। २ प्रिया से मिलने के लिये सकेतस्थल मे जानेवाला। उ०—धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी वनचारी। धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविद अभिसारी।—सूर (शब्द०)। ३ आक्रामक। हमला करनेवाला (को०)। ४ आगे जानेवाला। सामने जानेवाला (को०)।

अभिसेख(ष)(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिषेक'। उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह।—हम्मीर रा०, पृ० १२।

अभिसेचना(पु)—क्रि० स० [स० अभिषेचन] सीचना। अभिषिक्त करना। उ०—आजु कछु मगल घन उनए। बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मगल कलस लए। चमकि मगलामुखी दामिनी मगल करत नए।—भारतेंदु ग्र०, भा २, पृ० ११४।

अभिस्कंद—सज्ञा पुं० [स० अभिस्कन्द] १ आक्रमण। धावा। २ शत्रु (को०)।

अभिस्नेह—वि० [स०] घनिष्ठ स्नेह। चाह (को०)।

अभिस्मरण—सज्ञा पुं० [सं० अभि+स्मरण] विशेष रूप से की गई याद। ध्यान। स्मृति। उ०—'स्मृति' सस्कृत वस्तु का अभिस्मरण है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४७।

अभिस्यंद—सज्ञा पुं० [सं० अभिस्यन्द] दे० 'अभिष्यद' (को०)।

अभिहत—वि० [सं०] १. पीटा हुआ। ताडित। आहत। आक्रात। २ गुणा किया हुआ। गुणित। ३ पराजित। पराभूत। ४. बाधित। निरुद्ध (को०)।

अभिहति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निशाना लगाना। चोट करना। पीटना। २ गुणन क्रिया (को०)।

अभिहर¹—सज्ञा पुं० [सं०] उठा ले जाना। ले भागना। हटा देना (को०)।

अभिहर²—वि० [सं०] उठाईगीर। ले भागनेवाला (को०)।

अभिहरण—सज्ञा पुं० [सं०] छीन ले जाना। लूटना (को०)।

अभिहर्ता—सज्ञा पुं० [सं० अभिहर्तृ] १ डाकू। २ अपहरणकर्ता। ले भागनेवाला (को०)।

अभिहार—सज्ञा पुं० [स०] १ आक्रमण। हमला। उ०—कहाँ पाडुपुतनि को कछुक पचड यामैं, कोऊ अभिहार कै समा को जान लूट्यो है।—रत्नाकर, भा—२, पृ० १११। २ मिश्रण। मिलावट (को०)। ३ लूटपाट। चोरी। डाका (को०)। ४ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ५ अस्त्रसज्जा होना (को०)। ६ समीप लाना (को०)। ७ मद्यप शराबी (को०)।

अभिहारिनि(पु)—वि० स्त्री० [स० अभिहारिणी] सामने से हरण करने वाली। उ०—देखी सुनी ब्याहिनि कितेक ब्रजबारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है। हेरत हीं हेरत हरयो तौ है हमारो कछू काह यौं हिरानो पै न परत जनाई है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१।

अभिहास—सज्ञा पुं० [स०] विनोद। हँसी। मजाक। दिल्लगी (को०)।

अभिहित—वि० [स०] १ उक्त। कथित। कहा हुआ। २ सबद्ध। युक्त। बद्ध (को०)।

अभिहितसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अभिहितसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह सधि जिसकी लिखावटी न हुई हो।

अभिहितान्वयवाद—सज्ञा पुं० [स०] कुमारिल भट्ट प्रभृति पुराने नैयायिकों, मीमासकों और आलकारिकों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग स्वतत्र और अनन्वित अर्थ रखता है। बाद मे सब अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है। अन्विताभिधानवाद का उलटा।

अभिहितान्वयवादी—सज्ञा पुं० [स० अभिहितान्वयवादिन्] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिहूति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आवाहन। २ समाराधन। पूजन (को०)।

अभिहोम—सज्ञा पुं० [स०] घृत की आहुति देना। घी से होम करना (को०)।

अभी¹—क्रि वि० [हिं० अब+ही] १ इसी क्षण। इसी समय। इसी वक्त। तुरत। तत्काल। २ अब तक। ३. अभी भी। ४ आजकल। इन दिनो। इस समय।

यौ०—अभी तभी = इसी समय। तुरत। तत्काल।

अभी[2]—वि० [सं०] निर्भय। निडर [को०]।

अभीक[1]—वि० [सं०] १ निर्भय। निडर। २. निष्ठुर। कठोरहृदय। ३ उद्धत। उच्छृंखल। ४ भयानक (को०)। ५ कामुक। लंपट। ६ अभिमानी। प्राप्त (को०)।

अभीक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। पति। २. स्वामी। मालिक। ३ कवि।

अभीक्ष्ण—वि० [सं०] १. निरंतर। लगातार। २ अधिक। ३ जो बार बार दुहराया जाय। आवर्तित [को०]।

अभीघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिघात'।

अभीत—वि० [सं०] निडर। निर्भय। उ०—सूत, मागध बंदि आदि अभीत, गा उठे जीवन विजय के गीत।—साकेत, पृ० १९६।

अभीता—वि० [हिं०] दे० 'अभीत'। उ०—यह तु अज अव्यय अभीता।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३।

अभीति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्भयता। निडरता। २ आक्रमण। ३ निकटता [को०]।

अभीति[2]—वि० [सं०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

अभीप्सा—संज्ञा पुं० [सं०] चाहना। इच्छा। अभिलाषा। उ०—करती सहज प्रवेश हृदय में जगा अभीप्सा।—रजत०, पृ० १०।

अभीप्सित[1]—वि०[सं०]अभिलषित। चाहा हुआ। वांछित। इच्छित। उ०—हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना।—साकेत, पृ० ३७।

अभीप्सित[2]—संज्ञा पुं० इच्छा। कामना। चाह [को०]।

अभीप्सी—वि० [सं० अभिप्सिन] दे० 'अभीप्सु' [को०]।

अभीप्सु—वि०[सं०]अभीप्सा करनेवाला। चाहनेवाला। इच्छुक [को०]।

अभीरु[1]—वि० [सं०] जो भय उत्पन्न करनेवाला न हो [को०]।

अभीरु[2]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०]।

अभीमान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमान' [को०]।

अभीमुद—वि० [सं०] अत्यधिक प्रसन्न या आनंदयुक्त [को०]।

अभीमोद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता। खुशी [को०]।

अभीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोप। अहीर। २ काव्य में एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ और अंत में जगण (।ऽ।) आता है। उ०—यहि विधि श्री रघुनाथ, गहे भरत कर हाथ। पूजत जोग अपार, गए राज दरबार (शब्द०)।

अभीरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गीत [को०]।

अभीराजी—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा [को०]।

अभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहीरों या अहीरों की बोली।

अभीरु[1]—वि० [सं०] १ निर्भय। निडर। जो भयंकर न हो।

अभीरु[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ सिंह।

अभीरुता—वि० [सं०] १ निर्भय। २. निर्लोभ [को०]।

अभीरुत्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीरुता [को०]।

अभीरू—संज्ञा पुं० [सं०] १ पतिहारी। पनेसारी। २ अबरक। एक [को०]।

अभीशाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिशाप' [को०]।

अभीशु—संज्ञा पुं० [सं०] १ रस्सा। लगाम। २ किरण। किरन। ३ बाहु। भुजा। ४ उँगली [को०]।

अभीषया—क्रि० वि० [सं०] निर्भयतापूर्वक [को०]।

अभीषु—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभीशु' [को०]।

अभीष्ट[1]—वि० [सं०] १ वांछित। चाहा हुआ। अभिलषित। उ०—जो स्वर्ग कर लेता कभी या पुत्र प्रेम अभीष्ट को।—साकेत, पृ० २६। २ मनोनीत। पसंद का। ३ अभिप्रेत। आशय के अनुकूल। ४ प्रिय (को०)। ५ वैकल्पिक [को०]।

अभीष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ मनोरथ। मनचाही बात। उ०—'आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा' (शब्द०)। २ प्रिय व्यक्ति या प्रेमी। ३ प्राचीन आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें अपने इष्ट की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा दिखाई जाय। यह उनमें से प्रहर्षण अलंकार के अंतर्गत आ जाता है।

यौ०—अभीष्टलाभ = इच्छित वस्तु की प्राप्ति। अभीष्टसिद्धि = अभिलषित इच्छा का पूर्ण होना।

अभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गृहस्वामिनी। २ प्रमिता। ३ पान [को०]।

अभीष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीष्ट वस्तु, इच्छा या चाह (को०)।

अभुआना—क्रि० अ० [सं० आ+भावन] हाथ पैर पटकना और जोर जोर से सिर हिलाना जिसमें सिर पर भूत का आना समझा जाता है।

अभुक्त—वि० [सं०] १ न खाया हुआ। २ न भोग किया हुआ। बिना भोगा हुआ। अव्यवहृत। अछूता। उ०—नर सपनेहु उपजुत यान ताके हिय हित हेरन।—रत्नाकर, भाग १, पृ० १६४। ३ जिसने भोजन न किया हो (को०)। ४ जिसने भोग न किया हो (को०)।

अभुक्तपूर्व—वि० [सं०] जिसका पहले कभी भोग या व्यवहार न किया गया हो।

अभुक्तमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की वह घड़ी जिसमें मूल नक्षत्र के आदि की दो घड़ी। गंडांत।

अभुग्न—वि० [सं०] १ न झुका हुआ। सीधा। २ स्वस्थ। निरोग (को०)।

अभुज—वि० [सं०] बाहुविहीन। बिना भुजा का [को०]।

अभुत—वि० [हिं० अभूत आभूत] जो न हुआ। बिना हुए। अपूर्व। उ०—अभुत बात सुनि मातु कलु। पुलक गात जल नयन दुख।—पृ० रा०, ६।११३।

अभुवाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना'। उ०—माता मन भुवाना जानी, मारयो मन अभुवाना है।—कबीर श०, पृ० ६०।

अभू[1]—वि० [हिं० अ+भू = भी] अभी।

अभू[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

अभूतान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभूतना'। उ०—यहि कलि साखि अभूतन भूरि। हरि हर ते को कीरति पूरि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०६।

अभूत—वि० [सं०] १ जो हुआ न हो। २ वर्तमान। ३ असत्य। मिथ्या (को०)। ४ अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ०—आँगन खेलत घुटुरुनि धाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तडित छपाए।—सूर (शब्द०)।

अभूतदोष—वि० [सं०] दोषरहित। निर्दोष [को०]।

अभूतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न हुआ हो। २ अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु [को०]।

अभूताहरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसधि के तेरह अगो मे से एक। २ अयथार्थ बात कहना। छलपूर्ण बात कहना। (को०)।

अभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २ अशक्तता। ३ निर्धनता। ४ विपत्ति। बर्बादी। विनाश[को०]।

अभूतोपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा के दस भेदो मे से एक जिसमे उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ०—जो पटतरिअ तीअ सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २ अनुपयुक्त स्थान। ३ स्थानाभाव। ४ पहुँच से परे का स्थान [को०]।

अभूमिज—वि० [सं०] १ निकृष्ट अथवा अनुपयुक्त स्थान मे उत्पन्न। २ जो भूमि मे उत्पन्न न हो [को०]।

अभूमिप्राप्तसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि मे पड गई हो। ऐसी जगह पडी हुई फौज जहाँ से लडना असभव हो।

अभूरि—वि० [सं०] स्वल्प। कुछ। थोडा। कतिपय [को०]।

अभूष—वि० [सं०] अभूषित [को०]।

अभूषन—सज्ञा पु० [सं० आभूषण] दे० 'आभूषन'। उ०—हीरन के अभूषन पै वारो जग ऐन।—नद० ग्र०, पृ० ३६५।

अभूषित—वि० [सं०] विना आभूषण के। अनलकृत। विना सजाया हुआ [को०]।

अभृत—वि० [सं०] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो [को०]।

अभृतक—वि० [सं०] दे० 'अभृत' (को०)।

अभृतसैन्य—सज्ञा पु० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधिज (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड सकती है।

अभृश—वि० [सं०] थोडा। कुछ। चद [को०]।

अभेडा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेरा'।

अभेद[1]—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अभेदनीय, अभेद्य] १ भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २ एकरूपता। समानता। ३ रूपक अलकार के दो भेदो मे से एक जिसमे उपमेय और उपमान का अभेद विना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुखचद, चरणकमल। उ०—रमन मजरि पुच्छ फिरावत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चदन, कुद, गुलाबन, आमन मीत सुगधन की लहरी है। ताल बडे फणि चक्र प्रवीन जू मित वियोगिनि की कहरी है। आनन ज्वाल गुलाल उडावत व्याल बसत बडो जहरी है।—बेनी (शब्द०)। इसको कोई कोई पृथक् अलकार भी मानते हैं।

अभेद[2]—वि० १ भेदशून्य। एकरूप। समान। उ०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।१०।

अभेद[3]—वि० [सं० अभेद्य] जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई वस्तु न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ०—कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य'।

अभेदबुद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] भेदरहित बुद्धि। एकतापरक बुद्धि। बुद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमे भेदभाव नही होता।

अभेदवादी—वि० [सं० अभेदवादिन्] [वि० स्त्री० अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा मे भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ०—तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि० [सं०] एक। एकाकार। उ०—कही नरायण नामि है कही ब्रह्म कहि वेद। कहि शकर गिरजा कहीं, कहीं अभेदाभेद।—भक्ति०, पृ० २८५।

अभेद्य[1]—वि० [सं०] १ जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २ जो टूट न सके। अखडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य[2]—सज्ञा पु० [सं०] हीरा। हीरक। वज्र [को०]।

अभेय—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभेव'।

अभेरना—क्रि० स० [सं० अभिद, प्रा० अब्भिड] मिलाना। मिश्रित करना। एक मे करना। उ०—जपहु बुद्धि कै दुई सन फेरहु। दही चूर अस हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द०)।

अभेरा—सज्ञा पुं० [सं० अभि=सामने+रण=लडाई अथवा प्रा० अब्भिड] रगडा। झगडा। मुठभेड। टक्कर। मुकाबिला। उ०—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ नोहि बैरी केरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विषम कहा मार मदमाते चलहिं न पाउँ बटोरा रे। मद बिषाद अभेरा दरुहन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५५३।

अभेव[1]—सज्ञा पुं० [सं० अभेद] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव[2]—वि० भेदरहित। अभिन्न। एक। उ०—सिव सुमिरन साँचा करै हो जाय अलख अभेव।—दरिया० बानी, पृ० ५।

अभै—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—सदा सुभाव सुनाम सुमिरन बस, भक्तन अभै दियो।—सूर० १।४०।

अभैदिक—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य' [को०]।

अभैन—वि० [सं०] दे० 'अभय'। उ०—गए भै अभैन सुख सब्ब रब्बै।—पृ० रा०, १।३१२।

अभैपदⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—ध्रुवहि अभैपद दियौ मुरारी।—सूर० १।१६०।

अभैमंत्रⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अभयमन्त्र] निर्भयता प्रदान करनेवाला मत्र।

अभैर—सज्ञा पुं० [सं० ?] धरन या लकडी जिसमे डोरी बाँधकर करघे की कघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। दढेरी।

अभोक्तव्य—वि० [स०] जो भोगने योग्य न हो। जिसका उपयोग न किया जाय। अनुपयुक्त [को०]।

अभोक्ता—वि० [सं० अभोक्तृ] [वि० स्त्री० अभोक्त्री] १ भोग न करनेवाला। व्यवहार न करनेवाला। २ विरक्त (को०)।

अभोखणⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण'। उ०—अगि अभोखण अच्छियड, तन सोभत सगराइ। मारू अवा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमलाइ।—ढोला०, दू० ४७१।

अभोग[1]Ⓤ—वि० [सं०] जिसका भोग न किया गया हो। अछूत। उ०—बरनि सिंगार न जानेउँ नख सिख जैस अभोग। तस जग किछू न पायउँ उपम देउँ ओहि जोग।—जायसी (शब्द०)।

अभोग[2]—सज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०]।

अभोगी—वि० [स० अभोगिन्] [स्त्री० अभोगिनी] भोग न करनेवाला। इद्रियो के सुख से उदासीन। विरक्त। उ०—हमरें जान सदाशिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९०।

अभोग्य—वि० [स०] जो भोग योग्य न हो [को०]।

अभोजⓊ—वि० [सं० अभोज्य] न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान। भोग होइ अभिलाष विनु, महाभोग ता मान। रामच०, पृ० १५२।

अभोजन—सज्ञा पुं० [स०] १ भोजन न करना। २ भोजन से परहेज। ३ उपवास। व्रत [को०]।

अभोज्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य। अभक्ष्य। अभोज। २. जिसका खाना वर्जित हो [को०]।

अभोटीⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] शूद्र श्रेणी के नौकर। उ०—मंदिर मे शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे।—पू० म० भा०, पृ० ३२३।

अभोलⓊ—वि० [हिं० भूलना] जो भूला न हो। जो भूलनेवाला न हो। उ०—अमोल अभोल अतोल अमग। अकज अगज अलुज अभग।—पृ० रा, ६।४।३१७।

अभौⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—नृपति बहुत जाचिय अभौ।—पृ० रा०, ५७।२६७।

अभौतिक—वि० [सं०] १ जो पचभूत का न बना हो। जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव। २ अगोचर।

अभौम—वि० [स०] १. जो भूमि से उत्पन्न न हो। अभूमिज। २. जो खराब या गलत जगह मे पैदा हो [को०]।

अभ्भिⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—उडै सार सार असी वक झार। मनो अभ्भि सम वाल वज्जयो सवार।—पृ० रा०, ६१।२०२०।

अभ्यंग—सज्ञा पु० [संज्ञा अभ्यङ्ग] [वि० अभ्यक्त, अभ्यंजनीय] १ लेपन। चारो ओर पोतना। मल मलकर लगाना। २ नवनीत। नैनू (को०)। ३ तैलमर्दन। स्नेहन।
यौ०—तैलाभ्यंग।

अभ्यजन—सज्ञा पु० [स० अभ्यञ्जन] १ तैल आदि की मालिश। २. आँखो मे सुरमा या अजन लगाना ३ अगराग। तैल आदि। ४ मक्खन। नवनीत [को०]।

अभ्यजनीय—वि० [स० अभ्यञ्जनीय] १ पोतने योग्य। लगाने योग्य। २ तेल या उबटन लगाने योग्य।

अभ्यतⓊ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभ्यतर'। उ०—अगम अगोचर रहया अभ्यत।—कबीर ग्र०, पृ० २६९।

अभ्यतज—वि० [स० अभ्यन्तज] भीतरी। अत तक। अभ्यतर। उ०—रहै कौन अभ्यतज बल प्रकार।—पृ० रा०, ५५।९९।

अभ्यतर[1]—सज्ञा पु० [सं० अभ्यन्तर] १ मध्य। बीच। उ०—निसि लौं रमत कोप अभ्यतर, जो हित कहौ सो थोरी।—सूर०, १०।३८४८। २ हृदय। अत करण।

अभ्यतर[2]—क्रि० वि० भीतर। अदर।

अभ्यतर[3]—वि० १ सुपरिचित। अतरग। निकटतम। २ घनिष्ठता के साथ सबद्ध। ३ कुशल। ४ भीतर का। अदर का। भीतरी। उ०—बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यतर ग्रथि न छूटै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१५।

अभ्यतरक—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तरक] अतरग मित्र। घनिष्ठ मित्र [को०]।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १ पोते हुए। लगाए हुए। २ तेल या उबटन लगाए हुए। ३. सुसज्ज। सजा हुआ (को०)।

अभ्यग्र—वि० [सं०] १ नजदीक। समीप। नवीन। ताजा [को०]।

अभ्यधीन—वि० [सं०] १. अधीन। जो किसी के अधिकार या नियत्रण मे हो। २ जो किसी नियम से बँधा हुआ हो [को०]।

अभ्यनुज्ञा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वीकृति। अनुमति। समति। २. आदेश। ३ पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०]।

अभ्यनुज्ञात—वि० १ स्वीकृत। २ समर्थित [को०]।

अभ्यमन—सज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। धावा। २ आघात। ३ रोग [को०]।

अभ्यमित—वि० [सं०] १ रोगी। २ आहत। चोट खाए हुए [को०]।

अभ्यर्चन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना'।

अभ्यर्चना—सज्ञा स्त्री० [सं०] समान। पूजा। आराधना [को०]।

अभ्यर्ण[1]—वि० १ समीप। नजदीक। पास। २ समीप पहुँचा हुआ या आनेवाला [को०]।

अभ्यर्ण[2]—सज्ञा पुं० सामीप्य। निकटता [को०]।

अभ्यर्थन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ समुख प्रार्थना। विनय। दरखास्त। २ समान के लिये आगे बढ़कर लेना। अगवानी। उ०—लोग स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खडे थे (शब्द०)।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १. प्रार्थना करने योग्य। विनय करने योग्य। २. आगे बढकर लेने योग्य।

अभ्यर्थित--वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [स० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [स० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत—वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--सज्ञा पुं० [सं०] बहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कद—सज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन—सज्ञा पु० [स० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण--सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०—अभ्यवहार मडप = भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन—सज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात--वि० [स० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २. घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं०[स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित[1]—वि० [स०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित[2]—सज्ञा पु० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। २ दावा। ३ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दोष नालिश।

अभ्यागत[1]—वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। पता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड। ५. विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी का पहुँचना। ८ आघात। ९. वध (को०)। १०—शत्रु

अभ्यागारिक—वि० [सं०] १. कुटुब के पालने मे तत्पर। घर में फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र की झझट मे हैरान।

अभ्याघात--सज्ञा पुं०[स०] १ आघात। आक्रमण। २ वध। वट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—सज्ञा पुं० [स०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [स] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]--सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]—सज्ञा पुं०[स०]१ बार बार किसी काम को कर प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—क) अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २. आदत। रट। ३। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरिय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरि न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे मान उसे अलकार नही मानते। ४ अनुशासन पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2]—वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।

अभ्यासकला—सज्ञा पु० [सं०] योग की उन चार कलाओं जो विविध योगांगो के मिलन से बनती है। आसन प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार

क्रिया । २. लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन-सज्ञा पुं० [स०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[को०]।

अभ्यासित-वि० [स० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला । साधक ।

अभ्याहत—वि० [स०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—सज्ञा पुं० [स०] १ निकट लाना । २. अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी सदर्भ मे कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—सज्ञा पुं० [स०] १ सेचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [स०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] परचरित । प्रचलित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—सज्ञा पु० [स०] १ वृद्धि । उत्थान । सपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छ्राय—सज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव । उठान । २ सगीत मे स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स ।

अभ्युच्छित—वि० [स०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरभ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहो का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । बढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व मे आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर मे सतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नादीमुख श्राद्ध । [को०] ।

अभ्युदाहरण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [स०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । २ प्रादुर्भूत । ३ दिन चढे तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४. समृद्ध । उन्नत उत्सव रूप मे मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [स०] १ पास गया हुआ । सामने आया प्राप्त । २ स्वीकृत । अगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अगीकार । वादा करना (को०) । ४ न्याय के अनुसार सिद्धात के चा मे से एक ।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अ सिद्धात कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो व कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अ सिद्धात हुआ ।

अभ्युपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सहायता के लिये पहुँचना दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूर सीखना । ढाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०]

अभ्युपाय—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ साधन [को०] ।

अभ्युपायन—सज्ञा पु० [स०] १ भेंट । उपहार । २ रि त

अभ्युपेत—वि० [स०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वा हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित[1]—वि० [स०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित[2]—सज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्यूढ—वि० [स०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्यूष—सज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार की रोटी । २ अ हुआ भोजन [को०] ।

अभ्यूह—सज्ञा पुं० [स०] १ तर्क । वहम । २ निष्कर्ष । ३ ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष[1]—वि० [स० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी । बहुत ऊँच

अभ्र कप[2]—सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह[1]—वि० [स०] गगनचुंबी [को०] ।

अभ्र लिह[2]—सज्ञा पुं० [स०] हवा [को०] ।

अभ्र—सज्ञा पुं० [स०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोथा । ६ शून्य । ७ कपूर (को०) । ८ बेत बेंत (को०) ।

अभ्रक—सज्ञा पुं० [स०] अबरक । मोडर । दे० 'अबरक' ।

अभ्रकसत्व—सज्ञा पुं० [स०] इसबात [को०] ।

अभ्रकूट—सज्ञा पुं० [स०] पर्वताकार बादल की चोटी [को

अभ्रगगा—सज्ञा स्त्री० [स० अभ्रगङ्गा] आकाशगगा [को०]

अभ्रनाग—सज्ञा पुं० [स०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [स० **अभ्यर्थिन्** [वि० स्त्री० **अभ्यर्थिनी**] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [स०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [स०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार—सज्ञा पु० [स० **अभ्यलङ्कार**] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत—वि० [स० **अभ्यलङ्कृत**] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण—सज्ञा पु० [स०] बहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कद—सज्ञा पुं० [स० **अभ्यवस्कन्द**] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन—सज्ञा पुं० [स० **अभ्यवस्कन्दन**] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण—सज्ञा पु० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०—**अभ्यवहार मडप**=भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन—संज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय—वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात—वि० [स० **अभ्यान्त**] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये बाँहें ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित[1]—वि० [स० **अभ्याकाङ्क्षित**] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित[2]—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [स०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। नालिश।

अभ्यागत[1]—वि० [स०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम—सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक—वि० [स०] १ कुटुब के पालने मे तत्पर। लडके बाले मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात—सज्ञा पुं० [स०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। अडचन। (को०)।

अभ्यात्त—वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—सज्ञा पु० [स०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—सज्ञा पु० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द—सज्ञा पु० [स०] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]—सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रवत। बान। टेव। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर कर्म को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे एक ही की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2]—वि० [स० **अभ्याश**] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।

अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार अनुशीलन करने

क्रिया । २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[को०]।

अभ्यासित–वि० [स० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०–रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [स० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला । साधक ।

अभ्याहत—वि० [स०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [स०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी सदर्भ मे कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—संज्ञा पु० [स०] १ सेचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [स०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [स०] परचरित । प्रचलित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [स०] १ वृद्धि । उत्थान । सपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छ्राय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव । उठान । २ संगीत मे स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म ।

अभ्युच्छ्रित—वि० [स०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी बड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरभ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहो का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व मे आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर मे सतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नादीमुख श्राद्ध । [को०] ।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [स०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढे तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्सव रूप मे मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [स०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अगीकार । मजूरी । ३ वादा करना (को०) । ४ न्याय के अनुसार सिद्धात के चार भेदो मे से एक ।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धात कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धात हुआ ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । ढाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [स०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय साधन [को०] ।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [स०] १ भेंट । उपहार । २ रिश्वत [को०]

अभ्युपेत—वि० [स०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित[1]—वि० [स०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्यूढ—वि० [स०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आधा पका हुआ भोजन [को०] ।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [स०] १ तर्क । बहस । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान ४ विचार [को०] ।

अभ्रंकष[1]—वि० [स० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [को०]

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्रंलिह[1]—वि० [स०] गगनचुंबी [को०] ।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पु० [स०] हवा [को०] ।

अभ्र—संज्ञा पुं० [स०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रक धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोथा । ६ गणित शून्य । ७ कपूर (को०) । ८ बेत बेंत (को०) ।

अभ्रक—संज्ञा पु० [स०] अबरक । मोडर । दे० 'अबरक' ।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [स०] इस्पात [को०] ।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [स०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा—संज्ञा स्त्री० [स० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [स०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २. जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्ह्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्चनीय'।

अभ्यर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना आदि। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलंकार—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मंडन [को०]।

अभ्यलंकृत—वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मंडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। सम्मान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] बहिः निष्कासन। बाहर निकालना या खींचना [को०]।

अभ्यवस्कंद—संज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये शीघ्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कंदन—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कंद'।

अभ्यवहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गर्त के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]—संज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०—अभ्यवहार मंडप=भोजन का स्थान। खाने का मंडप।

अभ्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यान—वि० [सं० अभ्यान्त] १. रोगी। आतुर। २. घायल। आहत [को०]।

अभ्यारंभ—संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानों का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोंकना [को०]।

अभ्याराधित[1]—वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकांक्षित[2]—संज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[1]—वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४. मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६. अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने मे तत्पर। लडके बालो मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झंझट से हैरान।

अभ्याघात—संज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्याप्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द—संज्ञा पुं० [सं] युद्ध। संघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]—संज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]—संज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलंबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रवत। बान। टेव। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमे किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलंकार नही मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ संगीत मे एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2]—वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।

अभ्यासकला—संज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओं मे से एक जो विविध योगांगों के मेल मे बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०]।

अभ्यासित–वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०–रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहो मन कौटिक करौ उपाव।–भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी–वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत–वि० [सं०] १ पीड़ित। ताड़ित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार–संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त–वि० [सं०] किसी सदर्भ में कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिड़काव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित–वि० [सं०] १ छिड़का हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिड़का गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युदय–वि० [सं०] छिड़कने योग्य।

अभ्युचित–वि० [सं०] परचरित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय–संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। संपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्राय–संज्ञा पुं० [सं०] १ बढ़ाव। उठान। २ संगीत में स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है–सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही–सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित–वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढ़ती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी–वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खड़ा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढ़नेवाला।

अभ्युत्थित–वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ। ३ उन्नत। बढ़ा हुआ।

अभ्युत्थेय–वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३. उन्नति के योग्य।

अभ्युदय–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध [को०]।

अभ्युदाहरण–संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित–वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढ़े तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४. समृद्ध। उन्नत। ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत–वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३. समान। तुल्य [को०]।

अभ्युपगम–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष–बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]।

अभ्युपाय–संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३. उपाय साधन [को०]।

अभ्युपायन–संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [को०]।

अभ्युपेत–वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]–वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]–संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ–वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष–संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। बहस। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान। ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]–वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [को०]।

अभ्रंकष[2]–संज्ञा पुं० १. वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]–वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]–संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित में शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ बेंत बेंद (को०)।

अभ्रक–संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। मोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व–संज्ञा पुं० [सं०] इसबात [को०]।

अभ्रकूट–संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०]।

अभ्रगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]।

अभ्रनाग–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [सं० **अभ्यर्थिन्** [वि० स्त्री० **अभ्यर्थिनी**] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [स०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार—सज्ञा पु० [स० **अभ्यलङ्कार**] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत—वि० [सं०**अभ्यलङ्कृत**]आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--सज्ञा पुं० [स०] वहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।

अभ्यवस्कद—सज्ञा पुं०[स० **अभ्यवस्कन्द**] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन—सज्ञा पुं० [स० **अभ्यवस्कन्दन**] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण—सज्ञा पु० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ०—**अभ्यवहार मडप**=भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन—सज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय—वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात--वि० [स० **अभ्यात्त**] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं०[स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित[1]--वि० [स०**अभ्याकाङ्क्षित**] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित[2]--सज्ञा पु० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[1]—वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुठभेड। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक—वि० [स०] १ कुटुब के पालने मे तत्पर। लडके बालो मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात--सज्ञा पु०[स०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ग्रहण किया विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—सज्ञा पुं० [स०] प्रारभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [स] युद्ध। सघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]--सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]—सज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रव्त। बान। टेव। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ सगीत मे एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2]ⓐ—वि० [सं०**अभ्याश**] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।

अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से एक जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन-संज्ञा पु० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[को०]।

अभ्यासित—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी सदर्भ में कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परिचित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। सपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्राय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव। उठान। २ संगीत में स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३. उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध [को०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४ समृद्ध। उन्नत। ५. उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३ समान। तुल्य [को०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३ उपाय साधन [को०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [को०]।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] सायंकाल निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वहम। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान। ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [को०]।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित में शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ बेंत बेंत (को०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। मोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल। २ गुब्बारा [को०]।
अभ्रपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] राहु [को०]।
अभ्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेंत। २ आकाशकुसुम। असंभव बात। पानी [को०]।
अभ्रभेदी—वि० [सं० अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला। गगनचुंबी [को०]।
अभ्रम[1]—वि० [सं०] जिसे भ्रम न हो। भ्रमरहित [को०]।
अभ्रम[2]—संज्ञा पुं० भ्रम का अभाव। स्थिरता। दृढ़ता [को०]।
अभ्रमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०]।
अभ्रमातग—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०]।
अभ्रमु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व के दिग्गज की पत्नी। ऐरावत की पत्नी [को०]।
अभ्रमुप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्ररोह—संज्ञा पुं० [सं०] वैदूर्य मणि। लाजवर्त [को०]।
अभ्रमुवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्रवाटिक—संज्ञा पुं० [सं०] आम्रातक वृक्ष (को०)।
अभ्रवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का वृक्ष [को०]।
अभ्रात—वि० [सं० अभ्रान्त] १ भ्रांतिशून्य। भ्रमरहित। २ भ्रमशून्य। स्थिर। व्यवस्थित।
यौ०—अभ्रातबुद्धि = जिसकी बुद्धि थिर हो।
अभ्राति—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रान्ति] १ भ्रांति का न होना। स्थिरता। अचंचलता। २ भ्रम का अभाव। भूल चूक का न होना।
अभ्रित[1]—वि० [सं० अ + भृत] जो भरा न जा सके। अपूरणीय उ०—दुज वर वज्र पैठ जेहा धर। बिल अभ्रित तिहं थानं पडि थिर।—पृ० रा०, १।१४७।
अभ्रित[2]—वि० [सं०] बादलों से ढँका हुआ [को०]।
आभ्रिय[1]—वि० [सं०] १ बादलों से संबंधित या बादलों से उत्पन्न [को०]।
आभ्रिय—संज्ञा पुं० बिजली [को०]।
अभ्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ फावड़ा। कुदाल। २ नाव साफ करने के लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०]।
अभ्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] उपयुक्तता। औचित्य [को०]।
अभ्रोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र [को०]।
अभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] नगा रहनेवाला साधु। दिगंबर साधु [को०]।
अभ्व[1]—वि० [सं०] १ महत्। विशाल। २ शक्तिशाली। ३. भयंकर [को०]।
अभ्व[2]—संज्ञा पुं० १ विशालता। २ भयंकरता। ३. अत्यधिक शक्ति [को०]।
अमख†—संज्ञा पुं० [सं० आमिष] दे० 'आमिष'। उ०—वहरी अमख हित पखवल, गहै कुलक असक गत। रा० रू०, १५३।
अमग—वि० [हिं० मगन] १ न माँगनेवाला। अयाचक।
अमगल[1]—वि० [सं० अमङ्गल] १ मंगलशून्य। अशुभ। २ भाग्यहीन। अभागा [को०]।
अमगल[2]—संज्ञा पुं० १ अकल्याण। अहित। अशुभ। दुःख। २. दुर्भाग्य (को०)। ३ रेंड़ का पेड़। रेंड। एरंड।
अमगलचार†—संज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० मगलवार] रुदन। विलाप उ०—करहिं अमगलचार, कहाँ गए राजा हो—पलटू०, भा० ३, पृ० ७४।
अमगल्य—वि० संज्ञा पुं० [सं० अमङ्गल्य] दे० 'अमंगल' [को०]।
अमड[1]—वि० [सं० अमण्ड] १ मंडनरहित। सज्जाविहीन। अनलंकृत। २ मांड रहित (चावल)।
अमड[2]—स्त्री० पुं० रेंड का वृक्ष। एरंड द्रुम [को०]।
अमडित—वि० [सं० अमण्डित] अनलंकृत। दे० 'अमड' [को०]।
अमत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अमत्र प्रा० अमत्त] अमानव मन। कुमत। अनुचित विचार। उ०—इन आकर्षे कज्ज विन, किनौ अप्प अमत—पृ० रा०, ६।१४३
अमत[2]—वि० [सं० अमित] अत्यधिक। उ०—राजन रक्खिय सव्व इह, वाढिय प्रीत अमत।—पृ० रा० (उ०), पृ० २५०।
अमत्र—वि० [सं० अमन्त्र] १ जो वेदमंत्रों का अधिकारी न हो। जैसे, स्त्री, शूद्र आदि। २ जिसमें वैदिक मंत्रों की आवश्यकता न हो (कर्म)। ३ वेदमंत्रों को न जाननेवाला। अवेदज्ञ। ४ मंत्रविहीन [को०]।
अमत्रक—वि० [सं० अमन्त्रक] दे० 'अमंत्र' [को०]।
अमत्रज्ञ—वि० [सं० अमन्त्रज्ञ] वैदिक मंत्रों को न जाननेवाला [को०]।
अमद[1]—वि० [सं० अमन्द] १ जो धीमा न हो। तेज। २. उत्तम। श्रेष्ठ। स्वच्छ। सुंदर। भला। उ०—रू० १०। २०३। ३ उद्योगी। कार्यकुशल। चलता पुरजा। चतुर। ४. कम नहीं। बहुत। अधिक [को०]।
अमद[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का वृक्ष [को०]।
अम[1]—वि० [सं०] अपक्व। कच्चा [को०]।
अम[2]—संज्ञा पुं० १ बीमारी का कारण। २ बीमारी। रोग। ३ घाव। मार (को०)। ४ शक्ति। बल (को०)। ५ भय। डर (को०)। ६ सेवक। नौकर। ७ प्राणवायु (को०)। ८ वह स्थिति या अवस्था जो अमित हो (को०)।
अम[3]†—सर्व [सं० अस्मत्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—महाराणी जसराज री या बोली तिणवार। प्रथम अमा पत्राहिए खग धाराजल धार। रा० रू०, पृ० ३३।
अम—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब, अंअ, अम] आम।
विशेष—समस्त पदों में यह प्रायः पहले आता है, जैसे, अमचूर, अमरस, अमरसी।
अमका†—सर्व [सं० अमुक] ऐसा ऐसा। अमुक। फलाना।
अमग्ग—संज्ञा पुं० [सं० अमार्ग प्रा० अमग्ग] कुपथ। कुराह। कुमार्ग।
अमचुर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमचूर'।
अमचूर—संज्ञा पुं० [हिं० अम = 'आम' + चूर] सुखाए हुए कच्चे आम का चूर्ण। पिसी हुई अमहर।
मुहा०—सूखकर अमचूर होना = बहुत दुबला होना। शरीर में हाड़ चाम भर रह जाना।
अमज्जक—वि० [सं०] जिसमें मज्जा न हो। मज्जाविहीन [को०]।
अमडा—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक, प्रा० अंबाडय] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से छोटी और सीकों में लगी हैं। इसमें भी आम की तरह मौर आता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अचार, चटनी आदि के काम मे आते हैं। उक्त पेड का फल। अमारी।

अभणिव—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमत¹—सज्ञा पु० [स०] १ मन का अभाव। असमति। २ रोग। ३ मृत्यु। ४ काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमत²—वि० १ जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २ अज्ञात ३ अस्वीकृत [को०]।

अमति¹—सज्ञा पु० [स०] १ समय। २ चद्रमा। ३ आकार। ढाँचा। ४ अभाव। ५ बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमति²—सज्ञा स्त्री० १ अज्ञान। अचेतना। २. ज्ञान, लक्ष्य या दूरदर्शिता का अभाव [को०]।

अमति³—वि० १ गरीब। दरिद्र। २ दुष्ट। बदमाश [को०]।

अमतपदार्थता—सज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य मे एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमत्त—वि० [स०] १ मदरहित। २ बिना घमड का। ३ शात। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमत्ति—सज्ञा स्त्री० [स० अ+मति] अमति। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अत मत्ति सो गत्ति। अतजा मत्ति अमत्तिय।—पृ० रा०, ३१।१०१।

अमत्सर¹—सज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का न होना। मात्सर्य का अभाव [को०]।

अमत्सर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमद¹—वि० [सं०] १ जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २ दुखी। ३ गभीर [को०]।

अमद²—सज्ञा पुं० [अ०] विचार। सकल्प [को०]।

अमदन्—क्रि० वि० [अ०] जानबूझकर। इच्छापूर्वक।

अमदान—सज्ञा पु० [सं०]

अमधुर¹—वि० [सं०] १ जो मधुर न हो कटु। अरुचिकर।

अमधुर²—सज्ञा पु० सगीतशास्त्र के अनुसार बाँसुरी के सुर के छह दोषों मे से एक।

अमन¹—सज्ञा पु० [अ० अम्न] १ शाति। चैन। आराम। इतमीनान। २ रक्षा। बचाव।

यौ०—अमनअमान=शाति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन=सुख। आराम। शाति। अमनपसद=आरामपसद। शातिप्रिय।

अमन²—सज्ञा पु० [स० अमनस्] १ अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २ ज्ञानाभाव [को०]।

अमनस्क—वि० [स०] १ मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २ उदास। अनमना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमनस्] १ मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २ उदास। ३ स्नेहरहित। ४ बेफिक्र। ५ अनमना। ६ मन पर नियत्रण न रखनेवाला। ७ नासमझ मूर्ख। (को०)।

अमना²—सज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोडा नही। बहुत। अधिक [को०]।

अमनिया¹—वि० [सं० अ+मल अथवा कमनीय ?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कबहि अमनिया हलुवा खावै।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य¹—सज्ञा पुं० [सं०] १ जो मनुष्य न हो। अमानव। २ राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य²—सज्ञा पुं० १ अमानवीय। २ जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनेत—वि० [अ० अमन+हिं० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—अपैसिंह अमनेत इक खल खडन बलबड। सुजान०, पृ० ५।

अमने†—सर्व० [पु० अस्म, प्रा० हम्म, अ० अम, गुज० मन्ने=मुझे] १. हमको। मुझको। २ हमने। मैंने। उ०—आप अप्रछन अमने देखे, आपणपो न दिखाडे रे।—दादू०, पृ० ५३४।

अमनैक¹—सज्ञा पुं० [स० आम्नायिक=वंश का अथवा स० आत्मन्, प्रा० अप्पण, गुज० अमे, अने, अमो, हिं० अपना, अपनैक] १ अवध मे एक प्रकार के काश्तकार जिन्हें कुलपरपरा के कारण लगान के सबध मे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २. सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुभट छवि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनैक अढाए। खेलहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनैक²—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) दौरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ आली बनमाली आइ बहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हौं गोरस बेचन को ब्रज बीथिन धूम मची चहुँधा तें। बाल गोपाल सबै अमनैक हैं फागुन मे बचिहौं री कहाँ ते।—बेनी (शब्द०)।

अमनैकी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अमनैक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनैकपन। उ०—चचल चोखे चपल अति नही देत पल चैन। कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १ असुदर। जो सुंदर न हो। २ अप्रिय। अरुचिकर [को०]।

अमनोनिवेश—सज्ञा पुं० [स० अ+मनस्+निवेश] मनोनिवेश का न होना। असावधानी। उ०—किंतु ऐसा उनके अमनोनिवेश से हुआ है।—ठेठ० उपो) पृ० ६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अब तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो०), पृ० १।

अमम¹—वि० [स०] १ ममतारहित। अहकारशून्य। २ स्वार्थविहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम²—सज्ञा पुं० बारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर¹—वि० [स०] १ जो मरे नही। चिरजीवी। २ शाश्वत। अविनाशी।

अमर²—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १ देवता। २ पारा। ३ हडजोड का पेड। ४ अमरकोश। ५ निगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरसिंह जो विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक थे। ६ मरुद्गणो मे से एक। उनचास पवनो में से

एक। ७ विवाह के पहले वर कन्या के राशिवर्ग के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं—अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण। ८ सोना (को०)। ९ तैंतीस (३३) की संख्या (को०)। १० एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०)। ११ अस्थिसमूह (को०)। १२ एक पर्वत (को०)। १३ स्नुही वृक्ष। सेंहुड (को०)।

अमर[३] ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबर'। उ०—उड्डि रेन डंबर अमर दिष्यौ सेन चहुआन।—पृ० रा० ९।१३१।

अमरकंटक—संज्ञा पुं० [सं० अमरकण्टक] विंध्याचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। यह हिंदुओं के तीर्थों में से है। यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है।

अमरकोट—संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०]।

अमरकोश—संज्ञा पुं० [सं०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश।

अमरख ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। रिस। उ०—बरबस खोज पिता के गयऊ। खोज न पाय अमरख तब भयऊ।—कबीर सा०, पृ० ५९०। २ रस के अंतर्गत ३३ संचारी भावों में से एक। दूसरे का अहंकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा।

अमरखी ⓤ—वि० [सं० अमर्षिन्] क्रोधी। बुरा माननेवाला। दुःखी होनेवाला।

अमरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमरज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०]।

अमरण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] अमरता। मृत्यु का अभाव।

अमरण[२]—वि० मरणरहित। अमर। चिरजीवी।

अमरतटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। देवनदी [को०]।

अमरतरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवतरु। कल्पवृक्ष [को०]।

अमरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृत्यु का अभाव। चिरजीवन। उ०—सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु।—मानस, १।१५। २ देवत्व। उ०—प्रेरे अमरता के चमकीले पुतले! तेरे वे जयनाद।—कामायनी, पृ० ७।

अमरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमरता। २ देवत्व।

अमरदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़।

अमरद्विज—संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर का प्रबंधक या पुजारी ब्राह्मण [को०]।

अमरधाम—संज्ञा पुं० [सं० अमरधामन्] स्वर्ग। देवलोक। [को०]।

अमरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को बर्फ के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है। ३. जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर।

अमरपख ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष। उ०—समय पाइ कै लगन है, नीचहु करन गुमान। पाय अमरपख द्विजन लौं कोंग चहै सनमान।—रसनिधि (शब्द०)।

अमरपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—खेलन हरयो अमरपति मानो।—घनानंद, पृ० २४८।

अमरपद—संज्ञा पुं० [सं०] देवपद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—अठै अमरपद लहिए।—कबीर श०, पृ० २६।

अमरपन ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अमर+हिं० पन] १ अमरता। चिरजीवन। २ देवत्व।

अमरपुर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती। देवताओं का नगर।

अमरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०]।

अमरपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कल्पवृक्ष। २ वृक्षविशेष। कौंस। ३ तालमखाना। ४. गोखरू। ५ केतकी (को०)। ६ चूत (को०)।

अमरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंध पुष्पी का क्षुप [को०]।

अमरबेल—संज्ञा पुं० [सं० अमर+वल्लि, अम्बरवल्ली] एक पीली लता या बीर जिसमें जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। आकाशबेल। आकाशवल्ली।

विशेष—यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उस वृक्ष को निर्बल कर देती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्य इसे मधुर, पित्तनाशक और वीर्यवर्धक मानते हैं।

अमरबौर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमरबेल'। उ०—अमरबौर अर्थात् आकाशबौर ने तो ऐसे बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया—प्रेमघन०, पृ० १९।

अमरभनित ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० अमर+भणिति] अमरवाणी। संस्कृत। उ०—चित चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि।—घनानंद, पृ० ६०७।

अमरमूरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमियमूरि'।

अमररत्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमरराज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०—घनन घनन घटागन बजै। अमरराज गज की छवि लजै।—नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

अमरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रपुरी। देवलोक। स्वर्ग।

अमरवर—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ। इंद्र। उ०—खिलति मिलति तिनको नरपति सो। जिमि वर देत अमरवर रति सो।—गोपाल (शब्द०)।

अमरवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशबौर। अमरबेल [को०]।

अमरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल।

अमरस[१]—संज्ञा पुं० [हिं० अम=आम+रस] निचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस। अमावट।

अमरस[२] ⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] दे० 'अमर्ष'। उ०—अमरस बे इतबार, निरदयता मन नासनिक। नरसम सार अमार, पैनाँ घर बाढ़ै पिसण।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ६२।

अमरसर ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] अमृतसर। पंजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है। उ०—जो पंजाब अमरसर गाया। सो बावे ने नहीं बनाया।—घट०, पृ० ३२८।

अमरसरी†—वि० [हिं० अमरसर] अमृतसर से संबद्ध। अमरसर का।

अमरसहरी†—वि० [हिं०] दे० 'अमरसरी'।

अमरसी—वि० [हिं० आमरस+ई (प्रत्य०)] आम के रस की तरह पीला। सुनहला। यह रंग एक छटाँक हलदी और आठ माशे चूना मिलाकर बनता है।

अमरा[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दूब। २ गुर्च। गिलोय। ३ सेंहुड़। थूहर। ४ नीली कोयल। वडा नील का पेड़। ५ चमड़े की झिल्ली जिसमे गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है। आँवर। जटायु। ६ नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है। ७ इद्रायण। ८ वरियारा। वरगद की एक छोटी जगली जाति। ९ घीकुआर। १० इद्रपुरी।

अमरा(पु)[2]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमडा'।

अमराई†—सज्ञा स्त्री० [स० आम्रराजि] आम का बाग। आम की वारी। २ उपवन। उद्यान। उ०—वह हरी लताओ की सुदर अमराई।—कानन०, पृ० ३९।

अमराऊ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमराव'। उ०—देखा सब राउन अमराऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११।

अमराचार्य—सज्ञा पु० [स०] देवताओ के आचार्य या गुरु। बृहस्पति (को०)।

अमराद्रि—सज्ञा पु० [स०] देवताओ का पर्वत। सुमेरु (को०)।

अमराधिप—सज्ञा पु० [स०] इद्र (को०)।

अमरापगा—सज्ञा स्त्री० [स०] देवनदी। गगा (को०)।

अमरापति(पु)—सज्ञा पुं० [स० अमरपति] इद्र। उ०—अमरापति चरननि तर लोटत।—सूर०, १०९५०।

अमराय(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अमराई। उद्यान। उ०—आस पास अमरायें वरारी। जहँ लग फूलै तिती फुलवारी।—मद० ग्र० पृ० ११६।

अमरारि—सज्ञा पु० [स०] देवताओ के शत्रु। राक्षस (को०)।

यौ०—**अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य**=दैत्यगुरु। शुक्र।

अमरालय—सज्ञा पुं० [स०] देवताओ का स्थान। स्वर्ग। इद्रलोक।

अमराव(पु)†—सज्ञा पुं० [स० आम्रराजि] दे० 'अमराई'।

अमरावती—सज्ञा स्त्री० [स०] देवताओ की पुरी। इद्रपुरी। सुरपुरी।

अमरित(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—अमरित पय नित स्रवहि वच्छ महि थमन जावहि।—अकबरी०, पृ० ७२।

अमरी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ देवता की स्त्री। देवकन्या। देवपत्नी। २ एक पेड़ जिससे एक प्रकार का चमकीला गोंद निकलता है। सज। मग। आमन। सियामान।

विशेष—इस गोद को सुगध के लिये जलाते हैं। सथाल लोग इसे खाते भी हैं। इसकी छाल से रग बनता है चमडा सिझाया जाता है। लकडी मकान, छकडे और नाव बनाने तथा जलाने के काम मे आती है। इसकी डालियो से लाही भी निकलती है और पत्तियो पर सिंहभूम आदि स्थानो मे टसर रेशम का कीडा भी पाला जाता है।

अमरी[2]—सज्ञा स्त्री० हठयोगियो की एक क्रिया। उ०—बजरी करता अमरी रापै अमरी करता वाई। भोग करता जे व्यंद रापै ते गोरप का गुरभाई।—गोरख०, पृ० ४९।

अमरीकन—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीका—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमेरिका'।

अमरीकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीप(पु)—सज्ञा पु०[हिं०] दे० 'अबरीष'। उ०—दुरवासा अमरीष सतायौ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २४०।

अमरु—सज्ञा पु० [स०] एक राजा जिसने 'अमरुशतक' नामक शृगार का ग्रथ बनाया था।

अमरू—सज्ञा पु० [अ० अहमर=लाल?] एक प्रकार का रेशमी कपडा जो काशी मे बुना जाता है।

अमरूत—सज्ञा पु० [फा० अमरूद, तु० मुरूद] एक पेड जिसका धड और टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच या छ अगुल लबी होती है।

विशेष—इसका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। पत्ती और छाल रँगने तथा चमडा सिझाने के काम आती है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम मे मिलाकर मदक बनाते हैं। किसी किसी का मत है कि यह पेड अमरीका से आया है। पर भारतवर्ष मे कई स्थानो पर यह जगली होता है। इलाहाबाद और काशी का यह फल प्रसिद्ध है।

पर्या०—(मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) जाम। विही। सपडो। (राजस्थान) जायफल। (बगाल) पेयारा। (दक्षिण) पेरूफल। पेरुक। (नेपाल तराई) रुन्नी। (अवध) मकरी। अमरूद। (तिरहुत) लताम।

अमरूद—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरूत'।

अमरेश—सज्ञा पु० [स०] देवताओ का राजा। इद्र।

अमरेश्वर—सज्ञा पुं० [स०] अमरेश। इद्र।

अमरैया†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमराई'।

अमरौती†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अमरता। अमरत्व। उ०—जनम हुआ है कायर घर तो घर बैठे अमरौती खाय।—काले०, पृ० २४।

अमर्त्य—वि० [स०] जो मर्त्य न हो। अविनश्वर। अमर (को०)।

यौ०—**अमर्त्यभुवन**=देवलोक। **अमर्त्यापगा**=गगा।

अमर्दित—वि० [सं०] १ जिसका मर्दन न हुआ हो। जो मला न गया हो। बिना मला दला। जो गिजा मिजा न हो। २ जो दबाया या हराया न गया हो। अपराभूत। अपराजित।

अमर्याद—वि० [स०] १ मर्यादाविरुद्ध। अव्यवस्थित। बेकायदा। २ बिना मर्यादा का। अप्रतिष्ठित। ३ सीमारहित। असगत आचरण करनेवाला (को०)।

अमर्यादा—सज्ञा स्त्री० [स०] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। मर्यादा या सीमा का न होना। असगत आचरण।

अमर्ष—सज्ञा पुं० [स०] [वि० **अमर्षित, अमर्षी**] १ क्रोध। रिस। २. वह द्वेष या दुख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने के कारण उत्पन्न होता है जिसने अपने गुणो का तिरस्कार किया हो। ३ असहिष्णुता। अक्षमा। ४ तैंतीस सचारी भावो मे से एक (को०)।

अमर्षण[1]—सज्ञा पुं० [स०] क्रोध। रिस। असहिष्णुता।

अमर्षण[2]—वि० क्रोधी। असहिष्णु (को०)।

अमर्पित—वि० [स०] अमर्षी। क्रोधी [को०]।

अमर्षी—वि० [स० अमर्षिन्] [वि० स्त्री० अमर्षिणी] क्रोधी। असहनशील। जल्दी बुरा माननेवाला।

अमल[१]—वि० [स०] १ निर्मल। स्वच्छ। २ निर्दोष। पापशून्य। ३ उज्वल। प्रकाशित। चमकीला (को०)।

अमल[२]—सज्ञा पु० १ अबरक। अभ्रक। २ स्वच्छता। निर्मलता (को०)। ३ परब्रह्म (को०)।

अमल[३]—सज्ञा पु० [अ०] १ व्यवहार। कार्य। आचरण। साधन।

क्रि० प्र० करना।—होना।

यौ०—अमलदरामद=कार्रवाई।

२ अधिकार। शासन। हुकूमत। उ०—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनो पार।—भारतेंदु ग्र०, प्र० भा०, पृ० २९२।

यौ०—अमलदखल। अमलदरामद=जाब्ते की कार्रवाई। अमलदारी=राज्य। हुकूमत। अधिकार। अमलप=अधिकारपत्र।

३ नशा। उ०—किई ठाकुर अलगा वहउ, आवउ अमल कराँह।—ढोला०, दू०, ६२८।

यौ०—अमलपानी=नशा वगैरह।

४ आदत। बान। टेव। व्यसन। लत। उ०—आनद कद चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परयो।—सूर० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना। उ०—हरिदरसन अमल परयो लाजन लजानी।—सूर० (शब्द०)।

५ प्रभाव। असर। उ०—अभी दवा का अमल नही हुआ है (शब्द०)। ६ भोगकाल। समय। वक्त। उ०—अब चार का अमल है (शब्द०)।

अमलकोची—सज्ञा स्त्री० [देश०] कजे की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियो से चमडा सिझाया जाता है। वि० दे० 'कुती'।

अमलगुच्छ—सज्ञा पुं० [स०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष। वि० दे० 'पदम'।

अमलता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निर्मलता। स्वच्छता। २ निर्दोषता।

अमलतास—सज्ञा पुं० [स० अम्ल] एक पेड जिसमे डेढ दो फुट लबी गोल गोल फलियाँ लगती हैं।

पर्या०—आरग्वध। घनवहेडा। किरवरा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान और फूल सन के समान पीले रग के होते हैं। फलियो के ऊपर का छिलका कडा और भीतर का गूदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने मे कुछ मिठास लिए हुए खट्टा और कडुआ और बहुत दस्तावर होता है। इसके फूलो का गुलकद बनता है जो गुलाब के गुलकद से अधिक रेचक होता है। इसके बीजो से कै कराई जाती है।

अमलतासिया—वि० [हिं० अमलतास+इया (प्रत्य०)] अमलतास के फूल के समान हल्के पीले रग का। हल्का पीला। गधकी।

अमलदार—सज्ञा पु० [अ० अमल+फा० दार] अधिकारी। शासक। हुकूमत करनेवाला।

अमलदारी—सज्ञा स्त्री० [अ० अमल+फा० दारी] १ अधिकार। दखल। शासन। २ रुहेलखड मे एक प्रकार की काश्तकारी जिसमे असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पडता है। कनकूत।

अमलपट्टा—सज्ञा पु० [अ० अमल+हिं० पट्टा] वह दस्तावेज या अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य मे नियुक्त करने के लिये दिया जाय।

अमलपतत्री—सज्ञा पु० [स० अमलपतत्रिन्] जगली हस [को०]।

अमलबेत—सज्ञा पु० [स० अम्लवेतस्] १ एक प्रकार की लता जो पश्चिम के पहाडो मे होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ बाजार मे बिकती हैं और दवा मे पडती हैं। २ एक मध्यम आकार का पेड जो बागो लगाया जाता है।

विशेष—इसके फूल सफेद और फल गोल, खरबूजे के समान, पकने पर पीले और चिकने होते हैं। इस फल की खटाई बडी तीक्ष्ण होती है। इसमे सूई गल जाती है। यह अग्निमदीपक और पाचक होता है, इस कारण चूरण मे पडता है। यह एक प्रकार का नीबू है।

अमलबेद—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलबेत'। उ०—चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्णमुरारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६६२।

अमलबेल—सज्ञा स्त्री० [अमल ?+हिं० बेल] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी गरम प्रदेशो मे पाई जाती है। वर्षा ऋतु मे इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रग के सुदर फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ फोडो पर उन्हें पकाने के लिये बाँधी जाती हैं।

अमलमणि—सज्ञा पु० [स०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमलरत्न—सज्ञा पु० [स०] स्फटिक [को०]।

अमला[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लक्ष्मी। २ सातला वृक्ष। ३ पताल आँवला।

अमला[२]—सज्ञा पु० [स० आमलक] आँवला।

अमला[३]—सज्ञा पुं० [अ० अमलह्] कर्मचारी। कचहरी या दफ्तर मे काम करनेवाला। कार्याधिकारी। उ०—फूलि न जौ तू ह्वै गयो राजा बाबू अमला जज्ज।—भारतेंदु ग्र०, १।५५१।

यौ०—अमलाफैला (अमला फैलह्)=कचहरी का कर्मचारी। अमलामाजी=कर्मचारियो को घूस देकर वशीभूत करने की क्रिया।

अमला[४] (यू)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरा'। उ०—साठ पहर अमला रा माँता हेली देता डोली।—घनानद, पृ० ४४५।

अमलातक—सज्ञा पुं० [स०] अमलबेत [को०]।

अमलानक—सज्ञा पुं० [स०] अमलबेत [को०]।

अमलिन—वि० [स०] १ स्वच्छ। निर्मल। निर्दोष।

अमली[१]—वि० [अ० अमल+फा० ई (प्रत्य०)] १ अमल मे आनेवाला व्यावहारिक। २ अमल करनेवाला। कर्मण्य। ३ नशेबाज।

अमली[२]—सज्ञा स्त्री० [स० अम्लिका] १ इमली। २ एक झाड़ीदार

पेड जो हिमालय के दक्षिण गढवाल से आसाम तक होता है। करमई। गोरूवटी।

अमलीममली(पु)—वि० [हिं०] उलटी सीधी। उ०—अमली ममली आरती। जाई वघेरइ दियो मिलाए।—बी० रासो०, पृ०१२।

अमलुनियाँ†—सज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घास जो खेतो मे अपने आप उग जाती है।

अमलूक—सज्ञा पु० [सं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उसका पेड।

विशेष—यह अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान, हजारा, कश्मीर और पजाब के उत्तर हिमालय की पहाडियो पर होता है। इसमे से बहुत सा रस बहता है जो जमकर गोद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनो खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इसे मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्ललोणी] नोनियाँ घास। नोनी।।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दल की और खाने मे खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्नि वर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस मे धतूरे का विष उतर जाता है। यह बडी पत्तियो का भी होता है जिसे 'कुलफा' कहते हैं।

अमल्लकी†—वि० [अ० मुतलक] बिलकुल। पूरा पूरा। समूचा। ज्यो का त्यो।

अमवा(पु)‡—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'आम'। उ०—चडि अमवा की डारि, अकेली धन का रै खडी।—धरम० पृ० ४३।

अमस[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २ रोग। ३ मुखता[को०]।

अमस[2]—वि० निर्बोध। अज्ञानी।

अमसूल—सज्ञा पु० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष—इस वृक्ष की डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती है। दक्षिण मे कोकण, कनारा और कुर्ग के जगलो मे भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा मे ब्रिंदाव के नाम से बिकता है। पर यह वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज से निकाला जाता है और तेल कोकम का मक्खन कहलाता है। बाजारो मे यह तेल जमी हुई सफेद लबी बत्तियो या टिकियो के रूप मे मिलता है जो साधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और सकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि मे इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसृण—वि० [सं०] जो मसृण न हो। कठोर। कडा [को०]।

अमहर—सज्ञा स्त्री० [हिं० आम=अम+हर (प्रत्य०)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी मे पडती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० महल] १ बिना घर का। अनिकेत। २ जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ०—अंबरीष और याग जनक जड शेष सहस मुख पाना। कहैं लौं गनौं अनंत कोटि लै अमहल महल दिवाने।—कबीर (शब्द०)।

अमाँश[1]—वि० [सं०] १. मासहीन। २. दुर्बल। निर्बल।

अमास[2]—सज्ञा पुं० वह जो मास न हो। मास से इतर पदार्थ [को०]।

अमासक—वि० [सं०] अमाश [को०]।

अमाँ—अव्य० [हिं० ए+फा० मियाँ] मुसलमानो मे बातचीत मे प्रचलित एक सबोधन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अमावस्या। २ अमावस्या की कला। स्कदपुराण के अनुसार चद्रमा की सोलहवी कला जिसका क्षय और उदय नही होता। ३ घर। ४ मर्त्यलोक। इहलोक। ५ चौपायो की आँख पर की बतौरी जो अशुभ समझी जाती है।

अमा[2]—वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमधौना†—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

अमाजुर—सज्ञा स्त्री० [स०] अपने पिता के घर पर ही बडी और बूढी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना(पु)—क्रि० स० [सं० आमन्त्रण, प्रा० आमत्रण] आमत्रित करना। निमत्रण देना। न्योता देना। आह्वान करना। बुलाना। उ०—कह्यो महरि सो करौ चँडाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करौ भोग सामग्री कुलदेवता अमाति।—सूर० (शब्द०)।

अमातृ—वि० [स०] मातृविहीन। बिना माँ का [को०]।

अमात्य—सज्ञा पुं० [सं०] मत्री। वजीर।

अमात्र[1]—वि० [सं०] १ मात्रारहित। बेहद। अपरिमित। २ अपूर्ण। असमग्र [को०]। ३ आरभिक [को०]।

अमात्र[2]—सज्ञा पु० १ माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नही है। २ परब्रह्म [को०]।

अमान[1]—वि० [सं०] १ जिसका मान या अदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ०—गायागुन जानातीत अमाना वेद पुरान भनता।—मानस, १।१९२। २ बेहद। बहुत। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)। ३ गर्वरहित। निरभिमान। सीधासादा। उ०—सदा रामप्रिय होब तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ज्ञान बिराग निधान।—मानस, ७।११३। ४ मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादर। आत्माभिमानरहित। उ०—(क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।—मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब ससय छीना।—मानस, १।६७।

अमान[2]—सज्ञा पुं० [अ०] १ रक्षा। बचाव। २ शरण। पनाह। ३. शाति। उ०—माँगने से अगर मिले हमको क्यो न जी की अमान तो माँगूँ।—चुभते०, पृ० ५४।

अमानत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २ वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी नियत या अनियत काल तक के लिये रख दी जाय। थाती। धरोहर। उपनिधि। ३. अमीन का काम या पद [को०]। ४. शाति। अमन।

यौ०—अमानतखाना=कोठी, बैंक आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतखाना=वह

स्थान जहाँ अमानत मे वस्तुएँ रखी जाती हैं। **अमाननामा**= अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। **अमानत मे खयानत करना या होना**=अमानत मे रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—सज्ञा पुं० [अ० अमानत+फा० दार] १ जिसके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २ अमीन (को०)।

अमानन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अमानना' (को०)।

अमानना—सज्ञा स्त्री० [स०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान (को०)।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर (को०)।

अमानस्य[1]—सज्ञा पु० [सं०] पीडा। दुख (को०)।

अमानस्य[2]—वि० पीडित। व्यथित। दुखित (को०)।

अमाना[1]—क्रि० अ० [स० आ=पूरा पूरा+मान=माप] १ पूरा पूरा भरना। समाना। अँटना। जैसे—इस बरतन मे इतना पानी नही अमा सकता (शब्द०)। उ०—पुनि पुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ।—तुलसी ग्र०, पृ० ८३। २ फूलना। उमडना। इतराना। उ०—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।—सूर (शब्द०)।

अमाना[2]†—सज्ञा पु० [स० अयन] बखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १ जिसे माना न गया हो। २ जिसका मान न हुआ हो। असमानित।

अमानितसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसकी वीरता के उपलक्ष्य मे उचित आदर मान न किया गया हो और जो इस कारण असतुष्ट हो।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड सकती है।

अमानिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। मान का न होना (को०)।

अमानित्व—सज्ञा पुं० [सं०] गर्वराहित्य। अमानिता। (को०)।

अमानिया—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन।

अमानिशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अधकारयुक्त रात (को०)।

अमानी[1]—वि० [स०] निरभिमान। घमडरहित। अहकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० आत्मन्] १ वह भूमि जिसकी जमीदार सरकार हो और जिसका प्रबध उसकी ओर से जिले का कलक्टर करे। खास। २ जमीन या कोई कार्य जिसका प्रबध अपने ही हाथ मे हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३ लगान की वसूली जिसमे बिगडी हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी[3]—सज्ञा स्त्री० [स० अ+हिं० मानना] मनमानी अवस्था। अपने मन की कार्रवाई। अधेर।

अमानुष[1]—वि० [स०] १ मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अलौकिक। उ०—सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे।—मानस, १।३५०। २. मनुष्यत्व गुण के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक।

अमानुष[2]—सज्ञा पुं० १ मनुष्य से भिन्न प्राणी। २ दैत्य दानव। ३ राक्षस।

अमानुषिक—वि० [स०] १ अलौकिक। अमानुषी। पैशाचिक (को०)।

अमानुषी—वि० [स०] १ मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक। २ मानवी शक्ति के बाहर। अलौकिक।

अमानुषीय—वि० [स०] दे० 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [स०] अमाननीय। अस्वीकृत (को०)।

अमान्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] न मानना। अस्वीकृति।

अमाप—वि० [स०] १ जिसके परिमाण का अदाजा न हो सके। अपरिमित। उ०—अगर के पेड उस जगह जहाँ है नहीं, उतने बगूरे अब अति ही अमाप है।—भूषण ग्र०, पृ० २८८। २ बेहद। बहुत। उ०—मारवा कहाँ आप दई बधाई नवनि ही। या सूरता अमाप दृगनि देखि बाढी हुँसी।—हम्मीर०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [स०] जिसकी माप न की जा सके। अमाप (को०)।

अमापित—वि० [स०] जो नापा न गया हो। जिसकी माप न हुई हो (को०)।

अमाप्य—वि० [स०] अमापनीय (को०)।

अमामⓊ†—वि० [हिं० अमाप] बहुत। उ०—तिनके करैं प्रणाम उमगे मना अमाम।—रा० रू०, पृ० ७६।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [स०] 'अमावस्या' (को०)।

अमामा—सज्ञा पुं० [अ० इमामह] पगडी। वह पगडी जिसके अदर टोपी रहती है। उ०—कोई टोपी टोप बनाता है कोई बाँधे फिरै अमामा है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अमावस्या' (को०)।

अमाय[1]Ⓤ—वि० [स०] १ दे० 'अमाया'। २ अपरिमेय (को०)।

अमाय[2]—सज्ञा पुं० परब्रह्म (को०)।

अमाया[1]—वि० [स०] १ मायारहित। निर्लिप्त। २ निःस्वार्थ। निष्कपट। निश्छल। उ०—जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।—मानस, ६।८।

अमाया[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] निष्कपटता। निश्छलता। ईमानदारी (को०)।

अमायिक—वि० [स०] १ दोषरहित। २ मायारहित। ३ निश्छल। निष्कपट। ४ सच्चा।

अमायी—[स० अमायिन्] दे० 'अमायिक' (को०)।

अमार[1]†—सज्ञा पुं० [फा० अंबार] १ अन्न रखने का घेरा। अरहर के सूखे डठलो या सरकडो की टट्टी गाडकर बनाया हुआ घेरा जिसे ऊपर से छा देते हैं, और जिसमे ऊपर, नीचे मुख देकर बीच मे अनाज रखते है। २ राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार[2]—सज्ञा पुं० [अ०] अमरण (को०)।

अमारⓊ[3]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरी'।

अमार[४] ⓤ†—पर्व० [हिं०; तुल० वे० आमार, ने० हाम्रा, हाम्रो,] हमारा। मेरा। उ०—कइवा देवल पुतली। ईमीय छइ प्रभु जी अमारडी नार।—वी० रासो, पृ० ९०।

अमारग ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमार्ग'।

अमारी[१]—संज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मडायुक्त हौदा।

अमारी[२]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आमडा या अमडा] अमडा नामक वृक्ष या उसका फल।

अमार्ग[१]—सज्ञा पु० [स०] १ कुमार्ग। कुराह। २ बदचलनी। बुरी चाल। दुराचरण।

अमार्ग[२]—मार्गरहित। मार्गविहीन। [को०]।

अमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो। अस्वच्छ। २. जिसका सस्कार न हुआ हो। बिना शोधा हुआ।

अमार्ज्य—वि० [स०] १ जिसको स्वच्छ न किया जा सके। २ जिसका सस्कार या शोधन करना सभव न हो।

अमाल ⓤ—सज्ञा पु० [अ० अमल] अमल रखनेवाला। हाकिम। शासक। उ०—पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क को अमाल, भयो दडक जहान को।—भूषण (शब्द०)।

अमालनामा—सज्ञा पुं० [अ० अमाल+फा० नामह] १ वह पुस्तक या रजिस्टर जिसमे कर्मचारियो की भली या बुरी कार्रवाइयाँ दर्ज की जाती हैं। २ कर्मपुस्तक। कर्मपत्र। मुसलमानी मत के अनुसार वह पुस्तक जिसमे प्राणियो के शुभ और अशुभ कर्म कयामत मे पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं।

अमाली ⓤ—सज्ञा स्त्री० [अ० अमल] १ जाँच। २. लेखाजोखा। उ०—धरनी साल व माल अमाली, जमा खरच यहि पाई।—धरनी०, पृ० ३।

अमावट[१]—सज्ञा पुं० [सं० आम्र हिं० आम+सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट] आम के सुखाए हुए रस के पर्त या तह।

विशेष—इसे बनाने के लिये पके आम को निचोडकर उसका रस कपडे या किसी और चीज पर फैलाकर सुखाते हैं। जब रस की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते हैं।

अमावट[२]—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जाति की एक मछली।

अमावड†—वि० [स० अ+प्रा० मात्र (माप) +डि० ड (प्रत्य०)] शक्तिशाली। जोरावर।

अमावना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अमाना'।

अमावस—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमावस्या'। उ०—मौन अमावस मूल बिन रोहिनि बिन अखतीज।—बाघ०, १८१।

अमावसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या [को०]।

अमावस्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्णपक्ष की अतिम तिथि। वह तिथि जिसमे सूर्य और चद्रमा एक ही राशि के हो। २ हठयोग की एक क्रिया।

अमावास्य—वि० [सं०] १ जो अमावस्या के दिन हुआ हो।

अमावास्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या'।

अमाह—सज्ञा पुं० [सं० अमास] [वि० अमाही] नेत्ररोग विशेष। आँख के डेले मे निकला हुआ लाल मांस। नाखूना।

अमाही—वि० [हिं० अमाह] अमाह रोग सबंधी। अमाह रोगवाला।

अमिअ ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अप० अमिअँ, मैं० ⓤ अमित्र] दे० 'अमिय'। उ०—अमिअ मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।—मानस १।१।

अमिआ ⓤ†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—करुण समाइअ अमिअ रस बुज्झ कहने कन।—कीर्ति०, पृ० ५६।

अमिख ⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आमिष'।

अमिट—वि० [सं० अ+हिं० मिटना, अथवा अ=नहीं+मर्त्य=मरनेवाला] १ जो न मिटे। जो नष्ट न हो। नाशहीन। स्थायी। २ जो न टले। अटल। जो निश्चय हो। अवश्यभावी।

अमित—वि० [स०] १ जिसका परिमाण न हो। अपरिमित। बेहद। असीम। २ बहुत। अधिक। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित (को०)। ४ अज्ञात। अनजाना (को०)। ५ असस्कृत। सस्कारहीन (को०)। ६ केशव के अनुसार वह अर्थालकार जिसमे साधन ही साधक की सिद्धि का फल भोगे। जैसे—'दूती नायक के पास नायिका का सँदेसा लेकर जाय, परतु स्वय उससे प्रीति कर ले।' उ०—आनन सीकर सीक कहा? हिय तौ हित ते अति आतुर आई। फीको भयो मुख ही मुख राग क्यो? तेरे पिया बहु बार बेकाई। प्रीतम को पट क्यो पलट्यो? अलि केवल तेरी प्रतीति को त्याई। केशव नीके ही नायक सो रमि नायिका बातन ही बहराई।—केशव (शब्द०)।

यौ०—अमितक्रतु। अमिताशन। अमिततेजा। अमितौजा। अमितद्युति। अमितविक्रम।

अमितक्रतु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला [को०]।

अमितता—सज्ञा स्त्री० [स०] अमित होना। आधिक्य।

अमिततेजा—वि० [सं० अमिततेजस्] असीम कातिमान् [को०]।

अमितद्युति—वि० [स०] अत्यधिक प्रकाशवाला [को०]।

अमितविक्रम—वि०[सं०]१ अत्यत बलवान्। २ विष्णु का विशेषण [को०]।

अमितवीर्य—वि० [स०] अत्यत शक्तिशाली [को०]।

अमिताई ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अधिकता। असीमता [को०]।

अमिताभ[१]—वि० [स०] अत्यत तेजस्वी [को०]।

अमिताभ[२]—सज्ञा पु० महात्मा बुद्ध का एक नाम।

अमिताशन[१]—वि० [स०] १ जो सब कुछ खाय। सर्वभक्षी। २ जिसके खाने का ठिकाना न हो।

अमिताशन[२]—सज्ञा पुं० १. अग्नि। आग। २ परमेश्वर विष्णु (को०)।

अमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनतता। असीमता [को०]।

अमितौजा—वि० [स० अमितौजस्] अत्यधिक शक्तिशाली। सर्वशक्तिमान [को०]।

अमित्र—वि०[स०] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। २. बिना मित्र का जिसका कोई दोस्त न हो। अमित्रक। ३ अतुकात [बग०]। उ०—अपनी अमित्र कविता की तरह अपने गीतो के लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था।—गीतिका (भू०), पृ० १२।

अमित्रक—वि० [स०] दे० 'अमित्र'।

अमित्रखाद—सज्ञा पुं० [स०] इद्र [को०]।

अमित्रघात--सज्ञा पुं०[स०]शत्रुओं का नाश करना। शत्रुओं का हनन।
अमित्रघाती---वि० [स० अमित्रघातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला।
अमित्रता---सज्ञा स्त्री० [स०] शत्रुता। विरोध।
अमित्रविषयातिगानौका---सज्ञा स्त्री० [स०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र मे जानेवाला हो।
अमित्रसह---वि० [स०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इद्र।
अमित्राक्षर---वि० [स० अमित्राक्षर] जिसमे अक्षरो की कोई निश्चित सख्या न हो। जिसमे तुक न हो। गद्यमय। उ०---बहुत पहिले भी अमित्राक्षर कविता लिखी गई है।---करुणा, (प्र०)।
अमित्री ---वि० [स० अमित्रिन्] वैरी। शत्रु [को०]।
अमिथ्या Ⓤ†---वि० [अ=उच्चा०+मिथ्या] व्यर्थ। बेकार। उ०---सतगुरु भक्तिभेद नहिं पाए, जीव अमिथ्या दीन्हा।---घट०, पृ० २६४।
अमिय Ⓤ---सज्ञा पु० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अमिय] अमृत। उ०---देखि अमिय रस अन्हधरह भएउ नासिका कीर। पौन वास पहुँचावै, अस रस छाँड न तीर।---जायसी ग्र०, पृ०४३।
अमियमूरि---सज्ञा स्त्री० [अमृत+मूरि] अमरमूर। अमृतबूटी। सजीवनी जडी। जिलानेवाली बूटी। उ०---अमिय मूरि मय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू।---तुलसी (शब्द०)।
अमिया---सज्ञा स्त्री० [स० अम्बिका, प्रा० अम्बिआ] कच्चे आम। उ०---बैठी होगी, जामुन अमिया लदी रौस के पेडो पर।---मिट्टी०, पृ० ६५।
अमिरती†---सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इमरती'।
अमिरथा†---वि० [हिं०] दे० 'अविरथा'। उ०---गया सब जनम अमिरथा मोरा।---चित्रा०, पृ० १३०।
अमिरस Ⓤ---सज्ञा पुं० [हिं०] १ अमृतरस। २ हठयोग के अनुसार चद्रमा से द्रवित होनेवाला रस। उ०---छिम दिसा धुन अनहद गरज अमिरस करै उपजै ब्रह्मज्ञान।---रामानद०, पृ०१२।
अमिरित Ⓤ†---सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०---औ जो यह अमिरित सो पागे। सोऊअ मर जग भए सभागे।---चित्रा०, पृ० १२।
अमिल Ⓤ---वि० [सं० अ+हिं० मिलना] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०---निपट अमिल वह, तुम्हें मिलिबे की जक, कैसे कै मिलाऊँ गति मो पै न बिहग की।---केशव (शब्द०)। २ बेमेल। बेजोड। अनमिल। असबद्ध। ३ भिन्नवर्गीय। जो हिला मिला न हो। जो हिले मिले नही। जिससे मेल जोल न हो। उ०---हरषि न बोली लखि लखन, निरषि अमिल सँग साथ। आँखिन ही मे हँसि धरचो, सीस हिए पर हाथ।---बिहारी (शब्द०)। ४ ऊबड खाबड। ऊँचा नीचा। उ०---अमिल सुमिल सीढी मदन मदन की कि जगमगैं पग जुग जेहरि जराय की।---केशव (शब्द०)।
अमिलताई Ⓤ---सज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल+ताई (प्रत्य०)] न मिलने का भाव। कपट। दूर दूर रहना। उ०---मिलत न कहुँ भरे रावरे अमिलताई हिए मै किए विमान जे विनोद छन है।---रसखान०, पृ० ६३।
अमिलतास†---सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।
अमिलपट्टी---सज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल+पट्टी=जोड]सिलाई या तुरपन का एक भेद। चौडी तुरपन।
अमिलातक---सज्ञा पु० [स०]अमलातक। अमलबेत [को०]।
अमिलित---वि० [सं०] न मिला हुआ। पृथक्। जुदा।
अमिलियापाट---सज्ञा पुं० [हिं० अमिली=इमली+पाट=रेशम] एक प्रकार का सन या पटसन।
अमिली[१] Ⓤ†---सज्ञा स्त्री० [स० अम्लिका] दे० 'इमली'। उ०-आलूचा अमिली अँवहलदी। आल आँवला माल अफलदी।---सुजान०, पृ० १६१।
अमीली[२] Ⓤ---सज्ञा स्त्री० [स० अ=नहीं+मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव। खटाई। कपट। विरोध। मनमुटाव। उ०-जहँ अमिली पाकै हिय माँहीं। तहँ न भाव नौरँग कै छाहीं।---जायसी (शब्द०)।
अमिश्र---वि [स०] जो मिश्रित न हो। मिलावटरहित। शुद्ध। खालिस [को०]।
अमिश्रण---सज्ञा पु० [स०] मिलावट का अभाव।
अमिश्रराशि---सज्ञा स्त्री० [स०] गणित मे वह राशि जो एक ही इकाई द्वारा प्रकट की जाती है। इकाई।१ से ९ तक की सख्या।
अमिश्रित---वि० [स०]१ न मिला हुआ। जो मिलाया न गया हो। २ जिसमे कोई वस्तु मिलाई न गई हो। बे मिलावट। खालिस। शुद्ध। पृथग्भूत।
अमिष[१]---सज्ञा पुं० [सं०] १ छल का अभाव। बहाने के न होने का भाव या स्थिति। २ दे० 'आमिष'। ३ सासारिक सुख। ऐश आराम (को०)।
अमिष[२]---वि० निश्छल। जो हीलेबाज न हो।
अमी[१] Ⓤ---सज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'अमिय'। उ०---'दास' मनावती न भावती चलन तेरी अधर अमी के अवलोके मोहि रहिए।---बिहारी ग्र०, सा० १, पृ० १३८।
यौ०---अमीकर। अमीरस।
अमी[२]---वि० [स० अमिन्] रोगी [को०]।
अमीक---वि० [अ०] गहरा। उ०---या पानी का वां इक चश्मा अमीक।---दक्खिनी०, पृ० ३४५।
अमीकर Ⓤ---सज्ञा पु० [स० अमृतकर, अमिय+कर] अमृतांशु। चद्रमा।
अमीकला---सज्ञा पुं० [प्रा० अमी+कला] चद्रमा। उ०---अद्भुत अमीकला आनँदघन सुजन---जान्ह रसवृष्टि सुहाई।---घनानद, पृ० ५५८।
अमीच Ⓤ---क्रि० वि० [स० अ+मृत्यु प्रा० मिच्चु] मृत्युविहीन। बिना मृत्यु के।
अमीढ---सज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'अधौरी'।
अमीत[१] Ⓤ---सज्ञा पुं०[स० अमित्र, प्रा० अमित्त] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। उ०---पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।---भूषण (शब्द०)। २. अनग। विच्छिन्न। उ०---प्रान देव की पूजा कीन्ही, गुरु मे रही अमीता रे।---कबीर श०, पृ० ८।
अमीत[२]---वि० [स०] जिसे क्षति न पहुँची हो। अक्षत [को०]।

अमीन[1]—संज्ञा पु० [अ०] १ वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २ विश्वसनीय। ३ वह अदालती कर्मचारी जिसके सुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मौके की तहकीकात करना, जमीन नापना, बँटवारा करना, डिगरी का अमलदरामद कराना इत्यादि।

अमीन[2]Ⓤ—संज्ञा पु० [प०] दे० 'अमी'। उ०—आनँदघन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानंद पृ० १८०।

अमीपत्रⓊ—संज्ञा पुं० [हिं० अमी+पत्र=पात्र] अमृतपात्र। अमृतघट।

अमीवा—संज्ञा पुं० [अ०] एक अति सूक्ष्म जीव जिसे सूक्ष्मनिरीक्षक यंत्र से देखा जा सकता है।

अमीमासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा या विवेचना का अभाव [को०]।

अमीर—संज्ञा पुं० [अ०] १ कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २ धनाढ्य। संपन्न। दौलतमंद। ३ उदार। ४ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—संज्ञा पुं० [अ० अमीर+फा० जादह] [संज्ञा स्त्री० अमीरजादी] अमीर या धनवान का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार।

अमीरसⓊ—संज्ञा पु० [हिं०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरस चाखे।—कबीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० अमीर+फा० आनह (प्रत्य०)] अमीरों के ढंग का। जिसमें अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० अमीर+ई (प्रत्य०)] १ धनाढ्यता। दौलतमंदी। उ०—जो सुख पावा नाम भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में।—कबीर० श०, पृ० ७०। २ उदारता।

अमीरी[2]—वि० अमीर का सा। अमीरों के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठ।

अमीरुलबहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ दुःख। ३ रोग। ४ दुश्मन (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)।

अमुग्धⓊ—वि० [सं० अ+मुग्ध] मुग्ध। मूर्ख। मूढ। उ०—कौन भुजाबल जुद्ध करै। सुनि कमधज्ज अमुग्ध।—पृ० रा०२५।७७४

अमुक—वि० [सं०] फलाँ। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए बिना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर इस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [सं०] १ जो मुक्त या बंधनरहित न हो। बद्ध। २ जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३. जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४ शस्त्र (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चलाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [सं०] १ देने में जिसके हाथ दबे हों। कंजूस। कृपण। २ कमखर्च। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [सं०] मुखविहीन। वक्त्रहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [सं०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुग्ध—वि० [सं०] १ जो मुग्ध या मोहित न हो। २ जितेंद्रिय। विरक्त। अनासक्त। ३ चतुर।

अमुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक। परलोक। जन्मांतर।

यौ०—इहामुत्र=लोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [सं०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [सं०] १ जिसके पास कहीं जाने का परवाना या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो (को०)।

अमुना—क्रि०वि० [सं०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना विधि जमुनातट आवति।—नंद० ग्र०, पृ० २९८।

अमुलाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चंदन घसि जयै नाम उचारै।—संत र०, पृ० १२९।

अमुष्य—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

यौ०—अमुष्यपुत्र=प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुलीन।

अमूकⓊ—वि० [सं०] १ जो गूँगा न हो। २ बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमकीⓊ†(अमूकेⓊ†)अमूकोⓊ†—वि० [सं० अमुक] दे० 'अमुक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके बैष्णव, अमूको कुम्हार आदि।

अमूझनाⓊ†—क्रि० अ० [सं० अवरुद्ध, प्रा० अवरुज्झ, *अवउज्झ, *अमउज्झ] १ उलझना। फँसना। उ०—कठिन करम की परत भाषमी मनहिं अमूझन है रे।—सुंदर० ग्र०, पृ० ८४२।

अमूझाⓊ†—वि० [हिं० अमूझना या उलझना] अस्पष्ट। जो सुलझा न हो। उ०—अपम अमूझो अरथ सबदपिण विण हित साजै।—रघु० रू०, पृ० १४। २ गर्मी से संतप्त होना।

अमूढ[1]—वि० [सं० अमूढ] १ जो मूर्ख न हो। चतुर। २ विद्वान्। पंडित।

अमूढ[2]—संज्ञा पुं० पंचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अघोर और अमूढ।

अमूमन्—अव्य० [सं०] अनुमानतः। सामान्यतया। प्रायः।

अमूर—संज्ञा पु० [अ०] बात। चर्चा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६१।

अमूरतⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हारा।—इंद्रा०, पृ० १६७।

अमूरतिⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत सो निरवान अमूरति छकित भयो मन वेधि उमग।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की लालसा।—रस०, पृ० १६५।

अमूर्त[2]—संज्ञा पु० १ परमेश्वर। २ आत्मा। ३ जीव। ४ काल। ५ दिशा। ६ आकाश। ७ वायु। ८. शिव (को०)।

यौ०—अमूर्तगुण=धर्म अधर्म आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति[3]—संज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान्[1]—वि० [सं० अमूर्तिमत्] १ निराकार। मूर्तिरहित। २ अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान्[2]—संज्ञा पु० विष्णु [को०]।

अमूर्तीक—वि० [स०]अमूर्त । निराकार निरवयव । उ०—दूसरा द्रव्य है धर्म जो अमूर्तीक सर्वव्यापी है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।

अमूल[1]—वि० [स०] १ जिसका मूल न हो । वे जड का । २. निराधार । प्रमाणरहित (को०)। ३ अभौतिक (को०)। ४. चल(को०)।

अमूल[2]—सज्ञा पुं० साख्य के अनुसार प्रकृति ।

अमूल[3]ⓤ—वि० [स० अमूल्य] अनमोल । उ०—(क) जउ भरि वूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल ।—ढोला० दू० २५०। (ख) दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना बरन अमूल ।—पृ० रा० ६।५१।

अमूल[4]ⓤ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आमूल' । उ०—नैन चोट आसी लगी गासी ज्यों भरपूर । मचत चलत क्योहूँ नही खैंचत काम अमूर ।—स० सप्तक, पृ० ३५३ ।

अमूलक—वि० [स०] १ जिसकी कोई जड न हो । निर्मूल । २. असत्य । मिथ्या । दे० 'अमूले' ।

अमूला—सज्ञा स्त्री० [स०] अग्निशिखा नाम का पौधा ।

अमूल्य—वि० [स०]१ जिसका मूल्य निर्धारित न हो सके । अनमोल । २. बहुमूल्य । बेशकीमती । ३. जिसके लिये कोई मूल्य न दिया जाय । मुफ्त का ।

अमृत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वस्तु जिसके पीने से जीव अमर हो जाता है। पुराणानुसार समुद्रमथन से निकले हुए १४ रत्नो मे से एक । सुधा । पीयूष । निर्जर । २ जल । ३ घी । ४ यज्ञ के पीछे की बची हुई सामग्री । ५ अन्न । ६. मुक्ति । ७ दूध । ८ औषधि । ९ विष । १० वछनाग । ११ पारा । १२ धन । १३. सोना । १४ हृद्य पदार्थ । १५ वह वस्तु जो बिना माँगे मिले । १६ सुस्वादु द्रव्य । मीठी या मधुर वस्तु । १७ अमर । देवता (को०) । उ०—राजकुमार, ब्राह्मण स्वराज्य मे विचरता है और अमृत होकर जीता है ।—चद्र० पृ० ५६ । १८ धन्वतरी (को०) । १९ इद्र (को०) । २० सूर्य (को०) । २१ शिव (को०) । २२ विष्णु (को०) । २३ सोमरस (को०) । २४ पानी (को०) । २५ चार की सख्या (को०) । २६ निर्गुण मतानुसार वह रस जो तालुमूल-स्थित चन्द्रमा से स्रवित होता है और जिसे योगी साधना द्वारा जीभ को उलटा करके पीता है । २७ वाराही कद (को०) । २८ परब्रह्म (को०) । २९ भात (को०) ।

अमृत[2]—वि० [स०] १ जो मरा न हो । २ जो मरणशील न हो । ३ अमरत्व प्रदान करनेवाला । ४ अविनश्वर । शाश्वत । ५ प्रिय । अभीष्ट । सुदर [को०] ।

अमृतकर—सज्ञा पु०[स०]जिसकी किरणो मे अमृत रहता है । चद्रमा ।

अमृतकुंडली—सज्ञा स्त्री० [स० अमृतकुण्डली] १ एक छद जो प्लवगम या चाद्रायण के अत मे हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बन जाता है । २ एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृतकुडली यत्र ।—सूर (शब्द०) ।

अमृतक्षार—सज्ञा पुं० [स०] नौसादर [को०] ।

अमृतगति—सज्ञा स्त्री० [स०] एक छद ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक नगण एक जगण फिर एक नगण और अत मे गुरु होता है । (।।। ।ऽ। ।।। ऽ) इसको त्वरितगति तथा अमृततिलका भी कहते हैं । उ०—निज नग खोजत हरजू । पय मित लक्षमि वरजू (शब्द०) ।

अमृतगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्म । ईश्वर । २ जीवात्मा (को०) ।

अमृतजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] जटामासी ।

अमृततरगिणी—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृततरङ्गिणी] चद्रिका । चाँदनी ।

अमृतत्व—सज्ञा पु० [सं०] १ मरण का अभाव । न मरना । २. मोक्ष । मुक्ति ।

अमृतदान—सज्ञा पुं० [स० अमृत+फा० दान, अथवा सं० मुद्भान्] भोजन की चीज रखने का ढकनेदार बर्तन । एक प्रकार का डब्बा ।

अमृतदीधिति—सज्ञा पु० [स०] चद्रमा ।

अमृतद्युति—सज्ञा पु० [सं०] चद्रमा ।

अमृतद्रव—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा की किरण ।

अमृतधारा—सज्ञा स्त्री० [स०[एक वर्णवृत्त जिसके चार चरणो में से प्रथम चरण मे २०, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं । उ०—सरवम तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्ता । साँची अहहिं प्रभु जगतभर्त्ता । दनुज-कुल-अरि जगहित धरमधर्ता । रामा असुर मुहर्ता (शब्द०) ।

अमृतधुनिⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अमृतध्वनि' ।

अमृतध्वनि—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृत+ध्वनि] २४ मात्राओं का एक यौगिक छद ।

विशेष—इसके आरभ मे एक दोहा रहता है । इसमे दोहे को मिलाकर छह चरण होते हैं और प्रत्येक चरण मे झटके के साथ अर्थात् द्वित्व वर्णों से युक्त तीन यमक रहते हैं । यह छद प्रायः वीररस के लिये व्यवहृत होता है । उ०—प्रतिभट उद्-भट विकट जहँ लरत लच्छ पर लच्छ । श्री जगदेश नरेश तहँ, अच्छच्छवि परतच्छ । अच्छच्छवि परतच्छच्छटनि विपच्छच्छय करि । स्वच्छच्छति अति कित्तित्यिर, सुअमिन्निभय हरि । उज्झिज्झहरि समुज्झिज्झहरि विरुज्झिज्झटपट । कुप्पप्पगट मुरुप्पप्पगनि विलुप्पप्पति भट ।—सूदन (शब्द०) ।

अमृतप[1]—वि० [स०]१ अमृत पान करनेवाला । २ मद्यप । शराबी (को०) ।

अमृतप[2]—सज्ञा पु० १ देवता । २ विष्णु ।

अमृतफल—सज्ञा पु० [सं०]१ नाशपाती । २ परवल ।

अमृतफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँवला । २. अगूर । दाख । ३ मुनक्का ।

अमृतबधु—सज्ञा पुं० [सं० अमृतबन्धु] १ देवता । २. चद्रमा ।

अमृतबान—सज्ञा पु० [स० मृद्भाण्ड वा मृद्भान्] रोगनी हाँडी । मिट्टी का रोगनी पात्र । लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का बरतन जिसमे अचार, मुरब्बा, घी आदि रखते हैं । मर्तबान ।

अमृतबिंदु—सज्ञा पुं० [स० अमृतबिन्दु] एक उपनिषत् जो अथर्ववेदीय माना जाता है

अमृतभुक्—सज्ञा पु० [स०] १. देवता । २ वह जो अमृत का पान करे [को०] ।

अमृतमथन—सज्ञा पु० [स० अमृतमन्थन] अमृत के लिये समुद्र का मथन। समुद्रमथन [को०]।

अमृतमती—सज्ञा स्त्री० [स०] अमृतगति छद [को०]।

अमृतमालिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा [को०]।

अमृतमूरि—सज्ञा स्त्री० [स० अमृत + हिं० मूरि] सजीवनी जडी। अमरमूर।

अमृतमूर्ति—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा [को०]।

अमृतयोग—सज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष मे एक शुभफलदायक योग। विशेष—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये सब नक्षत्र अमृतयोग मे कहे जाते हैं। रवि और मगलवार को नदा तिथि अर्थात् परिवा, षष्ठ और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी हो, बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है। इस योग के होने से भद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव मिट जाता है।

अमृतरश्मि—सज्ञा पु० [स०] चद्रमा।

अमृतरस—सज्ञा पुं० [सं०] १ गुडूचा। अमृत। २ परब्रह्म [को०]।

अमृतरसा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ काले रग का अगूर। २ एक मिठाई। अनरसा [को०]।

अमृतलता—सज्ञा स्त्री० [सं०] गुर्च। गिलोय।

अमृतलतिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अमृतलता'।

अमृतलोक—सज्ञा पु० [स०] स्वर्ग। अमरलोक।

अमृतवपु—सज्ञा पु० [स०] १ चद्रमा। २ विष्णु [को०]। शिव [को०]।

अमृतवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] यज्ञशेष सामग्री का उपयोग करना। उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए प्रार्थना करते थे।—स्कद०, पृ० १३२।

अमृतसजीवनी—वि० [स० अमृतसञ्जीवनी] दे० 'मृतसजीवनी'।

अमृतसभवा—सज्ञा स्त्री० [स० अमृतसम्भवा] गुर्च। गिलोय।

अमृतसहोदर—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अमृतसोदर'।

अमृतसार—सज्ञा पुं० [स०] १ नवनीत। मक्खन। २ घी।

अमृतसारज—सज्ञा पु० [स०] गुड [को०]।

अमृतसू—सज्ञा पु० [स०] चद्रमा [को०]।

अमृतसोदर—सज्ञा पुं० [स०] १ उच्चैश्रवा नाम का अश्व। २ अश्व। तुरग [को०]।

अमृतस्रवा—सज्ञा स्त्री० [स०] रुदती या रुद्रवती नाम का पौधा [को०]।

अमृताधस्—सज्ञा पुं० [स० अमृतान्धस्] देवता।

अमृताशु—सज्ञा पुं० [स०] वह जिसकी किरणो मे अमृत हो। चद्रमा।

अमृता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गुर्च। उ०—ध्रुव बीच यह समय न जाहु। मेंवा साथ अमृता खाहु।—इद्रा०, पृ० १५४। २ इद्रायण। ३ मालकँगनी। ४ अतीस ५ हड़। ६. लाल निसोथ। ७ आँवला। ८. दूब। ९ तुलसी। १० पीपल। पिप्पली। ११ मदिरा। १२ फिटकरी [को०]। खरबूजा [को०]। १४ शरीर की एक नाडी (को०)। १५ सूर्य की एक किरण का नाम [को०]।

अमृताक्षर—वि० [स०] १ अजर। अमर। अविनश्वर [को०]। उ०—फूटी तर अमृताक्षर निर्झर।—अपरा, पृ० २३०।

अमृताफल—सज्ञा पु० [स०] परवर। परोरा। पटोल [को०]।

अमृतासग—सज्ञा पु० [स० अमृतासङ्ग] तूतिया [को०]।

अमृताशी—सज्ञा पुं० [स०] १ विष्णु। २ देवता [को०]।

अमृताशन—सज्ञा पुं० [स०] देवता [को०]।

अमृताशो—सज्ञा पु० [स० अमृताशिन्] देवता [को०]।

अमृताहरण—सज्ञा पु० [सं०] गरुड।

अमृताह्व—सज्ञा पु० [स०] एक फल। नाशपाती [को०]।

अमृतेश—सज्ञा पु० [स०] १ देवता २ शिव [को०]।

अमृतेशय—सज्ञा स० [स०] जलशायी विष्णु [को०]।

अमृतेश्वर—सज्ञा पु० [स०] अमृतेश [को०]।

अमृतेष्टका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की ईंट [को०]।

अमृतोत्पन्न—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अमृतोद्भव'।

अमृतोत्पन्ना—सज्ञा स्त्री० [स०] मक्षिका। मक्खी [को०]।

अमृतोद्भव—सज्ञा पुं० [स०] खपरी तुल्य। खपरिया तूतिया [को०]।

अमृत्यु[1]—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अमृत्यु[2]—सज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव। अमरता [को०]।

अमृत्यु[3]—वि० १ अमर। अमृत बनानेवाला [को०]।

अमृष्ट—वि० [स०] अमार्जित। जो साफ न हो। गदा। जो शुद्ध न किया गया हो।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला। अमृष्टमृज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो।

अमेट†—वि० [हिं०] दे० 'अमिट'। उ—काह कहौ मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेट।—जायसी ग्र०, पृ० २४२।

अमेजना (५)—क्रि० अ० [फा० आमेज] मिलावट होना। मिलना। उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यों रस रग जामे, खुलिगे सुअग सब रगनि अमेजे ते।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४८। (ख) मोतिन की माल मलमलवारी सारी मजे, झलमल जोति होति चाँदनी अमेजे मैं—बेनी (शब्द०)।

अमेजना[2] (५)—क्रि० स० मिलाना। मिलावट करना।

अमेठ (५)—सज्ञा स्त्री० [स० अ + मृष्ट, प्रा० पिट्ठ, (५) पेठ (५) अमेठ] प्रिय। निपट निनज इह जेठ, धाय धाय वधुवनि गहै।—दे० 'ऐंठ'। उ०—रही न ननक अमेठ तुम बिन नदकुमार नद० ग्र०, पृ० १६६।

अमेठना (५)—क्रि० स० [हिं० अमेठ से नाम०] दे० 'उमेठना'। उ०—पुनि जब भौंह अमेठन लागै। तब ये खोज बाल डरि भागै।—नद० ग्र०, पृ० ३०१।

अमेठी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अमेठ+ई] ऐंठ। अकड। अभिमान। गर्व। उ०—एक आँख शिक्षा की हेठी से देखने लगी उसे अमेठी से।—बेला, पृ० ५३।

अमेतⓤ—वि० [स० अमित] अगणित। अनेक। अमित। उ०—सुक समीप मन कुँवरि कौ, लग्यौ वचन कै हेत। अति विचित्र पडित मुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०।१३।

अमेदस्क—वि० [स०] मेदा रहित। दुबला पतला [को०]।

अमेधा—वि० [स० अमेधस्] जिसमे मेधा न हो। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

अमेध्य[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि।

विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेध्य हैं—मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीव, कफ, मद्य, वीर्य और रज।

२ एक प्रकार का प्रेत। ३ अपशकुन [को०]।

अमेध्य[2]—वि० १ जो वस्तु यज्ञ मे काम न आ सके। जैसे, पशुओ मे कुत्ता और अन्नो मे मसूर, उर्द आदि। २ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। ३ अपवित्र।

अमेय—वि० [स०] १ अपरिमाण। असीम। इयत्ताशून्य। बेहद। २ जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथ सुदर सुदर नामधेय। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २७६।

अमेयात्मा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा[2]—वि० महान् आत्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अ०] १ अमेरिका का। २ सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निवासी। ३ अमेरिका सबधी।

अमेरिका—सज्ञा पुं० [अ०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह दो भागो मे बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका। उ०—तुम नही मिले तुमसे हैं मिले हुए नव योरप अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [स० अ+मेल] जिसका किसी से मेल न बैठता हो। जो किसी से मेल न खाय। अनमेल। असबद्ध।

अमेलीⓤ—वि० [हिं० अमेल] अनमिल। असबद्ध। अड बड। उ०—खेलै फाग अति अनुराग सौं उमग तें, वे गावै मन भावै, तहाँ वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेवⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अमेय'।

अमेह—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का रोग जिसमे पेशाब नही उतरती या रुक रुककर उतरती है।

अमेंडⓤ—वि० दे० 'अमेंडे'।

अमेंडाⓤ—वि० [हिं० अ+मेड=सीमा] मर्यादा या सीमा न माननेवाला। उ०—कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमेंडे।—घनानद, पृ० ४६।

अमेंठनाⓤ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष न मिलना। २ बधन [को०]।

अमोक्ष[2]—वि० १ जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २ जिसका मोक्ष न हो सके। ३ बँधा हुआ [को०]।

अमोगाँ—वि० [स० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ[1]—वि० [स०] १ निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली न जानेवाला। २ अनिद्य। अद्वितीय। उ०—सब सामत समध चढि। बिच सुदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५।७८०।

अमोघ[2]—सज्ञा पुं० १ व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३, विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—सज्ञा स्त्री० [स०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरण [को०]।

अमोघदड—सज्ञा पु० [स० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने मे न चूके। शिव [को०]।

अमोघदर्शी—वि० [स० अमोघदर्शिन्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [स०] दे० 'अमोघदर्शी'।

अमोघवाक्—वि० [स०] जिसकी वाणी कभी व्यर्थ न होती हो [को०]।

अमोघविक्रम[1]—वि० [स०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता हो [को०]।

अमोघविक्रम[2]—सज्ञा पु० शिव [को०]

अमोघा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की एक स्त्री जिनसे पक्षी उत्पन्न हुए थे। २ हड। ३ वायविडग। ४ पाढर का पेड और फूल। ५ शिव की पत्नी [को०]। ६ एक शस्त्र। शक्ति [को०]।

अमोचन[1]—सज्ञा पुं० [स०] छुटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन[2]ⓤ—वि० न छूटनेवाला। दृढ। उ०—मूँदि रहे दिग प्यारी लोचन। अति हित बेनी उर परनाए वेष्टित भुजा अमोचन।—सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [स०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद[1]—वि० [स०] मोद रहित। आनदशून्य [को०]।

अमोद[2]ⓤ—सज्ञा पु० [स० अमोद] सुगध। आमोद। उ०—जैसे कमल अमोदहि पाइ। ठौं ठौं उठत मधुप अकुलाइ।—नद० ग्र०, पृ० २५६।

अमोनिया—सज्ञा पुं० [अ० एमोनिया] नौसादर।

अमोर[1]ⓤ—वि० [हिं०] न मुडनेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रज पुत्त पचास भुअभ्भ अमोर। वनै जीत के नद्द नीसान घोर।—पृ० रा०, २०।५६।

अमोर[2]—वि० [हिं०] दे० 'अमोरी'। उ०—अत्यनीक नामो कहैं, भूपन बुद्धि अमोर।—भूषण ग्र०, पृ० २५८।

अमोरीⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अम+औरी (प्रत्य०)] १ आम का बहुत छोटा कच्चा फल। अँबिया। २ आमड़ा। अम्मारी। उ०—फल को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियो अमोरि।—सूर (शब्द०)।

अमोलⓤ—वि० [स० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १ अमूल्य। अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रस सिगार पार के पाओत अमोल मनोभव सिद्धा।—विद्यापति, पृ० ३५। २ जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोल समरथ करहु दाया निर्धन।—कबीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलकⓤ—वि० [हिं० अमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'अमूल्य'। उ०—छाँडि काक मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही।—सूर० (शब्द०)।

अमोला —संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का नया निकलता हुआ पौधा।

अमोलिक(पु)—वि० [हिं०] दे० अनमोल। उ०—गाढवर पहिराय कै अधिक अमोलिक। नदराय देत फूले नदत्रास बोलिकै।—नद० ग्र० पृ० ३३६।

अमोही(पु)—वि० [सं० अ+मोह+ई (प्रत्य०)] १ विरक्त। २. निर्मोही। निष्ठुर। उ०—मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिए मोहि अमोही।—घनानद०, पृ०।

अमौआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० आम+औआ (प्रत्य०)] १ आम के फल का रंग। यह कई प्रकार का होता है, जैसे, पीला, सुनहरा, माशी, किरमिजी, दूधिया इत्यादि। २ अमौआ रंग का कपडा।

अमौआ[2]—वि० आम के रस के रंग का।

अमौन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मौन का अभाव। बोलना। २ आत्मज्ञान। ३ मुनि के कर्तव्यों का आचरण। मुनि न होना [को०]।

अमौलिक—वि० [सं०] १ बिना जड का। निर्मूल। २ बे सिर पैर का। बिना आधार का। जिसका मूलतत्व मूल से न हो। ३ अयथार्थ। मिथ्या। ४ अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद के रूप मे रचित [को०]।

अम्म—संज्ञा पुं० [अ०] चाचा। उ०—कहे ऐ अम्मे बुजुर्गवार व मेरे दुनिया होर दीन के आधार मेरे।—दक्खिनी, पृ० २३७।

अम्मय—वि० [सं०] जलमय। जलयुक्त या जलनिर्मित [को०]।

अम्मर(पु)—वि [हिं०] दे० 'अमर'। उ०—भना है अस्थान अम्मर जोति है परगास।—जग० बानी, भा० १, पृ० ४।

अम्मरसरा—संज्ञा पुं० [हिं० अमरसर+आ (प्रत्य०)] अमृतसर का कबूतर। एक कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और कठ काला होता है।

अम्मल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अमल'। उ०—बाजीगिरी रंग दिखावे ऐसा अम्मल मुझे नहिं भावे।—दक्खिनी०, पृ० १२५।

अम्माँ—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] माता। माँ।

अम्मामा—संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह] एक प्रकार का साफा जिसे मुसलमान बाँधते हैं।

यौ०—अम्मामेबाज—(१) साफ बाँध हुए। (२) साफा बाँधनेवाला।

अम्मारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अबारी'।

अम्यौं—अव्य० [हिं०] दे० 'अमाँ'। जैसे, अम्यौं क्या कहते हो।

अम्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आम्र [को०]।

अम्र[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १ बात। विषय। कार्य। मुआमिला। उ०—अम्र खुदा का लिया बजा तूँ नही ते मुनकिर होना।—दक्खिनी पृ० ५५। २. हुक्म। आदेश।

अम्रत(पु)†—पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—चउरास्या सहू वर्णव्या। अम्रत रसायण नरतति व्यास—बी० रासो, पृ० १००

अम्रात—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमड़ा का पेड। २. अमडा फल [को०]।

अम्रातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रात'।

अम्रत्या(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ब० व० अमर्त्याः] देवता। (अनेकार्थ०)।

अम्रित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—सत्त नाम रस अम्रित पीवहु, चरन तें लौ लाइ।—जग० बानी, भा० ६, पृ० २५।

अम्रियमाण—वि० [सं०] जो मरणशील न हो। अमर। उ०—मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण।—अनामिका, पृ० ४५।

अम्ल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा मे अनुभूत होनेवाला छ रसों मे से एक। खटाई। २ तेजाब। ३ सिरका [को०]। ४ मट्ठा जिसमे एक चतुर्थांश जल हो [को०]। ४ वमन [को०]।

अम्ल[2]—वि० खट्टा। तुर्श।

यौ०—अम्लपचक—पाँच प्रकार के प्रमुख खट्टे फल—जबीरी नीबू, खट्टा अनार, इमली, नारगी और अमलबेत।

अम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] लकुच वृक्ष। बडहार।

अम्लकाड—संज्ञा पुं० [सं० अम्लकाण्ड] एक पौधा। लवणतृण [को०]।

अम्लकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू [को०]।

अम्लगोरस—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [को०]।

अम्लजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्सिजन'।

अम्लतरु—संज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [को०]।

अम्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन। खटाई।

अम्लनिशा—संज्ञा पुं० [सं०] शठी नाम का पौधा [को०]।

अम्लपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लनक नाम का पौधा [को०]।

अम्लपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पनाशी लता। २ क्षुद्राम्लिका [को०]।

अम्लपनस—संज्ञा पुं० [सं०] बडहार [को०]।

अम्लपाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु'।

अम्लपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमे जो कुछ भोजन किया जाता है सब पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है।

विशेष—यह रोग रूखी, खटी, कडवी और गर्म वस्तुओं के खाने से उत्पन्न होता है। इसके लक्षण ये हैं—रंगविरंग का मन उतरना, दाह, वमन, मूर्च्छा, हृदय मे पीडा, ज्वर, भोजन मे अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि।

अम्लफल—संज्ञा पुं० [सं०] इमली [को०]।

अम्लबीजक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लफल'।

अम्लभेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत [को०]।

अम्लमेह—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग। एक प्रकार का प्रमेह [को०]।

अम्लरुहा—संज्ञा पुं० [सं०] मालवा मे पाया जानेवाला एक प्रकार का पान [को०]।

अम्ललोणिका—संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी। नोनियाँ साग।

अम्ललोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अम्लोणिका' [को०]।

अम्ललोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमलोनी' [को०]।

अम्लवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलो या पत्तो का वर्ग जिसमे नीबू, नारगी अनार, इमली आदि आते हैं [को०]।

अम्लवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कद। त्रिपर्णिका [को०]।

अम्लवाकट—संज्ञा पुं० [सं०] आमडा फल और वृक्ष [को०]।

अम्लवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [को०]।

अम्लवास्तूक—संज्ञा पुं० [सं०] चुक्रक [को०]।

अम्लवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु' [को०]।

अम्लवेत—संज्ञा पुं० [सं० अम्लवेतस] दे० 'अमलबेत'।

अम्लसार—संज्ञा पु० [स०] १ कांजी। २ चूक। ३ अमलबेत। ४ हिताल। ५ अमलसार गंधक। ६ नीबू का फल और वृक्ष [को०]।

अम्लहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] आँवहा हदी। कपूर कचरी।

अम्लाकुश—संज्ञा पु० [स० अम्लाकुङ्श] एक खट्टा साग [को०]।

अम्लाभ्युषित (रोग)—संज्ञा पुं० [स०] आँख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है।

विशेष—इस रोग मे आँखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमे पीडा होती है, और पानी बहा करता है।

अम्लान[1]—वि० [सं०] १ जो उदास न हो। मलिन न हो। बिना मुरझाया हुआ। २ जो प्रफुल्लित हो। हृष्ट। प्रसन्न। २ निर्मल। स्वच्छ। साफ।

अम्लान[2]—संज्ञा पुं०[सं०] १ बाणपुष्प नामक वृक्ष। २ दुपहरिया। कनसरैया।

अम्लानि[1]—वि० [सं०] जो मुरझाए नही [को०]।

अम्लानि[2]—संज्ञा स्त्री० १ शक्ति। २ ताजगी। नवता [को०]।

अम्लानी—वि० [सं० अम्लानिन्] साफ। स्वच्छ [को०]।

अम्लिका—संज्ञा स्त्री०[स०] १ इमली। २ खट्टी डकार। ३ पलाश आदि पौधे [को०]।

अम्लिकावटक—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई से युक्त एक प्रकार का बडा [को०]।

अम्लिमा—संज्ञा स्त्री० [स०] खट्टापन [को०]।

अम्लीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमे कोई वस्तु खट्टी की जाय।

अम्लीका—संज्ञा स्त्री० [स०] अम्लिका। इमली [को०]।

अम्लीय—वि० [स०] अम्ल विषयक। अम्ल से संबंधित [को०]।

अम्लोटक—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक पौधा [को०]।

अम्लोद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टी डकार।

अम्ह(ऊ)—सर्व० [स० अस्मद्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—अम्हांमन अचरिज भएउ, सखियाँ आखउ एम।—ढोला० दू०, ६।

अम्हौरी—संज्ञा स्त्री० [स० अभ्र—जल+हिं० औरी (प्रत्य०) अथवा सं० ऊष्मा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा०*अम्ह+औरी प्रत्य०] बहुत छोटी छोटी फुसियाँ जो गरमी के दिनो मे पसीने के कारण लोगो के शरीर मे निकल आती हैं। अधौरी।

अय—सर्व० [सं० अयम्] यह। उ०—दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अय।—मानस। १।८५।

अयत्र[1]—संज्ञा पुं० [स० अयन्त्र] १ वह जो वश या नियत्रण मे न हो। १ यत्र का अभाव। ३ अनियत्रण। नियत्रण का अभाव [को०]।

अयत्र[2]—वि० अनियत्रित। अवशीकृत [को०]।

अयत्रित—वि० [सं० अयन्त्रित] १ जो यत्रित या वशीकृत न हो। स्वेच्छाचारी।

अय—संज्ञा पु० [सं०] अयस् (लोहा) का समासगत रूप।

अय पान—संज्ञा पु० [स०] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

अय पिंड—संज्ञा पुं० [सं० अय पिण्ड] लोहे का गोला। लौहपिंड [को०]।

अय शंकु—संज्ञा पु० [स० अय'शङ्कु] १ नेजा। भला। २ लोहे की कील। अँटी [को०]।

अय शय—वि० [स०] लोहे मे रहनेवाला (अग्नि) [को०]।

अय शूल—संज्ञा पुं० [स०] १ एक अस्त्र। तीव्र उपपात। तीक्ष्ण उपाय।

अय शोभी—वि० [अय शोभिन्] सौभाग्य से दीप्त [को०]।

अय[1]—संज्ञा पु० [स०] १ गमन। जाना। गति। २ अच्छा भाग्य। शुभविवाह विधि। अभ्युदय। ३ पासा। अक्ष। ४ शुभ कार्य। मंगल कृत्य [को०]।

यौ०—अयवान् अयान्वित = भाग्यवान्।

अय[2]—संज्ञा पुं० [स० अयस्] १ लोहा। उ०—तुअ गमन मकल मुठि चचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।—मानस, १।२९८। २ इस्पात। शुद्ध लोहा [को०]। ३ अस्त्र शस्त्र। हथियार। ४ अग्नि। ५, कोई धातु [को०]। ६ स्वर्ण [को०]।

अय[3]—अव्य [सं० अयि] संबोधन का शब्द। हे।

विशेष—यह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है।

अयक्ष्म—वि० [स० अयक्ष्मन्] १ नीरोग। रोगरहित। २, निरुपद्रव। बाधाशून्य।

अयजनीय—वि० [स०] जो यज्ञ मे पूजा या आदर के अयोग्य हो। अपूज्य। २ निंदित।

अयज्ञ—वि० [वि०] १ यज्ञ न करनेवाला। २ यज्ञ न हो [को०]

अयज्ञक—वि० [स०] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०]।

अयज्ञिय—वि०[स०] १ जो यज्ञ के काम मे न लाया जाता हो। २ जो यज्ञ मे न दिया जाता हो। ३ अपवित्र। अशुद्ध। ४ यज्ञ करने के अयोग्य। जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो।

अयज्ञीय—वि० [स०] दे० 'अयज्ञिय' [को०]।

अयत—वि०[स०] उच्छृखल। स्वेच्छाचारी। जो संयत न हो [को०]।

अयति—वि० [स०] उद्योगहीन। यत्न न करनेवाला [को०]।

अयती—वि० [स० अ+यतिन्] जो यती या जितेंद्रिय न हो। इंद्रियों के वश मे रहनेवाला [को०]।

अयतेंद्रिय—वि०[स० अयतेन्द्रिय]१ जो इंद्रियों का संयम न कर सके। इंद्रियनिग्रह न करनेवाला। २ ब्रह्मचर्यभ्रष्ट। ३ चचलेंद्रिय। इंद्रिय लंपट।

अयत्न[1]—संज्ञा पुं० [स०] यत्न का अभाव। उद्योगशून्यता।

अयत्न[2]—वि० यत्नशून्य। उद्योगहीन।

यौ०—अयत्नसिद्ध = अयत्नसाध्य। जो बिना प्रयास हो जाय।

अयत्नकृत्—वि० [स०] बिना प्रयास के होनेवाला। सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०]।

अयत्नज—वि० [स०] स्वत हो जानेवाला। आसानी से होनेवाला [को०]।

अयत्नलभ्य—वि० [स०] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०]।

अयथा[1]—वि० [स०] १ मिथ्याभूत। झूठ। अतथ्य। २ अयोग्य।

अयथा[2]—अव्य० गलत ढग से। अनुचित रूप से [को०]।

अयथा[3]—संज्ञा पुं० १. किसी काम को विधि के अनुसार न करना। विधिविरुद्ध कर्म। अनुचित काम।

अयथातथ[1]—वि० [स०] अयथार्थ। विरुद्ध। विपरीत। यथायोग्य नही।

अयथातथ[2]—सज्ञा पु० विपरीत या अयोग्य कार्य [को०]।

अयथातथ्य—सज्ञा पु० [सं०] अयोग्यता। अनुपयुक्तता। व्यर्थता अयथार्थता [को०]।

अयथाद्योतन—सज्ञा पुं० [सं०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [को०]।

अयथापूर्व—वि० [सं०] जो पूर्ववत् न हो। जो पहले जैसा न हो।

अयथामुखीन—वि० [स०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो। जिसने मुँह फेर लिया हो [को०]।

अयथावृत्त—वि० [स०] अनुचित या गलत ढग से काम करनेवाला।

अयथास्थित—वि० [सं०] जो बेढगेपन से रखा गया। अव्यवस्थित [को०]।

अयथार्थ—वि० [सं०] १ जो यथार्थ न हो। मिथ्या। असत्य। २ जो ठीक न हो। अनुचित। अनुपयुक्त।

यौ०—**अयथार्थज्ञान** = मिथ्या ज्ञान। झूठा ज्ञान। भ्रम।

अयथावत्—वि० [सं०] अनुचित ढग या गलत तरीके से [को०]।

अयथेष्ट—वि० [स०] १ जो यथेष्ट या सतोषजनक न हो। २ इच्छा के विपरीत हो [को०]।

अयथोचित—वि० [सं०] १ जो समुचित या मुनासिब न हो। ३ अयोग्य [को०]।

अयन—सज्ञा पुं० [स०] १ गति। चाल। २ सूर्य या चद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते है। बारह राशिचक्र का आधा।

विशेष—मकर से मिथुन तक छह राशियो को उत्तरायण कहते है। क्योकि इनमे स्थित सूर्य या चद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं। ऐसे ही कर्क से धनु की सक्राति तक जब सूर्य या चद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है। ३ राशिचक्र की गति।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३० अनुकला और प्रतिदिन ९ अनुकला खिसकता है। ६३ वर्ष ८ महीने मे राशिचक्र विषुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है। यह दो भागो मे विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिस शास्त्र मे हो। ज्योतिष शास्त्र। ५ सेना की गति। एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार व्यूह मे प्रवेश करते हैं। ६ मार्ग। राह। ७ आश्रम। ८ स्थान। ९ घर। १० काल। समय। ११ अश। १२ एक प्रकार का यज्ञ जो अयन के प्रारभ मे होता था। १३ गाय या भैस के थन के ऊपर का वह भाग जिसमे दूध भरा रहता है। उ०—अतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद विस्वासी।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४।

अयनकाल—सज्ञा पुं० [स०] १ वह काल जो एक अयन मे लगे। २ छह महीने का काल।

अयनभाग—सज्ञा पुं० [सं०] अयन अश वा हिस्सा।

अयनवृत्त—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य के गमन मे बननेवाला वृत्त। २ ग्रहण की रेखा [को०]।

अयनसक्रम—सज्ञा स्त्री० [स० अयनसङ्क्रम] १ मकर और कर्क की सक्राति। अयन सक्राति। २ प्रत्येक सक्राति से २० दिन पहले का काल।

अयनसक्राति—सज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रान्ति] मकर और कर्क की सक्राति। अयनसक्रम।

अयनसपात—सज्ञा पुं० [स० अयनसम्पात] अयनाशो का योग।

अयनसमात—सज्ञा पु० [स० अयनसमान्त] १ रात और दिन दोनो का बराबर होना। विषुवत् रेखा पर उन दो बिदुओ मे से एक, जिनपर से होकर सूर्य का क्रातिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विषुवत् रेखा को वर्ष मे दो बार (छह छह महीने पर) काटता है। जब किसी एक बिदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनो बराबर होते है। इसी को अयनसमात कहते है। २ उक्त दोनो बिदु।

अयनात—सज्ञा पु० [पु० अयनान्त] अयन की समाप्ति। वह सक्रिमण जहाँ एक अयन समाप्त हो और दूसरा अयन आरभ।

अयनाश—सज्ञा पु० [स०] १ सूर्य की गतिविशेष के कारण का भाग। २ विषुवत् रेखा पर के वे दो बिदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रातिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष मे दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनो बराबर होते है।

अयमदिन—सज्ञा पु० [स०] ६० घडी का वह एक ही रात दिन जिसमे दो तिथियो का अवसान हो जाय।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन मे स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म नही करना चाहिए।

अयमित—वि० [सं०] १ जिसे नियमित न किया जाय। २ जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। असज्जित [को०]।

अयम्—सर्व० [स०] यह।

अयव[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ पुरीष का एक कीडा जो यव से छोटा होता है। कद्दूदाना। २ पितृकर्म, क्योकि इस कृत्य मे यव नही काम आता। ३ शत्रु। ४ कृष्ण पक्ष।

अयव[2]—वि० १ जिसमे यव का प्रयोग न हो। २ अभावयुक्त। अपूर्ण [को०]।

अयश—सज्ञा पुं० [स० अयशस्] १ अपयश। अपकीर्ति। २ निंदा।

अयशस्कर—वि० [स०] अपयश का कारण। जिसके करने से बदनामी हो।

अयशस्य—वि० [स०] जिनसे बदनामी हो। बदनाम करनेवाला।

अयशस्वी—वि० [स० अयशस्विन्] १ जिसे यश न मिले। अकीर्तिमान्। बदनाम।

अयशी—वि० [स० अयशस्वी, हिं० अयशी, अजसी] बदनाम।

अयश्चूर्ण—सज्ञा पुं० [स०] लोहे का चूरा [को०]।

अयस—सज्ञा पुं० [स० अयस्] लोहा।

विशेष—समासात मे प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि।

अयस्कंस—सज्ञा पुं० [स] लोहे का प्यालानुमा पात्र [को०]।

अयस्काड —सज्ञा पु० [सं० अय-काण्ड] १ लोहे का तीर। २ लोहे की अधिकता। ३ उत्तम लोहा [को०]।

अयस्कात —सज्ञा पु० [स० अयस्कान्त] चुबक।

अयस्स्कातमणि—सज्ञा पु० [स० अयस्कान्त मणि] चुबक [को०]।

अयस्कार—सज्ञा पुं० [स०] १ लोहार। २ जाँघ का ऊपरी भाग (को०)।

अयस्कीट—सज्ञा पुं० [स०] मोरचा। जग (को०)।

अयस्कुभ—सज्ञा पुं० [स० अयस्कुम्भ] [स्त्री० अयस्कुभी] लोहे का गगरा [को०]।

अयस्कृशा—सज्ञा स्त्री० [स०] लोहे की बनी रस्सी। लोहे के तार से बनी रस्सी [को०]।

अयस्ताप—वि० [स०] लोहे को तपानेवाला [को०]।

अयस्थूण[1]—सज्ञा पु० [स०] एक वैदिक ऋषि [को०]।

अयस्थूण[2]—वि० [स०] लोहे के स्तभ से युक्त। जिसमे लोहे के खभे लगे हो [को०]।

अयाँ—वि० [अ०] १ प्रकट। जाहिर। २ स्पष्ट।

अयाचक—वि० [स०] १ नहीं माँगनेवाला। जो माँगे नहीं। २ सतुष्ट। पूर्णकाम।

अयाचित—वि० [स०] बिना माँगा हुआ। उ०—इसे अयाचित देते हैं फल प्रेम से।—कानन०, पृ० १०५।

यौ०—**अयाचितोपस्थित**=बिना माँगे प्राप्त। **अयाचितवृत्ति, अयाचित व्रत**=बिना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविकानिर्वाह करने का नियम।

अयाची—वि० [स० अयाचिन्] १ अयाचक। न माँगनेवाला। २ अयाच्च। पूर्णकाम। सपन्न। ३ समृद्ध। धनी।

अयाच्य—वि० [स०] १ जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। पूर्णकाम। भरापुरा। उ०—कुछ को अयाच्य करने न देंगे की दशा सुधर नहीं सकती।—प्रेमघन०, पृ० २७६। २ सतुष्ट। तृप्त। ३ जो माँगे जाने योग्य न हो।

अयाज्य[1]—वि० [स०] १ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो। २ पतित। ३ यज्ञ के अयोग्य [को०]।

अयाज्य[2]—सज्ञा पु० [स०] चाडाल। अत्यज [को०]।

अयाज्ययाजक—सज्ञा पु० [स०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रो मे वर्जित है।

अयाज्ययाजन—सज्ञा पु० [स०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [को०]।

विशेष—यह उपपातको मे है। इसे अयाज्यसयाज्य भी कहते है।

अयात—वि० [स०] जो न गया हो [को०]।

अयातपूर्व—वि० [स०] १ अनुगत। अनुयायी। २ उत्तराधिकारी। ३ स्थानापन्न [को०]।

अयातयाम—वि० [स०] १. जिसको एक पहर न बीता हो। २ जो बासी न हो। ताजा। ३ विगतदोष। शुद्ध। ४ जो अतिक्रात काल का न हो। ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [को०]।

अयाथार्थिक—वि० [स० स्त्री० अयाथार्थिकी] १ जो सत्य न हो। गलत। झूठा। २ अवास्तविक। ३ अनुचित। अन्याय [को०]।

अयान[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वभाव। निसर्ग। २ अवश्यता। विवशता।

अयान[2]—वि० [सं०] बिना सवारी का। पैदल।

अयान[3] ⑤—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] १ अज्ञ। मूर्ख। उ०—कहइ सो अधमु अयान असाधू।—मानस, २।२०६। २ ज्ञान-रहित। नादान। उ०—तुलि हैं कुमल मेरे म तेरे। जे अयान अरु वृद्ध घनेरे।—हम्मीर०, पृ० १७।

अयानत—सज्ञा स्त्री० [अ० इमानत] सहायता। मदद।

अयानता ⑤—सज्ञा स्त्री० [हिं० अयान+ता (प्रत्य०)] अज्ञानता। अज्ञता। मूर्खता।

अयानप—सज्ञा पु० [हिं० अयान+प (प्रत्य०)] १ अज्ञानता। अनजानापन। उ०—यहाँ को सयानप अयानन सहत सब, मूढ़ो मन भाय कहे मिटति मलीनता।—तुलसी ग्र०, पृ०, ४२६। २ भोलापन। सीधापन।

अयानपन ⑤—सज्ञा पुं० [हिं० अयान+पन] १ अज्ञानता। २ भोलापन। सीधापन। उ०—तुव अयानपन जदपि मटू मटू गए नँदलाल, जब सयानपन पैहहिं तब धौं कहा हवाल।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२८।

अयानय ⑤—सज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छी या बुरी तकदीर। सौभाग्य या दुर्भाग्य २ शतरज की एक ऐसी जगह जिसे विरोधी खिलाडी के मुहरे नहीं अपना सकते [को०]।

अयाना—वि० पुं० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] [वि० स्त्री० अयानी] अज्ञान। बुद्धिहीन। अज्ञानी। उ०—(क) जौ पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करै अयाना।—मानस, १।२५६।

अयाम—सज्ञा पुं० [स०] १ समागम। सभोग। सभोग की कमी। २ दिन का कोई भाग। ३ जो मार्ग या पथ न हो [को०]।

अयाल[1]—सज्ञा पु० [तु० याल फा० अयाल] घोडे और सिंह आदि की गरदन के बाल। केसर।

अयाल[2]—सज्ञा पुं० [अ० इयाल] लडके बाले। बाल बच्चे।

अयालदार—सज्ञा पुं० [फा०] १ कधे पर बालवाला पशु, जैसे घोडा, शेर। २ बालबच्चोंवाला गृहस्थ [को०]।

अयावक—वि० [सं०] स्वाभाविक या प्रकृतस्थ नहीं [को०]।

अयावन—सज्ञा पुं० [स०] सम्मिलित न होने देना [को०]।

अयास—क्रि० वि० [सं०] अ=नहीं+यास=श्रम] बिना प्रयास। बिना उद्योग के। सहज ही। उ०—वृक्षो से ही बडो अयास।—युग०, पृ० ७३।

अयास्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। विरोधी। २ प्राणवायु। ३. अगिरा ऋषि।

अयास्य[2]—वि० निश्चल। अटल।

अयि—अव्य [स०] हे। अरे। अरी। यह सबोधन के लिये प्रयुक्त होता है।

अयुक—वि० [स० अयुज्] अयुक्त [को०]।

अयुक्छद—सज्ञा पु० [स०] १. सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतवन। २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हो, जैसे बेल, अरहर आदि।

अयुक्तनेत्र—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०]।
अयुक्पलाश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अयुग्छद'।
अयुक्शक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
अयुक्शर—संज्ञा पु० [सं०] पंचशर। कामदेव [को०]।
अयुक्त—वि० [सं०] १ अयोग्य। अनुचित। बेठीक। २ अमिश्रित। असयुक्त। अलग। ३ आपद्ग्रस्त। ४ जो दूसरे विषय पर आसक्त हो। अनमना। ६ असबद्ध। युक्तिशून्य। ७ अविवाहित (को०)।

यौ०—**अयुक्तकृत्** = बुरा या गर्हित काम करनेवाला। **अयुक्तचार** = जिसने दूतों या जासूसों की नियुक्ति न की हो।

अयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युक्ति का अभाव। असंबद्धता। गड़बड़ी। २ अयुक्तता [को०]। योग न देना। अप्रवृत्ति ३ वंशी बजाने में उँगली से उसके छेद को बंद करने की क्रिया।
अयुग—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। ३ जो शिष्ट या मिला न हो।
अयुगक्ष—संज्ञा पु० [सं०] शिव। त्रिनयन [को०]।
अयुगपद—अव्य० [सं०] एक साथ नहीं। क्रमश [को०]।
अयुगल—वि० [सं०] दे० 'अयुग' [को०]।
अयुगिपु—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव। अयुग्बाण [को०]।
अयुगू[1]—वि० [सं०] १ जिसका कोई मित्र या सखी न हो। २ वह लड़की जिसकी कोई बहन न हो [को०]।
अयुगू[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसे जीवन में एक ही संतान उत्पन्न होकर फिर कोई संतान न हो। काकवंध्या [को०]।
अयुग्बाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।
अयुग्म—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। एकाकी।

यौ०—**अयुग्मच्छद। अयुग्मनेत्र। अयुग्मबाह। अयुग्मशर।**

अयुग्मच्छद—संज्ञा पु० [सं०] १ सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतवन। २ वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल अरहर इत्यादि।
अयुग्मनयन—संज्ञा पु० [पुं०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०]।
अयुग्मनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव। महादेव।

विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहते हैं।

अयुग्मबाण—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।
अयुग्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।
अयुग्मशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्मबाण [को०]।
अयुग्मसप्ति—संज्ञा पु० [सं०] वह जिसके रथ में सात घोड़े जुते हों। सूर्य [को०]।
अयुज—वि० [सं०] १ जो जोड़ा न हो। ताक। २ अकेला। संगी-विहीन। ३ अश्लिष्ट [को०]।
अयुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस हजार संख्या का स्थान। २ उस स्थान की संख्या।
अयुत[2]—वि० १ असबद्ध। युक्त न हो। २ अक्षुब्ध [को०]।
अयुतसिद्ध—वि० [सं०] जो पृथक् करने योग्य न हो। परार्थ से युक्त। अविच्छेद्य [को०]।
अयुद्ध[1]—संज्ञा पु० [सं०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो।
अयुद्ध[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुध'।
अयुद्धय—वि० [सं०] जिससे युद्ध न किया जा सके। दुर्धर्ष [को०]।
अयुव—वि० [सं०] १ असबद्ध। २ शांत [को०]।
अयुप—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुष्'।
अये[1]—संज्ञा पु० [अनु०] स्तोत्र की जाति का एक जंतु। यह जंतु अये, अये शब्द करता है। इसीलिये इसको 'अये' कहते हैं।
अये[2]—अव्य [सं०] १ क्रोध, विषाद, भयादि द्योतक अव्यय। २ संबोधन।
अयोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ योग का अभाव। २ अप्रशस्त योगयुक्त काल। वह काल जिसमें फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादि का मेल हो। ३ कुसमय। कुकाल। ४. कठिनाई। संकट। ५ वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे। कूट। ६ अप्राप्ति। ७. असंगत। ८ अलगाव [को०]। ९ अनुपयुक्तता [को०]। ० नीच प्रयत्न। जोरदार कोशिश [को०]। ११. विधुर। १२ हर्रा़डा [को०]। १३ किसी वस्तु को न चाहना। नापसंदगी [को०]।
अयोग[2]—वि० [सं०] १ अप्रशस्त। बुरा। २ असबद्ध [को०]। ३ जोरदार कोशिश करनेवाला [को०]।
अयोग[3]—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य। अनुचित।
अयोगव—संज्ञा पु० [सं०] वैश्य जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।
अयोगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाम्नाय सूत्र में नहीं है।

विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, ◌ं क और ◌ं प चार हैं और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग ◌ं क ◌ं ख ◌ं प और ◌ं फ छह हैं। अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय भी अयोगवाह है।

अयोगी[1]—वि० [सं० अयोगिन्] योगशास्त्रानुसार जिसने योगांगों का अनुष्ठान न किया हो। योगांगों के अनुष्ठान में असमर्थ। जो योगी न हो।
अयोगी[2]—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य।
अयोगुड—संज्ञा पु० [सं०] १ लोहे की गोली। लोहे की बनी गेंद। लौह कंदुक। २ एक प्रकार का शस्त्र जिसमें लोहे के गेंद लगे रहते हैं [को०]।
अयोग्य—वि० [सं०] १ जो योग्य न हो। अनुपयुक्त २ अकुशल। नालायक। बेकाम। निकम्मा। अपात्र। ३ अनुचित। नामुनासिब। बेजा।
अयोघन—संज्ञा पु० [सं०] लोहे का घन या हथौड़ा [को०]।
अयोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।
अयोजाल—संज्ञा पु० [सं०] लोहे का बना हुआ जाल [को०]।
अयोद्धा—संज्ञा पु० [सं०] १ निम्न कोटि का सैनिक। २ वह व्यक्ति जो योद्धा या सैनिक नहीं है [को०]।
अयोध्य—वि० [सं०] १ जिससे युद्ध न किया जा सके। अजेय। २ जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०]।
अयोध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी।

विशेष—वाल्मीकीय रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्वत मनु ने बसाया था जो ४८ मील लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यहीं हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—संज्ञा पुं० [सं० अयोध्याकाण्ड] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि[1]—वि०[सं०]१ जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा। २ नित्य। ३ अवैध रूप से पैदा [को०]। ४ अज्ञात कुलशाला [को०]।

अयोनि[2]—संज्ञा पुं० १ योनि से भिन्न। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ मूसल या लोढ़ा [को०]।

अयोनिज[1]—वि०[सं०]१ जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया से उत्पन्न न हो। २ स्वयंभू। ३ अदेह।

अयोनिज[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ अगस्त्य या कुंभज ऋषि।

अयोनिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०]।

अयोनिसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अयोनिसम्भवा] दे० 'अयोनिजा' [को०]।

अयोमय—वि० [सं०] लोहे से रचित। लोहे का [को०]।

अयोमल—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।

अयोमुख—वि० [सं०] जिसका मुख लोहे का हो।

अयोहृदय—वि० [सं०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। संगदिल। निष्ठुर [को०]।

अयौक्तिक—वि० [सं०] युक्तिहीन। असंगत [को०]।

अयौगिक—वि० [सं०] [वि०स्त्री० अयौगिकी] १ रूढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २ जिसका योग या जोड़ से संबंध न हो [को०]।

अरंग—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ्य=पूजाद्रव्य अथवा सं० आघ्राण, तुल० 'अरघान'] सुगंध। महक। उ०—रूप के तरंगन के अंगन ते सोवे के अरंग लै लै तरल तरंग उठैं पौन की।—देव (शब्द०)

अरंगम—संज्ञा पुं०[सं० अरङ्गम]१ समीप आगमन या दिखाई पड़ना। २ महायताथ उपस्थित होना [को०]।

अरंगर—वि०[सं०] १ तुरंत स्तुति करनेवाला। २ जहर का बना हुआ [को०]।

अरंगी—वि० [सं० अरङ्गिन्] रागरहित। रागविहीन [को०]।

अरंड[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एरंड, रेंड'।

अरंधन—संज्ञा पुं० [सं० अरन्धन] एक प्रकार का व्रत जो सिंहसंक्रांति और कन्यासंक्रांति के दिन पड़ता है। इस दिन 'आचारमार्तंड' के अनुसार भोजन नहीं पकाया जाता।

अरंबिंद[1]—संज्ञा पुं० दे० 'अरविंद'। उ०—रवी पग दरस अरंबिंद मान।—पृ० रा० ६१।६३६।

अरंभ[1]—संज्ञा पुं० दे० 'आरंभ'। उ०—कया अरंभ करंड मोड चाहा। तेही समय गरुड़ खगनाहा।—नानक, ७।६३।

अरंभना[1]—क्रि० स० [सं० आ+रम्भ=शब्द करना] बोलना। नाद करना। उ०—रोवत पंखि विमोहे जस कोकिला अरंभ। जाकरि कनक लता सों बिछुरा पीतम खंभ।—जायसी ग्र०, पृ० १७८।

अरंभना[2][1]—क्रि० स० [सं० आरम्भण] आरंभ करना। शुरू करना उ०—सकुचहिं बरनत बिभूषन परसत जा बपु। तेहि सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु।—तुलसी (शब्द०)।

अरंभना[1]—क्रि० अ० आरंभ होना। शुरू होना। उ०—अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।—मानस २।१५७।

अर[1]—संज्ञा पुं० [सं०]१ पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी। आरागज। २ आरी। ३ कोण। कोना। ४ सेवार। ५ पित्तपापड़ा। पर्पट [को०]।

अर[2]—वि० १ शीघ्र। जल्दी। २ छोटा [को०]।

अर[3][1]—संज्ञा पुं० [हिं० अड] १ हठ। अड़। जिद। उ०—(क)परि पाकरि बिनती धनी नीमरजा ही कीन। अब न नारि अर करि सकैं जदुबर परम प्रबीन।—बिहारी (शब्द०)।

अरइल[1][1]—वि० [हिं० अरना, अड़ना] जो चलते चलते रुक जाय और आगे न बढ़े। अड़ियल।

अरइल[2][1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष का नाम। २ प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती है। अरैल। उ०—की कालिंदी बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अरई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋ=जाना] बैल हाँकने की छड़ी या पैने के सिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बैल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतोद।

मुहा०—अरई लगाना=ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अरपी'।

अरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवार। २ पहिए का आरा। आरागज [को०]। ३ पित्तपापड़ा [को०]।

अरक[2]—संज्ञा पुं० [अरक] १ किसी पदार्थ का रस जो भभके में खींचने से निकले। आसव। अर्क।

क्रि० प्र०—उतरना। खींचना। निकालना।

२ रस।

क्रि० प्र०—निचोड़ना।

३ पसीना।

क्रि० प्र०—आना—निकलना।

मुहा०—अरक अरक होना=पसीने में डूब जाना।

अरक[3][1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्क] १ मदार। आक। उ०—छपि अरकन में खपि खरकन में अपि भरकन में जाइ छपैं।—रघाकर ग्र०, पृ० २८६। २ सूर्य।

अरकगीर—संज्ञा पुं० [फा०] नमदे का बना हुआ वह टुकड़ा जिसको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा कसते हैं।

अरकटी—संज्ञा पुं० [हिं० आड+काटना] वह माँझी जो नाव की पतवार पर रहता और उसे घुमाता है।

अरकना[1][1]—क्रि० अ० [अनु०] अड़कर गिरना। टकराना। उ०—कढ़े दंत सिंधु अरु तुथ्थि पर लुथ्थि अरक्किय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना[2]—क्रि० अ० [हिं० दरकना] फटना। दरकना।
यौ०—अरकना दरकना।

अरकनाना—संज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खींचने से निकाला जाता है।

अरकना बकरना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] इधर उधर करना। ऐंचातानी करना। उ०—प्रर कै डरि कै अरकैबरकै फरकै न रुकै मजिबोई चहै।—केशव (शब्द०)।

अरक वादियान(पु)—संज्ञा पु० [अ०] सौफ का अरक।

अरकला(पु)—संज्ञा पु० [सं० अर्गला=अगरी या बडा] रोक। मर्यादा। उ०—माँट अहै ईश्वर की कला। राजा सब राखहिं अरकला।—जायसी (शब्द०)।

अरकसी†—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य]। सुस्ती। प्रमाद।

अरकाट—संज्ञा पु० दक्षिण भारत का एक स्थान।

अरकाटी—संज्ञा पुं० [हिं० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय के बगीचों में या मारिशस, गियाना आदि टापुओं में काम करने के लिये भरती करके भेजता हो।

अरकान—संज्ञा पु०[अ० 'रुक्न' का बहु व०] राज्य के प्रधान संचालक। प्रधान राजकर्मचारी। मंत्रिवर्ग। उ०—जावत अहहिं सकल। अरकाना। मनहि लेहु दूर है जाना।—जायसी (शब्द०)।

अरकामर—संज्ञा पुं० [सं० कासार] तालाब। बावली।—डिं०।

अरकोल—संज्ञा पुं० [सं० कौलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है। इसका पेड झेलम से आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है। इसकी गोंद ककरासिंगी या काकडासिंगी कहलाती है। लाखर।

अरक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी रक्षा न की गई हो। रक्षाहीन। २ जिसका रक्षक न हो।

अरखट(पु)—संज्ञा पुं० [(पु)अखराबट, (पु)अखरोटी, (पु)अखरोट] १. अक्षर २ लिखावट। उ०—लिख लिलाट पट्ट विधि अरखट मिटही न कोटि जतन धीरे धैए।—अकबरी०, पृ० ३२४।

अरग[1]—संज्ञा पु० [सं० अगरु=एक चंदन] अरगजा। पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो सुगंधित होता है। इसे देवताओं को चढाते हैं और माथे में लगाते हैं।

अरग[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्क'। उ०—अरुन बरुन उट्ठायो। अरग उद्दिग उद्दिग जुज।—पृ० रा०, ६१।१६६५।

अरगजा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूर, आदि को मिलाने से बनता है। उ०—मैं लै दयौ, लयौ मुकर छुवत छिनकि गौ नीर। लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यौ अबीर।—बिहारी र०, दो० ५३५।

अरगजी[1]—संज्ञा पु० [हिं० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का सा होता है।

अरगजी[2]—वि० १ अरगजी रंग का। २ अरगजा की सुगंध का। उ०—उरवारी लटैं छूटी आनन पर भीजी फुलेलन सों आली हरि गा केरि। मांथे अरगजी अरु सरगजी सारी केसरि खोरि विराजित कहुँ कहुँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन बेलि।—(शब्द०)।

अरगट(पु)—वि० [हिं० अलगंट] पृथक्। अलग। निराला। भिन्न उ०—बाल छबीली तियनु मे बैठी आपु छिपाई। अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ।—बिहारी र०, दो० ६०३।

अरगडा†—संज्ञा पु० दे० 'अर्गला'।

अरगन—संज्ञा पुं० [अं० आर्गन] एक अँगरेजी बाजा।
विशेष—यह धौंकनी से बजता है। इसमे स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती है। यह बाजा प्राय गिरजाघरो मे रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है।

अरगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलगनी] बाँस, लकडी या रस्सी जो किसी घर मे कपडे आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय। अलगनी।

अरगल—संज्ञा पु० [सं० अर्गल] १ वह लकडी जो किवाड बद करने पर इसलिये आडी लगाई जाती है कि किवाड बाहर से खुले नही। व्योडा। गज। उ०—अरि दुर्ग लूटि अरगन अखड। जनु धरी बडाई बाहु दड। गोपुर कपाट विस्तार झारि। गहि धर्यो वच्छ थल मे सँवारि।—गुमान (शब्द०)।

अरगवान—संज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [को०]।

अरगवानी[1]—संज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण। लाल रंग।

अरगवानी[2]—वि० १ गहरे लाल रंग का। लाल। बैंगनी।

अरगा†—संज्ञा [फा० इर्काब] घोडे की एक प्रकार की चाल। कदम चाल जिसमे चारो पैर अलग अलग पडते है।
विशेष—इस चाल को चलते समय घोडा देह को साधकर चलता है। चारो टाँग अलग अलग पडती हैं। इस चाल मे सवार घोडे की लगाम खिंची हुई रखता है और घोडे का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है।

अरगाना[1](पु)—क्रि० अ० [हिं० अलगाना] १ अलग होना। पृथक् होना। उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग बैठे अरगाय।—कबीर (शब्द०)। २ सन्नाटा खींचना। चुप्पी साधना। मौन होना। (ख) सुनि लिहयौ उनही की कहयौ। अपनी चाल समुझि मन ही मन गुनि अरगाई रहयौ।—सूर०, १०।४१२३।
मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना। अकचका जाना। विस्मित होना। उ०—जासौं जैसी भाँति चाहियै ताहि मिले त्यौं धाइ। देस देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ।—सूर०, १०।४२८२।

अरगाना[2](पु)—क्रि० स० अलग करना। छाँटना। उ०—बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारबार बखानौं। ध्रुव गजसूत विदुर दासी सुत कौन कौन अरगानौ।—सूर०, १।११।

अरघ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. सोलह उपचारों मे से एक। वह जल जिसे फूल, अक्षत, दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ०—करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मडप तब कीन्हा।—मानस, १।३१६। २ वह जल

जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उसके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह जल जो बरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भई। मगल अरघ पावडे देत चले लई।—तुलसी ग्र० पृ० ३६। ४ वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनदप्रकाशनार्थ ढरकाया जाता है। ढरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देह सु अरघ राम कहु लेइ बैठाइय हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३। ५ जल का छिडकाव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावडे अरघ देत आदर से आने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावडे दीदे अतर प्रेम बढायो।—सूर (शब्द०)। देना। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके श्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)।

अरघटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बाल्टी जो रहट मे लगी रहती है। २ गहरा कूप [को०]।

अरघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्घणिक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने मे किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पडित अपने यजमान के हाथ मे एक आम का पत्ता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुडवाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा[१]—सज्ञापुं० [सं० अर्घ]१ एक पात्र जिसमें अरघ का जल रखकर दिया जाता है। यह ताँबे का थूहर के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २ एक पात्र जिसमे शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३ वह पात्र जिसमे अर्घ रखकर दिया जाता।

अरघा[२]—सज्ञा पुं० [स० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघानⓊ†—सज्ञा पुं० [स० आघ्राण] गध। महक। आघ्राण। उ०—(क) और केस वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी।—जायसी ग्र०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फैन, मैली हुई मालिनी की मृदुल शैल।—आराधना पृ० ७।

अरघानिⓊ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचनⓊ—सज्ञा पुं० [स० अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति मे से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वदन दास। सख्य और आत्ममिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचनाⓊ—क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख मे आरत अधम जन पाप करै डर डारि। बलि दै भूतन मारि पशु अरचै नही मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचल†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडचन] अडस। रुकावट। अडचन। उ०—मैं कैसे चलौं सजनी चलो न जाय। उरझी है सारी रे बेरिया की झारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचाⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा'[१]। उ०—त्यो पदमाकर सालिगराम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४४।

अरचिⓊ—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—मे चलत अकरि करि ममरपन रचि मुखमडन अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचितⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अर्चित'।

अरज[१]—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज़] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रग संगीत गृह प्रतिध्वनि उडन अपार। अरज करत निकरत हुकुम मनौ काम दरबार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कहना।

यौ०—अरज गरज।

अरजा†[२]—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज़] चौडाई।

अरज[३]—वि० [सं०] १ जिसमे धूल न लगी हो। स्वच्छ। २ राग आदि से रहित। ३ जिसे मासिक धर्म न हो [को०]।

अरजनⓊ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब सो अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजनाⓊ—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—सज्ञा पुं० [देश०] कुवी नाम का एक बडा वृक्ष जिसकी लकडी से खेती के औजार और गाडी के घुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुवी'।

अरजल[१]—सज्ञा पुं० [अ० अर्जल] १ वह घोडा जिसके दोनो पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रग का हो। (ऐसा घोडा ऐबी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रग हो एक पाँव एक रग। ताको अरजल कहत हैं करत राज मे भग। २ नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णसकर।

अरजल[२]—वि० नीच, जैसे अरजल कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज'[३]।

अरजाँ—वि० [फा०] सस्ता। कमकीमत [को०]।

अरजा[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भार्गव ऋषि की पुत्री। २ घीकुआर। घृतकुमारी। ३ वह कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०]।

अरजा[२]—वि० [सं०] अरजस्वला [को०]।

अरजी[१]†—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज़ी] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी ह्वै दियो उन पान हमैं पढि साँवरे रावरे की अरजी।—नोप (शब्द०)। २ दे० 'अर्जी'।

अरजी[२]Ⓤ†—[अ० अर्ज + हिं० ई (प्रत्या०)] प्रार्थी। उ०—अरजी पिव पिव रटन परखि तब प्रगटत मरजी।—सुधाकर (शब्द०)।

अरजुनⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु[१]—वि० [सं०] बिना रस्सीवाला [को०]।

अरज्जु[२]—सज्ञा पु० कारागृह। जेल [को०]।

अरझनाⓊ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरझना'।

अरज्ञा[१]†—सज्ञा पुं० [दे०] छोटी जाति का सन। सनई।

अरज्ञा[२]†—सज्ञा पुं० [हिं० अरझना] १ उलझन। झमेला। २. बखेडा। टटा। झगडा।

अरटु—सज्ञा पु० [स०] अरत नाम का वृक्ष [को०]।

अरडीगा†—वि० [देश०] बलिष्ठ। जोरावर।—डिं०।

अरण†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—अरण आज्ञाकारी मूझ नायक अवध अवध वितानै वेग आवौ।—रघु० रू०, पृ० १०४।

अरणव⑤†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्णव'। उ०—अरणव साते उदर विरछ रोमाच विचारै।—रघु० रू०, पृ० ४४।

अरणि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकार का वृक्ष। गनियार। अँगेयू। २ सूर्य। ३ काठ का बना हुआ एक यत्र जो यज्ञो मे आग निकालने के काम आता है। अग्निमथ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरणि या अधरारणि और उत्तरारणि। यह शमीगर्भ अश्वत्थ से बनाया जाता है। अधरारणि नीचे होती है और इसमे एक छेद होता है। इस छेद पर उत्तरारणि खडी करके रस्सो से मथानी के समान मथी जाती है। छेद के नीचे कुश या कपास रख देते है जिसमे आग लग जाती है। इसके मथने के समय वैदिक मत्र पढते हैं और ऋत्विक् लोग ही इनके मथने आदि का काम करते हैं। यज्ञ मे प्राय अरणि से निकली हुई आग ही काम मे लाई जाती हैं। ४ चीता नामक वृक्ष या उसकी लकडी। ५ श्योनाक। सोना पाढा। ६ अग्नि। ७ चकमक पत्थर।

अरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरणि'।

अरणिकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] अग्निमथ नामक वृक्ष (को०)।

अरणीसुत—सज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव।

विशेष—लिखा है कि व्यास जी का वीर्यपात अरणी पर होने से शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी।

अरण्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ वन। जगल। २ कटफल। कायफल। ३ सन्यासियो के दस भेदो मे से एक। ४. रामायण का एक काड।

यौ० —अरण्यगान अरण्यरोदन।

अरण्यक—सज्ञा पु० [सं०] १ जगल। २ जगली सभा। ३ एक पौधा [को०]।

अरण्यकणा—सज्ञा स्त्री० [स०] जगली जीरा [को०]।

अरण्यगान—सज्ञा पुं० [स०] सामवेद के अतर्गत एक गान जो जगल मे गाया जाता था।

अरण्यचद्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अरण्यचन्द्रिका] जगल की चाँदनी (ला०)। वह शृगार जिसका देखनेवाला या प्रशसा करनेवाला न हो [को०]।

अरण्यदमन—सज्ञा पुं० [सं०] दोन नामक एक पौधा। दोना [को०]।

अरण्यनृपति—सज्ञा पुं० [सं०] शेर। सिह [को०]।

अरण्यपडित—सज्ञा पुं० [सं० अरण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति। बुद्धिहीन मनुष्य [को०]।

अरण्यमक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस। जगली मक्खी [को०]।

अरण्ययान—सज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०]।

अरण्यरोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ निष्फल रोना। ऐसी पुकार जिसका सुननेवाला कोई न हो। २. ऐसी बात जिसपर कोई ध्यान न दे। वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो। जैसे—इस भीडभाड मे कोई बात कहना अरण्यरोदन है।—(शब्द०)।

अरण्यवास्तुक—सज्ञा पुं० [स०] जगली बेंत [को०]।

अरण्यवास्तूक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अरण्यवास्तुक' [को०]।

अरण्यविलाप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यरोदन' [को०]।

अरण्यव्रत—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के बारहवें दिन पडता है [को०]।

अरण्यश्वान—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेडिया। २ गीदड [को०]।

अरण्यषष्टी—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष मे पडता है।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा करती हैं यह व्रत सतानवर्धक माना जाता है। शास्त्रानुसार स्त्रियो को बेना लेकर जगल मे घूमना चाहिए।

अरण्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि।

अरण्यानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बीहड जगल या वीरान जगल। २. वन की देवी [को०]।

अरण्यायन—सज्ञा पुं० [स०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०]।

अरण्यीय—वि० [सं०] १ जगल का। २ जगल के समीप [को०]।

अरत—वि० [सं०] १ जो अनुरक्त न हो। जो किसी पदार्थ मे आसक्त न हो। २ विरत। विरक्त। उ०—मन गोरख गोविद मन, मन ही ओपधि सोय। जो मन राखै यतन करि, आपै अरता होय।—कबीर (शब्द०)। ३ सुस्त। आलसी। ४ असतुष्ट।

अरति[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग। चित्त का न लगना। उ०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमत्र कुठाटु। रचि प्रपच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु।—मानस, २।२९४। २ जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का क्रम जिसके उदय मे चित्त किसी काम मे नही लगता। यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है। अनिष्ठ मे खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते है ३ असतोष [को०]। ४. क्रोध [को०]। ५ चिंता [को०]। ६ उच्चाटन [को०]। ७ उद्वेग [को०]। ८ सुस्ती। प्रमाद [को०]। ९. व्यथा। पीडा [को०]। १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०]।

अरति[2]—वि० १ असतुष्ट। २ शातिरहित। अशात। ३. सुस्त। प्रमादी [को०]।

अरत्त⑤—वि० [हिं०] दे० 'अरत'। उ०—आनिगन दे हथ्थ धरि, अरु पुच्छिय इह वत्त। जा जीवन रत्तो जगत, तू क्यो राज अरत।—पृ० रा०, ११५४८।

अरतिन—सज्ञा पुं० [सं०] १ बाहु। हाथ। २ कुहनी। ३. मुट्ठी बँधा हाथ। ४ मीमासा शास्त्र के अनुसार एक माप।

विशेष—इससे प्राचीन काल मे यज्ञ की वेदी आदि मापी जाती थी। यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है।

अरथ⑤—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्थ'। उ०—बनइ विद्यापति, कहओ बुझाए अरथ असभव के पतिआए।—विद्यापति, पृ० २३६।

अरथाना⑤†—क्रि० स० [स० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] १ समझाना। विवरण करना। उ०—पठवो दूत भरत कौं

ल्यावन वचन कह्यौ बिलखाई। दशरथ वचन राम वन गवने यह कहियो अरथाइ।—सूर०, ९।४७। २ व्याख्या करना। बताना। उ०—भा बिहान पंडित सब आए। काढि पुरान जनम अरथाए। जायसी ग्र०, पृ० १९।

अरथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] १ लकडी की बनी हुई सीढी के आकार का एक ढाँचा जिसपर मुर्दे को रखकर श्मशान ले जाते हैं। टिखटी। विमान।

अरथी[2]—वि० [सं० अ+रथी] १ जो रथी न हो। पैदल। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [को०]।

अरथी[3]—वि० [हिं०] दे० 'अर्थी'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै मानिनि मक। मध्यम समझी अधम निजु अरथी निलजु निसक।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० २७।

अरदड†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करील जो गंगा के किनारे होता है।

अरद[1]—वि० [सं०] १ बिना दाँतवाला। २ जिसके सभी दाँत गिर गए हो [को०]।

अरद[2]—संज्ञा पुं० १. दुःख पहुँचाना। २ विनाश [को०]।

अरदन[1]—वि० [सं० अ+रदन] १ बे दाँत का। बे दाँतवाला।

अरदन[2]Ⓤ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अर्दन'।

अरदनाⓊ†—क्रि० स० [सं० अर्दन] १ रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि अरदरिपु वधत तदपि रद काति प्रकासत।—गोपाल (शब्द०)। २ वध करना। मार डालना। उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि अरदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०)।

अरदल—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लंक द्वीप में होता है।

विशेष—इससे पीले रंग की गोंद निकलती है जो पानी में नहीं घुलती, शराब में घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो औषधि के काम आता है। इसकी लकडी भूरे रंग की होती है जिसमें नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

अरदली—संज्ञा पुं० [अ० ऑर्डरली] वह चपरासी या भृत्य जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय में उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगों के आने इत्यादि की इत्तला करता है।

अरदावाⓊ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्दद्, फा० आरद] १ दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—धीव टाँक महिं सौंध सिरावा। पख बघार कीन्ह अरदावा।—जायसी (शब्द०)।

अरदासⓊ†—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १ निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि विधि डील दीन्ह तब ताई। देहली की अरदासें आई।—जायसी (शब्द०)। २ शुभ कार्य या यात्रारंभ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३ वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढावे आदि के आरंभ में करते हैं। ४ प्रार्थना। विनती।

अरधग[1]Ⓤ—संज्ञा [सं० अर्द्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०—सिव साहेब अचरज भरो सकल गावरो अंग। क्यों कामहि जारयो, कियो क्यों कामिनि अरधंग।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १२५। २ शिव। उ०—तजै गौरि अरधंग अचल ध्रुव आसन चलै।—हम्मीर०, पृ० १३।

अरधग[2]—वि० दे० 'अर्धांग'।

अरधगी[1]Ⓤ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अर्धांगी'।

अरधागी[2]Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [अरधंग+ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—आपु भए पति वह अरधंगी। गोपनि नाँउ धरयो नवरंगी। सूर०, १०।३१४४।

अरधागीⓊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अरध[1]Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अर्ध'। उ०—कूटयो पहार सातखंड ह्वै अरध खंड गढ भरहरयो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

अरध[2]Ⓤ—क्रि० वि० [सं० अधः] अंदर। भीतर। उ०—अरध उरध अस है दुइ हीया। परगट गुपुत बरै जस दीया।—जायसी (शब्द०)।

अरधभाषरीⓊ†—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्ध भाषरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भाषरी का आधा होता है।

अरधमावझडⓊ†—संज्ञा पु० [हिं०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत।

अरधाईⓊ—वि० [हिं० अरध+आई प्रत्य०] आधा। उ०—तीनि हाथ एक अरधाई।—कबीर ग्र०, पृ० १३३।

अरध्र—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। अपराजेय। २ समृद्ध [को०]।

अरन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अडन] एक प्रकार की निहाई जिसके एक या दोनों ओर नोक निकली होती है।

अरन[2]—संज्ञा पु० [सं० अरण्य, प्रा० अरण्य] दे० 'अरण्य'।

अरना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आरण्यक] जंगली भैंसा।

विशेष—जंगलों में इनके झुंड के झुंड मिलते हैं। यह साधारण भैंसे से बडा और मजबूत होता है। इसके सुडौल और दृढ अंगों पर बडे बडे बाल होते हैं। इसका सींग लंबा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

अरना[2]Ⓤ—क्रि० अ० [हिं०] शीघ्रता करना। उ०—करौ दया मोसीम दया कर आयौ सार चार गुण अरकर।—रा० रू०, पृ० ६।२ दे० 'अटना'।

अरनिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अडन'। उ०—बरषि निझरे मेघ पाइक बहुत कीनो अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परयो दुहुँ चरनि।—सूर०, १०।९५९।

अरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अरणी] १ एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—इसका फल लोग खाते हैं। इसकी गुठली भी काम आती है। काश्मीरी और काबुली अरनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकडी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती है। यह माघ, फाल्गुन में फूलता है और बरसात में पकता है।

२—यज्ञ का अग्निमथन काष्ठ जो शमी के पेड में लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारबार

विचार तें उपजै ज्ञान प्रकास। ज्यौं अरनी मथन तें प्रगटै गुप्त हुताम।—दीन० ग्र०, पृ० १६६। ३ जतन। दाह।

अरन्य(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—'दास' कहै मृगहूँ को उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरनि।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ५०१।

अरपन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्पण'। उ०—बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहि। जो घट अरपन करै ताहि ते ममता कूपहि।—दीन० ग्र०, पृ० २५६।

अरपना(पु)—क्रि० स० [स० अर्पण] अर्पण करना। भेंट करना। उ०—(क) पहिले दाता सिख भया तन मन अरपा सौंप।—कबीर (शब्द०)। (ख) तोहि आम की मजरी अरपित हो सिर माय। महाराज कदर्प के धनुष दियो जिन हाथ।—शकुतला, पृ० १०६।

अरपा—सज्ञा पुं० [देश०] एक मनाला।

अरपित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्पित'।

अरब[1]—सज्ञा पु० [स० अर्बुद] १ सौ करोड। सख्या मे दसवाँ स्थान। २ इस स्थान की सख्या।

अरब[2]—सज्ञा पुं० [स० अर्वन्] १ घोडा। २ इद्र। उ०—अरब गरबत अरब अरब ऐसे अरब के अरब चरब जहराय के।—गोपाल (शब्द०)।

अरब[3]—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक मरु देश जो एशिया खड के पश्चिम-दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है। यहाँ इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे। यहाँ घोडे, ऊँट और छुहारे बहुत होते हैं। २ अरब देश का उत्पन्न घोडा। ३ अरब का निवासी।

अरबर(पु)—वि० [अनुभव०] [स्त्री० अरबरी] १ ऊटपटाँग। असबद्ध। उ०—भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति, भावन करत भोग सुखद लगाए हैं।—प्रिया (शब्द०)। २ कठिन। मुश्किल।

अरबराना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अरबर + ना० प्रत्य०] १ घबराना। व्याकुल होना। विचलित होना। (क) ब्याही ही विमुख घर आयो लेन कहै पर खरी अरबरी कोई चित्त चिंता लागी है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) सुनि सोच परेउ हियो खरो अरबरेउ मन गाढो लै कै करेउ बोल्यो हौं जू सरसाई है।—प्रिया (शब्द०)। २ लटपटाना। अडबडाना। उ०—सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरे पैया।—सूर०, १०।११५।

अरबरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० अरबर] घबराहट। हडबडी। उ०—(क) सभा की चाह अवगाह हनूमान की गरे डारि दई सुधि भई अति अरबरी है।—प्रिया (शब्द०)।

अरबिंद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] दे० 'अरविंद'। उ०—देखत क्यो न अपूरब इदु मे द्वै अरबिंद रहे गहि लाली।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०६।

अरबिस्तान—सज्ञा पुं० [अ० अरब + फा० स्तान] अरब देश।

अरबी[1]—वि० [अ० अरब + फा० ई (प्रत्य०)] अरब देश का।

अरबी[2]—सज्ञा पु० १ अरबी घोडा। अरब देश का उत्पन्न या अरबी नस्ल का घोड़ा। ताजी। ऐराकी।

विशेष—यह सब घोडो मे अधिक बलवान, मेहनती, सहिष्णु और आज्ञानुवर्ती होता है। इसके नथुने चौडे, गाल और जबडे मोटे, माथा चौडा, आँखें बडी बडी, थुथुने छोटे, पुट्ठा ऊँचा और दुम जरा ऊपर चढकर शुरू होती है। इसके कान छोटे, तथा दुम और अयाल के बाल चमकीले होते हैं।

२ अरबी ऊँट। अरब देश का ऊँट।

विशेष—यह बहुत दृढ और सहिष्णु होता है और बिना दाने पानी के मरुभूमि मे चलता रहता है।

३ अरबी बाजा। ताशा।

अरबी[3]—सज्ञा स्त्री० अरब देश की भाषा।

अरबीला(पु)—वि० [हिं अरबर] १ भोलाभाला। अडबड। उ०—देखति आरसी मैं मुसुक्याति है छाँडि दई बतियाँ अरबीली।—लाल (शब्द०)। २ लडाका। युद्ध से न भागनेवाला। अडनेवाला।

अरबुद(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अर्बुद'। उ०—बुरे ऋषि बृद सुअरबुद आय। जहाँ ऋषि चाय वर्म सत भाय।—हम्मीर रा०, पृ० ८।

अरब्बी[1]—वि० [हिं०] दे० 'अरबी'।

अरब्बी[2]—सज्ञा पु० [फा० अरबी] १ अरबी बाजा। ताशा।—बाजै अरब्बी उमडि कै गज्जै मनो घन घुमडि कै—पद्माकर ग्र०, पृ० ८। २ अरबी घोडा। उ०—अरब्बी फिरै बेस उब्बीन पै जे। नटो की कला सीकला जान लै जे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८०।

अरभक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्भक'।

अरम—वि० [स०] क्षुद्र। नीच [को०]।

अरमण—वि० [स०] १ अरुचिकर। २ खराब। ३ अमनोपदायक। ४ विरामरहित। निरतर।

अरममाण—वि० [सं०] दे० 'अरमण' [को०]।

अरमनी—सज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी।

विशेष—आरमेनिया काकेशश पहाड से दक्षिण मे है यहाँ के लोग विशेष सुदर होते हैं।

अरमाँ—सज्ञा पुं० [तु० अर्मान] दे० 'अरमान'। उ०—ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल मे अरमाँ रह गया।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८४६।

अरमान—सज्ञा पुं० [तु० अर्मान] इच्छा। लालसा। चाह।

मुहा०—**अरमान निकालना** = इच्छा पूरी करना। उ०—बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४७६। **अरमान भरा** = उत्सुक। **अरमान रहना या रह जाना** = इच्छा का पूरा न होना। मन की बात मन ही मे रहना।

अरर[1]—अव्य० [स० अरेरे] एक शब्द जो अत्यत व्यग्रता तथा अचभे की दशा मे मुँह से निकलता है, जैसे—अरर! यह क्या हुआ (शब्द०)।

अरर[2]—सज्ञा पुं० [स० अरर] १ किवाड कपाट। २ विधान। ढक्कन। ३ उलूक [को०]। ४ युद्ध [को०]।

अरर[3]—सज्ञा पु० [स० अरर, अरल] मैनफल [को०]।

अररनादररना(पु)—क्रि० स० [अनु०] दबना। पीसना। उ०—चित कर गोहुआँ प्रेम की दउरिया समुझि समुझि झिकवा

नावहु रे का अररिदररि जो पीमैं लींगी सजनी ह्वै वह पिया की सोहागिनि रे की।—कबीर (शब्द०)।

अरररानाⓊ—क्रि० अ० [अनुध्व] अरर शब्द करना। अरराना। उ०—अररात दोउ वृच्छ गिरे घर। अति आघात भयो व्रज भीतर।—सूर०, १०।३८१।

अरराना—क्रि० स० [अनुध्व०] अरर शब्द करना। टूटने या गिरने का शब्द करना। उ०—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराई कै आघात शब्द सुनाइ।—सूर०, १०।३६१। २ अररर शब्द करके गिरना। तुमुल शब्द करके गिरना। उ०—व्रत वनपात झहरात झहरात अरात तरु महा धरनी गिरायौ।—सूर० १०।५६६। ३ भहरा पडना। सहसा गिरना। उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परेंगी (शब्द०)। (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई।—कामायनी, पृ० १६८।

अरराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अरर+आहट (प्रत्य०)] अरराने की ध्वनि या आवाज। उ०—यो हो अरराहट अरावन को छायो है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२०।

अररि—संज्ञा पुं० [सं०] १ द्वार। २. किवाड [को०]।

अररी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वार। २ किवाड [को०]।

अररु—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुश्मन। २ एक हथियार। ३. एक असुर का नाम [को०]।

अरलु—संज्ञा पुं० [स०] १ श्योनाक। टेंटु। सोनापाढा। सोनागाछ। २ अलाबु। अलाबू। कडुई लौकी।

अरव—वि० [स०] शोरगुल रहित। रवरहित। शांत [को०]।

अरवन—संज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+हिं लवना=खेत की कटाई] १ फसल जो कच्ची काटी जाय। २ वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खलिहान मे न ले जाकर घर पर लाई जाय। इसके अन्न से प्राय देवताओ की पूजा होती है और ब्राह्मण आदि खिलाए जाते हैं। अवई। अवनी। अवरी। अवाँनी। कवल। कवारी।

अरवट—संज्ञा पुं० [देश०] वह भौंरी जो घोडे के कान की जड मे गर्दन की ओर होती है। यह यदि दोनो ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है।

अरवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० लावना=जलाना, भूनना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले या भूने धान से निकाला जाय।

अरवा[2]†—संज्ञा पुं० [सं० आलय=स्थान] आला। ताखा।

अरवातीⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है। ओरती। ओरौनी। उ०—सजनी नैना गए भगाइ। अरवाती को नीर बडेरी कैसैं फिरिहैं घाइ।—सूर० (शब्द०)।

अरवाहⓊ—संज्ञा पुं० [अ० रूह का बहु व० अरवाह] जीवात्मा। उ०—दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ। तौ तन मन अरवाह का सब पडदा जलि जाइ।—दादू बा०, पृ० ६७।

अरविंद—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] १. कमल

यौ०—अरविंदनयन। अरविंदनाभ। अरविंदबंधु। अरविंदलोचन अरविंदाक्ष।

२ सारस। ३ नील या रक्तकमल [को०]। ४ कामदेव के पाँच बाणो मे से एक [को०]। ५ तांबा [को०]।

अरविंददलप्रभ—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्ददलप्रभ] तांबा [को०]।

अरविंदनयन—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दनयन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदनाभ—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दनाभ] कमलनाभ। विष्णु।

अरविंदनाभि—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दनाभि] विष्णु [को०]।

अरविंदबंधु—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दबन्धु] कमलबंधु। सूर्य।

अरविंदयोनि—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दियोनि] कमलयोनि। ब्रह्मा।

अरविंदलोचन—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दलोचन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदसद्—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०]।

अरविंदाक्ष—संज्ञा पुं० [स० अरविन्दाक्ष] विष्णु।

अरविंदिनी—संज्ञा स्त्री० [स० अरविन्दिनी] १. कमलिनी। २ कमल लता। ३ कमलसमूह। ४ कमल से भरा स्थान [को०]।

अरवी—संज्ञा पुं० [स० आलू] एक प्रकार का कद।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तो के आकार के बडे बडे होते हैं। यह दो प्रकार की होती है, एक सफेद डंठी की, दूसरी काली डंठी की। जड या कद से बराबर पत्तो के लंबे लंबे डंठल निकलते रहते हैं। नीचे नई पत्तियाँ बँधती जाती हैं। यह छूने मे लसदार और खाने मे कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है। लोग इसके पत्ते का साग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं। यह अधिकतर बैसाख जेठ मे बोई जाती है और सावन मे तैयार हो जाती है। उ०—चूक लाय कै रीधे माँटा। अरवी कहँ भल अरहन बाँटा।—जायसी (शब्द०)।

अरस[1]—वि० [स०] नीरस। फीका। २ गँवार। अनाडी। ३ कमजोर। निर्बल [को०]।

अरस[2]—संज्ञा पुं० [स० अ० अर्श] आकाश। उ०—नहिन दुरत हरि प्रिय को परस। उपजत है मन को अति आनँद, अधरनि रँग, नैननि को अरस।—सूर०, १०।२६५६।

अरसⓊ—संज्ञा पुं० [अ० अर्श] १ छत। पाटन। २ धरहरा। महल। उ०—(क) मारु मारु कहि गारि दे, धिक गाइ चरैया। कम पास ह्वै आइए कामरी ओढ़ैया। बहुरि अरस तै आइ कै, तब अवर लीजो।—सूर०, १०।३०३८। (ख) अरस नाम है महल को, जहँ राजा बैठे। गारी दै दै सब उठे, भुज निज कर ऐठे।—सूर० (शब्द०)। ३ आकाश। उ०—चलकर महल निकट गिर पहुँचिय चढ रज अरस फरक धुज चाहि।—रघु० रू०, पृ० ११६। ४ मुसलमानो के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है।

अरसठⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अडसठ'।

अरसथ—संज्ञा पुं० [देश०] मासिक आयव्यय का लेखा। वही जिसमे प्रति मास के आयव्यय की खतियौनी जाती है।

अरसनपरसनⓊ—संज्ञा [हिं०] दे० 'अरसपरस'।

अरसनाⓊ—क्रि० अ० [सं० अलस] शिथिल पडना। ढीला पडना। मद होना। उ०—आवती हो उत ही सो, उनकी विलकि दसा। बिरह तिहारे अग अग अरसे।—रघुनाथ (शब्द०)।

अरसनापरसना—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] १ छूना। उ०—अरस परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।—सूर०, १०।१६२। २ आलिंगन करना। मिलना। भेंटना। उ०—काहू कै मन कछु दुख नाही। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाही।—सूर०, १०।६२०।

अरसपरस[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लड़कों का एक खेल। आँखमिचौनी। छुआछुई। आँखमुनाल। उ०—गुरु बतावै साध को साधु कहैं गुरु पूज। अरस परस के खेल मे भई अगम की सूझ—कबीर (शब्द०)।

विशेष—इस खेल मे एक लड़के को अलग कर देते हैं। वह लड़का आँख मूँदता है और सब लड़के दूर भाग जाते हैं। जब उसमे आँख खोलने को कहते हैं तो वह औरो को छूने के लिये दौड़ता है। जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पड़ती है।

अरसपरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। उ०—बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई। धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहत न कोई।—कबीर (शब्द०)।

अरसा—संज्ञा पुं० [अ० अर्सह] १ समय। काल। २ देर। अंतिकाल ३ अंतर। दूरी। फासिला [को०]। ४ क्षेत्र। मैदान [को०]।

अरसाना—क्रिया अ० [सं० अलस] अलसाना। निद्राग्रस्त होना। उ०—ऐंचनि मीचनि चितवन चितै, भई ओट अरसाय। फिर उझकन को मृगनयनि, दृगनि लगनियाँ लाय।—बिहारी (शब्द०)।

अरसात—संज्ञा पुं० [सं० अलस आलस्य] २८ अक्षरों का एक वृत्त जिसमे सात 'भगण' और एक 'रगण' होता है। यह एक प्रकार का सवैया है। यथा—मासत रुद्र जु ध्यानिन मे पुनि सारमुनी जस बानिन मानिए। नारद ज्ञानिन पानिन गंग सु रानिन मे बिकटोरिया मानिए। दानिन मे जस कर्ण बड़े तस भारत अब खरी उर आनिए। बेटन के दुख छूटन मे कबहूँ अरसात नहीं फुर जानिए। (शब्द०)।

अरसाव—वि० [सं० आश्रव] बाधा। पाप। उ०—बोलौ गंगा साँचही महादेव कर साव। जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाउ कौल अरसाव।—चित्रा०, पृ० १२५।

अरसाश—संज्ञा पुं० [सं०] रूखा सूखा भोजन। बिना स्वाद का। स्वादरहित [को०]।

अरसिक—वि० [सं०] १ जो रसिक न हो। अरसज्ञ। रूखा। २. कविता के मर्म को न समझनेवाला। ३ बेस्वाद या बिना जायका का [को०]।

अरसी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अतसी, प्रा० *अडसी] अलसी। तीसी। उ०—जनहु मात निसयानी बरसी। अति बिसभर फूले जनु अरसी।—जायसी (शब्द०)।

अरसी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'। उ०—तन झुरमी तरसी हिये परसी बिरह जरूर। दृगनि वारि झरसी लगी दरसी अरसी नूर।—सं० सप्तक, पृ० ३८६।

अरसीला—वि० [सं० अलस] [स्त्री० अरसीली] आलस्यपूर्ण। आलस्य से भरा। उ०—राजु कहाँ तजु बैठी है भूषण जिसे ही अंग कछू अरसीलो।—मतिराम (शब्द०)।

अरसौंहाँ—वि० [सं० आलस्य, हिं० अरस + औंहाँ (प्रत्य०)] आलस्यपूर्ण। आलस्यभरा। उ०—(क) नखरेखा सौंहे नई, अरसौंहे सब गात, सौंहे होत न नैन ये तुम सौंहें कत खात—बिहारी (शब्द०)। (ख) सौंहे चितै अरसौंहैं तिया निरछौंहैं हमौंहैं सरावति मालहि।—देव (शब्द०)।

अरहंत—संज्ञा पुं० [सं० अर्हन्, प्रा० अरहन] दे० 'अर्हत'। उ०—पियारे दूजो को अरहन पूजा जोग मानि कै जग मैं जाको पूजै सत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३३।

अरहट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यंत्र जिसमे तीन चक्कर या पहिए होते है। इन पहियों पर घड़ो की माला लगी होती है जिनसे कुएँ से पानी निकाला जाता है। रहँट। उ०—कबीर माला मन की और संसारी भेष। माला पहरयाँ हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देष।—कबीर ग्रं०, पृ० ४५।

अरहन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] वह आटा या बेसन जो तरकारी, साग आदि पकाते समय उसमे मिला दिया जाता है। रेहन। उ०—चूक लाइकै रीझे साँटा। अरयौ कहै मन अरहन बाटा।—जायसी (शब्द०)।

अरहना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्हण, प्रा० अरहणा] पूजा आराधना।

अरहना[2]—क्रि० स० पूजा करना। आराधना करना।

अरहर—संज्ञा स्त्री० [सं० आढकी प्रा० अड्ढकी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है। रहर। उ०—सन सूखो बीत्यो बनो, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजौ, धर धरहर हिय नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ अरहर का बीज। तुवरी। तूअर। पर्या०—तुवरी। वीर्य्या०। करवीरभुजा। वृत्तबीजा। पीतपुष्पा। काशीगृत्स्ना। मृतालका। सुराष्ट्रजभा।

विशेष—इसका पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसकी एक एक सीके मे तीन तीन पत्तियाँ होती हैं जो एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती है। इसका स्वाद कसैला होता है। मुँह आने पर लोग इसे चबाते है और फोड़े फुंसियों पर भी पीसकर लगाते हैं। अरहर की लकड़ियाँ जलाने और छप्पर छाने के काम आती हैं। इसकी टहनियों और पतले डंठलों से खाँचे और दौरियाँ बनाई जाती हैं। अरहर बरसातमे बोई जाती है और अगहन पूसमे फलती है। इसका फूल पीले रंगका होता है और फूल झड़ जाने पर इसमे डेढ़ दो इंच की फलियाँ लगती हैं जिनमे चार पाँच दाने होते हैं। दानों मे दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूसरी बड़ी। बड़ी को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रहिमुनिया' कहते हैं। छोटी दाल अच्छी होती है। अरहर फागुन मे पकती है और चैत मे काटी जाती है। पानी पाने से इसका पेड़ कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न भिन्न देशों मे इसकी कई जातियाँ होती हैं, जैसे रायपुर मे 'हरोना' और 'भिड़ी', बंगाल मे 'मयना' और 'चैती' तथा आसाम मे 'गलवा', 'देव' या 'नती'।

अरहेड—संज्ञा स्त्री० [सं० हेड] चौपायों का झुंड। जेहरी।—हिं०।

अरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरा'। जौहरी अरा लै अरेरनि है उरकोर कटाछन जोर अराए।—दे० (शब्द०)। २ लड़ाई। झगड़ा।

अरा[२]†—सज्ञा स्त्री० [स० आर] पहिए की गडारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] अडाअडी। होड स्पर्धा। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो द्वै भँवर उडे बराबरी। चपे की डारि बैठे कुद अलि लागी है जेब अराअरी—हरिदास (शब्द०)।

अराक[१]—सज्ञा पु० [अ०] १ एक देश जो अरब मे है। एराक। इराक। २ वहाँ का घोडा। उ०—हरतो हरीफ मान तरतो समुद्ध युद्ध क्रुद्ध ज्वाल जरतो अराकनि सो अरतो।—भूषण (शब्द०)।

अराक[२]—सज्ञा पु० दे० 'अडाक'।

अराकन—सज्ञा पुं० [स० अरि=राक्षस+ग्राम, बरमी, कान=देश] बरमा देश के एक प्रान्त का नाम। यह बगाल की खाडी के किनारे पर है।

अराकी—वि० [हिं०] दे० 'इराकी'।

अराग[१]—सज्ञा पु० [स०] रागाभाव। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग[२]—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [स० अरागिन्] [स्त्री० अरागिनी] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना—क्रि० स० [स० अर्चन] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन्।—हम्मीर रा०, पृ० ४०।

अराज[१]वि० [स० अ+राजन्[बिना राजा का। उ०—जग अराज ह्वै गयो रिपिन तब अति दुख पायो। लै पृथ्वी को दान ताहि फिरि बनहिं पठायो।—सूर०, ६।१४।

अराज[२]—सज्ञा पु० अराजकता। शासन विप्लव। हलचल।

अराजक—वि०[स०]१ जहाँ राजा न हो। राजहीन। बिना राजा का। २ अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ राजा का न होना। २ शासन का अभाव। ३ अशाति। हलचल। अँधेर।

यौ०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातत्र्य का समर्थन करनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता बतानेवाला सिद्धात या वाद।

अराजन्य—वि० [स०] क्षत्रियविहीन [को०]।

अराजबीजी—वि० [स० अराजबीजिन्] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यो को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बसाने मे बहुत कठिनता या खर्च हो।

अराजव्यसन—सज्ञा पु० [स०] अराजकता सबधी सकट।

अराजी—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज का बहु०] १ भूमि। धरती। जमीन। २ वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड—सज्ञा पुं० [स० अट्टाल] १ राशि। ढेर। अबार। २ टूटी फूटी तथा रद्दी वस्तुओं का अबार। ३ जलावन की दूकान।

अराडना—क्रि० अ० [१] गर्भपात हो जाना। गर्भ का गिर जाना। बच्चा फेंकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय पशुओं ही के लिये होता है।

अरात—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २ फलित ज्योतिष मे कुडली का छठा स्थान। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आतरिक शत्रु है। ४ छह की सख्या।

अराद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैमनस्य। २ दुर्भाग्य। ३ दोष। पातक [को०]।

अराधन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अराधन'।

अराधना—क्रि०स० [स० आराधन]१ आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यो। सूर० १०।३५३०। २ पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४ ध्यान करना।

अराधी—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आराधी'।

अराना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अडाना'। उ०—मौहैं अरा लै अरेरति है उर कोर कटाक्षन ओर अरारे।—देव (शब्द०)।

अरावा—सज्ञा पुं० [अ०] १ गाडी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए सब आछे। तबै अडोल अरावे पाछे।—जायसी (शब्द०)। (ख) जिती अरावौ नार है सो सब लीनौ सग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान सौ जग।—जुजान०, पृ० ५१। २ वह गाडी जिसपर तोप लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए सबै अरावौ एहु। ज्यो हरीफ आवै नजरि तबै धडाधड देहु।—जुजान०, पृ० १५। (ख) दाराघाट धीरपुर बाँध्यौ। रोपि अरावै कलहै काँध्यो। लाल (शब्द०)। ३ जहाज पर तोपो को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम[१]—सज्ञा पु० [स० आराम] बाग। उपवन।—ये नहिं फूल गुलाब के दाहन हिय जु हमार। बिन घनश्याम अराम मे लागी दुसह दवार।

अराम[२]—सज्ञा पु० [फा० आराम] दे० आराम'[१]।

अरारूट—सज्ञापु० [अ० एरोरूट]एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान मे आया है।

विशेष—गरमी के दिनो मे दो दो फुट की दूरी पर इसके कद गाडे जाते हैं। इसके लिये अच्छी दोमट और बलुई जमीन चाहिए। यह अगस्त से फूलने लगता है और जनवरी फरवरी मे तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झडने लगते हैं तब यह पक्का समझा जाता है और इसकी जड खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड रह ही जाती है। इससे, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ इसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड को पानी मे खूब धोकर कूटते है और फिर उसका सत निकालते हैं जो स्वच्छ मैदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रग देसी तीखुर के रग से सफेद होता है तथा इसमे गध और स्वाद नही होता।

२ अरारूट का आटा।

अरारोट—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरारूट'।

अराल[1]—वि० [स०] कुटिल। टेढा। उ०—भाल पर भाग, लाल बेंदी पै सुहाग, देव भृकुटी अराल अनुराग हुलस्यो परै।—देव (शब्द०)।

यौ०—अरालकेशी=कुटिल केश या अलकवाली। घुँघराले बालोंवाली।

अराल[2]—सज्ञा पुं० १ सर्ज रस। राल। २ मत्त हाथी। ३. टेढा या टूटा हाथ (को०)। ४. एक समुद्र [को०]।

अरावला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्र नारी। सतीत्वहीन नारी २ अवृष्टा स्त्री० [को०]।

अरावल—सज्ञा पुं० [हिं] दे० 'हरावल'।

अरावली—सज्ञा पु० राजस्थान का एक पहाड।

अराष्ट्र—सज्ञा पुं० [स०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०]।

अरिंज—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बबूल। सफेद बबूल।

विशेष—यह पजाब, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा बरमा मे पाया जाता है। इसका छिलका रेशेदार होता है और इसमे मछली पकडने का जाल बनाया जाता है। इसमे एक प्रकार की गोद भी निकलती है जो पानी मे घोली जाने पर पीला रग पैदा करती है। यह अमृतमरी गोद कहलाती है। इसे बबूल की गोद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं। पेड की छाल को पीसकर गरीब लोग अकाल मे बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं। इसमे एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य मे भी मिलाई जाती है। इसीलिये अरिंज को "शराब का कीकर" भी कहते है।

अरिंद—सज्ञा पुं० [स० अरि+इन्द्र] शत्रु। उ०—तहँ मारि मारि अरिंद बरछी सों गिराए गगन तें।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०।

अरिंदम—वि० [स० अरिन्दम] १. शत्रुनाशक। बैरी का दमन करनेवाला। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २. विजयी।

अरि—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। बैरी। २ चक्र। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ४ छह की सख्या। ५ ज्योतिष मे लग्न से छठा स्थान। ६ विट् खदिर। दुर्गंध खैर। अरिमेद। ७ स्वामी [को०]। ८ रथ का कोई हिस्सा [को०]। ९ वायु [को०]। १०. धार्मिक व्यक्ति [को०]।

अरिकर्षक—सज्ञा पुं० [स०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०]।

अरिकुल—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रुसमूह। २ शत्रु [को०]।

अरिकेलि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ शत्रुक्रीडा। २ वासनात्मक आनद [को०]।

अरिकेशी—सज्ञा पुं० [सं० अरी+केशी] केशी के शत्रु, कृष्ण।

अरिक्थभाग—वि० [स०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके। पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य। अनश।

अरिघ्न—वि० [स०] शत्रुहता [को०]।

अरिचिंता—सज्ञा स्त्री० [स० अरिचिन्ता] शत्रु के विघटन या विनाश के लिए सोचना [को०]।

अरित्र[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वल्ला जिसमे नाव खेते हैं। डाँड। २ क्षेपणी। निपातक। ३ जल की थाह लेने की डोरी। ४. लगर।

अरित्र[2]—वि० [स०] १ शत्रु से रक्षा करनेवाला। २ आगे बढानेवाला [को०]।

यौ०—अरित्रगाध=छिछला।

अरिदमन[1]—वि० [स० अरि+दमन=नाश] शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिदमन[2]—सज्ञा पु० शत्रुघ्न। लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम। रिपुदमन।

अरिनिपात—सज्ञा पु० [सं०] दुश्मन का हमला [को०]।

अरिनुत—वि० [स०] शत्रु भी जिसकी प्रशसा करें [को०]।

अरिप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध मे प्रवृत्त राजा के चारो ओर के शत्रुओं की स्थिति।

अरिभद्र—सज्ञा पु० [स०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०]।

अरिमर्द—सज्ञा पुं० [सं०] काममर्द नाम का पौधा [को०]।

अरिमर्दन[1]—वि० [स०] शत्रुओं का नाश करनेवाला। शत्रुसूदन।

अरिमर्दन[2]—सज्ञा पु० १ केकयनरेश राजा भानुप्रताप का भाई जो शापवश कुभकर्ण हुआ था। २. अक्रूर का भाई।

अरिमेद—सज्ञा पु० [स०] १ विट् खदिर। २ एक बबूलदार कीडा। गधिया। ३ एक वृक्ष।

अरिमेदक—सज्ञा पु० [स०] मल मे उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीडा [को०]।

अरियाल—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिडिया जो प्राय पानी के किनारे रहती है। इसे ताक या लेदी भी कहते हैं।

अरियाना—क्रि० स० [स० अरे] अरे कहकर बुलाना। तिरस्कार करना। उ०—अलकलौ धरें तर्जे, बरत अनेक भरें, जनपद गहत लहत मत्र मत हैं। ऐसे बल तपै परलोकन तें अरियाते कोमनि अचल तैते केवरो लगत है।—गुमान (शब्द०)।

अरिल्ल—सज्ञा पुं० [स० अरिल्ला] सोलह मात्राओं का एक छद जिसके अत मे दो लघु अथवा एक यगण होता है, परतु इसमे जगण का निषेध है। भिखारीदास ने इसके अत मे भगण माना है। जैसे,—ले हरिनाम मुकुद मुरारी। नारायण भगवत खरारी (शब्द०)।

अरिवन—सज्ञा पु० [देश०] रस्सी का फदा जिसमे फँसाकर घडा या गगरा कुएँ मे ढीलते हैं। उबका। उबक। छोर। फँसरी।

अरिष—सज्ञा पु० [स०] १ लगातार बरसत। २ गुदा का एक रोग [को०]।

अरिष्ट[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ क्लेश। पीडा। २ आपत्ति। विपत्ति। ३ दुर्भाग्य। अमगल। ४ अपशकुन। अशुभ लक्षण ५ दुष्ट ग्रहो का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है। मरणकारी योग। ६. लहसुन। ७ नीम। निब। ८ लका के पास एक पर्वत। ९ कौवा। काक। १० कक। गिद्ध। ११ रीठे का पेड। फेनिल। निर्मली। १२ वह अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे मे मडाकर बनाया जाय। एक प्रकार का मद्य जो धूप मे ओषधियों का खमीर उठाकर बनता है। १३. काढा। १४. एक ऋषि। १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचंद्र ने मारा था। वृषभासुर। १६ अनिष्टसूचक उत्पात, जैसे भूकंप आदि। १७ बत्ति का पुत्र, एक दैत्य। १८ मट्ठा। तक्र। १९ सौरी। सूतिकागृह। २० कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का असहन व्यूह जिसमें रथ बीच में, हाथी कक्ष में और घोड़े पृष्ठ भाग में रहते थे।

अरिष्ट[2]—वि० १ दृढ़। अविनाशी। २ शुभ। ३. बुरा। अशुभ।

अरिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १ रीठा। निर्मली। २ रीठे का वृक्ष।

अरिष्टगृह—संज्ञा पु० [सं०] सौरगृह [को०]।

अरिष्टनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम। २ हरिवंश के अनुसार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न हुआ था। ३ राजा सगर के श्वशुर का नाम। ४ सोलहवें प्रजापति। ५ जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर। ६ हरिवंश के अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।

अरिष्टमथन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शिव [को०]।

अरिष्टसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

अरिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष प्रजापति की पुत्री जिससे गंधर्व उत्पन्न हुए थे। २ कुटकी। ३ पट्टी [को०]।

अरिष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रीठी। २ कुटकी।

अरिहंत—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अर्हंत'। उ०—कै पूजै श्रीकंत नू, कै पूजै अरिहंत।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अरिहन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न।

अरिहन[2]—संज्ञा पु० [सं० अर्हत्] वीतराग। जिन।

अरिहन[3]—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] रेहन। अरहन।

अरिहा[1]वि० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिहा[2]—संज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) बोरों सबै रघुवंश कुठार की धार में वारन वाजि सरत्थहि। बान की वायु उड़ाय कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहि।—राम च०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जबही अरिहा रन। भाजि गए तबही भट के गन।—राम च०, पृ० १७५।

अरी—अव्य० [सं० अयि] संबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग स्त्रियों के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि। मग लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अरीझना—क्रि० अ० [हिं०] बझ जाना। रीझना। दे० 'अरुझना'।

अरीठा—संज्ञा पु० [सं० अरिष्टक, प्रा० अरिट्ठा] रीठा।

अरुतुद[1]—वि० [सं अरुन्तुद] १ मर्मस्थान को तोड़नेवाला। मर्मस्पृक्। उ०—अरुतुद वाक्य कहतेहो अहो तुम।—साकेत, पृ० ६२।२ दुःखदायी। ३ कठोर बात कहकर चित्त को दुखानेवाले परुषभाषी।

यौ०—अरुतुदवचन।

अरुतुद[2]—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

अरुंधती—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुन्धती] १. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २ दक्ष की एक कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी। ३ एक बहुत छोटा तारा जो सप्तर्षि मंडलस्थ वशिष्ठ के पास उगता है। विवाह में इसे वधू को दिखाने का विधान है। सुश्रुत के अनुसार जिसकी मृत्यु समीप होती है वह इस तारे को देख नहीं सकता। ४. तंत्र के अनुसार जिह्वा।

यौ०—अरुंधतीजानि, अरुंधतीनाथ, अरुंधतीपति = वशिष्ठ ऋषि। अरुंधती दर्शन न्याय = स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन। वि० दे० 'न्याय'।

अरुंषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार या कृमि के प्रकोप से माथे पर अनेक मुँहासे फोड़े हो जाते हैं।

अरु[1]—संज्ञा पुं० [सं अरस्] १ मर्म। २ रक्त चंदन। ३. मंदार वृक्ष। ४ मर्मस्थान। ५ घाव। जख्म। ६ नेत्र। आँख [को०]।

अरु[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'और'। उ०—सनमुख आवत दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रवीना।—मानस, १।३०३।

अरुआ—संज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली वृक्ष।

विशेष—यह बंगाल, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में प्रायः जंगली दशा में पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेश में लगाया जाता है। इसमें चैत वैशाख में पीले फूल लगते हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ औषधि के रूप में काम में आती हैं तथा इनकी लकड़ी से दोने और तश्तरी की दुकान या इसी प्रकार की अन्य हलकी चीजें बनाई जाती हैं।

अरुई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरबी'। उ०—अरुई इमली दई घटाई जैंत पटरन जान न जाई।—सूर०, १०।१२१३।

अरुकटि—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक नगर जो कर्नाटक की राजधानी है। आरकाट। आरराट।

अरुग्ण—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित।

अरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुचि का अभाव। अनिच्छा। २ अग्निमांद्य रोग जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती। ३ घृणा। नफरत। ४ संतोष देनेवाली व्याख्या का अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [सं०] जिससे अरुचि हो जाय। जो रुचिकर न हो। जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [सं०] १ अनुज्ज्वल। जो अच्छा न लगे। २ अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [सं] रोग से मुक्त। नीरोग [को०]।

अरुज[1]—वि० [सं] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।

अरुज[2]—संज्ञा पुं० १ अमलतास। २ कनेर। ३ सिंदूर।

अरुझना—क्रि० अ० [सं अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झ] १ उलझना। फँसना। उ०—(क) पाखन हिरि फिरि परा गो फोंदू। उडि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ अटकना। ठहरना। अड़ना। उ०—दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे। करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लड़ना भिड़ना। संघर्षरत होना।

अरुझाना[1]—क्रि० स० [हिं० अरुझना का प्रे० रू०] उलझाना। फँसाना। उ०—नागरि मन लई अरुझाई। अति बिरह तनु भई व्याकुल घरन नेकु सहाई।—सूर०, १०।६७८।

अरुझाना[2]—क्रि० अ० लिपटना। उलझना। उ०—विटप विसाल लता अरुझानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन हरि चितवनि अरुझानो।—सूर०, १०।१६६७।

अरुठ(पु)—वि० [सं० रुष्ट]। नाराज।

अरुठना(पु)—क्रि० अ० [सं० रुष्ट] रुष्ट होना। क्रुद्ध होना। उ०—तिन पर तुट्टै बीज जौं, जिन पर राज अरुठ्ठ। राजकाज समुह मिरन, दई न कवहू पुट्ठ।—पृ० रा०, ५।५।

अरुण[1]—वि० पु० [सं०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल। रक्त।

अरुण[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य। २ सूर्य का सारथी। ३ गरुड। ४ ललाई जो संध्या के समय पश्चिम मे दिखलाई पडती है। ५ एक दानव का नाम। ६ एक प्रकार का कुष्ठ रोग। ७ पुन्नाग वृक्ष। ८ गहरा लाल रंग। ९ कुमकुम। १० सिंदूर। ११ एक देश। १२ बारह सूर्यों मे से एक सूर्य। माघ महीने का सूर्य। १३ एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे १४ एक जहरीला क्षुद्र जंतु [को०]। १५ एक झींगा जो हिमालय के इस पार है। १६ सोना। स्वर्ण [को०]। १७. एक प्रकार का पुच्छल तारा।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की सी होती हैं। ये कृष्ण अरुण वर्ण के होते हैं। इनका फल अनिष्ट है। ये संख्या मे ७७ हैं और वायुपुत्र भी कहलाते हैं।

यौ०—अरुणलोचन। अरुणात्मज। अरुणोदय। अरुणोपल।

अरुणकर—संज्ञा पुं० [स०] सूर्य [को०]।

अरुणकिरण—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणचूड—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा। अरुणशिखा।

अरुणज्योति—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०]।

अरुणनेत्र—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अरुणलोचन' [को०]।

अरुणप्रिय—संज्ञा पु० [स०] सूर्य [को०]।

अरुणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्सरा। २ छाया और संज्ञा, सूर्य की स्त्रियाँ।

अरुणमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लार राग का एक भेद। इसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

अरुणलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी आँखे लाल हो। कबूतर [को०]।

अरुणशिखा—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

अरुणसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. कोदो। ३. अतिविषा। ४. एक नदी का नाम। ५. मुंडी। ६ निसोथ। त्रिवृता। ७. इंद्रायन। ८ घुँघची। ९. लाल रंग की गाय। १०. उषा। ११. काला अनंतमूल।

अरुणाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] ललाई। रक्तता। लालिमा।

अरुणाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

अरुणाचल—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूरब दिशा।

अरुणात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटायु। २. यम ३. शनि। ४. सुग्रीव। ५ कर्ण [को०]।

अरुणात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना। २. ताप्ती [को०]।

अरुणानुज—संज्ञा पु० [सं०] अरुण के लघु भ्राता। गरुड [को०]।

अरुणाभ—वि० [सं०] लालिमायुक्त। रक्ताभ [को०]।

अरुणार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरुनार'।

अरुणार्चि—संज्ञा पु० [सं० अरुणार्चिस] सूर्य [को०]।

अरुणावरज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणानुज'।

अरुणाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] मरुत [को०]।

अरुणित—वि० [सं०] लाल किया हुआ।

अरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लालिमा। सुर्खी।

अरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरुण वर्ण की गाय। २ उषा [को०]।

अरुणोद[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ जैन मनानुसार एक समुद्र जो पृथ्वी को आवेष्टित किए है। २ लाल समुद्र। अरुणोदधि। ३ एक झील [को०]।

अरुणोद[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—पहिलौ मुखराग प्रगट भ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोद अवर।—वेलि०, पृ० १६।

अरुणोदधि—संज्ञा पुं० [स०] एक सागर जो मिश्र और अरब के मध्य मे है। पहले यह स्वेज स्थलडमरूमध्य के द्वारा रूम के समुद्र से पृथक् था पर अब डमरू भग कर देने से यह रूम के समुद्र से मिल गया है। इसमिस्तान को भारत मे जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं। लाल सागर।

अरुणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जब पूर्व दिशा मे निकलते हुए सूर्य की लाली दिखाई पडती है। यह काल सूर्योदय से दो मुहूर्त या चार दंड पहले होता है। उषाकाल। ब्राह्ममुहूर्त। तडका। भोर। उ०—देखा तो सुंदर प्राची मे अरुणोदय का रसरंग हुआ।—कामायनी, पृ० ७७।

अरुणोदयसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस दिन अरुणोदय मे स्नान करना पुण्य माना गया है।

अरुणोपल—संज्ञा पु० [सं०] पद्मराग मणि। लाल। उ०—जिमि अरुणोपल निकर निहारी।—मानस।

अरुन(पु)—वि०, संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरुण'। उ०—अरुन अधरनि दसन झाई कहौ उपमा थोरि।—सूर० १०।२२५।

अरुनई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'।

अरुनचूड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणचूड'। उ०—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड बर बोलन लागे।—मानस, १।११७।

अरुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—बंदौं मानहु चरनकमलनि अरुनता तजि तरनि।—तुलसी ग्र०, पृ० २८२।

अरुनशिखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणशिखा'। उ०—उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुनशिखा धुनि कान।—मानस, १।११५।

अरुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—अरुन चरन अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३२५।

अरुनाना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० अरुण हिं० 'अरुन' से नाम०] लाल होना। उ०—अँग अँग भूषन और मे मांगे कहूँ पाए।

देखि थकित रहि रूप कौं लोचन अरुनाए ।—सूर०, १० । २५२२ ।

अरुनाना(पु)—क्रि० स० लाल करना । उ०—अल लेन चाहे प्राण अति रिसाइ दृग अरुनाइ कै ।—गोपाल (शब्द०) ।

अरुनारा[2](पु)—वि० [हिं० अरुन+आरा (प्रत्य०)] [वि०,स्त्री०अरुनारी] लाल रग का । लाल । उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिल्क को बरनै पारे ।—मानस, १।१९९ ।

अरुनोदय(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।—मानस, १।२३८ ।

अरुनोपल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोपल' ।

अरुरना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस=घाव] दुखित होना । पीडित होना । उ०—लै भुजवल्लरी पल्लव हाथन बल्लव मल्लव मोद विहारै । प्यारी के अगनि रन चढै त्यो अनग कला करगी नहि हारै । ओठन दत उरोज नखक्षत हू सहि जीतै तिया पिय हारै । उरू मरोरनि ज्यो मरुरै उरही अरुरै अरुरैनि निहारे ।—देव (शब्द०) ।

अरुरना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० मरोड] मुडना । सिकुडना । सकुचित होना । उ०—नीकौ दीठ तूख भी पतूख सी अरुरि अग ऊख भी मसरि मुख लागति महूख सी ।—देव (शब्द०) ।

अरुराना(पु)—क्रि० स० [हिं० अरुरना का स० रू०] १ मरोडना । २ सिकोडना ।

अरुलित(पु)†—वि० [सं० अरुणित मं० अरुलित] ललाई युक्त । अरुणिमा लिए हुए । उ०—पूर्व दीण अरुलित भेन ।—वर्ण०, पृ० १५ ।

अरुवा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अरु] १ एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते के सदृश होते हैं ।

विशेष—इसकी जड मे कद पडता है और लता की गाठो से भी एक सूत निकलता है जो चार पाँच अगुल बढकर मोटा होने लगता है और कद बन जाता है । इसके कद की तरकारी बनती है । यह खाने पर कनकनाहट पैदा करता है । बरई लोग इसे पान के भीट पर बोते हैं ।

अरुवा[2]—सज्ञा पुं० [हिं० रुख्वा] उल्लू पक्षी ।

अरुष[1]—वि० [सं०] १ अक्रोधी । २ चमकदार । ३ बिना हानि का । अक्षत । ४ चक्कर काटनेवाला, जैसे घोडा ।

अरुष[2]—सज्ञा पुं० १ अग्नि का लाल रग का घोडा । २ सूर्य । ३ ज्वाला । ४ रक्त वर्ण के तूफानी बादल [को०] ।

अरुषी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उषा । २ ज्वाला । ३. ऋचीक की माता जो भृगु की पत्नी थी [को०] ।

अरुष्क—सज्ञा पु० [सं०] १ भिलावाँ । २. अडूसा ।

अरुष्कर[1]—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला । क्षतकारक [को०] ।

अरुष्कर[2]—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुष्क' [को०] ।

अरुहा—सज्ञा पु० [सं०] भूम्यामलकी । भुई आँवला ।

अरू(पु)—सर्वो० [हिं०] दे० 'अरु' । उ०—और अब दोनो गई तपस्या तो खडित भई, अरू, उर्वसी हू जान रही ।—हम्मीर रा०, पृ० २९ ।

अरूक्ष—वि० [सं०] मृदायम । सुकुमार । नाजुक [को०] ।

अरूझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरझना' । उ०—(क) कहूँ लरत गजराज बाघ हरना कहुँ जूझत । मल्लयुद्ध कहुँ होत मेष, वृष, महिष अरझत ।—सुमान (शब्द०) ।

अरूट(पु)—वि० [सं० आ+रुठ, प्रा० अरुट्ठ हिं० अरूट] अत्यत क्रुद्ध । उ०—भए कडकान करान अरूट । नगै जनु ओप सुरज्जन कूट । पृ० रा०, ६।१५७ ।

अरूढ[1](पु)—वि० [सं० आरूढ] दे० 'आरूढ' ।

अरूढ[2]—वि० [सं० अरुढ] जो रूढ या प्रचलित न हो । अप्रचलित [को०] ।

अरूप[1]—वि० [सं०] रूपरहित । निराकार । उ०—सोइ अमर निरगुन अरूप मन दीन ।—कबीर (शब्द०) । (ख) अगुन अरूप अलख अज जोई ।—तुलसी (शब्द०) । बदमाश । बेहया [को०] । अभद्र । बेमेल [को०] ।

अरूप[2]—सज्ञा पुं० १ बदसूरत वस्तु । २ साख्य मे प्रधान और वेदात मे ब्रह्म [को०] ।

अरूपक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियो की एक भूमि या अवस्था । निर्बीज समाधि ।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) आकाशायतन (२) विज्ञानायतन, (३) अकिंचनायतन, और (४) नैवसज्ञा असज्ञायतन ।

अरूपक[2]—वि० १ अलकारविहीन । अभिप्रायहीन । २ आकृति या आकार से विहीन [को०] ।

अरूपहार्य—वि० [सं०] जो सौदर्य द्वारा आकर्षित या पराजित न हो सके ।

अरूपावचर—सज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्ति का वह भेद जिससे अरूप लोक का ज्ञान प्राप्त होता है ।

विशेष—यह बारह प्रकार की होती है—चार प्रकार की कुशल वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की क्रिया वृत्ति ।

अरूपी—वि० [सं० अरूपिन्] बिना रूपरग का । रूप या आकार विहीन [को०] ।

अरूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस्=घाव] दुखित होना । पीडित होना ।

अरूलना(पु)—क्रि० अ० [अरुस=क्षत, घाव] छिदना । छिदना । चुभना । उ०—छत आजुको देखि कहोगी कहा छतिया नित ऐसे अरूलति है ।—देव (शब्द०) ।

अरूष—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. एक प्रकार का सोम [को०] ।

अरूसा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडूसा' ।

अरे—अव्य० [सं०] १ एक सबोधनार्थक अव्यय । ए । ओ । जैसे—अरे मिठाईवाले ! इधर आ । २ एक आश्चर्यसूचक अव्यय । जैसे—अरे ! देखते ही देखते इसे क्या हो गया ।

अरेणु[1]—वि० [सं०] १ धूलविहीन । धूलरहित । २ अलकारिक [को०] ।

अरेणु[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धूल न हो । अधूलि । २ देवी देवता [को०] ।

अरेप—वि० [सं० अपरेस] १. पाप या कलकरहित । २ शुद्ध । स्वच्छ । कातिमान् [को०] ।

अरेरना Ⓤ—क्रि० अ० [सं० ऋ=जाना] रगडना। उ०—मौहैं अरा लैं अरेरति है। उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रोधोद्गार तथा निम्नता सूचक सबोधन। २. या दु खसूचक उद्गार। जैसे—अरेरे! उनका निधन हो गया।

अरेस Ⓤ†—[हिं०] दे० 'अरेह'। उ०—पिड जुडवा भड पाँच सौ, ग्हिया अडिग अरेस।—रा० रू०, पृ० ३१।

अरेह Ⓤ—वि [सं० अरेख=दाग रहित] हार न माननेवाला। उ०—याद नाय लख धीर अरेहा। अै मछरीक ढाल दन एहा।—रा० रू०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हिं० अरना] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिनै जो वरजै निडर छै न अररानो हौ परत डरत नहि रोकत रहत मग वनि अरैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ३६५।

अरैली—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाडी जिसके डठो आदि से नेपाली कागज बनता है। वि० दे० 'कचुती'।

अरोक[1]—वि० [स० अ+हिं० रोक] न रुकनेवाला। अबाध्य। उ०—तीन लोक माहि देव मुनि थोक माहि जाय विकम अरोक मोक ओक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक[2]—वि० [स०] १ प्रभाहीन। विना कातिवाला। २ जिसमे छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यौ०—अरोकदत, अरोकदत्=(१) जिसके दाँत काले या बदरग हो। २) घने या निविड दाँतोवाला।

अरोग—वि० [स०] रोगरहित। नीरोग।

अरोगना Ⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरोगना'। उ०—नद भवन मैं कान्ह अरोगें। जसुदा ल्यावै पटरण भोगें।—सूर०, १०। ३९६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चगा।

अरोच Ⓤ—सज्ञा पु० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पच वान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्राण को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक[1]—सज्ञा पु० [सं०] एक रोग जिसमे अन्न आदि का स्वाद मुँह मे नही मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और घिनौनी चीजें खाने और घिनौना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सन्निपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २ अरुचि।

अरोचक[2]—वि० जो रुचे नही। अरुचिकर। उ०—सुनि अघाई वतलाइ उत सुधासने तिय वैन। हठि कत लाल बोलाइअत मोहि अरोचक ऐन—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १ मदाग्नि से पीडित। २ सुरुचिसपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड—वि० [अरुढ] शूर वीर। वीर।—डिं०।

अरोडा—सज्ञा पुं० [सं०आरूढ] [स्त्री० अरोडी अरोडिन] पजाब की एक जाति जो अपने को खत्रियो के अतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकी न जा सके। अबाध गति वाला [को०]।

अरोप—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोप'। उ०—नद्द वाक्यजुग अरथ को करिए एक अरोप।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अरोर Ⓤ—वि० [हिं०] रोर रहित। शात [को०]।

अरोष—वि [सं०] रोषरहित। क्रोधविहीन। उ०—प्रभु मरे आदरु करै धरै अरोष विधान।—भिखारी ग्र०, भा १, पृ० १०।

अरोहण—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।—रिपि कल्यप अरोहण कमठ शृगार रस।—रघु० रू, पृ० ५३।

अरोहन Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।

अरोहना Ⓤ—क्रि० अ० [स० आरोहण] चढना। सवार होना।

अरोही[1] Ⓤ—वि० [सं० आरोही] सवार होनेवाला।

अरोही[2] Ⓤ—सज्ञा पुं० आरोही। सवार।

अरौसपरौस Ⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अडोस पडोस'। उ०—गग नहावन को नर नारि, चले है अरौस परौस के सोऊ।—पोद्दार० अभि०, ग्र० पृ० ५७४।

अर्क[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ सूर्य। २. इद्र। ३. नौवा। ४ मकदौन। ५ विष्णु। ६ पडित। ७ आक। मदार। उ०—अर्क जवास पात विनु भयेउ।—मानस, ४ १५। ८ ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवारा। १०, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११ बारह की सख्या। १२ प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४ एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७ सूर्यकातमणि [को०]।

अर्क[2]—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क[3]—सज्ञा पुं० [अ० अरक] किसी चीज का निचोडा हुआ रस। रॉग। वि० दे० 'अरक'।

यौ०—अर्क बादियान=सौफ का अर्क।

अर्ककात—सज्ञा पुं० [सं० अर्ककान्त] ११ मजिष्ठो का भवन [को०]।

अर्ककाता—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्ककान्ता] हुरहुर का क्षुप [को०]।

अर्कक्षेत्र—सज्ञा पुं० [स०] १ सिंह राशि। २ उडीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—सज्ञा पुं० [अ० अरक+फा० गीर] वह जो इत्र चुआने का काम करता है।

अर्कग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचदन—सज्ञा पुं० [सं० अर्कचन्दन] रक्त चदन। लाल चदन।

अर्कज—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य के पुत्र—१. यम। १ शनि। ३। अश्विनीकुमार। ४ सुग्रीव। ५ कर्ण।

अर्कजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या—१ यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—सज्ञा पु० [स०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—सज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनदन—सज्ञा पुं० [सं० अर्कनन्दन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कनना—सज्ञा पुं० [अ० अरकनाना] सिरके के साथ भभके मे उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

अर्कपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुनंदा। २ एक लता जो विष की ओषधि है। अर्कमूल।

अर्कपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदार का वृक्ष। २ मदार का पत्ता।

अर्कपुष्पी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

अर्कप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। जपा। अडहुल। गुडहर।

अर्कबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौतम बुद्ध। २ पद्म।

अर्कभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रांत हो। जिस नक्षत्र मे सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३ उत्तरा फाल्गुनी।

अर्कभक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पौधा। हडहुड।

अर्कमूल—संज्ञा पुं० [सं०] इसरमूल लता। रुहिमूल। अहिगंध।

विशेष—इसकी जड साँप के काटने मे दी जाती है। बिच्छू के डंक मारने मे भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्त्रियो के मासिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिर्च के साथ हैजा अतीसार आदि पेट के रोगो मे पिलाई जाती है। पत्ते का रस कुछ मादक होता है। छिलका पेट की बीमारियो मे दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० बूंद तक है।

अर्कवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

अर्कवल्लभ—संज्ञा पुं०[सं०]१ बधुजीव। दुपहरिया। २ कमल[को०]।

अर्कवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।

अर्कविवाह—संज्ञा पुं०[सं०]मदार के वृक्ष से किया जानेवाला विवाह।

विशेष—तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नही माना गया है। अत मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।

अर्कवेध—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

अर्कव्रत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पडता है। २ राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनसे कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणो से जल खीचता है और चार महीने उसे प्रजा की वृद्धि के लिये बरसात है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उसे लगाना।

अर्कसुत—संज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०—अर्कसुत की त्रास माही कृष्न रामहि काम।—व्रजनिधि ग्र०, पृ० १६०।

अर्कसोदर—संज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।

अर्काश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का छोट नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २ सूर्यकातमणि।

अर्कोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकातमणि। लाल पद्मराग।

अर्गजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरगजा'।

अर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] वह लकडी जिसे किवाड बद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड बाहर से न खुले। अरगल। अगरी। ब्योडा। २ किवाड। ३ अवरोध। ४ कल्लोल। लहर। ५, वे रगबिरगे बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के समय पूर्व या पश्चिम दिशा मे दिखाई पडते हैं और जिनमे होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६ मास। ७ एक नरक [को०]।

अर्गला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरगल। अगरी। २. ब्योडा। ३. बिल्ली। किल्ली। सिटकिनी। ४ जजीर जिसमे ताली बाँधा जाता है। सिकड। ५ एक स्तोत्र जिसका दुर्गासप्तशती आदि मे पाठ करते हैं। मत्स्य भक्त। ६ अवरोध। ७ बाधक। अवरोधक। रुकावट डालनेवाला।

अर्गलिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]अर्गला का छोटा रूप। छोटी अगरी [को०]।

अर्गलित—वि०[सं०] सिटकिनी या अर्गला से बद किया हुआ [को०]।

अर्गली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अर्गला' [को०]।

अर्गली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेटिंग की एक जाति जो सिंध, शाम आदि देशो मे होती है।

अर्गवनी—वि० [हिं०] दे० 'अर्गवानी'। उ०—उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियाँ निश्चल, शात और गभीर खडी थी।—निर्झर०, पृ० ६।

अर्गवानी—वि०[फा०]अर्गवान नामक फूल के रंग का। सुर्ख [को०]।

अर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १ पोटगोबर मे मलकर। जल दूध कुशाग्र, दही, घृत, तडुल और जल का मिश्रण देवता को अर्पण करना। २ अर्घ देने का पदार्थ। ३ जलदान। सामने जल गिराना। ४ हाथ धोने के लिये जो जल दिया जाय। ५ हाथ धोने के लिये जल देना। ६. मूल्य। दाम। ७ वह मोती जो एक धरण तौल मे २५ चढे। ८ भेंट। ९ जल मे समानार्थ मीलना। १० मधु। शहद। ११ पाठा। अतीस।

क्रि० प्र०—देना। करना।

यौ०—अर्घपात्र=हाथ पैर धोने के निमित्त दिया जानेवाला जल।

अर्घट—संज्ञा पुं० [संज्ञा] अन्न। राज।

अर्घपतन—संज्ञा पुं० [सं०] भाव का गिरना। माल की कीमत बाजार मे कम होना।

अर्घपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाँद का एक बर्तन जो शख के आकार का होता है और जिसमे सूर्य आदि देवताओ को अर्घ दिया जाता है या पितरो का तर्पण किया जाता है। अर्घा।

अर्घबलाबल—संज्ञा पुं० [सं०] १ उचित मूल्य। २ सस्ता या महँगा दाम। कीमतो का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर—संज्ञा पुं० [सं० अर्घवर्णान्तर] अच्छे माल मे घटिया माल मिलाकर अच्छे माल के दाम पर बेंचना।

विशेष—ऐसा करनेवाले को चद्रगुप्त के समय मे २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढाना।

विशेष—कौटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढना। बाजार मे किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घसंस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओ का मूल्य निश्चित करना। मूल्यनियत्रण [को०]।

अर्घा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १ ताँबे या अन्य धातु का बना हुआ थूहर के पत्ते या शख के आकार का एक पात्र जिसमे अर्घ देते हैं। पितरो का तर्पण भी इससे किया जाता है। २ जलधरी।

अर्घा[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] २० मोतियो का लच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय मे एक अर्घा १७० कार्षापण मे बिकता था।

अर्घापचय—सज्ञा पुं० [सं०] मूल्य गिरना [को०]।

अर्घीश—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्घेश्वर—सज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

अर्घ्य[1]—वि० [सं०] १ पूजनीय। २ बहुमूल्य। ३ पूजा मे देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४ भेंट देने योग्य।

अर्घ्य[2]—सज्ञा पुं० [सं०] जिस वन मे जरत्कारु मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [सं०] पूजा करनेवाला। पूजक।

अर्चन[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ पूजा। पूजन। २ आदर। सत्कार।

अर्चन[2]—सज्ञा पुं० [देश०] घुंडी जिसपर दूर दूर कलावत्तू लपेटा हो।

अर्चना[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। पूजन।

अर्चना[2]Ⓤ—क्रि स० [हिं०] दे० 'अरचना'।

अर्चनीय—वि० [सं०] १ पूजनीय। पूजा करने योग्य। २ आदरणीय।

अर्चमान—वि० [सं०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—राम च०, पृ० ३।

अर्चा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ प्रतिमा।

अर्चि—सज्ञा स्त्री० [स० अर्चिस्] १ अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियो से वृक्षो की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ० । २ दीप्ति। तेज। ३ किरण।

अर्चित[1]—वि० [सं०] १ पूजित। २ आदृत। आदरप्राप्त।

अर्चित[2]—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अर्चिती—वि० [स० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।

अर्चिमान—वि० [सं०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।

अर्चिमाल्य—सज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार एक बदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—सज्ञा पुं० [स०] देवयान। उत्तर मार्ग।

अर्चिष्मती—सज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपुरी। अग्निलोक।

अर्चिष्मान[1]—सज्ञा पुं० [स० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ देवताओ का एक भेद ४ वाल्मीकि के अनुसार एक बदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान[2]—वि० दीप्त। प्रकाशमान।

अर्ज—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १ विनती। विनय।

क्रि० प्र०—करना = प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना।

२ चौड़ाई। आयत।

अर्जदरयाल—सज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा रुपया भुजाने मे दाखिल किया जाता है। चलान।

अर्जक[1]—सज्ञा पुं० [स०] बनतुलसी। बबई।

अर्जक[2]—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

अर्जदाश्त—सज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।

अर्जन—सज्ञापुं० [स०] १ उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २ सग्रह करना। सग्रह।

क्रि० प्र०—करना।

अर्जनीय—वि० [स०] १ सग्रह करने योग्य। २ ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमाⓊ—सज्ञा पुं० [स० अर्यमा] दे० 'अर्यमा'।

अर्जस्तⓊ—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] दे० 'अर्जदाश्त'। उ०—पग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ९७।

अर्जित—वि० [स०] १ सग्रह किया हुआ। सग्रहीत। २ प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

अर्जीदावा—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र जो अदालत दीवानी या माल मे किसी दादरसी के लिए दिया जाय।

अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—सज्ञा पुं० [फा० अर्जीनालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।

अर्जीमरंमत—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीमरम्मत] वह आवेदनपत्र जो किसी पूर्व आवेदनपत्र मे छूटी हुई बातो को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियो के किनारे होता है।

विशेष—यह बरमा और लका मे भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीडो को खिलाए जाते हैं। छाल, चमडा सिझाने, रग बनाने तथा दवा के काम मे आती है। इससे एक स्वच्छ गोद निकलती है जो दवा के काम मे आती है। लकडी से खेती के औजार तथा नाव और गाडी आदि बनती है। इसको जलाने से राख मे चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवभल्ल। शबर। ककुभ। काहू।

२ पाँच पाडवो मे से मँझले का नाम। ये बडे वीर और धनुर्विद्या मे निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। बृहन्नल। धनजय। पार्थ। कपिध्वज। सव्यसाची। गाडीवधन्वा। गाडीवी। वीभत्सु। पाडुनदन। गुडाकेश। मध्यम पाडव। विजय। राधासेदी ऐद्रि।

२ हैहयवशी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४ सफेद कनेर। ५ मोर। ६ आँख का एक रोग जिसमे आँख मे सफेद छीटे पड जाते हैं। फूली। ७ एकलौता बेटा। ८ अर्जुन (वैदिक)। ९. इद्र [को०]। १० चाँदी [को०]। ११ सोना [को०]। १२ दूब [को०]। १३ सफेद रग [को०]।

अर्जुन[2]—वि० १ उज्वल। सफेद। २ शुभ्र। स्वच्छ।

अर्जुनक—वि० [स०] १ अर्जुन सबधी। २. अर्जुन की पूजा करनेवाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [सं०] सफेद। सफेद रंगवाला [को०]।
अर्जुनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ध्वजवाला। हनूमान [को०]।
अर्जुनपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा तथा उसका फल [को०]।
अर्जुन बदर—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक पौधे का रेशा [को०]।
अर्जुनसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण [को०]।
अर्जुनायन—संज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।
अर्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाहुदा या करतोया नदी जो हिमालय से निकलकर गंगा में मिलती है। २ सफेद रंग की गाय। ३. कुटनी। ४ अनिरुद्ध की पत्नी। उषा का नाम। ५ एक गंधर्व जाति [को०]।
अर्जुनीपम—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन या टीक नामक वृक्ष [को०]।
अर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ण। अक्षर। जैसे, षडर्ण=षडक्षर। २ जल। पानी।

यौ०—दशार्ण=एक देश। दशार्णा=मालवा की एक नदी। ३ एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रमिताक्षरा का एक भेद है। ४. सागौन। शाल वृक्ष। ५ रंग [को०]। ६ शोरगुल। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह (को०)।

अर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ सूर्य। ३ इंद्र। ४ अनरिक्ष। ५ दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २. नगण और ९ रगण होते हैं। यह प्रमिताक्षरा का एक भेद है। ६ चार की संख्या। ७. रत्न। मणि। जवाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।

अर्णवज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन [को०]।
अर्णवनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।
अर्णवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णवपोत—संज्ञा पुं० [सं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।
अर्णवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० अर्णवमन्दिर] १ वरुण। २ विष्णु [को०]
अर्णवमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवज' [को०]।
अर्णवयान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवपोत' [को०]।
अर्णवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनिजार नाम का पौधा। चंद्रमा। ३ अमृत [को०]।
अर्णवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।
अर्णस—वि० [सं०] १ तरंगपूर्ण। २ फेनिल [को०]।
अर्णस्वान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्णस्वत्] सागर [को०]।
अर्णस्वान्[2]—वि० अतिशय जलवाला [को०]।
अर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
अर्णोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मुस्तक नाम का पौधा। मोथा [को०]।
अर्णोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।
अर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठी। नीली कटसरैया [को०]।
अर्तन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा [को०]।
अर्तन[2]—वि० १ निंदा करनेवाला। २ दुःखी। खिन्न [को०]।
अर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्तित] १ पीड़ा। व्यथा। २ धनुष की कोटि। धनुष के दोनों छोर।
अर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (नाटक में) बड़ी बहन [को०]।
अर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का आशय जो शब्द से प्रकट हो। शब्द की शक्ति।

विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—(क) अभिधा से वाच्यार्थ, (ख) लक्षणा से लक्ष्यार्थ और (ग) व्यंजना से व्यंग्यार्थ।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—बैठाना।

२. अभिप्राय। प्रयोजन। मतलब। जैसे—वह किस अर्थ से यहाँ आया है' (शब्द०)। ३. नाम। इष्ट। उ०—'यहाँ बैठने से तुम्हारा कुछ अर्थ न निकलेगा'। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—सधना।—साधना।

४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रयत्न करना चाहिए' (शब्द०)। ५. इंद्रियों के विषय। ये पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। ६ चतुर्वर्ग में से एक। धन। संपत्ति। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि। ८ कुंडली में लग्न से दूसरा घर। ९ लाभ [को०]। १० वस्तु। पदार्थ [को०]। ११ लाभ। प्राप्ति [को०]। १२. याचना। प्रार्थना [को०]। १३ वास्तविक स्थिति [को०]। १४. ढंग तरीका। ढब [को०]। १५ रोक। रुकावट [को०]। १६ मूल्य [को०] १७ परिणाम। नतीजा [को०]। १८ धर्म के एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २० [को०] पूर्वमीमांसा के अनुसार एक श्रेणी अपूर्व [को०]। २१ शक्ति [को०]। २२ दावा [को०]।

यौ०—अनर्थ। अन्वर्थना। समर्थ। समर्थन। सार्थक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थगौरव। अर्थकृच्छ्र। अर्थकरी। अर्थापत्ति। अर्थांतर। अर्थवान।

अर्थकर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अर्थकरी] १ जिससे धन उपार्जन किया जाय। लाभकारी, जैसे—अर्थकरी विद्या।
अर्थकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुख्य या प्रधान काम। २ फलदायक कार्य [को०]।
अर्थकाम—वि० [सं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।
अर्थकिल्बिषी—वि० [सं० अर्थकिल्बिषिन्] जो लेन देन में शुद्ध व्यवहार न रखे। बेईमान।
अर्थकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन की कमी। दरिद्रता। २ राज्य की आर्थिक तंगी। राज्यकर में व्यय का बढ़ना।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी दशा में चंद्रगुप्त के समय में राज्य जनता से संपूर्ण राज्यकर एक दम से माँग लेता था।

अर्थकोविद—वि० [सं०] अनुभवी। विशेषज्ञ [को०]।
अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर आश्रित [को०]।
अर्थगर्भ—वि० [सं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थपुष्ट [को०]।
अर्थगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष। खजाना। जहाँ रुपया पैसा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—सज्ञा पुं० [स०] किसी शब्द या वाक्य मे अर्थ की गभीरता।

अर्थघ्न—वि० [सं०] अपव्ययी। फजूलखर्च [को०]।

अर्थचर—सज्ञा पु० [स०] सरकारी नौकर।

अर्थचिंतक—सज्ञा पुं० [स० **अर्थचिन्तक**] वह मत्री जो राज्य के आयव्यय पर ध्यान रखे। अर्थसचिव। मशीरमाल।

अर्थचिंतन—सज्ञा पुं० [सं० **अर्थचिन्तन**] १. अर्थ (माने) के लिये चिंतन। २ धन के लिये सोचना [को०]।

अर्थचिंता—सज्ञा स्त्री० [स० **अर्थचिन्ता**] अर्थ या धन सबधी चिंता[को०]।

अर्थजात—वि० [स०] १ अर्थ मे भरा हुआ। २. धनी [को०]।

अर्थज्ञ—वि० [सं०] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०]।

अर्थत—अव्य [स०] १ वास्तव में। सचमुच। वस्तुत। २ अर्थ की दृष्टि से [को०]।

अर्थदड—सज्ञा पुं० [सं० **अर्थदण्ड**] वह धन जो किसी अपराध के दड मे अपराधी से लिया जाय। जुर्माना।

अर्थद[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **अर्थदा**] धन देनेवाला।

अर्थद[2]—सज्ञा पु० १. कुबेर। २ दस प्रकार के शिष्यो मे से एक। वह जो धन देकर विद्या पढे।

अर्थदर्शक—सज्ञा पुं० [स०] वह जो अर्थसबधी मुकदमो पर विचार करता है [को०]।

अर्थदूषण—सज्ञा पुं० [सं०] १ फिजूल खर्च। अपव्यय। २. अन्याय या धोखे से दूसरे की सपत्ति लेना। ३ अर्थ (माने) मे गलती पाना। ४ दूसरे की सपत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना [को०]।

अर्थदोष—सज्ञा पु० [सं०] १ अर्थसबधी दोष। २ साहित्य मे चार दोषो मे एक [को०]।

अर्थना[1] (यु)—क्रि० स० [स० **अर्थ**] माँगना। याचना करना।

अर्थना[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] याचना। निवेदन। प्रार्थना। २ अर्जी-दावा [को०]।

अर्थन्यायालय—सज्ञा पु० [स०] वह न्यायालय जहाँ अर्थसबधी मुकदमो का निर्णय होता है।

अर्थपति—सज्ञा पु० [स०] १. कुबेर। २ राजा।

अर्थपिशाच[1]—वि० [स०] जो द्रव्य का सग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे। धनलोलुप।

अर्थपिशाच[2]—सज्ञा पुं० [स०] वह जो धन का अत्यत लोभ करता है।

अर्थप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [स०] नाटको मे आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१ बीज, २ बिंदु, ३. पताका, ४ प्रकरी और ५ कार्य।

अर्थबध—सज्ञा पुं० [स० **अर्थबन्ध**] छद मे शब्द आदि का उचित प्रयोग। पद्यरचना।

अर्थबुद्धि—वि० [स०] स्वार्थपरायण [को०]।

अर्थबोध—सज्ञा पुं० [स०] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०]।

अर्थभाक्—सज्ञा पु० [स० **अर्थभाज्**] जायदाद मे हिस्सा पानेवाला। हकदार [को०]।

अर्थभृत—सज्ञा पु०[स०] अधिक तनख्वाह मे नकद रुपया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति।

अर्थभ्रंश—सज्ञा पु०[स०] १ धन सपत्ति का विनाश। २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०]।

अर्थमत्री—सज्ञा पु०[स० **अर्थमन्त्रिण**]अर्थ के मामलो से सबद्ध मत्री।

अर्थयुक्त—वि० [स०] अर्थगर्भित। अर्थपूर्ण [को०]।

अर्थयुक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] प्राप्ति। लाभ [को०]।

अर्थराशि—सज्ञा पु० [स०] प्रचुर धन [को०]।

अर्थलाभ—सज्ञा पुं० [स०] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०]।

अर्थलोभ—सज्ञा पुं० [स०] धन की तृष्णा या लोभ [को०]।

अर्थवाद—सज्ञा पु०[स०] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यो मे से एक। वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय। यह चार प्रकार का है—स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प।

अर्थवादी—वि० [स० **अर्थवादिन्**] अर्थवाद को माननेवाला [को०]।

अर्थवान्—वि०[स०]१ अर्थ (मतलब) वाला। एक विशेष अर्थरखनेवाला। २ धनवान। पैसेवाला [को०]।

अर्थविकरण—सज्ञा पुं० [स०] तात्पर्य परिवर्तन [को०]।

अर्थविज्ञान—सज्ञापु० [स०] १ दे० 'अर्थशास्त्र'। २ अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओ मे से एक। धी गुण। [को०]।

अर्थविद्—वि० [सं०] अर्थ का ज्ञाता। समझदार [को०]।

अर्थविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०]।

अर्थवेद—सज्ञा पुं० [स०] शिल्पशास्त्र।

अर्थव्यवस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति। फाइनांस।

अर्थशास्त्र—सज्ञा पुं०[स०] वह शास्त्र जिसमे अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो। प्राचीन काल मे इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रथ मिलता है। अर्थविज्ञान।

अर्थशौच—सज्ञा पुं० [स०] लेन देन मे शुद्ध व्यवहार। अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०]।

अर्थसगयापद—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽर्थपद की प्राप्ति जिसमे पार्ष्णिग्राह बाधक हो।

अर्थसचिव—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थमत्री'।

अर्थसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कौटिल्य के अनुसार पार्ष्णिग्राह को मित्र तथा आक्रद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना। २ अभिलषित की प्राप्ति। सफलता [को०]।

अर्थहर—वि० [स०] उत्तराधिकार मे धन पानेवाला [को०]।

अर्थहीन—वि० [स०] १ निर्धन। २ जिसमे अर्थ न हो। निरर्थक। ३ असफल [को०]।

अर्थांतर—सज्ञा पु० [स० **अर्थान्तर**] १ भिन्न अर्थ। २ भिन्न कारण। ३. नई परिस्थिति। ४ अर्थ का अतर [को०]।

अर्थांतरन्यास—सज्ञा पुं० [अर्थान्तरन्यास] १. वह काव्यालकार जिसमे सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय, जैसे–(क) 'लागत निज मति दोष ते सुदरहू विपरीत। पित्तरोगवश लखहि नर शशि सित शखहु पीत।' यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल बच्चो का नहि करहि महान। यहाँ 'हरि प्रताप गोकुल बच्चो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहि करहि महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किय गया है। इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए २ न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ से कुछ सबध न रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थागम—सज्ञा पुं० [स०] धनलाभ। आमदनी।

अर्थात्—अव्य० [स०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने मे आता है, जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशसा नही करता अर्थात् सब करते हैं।

अर्थातिक्रम—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार हाथ मे आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड देना।

अर्थानर्थसशय—सज्ञा पुं० [स०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अनर्थ की सभावना।

अर्थानर्थापद—सज्ञापुं० [स०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थानुबंध—सज्ञा पु० [स० अर्थानुबन्ध] शत्रु को नष्ट कर पार्ष्णिग्राह को अपने वश मे करना।

अर्थाधिकारी—सज्ञा पुं० [स० अर्थाधिकारिन्] कोषाधिकारी। खजाची [को०]।

अर्थाना⑤—क्रि० स० [स० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। व्यौरे के साथ समझाकर कहना। अरथाना।

अर्थानुवाद—सज्ञापुं०[स०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्वित—वि० [स०] १ अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २ महत्वपूर्ण। ३ धनवान् [को०]।

अर्थापत्ति—सज्ञा पुं० [स०] १. मीमासा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमे एक बात कहने से दूसरी बात की सिद्धि आप-से आप हो जाय। नतीजा। निगमन, जैसे–'बादलो के होने से वृष्टि होती है।' इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना बादल के वृष्टि नही होती। न्यायशास्त्र मे इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अतर्गत माना है। २. एक अर्थालकार जिसमे एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इसअलकार मे वस्तुत: यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने मे क्या सदेह है, जैसे—(क) मुख जीत्यो वा चद को कहा कमल की बात। (ख) जिसने शालिग्राम को भूना, उसे बैंगन भूनते क्या लगता है।

अर्थापत्तिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाती के चौबीस भेदो मे से एक। वादी के उत्तर मे यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो बड़ा दोष पड़ेगा, अर्थापत्ति सम कहलाता है।

अर्थाप्रतिकार—सज्ञा पुं० [स०]वह प्रबधकर्ता जो कारखाने नौकरों तथा अन्य मजुरो को, जिन्हें कुछ मास्र आदि दिया हो, धन देता है।

अर्थार्थी—वि० [स० अर्थार्थिन्] १. धन की कामनावाला। २ धन-प्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३ अपना मतलब चाहने-वाला [को०]।

अर्थालंकार—सज्ञा पुं० [स० अर्थालङ्कार] वह अलकार जिसमे अर्थ का चमत्कार दिखाया जाय। शब्दालकार के विरुद्ध अलकार।

अर्थिक—सज्ञा पुं० [स०] वे बदीगण जो राजा को शयन मे जगाते हैं। वैतालिक। स्तुतिपाठक। २ पहरुआ। प्रहरी [को०]।

अर्थित[1]—वि० [स०] माँगा हुआ। उच्छित [को०]।

अर्थित[2]—सज्ञा पुं० कामना। इच्छा [को०]।

अर्थी[1]—वि० [स० अर्थिन्] [वि०स्त्री० अर्थिनी] १ इच्छा रखनेवाला चाह रखनेवाला। २ कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्जी। याचक ३. वादी। मुद्दई। ४ सेवक। ५ धनी। ६ दे० 'अर्थी'।

अर्थी[2]—सज्ञा पुं० वह जिसने किसी पर रुपयो का दावा किया हो (स्मृति)।

अर्थ्य[1]—वि० [स०]१. माँगने योग्य। २ उचित। उपयुक्त। अच्छा। ३ धनी। ४ बुद्धिमान्। ५ सत्य। ६ अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थ्य[2]—सज्ञा पुं० लाल खडिया या चाक [को०]।

अर्दन[1]—सज्ञा पुं० [स०][स्त्री० अर्दना] १. पीडन। दलन। हिंसा। २ जाना। गमन। ३ याचना। माँगना। ४. शिव का एक नाम [को०]।

अर्दन[2]—वि० १ पीडक। हिंसक। २ बेचैन या क्षुब्ध होकर घूमने वाला [को०]।

अर्दना⑤—क्रि० स० [स० अर्दन=पीडन] पीडित करना। उ०—गहि वैष्णव को दड कर मेघ समान ननदि। मर्दि सुरन रन अदि अति जैसे कुपित कपदि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्दनि—सज्ञा पुं०[स०]१ प्रार्थना।२. माँगना। भिक्षा। ३ बीमारी रोग। ४ आग [को०]।

अर्दली—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरदली'।

अर्दित[1]—वि० [स०] १ पीडित। दलित। २ गत। ३ याचित।

अर्दित[2]—सज्ञा पुं० [स०] एक वातरोग।

विशेष—इसमे वायु के प्रकोप से मुँह और गर्दन टेढी हो जाती है, सिर हिलता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं बोला नही जाता और गर्दन तथा दाढी मे दर्द होता है।

अर्द्ध ग⑤—सज्ञा पु०[स० अर्द्धाङ्ग]१ शिव। उ०—भग होत अर्द्धग धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकपालन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २ एक रोग। दे० 'अर्द्धाग'।

अर्द्ध[1]—वि० [स०] किसी वस्तु के दो सम भागो मे से एक। आधा

अर्द्ध[2]—सज्ञा पु० १ स्थान। क्षेत्र। २ भाग। हिस्सा। ३ आधा हिस्सा। ४ वायु। हवा। ५ वृद्धि। ६ समीप। लगभग [को०]।

विशेष—यह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनों रूपों में संस्कृत है। इससे बननेवाले शब्द भी दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। उनमें और कोई अंतर नहीं होता।

अर्द्धक¹—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ानक। घुटने तक का लहँगा या पेटीकोट [को०]।

अर्द्धक²—वि० आधा [को०]।

अर्द्धकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धव्यास त्रिज्या [को०]।

अर्द्धकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अर्द्धकूट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

अर्द्धगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

अर्द्धगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह माला जिसमें चालीस लड़ियाँ हों। वाराहमिहिर के अनुसार इसमें बीस लड़ियाँ होनी चाहिए।

अर्द्धगोल—संज्ञा पुं० [सं०] गोलार्द्ध [को०]।

अर्द्धचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धचन्द्र] १ आधा चाँद। अष्टमी का चंद्रमा। २ चंद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३ नखक्षत का एक भेद। ४ एक प्रकार का बाण जिसके अग्रभाग पर अर्धचंद्राकार नोक होती है। ५ सानुनासिक का एक चिह्न। चंद्रबिंदु—। ६ एक प्रकार का त्रिपुंड। ७ निकाल बाहर करने के लिये गले में हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

अर्द्धचंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रा] तिंधारा या कर्णस्फोट नाम का पौधा।

अर्द्धचंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रिका] कनफोड़ा नाम की लता।

अर्द्धजल—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में शव को स्नान करा के आधा जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धज्योतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताल का एक भेद।

अर्द्धतिक्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल में होती है।

अर्द्धतूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

अर्द्धधार—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर धारवाला चाकू। सुश्रुत में वर्णित २० शल्योपकरणों में से एक [को०]।

अर्द्धनटेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

अर्द्धनयन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में होती है।

अर्द्धनाराच—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो मर्कटबंध और कीलक पाशों में बँधी होती है। २ एक प्रकार का बाण।

अर्द्धनारी—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीश्वर। शिव [को०]।

अर्द्धनारीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धनारीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ तंत्र में शिव और पार्वती का सम्मिलित रूप। २. आयुर्वेद में रसांजन जिसे आँख में लगाने से ज्वर उतर जाता है।

अर्द्धपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

अर्द्धपोहल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेश—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुशास्त्र में प्रवर्तित मेरु के मध्य से आलंबन बिंदु तक का अंतर जहाँ सूत्रखंड बँधे रहते हैं। मेरु के मध्य से उसके उस स्थान तक का अंतर जहाँ वह खंभे या दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक—वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर—संज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया। मध्याह्न [को०]।

अर्द्धमागधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार जिसके बीच में मणि हो। २ दस मोतियों की माला। ३. बारह लड़ियोंवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधी मात्रा। २ व्यंजन। ३. संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमासभृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्धमासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ—संज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे से साथ होकर लड़े [को०]।

अर्द्धविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कनखी से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग जो व्यास और परिधि के आधे भाग से घिरा हो। २ पूरे वृत्त की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ़। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या सूद का आधा [को०]।

अर्द्धवैनाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अर्थनाश के पक्षपाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास—संज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। त्रिज्या। रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द—वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम—वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी—संज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले में आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला कृषक [को०]।

अर्द्धहार—संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४० लड़ियोंवाला हार [को०]।

अर्द्धह्रस्व—संज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्द्धांग—संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०—मम सर्वांग अर्धांग सौभाग्यमजा, व्याल नृकपाल माला विराजै।—तुलसी

ग्र० पृ० ४५८। २ एक रोग जिसमे आधा अंग चेष्टाहीन और बेकाम हो जाता है। लकवा। फालिज। पक्षाघात। ३ शिव।

अर्द्धांगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० **अर्द्धाङ्गिनी**] पत्नी। भार्या।

अर्द्धांगी[1]—सज्ञा पुं० [स० **अर्धाङ्गिन्**] शिव।

अर्द्धांगी[2]—वि० अर्द्धांगरोगग्रस्त।

अर्द्धांशी—वि० [स० **अर्धांशिन्**] अर्द्धभाग का अधिकारी [को०]।

अर्द्धा—सज्ञा स्त्री० [स०] ऐसे २५ मोतियो का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्षापण था। उस समय कर्षापण मे दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसो के बराबर होता था।

अर्द्धाली—सज्ञा स्त्री० [स० **अर्धालि**] वह चौपाई जिसमे दो ही चरण हो। आधी चौपाई, जैसे—राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्द्धाविभेदक—सज्ञा पु० [स०] १ अधकपारी। आधासीसी। २. अर्धांग [को०]।

अर्द्धाशन—सज्ञा [स०] १ आधा भोजन [को०]।

अर्द्धासन—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा आसन। २ प्रतिशय समान का स्थान। ३ बराबरी की जगह [को०]।

अर्द्धिक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अर्धसीरी। २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न सतान जिसका सस्कार हुआ हो।

अर्धिक[2]—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०]।

अर्द्धीकरण—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा करना। २ मजूषा काढना बैठाना। जब एक कडी दूसरी कडी पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक बैठाने के लिये प्रत्येक सधिस्थल को आधा आधा छील देते है। वास्तुशास्त्र मे यह अर्धीकरण कहलाता है

अर्द्धोर्ध्वक—वि० [स०] उत्कर्षशील। उन्नतिशील [को०]।

अर्द्धेंदु—सज्ञा पुं० [स० **अर्द्धेन्दु**] १ अर्धचन्द्र। २ अर्धचद्राकार नखक्षत। दे० 'अर्द्धचद्र' [को०]।

अर्द्धेंदुमौलि—सज्ञा पुं० [स० **अर्द्धेन्दुमौलि**] शिव।

अर्द्धोदक—स० पुं० [स०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी। २ मृत शरीर को नहलाकर आधा जल मे और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०]।

अर्द्धोदय—सज्ञा पुं० [स०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीपात योग पडता है। इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण मे स्नान करने का फल होता है।

अर्धगⓊ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अर्द्धग'।

अर्धगी[1]Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांगी'।

अर्धंगी[2]Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] आधे अगवाली स्त्री। अर्धांगिनी उ०—अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे।—सूर०, १०।४२३०।

अर्ध—वि० [स०] दे० 'अर्द्ध'।

अर्नⓊ—सज्ञा पुं० [स० अर्ण] जल। पानी। उ०—थभ स्नेह रोमाच स्वरभग कप वैवर्न। सबही के अनुभाव ये सात्विक औरो अर्न। भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० २७।

अर्पण—सज्ञा पु० [सं०] [वि० **अर्पित**] किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्थापित करना। देना। दान। २. नजर। भेंट।

यौ०—**कृष्णार्पण। ब्रह्मार्पण।**

३ स्थापन। रखना जैसे, पदार्पण करना। ४ वापस करना। लौटाना [को०]। ५ छेदन [को०]।

अर्पणप्रतिभू—सज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूँगा।

अर्पतर्पⓊ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरप तरप'। उ०—गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान। अर्प दर्प कदर्प जनु कीनो सर सधान।—स० सप्तक, पृ० ३८३।

अर्पनाⓊ—सज्ञा पु० [सं० **अर्पण**] दे० 'अर्पण'। उ०—सिव सर हमको फल दीन्हो। पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, पटरस अर्पन कीन्हों।—सूर०, १०।७९८।

अर्पनाⓊ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अरपना'। उ०—पाडे नहिं भोग लगावन पावै। करि करि पाक जबै धरि दीन्हौ, तबही तब छवै आवै।—सूर०, १०।२४९।

अर्पित—वि० [स०] अर्पण किया हुआ। उ०—देवो को अर्पित मधु-तमिश्रित सोम अधर से छूनो।—कामायनी, पृ० १२८। २ उकीर्ण [को०]। ३ चित्रित [को०]।

अर्पिस—सज्ञा पुं० [स०] हृदय। हृदय का मास [को०]।

अर्बदर्बⓊ—सज्ञा पुं० [स० **अर्बुद+द्रव्य**] धन। सपत्ति। धनदौलत। उ०—अर्बदर्ब सब देई बहाई। कै सब जाव न जाय पियाई।—जायसी (शब्द०)।

अर्बुद—सज्ञा पुं० [स०] १ गणित मे नवें स्थान की सख्या। दस कोटि। दस करोड। २ एक पर्वत जो राजपूताने की मरुभूमि मे है। अरावली। आबू जो जैनो पवित्र स्थान है। ३ एक असुर का नाम। ४ कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०]। ५ मेघ। बादल। ६ दो मास का गर्भ। एक रोग जिसमे शरीर मे एक प्रकार की गाँठ पड जाती है। बतौरी।

विशेष—इसमे पीडा तो नही होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है। इसके कई भेद हैं जिनमे से मुख्य रक्तार्बुद और मासार्बुद हैं।

अर्बुदी—वि० [स० **अर्बुदिन्**] अर्बुद नामक रोग से ग्रसित [को०]।

अर्भ[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक। २ शिशिर ऋतु। ३ शिष्य। छात्र। ४ सागपात। ५ नेत्रवाला। ६ कुशा।

अर्भ[2]—वि० १ मलिन। धुँधला। २ लघु। छोटा [को०]।

अर्भक[1]—वि० पु० [स०] १. छोटा। अल्प २ मूर्ख। ३. दुबला। पतला। ४ तुल्य। समान [को०]।

अर्भक[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक। लडका। उ०—गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।—मानस, १।२७२। २. किसी भी

जानवर का बच्चा [को०]। मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०]। ३ नेत्र-वाला। कुश।

अर्म—संज्ञा पुं० १ आँख का एक रोग। टेंटर। ढेंढर। २ पुराना आधा उजडा नगर या गाँव। ३ गतव्य देश वा स्थान [को०]।

अर्मनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरमानी'।

अर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अर्या, अर्यायणी, अर्यी,] १ स्वामी। २ ईश्वर। ३ वैश्य।

अर्य[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ दयालु। अनुकूल [को०]।

अर्यमा—संज्ञा पुं० [सं० अर्यमन्] १ सूर्य। २ बारह अदित्यो मे से एक। ३ पितर के गणो मे से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते हैं। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५ मदार। ६. अतरग मित्र लँगोटिया यार [को०]।

अर्रबर्री—संज्ञा पुं० [हिं०] अडबड बात। बेकार बात। फिजूल चर्चा।

अर्रा—संज्ञा पुं०[देश०] १ जगली पेड जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुलता होता है। इसकी लकडी बडी मजबूत होती है और छत पाटने के काम आती है। २. अरहर।

अर्ल—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० कौंटेस] इगलैंड के सामतो और बडे भूम्यधिकारियो को वशपरपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है। वि० दे० 'डयूक'।

अर्वट—संज्ञा पुं० [स०] भस्म। राख [को०]।

अर्वती—संज्ञा स्त्री० [स०] १ घोडी। २. दूती। कुटनी। ३ परी। विद्याधरी [को०]।

अर्वा—संज्ञा पुं० [स० अर्वन्] १. घोडा। २ घोड़े का सवार। असवार सवार। ३ चद्रमा के दस घोडो मे से एक। ४ इद्र। ५ एक प्रकार की दूरी। ६ जाना। दौडना। घूमना [को०]।

अर्वाक्—अव्य० [स० अर्वाक्] १ पीछे। इधर। २ निकट। समीप। ३ नीचे।

यो०—अर्वाक् कालिक=आधुनिक। अर्वाकस्रोता=जिसका वीर्यपात हुआ हो। उर्द्धरेता का उलटा।

अर्वाग्विल—वि० [स०] १ अधोमुख। नीचे की तरफ मुँह या छिद्र वाला [को०]।

अर्वाग्वसु[1]—वि० [स०] धनदाता [को०]।

अर्वाग्वसु[2]—संज्ञा पुं० १ वर्षा। २ बादल [को०]।

अर्वाचीन—वि० [स०] १ पीछे का। आधुनिक। २ नवीन। नया। ३ उलटा। विपरीत [को०]। ४ नम्र। कृपालु [को०]।

अर्वावसु—संज्ञा पुं० [स०] देवताओ का होता [को०]।

अर्वुक—संज्ञा पुं० [स०] १ महाभारत मे कथित दक्षिण की एक जगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था।

अर्श[1]—वि० [स०] १ पापयुक्त। दुर्भाग्य लानेवाला।

अर्श[2]—संज्ञा पुं० [स० अर्शस्] १ बवासीर। २ क्षति। हानि [को०]।

अर्श[3]—संज्ञा पुं० [अ०] १ आकाश। उ०—अर्श तक जाती थी अब लब तक भी आ सकती नही। रहम आता है 'वर्षा' अब मुझको अपनी आह पर।—शेर०, भा० १. पृ० १७५। २. स्वर्ग। ३. चरखी जिसपर ऊन काता जाता है। ४ छत। पाटन [को०]। ५ सिंहासन। तख्त [को०]। ६. लडाई। झगडा [को०]।

अर्शवर्त्म—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार की बवासीर जिसमें गुदा के किनारे ककडी के बीज के समान चिकनी और किंचित् पीडा-युक्त फुसियाँ होती हैं।

अर्शस—वि० [सं०] बवासीर का रोगी [को०]।

अर्शसान—संज्ञा पुं० [स०] १ आग। २ एक राक्षस [को०]।

अर्शहर—संज्ञा पुं० [स०] सूरन। ओल। जमीकद।

अर्शी—वि० [सं० अर्शिन्] अर्शरोगी [को०]।

अर्शोघोर—वि० [स०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०]।

अर्शोघ्न—संज्ञा पुं० [स०] १ सूरन। ओल। जमीकद। २ भिलावाँ। ३ सज्जीखार। ४ तेजबल। ५ सफेद सरसो।

अर्शोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालमूली। २ भल्लातक [को०]।

अर्शोहर—संज्ञा पुं० दे० 'अर्शोघ्न' [को०]।

अर्शोहित[1]—संज्ञा पुं० [स०] भल्लातक [को०]।

अर्शोहित[2]—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०]।

अर्हत—संज्ञा पुं० [सं० अर्हन्त] १ जैनियो के पूज्यदेव। जिन। २ बुद्ध।

अर्ह[1]—वि० [सं०] १ पूज्य। २ योग्य। उपयुक्त। ३ मूल्य के योग्य मूल्यवान् [को०]।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर यौगिक शब्द बनाने मे होता है, जैसे—पूजार्ह। मानार्ह। दडार्ह।

अर्ह[2]—संज्ञा पुं० १ ईश्वर। २ इद्र। विष्णु [को०]। ४ मूल्य। दाम [को०]। ५ गति [को०]। ६ उपयुक्तता [को०]।

अर्हण—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अर्हणा'।

अर्हणा—संज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अर्हणीय] पूजा। समान।

अर्हणीय—वि० [स०] पूजनीय। समाननीय [को०]।

अर्हत[1]—वि० [स०] पूजा।

अर्हत[2]—संज्ञा पुं० जिनदेव।

अर्हता—संज्ञा स्त्री० [स०] योग्यता। उपयुक्तता [को०]।

अर्हन—वि०, संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अर्हत'।

अर्हित—वि० [स०] पूजित। समानित। आदृत।

अर्ह्य—वि० [स०] १ पूज्य। मान्य। २ पूजनीय। माननीय। आदरणीय। ३ योग्य। उपयुक्त। अधिकारी [को०]।

अल—अव्य० [स० अलम्] दे० 'अलम्'।

अलकटकटा—संज्ञा स्त्री० [स० अलङ्कटङ्कटा] विद्युत्केश नामक राक्षस की पत्नी। सुकेश की माता।

विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे इस राक्षसवश का सृष्टि के आदिकाल मे उत्पन्न होना लिखा है।

अलकरण—संज्ञा पुं० [स० अलङ्करण] १. सजावट। २ शृगार ३. आभूषण [को०]।

अलकर्ता—वि० [स० अलङ्कर्तृ] सजावट करनेवाला। अलकृत करनेवाला [को०]।

अलकार—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कार] [वि० अलंकृत] १ आभूषण। गहना। जेवर। २ अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। वर्णन करने की वह रीति उसमे प्रभाव और रोचकता आ जाय।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालकार, अर्थात् वह अलकार जिसमे शब्दो का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालकार, जिसके अर्थ मे चमत्कार हो, जैसे उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालकार जिसमे शब्द और अर्थ दोनो का चमत्कार हो। आदि मे भरत मुनि ने चार ही अलकार माने हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। उन्होने अलकारो के धर्म को, इन्ही के अतर्गत माना है। अलकार यथार्थ मे वर्णन करने की शैली है, वर्णन का विषय नही। पर पीछे वर्णनीय विषयो को भी अलकार मान लेने से अलकारो की सख्या और भी बढ गई। स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इसी प्रकार के हैं।

३ वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियो का सौंदर्य बढे। ४ सजावट। मडप[को०]। ५ अलकार सबधी शास्त्र [को०]।

अलकारक—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारक] आभूषण। अलकार [को०]।

अलकारमडप—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारमण्डप] सजावट का स्थान। प्रसाधनकक्ष। ड्रेसिंग रूम।

अलकारशास्त्र—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारशास्त्र] वह शास्त्र जिसमे अलकारो का वर्णन और विवेचन हो।

अलकित—वि० [हिं०] दे० 'अलकृत'।

अलकिय—वि० [स० अलङ्कृत, प्रा० अलंकिय] दे० 'अलकृत'। उ०—नील वरन वसुमतिय। पहिर आभ्रन अलकिय।—पृ० रा०, २५। ३५।

अलकृत—वि० [स० अलङ्कृत] १ विभूषित। गहना पहनाया हुआ। २ सजाया हुआ। सँवरा हुआ। ३ काव्यालकारयुक्त।

अलकृति—सज्ञा स्त्री० [स० अलङ्कृति] १ अलकार। आभूषण। २ सजावट। ३ उपमा, रूपक आदि अलकार। उ०—प्राखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रबध अनेक विधाना।—मानस, पृ० ६।

अलग—सज्ञा पुं० [स० अल=पूर्ण, बडा+अग=प्रदेश] [हिं० अलगा] ओर। तरफ। दिशा। उ०—(क) उमर अमीर रहे जहँ ताई, सब ही बाँट अलगै पाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलग तें।—भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० १०७।

मुहा०—अलग पर आना या होना=घोड़ी का मस्ताना।

अलघनीय—वि० [स० अलङ्घनीय] १ जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सके। जिसे पार न कर सके। अलघ्य। १ अटल।

अलघ्य—वि० [स० अलङ्घ्य] १ जो बाँधने योग्य न हो। जिसे फाँद न सकें। २. जिसे टाल न सकें। जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलघ्य होती है।

यौ०—अलघ्य शासन।

अलजर—सज्ञा पुं० [स० अलञ्जर] मिट्टी का घडा। झझर [को०]।

अलंपट[1]—वि० [स० अलम्पट] जो लपट या विषयी न हो। सच्चरित्र।

अलपट[2]—सज्ञा पुं० स्त्रियो का कक्ष। अत पुर [को०]।

अलव—सज्ञा पुं० [स० आलम्ब] दे० 'आलव'।

अलबुष—सज्ञा पुं० [स० अलम्बुषा] १ वमन। उल्टी। कै। २ कौरवो का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कच ने मारा था। ३ प्रहस्त नाम का रावण का एक मत्री [को०]। ४. हथेली जिसकी ऊँगलियाँ फैलाई गई हो (को०)।

अलबुषा—सज्ञा स्त्री० [स० अलम्बुषा] १ मुडी। गोरखमुडी। २ स्वर्ग की एक अप्सरा। ३ दूसरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा। गडारी। मडल।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुवाछूत से बचाने के लिये होता है।

४ लज्जावती। छुई मुई। लजालू पौधा। उ०—नव अलबुषा की व्रीडा सी खुल जाती फिर जो मुदती।—कामायनी, पृ० २६३।

अलभ—वि० [स० अलभ्य] दे० 'अलभ्य'। उ०—सरग का देवता अलभ चितोड।—बी० रासो, पृ० २४।

अल[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बिच्छू का डक। २ हरताल। ३ विष। जहर। उ०—अति बल करि करि काली हान्यो। लपटि गयो सब अग अग प्रति, निर्विष कियो सकल अल झार्‌यो।—सूर (शब्द०)।

अल[2]—वि० [स०] समर्थ। शक्त। उ०—कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अलई—सज्ञा स्त्री० [देश०] ऐसे नाम की कँटीली लता जिसकी बाढ प्राय खेतो मे लगाई जाती है। ऊरू।

अलक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोडदार बाल। २ बाल। केश। लट। ३ छल्लेदार बाल। उ०—मुकुट कुडल तिलक, अलक अलिव्रात इव, भृकुटि द्विज अधर वर चारु नासा।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१। २ हरताल। ३ सफेद आक। श्वेत मदार। ४ शरीर पर लगाया हुआ केसर। अग पर लिप्त केसर [को०]। ५ पागल कुत्ता। अलर्क [को०]।

अलक[2]—सज्ञा पुं० [स० अलकनक] महावर। आलता।

अलक[3]—सज्ञा पुं० [स० अलका] अलकापुरी। उ०—अलक लोक बज्जत विषम।—पृ० रा० २।१०१।

अलकत—सज्ञा पुं० [अ०] १ अवहेलना। २ नष्ट करना। रद्द करना। ३. काट देना [को०]।

अलकतरा—सज्ञा पुं० [अ०] पत्थर के कोयले को आग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाढा पदार्थ। उ०—छत छतरी बर बद खभ गेरु रँग राखे। अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे।—रत्नाकर १।१०२।

विशेष—कोयले को बिना पानी दिए भभके पर चढाकर जब गैस निकाल लेते हैं, तब उसमे दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाढा। यही गाढा काला पदार्थ अलकतरा है जो रँगने के काम मे आता है। यह कृमिनाशक है अत इसमे रँगी हुई लकडी घुन और दीमक से बहुत दिनो तक बची रहती है। इससे कृमिनाशक औषधियाँ जैसे—नेप्थलीन कारबोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं। इससे कई प्रकार के रंग भी बनते हैं।

अलकनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० अलकनन्दा] १ हिमालय (गढ़वाल) की एक नदी जो गंगोत्री के आगे भागीरथी (गंगा) की धारा से मिल जाती है। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—संज्ञा स्त्री० [स०] अलकापुरी। कुबेरपुरी।

अलकप्रिय—संज्ञा पुं० [स०] पीतसाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलडैता(पु)—वि० [सं० अलक=बाल+लाड=दुलार या अ० अलक=प्यार+हिं० लाड+ऐता (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अलकलडैती] दुलारा। लाडला। उ०—सूर पथिक मुनि मोहि रैनि दिन, बढ्यो रहत उर सोच। मेरी अलकलडैती मोहन ह्वै है करत सँकोच।—सूर०, १०।३७६३।

अलकसहति—संज्ञा स्त्री० [स०] घुँघराले बालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा(पु)—वि० [स०=अलक=बाल या अ० अलक=प्यार+हिं० सलोना=अच्छा] [स्त्री० अलकसलोरी] लाडला। दुलारा। उ०—हम तुम्हरें नितही प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसो आदर कबहुँ न कीन्ही मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०।२८२८।

अलका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कुबेर की पुरी। यक्षों की पुरी। उ०—हमका छुटत मोर अलका परत हैं।—गंग०, पृ० १०५। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलकावलि'। उ०—अधर अधर मो मीज तबोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गा मोरी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाधिप—संज्ञा पुं० [स०] अलकापुरी के स्वामी। कुबेर [को०]।

अलकापति—संज्ञा पुं० [स०] कुबेर।

अलकाव—संज्ञा पुं० [अ० लकब का बहुव०] १ प्रशस्ति। २ उपाधि या खिताब [को०]।

अलकावती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री० [स०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति भाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेस(पु)—संज्ञा० पुं० [स० अलकेश] कुबेर। उ०—अकबकात अलकेस अखडत।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०।

अलक्त—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—संज्ञा पुं० [स०] १ लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। लपड़ा। २ लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यौ०—अलक्तकरस=महावर। अलक्तक राग=महावर की लाली।

अलक्षण[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ चिह्न या संकेत का न होना। २ ठीक ठीक गुण धर्म का अनिर्वचन। ३ बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षण[2]—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [स०] १ अप्रकट। अज्ञात। २ अदृश्य। गायब। ३ अचिह्नित।

अलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनाभाव। निर्धनता। दरिद्रता। २ बुरा भाग्य। विपरीत भाग्य। ३ अशुभ लक्षणोंवाली स्त्री। भाग्य की देवी। दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [सं०] १ अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २ जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३ छलविहीन। छलरहित [को०]। ४ अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—संज्ञा स्त्री० [स०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि०, [स० अलक्ष्यलिंग] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख[1]—वि० [स० अलक्ष्य] १ जो दिखाई न पड़े। जो नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुधि, अनुमान, प्रमान स्रुति किएँ नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहि जाय।—बिहारी र०, दो० ६४८। २ अगोचर। इंद्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहिं न लायक। जौ पै अलख रह्यौ चाहत तौ वादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३ ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अबरन सो करता। वह सबसो सब वहि सो बरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अलख जगाना=(१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्माके नाम पर भिक्षा माँगना।

यौ०—अलखधारी। अलखनामी। अलखनिरंजन। अलखपुरुष=ईश्वर। अलखमत=निर्गुण संत संप्रदाय में ईश्वरमत।

अलख[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलखनामी—संज्ञा पुं० [स० अलक्ष्यसंज्ञ+हिं० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं।

विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, गेरुआवस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुघरू या घंटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर से 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना वा कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षाके लिये अधिक अड़ते नहीं।

अलखित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलक्षित'। उ०—कवि अलखित गति वेषु बिरागी।—मानस २। ११०।

अलखिया(पु)—संज्ञा० पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलग—वि० [सं० अलग्न प्रा० अलग्ग] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—सपति सकल जगत की स्वासा सम नहिं होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—सं० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—करना। रखना।—होना।

मुहा०—अलग करना=(१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना, जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छाँटना। (४) बेच डालना, जैसे—उसने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना। समाप्त करना, जैसे—थोड़ा सा बचा है, खा पीकर अलग करो।

२ वेलाग। बचा हुआ। रक्षित, जैसे—घबराओ मत, तुम्हारा बच्चा अलग है।

यौ०—अलग अलग=दूर दूर। जुदा जुदा।

अलगगीर—सज्ञा पुं० [अ० अरक फा० गीर] कबल या नमदा जिसे घोडे की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं।

अलगनी—सज्ञा स्त्री० [स० आलग्न] आडी रस्सी या बाँस जो कपडे लटकाने या फैलाने के लिये घर मे बाँधा जाता है। डारा।

अलगरजा†—वि० [अ० अल्+गरज] दे० 'अलगरजी'।

अलगरजी†—वि० [अ०] बेगरज। बेपरवाह।

अलगरजी²ⓤ—सज्ञा स्त्री० बेपरवाही। बेगरजी। उ०—आसिक अरु महबूब बिच आप तमासा कीन। ह्यां ह्वै अलगरजी करै ह्वां ह्वै होइ अधीन।—स० सप्तक, पृ० १७६।

अलगर्द—सज्ञा पु०[स०]एक तरह का जल मे रहनेवाला साँप [को०]।

अलगर्दा—सज्ञा पु०[स०] एक तरह की लबी जहरीली जोक [को०]।

अलगाऊ—वि० [हिं० अलगाना] अलग करनेवाला। अलग रखनेवाला।

अलगाना¹—क्रि० स० [हिं० अलग+आना (प्रत्य०)] १ अलग करना। छाँटना। बिलगाना। पृथक् करना। जुदा करना। २ दूर करना। पठाना।

अलगाना²—क्रि० अ० अलग होना। पृथक् होना। उ०—बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।—सूर०, ३।४।

यौ०—अलगागुजारी=अलगाव।

अलगारⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अलग'। उ०—चामडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढभार दिय। अलगार राज प्रथिराज तव पूरव दिसि तव गमन किय।—पृ० रा०, २०।३६।

अलगाव—सज्ञा पु० [हिं० अलग+आव (प्रत्य०)] पृथक्करण। अलग रहने का भाव। बिलगाव। उ०—होली, सावन, झूले वा झेलुए की गीत आदि का अलगाव या ठहराव हुआ होगा।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३५१।

अलगोजा—सज्ञा पु० [अ० अलगोजह] एक प्रकार की बाँसुरी। उ०—अलगोजे बज्जत छिति पर छज्जत सुनि-धुनि लज्जत कोइ रहैं—पद्माकर ग्र, पृ० २८५।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानातर छेद होते हैं। इसको मुँह मे सीधा रखकर उँगलियो को छेदो पर रखते और उठाते हुए बजाते हैं।

अलगौझा†—सज्ञा पु० [हिं० अलग+औझा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलगौझी] पृथक्करण। अलगाव। बिलगाव।

अलग्गⓤ—वि० [स० अलग्न] समीप नही। दूर। उ०—ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अलग्ग।—ढोला०, दू० ३०७।

अलघु—वि०[स०][वि०स्त्री०अलघ्वी]१ जो लघु न हो। बडा। वजनी। २ गभीर। ३ जो छोटा न हो। लबा। ४ उग्र। भयकर [को०]।

अलच्छⓤ—वि० [हिं] दे० 'अलक्ष'। उ०—जग मग धरन अलच्छ जात अबरहि जनु पच्छी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२।

अलच्छिⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० अलक्ष्मी] दरिद्रता। गरीबी। उ०—माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रक अवनीसा।—मानस, १।६।

अलज¹—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अलज²ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अलज्ज'।

अलजी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँखो मे होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फुसी जो बहुत पीडा देती है।

अलज्ज—वि [सं०] निर्लज्ज। बेहया। उ०—तुम अलज्ज से क्यो यहाँ अडे।—साकेत, पृ० ३१३।

अलटविलट—सज्ञा पु० [देश०] उलट पुलट। हेर फेर। गडबडी। उ०—बात व्योहार मे कही कुछ अलटविलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी।—नई०, पृ० ३१।

अलटा—सज्ञा पुं० [स० अलक्तक, प्रा० अलत्तय, राज० अलत्ता] १. वह लाल रग जो स्त्रियाँ पैरो मे लगाती हैं। २ स्त्री की मूत्रेंद्रिय, जैसे—अलते की बोटी।

अलत्ताⓤ—सज्ञा पु० [सं० अलक्तक, प्रा० अलत्तय] दे० 'अलता'। उ०—सुदरि, सोवन वर्ण तसु अहर अलत्ता रगि। केसरिलंकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि।—ढोला०, दू० ८७।

अलपⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अल्प'। उ०—तातें अनुमानों अब जीवन अलप है।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

अलपाका—सज्ञा पुं० [स्पे० एलपका] १ ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रात मे होता है। इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं। २ अलपाका का ऊन। ३ एक पतला कपडा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जतु के ऊनी बालों को मिलाकर बनाया जाता है। यह कई रगो का बनता है, पर विशेषकर काला होता है।

अलफ—सज्ञा पुं० [अ० अलिफ] १ घोडे का आगे के दोनो पाँव उठाकर पिछली टाँगो के बल खडा होना।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खडा होता है। इसी से यह शब्द इस अर्थ मे व्यवहृत होने लगा।

२ हरा चारा। हरी घास [को०]।

अलफा—सज्ञा पुं० [अ० अलफा] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का ढीला ढाला बिना बाँह का बहुत लबा कुरता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले मे डाले रहते हैं। उ०—अद्धी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगडाता हुआ चिल्लाने लगा।—श्यामा०, पृ० १५०।

अलफाज—सज्ञा पुं० [अ० लफ्ज का बहुव० अलफ़ाज] शब्दसमूह। उ०—बिना अरबी के अलफाज मिलाए।—प्राण०, २।५६।

अलबत—अव्य० [हिं०] दे० 'अलबत्ता'। उ०—तथ्यो का आरोप या सभावना अलबत वे कभी कभी किया करते हैं।—रस० क०, पृ० १४।

अलबत्ता—अव्य० [अ० अलबत्तह्] १ निस्सदेह। निःसशय। बेशक, जैसे—'अब अलबत्ता यह काम होगा'। २ हाँ। बहुत ठीक। दुरुस्त। जैसे—अलबत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०)। ३ लेकिन। परतु, जैसे—हम रोज नही आ सकते, अलबत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०)।

अलबम—सज्ञा पुं० [अ०, एलबम] तस्वीरें रखने की किताब।

अलबल—वि० [अनु०] अटपट। जल्दी जल्दी। उ०—अपने अपराधन कबहूँ बैठि विचारै हुव मिलन मनोरथ अल बल बैन उचारै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २९३।

अलबीतलबी—[अ०] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू, जैसे—'आप अपनी अलबी तलबी छोडकर सीधी तरह से हिंदी मे बातें कीजिए'।

अलबेला¹—वि० [स० अलम्भ्य+हिं० ला (प्रत्य०)][स्त्री० अलबेली] १ बाँका। बना ठना। छैला। २ अनोखा। अनूठा। सुदर, जैसे—'तुमने तो यह बडी अलबेली चीज निकाली।' ३ अल्हड। बेपरवाह। मनमौजी। जैसे—यह बडा अलबेला है।

अलबेला²—सज्ञा पुं० [स० अलम्भ्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खायकै पान बिदोरत होठ हैं बैठि सभा मे पिएँ अलबेला।—बगगोपाल (शब्द०)।

अलबेलापन—सज्ञा पुं० [हिं० अलबेला+पन (प्रत्य०)] १ बाँकापन। सजधज। छैलापन। २. अनोखापन। अनूठापन। सुदरता। ३ अल्हडपन बेपरवाही।

अलभ्य—वि० [स०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो। जो हस्तगत न हुआ हो [को०]।

यौ०—अलभ्यनाथ=बिना सरक्षक। स्वामीविहीन। अलभ्य-निद्र=जिसे नीद न आई हो।

अलभ्यभूमिकत्व—सज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुडना। समाधि की अप्राप्ति।

अलभ्यव्यायामाभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी भूमि जिसमे सैन्यसग्रह न हो सके।

अलभ्य—वि० [हिं०] दे० 'अलभ्य'।

अलभ्य—वि० [स०] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०—रस पिया सखि नित्य जहाँ नया अब अलभ्य वहाँ विष हो गया।—साकेत, पृ० ३०७। २ जो कठिनता से मिल सके। दुर्लभ। उ०—मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु भोगनि को करिगे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३९। ३ अमूल्य अनमोल। उ०—जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है।—लहर, पृ० ७०।

अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट। पर्याप्त। पूर्ण। काफी। उ०—कृपा कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो।—झरना, पृ० ८१।

अलम—सज्ञा पुं० [अ०] १ रज। दुख। उ०—अलम है दर्द हसरत है फना है आहोजारी है।—शेर०, पृ० ३७७। २ झडा।

अलमनक—सज्ञा पुं० [अ०] अँगरेजी ढग की जत्री या पत्रा।

अलमनाक—वि० [अ०] १ दुखपूर्ण। २ अतिदुखदाई [को०]।

अलमबरदार—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह जो झडा उठाता है। २ वह जो आदोलन आदि मे आगे रहता है [को०]।

अलमर—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

अलमस्त—वि० [फा०] १ मतवाला। बदहोश। बेहोश। २ बेगम। बेफिक्र। निर्द्वंद्व।

अलमारी—सज्ञा स्त्री० [पुर्त० अलमारियो] वह खडा सदूक जिसमे चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बद करने के लिये पल्ले होते हैं। कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे ऊपर तख्ते जोडकर भी अलमारी बना दी जाती है। बडी भंडरिया।

अलमास—सज्ञा पुं० [फा०] हीरा।

अलय¹—वि० [स०] बिना घरवाला। चलता फिरता। जिसका नाश न हो [को०]।

अलय²—सज्ञा पुं० १ लय न होने का भाव। अनित्यता। २ जन्म। उत्पत्ति [को०]।

अलर्क—सज्ञा पुं० [स०] १. पागल कुत्ता। २ सफेद आक या मदार। ३ एक प्राचीन राजा जिसने एक अधे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनो आँखें निकालकर दे दी थी। ४ शूकर जैसा एक आठ पैरोंवाला जतु [को०]। ५ एक तरह का कीडा [को०]।

अललㄓ—क्रि० वि० [अ० आलामाला] इधर उधर। उ०—सँभरत अबलमर साहुलि समलि। आलूदा ठाकुर अलल।—वेलि०, दू० ११३।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकलपच्चू। बेठिकाने का। अडबड।

अललबछेडा—सज्ञा पुं० [हिं० अल्हड+बछेडा] १ घोडे का जवान बच्चा। २ अल्हड आदमी। वह व्यक्ति जिसे कुछ अनुभव न हो।

अललहिसाब—क्रि० वि० [अ०] बिना हिसाब किए हुए [को०]।

क्रि० प्र०—देना।

अललाना—क्रि० अ० [सं० अर्=बोलना] तेज चिल्लाना। गला फाडकर बोलना।

अलल्लㄓ—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्ल'।

अलल्लㄓ—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्ला'।

अलल्ला—सज्ञा पुं० [देश०] घोडा (डिं०)।

अलवाँत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलवाँती'।।

अलवाँती—वि० स्त्री० [स० बालवती] (स्त्री) जिसके बच्चा हुआ हो। प्रसूता। जच्चा।

अलवाई—वि० स्त्री० [स० बालवती, हिं० अलवाँती] (गाय या भैंस) जिसको बच्चा जने एक दो महीने हुए हो। 'बाखरी' का उलटा।

अलवान—सज्ञा पुं० [अ०] पशमीने की चादर। ऊनी चादर।

अलवाल—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलवाल'।

अलविदा¹—अव्य० [अ० अल+विदाअ] विदा होते समय कहा जानेवाला शब्द।

अलविदा²—सज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अतिम शुक्रवार।

अलस¹ㄓ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—बारि जाम जुनिधि उनीदे, अलस बसहि जम्हात।—सूर०, १०।२६७६।

अलस²—वि० [स०] आलस्ययुक्त। आलसी। सुस्त। मद। निरुद्योगी। उ०—चदन मिटाए तन अतिही अनस मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोलनी।—सूर०, १०।२५०७।

अलस[3]—सज्ञा पुं० [स०] १ पाँव का एक रोग जिसमे पानी से भीगे रहने या गदे कीचड मे पडे रहने के कारण उँगलियो के बीच का चमडा सडकर सफेद हो जाता है और उसमे खाज और पीडा होती है। खरवात। कदरी। २ एक जहरीला छोटा जतु [को०]। ३ एक तरह का पौधा [को०]।

अलसई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० आलस्य] अलसता। उ०—कुभकरन को रन हुयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढि श्रुति नासा हसत जु न रोक्यो हरिराइ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—सज्ञा पु० [स०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—सज्ञा स्त्री० [स०] हसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावती।

अलसाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० अलस] अलसता। सुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो बिथुरी, बात कहत आवत अलसाई।—सूर०, १०।२६४०।

अलसान(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—क्रि० अ० [स० अलस] आलस्य मे पडना। क्लात होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) बल मोहन दोऊ अलसाने।—सूर०, १०।२३०। (ख) कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—सूर०, १०।२४६८।

अलसानि(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० आलस्य] आलस। सुस्ती। उ०—(क) आँखिन मे अलसानि, चितौन मे मजु विलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चिंता जृभ उनीदता विहवलता अलसानि। लह्यो अभागिनि हौं अली, तेहूँ गहै सु बानि।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १४।

अलसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—बढै अलसि जिय माँहि बैर मैं कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० अतसी] एक पौधा और उसका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्राय दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमे डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लबी, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियो से गुछी हुई निकलती हैं। इसमे नीले और बहुत सुदर फूल निकलते हैं जिनके झडने पर छोटी घुडियाँ बँधती हैं। इन्ही घुडियो मे बीज रहते हैं जिनसे तेल निकलता है। यह तेल प्राय जलाने और रगसाजी तथा नीयो के छापे की स्याही बनाने के काम मे आता है। बहुत से स्थानो पर साग, सब्जी आदि मे भी इसका प्रयोग होता है। छापने की स्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीठी बचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीसकर उसकी पुलटिस बाँधने से सूजन बैठ जाती है, कच्चा फोडा शीघ्र पककर बह जाता है तथा उसकी पीडा शात हो जाती है।

अलसी[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलसी'। उ०—राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी हम से गलगाजे।—तुलसी ग्र०, पृ० १६८।

अलसेट(पु)—सज्ञापुं० [सं० अलस+हिं० एट (प्रत्य०)] [वि० अलसेटिया] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २ टालमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लैबे लगी करि बातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. बाधा। अडचन।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया(पु)—वि० [हिं० अलसेट+इया (प्रत्य०)] १ ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २ अडचन डालनेवाला। बाधा उपस्थित करनेवाला। टालमटूल करनेवाला।

अलसौंहा(पु)†—वि० [स० अलस+हिं० औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसौंही] आलस्ययुक्त। क्लात। शिथिल। उ०—सही रँगीले रति जगे, जगी पगी सुख चैन। अलसौंहैं सौंह किएँ, कहैं हँसौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ५११।

अलह(पु)—सज्ञा पुं० [अ० अल्लाह] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—सुलतान जलाल सिकदर जाया। सुलतान। साहबदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह(पु)[2]—वि० [स० अ+लभ्] व्यर्थ। वृथा। अलभ्य। उ०—गाजै जलहर गयण मे जाय अलह तै जोह।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—सज्ञा स्त्री० [अ० अलाहदह् +फा० गी (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगाव। विलगाव।

अलहदा—वि० [अ० अलाहदह्] जुदा। अलग। पृथक्।

अलहदी†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहदी'। उ०—'कर्नव्यशून्य स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन—सज्ञा स्त्री० [स० अलभन] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना(पु)†—वि० [स० अ+लभन] न पानेवाला। उ०—जे गुणमता अलहणा गौरव तहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—सज्ञा पुं० [हिं० अलहन] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गडा पूरे=अपना काम न सँभालकर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [स० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहँ मिलि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० आल्हा] एक रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोल राग की स्त्री और दीपक की पुत्रवधू। इसका व्यवहार करुण रस प्रकट करने मे अधिक होता है।

अलहैरी—सज्ञा पु० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड होता है और जो चलने मे बहुत तेज होता है।

अलाई[1]—वि० [सं० अलम] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिल।

अलाई[2]—वि० [हिं०] अलाउद्दीन सबधी। अलाउद्दीन का, जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई[3]—सज्ञा पुं० [देश० अलन्न] घोडे की एक जाति।

अलागलाग—सज्ञा पु० [हिं० लाग=लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढग।

अलात—सज्ञा पुं० [सं०] १ अगार। २ जलती हुई लकडी। लुआठी।

अलातचक्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ जलती हुई लकडी या लुक को जल्दी जल्दी घुमाने से बना हुआ मडल। उ०—मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम में।—कामायनी, पृ० २००। २ बनैठी। ३ गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच।

अलान—सज्ञा पुं० [स० आलान] [स्त्री० अलानी] १ हाथी बाँधने का खूँटा। २ हाथी बाँधने का सिक्कड। उ०—नवगयदु रघुवीर मनु राजु अलान समान।—मानस, २।५१। ३. बधन। बेडी। ४. लता या बेल चढाने के लिये गाडी हुई लकडी।

अलानाf—क्रि० अ० [स०√अर्=बोलना] चिल्लाना। गला फाडकर बोलना। अललाना।

अलानाहक्क—अव्य [फा० नाहक] बिना मतलब। बेसबब।

अलानिया—क्रि० वि० [अ० अलानियह्] उन्मुक्त रूप से। प्रकट रूप से। खुल्लम खुल्ला। सबके सामने [को०]।

अलाप—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलाप'। उ०—आदर अलाप छाँडि आगे तें अनखि उठी, मेरे मुहे एक बोल आकरो सो आडगो। गग ग्र०, पृ० ७८।

अलापना—क्रि० अ० [सं० आलापन] १ बोलना। बातचीत करना। २ सुर खींचना। तान लगाना। उ०—अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत।—सूर०, १०।१३६८। ३. गाना।

अलापी—वि० [स० आलापिन्] बोलनेवाला। शब्द निकालनेवाला। उ०—नृत्यत कलापी भिल्ली पिक हैं अलापी विरहीजन विलापी हैं मिलापी रसरास में।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २८।

अलाबू—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ लौकी। कद्दू। २. तूँबा।

अलाभ—सज्ञा पुं० [स०] लाभ का अभाव। नुकसान। उ०—दुख सुख, लाभ अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हो रोइ।—सूर०, १।२६२।

अलाम—वि० [अ० अल्लामह्=चतुर] जिसकी बात का कोई ठिकाना न हो। बात बनानेवाला। मिथ्यावादी।

अलामत—सज्ञा पु० [अ०] १ लक्षण। निशान। चिह्न। उ०—बहुत रोने सूरत बना कर दिखाया। न चाहत की छुपी हमसे अलामत।—शेर०, भा० १, पृ० ११६। २. पहचान।

अलामत मलामत—सज्ञा स्त्री० [अ०मलामत] डाँट डपट। भर्त्सना। क्रि० प्र०—करना।

अलायक—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] नालायक। अयोग्य। उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निठुर दया चित नाही।—तुलसी ग्र० पृ० ५२२।

अलार¹—सज्ञा पुं० [सं०] कपाट। किवाड।

अलार²—[सं० अलात] अलाव। आग का ढेर। अँवाँ। भट्ठी। उ०—तान आनि परी कान वृषभानु नंदिनी के तच्यो उर प्रान पच्यो विरह अलार है।—रघुनाथ० (शब्द०)।

अलार्म—सज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना। खतरे का बिगुल [को०]।

मुहा०—अलार्म बजना=खतरे की घंटी या बिगुल बजना।

अलार्म घडी—सज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म+सं० घटी] जागरन घडी। जगानेवाली घडी।

अलाल—वि० [सं० अलस] १ आलसी। सुस्त। काहिल। २ अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—ऐसे अधम अलाल को कीन्हो आप निहाल।—रघराज (शब्द०)।

अलाव—सज्ञा पुं० [स० अलात=अगार] आग का ढेर। जाडे के दिनो मे घास, फूस, सूखी पत्तियो और कडो से जलाई हुई आग जिसके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापते हैं। कौडा।

अलावज—सज्ञा पुं० [स० आलाप+वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना बाजा जो चमडा मढकर बनाया जाता था।

अलावनी—सज्ञा स्त्री० [स० आलापिनी] एक पुराना बाजा जो तार से बनाया जाता था।

अलावलसाही—वि० [हिं० अलावल=अलाउद्दीन+साही] अलाउद्दीन शाह सबधी।

अलावा—क्रि० वि० [अ० अलावह्] सिवाय। अतिरिक्त।

अलास—सज्ञा पु० [स०] एक रोग जिसमे जीभ के नीचे का भाग सूज कर पक जाता है और दाढ तन जाती है।

अलास्य—वि० [स०] नृत्य न करनेवाला। सुस्त [को०]।

अलाहरी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ०—कवि ठाकुर देखौ विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहदी राह सी है।—ठाकुर०, पृ० १०।

अलिग¹—वि० [स० अलिङ्ग] १ लिंगरहित। बिना चिह्न का। जिसका कोई लक्षण न हो। २ जिसका ठीक ठीक लक्षण निर्धारित न हो सके। जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा सके। ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०]।

अलिग²—सज्ञा पुं० १. व्याकरण मे वह शब्द जो दोनो लिंगो मे व्यवहृत हो, जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र। २ वेदात। ईश्वर। ब्रह्म। ३ चिह्न या लक्षण का अभाव [को०]।

अलिगन—सज्ञा पुं० [स० आलङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—कठ लगाइ लेत पुनि ताही। देत अलिगन रीझन जाही।—सूर०, १०।११६४।

अलिगी¹—सज्ञा पुं० [अलिङ्गिन्] लिंग या परिचायक चिह्नो से रहित साधु [को०]।

अलिगी²—वि० बिना लिंग या पहचान का।

अलिजर—सज्ञा पुं० [स० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का बरतन। झझर। घडा।

अलिद¹—सज्ञा पुं० [स० अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा या छज्जा। २. एक पुराना जनपद [को०]।

अलिद²—सज्ञा पुं० [स अलीन्द] भौंरा। उ०—कौन जानै कहा भयो सुदर सवल स्याम टूटें गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो। ...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरदहि अलिद पान करिगो (शब्द०)।

अलिपक—सज्ञा पुं० [स० अलिम्पक] १. मेढक। २. कोकिल। ३. भौंरा। ४. मधुमक्खी। ५. महुवे का पेड [को०]।

अलि¹—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। भ्रमर। उ०—रे अलि चतुर, मोद रस लपट कतहिं बकत बेकाज।—सूर०

१०।३७४२। २ कोयल। ३. कौवा। ४ बिच्छू। ५ वृश्चिक राशि। ६ कुत्ता। ७ मदिरा।

अलि(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [स० आलि, आली] दे० 'अली'। उ०—कुँवर सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ललाट। कपाल। २ दे० 'अलि'। उ०—सुनि लोन लोचनी नवल निधि नेही की अलका की अलिक अलक लटकति है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २१०।

अलिखित—वि० [स०] १ जो लिखा न हो। २ मौखिक रूप से परंपराप्राप्त।

अलिगर्द—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलिगर्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप [को०]।

अलिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [स०] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा

अलित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'। उ०—मरान वाल आसन। अलित्त साथ सासन।पृ० रा०, ५७।११६।

अलिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमरी। उ०—गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी।—मानस १।२५६।

अलिपंक—संज्ञा पुं० [स०] १ भौंरा। २ कोयल। ३ कुत्ता।

अलिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुआ घास।

अलिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [स०] अलिपत्रिका। बिछुआ घास [को०]।

अलिप्त—वि० [सं०] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०—रहकर भी जल जाल में तू अलिप्त अरविंद।—साकेत, पृ० २६४।

अलिप्रिय—संज्ञा पुं० [स०] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल। २ मेढक। ३ कमल का केसर [को०]।

अलिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलिकुल, प्रा० अलिउल] (अलिसमूह) भ्रमरगण। उ०—अलियल आज करत नह, गयंद कपोलाँ गान।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३१।

अलिया[१]—संज्ञा स्त्री० [स० आलय] १ एक प्रकार की खारी। २ वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिवल्लभ—संज्ञा पुं० [स०] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरों की गूँज [को०]।

अली(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [स० आली] १ सखी। सहचरी। सहेली। उ०—येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषी अली।—मानस, १।२३६। २ श्रेणी। पंक्ति। कतार।

अली[२]—संज्ञा पुं० [सं० अलिन्] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। उ०—अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।—बिहारी र०, दो० ३८। २ बिच्छू [को०]।

अलीक[१]—वि० [सं०] १ बेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा। उ०—(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी।—मानस ६।२५। (ख) अनख भरी धुनि अलिन की वचन अलीक समान।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४८। २ अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक[२]—संज्ञा पुं० १ नापसंद या अप्रत्य चीज। २ ललाट। ३ स्वर्ग। आकाश। ४. दुःख [को०]।

अलीक[३]—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० लीक] अप्रतिष्ठा।

अलीक[४]—वि० मर्यादारहित। अप्रतिष्ठित।

अलीकी—वि० [सं० अलीकिन्] १ नापसंद। अप्रिय। २ असत्य [को०]।

अलीगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० अलिगर्द्ध' [को०]।

अलीगर्द्ध—संज्ञा पुं० दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा(पु)—वि० [अ० आलीजाह] बहुत बड़ा। अधिक। बुलंद। उ०—मोम महावर मूनी बीजा। अकरकरा अजमोद अलीजा।—सूदन (शब्द०)। २ दे० 'आलीजाह'।

अलीन[१]—संज्ञा पुं० [सं० आलीन=मिला हुआ] १ द्वार के चौखट की खड़ी लंबी लकड़ी जिसमें पल्ला या किवाड़ जड़ा जाता है। साह। बाजू। २ दालान या बरामदे के किनारे का वह भाग जो दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्रायः आधा होता है।

अलीन[२]—वि० [सं० अ=नहीं+लीन=रत] १ अग्राह्य। अनुपयुक्त। उ०—'हे सखा! पुरुवंशियों का मन अलीन वस्तु कभी नहीं जाता'।—शकुंतला०, पृ० ३४। २ अनुचित। बेजा। उ०—अरि दलयुक्त आप दलहीना। करि बैठे कछु कर्म अलीना।—सबल (शब्द०)।

अलीपित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'।

अलीवद—संज्ञा पुं० [अ० अली+फा० वद] एक प्रकार का आभूषण। एक प्रकार का बाजूबंद।

अलील—वि० [अ०] बीमार। रुग्ण।

अलीह(पु)—वि० [सं० अलीक] मिथ्या। असत्य। उ०—कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं ऐह बात अलीहा।—मानस ३।४८।

अलु—संज्ञा पुं० [स०] एक छोटा जलपात्र [को०]।

अलुक्—संज्ञा पुं० [स०] व्याकरण में समास का एक भेद जिसमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—सरसिज, मनसिज, युधिष्ठिर, करेणुजय, अगदंकर, अमूर्यपश्या, विश्वंभर।

अलुक्क(पु)—वि० [स० अ=नहीं+प्रा० लुक्क=छिपना] न छिपनेवाला। उ०—अलुक्क लुक्क मान की कला अचुक्क धारही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८३।

अलुज्झना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुझना'। उ०—खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन ढहावही।—मानस, ६।७८।

अलुझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' और 'उलझना'।

अलुटना(पु)—क्रि० अ० [सं √लुठ्=लोटना, लडखड़ाना] लडखडाना। गिरना पड़ना। उ०—चले जात अलह मग, लागे बाग दीठि पर्‌यो, करि अनुराग हरि सेवा विस्तारिये। पकि रहे आम माँगे माली पास भोग लिए, कहो लीजै, कही झुकि आई सब डारिये। चल्यो दौरि राजा जहाँ, जाइकै सुनाई बात,गात भई प्रीति, अलुटत पाँव धारिये।—प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम—संज्ञा पुं० [अ० एलुमीनियम] एक धातु जो कुछ कुछ नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हल्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके बरतन बनते हैं। इसमे रखने से खट्टी चीजें नहीं बिगडती।

अलूक(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्म चिल्ह चात्रिग अलूक।—पृ० रा०, ६१।१६७।

अलूप(पु)—वि० [सं० लुप=अभाव] लुप्त। गायब। उ०—ससि औ सूर जो नर्मल तेहि ललाट की रूप। निसि दिन चलहिं न सरवरि पावैं तपि तपि होहिं अलूप।—जायसी (शब्द०)।

अलूफा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलोना'। उ०—मुखमन के घर तारी लाओ अमी अलूफा पाओगा।—गुलाल०, पृ० ५५।

अलूला(पु)—सज्ञा पु० [हिं० बुलबुला बलूता ?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—वानर बदन रुधिर लपटाने छवि के उठत अनूले। रघुपति रन प्रताप रन सरवर, मनहुँ कमलकुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख[1]—वि० [स०] १ जिसके विषय मे कोई भावना न हो सके। दुर्बोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रस। राम सगुन भए भक्त प्रेम बस।—तुलसी (शब्द०)। २ जिसका लेखा न हो सके। बेहिसाब। बेअदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—जोग यज्ञ जप ध्यान अलेख। तीरथ फिरे धरे बहु भेख।—कबीर (शब्द०)।

अलेख[2](पु)—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासित अरुनारे पानिप के राखिवे को, नीरय के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३६।

अलेख[3](पु)—सज्ञा पु० [स० लेख=देवता] देवता। देव। उ०—सजि नियं नरमेषनि सहित अलेखनि करहिं असेषनि गानन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २२६।

अलेखा(पु)—वि० [स० अलेख] १ जो गिना न जा सके। बेहिसाब। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—सूरदास यह मति आए बिन सब दिन गए अलेखे। का जानै दिनकर की महिमा अध नैन बिन देखे।—सूर०, २।२५।

अलेखी(पु)[1]—वि० [स० अलेख] गडबड मचानेवाला। अधेर करनेवाला। अन्यायी। उ०—बडे अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमजस मो मगन हौं लीजै गहि बाही।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी[2]—वि० [स० अ+लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेखा न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छवि ऐसी औ, असमसरी ममसरी दीवे कों परैं लियैं।—भिखारी० ग्र० भा० २, पृ० १८६।

अलेपक[1]—वि० [स०] किसी भी चीज मे लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुष। वेदाग [को०]।

अलेपक[2]—सज्ञा पु० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्व निवासी सदा अलेपा तोही मग समाई।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४६।

अलेल(पु)—वि० [प्रा० अलित्तहं=अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनआनद खेन अलेल दमै बिलसैं, सुलसैं लट भूमि झुलि।—घनआनद, पृ० १५६।

अलेलहा—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव(पु)—वि० [हिं०] अलेप। अलिप्त। उ०—सुने अचभो सो नगै सहजो ब्रह्म अलेव।—सहजो०, पृ० ४६।

अलैया‡—सज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ(पु)—वि० [स० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक से भिन्न। उ०—जपि राज दुजराज सम। तुम मति रूप अलोइ।—पृ० रा०, २५।१५३।

अलोक[1]—वि० [स०] १ जो देखने मे न आए। अदृश्य। २ लोक शून्य। निर्जन। एकात। ३ पुण्यहीन।

अलोक[2]—सज्ञा पु० १ पातालादि लोक। परलोक। २ जैन शास्त्रानुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमे मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। (पु) ३ बिना देखी बात। मिथ्यादोष। कलक। निंदा। उ०—(क) लछमण सीय तजी जब ते बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामच०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामच०, पृ० १६४। ४ ससार का विनाश [को०]।

यौ०—अलोक सामान्य=अद्वितीय। असामान्य।

अलोक[3](पु)—सज्ञा पु० [सं० आलोक] दे० 'आलोक'।

अलोकन—सज्ञा पु० [स०] अदृश्यता। न दिखाई पडना [को०]।

अलोकना(पु)—क्रि० स० [स० आलोकन] देखना। ताकना। उ०—रचक दीठि को मार लहे बहु बार बिलोकनि ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक अलोकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैसी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [स०] जो दीख न पडे। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। बिना देखा हुआ [को०]।

अलोकी(पु)—वि० [हिं० अलोक=निंदा+ई (प्रत्य०)] निंदित। कलकी। बदनाम। उ०—अमैं सभ्रमी, यत्र शोकै मशोकी अधर्मी अधर्मी अलोकै अलोकी।—रामच०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [स०] १ जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग्य। २ बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [स०] १ जिसे आँख न हो। २ बिना खिडकी या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [स० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १ बिना नमक का। जिसमे नमक न पडा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६। २ जिसमे नमक न खाया जाय, जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३ फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—केसोदास बोले बिन, बोलके सुने बिना हू हिलन मिलन बिना मोह क्यो सरतु है। कौ लग अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन, नीर बिना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप(पु)—वि० [स० लोप] दे० 'लोप'। उ०—अलोप टोप कै प्रगेह चाह चोप सो धरै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८४।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट[1]—वि०[सं०]१ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३. नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट[2]—संज्ञा पु० घर में झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[1]—वि० [सं० अवकेशिन्] १. फल न देनेवाला। २ लघु या अल्प बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[2]—संज्ञा पु० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवक्खन⑨—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[सं०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोड़ा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर से रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पु० [सं०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ में आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला। २ मूल्य। दाम। ३. भाड़ा। किराया। ४ कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १. अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक[1]—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक[2]—संज्ञा पु० किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—संज्ञा पु० [सं०] १ कर्कश स्वर। असह्य कड़ी बोली। २ कोसना। गाली। ३. निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पु० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पु० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[सं०]१ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड़ गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त] १ गिराना। अध:पात करना। नीचे फेंकना।

विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मों या क्रियाओं में से एक है।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में उसके किसी पदार्थ में होकर जाने से वक्रता का होना। ३ निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाड़ना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पु० [सं० अवखण्डन] १. नष्ट करना। तोड़ फोड़ करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोड़ना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पु० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पु० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली फुंसिया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि०[सं०]१ स्वजनों से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे सभी भाँति अवगत है"।—चंद्र०, पृ० २१५।

क्रि० प्र०—होना=मालूम होना। जान पड़ना।

२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३ वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना⑨—क्रि० स० [सं० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।—यामें ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। धारणा। समझ २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगय—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तड़के नहाया हुआ [को०]।

अवगननाⓅ†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पु० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर⑨—वि० [सं० अवग्रह=ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] जान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] नहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [सं० अवगाढ] १ निविड़। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। धंसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४ जमता या गाढ़ा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना⑨—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना⑨—क्रि० स० [सं० अव+गृ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो और न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन बाहि अवगारे।—सूर० (शब्द०)।

अवकृपा—सज्ञा स्त्री० [स०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट[1]—वि०[स०]१ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३ नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट[2]—सज्ञा पुं० घर मे झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [स०] लटकते हुए बालोवाला [को०]।

अवकेशी[1]—वि० [स० अवकेशिन्] १ फल न देनेवाला। २ लघु या अल्प बालोवाला [को०]।

अवकेशी[2]—सज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [स०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवकोकन(पु)—सज्ञा पुं० [स० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[स०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [स०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोडा [को०]।

अवक्रंद—वि० [स० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रदन'।

अवक्रदन—सज्ञा पुं० [स० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर से रोना [को०]।

अवक्रम—सज्ञा पुं० [स०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—सज्ञा पुं० [स०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ मे आना [को०]।

अवक्रय—सज्ञा पुं० [स०] १ बदला। २ मूल्य। दाम। ३ भाडा। किराया। ४. कर।

अवक्रांति—सज्ञा स्त्री० [स० अवक्रान्ति] १ अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक[1]—वि० [स०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—प्रवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दडविधान था।

अवक्रीतक[2]—सज्ञा पुं० किराए या भाडे पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—सज्ञा पुं० [स०] १ कर्कश स्वर। असह्य कडी बोली। २ कोसना। गाली। ३ निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [स०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—सज्ञा पु० [स०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—सज्ञा पु० [स०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[स०]१ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लाछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [स०] जिसपर छींक पड गई हो।

अवक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अवक्षिप्त] १. गिराना। अध पात करना। नीचे फेंकना।

विशेष—वैशेषिक शास्त्र मे यह अपक्षेपण, आकुचन आदि पाँच कर्मों या क्रियाओं मे से एक है।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति मे उसके किसी पदार्थ मे होकर जाने से वक्रता का होना। ३ निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाडना [को०]।

अवक्षेपणी—सज्ञा स्त्री० (स०) बाग। लगाम [को०]।

अवखडन—सज्ञा पु० [स० अवखण्डन] १ नष्ट करना। तोड फोड करना। २. खड खड या अलग अलग तोडना [को०]।

अवखात—सज्ञा पुं० [स०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—सज्ञा पु० [स०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगड—सज्ञा पुं० [स० अवगण्ड] चेहरे या गालो पर होनेवाली फुडिया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि०[स०]१ स्वजनो से अलग रहनेवाला। एकातवासी [को०]

अवगणन—सज्ञा पु० [स०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [स०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [स०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है"।—चद्र०, पृ० २१५।

क्रि० प्र०—होना=मालूम होना। जान पडना।

२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३. वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [स० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।—यामें ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगथ—वि० [स०] प्रातःस्नात। तडके नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [स० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—सज्ञा पु० [स०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [स० अवग्रह=ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [स०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [स० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [स० अवगाढ] १ निविड। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४. जमता या गाढा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—सज्ञा पुं० [स०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [स० अव+गृ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो और न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे।—सूर० (शब्द०)।

अवगासⓤ—सज्ञा पुं० [स० अवकाश, प्रा० ओगास] जगह। स्थान। मैदान। उ०—भए अवगास कांस वन फूले। कत न फिरे बिदेसहिं भूले।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६।

अवगाह[1]ⓤ—वि० [स० अवगाध] १ अथाह। गहरा। अत्यत गभीर। उ०—(क) पेम समुद जो अति अवगाहा। जहाँ न वार न पार न थाहा।—जायसी ग्र०,पृ० ६०। २ अनहोनी। कठिन। उ०—तोरेहु धनुष ब्याहुअ अगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा।—मानस, १।२४५।

अवगाह[2]ⓤ—सज्ञा पुं० १ गहरा स्थान। २ सकट का स्थान। ३ कठिनाई। उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी। जेंह अवगाह दीन्ह तहँ हाथी।—जायसी (शब्द०)।

अवगाह[3]—सज्ञा पुं० [सं०] १ भीतर प्रवेश। हलना। २ जल मे हलकर स्नान करना। ३ स्नान करने की जगह [को०]। ४ डोल या बालटी [को०]। ५. भलीभाँति अध्ययन या छानबीन [को०]।

अवगाहक—वि० [सं०] अवगाहन करनेवाला। उ०—अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल मे।—रजत०, पृ० १८।

अवगाहन—सज्ञा पुं० [स०] १. पानी मे हलकर स्नान करना। निमज्जन। उ०—शीतल जल मे अवगाहन कर शैल शिला पर बैठ गया।—प्रेम०, पृ० ३१। प्रवेश। पैठ। ३ मथन। विलोडन। ४ थहाना। खोज। छानबीन। जैसे—नगर भर अवगाहन कर डाला, कही लडके का पता न लगा। ५ चित्त धँसाना। लीन होकर विचार करना। जैसे—खूब अवगाहन करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा। वि० दे० 'अवगाह'।

अवगाहना[1]—क्रि० अ० [स० अवगाहन] १ हलकर नहाना। निमज्जन करना। उ०—जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. डूबना। पैठना। धँसना। मग्न होना। उ०—भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।—तुलसी (शब्द०)।

अवगाहना[2]—क्रि० स० १ थहाना। छानना। छानबीन करना। उ०—अवगाहन, सीतहि चाहन, यूथप यूथ सबै पठाए।—राम च०, पृ० ९०। (ख) सहज सुगधि शरीर की, दिसि विदिसन अवगाहि। दूती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहि।—केशव (शब्द०)। २ विचलित करना। हलचल डालना। मथना। उ०—सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि। करि उर कोप कराल, अवगाही सेना सकल।—केशव (शब्द०)। ३ चलाना। हिलाना। डुलाना। उ०—नद सोक विषाद कुसाग्र ग्रसे करि धीरहि तें अवगाहनो है। हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति अत निबाहनो हैं।—दीन ग्र० पृ० २५८। ४ सोचना। विचारना। समझना। उ०—(क) अगसिगार स्याम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत। सूर स्याम आपै की नाहिं, मन मन यह अवगाहत।—सूर०, १०। २०२८। (ख) पच्छिम मे याही मे बडो है राजहस एक सदा नीर छीर के विवेक अवगाहे ते।—दूलह (शब्द०)। ५ धारण करना। गहण करना। उ०—जाही समय जौन ऋतु आवै। तबही ताको गुन अवगाहै।—लाल (शब्द०)।

अवगाहित—वि० [स०] १ नहाया हुआ। २ जिसमे नहाया गया हो। ३ अच्छी तरह मनन किया गया।

अवगाही—वि० [स० अवगाहिन्] १ खोजनेवाला। अनुसधान करनेवाला। २ चिंतन करनेवाला। ३ थाह लगानेवाला। गहरे तक पैठनेवाला। ४ स्नान करनेवाला [को०]।

अवगाह्य—वि० [स०] स्नान करने योग्य (प्राणी)। २ स्नान के निमित्त उचित (स्थान)। ३ अध्ययन, मनन करने योग्य [को०]।

अवगीत[1]—वि० [सं०] १ जिसकी निंदा की गई हो। निंदित। २ बदमाश। दुष्ट। फिर फिर देखा हुआ। सुपरिचित [को०]।

अवगीत[2]—सज्ञा पुं० १ निंदा। २ निंद्य या अभद्र गीत। बेसुरा गीत [को०]।

अवगुठन—सज्ञा पु० [स० अवगुण्ठन] [वि० अवगुठित] १ ढँकना। छिपाना। २ रेखा से घेरना। ३ पर्दा। ४ घूँघट। बुर्का। ५ झाड़ू [को०]। ६ धार्मिक अनुष्ठानो मे प्रयुक्त अँगुलियो की एक मुद्रा [को०]।

अवगुठनवती—वि० स्त्री० [सं० अवगुण्ठनवती] घूँघटवाली। उ०—किंतु वह अर्ध अवगुठनवती कौन ?—इरावती, पृ० १०१।

अवगुठिका—सज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठिका] १ घूँघट। २ जवनिका। पर्दा। ३ चिक।

अवगुठित—वि० [सं० अवगुण्ठित] ढँका हुआ। छिपा हुआ। २ चूर किया हुआ। चूर्णित [को०]।

अवगुडित—वि० [सं० अवगुण्डित] चूर्ण किया हुआ [को०]।

अवगुफन—सज्ञा पु० [स० अवगुम्फन] १ गूथना। गुहना। २ ग्रथन। बुनना।

अवगुफित—वि० [स० अवगुम्फित] १ गूँथा हुआ। गुहा हुआ। २ बुना हुआ। ग्रथित।

अवगुण—सज्ञा पुं० [स०]१ दोष। दूषण। ऐब। २ अपराध। बुराई। खोटाई।

अवगुनⓤ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अवगुण'। उ०—गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—मानस, १।५।

अवगुरण—सज्ञा पुं० [स०] धमकाना। क्षति पहुँचाने की धमकी देना [को०]।

अवगूहन—सज्ञा पुं० [स०] १ छिपाना। २ आलिंगन करना [को०]।

अवगोरण—सज्ञा पुं० [स०] दे० अवगुरण [को०]।

अवग्गी—वि० [स०] नियत्रण' मे न रहनेवाला [को०]।

अवग्याⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवज्ञा'। उ०—तौ कहि इती अवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३३९।

अवग्रह—सज्ञा पुं० [स०] १ रुकावट। अटकाव। अडचन। बाधा। २ वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। ३ बाँध। बद। ४ व्याकरण मे सधिविच्छेद। ५ अनुग्रह का उलटा। ६ गजसमूह। ७ हाथी का ललाट। हाथी का माथा। ८ स्वभाव। प्रकृति। ९ शाप। कोसना। १० लुप्ताकार का चिह्न। खंडाकार(ऽ) [को०]। अकुश [को०]।

अवग्रहण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवमान। अपमान। २ रोक। बाधा [को०]। ३ ज्ञान [को०]।

अवग्राह—सज्ञा पुं० [स०] १ सबधविच्छेद। अलगाव। २. बाधा [को०]। ३ कोसना [को०]। दे० 'अवग्रह'।

अवघट(पु)—वि० [स० अव+घट्ट=घाट] कुघाट। अटपट। अडबड। विकट। दुर्गम। कठिन। दुर्घट। उ०—(क) सरिता वन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहि वर बाटा।—मानस, ३।७ (१क)। (ख) घाट बाट अवघट यमुना तट बातें कहत बनाय। कोऊ ऐसो दान लेत है कौने सिखै पठाय।—सूर (शब्द०)।

अवघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] १ बिल। गुफा। २. पीसने की चक्की। ३ हिनाना [को०]।

अवघट्टन—सज्ञा पुं० [स०] १ पीसना। मर्दन। २ दो वस्तुओं का परस्पर सपर्क। मिलन [को०]।

अवघर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] घसना। माँजना। रगडना [को०]।

अवघाटक—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का हार [को०]।

अवघात—सज्ञा पुं० [सं०] १. चोट। ताडन। घन। प्रहार। २. कूटना [को०]। ३. अकाल मृत्यु। अस्वाभाविक मृत्यु [को०]।

अवघाती—वि० [सं० अवघातिन्] अवघात करनेवाला [को०]।

अवघूर्ण[1]—सज्ञा पुं० [सं०] बवडर [को०]।

अवघूर्ण[2]—वि० क्षुब्ध [को०]।

अवघूर्णन—सज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना। बवडर [को०]।

अवघोरित—वि० [सं०] चारो ओर से ढँका या मढा हुआ [को०]।

अवघोषक—सज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उडानेवाला व्यक्ति।

विशेष—चद्रगुप्त मौर्य के समय मे ऐसे लोगो को फाँसी पर चढाने का दड दिया जाता था।

अवघोषणा—सज्ञा स्त्री० [स०] घोषणा [को०]।

अवच—क्रि० वि० [स०] नीचे [को०]।

अवचट[1](पु)†—सज्ञा पुं० [सं० अव=नहीं+हिं० घट=जल्दी अथवा स० अव=थोडा+हिं० चित] अनजान। अचक्का उ०—पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला।—मानस, १।२४८।

अवचट[2]—सज्ञा पुं० [हिं०] कठिनाई। अवघट। अडस। चपकुलिस। जैसे—अवचट मे पड़कर मनुष्य क्या नही करता।

अवचन—सज्ञा पुं० [स०] १ वचन का अभाव। मौन। २ बुरा वचन। निंदा। दुर्वचन।

अवचनीय—वि [स०] १. जो कहने योग्य नही। २. अश्लील। फूहड।

अवचय—सज्ञा पुं० [स०] चुनकर इकट्ठा करना। फूल या फल तोडकर बटोरना। उ०—नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन मे उठता था।—प्रेम०, पृ० १७।

अवचल(पु)†—वि० [सं० अविचल] अचल।—उ०—पुहमी जोइ अवचल प्रेम।—रघु० रू० पृ० १२४।

अवचस्कर—वि० [सं०] मौन। चुप [को०]।

अवचाय—सज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि चुनना [को०]।

अवचार[1]—वि०[स०]नीचे या ऊपर की ओर जाता जाता हुआ [को०]।

अवचार[2]—सज्ञा पुं० १ रास्ता। सडक। २ कार्यक्षेत्र [को०]।

अवचित—वि०[स०]१ चुना हुआ। बटोरा हुआ। २ आबाद[को०]।

अवचूड—सज्ञा पुं० [स० अवचूड] ध्वजा के अगले भाग मे नीचे झूलता हुआ वस्त्र [को०]।

अवचूडा—सज्ञा स्त्री० [स० अवचूडा] माला [को०]।

अवचूटिका—सज्ञा स्त्री० [स०] टिप्पणी। लघु व्याख्या [को०]।

अवचूरी—सज्ञा स्त्री० [स०अवचूरि] टीका। टिप्पणी।

अवचूर्णित—वि० [स०] १ विचूर्ण किया हुआ। भलीभाँति पीसा हुआ। २ मिश्रित किया हुआ। मिलाया हुआ [को०]।

अवचूल—सज्ञा पुं० [स०] अवचूड [को०]।

अवचूलक—सज्ञा पुं०[स]चँवरी गाय की पूँछ के बाल या मोरपख का बना हुआ चँवर [को०]।

अवचेतन[1]—वि० [स०] अवचेतना सबधी। आशिक चेतनावाला।

अवचेतन[2]—सज्ञा पुं०[स०]मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन मे न होने पर भी थोडा प्रयास करने से चेतना मे लाया जा सके। इसका स्थान अह तथा अचेतन के बीच माना गया है।

अवचेतना—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अवचेतन'।

अवच्छद—सज्ञा पुं० [स०] ढकना। सरपोश।

अवच्छाद—सज्ञा पुं० [स०] ढकना। अवच्छद [को०]।

अवच्छिन्न—वि०[स०]१ जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ से अवच्छेद किया गया हो। अलग किया हुआ। पृथक। २ विशेषणयुक्त। ३ सीमित।

अवच्छुरित[1]—सज्ञा पुं० [स०] कठोर या कर्कश हास्य [को०]।

अवच्छुरित[2]—वि० मिला जुला। मिश्रित [को०]।

अवच्छेद—सज्ञा पुं० [स०][वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १ अलगाव। भेद। २ इयत्ता। हद। सीमा। ३ अवधारण। निश्चय। छानबीन। ४ सगीत मे मृदग के बारह प्रबधों मे से एक। ५ परिच्छेद। विभाग। ६ किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिससे अन्य पदार्थ पृथक् प्रतीत हो [को०]। ७ व्याप्ति [को०]।

अवच्छेदक[1]—वि० [स०] १ छेदक। भेदकारी। अलग करनेवाला। २. इयत्ताकार। हद बाँधनेवाला। ३ अवधारक। निश्चय करनेवाला।

अवच्छेदक[2]—सज्ञा पुं० १ विशेषण। २ सीमा। इयत्ता [को०]।

अवच्छेदकता—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अवच्छेद करने का भाव। पृथक् करने का धर्म। अलग करने का धर्म। २ हद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति।

अवच्छेदन—सज्ञा पुं०[स०]१. काटना। विभाजन। खड करना। २. सीमा निर्धारण करना [को०]।

अवच्छेद्य—वि० (सं०) अलगाव के योग्य।

अवच्छेपणी—सज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना। दाँती। लगाम।

अवछग(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग] दे० उछग]।

अवजय—सज्ञा स्त्री० (सं०) हार। पराजय [को०]।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ। विजित। तिरस्कृत [को०]।

अवज्जिⓊ—संज्ञा पु०[फा० आवाज] १ पुकार। आवाज। २ शोर-गुल। उ०—सुनी धाह जसवत नृप, आयो सेन समज्जि। ढलकि ढाल बद्दल मिलिय, पुव्व झड्डाउ अवज्जि। पृ० रा०, ४।२५।

अवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १ अपमान। अनादर। २ आज्ञा का उल्लघन। आज्ञा न मानना। अवहेला। ३ पराजय। हार। ४ वह काव्यालकार जिसमे एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिखलाया जाय, जैसे,—करि बेदात विचार हू शठहि विराग न होय। रच न मृदु सेनाक भो निशि दिन जल मे सोय।—(शब्द०)।

अवज्ञात—वि० [स०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर। अप्रतिष्ठा [को०]।

अवज्ञेय—वि [स०] अपमान के योग्य। तिरस्कार के योग्य।

अवझरिⓊ—संज्ञा स्त्री०[प्रा० ओज्झरी] दे० 'ओझरी'। उ०—झरझोरी तोरि अवझरि उजरि। गहि हमेन हम्मीर निय।—पृ० रा०, ६४।३३५।

अवझोराⓊ—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओरुज्झा] उलझन। झझट। गाँठ। उ०—चित्र बचित्र इहै अवझोरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा।—कबीर ग्र०, पृ० ३१०।

अवट—संज्ञा पुं० [स०] १ गड्ढा। कुड। २ हाथियो के फँसाने के लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं। खाँडा। माला। ३ गले के नीचे कधे और काँख आदि का गड्ढा। ४ एक नरक का नाम। ५ दाँत का गड्ढा। दतकोटर [को०]। ६ बाजीगर। ऐंद्रजालिक [को०]।

यौ०—**अवटनिरोधन, अवटविरोधन**=नरकविशेष का नाम।

अवटकच्छप—संज्ञा पुं० [स०] १ गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०]।

अवटना[1]Ⓤ—क्रि० स० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन, आट्टन] १ मथना। आलोडन करना। २ किसी द्रव पदार्थ को आग पर रखकर चलाकर गाढा करना। उ०—(क) परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।—मानस, ७।११७। (ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखैं। सद्य दधि दूध ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं।—सूर०, १०।१५९६।

मुहा०—**अवटि मरना**=भ्रमना। मारे मारे फिरना। चक्कर खाना। दु ख उठाना। उ०—जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यो भवसिंधु तरौं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२९।

अवटना[1]Ⓤ—क्रि० अ० [सं० अटन] घूमना फिरना।

अवटी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ गड्ढा। २ कुआँ। ३ छेद [को०]।

अवटीट—वि० [स०] चपटी नाकवाला। नकचिपटा।

अवटु—संज्ञा पुं० १ बिल। २ कुआँ। ३ गले का पिछला हिस्सा। ४ शरीर का दबा हुआ भाग। ५ एक प्रकार का वृक्ष।

अवटुज—संज्ञा पु० [सं०] सिर के पिछले भाग का बाल [को०]।

अवडग—संज्ञा पुं० [स० अवटङ्ग] हाट। बाजार [को०]।

अवडीन—संज्ञा पुं०[स०]पक्षी की उडान। पक्षियों का ऊपर से नीचे की तरफ आना [को०]।

अवडेर†—संज्ञा पु०[स० अव+हिं० रार या राट]झमेला। झझट। बखेडा।

अवडेरनाⓊ[1]—क्रि० स० [स० उद्वासन या हिं० अवडेर] १ न बसने देना। न रहने देना। उ०—गोरानाथ मोरे ही सरोष होत थोरे दोष, पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी ग्र०, पृ० २५६। २ चक्कर मे डालना। फेर मे डालना। उ०—(क) पच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही।—मानस, १।७९। (ख) अवडेरि दई कुल-कानि हुती।—सूर०, १०।१५९६।

अवडेराⓊ†—वि० [हिं० अवडेर] १ घुमाव फिराववाला। चक्करदार। २ बेढब। कुढब। उ०—जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७२।

अवढरⓊ—वि० [स० अव+हिं० ढरना] दे० 'ओढर'। उ०—(क) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।—मानस, २।४४। (ख) लच्छ सौ बहु लच्छ दीन्हो दान अवढर ढरन।—सूर०, १।२०२।

अवतक्षण—संज्ञा पुं० [स०] टुकडे मे काटी गई कोई वस्तु [को०]।

अवतत—वि० [स०] १ ढँका हुआ। आवृत। २ फैला हुआ। विस्तृत [को०]।

अवतमस—संज्ञा पु० [स०] १ साधारण अधकार। क्षीण अधकार। २ अधकार। ३ अस्पष्टता। गुह्यता [को०]।

अवतरण—संज्ञा पुं० [स०] १ उतारना। पार होना। २ उतार। २ शरीर धारण करना। जन्म ग्रहण करना। ३ नकल। प्रतिकृति। ४ किसी पुस्तक या लेख का ज्यो का त्यो उतारा या नकल किया हुआ अश। उद्धरण। उ०—ऊपर दिए अवतरणों मे हम स्पष्ट देखते हैं कि किसी उक्ति की तह मे काव्य की सरसता बराबर पाई जायगी।—रस०, पृ० ३६। ५ प्रादुर्भाव। ६ सीढ़ी जिनसे उतरें। घाट की सीढी। ७ घाट। ८ तीर्थ [को०]। ९ परिचय। उपोद्घात। [को०]।

यौ०—**अवतरणचिह्न। अवतरणमगल।**

अवतरणचिह्न—संज्ञा पु० [स०] उल्टे लगे हुए विराम चिह्न जिनके बीच किसी का कथन उद्धृत किया गया हो, जैसे—' '।

अवतरणमगल—संज्ञा पु० [स० अवतरणमङ्गल] श्रद्धापूर्वक किया गया स्वागत [को०]

अवतरणिका—संज्ञा स्त्री०[स०]१ ग्रथ की प्रस्तावना। उपोद्घात। अवतरणी। २ परिपाटी। रीति।

अवतरनाⓊ—क्रि० अ० (स० अवतरण) प्रकट होना। उपजना। जन्मना। उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) बहुरि हिमाचल के अवतरी। समय पाइ सिव बहुरो बरी।—सूर०, ४।५।

अवतरणी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ ग्रथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका जो इस अभिप्राय से लिखी जाती है कि विषय की सगति मिल जाय। उपोद्घात। २. रीति। परिपाटी।

अवतरित—वि० [हिं० अवतरना] १. नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। उ०—अवतरित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा।—साकेत, पृ० २१८। २ जन्मा हुआ। शरीर ग्रहण किया हुआ। ३ किसी दूसरे स्थल से लिया हुआ। ४ अवतीर्ण।

अवतर्पण—संज्ञा पु० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन। अनुकूल उपचार [को०]।

अवताडन—संज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १ रौंद देना। कुचल देना। २ आघात करना या चोट देना [को०]।

अवतान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। आवरण। २ लटका हुआ चेहरा। ३ धनुष की प्रत्यंचा ढीली करना। ४ तानना। फैलाना। ५ लताओं का फैलाव। ६ आतपत्र। चँदवा [को०]।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १ ताप देनेवाला। तपानेवाला। २ (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०]।

अवतार—संज्ञा पु० [सं०] १ उतरना। नीचे आना। २ जन्म। शरीरग्रहण। उ०—(क) नव अवतार दीन्ह विधि आजू। रही छार भइ मानुष माजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तव रहा तुम्हारा।—तुलसी (शब्द०)। ३ पुराणों के अनुसार किसी देवता का मनुष्यादि समारी प्राणियों का शरीर धारण करना। ४ विष्णु का संसार में शरीर धारण करना।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव, इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किप्रधान माने जाते हैं।

५ Ⓤ सृष्टि। शरीररचना। उ०—कीन्हेसि धरती सरग पताल। कीन्हेसि बरन बरन अवतार।—जायसी (शब्द०)। ६ अवतरण भूमि। उतरने का स्थान [को०]। ७ तात्पर्य [को०]। ८ अनुवाद [को०]। ९ विषयप्रवेश। आमुख। भूमिका [को०]। १० तीर्थ [को०]। ११ विशिष्ट व्यक्ति [को०]। १२ उत्पत्ति। विकास [को०]।

मुहा०—**अवतार लेना** = शरीर ग्रहण करना। जन्म लेना। उ०—असमंजस सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस-उदारा।—तुलसी (शब्द०)। **अवतार धरना** = जन्म ग्रहण करना। उ०—भुव की रक्षा करन जु कारण धरि वराह अवतार। पीछे कपिल रूप हरि धारयो कीन्हो साख विचार।—सूर (शब्द०) Ⓤ **अवतार करना** Ⓤ = शरीर धारण करना। उ०—अरुन असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर (शब्द०)।

यौ०—**अवतारकथा**। **अवतारमंत्र** = भगवान् से अवतार ग्रहण करने के लिये की गई प्रार्थना। **अवतारवाद**।

अवतारण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १ उतारना। नीचे लाना। उ०—क्रूर कर्मों की अवतारणा से भी एक बार सद्धर्म के उठाने की आकांक्षा थी।—स्कंद०, पृ० ८४। २. उतारना। [को०]। ६ पूजा। अर्चा [को०]। ७. पोशाक का छोर या किनारा [को०]।

अवतारना Ⓤ—क्रि० सं० [सं० अवतारण] १ उत्पन्न करना। रचना। उ०—चाँद जैस सग विधि अवतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।—जायसी (शब्द०)। २. उतारना। जन्म देना। उ०—(क) सिंघलदीप राजघरबारी। महा सरूप दई अवतारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ धनि धरि जिहिं अवतारी। धन्य पिता माता तेरे छवि निरखति हरि महतारी।—सूर०, १०।७०३।

अवतारवाद—संज्ञा पु० [सं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि का शरीर धारण करने का सिद्धांत।

अवतारी[1]—वि० [सं० अवतारिन्] १ उतरनेवाला। अवतार ग्रहण करनेवाला। उ०—धनि यशुमति जिन बस किये अविनाशी अवतारि। धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि।—सूर (शब्द०)। २. देवांशधारी। अलौकिक। उ०—कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया। बड़ो पूत तैं जायो। यह कोउ आहि पुरुष अवतारी भाग हमारें आयो।—सूर०, १०।२००६।

अवतारी[2]—संज्ञा पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके ७५०२५ प्रस्तार हैं। रोला, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके भेद हैं।

अवतीर्ण—वि० [सं०] १ उतरा हुआ। अवतरित। २ आप्लावित [को०]। ३ व्यतीत, जैसे रात्रि [को०]। ४ पार किया हुआ [को०]। ५ स्नात [को०]। ६ अवतार ग्रहण किया हुआ [को०]। ७ उदाहृत। उद्धृत।

अवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी दुर्घटनावश हो गया हो [को०]।

अवथ्थ Ⓤ—वि० [सं० अवस्तु] निरर्थक। व्यर्थ। अवस्तु। उ०—तुम चित्त छड़ि हम घर चलहि। इह अवथ्थ पत्रग।—पृ० रा०, ६६।३५६।

अवदंश—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान के समय जो कबाब, बड़े आदि खाए जाते हैं। गजक। चाट।

अवदंस Ⓤ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अवदंश'।

अवदग्ध—वि० [सं०] जला हुआ [को०]।

अवदमन—संज्ञा पुं० [सं० अपदमन] अच्छी तरह दबाना। दमन करना।

अवदरण—संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ना फोड़ना। अच्छी तरह दरना या पीसना [को०]।

अवदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपन। जलन। २ ग्रीष्म ऋतु [को०]।

अवदात—वि० [सं०] १ शुभ्र। उज्वल। श्वेत। उ०—हँसी रानी सुनकर वह बात, उठी अनुराग आभा अवदात।—साकेत, पृ० २७। २ शुद्ध। स्वच्छ। विमल। निर्मल। उ०—सोच अति पोच उर मोच दुखदानिए मानु यह बात अवदात मम मानिए।—रामच०, पृ० ७४। ३ शुक्ल वर्ण का। गौर। ४ पीत वर्ण का। पीला। ५ खूबसूरत। सुंदर [को०]। ६ उत्तम। पुण्यशील [को०]।

अवदान—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रशस्त कर्म। २ शुद्ध आचरण। अच्छा काम। ३ खंडन। तोड़ना। ३ पराक्रम। शक्ति बल। ४. अतिक्रम। उल्लंघन। ५ शुद्ध करना। पवित्र करना। साफ करना। ६. वीरणमूल। खस। उशीर। गाँडर की जड़।

अवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी। बली। २ अतिक्रमणकारी। सीमा का अतिक्रमण करनेवाला। ३ व्यय न करके धनसंचय करनेवाला। कंजूस।

अवदारक[1]—वि० [स०] विदारण करनेवाला। विभाग करनेवाला।

अवदारक[2]—संज्ञा पु० मिट्टी खोदने के लिये लोहे का एक मोटा डंडा। खंता। रंभा।

अवदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदारण करना। विभाग करना। २ ताड़ना। फोड़ना। ३ मिट्टी खोदने का औजार। रंभा। खंता।

अवदारित—वि [सं०]विदारण किया हुआ। विदीर्ण। टूटा फूटा।

अवदाह—संज्ञा पुं०[सं०] १ अत्यधिक गर्मी। भीषण ताप। २ आग लगाना। जलना। ३ कुश की जड़। खस [को०]।

अवदीर्ण—वि० [स०] १ विभक्त। टूटा हुआ। २ घबराया हुआ। उदास। ३ निंदला या घुना हुआ [को०]।

अवदोह—संज्ञा पुं० [स०] १ दूध। दुग्ध। २ दूध दुहना। दोहन।

अवद्य[1]—वि० [स०] १ अधम। पापी। २ गर्हित। निंद्य। ३ त्याज्य। ४ कुत्सित। निकृष्ट।

अवद्य[2]—संज्ञा पु० १ दोष। २ पाप। ३ निंदा ४ लज्जा [को०]।

अवध[1]—संज्ञा पु०[सं० अयोध्या]१ कोशल। साकेत एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। २ अयोध्या नगरी।

अवध(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'।

अवध[3]—वि० [सं०] अवध्य। न मारने योग्य [को०]।

अवधान[1]—संज्ञा पु० [स०] १ मन का योग। चित्त का लगाव। मनोयोग। २ चित की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर लगाना। समाधि। ३ ध्यान। सावधानी। चौकसी।

अवधान[2](पु)—संज्ञा पुं०[सं० आधान] गर्भ। गर्भाधान। पेट। उ०—जैस अवधान पूर होइ मासू। दिन दिन हिये होइ परगासू।—जायसी ग्र०, पृ० १६।

अवधानी—वि० पुं०[स०अवधानिन्]ध्यान रखनेवाला। ध्यानी [को०]।

अवधार—संज्ञा पु० [स०] निश्चय। सीमा [को०]।

अवधारक—वि० [स०] अवधारण करनेवाला। किसी एक विषय पर अपने को केंद्रित करनेवाला [को०]

अवधारण—संज्ञा पु० [स०] [वि० अवधारित, अवधारणीय] १ विचारपूर्वक निर्धारण करना। निश्चय। २ शब्दार्थ की इयत्ता स्थिर करना [को०]। ३ शब्द आदि पर बल देना [को०]। ४ केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [को०]।

अवधारणीय—वि० [स०] विचार करने योग्य। निश्चय योग्य।

अवधारना(पु)—क्रि० स०[स० अवधारण] १ धारण करना। ग्रहण करना। उ०—विप्र असीम विनति अवधारा। सुवा जीव नहिं करौ निरारा। जायसी (शब्द०)। २ निश्चय करना। समझना।

अवधारित—वि० [स०] निश्चित। निर्धारित।

अवधार्य—वि० [स०] निश्चय करने योग्य। अवधारण करने योग्य।

अवधावन—संज्ञा पुं० [स०] १. पीछा करना। २. साफ करना। धोना [को०]।

अवधावित—वि० [स०] १ पीछा किया हुआ। जिसका पीछा किया गया हो। २ साफ किया हुआ [को०]।

अवधि[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सीमा। हद। पराकाष्ठा। उ०—जिन्हहिं बिरचि बड़ भयेउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।—तुलसी (शब्द०)। २ निर्धारित समय। मीयाद। उ०—रहयौ ऐचि, अनु न लहै अवधि दुमाननि बीरु। आली बाढ़नु बिरहु ज्यौं पचासी को चीर।—बिहारी र०, दो० ४००। ३ गड्ढा। गर्त [को०]। ४ प्रमाण [को०]। ५ उपजनपद। पड़ोस [को०]। ६ अंत समय। अंतिम काल। उ०—(क) आजु अवधिभर पहुँचे गए जाउँ मुखरात। वेगि रोहु मोहि मारहु जनि चालहु यह बात।—जायसी। (शब्द०)। (ख) तेरी अवधि कहत मन कोऊ नाते कहियत बात। बिनु विश्वास गारिहै तो को आयु दैन कै प्रान।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—अवधि देना=समय निर्धारित करना। अवधि बदना=समय नियत करना। उ०—आज बिनु आनँद के मुख तेरो। निमि बसिबे की अवधि बदी मोहि सोक गए कहि आवन। सूरश्याम अनतहिं कहुँ लुबधे नैन गए दोउ सावन।—सूर (शब्द०)।

अवधि[2]—अव्य०[स०]तक। पर्यंत। उ०—तोसो हौं फिर फिर हित प्रिय पुनीत सत्य वचन कहत। विधि लगि लघु कोटि अवधि सुख सुखी दुख दहत।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—अद्यावधि=अब तक। समुद्रावधि=समुद्र तक।

अवधिज्ञान—संज्ञा पु० [स०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिसके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अंधकार और छाया आदि से व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो। अवधिदर्शन।

अवधिदर्शन—संज्ञा पु० [स०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना। अवधिज्ञान।

अवधिमान(पु)—संज्ञा पु० [स०] समुद्र। उ०—प्राची जाय अथर्व प्रतीची कै उदित भानु मानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को। लाँघि कै अवधि जो पै उमगै अवधिमान बाँधै यह चाल जो पै कालहू के गत को।—चरण (शब्द०)।

अवधी[1]—वि० [हिं० अवध+ई (प्रत्य०)] अवध संबंधी। अवध का। जैसे—'अवधी बोली'। २. अवध की भाषा।

अवधी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवधि[1]'।

अवधीरण—संज्ञा पुं० [स०] अपमान या तिरस्कार करना [को०]।

अवधीरणा—संज्ञा स्त्री० [स०] तिरस्कार। अवज्ञा।

अवधीरित—वि० [स०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवधू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'। उ०—अवधू ऐसा ज्ञान विचारी, ज्यूँ बहुरि न ह्वै संसारी।—कबीर ग्र०, पृ० १५६।

अवधूक—वि० [स०] बिना पत्नी का [को०]।

अवधूत[1]—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अवधूतिन्] १. संन्यासी। साधु। योगी। उ०—(क) धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२३। (ख) यह सूरति यह मुद्रा हम न देख अवधूत। जानै होहिं न योगी कोइ

राजा कर पूत ।—जायसी (शब्द०)। २. साधुओं का एक भेद। उ०—सेवरा सेवरा बान पर, सिध साधक अवधूत। आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत।—जायसी (शब्द०)।

अवधूत[2]—वि० [सं०] १ कंपित। हिला हुआ। २ विनष्ट। नाश किया हुआ। ३ अपमानित। तिरस्कृत [को०]। ४ अस्वीकृत [को०]। ५ बढ़ा हुआ [को०]। ६ आक्रांत [को०]। ७ विरक्त [को०]।

अवधूतवेश—वि० [सं०] बिना वस्त्र का। नग्न। विवस्त्र।

अवधूपित—वि० [सं०] सुगंधित किया हुआ। सुवासित [को०]।

अवधूलन—संज्ञा पुं० [सं०] घाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०]।

अवधृत—वि० [सं०] दे० 'अवधारित'।

अवधेय[1]—वि० [सं०] १ ध्यान देने योग्य। विचारणीय। २ श्रद्धेय। ३ जानने योग्य। ४ ध्यान योग्य। रखने योग्य [को०]।

अवधेय[2]—संज्ञा पुं० १ नाम। २ ध्यान [को०]।

अवध्य—वि० [सं०] वध के अयोग्य। न मारने योग्य। अवध। उ०—यह समझकर ही ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है।—चंद्र०, पृ० ७७।

अवध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवध्वस्त] १ परित्याग। छोड़ना। निंदा। कलंक। ३ चूर चूर करना। चूर्णन। नाश। ४ धूल। चूर्ण [को०]। ५ छिड़काव। छिड़कना। [को०]। ६ बिखरकर दूर जा पड़ना [को०]।

अवध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट। विनिष्ट। २ त्यक्त। ३ निंदित। ४. बिखेरा हुआ। ५ चूर चूर किया हुआ। ६ छिड़का हुआ [को०]।

अवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रीणन। प्रसन्न करना। २ रक्षण। बचाव। उ०—दूत राम राय को, सपूत पूत पौन को तू अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो। सीय सोच समन दुरित दोष दमन, सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८। ३ प्रीति। ४ इच्छा। कामना [को०]। ५. संतोष [को०]। ६ त्वरा। जल्दबाजी। [को०]।

अवन[2]—संज्ञा पुं० [सं० अवनि] १ जमीन। भूमि। २ रास्ता। राह। सड़क। उ०—गुरुजन बाहक जदपि पुनि बालक चालक सैन। कटै बटै न कढ़े तऊ रूप अवन ह्वै नैन।—(शब्द०)।

अवनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तारों का न दीख पड़ना [को०]।

अवनत—वि० [सं०] १ नीचा। झुका हुआ। उ०—वह बोधी नीचे गगन अपार जिसमें अवनत घन सजल भार।—कामायनी, पृ० २३४। २ गिरा हुआ। पतित। अधोगत। ३ कम। ४ अस्त होता हुआ [को०]। ५ विनीत। नम्र [को०]।

अवनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घटती। कमी। घाटा। न्यूनता। हानि। २ अधोगति। हीन दशा। तनज़ुली। उ०—पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली, अवनति को जो सहन करे गंभीर हो।—महा०, पृ० २। ३ झुकाव। झुकना। ४. नम्रता। ५ अस्त होना। डूबना [को०]।

अवनद्ध[1]—वि० [सं०] बना हुआ। निर्मित। २ निश्चित किया हुआ। बैठा हुआ। ३ आवेष्टित। बँधा हुआ [को०]।

अवनद्ध[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का ढोल [को०]।

अवनमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकने की क्रिया। २ पैर पड़ना। उ०—ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अनमन।—आराधना, पृ०, ७१।

अवनम्र—वि० [सं०] झुका हुआ। नमित [को०]।

अवनयन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ ले जाना [को०]।

अवना—क्रि० अ० [सं० आगमन] आना। उ०—(क) तेहि रे हम चाहहिं गवना। होहु सँजूत बहुरि नहिं अवना।—जायसी ग्र०, पृ० ६२। (ख) अब की के गवना बहुरि नहिं अवना करिले भेंट अँकवारी।—कबीर श०, पृ०।

अवनाट[1]—वि० [सं०] १. चपटी नाकवाला। नकचिपटा [को०]।

अवनाट[2]—संज्ञा पुं० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०]।

अवनाम—संज्ञा पुं० दे० 'अवनमन' [को०]।

अवनामक—वि० [सं०] पतित करनेवाला। नीचे गिरानेवाला [को०]।

अवनाय—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे फेंकना [को०]।

अवनासिक—वि० [सं०] दे० 'अवनाट' [को०]।

अवनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँधना। कसकर बाँधन। २ आवेष्टित करना [को०]।

अवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। जमीन। उ०—सुचि अवनि सुहावनि आलवाल, कानन विचित्र बारी बिसाल।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६५।

यौ०—अवनिध्र=पर्वत। पहाड़। अवनिप=राजा। उ०—अवनिध्र अकनि राम पगुधारे।—तुलसी (शब्द०)। अवनिपति=राजा। अवनींद्र=राजा। अवनिसुता=जानकी। अवनितल=पृथ्वी। अवनीश=राजा।

२. एक प्रकार की लता। ३ उँगली। ४ नदी का पाट [को०]। ५. नदी [को०]। ६ जगह। स्थान [को०]।

अवनिक्त—वि० [सं०] १ धोया हुआ। धोकर साफ किया हुआ। २. ढूँढा हुआ [को०]।

अवनिज—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

अवनिरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष [को०]।

अवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवनि'। उ०—(क) कुटिल अलक बदन की छवि, अवनि परि लोलैं।—सूर०, १०।१०१।

अवनीच—वि० [सं०] इधर उधर घूमनेवाला। घुमक्कड़ [को०]।

अवनीतल—संज्ञा पुं० [सं०] धरती की सतह। धरातल [को०]।

अवनीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़ [को०]।

अवनीप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास द्विज गाय के।—राम च०, पृ०२१।

अवनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—सातहू दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।—राम च०, पृ० १६।

अवनीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष [को०]।

अवनीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनीश' [को०]।

अवनीस—संज्ञा पुं० [सं० अवनीश] उ०—बिचरहि अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किए।—तुलसी ग्र० पृ० ५२३।

अवनीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनिज' [को०]।

अवनीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। पृथ्वीपुत्री जानकी [को०]।

अवनेजन—सज्ञा पु० [सं०] १ धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध मे पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशो पर जल सींचने का सस्कार । ३ भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक[1]—वि० [सं०] १ अच्छी तरह न पकाया हुआ । २ बिना जाल का [को०] ।

अवपाक[2]—सज्ञा पु० अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [को०] ।

अवपाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मैथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिंगेंद्रिय के बद मुह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग मे लिंग को आच्छादित करनेवाला चमडा प्राय फट जाता है ।

अवपात—सज्ञा पु० [सं०] १ गिराव । पतन । अध पतन । २ गड्ढा कुड । ३ हाथियो को फँसाने के लिये एक गढ़ा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं । ३ खाँडा । माला । ४ नाटक मे भयादि से भागना, व्याकुल होना आदि दिखलाकर अक या गर्भांक की समाप्ति । ५ पक्षियो आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [को०] ।

अवपातन—सज्ञा पुं० [स०] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं०] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [को०] ।

अवपाद—सज्ञा पु० [स०] नीचे गिराना [को०] ।

अवबाहुक—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तभ ।

अवबुद्ध—वि० [स०] १ जाना हुआ । २ जाननेवाला [को०] ।

अववोध—सज्ञा पुं० [स०] १ जगना । जगना । २ ज्ञान । बोध । ३ शिक्षण । सिखाना । [को०] ४ न्याय करना । फैसला [को०] ।

अववोधक[1]—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अववोधिका] १ बदी । चारण । २ रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहरू । ३ सूर्य । ४ शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [को०] । ५ विचार । समझ बूझ [को०] ।

अवबोधक[2]—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अववोधन—सज्ञा पु० [स०] १ चेतावनी । ज्ञापन । २ ज्ञान । इंद्रिय-ज्ञान [को०] ।

अवभग—सज्ञा पुं० [स० अवभङ्ग] १ नीचा दिखाना । पराजित करना । २ नथुना फूलना पचकना [को०] ।

अवभास—सज्ञापुं० [सं०] [वि अवभासक, अवभासित] ज्ञान । प्रकाश । २ मिथ्याज्ञान । ३ चमक [को०] । ४ झलक । आभास [को०] । ५ अवकाश । स्थान [को०] ।

अवभासक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म [को०] ।

अवभासक[2]—वि० [स०] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं०] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊपर के चमडे का काम । चमडे की पहली पर्त ।

अवभृथ—सज्ञा पुं० [स०] वह शेष कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के अत मे किया जाय । यज्ञातस्नान । उ०—पावक सरोवर मे अवभृथ स्नान था, आत्मसम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति ।—लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं० सज्ञा [सं०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवमता—वि० [स० अवमन्तृ] अनादर करनेवाला । असमान करने-वाला [को०] ।

अवमथ[1]—सज्ञा पु० [स० अवमन्थ] एक रोग जिसमे लिंग मे बडी बडी और घनी फुसियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार से होता है और इसमे पीडा तथा रोमाच होता है ।

अवमंथ[2]—वि० सृजन पैदा करनेवाला [को०] ।

अवम[1]—वि० [सं०] १ अधम । अतिम । २ रक्षक । रखवाला । ३ नीच । निंदित । ४ घनिष्ठ [को०] । ५ कनिष्ठ [को०] ।

अवम[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ पितरो का एक गण । २ मलमास । अधिमास । ३ पाप [को०] । ४ रक्षक व्यक्ति । त्राता [को०] ।

अवमत—वि० [सं०] अवज्ञात । अवमानित । तिरस्कृत । निंदित ।

अवमति[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । निंदा ।

अवमति[2]—सज्ञा पुं० स्वामी । मालिक [को०] ।

अवमतिथि—सज्ञा स्त्री० [स०] वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमे राहु सूर्यमडल या चद्रमडल को पूर्णता से ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २ रौंदना । कुचलना । ३ शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४ एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

अवमर्दन—सज्ञा पुं० [स०] १ पीडा देना । दुख देना । दलन । २. मालिश । रगडना [को०] ।

अवमर्दित—वि० [स०] १ पीडित । दलित । मालिश किया हुआ [को०] ।

अवमर्श—सज्ञा पुं० [स०] स्पर्श । सपर्क [को०] ।

अवमर्शसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अवमर्शसन्धि] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की सधियो मे से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा विनोदन आदि से फलप्राप्ति के सबध मे विचार या आशका की जाय और जहाँ गर्भसधि से बीजार्थ अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसधि होती है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [स०] नष्ट भ्रष्ट [को०] ।

अवमर्ष—सज्ञा पुं० [स०] १ विचार । खोज बीन । २. दे० 'अवमर्श सधि' । ३ आक्रमण [को०] ।

अवमर्षण—सज्ञा पुं० [स०] १ मिटाना । २ हटाना । ३. बरबाद करना । ४ असहनशीलता [को०] ।

अवमान—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अवमानित] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहिं दूषा । मानस, २।२०८ ।

अवमानन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अवमानना] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [स०] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [को०] ।

अवमानी—वि० [स० अवमानिन्] [वि० स्त्री० अवमानिनी] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—लोभिय सूद्र विप्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, ३।१७२ ।

अवमूर्धशय—वि०, सज्ञा पु० [स०] सिर नीचे करके लेटनेवाला [को०]।

अवमूल्यन—सज्ञा पुं० [स०] [अ० डिवैल्युएशन] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशो की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना।

अवमोचन—सज्ञा पु० [स०] निर्बंध करना। बधनविहीन करना। मुक्त करना [को०]।

अवमोदरिका—सज्ञा स्त्री० [स० अवम+उदरिका] एक वृत्ति जिसमे क्रमश भोजन से निवृत्ति प्राप्त करते हैं।—हिंदु० सभ्यता पृ० २३३।

अवयव(पु)—सज्ञा पुं० [स० अवयव] दे० 'अवयव'। उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अवय। रजित है अति लाज।—पृ० रा०, २५।१७७।

अवयव—सज्ञा पु० [स०] १. अश। भाग। हिस्सा। २ शरीर का एक देश। अग। ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अश या भेद।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन। किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) सशय (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) सशयव्युदास।

४ उपकरण। साधन [को०]। ५. शरीर [को०]।

यौ०—अवयवभूत = अगभूत। अशभूत। अवयववर्म। अवयवरूपक = रूपक का एक भेद।

अवयवार्थ—सज्ञा पुं०, [स०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय से निकलनेवाला अर्थ [को०]।

अवयवी[1]—वि०[स० अवयविन्] १. जिसके और बहुत से अवयव हो। अगी। २ कुल। सपूर्ण। समष्टि। समूचा।

अवयवी[2]—सज्ञा पु० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अवयव हो। २. देह। शरीर। ३ न्याय मे एक तर्क [को०]।

अवयस्क—वि० [स०] जो वयस्क न हो [को०]।

अवयान—सज्ञा पु०[स०]१ विपथगामी होना। पीछे की ओर आना। २ किसी को सतुष्ट करना। ३ प्रायश्चित्त करना [को०]।

अवर[1]—वि० [स०](पु) १ अन्य। दूसरा। और। उ०—गम दुर्गम गढ देहु छुटाई। अवरो बात सुनो कछु मर्दा।—कबीर(शब्द०)। २. अश्रेष्ठ। अधम। नीच। ३ पिछला (भाग)। ४ अतिम (को०)। ५ पश्चिमी (को०)। ६ निकटतम। दूसरा [को०]। ७ अत्यत श्रेष्ठ [को०]।

अवर[2]—वि० [स० अ+वल] निर्बल। बलहीन।

अवर[3]—सज्ञा पुं० १ अतीत काल। २ हाथी का पिछला भाग।

अवरक्षक—वि० [स०] पालक। रक्षक।

अवरज—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अवरजा] १. छोटा भाई। २ नीच कुलोत्पन्न। नीच।

अवरण(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'अवर्ण'। २ दे० 'आवरण'।

अवरत[1]—वि० [स०]१ जो रत न हो। विरत। निवृत्त। २ ठहरा हुआ। स्थिर। ३ अलग। पृथक्।

अवरत[2](पु)—सज्ञा पु० [स० आवर्त] दे० 'आवर्त'।

अवरति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. विराम। २ निवृत्ति। छुटकारा।

अवरवर्णाभिनिवेश—सज्ञा पुं० [स०] छोटी जातियो मे बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरव्रत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ आक। मदार।

अवरव्रत[2]—वि० हीनव्रत। अधम।

अवरशैल—सज्ञा पुं० [स०] पश्चिम का पहाड जिसके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०]।

अवरहंस—वि० [सं०] जनशून्य। निर्जन [को०]।

अवरा—सज्ञा स्त्री०[स०] १ दुर्गा। २. दिशा। ३ हाथी का पिछला भाग [को०]।

अवराधक(पु)—वि० [स० आराधन] आराधना करनेवाला। पूजनेवाला। सेवक। उ०—ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं सत तव पद अवराधक।—मानस, ४।७।

अवराधन(पु)—सज्ञा पुं०[स० आराधन] आराधना। उपासना। पूजा। सेवा। उ०—अवसि होइ सिधि, साहस फरै सुसाधन। कोटि कल्पतरु सरिस सभु अवराधन।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०।

अवरावना(पु)—क्रि० स०[स० आराधना] उपासना करना। पूजना। सेवा करना। उ०—(क) केहि अवराधहु का तुम चहहु। हम सब सत्य मरमु, सब कहहू।—मानस, १।७८। (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविंद उर धरो। लै चरणोदक निज व्रत साधो। ऐसी विधि हरि को अवराधो। —सूर (शब्द०)।

अवरावी(पु)—वि० [हिं० अवरावना] आराधना करनेवाला। उपासक। पूजक। उ०—कहाँ बैठि प्रभु साधि समाधी। आजु होव हम हरि अवराधी।—रघुराज (शब्द०)।

अवरार्ध—सज्ञा पुं० [स०] १ लघुतम भाग। कम से कम। २ उत्तरार्ध। ३ नीचे या पीछे का आधा भाग [को०]।

अवरापतन—सज्ञा पुं० [स०] गर्भपतन [को०]।

अवरावर—वि० [सं०] निम्नतम। सबसे निकृष्ट। सबसे बुरा [को०]।

अवरु(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

अवरुद्ध—वि०[स०]१. रुँधा हुआ। २ आच्छादित। गुप्त। छिपा।

अवरुद्धा—सज्ञा स्त्री०[सं०] १ अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर मे डाल ले। रखनी। सुरैतिन। २ वह स्त्री जिसे कोई रख ले। उढरी। रखुई।

अवरूढ—वि० [स० अवरूढ] १ ऊपर से नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। आरूढ का उलटा। २ टूटा हुआ। छिन्नमूल (को०)।

अवरूप—वि० [सं०] १ भद्दी आकृतिवाला। विरूप। २ पतित। जिसका पतन हो गया हो [को०]।

अवरेखना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलेखन, अवरेखन या आलेखन] १ उरेहना। लिखना। चित्रित करना। उ०—(क)श्याम तन देखि ही आपु तन देखिए। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए।—सूर०, १०।३०७। (ख) सखि रघुवीर मुख छवि देखु। चित्त भीति सुप्रीति रग सुरूपता अवरेखु।—तुलसी (शब्द०)। २ देखना। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहिं विलक्षण देखो।

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेखो।—सूर (शब्द०)। (ख) फिरत प्रभु पूछत वन द्रुम वेली। अहो वधु काहू अवरेखी एहि मग वधू अकेली।—सूर (शब्द०)। ३ अनुमान करना। कल्पना करना। सोचना। उ०—एकै कहै सुखमा लहरै, मन के चढिवे की सिढी एक पेखै। कान्ह को टोवो कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखै।—केशव (शब्द०)। ४ मानना। जानना। उ०—पियवा आय दुअरवा उठ किन देखु। दुरलभ पाय विदेसिया मुद अवरेखु।—रहीम (शब्द०)।

अवरेबⓊ—संज्ञा पुं० [सं० अव=विरुद्ध+रेव=गति, फा० उरेब=टेढ़ा] १ वक्र गति। तिरछी चाल। २ कपडे की तिरछी काट।

यौ०—**अवरेबदार**=तिरछी काट का।

३ पेच। उलझन। उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव। मो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेव।—मानस, २।२६८। ४ बिगाड। खराबी। उ०—रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।—मानस, २।३१६। ५ झगडा। विवाद। खींचातानी। उ०—राक्षस सुत तो यह कही कन्या को हम लेव। विप्र कहै दे मित्र मोहि परी दुहुन अवरेव।—(शब्द०)। ६ वक्रोक्ति। काकूक्ति। उ०—धुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।—मानस, १।३७।

अवरोक्त—वि० [सं०] बाद मे कहा गया। जिसका उल्लेख बाद मे हुआ हो [को०]।

अवरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमे भूख बहुत कम लगती है या लगती ही नही [को०]।

अवरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। अटकाव। अडचन। रोक। २ छेकना। घेर लेना। मुहासिरा। ३ निरोध। बद करना। ४ अनुरोध। दबाव। ५ अत पुर।—उ० राजकीय अवरोध की ये स्त्रियाँ हैं।—इरा०, पृ० ९६। ६ लेखनी। कलम [को०]। ७ प्रहरी [को०]। ८ खाई। गड्ढा [को०]। ९ पर्त। तह [को०]।

अवरोधक[1]—वि० [सं०] १ रोकनेवाला। २ घेरनेवाला [को०]।

अवरोधक[2]—संज्ञा पुं० १ पहरेदार। २ रोक। बाड [को०]

अवरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोधक, अवरोधित, अवरोधी, अवरोध्य, अवरुद्ध] १ रोकना। छेकना। २ अत पुर। जनाना खाना। ३ किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०]। ४ निजी या व्यक्तिगत स्थान (को०)। ५ अत पुरिका। हरम मे रहनेवाली स्त्री (को०)।

अवरोधनाⓊ—क्रि० स० [स० अवरोधन] रोकना। निषेध करना। उ०—यह विधि विषय भेद अवरोधा। नहिं कछु श्रुति प्रत्यक्ष विरोधा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोधिक[1]—वि० [स०] रोकनेवाला। अवरोध उपस्थित करनेवाला [को०]।

अवरोधिक[2]—संज्ञा पुं० अत पुर का प्रहरी [को०]।

अवरोधिका—संज्ञा स्त्री० [स०] अत पुर की दासी। अत पुर की रखवाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०]।

अवरोधित—वि० [सं०] रोका हुआ। रुका। घेरा हुआ।

अवरोधी—वि० [स० अवरोधिन्] [वि० स्त्री० अवरोधिनी] अवरोध करनेवाला। रोकनेवाला। दे० 'अवरोधक'।

अवरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोपित, अवरोपणीय] १ उखाडना। उत्पादन। २ पेड लगाना [को०]।

अवरोपणीय—वि० [सं०] १ उखाडने योग्य।

अवरोपित—वि० [स०] उखाडा हुआ। उन्मूलित।

अवरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतार। गिराव। अध पतन। २ अवनति। अवमर्षण। विवर्त। ३ एक अलकार जो वर्धमान अलकार का उलटा है। इसमे किसी वस्तु के रूप तथा गुण का क्रमश अध पतन दिखाया जाता है, जैसे—सिंधु सर पल्लव पुष्करणिय। कुड वापिका कूप जु वरणिय। चुलुक रूप मो जिन्ह कर भीतर। पान करन जय जय वह मुनिवर। ४ वररोह। ५ सगीत मे स्वरो का उतार [को०]। ६ आरोहण। चढाव (को०)। ७ वृक्ष मे जटा का लिपटते हुए चढना या घेर लेना [को०]। ८ स्वर्ग [को०]।

यौ०—**अवरोहशाख, अवरोहशाखी अवरोहशायी वट**=वृक्ष।

अवरोहक[1]—वि० [सं०] १ गिरनेवाला। २ अवनति करनेवाला।

अवरोहक[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० अवरोहिका] अश्वगध।

अवरोहण—संज्ञा पुं० [स०] [वि० अवरोहक, अवरोहित, अवरोही] १ नीचे की ओर जाना। पतन। गिराव। २ चढना [को०]।

अवरोहना[1]Ⓤ—क्रि० अ० [स० अवरोहण] १ उतरना। नीचे आना। २ चढना। ऊपर जाना। उ०—(क) कहँ सिव चाप लकरवनि बूझत विहँस चितै तिरछौंहैं। तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि अवरोहैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जोवन व्याध नही अस बैननि मोहिनी मत्र नहीं अवरोह्यो।—देव (शब्द०)।

अवरोहना[2]Ⓤ—क्रि० स० [हिं० उरेहना] खीचना। अकित करना। चित्रित करना। उ०—गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये।—केशव (शब्द०)।

अवरोहना[3]Ⓤ—क्रि० स० [स० अवरोधन, प्रा० अवरोहन] रोकना। रूँधना। छेंकना। उ०—मत अट्टन राजपथ मोहा। जहाँ भेद कटक अवरोहा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोहिका—संज्ञा स्त्री० [स०] अश्वगधा [को०]।

अवरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [स०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा, जो नक्षत्रो के खास स्थानो मे रहने से उत्पन्न होती है [को०]।

अवरोहित—वि० [स०] १ गिरनेवाला। २ अवनत। हीन। ३ हल्के लाल रग का।

अवरोही[1]—संज्ञा पुं० [स० अवरोहिन्] १ वह स्वर जिसमे पहले षड्ज का उच्चारण हो, फिर निषाद से षड्ज तक क्रमानुसार उतरते हुए स्वर निकलते जायँ। सा, नि, ध, प म, ग, रि, सा का क्रम। विलोम। आरोही स्वर का उलटा। २ वटवृक्ष।

अवरोही[2]—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०]।

अवर्ग[1]—वि० [स०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०]।

अवर्ग[2]—संज्ञा पुं० स्वरवर्ण [को०]।

अवर्ण[1]—वि० [सं०] १ वर्णरहित। बिना रंग का। २. बदरंग। बुरे रंग का। ३ जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो। वर्ण-धर्म-रहित।

अवर्ण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अकार अक्षर। २ निंदा। ३ अपशब्द।

अवर्ण्य[1]—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो।

अवर्ण्य[2]—संज्ञा पु० [सं० अ+वर्ण्य] जो वर्ण्य या उपमेय न हो। उपमान। उ०—है उपमेय विश्व अरु वर्ण्य। उपमानतु विषयीह अवर्ण्य।—मतिराम (शब्द०)।

अवर्त[1]—संज्ञा पु०[सं०]स्फूर्तिशून्य पदार्थ। वह पदार्थ जिसके आरपार प्रकाश या दृष्टि न जा सके।

अवर्त[2]Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त] १ भँवर। नाँद। उ०—कादर भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी।—मानस, ६।८६। २. Ⓤ घुमाव। चक्कर। उ०—विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—मानस, २।२७५।

अवर्तन[1]—संज्ञा पु०[सं०]जीविका का अभाव। जीविका की अनुपलब्धि।

अवर्तन[2]Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवर्तन'।

अवर्तमान—वि०[सं०]१ जो वर्तमान न हो। अनुपस्थित। अप्रस्तुत। २ असत्। अभाव। ३ भूत या भविष्य।

अवर्धमान—वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत। न बढनेवाला [को०]।

अवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवर्षण' [को०]।

अवर्षण—संज्ञा पु० [सं०] वृष्टि का अभाव। वर्षा का न होना। अवग्रहण। अनावृष्टि।

अवर्षुक—वि० [सं०] न बरसनेवाला [को०]।

अवलघन—संज्ञा पु० [सं० अव+लङ्घन] दे० 'उल्लघन'।

अवलघना Ⓤ—क्रि० स० [सं० अव+लङ्घन] लाँघना। फाँदना। उ०—राम प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-कनधार। तिहिं अधार छन मैं अवलघ्यो आवत भई न वार।—सूर०, ९।८९।

अवलंब—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्ब] आश्रय। आधार। सहारा। उ०—सो अवलब देउ मोहि देई। अवधि पारु पावउँ जेहि सेई।—मानस, २।३०६।

अवलवक—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्बक]एक प्रकार का वृत्त या छद [को०]।

अवलबन—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्बन] [वि० अवलम्बित, अवलम्बी] १ आश्रम। आधार। सहारा। उ०—नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलबन एकू।—तुलसी (शब्द०)। २. धारण। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना=धारण करना। ग्रहण करना। अनुसरण करना, जैसे,—'यह सुन उसने मौनावलबन किया' (शब्द०)। ३. छड़ी।

अवलंबना Ⓤ—क्रि० स०[सं० अवलम्बन] अवलबन करना। आश्रय लेना। टिकना। उ०—जिन्हे अतन अवलबई सो आलंबन जानि। निज तें दीपित होति है। ते उद्दीप बखानि।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ३५।

अवलबित—वि० [सं० अवलम्बित] १. आश्रित। सहारे पर स्थित। टिका हुआ। उ०—चरणकमल अवलबित राजित जनमान। प्रफुलित ह्वै ह्वै लता मनो चढी तरु तमाल—सूर (शब्द०)। २. मुनहसर। निर्भर, जैसे—इनका पूरा होना द्रव्य पर अवलबित है। (शब्द०)। उ०—ऐसे और पतित अवलबित ते छिन माहिं तरे। सूर पतित तुम पतित उधारन विरद कि लाज धरे।—सूर० १।१९८। ३ लटकाया हुआ [को०]। ४ शीघ्र। सत्वर [को०]।

अवलबी—वि० पुं० [स० अवलम्बिन्][वि० स्त्री० अवलबिनी]१ अवलबन करनेवाला। सहारा लेनेवाला। उ०—और भगवान् की करुणा का अवलबी बन गया था।—इद्र०, पृ० ८१। २ सहारा देनेवाला। पालनेवाला।

अवलंब Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अव्वल'। उ०—अवल उकीननू जी आदर कुरव दे अवधेस—रघु० रू०, पृ० ८१।

अवलक्ष[1]—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०]।

अवलक्ष[2]—संज्ञा पु० सफेद वर्ण [को०]।

अवलग्न[1]—वि० [सं०] लगा हुआ। मिला हुआ। सबध रखनेवाला।

अवलग्न[2]—संज्ञा पुं० शरीर का मध्य भाग। धबु। माझा।

अवलच्छना Ⓤ—क्रि० स० [स० अव+लक्ष्य] लक्ष्य बनाना। देखना उ०—पच्छ-रहित जीतत उडि पच्छिय। अतरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६।

अवलि Ⓤ—संज्ञा स्त्री०[स० आवलि] दे० 'अवली'। उ०—भाल विसाल तिलक झलकाही। कच विलोकि अलि अवलि लजाही।—मानस, १।२४३।

अवलिप्त—वि०[सं०]। लगा हुआ। पोता हुआ। २ सना हुआ। आसक्त। ३ घमडी। गर्वित।

अवलिया[1]—संज्ञा पुं०[हिं० औलिया]दे० 'औलिया'। उ०—जहाँ बसे तीरथ देव अवलिया होना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

अवली Ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० आवलि] १ पक्ति। पाँति। उ०—मानौ प्रगट कज पर मजुल अलि अवली फिरि आई।—सूर०, १०।१०८। २ समूह। झुड। उ०—मन रंजन खजन की अवली नित आँगन आय न डोलती है।—केशव (शब्द०)। ३ वह अन्न की डाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले पहल काटी जाती है। ४ रोओं या ऊन जो गडरिया एक बार भेड पर से काटता है।

अवलीक—वि० [सं० अव्यलीक] अपराधशून्य। पापशून्य। निष्पाप। निष्कलक। शुद्ध। उ०—जावो वाल्मीकि घर बडो अवलीक साधु कियो अपराध दियो जो बताइये।—प्रिया (शब्द०)।

अवलीढ—वि० [सं०] १. भक्षित। खाया हुआ। २ चाटा हुआ। ३ स्पृष्ट। सपर्कप्राप्त (को०)।

अवलीन—वि० [सं०] युक्त। भीतर युक्त अदर की ओर स्थित [को०]।

अवलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रीडा। खेल। २. अनादर। अवहेलना [को०]।

अवलुंचन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुञ्चन] १ छेदना। काटना। २. उखाडना। नोचना। ३ दूर करना। हटाना। अपनयन। ४. खोलना।

अवलुंचित—वि०[सं० अवलुञ्चित]१. कटा हुआ। छेदित। २. उखाडा हुआ। नोचा हुआ। ३ दूरीकृत। हटाया हुआ। अपनीत। ४. खुला या खोला हुआ। मुक्त।

अवलुंठन—सज्ञा पु० [सं० अवलुण्ठन] १ लोटना। लुढकना। २ लूटना (को०)।

अवलुंठित—वि० [सं० अवलुण्ठित] १. जो लुढक गया हो। लोटा हुआ। २ लूट लिया गया हो (को०)।

अवलुंपन—सज्ञा पुं० [सं० अवलुम्पन] अचानक लपक पडना। टूट पडना। झपट्टा मारना (को०)।

अवलेख—सज्ञा पुं० [स०] १ कोई खरोची हुई या चिह्नित वस्तु। २ खुरचना, चिह्नित करना वा तोडना (को०)।

अवलेखन—सज्ञा पु०[स०]१ खुरुश या कघी करना। २ चिह्न करना या लकीर खीचना।

अवलेखना⑤—क्रि० स०[स० अवलेखन] १ खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खीचना। उ०—गहौ विरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि ब्रज देखौ। मोपौं बात कहत किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखौ।—सूर०, १०। ४१५४।

अवलेखनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ लेखनी। २ बाल झाडने की कघी या ब्रश (को०)।

अवलेखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रगडना। २ चित्राकन करना। ३ शृगार करना। सजावट करना (को०)।

अवलेप—सज्ञा पुं० [स०] १ उबटन। लेप उ०—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतग, राका ससि विय सँग, घटा सघन सोभात।—सूर०, १०। २७३४। २ घमड। गर्व। ३ आभूषण (को०)। ४ मलहम (को०)। ५ सग। मिलन (को०)। ६ आक्रमण। हिंसा (को०)। ७ अपमान (को०)।

यौ०—बलावलेप=बल का गर्व।

अवलेपन—सज्ञा पुं० [स०] १ लगाना। पोतना। छोपना। २ वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उबटन। ३ घमड। अभिमान। अहकार। ४ दूषण। ५ चदन का वृक्ष (को०)।

अवलेह—सज्ञा पु० [स०] १ लेई जो न अधिक गाढी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (वैद्यक)। २ औषध जो चाटा जाय। ३ निर्यास। सत्त। अरक—जैसे, सोम (को०)।

अवलेहन—सज्ञा पुं० [स०] १ जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २ चटनी।

अवलेह्य—वि० [स०] चाटने योग्य।

अवलोक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अवलोकन' (को०)।

अवलोकक—सज्ञा पुं० [स०] १. देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १ सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला, जैसे—जासूस (को०)।

अवलोकन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अवलोकित, अवलोकनीय] १ देखना। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४। २ देख-भाल। जाँच पडताल। निरीक्षण। ३ नेत्र। आँख (को०)।

अवलोकना⑤—क्रि० स० [स० अवलोकन] १ देखना। उ०—गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।—मानस, १।२५६। २ जाँचना। अनुसधान करना। उ—फिरत वृथा भाजन अवलोकत मूनँ सदन अजान।—सूर०, १।१०३।

अवलोकनि⑤—सज्ञा स्त्री० [स० अवलोकन] आँख। दृष्टि। चितवन। उ०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ बधु की जलमाधुरी सुबास।—मानस, १।४२।

अवलोकनीय—वि० [स०] देखने योग्य। दर्शनीय।

अवलोकित—वि० [स०] देखा हुआ। दृष्ट।

अवलोकितेश्वर—सज्ञा पु० [स०] एक बोधिसत्व का नाम।

अवलोक्य—वि० [स०] देखने योग्य। अवलोकनीय (को०)।

अवलोचना⑤—क्रि० स० [स० अवलोचन, आलोचन] दूर करना। उ०—सोचैं अनागम कारण कत को सोचैं उसासनि आँसहूँ सोचैं। सोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर सोचि सकैं न सँकोचैं। कोत की इह चाँदनी चैते अलि, याहि निवाहि विया अवलोचैं। लोचैं परी सी परी परजक पै बीती घरी न घरी घरी सोचैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अवलोप—सज्ञा पुं० [स०] १ काटना। काटकर दूर करना। विगाडना। २ अधर को दाँत से क्षत करना। अधर चूमना (को०)।

अवलोभन—सज्ञा पु० [स०] विषयवासना (को०)।

अवलोम—वि० [स०] १ अपनी तरफदारी करनेवाला। अपना पक्ष लेनेवाला। २ उपयुक्त (को०)।

अवल्गुज[1]—सज्ञा पुं० [स०] सोमराजी नामक पौधा (को०)।

अवल्गुज[2]—वि० जिसका मूल अच्छा न हो (को०)।

अववद—सज्ञा पुं० [सं०] निदा। अपवाद (को०)।

अववदन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अववद' (को०)।

अववदित—वि० [स०] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ (को०)।

अववदिता—वि० [स० अववदितृ] निर्णायक ढग से बोलनेवाला (को०)।

अववरक—सज्ञा पुं० [स०] १. छेद। २ खिडकी (को०)।

अववाद—सज्ञा पुं० [स०] १ निदा। बुराई। २ विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५ आदेश। ६ सूचना (को०)।

अवश—वि० [स०] १ विवश। परवश। लाचार। २ स्वतत्र। मुक्त (को०)। ३ अनियत्रित (को०) ४ जरूरी। आवश्यक (को०)।

यौ०—अवशग=स्वतत्र। अवशीभूत=अनियत्रित। अवशेंद्रियचित्त=जिसका मन और मस्तिष्क वश मे न किया जा सके।

अवशप्त—वि० [स०] अभिशप्त (को०)।

अवशा—सज्ञा स्त्री० [स०] मरकही या बुरी गाय (को०)।

अवशिष्ट—वि० [सं०] बचा हुआ। शेष। बाकी। बचा खुचा। बचा बचाया।

अवशीन—सज्ञा पु० [स०] बिच्छू (को०)।

अवशीर्ण—वि० [स०] टूटा फूटा। नष्ट (को०)।

अवशीर्षक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर सधि करना।

अवशीर्ष[1]—वि० [स०] जिसका सिर झुका हो।

[illegible]—[illegible] [सं०] नीचे से ऊपर उठाने की प्रवृत्ति।

[illegible]—[illegible] [सं० अवतरवादिन्] [फ्रां० एवोलुशनिस्ट] १ [illegible] परिवर्तित करनेवाला। [illegible] २. अवतरवाद के दार्शनिक [illegible]।

अवतर्ग—[illegible] [सं०] १ त्यक्त। छोड़ा हुआ। २ तिरिक्त करना। ३. [illegible] [को०]।

अवतर्जन—[illegible] [सं०] डाँटना। बंधन से मुक्त कर देना [को०]।

अवतर्द—[illegible] [सं०] खुदाई। खोदना [को०]।

अवतर्पण—[illegible] [सं०] अधोगमन। अधःपतन। अवरोहण। तिरोधान।

अवतर्पिणी—[illegible] [सं०] जैनशास्त्रानुसार गिरावट का समय [illegible] जिसमें मनुष्यों का पतन होता है। इसके छह विभाग [illegible] जिनको 'आरा' कहते हैं। अवरोह। विवर्त।

अवतर्षी—[illegible] [सं० अवतर्षिन्] [वि० स्त्री० अवतर्षिणी] नीचे जाने [illegible] गिरावाला।

अवतसी—[illegible] वि० [हिं०] दे० 'अवश्यमेव'। उ०—अवतसी उद्यम [illegible] अवतरवा साहस सिद्धि।—कीर्ति०, पृ० २६।

अवतस्त—[illegible] [सं०] ताहिना। अवतस्य [को०]।

अवताद—[illegible] [सं०] १ नाश। क्षय। २ विषाद। ३ दीनता। ४ अवसाद। ५ रुकावट। ६ कानून में कारण की सदोषता जिसकी [illegible] से मुकदमा गिर जाय (को०)।

अवतादक—[illegible] [सं०] १ अवसाद उत्पन्न करनेवाला। २ सुस्त कर [illegible] अवसन्न कर देनेवाला। ३ क्षीण करनेवाला। [illegible] अवसाद करनेवाला [को०]।

अवतान—[illegible] [सं०] १ नाश। क्षय। ध्वंस। २ विनाशन। ३ तिरोधान। ४ लीन होना। ५ थकना। ६ वैद्यक में [illegible] का एक भेद। मरहम पट्टी। ६ कार्य करने [illegible] [को०]।

अवतादी—[illegible] [सं० अवतादिन्] अवसादयुक्त [को०]।

अवतान[1]—[illegible] [सं०] १ विराम। ठहराव। समाप्ति। अंत। २ सीमा। उ०—तुम्हारे मान का अवतान है नहीं?—[illegible], पृ० ४४। ४ समाधान। ५ मरण। ६ घोड़े से उतरने का स्थान (को०)। ७ छंद की समाप्ति या छंद। ८ रखने का [illegible] तिरोधान [को०]।

अवतान[2]—[illegible] [सं०] दे० 'वितान[2]'।—(क) तिरकि- [illegible], दै सारि आनु मनि जाइ जगायो। पग गो चापि पूँछ, [illegible] अवतान भुलायो।—सूर०, १०। ५८६। (ख) छूटत [illegible] अवतान सभो, सामसान जान लागे अवमान कहो क्यों [illegible]।—[illegible], पृ०, ४६६।

अवतानित—[illegible] [सं०] ढका हुआ। समाप्त होता हुआ [को०]।

अवतानी—[illegible] [सं०] दे० 'वितान'। उ०—अवतानी सुरा गोविंद [illegible] [illegible] अनी।—अकबरी०, पृ० ३३३।

अवतापन—[illegible] [सं०] १. तिरस्कार। तिरोधान। समाप्ति। २ [illegible]। ३ परितापन। ४. तिरस्कार। ५. अंतिम अवस्था को [illegible] [को०]।

अवतायक—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। विघटित करनेवाला [को०]।

अवतायिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अवतायित=वृद्ध] वृद्धि। (डिं०)।

अवतायी—वि० [सं० अवतायिन्] रहनेवाला [को०]।

अवतारण—संज्ञा पुं० [सं०] हटाना [को०]।

अवतारि—क्रि० वि०, दे० 'अवश्य'। उ०—अवतारि चलिअ बन राम जहँ भरत मंतु भल कीन्ह।—मानस, २।१८४।

अवतिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ। सिंचित [को०]।

अवतित[1]—वि० [सं०] १ समाप्त। २ वृद्ध। बढ़ा हुआ। ३ परिपक्व। ४ निश्चित। ५ संबद्ध। ६ रहनेवाला। ७ जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। ८ ज्ञात। जाना हुआ [को०]।

अवतित[2]—संज्ञा पुं० १ रहने की जगह। २ खलिहान [को०]।

अवती—संज्ञा स्त्री० [आवतिन, प्रा० आवतिअ=पका धान्य] वह धान्य या शस्य जो कच्चा नवान्न आदि के लिये काटा जाय। अवनी। अरवन। गदर।

अवतुप्त—वि० [सं०] सोया हुआ (को०)।

अवतृष्ट—वि० [सं०] [स्त्री० अवतृष्टा] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। २ निकाला हुआ। ३ दिया हुआ। दत्त।

अवतेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंचन। २ एक प्रकार का नेत्र रोग [को०]।

अवतेव—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'। उ०—उहाँ राम रजनी अवसेखा। जागें सीय सपन अस देखा।—मानस, २।२२५।

अवतेचन—संज्ञा पुं० [सं०] सींचना। पानी देना। २. पसीजना। पसीना निकलना। ३ वह क्रिया जिसके द्वारा रोगी के शरीर से पसीना निकाला जाय। ४ जोक, सींगी, नूँवी या फस्द देकर रक्त निकालना। ५ जल जो छिड़का जाय (को०)।

अवतेर—संज्ञा स्त्री० [सं० अवतेर=बाधक] १ अटकाव। रुकावट। उ०—नयो मो मन माधव को अवतेर। मौन धरे मुख चितवन ठाढ़ी जबाब न आवै फेर। तब अकुलाय चली उठि बन को बोले सुनत न टेर।—सूर (शब्द०)। २ देर। विलंब। उ०—महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धर्यो तिहारे कारन आजु कहाँ अवतेर लगाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।—होना।

३ चिंता। व्यग्रता। उचाट। उ०—(क) भए बहुत दिन अति अवतेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु कौन बन गाइ चरावन, कहँ धौं भई अबेर। बैठे कहँ सुधि लेउँ कौन बिधि ग्वारि करत अवतेर।—सूर०, १०। ८५८।

क्रि० प्र०—करना।—उ०—दूनी मन अवतेर करै। श्याम सगावत मोहि पठाई यह कबहूँ निबरै न टरै।—सूर (शब्द०)। —लगना। उ०—अब ते नयन गए मोहि त्यागि। मूढ़ी गई नयो तन ते मन उनहि बिना अवतेरी लागि।—सूर (शब्द०)। ४. हैरानी। बेचैनी। उ०—दिन दस पोष सलहु गोपाल। साधन के अवतेर मिटावहु लेहु आपने बास।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना=दुख देना।-मिटाना।-में पड़ना=दुख

में फँसना।–मे फँसना=दुख मे पडना। अवसेरन मरना=दुख से तँग आना।

अवसेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवसेर] तग करना। दुख देना। उ०–पिय पागे परोसिन के रस मे बस मे न कहूँ बस मेरे रहै। पदमाकर पाहनी सी ननदी निस नीद तजे अवसेरे रहै।—पद्माकर (शब्द०)।

अवसेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'।

अवसेषित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेषित'।

अवसेस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'। उ०–करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन भूख हरी।—सूर०, १। १६।

अवस्कद—संज्ञा पु० [स० अवस्कन्द] १. सेना के ठहरने की जगह। शिविर। डेरा। २ जनवासा। ३ आक्रमण। हमला (को०)।

अवस्कदक—सज्ञा पु० [स० अवस्कन्दक] जो रास्ते चलते लोगो को मारे पीटे।

अवस्कदित—वि० [सं० अवस्कन्दित] १ जिसपर आक्रमण किया गया हो। २ नीचे गया हुआ। ३ अशुद्ध गलत। ४ नहाया हुआ। स्नात [को०]।

अवस्कदितश्रमी—सज्ञा पु० [सं० अवस्कन्दितश्रमी] मजदूरी या तनख्वाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर—सज्ञा पुं० [सं०] १ मलमूत्र। २ मलमूत्रेंद्रिय। ३ कूडा कर्कट। ४ कतवारखाना। जहाँ कूडा कर्कट एकत्र रहता है। घूर।

अवस्करक[1]—वि० [स०] गदगी से उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अवस्करक[2]—सज्ञा पुं० १ मेहतर। २ गोबरौला। ३ झाड़ू [को०]।

अवस्करभ्रम—सज्ञा पु० [स०] वह नल जिसमे पाखाना वह कर बाहर जाता हो।

अवस्कार—सज्ञा पुं०[स०] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनो आँखो के ठीक बीच मे है [को०]।

अवस्तार—सज्ञा पु० [स०] १ पर्दा। २ खेमे के चारो ओर लगाया गया कपडा। कनात। ३ चटाई [को०]।

अवस्तु—वि० [स०] १ जो कोई वस्तु न हो। शून्य। २ तुच्छ। हीन।

अवस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दशा। हालत। उ०—सुनता हूँ परम भट्टारक की अवस्था अत्यत शोचनीय है।–स्कद०, पृ० ३२। २ समय। काल। उ०—मरन अवस्था कौं नृप जानै। तौ हू धरै न मन मे ज्ञानै।–सूर०, ४।१०। ३ आयु। उम्र। ४ स्थिति। उ०–'भाव के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की अवस्था को हम शील दशा कहेंगे'।–रस०, पृ० १८३। ५ वेदात दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ–जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। ६ स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन की आठ अवस्थाएँ–कौमार, पौगड, कैशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध और वर्षीयान्। ७ साख्य के अनुसार पदार्थो की तीन अवस्थाएँ–अनागतावस्था, व्यक्ताभिव्यक्तावस्था और तिरोभाव। ८ निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ–जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणमन, अपक्षय और नाश। ९ कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ–अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। १०, जैनशास्त्रानुसार लाभ की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति। यह पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा। ११ योनि। भग (को०)। १२. आकृति। रूप [को०]।

यौ०—अवस्थातर=एक अवस्था से दूसरी अवस्था को पहुँचना। हालत का बदलना। दशापरिवर्तन। अवस्थाद्वय=सुख और दुख जीवन की दो अवस्थाएँ।

अवस्थान—सज्ञा पुं० [स०] १ स्थिति। सत्ता। २. स्थान। जगह। वास। ३. निवासस्थान [को०]। ४ रहना। ठहरना [को०]। ५ रुकने या ठहरने का काल [को०]।

अवस्थापन—संज्ञा पु०[स०]१ निवेशन। रखना। स्थापन करना। २ निवास (को०)।

अवस्थापरिणाम—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'परिणाम' (योग)।

अवस्थित—वि०[स०]१ उपस्थित। विद्यमान। मौजूद। २ निश्चेष्ट (को०)। ३ तैयार। तत्पर (को०)। ४ अच्छी तरह सयोजित या लगा (को०)। ५ टिका हुआ। निर्भर (को०)।

अवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्तमानता। स्थिति। सत्ता। अवस्थान।

अवस्नात—वि० [स०] (जल) जिसमे स्नान किया गया हो [को०]।

अवस्फूर्ज—सज्ञा पुं० [स०] बादलो की ध्वनि। गर्जन। गडगडाहट [को०]।

अवस्यदन—सज्ञा पु० [स० अवस्यन्दन] टपकना। चूना। गिरना।

अवश्य(पु)—क्रि० वि० [स० अवश्य] दे० 'अवश्य'। उ०—और श्रीरनछोर जी तो श्रीआचार्य जी के माने हैं, तातें वहाँ अवश्य जानो।—दो सौ बावन०, पृ० १८।

अवश्यक(पु)—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—चतुर सेनपहिं नित न अवश्यक बल दिखरावन।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २६।

अवह[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह दिशा जिसमे नदी नाले न हो। २ वह वायु जो आकाश के तृतीय स्कध पर है। ईथर।

अवह[2]—वि० १ जो वहन न किया जा सके। जो ढोया न जा सके। २ बिना नदी या सोतेवाला [को०]।

अवहनन—सज्ञा पु० [सं०] १ कूटना (जैसे धान)। २. पछोरना। फटकना। ३ धान कूटकर चावल अलग करना। ४ फुफ्फुस। फेफडा [को०]।

अवहरण—सज्ञा पु०[सं०] १ चुरा लेना। जबरदस्ती ले लेना। २ अन्यत्र जाना या ले जाना। ३ युद्धक्षेत्र से शिविर को वापस होना [को०]।

अवहस्त—सज्ञा पुं० [सं०] हाथ या गदेली का पृष्ठभाग। उलटा हाथ।

अवहार—सज्ञा पु० [स०] १ जलहस्ति। सूँस। २ चोर। तस्कर (को०)। ३ आमत्रण। ४ युद्धक्षेत्र से वापस होना (को०)। ५ सधि। शस्त्रविराम। (को०) ६ धर्मत्याग। ७ समीप लाने के योग्य या अनुकूल (को०)। ८. अपहरण (को०)। ९ वापस करना (को०)।

अवहारक[1]—सज्ञा पु० [स०] सूँस नामक जलजतु (को०)।

अगहारक[२]– वि० १ युद्ध रोकनेवाला। २ बचाव करनेवाला। ३ एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०]।

अगहार्य—वि० [स०] १ ले जाने योग्य। २ दंड योग्य या अर्थदंड योग्य। ३ जिसे लौटाने के लिये बाध्य हो। ४. पूर्ण होनेवाला [को०]।

अगहालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दीवार। प्राचीर। घेरा [को०]।

अगहास—सज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान। मुस्काहट। २ उपहास। हँसी। मजाक उडाना [को०]।

अगहित—वि० [स०] सावधान। एकाग्रचित्त।

अगहित्थ—सज्ञा पु० [स०] अवहित्था [को०]।

अगहित्था—सज्ञा स्त्री०[स०]एक प्रकार का भाव जब कोई भय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिपावे। यह सचारी या व्यभिचारी मे गिना जाता है। आकारगुप्ति जैसे,—ज्यो ज्यो चवाव चलै चहुँ ओर, धरैं चित चाव ये त्योही त्यो चोखे। कोऊ सिखावनहार नही विनु लाज भए बिगरैल अनोखे। गोकुल गाँव को एती अनीति कहाँ ते दई धौं दई अनजोखे। देखती हौं मोहि माँझ गली मे गही इन आइ धौं कौन के धोखे।—(शब्द०)।

अगही—सज्ञा पु० [स० अवह=बिना पानी का देश] एक प्रकार का बबूल जो काँगटा मे होता है।

विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है। यह मैदानो मे पैदा होता और इसकी लकडी खेती के औजार बनाने तथा छतो के तख्तो मे काम आती है।

अगहृत—वि० [स०] १ आगे या पीछे हटाया हुआ। २ चुराया हुआ। ३ दडित किया गया [को०]।

अगहेलन—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा। अपमान। २. आज्ञा न मानना।

अगहेलना[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। उ०—वे ईप नियमो की कभी अवहेलना करते न थे।—भारत०, पृ० ६। २ ध्यान न देना। बेपरवाही।

अगहेलना[२]Ⓤ—क्रि० स०[स० अवहेलन] तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। उ०—इन उतपातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय रन मद झेलिय।—सुजान०, पृ० २२५।

अगहेला—सज्ञा स्त्री०[स०]अवज्ञा। तिरस्कार। अवहेलना। उ०—तब मेरी अवहेला की गई, यह उसी का परिणाम है।—स्कद०, पृ० १४७।

अगहेलित—वि० [स०] जिसकी अवहेला हुई हो। तिरस्कृत।

अगाछनीय—वि० [स० अवाञ्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय। अप्रिय। २. उपेक्षणीय [को०]।

अगातर[१]—वि०[स० अवान्तर]१. अतर्गत। २. मध्यवर्ती। बीच का ३ दूसरा। गौण। अन्य [को०]।

अगातर[२]—सज्ञा पुं० मध्य। भीतर। बीच।

यौ०—अवातर दिशा=बीच की दिशा। विदिशा। अवातर देश=दो देशो का मध्यवर्ती स्थान। अवातर भेद=अतर्गत भेद। भाग का भाग। अवातर वाक्य=महावाक्य के मध्य मे आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह।

अगाँ Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'। उ०—चदन की चोली और कपूर चढ़ाएँ अग अग विरह की आँच त्यो अवाँ ज्यो सिलगाइगो।—गंग०, पृ० २८३।

अगाँग—वि० [सं० अवाङ्] १ झुका हुआ। नत। २ टेढे अगवाला।

अगाँगना Ⓤ—क्रि० स० [हिं० अगाँग+ना] नीचे की ओर झुकाना। अवनत करना।

अगाच—वि०[सं० अवाञ्च]१ झुका हुआ। दबा हुआ। २ अधोमुख। ३ नीचे की ओर स्थित [को०]।

अगाच[२]—सज्ञा पुं० १ दक्षिण। २. ब्राह्मण [को०]।

अगाँसना†—क्रि० स० [हिं०] अनवासना। नए बर्तन को पहले पहल काम मे लाना।

अगाँसी—सज्ञा स्त्री० [स० अवामित] वह बोझ जो फसल मे से पहले पहले काटा जाय। यह नवान्न के लिये काम मे आता है। अखान। ददरी। कवन। अवनी।

अगाई—सज्ञा स्त्री० [स० आयन=आगमन] १ आगमन। उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई।—जायसी ग्र०, पृ० २३०। (ख) लखि यो अवाई बीर की रिपु भीर में खलबल भई।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७। २ गहरा जोतना। गहरी जोताई।—'भेव' का उलटा।

अगाक्—वि० [स०] १ चुप। मौन। चुपचाप। २ नीचे मुख किए हुए। अधोमुख। २ स्तब्ध। जड। स्तभित। चकित। विस्मित। ३ दक्षिण का। दक्षिणी [को०]।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—अवाड् मनसगोचर=जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन। वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर।

अवाक्पुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हो। २. सौंफ। ३. सोया।

अगाक्शाख—सज्ञा पुं० [स०] पीपल [को०]।

अगाक्श्रुति—वि०[स०]बोल न सुन सकनेवाला। गूँगा बहरा[को०]।

अगाक् सदेश—सज्ञा पु० [प्रा०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

अगाक्ष—वि० [स०] रक्षक। अभिभावक। देखभाल करनेवाला[को०]।

अगागी Ⓤ—वि० [स० अवाग्मिन्=अपटु] मौन। चुप।

अगाड्—वि० [स०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०]।

अगाडनरक—सज्ञा पु० [स०] जिह्वा छेदन का दुख। जिह्वा काटने का दड। जबान काटने की सजा।

अगाड् निरय—सज्ञा पुं० [स०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०]।

अगाड् मुख[१]—वि० [स०] १ अधोमुख। उलटा। नीचे मुँह का २. लज्जित।

अगाड् मुख[२]—सज्ञा पु० एक शस्त्र [को०]।

अगाची—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण दिशा। उ०—प्राची प्रतीची अवाची विलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकैनी—गंग०, पृ० ३४०।

अगाचीन—वि०[स०]१ अधोमुख। मुँह लटकाए हुए। २ लज्जित ३. दक्षिण सबधी। दक्षिणी। दक्षिण का [को०]। ४. नीचे गया हुआ [को०]।

अवाच्य¹—वि० [सं०] १ जो कहने योग्य न हो। अनिंदित। विशुद्ध। २ जिसमे बात करना उचित न हो। नीच। निंदित। ३ स्पष्टतारहित। अस्पष्ट [को०]। ४ दक्षिण संबंधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य²—संज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—**अवाच्यदेश**=वह स्थान जिसकी बाबत कुछ कहना ठीक न हो—योनि।

अवाजⓊ†—संज्ञा स्त्री० [फा० **आवाज**] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी आवाज। दई न जात खार उतराई चाहत चढ्यो जहाज।—सूर०, १। १०८।

अवाजीⓊ—वि० [फा० **आवाज**] शब्द करनेवाला। चिल्लानेवाला। उ०—यदपि आवाजी परम तदपि बाजी सो छाजत।—गोपाल (शब्द०)।

अवाडूⓊ—वि० [सं० **अपवृत** अथवा देशी] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखडियाँ ई किऊँ नही, दैव अवाडू ज्याँह। चकवीकइ इह पखडी, रमणि न मेलउ त्याँह।—ढोला० दू० ७१।

अवात—वि० [सं०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २ अवाकात [को०]।

अवादादे०—वि० पुं० [हिं० **वादा**] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [सं० **अवादिन्**] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद उपस्थित नही करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [सं०] १ जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [सं०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित मे) उद्धरण [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १ प्राप्त करने योग्य। २ (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—संज्ञा पुं० [अ० 'आम' का बहुव०] साधारणजन। सर्वसाधारण। आम लोग। उ०—करै तृप्त किमि तुमहि अवाम।—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय¹Ⓤ—वि० [सं० **अवर्य**] अनिवार्य। उच्छृखल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु विरद भुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारौ ऐसे। अकरम अबुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सो मैं करी अनीति।—सूर (शब्द०)।

अवाय²—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ मे पहनने का आभूषण। कड़ा।—डिं०।

अवार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर मी गई। उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई।—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—संज्ञा पुं० [फा०] १. वह बही जिसमे प्रत्येक असामी की जोत आदि लिखी जाती है। २ जमाखर्च की बही। ३ वह बही जिसमे याददाश्त के लिये नोट किया जाय। ४ संक्षिप्त वृत्तांत। गोशवारा। खतियौनी। संक्षिप्त लेखा। उ०—सांचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम ममाहत करिकै जमाबधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूरि करि दाई तनक न तामे आवै।—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [सं०] १ जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चित। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय¹—वि० [सं०] १. जो रोका न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २ जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३ जो आराम न हो। असाध्य।

अवारणीय²—संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगदर, अश्मरी, मूढगर्भ और उदररोग।

अवारनाⓊ—क्रि० स० [सं० **अ+वारण**] १ रोकना। मना करना २ वारना। न्यौछावर करना।

अवारपार—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

अवारा†—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'

अवारा²Ⓤ—वि० [हिं० **आना+वार** (प्रत्या०)] आनेवाले। आगतुक। परदेशी। उ०—सिसिर सिरान्यो आस आवनि अवारे की।—प्रेमघन०, पृ० २२६।

अवारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

अवारिजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [सं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिबंध-मुक्त [को०]।

यौ०—**अवारित द्वार**=जिसका द्वार बद न हो खुला हो।

अवारी¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० **वारण**] बाग। लगाम।

अवारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवार**] १. किनारा। मोड़।

क्रि०प्र०—देना=नाव फेरना।

२ मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [सं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारोⓊ†—संज्ञा पुं० [सं० **अ=दूषित+प्रा० वार=बे**] अबेर। देर। विलंब। अतिक्रांत। उ०—तब अवारो सो ये सेवा सो पहोंचता।—दो सौ बावन०, पृ० २१०।

अवर्स—वि० [सं०] दे० 'अवार्णीय'। उ०—उस पहले के ही मलबे मे जिसका जलना गिरना अवार्य।—दैनिकी, पृ० २१।

अवावट—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुंड और गोलक।

अवासⓊ—संज्ञा पुं० [**आवास**] निवासस्थान। घर। उ०—कबिरा कहा गरबिया ऊँचा देखि अवास। काल्हि परे भुइँ लोटना ऊपर जमिहै घास।—कबीर (शब्द०)। ख) बाजति नंद अवास बधाई। बैठे लेलत द्वार आपने, मात बरस के कुँवर कन्हाई।—सूर०, १०। ८१८।

अविद्धकर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पाढा नाम की लता ।

अविद्य[1]—वि० [स० अविद्यमान्] नष्ट । नेस्त नाबूद । उ०—विद्या धरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब ।—रामच०, पृ० १२२ ।

अविद्य[2]—वि० [स०] १ अशिक्षित । विद्याविहीन । अपढ । बेवकूफ २ जो शिक्षा सबधी न हो [को०] ।

अविद्यमान—वि० [स०] १ जो विद्यमान या उपस्थित न हो । अनुपस्थिति । २. जो न हो । असत् । उ०—अर्थ अविद्यमान जानिय ससृति नहि जाइ गोसाई । बिनु बाँधे निज हठ मठ परबस परयो कीर की नाई ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१७।३ मिथ्या । असत्य । झूठा ।

अविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरुद्ध ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । अज्ञान । मोह । उ०—(क) जिन्हहि सोक ते कहौं बखानी । प्रथम अविद्या निसा नसानी ।—मानस, ७ । ३१ (ख) बिषम भई सकल्प जब तदाकार सो रूप । महाँ अँधेरो काल सो परे अविद्या कूप ।—कबीर (शब्द०) । २ माया । उ०—हरि सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या ।—तुलसी (शब्द०) । ३ माया का भेद । उ०—तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।—तुलसी (शब्द० । ४ कर्मकाड । ५ साख्यशास्त्रानुसार प्रकृति । अव्यक्त । अचित् । जड । ६ योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशो मे पहला । विपरीत ज्ञान । अनित्य मे नित्य, अशुचि मे शुचि, दुख में सुख और अनात्मा (जड) मे आत्मा (चेतन) का भाव करना । ७ वैशेषिकशास्त्रानुसार इद्रियो के दोष तथा सस्कार के दोष से उत्पन्न दुष्ट ज्ञान । ८ वेदातशास्त्रानुसार माया ।

यौ०—**अविद्याकृत** = अविद्या से उत्पन्न । **अविद्याजन्य** = अविद्या से उत्पन्न । **अविद्याच्छन्न** = अविद्या या अज्ञान से आवृत्त । **अविद्यामार्ग** = प्रेम । वह मार्ग जो ससार मे मनुष्यो को अनुरक्त करता है । **अविद्यान्ध** = अज्ञान (बौद्ध) ।

अविद्वत्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता । अज्ञानता ।

अविद्वान्—वि० [स०] [वि० स्त्री० **अविदुषी**] जो विद्वान् न हो । शास्त्रानभिज्ञ । मूर्ख ।

अविद्वेष—सज्ञा पुं० [स०] विद्वेष का अभाव । अनुराग । प्रेम ।

अविधवा—वि० [स०] सधवा । सौभाग्यवती । सुहागिन ।

अविधान—सज्ञा पुं० [स० **अभिधान**] दे० 'अभिधान' । उ०—व्याकरन कथा नाटक्क छद । अभिधान दास अलकार बध ।—पृ० रा०, १ । ७३६ ।

अविधान[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ विधि के विरुद्ध कार्य करना । २ विधान का अभाव ।

अविधान[2]—वि० विधिविरुद्ध । २ उलटा ।

अविधि[1]—वि० [स०] विधिविरुद्ध । नियम के विपरीत ।

अविधि[2]—सज्ञा पुं० १ विधान के विरुद्ध कार्य । अविधान । अनियमितता । उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के आचार्य हैं ।—भारत०, पृ० १२७ । २. अपरिभाषेय । जिसकी परिभाषा न की जा सके [को०] ।

अविनय[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. विनय का अभाव । ढिठाई । उद्दडता । उ०—अविनय विनय जथारुचि बानी । छमहि देव अति आरति जानी ।—तुलसी (शब्द०) । २ घमड । अभिमान [को०] । ३, अपराध । दोष [को०] ।

अविनय[2]—वि० उद्दड । धृष्ट । अशिष्ट । अमडी [को०] ।

अविनयी—वि० [सं० **अविनयिन्**] विनय-रहित । उद्दड [को०] ।

अविनश्वर—वि० [सं०] जो नष्ट न हो । जो बिगडे नही । चिरस्थायी । शाश्वत । उ०—दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर ।—अपरा, पृ० १८६ ।

अविनाभाव—सज्ञा पुं० [स०] १ सबध । २ वह सबध जिसके बिना कोई वस्तु न रह सके । जैसे अग्नि और धूम का ।

अविनाश—सज्ञा पुं० [स०] विनाश का अभाव । अक्षय ।

अविनाशी—वि० पुं० [सं० **अविनाशिन्**] [वि० स्त्री० **अविनाशिनी**] १ जिसका विनाश न हो । अक्षय । अक्षर । २ नित्य । शाश्वत ।

अविनासी[1]—वि० [सं० **अविनाशी**] दे० 'अविनाशी' । उ०—दादू अविहड आप हैं अमर उपजावनहार । अविनासी आपइ रहइ बिनसइ सब ससार ।—दादू (शब्द०) ।

अविनासी[2]—सज्ञा पुं० [स० **अविनाशिन्**] ईश्वर । ब्रह्म । उ०—(क) राम नाम छाँडौ नही सतगुरु सीख दई । अविनासी सो परसि के आतमा अमर भई ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दादू आनद आतमा अविनासी के साथ । प्राननाथ हिरदै बसइ सकल पदारथ हाथ ।—दादू (शब्द०) ।

अविनीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अविनीता**] १ जो विनीत न हो । उद्धत । उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी मे भीत रहूँ मैं, क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं ।—कामायनी, पृ० १६० ।

अविनीता—सज्ञा स्त्री० [स०] कुलटा नारी । असती स्त्री । दुराचारिणी या बदचलन स्त्री ।

अविनेय—वि० [स०] अनियत्रणशील । अवाध्य । बेकहा [को०] ।

अविपक्व—वि० [स०] १ न पका हुआ । अपक्व । २ जिसका ज्ञान प्रौढ न हो [को०] ।

अविपट—सज्ञा पुं० [स०] भेड के ऊन का वस्त्र । ऊनी वस्त्र [को०] ।

अविपद्—सज्ञा स्त्री० [स०] कष्ट, दुख आदि का अभाव । सुख । समृद्धि [को०] ।

अविपन्न—वि० [सं०] १ स्वस्थ । नीरोग । २ जो क्षत न हुआ हो । जिसे आघात या चोट न लगी हो । ३. शुद्ध । पवित्र ।

अविपर्यय—सज्ञा पुं० [स०] विपर्यय या विकार का न होना । क्रम के विरुद्ध न होना ।

अविपाक[1]—सज्ञा पु० [स०] अजीर्ण रोग [को०] ।

अविपाक[2]—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त । अजीर्ण [को०] ।

अविपाल—सज्ञा पु० [स०] गडेरिया । उ०—पशुओ की रक्षा करने के कारण उसे गोपालक, अजापाल वा अविपाल कहते थे ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २९२ ।

अविपित्तक—सज्ञा पुं० [स०] एक चूर्ण जो अम्लपित्त रोग में दिया जाता है ।

अविवुध[1] वि० [स०] १. अज्ञानी । नादान । २. बुद्धिहीन । बेअक्ल ।

अविबुध[2]—सञ्ज्ञा पु० असुर। दैत्य। राक्षस।

अविभक्त-वि० [सं०] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। २ जो बाँटा न गया हो। विभागरहित। शामिलाती। ३ अभिन्न। एक। उ०—सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं उन पर करूँगी व्यक्त।—साकेत, पृ० १८६।

अविभाग-वि० [स०] जिसके टुकड़े न हो। जो अलग अलग न हो। जो एक ही [को०]।

अविभाज्य[1]—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गणित मे वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।

अविभाज्य[2]-वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके। जिसके भाग या खड न हो सकें।

अविभावन-सञ्ज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अविभावना] [वि० अविभावनीय, अविभाव्य] १ पहचान का अभाव। २ अदर्शन। लोप [को०]।

अविमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आदर। समान। २ अपमान का अभाव [को०]।

अविमुक्त[1]—वि० [स०] जो विमुक्त न हो। बद्ध।

अविमुक्त[2]-सञ्ज्ञा पु० १ कनपटी। जाबाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का स्थान। २ काशी।

अविमुक्तेश्वर-सञ्ज्ञा पुं० [स०] काशी मे स्थापित एक शिवलिंग [को०]।

अवियुक्त-वि० जो वियुक्त न हो। जो अलग अलग न हो। मिला हुआ [को०]।

अवियोग[1]—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ वियोग का अभाव। उपस्थित। २ सयोग। मिलाप।

अवियोग[2]-वि० १ वियोगशून्य। जिसका वियोग न हो। २ सयुक्त सम्मिलित। एकीभूत।

यौ०—**अवियोगव्रत**=कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अगहन शुक्ल तृतीया को पडता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर चद्र दर्शन करके रात को दूध पीती हैं। यह व्रत सौभाग्यप्रद माना जाता है।

अविरत[1]—वि० [स०] १ विरामशून्य। निरतर। २ अनिवृत्त। लगा हुआ।

अविरत[2]—क्रि० वि० १ निरतर। लगातार। २ सतत। नित्य। हमेशा।

अविरत[3]—सञ्ज्ञा पुं० विराम का अभाव। नैरतर्य।

अविरति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. निवृत्ति का अभाव। लीनता। २ विषयादि में तृष्णा का होना। विषयाशक्ति। ३ विराम का अभाव। अशाति। ४ जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा से रहित वर्ताव करना।

विशेष—यह बधन के चार हेतुओ मे से है और बारह प्रकार का है। पाँच प्रकार की इद्रियाविरत, एक मनोविरति और छह प्रकार की कायाविरति।

अविरथा—क्रि० वि० [स० वृथा, हिं० बिरथा] दे० 'वृथा'।

अविरल—वि० [स०] १ जो विरल या भिन्न न हो। मिला हुआ। २. घना। अव्यवच्छिन्न। सघन। उ०—अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारभ अवोदनादग्ध वो।—तुलसी ग्र० पृ० ४८३।

यौ०—**अविरलभारासार**=अनवरत होनेवाली मूसलाधार वृष्टि।

अविरहित-वि० [स०] वियोग न होना। अवियुक्त। अलग न होना [को०]।

अविराम[1]—वि० [स०] १ बिना विश्राम लिए हुए। अविश्रात। उ०—चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग।—कानन०, पृ० १३।

अविराम[2]—क्रि० वि० लगातार। निरतर।

अविराम[3]—सञ्ज्ञा पुं० विरामाभाव। निरतरता। नैरतर्य [को०]।

अविरुद्ध—वि० [स०] १. जो विरुद्ध न हो। अप्रतिकूल। उ०—स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव सचारी रूप मे आकर तिरोहित नहीं कर सकता।—रस०, पृ० १८२। २. अनुकूल। मुवाफिक। उ०—प्रजा आज कुछ और सोचती जो अब तक अविरुद्ध रही।—कामायनी, पृ० १७५।

अविरेचन—सञ्ज्ञा पु० [स०] [वि० अविरेचनीय, अविरेच्य] विरेचन क्रिया मे बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। कब्ज करनेवाली वस्तु। [को०]।

अविरोध—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ साधर्म्य। समानता। २ विरोध का अभाव। अनुकूलता। ३ मेल। सगति। मुवाफिकत। उ०—समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवशपुरोधा।—तुलसी (शब्द०)।

अविरोधी-वि० [स० अविरोधिन्] [वि० स्त्री० अविरोधिनी] १ जो विरोधी न हो। अनुकूल। २ मित्र। हित।

अविलघन—सञ्ज्ञा पु० [सं० अविलङ्घन] [वि० अविलघनीय] न लाँघना। मर्यादा को न पार करना [को०]।

अविलब[1]—क्रि० वि० [स० अविलम्ब] बिना विलब। तुरत। उ०—रथ रुका, उतरे उभय अविलब।—साकेत, पृ० ३७४।

अविलब[2]—सञ्ज्ञा पुं० विलब का अभाव। शीघ्रता [को०]।

अविलक्ष्य—वि० [स०] १ बिना लक्ष्यवाला। २ ईमानदार। निर्भीक। ३ असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा कठिन हो। ४ जिसका विरोध कठिन हो [को०]।

अविला—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] भेड [को०]।

अविलास[1]—वि० [स०] विलास से मुक्त रहनेवाला। विश्वसनीय। स्थिर [को०]।

अविलास[2]—सञ्ज्ञा पु० विलास का अभाव [को०]।

अविलिख—वि० [सं०] १ न लिखनेवाला अथवा लिखना न जाननेवाला। २. बुरा लिखनेवाला। ३ लिखनेवाले से भिन्न या व्यतिरिक्त [को०]।

अविलोकन Ⓤ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवलोकन] दे० 'अवलोकन'।

अविलोकना Ⓤ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अवलोकना'।

अविलोडित—वि० [सं० अ=नहीं+विलोडित=मथा हुआ] न मथा हुआ। अमथित। उ०—अविलोडित था जमा दही।—साकेत, पृ० ३४८।

अविवक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की अनिच्छा।

अविवक्षित—वि० [सं०] १ बिना उद्देश्य या अभिप्राय का। २. जिसके विषय मे कहना या बोलना न हो [को०]।

अविवाद[1]—वि० [सं०] विवादरहित। निर्विवाद। उ०—सामूहिक जीवन विकास की सम्य योजना है अविवाद।—युग०, पृ० ११

अविवाद[२]—सज्ञा पु० सहमति। विवाद का न होना [को०]।

अविवादी—वि० [स० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला। शात [को०]।

अविवाहित—वि० [स०] [वि० स्त्री० अविवाहिता] जिसका व्याह न हुआ हो। बिना व्याहा। क्वाँरा। उ०—तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता'।—स्कद०, पृ० ७०।

अविविक्त—वि०[सं०] १ जिसकी विवेचना न हो। अविवेचित। २ विवेकरहित। अविवेकी। ३ कोई भेद न रखनेवाला। भेदरहित। ४ सर्वसाधारण से सबध रखनेवाला। सार्वजनिक [को०]।

अविवेक—सज्ञा पुं० [सं०] १ विवेक का अभाव। अविचार। २ अज्ञान। नादानी। ३ अन्याय। ४. न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव। ५ साख्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान।

अविवेकता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विचार का अभाव। अज्ञानता। २ विवेक का न होना।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १ अज्ञानी। विवेकरहित। जिसे तत्वज्ञान न हो। २ अविचारी। ३ मूढ। मूर्ख। ४ अन्यायी

अविवेचक—वि० [स०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०]।

अविवेचना—सज्ञा स्त्री० [स०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०]।

अविशक—वि० [स० अविशङ्क] १ शका या सदेह न करनेवाला। अशक। २ न डरनेवाला। निर्भय [को०]।

अविशका—सज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] सदेह या भय का अभाव [को०]।

अविशुद्ध—वि० [स] १ जो विशुद्ध न हो। मेलमाल का। २ अशुद्ध। मलिन। ३ अपवित्र। नापाक।

अविशुद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अशुद्धि। मेलमाल। २ मलिनता। अपवित्रता। नापाकी। ३ विकार।

अविशेष[१]—[स०] भेदक धर्मरहित। जिसमे किसी दूसरी वस्तु मे कोई विशेषता न हो। तुल्य। समान।

अविशेष[२]—सज्ञा पुं० १ भेदक धर्म का अभाव। तुल्यत्व। २ एकता [को०]। ३ साख्य मे सातत्व, धीरत्व और मूढ़त्व आदि विशेषताओ से रहित सूक्ष्म भूत।

यौ०—अविशेषज्ञ।

अविशेषसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौवीस भेदो मे से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर मे प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओ मे होता है, और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजो के धर्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा।

अविश्रंभ—सज्ञा पुं० [सं० अविश्रम्भ] विश्वास का अभाव। अविश्वास [को०]।

अविश्रात[१]—वि० [सं० अविश्रान्त] १ विरामरहित। जो रुके नहीं। २ जो थके नही। ३ जो क्षतियुक्त न हो। अक्षत [को०]।

अविश्रात[२]—क्रि० वि० अनवरत। लगातार [को०]।

अविश्वसनीय—वि० [स०] जो विश्वासयोग्य न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके।

अविश्वस्त—वि०[स०] सदेहास्पद। अविश्वसनीय।

अविश्वास—सज्ञा पुं० [स०] १ विश्वास का अभाव। बेएतबारी। उ०—परतु उस पर प्रकट रूप से अविश्वास का भी समय नहीं रहा।—स्कद०, पृ० १०८। २ अप्रत्यय। अनिश्चय।

यौ०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय। बेएतबारी। झूठा।

अविश्वासी—वि० [स० अविश्वासिन्] १ जो किसी पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। श्रद्धारहित। उ०—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय। तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं।—चद्र०, पृ० १६२। २ जिस पर विश्वास न किया जाय। अविश्वासपात्र।

अविष[१]—वि० [सं०] १ जो विषैला न हो। विषहीन। २ विष के अभाव को समाप्त करनेवाला [को०]।

अविष[२]—सज्ञा पुं० १ समुद्र। २ आकाश। ३ राजा [को०]

अविषय[१]—वि० [सं०] १ जो विषय न हो। अगोचर। २ अप्रतिपाद्य। अनिर्वचनीय। ३ जिसमे कोई विषय न हो। विषयशून्य।

अविषय[२]—सज्ञा पुं० [स०] १ अभाव। २ लोप। अदर्शन। ३ इद्रियो के विषय की उपेक्षा [को०]।

अविषा—सज्ञा स्त्री० [स०] निर्विषी तृण। एक जडी। जदवार।

विशेष—यह मोथे के समान होती है और प्राय हिमालय के पहाडो पर मिलती है। इसका कद अनीस के समान होता है और साँप, बिच्छू आदि के विष को दूर करता है।

अविषी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सरिता। नदी। २ पृथ्वी। धरती। ३ स्वर्ग [को०]।

अविसर्गी—वि० [स० अविसर्गिन्] न हटनेवाला। हमेशा बना रहनेवाला [को०]।

यौ०—अविसर्गी ज्वर = लगातार बना रहनेवाला ज्वर।

अविसह्य—वि०[स०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ)।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दड का भागी होता था।

अविसह्यदुर्ग—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के मतानुसार वह दुर्ग जिसमे शत्रु प्रवेश न कर सकता हो।

अविस्तर—वि०[स०] कम विस्तार या लबाईवाला। सक्षिप्त [को०]।

अविस्तार—वि० [सं०] विस्तार का अभाव। सक्षिप्तता [को०]।

अविस्तीर्ण—वि० [स०] जो विस्तीर्ण न हो। कम फैलाववाला [को०]।

अविस्तृत—वि० [स०] ठसा हुआ। कम स्थान मे फैला हुआ। अविरल। घना [को०]।

अविस्पष्ट—वि० [स०] जो साफ या स्पष्ट न हो। स्पष्ट रहित। अस्पष्ट [को०]।

अविहड(पु)-वि० [स० अ+विघटच]१. जो विहडे नही । जो खडित न हो । अखड । अनश्वर । उ०--(क) अविहड अखडित पीव है ताको निर्मय दास । तीनौ गुन के पेलि के चौथे कियो निवास ।--कबीर (शब्द०) । (ख) अविहड अँग विहडे नही अपलट पलट न जाय । दादू अनवट एक रस सब मे रहा समाय ।--दादू (शब्द०) । २ दे० 'बीहड' ।

अविहर(पु)--वि० [हिं० अ+विहर=बिखरनेवाला] दे० अविहड । उ०--ढढोरज्जहिं ढाल मुरै गौरीदल अविहर ।--प्रि० रा० १३।६५ ।

अविहित--वि० [स०] १ जो विहित न हो । विरुद्ध । २ अनुचित । अयोग्य । ३ निकृष्ट । नीच ।

अवी--सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऋतुमती स्त्री । बनकुलथी ।

अवीचि--सज्ञा पु० [स०] पुराणानुसार एक नरक ।

अवीचि--वि० लहरविहीन । जिसमे लहर न हो [को०] ।

अवीज[1]-वि० [स०] १ बीजरहित । २ नपुसक । ३ मुख्य हेतु का अभाव [को०] ।

अवीज[2]--सज्ञा पु० १ मानसिक उत्तेजना पर नियत्रण । २ बीज का अभाव या न होना । ३ बुरा बीज ।

अवीजक--वि०, सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अवीज' [को०] ।

अवीजा--सज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश ।

अवीरा--वि० स्त्री० [स०[१ जिस स्त्री के पुत्र और पति न हो । पुत्र और पतिरहित (स्त्री) । २ स्वतत्र (स्त्री) ।

अवोह(पु)--वि० [सं० अवीड?] जो डरे नही । अभय । निडर ।--(डिं०) ।

अवृक्ष--वि० [स०] वृक्षविहीन । पेड पौधो से रहीत [को०] ।

अवृत--वि० [सं०] १ जो रोका न गया हो । २ अनिर्वाचित । ३ आवरणरहित । रक्षाविहीन । ४ जो किसी के वश मे या पराभूत न हो ।

अवृत्ति[1]--सज्ञा सज्ञा [स०] १ जीविका का अभाव । २ स्थिति का अभाव । बेठिकानापन ।

अवृत्ति[2]--वि० १ अस्तित्व या स्थितिरहित । २ जीविकाहीन [को०]

अवृथा--अव्य० [सं०] सफलतारहित । अव्यर्थ [को०] ।

अवृद्धिक[1]--सज्ञा पुं० [सं०] बिना वृद्धि या ब्याज का रुपया । मूल धन । असल ।

अवृद्धिक[2]--वि० जिसपर ब्याज न लगता हो । जो बढता न हो ।

अवृष्टि--सज्ञा स्त्री० [स०] वर्षा का अभाव । अवर्षण । सूखा [को०] ।

अवेक्षक--वि० [स०] १ देखनेवला । अवलोकन करनेवाला । २. जाँच पडताल करनेवाला । निरीक्षक [को०] ।

अवेक्षण--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवेक्षित,अवेक्षणीय]१ अवलोकन । देखना । २ जाँच पडताल । देखभाल । निरीक्षण ।

अवेक्षणीय--वि० [स०] १ देखने योग्य । निरीक्षण योग्य ।२ जाँच के लायक । परीक्षा के योग्य ।

अवेक्षा--सज्ञा स्त्री०[स०] १ अवेक्षण । देखना । २ परवाह । ध्यान । खयाल ।

अवेज(पु)--सज्ञा पुं० [अ० एवज] बदला । प्रतीकार । उ०--मारग मे गज मे चढो जात चलो अँगरेज । कालीदह बीरचो नगज लिय कपि चना अवेज ।--रघुराज (शब्द०) ।

अवेणि--वि० [स०] १ वेणी न किया हुआ । २ जिनके बालो की वेणी न बनी हो । ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो, --जैसे नदी का जल [को०] ।

अवेत--वि० [सं०] १ बीता हुआ । २ पाया हुआ । प्राप्त किया हुआ । ३ सयुक्त [को०] ।

अवेद--सज्ञा पुं० [स०] वेद से भिन्न । जो वेद न हो [को०] ।

यौ०--अवेदविद अवेदविहित ।

अवेदि--सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता । अज्ञान [को०] ।

अवेद्य[1]--वि० पु० [स०] १ जो जाना न जा सके । अक्षय । २. अलभ्य ।

अवेद्य[2]--सज्ञा पुं० १ बछडा । २ नादान बच्चा ।

अवेद्या--वि० स्त्री० [स०] वह स्त्री जिससे विवाह नही कर सकते । अविवाह्य स्त्री ।

अवेल[1]--वि० [स०] १ जिसकी सीमा न हो । असीमित । २ असामयिक [को०] ।

अवेल[2]--सज्ञा पुं० गोपन छिपाव । दुराव [को०] ।

अवेला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरा समय । कुसमय । अनुचित समय । प्रतिकूल समय । २ चबाया हुआ पान [को०] ।

अवेव(पु)--वि० [स० अ=नहीं+वेग] निर्वेग । उ०--सबनौ भूखे सीह ज्यूँ असुरा लखे अवेव ।--रा० रू०, पृ० २८८ ।

अवेश[1](पु)--सज्ञा पुं० [स० आवेश] १ किसी विचार मे इस प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय । आवेश । जोश । मनोवेग । उ०--मारि मारि करि, कर खडग निकासि लियो दियो घोर सागर मे सो अवेश आयो है ।--नाभा (शब्द०) । २ आगम । चेतनता अनुप्रवेश । उ०--शिष्यन सो कह्यो कमू देह मे अवेश जानो तब ही बखानो आनि मुनि कीजै न्यारी है ।--प्रिया (शब्द०) । ३ भूतावेश । भूत चढना । किसी भूत का सिर आना । भूत लगना । उ०--कोऊ कहै दोष, कोऊ कहत अवेश तापै करौ दशरथ कियो भाव पूरो परयो है ।--नाभा (शब्द०) ।

अवेश[2]--वि० [स०] बिना वेशवाला । वेशरहित [को०] ।

अवेस्ता--सज्ञा स्त्री० [पहल०] १ ईरान के पूर्वी जनसमूह की एक पुरानी भाषा जो सस्कृत के अति निकट है । २. पारसियो की एक धर्मपुस्तक ।

अवैज्ञानिक--वि० [स०] १ जिसका विज्ञान मे कोई सबध न हो । २ जो तर्कसमत न हो [को०] ।

अवैतनिक--वि० [स०] जो वैतनिक न हो । जो किसी काम को करने के लिये वेतन न पाए । बिना वेतन के काम करनेवाला । आनरेरी ।

अवैदिक--वि० [स०] वेदविरुद्ध ।

अवैद्य--वि० [स०] १ जो वैद्य न हो । जो वैद्यकशास्त्र को न जानता हो । २ अज्ञ । अनजान ।

अवैध—वि० [स०] [वि० स्त्री० अवैधी] १ नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०—यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें ।—स्कंद०, पृ० १२१। २ जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक—वि० [स०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य[1]—संज्ञा पु० [स०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य[2]—वि० जिसमे मतभेद न हो। सर्वसमत।

अवोक्षण—संज्ञा पुं० [स०] तिरछा हाथ करके जल गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिडकना।

अवोद[1]—वि० [स०] गीला। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद[2]—संज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीला करना [को०]।

अवोष—संज्ञा पु० [स०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यग—वि० [स० अव्यङ्ग] जो व्यग या टेढा न हो। सीधा।

अव्यंगांग—वि० [वि० अव्यङ्गाङ्ग] [स्त्री० अव्यगागी] जिसका कोई अग टेढा न हो। सुडौल।

अव्यगा—संज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] केवाँच। करैंच। कौंच।

अव्यग्य—वि०[स० अव्यङ्ग्य]१ निर्दोष। २ व्यग्यरहित। व्यजन-विहीन [को०]।

विशेष—साहित्य मे अव्यग्य काव्य को अवर अर्थात् अधम कोटि मे माना गया है।

अव्यजन[1]—वि० [सं० अव्यञ्जन] [वि० स्त्री० अव्यजना] १ बिना सीग का (पशु)। डूँडा। २ जो सुलक्षण न हो। कुलक्षण। ३ जिसमे (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४ जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यजन[2]—संज्ञा पुं० १ शृगहीन पशु। डूँडा पशु। २. जो व्यजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अव्यण्डा] १ केवाँच। करैंच। कौंच।

अव्यक्त—वि० [स०] १ जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०—(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक वन एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अविकापूरण अखिल लोक तव रूप।—सूर (शब्द०। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।—अपरा, पृ० १३। २ अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०—प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।—कबीर (शब्द०)।

अव्यक्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ कामदेव। ३ शिव। ४ प्रधान। प्रकृति (साख्य)। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने।—मानस, ७।१३ ५ वेदात शास्त्रानुसार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और सुषुप्ति अवस्था। ६ ब्रह्म। ईश्वर। ७ बीजगणित के अनुसार वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८ मायोपाधिक ब्रह्म (शकर)। ९ जीव।

क्रि० प्र०—होना (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण मे लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] बीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तगणित—संज्ञा पुं० [स०] बीजगणित।

अव्यक्तगति—वि०[स०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद—संज्ञा पुं०[स०]वह पद जिसका तालु आदि स्थानो द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे खिडियो की बोली।

अव्यक्तमलप्रभव—संज्ञा पु० [स०] ससार। जगत्।

अव्यक्तराग—संज्ञा पुं०[स०]१ हलका लाल। अरुण। २ गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि—संज्ञा स्त्री० [स०] (बीजगणित मे) वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण—संज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिंग—संज्ञा पुं०[स० अव्यक्तलिङ्ग]१ सांख्यशास्त्रानुसार महत्तत्त्वादि। २ सन्यासी। ३ वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तसाम्य—संज्ञा पुं०[स०] बीजगणित के अनुसार अव्यक्त राशि या वर्ण का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—संज्ञा पुं० [स०] अस्फुट शब्द का अनुकरण। जैसे, मनुष्य मुर्गे की बोली पर उसकी नकल करके 'कुकड़ूँकूँ' बोलता है।

अव्यक्तिक—वि० [स०] दे० 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र—वि० [स०] १ जो व्यग्र न हो। धीर। २ ध्यानवाला। सतर्क [को०]।

अव्यथ[1]—वि० [स०] १ किसी को दुख न देनेवाला। दयालु। २ वेदना से रहित। दुख से दूर [को०]।

अव्यथ[2]—संज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय—संज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोडा [को०]।

अव्यथा—संज्ञा पुं० [स०] १ हरीतकी। हड। २ सोंठ। ३ स्थलकमल। स्थलपद्म। ४ गोरखमुंडी। ५ आँवला। ६. स्थिरता। दृढता [को०]।

अव्यथिष—संज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ समुद्र [को०]।

अव्यथिषी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ रात्रि। अर्धरात्रि। निशीथ [को०]।

अव्ययी—वि० [स० अव्ययिन्] १ दुख पहुँचानेवाला। २ भय से पूर्ण। निर्भय। ३ दुख न देनेवाला [को०]।

अव्यथ्य—वि० [स०] दे० १ जिसे किसी प्रकार क्षुब्ध न किया जा सके। २ दे० 'अव्ययी' [को०]।

अव्यपदेश्य[1]—वि० [स०] १ जो कहा न जा सके। अनिर्वचनीय। २ न्यायानुसार निर्विकल्प। जिसमे विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३ अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य[2]—संज्ञा पुं० १ निर्विकल्प ज्ञान। २ ब्रह्म।

अव्यभिचार—संज्ञा पुं० [स०] १ अविच्छिन्नता। सातत्य। २ वफादारी। ३ नित्यसग या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी—वि०[स० अव्यभिचारिन्] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २ जो किसी प्रकार व्यभिचारिन न हो। ३ धर्मशील। सच्चरित्र। नैतिक [को०]। ४. नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अव्यभिचारी[1]—सज्ञा पु० न्याय के मत मे साध्य-साधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु।

अव्यय[1]—वि० [स०] १ जो विकार को प्राप्त न हो। सदा एकरस रहनेवाला। अक्षय। २ नित्य। आदि-अत-रहित। ३. परिणाम-रहित। विकार-रहित। ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला।

अव्यय[2]—सज्ञा पुं० १ व्याकरण मे वह शब्द जिसका सब लिंगो, सब विभक्तियो और सब वचनो मे समान रूप से प्रयोग हो। २ परब्रह्म। ३ शिव। ४ विष्णु। ५ कुशल क्षेम [को०]। ६. समृद्धि [को०]।

अव्ययीभाव—सज्ञा पुं० [सं०] समास का एक भेद जिसमे अव्यय के साथ उत्तरपद समस्त होता है। जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रतिरूप। यह समास प्राय पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है।

अव्ययेत—सज्ञा पु० [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदो मे से एक जिसमे यमकात्मक अक्षरो के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े, जैसे—अलिनी अलि नीरज बसे प्रति तरुवरनि वहग। त्यो मनमथ मन मथन हरि बसै राधिका सग।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मथ के बीच कोई और पद नही है।

अव्यर्थ—वि० [सं०] १ जो व्यर्थ न हो। सफल। २ सार्थक। ३ अमोघ।

अव्यलीक—वि० [स०] १ झूठ नही। सत्य। २ सहमत होने योग्य। प्रिय [को०]।

अव्यवधान[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवधान या अतर का अभाव। २. निकटता। लगाव। रोक का न होना। रुकावट का अभाव। ३ लापरवाही [को०]।

अव्यवधान[2]—वि० १ बिना व्यवधान या रुकावट का। २ प्रकट। खुला हुआ। ३ नग्न। आवरणहीन, जैसे भूमि। ४. लापरवाह [को०]।

अव्यवसाय[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. व्यवसाय का अभाव। उद्यम का अभाव। २ निश्चयाभाव। निश्चय का न होना।

अव्यवसाय[2]—वि० उद्यमशून्य। व्यवसायशून्य। आलसी। निकम्मा।

अव्यवसायी—वि० [स० अव्यवसायिन्] १ उद्यमहीन। निरुद्यमी। २ आलसी। पुरुषार्थहीन।

अव्यवस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अव्यवस्थित] १ नियम का न होना। नियमाभाव। बेकायदगी। २ स्थिति का अभाव। मर्यादा का न होना। ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था। अविधि। ४ बेइतजामी। गडबड।

अव्यवस्थित—वि० [सं०] १ शास्त्रादि-मर्यादा-रहित। बेमर्याद। उ०—'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम'।—स्कद०, पृ० १२। २ अनियत रूप। बेठिकाने का। उ०—'सम्राट् की मति एक सी नही रहती, वे अव्यवस्थित और चचल हैं।'—स्कद०, पृ० २८। ३ चचल। अस्थिर। उ०—मैं इन बातो को नही सुनना चाहती, क्योकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है।—चद्र०, पृ० १३३।

यौ०—अव्यवस्थितचित्त = जिसका चित्त ठिकाने न हो। चचल-चित्त। उ०—वह अव्यवस्थितचित्त का मनुष्य है।—(शब्द०)।

अव्यवहार्य—वि० [सं०] १ जो व्यवहार या काम मे लाने योग्य न हो। जो व्यवहार में न लाया जा सके। २ पतित। पक्तिच्युत।

अव्यवहित—वि० [सं०] बिना व्यवधान या रुकावट का [को०]।

अव्यवहृत—वि० [स०] जो व्यवहार मे न आया हो [को०]।

अव्यसन[1]—वि० [स०] व्यसन से मुक्त। व्यसन से हीन। दुर्गुण से दूर [को०]।

अव्यसन[2]—सज्ञा पु० व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०]।

अव्याकृत[1]—वि० [स०] १ जो व्याकृत न हो। अविश्लिष्ट जो विकार प्राप्त न हो। २ अप्रकट। गुप्त। ३. कारण रूप। कारणस्थ।

अव्याकृत[2]—सज्ञा पुं० १ वेदातशास्त्रानुसार अप्रकट बीजरूप जगत्कारण अज्ञान। २ साख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति।

यौ०—अव्याकृतधर्म।

अव्याकृतधर्म—सज्ञा पु० [स०] बौद्धशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के कर्म किए जा सकें।

अव्याख्या—सज्ञा पुं० [स०] स्पष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०]

अव्याख्यात—वि० [सं०] जिसे स्पष्ट न किया गया हो। व्याख्याहीन [को०]।

अव्याख्येय—वि० [स०] १ व्याख्या के अयोग्य। २ जिसे व्याख्या की जरूरत न हो। सरल [को०]।

अव्याघात—वि० [स०] १ व्याघातशून्य। जो रोका न जा सके। बेरोक। २ अटूट। लगातार।

अव्याज[1]—वि० [स०] १ छलछद्म से रहित। निष्कपट। २. अकृत्रिम। स्वाभाविक। नैसर्गिक (विशेषत समास मे, जैसे अव्याजमनोहर, अव्याजरमणीय [को०]।

अव्याज[2]—सज्ञा पुं० छलछद्म का अभाव। निष्कपटता। ईमानदारी [को०]।

अव्यापन्न—वि० [स०] जो मरा न हो। जीवित। जिदा।

अव्यापार[1]—स० [स०] व्यापारशून्य। बेकाम।

अव्यापार[2]—सज्ञा पु० १ उद्यम का अभाव। निठल्ला। २ वह काम जो अपने मे सबधित न हो। बिना काम का काम [को०]।

अव्यापारी—वि० [स० अव्यापारिन्] १ व्यापारशून्य। निरुद्यमी। निठल्लू। २ साख्यशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमे व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो। जो स्वभाव से अकर्ता हो।

अव्यापी—सज्ञा पु० [स० अव्यापिन्] [स्त्री० अव्यापिनी] १ जो व्यापी न हो। जो सब जगह न पाया जाय। २ एक प्रकार का उत्तरमान जिसमे कहे हुए देश, स्थान का पता न चले, जैसे—'कोई कहे कि काशी के पूर्व मध्य देश मे मेरा खेत समुद्र ने लिया। यहाँ काशी के पूर्व मध्य देश नही, किंतु मगध देश है, अत यह अव्यापी है।

अव्याप्त—वि० [स०] जो व्याप्त न हो। जो हर जगह न हो। सीमित [को०]।

अव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०][वि० अव्याप्त] १ व्याप्ति का अभाव। २ नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष, जैसे–'सब फटे खुरवाले पशुओ के सीग होती है। इस कथन मे अव्याप्ति दोष है, क्योकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सीग नही होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित। जो समग्र पर न लागू हो [को०]।

यौ०—**अव्याप्यवृत्ति**=सुख दु.ख आदि की क्षणिक वृत्ति।

अव्यावृत—वि० [स०] १ निरतर। सतत। लगातार। २ अटूट। ३ विना लोट पोट का। ज्यो का त्यो।

अव्याहत[1]—वि० [सं०] १ अप्रतिरुद्ध। बेरोक। उ०–सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति शभु प्रसादा।–तुलसी (शब्द०)। २ सत्य।

अव्याहत[2]—सज्ञा पुं० सत्य या अखडनीय वक्तव्य।

अव्युच्छिन्न—वि० [स०] बेरोक। अव्याहत।

अव्युत्पन्न—वि० [स०] १ अनभिज्ञ। अनुभवशून्य। अनाडी। अकुशल। २ व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके। ३ व्याकरणज्ञानशून्य।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ। प्रकाशहीन। उ०–उषा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है।–आर्यो०, पृ० ११८।

अव्र—सज्ञा पु० [अ० अब्र, तुल० सं० अभ्र] बादल। मेघ।

अव्रण[1]—वि० [सं०] जो क्षत न हो। विना घाव का। जो घाव से खराब न हुआ हो [को०]।

अव्रण[2]—सज्ञा पुं० दे० 'अव्रणशुक्र' [को०]।

अव्रणशुक्र—सज्ञा पुं० [स०] आँख का एक रोग जिसमे आँख की पुतली पर सफेद रग की एक फूली सी पड जाती है औरउसमे सूई चुभने के समान पीडा होती है।

अव्रत[1]—वि० [स०] १ व्रतहीन। जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। २ जिसने व्रतधारण न किया हो। व्रतरहित। ३ नियमरहित। नियमशून्य।

अव्रत[2]—सज्ञा पु० [सं०] १ जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है–प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन या अब्रह्म और परिग्रह।

२ व्रत का अभाव। ३ नियम का न होना।

अव्रत्य—सज्ञा पु० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०]।

अव्वल[1]—वि० [अ०] १ पहला। आदि का। प्रथम। २ उत्तम। श्रेष्ठ।

अव्वल[2]—सज्ञा पुं० आदि। प्रारभ, जैसे–'अव्वल से आखिर तक'। –(शब्द०)।

मुहा०–**अव्वल आना या रहना**=प्रथम स्थान प्राप्त करना।

अव्वलन्—क्रि० वि० [अ०] प्रथमत। पहले।

अव्वासⓊ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवास'। उ०–ऊँचा महल ही अव्वास। करता नारि नर विलास।–राम० धर्म०, पृ० १६८।

अशक—वि० [सं० अशङ्क] १ निशक। बेडर। निर्भय। उ०–देखा भविष्य के प्रति अशक।–अपरा, पृ० १७४। २ सदेहरहित। निश्चित [को०]।

अशकित—वि० [स० अशङ्कित] दे० 'अशक' [को०]।

अशभुⓊ—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+शम्भु=कल्याण] अकल्याण। अमंगल। अशुभ। अहित। उ०–सुनो क्यो न कनकपुरी के राइ। डोलै गगन सहित सुरपति अरु पृथुमि पलट जग जाइ। नसै धर्म मन वचन काय करि शभु अशभु कराइ। अबला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरजीव सो मरई। श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहिं टरई।–सूर (शब्द०)।

अशकुंभी—सज्ञा स्त्री० [स० असकुम्भी] जल मे होनेवाला एक पौधा। आकाशमूली [को०]।

अशकुन—सज्ञा पुं० [स०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमगल की सूचना समझी जाय। बुरा शकुन। बुरा लक्षण।

विशेष—इस देश मे लोग दिन को गीदड का बोलना, कार्यारभ मे छीक होना आदि अशकुन समझते हैं।

अशक्त—वि० [स०][सज्ञा अशक्ति] १ निर्बल। कमजोर। २. अक्षम। असमर्थ। नाकाबिल। उ०–होकर अशक्त अकाल मे ही काल-कवलित हो रहे।–भारत०, पृ० १०१।

अशक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] शक्तिहीनता। अयोग्यता [को०]।

अशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निर्बलता। कमजोरी। २ साख्य मे बुद्धि और इद्रियो का वध या विपर्यय। हाथ पैर आदि इद्रियो और बुद्धि का बेकाम होना।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं। इद्रियाँ ग्यारह हैं, अत ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं। इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ हैं तुष्टि और सिद्धि। तुष्टि नौ हैं और सिद्धि आठ। इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं।

अशक्य—वि० [स०] १ असाध्य। शक्ति के बाहर। न होने योग्य। २ एक काव्यालकार जिसमे किसी रुकावट या अडचन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे–काक कला कहुँ कहुँ कपि कलकल। कहुँ झिल्ली रव कल कहुँ थल। बसी भाग्य बस सो बन ऐसे। करहिं तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे।

अशत्रु[1]—वि० [स०] बिना शत्रुवाला। २ जिसमे शत्रु शत्रुता का व्यवहार नही रखते [को०]।

अशत्रु[2]—सज्ञा पुं० १ चद्रमा। २ शत्रु का अभाव [को०]।

अशन—सज्ञा पु० [स०][वि० अशित, अशनीय] १ भोजन। आहार। अन्न। २ भोजन की क्रिया। भक्षण। खाना। ३ चीता। चित्रक लकडी। ४ भिलावाँ। ५ अशन वृक्ष।

अशनपति—सज्ञा पुं० [स०] अन्न के स्वामी या देवता [को०]।

अशनपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] पटमन [को०]।

अशना—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अशनायित] भोजन की इच्छा। भूख [को०]।

अशनाया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भोजन की इच्छा। भूख। उ०–इस प्रवृत्ति का हेतु जो वन होता है उसे श्रुति मे अशनाया बल कहा गया है।–गोदान प्रा०, पृ० ६१७।

अशनि—सज्ञा पु० [सं०] १. वज्र। बिजली। २ बिजली की चमक [को०]। ३ महास्त्र [को०]। ४ स्वामी। मालिक [को०]। ५. इद्र [को०]। ६. अग्नि [को०]।

यौ०—अशनिदड = वज्र। बिजली। अशनिपात = वज्रपात।

अशनीय—वि० [स०] खाने योग्य।

अशब्द[1]—वि० [सं०] १ जो शब्दो मे प्रकट न किया जाय। २ अव्यक्त। ३ शब्दविहीन। ४ जो वैदिक न हो। अवैदिक [को०]।

अशब्द[2]—सज्ञा पु० १ शब्द का अभाव। २ ब्रह्म [को०]।

अशरण—वि० [स०] जिसे कही शरण न हो। अनाथ। निराश्रय। बेपनाह।

अशरणशरण[1]—वि० [स०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देनेवाला [को०]।

अशरणशरण[2]—सज्ञा पुं० ईश्वर। भगवान् [को०]।

अशरफ—वि० [अ० अश्रफ] बहुत अधिक शरीफ [को०]।

अशरफी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ सोने का एक पुराना सिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था। मोहर। २ एक प्रकार का पीले रग का फूल। गुल अशरफी।

अशरा—सज्ञा पुं० [अ० अशरह्] १ महीने का दसवाँ दिन। २ मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०]।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र। शरीफ। भलामानुष। उ०—फिरते हैं अशराफ गली मे मारे मारे।—कविता को०, भा० २, पृ० २५५।

अशराफत—सज्ञा स्त्री० [अ० अशराफ+त (प्रत्य०)] सज्जनता। शराफत। भद्रता। उ०—'सादगी' और सीधेपन से रहने मे मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७७।

अशरीर[1]—वि० [स०] शरीररहित। आकारविहीन [को०]।

अशरीर[2]—सज्ञा पु०[सं०] १ परमात्मा। ब्रह्म। २ मीमासा के अनुसार कोई भी देवता। ३ काम के देवता। कामदेव। ४. विरक्त। सन्यासी [को०]।

अशरीरी[1]—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित। देहविहीन। उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गध मे फूले।—कामायनी, पृ० २६४।

अशरीरी[2]—सज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २. देवता [को०]।

अशर्फी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अशरफी'।

अशर्म[1]—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट। दुःख। अकल्याण।

अशर्म[2]—वि० १ दुःखी। बेचैन। २ जिसे घरबार न हो। गृहरहित।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय। अकथनीय। २ अप्रतिष्ठित। भाग्यहीन [को०]।

अशस्त्र[1]—वि० [सं०] बिना शस्त्र का। शस्त्रहीन [को०]।

अशस्त्र[2]—सज्ञा पुं० जो शस्त्र न हो [को०]।

अशात—वि० [सं० अशान्त] जो शात न हो। अस्थिर। चचल। डावाँडोल। उ०—यही तो, मैं ज्वलित वाडव वह्नि निश्च अशात।—कामायनी, पृ० ८५। २ अपवित्र। अधार्मिक [को०]। ३ पाँचो तन्मात्राओ मे से एक।

अशाति—सज्ञा स्त्री० [अशान्ति] [वि० अशात] १. अस्थिरता। चचलता। हलचल। खलबली। उ०—जाकर कहाँ हमने जलाई आग युद्ध अशाति की।—भारत०, पृ० ५१। २. क्षोभ। असतोष। उ०—जीवन अशाति अपूर्ण सबके दीन हो अथवा धनी।—भारत०, पृ० १४६।

अशाखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूकीतृण भी कहते हैं [को०]।

अशाम्य—वि० [स०] जिसको शात न किया जा सके। जिसका शमन असभव हो [को०]।

अशालीन—वि० [स०] धृष्ट। ढीठ। शालीनतारहित।

अशालीनता—सज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता। ढिठाई।

अशासन[1]—सज्ञा पु० [स०] शासनाभाव। अव्यवस्थित शासन। अराजकता [को०]।

अशासन[2]—वि० शासन मे न रहनेवाला। शासनहीन [को०]।

अशासावेदनीय—सज्ञा पु० [स०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है।

अशास्त्रीय—वि०[सं०]जो शास्त्रसमत न हो। जो विहित न हो [को०]।

अशिक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव। ज्ञानभाव। उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वास है जिनका यहाँ।—भारत०, पृ० ११५।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो। बेपढा लिखा। अनपढ। उजड्ड। अनाडी। गँवार। उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहे तो, सभ्य वे कैसे हुए।—भारत०, पृ० ६६।

अशित—वि० [स०] खाया हुआ। भुक्त।

अशित्र—सज्ञा पुं० [सं०] चोर।

अशिथिल—वि० [सं०] १ जो ढीला न हो। कसा हुआ। गाढ। २ प्रभावकर। विश्वस्त [को०]।

अशिर—सज्ञा पुं० [स०] १. हीरा। २ अग्नि। ३ राक्षस। ४ सूर्य ५ वायु [को०]।

अशिव[1]—सज्ञा पुं० [सं०] अमगल। अकल्याण। अशुभ।

अशिव[2]—वि० १ दुष्ट। बदमाश। २ भाग्यहीन। ३ जो कृपालु न हो। अमित्र। ४ खतरनाक [को०]।

अशिशु[1]—वि० [सं०] निसतान। बिना या बच्चेवाला [को०]।

अशिशु[2]—सज्ञा पुं० १ तरुण। युवा। २ शिशुता का अभाव [को०]।

अशिशुिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना बच्चे की स्त्री। सतानहीन स्त्री। २ बिना बछडे की गाय [को०]।

अशिशुगी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अशिशुिका'।

अशिष्ट—वि० [सं०] असाधु। दुःशील। अविनीत। उजड्ड। बेहूदा। अभद्र। अनैतिक अगम्य।

अशिष्टता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. असाधुता। दुःशीलता। बेहूदगी। उजड्डपन। अभद्रता। २ ढिठाई।

अशीत—वि० [सं०] जो ठढा न हो। गरम [को०]।

अशीतकर—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अशीतल—वि० [स०] गरम [को०]।

अशीति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की सख्या [को०]।

अशीतिक—वि० [स०] १ अस्सी मालवाला। २ अस्सी का मापक। ३ अस्सी का जिनसे सकेत मिले [को०]।

अशील¹—वि० [स०] १ अभद्र। अशिष्ट। उद्दड। २ उदास [को०]।

अशील²—सज्ञा पुं० अभद्र व्यवहार। अशिष्टता। उद्दडता [को०]।

अशीष(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आशिष्] आशीर्वाद। असीस। दुआ। उ०—कछू जनि जी दुख पायहु माइ। सो देहु अशीष मिलौ फिरि आइ।—रामच०, पृ० ४८।

अशुच—वि० [सं० अशुचि] दे० 'अशुचि'। उ०—अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० २४७।

अशुचि¹—वि० [स०] [सज्ञा अशौच] १ अपवित्र। २ गंदा। मैला। ३ काला [को०]।

अशुचि²—सज्ञा स्त्री० १ काला रग। २ अपवित्रता। ३. अपकर्ष। अधोगमन [को०]।

अशुचिता—वि० [स०] १ अपवित्रता। २ ग्रीष्माभाव। ज्येष्ठ और आषाढ का महीना [को०]।

अशुद्ध¹—वि० [स० सज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १ अपवित्र। अशौच-युक्त। नापाक। २ विना साफ किया हुआ। विना शोधा हुआ। असस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा। ३. वेठीक। गलत।

यौ०—अशुद्ध वासक=सदिग्ध व्यक्ति।

अशुद्ध²—सज्ञा पुं० रक्त। खून [को०]।

अशुद्धता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्रता। मैलापन। गदगी। २. गलती।

अशुद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्रता। अशौच। गदगी। २. गलती।

अशुन(पु)—सज्ञा पुं० [स० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र। उ०—अशुन, भरनि, रेवती भली। मृगसर मोल पुनरवसु वली।—जायसी (शब्द०)।

अशुभ¹—सज्ञा पुं० [स०] १ अमगल। अकल्याण। अहित। २. पाप। अपराध। ३। दुर्भाग्य [को०]।

अशुभ²—वि० जो शुभ न हो। अमगलकारी। बुरा।

यौ०—अशुभदर्शन=भद्दा। कुरूप। अप्रियदर्शन। अशुभसूचक=अमगल की सूचना देनेवाला।

अशुश्रूषा—सज्ञा स्त्री० [स०] जिसकी आज्ञा मे रहना चाहिए, उसकी आज्ञा म न रहने का अपराध।

विशेष—स्मृति के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दड होता था, जैसे—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दडनीय माना गया है।

अशून्य—वि० [स०] शून्यरहित। प्रमाणित। अरिक्त। पूर्ण। पूरा। उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना।' भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०७। (ख) 'यही लेख अशून्य करने का होगी'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०८।

अशून्यशयन—सज्ञा पुं० [स०] वह तिथि जिस दिन विश्वकर्मा शयन करते है [को०]।

यौ०—अशून्यशयन द्वितीया=दे० 'अशून्यशयनव्रत'।

अशून्यशयनव्रत—सज्ञा पु० [स०] विष्णु का एक व्रत जो श्रावण कृष्ण द्वितीया को होता है।

अश्रुत—वि० [स०] विना पका हुआ। कच्चा। अपरिपक्व [को०]।

अशेव—वि० [स०] सुखदायक। हर्षदायक [को०]।

अशेष—वि० [स०] १ शेषरहित। पूरा। समूचा। सब। तमाम। उ०—विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति। केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति।—रामच०, पृ० ६९।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२ समाप्त। खतम। ३ अनत। अपार। बहुत। अधिक। अगणित। अनेक। उ०—सानद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो।—रामच०, पृ० ६६। (ख) मिस रोम राजि रेखा सुवेष। विधि गनत मनो गुनगन अशेष।—गुमान (शब्द०)।

अशेषता सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्णता। समग्रता [को०]।

अशेषसाम्राज्य—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अशैक्ष—सज्ञा पुं० [स०] अर्हत। उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार 'अर्हत' से तीन यानो के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशैक्ष फल का लाभ किया है'।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३४९।

अशैव—वि० [स०] अशुभ [को०]।

अशोक¹—वि० [स०] शोकरहित। दुखशून्य। उ०—देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक। मन भायौ पायौ सबन कीन्हें सबन अशोक।—रामच०, पृ० १९२।

अशोक²—सज्ञा पुं० १ एक प्रसिद्ध पेड।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लबी लबी और किनारो पर लहरदार होती है। इसमे सफेद मजरी (मौर) लगती है जिसके झड जाने पर छोटे छोटे गोल फल लगते हैं जो पकने पर लाल होते हैं, पर खाए नही जाते। यह पेड बडा सुदर और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचो मे लगाते हैं। शुभ अवसरो पर इसकी पत्तियो की बदनवारें बाँधी जाती हैं। यह शीतल, कसैला, कडुआ, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है। इसकी छाल विशेषकर स्त्री रोगो मे दी जाती है। इसके दो भेद होते हैं—एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारगी रग के होते हैं। यह फागुन मे फूलता है। दूसरे के पत्ते लबे लबे और आम के पत्तो के समान होते हैं और इसमे सफेद फूल वसत ऋतु मे लगते हैं।

पर्या०—विशोक। मधुपुष्प। ककेलि। वेलिक। रक्तपल्लव। रागपल्लव। हेमपुष्प। वजुल। कर्णपूर। ताम्रपल्लव। वामाघ्रिघातन। राम। रामा। नट। पिंडी। पुष्प। पल्लवद्रुम। दोहलीक। सुभग। रोगितरु।

२ पारा। ३ भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवशीय सम्राट्। ४ विष्णु का एक नाम [को०]। ५ वकुल वृक्ष [को०]। ६. प्रसन्नता। आह्लाद [को०]।

अशोकपुष्पमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अशोकपुष्पमञ्जरी] दंडक वृत्त का एक भेद जिसमें २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—सत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व डारि भूलि कै करो कदा न निंद्य काम।

अशोकपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०]।

अशोकवनिकान्याय—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य को करने का कारण न बताया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का क्यों आदेश दिया? इसका कारण नहीं बताया गया [को०]।

अशोकवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बगीचा जिसमें अशोक के पेड़ लगे हों। २ शोक को दूर करने वाला रम्य उद्यान। ३ रावण का वह प्रसिद्ध बगीचा जिसमें उसने सीता जी को ले जाकर रखा।

अशोकषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी। इस दिन कामाख्या तंत्र के अनुसार पुत्रलाभार्थ षष्ठी देवी की पूजा की जाती है।

अशोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटकी। २ अशोक की कली। ३ दे० 'अशोकषष्ठी'।

अशोकारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदंब [को०]।

अशोकाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला अष्टमी।

विशेष—इस दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढ़ाते हैं।

अशोच—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिंता या परवाह का अभाव। २ शांति। ३ विनम्रता [को०]।

अशोच्य—वि० [सं०] शोक न करने योग्य। उ०—वे हैं अशोच्य, हाँ स्मरण योग्य हैं सबके।—साकेत, पृ० २२३।

अशोधित—वि० [सं०] बिना शोधन किया हुआ। बिना साफ किया हुआ। संस्काररहित [को०]।

अशोभक—वि० [सं०] माणिक्य का एक दोष [को०]।

अशोभन—वि० [सं०] असुंदर। अभद्र। सुंदर न लगनेवाला।

अशौच—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्रता। अशुद्धता। २. हिंदू शास्त्रानुसार अशौच की अवस्था।

विशेष—इन अवस्थाओं में अशौच माना जाता है—(क) मृतक-संस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सपिंडवालों में वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक। (ख) संतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार। शोक के अशौच को सूतक और संतानोत्पत्ति के अशौच को वृद्धि कहते हैं। (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन। (घ) मल, मूत्र, चांडाल या मुर्दे आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत। अशौचावस्था में संध्या तर्पण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते।

अशौचसंकर—संज्ञा पुं० [सं० अशौचसङ्कर] दो या दो से अधिक अशौचों का साथ होना, जैसे किसी परिवार में मृत्यु का अशौच लगा हो परंतु अशौच काल में ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशौच के कारण वही अशौचसंकर की स्थिति होगी [को०]।

अश्मंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्त] १ चूल्हा। २ अमंगल। ३. मरण। ४ खेत। ५ एक मरुत् [को०]।

अश्मंत[2]—वि० १. अशुभ। अभागा। २. असीमित [को०]।

अश्मंतक—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्तक] १ मूँज की तरह एक घास जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग मेखला अर्थात् करधनी बनाते थे। २ आच्छादन। छाजन। ढकना। ३ दीपाधार। दीवट। ४. पाषाणभेद। ५ तिमोढा। ६ कचनार। ७ चूल्हा। भट्ठी [को०]।

अश्क—संज्ञा पुं० [फा०] अश्रु। आँसू। उ०—कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन। अश्क थे आँखों में या मोती कुचलकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२।

अश्म—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्] १ पर्वत। पहाड़। २ मेघ। बादल। ३ पत्थर। ४ सोनामक्खी। ५ लोहा।

अश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल ट्रावनकोर (त्रिवांकुर) कहलाता है।

अश्मकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला जो कड़ा तथा कम स्वादवाला होता है। काष्ठकदली। कठकेला [को०]।

अश्मकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो सिल, बट्टा या उखली आदि नहीं रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कूटकर पकाते थे।

अश्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत।

अश्मगर्भज—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिलाजीत। २ गेरू। ३ लोहा [को०]।

अश्मज—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत। २ मोमियाई। ३ लोहा।

अश्मभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद नाम की जड़ी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में दी जाती है।

अश्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना [को०]।

अश्मर—वि० [सं०] पथरीला।

अश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्ररोगविशेष। पथरी।

यौ०—अश्मरीघ्न = वरुण वृक्ष। बरना का पेड़।

अश्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

अश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्म' [को०]।

अश्मारि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्मरी' [को०]।

अश्मोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत [को०]।

अश्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँसू। २ रक्त [को०]।

अश्रद्ध—वि० [सं०] श्रद्धा न रखनेवाला। विश्वास न रखनेवाला [को०]।

अश्रद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अश्रद्धेय] श्रद्धा का अभाव।

अश्रद्धेय—वि० [सं०] अश्रद्धा के योग्य। घृणा के योग्य। बुरा।

अश्रप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

अश्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला। दुष्ट। अत्याचारी [को०]।

अश्रवण[1]—वि० [सं०] १ जो सुनता न हो। बहरा। २ कर्णहीन [को०]।

अश्रवण[2]—संज्ञा पुं० १ साँप। २. श्रवण शक्ति का अभाव। बहरापन [को०]।

अश्रांत—वि० [सं० अश्रान्त] १ श्रमरहित। स्वस्थ। जो थका-मांदा न हो। २. विश्रामरहित। लगातार। निरंतर। उ०—

चद्रमा नभ मे हँसता था बाज रही थी वीणा अश्रांत।—झरना, पृ० ७१।

अश्रांति—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्रान्ति] श्रांति या थकावट का अभाव। उ०—ससारयात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रांति हैं।—भारत०, पृ० ५६।

अश्राव्य—वि० [सं०] १ न सुनने योग्य। २ न कहने योग्य [को०]।

अश्रि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ (कोठरी, घर आदि का) कोना। २ अस्त्र शस्त्र की नोक। ३ धार।

अश्री—सज्ञा स्त्री०[स०]१ अलक्ष्मी। दरिद्रा। २. दे० 'अश्रि' [को०]।

अश्रीक—वि० [स०] १.शोभाहीन। जिसमे श्री न हो। २.भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अश्रु—सज्ञा पु०[स०]मन के किसी प्रकार के आवेग के कारण आंखो मे आनेवाला जल। आँसू। २ काव्य मे अनुभाव के अतर्गत सात्विक के नौ भेदो मे से एक।

अश्रुकला—सज्ञा स्त्री० [सं०] अश्रुबिंदु [को०]।

अश्रुगैस—सज्ञा स्त्री० [सं० अश्रु+अं० गैस] एक प्रकार की गैस जिसका प्रयोग अनियमित भीड को तितर बितर करने के लिये शासन द्वारा किया जाता है।

अश्रुत—वि०[सं०]१ जो न सुना गया हो। अज्ञात। २ जिसने कुछ देखा सुना न हो। नातजर्बेकार। ३. अशिक्षित। अशास्त्रज्ञ मूर्ख [को०]।

अश्रुतपूर्व—वि० [स०] १ जो पहले न सुना गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण। अनोखा।

अश्रुति[1]—वि० [स०] १ बिना कानवाला। श्रुति या श्रवणरहित।

अश्रुति[2]—सज्ञा स्त्री० १ न सुनना। अश्रवण। २ विस्मृति [को०]।

अश्रुतिधर—वि० [सं०] १ वेदो को न जाननेवाला। ध्यान से सुननेवाला। ध्यान न देनेवाला [को०]।

अश्रुपात—सज्ञा पुं० [स०] आँसू गिराना। रुदन। रोना।

अश्रुमुख[1]—वि० [सं०] १ आँसुओ से भरा हुआ। रोता हुआ। २. रोनी सूरत का। रुआँसा।

अश्रुमुख[2]—सज्ञा पुं० ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मगल का उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर यदि उसकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख कहलाती है।

अश्रेय[1]—वि० [स० अश्रेयस्] १ बुरा। खराब। २. कल्याणकर व्यर्थ। निकम्मा [को०]।

अश्रेय[2]—सज्ञा पुं० १ बुराई। खराबी। २ अकल्याण। ३. दुख [को०]।

अश्रेष्ठ—वि० [स०] १ जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो। २.बुरा निकृष्ट [को०]।

अश्रौत—वि [स०] जो श्रुति या वेदसमत न हो [को०]।

अश्लाघ्य—वि०[स०]१ जो श्लाघ्य न हो। अप्रशसनीय। जो सराहने योग्य न हो। निम्न। निंद्य।

अश्लिष्ट—वि० [स०] १ श्लेषशून्य। श्लेषरहित। २ असंबद्ध। असगत।

अश्लील[1]—वि० [स०] १ फूहड। भद्दा। २ लज्जाजनक।

अश्लील[2]—सज्ञा पु० १ साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्यादि मे ऐसे शब्दो का प्रयोग जिनसे व्रीडा जुगुप्सा और अमगल की अभिव्यक्ति होती हो। २ गँवारू भाषा।

अश्लीलता—सज्ञा स्त्री०[स०]फूहडपन। भद्दापन। गँवारपन। लज्जा का उल्लघन। निर्लज्जता। उ०—यो भक्ति रस भी सन गया अश्लीलता की नीव मे।—भारत०, पृ० १२३।

विशेष—काव्य में यह दोष माना जाता है।

अश्लेष—वि०[स०] श्लेषरहित। एकनिष्ठ। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय।—रामच०, पृ० १६०।

अश्लेषा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रो मे से नवाँ नक्षत्र।

विशेष—यह नक्षत्र चक्राकार छ नक्षत्रो से मिलकर बना है। इसका देवता सर्प है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है। २.अलगाव। विच्छेद। विश्लेष [को०]।

अश्लेषाभव—सज्ञा पु० [स०] केतु ग्रह।

अश्वत—वि० सज्ञा पुं० [स० अश्वन्त] दे० 'अश्मत' [को०]।

अश्व—सज्ञा पु० [स०] १ घोडा। तुरग। २ सात की सख्या [को०]। ३ पुरुष की एक जाति [को०]।

अश्वकदा—सज्ञा स्त्री० [स०अश्वकन्दा] अश्वगधा [को०]।

अश्वक—सज्ञा पुं० [स०] १ छोटा घोडा। २ लावारिस घोडा। ३ घोडा। ४ खराब जाति का घोडा।

अश्वकर्ण—सज्ञा पुं० [स०] १. एक प्रकार का शाल वृक्ष। २ लता शाल। ३ घोडे का कान [को०]। ४. चिकित्सा शास्त्र मे वर्णित एक प्रकार का अस्थिभग [को०]।

अश्वकिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वकुटी—सज्ञा स्त्री० [स०] घुडसाल [को०]।

अश्वकुशल—वि०[स०] घोडा फेरनेवाला सवार। अश्वशिक्षक[को०]।

अश्वकोविद—वि० [स०] दे० 'अश्वकुशल'।

अश्वक्रंद—सज्ञा पु० [स० अश्वक्रन्द] १ एक प्रकार का पक्षी। २ देवसेना का नायक [को०]।

अश्वक्रांता—सज्ञा स्त्री० [स० अश्वक्रान्ता] सगीत मे एक मूर्च्छना। इसका स्वरग्राम यो है—ग म प ध नि स रे ग म प ध नि।

अश्वखरज—सज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अश्वखुर—सज्ञा पुं० [स०] १ नख नामक सुगधित द्रव्य। २ घोडे का सुम [को०]।

अश्वखुरा—सज्ञा स्त्री० [स०] अपराजिता पौधे का नाम [को०]।

अश्वगंधा—सज्ञा स्त्री० [स० अश्वगन्धा] असगध।

अश्वगति—सज्ञा पुं० [स०] १ छद.शास्त्र मे नील वृत्त का दूसरा नाम। यह पाँच भगण और एक गुरु का होता है. जैसे—भा शिव आनन गौरि जबै मन लाय लखी। लै गई ज्यो सुठि भूषण धारि वितान सखी। २, चित्र काव्य का एक चक्र जिसमें ६४ खाने होते हैं। ३. घोड़े की चाल [को०]।

अश्वगोयुग—संज्ञा पुं० [सं०] घोडे की जोडी [को०]।

अश्वगोष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] घुडसाल। अस्तबल [को०]।

अश्वग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न पुत्र। हयग्रीव।

अश्वघ्न—संज्ञा पु० [सं०] कनेर का फूल तथा उसका पेड [को०]।

अश्वचक्र—संज्ञा पु०[सं०] १ घोडे के चिह्नों से शुभाशुभ का विचार। २ घोडों का समूह।

अश्वचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०]।

अश्वतर—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अश्वतरी] १ एक प्रकार का सर्प। नागराज। २. खच्चर। ३ बछडा [को०]। ४ गंधर्वों की एक जाति [को०]।

अश्वत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल। २ पीपल का गोदा [को०]। ३ सूर्य का एक नाम [को०]। ४ पीपल में फल आने का काल [को०]। ५. अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वत्थक—संज्ञा पु० [सं०] १ पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण। २ पीपल वृक्ष।

अश्वत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन की पूर्णिमा [को०]।

अश्वत्थाम—वि० [सं०] घोडे के समान शक्तिवाला [को०]।

अश्वत्थामा—संज्ञा पुं० [सं० अश्वत्थामन्] १ द्रोणाचार्य के पुत्र। २ मालवा के राजा इंद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महाभारत के युद्ध में मारा गया था।

अश्वत्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटा पीपल। २ पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०]।

अश्वदंष्ट्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोखरू।

अश्वदूत—संज्ञा पुं० [सं०] घुडसवार दूत [को०]।

अश्वनाय—संज्ञा पुं० [सं०] घोडे का चरवाहा [को०]।

अश्वनिबंधिक—संज्ञा पु० [सं० अश्वनिबन्धिक] अश्वपाल। साईस [को०]।

अश्वपति—संज्ञा पु० [सं०] घुडसवार। २ रिसालदार। ३ घोडों का मालिक। ४. भरत जी के मामा। ५ केकय देश के राजकुमारों की उपाधि।

अश्वपाल—संज्ञा पुं० [सं०] साईस।

अश्वपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी नामक पौधा [को०]।

अश्वबंध—संज्ञा पुं० [सं० अश्वबन्ध] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोडे के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अंग प्रत्यंग तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ।

अश्ववला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी [को०]।

अश्ववाल—संज्ञा पुं० [सं०] काम का पौधा।

अश्वभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली [को०]।

अश्वमार—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड।

अश्वमारक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अश्वमार' [को०]।

अश्वमाल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्वमुख—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अश्वमुखी] किन्नर।

विशेष—कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोडों के समान होता है।

अश्वमेद(ध)—संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०—अश्वमेद राजसू। लंब गोपंग मेद वर।—पृ० रा०, ५५।४०।

अश्वमेध—संज्ञा पु० [सं०] १ एक बडा यज्ञ।

विशेष—इसमें घोडे के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूमंडल में घूमने के लिये छोड देते थे। उसकी रक्षा के निमित्त किसी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था। जिस किसी राजा को अश्वमेध करनेवाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोडे को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था। अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोडे को छुडाकर सेना आगे बढती थी। इस प्रकार वह घोडा संपूर्ण भूमंडल में घूमकर लौटता था, तब उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था। यह यज्ञ केवल बडे प्रतापी राजा करते थे। यह यज्ञ साल भर में होता था।

२ एक प्रकार की तान जिसमें षडज स्वर को छोडकर शेष छह स्वर लगते हैं।

अश्वमेधिक[१]—वि० [सं०] अश्वमेध संबंधी [को०]।

अश्वमेधिक[२]—संज्ञा पुं० १ अश्वमेध के योग्य घोडा। २ महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०]।

अश्वमेधीय—वि० [सं०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०]।

अश्वयुज[१]—वि० [सं०] १ जिसमें घोडा जुता हो। २ जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०]।

अश्वयुज्[२]—संज्ञा स्त्री० १ अश्विनी नक्षत्र। २ आश्विन महीना। ३ रथ जिसमें घोडे जुते हों [को०]।

अश्वयूप—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के घोडे को बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वयोग—वि० [सं०] घोडे की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०]।

अश्वरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वपाल [को०]।

अश्वरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] भैंस [को०]।

अश्वरोधक—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर।

अश्वल—संज्ञा पु० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

अश्वलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] घोडे के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०]।

अश्वललित—संज्ञा पुं० [सं०] अद्रितनया नामक वर्णवृत्त।

अश्वलाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्ववक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] किन्नर [को०]।

अश्ववदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

अश्ववह—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अश्ववाह' [को०]।

अश्ववार, अश्ववारक—संज्ञा पुं० [सं०] घुडसवार [को०]।

अश्ववाह, अश्ववाहक—संज्ञा पुं० [सं०] घुडसवार [को०]।

अश्वविद्[१]—वि० [सं०] १ घोडों का शिक्षक। २ घोडे के लक्षणों को जाननेवाला [को०]।

अश्वविद्[२]—संज्ञा पु० १. घुडसवार। २. राजा नल [को०]।

अश्ववैद्य—सज्ञा पु० [स०] घोडो का वैद्य [को०]।

अश्वव्यूह—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यूह जिसमे कवचधारी (लोहे की पारवरवाले) घोडे सामने और साधारण घोडे पक्ष और कक्ष मे हो।

अश्वशकु—सज्ञा पुं० [स० अश्वशङ्कु] घोडा बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वशक—सज्ञा पुं० [स०] घोडे की लीद [को०]।

अश्वशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान जहाँ घोडे रहे। घुडसाल। अस्तबल। तबेला।

अश्वशास्त्र—सज्ञा पु० [स०] वह शास्त्र जिसमे घोडो के शुभाशुभ लक्षणो एव उनके रोगादि का वर्णन रहता है। शालिहोत्र [को०]।

अश्वसाद—सज्ञा पु० [स०] घुडसवार [को०]।

अश्वसादी—सज्ञा पु० [स० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०]।

अश्वसूक्त—सज्ञा पु० [स०] वेद का एक सूक्त जिसमे घोडो का वर्णन है।

अश्वस्तन[1]—वि० [पु०] वर्तमान दिवस संबधी। केवल आज के दिन से सबध रखनेवाला।

अश्वस्तन[2]—सज्ञा पु० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का ठिकाना हो। कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ।

अश्वस्तनिक—वि० [स०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला। २. आगे के लिये सचय न करनेवाला।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है।

अश्वस्तर—सज्ञा पु० [स०] घोडे की पीठ पर रखा जानेवाला कपडा [को०]।

अश्वहृदय—सज्ञा पुं० [स०] १ घोडे का चिकित्साशास्त्र। शालिहोत्र। घुडसवार [को०]।

अश्वातक—सज्ञा पु० [स० अश्वान्तक] कनेर [को०]।

अश्वाक्ष—सज्ञा पु० [स०] १ देवसर्षप नामक पौधा। २ घोडे की आँख [को०]।

अश्वाजनी—सज्ञा स्त्री० [स०] चाबुक। कशा [को०]।

अश्वाध्यक्ष—सज्ञा पु० [स०] घुडसवार सेना का अध्यक्ष या नायक [को०]।

अश्वानीक—सज्ञा स्त्री० [स०] घुडसवार सेना। रिसाला [को०]।

अश्वायुर्वेद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०]।

अश्वारि—सज्ञा पुं० [स०] १ भैसा। महिष। २ कनवीर। कनेर।

अश्वारूढ—वि० [सं० अश्वारूढ] जो घोडे पर सवार हो [को०]।

अश्वारोह[1]—वि० [स०] अश्वारूढ [को०]।

अश्वारोह[2]—सज्ञा पु० १ घुडसवार। २ घुडसवारी [को०]।

अश्वारोहक—सज्ञा पुं० [स०] असगध नामक पौधा [को०]।

अश्वारोहण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अश्वारोही] घोडे की सवारी।

अश्वारोही[1]—वि० [सं० अश्वारोहिन्] घोडे की सवारी करनेवाला।

अश्वारोही[2]—सज्ञा पु० घुडसवार।

अश्वावतारी—सज्ञा पुं० [सं० अश्वावतारिन्] ३१ मात्राओ के छदो की सज्ञा। वीर छद इसी के अतर्गत है।

अश्विनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोडी। २. २७ नक्षत्रो मे से पहला नक्षत्र अश्वयुक्। याज्ञायणी। ३. जटामासी। बालछड़।

विशेष—तीन नक्षत्रो के मिलने से इसका रूप घोडे के मुख के सदृश होता है।

अश्विनीकुमार—सज्ञा पुं० [स०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को सहन करने मे असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो सतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोडकर चुपके से भाग गई और घोडी बनकर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को दो सतति हुई। शनि और ताप्ती। जब छाया ने प्रभा की सतति का अनादर आरभ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है। इसके उपरात सूर्य घोडा बनकर प्रभा के पास, जो अश्विनी के रूप मे थी, गए। इस सयोग से दोनो अश्विनीकुमारो की उत्पत्ति हुई जो देवताओ के वैद्य हैं।

पर्या०—स्ववैद्य। दस्र। नासत्य। आश्विनेय। नासिक्य। गदागद। पुष्करस्रज। अश्विनीपुत्र। अश्विनीसुत।

अश्वियुगल—सज्ञा पु० [स०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोडो या पक्षियो से जुते हुए सोने के रथ पर चढकर आकाश मे निकलते हैं।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगो को सुख सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं।—कही कही यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधुविद्या सीखने के लिये इन्होने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धडपर घोडे का सिर रख दिया था, और तब उनसे मधुविद्या सीखी थी। वि० दे० 'दधीचि'।

अश्वियुज्ञ—सज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष मे एक युग अर्थात् पाँच वर्ष का काल जिसमे क्रम से विगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति सवत्सर होते हैं।

अश्वीय[1]—वि० [स०] अश्वसबधी [को०]।

अश्वीय[2]—सज्ञा पुं० घोडो का समूह [को०]।

अषडक्षीण[1]—वि० [स०] जिसे छह आँखो ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियो को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०]।

अषडक्षीण[2]—सज्ञा पु० रहस्य। राज। [को०]।

अषाढ Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० अषाढ] वह महीना जिसमे पूर्णिमा पूर्वाषाढ मे पडे। असाढ। अषाढ।

अषाढक—सज्ञा पुं० [स० अषाढक] अषाढ का महीना [को०]।

अष्टग Ⓟ—वि० [सं० अष्टङ्ग] दे० 'अष्टाग'। उ०—कहिय नृपति अष्टग सुधि। रजि राज फल गान।—पृ० रा०, २५।१३।

अष्टगी Ⓟ—वि० [सं० अष्टाङ्गी] दे० 'अष्टागी'।

अष्ट[1]—वि० [स० अष्टन्] आठ।

अष्ट[2]—सज्ञा पु० आठ की सख्या।

अष्टक—सज्ञा पुं० [स०] १. आठ वस्तुओ का समूह, जैसे—हिंग्वष्टक। २ वह स्तोत्र या काव्य जिसमे आठ श्लोक हो, जैसे—रुद्राष्टक, गगाष्टक। ३ वह ग्रथावयव जिसमे आठ अध्याय आदि हो। ४. मनु के अनुसार एक गण जिसमे पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं। ५. पाणिनिकृत व्याकरण। अष्टाध्यायी। ६ आठ ऋषियो का एक गण।

अष्टकमल—सज्ञा पुं० [स०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो भिन्न भिन्न स्थानों मे माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल ।

अष्टकर्ण—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मा [को०] ।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अत इन्हे अष्टकर्ण कहा जाता है ।

अष्टकर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] वह गाय जिसके कान पर आठ की सख्या (८) का चिह्न अकित हो । उ०—ऋग्वेद मे ऋषि नाभाने दिष्ठ हजार अष्टकर्णी गौएँ दान करने के कारण राजा सावर्णि की स्तुति करता है ।—मा० प्रा० लि०, पृ० ११ ।

अष्टका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टमी । २ अगहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी । इस दिन श्राद्ध करने से पितरो की तृप्ति होती है । ३ अष्टमी के दिन का कृत्य । अष्टका याग । ४ अष्टका मे कृत्य श्राद्ध ।

अष्टकुल—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सर्पों के आठ कुल, यथा—शेष, वासुकि, कवल कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शख और कुलिक । किसी किसी के मत से—तक्षक, महापद्म, शख, कुलिक, कवल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक हैं ।

अष्टकुलाचल—सज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०] ।

अष्टकुली—वि० [स०] सांपो के आठ कुलो मे से किसी मे उत्पन्न ।

अष्टकृष्ण—सज्ञा पुं० [स०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मयुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचद्रमा और मदनमोहन ।

अष्टकोण[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ वह क्षेत्र जिसमे आठ कोण हो । २ तत्र के अनुसार एक यत्र । ३ एक प्रकार का कुडल जिसमे आठ कोण होते हैं ।

अष्टकोण[2]—वि० आठ कोनेवाला । जिसमे आठ कोने हो ।

अष्टगध—सज्ञा पुं० [सं० अष्टगन्ध] आठ सुगधित द्रव्यो का समाहार । दे० 'गधाष्टक' ।

अष्टछाप—सज्ञा पुं० [स० अष्ट+हिं० छाप] वल्लभ सप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ठ कवियो का वर्ग, जिनके नाम हैं—सूरदास, कुभनदास, परमानददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास ।

अष्टताल—सज्ञा पुं० [स०] ताल के आठ प्रकार—आड, दोज, ज्योति, चद्रशेखर गजन, पचताल, रूपक और समताल ।

अष्टदल[1]—सज्ञा पुं० [सं०] आठ पत्ते का कमल ।

अष्टदल[2]—वि० १ आठ दल का । २ आठ कानो का । आठ पहल का ।

अष्टद्रव्य—सज्ञा पुं० [स०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसो, पायस और घी ।

अष्टधाती—वि० [सं० अष्ट+धातु] १ अष्टधातुओ से बना हुआ । २ दृढ । मजबूत । ३ उत्पाती । उपद्रवी । ४ जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो । वर्णसकर ।

अष्टधातु—सज्ञा स्त्री० [सं०] आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा ।

अष्टनायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] आठ नायिकाएँ ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्तियाँ—उग्रचडा, प्रचडा, चडोग्रा, चडनायिका, चामुडा, चडा, अतिचडा और चडवती । कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाववती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणा । इद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रभा, पूर्वचित्ती, स्वयप्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा और घृताची (तिलोत्तमा) । साहित्य मे वर्णित आठ नायिकाएँ—वासकसज्जा, विरहोत्कठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं ।

अष्टपद—सज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अष्टपाद' ।

अष्टपदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ पदो का एक समूह । एक प्रकार का गीत जिसमे आठ पद होते हैं । २ बेला नाम का फूल या उसका पौधा ।

अष्टपाद[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. शरभ । शार्दूल । २ लूता । मकडी । ३. आठ अगोवाला एक जतु । ४ अर्गला । सिटकिनी [को०] । ५ कैलास पर्वत [को०] । ६ सोना । स्वर्ण । ७ कपडे की बनी बिसात [को०] । ८ एक कीट [को०] । ९ जगली चमेली [को०] ।

अष्टपाद[2]—वि० आठ पैरोवाला [को०] ।

अष्टप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमत्र, पडित, मत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि ।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि मे पहले सात ही अंग कहे गए हैं ।

२. राज्य के आठ अग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामत तथा प्रजा । ३ शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहकार ।

अष्टप्रधान—सज्ञा पुं० [स०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मत्री, प्रतिनिधि, राज्याध्यक्ष, प्रधान और अमात्य । शिवाजी के अष्ठप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०] ।

अष्टभुजा—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा ।

अष्टभुजी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अष्टभुजा' ।

अष्टभैरव—सज्ञा पुं० [स०] शिव के आठ गण जिनके नाम है, असितांग, सहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चद्रचूड तथा महाभैरव [को०] ।

अष्टमगल—सज्ञा पुं० [स० अष्टमङ्गल] १ आठ मगलद्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पखा, वैजयती, भेरी और दीपक । किसी किसी के मत से—ब्राह्मण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं । २ एक घृत जो वच, कुट, ब्राह्मी, मरमो, पीपल, सारिवा, सेंधा नमक और घी इन आठ औषधियो से बनाया जाता है ।

अष्टम—वि० पुं० [सं०] आठवाँ। उ०—सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टम मास संपूरन होइ।—सूर० १।३१४।

अष्टमान—संज्ञा पु० [सं०] आठ मुट्ठी का एक परिमाण अर्थात् एक कुडव।

अष्टमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधे पल या दो कर्ष का परिमाण। २ चार तोले का एक परिमाण।

अष्टमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि। आठें। २ क्षीरकाकोली। पयस्या।

अष्टमी[2]—वि० स्त्री० [सं०] आठवी।

अष्टमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक माप। कुचि [को०]।

अष्टमूर्ति—संज्ञा पु० [सं०] १ शिव। उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इनतें कहत।—शकुतला, पृ० ३। २ शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति, जल, तेज वायु आकाश, जयमान, अर्क और चद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव।

अष्टलोह—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अष्टधातु' [को०]।

अष्टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ ओषधियो का समाहार। २ ज्योतिष का गोचरविशेष। ३ नीतिशास्त्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, वस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिवधन, खान, करग्रहण और सैन्यसस्थापन का समूह।

अष्टश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

अष्टश्रवा—संज्ञा पु० [सं० अष्टश्रवस्] दे० 'अष्टश्रवण' [को०]।

अष्टसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०]।

अष्टाग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्ग][वि० स्त्री० अष्टांगी] १ योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। उ०—भक्ति पथ कौं जो अनुसरै। सो अष्टाग जोग कौं करै।—सूर० १।३६४। २ आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगदतत्र, रसायनतत्र और वाजीकरण। ३ शरीर के आठ अग-जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है। ४ अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है। इसमे जल, क्षीर कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चदन और करवीर होते हैं।

अष्टाग[2]—वि० १ आठ अवयववाला। २ अठपहल।

अष्टागमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गमार्ग] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दु ख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रो का मार्ग—सम्यग्दृष्टि सम्यग्सकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि [को०]।

अष्टागयोग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांगयोग] दे० 'अष्टाग'[1] [को०]।

अष्टागायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गायुर्वेद] दे० 'अष्टाग'[2] [को०]।

अष्टागी—वि० [सं० अष्टाङ्गिन्] आठ अगवाला।

अष्टाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनो या खप्परो मे पकाया हुआ पुरोडाश। २ वह यज्ञ जिसमे अष्टाकपाल पुरोडाश काम मे लाया जाय।

अष्टाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल'। उ०—पारथ सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनदन ल्याये।—सूर० १।२६।

अष्टाक्षर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आठ अक्षरो का मत्र। २ विष्णु भगवान् का मत्र—'ॐ नमो नारायण'। ३ वल्लभ कुल के मतवालो के मत से 'श्रीकृष्ण शरण मम'।

अष्टाक्षर[2]—वि० आठ अक्षरो का। आठ अक्षरवाला।

अष्टादसⓊ—वि० [सं० अष्टादश] अठारह। उ०—रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।—मानस, ६।१५।

अष्टाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रथ जिसमे आठ अध्याय हैं।

अष्टापद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। २ शरभ। उ०—बर विद्या सी आनद दानि। युत अष्टापद मनु शिवा मानि।—राम च० पृ०, १००। ३ लूता। मकडी। ४ कृमि। ५ कैलास। ६ धतूरा।

अष्टावक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि। २ वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अग टेढे मेढे हो।

अष्टाश्रि[1]—वि० [सं०] आठ कोनेवाला। अठकोना।

अष्टाश्रि[2]—संज्ञा पुं० वह घर जिसमे आठ कोन हो।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चचला, चकिता, पचचामर आदि बहुत भेद हैं। २ सो ह की सख्या। ३ खेलने की बिसात [को०]। ४ बीज [को०]। ५ फल का गूदा। गिरी [को०]।

अष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी।

अष्ठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुठली। २ बीज [को०]।

अष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक रोग जिसमे मूत्राशय मे अफरा होने से पेशाव नही होता और गाँठ पड जाती है जिसमे मलावरोध होता है और वस्ति मे पीडा होती है। २ पत्थर की गोली। ३ गूदा। गिरी [को०]। ४ बीजान्न [को०]।

अष्ठीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का घाव। २ पत्थर का टुकड़ा [को०]।

असकⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अशक'। उ०—डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असक मन सदा उछाहू।—मानस, १।१३७।

असकाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० आशङ्का] सदेह। शुबहा। शक। उ०—अस बिचारि सब तजहु असका। सबहि भाँति सकरु अकबका।—मानस १।७२।

असकुल[1]—वि० [सं० असङ्कुल] जहाँ जनसमूह न हो। खुला हुआ। प्रशस्त। चौडा [को०]।

असकुल[2]—संज्ञा पुं० १ राजमार्ग। चौडी सडक [को०]।

असक्रांत[1]—वि० [सं० असङ्क्रान्त] जो स्थानातरित न हुआ हो। जिसका स्थान बदला न हो [को०]।

असक्रांत[2]—संज्ञा पुं० अधिक मास। मलमास [को०]।

असक्रांतिमास—संज्ञा पुं० [सं० असङ्क्रान्तिमास] बिना सक्रांति का महीना। अधिकमास। मलमास।

असंख्य—वि० [हिं०] दे० 'असंख्य'। उ०—मधुर उठती है तान असंख्य।—झरना, पृ० ४४।

असख्य—वि० [सं० असङ्ख्य] जिसकी गिनती न हो सके। अनगिनत। बेशुमार। बहुत अधिक। उ०—लहरें व्योम चूमती उठती, चपलाएँ असख्य नचती।—कामायनी, पृ० १६।

असख्यक—वि० [स० असङ्ख्यक] दे० 'असख्य'। उ०—बन से असख्यक आर्य यो इसलाम मे लाये गये।—भारत०, पृ० ७६।

असङ्गात—वि० [स० असङ्ख्यात] सख्यातीत। जो गिना न जा सके [को०]।

असंख्येय१—वि० [स० असङ्ख्येय] सख्यातीत। अनगिनत [को०]।

असंख्येय२—सज्ञा पुं० १ अत्यत बडी सख्या। २ शिव का एक नाम। ३ विष्णु [को०]।

असग१—वि० [स० असङ्ग] १ बिना साथ का। अकेला। एकाकी। २ किसी से वास्ता न रखनेवाला। न्यारा। निर्लिप्त। मायारहित। उ०—(क) मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असग भजौ जदुराई।—सूर० (शब्द०)। (ख) भस्म अग मर्दन अनग, सतत असग हर। सीस गग, गिरिजा अधग, भूषन सुअगवर।—तुलसी (शब्द०)। ३ जुदा। अलग। पृथक्। उ०—चद्रकला ज्यौं परी, असग गग ह्वै परी, भुजगी भाजि औ परी, बरगी के बरत ही।—देव (शब्द०)।

असग२—सज्ञा पुं० १ पुरुष। आत्मा। २ सपर्कभाव। निर्लिप्तता [को०]।

असगचारी—वि० [स० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०]।

असगत—वि० पुं० [स० असङ्गत] १ अयुक्त। बेठीक। २ अनुचित। उ०—भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज चलत असगत चाल।—सूर० १। १५३। ३ असमान। बेमेल [को०]। ४. जो प्रसगविरुद्ध हो। अप्रासगिक [को०]। ५ असस्कृत। गँवार। उजड्ड [को०]।

असगति—सज्ञा स्त्री० [स० असङ्गति] १. असबध। बेसिलसिलापन। २ अनुपयुक्तता। नामुनासिबत। ३. एक काव्यालकार जिसमे कार्यकारण के बीच देश-काल-सबधी अन्ययात्व दिखाया जाय, अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कहीं बताया जाय और कार्य कहीं; किसी नियत समय मे होनेवाले कार्य का किसी दूसरे समय मे होना दिखाया जाय। उ०—'हरत कुसुम छवि कामिनी, निज अगन सुकुमार। मार करत यह कुसुमसर, युवकन कहा विचार।' यहाँ फूलो की शोभा हरण करने का दोष स्त्रियो ने किया, उसका दड उनको न देकर कामदेव ने युवा पुरुषो को दिया।

विशेष—कुवलयानद मे और दो प्रकार से असंगति का होना माना गया है। एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अँग की अगना, तिलक लगायो पानि'। दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो, जैसे—'मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीन्हो तुम अवतार। उलटो मोहन रूप धरि, मोह्यो सब ब्रजनार।'

असंगतिप्रदर्शन—सज्ञा पुं० [स० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम मे अत मे ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल प्रतिपाद्य का विरोधी हो। २. दोष दिखाना।

असंगम१—सज्ञा पुं० [स० असङ्गम] १. सग का अभाव। २ अनासक्ति। ३ बेमेलपन [को०]।

असगम२—वि० १ अलग। २ बेमेल [को०]।

असगी—वि० [स० असङ्गिन्] १ बिना लगाव का। अनबद्ध। २. ससार मे विरक्त [को०]।

असचय१—सज्ञा पुं० [स० असञ्चय] एकत्र करने की कमी। सचय का अभाव [को०]।

यौ०—असचयशील=सचय करने की जिसकी आदत न हो या जो सचय न करता हो।

असचय२—वि० आवश्यक वस्तुओ से हीन। सभाररहित [को०]।

असचयिक—वि० [स० असञ्चयिक] जो सचय न करे [को०]।

असचयी—वि० [स० असञ्चयिन्] सचय न करनेवाला [को०]।

असचर—सज्ञा पु० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर सब लोग नही चलते। सर्वसाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा स्थान [को०]।

असजोग—सज्ञा पु० [स० असयोग] सबध या सपर्क का अभाव। असबध। उ०—असजोग ते कहु कहँ एक अर्थ कविराई भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ७।

असज्ञ—वि० [स०] सज्ञारहित। चेतनारहित [को०]।

असज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सज्ञाहीनता। २ सामजस्य का अभाव [को०]।

असज्वर—वि० [स०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारो से रहित [को०]।

असत—वि० [स० असन्त] बुरा। खल। दुष्ट। उ०—सत—असत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।—मानस, ७।३७।

असतति—वि० [स० असन्तति] जिसे सतति या बाल बच्चे न हो। निःसंतान।

असतान—वि० [स० असन्तान] सतानविहीन। जिसे पुत्र या पुत्री न हो [को०]।

असतुष्ट—वि० [स० असन्तुष्ट] १ जो सतुष्ट न हो। २ अतृप्त। जिसका मन न भरा हो। जो अघाया न हो। ३. अप्रसन्न।

असतुष्टि—सज्ञा स्त्री० [स० असन्तुष्टि] १. सतोष का अभाव। २. अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असतोष—सज्ञा पुं० [स० असन्तोष] [वि० असतोषी] १ सतोष का अभाव। अधैर्य। २. अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असतोषी—वि० [स० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे सतोष न हो। जिसका मन न भरे। जो तृप्त न हो।

असदिग्ध—वि० [स० असन्दिग्ध] १ सदेह से परे। जिनके विषय मे सदेह या आशका की गुजाइश न हो। २ निश्चित [को०]।

असधा—वि० [स० असन्ध] १. जिसमे जोड न हो। २. अमीलित। ३ जिसके खड या टुकड़े न हुए हो।

असंधि१—वि० [स० असन्धि] १. जिनमें आपस मे सधि न हुई हो। सधिहीन (शब्द०)। २. अनमिल। स्वतत्र [को०]।

असंधि२—सज्ञा स्त्री० १ सधि का अभाव। २. मेल या सबध का अभाव [को०]।

असंपत्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्पत्ति] १. दुर्भाग्य। २. संपत्ति का अभाव [को०]।

असंपत्ति[2]—वि० अभागा। दरिद्र [को०]।

असंपर्क—संज्ञा पुं० [सं० असम्पर्क] संबंध न होना। संबंध का अभाव [को०]।

असंपर्की—वि० [सं० अ+सम्पर्किन्] संपर्क या संबंध न रखनेवाला।

असंपूर्ण—वि० [सं० असम्पूर्ण] अपूरा। जो पूरा न हो। अपूर्ण [को०]।

असंपृक्त—वि० [सं० असम्पृक्त] जो किसी के संपर्क में न हो। तटस्थ।

असंप्रज्ञात—वि० [सं० असम्प्रज्ञात] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो। अपूरे रूप में जाना हुआ।

असंप्रज्ञातसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्प्रज्ञातसमाधि] योग की दो समाधियों में से एक जिसमें न केवल बाहरी विषयों की वृत्ति लीन और ज्ञेय की भावना भी लुप्त हो जाय। निर्विकल्प समाधि।

असंबंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० असम्बन्ध] संबंधहीनता। संबंध का न होना [को०]।

असंबंध[2]—वि० असंबद्ध [को०]।

असंबद्ध—वि० [सं० असम्बद्ध] १ जो मिला न हो। जो मेल में न हो। २ विलगाव। पृथक्। अलग। ३ अनमिल। बेमेल। बिना सिर पैर का। अडबड।

यौ०—असंबद्धप्रलाप।

असंबंधातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बन्धातिशयोक्ति] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत या वर्णनीय की तुलना में अप्रस्तुत या अवर्णनीय को हीन और अयोग्य सिद्ध किया जाता है। जैसे—अति सुंदर मुख लखि तिय तेरो। आदर हम न करत सनि केरो। पद्माकर ग्र०, पृ० ४०।

असंबाध—वि० [सं० असम्बाध] १ बिना बाधा का। अबाध। २ मुक्त। ३ जो सँकरा न हो। चौड़ा। विस्तृत। ४ सन्नाटा। ५ जिसमें कोई दुःख या कष्ट न हो। कष्टहीन [को०]।

असंबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बाध] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, नगण, नगण, नगण और दो गुरु होते हैं। ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।, ।।ऽ, ऽऽ जैसे—माता नासो गण कठिन भव की पीरा। जाते ह्वै नि:शंक भवति तुमरे नीरा। गावो तेरी ही गुण निज दिन बेबाधा। पावो जाने बेगि सुभगति असबाधा।

असंभ—वि० [हिं०] दे० 'असंभव'। उ०—मुनि आनंदयो चंद निज, लीन मंत्र आरंभ, जप्य जाप हवि होम सब, लग्यो कज्ज असंभ।—पृ० रा०, ६। १४६।

असंभव[1]—वि० [सं० असम्भव] जो संभव न हो। जो हो न सके। अनहोना। नामुमकिन। उ०—जायँ वे इस गेह ही से रूठ, यह असंभव, झूठ, निश्चय झूठ।—साकेत पृ० १७८।

असंभव[2]—संज्ञा पुं० १ एक काव्यालंकार जिसमें यह दिखाया जाय कि जो बात हो गई है उसका होना असंभव था। उ०—किहि जानी जलनिधि गति दुस्तर। पीवहिं घटज, उलघहिं बंदर। (शब्द०)। २ अनस्तित्व। न होना [को०]। ३ अनहोनी। असंभवता [को०]।

असंभव्य—वि० [सं० असम्भव्य] १ जिसका होना संभव न हो। २. संभव में न आने योग्य [को०]।

असंभार—वि० [सं० अ=नहीं+सम्भार] १ जो सँभालने योग्य न हो। जिसका प्रबंध न हो सके। २ अपार। बहुत बड़ा। उ०—बिरहा समुद भरा असँभारा। भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा।—जायसी ग्र०, पृ० ७४।

असंभाव—वि० [सं० असम्भाव्य, प्रा० असंभव्य] जो संभव न हो। अनहोना। उ०—असंभाव बोलत आई है ढीठ ग्वालिनी प्रात। ऐसो नाहिं अचगरी मेरो कहा बनावति बात।—सूर०, १०।२६०।

असंभावना—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भावना] [वि० असंभावित, असंभाव्य] संभावना का अभाव। अनहोनापन। प्रमाणितव्यता। उ०—भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंभावना बीती।—मानस, १। ११६।

असंभावनीय—वि० [सं० असम्भावनीय] दे० 'असंभाव्य'।

असंभावित—वि० [सं० असम्भावित] जिसकी संभावना न रही हो। जिसके होने का अनुमान न किया गया हो। अनुमान-विरुद्ध।

असंभावी—वि० [सं० असम्भाविन्] जिसका होना असंभव हो। भविष्य में जिसका होना नामुमकिन हो [को०]।

असंभाव्य—वि० [सं० असम्भाव्य] १ जिसकी संभावना न हो। अनहोना। उ०—क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिये धार्य।—अपरा, पृ० ४४। २ जो समय में आने योग्य न हो। दुर्बोध [को०]।

असंभाष्य[1]—वि० [सं० असम्भाष्य] १ न कहे जाने योग्य। न उच्चारण करने योग्य। २ जिससे बातचीत करना उचित न हो। बुरा।

असंभाष्य[2]—संज्ञा पुं० बुरा वचन। खराब बात।

असंभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भूति] १ अस्तित्वहीनता। संभूति का अभाव। २ पुनर्जन्म न होना। ३ असंभवता। ४ अनहोनी घटना। ५ अव्याकृति प्रकृति [को०]।

असंभृत—वि० [सं० असम्भृत] १. अप्रयत्नसिद्ध। सहज। २ जिसका पोषण सम्यक् रीति से न हुआ हो [को०]।

असंभोज्य—वि० [सं० असम्भोज्य] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [को०]।

असंभ्रम[1]—संज्ञा पुं० [सं० असम्भ्रम] हड़बड़ी या अधीरता का अभाव। धीरता [को०]।

असंभ्रम[2]—वि० धीर। स्वस्थचित्त। अनुद्विग्न [को०]।

असंयत—वि० [सं०] संयमरहित। जो नियमबद्ध न हो। क्रमशून्य।

असंयम—संज्ञा पुं० [सं०] संयम का अभाव। इंद्रियों को वश में न रखना।

असंयमी—वि० [सं० असंयमिन्] जो संयमी न हो।

असंयुक्त—वि० [सं०] न मिला हुआ। विमुक्त। अलग [को०]।

असंयुत[1]—वि० [सं०] दे० 'असंयुक्त'।

असंयुत[2]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०]।

असंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवसर या योग का अभाव। २ संमिलन का अभाव [को०]।

असरोध—सज्ञा पुं० [सं०] हानि का न होना। अक्षति [को०]।

असलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके। दुर्बोध्य [को०]।

असलक्ष्यक्रमव्यंग्य—सज्ञा पुं० [स० असलक्ष्यक्रमव्यंग्य] विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमे रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नही चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है, इसे रसध्वनि भी कहते हैं।

असवर—वि० [सं०] छिपाने के अयोग्य। अनाच्छादित [को०]।

असवृत[1]—वि० [सं०] अनाच्छादित। अरक्षित। खुला हुआ [को०]।

असवृत[2]—सज्ञा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०]।

असवैधानिक—वि० [सं०] सविधान के प्रतिकूल।

असव्यवहित—वि० [स०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०]।

असशय[1]—वि० [सं०] १ सशयरहित। निर्विवाद। निश्चित। २. यथार्थ। ठीक।

असशय[2]—क्रि० वि० निःसदेह। बेशक।

असश्रव—वि० [स०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०]।

असश्लिष्ट[1]—वि० [स०] जो मिला हुआ न हो। पृथक्। अलग [को०]।

असश्लिष्ट[2]—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

असपिंत्त—वि० [सं० असक्षिप्त प्रा० असपित्त] विस्तृत। प्रचुर। विपुल। उ०—गज बाज लूटे असपित्त माल। लियो सग्रहे अस्सपत्ती भुआल।—पृ० रा०, ५७।२०६।

असंसक्त—वि० [स०] १ जो संसक्त न हो। आसक्तिरहित। अनासक्त। २ विभक्त [को०]।

असंसक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लगाव का न होना। निर्लिप्तता। २ विरक्ति। सांसारिक विषयवासनाओं का त्याग।

असंसारी—वि० [स० असंसारिन्] १ संसार से अलग रहनेवाला। विरक्त। २ संसार से परे। अलौकिक।

असंसृति—सज्ञा स्त्री० [स०] संसृति का अभाव। मुक्ति [को०]।

असंसृष्ट—वि० [स०] संसृष्टि से रहित। संबंधहीन। बेमेल [को०]।

असंसै—वि० [स० असंशय] दे० 'असंशय'। उ०—सकै दिखाय मित्र कौं जो तेहि दोष असंसै, औ सहर्ष सत्रुहुँ के गुन कौं भाषि प्रसंसै।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७।

असंस्कृत—वि० [स०] १ बिना सुधारा हुआ। अपरिमार्जित। २ जिसका संस्कार न हुआ हो। व्रात्य। ३ असभ्य [को०]।

यौ०—असंस्कृतालकी = अस्तव्यस्त केशोवाला।

असंस्तुत—वि० [स०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अज्ञात। २ अपरिचित। ३ अद्भुत। ४ बिना लगाव का। बेमेल [को०]।

असंस्थान—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवस्था का अभाव। अक्रम। २. संबंधहीनता। ३ अस्थिरता। त्रुटि या अभाव [को०]।

असंस्थित—वि० [स०] १ अनवस्थित। २ चंचल। ३ व्यवस्थारहित। ४. असंकलित। असंगृहीत [को०]।

असंस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] क्रमहीनता। अव्यवस्था [को०]।

असंहत[1]—वि० [स०] जो संहत या मिला हुआ न हो। बिखरा हुआ। [को०]।

असंहत[2]—सज्ञा पुं० १ पुरुष। आत्मा (सांख्य)। २. असंहतव्यूह [को०]।

असंहतव्यूह—सज्ञा पुं० [स०] सेना को छोटे छोटे समूहो मे अलग-अलग खडा करना।

अस(५)—वि० [स० ईदृश अथवा एष=यह] १ इस प्रकार का। ऐसा। उ०—अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता।—मानस १।७।२ तुल्य। समान। उ०—जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचनु सँभारे।—मानस २। ३०।

असक(५)—वि० [सं० अशक्त, प्रा० असक्क हिं० असक] शक्तिहीन। दुर्बल। असमर्थ उ०—कसि असक धोर कसि द्रव्य दड।—पृ० रा०, ५७। २९५।

असकत(५)—वि० [स० अशक्त] दुर्बल। कमजोर। उ०—उर भरम छेह लैणौं अगम असकत उद्यम उक्कनी। कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरस्वती।—रा० रू०, पृ० ६।

असकताना†—क्रि० अ० [हिं० आलस] आलस्य मे पडना। आलस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ।' (शब्द०)।

असकति—वि० [स० अशक्ति] शक्तिरहित। अशक्त। उ०-हौं अपकति, ज्यो त्यो इतहि सुमन चुनौगी चाहि। मानि बिनै मेरी अली, और ठौर तू जाहि।-बिहारी र०, भा० २, पृ० १६।

असकत्ता—सज्ञा पुं० [स० असि=तलवार+करण=करना] दो अगुल चौडा और जौ भर मोटा लोहे का एक औजार जो रेती के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकडी साफ की जाती है।

असकल—वि० [स०] जो पूर्ण या समग्र न हो। असमग्र [को०]।

असक्त[1]—वि० [सं० अशक्त] शक्तिहीन। उ०—हा आर्यसतति आज कैसी अध और अशक्त है।—भारत०, पृ० १५१।

असक्त[2](५)—वि० [स० अशक्त] लिप्त। चिपका या सटा हुआ। उ०—विषय असक्त, अमित अब व्याकुल। तबहूँ कछु न सँभारयो।—सूर० १। १०२।

असक्त[3]—वि० [स०] १ जो आसक्त न हो। तटस्थ। उदासीन। २. असज्जन। ३. असयुक्त। ४ सांसारिक विषयो से विरक्त [को०]।

असक्तारभ—सज्ञा पुं० [स० असक्तारम्भ] १ वह भूमि जिसमे बहुत थोडे श्रम से अन्न पैदा हो। २ कम मेहनत और थोडी वर्षा से हो जानेवाली फसल।

असक्थ—वि० [स०] सक्थिहीन। बिना जाँघवाला। [को०]।

असगध—सज्ञा पुं० [स० अश्वगधा] एक सीधी झाडी जो गर्म प्रदेशो मे होती है और जिसमे छोटे छोटे गोल फल लगते हैं।

पर्या०—अश्वगधा। हयगधा। वाजिगधा। तुरगगधा। तुरगा। वाजिना। हया। वलदा। वातघ्नी। श्यामला। कामरूपिणी। काला। गंधपत्री। वाराहपत्री। वाराहकर्णी। वनजा। हयप्रिया। पीवरा। पलाशपर्णी। कवुका। कवुकाष्ठा। प्रियकारी। अवरोहा। अश्वारोहिका। कुष्ठघातिनी। रमायनी। तिक्ता।

विशेष—इसकी मोटी मोटी जड दवा के काम आती है और बाजारो मे बिकती है। असगध बलकारक तथा वात और कफ

का नाश करनेवाला है। इसके बीज से दूध जैसा जमता है। इससे कई प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषध बनते हैं, जैसे—अश्वगंधाघृत, अश्वगंधारिष्ट आदि।

असगर—वि० [अ० असगर] बहुत छोटा।

असगुन पु०+ —संज्ञा पु० [सं० अशकुन] दे० 'अशकुन'। उ०—अति गर्व असगुन असगुन अरहि आयुध हाथ ते—मानस, ६।७५।

असगुनिया —संज्ञा पु० [हिं० असगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना बुरा या अशुभ समझते हों। मनहूस।

असगोत्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असगोत्रा] जो सगोत्री न हो। भिन्न-गोत्रीय [को०]।

असज्जन[1]—वि० [सं०] बुरा। खल। दुष्ट। अशिष्ट। नीच। उ०—बहुरि बंदि खलगन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ। हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।—मानस, १।५।

असज्जन[2]—संज्ञा पु० बुरा आदमी।

असडिहा[1]—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'असाढ़िया'। उ०—कही डोडहे आने कही असडिहे जाने।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

असडिया[2]—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ़, असाढ़+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का बड़ा साँप जिसकी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियाँ होती हैं। इसका विष बहुत कम होता है।

असगंध[1]—संज्ञा पु० [सं० आसगंध] गदहा। (डिं०)।

असत्[1]—वि० [सं०] १ मिथ्या। अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। २. बुरा। खराब। ३ खोटा। असाधु। असज्जन।

असत[2]—संज्ञा पु० १ अनस्तित्व। २ असत्यता। मिथ्यात्व। ३. बुराई। अहितत्व [को०]।

असत—वि० [सं० असत्] १ असाधु। असज्जन। खोटा। उ०—ओपट असत पुनीतनी पौ मिति, माया जल में तरनी।—रघु० रू०, पृ० १।२०३। २ अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। मिथ्या। उ०—यह सुन असत मान अधकारा, अवराश पटल का वार पार।—कामायनी, पृ० २५१।

असतायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता, पाजीपन [को०]।

असति—वि० [सं० असत्य] दे० 'असत्य'। उ०—जन कौं पर निंदा भावै नहीं, पर प्रसंसा भावै।—कबीर ग्र०, पृ० २०६।

असती—वि० [सं०] जो सती न हो। कुलटा। पुंश्चली। उ०—असतीन को सिख सासति। सिव पर्यो तऊ कुबकासति।—बिहारी र०, भा० १, पृ० १६१।

असतीत्व—संज्ञा पु० [सं०] सतीत्व का अभाव। कुलटापन। स्वैराचार [को०]।

असतीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'। उ०—पावति वदन छीन पर दावन पर विचार। है न बरी असतीन पर्यो चहौ एकहि बार।—बिहारी र०, भा० १, पृ० ३५।

असतुति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] प्रार्थना। स्तुति। उ०—असतुति निंदा आसा छाँड़ै तजै मान अभिमान।—कबीर ग्र०, पृ० १५०।

असत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्कृत] १ अपमान। निरादर।

असत्कृत—वि० [सं०] अनादृत। अपमानित।

असत्कृत्य[1]—वि० [सं०] १ संमान न करने योग्य। २ अनुचित काम करनेवाला [को०]।

असत्कृत्य[2]—संज्ञा पुं० अनुचित कर्म। दुष्कृत्य [को०]।

असत्ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भ्रमात्मक ज्ञान [को०]।

असत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्ता का अभाव। अविद्यमानता। अनस्तित्व। नेस्ती। २ असाधुता। असज्जनता।

असत्त्व[1]—वि० [सं०] १ सत्वहीन। कमजोर। २. जिसमें अच्छाई न हो। ३ पशुविहीन। प्राणहीन [को०]।

असत्त्व[2]—संज्ञा पु० १ अनस्तित्व। असत्ता। २ असत्यता। ३ बुराई। खोटाई। ४ अंधकार। अँधेरा [को०]।

असत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। २ कदाचरण। दुराचरण [को०]।

असत्परिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असत्प्रतिग्रह' [को०]।

असत्पुत्र—संज्ञा पु० [सं०] १ कुपुत्र। बुरा लड़का। २ पुत्रहीन व्यक्ति [को०]

असत्प्रतिग्रह—संज्ञा पु० [सं०] [वि० असत्प्रतिग्रही] वह दान जिसके लेने का शास्त्र में निषेध हो, जैसे—उभयमुखी गौ, प्रेतान्न, चांडालादि का अन्न।

असत्प्रतिग्रही—वि० [सं० असत्प्रतिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला।

असत्य[1]—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठ। २ अवास्तविक [को०]। २ अनिश्चित फलवाला [को०]।

असत्य[2]—संज्ञा पु० १ वह व्यक्ति जो झूठा न बोलता हो। २ झुठाई। असत्यता [को०]।

असत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्यात्व। झुठाई।

असत्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद। झूठ बोलना।

असत्यवादी—वि० [सं० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला। झूठा। मिथ्यावादी।

असत्यशील—वि० [सं०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला [को०]।

असत्यसंध—वि० [सं० असत्यसन्ध] जो वादे का पक्का न हो। झूठा [को०]।

असत्यसंनिभ—वि० [सं० असत्यसन्निभ] झूठ या असत्य तुल्य [को०]।

असथन—संज्ञा पुं० [सं० अस्थि?] १ जायफल।—दिं०।

असथि—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि]। हड्डी। हाड। उ०—तनिल सुकर सोनित समुझ मल अरु असथि समेत।—सं० सप्तक, पृ० १७।

असथिर—वि० [सं० अस्थिर] चंचल। चलायमान। उ०—रवि रजनीस धरा तथा यह असथिर असथून।—सं० सप्तक, पृ० ३५।

असथूल—वि० [सं० स्थूल] भौतिक। उ०—रवि रजनीस धरा। तथा यह असथिर असथून।—सं० सप्तक, पृ० १७।

असदाचार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार। नियम या धर्मविरुद्ध आचरण। अधर्म [को०]।

असदाचार[2]—वि० बुरे आचारवाला [को०]।

असदृश—वि० [स०] [वि० स्त्री० असदृशी] १ असमान। अथवा। २ अनुचित। अयोग्य [को०]।

असद्बुद्धि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

असद्भाव—सज्ञा पुं० [स०] १ नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवो के प्रयोग मे होता है। २ अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३ अनुचित विचार या भावना [को०]। ४ दुष्ट स्वभाव [को०]।

असद्वाद—सज्ञा पुं० [स०] वह सिद्धात जो सत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

असद्वृत्ति[1]—वि० [स०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

असद्वृत्ति[2]—सज्ञा स्त्री० भ्रष्टचार। दुष्टता [को०]।

असद्व्यय—सज्ञा पु० [स०] अनुचित या बुरे कार्यों मे होनेवाला व्यय। खराब कामो मे खर्च। उ०—हुतौ आढ्य तव कियौ असद्व्यय करी न व्रज-वन-जात।—सूर०। १। २१६।

असन[1]—सज्ञा पुं० [स० अशन] भोजन। अशन। उ०—नहँ न असन नहि विप्र सुपारा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा।—मानस १। १७४।

असन[2]—सज्ञा पु०[स०] १ फेंकना। क्षेपण २ पीतसाल वृक्ष [को०]।

असनपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] सातला या गोकर्णी नामक वृक्ष [को०]।

असना—सज्ञा पु० [सं० अशना] पीतशाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शाल की तरह का होता है। इसके हीर की लकडी दृढ होती और मकान बनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रग की होती है। इस पेड की पत्तियाँ माघ फागुन मे झड जाती हैं।

असनान—सज्ञा पुं० [सं० स्नान, पु० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति सुरसरी कै तट आइ, कियौ असनान मृत्तिका लाइ।—सूर० १। ३४१।

असनि—सज्ञा पुं० [सं० अशनि] १ वज्र। हीरा। उ०—बेरी की कर्मनि रही कपनि सु कारो साँप, दमन की लसनि असनि दोहियत है।—गग०, पृ० २४। २ विद्युत्। उ०—रूक न असनि केतु नहिं राहू।—मानस ६। ३१।

असनी—सज्ञा स्त्री० [स० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

असन्नद्ध—वि०[स०]१ बिना शस्त्र का। २ जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३ अहकारी। घमडी। ३ विद्वत्ता मे अपने को लगानेवाला। पडितमानी।

असन्निकर्ष—सज्ञा पुं० [स०] निकट या पास न होना। २ दूर होना [को०]।

असन्निधान—सज्ञा पु० [स०] १ दूरता। २ अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—सज्ञा स्त्री० [स०] दूरी। असमीपता। २ घनिष्ठता का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि०[स०]१ जो निकट न हो। २ अनुचित रीति से रखा हुआ [को०]।

असपती—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'असपत्ति'। उ०—अटक हीण असपती पाय ठित अवसर पायो।—रा० रू०, पृ० १६।

असपत्ति, असपत्ती—सज्ञा पुं० [स० अश्वपति] १ घुडसवारों का प्रधान। २ नरपति। राजा। उ०—असपत्ती अजमेरगढ़ रहियौ पाँच दिवस्स।—रा० रू०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [स०][वि० स्त्री० असपत्नी] १ बिना पत्नी का। २ शत्रुरहित। शत्रुविहीन। ३ जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [स० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की सात पीढियो से बाहर का। जिससे परपरागत रक्तसबध न हो [को०]।

असप्पति†—[हिं० अश्वपति] दे० असपत्ति।—दोउ मयमत सुजाँण सेज दिसि वाहुडइ। जाँणे धरती काज, असपप्पति आहुडइ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १ जो सफल न हो। नाकामयाब। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत! तुम असफल हुए विलीन हुए।—कामायनी, पृ० ७। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—सज्ञा स्त्री०[स०]सफलता का अभाव। नाकामयाबी [को०]।

असबर्ग—सज्ञा पुं० [फा०] खुरासान मे होनेवाली एक प्रकार की लबी घास।

विशेष—इसमे पीले या सुनहले फूल लगते हैं। सुखाए हुए फूलो को अफगान व्यापारी मुलतान मे लाते हैं जहाँ वे अकबेर के साथ रेशम रँगने के काम मे आते हैं।

असबाब—सज्ञा पुं०[अ० 'सबब' का बहुत व०]चीज। वस्तु। सामान। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सब असबाब डाढो मैं न काढो तै न काढौ, जिय की परी सँभार महन भडार को।—तुलसी ग्र०, पृ० १७३। २ कारणसमूह [को०]।

असभई—सज्ञा स्त्री० [स० असभ्यता] अशिष्टता। बेहूदगी।

असभ्य—वि० [स०] १ सभा या गोष्ठी मे बैठने के नाकाबिल। २ अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असभ्य थे, उससे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असभ्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमजस[1]—सज्ञा पुं०[सं० असमञ्जस]१ दुविधा। पशोपेश। आगा-पीछा। फेरफार। उ०—बना आइ असमजस आजू।—मानस १।१६७। २ अडचन। अडप। कठिनाई। चपकुल्लिस। उ०—तात तुम्हहि मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमजसु जीके।—मानस, २।२६३।

क्रि० प्र०—मे पडना।—होना।

३ सूर्यवशी राजा सगर का बडा पुत्र जो रानी केशी से उत्पन्न था

असमजस[2]—वि० १ जो व्यक्त न हो। अस्पष्ट। २ अनुचित। अनुपयुक्त। ३ मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४ अयुक्त। असगत [को०]।

असमत—सज्ञा पु० [सं० अश्मत] चूल्हा।

असम[1]—वि० [स०] १ जो सम या तुल्य न हो। जो बराबर न हो। असमान। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।—मानस, ३।२६। २ विषम। ताक। उ०—लोचन असम अग भसम चिता की नाई।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६। ३ ऊँचानीचा। ऊबडखाबड।

असम[२]—सज्ञा पुं० एक काव्यालकार जिसमे उपमान का मिलना असभव बतलाया जाय, जैसे—प्रति बन बन खोजत मर जैहौ। मालति कुसुम नही तुम पैहौ।

असमग्र—वि० [स०] अधूरा। अशमात्र [को०]।

असमत†—सज्ञा स्त्री० [अ० इस्मत > अस्मत] १ पातिव्रत्य। सतीत्व। पाकदामनी। २ पवित्रता। निष्कलुषता [को०]।

यौ०—असमतफरोश = सतीत्वहीन। कुलटा। असमतफरोशी = व्यभिचार।

असमता—सज्ञा स्त्री० [स०] असमानता। विषमता। असाम्य [को०]।

असमद—वि० [स०] १ गर्वरहित। २ विरोधशून्य [को०]।

असमन—वि० [स०] १ विविध रगोवाला। २ विभिन्न मतोवाला ३ विषम। समनाहीन [को०]।

असमनयन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'असमनेत्र' [को०]।

असमनेत्र[१]—वि० [स०] जिसके नेत्र सम न हो, विषम (तीन) हो।

असमनेत्र[२]—सज्ञा पुं० त्रिनेत्र। शिव।

असमबाण—सज्ञा पुं० [स०] विषमबाण। कामदेव [को०]।

असमय[१]—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति का समय। बुरा समय। उ०—समय प्रताप मानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी—मानस, १।१५८।

असमय[२]—क्रि० वि० कुसमय। बेमौका। बेवक्त। उ०—तैने असमय नही अचानक तुम्हे जगाया।—साकेत पृ० ४१५।

असमर्थ—वि० [स०] १ सामर्थ्यहीन। दुर्बल। निर्बल। अशक्त। २ अयोग्य। नाकाबिल। ३ अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०]। ४ अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने मे अक्षम [को०]।

असमर्थता—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षमता। अयोग्यता [को०]।

असमर्थपद—सज्ञा पु० [स०] वह पद जो वाछित अर्थ को प्रकट करने मे समर्थ या क्षम न हो [को०]।

असमर्थसमास—सज्ञा पुं० [स०] व्याकरण मे ऐसा समास जो अन्वय-दोष से दूषित हो, जैसे—अश्राद्धभोजी, असूर्यपश्य—इस समस्तपद मे अनञ् समास का यथार्थ सबध पूर्ववर्ती शब्द श्राद्ध और सूर्य के साथ न होकर भोजी और पश्या के साथ है [को०]।

असमवायिकारण—सज्ञा पु० [स०] १ न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो, जैसे—घडे के बनने मे गले और पेंदे का सयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन मे थी अथवा जोडने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई। २ वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य सबध न हो, आकस्मिक हो, जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना। यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नही है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसल किसी वस्तु पर आघात करे। हवा या और किसी कारण से भी मूसल गिर सकता है।

असमवायी—वि० [स० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य सबध रखनेवाला न हो। अनित्य। आनुषगिक [को०]।

असमवृत्त—सज्ञा पुं० [स०] सस्कृत काव्य मे प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारो चरणो मे समान गण न हो। विषमवृत्त [को०]।

असमशर—सज्ञा पुं० [स०] कामदेव। उ०—रतिहि सुरतारभ नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना।—तुलसी (शब्द०)।

असमस्त—वि० [स०] १. अपूर्ण। अधूरा। २ अशत। ३. समास-हीन। जो सक्षिप्त न हो। विस्तृत। ४ जो एकत्र न हो। ५ असबद्ध। अलग [को०]।

असमान[१]—वि० [स०] जो समान या तुल्य न हो। उ०—हम लोगो ने साधारण नागरिको से असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था।—इरा०, पृ० १३०।

असमान[२]ⓤ†—सज्ञा पुं० [फा०, आसमान] दे० 'आसमान'। उ०—अचन अवनि असमान दसौ दिसि थर थर करै।—हम्मीर०, पृ० १३।

असमानता—सज्ञा स्त्री० [स०] समानता का अभाव [को०]।

असमाप्त—वि० [स०] [सज्ञा असमाप्ति] अपूर्ण। अधूरा।

असमाप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अपूर्णता। अधूरापन। समाप्ति का अभाव।

असमावर्तक—वि० [स०] जिसका समावर्तन सस्कार न हुआ हो [को०]।

असमावृत—वि० [स०] जिसका समावर्तन सस्कार न हुआ हो। जो बिना समावर्तन सस्कार हुए ही गुरुकुल छोड दे।

असमाहार—वि० सज्ञा पुं० [स०] १ अलगाव। पृथक्ता। २ अप्राप्ति [को०]।

असमाहित—वि० [स०] चित्त की एकाग्रता से रहित। अस्थिर चित्त। चचल।

असमीचीन—वि० [स०] अनुचित। अयुक्त। बेठीक [को०]।

असमूच—वि० [हिं०] दे० 'असमूचा'। उ०—तामा-नय-मुक्ता, विद्याधर प्रतिबिबित असमूच। बाँधी कनक पास सुठ सुदर, करकबीज गहि चूँच।—सूर०, २।३०६३।

असमूचाⓤ—वि० [स० अ+समुच्चय] १ जो पूरा या समूचा न हो। अधूरा। २ कुछ। थोडा।

असमेधⓤ—सज्ञा पुं० [स० अश्वमेध, प्रा० अस्समेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

असम्मत[१]—वि० [स०] १ जो राजी न हो। विरुद्ध। २ जिसकी किसी की राय न हो।

असम्मत[२]—सज्ञा पुं० शत्रु [को०]।

असम्मति—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० असम्मत] १ सम्मति का अभाव। २ विरुद्ध मत या राय। ३ अनादर [को०]।

असम्मरⓤ—सज्ञा पुं० [स० असि] तलवार।—(डिं०)।

असम्मित—वि० [स०] १ असदृश। अनुपम। २ बिना मापा हुआ। ३ अपरिमेय [को०]।

असयानाⓤ—वि० [हिं० अ+सयाना] १ भोलाभाला। सीधा सादा। छल या चतुराई से रहित। उ०—बिबुध मनेह सानी बानी असयानी सुनी हँसै राघो जानकी नयन तन हेरि हेरि। तुलसी ग्र०, १६४। २ अनाडी। मूर्ख।

असर—सज्ञा पु० [अ०] १ प्रभाव। दबाव। २. चिह्न। निशान [को०]। ३ गुण। तासीर [को०]। ४ दिन का चौथा पहर।

यौ०—असर की नमाज।

असरा—सज्ञा पु० [हिं० अराढ़] ग्रामीण देश के कछारो में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चावल।

असरार[1]ⓤ—क्रि० वि० [हिं० सरसर] निरतर। लगातार। बराबर। उ०—कहो नद कहाँ छाँडे कुमार। करुणा करे यसोदा माता नैनन नीर वहै असरार।—सूर० (शब्द०)।

असरार[2]—सज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिर्र' का बहुव०] भेद। राज। मर्म [को०]।

असरुज—सज्ञा पु० [स०] काकडासिंगी नामक पौधा।

असल[1]—वि० [अ० असल] १ सच्चा। खरा। २. उच्च। श्रेष्ठ। ३ बिना मिलावट का। शुद्ध। खालिस।

असल[2]—सज्ञा पुं० १ जड। मूल। बुनियाद। तत्व। २ मूलधन। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाधि ठहरावै ...करि अखारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै।—सूर० (शब्द०)।

असल[3]—सज्ञा पुं० [स०] शहद। मधु [को०]।

असल[4]—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड जो मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) मे पाया जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इच लबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। इसकी छाल से चमडा सिझाया जाता है और बीज छाल तथा पत्तियो का औषध मे व्यवहार होता है। अकाल पडने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियो की दातून बहुत अच्छी होती है। जब जाडे के दिनो मे यह फूलता है तब बहुत सुदर जान पडता है।

असल[5]—सज्ञा पु० [स०] १ लोहा नामक धातु। २ शस्त्र छोडने से पूर्व उसे अभिमत्रित करने का एक मत्र। ३ शस्त्र [को०]।

असलियत—सज्ञा स्त्री० [अ० असलियत] १ तथ्य। वास्तविकता। २. जड। मूल। बुनियाद। ३ मूलतत्व। सार।

असली—वि० [अ० असल फा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा। खरा। २ मूल। प्रधान। ३ बिना मिलावट का। शुद्ध।

असवर्ण—वि० [स०] भिन्न वर्ण या जाति का, जैसे—असवर्ण विवाह।

असवर्णता—सज्ञा स्त्री० [स०] समान जाति या वर्ण का न होना। उ०—'फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता।—इद०, पृ० ६८।

असवर्ण विवाह—सज्ञा पुं० [स०] वह विवाह जिसमे वर और वधू विभिन्न वर्णों के हो [को०]।

असवार[1]—सज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, असवार] दे० 'सवार'। उ०—कबीर घोडा प्रेम का चेतनि चढि असवार। कबीर ग्र०, पृ० ७०।

असवारी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० असवार+ई (प्रत्य०)] दे० 'सवारी'। उ०—जाने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी।—पथिक, पृ० ५।

असह[1]—वि० [सं०] १ न सहने योग्य। असह्य। उ०—मीत असह बिप चिन चढै सुख न चढै परजक। बिन मोहन अगहन इनै कीजू कौनो इक।—ग्र० सप्तक, पृ० २४३। २ अधीर।

असह[2]—सज्ञा पु० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय।—(डिं०)।

असहकार—सज्ञा पुं० [स०] असहयोग। सहकार की भावना का अभाव। मेल से काम न करना।

असहन[1]—वि० [स०] जो सहन न करे। असहिष्णु। ईर्ष्यालु।

असहन[2]—सज्ञा पु० १ शत्रु। वैरी। २ अधीरता। असहिष्णुता (को०)। ३ ईर्ष्या [को०]।

असहनशील—वि० [सं०] १ जिसमें सहन करने की शक्ति न हो। असहिष्णु। २ चिडचिडा। तुनकमिजाज।

असहनशीलता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का अभाव। असहिष्णुता। २ तुनकमिजाजी।

असहनीय—वि० [सं०] न सहने योग्य। जो बरदाश्त न हो सके। असह्य।

असहयोग—सज्ञा पुं० [स०] १ साथ मिलकर काम न करने का भाव। २ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी सस्थाओ मे सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धात। नॉन-कोआपरेशन।

असहयोगवाद—सज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वाद] राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धात।

असहयोगवादी—सज्ञा पुं० [स० असहयोग+वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धात को माननेवाला मनुष्य।

असहाइ ⓤ असहाई ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'असहाय'। उ०—एक किन्ह नहि भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई।—मानस, २।२२८

असहाय—वि० [सं०] १. जिसे कोई सहारा न हो। निसहाय। निर्बल। निराश्रय। २ अनाथ। लाचार।

असहिष्णु—वि० [सं०] १ जो सहन न कर सके। असहनशील। २ चिडचिडा। तुनकमिजाज।

असहिष्णुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहन करने की शक्ति का अभाव। असहनशीलता। २ चिडचिडापन। तुनकमिजाजी।

असही[1]—वि० [स० असह] दूसरे की बढती न सहनेवाला। दूसरे को देखकर जलनेवाला। ईर्ष्यालु। उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढहु विषाद। नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु, सकर गौरि प्रसाद।—तुलसी ग्र० पृ० २६५।

यौ०—असही दुसही।

असही[2]—सज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कघी नाम का पौधा।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य। जो बरदाश्त न हो सके। असहनीय।

असह्यव्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह दडव्यूह जिसके दोनो पक्ष फैला दिए गए हो।

असाँच ⓤ—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य। झूठ। मृषा। उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाँचा। बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा।—मानस १।१७५।

असांद्र ⓤ—वि० [सं० असान्द्र] विरल। जो घनीभूत न हो [को०]।

असाप्रत—वि० [स० **असाम्प्रत**] १ जो साप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २ जो वर्तमान या आज का न हो[को०]।

असाप्रदायिक—वि० [स० **असाम्प्रदायिक**] १ जिसमें साप्रदायिकता की भावना न हो। २ जो प्रथा या परपरा से अनुमोदित न हो [को०]।

असा—सज्ञा पुं० [अ०]१ सोटा। डडा। २ चाँदी या सोने से मढा हुआ सोटा जिसे राजा महाराजाओ के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यौ०—**असाबरदार**=असा लेकर चलनेवाला। असावरदार।

असाईⓊ—सज्ञा पुं० [सं०**अशास्त्रीय**]वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गध्रवसेन रिसाई। कस जोगी कस भाट असाई।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

असाक्षात्—वि० [सं०] जो आँखो के आगे न हो। परोक्षत। दूरत (सबद्ध) [को०]।

असाक्षात्कार—सज्ञा पु०[स०] १ अनुपस्थिति। २ परोक्ष। अप्रत्यक्ष [को०]।

असाक्षिक—वि० [सं०]१ जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २ शासकविहीन। जिसकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [को०]।

असाक्षी—सज्ञा पु० [स० **असाक्षिन्**] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगो की साक्षी ग्रहण नही करनी चाहिए-चोर, जुआरी, शराबी, पागल, बालक, अति वृद्ध, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (बहरे, अधे लूले, लँगडे) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—सज्ञा पुं० [स०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [को०]।

असाढ—सज्ञा पुं० [स० आषाढ] आषाढ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढा[१]—सज्ञा पु० [देश०] महीन बटे हुए रेशम का तागा।

असाढा[२]—सज्ञा पुं०[सं० आषाढ़]एक प्रकार की खाँड। कच्ची चीनी।

असाढी[१]—वि० [सं० आषाढ] आषाढ का।

असाढी[२]—सज्ञा स्त्री० १ वह फसल जो आषाढ़ मे बोई जाय। खरीफ। २ आषाढीय पूर्णिमा।

असाढू—सज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उभवट।

असात्म्य—सज्ञा पु० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दु खकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध[१]Ⓤ†—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध[२]—वि० [हिं०] दे० 'असाधु'। उ०—बाहर दीसै साध गति माँहैं महा असाध।—कबीर ग्र०, पृ० ४६।

असाधन[१]—वि० [स०] साधन या उपकरण से रहित [को०]।

असाधन[२]—सज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [को०]।

असाधारण[१]—वि० [सं०] १ जो साधारण न हो। असामान्य। २ न्याय मे पक्ष या विपक्ष से पृथक्-जैसे हेतु [को०]। ३ जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का-जैसे सपत्ति [को०]।

असाधारण[२]—सज्ञा पुं० १ न्याय मे हेत्वाभास का एक दोष। २. विशिष्ट सपत्ति [को०]।

असाधिⓊ†—वि [हिं०] दे० असाध्य'। उ०-देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।-मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [को०]।

असाधु[१]—वि० [सं०][वि० स्त्री० **असाध्वी**]१ दुष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २ अविनीत। अशिष्ट। ३ जो ठीक ढग से सिद्ध न हो। भ्रष्ट। व्याकरणविरुद्ध [को०]।

यौ०—**असाधुवृत्ता**=पुश्चली। स्वैरिणी।

असाधु[२]—सज्ञा पुं० १ भ्रष्ट या पतित साधु। २ असज्जन।

असाधुता—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका साधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न आरोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चगे होने की सभावना न हो, जैसे-यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यौ०—**असाध्यसाधन**=न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाध्वी—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कुलटा। असती [को०]।

असानी—सज्ञा पुं० [अ० **असाइनी**] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिए की सपत्ति, जिसके बहुत से लेनदार हो, तब तक अपनी निगरानी मे रखने के लिये नियुक्त हो, जब तक कोई रिसीवर नियत होकर सपत्ति को अपने हाथ मे न ले।

असामयिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० **असामयिकी**]जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। बिना समय का। बेवक्त का।

असामर्थ्य—सज्ञा स्त्री० [स] १ शक्ति का अभाव। अक्षमता। २ निर्बलता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। असाधारण। गैरमामूली।

असामी[१]—सज्ञा पुं० [अ० **आसामी**]१ व्यक्ति। प्राणी, जैसे-वह लाखो का असामी है (शब्द)। २ जिसमे किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह बडा खरा असामी है, रुपया तुरत देगा (शब्द)। ३ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमीदार से खेत लिया हो। रैयत। काश्तकार। जोता। ४ मुद्दालेह। देनदार। ५ अपराधी। मुलजिम, जैसे,-असामी हवालात से भाग गया (शब्द)। ६ दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे-चलो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जाएँगे (शब्द)। ७ ढग पर चढाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यौ०—**खरा आदमी**=चटपट दाम देनेवाला आदमी। **डूबा असामी**=गया गुजरा। दिवालिया। **मोटा असामी**=धनी पुरुष। **लीचड असामी**=देने मे सुस्त। नादिहद।

मुहा०—**असामी बनाना**=अपने मतलब पर चढ़ाना। अपनी गाँठ का बनाना।

असामी[२]—सज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। रखेली, जैसे,-तुम्हारी असामी को कोई उडा ले गया (शब्द०)। २ नौकरी। जगह, जैसे,-कोई असामी खाली हो तो बतलाना (शब्द०)।

असार[1]—वि० [स०] १ सारहित। तत्वशून्य। निःसार। २ शून्य। खाली। ३ तुच्छ। ४ जो तत्पर न हो। उत्साहहीन [को०]। ५ दरिद्र। निर्धन [को०]। ६ कमजोर। निर्बल [को०]।

असार[2]—सज्ञा पुं० १ रेंड का पेड। २. अगरु चदन। ३ सारहीन या अस्तित्व भाग [को०]।

असार[3] ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असवार'।

असारता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निःसारता। तत्वशून्यता। २. तुच्छता। ३ मिथ्यात्व।

असारभाड—सज्ञा पु० [स० असारभाण्ड] कौटिल्य के अनुसार घटिया माल।

असालत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ कुलीनता। २ सचाई। तत्व।

असालतन—क्रि० वि० [अ०] स्वय। खुद।

असाला—सज्ञा स्त्री० [स० असालिका] हालो। चमुर।

असावधान—वि० [स०][सज्ञा असावधानता] जो सावधान या सतर्क न हो। खबरदार न हो। जो सचेत न हो।

असावधानता—सज्ञा स्त्री० [स०] बेपरवाही।

असावधानी—सज्ञा स्त्री० [स०] बेखबरी। बेपरवाही।

असावरी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० आशावरी अथवा अशावरी] छत्तीस रागिनियो मे से एक प्रधान रागिनी। भैरव राग की स्त्री (रागिनी)। यह रागिनी टोडी से मिलती जुलती है और सवेरे सात बज से नौ बजे तक गाई जाती है।

असावरी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अशुपट्ट ?] वस्त्रविशेष। उ०—पाँवरी पैन्हि नैं प्यारी जगाइ की ओढि लैं चाँचरि चारु असावरी।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

असावरी—सज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'असावरी'। उ०—सुदरि क्यो पहिरति नग भूषन अमावली। तन की द्युति तेरी सहज ही मसाल—प्रभावली।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २७०।

असासा—सज्ञा पुं० [अ० असासह] १ माल। असबाब। २ सपत्ति। धन-दौलत।

असासुलबैत—सज्ञा पु० [अ०] घर का असबाब। घर का अटाला।

असि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ तलवार। खड्ग। वाराणसी के दक्षिण स्थित एक नदी। ३. श्याम [को०]।

असिक—सज्ञा पुं० [स०] १ होठ और ठुड्डी के बीच का भाग। २ एक देश का नाम।

असिक्निका—सज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [को०]।

असिक्नी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत पुर मे रहनेवाली वह दासी जो वृद्धा न हो। २ पजाब की एक नदी। चिनाब। ३. वीरण प्रजापति की कन्या जो दक्ष को व्याही थी। ४. रात्रि [को०]।

असिगड—सज्ञा पुं० [सं० असिगण्ड] गाल के नीचे रखने की छोटी तकिया [को०]।

असिचर्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार चलाने का अभ्यास [को०]।

असिजीवी—वि० [सं० असिजीविन्] तलवार के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला। सैनिक।

असित[1]—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो। काला। उ०—असित कुटिल अलकै तेरी। उचित हरति मनि है मेरी।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १९३। २. दुष्ट। बुरा। ३. टेढ़ा। कुटिल।

असित[2]—सज्ञा पुं० १ एक ऋषि का नाम। २ भरत राजा का पुत्र। ३. शनि। ४ पिंगला नाम की नाडी। ५ धौ का पेड़। ६. काला या नीला रग [को०]। ७ कृष्णपक्ष [को०]। ८. कृष्ण सर्प [को०]। ९ कृष्ण का एक नाम [को०]।

असितगिरि—सज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड [को०]।

असितग्रीव—सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ मयूर [को०]।

असिताग[1]—वि० [स० असिताङ्ग] १ काले रग का। २ काले अगो वाला।

असिताग[2]—सज्ञा पुं० १ एक मुनि। २ शिव का एक नाम।

असिता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ यमुना नदी। २ नीली या नील नाम का पौधा। ३ चद्रभागा नदी [को०]। ४ दक्षपत्नी का नाम (को०)। ५ अत पुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हो (को०)। ६ रात्रि (को०)।

असितोत्पल—सज्ञा पु० [स० असित+उत्पल] नील कमल [को०]।

असितोपल—सज्ञा पु० [स० असित+उपल] नीलम [को०]।

असिदत—सज्ञा पुं० [सं० असिदन्त] मकर नामक जलजीव। घडियाल [को०]।

पर्या०—असिदष्ट्र। असिदष्ट्रक।

असिद्ध[1]—वि० [स०] १ जो सिद्ध न हो। २ बेपका। कच्चा। ३ अपूर्ण। अधूरा। ४ निष्फल। व्यर्थ। ५. अप्रमाणित। जो साबित न हो।

असिद्ध—सज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बडा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकडी बहुत मजबूत होती है और प्राय इमारत के काम मे आती है। इसकी छाल से चमडा भी सिझाया जाता है। २. हेत्वाभास का एक भेद [को०]।

असिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अप्राप्ति। अनिष्पत्ति। २ कच्चापन। कचाई। ३ अपूर्णता।

असिधाराव्रत—सज्ञा पुं० [स०] १ असिधारा के समान व्रत। २ पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत, जिसमे पति और पत्नी सोते समय बीच मे एक नगी तलवार रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [को०]।

असिधावक—सज्ञा पुं० [स०] तलवार आदि को साफ करनेवाला। सिकलीगर।

असिधेनु—सज्ञा स्त्री० [स०] छुरी [को०]।

असिपत्र—सज्ञा पुं० [स०] १ ईख। गन्ना। २. कृपाण का कोष [को०]।

असिपत्रक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'असिपत्र' [को०]।

असिपत्रवन—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणो के अनुसार एक नरक जिसके विषय मे लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है, जिसके बीच मे ऐसे पेडो का एक जगल है जिसके पत्ते तलवार के समान हैं।

असिपथ—सज्ञा पुं० [स०] साँस लेने की राह। श्वासमार्ग [को०]।

असिपाणि—वि० [स०] जिसके हाथ मे तलवार हो। खड्गधारी [को०]।

असिपुच्छ—सज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। २. लकडी मछली जो पूँछ से मारती है।

अभिपुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिपुरुष'।
अभिपुरुषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छुरी। २ कैंची।
अभिपुरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिपुरुषिका'।
अभिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिघात'।
अभिमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिमति'।
अभिमतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिमति'।
अभिमव@—वि० [सं० अभिभव] दे० 'अभिभव'।
अभिमानी—वि० [सं० अभिमानिन्] दे० 'अभिमानी'।
अभिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमन्यु'।
अभिमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्दन'।
अभिमर्दी—वि० [सं० अभिमर्दिन्] दे० 'अभिमर्दी'।
अभिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।
अभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमान'।
अभिमानी—वि० [सं० अभिमानिन्] दे० 'अभिमानी'।
अभिमुख—वि० [सं०] दे० 'अभिमुख'।
अभिमुखी—वि० [सं० अभिमुखिन्] दे० 'अभिमुखी'।
अभिमुखीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमुखीकरण'।
अभिमुखीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमुखीभाव'।
अभिमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमुख्य'।
अभिमृष्ट—वि० [सं०] दे० 'अभिमृष्ट'।
अभिमेदी—वि० [सं० अभिमेदिन्] दे० 'अभिमेदी'।
अभिमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमोक्ष'।
अभिमोदी—वि० [सं० अभिमोदिन्] दे० 'अभिमोदी'।
अभिमोहन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमोहन'।
अभिमोहित—वि० [सं० अभिमोहित] दे० 'अभिमोहित'।
अभिमौनी—वि० [सं० अभिमौनिन्] दे० 'अभिमौनी'।
अभियंता—संज्ञा पुं० [सं० अभियन्तृ] दे० 'अभियंता'।
अभियंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० अभियन्त्रण] दे० 'अभियंत्रण'।
अभियंत्रित—वि० [सं० अभियन्त्रित] दे० 'अभियंत्रित'।
अभियंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० अभियन्त्री] दे० 'अभियंत्री'।
अभियक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियक्ष'।
अभियक्षी—वि० [सं० अभियक्षिन्] दे० 'अभियक्षी'।
अभियज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियज्ञ'।
अभियज्ञी—वि० [सं० अभियज्ञिन्] दे० 'अभियज्ञी'।
अभियत्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियत्न'।
अभियत्नी—वि० [सं० अभियत्निन्] दे० 'अभियत्नी'।
अभियमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियमन'।
अभियमी—वि० [सं० अभियमिन्] दे० 'अभियमी'।
अभियवन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियवन'।
अभियवी—वि० [सं० अभियविन्] दे० 'अभियवी'।
अभियाचक—वि० [सं०] दे० 'अभियाचक'।
अभियाचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियाचन'।
अभियाचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभियाचना'।
अभियाचित—वि० [सं०] दे० 'अभियाचित'।
अभियाचिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभियाचिता'।
अभियाचिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभियाचिनी'।
अभियाची—वि० [सं० अभियाचिन्] दे० 'अभियाची'।
अभियाजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियाजन'।
अभियाजी—वि० [सं० अभियाजिन्] दे० 'अभियाजी'।
अभियान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियान'।
अभियानी—वि० [सं० अभियानिन्] दे० 'अभियानी'।
अभियायी—वि० [सं० अभियायिन्] दे० 'अभियायी'।
अभियुक्त—वि० [सं० अभियुक्त] दे० 'अभियुक्त'।
अभियुक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभियुक्तता'।
अभियुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभियुक्तिका'।
अभियुक्ती—वि० [सं० अभियुक्तिन्] दे० 'अभियुक्ती'।
अभियुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियुद्ध'।
अभियुद्धी—वि० [सं० अभियुद्धिन्] दे० 'अभियुद्धी'।
अभियोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० अभियोक्तृ] दे० 'अभियोक्ता'।
अभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियोग'।
अभियोगी—वि० [सं० अभियोगिन्] दे० 'अभियोगी'।
अभियोजक—वि० [सं०] दे० 'अभियोजक'।
अभियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभियोजन'।
अभियोजित—वि० [सं०] दे० 'अभियोजित'।
अभियोजी—वि० [सं० अभियोजिन्] दे० 'अभियोजी'।
अभिरक्षक—वि० [सं०] दे० 'अभिरक्षक'।
अभिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिरक्षण'।
अभिरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षा'।
अभिरक्षित—वि० [सं०] दे० 'अभिरक्षित'।
अभिरक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षिता'।
अभिरक्षिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षिनी'।
अभिरक्षी—वि० [सं० अभिरक्षिन्] दे० 'अभिरक्षी'।
अभिरक्ष्य—वि० [सं०] दे० 'अभिरक्ष्य'।
अभिरत—वि० [सं० अभि+रत] दे० 'अभिरत'।
अभिरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरति'।
अभिरथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिरथ'।
अभिरथी—वि० [सं० अभिरथिन्] दे० 'अभिरथी'।
अभिरम—वि० [सं०] दे० 'अभिराम'।
अभिरमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिरमण'।
अभिरमणीय—वि० [सं०] दे० 'अभिरमणीय'।
अभिरमित—वि० [सं०] दे० 'अभिरमित'।
अभिरमी—वि० [सं० अभिरमिन्] दे० 'अभिरमी'।
अभिराम—वि० [सं० अभि+राम (प्रसन्न)] १ सुंदर। मनोहर। २ प्रसन्न। ३ शोभायमान। ४ पवित्र। ५ शुद्ध। ६ उत्तम। ७ प्रिय। ८ पूर्ण। ९ शुक्ल। १० मुख्य। ११ श्रेष्ठ। १२ बलवान्। १३ दृढ़। १४ तीव्र। १५ शीघ्र। १६ अनुकूल। १७ सुखद। १८ सुखी। १९ सुखदायक। २० सुखदायी। २१ सुखी। २२ सुखदायक। २३ सुखदायी। २४ सुखी। २५ सुखदायक। २६ सुखदायी। २७ सुखी। २८ सुखदायक। २९ सुखदायी। ३० सुखी। ३१ सुखदायक। ३२ सुखदायी। ३३ सुखी। ३४ सुखदायक। ३५ सुखदायी। ३६ सुखी। ३७ सुखदायक। ३८ सुखदायी। ३९ सुखी। ४० सुखदायक। ४१ सुखदायी। ४२ सुखी। ४३ सुखदायक। ४४ सुखदायी। ४५ सुखी। ४६ सुखदायक। ४७ सुखदायी। ४८ सुखी। ४९ सुखदायक। ५० सुखदायी। ५१ सुखी। ५२ सुखदायक। ५३ सुखदायी। ५४ सुखी। ५५ सुखदायक। ५६ सुखदायी। ५७ सुखी। ५८ सुखदायक। ५९ सुखदायी। ६० सुखी। ६१ सुखदायक। ६२ सुखदायी। ६३ सुखी। ६४ सुखदायक। ६५ सुखदायी। ६६ सुखी। ६७ सुखदायक। ६८ सुखदायी। ६९ सुखी। ७० सुखदायक। ७१ सुखदायी। ७२ सुखी। ७३ सुखदायक। ७४ सुखदायी। ७५ सुखी। ७६ सुखदायक। ७७ सुखदायी। ७८ सुखी। ७९ सुखदायक। ८० सुखदायी। ८१ सुखी। ८२ सुखदायक। ८३ सुखदायी। ८४ सुखी। ८५ सुखदायक। ८६ सुखदायी। ८७ सुखी। ८८ सुखदायक। ८९ सुखदायी। ९० सुखी। ९१ सुखदायक। ९२ सुखदायी। ९३ सुखी। ९४ सुखदायक। ९५ सुखदायी। ९६ सुखी। ९७ सुखदायक। ९८ सुखदायी। ९९ सुखी। १०० सुखदायक।

विशेष—इसमें पत्नी या नहीं लाना और पत्नी को आज्ञा, मुख देखना आदि पर दोषारोपण किया करते हैं। उन्हें अब यह सुधार करने में नहीं करना, किसी वस्तु में उनकी वृत्ति नहीं होती और वह कुमार्ग में प्रवृत्त होता है।

६—समुद्री लवण। १०. देवदार। ११. हाथी [को०]। १२. एक लड़ाकू जाति [को०]।

असुरकुमार—संज्ञा पु० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता।

असुरगुरु—संज्ञा पु० [सं०] शुक्राचार्य।

असुरद्रुट्—संज्ञा पु० [सं० असुरद्रुह्] देव। सुर [को०]।

असुरद्विट्—संज्ञा पु० [सं० असुरद्विष् (ट्)] विष्णु [को०]।

असुरराज—संज्ञा पु० [सं०] राजा बलि। दैत्यराज [को०]।

असुररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरविजयी—संज्ञा पु० [सं० असुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०]।

असुरसूदन—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरसेन—संज्ञा पु० [सं०] एक राक्षस। कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बसा है। उ०—असुरसेन सम नरक निकदिनि। साधु त्रिबुध कुलहित गिरिनदिनि।—मानस, १।३१

असुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २ वारांगना। ३. राशि [को०]।

असुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० असुर+हिं० आई (प्रत्य०)] खोटाई। शरारत। उ०—बात चलत जाकी करै असुराई नेहीन। है कछु अद्भुत मत भरो तेरे दृगन प्रवीन।—स० सप्तक, पृ० १६८।

असुराचार्य—संज्ञा पु० [सं०] १ शुक्र ग्रह। २ शुक्राचार्य। असुर गुरु [को०]।

असुराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. असुरराज। दैत्यों का अधिपति। २ जलधर नामक असुरराज। उ०—परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी।—मानस, १।२३। ३. राज बलि [को०]।

असुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

असुरारी—संज्ञा पुं० [सं० असुरारि] दे० 'असुरारि'। उ०—गो द्विज हितकारी जय असुरारी। सिंधुसुता प्रिय कंत।—मानस, १।१८६।

असुरास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु [को०]।

असुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राक्षसी। २ राई [को०]।

असुविधा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'असुविधा'।

असुविलास—संज्ञा पुं० [सं०] १ छंदविशेष [को०]।

असुस्थ—वि० [सं०] अनिश्चित। उद्विग्न। बीमार। रुग्ण [को०]।

असुस्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्विग्नता। बीमारी [को०]।

असूक्षण—संज्ञा पु० [सं०] अनादर [को०]।

असूझ—वि० [सं० अ+हिं० सूझना] १ अँधेरा। अंधकारमय। उ०—अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सप्त पतालहि जाई।—जायसी (शब्द०)। २ जिसका वार पार न दिखाई पड़े। अपार। बहुत विस्तृत। बहुत अधिक। उ०—(क) कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ। दैउ क दसा न देखै दुतुं का कहँ जय देइ।—जायसी ग्र०, पृ० ११२। ३. जिसके करने का उपाय न सूझे। विकट। कठिन। उ०—दोऊ लड़े होय समुख लोई भयो असूझ। शत्रु जूझ तब न्योरे एक दोऊ महँ जूझ।—जायसी (शब्द०)।

असूत—वि० [सं० असंयुत] विरुद्ध। असबद्ध। उ०—पुनि निज प्रश्न कियो निज पूतहि। शास्त्र परम्पर कहत असूतहि।—निश्चल (शब्द०)।

असूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वंध्यात्व। बाँझपन। २ निवारण [को०]।

असूतिका—वि० स्त्री० [सं०] १ जिसका बच्चा न पैदा हुआ हो। २ वंध्या [को०]।

असूयक[1]—वि० [सं०] १ ईर्ष्या करनेवाला। छिद्रान्वेषी २ असंतुष्ट। अप्रसन्न [को०]।

असूयक[2]—संज्ञा पुं० निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

असूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असूयक] १ पराए गुण में दोष लगाना। उ०—सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक पति इष्ट। विगत असूया सील सौ ज्यों अनसूया सृष्ट।—स० सप्तक, पृ० ३६६। २ रस के अंतर्गत एक संचारी भाव। ३ क्रोध [को०]।

असूयिता—वि० [सं० असूयितृ] दे० 'असूयक' [को०]।

असूयु—वि० [सं०] दे० 'असूयक' [को०]।

असूर्यंपश्या[1]—वि० [सं० असूर्यम्पश्या] १ सूर्य को भी न देखनेवाली। राजा के अंतःपुर की स्त्रियों या रानियों के लिये प्रयुक्त जो कठोर पर्दे में रहती थीं। २ जिसको सूर्य भी न देखे। परदे में रहनेवाली, जैसे,—'असूर्यंपश्या दमयंती को विपत्ति में वन वन फिरना पड़ा।

असुर्यंपश्या[2]—संज्ञा स्त्री० पतिव्रता या साध्वी पत्नी [को०]।

असूल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० उसूल] दे० 'उसूल'।

असूल—वि० [अ० उसूल] दे० 'बसूल'।

असृक्—संज्ञा पु० [सं०] १ रक्त। रुधिर। २ मंगल ग्रह [को०]। ३ कुंकुम। केसर [को०]। ४ योग के सत्ताईस भेदों में से एक [को०]।

यौ०—असृक्य, असृग्या=रक्तपायी। राक्षस। असृग्यात, असृक्स्राव=रक्तपात। खून बहना।

असृक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर में) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया।

असृग्—संज्ञा पु० [सं० असृक्] दे० 'असृक्' [को०]।

असृग्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

असृग्दर—संज्ञा पु० [सं०] मासिकधर्म का अनियमित या अधिक होना [को०]।

असृग्दोह—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तस्राव [को०]।

असृग्धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। चर्म [को०]।

असृग्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमड़ा २ खून की धारा [को०]।

असृग्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नाड़ी जिससे रक्तसंचार होता है। [को०]।

असृग्विमोक्षण—संज्ञा पु० [सं०] रक्त निकालना [को०]।

असृष्ट—वि० [सं०] १ जिसकी सृष्टि न हुई हो। अनुत्पन्न। २. जो चल रहा हो। जारी। ३ जो प्रदान न किया गया हो अथवा जिसका वितरण न हुआ हो [को०]

यौ०—असृष्टान्न=जो भोजन का वितरण न करे ।

असेग(पु)—वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।

असेचन, असेचनक—वि० [स०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने को जी चाहे [को०] ।

असेत(पु)—वि० [स० अ=नहीं+श्वेत, प्रा० सेअ, अप० सेत्त] अश्वेत । काला । बुरा । उ०—कीन्ही तुम सेत, मैं असेत कृति कीन्ही तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४८ ।

असेवन[2]—[स०] १ सेवा न करनेवाला । २ अनुगमन न करनेवाला [को०] ।

असेवन[2]—सज्ञा पुं० अवज्ञा । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'असेवन—२' [को०]

असेवित—वि० [स०] १ परित्यक्त । उपेक्षित । २ अव्यवहृत [को०] ।

असेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०—राजत न लेस अब बिनत असेष को ।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेस(पु)—वि० [स० अशेष, प्रा० असेस] अनत । बहुत । उ०—जात भो रसातलै असेस कठमल भेदि ।—रामचद्र०, पृ० १३५

असेसमेंट—सज्ञा पुं० [अ० एसेसमेंट] १ मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम । बदोबस्त । २ कर वा टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम ।

असेसर—सज्ञा पुं० [अ० एसेसर] १ वह व्यक्ति जो जज को फौजदारी के मुकदमे मे फैसले के समय राय देने के लिये चुना जाता है । २ वह जो बही खाता जाँच कर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है । ३ वह जो जमीन का मोल ठहराकर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है । कर लगानेवाला ।

असैनिक—वि० [स०] १ जो सैनिक न हो । जो सेना से सबध न रखता हो ।

असैला(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+शैली=रीति] [स्त्री० असैली] १ रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०—सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं । अदुध असैले मनमैले महिपाल भए कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्र०, पृ० ३०७ । २ शैली के विरुद्ध । अनुचित । रीतिविरुद्ध । उ०—मैं सुनी बातैं असैली जे कहि निमिचर नीच । क्यो न मारै गाल बैठो काल डाढनि बीच ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७४ ।

असो†—क्रि० वि० [स० इह=समय या अस्मिन् समय का सक्षिप्त रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक[1](पु)—सज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०—तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।—मानस, ३। २३ ।

असोक[2](पु)—वि० [स० अशोक] शोकरहित । उ०—जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहि निज बोध ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४६ ।

असोकी(पु)—वि० [हिं० असोक=ई (प्रत्य०)] शोकरहित । उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । मागि अगम बर होउँ असोकी ।—मानस, १।१६४ ।

असोच(पु)—वि० [स० अ+शोच] १ शोचरहित । चिंतारहित । उ०—रहै असोच बनै प्रभु पोसे ।—मानस, ४। ३ । २. निश्चित । बेफिक्र । उ०—माधौ जू, मन मानही विधि पोच । अति उनमत्त, निरकुस, मैगल, विचारहित असोच ।—सूर०, १ । १०२ ।

असोज(पु)†—सज्ञा पुं० [स० अश्वयुज, प्रा० असोय] आश्विन । क्वार

असोढ—वि० [स०] १ असह्य । २ जो वश मे न किया जा सके । उद्धत [को०] ।

असोस(पु)—वि० [अ+शोष] जो सूखे नही । न सूखनेवाला । उ०—(क) कबिरा मन का माँहिना अवना वहै असोस । देखत ही दह मे परै देय किसी को दोस ।—कबीर (शब्द०) । (ख) गोपिन कै असुवनु भरी सदा असोस अपार । डारु डगर नै ह्वै रही वगर वगर के बार ।—बिहारी र०, पृ० २६३ ।

असोसिएशन—सज्ञा पुं० [अ० एसोसिएशन] समिति । समाज । सस्था ।

असौदर्य—सज्ञा पुं० [स० असौन्दर्य] असुदरता । कुरूपता [को०] ।

असौंध(पु)—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+हिं० सौंध=सुगध] दुर्गंध । बदबू । उ०—जहँ आगम पोनहि को सुनिए । नित हानि असौंधहि की गुनिए ।—केशव (शब्द०) ।

असौच(पु)—सज्ञा पुं० [स० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०—हौं असौच, अक्रिय अपराधी, सनमुख होन लजाउँ ।—सूर०, १ । १२८ ।

असौधा(पु)—वि० [हिं० असौंध] १ दे० 'असौंध' । २ सुगधविहीन ।

असौम्य—वि० [स०] जो सौम्य न हो । असुदर । कुरूप [को०] ।

असौष्ठव[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ निकम्मापन । गुणहीनता । २ सुष्ठुता का अभाव । भद्दापन [को०] ।

असौष्ठव[2]—वि० असुदर । भद्दा । विरूप [को०] ।

अस्कदित—वि० [स० अस्कन्दित] १ अक्षरित । न बहा हुआ । २ न गया हुआ । ३ अनाक्रात । ४ अविस्मृत अनुपेक्षित—जैसे समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्का†—सज्ञा पुं० [देश०] नैनीताल मे बुलाक को कहते हैं । यह एक छोटी सी नथुनी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक मे पहनती हैं ।

अस्कन्न—वि० [स०] १ न फटा हुआ । २ न खुरा हुआ । ३ टिकाऊ । ४ न उँडेला हुआ [को०] ।

अस्कर[1]—पुं० [अ०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी—सज्ञा पुं० [अ०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अस्खल—सज्ञा पुं० [स०] आग । अग्नि [को०] ।

अस्खलित—वि० [स०] १. च्युत न होनेवाला । अच्युत । २ विचलित न होनेवाला । अडिग । ३ विशुद्ध । ४ शुद्ध उच्चारण करनेवाला [को०] ।

अस्तगत—वि० [स० अस्तङ्गत] १ अस्त को प्राप्त । नष्ट । २ अवनत । हीन ।

अस्त[1]—वि० [स०] १ छिपा हुआ । तिरोहित । २ जो दिखाई न पडे । अदृश्य । डूबा हुआ, जैसे—सूर्य अस्त हो गया । ३. नष्ट । ध्वस्त, जैसे—मुगलो का प्रताप औरगजेब के पीछे अस्त हो गया' (शब्द०) । ४ फेंका हुआ । क्षिप्त [को०] । ५. समाप्त [को०] । ६ भेजा हुआ [को०] ।

अस्त[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे-सूर्यास्त के पहले आ जाना (शब्द०) । २. पश्चिम मेरु (जिसके पीछे सूर्य

डूबता है) [को०] । ३ आवास । घर [को०] । ४ समाप्ति । मृत्यु [को०] ।

यौ०—सूर्यास्त । शुक्रास्त । अस्तंगत ।

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लग्न से सातवें लग्न पर अस्त होते हैं। इसी से कुंडली मे सातवें घर की संज्ञा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

अस्तक—संज्ञा पु० [सं०] १ मोक्ष । २ घर [को०] ।

अस्तकाल—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अस्तसमय' ।

अस्तगमन—संज्ञा पु० [सं०] १ डूबना । लोप । २ मृत्यु । जीवन का अंत [को०]

अस्तगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ताचल । वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०] ।

अस्तन—संज्ञा पु०[सं० स्तन] दे० 'स्तन' । उ०—कपट करि ब्रजहिं पूतना आई । अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई ।—सूर०, १०।५२ ।

अस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों ।

अस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग डूबा हुआ ।

अस्तबल—संज्ञा पु० [अ०] घुड़साल । तबेला ।

अस्तब्ध—वि० [सं०] १ जो स्तब्ध न हो । अचकित । २ चंचल । ३ विनयी [को०] ।

अस्तभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लग्न से सप्तम लग्न [को०] ।

अस्तमती—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ सरिवन का पेड़ । सातिवा । शालपर्णी ।

अस्तमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्त होना । तिरोधान । २ सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना ।

यौ०—अस्तमनवेला ।

अस्तमननक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो वह नक्षत्र उस ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है ।

अस्तमनवेला—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्तमनवेला] सायंकाल । संध्या का समय ।

अस्तमित—वि०[सं०]१ तिरोहित । छिपा हुआ २ नष्ट । मृत ।

अस्तर—संज्ञा पु० [फा०, मि० सं० आ+स्तृ आच्छादन, तह या आस्तर] १ नीचे की तह या पल्ला । भितल्ला । उपल्ले के नीचे का पल्ला । २ दोहरे कपड़े मे नीचे का कपड़ा । ३ नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमड़ो मे से नीचेवाला चमड़ा । ४ वह चंदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अतर बनाया जाता है । जमीन । ५ वह कपड़ा जिसे स्त्रियाँ बारीक साड़ी के नीचे लगाकर पहनती हैं । अँतरौटा । अंतरपट । ६ नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढ़ाया जाता है । ७ खच्चर [को०] ।

अस्तरकारी—संज्ञा स्त्री०[फा]१ चूने की तिपाई । सफेदी । कलई । २ गचकारी । पलस्तर । पच्चा लगाना ।

अस्तरघट्टी—संज्ञा स्त्री०[हिं०]पत्थर की वह घट्टी जिससे तसवीर की जमीन घोटी जाती है [को०] ।

अस्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] नारी । स्त्री । उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरी सुता ।—कबीर ग्र०, पृ० ११५ ।

अस्तव्यस्त—वि० [सं०] उलटा पुलटा । छिन्न भिन्न । तितर बितर । उ०—अस्तव्यस्त है । वह भी ढक ले कौन सा अंग, न जिसमे कोई दृष्टि लगे उसे ।—झरना, पृ० २२ ।

अस्ताघ—वि० [सं०] अतिशय गंभीर । बहुत गहरा [को०] ।

अस्ताचल—संज्ञा पु० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध मे लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ मे छिप जाता है । पश्चिमाचल । उ०—अस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैसे ।—प्रेम०, पृ० ११ ।

अस्ताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्ताचल' ।

अस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाव । सत्ता । २ विद्यमानता । वर्तमानता । ३ जरासंध की एक कन्या जो कंस को ब्याही गई थी ।

अस्तिकाय—संज्ञा पु० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशों या स्थानों के अनुसार कहे जाते है ।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीवास्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय ।

अस्तिकेतुसंज्ञा—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष मे वह केतु जिसका उदय पश्चिम भाग मे हो और जो उत्तर भाग मे फैला हो । इसकी मूर्ति रूक्ष होती है और इसका फल भयप्रद है ।

अस्तित्व—संज्ञा पु०[सं०]१ सत्ता का भाव । विद्यमानता । मौजूदगी । उ—सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ, सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ।—कामायनी, पृ० २६ । २ सत्ता । भाव । उ०—निज अस्तित्व बना रखने मे जीवन आज हुआ था व्यस्त ।—कामायनी, पृ० ३३ ।

अस्तिनास्ति—वि०[सं०]संदेहपूर्ण । हाँ नहीं । कुछ झूठा कुछ सच्चा [को०] ।

अस्तिमान्—वि० [सं० अस्तिमत्] धनवान् । धनाढ्य [को०] ।

अस्तीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन' ।

अस्तु—अव्य० [सं०] १ जो हो । चाहे जो हो । उ —अस्तु, सुव्रते ! कहो कहाँ फिर तुम रहीं, मेरे जाने बाद ।—करुणा०, पृ० ३१ । २ खैर । भला । अच्छा । उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए ।—करुणा० , पृ० ३२ ।

अस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं] निंदा । अपकीर्ति ।

अस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं स्तुति] दे० 'स्तुति' । उ०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।—मानस ७।३८ ।

अस्तुरा—संज्ञा पुं० [फा० उस्तरा, मि० सं० अस्त्र] बाल बनाने का छुरा ।

अस्तेय—संज्ञा [सं०] १ चोरी का त्याग । चोरी न करना । २ योग के आठ अंगों मे नियम नामक अंग का तीसरा भेद । यह स्तेय अर्थात् बल से या एकांत मे पराए धन का अपहरण करने का उलटा या विरोधी । इसका फल योगशास्त्र मे सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३ जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आवश्यकता से अधिक सग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमे जरूरत से ज्यादा सपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—सज्ञा पु० [स० अस्त+उदय] १ डूबना उगना। २ बिगडना बनना [को०]।

अस्त्यान—सज्ञा पुं० [स०] १ परदोषकथन। निंदा। २ झिडकी। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—सज्ञा पु० [स०] १ वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें, जैसे—बाण। शक्ति। २ वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय, जैसे—धनुष, बदूक। ३ वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारो की रोक हो, जैसे—ढाल। ४ वह हथियार जो मत्र द्वारा चलाया जाय, जैसे जृभास्त्र। ५ वह हथियार जिससे चिकित्सक चीर फाड करते हैं। ६ शस्त्र। हथियार।

यौ०—अस्त्रशस्त्र।

अस्त्रकटक—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रकण्टक] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—सज्ञा पुं० [स०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—सज्ञा पु० [स० अस्त्रकारिन्] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला⑤† वि० [स० अस्त्र+घातक] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—सज्ञा पुं० [स०] चीर फाड या जर्राही करनेवाला चिकित्सक। जर्राह [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैद्यकशास्त्र का वह अश जिसमे चीरफाड का विधान है। २ चीरफाड करना। अस्त्रप्रयोग। जर्राही।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन=नश्तर लगाना। (ख) भेदन=फाडना। (ग) लेखन=खरोचना। (घ) वेधन=सुई की नोक से छेद करना। (च) सेषण=धोना। साफ करना। (छ) आहरण=काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण=फस्द खोलना। (झ) सीना=सीना या टाँका लगाना।

अस्त्रजीवी—सज्ञा पु० [स० अस्त्रजीविन्] १ पेशेवर सैनिक। २ सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—सज्ञा पु० [स० अस्त्रधारिन्] सैनिक [को०]।

अस्त्रवर्ष—सज्ञा पु० [स० अस्त्रवर्ष] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—सज्ञा पुं० [स०] अस्त्रो को माँजकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—सज्ञा स० [स०] अस्त्रकौशल। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेध करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बाण विद्या। २ अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—सज्ञा पुं० [स०] वह शास्त्र जिसमे अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुर्वेद।

अस्त्रशस्त्र—सज्ञा पु० [स०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ मे लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशाला—सज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायँ। अस्त्रागार। सिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र—सज्ञा पु० [स०] १ अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २ धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रिन्] [स्त्री० अस्त्रिणी] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारबद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [स०] १ पत्नीहीन। २ बिना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैण—वि० [स०] १ बिना स्त्री का। जिसे स्त्री न हो। २ जो स्त्री सबधी न हो। ३ जो स्त्री का गुलाम न हो। ४ जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल⑤†—सज्ञा पुं० [स० स्थल] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।—सूर० १। ७८।

अस्थाई⑤—वि० [स० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

अस्थान[१]⑤—सज्ञा पुं० [स० आस्थान] दे० 'स्थान'। उ०—अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्र०, पृ० १२।

अस्थान[२]—सज्ञा पुं० [स०] १ अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २ अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [स०] प्रसग से भिन्न। अनुपयुक्त। उ०—उसने अपना बहुत सुधार किया है कि जिसका आख्यान यहाँ अस्थानीय है'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी[१]—वि० [स० अस्थायिन्] [वि० स्त्री० अस्थायिनी] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभगुर [को०]।

अस्थायी[२]—सज्ञा स्त्री० [स० स्थायिन्] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—सज्ञा पुं० [स०] १ जो स्थावर या अचल न हो। जगम। चल। २ कानून मे वह सपत्ति जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हड्डी। उ०—औरो कथा सबै बिसराई लेत तुम्हारो नाम। सूर स्याम ता दिन ते बिछुरे, अस्थि रहे कै चाम।—सूर०, २।३२०६। २ फल की गुठली या गिरी [को०]।

अस्थिकुड—सज्ञा पुं० [स० अस्थिकुण्ड] पुराणो के अनुसार एक नरक जिसमे हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक मे पडते हैं जो गया मे विष्णुपद पर पिंडदान नही करते।

अस्थिकृत—सज्ञा पुं० [स०] १ हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिज—सज्ञा पुं० [स०] १ मज्जा। २ हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३ वज्र [को०]।

अस्थित[१]—वि० [स०] जो दृढ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित[२]⑤—वि० [स० स्थित] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँडौ सबकी मोहु। तब लौ सब पानी की चुपरी जौ लौ अस्थित दोहु।—सूर०, १।३५३६

अस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. दृढता या स्थिरता का अभाव। चचलता। डाँवाडोलपन। २ अच्छे गुरु या सलीके की कमी कौ०।

अस्थितुंड—सज्ञा पुं० [स० अस्थितुण्ड] १ नखी। २ हड्डी की तरह कडी चोचवाला पक्षी [कौ०]।

अस्थितेज—सज्ञा पु० [स० अस्थितेजस्] मज्जा [कौ०]।

अस्थितैल—सज्ञा पु० [स०] हड्डी का तेल [कौ०]

अस्थिबन्धा—सज्ञा पुं० [स० अस्थिबन्धन्] शिव [कौ०]।

अस्थिपंजर—सज्ञा पुं० [स० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पसली। ककाल। उ०—धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर मे। मास नही है, शेष रही बस मास अस्थि-पजर मे।-पथिक, पृ० ४१।

अस्थिप्रक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] गगा या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना। अस्थिविसर्जन [कौ०]।

अस्थिबधन—सज्ञा पु० [स० अस्थिबन्धन] स्नायु [कौ०]।

अस्थिभग—सज्ञा पुं० [स० अस्थिभङ्ग] हडडी टूटना [कौ०]।

अस्थिभक्ष—सज्ञा पुं० [स०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता [कौ०]।

अस्थिभुक्—सज्ञा पु० [स० अस्थिभुज्] दे० 'अस्थिभक्षी' [कौ०]।

अस्थिभेद—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अस्थिभंग' [कौ०]।

अस्थिभेदी—वि० [स० अस्थिभेदिन्] १ हड्डी काटनेवाला। २. अत्यत तीक्ष्ण [कौ०]।

अस्थिमाली—सज्ञा पु० [स० अस्थिमालिन्] शिव।

अस्थिर[1]—वि० [स०] १ जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। उ०—दावाग्नि-प्रखर लपटो ने कर दिया सघन वन अस्थिर।-कामायनी, पृ० २८१। २—बे ठौरठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०—यो ही लगा बीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।—कामायनी, पृ० ३३।

अस्थिर[2]ⓤ—[स० स्थिर] जो चचल न हो। स्थिर उ०—भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्व, हरि नग निर्मल लेहि काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू सकल दलाली देहि।-सूर०, १। ३१०।

अस्थिरता—सज्ञा स्त्री० [स०] चचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।

अस्थिविग्रह[1]—वि० [स०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव)। जिसका शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो [कौ०]।

अस्थिविग्रह[2]—सज्ञा पु० [स०] शिव का भृगी नामक गण [कौ०]।

अस्थिशेष—वि० [स०] ककालशेष। जिसके शरीर मे हड्डियाँ ही रह गई हो [कौ०]।

अस्थिसचय—सज्ञा पु०[सं० अस्थिसञ्चय] भस्मात या अत्येष्टि सस्कार के अनतर की एक क्रिया या सस्कार जिसमे जलने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।

अस्थिसधि—सज्ञा स्त्री० [स० अस्थिसन्धि] हड्डियो का जोड।

अस्थिसभव—सज्ञा पु० [सं० अस्थिसम्भव] १ मज्जा। २ वज्र [कौ०]।

अस्थिसमर्पण—सज्ञा पु० [स०] १ हड्डियो का नदी मे प्रवाह। अस्थिविसर्जन [कौ०]।

अस्थिसार—सज्ञा पुं० [सं०] मज्जा [कौ०]।

अस्थिस्नेह—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अस्थिसार' [कौ०]।

अस्थूल[1]—वि० [सं०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अस्थूल[2]ⓤ—वि० [सं० स्थूल] दे० 'स्थूल'।

अस्थैर्य—सज्ञा पुं० [सं०] दृढता का अभाव। अस्थिति। डाँवाँडोलपन। उ०—दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य कहा—यह उचित नहीं अस्थैर्य।-साकेत, पृ० ४२।

अस्नानⓤ—सज्ञा पुं० [स० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्नान नद घर आए।-सूर०, १०।२६०।

अस्नाविर—वि० [सं०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) [कौ०]।

अस्निग्ध—वि० [स०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २ कठोर। निर्दय। हृदयहीन [कौ०]।

अस्निग्धदारु—पज्ञा पु० [स०] देवदारु वृक्ष की जाति का एक वृक्ष [कौ०]।

अस्निग्धदारुक—सज्ञा पु० [सं०] देवदारु की जाति का एक पेड।

अस्नेहन—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [कौ०]।

अस्पज—सज्ञा पुं० [यु० इस्फज] स्पंज। मुर्दा बादन [कौ०]।

अस्पद—सज्ञा पु० [स० अस्पन्द] जिसमे स्पदन या कपन न हो। गतिहीन [कौ०]।

अस्पताल—सज्ञा पु० [अ० हॉस्पिटल] औषधालय। चिकित्सालय। दवाखाना।

अस्पर्श—वि० [सं०] १ जिसमे स्पर्श न हो। २ जो छूने योग्य न हो [कौ०]।

अस्पर्सⓤ—सज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] दे० 'स्पर्श'। उ०—भएँ अस्पर्श देवतन धरिहै। मेरी कह्यौ नाहिं यह टरिहै।-सूर० ८।२।

अस्पष्ट—वि० [स०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०—अस्पष्ट एक निधि ज्योतिमयी, जीवन की आँखो मे भरते।-कामायनी, पृ० ६४।

अस्पृश्य—वि० [स०] जो छूने योग्य न हो। उ०—गिर जाय कुछ गगाजु भी अस्पृश्य नाली मे कभी, तो फिर उसे अपवित्र ही बतलायेंगे निश्चय सभी।-भारत, पृ० १२३। —नीच जाति का। अत्यज।

अस्पृश्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।

अस्पृष्ट—वि० [स०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता [कौ०]।

अस्पृह—वि० [स०] निस्पृह। निर्लोभ। जिसमे लालच न हो।

अस्फटिकⓤ—सज्ञा पुं० [स० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०—जिनही बनी अवनी अमल अस्फटिक मनि पटरीन सो।-प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२०।

अस्फो—सज्ञा पुं० [फा० अस्प+ई (प्रत्य०)] घुडसवार। अश्वारोही। उ०—सु अस्फी घने दुदुभी हैं धुकारे। मनौ घर्घराने पर्यो बिंधु भारे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २७८।

अस्फुट—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट न हो। जो साफ न हो। उ०—अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित वन है।—साकेत, पृ० २१७। २. गूढ। जटिल।

अस्म(पु)—सज्ञा पु० [स० अश्म] पत्थर। उ०-(क) जहँ जहँ जात तही तहीं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान।—सूर० १। १०३। (ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी मैं वनचर लै लै डारत।—सूर० ९। १२३।

अस्मद्[1]—सर्व० [सं० अस्मत्] मैं।

अस्मद्[2]—सज्ञा पुं० [स० अस्मत्] जीव। आत्मा [को०]।

अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [को०]।

अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।

अस्मदीय—वि० [स०] मेरा [को०]।

अस्मय—वि० [सं० अश्ममय] पत्थर द्वारा निर्मित। उ०—जरासध वदी कहैं नप कुल जस गावैं। अस्मय तन गौतम तिया को साप नसावैं।—सूर० १। ४।

अस्मार्त-वि० [स०] जो स्मृतियो का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी। २ जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३ परपराविरुद्ध। अनुचित। ४ स्मार्त मत के विपरीत [को०]।

अस्मिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेशो मे से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि मे अभेद मानना। २ अहकार। साख्य मे इसको मोह और वेदात मे हृदयग्रथि कहते हैं।

अस्र[1]—सज्ञा पु० [स०] १ कोना। २ रुधिर। ३ जल। ४ आँसू। उ०—प्रकृति-रजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विधना थी भरे हिम अस्र।—साकेत, पृ० १९५। ५ केसर। ६ बाल।

अस्र[2]—सज्ञा पु० [अ०] १ दिन का चतुर्थ प्रहर। २ समय। वक्त। काल [को०]।

अस्रकठ—सज्ञा पुं० [सं० अस्रकण्ठ] बाण। तीर [को०]।

अस्रखदिर—सज्ञा पुं० [स०] रक्तखदिर का वृक्ष [को०]।

अस्रज—सज्ञा पु० [सं०] मास [को०]।

अस्रय[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र। ३ जोक जो लहू (अस्त्र) पीती है।

अस्रय[2]—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्रपा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जलौका। जोक। २ डाइन। टोना करनेवाली।

अस्रपित्त—सज्ञा पु० [स०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना [को०]।

अस्रफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड।

अस्रफली—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० अस्रफला [को०]।

अस्रमातृका—सज्ञा स्त्री० [स०] देह के भीतर का रस [को०]।

अस्ररोधिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] नज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [को०]।

अस्रार्ज्जक—सज्ञा पुं० [स०] श्वेत तुलसी।

अस्रु(पु)—सज्ञा पुं० [स० अश्रु] दे० 'अश्रु'।

अस्ल—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वत—सज्ञा पुं० [स० अस्वन्त] १ मृत्यु। २ खेत। ३ चूल्हा। ४ मरुत् विशेष [को०]।

अस्व(पु)—सज्ञा पु० [स० अश्व] दे० 'अश्व'। उ०-होइय नाथ अस्व असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छद—वि० [स० अस्वच्छन्द] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के भरोसे पर रहनेवाला [को०]।

अस्वच्छ—वि० [स०] जो स्वच्छ न हो। जो स्पष्ट न हो। गदा [को०]।

अस्वतत्र—वि० [स० अस्वतन्त्र] पराधीन। दास। गुलाम [को०]।

अस्वप्न[1]—सज्ञा पु० [स०] १ देवता। २ अनिद्रा।

अस्वप्न[2]—वि० [स०] जिसे नीद न आती हो [को०]।

अस्वभाव[1]—वि० [स०] भिन्न स्वभाववाला [को०]।

अस्वभाव[2]—सज्ञा पु० [स०] अस्वाभाविक लक्षण। भिन्न लक्षण [को०]।

अस्वर[1]—वि० [स०] अस्पष्ट या मद (स्वर)। बुरे या मद स्वरवाला [को०]।

अस्वर[2]—सज्ञा पु० [स०] स्वरभिन्न या व्यजन वर्ण [को०]।

अस्वर्ग्य—वि० [स०] जो स्वर्ग प्राप्ति मे बाधक हो [को०]।

अस्वस्थ—वि० [स०] १ रोगी। बीमार। २ अनमना।

अस्वादुकटक—सज्ञा पुं० [स० अस्वादुकण्टक] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [स०] पराधीन। परतत्र [को०]।

अस्वाध्याय[1]—वि० [स०] वेदो की आवृत्ति न करनेवाला। जिसने वेदपाठ न किया हो [को०]।

अस्वाध्याय[2]—सज्ञा पु० [स०] वेद के स्वाध्याय के बीच पडनेवाली बाधा या मिलनेवाला अवकाश [को०]।

अस्वाभाविक—वि० [स०] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविरुद्ध। २ कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक[1]—वि० [स०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [को०]।

अस्वामिक[2]—सज्ञा पु० [स०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो। [को०]।

अस्वामिकद्रव्य—सज्ञा पुं० [स०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—सज्ञा पुं० [स०] १ दूसरे के पदार्थ को उसकी आज्ञा के बिना बेच लेना। २ दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर या कही पडी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना। निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रीत—सज्ञा पु० [स०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसहत—वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अस्वामी—वि० [स० अस्वामिन्] १ जिसका कोई दावेदार या अधिकारी न हो। २ जिसका कोई स्वत्व वा अधिकार न हो [को०]।

अस्वार्थ—वि० [स०] १ स्वार्थहीन । निःस्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३ निरर्थक । निकम्मा । बेकार [को०] ।

अस्वास्थ्य—सज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । रोग ।

अस्विन्न—वि० [स०] अच्छी तरह न उबाला हुआ । अपक्व [को०] ।

अस्वीकरण—सज्ञा पु० [स०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।

अस्वीकार—सज्ञा पुं० [स०] स्वीकार का उलटा । इनकार । नामजूरी । नाही ।

क्रि० प्र०—करना ।

अस्वीकृत—वि० [स०] अस्वीकार किया हुआ । नामजूर किया हुआ । नामजूर ।

अस्वीकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] नामजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।

अस्स(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अश्व, प्रा० अस्स] घोडा ।

अस्सी—वि० [स० अशीति, प्रा० असीति] सत्तर और दस की सख्या । दस का अठगुना ।

अस्सु(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अस्सु] आँसू ।

अहं[1]—सर्व० [स० अहम्] मैं ।

अहं[2]—सज्ञा पुं० १ अहकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी सुखद शाति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामे तन मन रहै समोई । अहं अगिनि नहिं दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यो महराज या जलधि तें पार कियो भव जलधि पार त्यों करौ स्वामी । अहं ममता हमैं सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २ सगीत का एक भेद जिसमे सब शुद्ध स्वरो तथा कोमल गधार का व्यवहार होता है

अहंकार—सज्ञा पुं० [सं०] १ अभिमान । गर्व । घमड । २. वेदात के अनुसार अत करण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहकार है । 'मैं हूँ' या "मैं कहता हूँ" इस प्रकार की भावना । ३ साख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।

विशेष—यह महत्तत्व का विकार है और इसकी सात्विक अवस्था से पाँच ज्ञानेंद्रियो, पाँच कर्मेंद्रियो तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामस अवस्था से पचतन्मात्राओ की उत्पत्ति होती है, जिनसे क्रमश आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । साख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अत करणद्रव्य है ।

४ अत करण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र मे अस्मिता कहते हैं । ५ मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।

अहंकारी—वि० [स० अहङ्कारिन्] [स्त्री० अहंकारिणी] अहकार करनेवाला । घमडी । गर्वी ।

अहंकृत्—वि० [स० अहङ्कृत्] अहकार करनेवाला । घमडी [को०] ।

अहंकृति—सज्ञा स्त्री० [स० अहङ्कृति] अहकार ।

अहंता—सज्ञा स्त्री० [स० अहन्ता] अहकार । घमड । गर्व । उ०—या एक पूजना देह दीन, दूसरा अर्ण अहंता मे रचो को समझ रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।

अहंधी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहकार' ।

अहंपद—सज्ञा पु० [स० अहम्पद] गर्व । अभिमान [को०] ।

अहंपूर्व—सज्ञा पुं० [स० अहम्पूर्व] लाग डाट मे दूसरे से आगे बढ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।

अहंपूर्विका—सज्ञा स्त्री० [स० अहम्पूर्विका] होड । प्रतिस्पर्धा [को०] ।

अहंप्रथमिका—सज्ञा स्त्री० [स० अहम्प्रथमिका] दे० 'अहंपूर्विका' [को०] ।

अहंप्रत्यय—सज्ञा पु० [सं० अहम्प्रत्यय] घमड । गर्व [को०] ।

अहंभद्र—सज्ञा पु० [स० अहम्भद्र] अपना व्यक्तित्व महान् समझना [को०] ।

अहंमति—सज्ञा स्त्री० [स० अहम्मति] (वेदात दर्शन मे) भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।

अहंवाद—सज्ञा पुं० [सं०] डीग मारना । शेखी हाँकना । उ०—अहंवाद मैं तें नहीं दुष्ट सग नहिं कोइ । दुख ते दुख नहिं ऊपजे सुख से सुख नहिं होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अहँकार(पु)—सज्ञा पुं० [स० अहङ्कार] दे० 'अहकार' । उ०—त्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहँकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१ ।

अहं[1]—सज्ञा पु० [स० अहन्] १ दिन । २ विष्णु । ३ सूर्य । ४ दिन का अभिमानी देवता । ५ आकाश [को०] । ६ एक दिन का काम [को०] । ७ रात्रि [को०] । ८ किसी ग्रथ का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।

यौ०—अहर्निश=दिन रात । लगातार । अहपति=सूर्य । अहर्मुख=उषाकाल । अहर्ह=दिन दिन ।

अहं[2]—अव्य [स० अहह] एक अव्यय सबोधन । आश्चर्य खेद और क्लेश आदि मे इसका प्रयोग होता है, जैसे—अहं ! तुमने बडी मूर्खता की (शब्द०)

अहक(पु)—सज्ञा पु० [स० ईहा] अच्छा । आकाक्षा । लालसा । उ०—अहक मोर बरषा ऋतु देखहु । गुरु चीन्हि कै योग बिसेषहु ।—जायसी (शब्द०) ।

अहकना—क्रि० अ० [हिं० अहक] इच्छा करना । लालसा करना ।

अहकाम—सज्ञा पु० [अ० हुक्म का बहु व०] १ नियम । कायदा । २. हुक्म । आज्ञाएँ ।

अहचरज—सज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' । उ०—समर जीति जौहर को होन । जो अहचरज भयो यह तौन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।

अहट—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अध अरी या अदाई की ।—गग०, पृ० ८२ ।

अहटाना[1]—क्रि० अ० [हिं० आहट] आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाय । चलत न पग बैजनियाँ मग अहटाय ।—रहिमन० (शब्द०) ।

अहटाना[2](पु)—क्रि० स० आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।

अहटाना[3](पु)—क्रि० अ० [स० आहत] दुखना । दर्द करना । उ०—(क) तनिक किरकिटी के परे पल पल मे अहटाय । कहो सोवें सुख नींद दृग मीत बसैं जब आय ।—रसनिधि० (शब्द०) । (ख) सुनी दूत बानी महामानी खानजहँ जबै, हिये अहटाना है रिसानी देह तापै सबै ।—भूषन० (शब्द०) ।

अहटियाना†—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अहटाना'।

अहत[1]—वि० [सं०] १ जो हत न हो। २ अक्षत। ३ अनाहत। ४ जो पीटा या कचारा न गया हो। जैसे—वस्त्र। ५ जो कुठाग्रस्त या हताश न हो। ६ नया। बिना धोया हुआ। ७ निर्दोष। बेदाग [को०]।

अहत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] बिना धुला नया वस्त्र [को०]।

अहथिरⓊ†—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।—जायसी (शब्द०)।

अहद[1]—संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा। वादा। इकरार।

क्रि० प्र०—करना=प्रतिज्ञा करना।—टूटना=प्रतिज्ञा भंग होना।—तोडना=प्रतिज्ञा भंग करना। वादा पूरा न करना। २. संकल्प। इरादा। ३. समय। काल। राजत्वकाल, जैसे—'अकबर के अहद मे प्रजा बडी सुखी थी'।

यौ०—अहदनामा। अहदशकिन। अहदशिकनी अहद वो पैमान।

अहद[2]—वि० [सं० अ=नहीं+अ० हद] सीमारहित। असीम। उ०—पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहद इस भाँति जाई।—पलटू०, पृ० ६३।

अहददार—संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानी राज्य के समय का एक अफसर जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था। उसको इस काम के लिये दो या तीन रुपया सैकडा बधेज मिलता था और राज्य मे वह सब कर का देनदार ठहरता था। एक प्रकार का ठेकेदार।

अहदनमा—संज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा। वह लेख या पत्र जिसके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय मे कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र। २ सुलहनामा। संधिपत्र।

अहदी[1]—वि० पुं० [अ०] १ आलसी। अलहदी। आसकती। २ वह जो कुछ काम न करे। अकर्मण्य। निठल्लू। मठ्ठर।

अहदी[2]—संज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के सिपाही जिनसे बडी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन वे बैठे खाते थे। उ०—घेर्‌यो आइ कुटुम लसकर मैं, जम अहदी पठयो। सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि, घर घर को जु भयो।—सूर० १।६४।

विशेष—इसी से 'अहदी' शब्द आलसियो के लिये चल गया। ये लोग कभी कभी उन जमीदारो से मालगुजारी वसूल करने के लिये भी भेजे जाते थे जो देने मे आनाकानी करते थे। ये लोग अडकर बैठ जाते थे और बिना लिए नही उठते थे।

अहदीखाना—संज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह्] अहदियो के रहने का स्थान।

अहदेहुकूमत—संज्ञा पुं० [फा०] शासनकाल। राज्य।

अहन्—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। दिवस।

अहन—संज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दे० 'अहन्'। २ दिन। उ०—पेट को पढ़त गुन गढत, चढत गिरि अटत गहन वन अहन अखेटकी।—तुलसी ग्र०, पृ० २२०।

अहनाⓊ—क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्तमान रहना। होना। उ०—(क) राजा सेति कुँअर सब कहई। अस अस मच्छ समुद महँ अहही।—जायसी (शब्द०)। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोदि अंतरपट बीचहि दीन्हा॥—जायसी (शब्द०)।

अहनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अहनाथ] दिन के स्वामी। सूर्य। उ०—महि मयंक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद। ता विधि तेई जीव कहँ होत समुझ बिनु बेद।—सं० सप्तक, पृ० ३८।

अहनिसिⓊ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अहर्निश'। उ०—मुयो मुयो अहनिसि चिल्लाई। ओही रोम नागन्ह धै खाई।—जायसी (शब्द०)।

अहन्पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दुपहरिया का फूल। गुलदुपहरिया।

अहमक—वि० [अ०] जड। बेवकूफ। मूर्ख। नासमझ। उ०—लहुरे थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक थकै सरीरो।—कबीर ग्र०, पृ० २३६।

अहमग्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढने की प्रतिस्पर्धा। होड [को०]।

अहमहमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लागत। डाँट। पहले हम तब दूसरा। हमाहमी। चढा ऊपरी।

अहमितिⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] १. अविद्या। अज्ञान। उ०—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। गोड पसारि परयो दोउ नीकै, अब कैसी कह रोइसि।—सूर०, १। ३३३। २ अहंकार। उ०—मजेउ चापु दापु बड बाढा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढा।—मानस, १। २८३।

अहमेव—संज्ञा पुं० [सं०] अहंकार। गर्व। घमंड। उ०—(क) उदित होत शिवराज के, मुदित भए द्विज देव। कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव।—भूषण (शब्द०)। (ख) सन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।—कबीर ग्र०, पृ० ३०२।

अहर—संज्ञा पुं० [देश०] सीपियो के रग का मिट्टी का बरतन। नैया।

अहरणीय—वि० [सं०] १ न चुराने योग्य। २ (चुराना द्वारा) न अपनाने योग्य। ३ दृढ। सुस्थिर [को०]।

अहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० आ+धरण=रखना] निहाई। उ०—कबिरा केवल राम की तू मति छाँडै ओट। घन अहरन बिच लोह ज्यो घनी सहैं सिर चोट।—कबीर (शब्द०)।

अहरना†—क्रि० स० [सं० आहरण=निकालना] १ लकडी को छीलकर सुडौल करना। २ डोलना।

अहरनिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अहरन'।

अहरनिसिⓊ†—क्रि० वि० दे० 'अहर्निश-२'। उ०—अहरनिसि आस लागी रहै सुन्न मे, बिना जल पिए क्या प्यास जाई।—कबीर० रे०, पृ० २६।

अहरा—संज्ञा पुं० [सं० आहरण=इकट्ठा करना] १ कडे का ढेर जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय। २ वह आग जो इस प्रकार इकट्ठा किए हुए कडो से तैयार की जाय। ३. वह स्थान जहाँ लोग ठहरें। ४ प्याऊ। पौशाला।

अहराम—संज्ञा पुं० [अ० हरम=पुरानी इमारत का बहुव०] पुराने भवन। २. मिस्र के स्तूप या पिरामिड।

अहरी-सज्ञा स्त्री० [स० आहरण = इकट्ठा होना] १ वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २ वह गड्ढा या हौज जो कुएँ के किनारे जानवरो के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३ हौज जिसमे किसी काम के लिये पानी भरा जाय।

अहर्गण-सज्ञा पुं० [स०] १ दिनो का समूह। २ ज्योतिष कल्प के आदि से किसी इष्ट या नियत काल तक का समय।

अहर्दल-सज्ञा पु० [स०] दोपहर मध्यदिवस [को०]।

अहर्निश-क्रि० वि० [स०] १ रातदिन। २. सदा। नित्य।

अहर्मणि-सज्ञा पुं० [स०] सूर्य।

अहर्मुख-सज्ञा पुं० [सं०] उषःकाल। दिनारभ। सवेरा।

अहल[1]-वि० [स०] अकृष्ट। बिना जोता हुआ (खेत) [को०]।

अहल[2]-वि० [अ० अहल] लायक। समर्थ। योग्य [को०]।

अहलकार-सज्ञा पुं० [फा०] १ कर्मचारी। २ कारिंदा।

अहलकारी-सज्ञा स्त्री० [हिं०] अहलकार का काम। कारिंदागिरी।

अहलना(पु)-क्रि० अ० [सं० अलहनम] हिलना। काँपना। दहलना। उ०-पहल पहल तन रुइ ज्यो झाँपै। अहल अहल अधिको हिय काँपै।-जायसी (शब्द०)।

अहलमद-सज्ञा पु० [फा० अहलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमो की मिसिलो को रजिस्टर मे दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिसिल को तर्तीब देकर मुहाफिजखाने मे दाखिला करता है।

अहला[1]-सज्ञा पुं० [हिं०] 'अहिला'।

अहलाद(पु)[2]-सज्ञा पु० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०-(क) ताको पुत्र भयो प्रहलाद। भयो असुर मन अति अहलाद।-सूर०, १।४२१। (ख) टूटा पकरि उठावै पर्वत पगुल करै नृत्य अहलाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुदर सोई पावै स्वाद।-सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५०८।

अहलादी(पु)[2]-वि० [हिं०] 'आह्लादी'।

अहलि-वि० [सं०] दे० 'अहल' [को०]।

अहले गहले[1]-क्रि० वि० [अनु०] मस्ती के साथ। प्रसन्नतापूर्वक। निश्चिंत मन से [को०]।

अहल्या[1]-वि० [स०] जो (धरती) जोती न जा सके।

अहल्या[2]-सज्ञा स्त्री० गौतम ऋषि की पत्नी।

अहवान(पु)-सज्ञा पुं० [स० आह्वान] बुलाना। आवाहन। उ०-कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।-रघुराज० (शब्द०)।

अहवाल-सज्ञा० पुं० [अ० 'हाल' का बहु०] १ समाचार। वृत्तात। उ०-मरजे मुबारक का मरीज तब करा अहवाल सुनाऊँ।-प्रेमघन०, पृ० १९२। २ दशा। अवस्था। उ०-अजब अहवाल देखा हमने कल इस खाने वीराँ का।-कविता कौ०, भा० ४, पृ० २३०।

अहश्चर-वि० [स०] दिन मे चलनेवाला। दिनचारी [को०]।

अहसान-सज्ञा पुं० [अ० एहसान] १ किसी के साथ नेकी करना। सलूक। भलाई। उपकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा।

उ०-बहु धन लै अहसान कै, पारौ देत सराहि। बैद बधू हँसि भेद सौ, रही नाह मुख चाहि।-बिहारी (शब्द०)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश-वि० [अ० एहसान+फा० फरामोश] उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न। उ०-'अच्छा, मैं बेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बडे वफादार हो।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२३।

अहसानफरोश-वि० [अ० एहसान+फा० फरोश] उपकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को०]।

अहसानमद-वि० [अ० एहसान+फा० मद] कृतज्ञ। किए हुए को माननेवाला [को०]।

अहसानमंदी-सज्ञा स्त्री० [अ० एहसान+फा० मंदी] कृतज्ञता। उ०-'वह मदनमोहन की अहसानमदी के बहाने से हरवक्त वहाँ बना रहता था।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० २११।

अहस्कर-सज्ञा पुं० [स०] १ दिनकर। सूर्य। २ मदार [को०]।

अहस्त-वि० [स०] बिना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हो [को०]

अहस्पति-सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अहस्कर'।

अहह-अव्य० [स०] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ०-अहह तात दारुन हठ ठानी।-मानस, १।२५८।

अहा-अव्य० [स० अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशसा की सूचना के लिये होता है, जैसे-अहा! यह कैसा सुदर फूल है।

अहाता-सज्ञा पुं० [अ०] १ घेरा। होता। २ प्रकार। चारदीवारी।

अहान-सज्ञा पुं० [स० आह्वान] पुकार। शोर। चिल्लाहट। उ०-भइ अहान पदुमावति चली। छत्तिस कुलि मइ गोहन चली।-जायसी (शब्द०)।

अहार(पु)-सज्ञा पु० दे० 'आहार'। उ०-करहि अहार साक फल कदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानदा।-मानस, १।१४४।

अहारना(पु)-क्रि० सं० [स० आहरण = खाना या हिं० अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ०-तो हमरे आश्रम पगु धारो। निज रुचि के फल विपुल अहारो।-रघुराज० (शब्द०)। २ चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३ कपडे मे माँडी देना। ४ दे० 'अहरना'।

अहारी(पु)-वि० दे० 'आहारी'। उ०-जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी।-मानस, ६।३९।

अहार्य-वि० [स०] १ जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ०-अहार्य शोभा।

अहाहा-अव्य० [सं० अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिंसक-वि० [स०] १ जो हिंसा न करे। जो किसी का घात न करे। २ जो किसी को दुख न दे। जिससे किसी को पीडा न पहुँचे।

अहिंसा-सज्ञा स्त्री० [स०] १ साधारण धर्मों मे से एक। किसी को दुख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के यमो में पहला। मन, वाणी और कर्म मे किसी प्रकार किसी को

मे किसी प्राणी को दुख या पीडा न पहुँचाना। ३ बौद्ध-शास्त्रानुसार त्रस और स्थावर को दुख न देना। ४ जैन-शास्त्रानुसार प्रमाद से भी त्रस और स्थावर को किसी काल मे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की विधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना।६ कटकपाली या हैम नाम की घास। ७ सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी—वि० [सं० अहिंसावादिन्] अहिंसा का सिद्धांत माननेवाला [को०]।

अहिंस्र[1]—वि० [सं०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस्र[2]—सज्ञा पु० १ एक प्रकार का पौधा। २ नुकसान न पहुँचानेवाला व्यवहार [को०]।

अहि—सज्ञा पु० [स०] १ साँप। २ राहु। ३ वृत्रासुर। ४ खल। वचक। ५ आश्लेषा नक्षत्र। ६ पृथिवी। ७ सूर्य। ८ पथिक। ९ सीसा। १० मात्रिक गण म ठगण अर्थात् छह मात्राओं के समूह का छठा भेद जिसमे क्रम से लघु गुरु गुरु लघु ' । ऽऽ । ' मात्राएँ होती हैं, जैसे—दयासिंधु। ११ इकतीस अक्षरो के वृत्त का एक भेद जिसमे पहले छह मगण और अत मे मगण होता है, जैसे—मोर मनय हरि गेंद जो खेलत नग सग्ग यमुना तीरा। गेंद गिरी यमुना दह मे झटि कूदि परे धरि के धीरा। ग्वाल पुकार करी तब नद यशोमति रोवति ही धाए। दाऊ रहे समुझाय इतै अहि नाथि उतै दह मे आए।—(शब्द०)। १२ नाभि [को०]। १३ बादल [को०]। १४ जल [को०]

अहिक[1]—सज्ञा पु० [स०] १ अजा गौ। २ ध्रुव तारा [को०]।

अहिक[2]—वि० [स] स्थित रहनेवाला (यह सख्यावाचक शब्द के अत मे लगकर उतने दिनो का बोध कराता है) [को०]।

अहिकात—सज्ञा पु० [स० अहिकान्त] पवन। वायु [को०]।

अहिका—सज्ञा स्त्री० [स०] सेमल का वृक्ष।

अहिकोप—सज्ञा पु० [स०] १ निर्मोक। साँप की केंचुल। २ छद-विशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—सज्ञा पु० [स०] १ दक्षिण पाचाल की राजधानी। २ प्राचीन दक्षिण पाचाल। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कपिल से चबल तक था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा मे दिया था।

अहिगण—सज्ञा पु० [स०] पाँच मात्राओं के गण—ठगण का सातवाँ भेद जिसमे एक गुरु और तीन लघु होते हैं (ऽ।।।), जैसे—पापहर।

अहिचक्र—सज्ञा पु० [स०] तात्रिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—सज्ञा पु० [स०] १ प्राचीन दक्षिण पाचाल। यह देश अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा मे दिया था। २ दक्षिण पाचाल की राजधानी। ३ मेढासींगी।

अहिच्छत्रक—सज्ञा पु० [स०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अहिच्छत्र नामक देश की राजधानी। २ शकर। ३ मेषशृगी। मेढासिंगी [को०]।

अहिजित्—सज्ञा पु० [स०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजिन—सज्ञा पुं० [सं० अहिजित्] १ रुद्र। २ क्रौंच।

अहिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] नागफनी।

अहिटा⑤†—सज्ञा पु० [अ० अहदी] वह व्यक्ति जो जमींदार की ओर से उस असामी को फसल काटने से रोकने के लिये बैठाया जाय जिसने लगान या देना न दिया हो। महना।

अहित[1]—वि० [स०] १ शत्रु। वैरी। विरोधी। २ हानिकारक। अनुपकारी। उ०—और अहित अमंगल मंछनि कथा बरनि न जाइ।—सूर० १। ५६।

अहित[2]—सज्ञा पुं० बुराई। अकल्याण। उ०—दुरबासा दुरजोधन पठयो पाडव अहित विचारी।—सूर०, १। १२२।

अहितकर—वि० [स०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [स० अहितकारिन्] दे० 'अहितकर'।

अहितुंडिक—सज्ञा पुं० [स० अहितुण्डिक] १ सँपेरा। साँप को वश मे करनेवाला। २ जादूगर [को०]।

अहिदेव—सज्ञा पुं० [स०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदैवत—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—सज्ञा पुं० [स० अहिद्विष्] १ रुद्र। २ नकुल। ३ मयूर। ४ गरुड। ५ क्रौंच [को०]।

अहिनकुलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सर्प और नेवले का स्वाभाविक वैर। २ सहज शत्रुता [को०]।

अहिनाथ—सज्ञा पुं० [स०] सर्पराज। शेषनाग [को०]।

अहिनामभृत्—सज्ञा पु० [स०] बलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह⑤—सज्ञा पुं० [स० अहिनाथ, प्रा० अहिनाह] शेषनाग। उ०—प्रभु विवाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू।—मानस, १।३६१।

अहिनिर्मोक—सज्ञा पु० [स०] साँप की केंचुल [को०]।

अहिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] नागिन। सर्पिणी। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दारुन जग अहिनी।—मानस, ३।११।

अहिप—सज्ञा पुं० [स०] शेषनाग। उ०—अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।—मानस, २।२५३।

अहिपति—सज्ञा पुं० [स०] १ वासुकि नाग। २ बड़े आकार का सर्प। ३ शेषनाग। उ०—महि सकल भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।—मानस, ५। ३५।

अहिपुत्रक—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार की सर्पाकृति नौका [को०]।

अहिपूतन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अहिपूतना] बच्चो को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमे बच्चो को पानी सा दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोछने से खुजली उठती और फोडे निकलते हैं।

अहिफेन—सज्ञा पुं० [स०] १ सर्प के मुँह की लार या फेन। २. अफीम।

अहिबुध्न—सज्ञा पु० [स०] १ एकादश रुद्रो मे से एक। २ शिव। ३ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र। ४ एक मरुत् का नाम [को०]।

अहिबेल⑤—सज्ञा स्त्री० [स० अहिवल्ली, प्रा० अहिवेली] नागबेलि।

पान। उ०—कनक कलित अहिवेलि बढाई। लखि नहिं परै सपरन सुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

अहिबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिबुध्न'।

अहिभय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपने ही पक्ष के विश्वासघात का भय। २ सर्प के काट खाने का भय।

अहिभयदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को भय देनेवाली। भूम्यामलकी। भुँइआँवला [को०]।

अहिभानु—वि० [सं०] सूर्य की गति का जो कारण हो।—जैसे, वायु। २ वायु का विशेषण। ३ साँप सा चमकनेवाला [को०]।

अहिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० अहिभुज्] १ मोर पक्षी। २ नेवला। ३ गरुड पक्षी। ४ गंधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पधारी शिव [को०]।

अहिम—वि० [सं० अ+हिम] जो शीतल न हो। उष्ण [को०]।

यौ०—अहिमकर, अहिमनेजा, अहिमदीधिति, अहिमद्युति, अहिमयूख, अहिमरश्मि, अहिमरुचि, अहिमरोचिष् = सूर्य।

अहिमर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिमाणु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहिमात—संज्ञा पुं० [सं० अहि = गति + मत् = युक्त अहिमान्] चाक में वह गढा जिसके बल चाक को कील पर रखते हैं।

अहिमाली—संज्ञा पुं० [सं० अहिमालिन्] सर्प की माला धारण करनेवाले शिव।

अहिमेध—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ।

अहिर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहीर'। उ०—अहिर जाति गोधन कौं मानै।—सूर०, १०।१६२५।

अहिराइ—संज्ञा पुं० [सं० अहिराज, प्रा० अहिराइ] सर्पराज। उ०—गर्व वचन कहि कहि मुख भाषत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ।—सूर०, १०।१५५५।

अहिरिन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहिर] अहिर की स्त्री। उ०—अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४।

अहिर्बुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ ११ रुद्रों में से एक। २ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिर्बुध्न हैं।

अहिर्बुध्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिर्बुध्न'।

अहिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

अहिला[1]—संज्ञा पुं० [सं० अभिप्लव, प्रा० अहिल्लो, हिं० होन, चहला = कीचड] १ पानी की बाढ। बूडा। २ गडबड। ३ दगा।

अहिलाद[1]—संज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०—कामी लज्या नाँ करै मन माँहि अहिलाद। नींद न माँगै साँथरा भूप न माँगै स्वाद।—कबीर ग्र०, पृ० ४१।

अहिलोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी [को०]।

अहिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक सर्प [को०]।

अहिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अहल्या] दे० 'अहल्या'।

अहिवर—संज्ञा पुं० [सं०] दोहे का एक भेद जिसके पाँव गुरु और शेष लघु होते हैं, जैसे—कनक बरण तन मृदुल अति कुसुम सरिस दरसाव। लखि हरि दूरहि थकि रहे बिसराई सब बाव।

अहिवल्ली—संज्ञा पुं० [सं०] पान। नागवल्ली।

अहिवात—संज्ञा पुं० [सं० अविधवात्व, प्रा० *अइहात ⓤअहिगत] [वि० अहिवातीन, अहिवाती] सौभाग्य। सोहाग। उ०—(क) राज करो चितउर गढ राखौ पिय अहिवात।—जायसी (शब्द०)। (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा।—तुलसी (शब्द०)।

अहिवातिन—वि० स्त्री० [हिं० अहिगत] सौभाग्यवती। सधवा।

अहिवाती—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सोहागिन।

अहिविषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली पौधा [को०]।

अहिसाव⓪—संज्ञा पुं० [सं० अहिशावक] साँप का बच्चा। पोआ। सँपोला।

अही—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी और आकाश [को०]।

अहीक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहीन[1]—वि० [सं०] १ जो हीन न हो। भ्रांतिवश जिसे हीन समझ लिया जाय। २ जो औरों से कम न हो। महान्। ३ दोषरहित। ४ पूरा। सम्पूर्ण। ५ जो जातिच्युत न हो [को०]।

अहीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष। २ लंबा साँप। ३ वासुकि [को०]।

अहीनगु—संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्यवंशी राजा। देवानीक का पुत्र।

अहीनवादी—वि० [सं० अहीनवादिन्] जो निरुत्तर न हुआ हो। जो वाद में न हारा हो।

अहीर—संज्ञा पुं० [सं० आभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक जाति जिसका काम गाय भैंस रखना और दूध बेचना है। ग्वाला। उ०—नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।—मानस, ७।११७।

अहीरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दो मुँहवाला साँप [को०]।

अहीरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

अहीरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहीर] ग्वालिन। अहीरिन।

अहीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँपों का राजा। शेषनाग २ शेष के अवतार लक्ष्मण और बलराम आदि।

अहीस⓪—संज्ञा पुं० [सं० अहीश] शेषनाग। उ०—दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।—तुलसी ग्र० पृ० २२०।

अहुँठ⓪—वि० [हिं०] साढे तीन। तीन और आधा।

अहुजी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकडों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहुटना⓪—क्रि० अ० [सं० अ+हठ, हिं० हटना] हटना। दूर होना। अलग होना। उ०—(क) विरह भयो घर अगन कोने। हम अबला अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। सूर बदन देखन हो अहुटै या शरीर को रोग।—सूर (शब्द०)। (ख) दुहुँ देखि दाटत हरन झाटत जाइ लपटत धाइ। फिरि फेरि अहुटत चलन, चुहुटत दुहुँ पुहटत आइ—सूदन (शब्द०)।

अहुटाना⓪—क्रि० स० [सं० अ+हठ हिं० हटाना] हटाना। दूर करना। अलग करना। भगाना। उ०—उमडि कितेकनु चोट चलाई। मुसिडिनि मारि दए अहुटाई।—सूदन (शब्द०)।

अहुठ(पु)--वि०[स० अर्धचतुर्थ प्रा० *अद्धअउत्थ *अद्धउट्ठ] अर्धयुष्ठ अद्धुट्ठ] साढे तीन। तीन और आधा। उ०--(क) अहुठ हाथ तन-सरवर हिया कवल तेहि माँह--जायसी ग्र०, ओगाह। पृ० ५०। अहुठ पैर वसुधा सब कीन्ही धाम अवधि विरमावन।--सूर (शब्द०)। (ग) कबहुँक अहुठ परग करि वसुधा कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।--सूर (शब्द०)।

अहुत[1]--संज्ञा पुं० [स०] जप। ब्रह्मयज्ञ। वेद-पाठ। यह मनुस्मृति के अनुसार पाँच यज्ञो मे से है।

अहुत[2]--वि० १ बिना होम किया हुआ। २ अविहित ढग से हवन किया हुआ। ६ जिसे होमभाग या आहुति न मिली हो[को०]।

अहुर--संज्ञा पुं० [स०] जठराग्नि [को०]।

अहुरमज्द--संज्ञा पुं० [पह अहुरमज्द] पारसी धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता।

अहुँठा--वि० [हिं०] दे० 'अहुठ'।

अहुरनावहुरना(पु)--क्रि० अ० [देश०] आना जाना। आने जाने की क्रिया।

अहूठन--संज्ञा पुं० [स० स्थूण] जमीन मे गाडा हुआ काठ का कुदा जिसपर रखकर किसान गँडासे से चारा काटते हैं। ठीहा।

अहृदय--वि० [स०] १ हृदयहीन। अरसिक। २ खल्वुलहवास। झक्की [को०]।

अहृद्य वि० [स०] १ जो हृदयहारी न हो। अरुचिकर। २ जो बलकारक न हो, जैसे--औषध [को०]।

अहे[1]--संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड जिसकी भूरी लकडी मकानो मे लगती है तथा हल और गाडी आदि बनाने के काम मे आती है।

अहे[2]--अव्य (स०) १ दे० 'हे'। २ खेद, अलगाव या निंदा का वाचक [को०]।

अहेडमान--वि० [स०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०]।

अहेतु[1]--वि०(स०) १ बिना कारण का। बिना सबब का। निमित्त-रहित। २ व्यर्थ। फजूल।

अहेतु[2]--संज्ञा पु० एक काव्यालकार जिसमे कारणो के इकट्ठे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाय, जैसे--है सखा हूँ रागयुत दिवसहु समुख नित्त। होत समागम तदपि नहिं विधि गति अहो विचित्र।

अहेतुक--वि० [स०] दे० 'अहेतु'।

अहेतुसम--संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक। विशेष--यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उत्तर मे यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतु भूत, भविष्य या वर्तमान किसी काल मे हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम कहलाएगा।

अहेर--संज्ञा पु० [सं० आखेट, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १ शिकार। मृगया। २ वह जतु जिसका शिकार खेला जाय।

अहेरी[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहेर+ई (प्रत्य०)] शिकारी। आखेटक। उ०--चित्रकूट मनु अचल अहेरी। मानस, २।१३३।

अहेरी[2]--वि० शिकार खेलनेवाला। शिकारी। व्याधा।

अहेव--संज्ञा पु० [स०] महाशतावरी या शतमूली नामक पौधा[को०]।

अहै--क्रि० अ० [स० अस्ति, प्रा० अहइ > अहै] है। उ०--अहै कुमार मोर लघु भ्राता।--मानस, ३। ११।

अहो--अव्य०[स०]एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी सबोधन की तरह और कभी करुणा, खेद, प्रशसा, हर्ष और विस्मय सूचित करने के लिये होता है, जैसे, (सबोधन) जाहु सही, अहो जाहु चले हरि जात चले दिनही बनि बागे।-केशव (शब्द०)। (करुणा, खेद) अहो! कैसे दुख का समय है। (प्रशसा) अहो! धन्य तव जनम मुनीसा।--तुलसी (शब्द०)। (हर्ष) अहो भाग्य! आप आए तो। (विस्मय) दूनो दूनो बाढत सुपूनो की निसा मे, अहो आनँद अनूप रूप काहू ब्रज बाल को। पद्माकर (शब्द०)। कभी कभी केवल पादपूरणार्थक भी प्रयोग होता है। जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।--भारत०, पृ० ८५।

अहोई[1]--संज्ञा स्त्री०[हिं०]सतानप्राप्ति के लिये स्त्रियो द्वारा की जाने वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है।

अहोई[2]--वि० [स० अभाविन्, प्रा० *अहोई] न होनेवाली [को०]।

अहोनस(पु)--क्रि० वि० [स० अहर्निश] रात दिन।

अहोरत्न--संज्ञा पुं० [स०] सूर्य [को०]।

अहोरात्र--संज्ञा पु० [स०] दिनरात। दिन और रात्रि का नाम।

अहोरावहोरा[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहुरना+बहुरना] विवाह की एक रीति जिसमे दुलहन ससुराल में जाकर उसी दिन अपने पिता के घर लौट आती है। हेर-फेरी।

अहोरावहोरा[2]--क्रि० वि० बार बार। लौट लौटकर। उ०--शरद चद महँ खजन जोरी। फिरि फिरि लरहिं अहोर बहोरी।--जायसी (शब्द०)।

अह्‌द--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहद'।

अह्न--संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अह'। (समासात मे) जैसे-मध्याह्न [को०]।

अह्निज--वि० [स० अह्नि=सप्तमी रूप+ज] दिन मे होनेवाला [को०]।

अह्नि--वि० [स०] १ आरामतलब। स्थूल या मोटा। २ बुद्धिमान्। विद्वान्। कवि [को०]।

अह्नीय--वि० [स०] धृष्ट। ढीठ। निर्लज्ज। घमडी [को०]।

अह्री[1]--वि० [स०] निर्लज्ज [को०]।

अह्री[2]--संज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०]।

अह्रीक[1]--वि० [स०] निर्लज्ज। बेशर्म, जैसे--भिक्षुक [को०]।

अह्रीक[2]--संज्ञा पुं० बौद्ध भिक्षु [को०]।

अह्रुत--वि० [स०] १ जो टेढा न हो। अकुटिल। २ अकपित [को०]।

अह्ल--वि० [अ०] दे० 'अहल' [को०]।

अह्ल खाना--संज्ञा स्त्री० [अ० अह्ल+खानह्] पत्नी। भार्या। गृहस्वामिनी [को०]।

अह्ले कलम--संज्ञा पुं० [अ०] लेखक। ससिजीवी [को०]।

अह्ले वतन--संज्ञा पुं० [अ०] देशवासी। वतनवाले [को०]।

अह्लिया--संज्ञा स्त्री० [अ० अहलियह] पत्नी। भार्या। जोरू [को०]।

अह्लीयत--संज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता। पात्रता। निपुणता [को०]।

अह्लूल--संज्ञा स्त्री० [स०] १ दृढता। २ शिलाजीत। भल्लातक [को०]।

आ

आ—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।

आंकिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्किक] संख्याता। गणक। गणना करनेवाला।

आंकुशिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्कुशिक] अंकुश से आघात करनेवाला [को०]।

आंक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० आङ्क्षी] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

आंग[1]—वि० [सं० आङ्ग][वि० स्त्री० आंगी]१ अंग या शरीरसंबंधी। २ शब्द के आधार या अंग से संबंध रखनेवाला (व्या०)। ३ अंग या अवयवयुक्त या उससे संबंध रखनेवाला। ४ गौण या निम्न पात्रों से संबंध रखनेवाला (नाटच०)। ५ वेदों के अंग से संबंध रखनेवाला। ६ अंग देश में पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०]।

आंग[2]—संज्ञा पुं० १ अंग देश का राजकुमार। २ सुकुमार शरीर। ३ अंग। शरीर।

आंगक[1]—वि० [सं० आङ्गक][वि० आंगकी] अंग देश में उत्पन्न [को०]

आंगक[2]—संज्ञा पुं० १ अंग देश का निवासी व्यक्ति। २ अंग देश का शासक [को०]।

आंगदी—संज्ञा स्त्री० [सं०आङ्गदी] राजा अंगद की राजधानी [को०]।

आंगविद्य—वि० [सं० आङ्गविद्य] १. अंगविद्या संबंधी। २. अंगविद्या का जानकार या ज्ञानी [को०]।

आंगार—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गार] कोयले का ढेर या समूह [को०]।

आंगारिक—वि० [सं० आङ्गारिक] कोयला सुलगाने या जलानेवाला [को०]।

आंगिक[1]—वि० [सं० आङ्गिक] [स्त्री० आंगिकी] १ अंगसंबंधी। अंग का। २ अंग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे आंगिक अभिनय (नाटच०)।

आंगिक[2]—संज्ञा पुं० १ चित्त के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाव आदि। २ रस में कायिक अनुभाव। ३ नाटक में अभिनय के चार भेदों में से एक।

विशेष—चार भेद ये हैं—(क) आंगिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि। (ख) वाचिक = बातचीत आदि की नकल। (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना। (घ) सात्विक = स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य आदि की नकल।

यौ०—आंगिकाभिनय।

४ मृदंग या ढोल का वादक [को०]। ५ बाँहदार या बँहोलीदार पुरुषों का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था। अंगा [को०]।

आंगिरस[1]—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस] [वि० स्त्री० आंगिरसी] १ अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। २ अंगिरा के गोत्र का पुरुष। ३ अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अंगिरा थे।

आंगिरस[2]—वि० [सं० आङ्गिरस] १ अंगिरासंबंधी। अंगिरा का। २ अंगिरा से उत्पन्न [को०]।

आंगिरस सत्र—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस + सत्र] यज्ञविशेष। बृहस्पति-सत्र [को०]

आंगूप—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गूप] स्तुति। ऋचा। स्तोत्र [को०]।

आंग्ल—वि० [अं० ऐंग्लो] अँगरेजों से संबंधित। अँगरेजी।

आंचन—संज्ञा पुं० [सं० आञ्चन] काँटा, बाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर से बाहर निकालना [को०]।

आंचलिक—वि० [सं०अञ्चल] अंचल या स्थानविशेष का।

आंचलिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० आञ्चलिक + ता (प्रत्य०)] क्षेत्र विशेष से संबंध रखनेवाली स्थिति।

आंछन—संज्ञा पुं० [सं०आञ्छन] टूटी हुई हड्डी बैठाना। उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०]।

आंजन[1]—वि० [सं०आञ्जन] १ अंजनसंबंधी या अंजनयुक्त। २ स्थूल। मोटा [को०]।

आंजन[2]—संज्ञा पुं० १ आँख का अंजन। २ अंजना के पुत्र हनूमान्। मारुति।

आंजनिक्य—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जनिक्य] आँख का अंजन बनाने में काम आनेवाली चीज [को०]।

आंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनी] १ आँख का अंजन। २ अंजन की डिबिया [को०]।

आंजनीकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनीकारी] अंजन तैयार करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०]।

आंजनेय—संज्ञा पुं० [सं०आञ्जनेय] अंजना के पुत्र हनूमान्। उ०—आंजनेय को अधिक कृती उन कार्तिकेय में भी लेखो।—साकेत, पृ० ३८२।

आंजनिक—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जनिक] एक प्रकार का अर्धचंद्राकार बाण [को०]।

आंजलिक्य—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक्य] नम्रता से अंजलि या हाथ जोड़ना [को०]।

आंजल्यक—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जल्यक] करबद्ध होना। हाथ जोड़ना [को०]।

आंजस—वि० [सं० आञ्जस] [वि० स्त्री० आंजसी] सद्यस्क। तात्कालिक। क्रमिक [को०]।

आंजिनेय—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जिनेय] १ एक प्रकार की छिपकली [को०]।

आंड[1]—वि० [सं० आण्ड] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंड[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ। २ अंडों का ढेर। ३ अंडकोश [को०]।

आंडज[1]—वि० [सं० आण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंडज[2]—संज्ञा पुं० १ पक्षी। २ पक्षी का शरीर। ३ सर्प [को०]।

आंडिक, आंडीक—वि० [सं० आण्डिक, आण्डीकडक] अंडयुक्त [को०]।

आंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० आण्डी] अंडकोष [को०]।

आडीर–वि० [स० आण्डीर] १ बहुत अडोवाला। २ लवान। प्रौढ़ (जैसे, बैल) [को०]।

आंत—वि० [स० आन्त] [वि० स्त्री० आती] अंतिम [को०]।

आतर[1]—वि० [स० आन्तर] छिपा हुआ। भीतरी। गुप्त। उ०—इसके बाह्य और आतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असगत है।—जय० प्र०, पृ० ३८।

आतर[2]—सज्ञा पुं० १ भीतरी स्वभाव। अंत प्रकृति। २ जिगरी दोस्त। ३ हृदय [को०]।

आत पुरिक[1]—वि० [स० आन्त पुरिक] अंत पुरसंबंधी [को०]।

आत पुरिक[2]—सज्ञा पु० अंत पुर की वार्ता या कार्य [को०]।

आतरज्ञ—वि० [स० आन्तरज्ञ] आंतरिक या गुह्य तत्व को जाननेवाला [को०]।

आतरतम्य–सज्ञा पु० [स० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट संबंध, जैसे दो अक्षरो का [को०]।

आतर प्रपच—सज्ञा पुं० [स० आन्तर+प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०]।

आतरागारिक–वि० [स० आन्तरागारिक] भाडार या भाडागारिक के कर्तव्यो से संबंध रखनेवाला [को०]।

आतरायिक—वि० [सं० आन्तरायिक] १ अंतर से उपस्थित होनेवाला। २ समय समय पर उद्धृत [को०]।

आतराल[1]—वि० [स० आन्तराल] अंतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०]।

आतराल[2]—सज्ञा पुं० [स० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय।

आतरिक वि० [स० आन्तर+इक (प्रत्य०)] १. आंतर या हृदयसंबंधी। उ०—जब एक व्यक्ति अपने आंतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियो को केंद्रीभूत करता है।—मुंशी अभि० ग्र०, पृ० ४७। २ घरेलू। भीतरी। उ०—नद आंतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था।—चद्र०, पृ० ३२।

आंतरिकता—सज्ञा स्त्री० [स० आंतरिक+ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता। आत्मीयता। उ०—वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आंतरिकता भी बढ़ गई।—भस्मावृत०, पृ० १०।

आतरिक्ष[1] वि० [स० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आंतरिक्षी] १ अंतरिक्ष संबंधी। २ अंतरिक्ष मे उत्पन्न [को०]।

आतरिक्ष[2]—सज्ञा पु० १ पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान। २ वर्षा का जल [को०]।

आतरीक्ष—वि०, सज्ञा पुं० [सं० आन्तरीक्ष] दे० 'आंतरिक्ष' [को०]।

आतरीय—वि० [सं० आन्तर+ईय (प्रत्य०)] आंतरिक। भीतरी। हार्दिक। उ०— यदि आंतरीय कष्ट न हो तो भी।—प्रेम घन०, भा० २, पृ० १६०।

आतर्गेहिक—वि० [स० आन्तर्गेहिक] [वि० स्त्री० आंतर्गेहिकी] घर के भीतर का। घर के भीतर उत्पन्न [को०]।

आतर्वेदिक—वि० [स० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०]।

आतर्वेशिक—सज्ञा पुं० [स० आन्तर्वेशिक] दे० 'अंतर्वेशिक'। उ०—आतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अंत पुर में आई हैं।—इरा०, पृ० ४७।

आतर्वेश्मिक–वि० [सं० आन्तर्वेश्मिक] घर के अदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०]।

आतिका—सज्ञा स्त्री० [स० आन्तिका] बडी बहन [को०]।

आत्र[1]—वि० [स० आन्त्र] आंत का। आंत संबंधी [को०]।

आत्र[2]—सज्ञा पुं० आंत [को०]।

आत्रिक—वि० [सं० आन्त्रिक] आंत संबंधी [को०]।

आंदोल—सज्ञा पुं० [सं० आन्दोल] १ हिलना डुलना। झूलना। २ काँपना। कंपन [को०]।

आदोलक—सज्ञा पुं० [स० आन्दोलक] झूला।

आदोलन—सज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] १ बार बार हिलना डुलना। इधर से उधर हिलना। काँपना। झूलना। उ०—आलोक रश्मि से बुने उषा अचल में आदोलन अमद।—कामायनी, पृ० १६८। २ उथल पुथल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न। हलचल। धूम, जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आदोलन हो रहा है। उ०—इसके पीछे तो खडी बोली के लिये एक आदोलन ही खडा हुआ।—इतिहास०, पृ० ५०६।

आदोलित–वि० [सं० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आदोलिता] हिलता डुलता हुआ झोके खाता हुआ। उ०—इन कवियो के मन मे एक आँधी उठ रही थी जिसमे आदोलित होते हुए वे उडे जा रहे थे।—इतिहास०, पृ० ६५०। २. कंपनयुक्त। हलचल से भरा।

आधस—सज्ञा पु० [स० आन्धस] मड। माड [को०]।

आधसिक[1]–सज्ञा पुं० [स० आन्धसिक] पाचक। पाककार। रसोइया [को०]।

आधसिक[2]—वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०]।

आध्य—वि० [स० आन्ध्य] १ अधता। अधापन। २ अधकार [को०]।

आध्र[1]—सज्ञा पुं० [स० आन्ध्र] १ ताप्ती नदी के किनारे का देश। २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य।

आध्र[2]—वि० आध्र देश का निवासी।

आब—सज्ञा पुं० [सं० आम्ब] अन्न का एक प्रकार या भेद [को०]।

आवष्ठ–सज्ञा पुं० [स० आम्बष्ठ] अंबष्ठ देश का निवासी व्यक्ति [को०]।

आविकेय—सज्ञा पुं० [स० आम्बिकेय] अंबिका का पुत्र। १ धृतराष्ट्र। २ कार्तिकेय [को०]।

आवुद—वि० [स० आम्बुद] अबुद या बादल संबंधी [को०]।

आभस—वि० [स० आम्भस] [वि० स्त्री० आभसी] १ जल संबंधी। २ द्रव। तरल [को०]।

आभसिक[1]–वि० [स० आम्भसिक] जल मे रहनेवाला। जलचर [को०]।

आभसिक[2]—सज्ञा पुं० मछली [को०]।

आभसी—सज्ञा स्त्री० [स० आम्भसी] घेरड संहिता में वर्णित पाँच धारणामुद्राओ मे से एक। जलचरी मुद्रा।

आशिक—वि० [सं०] अशसंबंधी। अश विषयक। कुछ। थोडा।

आशुक जल—सज्ञा पुं० [सं०] किरण दिखाया हुआ पानी। वह जल जो एक तावे के बर्तन मे रखकर दिन भर धूप मे और रात

भर चाँदनी या ओस में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक मे इसका बडा गुण लिखा है।

आशय—वि० [सं०] अश से सबध रखनेवाला [को०]।

आँ—अव्य० [अनुव०] १ विस्मयसूचक शब्द, जैसे,—आँ, क्या कहा? फिर तो कहो। २ बालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

आँक[1]—सज्ञा पुं० [सं० अंक] १ अक। चिह्न। निशान। २ सख्या का चिह्न। अदद। उ०—(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सूने पर सून से मनो मिटाए आँक के।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१८। (ख) कहत सबै बेंदी दिये आँक दस गुनो होत।—बिहारी र०, दो० २२७। ३ अक्षर। हरफ। उ०—(क) विरह तचै उघरयो सु अब सेंहुड कैसो आँकु।—बिहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहैं आँक चारि ही मे अर्थ विस्तारि कविराज टकसार है।—प्रिया० (शब्द०)। ४. गढी हुई बात। ५ दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धात। उ०—जाउँ राम पहिं आएसु देहू। एकहि आँक मोर मन एहू।—मानस, २।१७८। (ख) एकहि आँक इहइ मन माही। प्राप्त काल चलिहौं प्रभु पाहीं।—मानस, २।१८३। ६ अश। हिस्सा। उ०—काम-सकल्प डर निरखि बहु बामनहिं आस नहिं एकहू आँक निरवान की।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३। ७. किसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वश, जैसे, वे बडे कुलीन हैं, वे अमुक आँक के हैं। ८ अँकवार। गोद। उ०—पीछे ते गहि लाँकरी, गही आँक री फेरि।—सं० सप्तक, पृ० २४३।

मुहा०—आँक भरना=आलिंगन करना। उ०—छीतस्वामी गिरिवरधर मगन भए आँकौं भरत, सुख स्वाद इहै, समै को कहत न बनि आवै।—छीत०, पृ० ४१।

९ भाग्य। उ०—एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिए दिन जैहैं।—घनानद (भू०) पृ० ५३। १० शान। उ०—कठिन काठियावाड चुटीले के परिपोखे, चचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११ अँकुर। उ०—जाम्यो आँक अकार नेह दिन दिन बढत करम सदेह।—भीखा श०, पृ० ४७। १२ नौ मात्रा के छगो की सख्या। अक। १३ छकडे या बैलगाडियो की बलियो के नीचे दिया हुआ लकडी का मजबूत ढाँचा जिसमे धुरी पहिए मे पहनाई जाती है।

आँक[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—जितवा है बिन जिव मे सुनता है बिन कान। देखता है बिन आँक मे, कादर बिन तन जान।—दखिनी०, पृ० ३८५।

आँकडा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अक, हिं० आँक+डा (प्रत्य०)] १ आँक। अदद। सख्या का चिह्न। उ०—जनसख्या से सबधित समस्त आँकडे जनगणना १९५१ पर आधारित है।—शुक्ल अभि० ग्र०, (विविध) पृ० २।

आँकडा[2]†—सज्ञा पुं० [देश०] चौपायो की एक बीमारी।

आँकडा[3]†—सज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आँक+डा (प्रत्य०)] मदार। आँक।

आँकनी†—सज्ञा पुं० [स० अ+कण=दाना] ज्वार की बाल की खुडी जिसमे से दाना निकाल लिया गया हो।

आँकना—क्रि० स० [सं० अकन] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०—खिन खिन जीव सँडासन आँका। औ नित डोम छुआवहि बाँका।—जायसी (शब्द०)। २ कूतना। अदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०—सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य मे पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड रुपए आँका गया है।—शुक्ल अभि० ग्र०, (विविध), पृ० १७। ३ अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०—आम को कहत आमली है आमली को आम आक ही अनारन को आँकिबो करति है।—पद्माकर, ग्र० पृ० २१८।

आँकबाँक—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक बाक'। उ०—जैसें कछु आँक बाँक बकत हैं। आजु हटि, तैसें जिन नाउँ मुख काइ को निकसि जाइ।—केशव ग्र०, पृ० ५३१।

आँकम†—सज्ञा पुं० [सं० अंक] आलिंगन। उ०—बाहु बलय आँकम भरे भाग, आपन आइति नहि आपम आँग।—विद्यापति, पृ० २०७।

आँकर[1]—वि० [सं० आकर=खान, जो गहरी होती है] १ गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष—जोताई दो तरह की होती है—एक आँकर अर्थात् खूब गहरी (अँवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२ बहुत अधिक। उ०—मोहमद मात्यो रात्यो कुमति कुनारि सो बिसारि वेद लोक लाज आँकरो अचेतु है।—तुलसी (शब्द०)।

आँकर[2]—वि० [स० अकव्य] महँगा।

आँकल—सज्ञा पुं० [सं० अक, हिं० आँक=दाग] दागा हुआ साँड।—(डिं०)।

आँकुडा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आँकडा'।

आँकुर—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकुर'। उ०—दुहुक आसा दीप मिझाएल, मदन आँकुर माँगु।—विद्यापति, पृ० ३७।

आँकुस†—सज्ञा पु० [सं० अङ्कुश] दे० 'अकुश'। उ०—जोवन अस मैमत न कोई, नवै हस्ति जौ आँकुस होई।—जायसी ग्र०, पृ० ७४।

आँकू—वि० [सं० अक, हिं० आँक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूतनेवाला। तखमीना करनेवाला।

आँख[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, प० अँक्ख] देखने की इद्रिय। वह इद्रिय जिससे प्राणियो को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

विशेष—मनुष्य के शरीर मे यह एक ऐसी इद्रिय है, जिसपर आलोक के द्वारा पदार्थों का विभिन्न ज्ञान जाता है। जो जीव आरोह नियमानुसार अधिक उन्नत हैं, उनकी इद्रियो की बनावट अधिक पेचीदी और जटिल होती है पर क्षुद्र जीवो मे इनकी बनावट बहुत मामूली, कहीं कहीं तो एक बिंदी के रूप मे होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बरौनी इत्यादि बखेडा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवो मे चक्षुर्बिंदु [illegible] सख्या नियत नही होती। शरीर के किसी चार, छः बिंदियाँ सी होती हैं जिनसे

मकड़ियों की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं।। रीढ़वाले जीवों की आँखें खोपड़े के नीचे गड्ढों में बड़ी रक्षा के साथ बैठाई रहती हैं और उनपर पलक और बरौनी आदि का आवरण रहता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगों में इतने भेद नहीं कर सकते थे। आँख बाहर से लंबाई लिए हुए गोल तथा दोनों किनारों पर नुकीली दिखाई पड़ती है। सामने जो सफेद काँच की सी झिल्ली दिखाई पड़ती है उसके पीछे एक और झिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इसके भीतर उसी से लगा हुआ एक उन्नतोदर काँच के सदृश पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतंतुओं पर कंप वा प्रभाव डालता है।

पर्या०—लोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अवक। विलोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षु।

यौ०— **उनींदी आँख**=नींद से भरी आँख। वह आँख जिसमें नींद आने के लक्षण दिखाई पड़ते हों। **कजी आँख**=नीली और भूरी आँख। बिल्ली की सी आँख। **कँटीली आँख**=घायल करनेवाली आँख। मोहित करनेवाली आँख। **गिलाफी आँख**=पपोटों से ढकी हुई आँख, जैसे कबूतर की। **चंचल आँख**=यौवन के उमंग के कारण स्थिर न रखनेवाली आँख। **चरबांक आँख**=चंचल आँख। **चिर्री सी आँख**=बहुत छोटी आँख। **चोर आँख**=(१) वह आँख जिसमें सुरमा या काजल मालूम न हो। (२) वह आँख जो लोगों पर इस तरह पड़े कि मालूम न हो। **धँसी आँख**=भीतर की ओर धँसी हुई आँख। **मतवाली आँख**=मद में भरी आँख। **मदभरी आँख, रसभरी आँख**=वह आँख जिसमें मद टपकता हो। **रसीली आँख, शरबती आँख**=गुलाबी आँख।

मुहा०—**आँख**=(१) ध्यान। लक्ष्य। जैसे, उनकी आँख बुराई ही पर रहती है। (२) विचार। विवेक परख। शिनाख्त। जैसे—(क) उसके आँख नहीं है, वह क्या सौदा लेगा। (ख) राजा के आँख नहीं कान होता है। (३) कृपादृष्टि। दया भाव, जैसे,—अब तुम्हारी वह आँख नहीं रही। (४) संतति। संतान। लड़का बाला, जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँख छोड़ गई। (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं। (अर्थात् जब एक लड़का मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरज धरते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।) (ग) मेरे लिये तो दोनों आँखें बराबर हैं। **आँख आना**=आँख में लाली, पीड़ा और सूजन होना। **आँख उठना**=आँख आना। आँख में लाली और पीड़ा होना। **आँख उठाना**=ताकना। देखना। सामने नजर करना। जैसे—आँख उठाई तो चारों ओर मैदान देख पड़ा। (—) बुरी नजर से देखना। बुरा बर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है? **आँख उठाकर न देखना**=(१) ध्यान न देना। तिरस्कार करना, जैसे—(क) मैं उनके पास घंटों बैठा रहा पर उन्होंने आँख उठाकर भी नहीं देखा। (ख) ऐसी चीजों को तो हम आँख उठाकर भी नहीं देखते। (२) सामने न ताकना। लज्जा या संकोच से बराबर दृष्टि न करना, जैसे—वह कहता तो आँख ही ऊपर नहीं उठाता, हम समझ गये। **आँख उलट जाना**=(१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना। आँख पथराना (यह मरने के समय होता है), जैसे,—आँखें उलट गईं, अब क्या आशा है। (२) घमंड से नजर बदल जाना। अभिमान होना, जैसे—इतने ही धन में तुम्हारी आँख उलट गई है। **आँख ऊँची न होना**=लज्जा से बराबर ताकने का साहस न होना। लज्जा से दृष्टि नीची रहना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख हमारे सामने ऊँची नहीं हुई। **आँख ऊपर न उठाना**=(१) लज्जा या भय से नजर ऊपर की ओर न करना। दृष्टि नीची रखना। **आँख ओट, पहाड़ ओट**=(१) निःसंकोच होना। (२) जब आँख के सामने नहीं, तब क्या दूर, क्या नजदीक। **आँख कड़ आना**=अधिक तापने या जागने से एक प्रकार की पीड़ा होना। **आँख का अंधा, गाँठ का पूरा**=मूर्ख धनवान। अनाड़ी मालदार। वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो, जैसे—(क) हे भगवान् भेजो कोई आँख का अंधा गाँठ का पूरा। (ख) जो आँख का अंधा होगा, वही यह सड़ा कपड़ा लेगा। **आँख का काँटा होना**=(१) खटकना। पीड़ा देना। (कष्टक होना। बाधक होना। शत्रु होना, जैसे,—उसी के मारे तो हमारी कुछ चलने नहीं पाती, वही तो हमारी आँख का काँटा हो रहा है। **आँख का काजल चुराना**=गहरी चोरी करना। बड़ी सफाई के साथ चोरी करना। **आँख का जाना**=आँख फूटना, जैसे,—उसकी आँख जंगल में जाती रही। **आँख का जाला**=आँख की पुतली पर एक सफेद झिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देता है। **आँख का डेला**=आँख का गट्टा। आँख का वह उभड़ा हुआ सफेद भाग जिसपर पुतली रहती है। **आँख का तारा**=(१) आँख का तिल। कनीनिका। (२) बहुत प्यारा व्यक्ति। (३) संतति। **आँख का तिल**=आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काला धब्बा जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। यह यथार्थ में एक छेद है जिसमें आँख के भीतर पिछले परदे का काला रंग दिखाई पड़ता है। आँख का तारा। कनीनिका। **आँख का तेल निकालना**=आँख को कष्ट देना। ऐसा महीन काम करना जिसमें आँखों पर बहुत जोर पड़े, जैसे सीना पिरोना, लिखना, पढ़ना आदि। उ०—क्यों न यों देंगे आँख का तिल वे, आँख का तेल जो निकालेंगे।—चोखे०, पृ० १७। **आँख कान खुला रहना**=सचेत रहना। सावधान होना। होशियार रहना। **आँख का परदा**=आँख के भीतर की झिल्ली जिसमें होकर प्रकाश जाता है। **आँख का पर्दा हटना**=ज्ञानचक्षु का खुलना। अज्ञान या भ्रम का दूर होना। चेत होना, जैसे—उसकी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातों पर विश्वास न करेगा। **आँख पर पर्दा पड़ना**=कुछ सुझाई न पड़ना। मोहग्रस्त होना। **आँख का पानी ढल जाना**=लज्जा छूट जाना। लाज शर्म का जाता रहना, जैसे,—जिसकी आँख का पानी ढल गया है, वह चाहे जो कर डाले। **आँख का पानी मरना**=दे० 'आँख का पानी ढलना'। **आँख की किरकिरी**=आँख का काँटा।

चक्षुगोलक। खटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति। **आँखो की ठंडक**=अत्यंत प्यारा व्यक्ति या वस्तु। **आँख की पुतली**=आँख के भीतर कार्निया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी झिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोल काट से होकर दिखाई पड़ता है। इसी के बीच में वह तिल या कृष्णतारा दिखाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब झलकता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिंब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं। (२) प्रिय व्यक्ति। प्यारा मनुष्य। जैसे,—वह हमारी आँख की पुतली है, उसे हम पास से जाने न देंगे। **आँख की पुतली फिरना**=आँख की पुतली का चढ़ जाना। पुतली का स्थान बदलना। आँख का पथराना (यह मरने का पूर्व लक्षण है)। **आँख की बदौलत**=किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई बंधु के सामने ही कहना। **आँख की सूइयाँ निकालना**=किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष अल्प और सरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना, जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुरुस्त किया, अब तुम आए हो आँखों की सूइयाँ निकालने।

विशेष—इस मुहाविरे पर एक कहानी है। एक राजकन्या का विवाह वन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूइयाँ चुभी हुई थीं। राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी। उसकी एक लौंडी भी साथ थी जो यह देखा करती थी। एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई। लौंडी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल आँखों की बाकी हैं। उसने आँखों की सूइयाँ निकाल डालीं और वह मृतक जी उठा। उस लौंडी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया, और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लौंडी कहा। बहुत दिनों तक वह लौंडी इस प्रकार रानी बनकर रही। पर पीछे से सब बातें खुल गईं और राजकन्या के दिन फिरे।

आँखो के आगे अँधेरा छाना=मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। **आँखों के आगे अँधेरा होना**=संसार सूना दिखाई देना। विपत्ति या दुःख के समय घोर नैराश्य होना। जैसे,—लड़के के मरते ही उनकी आँखों के आगे अँधेरा हो गया। **आँखो के आगे उजाला होना**=प्रकाश होना। ज्ञान होना। **आँखो में चमक आना**=प्रसन्न होना। **आँखो के आगे चिनगारी छूटना**=आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चकाचौंध सी लगना। **आँखो के आगे नाचना**=दे० 'आँखो में नाचना'। **आँखो के आगे पलकों की बुराई**=किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उसकी निंदा करना। जैसे—नहीं जानते थे कि आँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, सब बातें खुल जायँगी? **आँखो के आगे फिरना**=दे० 'आँखो में फिरना'। **आँखो के आगे रखना**=आँखो के सामने रखना। **आँखो के कोए**=आँखो के डेले। **आँखो के डेले**=आँखो के सफेद डेलो पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें। **आँखो के तारे छूटना**=दे० 'आँखो के आगे चिनगारी छूटना'। **आँखो के सामने नाचना**=दे० 'आँखो में नाचना'। **आँखो के सामने रखना**=निकट रखना। पास से जाने न देना। जैसे,—हम तो लड़के को आँखो के सामने ही रखना चाहते हैं। **आँखो के सामने होना**=समुख होना। आगे आना। **आँखो से बैठना**=आँखो को खो देना। अंधा होना, जैसे, यदि यही रोना धोना रहा तो आँखों से रो बैठोगी (स्त्री०)। **आँख खटकना**=(१) आँख टीसना। आँख किरकिराना। उ०—कुमकुम मारो गुलाल, नद जू के कृष्णलाल, जा कहूँगी कमराज से आँख खटक मोरी भई है लाल।—हो (शब्द०)। (२) किसी से मनमुटाव होना। **आँख खुलना**=(१) पलक खुलना। परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों का अलग हो जाना, जैसे,—(क) बच्चे की आँखें धो डालो खुल जायँ।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी आँखें न खोली। (२) नींद टूटना, जैसे,—तुम्हारी आहट पाते ही मेरी आँखें खुल गईं। (३) चेत होना। ज्ञान होना। भ्रम दूर होना, जैसे,—पश्चिमीय शिक्षा से भारतवासियों की आँख खुल गई। (४) चित्त स्वस्थ होना। ताजगी आना। हवास-दुरुस्त होना। तबियत ठिकाने आना। जैसे,—शरबत के पीते ही आँखें खुल गईं। **आँख खुलवाना**=(१) आँख बनवाना। (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति। दुलहिन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उसमें एक दूसरे का मुँह देखते हैं। **आँख खोलना**=(१) जगाना। उठाना। ताकना। (२) आँख बनाना। आँख का जाला या मोंड़ा निकालना। आँख को दुरुस्त करना, जैसे,—डाक्टर यहाँ बहुत से अंधों की आँखें खोली। (३) चेताना। सावधान करना। ज्ञान का संचार करना। वास्तविक बोध करना, जैसे—उस महात्मा ने सदुपदेश से हमारी आँखें खोल दी। (४) ज्ञान का अनुभव करना। वाकिफ होना। सावधान होना। उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला झूठे मित्र गिनावे आँख खोल जब देख बावरे! सब सपना कर पावे।—कबीर (शब्द०)। (५) सुधि होना। स्वस्थ होना, जैसे—चार दिन पर आज बच्चे ने आँख खोली है। **आँख गड़ना**=(१) आँख किरकिराना। आँख दुखना, जैसे—हमारी आँख कई दिनों से गड़ रही है, आवेगी क्या? (२) आँख धँसना। आँख बैठना, जैसे,—उसकी गड़ी गड़ी आँखें देखकर उसे पहचान लेना। (३) दृष्टि जमना। टकटकी बँधना जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी आँखें इतनी देर से गड़ हुई हैं। (ख) उसकी आँखें तो सिनेमा में गड़ी हुई हैं, उन्हें इधर उधर की क्या खबर। (४) बड़ी चाह होना। प्राप्ति की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख गड़ती है, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ते। **आँख गड़ना**=(१) टकटकी बाँधना। स्तब्ध दृष्टि से ताकना। (२) नजर रखना। चाहना। प्राप्ति की इच्छा करना। जैसे,—अब तुम इसपर आँख गड़ाए हो, काहे को बचेगी। **आँखें चुलना**=चार आँखें होना। घूर घूरापूरी होना। दृष्टि से दृष्टि मिलना, जैसे, घड़ी से घूर आँखें घुन रही हैं। **आँखें**

चढ़ना = नशे, नींद या सिर की पीड़ा से पलकों का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। आँखों का लाल होना, जैसे—देखते नहीं उसकी आँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। आँख चमकाना = आँखों से तरह तरह के इशारे करना। आँख की पुतली इधर उधर घुमाना। आँख मटकाना। आँख चरने जाना = दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तुम्हारी आँख क्या चरने गई थी जो सामने से चीज उठ गई। आँख चार करना, चार आँखें करना = देखादेखी करना। सामने आना, जैसे,—जिस दिन से मैंने खरी खरी सुनाई, वे मुझसे चार आँखें नहीं करते। आँखें चार होना, चार आँखें होना = (१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे,—आँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे,—हम तो अपढ़ हैं, पर तुम्हें तो चार आँखें है, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। आँख चीर चीर कर देखना = दे० 'आँख फाड़ फाड़ कर देखना'। आँख चुराना = नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उस दिन से रुपया ले गया है, आँख चुराता फिरता है। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) रुखाई करना। ध्यान न देना, जैसे—अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से आँख चुराते हैं। आँख चुराकर कुछ करना = छिपकर कोई काम करना। आँख चूकना = नजर चूकना। दृष्टि हट जाना। असावधानी होना, जैसे,—आँख चूकी कि माल यारों का। आँख छत से लगना = (१) आँख ऊपर को चढ़ना। आँख टँगना। स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुली रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बँधना। आँख छिपाना = (१) नजर बचाना। कतराना। टाल-मटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। ध्यान न देना। आँख जमना = नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना, जैसे,—पहिया इतनी जल्दी जल्दी घूमता है कि उसपर आँख नहीं जमती। आँख झपकना (१) आँख बंद होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। झपकी लगना, जैसे,—आँख झपकी ही थी कि तुमने जगा दिया। आँख झपकाना = आँख मारना। इशारा करना। आँख झँपना = दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे,—सामने आते ही आँख झँपती है। आँख टँगना = (१) आँख ऊपर को चढ़ जाना। आँख की पुतली का स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुला रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बँधना, जैसे,—तुम्हारे आसरे में हमारी आँखें टँगी रह गईं, पर तुम न आए। आँख टेढ़ी करना = (१) भौं टेढ़ी करना। रोष दिखाना। (२) आँखें बदलना। रुखाई करना। बेमुरौवती करना। आँखें ठंढी होना = तृप्ति होना। संतोष होना। मन भरना। इच्छा पूरी होना, जैसे,—अब तो उसने मार खाई, तुम्हारी आँखें ठंढी हुईं? आँखें डबडबाना = (१) (क्रि० अ०) आँखों में आँसू भर आना। आँखों में आँसू आना, जैसे,—यह सुनते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। (२) (क्रि० स०) आँखों में आँसू लाना। आँसू भरना, जैसे,—वह आँखें डबडबाकर बोला। आँख डालना = दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—

अच्छे लोग पराई वस्तु पर आँख नहीं डालते। आँखें ढेर होना = पलकों की गति ठीक न रहना। आँखों का तिलमिलाना, जैसे,—इतने दिनों के उपवास से उसकी आँखें ढेर हुई जा रही हैं। आँखें तरसना = देखने के लिये आकुल होना। दर्शन के लिये दुखी होना, जैसे—तुम्हें देखने के लिये आँखें तरस गईं। आँखें तरेरना = क्रोध से आँखें निकाल कर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। उ०—मुनि पठए हरि लखन सिर धरे सरासन बान। देखराम तिन्ह बिप्र सब तजिय पापु जनु जान।—मानस, १।२७८। आँख तले न आना = कुछ भी न गिनना। उ०—देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ।—मानस, १।२७८। आँखों तले न लाना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना, जैसे,—वह किसी को अपनी आँखों तले नहीं लाता है जो तुम्हारी बात मानेगा? आँख दबाना = पलक गिराना। आँख भचकाना; जैसे, (क) वह जरा आँख दबाकर भागता है। जब प्रभु ने आग की ओर आँख दबाय दैन की वह सुरत चुक गई। आँख दिखाना = क्रोध से आँखें निकालकर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। तीव्र जताना। उ०—(क) जानें अस को सिरजवर आँखि देखावहि डाटि।—मानस, ३।१६। (ख) मुनि मरोष भृगुनायकु आए। देखत मोरि निज्ह आँखि देखाए।—मानस, १।२६३। (ग) नादराज के नाम्ह दया दिखावत आँखि।—तुलसी ग्र०, पृ ११४। आँख दौड़े से डरना = दे० 'आँख नाक से डरना'। आँखों दुखना = आँख में पीड़ा होना। आँखों देखते = (१) आँखों के सामने। देखते हुए। जानबूझकर, जैसे,—(क) आँखों देखते तो हम ऐसा अन्याय नहीं होने देंगे।—(ख) आँखों देखते मक्खी नहीं निगली जाती। (२) देखते देखते। थोड़े ही दिनों में, जैसे—आँखों देखते इतना बड़ा घर मिट्टी हो गया। आँखों देखा = आँखों से देखा हुआ। अपना देखा। उ०—जब से हमने जन्म न रहे। आँखों देखा सगरो कहे।—(पहेली, कायथ।), जैसे,—यह तो हमारी आँखों देखी बात है। आँखें दौड़ाना = नजर दौड़ाना। डीठ फेरना। चारों ओर दृष्टि फेरना। इधर उधर देखना, जैसे,—मैंने इधर उधर बहुत आँखें दौड़ाईं पर कहीं कुछ न देख पड़ा। आँख न उठना = (१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहसान से दबा रहना। (३) दे० 'आँख न आना'। आँख न उठाना = (१) नजर न उठाना। सामने न देखना। बराबर न ताकना। (२) लज्जा से दृष्टि नीची किए रहना (३) किसी काम में बराबर लगे रहना, जैसे,—वह सवेरे से जो सीने बैठा तो दिन भर आँख न उठाई। आँख न खोलना = (१) आँख बंद रखना। (२) सुस्त पड़ा रहना। बंधु रहना। गाफिल रहना, जैसे,—आज चार दिन हुए पर्चे ने 'आँख न खोली'। बादल का आँख न खोलना = बादल का घिरा रहना। आकाश का बादलों से ढका रहना। मेह का आँख न खोलना = पानी का न थमना। वर्षा का न रुकना। आँख न ठहरना = चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे,—(क) वह ऐसा भड़कीला कपड़ा है कि आँख नहीं ठहरती। (ख) पहिया इतनी तेजी से घूमता था कि उसपर आँख नहीं ठहरती थी। आँख न पसीजना = आँख में आँसू न आना। (एक) आँख न भाना = बिलकुल

अच्छा न लगना, जैसे,—ये बातें हमें एक आँख नहीं भाती। **आँख नाक से डरना** = ईश्वर से डरना जो पापियों को अंधा और नकटा कर देता है। पाप से डरना जिससे आँख नाक जाती रहती है, जैसे—भाई, मुझे दीन से न डर तो अपनी आँख नाक से तो डर। **आँख निकालना** = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना, जैसे,—हमपर क्या आँख निकालते हो, जिसने तुम्हें कुछ कहा हो उसके पास जाओ।—(२) आँख के ढेले को छुरी से काटकर अलग कर देना। आँख फोड़ना, जैसे—उस दुष्ट सरदार ने शाह आलम की आँख निकाल ली। **आँख नीची करना** = दृष्टि नीची करना। सामने न ताकना जैसे—वहाँ आँख नीची किए चला जा रहा था। (२) लज्जा या संकोच से बराबर नजर न करना। दृष्टि न मिलाना। जैसे,—कब तक आँखें नीची किए रहोगे? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो। **आँख नीची होना** = सिर नीचा होना। लज्जा उत्पन्न होना। अप्रतिष्ठा होना, जैसे,—कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे हर आदमी के सामने आँख नीची हो। **आँख नीली पीली करना** = बहुत क्रोध करना। तेवर बदलना। आँख दिखाना। **आँख पटपटा जाना** = (१) आँख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने में प्रायः बोलती हैं)। (२) अत्यधिक भूख या प्यास से व्याकुल होना। **आँख पट्टम होना** = आँख फूट जाना। **आँख पड़ना** = (१) दृष्टि पड़ना। नजर पड़ना, जैसे,—संयोग से हमारी आँख उसपर पड़ गई नहीं तो वह बिल्कुल पास आ जाता। (२) ध्यान जाना। कृपादृष्टि होना, जैसे,—गरीबों पर किसी की आँख नहीं पड़ती। (३) चाह की दृष्टि होना। पाने की इच्छा होना, जैसे,—उसकी इस किताब पर बार बार आँख पड़ रही है। (४) कुदृष्टि पड़ना। ध्यान जाना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख पड़े, भला वह रह जाय? **आँख पथराना** = पलक का नियमित गति से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना। नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वलक्षण है), जैसे,—(क) अब उनकी आँखें पथरा गई हैं, और बोली भी बंद हो गई है।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते आँखें पथरा गईं। **आँखों पर आइए या बैठिए** = आदर के साथ आइए। सादर पधारिए। (जब कोई बहुत प्यारा या बड़ा आता है या आने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं)। **आँखों पर ठिकरी रख लेना** = (१) जान बूझकर अनजान बनना। (२) ढिठाई करना। बेमुरौवती करना। शील न करना। (३) गुण न मानना। उपकार न मानना। कृतघ्नता करना। (४) लज्जा खो देना। निर्लज्ज होना। बेहया होना। **आँखों में पट्टी बाँधना** = (१) दोनों आँखों के ऊपर कपड़ा ले जाकर सिर के पीछे बाँधना जिससे कुछ दिखाई न पड़े। आँखों को ढकना। (२) आँख बंद करना। ध्यान न देना, जैसे—तुमने खूब आँखों पर पट्टी बाँध ली है कि अपना भला बुरा नहीं सूझता। **आँखों पर परदा पड़ना** = अज्ञान का अंधकार छाना। प्रमाद होना। भ्रम होना, जैसे,—तुम्हारी आँखों पर परदा पड़ा है, सच्ची बात क्यों मन में धँसेगी। (२) विचार का जाता रहना। विवेक का दूर होना, जैसे,—क्रोध के समय मनुष्य की आँखों पर परदा पड़ जाता है। (३) कमजोरी से आँखों के सामने अँधेरा छाना, जैसे—मू प्यास के मारे हमारी आँखों पर परदा पड़ गया है। **आँखों पलकों का बोझ नहीं होता** = (१) अपनी चीज का रखना भा नहीं मालूम होता (२) अपने कुटुंबियों को खिलाना पिला नहीं खलता। (३) काम की चीज महँगी नहीं मालूम होती **आँखों पर बिठाना** = बहुत आदर सत्कार करना। आवभगत प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना, जैसे—वह हमारे घर तो हम उन्हें आँखों पर बिठावेंगे। **आँखों पर रखना** = बहुत कि करके रखना। बहुत आराम से रखना, जैसे,—आप निश्चि रहिए, मैं उन्हें अपनी आँखों पर रखूँगा। **आँख पसारना फैलाना** = दूर तक दृष्टि बढ़ाकर देखना। नजर दौड़ाना। **आँ फटना** = चोट या पीड़ा से यह मालूम पड़ना कि आँखें नि पड़ती हैं, जैसे,—सिर के दर्द से आँखें फटी पड़ती हैं। (२) आँखें बढ़ना। आँखों की फाँक का फैलना। उ०—दोरत ही में थकिए, थहरैं पग, आवत जाँघ सटी सी। होत घरी छीन खरी कटि, और है पास सुबास अटी सी। हे रघुनाथ वियोगिबे को तुम्हें आई न खेलन सोच पटी सी। मैं न जानति हौं कहा यह काहे ते जाति है आँखि फटी सी। रघुनाथ (शब्द०)। **आँख फड़कना** = आँख की पलक का बार बा हिलना। वायु के संचार से आँख की पलक का बार बार फ पड़ना। (स्त्रियों या बाईं आँख के फड़कने से लोग शुभ अशुभ का अनुमान करते हैं)। उ० सुनु मयरा बात फुर तोरी दहिन आँखि नित फरकइ मोरी।—मानस, २।२०। **आँख फाड़ कर देखना** = खूब आँख खोलकर देखना। उत्सुकता देखना। जैसे उधर क्या है जो आँख फाड़ फाड़ कर देख रहे हो **आँखें फिर जाना** = (१) नजर बदल जाना। पहले की कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना। बेमुरौवती आ जाना, जैसे जबसे वे हम लोगों के बीच से गए, तबसे तो उनकी आँ ही फिर गईं।—(२) चित्त में विरोध उत्पन्न हो जाना। में बुराई आना। चित्त में प्रतिकूलता आना, जैसे,—उस आँखें फिर गईं वह बुराई करने से नहीं चूकेगा। **आँ फूटना** = (१) आँख का जाता रहना। आँख की ज्योति नष्ट होना। (२) आँख रहते कुछ दिखाई न पड़ना, जैसे तुम्हारी क्या आँखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नहीं दिख देती। (आँख एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी से स्त्रियाँ प्र इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी आँखें फूट जायँ, य मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना। कुढ़न होना। उ० (क) उसको देखने से हमारी आँखें फूटती हैं। (ख) किसी सुखी देखकर तुम्हारी आँखें क्यों फटती हैं। **आँख फेर ना** (१) निगाह फेरना, नजर बदलना। पहले की सी कृपा स्नेहदृष्टि न रखना। मित्रता तोड़ना। (२) विरुद्ध होना प्रतिकूल होना। वाम होना। (३) अनुकूल होना। कृ करना। उ०— फेर दी आँख जी आया जैसे रसाल बौराया —गीतगुंज, पृ० ४०। **आँख फैलाना** = आश्चर्य से स्तब्ध हो ना। आश्चर्यचकित होना। **आँख फैलाना** = दृष्टि फैलाना। दी पसारना। दूर तक देखना। नजर दौड़ाना। **आँख फोड़ना** (१) आँखों को नष्ट करना। आँखों की ज्योति का नाश करन (२) कोई काम ऐसा करना जिसमें आँखों पर जोर पड़े

कोई ऐसा काम करना, जिसमे देर तक दृष्टि गडानी पडे, जैसे लिखना पढना, सीना, पिरोना, जैसे-(क) घटो बैठकर आँखें फोडी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घटो चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोडी हैं तब रसोई बनी है। **आँख फोरना** = दे० 'आँख फोडना'। उ०-सुरपति सुत जानै बल थोरा। राखा जियन आँखि गहि फोरा।--मानस, ३। ३५। **आँख बद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना** = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच परताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना, जैसे--(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुपया वे माँगते गए हम उनको आँख बद करके देते गए। (२) दूसरी बातो की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातो की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना, जैसे,--तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगो को बकने दो। **आँख बद होना** = (१) आँख झपकना। पलक गिरना, जैसे-कहो तो वह पाँच मिनट तक ताकता रह जाय, आँख बद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना, जैसे,--जिस दिन इसके बाप की आँखे बद होगी, यह अन्न को तरसेगा। **आँख बचाकर कोई काम करना** = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना, जैसे,--बुराई भी करते तो जरा आँख बचाकर। **आँख बचाना** = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना, जैसे,-रुपया लेने को ले किया, अब आँख बचाते फिरते हो। **आँख बचे का चाँटा** = लडको का एक खेल जिसमे यह बाजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। **आँख बदल जाना** = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना नजर बदल जाना। मिजाज बदल जाना। बर्ताव मे रूखापन आ जाना, जैसे,--(क) अब उनकी आँखे बदल गई है, क्यो हम लोगो की कोई बात सुनेंगे।-(ख) गौं निकल गई, आँख बदल गई।--(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढना, जैसे,--थोडे ही मे उनकी आँखे बदल जाती है। **आँख बनवाना** = **आँख का जाला कटवाना** = आँख का माडा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना, जैसे,--जरा आँखबनवा आओ तो कपडा खरीदना। **आँख बराबर करना** = (१) आँख मिलाना। सामने ताकना, जैसे,--वह चोर लडका अब मिलने पर आँख बराबर नही करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। ढिठाई करना, जैसे,--उसकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। **आँख बराबर होना** = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिलाना, जैसे,--जबसे उसने वह खोटा काम किया तबसे मिलने पर कभी उसकी आँख बराबर नही होती। **आँख बहना** = (१) आँसू बहाना। (२) आँख की बीनाई या रोशनी जाती रहना। **आँख बहाना** = आँसू बहाना। रोना। **आँख बिगडना** = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख मे पानी उतरना या जाला इत्यादि पडना। (२) आँख उनटना। आँख पथराना, जैसे,--उनकी आँखो बिगड गई है और कोयी भी बद हो गई है'। **आखें बिछना** = भव्य स्वागत-सत्कार होना। **आँख बिछाना** = प्रेम से स्वागत करना, जैसे,--वे यदि मेरे घर पर उतरे, तो मैं अपनी आँखे बिछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। बाट जोहना। टकटकी बाँधकर राह देखना, जैसे,--हम तो कब से आँख बिछाए बैठे है, वे आवें तो। **आँख बैठना** = (१) आँख का भीतर की ओर धँस जाना। चोट या रोग से आँख का ढेला गड जाना (२) आँख फूटना। **आँख भर आना** = आँख मे आँसू आना। **आँख भर देखना** = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा भर देखना। उ०--गाज परै यहि बाज पै री अँखियाँ भरि देखन हू नहिं पाई।--(शब्द०), जैसे,--जनिक वे यहाँ आ जाते, हम उन्हे आँख भर देख तो लेते। **आँख भर लाना** = आँसू भर लाना। आँखो डबडबाना। रोआँसा हो जाना। **आँख भौं टेढी करना** = आँखे दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। तेवर बदलना, जैसे,--हमपर क्या आँखे भौं टेढी करते हो, जिसने तुम्हारी चीज ली हो उसके पास जाओ। **आँख मचकाना** = (१) आँखे खोलना और फिर बद करना। पलको को सिकोड-कर गिराना। (२) इशारा करना। सैन मारना, जैसे,--तुमने आँखे मचका दी, इसी से वह सडक गया। **आँख मलना** = सोकर उठने पर आँखो को जल्दी खुलने के लिये हाथ से धीरे धीरे रगडना, जैसे,-इतना दिन चढ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँखे मलते हो। **आँख मारना** = (१) इशारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँखे मटकाना (२) आँखो से निषेध करना। इशारे से मना करना, जैसे,--वह तो रुपये दे रहा था, पर उन्होने आँख मार दी। **आँख मिलना** = साक्षात्कार होना। देखा देखी होना। नजर से नजर मिलना। **आँख मिलाना** = (१) आँख सामने करना। बराबर ताकना। नजर मिलाना। (२) सामने आना। समुखा होना। मुँह दिखाना, जैसे,-अब इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिलावेगा। **आँख मुँदना** = आँखे बद होना। **आँख मूँदना** = (१) आँखे बद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे-सब कुछ उनके दम तक है, जिस दिन वे आँखे मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे,--उन्हे जो जी मे आवे करने दो, तुम आँखे मूँद लो, उ०--मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाही।--मानस, १।२८०। **आँखो मे** = दृष्टि मे। नजर मे। परख मे। अनुमान मे, जैसे,--(क) हमारी आखो मे तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखो मे यह जँच गई है। **आँख मे आँख डालना** = (१) आँखो मे आँखे मिलाना। बराबर ताकना। (२) ढिठाई से ताकना, जैसे,--ढीठ आँखो मे आँखे डालता है, अपना काम नही देखता। **आँख मे काजल घुलना** = काजल का आँख मे खूब लगना। **आँखो मे खटकना** = नजरो मे बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे--उनका रहना हमारी आँखो मे खटक रहा है। **आँखो मे खून उतरना** = क्रोध से आँखे लाल होना। रिस चढना। **आँख मे गडना** = (१) आँख मे खटकना। बुरा लगना। (२) मन

मे बसना। जँचना। पसंद आना। ध्यान पर चढ़ना, जैसे,—वह वस्तु तो तुम्हारी आँख मे गड़ी हुई है। उ०—जाहु भले हो, कान्ह, दान मैं आज को माँगत। हमरो यौवन रूप आँख इनके गड़ि लागत।—सूर (शब्द०)। **किसी की आँखों मे घर करना**=(१) आँख मे बसना। हृदय मे समाना। ध्यान पर चढना। (२) किसी को मोहना या मोहित करना, जैसे—पहली ही भेंट मे उसने राजा की आँखो मे घर कर लिया। **आँखों मे चढना**=नजर मे जँचना। पसद आना। **आँखो मे चरबी छाना**=(१) घमड, बेपरवाही या असावधानी से सामने की चीज न दिखाई देना। प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना, जैसे,—देखते नही वह सामने किताब रखी है, आँखो में चरबी छाई है? (२) मदांध होना। गर्व मे किसी की ओर ध्यान न देना। अभिमान मे चूर होना, जैसे,—आजकल उनकी आँखो मे चरबी छाई है, क्यो किसी को पहचानेंगे। **आँख मे चुभना**=(१) आँख मे धँसना। (२) आँख मे खटकना। नजरो मे बुरा लगना। (३) दृष्टि मे जँचना। ध्यान पर चढना। पसद आना, जैसे,—तुम्हारी घड़ी हमारी आँखो मे चुभी हुई है, हम उसे बिना लिए न छोड़ेंगे। **आँखो मे चुभना**=(१) नजर मे खटकना। बुरा लगना। (२) आँखो मे जँचना। पसद आना। (३) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना, जैसे,—इसके दुपट्टे का रग तो आँखो मे चुभा जाता है। **आँख मे चोट आना**=चोट आदि लगने से आँख मे जलाई आना। **आँखो मे झाँई पड़ना**=आँखो का थक जाना। उ०—आँखड़ियाँ झाँई परी, पथ निहारि निहारि। जीभड़ियाँ छाला परयो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। **आँखों मे टेसू फूलना, आँखों मे तीसी फूलना, आँखो मे सरसो फूलना**=चारो ओर एक ही रग दिखाई पड़ना। जो बात जी मे समाई हुई है, उसी का चारो ओर दिखाई पड़ना। जो बात ध्यान मे चढी है, चारो ओर वही सूझना। (२) नशा होना। तरग उठना, जैसे—भाँग पीते ही आँखो मे सरसो फूलने लगी। (३) घमड होना। गर्व से किसी को न देखना। **आँखों मे तकला या टेकुआ चुभाना**=आँख फोड़ना। (स्त्रियाँ जब किसी पर उसकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहता है कि इसकी आँखो मे टेकुआ चुभा दूँ')। **आँखो मे तरावट आना**=आँखो मे ठढक आना। तबीयत का ताजी होना। **आँखो में धूल देना, आँखो मे धूल डालना**=बराबर धोखा देना। भ्रम मे डालना, जैसे,—अभी तुम किताब ले गए हो, अब हमारी आँखो मे धूल डालते हो। उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्ही। लाल डिगनि की सारी ताको पीत उढनियाँ कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सवहिनि के सिर नाँखि। कियौ छँडाइ सकत सुनि सूरज वैनु धूरि दै आँखि।—सूर (शब्द०)। **आँखो मे नाचना**=दे० 'आँखो मे फिरना'। **आँखो मे नून देना**=आँख फोड़ना। **आँखों मे नून राई**=आँखें फूटें। (स्त्रियाँ उन लोगो के लिये कहती हैं जो उनके बच्चो को नजर लगाते हैं। किसी बच्चे को नजर लगने का सदेह होने पर वे उसका नाम लेकर और बच्चे के चारो ओर राई नमक घुमाकर आग मे छोड़ती हैं)। **आँखो में पालना**=बड़े सुख चैन मे पालना। बड़े लाड प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लड़के आँखो मे पाले गए उनकी यह दशा हो रही है। **आँखो मे फिरना**=ध्यान पर चढना। स्मृति मे बना रहना, जैसे—उसकी सूरत मेरी आँखो के सामने फिर रही है। **आँखो मे बसना**=ध्यान पर चढना। हृदय मे समाना। किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उसका ध्यान हर समय चित्त मे बना रहे, जैसे,—उसकी मूर्ति तुम्हारी आँखो मे बस गई है। **आँखो मे बैठना**=(१) नजर मे गड़ना। पसद आना। (२) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना। आँखो मे धँसना (चटकीले रग के विषय मे प्राय कहते हैं कि 'इस कपड़े का रग तो आँखो मे बैठा जाता है।')। **आँखो मे भग घुटना**=आँख पर भाँग का खूब नशा छाना। गहागड्ड नशा होना। **आँखो मे रखना**=(१) लाड प्यार से रखना। प्रेम से रखना। सुख से रखना, जैसे,—आप निश्चित रहिए मैं इस लड़के को आँखो मे रखूँगा। उ०—आँखिन मे सखि राखिबे जोग इन्है किमि कै बन-बास दियो है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६। (२) सावधानी से रखना। यत्न और रक्षापूर्वक रखना। हिफाजत मे रखना। जैसे,—मैं इस चीज को अपनी आँखो मे रखूँगा, कहीं इधर उधर न होने पाएगी। **आँखो मे रात कटना**=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता से सारी रात जागने बीतना। सारी रात नींद न पड़ना। वियोग में तड़पना। **आँखो मे रात काटना**=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण जागकर रात बिताना। किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना, जैसे,—बच्चे की बीमारी से कल आँखों मे रात काटी। **आँखो मे शील होना**=चित्त मे कोमलता होना। दिल में मुरौवत होना, जैसे,—उसकी आँखो मे शील नही है, जैसे होगा, वैसे अपना रुपया लेगा। **आँखो मे समाना**=हृदय मे बसना। ध्यान पर चढना। चित्त मे स्मरण बना रहना, जैसे,—दमयती की आँखों मे तो नल समाए थे, उन्होने सभा मे और किसी राजा की ओर देखा तक नही। **आँख मोड़ना**=दे० 'आँख फेरना'। **आँख रखना**=(१) नजर रखना। चौकसी करना, जैसे,—देखना, इस लड़के पर भी आँख रखना कहीं भागने न पावे।—(२) चाह रखना। इच्छा रखना, जैसे,—हम भी उस वस्तु पर आँख रखते हैं। (३) आसरा रखना। भलाई की आशा रखना, जैसे,—उस कठोरहृदय से कोई क्या आँख रखे। **आँख लगना**=नींद लगना। झपकी आना। सोना। उ०—जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि। आँखनु आँखि लगी रहै, आँखैं लागति नाँहि।—बिहारी र०, दो० ६२, जैसे,—आँख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया। (२) प्रीति होना। दिल लगना। उ०—(क) धार लगै तरवार लगै पर काहू से काहू की आँख लगै ना।—(शब्द०)। (ख) ना खिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखिन लगौरी श्यामसुंदर सलोने सों।—देव (शब्द०)। (३) टकटकी लगना। दृष्टि जमना, जैसे,—हमारी

आँखें उसी ओर तो लगी हैं, पर वे कही आते दिखाई नही देते। उ०—पलक आँख तेहि मारग, लागी दुनहु रहाहिं। कोउ न सदेशी आवही, तेहिक सँदेस कहाहिं।—जायसी (शब्द०)। **आँखो लगना**=आँखों मे लगना। ऊपर पडना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—भारज रज लागे मोरी अँखियनि रोग दोष जजाल।—सूर०, १०। १३८। **आँख लगाना**=(१) टकटकी बाँधकर देखना। प्रीति लगाना। नेह जोडना। **आँख लगी**=(१) जिसमे आँख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरतिन। उढरी। **आँख लडना**=(१) देखा देखी होना। आँख मिलना। घूराघूरी होना। नजरबाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना, जैसे,—अब तो आँखें लड गई हैं, जो होना होगा सो होगा। **आँख लडाना**=आँख मिलाना। घूरना। नजरबाजी करना। (लडको का यह एक खेल भी है जिसमे वे एक दूसरे को टकटकी बाँधकर ताकते हैं। जिसकी पलक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। **आँख ललचाना**=देखने की प्रबल इच्छा होना। **आँख लाल करना**=आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। क्रोध करना। **आँख वाला**=(१) जिसे आँख हो। जो देख सकता हो, जैसे,—भाई, हम अधे सही, तुम तो आँखवाले हो देखकर चलो। (२) परखवाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर, जैसे,—तुम तो आँखवाले हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। **आँख सामने न करना**=सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा और भय से प्राय ऐसा होता है।), जैसे—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कभी आँख सामने न की। (२) सामने ताकने या वाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर बातचीत करने की हिम्मत न करना, जैसे,—भला उसकी मजाल है कि आँख सामने कर सके। **आँख सामने न होना**=लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख सामने न हुई। **आँखो सुख कलेजे ठढक**=पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। **आँख सेंकना**=(१) दर्शन का सुख उठाना। नेत्रानद लेना। (२) सुदर रूप देखना। नज्जारा करना। उ०—जरा आँखें सेक आइए, मैरवी उड रही होगी—रसीली नयनोवालियो ने फदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। **आँख से आँख मिलाना**=(१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर लडाना। **आँखो से उतरना**=नजरो से गिरना। दृष्टि मे नीचा ठहरना, जैसे—वह अपनी इन्ही चालो से सबकी आँखो से उतर गया। **आँखो से उतारना या उतार देना**=(१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। **आँखो से ओझल होना**=नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। **आँखों से काम करना**=इशारो से काम निकालना। **आँखो से कोई काम करना**=बहुत प्रेम और भक्ति से कोई काम करना, जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं आँखों से करने के लिये तैयार हूँ। **आँखो से गिरना**=नजरो से गिरना। दृष्टि मे तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी आँखो से गिर गए। **आँख से भी न देखना**=ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना, जैसे,—उससे बातचीत करने की कौन कहे मैं तो उसे आँखो से भी न देखूँ। **आँखो से लगाकर रखना**=बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-सत्कार से रखना। **आँखों से लगाना**=प्यार करना। प्रेम से लेना, जैसे,—उसने अपनी प्रिया के पत्र को आँखो से लगा लिया। **आँख होना**=परख होना। पहचान होना। शिनाख्त होना। जैसे,—तुम्हे कुछ आँख भी है कि चीजो के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर गडाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उस तसवीर पर हमारी बहुत दिनो से आँख है। (३) ज्ञान होना। विवेक होना। उ०—देखो राम कैसो कहि कैद किए किए हिये, हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हौ। ताही समै फैलि गए कोटि कोटि कपि नए लोचे तनु खैचे चीर भयो यों विहाल हौं। भई तब आँखो दुखा सागर को चाखौं, अब वही हमैं राखौं भाखौं बारों धन माल हो।।—प्रिया० (शब्द०)।

आँख[2]—सज्ञा पुं० [स० अक्षि, प्रा० अक्खि प० अक्ख] आँख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१) प्याज के ऊपर के नक्षत्र के समान दाग। (२) ईख की गाँठ पर की टोटी जिसमे से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनन्नास के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) सूई का छेद।

आँखडी[1]—सज्ञा पुं० [हिं० आँख+डी (प्रत्य०)] आँख। उ०—(क) आँखडियाँ झाँई परी पथ निहारि निहारि, जीभडियाँ छाला परयो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आएँ आँखडियाँ।—ठडा०, पृ० ३०।

आँखफोडटिड्डा[1]—सज्ञा पुं० [स० आक=मदार+हिं० फोडना] हरे रग का एक कीड़ा या फतिगा जो प्राय मदार के पेड पर रहता और उसकी पत्तियाँ खाता है। होता तो है यह उँगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछे बडी लबी होती हैं।

आँखफोडटिड्डा[2]—वि० [हिं० आँख+फोड़+टिड्डा] कृतघ्न। बेमुरौवत। ईर्ष्यालु।

आँखफोडतोता—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०—किसलिये आँख यो बचाते हो, मैं नहीं आँखफोड तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

आँखफोरवा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०—कठफोरवा आँखफोरवा को आँख मूँद निगल जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

आँखमिचौनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+√मीच+औनी(प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—छाया की आँखमिचौनी मेघो का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

आँखमिचौली—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+√मीच+औली प्रत्य०] लडको का एक खेल। लडको द्वारा आँख मूँदकर छिपने और खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल मे एक लडका किसी दूसरे लडके की आँख मूँदकर बैठता है। इस बीच और लडके छिप जाते हैं। तब उस लडके की आँखे खोल दी जाती हैं और वह लडको को छूने के लिये ढूँढता फिरता है। जिस लडके को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लड़के को नही छू

पाता और सब लडके एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लड़का चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लडका चोर हुआ तो फिर उसकी टाँगे बाँधी जाती हैं और उसके चारो ओर एक कुडल या गोडले खीच दिया जाता है। लडके बारी बारी से उस गोडले के भीतर पैर रखते हैं और उस लडके को 'बुढिया' 'बुढिया' कहकर चिढाकर भागते हैं। यह चोर या बुढिया बना हुआ लडका मडल के भीतर जिसको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

आँखमिहीचनी Ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मिहीचनी = मीचना] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—आँखमिहीचनी खेलत मोहि दुह विधि सोच कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्र०, पृ० ११।

आँखमीचली Ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + ली (प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मडली आँखमीचली खेल। चढीचढा को खेल सखन मे खेलत हैं रस रेल।—सूर (शब्द०)।

आँखमुचाई, आँखमुँदाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + आई (प्रत्य०) तथा आँख + √मूद + आई प्रत्य०] दे० 'आँखमिचौली'।

आँखा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आखा'।

आँखि Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—सो वह आँखि मीडि मीडि कै फिर फिरि कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ६।

आँखी Ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—आँखी मद्धे पाखी चमकै पाँखो मद्धे द्वार।—कबीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

आँग Ⓤ†—सज्ञा पु० [स० अङ्ग] १ अग। उ०-(क) बानिनि चली सेंदुर दिये माँगा। कयथिनि चली समाइ न आँगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की बात। फूली अँगन मैं फिरै, आँग न आँग समात।—बिहारी र०, दो० २५४। २ कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर क्यो आँग न समात आँगी लागी काह तोहि जागी उर मे उचाई है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८४। ३ चराई जो प्रति चौपाये पर ली जाती है।

आँगन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारो ओर कोठरियाँ और बरामदे हो। चौक। अजिर। उ०—आँगन खेलै नद के नदा।—सूर०, १०। ११७।

आँगल†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्गल] अगरी। अर्गला। उ०—तब बा बाई ने किवाड दै कै आँगल मारि दई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४१।

आँगी[1] Ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका प्रा० अगिआ] अँगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसख्याल सो लाल सो आँगी कढावति है।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १७८।

आँगी[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँधी'।

आँगुर Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अगुल'। उ०—द्वादस आँगुर पवन चलतु है नाहि सिमटि घर औना।—जग० बानी, भा० २, पृ० ६५।

आँगुरी Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुली] उँगली। उ०—गयी अचानक अगुरी छाती छैलु छुवाइ।—बिहारी र०, दो० ३८६।

मुहा०—आगुरी फोरना = उँगलियाँ चटकाना। उ०—विमल अँगोछी पोछि भूषन सुधारि सिर आँगुरिन फोरि त्रिन तोरि डारती।—भिखारी० ग्र०, भा० २ पृ० १५७।

आँच—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि = आग की लपट, पा० अच्चि] १. गरमी। ताप, जैसे,—(क) आग और दूर हटा दो, आँच लगती है। (ख) कोयले की आँच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँचि मे औटि सिरायो।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

२ आग की लपट। लौ, जैसे,—चूल्हे मे और आँच कर दो, तवे तक तो आँच पहुँचती ही नही।

क्रि० प्र०—करना।—फेंलना।—लगना।

३ आग। अग्नि, जैसे—(क) आँच जला दो। (ख) जाओ थोडी सी आँच लाओ।

मुहा०—आँच खाना। गरमी पाना। आग पर चढ़ना। जैसे,—यह बरतन आँच खाते ही फूट जायगा। आँच दिखाना = आग के सामने रखकर गरम करना, जैसे,—जरा आँच दिखा दो तो बरतन का सब घी निकल आवे।

४ ताव। जैसे,—अभी इस रस मे एक आँच की कसर है। (ख) उसके पास सौ आँच का अभ्रक है।

मुहा०—आँच खाना = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आँच खा गया है, इससे कुछ कडुआ मालूम पडता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आँच। ६ आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आँच न आवेगी।—(ख) साँच को आँच क्या। उ०—निहचित होइ के हरि भजै मन मे राखै साँच। इन पाँचन को वस करै, ताहि न आवै आँच।—कबीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

८ विपत्ति। सकट। आफत। सताप। जैसे,—इस आँच से निकल आवें तो कहे। उ०—आए नर चारि पाँच, जानी प्रभु आँच, गडि लियो सो दिखायो आँच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९ प्रेम। मुहब्बत। जैसे,—माता की आँच बडी होती है। १० काम। ताप।

आँचका—सज्ञा पुं० [देश०] वह लटकता हुआ रस्सा जिसके छोर पर के छल्ले मे से होकर वह रस्सा जाता है जिसपर खडे होकर खलासी जहाज का पाल खोलते और लपेटते हैं।

आँचना[1] Ⓤ—क्रि० स० [हिं० आँच] जलाना। तापना। उ०—कोप कृसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आँच न आँचै। तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

आँचना[2] Ⓤ—क्रि० स० [स० अञ्चन] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोलि गोविंद चद जब वाचन आँचे। परम प्रेम रस माँचे अच्छर न परत बाँचे।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

आँचना[3]†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अँचवना'। उ०—नाचो हे रुद्रताल, आँचो जग ऋजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।

आँचर⑤—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आँचल'। उ०—गौंह ऊँचै, आँचर उघटि, मोरि, मुँह मोरि मोरि नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि।—बिहारी र०, दो० २४२।

आँचल—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १ धोती, दुपट्टा आदि बिना सिले हुए वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग। पल्ला। छोर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती।—मानस, १।३२६। २ साधुओं का अँचला। ३. स्त्रियों की साड़ी या ओढ़नी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है। उ०—वह मग में रुक, मानो कुछ झुक आँचल सँभारती फेर नयन।—ग्राम्या, पृ० १७।

मुहा०—आँचल डालना=मुसलमान लोगों में विवाह की एक रीति। (जब दूल्हा दुलहिन के घर जाने लगता है, तब उसकी बहन दरवाजे से उसके सिर पर आँचल डालकर उसे घर में ले जाती है। इसका नेग बहन को मिलता है)। आँचल=दबाना=दूध पीना। स्तन मुँह में डालना। जैसे,—बच्चे ने आज दिन भर से आँचल मुँह में नहीं दबाया। आँचल देना=(१) बच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०)। जैसे, बच्चे को किसी के सामने आँचल मत दिया करो।—(२) विवाह की एक रीति। (जब बारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर आँचल डालती है और उसे काजल लगाती है। इस रीति को आँचल देना कहते हैं।) ३. आँचल से हवा करना (स्त्रि०)। जैसे—(क) दीए को आँचल दे दो, व्यर्थ जल रहा है। (ख) थोड़ा आँचल दे दो तो आग सुलग जाय। आँचल पड़ना=आँचल छू जाना। जैसे,—देखो, बच्चे पर आँचल न पड़ जाय। (स्त्रियाँ बच्चे पर आँचल पड़ना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे बच्चों की देह फूल जाती है)। आँचल फाड़ना=बच्चे के जीने के लिये टोटका करना। (जिस स्त्री के बच्चे नहीं या बाँझ होती है, वह किसी बच्चेवाली स्त्री का आँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है। स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका आँचल कतरा जाता है, उसके बच्चे तो मर जाते हैं और जो आँचल कतरती हैं, उसके बच्चे जीने लगते हैं)। आँचल में बाँधना=(१) हर समय साथ रखना। प्रतिक्षण पास रखना। जैसे,—वह किताब क्या हम आँचल में बाँधे फिरते हैं, जो इस वक्त माँग रहे हो। (२) कपड़े के छोर में इस अभिप्राय से गाँठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय। जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, आँचल में बाँध रखो। आँचल में बात बाँधना=(१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना। कभी न भूलना। जैसे,—किसी के झगड़े में पड़ना बुरा है यह बात आँचल में बाँध रखो। (२) दृढ़ निश्चय करना। पूरा विश्वास रखना। जैसे,—इस बात को आँचल में बाँध रखो कि उन लोगों में अवश्य खटपट होगी। आँचल में सात बातें बाँधना=टोटका करना। जादू करना। आँचल लेना=(१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का आँचल छूकर सत्कार या अभिवादन करना। (२) किसी स्त्री का अपने से बड़ी स्त्री का आँचल से पैर छूना। पाँव छूना। पाँव पड़ना। जैसे—जीजी, बूआ आई हैं, उठकर आँचल ले। आँचल सँभालना=आँचल ठीक करना। शरीर को अच्छी तरह ढकना। उ०—फुलवा बिनत डार डार गोपिन के मग कुमार चंद्रवदन चमकन वृषभानु की लली। हे हे चतुर कुमारि अपनो आँचल सँभार आवत बृजराज आज बिनन को कली।—(शब्द०)।

आँचलपल्लू—संज्ञा पुं० [हिं० आँचल+पल्ला] कपड़े के एक छोर पर टँका हुआ चौड़ा ठप्पेदार पट्टा।

आँचू—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली झाड़ी जिसमें शरीफे के आकार के छोटे छोटे फल लगते हैं। इन फलों में मीठे रस से भरे दाने रहते हैं।

आँजन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] दे० 'अंजन'।

आँजना—क्रि० स० [सं० अञ्जन] अंजन लगाना। उ०—(क) ललना गन जब जेहि घरहि धाइ। लोचन आँजहि फगुआ मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रूप ही अनूप ही जु आँजे मांजे न्हाए भाएँ, भूषन बनाए बीर बीरा खाए जानिबी।—गंग ग्र०, पृ० ३३। २ विलय करना। जैसे, आँजो मत, काम चटपट कर डालो।

आँट—संज्ञा पुं० [हिं० अंटी] १ हथेली में तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान।

विशेष—इसमें कभी कभी जुआरी लोग कौड़ी छिपा लेते हैं।

२ दाँव। वश। उ०—न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुरहसुभाइ। आँटैं परि प्राननु हरत काँटे जौं लगि पाइ।—बिहारी र०, दो० ३११।

मुहा०—आँट पर चढ़ना=दाँव पर चढ़ना। उ०—जहाँ तक हो आँट पर न चढ़ो।—चोटी०, पृ० १४४।

३ बैर। लागडाँट। ४ गिरह। गाँठ। जैसे—धोती की आँट में रुपया रख लो। ५ पूला। गट्ठा। पेंच।

यौ०—आँट साँट।

आँटना⑤—क्रि० अ० [हिं० अटना] १ समाना। अँटना। अमाना। २. पूरा पड़ना। काफी होना। उ०—अगनहि कह पानी गहि बाँटा। पिछलहि कहँ नहिं काँदू पाँटा।—जायसी (शब्द०)। ३. आना। मिलना। उ०—(कोइ) फूल पाव, कोई पाती, जेहि के हाथ जो आँट।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२। ४ पहुँचना। उ०—मच्छ छुवहिं आवहिं गडि काँटी। जहाँ कमल तहँ हाथ न आँटी।—जायसी (शब्द०)।

आँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ लंबे तृणों का छोटा गट्ठा। पूला। २ लड़कों के खेलने की गुल्ली। उ०—दिग्गो जनाय बात सो हरी स्वरूप बालके। गोविंद स्वामी सग आँटि दंड खेल हालके।—रघुराज० (शब्द०)। ३ कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग अड़ाते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।

४. सूत का लच्छा। ५. धोती की गिरह। टेंट। मुर्री। उ०—आपकी आँटी निकसी नाहीं तो करज बहुत सिर लीन्हा।—कबीर ग्र०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—देना। लगाना।

मुहा०—आँटी काटना = गिरह काटना। जेब काटना।

आँटसाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट+सटना] १. गुप्त अभिसधि। साजिश। २ मेलजोल।

आँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा० अट्ठि] १ दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का। जैसे—उनके मुँह से कफ की सूखी आँठी गिरती है। २ गिरह। गाँठ। ३ गुठली। बीज। ४. नवोढा के उठते हुए स्तन।

आँडा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडकोश।

आँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ अंटी। गाँठ। कद। उ०—सेंधा लोन परा सब हाँडी। काटी कद मूर फै आँडी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५। २ कोल्हू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड। ३ बैलगाडी के पहिए के छेद के चारो ओर जडी हुई लोहे की सामी। बद।

आँडू—वि० [सं० अण्ड = अण्डकोश] जिस (चौपाए) के अंडकोश न कूचे गए हो। अंडकोशयुक्त।

विशेष—यह शब्द विशेष कर बैल के लिये ही प्रयुक्त होता है।

आँडेबाँडे खाना—क्रि० अ० [हिं० अंडबड अथवा डाँड = मेंड+बाँध] इधर उधर फिरना। इधर उधर हवा खाना। चक्कर खाना।

विशेष—फूल बुझौअल के खेल मे जब लडको के दल बँध जाते हैं और दोनो दलो के महतो को आपस में किसी फूल को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लडको को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'आँडेबाँडे खाओ'। लडके 'आँडे बाँडे' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फूल बूझने के लिये आते हैं।

आँत—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियो के पेट के भीतर वह लबी नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट मे कुछ पचकर फिर इस नली मे जाता है जहाँ से रस तो अग प्रत्यग मे पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है। मनुष्य की आँत उसके डील से पाँच या छ गुनी लबी होती है। मासभक्षी जीवो की आँत शाकाहारियो से छोटी होती है। इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है।

मुहा०—आँत उतरना—एक रोग जिसमे आँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अडकोश मे पीडा उत्पन्न होती है। आँत का बल बुलना—पेट भरना। भोजन से तृप्त होना। बहुत देर तक भूखे रहने के उपरात भोजन मिलना। जैसे,—आज कई दिनो के पीछे आतों का बल खुला है। आँतो का बल खुलवाना—पेट भर खिलाना। आँतें अकुलाना, कुल-कुलाना, कुलबुलाना—भूख के मारे बुरी दशा होना। आँतें गले मे आना—नाको दम होना। जजाल मे फँसना। तग होना। जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर आँते गले मे आवेंगी। आँते मुँह मे आना—दे० 'आँते गले मे आना'। आँतों मे बल पडना—पेट मे बल पड़ना। पेट ऐंठना। जैसे,—हँसते हँसते आतो मे बल पड़ने लगा। आँतें समेटना—भूख सहना। जैसे,—रात भर आँतें समेटे बैठे रहे। आँतें सूखना = भूख के मारे बुरी दशा होना। जैसे,—कल से कुछ खाया पीया नही है, आँतें सूख रही हैं।

आँतकटटू—संज्ञा पुं० [हिं० आँत+कटना] चौपायो का एक रो जिसमे उन्हे दस्त होता है।

आँतरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = भीतर] खेत का उतना भ जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है।

आँतर[2]—संज्ञा पुं० [स० अन्तर = दो वस्तुओ के बीच का स्थान] १ पान के भीटे के भीतर की क्यारियो के बीच का स्थान ज आने जाने के लिये रहता है। पासा। २ ताने मे दोनो सर की खूँटियो के बीच की दो लकडियाँ जो थोडी थोडी दूर पर साँथी अलग करने के लिये गाडी जाती हैं (जुलाहे)। ३ भिन्नता अतर। उ०—जीव ब्रह्म आँतर नहिं कोय। एकै रूप सर्वत्र होय।—दरिया० बानी, पृ० १६। ४ दूरी। फासला। उ० आँतर जनु हो तोहार। तेंदुर का उर हार। पद्मा० पृ० ३३०।

आँतरा(पु)—संज्ञा पु० [हिं० आँतर] दे० 'अँतर'। उ०—साध स्वाँग आँतरा जैसा दिवस और रात।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

आँदू—संज्ञा पुं० [सं० अन्दू = बेडी] १ लोहे का कडा। बेडी। उ० हूलै इतै पर मैन महावत लाज के आँदू परे जऊ पाइन। पदमाकर कौन कहौं गति माते मतगनि की दुखदाइन पद्माकर ग्र०, पृ० १३०। २ बाँधने का सीकड। उ० आँदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन। तदपि चलावत रहत झुकि झुकि चोटैं सैन।—स० सप्तक, पृ० १९३।

आँध[1]—संज्ञा स्त्री० [स० अन्ध] १ अँधेरा। धुध। २ रतौंधी। ३ आफत। कष्ट। जैसे,—तुम्हे वहाँ जाते क्यो आँध आती है

क्रि० प्र०—आना।

आँध[2](पु)[1]—वि० १ अधा। नेत्रहीन। २ कामाध। मोहित। उ सकर को मन हरयो कामिनी, सेज छाडि भू सोयो। च मोहिनी आइ आँध कियो, तब नख तें रोयो।—सूर०, १।४३

आँधना(पु)—क्रि० अ० [हिं० आँधी] वेग से धावा करना। टूटना उ०—मुसुडिय और फुवडिय साधि। परे दुहुँ ओरन ते आँधि।—(शब्द)।

आँधर—वि० [स० अन्ध, प्रा० अधल] [स्त्री० आँधरी] अधा। उ सूर कूर, आँधरो, मैं द्वार परयो गाऊँ। सूर०, १।१६६।

यौ०—आँधर अँधुआ = अधा। उ०—माया के बँधुआ अँ। अँधुआ साधु जाने एह जाने एह बातें।—सं० दरिया, पृ० १४१

आँधरा(पु)†—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अधरअ] [स्त्री० आँधरी] अधा

आँधारभ(पु)—संज्ञा पु० [हिं० आँधर = अधा (मूर्ख) जैसा + आरम्भ] अँधेरखाता। बिना समझा बूझा आचरण। उ०—करता कीरतन, ऊँचा करि करि दम। जानै बूझै कछु नही, यो ए आँधारम।—कबीर (शब्द०)।

आँधी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध = अँधेरा, अधा करनेवाली] बडे वेग क हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारो ओर अँधेरा छा जाय अधड़। अधवाव।

विशेष—भारतवर्ष मे आँधी का समय बसत और ग्रीष्म है।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

मुहा०—आँधी उठाना = हलचल मचाना। धूम धाम मचाना। आँधी के आम = (१) आँधी मे आप से आप गिरे हुए आम। (२) बिना परिश्रम के मिली हुई चीज। बहुत सस्ती चीज। (३) थोडे दिन रहनेवाली चीज।

आँधी[2]—वि० आँधी की तरह तेज। किसी चीज को झटपट करनेवाला। चालाक। चुस्त। जैसे,—काम करने मे तो वह आँधी है।

मुहा०—आँधी होना = बहुत तेज चलना।

आँबपु०†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आम'। उ०—फने सोहाए मधुर फन, आंब गए झकझोरि।—भिखारी० ग्र०, पृ० १३६।

आँबा(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] 'आम'। उ०—और यह वैष्णव आंबा लेन कौं बजार मे गयो। सो बजार मे कहूँ आंबा न मिले।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३४।

आँबाहल्दी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आमाहल्दी'।

आँयबाँय—सज्ञा पु० [अनु०] अनापसनाप। अडबड। व्यर्थ की बात। असबद्ध प्रलाप।

आँव—सज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लसदार विकृत द्रव्य या मल जो अन्न न पचने से होता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पडना।

आँवठ†—सज्ञा पु० [सं० ओष्ठ हिं० ओठ] १ किनारा। बारी। २ कपडे का किनारा। बरतन की बारी।

आँवडना—क्रि० अ० [हिं० √उमड] उमडना। उ०—भरे रुचि भार सुकुमार सरसिज सार सोभा रूप सागर अपार रस आंवडे।—देव (शब्द०)।

आँवडा[1](पु)—वि० [हिं० उमडना] गहरा। उ०—जेता मेठा बोलवा, तेता साधु न जान। पहिले थाह दिखाइ के, आंवडे देसी आनि। कबीर (शब्द०)।

आँवडा[2]†—सज्ञा पु० [सं० आम्रातक प्रा० अम्बाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा फल। अमडा।

आँवन—सज्ञा पुं० [स० आनन = मुँह] १ लोहे की सामी जो पहिए के उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमे होकर धुरी का दड जाता है। मुहँडी। २ वह औजार जिससे लोहे के छेद को लोहार लोग बढाते हैं।

आँवरा(पु)†—सज्ञा पुं० [स० आमलक, प्र० आमलय] दे० 'आंवला'। उ०—आलूचा अमिली अँवहलदी, आल आँवरा साल अफनदी।—सुजान०, पृ० १६१।

आँवल—सज्ञा पु० [सं० उल्वम = जरायु। अथवा, अवर = आच्छादन] झिल्ली जिससे गर्भ मे बच्चे लिपटे रहते हैं। यह झिल्ली प्राय बच्चा होने के पीछे गिर जाती है। खेंडी। जेरी। साम।

यौ०—आँवल नाल।

आँवलगट्टा—सज्ञा पुं० [हिं० आँवला + हिं० गट्टा वा गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल।

विशेष—यह दवा मे तथा सिर मलने के काम आता है।

आँवला—सज्ञा पु० [सं० आमलक, प्रा० आमलओ] १ एक प्रसिद्ध पेड। २ इस पेड का फल।

विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन महीन होती हैं। इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का छिलका प्रति वर्ष उतरा करता है कार्तिक से माघ तक इसका फल रहता है जो गोल कागजी नीबू के बराबर होता है। इसके ऊपर का छिलका इतना पतला होता है कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। यह स्वाद मे कसैलापन लिए हुए होता है। आयुर्वेद मे इसे शीतल, हलका तथा दाह पित्त और प्रमेह का नाश करनेवाला बताया है। इसके सयोग से त्रिफला, च्यवनप्राश आदि औषध बनते है। आवले का मुरब्बा भी बहुत अच्छा होता है। आँवले की पत्तियो मे चमडा भी सिझाया जाता है। इसकी लकडी पानी मे नहीं सडती। इसी से कूओ के नीमचक आदि इसी से बनते हैं।

३ विपक्षी को नीचे लाने का कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना भी वही हाथ उसकी गरदन पर चढावे और दूसरे से शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है झटका देकर हटाते हुए उसको नीचे लावे। इसका तोड विपम पैंतरा करे अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर पैंतरा बढाते हुए बाहरी टाँग मार गिरावे।

आँवलापत्ती—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + पत्ती] एक प्रकार की सिलाई जिसमे पत्ती की तरह दोनों ओर तिरछे टाँके मारे जाते हैं।

आँवलासारगधक—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + सं० सार + गधक] खूब साफ की हुई गधक जो पारदर्शक होती है, यह खाने मे अधिक खट्टी होती है।

आँवा—सज्ञा पु० [सं० आपाक—आंवा] वह गड्ढा जिसमे कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं। जैसे,—कुम्हार आंवा लगा रहा है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—आँवाँ का आँवाँ बिगडना = सारे परिवार का बिगड़ना। सारे परिवार का कुत्सित विचार होना। आँवाँ बिगडना = आवें के बरतनो का ठीक ठीक न पकना।

आँस[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हिं० गाँत] सवेदना। दर्द।

आँस[2](पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अश'। उ०—बिछुरत सुदर अधर तैं, रहत न जिहि घट सांस। मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीति को आंस।—स० सप्तक, पृ० १८७।

आँस[3](पु)†—सज्ञा पुं० [स० अस्र] आंसू। उ०—रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबो करै।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१।

आँस[4]—सज्ञा स्त्री० [स० अशु प्रा० असु] १ गुत्ती। डोरी। २ रेशा।

आँसी—सज्ञा स्त्री० [सं० अश = भाग] १. भाजी। बैना। मिठाई जो इष्ट-मित्रो के यहाँ बाँटी जाती है।—न + लन वाल के द्वैही दिना तें परी मन आइ सनेह की फाँसी। काम कलोलनि मे मतिराम लगे मनो बाँटन मोद की आँसी।—मतिराम।—(शब्द०) २ भाग। हिस्सा। उ०—नारि कुलीन कुलीननि लै रमै मैं उनमैं चहौ एक न आँसी।—भिखारी ग्रं०, भा० पृ० १५६।

आँसु(पु)†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आंसू'। उ०—माता भरतु गोद बैठारे आंसु पोछि मृदु बचन उचारे।—मानस, २। १६५।

आँसू—सज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जल जो आँख के भीतर उस स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नली जाती है। उ०—जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति सी छाई, दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आई।—आँसू, पृ० १४।

विशेष—यह जल आँख की झिल्लियो को तर रखता है और ढेले पर गर्द या तिनके को नही रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी थूक की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात मे बढता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीडा और शोक मे आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष मे भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालो पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक मे भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता।

क्रि० प्र०—आना।—गिरना।—गिराना।—चलना।—रुकना।—टपकाना।—डालना।—ढालना।—निकालना।—बहना।—बहाना।

यौ०—आँसू की धार। आँसू की लडी।

मुहा०—आँसू गिराना = रोना। जैसे,—क्यो झूठ झूठ आँसू गिराते हो। आँसू डबडबाना = आँसू निकलना। रोने की दशा होना। जैसे—यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए। आँसू ढालना = आँसू गिराना। रोना। जैसे,—परगट ढारि सकै नहि आँसू। घुट घुट मीन गुपुत होय नासू।—जायसी (शब्द०)। आँसू तोड = कुसमय की वर्षा (ठग)। आँसू थमना = आँसू रुकना। रोना बद होना। जैसे,—जब से उन्होने यह समाचार सुना है, तब से उनके आँसू नही थमते है। उ०—थमते थमते थमेगे आँसू। रोना है कुछ हँसी नही है।—मीर (शब्द०)। आँसू पीकर रह जाना = भीतर ही भीतर रोकर रह जाना। अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना। मन ही मन ममोसकर रह जाना। जैसे,—(क) मेरे देखते उसने बच्चे पर हाथ चलाया था, और मैं आँसू पीकर रह गया। (ख) इतना दुःख उस पर पडा वह आँसू पीकर रह गया। आँसू पुछना = आश्वासन मिलना। ढारस बँधना। जैसे,—उस बेचारे की सारी सपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुँछ गए।—(शब्द०)। आँसू पोछना = (१) बहते हुए आँसू को कपडे से सुखाना। (२) ढारस बँधाना। दिलासा देना। तसल्ली देना। आश्वासन देना। जैसे—(क) उसका घर ऐसा सत्यानाश हुआ कि कोई आँसू पोछनेवाला भी न रहा। (ख) हमारा सारा रुपया मारा गया, आँसू पोछने के लिये १००) मिले हैं।—आँसू भर आना = आँसू निकल पडना। आँसू भर लाना = रोने लगना। जैसे,—यह सुनते ही वह आँसू भर लाया। आँसू का तार बँधना = बराबर आँसू बहना। आँसुओ से मुँह धोना = बहुत आँसू गिराना। बहुत रोना। अत्यत विलाप करना।

आँसूढाल—सज्ञा पुं० [हिं० आँसू + ढालना] घोडो और चौपायो की एक बीमारी जिसमे उनकी आँखो से आँसू बहा करता है।

आँहड—सज्ञा पुं० [सं० आ + भांड] बरतन।

आँहड बाँहड†—वि० [प्रा० आहंड = खोजना, भटकना + विहड = टूटना, बिखरना] तितरबितर। ऊबडखाबड।

आँहाँ—अव्य [हिं० ना + हाँ] नही।

विशेष—यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर मे जीभ हिलाने के श्र से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पडता है।

आ[1]—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थों मे होता है। जैसे—(क) सीमा—आसमुद्र = समुद्र तक। आमरण = मरण तक। आजानुबाहु = जानु तक लबी बाहुवाला। आजन्म = जन्म से। (ख) अभिव्याप्ति—आपाताल = पाताल के अतर्भाग तक। आजीवन—जीवन भर। (ग) ईषत् (थोडा, कुछ) आपिंगल = कुछ कुछ पीला। आकृष्ण = कुछ काला। (घ) अतिक्रमण—आकालिक = बेमौसम का।

आ[2]—उप० [सं०] यह प्राय गत्यर्थक धातुओ के पहले लगता है और उनके अर्थों मे कुछ थोडी सी विशेषता कर देता है, जैसे,आ। आघूर्णन, आरोहण, आकपन, आघ्राण। जब यह 'गम' (जाना) 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुको के पहले लगता है, तब उनके अर्थों को उलट देता है, जैसे 'गमन' (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ले जाना) से 'आनयन (लाना), 'दान' (देना) से 'आदान' (लेना)।

आ[3]—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। पितामह।

आइदा[1]—वि० [फा० आइदह्] आनेवाला। आगतुक। भविष्य जैसे,—आइदा जमाना।

आइदा[2]—सज्ञा पुं० भविष्य काल। आनेवाला समय। जैसे—आइदा के लिये खबरदार हो रहो।

आइदा[3]—क्रि वि० आगे। भविष्य मे। जैसे,—हमने समझा दिया आइदा वह जाने उसका काम जाने।

यौ०—आइदे। आइदे को। आइदे मे। आइदे से। ये सबके क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं।

आइ(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी—मानस, १।२६९।

आइटम—सज्ञा पुं० [अ०] मद। उ०—बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटम मे दो चार लाख जादा लिखा देता है।—रगभूमि भा० २, पृ० ६०५।

आइडियल—वि० [अ०] श्रेष्ठ। आदर्श।

आइना†—सज्ञा पु० [फा० आइनह्] दे० 'आईना'। उ०—है निराला प्रभु-कला जिसमे बसी, वह निराला आईना है फूटता।—चोखे० पृ० २३।

आइस(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आइसु(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आई[1]—सज्ञा स्त्री० [स० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—सतयुग त्रे वर्ष की आई, त्रेता दश सहस्र कह गाई।—सूर (शब्द०)। २ मृत्यु। मौत (ना०) भरा कटोरा दूध का, ठढा करके पी। तेरी आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी।—(शब्द०)।

आई[2]—क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०

यौ०—आई गई = आकर गुजरी हुई बात।

मुहा०—आई गई करना = (१) बीती को बिसारना। (२) टाल जाना। उपेक्षा करना। आई गई होना = (१) घटित होकर गुजर जाना। २ अनुपस्थित होना।

आई[३]†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्यिका, प्रा० अज्जिआ] १ पितामही। दादी। २ माँ।

आई[४]—प्रत्य० [हिं०] १ एक प्रत्यय जो भाववाचक सज्ञा बनाने के लिये विशेषण शब्दो के अत मे जोडा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', 'बडा' से 'बडाई', 'छोटा' से 'छुटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि। २ एक प्रत्यय जो धातुओ में लगकर भाववाचक सज्ञाएँ बनाता है। जैसे, 'पढ' 'पढाई', लिखा से ,लिखाई', 'लड से' लडाई 'भिड' से 'भिड़ाई' आदि।

आईन—सज्ञा पुं० [फा०][वि० आईनी] १ नियम। विधि। कायदा। जाब्ता। २ कानून। राजनियम।

यौ०—आईनदाँ—वकील। कानून जाननेवाला।

आईना—सज्ञा पुं० [फा० आईनह्] १ आरसी। दर्पण। शीशा।

यौ०—आईनादार। आईनाबदी। आइनासाज। आइनासाजी।

मुहा०—आईना होना = स्पष्ट होना। जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी। आईने मे मुँह देखना—अपनी योग्यता को जाँचना। (यह मुहावरा उस समय बोला जाता है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है, जैसे,—पहले आइने मे अपना मुँह तो देख लो, फिर बात करना।

२ किवाडे का दिलहा। वि० दे० 'दिलहा'।

यौ०—आईनेदार = वह किवाडा जिसमे आईना या दिलहा हो।

आईनादार—सज्ञा पुं० [फा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे। नाई। हज्जाम।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारो पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले मे लोगो से कुछ ईनाम पाता है।

आईनाबदी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ कमरे या बैठक मे झाड़ फानूस आदि की सजावट। २ कमरे या घर के फर्श मे पत्थर या ईंट की जुडाई। ३. रोशनी करने के लिये तरतीब से टट्टियाँ खडी करना।

आईनासाज—सज्ञा पुं० [फा० आईनह्+साज] आईना बनानेवाला।

आईनासाजी—सज्ञा स्त्री० [फा० आईनह्साजी] १ काँच की चद्दर के टुकडे पर कलई करने का काम। २ आइनासाज का पेशा

आईनी—वि० [फा० आईन] कानूनी। राजनियम के अनुकूल।

आउस—सज्ञा पुं० [अ०] एक अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है। एक ठोस वस्तुओ के तौलने मे और दूसरा द्रव पदार्थों के नापने मे काम आता है। तौलने का आउस हिंदुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है। ऐसे बारह आउसो का एक पाउड होता है। नापने का आउस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ बूँदो का होता है।

आउ(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० आयु] जीवन। उम्र। उ०—एहि बन रहत गई हम्ह आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ।—जायसी ग्र०, पृ० २७। (ख) सकट मुकुत को सोवा जानि जिय रघुराउ। सहस द्वादस पचमत मे कछुक है अब आउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२२।

आउज(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आतोद्य प्रा० आओज्ज, आवज्ज] बाजा। उ०—घटा-घटि पखाउज-आउज झाझ बेनु डफ-तार। नूपुर धुनि-मजीर मनोहर करकन-झनकार।—तुलसी ग्र०, २६५।

आउझ(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आतोद्य, प्रा० आवज्ज] दे० 'आउज'।

आउट—वि० [अ०] खेल मे हारा हुआ। बहिर्भूत।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेल मे बोला जाता है। जब बल्लेवाले किसी खिलाडी के खेलते समय गेंद विकेट मे लग जाती है वा बल्ले से मारी हुई गेंद लोक ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रख देता है।

आउवाउ(पु)†—सज्ञा पुं० [सं० वायु > आउ अनु०] अंड बड बात। अनर्थक शब्द। असबद्ध प्रलाप।

क्रि० प्र०—बकना। उ०—मानस मलीन करनत्र कलिमल पीन जीह हू न जपेउ नाम बकेउ आउवाउ मैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

आउस—सज्ञा पुं० [सं० आशु बँग० आउस] धान का एक भेद जो बगाल मे मई जून मे बोया जाता है और अगस्त सितबर मे काटा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या लेपी। नदई। ओसहन।

आऊपा(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० आयुष्य] उम्र। अवस्था। उ०—उनासिए पुरी अवतरी। तिन आऊपा पूरी करी।—अर्ध० पृ० ५७।

आकप—सज्ञा पुं० [सं० आकम्प] दे० 'आकपन' [को०]।

आकपन—सज्ञा पुं० [सं० आकम्पन] [वि० आकपित] काँपना। काँकी।

आकपित—वि० [स० आकम्पित] काँपा हुआ। हिला हुआ।

आक[१]—सज्ञा पुं० [स० अर्क, प्रा० अक्क] मदार। अकौआ। अर्कवन। उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी। आक जवास भई तम भूरी।—जायसी ग्र०, पृ० १५३। (ख) कबिरा चदन बीरवै, बेधा आक पलाश। आप सरीखा कर लिया, जो होते उन पास।—कबीर (शब्द०)। (ग) देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोलानाथ जोगी अब औढर ढरत है।—तुलसी ग्र० पृ० २३७।

मुहा०—आक की बुढिया = (१) मदार का घूआ। (२) बहुत बूढ़ी स्त्री।

आक[२](पु)—वि० [स० अक = दुख] दुखी। उ०—आक करम भेषज बिदित, लखत नही मतिहीन। तुलसी मठ अकबस बिहठि दिन दिन दीन मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

आकडा—सज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आक+डा (रत्न०)] मदार। अकौआ। अर्क।

आकन†—सज्ञा पुं० [सं० आकरण = खोदना] १ घास फूस, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते है। २ जोते हुए खेत से घास फूस निकालने की क्रिया। चिखुरना।

आकबत—सज्ञा स्त्री० [अ० आकबत] मरने के पीछे अवस्था। परलोक। जैसे,—बाबा, दिया लिया ही आकबत मे काम आवेगा।

यौ०—आकबतअ देश। आकबतअ देशी।

क्रि० प्र० बिगड़ना = (१) परलोक बिगडना। परलोक नष्ट

होना। (२) अजाम बिगडना। बुरा परिणाम होना।—बिगाड़ना।

मुहा०—आकवत मे दिया दिखाना=परलोक मे काम आना।

आकवतअंदेश—वि० [अ० आकबत+फा० अंदेश] परिणाम सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदेश। दीर्घदर्शी।

आकवतअंदेशी—सज्ञा स्त्री० [आकबत+फा० अंदेशी] परिणाम का विचार। परिणामदर्शिता। दीर्घदर्शिता। दूरदेशी।
क्रि० प्र०—करना।

आकवतीलगर—सज्ञा पु० [अ० आकबत+फा० ई० (प्रत्य०)+हिं० लगर] एक प्रकार का लगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की रस्सियो या रिगिन के पास बीच के टूटक मे रहता है और आफत के वक्त डाला जाता है।

आकवाक—सज्ञा पुं० [प्रा० *वक्कइ>√वक मे अनुध्व०] अकबक। अकबड बात। ऊटपटाँगबात। उ०—(क) आकवाक बकि और की वृथा न छाती छोल।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७३७।

आकर[1]—सज्ञा पु० [स०] १ खानि। उत्पत्तिस्थान। उ०—सदा-सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति। प्रगटी सुदर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति।—मानस, १।६५। २ खजाना। भाडार।

यौ०—गुणाकर। कमलाकर। कुसुमाकर। करुणाकर। रत्नाकर।

३ भेद। किस्म। जाति। उ०—आकर चारि लाख चौरासी जाति जीव जल थल नभवासी।—मानस, १।८। ४ तलवार के बत्तीस हाथो मे से एक। तलवार चलाने का एक भेद।

आकर[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ अधिक। उ०—चपा प्रीति जो तेल है, दिन दिन आकर दाम। गलि गलि आप हेराय जो, मुए न छाँडै पास।—जायसी (शब्द०)। ३ गणित। गुणा। जैसे, पाँच आकर, दस आकर। उ०—अस भा सूर पुरुष निरमरा। सूर जाहि दस आकर करा।—जायसी (शब्द०)। ४ दक्ष। कुशल। व्युत्पन्न।

आकरकढा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आकरकरहा'।

आकरकरहा—सज्ञा पु० [अ०] एक जडी जिसे मुँह मे रखने से जीभ मे चुनचुनाहट होती है और मुँह से पानी निकलता है। यह एक वृक्ष की लकडी है। आकरकढा। दे० 'अकरकरा'।

आकरखाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आकर्षना'।

आकरिक[1]—वि० [सं०] खान खोदनेवाला।

आकरिक[2]—सज्ञा पु० वह मनुष्य जो खान को स्वय खोदे या औरो से खोदावे और उसमे धातु निकाले।

आकरी[1]—वि० [स० आकर=खान (धातु और पत्थर आदि की)] कठोर। उ०—नारी बोलै आकरी तब दुख पावै नाह। सुदर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७०७।

आकरी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० आकर+ई० (प्रत्य०)] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न छर कछु कसब कबारु है।—तुलसी ग्र०, पृ० ११२।

आकरी[3]—सज्ञा पु० [सं० आकरिन्] दे० 'आकरिक'।

आकर्ण—वि० [सं०] कान तक फैला हुआ।

यौ०—आकर्णचक्षु। आकर्णकृष्ट।

आकर्णन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आकर्णित] सुनना। कान करना अकनना।

आकर्णित—वि० [स०] सुना हुआ।

आकर्ष—सज्ञा पुं० [स०] १ एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह जाना। खिचाव। कशिश।

क्रि० प्र०—करना—खीचना। उ०—तैसे ही भुवभार उतारन हरि हलधर अवतार। कालिदी आकर्ष कियो हरि मारे असुर अपार।—सूर। (शब्द०)।

२ पासे का खेल। ३ बिसात जिसपर पासा खेला जाय चौपड। ४ इद्रिय। ५ धनुष चलाने का अभ्यास। ६ कसौटी। ७. चुबक।

आकर्षक[1]—वि० [सं०] १ वह जो दूसरे को अपनी ओर खीचे आकर्षण करनेवाला। खीचनेवाला। २. सुदर।

आकर्षक[2]—सज्ञा पुं० चुबक [को०]।

आकर्षण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आकर्षित, आकृष्ट] १ किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के पास उसकी शक्ति या प्रेरणा से लाया जाना। २ खिचाव। ३ तत्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा दूर देशस्थ पुरुष या पदार्थ पास मे आ जाता है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—आकर्षण मंत्र। आकर्षण विद्या। आकर्षण शक्ति।

आकर्षणशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खीचते हैं।

विशेष—यह शक्ति प्रत्येक परमाणु मे रहती है। क्या कारण, क्या कार्य रूप मे सब परमाणु या उनसे उत्पन्न सब पदार्थों की ओर आकृष्ट होते हैं। इसी से द्व्यणु, त्रसरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का सगठन होता है। इसी से पाषाणादि के परमाणु आपस मे जुडे रहते हैं। पृथ्वी के ऊपर ककड, पत्थर तथा जीव आदि सब इसी शक्ति के बल से ठहरे रहते हैं। जल के चद्रमा की ओर आकृष्ट होने से समुद्र मे ज्वार आता उठता है। बडे बडे पिंड, ग्रहमडल, सूर्य, चद्रादि सब इसी शक्ति से आकाशमडल मे निराधार स्थित हैं और सब अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं। पृथ्वी भी इसी शक्ति से बृहत् वायुमडल को धारण किए हुए है। सूर्य से लेकर परमाणु तक मे यह शक्ति विद्यमान है। यह शक्ति भिन्न भिन्न रूपो से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओ मे काम करती है मात्रानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी पदार्थ पर पडता है। धारण या गुरुत्वाकर्षण, चुबकाकर्षण, सलग्न कर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्षण आदि इनके कई प्रभेद है।

आकर्षणी—सज्ञा पु० [स०] १ एक लग्गी जिससे फल फूल तोडते हैं अँकुसी। लकसी। २ प्राचीन काल का एक सिक्का। ३ शरीर पर धारण की जानेवाली विशेष प्रकार की मुद्रा या चिह्न (को०,

आकर्षन(ग्रा)—सज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण'।

आकर्षना(ग्रा)—क्रि० स० [सं० अकर्षण से नाम०] खींचना। उ०—आकरष्यो धनु करन लगि, छाँडे शर इकतीस।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कालिंदी को निकट बुनायो जलक्रीडा के काज। लियो आकरषि एक छन मे हलि कति समरथ यदुराज। —सूर (शब्द०)।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आकर्षिकी] दे० 'आकर्षक' [को०]।

आकर्षित—वि० [सं०] खीचा हुआ।

आकलन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकलनीय, आकलित] १ ग्रहण। लेना। २ सग्रह। बटोरना। सचय। इकट्ठा करना। ३ गिनती करना। ४ अनुष्ठान। सपादन। ५ अनुसधान। जाँच। ६ इच्छा। कामना [को०]। ७ वर्णन करना [को०]।

आकलना—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'आकलन'। २ पूजा। अर्चित[को०]

आकलनीय—वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य। लेने योग्य। २ सग्रह करने योग्य। ३ गिनती करने योग्य। ४ अनुष्ठान करने योग्य। ५ जाँचने योग्य। पता लगाने योग्य।

आकलित—वि० [सं०] १ लिया हुआ। पकडा हुआ। २ ग्रथित। गूँथा हुआ। ३ गिना हुआ। परिगणित। ४ अनुष्ठित। सपादित। कृत। ५ अनुसधान किया हुआ। जाँचा हुआ। परीक्षित।

आकली[1]†—सज्ञा स्त्री० [सं० आकुल+ई (प्रत्य०) या सं० आकल्य= बीमारी] आकुलता। बेचैनी।

आकली[2]—सज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकल्प[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ वेश रचना। सिंगार करना, जैसे, रत्नाकल्प। २ पोशाक। पहनावा [को०]। ३ बीमारी (को०)। ४ जोडना। बढाना [को०]।

आकल्प[2]—क्रि० वि० कल्प पर्यंत।

आकल्य—सज्ञा पु० [सं०] बीमारी। अस्वस्थता [को०]।

आकष—सज्ञा पुं० [सं०] कसौटी।

आकसमात(ग्रा)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'। उ०—पथी माँहि पथ चलि आयो आकसमात।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५८।

आकस्मात(ग्रा)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो विना किसी कारण के हो। जो अचानक हो। सहसा होनेवाला। जिसके होने का पहले से अनुमान न हो।

यौ०—आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी=अचानक काम से ली जानेवाली छुट्टी।

आकाक्षक—वि० [सं० आकाङ्क्षक] इच्छा रखनेवाला। अभिलाषा करनेवाला।

आकाक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाङ्क्षा] [वि० आकाक्षक आकांक्षित, आकाक्षी] १ इच्छा। अभिलाषा। वाछा। चाह। २ अपेक्षा। ३ अनुसधान। ४ न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार प्रकार के हेतुओं में से एक।

विशेष—वाक्य मे पदो का परस्पर सबध होता है और इसी सबध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। जब वाक्य मे एक पद का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह कहते है कि इस पद के ज्ञान की आकाक्षा है, जैसे,—'देवदत्त आया' इस वाक्य मे आया पद का ज्ञान देवदत्त के ज्ञान के आश्रित है।

५. जैनियो के अनुसार एक अतिचार। जैनियों के अतिरिक्त अन्य मतवालो की विभूति देख उसे ग्रहण करने की इच्छा।

यौ०—आकांक्षातिचार।

आकाक्षित—वि० [वि० आकाङ्क्षित] १ इच्छित। अभिलषित। वाछित। २ अपेक्षित।

आकाक्षी—वि० [सं० आकांक्षिन्] [वि० स्त्री० आकाक्षिणी] १ इच्छा रखनेवाली। इच्छुक। चाहनेवाला। २ खोज करनेवाला।

आका[1]†—सज्ञा पुं० [सं० आकाय] १ कौवा। पखान। २ बट्टी। ३ पजाबा। आँवा।

आका[2]—सज्ञा पुं० [अ० आका] मालिक। स्वामी।

आकाश—सज्ञा पुं० [सं०] १ चिदा की अग्नि। २ चिता। ३ आवास। निवास [को०]।

आकार[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरूप। आकृति। मूर्ति। रूप। मूरत। २ ढाँचा ढाँचा। गढ। ३ बनावट। सगठन। ४ निर्माण। सिरजन। ५ चेष्टा। ६ 'आ' वर्ण। ७ तुरग। ८ प्रकार। ढग। उ० सुदर कर आनना सोभित, अति राजत दोइ आकार। जलरुह मनो बैर बिधु सो तजि, मिलत एक उपहार। —सूर०, १०।२८३।

यौ०—आकारगुप्ति। आकारगोपन=हृदय या मन के भाव को कल्पित चेष्टा से छिपाना।

आकार[2]—वि० रूपवाला। साकार। उ०—कोई आकार कहै कोई निराकार कहै तत्व की छोडि नितत्व धाई।—कबीर रे०, पृ० २८।

आकारण—सज्ञा पुं० [सं०] १ आह्वान। बुलावा। २ चुनौती [को०]।

आकारवान—वि० [सं० आकारवत्] १ आकार या शरीरवाला। २ सुगठित। सुदर [को०]।

आकारात—वि० [सं० आकारान्त] जिसके अत मे 'आ' स्वर हो [को०]।

आकारित—वि० [सं०] १ आहूत। २. स्वीकृत। ३. माँगा या चाहा हुआ [को०]।

आकारी(ग्रा)—वि० [सं० आकरण=आह्वान] [स्त्री० आकारिणी] आह्वान करनेवाला। बुलानेवाला। उ०—गौर मुख हिम किरण की जु किरणावली अवत मधुमान हिय पियत रगी। नागरी सकल सकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होति पगी।—नागरी० (शब्द०)।

आकारीठ(ग्रा)—सज्ञा पुं० [सं० आकारण=बुलाना] सग्राम। युद्ध। (डिं०)

आकाश—सज्ञा पुं० [सं०] १. अतरिक्ष। आसमान। गगन। ऊँचाई पर का वह चारो ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और शून्य दिखाई देता है। जैसे,—पक्षी आकाश मे उड रहे हैं। २ साधारणत वह स्थान जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ न हो, जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बडी देर तक आकाश मे ठहरा रहा। ३ शून्य स्थान। वह अनत विस्तृत अवकाश

जिसमे विश्व के छोटे बडे सब पदार्थ, ग्रह, सूर्य, ग्रह उपग्रह आदि स्थित हैं और जो सब पदार्थों के भीतर व्याप्त है।

विशेष—वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यो मे गिना है। उसके अनुयायी भाष्यकार प्रशस्तपाद ने आकाश, काल और दिशा को एक ही माना है। यद्यपि सूत्र के १७ गुणो मे शब्द नही है, तथापि भाष्यकार ने कुछ और पदार्थों के साथ शब्द को भी ले लिया है। न्याय मे भी आकाश को पचभूतो मे माना है और उससे श्रोत्रेंद्रिय की उत्पत्ति मानी है। साख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। पाश्चात्य दार्शनिको में से अधिकाश ने आकाश के अनुभव और दूसरे पदार्थों के अनुभव के बीच वही भेद माना है जो वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव और व्यतीत पदार्थों या भविष्य सभावनाओ की स्मृति या चिंतन प्रसूत अनुभव मे है। काट आदि ने आकाश की भावना को अत करण से ही प्राप्त अर्थात् उसी का गुण माना है। उनका कथन है कि जैसे रगो का अनुभव हमे होता है, पर वास्तव मे पदार्थों मे उनकी स्थिति नही है, केवल हमारे अत करण मे है, उसी प्रकार आकाश भी है।

यौ०—आकाशकुसुम। आकाशगगा। आकाशचारी। आकाशचोटी। आकाशजल। आकाशदीपक। आकाशधुरी। आकाशध्रुव। आकाशनीम। आकाशपुष्प। आकाशभाषित। आकाशफल। आकाशबेल। आकाशमडल। आकाशमुखी। आकाशमूली। आकाशलोचन। आकाशवल्ली। आकाशवाणी। आकाशवृत्ति। आकाशव्यापी। आकाशास्तिकाय।

पर्या०—द्यौ। द्यु। अभ्र। व्योम। पुष्कर। अंबर। नभ। अंतरिक्ष। गगन। अनत। सुरवर्त्म। ख। त्रियत्। विष्णुपद। तारापथ। मेघाध्वा। महापिल। विहायस। मरुद्वर्त्म। मेघवेश्म। मेघवर्त्म। कुनाभि अक्षर। त्रिविष्टप। नाक। अनग।

मुहा०—आकाश की कोर = क्षितिज। आकाश खुलना = आसमान का साफ होना। बादल का जाना। बादल हटना। जैसे,—दो दिन की बदली के पीछे आज आकाश खुला है। आकाश छूना या चूमना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—काशी के प्रासाद आकाश छूते हैं। आकाश पाताल एक करना = (१) भारी उद्योग करना। जैसे,—जब तक उसने इस काम को पूरा नही किया, आकाश पाताल एक किए रहा। (२) आदोलन करना। हलचल करना। धूम मचाना। जैसे,—वे जरा सी बात के लिये आकाश पाताल एक कर देते है। आकाश पाताल का अंतर = बड़ा अंतर। बहुत फर्क। उ०—तौ भी इनमे उनमे आकाश और पाताल का अंतर है। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३। आकाश बाँधना = अनहोनी बात कहना। असभव बात कहना। उ०—कहा कहति डरपाइ कछू मेरौ घटि जैहै। तुम बाँधति आकाश बात झूठी को सैहै। —सूर (शब्द०)। आकाश से बातें करना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराव के धरहरे आकाश से बातें करते हैं।

४ अबरक। अभ्रक। ५ छिद्र। विवर [को०]। ६ (गणित मे) शून्य [को०]। ७ प्रकाश। स्वच्छता [को०]। ८ ब्रह्म [को०]।

आकाशकक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] आकाश मे वह मडल जहाँ तक सूर्य की किरणों का सचार है। सूर्यसिद्धात के अनुसार इस मडल की परिधि १८७१२०६९२००००००० योजन है।

आकाशकल्प—सज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म [को०]।

आकाशकुसुम—सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश का फूल। खपुष्प। अनहोनी बात। असभव बात।

आकाशगंगा—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाशगङ्गा] १ बहुत से छोटे छोटे तारो का एक विस्तृत समूह जो आकाश मे उत्तर-दक्षिण फैला है।

विशेष—इसमे इतने छोटे छोटे तारे हैं जो दूरबीन के ही सहारे दिखाई पडते हैं। खाली आँख मे उनका समूह एक सफेद सडक की तरह बहुत दूर तक दिखाई पडता है। इसकी चौडाई बराबर नही है, कही अधिक कही बहुत कम है। इसकी कुछ शाखाएँ भी कुछ इधर उधर फैली दिखाई पडती हैं। इसी से पुराणो मे इसका यह नाम है। देहाती लोग इसे आकाशजनेऊ, हाथी की डहर या केवल डहर अथवा दूधगगा कहते हैं।

२ पुराणानुसार वह गगा जो आकाश मे है।

पर्या०—मदाकिनी। त्रियद्गगा। स्वर्ग गा। स्वर्णदी। सुरदीर्घिका।

आकाशग[1]—वि० [स०] आकाशचारी [को०]।

आकाशग[2]—सज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

आकाशगगा—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगगा [को०]।

आकाशचमस—सज्ञा पुं० [स०] चद्रमा [को०]।

आकाशचारी[1]—वि० [सं० आकाशचारिन्] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश मे फिरनेवाला। आकाशगामी।

आकाशचारी[2]—सज्ञा पुं० १ सूर्यादि ग्रह नक्षत्र। २. वायु। ३. पक्षी। ४ देवता। ५. राक्षस।

आकाशचोटी—सज्ञा पुं० [सं० आकाश + हिं० चोटी] शीर्षबिंदु। वह कल्पित बिंदु जो ठीक सिर के ऊपर पडता है।

आकाशजननी—वि० आकाशजनयित्नु] दुर्ग आदि के प्राचीर मे बने झरोखे या छिद्र [को०]।

आकाशजल—सज्ञा पुं० [स०] १ वह जल जो ऊपर से बरसे। मेह का पानी।

विशेष—मघा नक्षत्र मे लोग बरसे हुए पानी को बरतनो मे भर कर रख लेते हैं। यह औषध के काम आता है। २ ओस।

आकाशदीप—सज्ञा पुं० [स०] आकाशदीया।

आकाशदीया—सज्ञा पुं० [स० आकाश + हिं० दीया] वह दीपक जो कार्तिक मे हिंदू लोग कडील मे रहकर एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बाँधकर जलाते हैं।

विशेष—कार्तिक माहात्म्य के अनुसार २१ हाथ की ऊँचाई पर दिया जलाना उत्तम है, १४ हाथ पर मध्यम और ७ हाथ पर निकृष्ट है।

आकाशधुरी—सज्ञा स्त्री० [स० आकाश + हिं० धुरी] खगोल का ध्रुव। आकाशध्रुव।

आकाशध्रुव—सज्ञा पुं० [सं०] आकाशधुरी।

आकाशनदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगगा।

आकाशनिद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] खुले हुए मैदान मे सोना।

आकाशनीम—सज्ञा स्त्री० [स० आकाश + हिं० नीम] एक प्रकार का पौधा जो नीम के पेड पर होता है। नीम का बाँदा।

आकाशपथिक--सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प--सज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष- यह उन नव बातो के उदाहरणो मे से है ।

आकाशफल--सज्ञा पुं० [सं०] सतान या लडका लडकी ।

आकाशबेल, आकाशबेलि--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+हिं० बेल] अमरबेल ।

आकाशभाषित-सज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय मे एक सकेत। बिना किसी प्रश्नकर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है। इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष--भारतेंदु हरिश्चद्र के 'विषस्य विषमौषधम्' मे इसका प्रयोग बहुत है। उ०--हरिश्चद्र--अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं। किसी को लेना हो तो लो। (इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्यो तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो ?" आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि ।—सत्य हरिश्चद्र ।

आकाशमडल--सज्ञा पुं० [सं० आकाशमडल] नभमडल। खगोल ।

आकाशमासी--सज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामासी [को०] ।

आकाशमुखी-सज्ञा पुं० [स० आकाश+हिं० मुखी] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं। ये लोग अधिकाश शैव होते हैं ।

आकाशमूली— सज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुभी । पाना ।

आकाशयान— सज्ञा पुं० [सं०]१ वह जो आकाशमार्ग से गमन करे। २ वायुयान । वैलून [को०] ।

आकाशयोधी—सज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लडाई कर रहे हो। [को०] ।

आकाशरक्षी--सज्ञा पु० [सं० आकाशरक्षिन्] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खडा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन--सज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहो की स्थिति या गति देखी जाती है। मानमदिर। आबजरवेटरी ।

आकाशवचन--सज्ञा पु० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमडल ।

आकाशवल्ली--सज्ञा स्त्री० [स०] अमरबेल ।

आकाशवाणी-सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें। देववाणी। २ बेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि । रेडियो ।

आकाशवृत्ति[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] अनिश्चित जीविका । ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति[2]--वि० [स० आकाशवृत्तिक] १ जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो। २ (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सीचा जा सकता हो ।

आकाशसलिल—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृष्टि । २ ओस [को०] ।

आकाशस्फटिक--सज्ञा पुं० [सं०] १ अोला । बनौरी । २ सूर्यकात या चद्रकात मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय—सज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार छह प्रकार के द्रव्यो मे से एक। यह एक अरूपी पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनो मे है और जीव तथा पुद्गल दोनो को स्थान या अवकाश देता है। आकाश ।

आकाशी--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+ई० (प्रत्य०)] वह चाँदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय-वि० [सं०] १ आकाशसबधी। आकाश का। २ आकाश मे रहनेवाले। आकाशस्थ। ३ आकाश मे होनेवाला। ४ दैवागत। आकस्मिक ।

आकास—सज्ञा पुं० [सं० आकाश] दे० 'आकाश'। उ०—तका राज विभीषन राजै ध्रुव आकास विराजै,। सूर०, १ । ३६ ।

आकासबानी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आकाशवाणी' उ०—सूर, आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है, करु तुहारा ।—सूर०, ६। ७६ ।

आकिंचन—सज्ञा पुं० [सं० आकिञ्चन]गरीबी। निर्धनता। अकिंचनता [को०] ।

आकिंचन —वि० दे० 'आकिंचन'। उ०—आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे सत जन, बिरले या ससार।—तुलसी ग्र०, पृ० १२ ।

आकिल—वि० [अ० आकिल] बुद्धिमान्। ज्ञानी। अक्लमद ।

आकिलखानी—सज्ञा पुं० [अ० आकिल+फा० खाँ (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कासापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काफरेजी रग ।

आकीर्ण[1]—वि० [सं०] १ व्याप्त। पूर्ण। भरा हुआ। २ बिखरा या फैला हुआ। [को०] ।

यौ०—कटकाकीर्ण। जनाकीर्ण ।

आकीर्ण[2]--सज्ञा पुं० भीड [को०] ।

आकुंचन—सज्ञा पुं० [स० आकुञ्चन] [वि० आकुंचनीय आकुंचित] १ सिकुडना। बटुरना। सिमटना। सकोच। २. वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का सिकुडन। ३ ढेर लगाना [को०]। ४ टेढा करना [को०]। ५ सेना का एक विशेष प्रकार का बढाव [को०] ।

आकुंचनीय-वि० [सं० आकुञ्चनीय] सिकुडने योग्य। सिमटने योग्य।

आकुंचित—वि० [सं० आकुञ्चित] १ सिकुडा हुआ। सिमटा हुआ। २. टेढा। कुटिल। वक्र ।

आकुठन—सज्ञा पुं० [स० आकुण्ठन] [वि० आकुंठित] १ गुठला होना। कुद होना। लज्जा। शर्म ।

आकुंठित—वि० [सं० आकुण्ठित] १ गुठला। कुद। २ लज्जित। शर्माया हुआ। ३. स्तब्ध। जड। जैसे,—उनकी बुद्धि आकुंठित हो गई है ।

आकुट्टी हिंसा-सज्ञा स्त्री० [प्रा० आकुट्टी+सं० हिंसा] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्ध कर्म करना जिससे किसी प्राणी को दुःख हो ।

आकुल[1]—वि० [सं०] [सज्ञा आकुलता] २ व्यग्र। घबराया हुआ। उ०—भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे मे।—दिल्ली०, पृ० २१। २ व्यस्त। बिखरा हुआ। जैसे,—केश। ३ उद्विग्न। क्षुब्ध। ४. विह्वल। कातर। ५ अस्वस्थ। ६. व्याप्त। सकुल। ७ तारतम्यहीन। जिसका कोई ठीक सिलसिला न हो [को०]। ८. जगली। ऊबड खाबड [को०]।

आकुल[2]—सज्ञा पु० [स०] १ खच्चर। २ आबाद जगह [को०]।

आकुलता—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आकुलित] १ व्याकुलता। घबराहट। उ०—वह आकुलता अब कहाँ रही जिसमे सब कुछ ही जाय भूल।—कामायनी, पृ० १४५। २ व्याप्ति।

आकुलत्व—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आकुलता' [को०]।

आकुलित—वि०[सं०]१ व्याकुल। घबराया हुआ। उ०—अब साध्य मलय आकुलित दुकूल कलित हो, यो छिपते हो क्यो।—चंद्र० पृ० ६३।

आकूणित—वि० [सं०] ईषत् सकुचित [को०]।

आकूत—सज्ञा पुं० [स०] १ आशय। अभिप्राय २ हार्दिक भावना [को०]। ३ कामना इच्छा [को०]।

आकूति—सज्ञा पु० [सं०] १ अभिप्राय। आशय। मतलब। २. पुराणानुसार मनु की तीन कन्यायो मे से एक जो रुचि प्रजापति को व्याही थी। ३ उत्साह। अध्यवसाय। ४ सदाचार। आप्तरीति। ५ कर्मेंद्रिय[को०]। ६ वायुपुराण के अनुसार एक कल्प का नाम [को०]।

आकूती—सज्ञा स्त्री० [सं० आकूति] स्वायभुव मनु की तीन कन्याओ मे से एक।

आकृत[1]—वि० [स०] व्यवस्थित। निर्मित। गठित। २ समीप लाया हुआ [को०]।

आकृत[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] मूर्ति। रूप।

आकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बनावट। गढन। ढाँचा। २ अवयव। विभाग। उ०—जानु सुजघन करभकर आकृति, कटि प्रदेस किंकिन राजै।—सूर०, १। ६९।

विशेष—इसका प्रयोग हिंदी मे चेतन के लिये अधिक और जड़ के लिये कम होता है।

२ मूर्ति। रूप। ३ मुख। चेहरा। जैसे,—उसकी आकृति बडी भयावनी है। ४ मुख का भाव। चेष्टा। जैसे,—मरते समय उस मनुष्य की आकृति बिगड़ गई। ५ २२ अक्षरो का एक वर्णवृत्त। मदिरा। हँसी। भद्रक। मदारमाला इसका भेद है। यह यथार्थ मे एक प्रकार का सवैया है। उ०—भामत गौरि गुसाँइन को वर राम धनू दुइ खड कियो। मालिनि को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकि मेलि दियो। रावन की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लक कियो। राम वरी सिय मोदभरी नभ मे सुर जै जैकार कियो।—(शब्द०)। ६ जातिविशेष [को०]। ७. (गणित मे) २२ की सख्या [को०]।

यौ०—आकृतिगण। आकृतिच्छत्रा। आकृतियोग।

आकृष्ट—वि० [सं०] खीचा हुआ। आकर्षित।

आकृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिचाव। २ (ज्योतिष मे) गुरुत्वाकर्षण। ३ धनुष की डोरी का खिचना। ४ तत्रोक्त आकर्षणक्रिया [को०]।

आकेकर—वि० [सं०] अर्धोन्मीलित (नेत्र) [को०]।

आकोकर—सज्ञा पु० [स०] मकर राशि [को०]।

आकोप—सज्ञा पुं० [सं०] ईषत् कोप। जरा सा गुस्सा [को०]।

आकौशल—सज्ञा पुं० [स०] कुशलता का अभाव [को०]।

आक्रद—सज्ञा पु० [सं० आक्रन्द] १ रोदन। रोना। २ चिल्लाना। चीखना। चिल्लाहट। ३ बुलाना। पुकार। ४ मित्र। भाई। बधु। ५ चोर युद्ध। कडी लडाई। ६ ध्वनि। आवाज। शब्द। ७ ग्रहयुद्ध मे किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था। ८ प्रधान शत्रु के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्रंदन—सज्ञा पुं० [स० आक्रन्दन] १ रोना। २ चिल्लाना।

आक्रंदिक—वि० [सं० आक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ से चिल्लाहट सुनाई दे [को०]।

आक्रदित[1]—वि० [स० आक्रन्दित] १ जोर जोर से रोने चिल्लानेवाला। २ आहूत (सहायतार्थ) [को०]।

आक्रदित[2]—सज्ञा पु० १ जोर की चिल्लाहट। २ पश्चात्ताप। रोना पीटना [को०]।

आक्रदी—वि० [सं० आक्रन्दिन्] रोने चिल्लानेवाला [को०]।

आक्रम(ण्)—सज्ञा पु० [स० आक्रम=परास्त करना] १ पराक्रम। शूरता। (डिं०)। २ दे० 'आक्रमण'।

आक्रमण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रांत] १. बलपूर्वक सीमा का उल्लघन करना। हमला। चढाई। धावा। जैसे,—महमूद ने कई बार भारत पर आक्रमण किया। २. आघात पहुँचाने के लिये किसी पर झपटना। हमला। जैसे,—डाकुओ ने पथिको पर आक्रमण किया। ३ घेरना। छेंकना। मुहासिरा। ४ आक्षेप करना। निंदा करना। जैसे,—इस लेख मे लोगो पर व्यर्थ आक्रमण किया गया है। ५ निकट जा पहुँचना [को०]। ६ भोजन [को०]। ७ शक्ति [को०]।

आक्रमणकारी—वि० [सं० आक्रमणकारिन्] [स्त्री० आक्रमणकारिणी] आक्रमण करनेवाला। आक्रामक।

आक्रमित—वि०[सं० आक्रमिता] जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्रमितानायिका—सज्ञा स्त्री०[सं०] वह प्रौढा नायिका जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने प्रिय को वश मे करे।

आक्रय—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी। २ व्यापार [को०]।

आक्रात—वि० [स० आक्रान्त] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो। जिसपर हमला हुआ हो। २ घिरा हुआ। आवृत्त। छिका हुआ। ३ वशीभूत। पराजित। विवश। ४. पीडित। दलित। दबाया हुआ। ५ व्याप्त। आकीर्ण। ६ प्राप्त [को०]। ७. सज्जित [को०]।

यौ०—आक्रातनायिका=वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत लिया गया हो। आक्रातमति=जिसकी मति मारी गई हो।

आक्राति—सज्ञा स्त्री० [आक्रान्ति] १ उपद्रव। उपद्रव। उद्रव। २. अधिकार करना [को०]। ३ दबाना। चाँपना [को०]। ४. ऊपर चढना [को०]। ५. शक्ति। ताकत [को०]।

विशेष–भिन्न भिन्न तत्वो के सयोग से भिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिंक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

आक्सीजन - सज्ञा पुं० [अ०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओषजन।

विशेष--यह रूप, रस, गधरहित पदार्थ है और वायुमडलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी मे घुल जाता है। यह जल मे ८९ फी सदी होता है। धातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियो के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह बहुत से पदार्थो मे सयुक्त रूप मे मिलता है।

आखडल--सज्ञा पु० [स० आखण्डल] इद्र।

आख--सज्ञा पु० [सं०] खता। खती। रमा।

आखण--वि० [स०] (खोदने या खनने मे) कडा। जैसे,–पत्थर [को०]।

आखत(५)†--सज्ञा पु० [स० अक्षत, प्रा० अक्खत] १ अक्षत। उ०--सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ४५७। २ चदन या केसर मे रँगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूल्हा दुलहिन के माथेपर विवाह के समय लगाया जाता है। ३ वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजो को विवाहादि अवसरो पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष मे देते है।

आखता--वि० [ला० आखता] जिसके अडकोश चीरकर निकाल लिए गए हो। बधिया।

विशेष--यह शब्द प्राय घोडे के लिये प्रयुक्त होता है, पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बकरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन[1](५)--क्रि० वि० [स० आ+क्षण] प्रति क्षण। हर घडी।

आखन[2]--सज्ञा पु० [स०] दे० 'आख' [को०]।

आखना[1](५)–क्रि० स० [स० आख्यान, प्रा० आक्खान, प० √आखना] उ०—कहना। बोलना। उ०--(क) बार बार का आखिये, मेरे मन की सोय। कलि तो ऊखल होयगी, साढ और न होय।— कबीर (शब्द०)। (ख) सत्यसध साँचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए सही, जे फल अभिलाखे।—तुलसी (शब्द०)।

आखना[2]--क्रि० स० [स० आकाक्षा] चाहना। इच्छा करना। उ०--तोहि सेवा बिछुरन नहिं आखौं। पीजर हिये घालि कै राखौं। --जायसी ग्र०, पृ० २२।

आखना[3]--क्रि० स० [स० अक्षि, प्रा० आखि=आँख] देखना। ताकना। उ०--अलक, भुअगिन अधरहि आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।--जायसी।— (शब्द०)। (ख) आत्म और विषै को सुख वाच्य पद आनद को। विषै सुख त्यागि आतम सुख लक्ष्य आखिये।--निश्चल (शब्द०)।

आखना[4]--क्रि० स० [हिं० आखा] मोटे आटे को आखो मे डालकर चालना। छानना।

आखनिक--सज्ञा पुं० [स०] १ खनक। २ चूहा। ३ शूकर। ४ चोर। ५ कुदाल [को०]।

आखर[1](५)—सज्ञा पुं० [स० अक्षर, प्रा० अक्खर] अक्षर। उ०—(क) तब चदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।—जायसी ग्र०, पृ० ८४। (ख) कविहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।--मानस, २।२४०।

क्रि० प्र०—देना=बात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर[2]--सज्ञा पु० [स०] १ फावडा। कुदाल। २ खनक। ३ जानवर की माँद। बिवर। ४ अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा[1]--सज्ञा पु० [स० आक्षरण=छानना] झीने कपडे से मढा हुआ एक मेडरेदार बरतन जिसमे मोटे आटे को रखकर चालने से मैदा निकलता है। एक प्रकार की चलनी। आँधी।

आखा[2]--सज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा[3]--वि० [स० अक्षय, प्रा० अक्खय] १ कुल। पूरा। समूचा। समस्त। उ०--कहियै जिय न कछू मन राखौ। लाँबी मेलि दई हैं तुमको, बकत रहौ दिन आखौ।--सूर०, १।३५४०। जैसे,—उसे आज आखा दिन बिना खाए बीता। २ अनगढा। समूचा। जैसे,--आखा लकडी (लश्करी)।

आखातीज –सज्ञा स्त्री० [स० अक्षयतृतीया] वैशाख सुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष--इस दिन हिंदुओ के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणो को पखे, सुराहियाँ, कचडी, आदि ठढक पहुँचानेवाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी--सज्ञा स्त्री० [स० अक्षयनवमी] कार्तिक शुक्ला नवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर[1]– वि० [फा० आखिर] अतिम। पीछे का। पिछला।

यौ०—आखिर जमाना। आखिर दम।

आखिर[2]– सज्ञा पुं० १ अत। जैसे,—आखिर को वह ले के टला। २ परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,—इस काम का आखिर अच्छा नही।

आखिर[3]—वि० समाप्त। खतम। उ०—उपजै औ पालै अनुसरै। बावन अक्षर आखिर करै।—कबीर (शब्द०)।

आखिर[4]--क्रि० वि० १ अत मे। अत को। जैसे,--(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पडा। (ख) वह कितना ही क्यो न बढ जाय, आखिर है तो नीच ही। २ हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,—जब उसने किसी तरह नही माना, तब आखिर उसके पैर पडना पडा। ३ अवश्य। जरूर। जैसे,—आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४ भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे –अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार--क्रि० वि० [फा० आखिरकार] अत मे। अजाम को। अत को। जैसे –सुनते सुनते आखिरकार उससे नही रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत--सज्ञा स्त्री० [अ० आखिरत] १ परलोक। २ आय। ३ फल। [को०]।

आखिरी-वि० [फा०आखिरी] अतिम। सबसे। पिछला। उ०–केशव को लगना, स्यात्, आखिरी घाव अभी तक बच रही है। -राम० पृ० ३१।

आखु--सज्ञा पुं० [सं०] १ मूसा। चूहा।

यौ०--आखुकर्णपर्णिका, आखुकर्णी, आखुपर्णिका, आखुपर्णी=

मूसाकानी लता। आखुग, आखुपत्र, आखुभुक्=बिलार। आखुरथ=आखुवाहन=गणेश।

२ देवताल। देवहाड। ३. सूअर। शूकर। ४ कुदाल। फावडा [को०]। ५. चोर [को०]। ६ कृपण। कजूस [को०]।

आखुकरीष—संज्ञा पु० [सं०] वाल्मीक [को०]।

आखुघात—संज्ञा पुं० [सं०] मूस पकडने या मारनेवाला। मुसहर [को०]।

आखुपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुबक पत्थर। २ सखिया नामक विष।

आखुवाहन—संज्ञा पु० [स० आखुवाहन] गणेश। उ०—अभिलाष लाख लाहन समुझि राखु आखुवाहन हृदय।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १।

आखुभुक् संज्ञा पुं० [स०] बिडाल। बिलार [को०]।

आखुविषहा—संज्ञा पु० [स०] देवताली लता [को०]।

आखेट—संज्ञा पु० [स०] अहेर। शिकार। मृगया।

आखेटक[1]—संज्ञा पु० [स०] शिकार। अहेर।

आखेटक[2]—वि० [स०] शिकार करनेवाला। शिकारी। अहेरी।

आखेटिक[1]—वि० [स०] १ कुशल शिकार करनेवाला। २ भयानकी। डरावना [को०]।

आखेटिक[2]—संज्ञा पुं० १ शिकारी। २ शिकारी कुत्ता [को०]।

आखेटी—वि० [स० आखेटिन][वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी। अहेरी।

आखोट—संज्ञा पु० [स० आक्षोट] अखरोट।

आखोर[1]—संज्ञा पु० [तु० आखोर] १ जानवरों के खाने से बची हुई घास या चारा। पखोर। २ चरनी। ३ जानवरों के पानी पीने का हौद। ४ कूडा करकट। ५. निकम्मी वस्तु। सडी गली चीज।

मुहा०—आखोर की भरती=(१) निकम्मों का समूह। (२) निकम्मी चीजों का अटाला।

आखोर[2]—वि० १ निकम्मा। बेकाम। २. सडा गला। रद्दी। ३. मैला कुचैला।

आख्या—संज्ञा स्त्री० [स०] १ नाम। २ कीर्ति। यश। ३ विवरण। व्याख्या। ४ आकृति। चेहरा [को०]। ५. सौंदर्य। गरिमा [को०]।

आख्यात[1]—संज्ञा पु० [स०] १ तिङत क्रिया। २ राजवंश के लोगों का वृत्तांत। ३ प्रयाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०]।

आख्यात[2]—वि० १ प्रसिद्ध। नामवर। विख्यात। २ कहा हुआ। उक्त।

आख्यातव्य—वि० [स०] वर्णन करने योग्य। कहने योग्य। बयान करने लायक।

आख्याता—वि० [स० आख्यात] कहनेवाला। उपदेशक। शिक्षक [को०]।

आख्याति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ नामवरी। ख्याति। शुहरत। २ कथन।

आख्यान—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय] १. वर्णन। वृत्तांत। बयान। २ कथा। कहानी। किस्सा। ३ उपन्यास के नौ भेदों में से एक। वह कथा जिसे कवि ही कहे, पात्रों से न कहलावे।

विशेष—इसका आरंभ कथा के किसी अंश से कर सकते हैं, पर पीछे से पूर्वापर संबंध खुल जाना चाहिए। इसमें पात्रों की बातचीत बहुत लंबी चौडी नहीं हुआ करती। चूँकि कथा कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन करता है, इससे इसमें अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग होता है, पर दृश्यों को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे,—सूर्य डूब रहा है, ठंडी हवा चल रही है, इत्यादि। आजकल के नएढंग के उपन्यास इसी के अंतर्गत आ सकते हैं।

४ जवाब। उत्तर [को०]। ५ भेदक धर्म [को०]। ६ प्रबंधक काव्य का अध्याय या सर्ग [को०]। ७ पौराणिक कथा [को०]।

आख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णन। वृत्तांत। बयान। १ कथा। किस्सा। कहानी। ३ पूर्ववृत्तांत। कथानक।

आख्यानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवज्रा तथा उपेंद्रवज्रा के मेल से निर्मित छंदविशेष [को०]।

आख्यानिकी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक वृत्त के भेदों में से एक जिसके विषम चरणों में त, त, ज, ग, ग, और सम में ज, त, ज, ग, ग हो। उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू। अमार संसार तबै तरौ जू। श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई। जु सत्य चाहो अपनी भलाई (शब्द०)।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थात् इसके विषम चरण का लक्षण सम चरण में आने और सम चरण का लक्षण विषम चरण में आवे, तो उस वृत्त को उपानिकी कहेंगे।

आख्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० दूत।

आख्यापन—संज्ञा पुं० [स०] प्रकट करना। प्रकाश करना। कहना। कथन।

आख्यायक[1]—वि० [सं०] बतानेवाला। सूचना देनेवाला [को०]।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० १ दूत। २ नेता। प्रवक्ता [को०]।

आख्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कथा। कहानी। किस्सा। २ कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले। ३ एक प्रकार का आख्यान जिसमें पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह से कुछ कुछ कहते हैं।

विशेष—प्राचीनों में इसके विषय में मतभेद हैं। अग्निपुराण के अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिसमें विस्तारपूर्वक कर्ता की वंशप्रशंसा, कन्याहरण, संग्राम विओग और विपत्ति का वर्णन हो, रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप से दिखाए गये हों, गद्य सरल हो और कहीं कहीं छंद हो। इसमें परिच्छेद के स्थान पर उच्छ्वास होना चाहिए। वाग्भट्ट के मत से वह गद्यकाव्य जिसमें नायिका ने अपना वृत्तांत आप कहा हो, भविष्यद्विषयों की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम और अभ्युदय का हाल हो, पित्रादि के मुँह से चरित्र कहलाए गए हों और बीच बीच में कहीं कहीं पद्य भी हों।

आख्येय—वि० [सं०] दे० 'आख्यातव्य'।

आगता—वि० [सं० आगन्तु] आने की इच्छावाला [को०]।

आगंतु—वि० [सं० आगन्तु] १ आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला। ३ पथभ्रष्ट। भटका हुआ। ४ अचानक होनेवाला। दे० 'आगंतुक' [को०]।

आगतुक[1]—वि० [सं० आगन्तुक] [स्त्री० आगंतुका, आगतुकी] १ जो आवे। आगमनशील। २ जो इधर उधर से घूमता फिरता आ जाय। उ०—लगा कहने आगतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

आगतुक[2]—संज्ञा पु० १ अतिथि। पहुना। २ वह पशु जिसके स्वामी का पता न हो। ३ अचानक होनेवाला रोग। ३ प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यौ०—**आगतुक ज्वर**=वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या अधिक श्रम करने आदि से अचानक हो जाय। **आगतुक अनिमित्त लिंगनाश**=एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमे आँख की ज्योति मारी जाती है। प्राचीनो के अनुसार यह रोग देवता, ऋषि, गंधर्व, बडे सर्प और सूर्य के देखने से हो जाता है। **आगंतुव्रण**=वह घाव जो चोट के पकने से हो। **आगतुक व्याधि**=किसी बिमारी के बीच मे होनेवाली बिमारी।

आग[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] १ तेज और प्रकाश का पुंज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओ मे देखा जाता है। अग्नि। वैसदर। २ जलन। ताप। गरमी। जैसे,—वह डाह की आग से भुनना जाता है। ३ कामाग्नि। काम का वेग। जैसे—तुम्हे ऐसी ही आग है तो उनसे जाकर मिलो न। ४ वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की आग होती है वह दूसरे के बच्चे की नही। ५ डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस दिन से हमे इनाम मिला है, उसी दिन से उसे बडी आग है।

आग[2]—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो आग हो रही है। २ जो गुण मे उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—अरहर की दाल तो आजकल के लिये आग है।

मुहा०—**आग उगलना**=कडुए वचन सुनाना। जली कटी सुनाना। **आग उठाना**=झगडा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न करना। **आग कँजियाना या झँवाना**=आग का ठढा होना। दहकते हुए कोयले का ठढा होकर काला पड जाना। **आग करना**=(१) आग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। आग की तरह जलता हुआ बनाना। **आग का पतगा**=चिनगारी। जलता हुआ कोयला। **आग का पुतला**=क्रोधी। चिडचिडा। **आग का बाग**=(१) सुनार का अँगीठा। २ आतिशबाजी। **आग कुरेदना**=(१) गुस्सा भडकाना। क्रुद्ध करना। २ दबे या पुराने गुस्से को उभाडना। **आग के मोल**=बहुत मँहगा। जैसे,—यहाँ तो चीजें आग के मोल बिकती हैं। **आग खाना, अंगार हगाना**=जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमे क्या, जो आग खाएगा, वह अँगार हगेगा। **आग गाडना**=कडे को राख मे सुरक्षित रखना। **आग जोडना**=आग सुलगाना। आग जलाना। **आग झाडना**=पत्थर या चकमक से आग बनाना। **आग दिखाना**=(१) आग लगाना। जलाने के लिये आग छुलाना। (२) तोप मे बत्ती देना। **आग देना**=(१) चिता मे आग लगाना। दाहकर्म करना। (२) आतिशबाजी मे आग लगाना। आग लगाना। फूँकना। उ०—ना कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अंग न मोरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—उसके पास है क्या, उसने तो अपने घर मे आग दे दी। (४) तोप मे बत्ती देना=रजक पर पलीता छुलाना। **आग धोना**=अंगारो के ऊपर से राख दूर करना। जैसे,—आग धोकर चिलम पर रखना। **आग पर आग डालना**=किसी भडके हुए व्यक्ति को और भडकाना। **आग पर पानी डालना**=क्रोध शात करना। **आग पर लोटना**=बेचैन होना। विकल होना। तडपना। उ०—वह विरह के मारे आग पर लोट रहा है। २ डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमे देखकर आग पर लोट जाता है। **आग पानी का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग फाँकना**=(१) व्यर्थ बकवाद करना। बात बघारना। झूठी शेखी हाँकना। जैसे उनकी क्या बात है, वे तो यो ही आग फाँका करते हैं। (२) असभव कार्य को सभव करने की चेष्टा। **आग फूँकना**=क्रोध उत्पन्न होना। रिस लगना। जैसे,—यह बात सुनते ही तन मे आग फूँक गई। **आग फूँक देना**=जलन उत्पन्न करना। गरमी पैदा करना। जैसे,—इस दवा ने तो और आग फूँक दी है। **आग फूश का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग बनाना**=आग सुलगाना। **आगबबूला (बगूला) होना या बनाना**=क्रोध के आवेश मे होना। अत्यत क्रुद्ध होना। जैसे,—इस बात के सुनते ही वह आगबबूला हो गया। **आग बरसना**=(१) बहुत गरमी पडना। (२) लू चलना। २ गोलियो की बौछार होना। **आग बरसाना**=शत्रु पर खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियो ने किले पर खूब आग बरसाई। **आग बुझा लेना**=कसर निकालना। बदला लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी आग बुझा लो। **आग बोना**=(१) आग लगाना। उ०—योगी आहि विषय कोई। तुम्हरे मँडप आगि जिन बोई।—जायसी, (शब्द०) २ चुगलखोरी करके झगडा उत्पात खडा करना। जैसे, यह सब आग तुम्हारी ही बोई तो है। **आग भडकना**=आग का धधकना। २ लडाई उठना। उत्पात खडा होना। जैसे,—दोनो दलो के बीच आजकल खूब आग भडकी है। ३ उद्वेग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि भाव का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे—(क) शत्रु को सेना देखकर उसकी आग और भडक उठी। (ख) अपने मृत पुत्र की टोपी देखकर माता की आग और भडक उठी। **आग भडकना**=(१) आग धधकना। २ लडाई लगाना। ३ क्रोध और शोक आदि भावो को उद्दीप्त करना। जोश बढाना। **आग भभूका होना**=क्रोध मे लाल होना। **आग मे कूदना**=जान बूझकर विपत्ति मोल लेना। **आग मे घी डालना**=क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) आहुति डालकर होम करना। **आग मे कूदना**=अग्नि करना। जैसे,—चलो, क्यो आग मे मूतते हो। **आग मे झोंकना**=(१) आग मे डाल देना। (२) लडकी को ऐसे घर ब्याह देना, जहाँ

हर घडी कष्ट हुआ करे। **आग मे पानी डालना**=झगडा मिटाना। बढते हुए क्रोध को धीमा करना। **आग लगना**=आग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहि जस महवट नीरू। तेहि जल आग लाग सिर चीरू।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर मे आग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुढन होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी बडबी बातें सुनकर आग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना बके, अब हमारे जरा सी कहने पर आग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि बस आग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलो का चारो ओर फूलना। उ०—बागन बागन आग लगी है (शब्द०)। (५) महँगी फैलाना। गिरानी होना। जैसे,—(क) बाजार मे तो आजकल आग लगी है। (ख) सब चीजो पर तो आग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारो ओर आग लगी है, सँभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०—कभी यहाँ से तुम्हे आग भी लगेगी (स्त्री०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय मे आग लग गई। ९ सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—आग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियो मे अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढकर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यो ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) आग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) आग लगे, यह छोटा सा लडका कैसा स्वाँग करता है। (ग) आग लगे, कहाँ से मैं इसके पास आई। **आग लगाना**=(१) आग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर मे आग लगा दी। (२) गरमी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो बदन मे आग लगा दी। (३) उद्वेग बढाना। जोश बढाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। भडकाना। ४ ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५ क्रोध उत्पन्न करना। ६ चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर आग लगाई है। ७ बिगाडना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे बनाने को दी जाती है, उसी मे वह आग लगा देती है। (स्त्री०)। ८ फूँकना। उडाना। बरबाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी सपत्ति मे आग लगाकर बैठा है। ९. खूब धूमधाम करना। बड़े बडे काम करना। (व्यग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखो ने विवाह में कौन सी आग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। **आग लगाकर पानी को दौडाना**=झगडा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शाति का उद्योग करना। **आग भी न लगाना**=बहुत तुच्छ समझना। जैसे,—उससे बोलने की कौन कहे, मैं तो उसको आग भी न लगाऊँ। (स्त्री०)। **आग लगने पर कुआँ खोदना**=(१) कोई कठिनाई कार्य आ पडने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड बडी लबी चौडी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। **आग लगाकर तमाशा देखना**=झगडा या उपद्रव खडा करके अपना मनोरजन करना। **आग लेने आना**=आकर फिर थोडी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोडी देर के लिये आना। जैसे,—(क) जरा बैठो भाई, क्या आग लेने आए हो? (ख) आग लेने आई, घरवाली बन बैठी। **आग से पानी होना या हो जाना**=क्रुद्ध से शात होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी आग से पानी हो जाय। **आग होना**=(१) गर्म होना। लाल अगार होना। २ क्रुद्ध होना। रोष मे भरना। जैसे,—यह बात सुनते ही वे आग हो गए। **किसी की आग मे कूदना या पडना**=किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। **तलवों से आग लगाना**—शरीर भर मे क्रोध व्याप्त होना। रिस मे भर उठना। जैसे,=उसकी झूठी बात से और भी तलवो से आग लग गई। **पानी मे आग लगाना**=(१) ऐसी अनहोनी बातें कहना जिनका होना सभव न हो। (२) असभव कार्य करना। (३) जहाँ लडाई की कोई बात न हो वहाँ भी लडाई लगा देना। **पेट की आग**=भूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की आग बुझावे। **पेट मे आग लगना**=भूख लगना। जैसे—इस लडके के पेट मे सवेरे से ही आग लगती है। **मुँह मे आग लगना**=मरना। जैसे,—उसके मुँह मे कब आग लगेगी। (शवदाह के समय मुर्दे के मुँह मे आग लगाई जाती है।) **आग लगे मेह मिलना या पाना**=ताव पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तौ आजु ही मिलौं कि अरि जाऊँ ऐसें। आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६६। **आग पर आग मेलना**=जले को जलाना। दु ख पर दु ख देना। उ०—बिरह आगि पर मेलै आगी। बिरह घाव पर घाव बजागी।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

यौ०—**आगजंत्र**=तोप।—(डिं०)। **आगबाण**=अग्निबाण। **आग लगन**=हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड जाते हैं।

आग[2] ⓤ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

आग[3] ⓤ—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] १ दे० 'आग'। उ०—तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्र०, पृ० ३७। २ ऊख का अगौरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली बनी है उनकी, राजहस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडिकै, चतुर चचोरत आग।—सूर०, १०।३६५२। ३ हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमे रस्सी अटका कर जुआठे से बाँधते हैं।

आगजनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आग+फा० जन+हिं० ई (प्रत्य०)] अग्निकाड। उपद्रवियो द्वारा लगाई जानेवाली आग।

आगडा—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+हिं० गाढ़=पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हो।

आगण—सज्ञा पु० [स० अग्रहायण] अगहन। मार्गशीर्ष। (डिं०)।

आगत[1]—वि० [स०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। प्राप्त। उपस्थित।

यौ०—**अभ्यागत। आगतपतिका। क्रमागत। स्वागत। दैवागत। गतागत। तथागत।**

आगत[2]—सज्ञा पुं० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

आगत[3]—सज्ञा पुं० दे० 'आयात'। जैसे,—आगत कर।

आगतत्व—सज्ञा पु० [स०] उत्स। मूल। उद्गम [को०]।

आगतपतिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदो मे से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम विदेस तें हरषित होइ जु बाम। आगतपतिका नाइका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० १३६।

आगतसाध्वस—वि० [स०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—सज्ञा पु० [स० आगत+स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]। ३ वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछ(उ)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगापीछा'।

आगम[1]—सज्ञा पु० [स०] १ अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कह्यो सब सखन सो लावहु गोधन फेरि। सध्या को आगम भयो ब्रज तैंन हाँको हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३ होनहार। भवितव्यता। सभावना। उ०—आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ९८।

यौ०—आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।

क्रि० प्र०—करना=ठिकाना करना। उपक्रम बाँधना। जैसे,—यह नही कहते कि चदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनो। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनो।—तुलसी (शब्द०)।—जनाना=होनहार की सूचना देना। उ०—कबहुँ ऐसा विरह उवावै रे। प्रिय बिनु देखे जिय जावै रे। तौ मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रे।—दादू (शब्द०)।—बाँधना=आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम बाँधते हो, जब वैसा समय आवेगा तब देखा जायगा। ४ समागम। सगम। उ०—अरुण, श्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ। मनु सरस्वती गगा जमुना मिलि आगम कीन्हो आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५ आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यौ०—अर्थागम।

६ व्याकरण मे किसी शब्दसाधन मे वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। ७ उत्पत्ति। ८ योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९ वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७। ४९। १० शास्त्र। ११ तत्र शास्त्र। १२ नीतिशास्त्र। नीति। १३ तत्रशास्त्र का वह अग जिसमे सृष्टि, प्रलय, देवताओ की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४ प्रवाह। धारा [को०]। १५ ज्ञान [को०]। १६ सपत्ति की वृद्धि [को०]। १७ सिद्धात [को०]। १८ नदी का मुहाना। १९ (व्याकरण मे) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २० सडक या मार्ग की यात्रा [को०]। २१ लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम[2]—वि०[स०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन बेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि०[सं० आगमज्ञानिन् अथवा हिं० आगम=भविष्य+जानी=ज्ञाता] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [स० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—सज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै बिप्र समाजा।—मानस, १। २०७। २ प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्गम [को०]। ४ सभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—सज्ञा पुं० [स०] १ आगे चलनेवाली सेना। २ पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [स०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—सज्ञा स्त्री० [स० आगमन+हिं० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप क्रुद्ध हुकारो मे।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [स०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपतिका—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आगतपतिका'।

आगमरहित—वि० [स०] १ साक्ष्यरहित। २ शास्त्र से परे[को०]।

आगमवक्ता—वि० [स०] १ भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—सज्ञा स्त्री० [स०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वेदविद्या। २ तत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [स०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [स० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २ शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—सज्ञा स्त्री० [स०] परपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [स० आगम+हिं० सोच+ई (प्रत्य०)] आगे का भला बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [स० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [स०] १ पठित। शिक्षित। २ निश्चित। निर्धारित ३ ले आया हुआ। [को०]।

आगमिष्ट—वि०[स०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी[1]—सज्ञा पुं० [स० आगम=भविष्य] सामुद्रिक विचारनेवाला। ज्योतिषी। अडडपोपो। उ०—अवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचय पायो।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

आगमी[2]—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी[3]—वि०[स०आगमिन्]१ भविष्य। २ पहुँचने वाला।३ शास्त्रज्ञ।

आगर[1]—सज्ञा पुं० [स० आकर=खाना][स्त्री० आगरी] १ खान। आकर। २ समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्राय समासात मे आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३ कोष। निधि। खजाना। उ०—अस वह फूल बास का आगर भा नासिका समुद। जेति फूल वह फूलहि ते सब भए सुगद।—जायसी (शब्द०)। ४ वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५ नमक का कारखाना।

आगर[2]—सज्ञा पुं० [स० अर्गल=व्योडा] व्योडा। अगरी। उ०—आगर इक लोह जटित लीन्हो बरियड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मास पिंड।—सूर० ९। ९६।

अगर[3]—सज्ञा पु० [स० आगार=घर] १ घर। गृह। २. छाजन का एक भेद जिसमे फूस या खर की जड ओलती की ओर करके छवाई होती है। ३ छाजन। छप्पर। उ०—तृण तृण बरि भा भूरी खरी। भा बरषा आगर सिर परी।—जायसी (शब्द०)।

आगर[4]—वि० [सं० आकर=श्रेष्ठ] [स्त्री० आगरि, आगरी] १. श्रेष्ठ। उत्तम। बढकर। उ०—(क) दई दीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक ते आगर रूपा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जिनको साँई रँग दिया कबहुँ न होय कुरग। दिन दिन बानी आगरी चढै सवाया रग।—कबीर (शब्द०)। २ चतुर। होशियार। दक्ष। कुशल। उ०—जो लाँघै सत योजन सागर। करै सो रामकाज अति आगर।—तुलसी (शब्द०)।

आगर[5]—सज्ञा पु० [स०] अमावस्या [को०]।

आगरबध—सज्ञा पुं० [स० आ+गल+बद्ध] कठमाला (डिं०)।

आगरी—सज्ञा पु० [हिं० आगा] नमक बनानेवाला पुरुष। लोनिया।

आगल[1]—सज्ञा पु० [स० अर्गल] अगरी। ब्योडा। बेंडा।

आगल[2]—क्रि० वि० [हिं० अगला] सामने। आगे (लश०)।

आगल[3]—वि० अगला। उ०—आगल से पाछन भयो, हरि सो कियो न भेंट। अब पछिताने का भया, चिडिया चुगि गई खेत।—(शब्द०)।

आगला—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

आगवन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगमन'। उ०—जिमि तुम्हार आगवन सुनि भए नृपति बलहीन।—मानस, १।२३८।

आगवाह—सज्ञा पु० [स० अग्निवाह=घूम] धूआँ (हिं०)।

आगस्—सज्ञा पुं० [स०] १ पाप। २ अपराध। दोष। ३ दड सजा [को०]।

आगस्ती—सज्ञा स्त्री० [स०] अगस्त की दिशा। दक्षिण।

आगस्त्य—वि० [स०] १ दक्षिण दिशा। २ अगस्त्य सबधी [को०]।

आगा[1]—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] १ किसी चीज के आगे का भाग। अनाडी। २ शरीर का अगला भाग। जैसे,—ऊँचे आगे का हाथी अच्छा होता है। ३ छाती। वक्ष स्थल। ४ मुख। मुँह। मुहरा। ५ ललाट। माथा। ६ लिंगेंद्रिय। ७ अँगरखे कुरते आदि की काट मे आगे का टुकडा। ८. पगडी का छज्जा। ९. घर के सामने का भाग। मुहरा। १०. सेना या फौज का अगला भाग। सेनामुख। हरावल। ११ नाव का अगला भाग। माँग। गलही। १२ घर के सामने का मैदान। घर के आगे का सहन। १३ पेशखीमा। आगडा। १४ पहिनावे का वह भाग जो आगे रहता है। पल्ला। आँचल। १५ आगे आनेवाला समय। भविष्य। परिणाम। जैसे,—(क) उसका आगा मारा गया है। (ख) उसका आगा अँधेरा है।

मुहा०—आगा काटना=यात्रा या कार्य मे विघ्न डालना। आगा तागा लेना=आवभगत करना आदर सत्कार करना। आगा भारी होना=(१) गर्भ रहना। पैर भारी होना। जैसे,—ब्याह होते ही उसका आगा भारी हो गया। (२) कहारो की बोली मे राह मे ठोकर गड्ढे आदि का होना जिससे गिरने का भय हो। आगा मारना=किसी के कार्य मे बाधा डालना। किसी की उन्नति मे रुकावट डालना। जैसे,—किसी का आगा मारना अच्छा नही। आगा मारा जाना=भावी उन्नति मे विघ्न पडना। आगम मारा जाना। जैसे,—परीक्षा मे फेल होने मे उसका आगा मारा गया। आगा रुकना=भावी उन्नति मे बाधा पडना। आगा रोकना=(१) आक्रमण रोकना। (२) कोई बडा कार्य आ पडने पर उसे सँभालना। मुँहडा सँभालना। जैसे,—इतनी बडी बारात आवेगी, उसका आगा रोकना भी तो कोई सहज बात नही है। (३) किसी के सामने इस तरह खडे होना कि ओट हो जाय। आड करना। जैसे,—आगा मत रोको, जरा किनारे खडे हो। (४) किसी की उन्नति मे बाधा डालना। आगा लेना=शत्रु के आक्रमण को रोकना। भिडना। आगा सँभालना=(१) मुहडा सँभालना। कोई बडा कार्य आ पडने पर उसका प्रबध करना। (२) किसी खुले गुप्त अग को ढकना। (३) वार रोकना। भिडना। जैसे,—राजपूताने की लडाइयो मे पहले भील ही लोग आगा सँभालते थे।

आगा[2]—सज्ञा पुं० [तु० आगा] १ मालिक। सरदार। २ काबुली। अफगान। ३ ज्येष्ठ भाई [को०]।

आगाज—सज्ञा पु० [फा० आगाज] प्रारभ। आदि। शुरू।

आगाता—वि० [स० आगातृ] आकर पाने या कमानेवाला [को०]।

आगाध—वि० [स०] १ अत्यत गहरा। २ जो कठिनाई से प्राप्त हो [को०]।

आगान[1]—सज्ञा दे० [स० आ+गात=बात] बात। प्रसग। आख्यान। वृत्तात। उ०—और कृष्ण के ब्याह को भूप सुनहु आगान। पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण।—गोपाल (शब्द०)।

आगान[2]—सज्ञा पु० [स०] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उपार्जन करे। गायक [को०]।

आगापीछा—सज्ञा पुं० [हिं० आगा+पीछा] १ हिचक। सोच विचार। दुविधा। जैसे,—इस काम के करने मे तुम्हे आगा पीछा क्या है?

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—अच्छे काम मे आगा पीछा करना ठीक नही।—(शब्द०)।—होना।

२. परिणाम। नतीजा। पूर्वापर सबध। जैसे,—कोई काम करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—सोचना।

३ शरीर का अगला और पिछला भाग। शरीर के आगे और पीछे के गुप्त अग। जैसे,—भला इतना कपडा तो दो जिसमे आगा पीछा ढँके। ४ आगे और पीछे की दशा। जैसे,—जरा आगा पीछा चला करो।

आगामि, आगामी—वि० [स० आगामिन्] [स्त्री० आगामिनी] भविष्य। होनहार। आनेवाला।

आगामिक—वि० [स०] १ भविष्यकालसबधी। २. आनेवाला [को०]।

आगामुक—वि० [स०] १ आनेवाला। २ भावी [को०]।

आगार—सज्ञा पुं० [स०] १ घर। मदिर। मकान। २ स्थान। जगह। जैसे,—अन्नागार। ३ जैन मतानुसार बाधक नियम और व्रतभग। ४. खजाना। उ०—खान असी अकबर अली

जानत सब रस पंथ। रच्यो देव आगार गुनि यह सुखसागर ग्रथ।—देव (शब्द०)।

आगारगोधिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली। गृहगोधा [को०]।

आगारदाही—वि० [सं० आगारदाहिन्]। घर जलानेवाला।

आगारधूम—१ गृह मे निकलनेवाला धुआँ। २ एक पौधे का नाम [को०]।

आगाह[1]—वि० [फा०] जानकार। वाकिफ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आगाह[2] ⓤ—सज्ञा पु० [हिं० आग+आह (प्रत्य०)] आगम। होनहार। उ०—चाँद गहन आगाह जनावा। राजमूलि गहि शाह चलावा।—जायसी (शब्द०)।

आगाही—सज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी। वाकफियत। उ०—यही सबब है कि मुझे इन सब बातो से आगाही हो गई।-सतति, भा० २१, पृ० १२।

आगि ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—दुरदिन परे रहीम कहि दुरयल जैयत भागि। ठाढे हूजा घूर पर जब घर लागत आगि।—कविता को०, भा० १, पृ० १६२।

आगिल ⓤ—वि० [हिं० आग+इल (प्रत्य०)] १ आगे का। अगला। उ०—बल मे परलय बीतिया लोगन लगी तमारि। आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि।—कबीर। (शब्द०)। २ भविष्य का। होनेवाला। उ०—आगिल बात समुझि डरु मोही।—मानस, २। १८।

आगिला ⓤ†—वि० [हिं०] दे० 'अगला'। उ०—आगिला अगनि होइबा अवधू, तो आपण होइबा पाणी।—गोरख०, पृ० २३।

आगिवर्तक ⓤ—सज्ञा पु० [सं० अग्निवर्त्त] पुराणानुसार मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए। जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक, जलद सँग लाए।—सूर (शब्द०)।

आगी ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै।—तुलसी ग्र०, पृ० १७५।

आगुआ—सज्ञा पु० [हिं० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे का गोल भाग।

आगू ⓤ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—बासर चौथे याम सतानद आगू दिए।—रामच०, पृ० २५।

आगे—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १ और दूर पर। और बढकर। 'पीछे' का उलटा। जैसे—उनका मकान अभी आगे है। २ समक्ष। समुख। सामने। जैसे,—उसने मेरे आगे यह काम किया है। ३ जीवनकाल मे। जीते जी। जीवन मे। उपस्थिति मे। जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना गए थे।—४ इसके पीछे। इसके बाद। जैसे,—मैं कह चुका हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—५ भविष्य मे। आगे को। जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा मत करना। ६ अंतर। बाद। जैसे,—चैत के आगे बैसाख का महीना आता है। ७. पूर्व। पहले। जैसे,—वह आप के आने से आगे हो गया है। ८. अतिरिक्त। अधिक। जैसे,—इससे आगे एक कौडी नही मिलने की। ९ गोद मे। जैसे,—(क) उसके आगे एक लडकी है।—(ख) गाय के आगे बछवा है या बछिया?

मुहा०—आगे आगे=थोडे दिनो बाद। क्रमश। जैसे—देखो तो आगे आगे क्या होता है। आगे आना=(१) सामने आना। जैसे,—नाई! सिर मे कितने बाल? अभी आगे आते हैं। २ सामने पडना। मिलना। जैसे,—जो कुछ उसके आगे आता है, वह खा जाता है। ३ समुख आना। सामना करना। भिडना। जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे आओ। ४. फल मिलना। बदला मिलना। उ०—(क) जो जैसा करै सो तैसा पावै। पूत भतार के आगे आवै। (ख) मत कर मास बुराई। तेरी धी के आगे आई। (शब्द०)। ५ घटित होना। घटना। प्रकट होना। जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही आगे आया। आगे करना=(१) उपस्थित करना। प्रस्तुत करना। जैसे,—जो कुछ घर मे था, वह आपके आगे किया। (२) अगुआ बनाना। मुखिया बनाना। जैसे,—इस काम मे तो उन्ही को आगे करना चाहिए। उ०—कमल सहाय सूर सँग लीन्हा। राघव चेतन आगे कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। (३) अगुआना। अग्रगता बनाना। उ०—राजै राकम नियर बोलावा। आगे कीन्ह पंथ जनु पावा।—जायसी ग्र, पृ०१७४। (४) आगे बढाना। चलाना। उ०—चक्र सुदर्शन आगे कियो। कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो।—सूर (शब्द०)। (५) किसी आफत मे डालना। जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे आगे कर आप पेड पर चढ गया। आगे का उठा=खाने से बचा हुआ। जूठा। उच्छिष्ट। जैसे,—नीच जाति के लोग बडे आदमियो के आगे का उठा खा लेते हैं। आगे का उठा खानेवाला=(१) जूठा खानेवाला। टुकडखोर। (२) दास। (३) नीच। अत्यज। (४) तुच्छ। नाचीज। आगे का कदम पीछे पड़ना=(१) घटती होना। ह्रास होना। तनज्जुली होना। अवनति होना। जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर अब आगे का कदम पीछे पड़ रहा है। (२) भय से आगे न बढा जाना। दहशत छा जाना। जैसे,—शेर को देखते ही उनका आगे का कदम पीछे पडने लगा। आगे का कपड़ा=(१) घूँघट। (२) अचल। आगे का कपड़ा खींचना=घूँघट काढना। आग की उखेड=कुश्ती का एक पेंच। खिलाडी का प्रतिद्वद्वी की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकडकर जिधर जोर चले, उधर फेंकना। अग्रोत्तोलन। आगे को=आगे। भविष्य मे। फिर। पुन। जैसे,—अब की बार तुम्हे छोड दिया, आगे को ऐसा न करना। आगे चलकर, आगे जाकर=भविष्य मे। इसके बाद। जैसे—तुम्हारे किए का फल आगे चलकर मिलेगा। आगे डालना=देना। खाने के लिये सामने रखना। जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकडा डाल दो। (ख) बैल के आगे चारा डालो। (यह अवज्ञासूचक है और प्राय. इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता है।) आगे डोलना=आगे फिरना। सामने खेलना कूदना। लडको का होना। जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो एक तुम्हें भी दे देती। आगे डोलना=बच्चा। लडका। जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नही है। आगे देना=सामने

रखना। उपस्थित करना। जैसे,—पीछे की दल आगे नहीं, बैलों के आगे रखो। **आगे दौड़, पीछे चौड़**=(१) किसी काम को जल्दी जल्दी करते जाना और यह न देखना कि किस दृष्टाम की क्या दशा होती है। (२) आगे बढ़ो जाना और पीछे का सूचो जाना। **आगे धरना**=(१) आदर। सत्कार। जैसे,—किसी सिद्धार को आगे धरकर काम करना पड़ता होता है। २. प्रस्तुत करना। उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। भेंट देना। **आगे निकलना**=बढ़ जाना। जैसे,—(क) वह दौड़ में सबसे आगे निकल गया। (ख) वे इस बीच ही नहीं। की पढ़ाई में वह अपने दर्जे के सब लड़कों से आगे निकल गया। **आगे पीछे**=एक के पीछे एक। जैसे,—(१) सिपाही या पीछे पड़ कर कतारबद्ध कर रहे। (२) सब लोग साथ ही जाना, साथ पीछे सभी में पीछे रहा होगा। (२) अवसर या परान्त। भूत या भविष्य। जैसे,—मैं। किसी की कभी आगे पीछे बुराई नहीं की है। (३) और पीछे। आस पास। जैसे,—इसका घर कहाँ आगे पीछे रहना, घर का पड़ना। (४) घर के या पीछे। जैसे—आगे पीछे सभी तब करेंगे, यहाँ कोई पैसा पीछे ही करता। (५) कुछ का। के अनुसार। यथाक्रम। जैसे,—पहले इस काम को जाकर जाओ और तब आगे पीछे, जाना करना। (६) इधर का उधर। अंड बंड। उलट पलट। जैसे,—पहले सारे कागजों को आगे पीछे कर दिया। **आगे पाँव न धरना**=(१) अनुपस्थित न। गैरहाजिरी में। जैसे,—मेरे सामने तो किसी ने आकर कुछ नहीं कहा, आगे पीछे की कौन जाने। **किसी के आगे पीछे होना**=किसी के मरने में किसी प्राणी का होना। जैसे,—उसके आगे पीछे कोई नहीं है, इसमें स्वयं के पीछे घर का है। **आगे रखना**=(१) अर्पण करना। देना। पहुँचाना। (२) उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। जैसे,—घर में जो कुछ था सब खा खाकर साफ रखा। **आगे से**=(१) सामने से। जैसे,—अभी वह हमारे आगे से निकल गया। (२) आदत से। भविष्य में। जैसे,—जो कुछ किया सो किया, आगे ऐसा मत करना। (३) पहले से। पूर्व से। बहुत दिनों से। जैसे,—(क) यह आग से होता आया है। (ख) हम तो आगे से जानते थे। **आगे से लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—हरि आगमन जानिकै भीषम आगे लेन सिधाए। सूरदास प्रभु दरसन कारन नगर लोग सब आए।—सूर०, १०।४१७८। **आगे होना**=(१) आगे बढ़ना। अग्रसर होना। जैसे,—सरदार का कहा आगे हुआ और उसके साथी पीछे पड़े। (२) बढ़ जाना। जैसे,—वह पढ़ने में सबसे आगे हो गया। (३) सामने आना। मुकाबिला करना। जैसे,—इतने आदमियों में वही अकेला शेर के आगे आया। (४) मुखिया बनना। जैसे,—सब काम में वे आगे होते हैं, पर उनको पूछता कौन है। (५) परदा करना। आड़ करना। जैसे,—बड़े घरों में स्त्रियाँ जेठ के आगे नहीं आती। **आगे होकर लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्धसिंहासन आसन देई।—तुलसी। (शब्द०)।

थी। २ अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चले। जैसे,—बदूक, पिस्तौल आदि।

आग्नेयी[1]—वि० स्त्री० [स०] १ अग्नि को दीपन करनेवाली (औषध)। २ पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उरु की पत्नी थी [को०]। ३ प्रतिपदा तिथि। परिवा [को०]।

आग्या Ⓤ†—सज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०—ज्यों गुरु आग्या सुनि चटसार। चट पढि उठत एक ही बार।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

आग्यो Ⓤ†—वि० [स० अग्र] भविष्य। उ०—तौ तुम कोऊ तारयो नहिं, जौ मोसौं पतित न दाग्यौ। हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधार्यौ आग्यौ।—सूर०, १।७३।

आग्र जानिक—सज्ञा पु० [स० अग्र+ज्ञानीक] आगे की बात जाननेवाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक—सज्ञा पु० [स०] वह ब्राह्मण जो भोजन मे अग्रस्थान का अधिकारी हो [को०]।

आग्रमास—सज्ञा पु० [स०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड [को०]।

आग्रयण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अहिताग्नियो का नवशस्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इसका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नो मे से तीन फसलो मे किया जाता है। सावें मे वर्षा ऋतु मे, व्रीहि या चावल मे हेमत ऋतु मे और जौ से वसत ऋतु मे। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नवशस्येष्टि कहते हैं।

२ अग्नि का एक भेद [को०]। ३ यज्ञ का समय [को०]।

आग्रस्त—वि० [सं०] १ विधा हुआ। २ छिदा हुआ। छेदयुक्त [को०]।

आग्रह—सज्ञा पुं० [स०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह बार बार मुझसे अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है। २ तत्परता। परायणता। दृढ निश्चय। उ०—राक्षस बडे आग्रह और सावधानी से चद्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन मे प्रवृत्त हुए।—हरिश्चद्र (शब्द०)। ३. बल। जोर। आवेश। उ०—और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्व गुह्यतम भूय शृणु मे परम वच'। —हरिश्चद्र (शब्द०)। ४ आक्रमण [को०]। ५ हरण। ग्रहण [को०]। ६ अनुग्रह। कृपा [को०]। ७ धैर्य। नैतिक बल [को०]।

आग्रहायण—सज्ञा पु० [स०] १ अगहन मास। मार्गशीर्ष मास। २ मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक—सज्ञा पुं० [स०] १. अगहन की पूर्णमासी। २ मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

आग्रहायणी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अगहन मास। २ मृगशिरा नक्षत्र। ३ पाक यज्ञविशेष [को०]।

आग्रहायणी[2]—वि० [स०] १ अगहन की पूर्णिमा को दिया जाने वाला। २ अगहन की पूर्णिमा से युक्त [को०]।

आग्रहारिक—वि० [स०] १ दान के रूप में गाँव या भूमि लेनेवाला। उ०—मार्ग मे जो अग्रहार गाँव पडते थे उनके अनपढ़ आग्रहारिक लोग मगन के लिये ग्राममहत्तरों के हाथ मे जलकुभ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २ अग्रहार का हरण करनेवाला [को०]। ३ अग्रहार की देखभाल करनेवाला [को०]।

आग्रहिका—सज्ञा स्त्री० [स०] सहायता। अनुग्रह [को०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आग्रयण'।

आघ Ⓤ—सज्ञा पु० [स० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ मूल्य। कीमत। २ आदर। मान। उ०—विदर मूँछ जाणे वृथा इधक पटारो आघ।—बाँकी० ग्र०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक[1]—सज्ञा पु० [स०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचडी।

आघट्टक[2]—वि० [स०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगडनेवाला [को०]

आघट्टन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आघट्टना] १ रगड। घर्षण। २ सपर्क [को०]।

आघट्टित—वि० [स०] रगडा हुआ। मर्दित [को०]।

आघण Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० अग्रहायण] अगहन उ०—आवण कर दिन छोटा होई।—बीसल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष, आघर्षण—सज्ञा पु० [स०] रगड। घर्षण [को०]।

आघर्षणी—सज्ञा स्त्री० [स०] घर्षण या रगडने मे प्रयुक्त होनेवाली कूँची, ब्रश आदि [को०]।

आघाट—सज्ञा पुं० [स०] १ गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखो मे मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ मे आया है।

२ अपामार्ग। चिचडी [को०]। ३ एक तरह का बाजा [को०]।

आघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का। ठोकर। २ मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,—निरपराधो पर आघात करना अच्छा नही। ३ वधस्थान। बूचडखाना। ४ प्रतिध्वनि। उ०—तियो तँबोल माथ धरि हनुमत, कियो चतुरगुन गात। चढि गिरि सिखर शब्द इक उच्चरयो, गगन उठयो आघात।—सूर० ९।७४। ५ वध। मारण (को०)। ६ वध करनेवाला व्यक्ति [को०]। ७ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ८ भूताघ रोग [को०]।

आघातज्वर—सज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवाला ज्वर [को०]।

आघातन—सज्ञा पु० [स०] वधस्थान। २ वध। हनन [को०]।

आघार—सज्ञा पुं० [स०] १. यज्ञ और होम आदि मे वे आहुतियाँ जो आदि मे प्रजापति और इद्र देवता को घी की अविच्छिन्न धार से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इद्राय स्वाहा' कहकर वायव कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक दी जाती हैं। ऋग्वेदी इसे मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जोर से मत्र का उच्चारण करके करते हैं। २ घी [को०]। ३ सिंचन। सींचना [को०]।

आघी†—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ रुपये का वह लेन देन जिसमे उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज मे से फी रुपए की दर से अन्न आदि ब्याज

स्थान मे देता हैं। २ वह अन्न जो इस लेन देन मे ब्याज के रूप मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—पर लेना।—पर देना।—देना।—लेना।

आधु—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आध'। उ०—गढ़रचना, बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान। आधु बकाई ही चढ़ै, तरनि तुरगम तान।—बिहारी र०, दो० ३१६।

आघूर्ण—वि० [सं०] १ घूमता हुआ। फिरता हुआ। २ हिलता हुआ।

आघूर्णन—संज्ञा पु० [सं०] १ चक्कर। घुमाव। २ इधर उधर डोलना। दोलन [दे०]।

आघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। मटकता हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—आघूर्णित लोचन = जिसकी आँखें चढ़ी हों।

आघृणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

आघोष—संज्ञा पु० [सं०] चारों ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

आघोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघोषणा] घोषणा [को०]।

आघोषणापटह—संज्ञा पुं० [सं० आघोषणा + पटह] जनसाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाड़ा।

आघोषित—वि० [सं०] घोषित।

आघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० वि० आघ्रात, आघ्रेय] १ सूँघना। बास लेना। २ अघाना। आसूदगी। तृप्ति।

आघ्रात[1]—वि० [सं०] १ सूँघा हुआ। २ तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगंधित। सुवासित [को०]।

आघ्रात[2]—संज्ञा पु० [सं०] ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें चंद्रमंडल या सूर्यमंडल एक ओर मलिन देख पड़ता है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से अच्छी वर्षा होती है।

आघ्रेय—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

आचंचल—वि० [सं० आ + चञ्चल] अस्थिर। चंचल। उ०—बद्रोदय आरंभकाल मे आचंचल सागर मे।—पार्वती, पृ० १२३।

आचंभ—वि० [हिं०] दे० 'अचंभा'। उ०—आचंभ रूप इच्छनि सुनी जन जन वत्त बखानियाँ।—पृ० रा०, १२।१०।

आंच—संज्ञा पुं० [सं० सञ्च = संचान करना] हाथ। उ०—जिकाँ मलाँ धन जोड़ियो, ऊभमियो निज आंच।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ४८। (डिं०)

यौ०—आंचप्रभव = क्षत्रिय।

आचमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचमनीय, आचमित] १ जल पीना। २ शुद्धि के लिये मुँह मे जल लेना। ३ किसी धर्म संबंधी कर्म के आरंभ मे दाहिने हाथ मे थोड़ा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार मे से एक है। ४ सुगंधवाना। नेत्रवाना।

आचमनक—संज्ञा पु० [सं०] १ आचमन का पात्र। २ आचमन का जल। ३ पीकदान [को०]।

आचमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनीय] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पंचपात्र मे रखते हैं और इससे आचमन करते और चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय, आचमनीयक—वि० [सं०] १ आचमन के योग्य। पीने योग्य। २ कुल्ला करने योग्य।

आचमित—वि० [सं०] पिया हुआ।

आचय—संज्ञा पु० [सं०] १ चुनने का कार्य। २ राशि या ढेर [को०]।

आचयक—वि० [सं०] १ चयन या संचय करनेवाला। २ चयन करने मे कुशल। ३ फूल आदि चयन करनेवाला [को०]।

आचर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचर'। उ०—नाभि नव छरे अनुरागक अंकुर धएल मोहें आचरे मोह।—विद्यापति, पृ० ७३।

आचरज—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०—मुनि मन मोह आचरज भारी।—मानस, १।१२८।

आचरजित—वि० [सं० आश्चर्यित] आश्चर्यित। चकित। विस्मित।

आचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचरणीय, आचरित] १ अनुष्ठान। २ व्यवहार। बर्ताव। चाल चलन। जैसे,—उनका आचरण अच्छा नहीं है। ३ आचारशुद्धि। सफाई। ४ वध। हत्या। ५ चिह्न। लक्षण। ६ बौद्धों के अनुसार वे १५ आचरण जो सदाचार माने जाते हैं।

विशेष—वे इस प्रकार हैं—(१) शील। (२) इंद्रियसंवर। (३) मात्राज्ञिता। (४) जागरणानुयोग। ५ श्रद्धा। (६) ह्री। (७) बहुश्रुतत्व। (८) उत्साह, अर्थात् पढ़ाना। (९) पराक्रम। (१०) स्मृति। (११) मति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३) द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान।

७ करना [को०]। ८ अनुगमन। अनुगमन [दे०]।

आचरणीय—वि० [सं०] १ अनुष्ठान करने योग्य। २ व्यवहार करने योग्य। बर्ताव करने योग्य। करने योग्य।

आचरन—संज्ञा पुं० [सं० आचरण] दे० 'आचरण'। उ०—सगुन समय सुमिरत सुगद भरत आचरनु चारु।—तुलसी (शब्द०)।

आचरना—क्रि० स० [सं० आचरण से नाम०] आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै सहित वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह सुभ व्रत आचरु। तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहु नाहिन डरु।—तुलसी (शब्द०)।

आचरित[1]—वि० [सं०] १ किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २ नित्य का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३ व्यवहृत, जैसे—स्थान [को०]।

आचरित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्मशास्त्र के अनुसार ऋणी से धन लेने के पाँच प्रकार के उपायों मे से एक। ऋणी के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उसके द्वार पर धरना देकर ऋण को चुका लेना। २. चरित्र। व्यवहार [को०]।

आचरितदायन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकाना जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आचारितदंड्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य [को०]।

आचर्ज—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' उ०—गगन की टोरि एह सुरति छूटे नहीं अजब आचर्ज मम दरम बानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

आचार्य—वि० [सं०] [संज्ञा आचर्य] १ आचरण करने योग्य। २ जाने योग्य [को०]।

आचात—वि० [सं० आचान्त] १ आचमन किया हुआ। २ आचमन करने योग्य [को०]।

आचांति—सज्ञा स्त्री० [सं० आचान्ति] अचान ।

आचान—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आचमन' ।

आचानक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक' ।

आचाम—सज्ञा पुं० [स०] १. भात । २. माँड । ३ आचमन ।

आचामक—सज्ञा पु० [सं०] आचमन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आचार—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवहार । चलन । रहन सहन । २ चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४ शुद्धि । सफाई । ५ भोजन । आहार [को०] । ६ आचरण का तरीका [को०]। ७ नित्य नैमित्तिक नियम [को०] ।

यौ०—अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार । सदाचार । कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार ।

आचारज—सज्ञा पु० [स० आचार्य] दे० 'आचार्य' । उ०—आचारज वासिष्ठ भौ ऋत्वज वत्स प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।

आचारजी—सज्ञा स्त्री० [सं० आचार्यी] पुरोहिताई । आचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किसकी आचारजी है ?

आचारतत्र—सज्ञा पुं० [स० आचारतन्त्र] बौद्धो के चार तत्रो मे से एक [को०] ।

आचारदीप—सज्ञा पु० [सं०] आरती आदि पूजनविधियो मे प्रयुक्त होनेवाला दीप [को०] ।

आचारपतित—वि० [स०] आचारभ्रष्ट [को०] ।

आचारपूत—वि० [सं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [को०] ।

आचारभेद—सज्ञा पु० [सं०] आचार या आचरण सबधी नियमो का अतर [को०] ।

आचारभ्रष्ट—वि० [स०] आचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [को०] ।

आचारलाज—सज्ञा पुं० [स०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [को०] ।

आचारवर्जित—वि० [सं०] १ आचारविरुद्ध या आचारशून्य । २. जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।

आचारवान्—वि० [स० आचारवत्] [वि० स्त्री० आचारवती] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध आचार का । उ०—शुचि आचारवती कल्याणी गिरजा जब अभिजाता । सूर्यवदना अरुणाचल पर करती सद्य स्नाता ।—पार्वती, पृ० ६१ ।

आचारविचार—सज्ञा पु० [सं०] आचार और विचार । पवित्र आचरण ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकसर आचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बडे आचारविचार से रहता है ।

आचारवेदी—सज्ञा स्त्री० [स०] आचार की वेदी । आर्यावर्त [को०] ।

आचारहीन—वि० [स०] आचरणभ्रष्ट । जिसमे आचार विचार न हो । पतित [को०] ।

आचारिक—सज्ञा पुं० [स०] स्वास्थ्य सहिता । स्वास्थ्य सबधी नियम [को०] ।

आचारी[1]—वि० [स० आचारिन्] [वि० स्त्री० आचारिणी] आचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध आचार का । उ०—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दभ सो बड आचारी ।—मानस, ७ । ९८ ।

आचारी[2]—सज्ञा पुं० [स०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।

आचारी[3]—सज्ञा स्त्री० [स०] हुरहुर । हिनमोचिका ।

आचार्य—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आचार्या, आचार्याणी] [वि० आचार्यी] १. उपनयन के समय गायत्री मत्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।

विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । आचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमे आचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो आचार्य को ही था । स्वय आचार्य का काम करनेवाली स्त्री आचार्या कहलाती है । आचार्य की पत्नी को आचार्यानी कहते हैं ।

२. वेद पढानेवाला । ३ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक ४ पूज्य । पुरोहित । ५ अध्यापक । ६ ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) शकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य ७ वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिंसिपल । प्राचार्य [को०] । १ किसी शास्त्र या विषय का धुरधर पडित या ज्ञाता [को०] ।

यौ०—आचार्यकुल = गुरुकुल । आचार्यवान् = उपनीत ।

आचार्यक—सज्ञा पुं० [स०] १. आचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २ व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. आचार्य का पद [को०]

आचार्यकरण—सज्ञा पुं० [स०] माणवक या वटु को उपनीत करने का कार्य [को०] ।

आचार्यदेव—वि० [स०] आचार्य को देव माननेवाला [को०] ।

आचार्यी—वि० स्त्री० [स०] आचार्य की । आचार्य सबधिनी । जैसे—आचार्यी दक्षिणा ।

आचिंत—वि० [स० अचिन्त्य] (परमेश्वर) जो चिंतन मे नही आ सकता । उ०—तेज अड आचिंत का, दीन्हा सकल पसार । अड शिखा पर बैठकर, अधर दीप निरधार ।—कबीर (शब्द०)।

आचिंत्य[1]—वि० [स० आचिन्त्य] सब प्रकार से चिंतन करने योग्य ।

आचिज्ज—सज्ञा पुं० [स० आश्चर्य, प्रा० आचिज्ज] दे० 'आश्चर्य' । उ०—एह वत्त आचिज्ज उपजि मो चित्त तु तव्वह ।—पृ० रा०, ३।२० ।

आचित[1]—सज्ञा पुं० [स०] प्राचीन काल का एक मान जो दस भार या २५ मन का होता था । २ गाडी भर का बोझ । एक छकडे का भार ।

आचित[2]—वि० १ व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [को०] । ३ भरा हुआ [को०] । ४ बँधा हुआ [को०] । ५ फैलाया हुआ [को०] ।

आचीर्ण—वि० [स०] खाया हुआ । आस्वादित [को०] ।

आचूषण—सज्ञा पुं० [स०] १ चूसना । २ चूसकर बाहर निकालना । रक्त चूसने का यत्र लगाकर चूसना [को०] ।

आच्छद—सज्ञा पुं० [स० आच्छद] आवरण । वस्त्र ।

आच्छन्न—वि० [स०] १ ढका हुआ । आवृत । २ छिपा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक—सज्ञा पुं० [सं०] नील का सा एक पौधा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—सज्ञा पु० [स०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—सज्ञा पुं० [स०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आच्छादित, आच्छन्न] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २ वस्त्र। कपडा। ३ छाजन। छवाई। ४. छिपाना [को०]। ५ परिधान [को०]। ६ ठाठ। ठाठर [को०]। ७ लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [स०] १ ढँका हुआ। आवृत्त। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [स० आच्छादिन्] आच्छादान करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [स०] १ ढकने योग्य (स्तन)। २ गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छिन्न—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। २ नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—सज्ञा पु० [स०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित[1]—वि० [सं०] १ मिश्रित। मिला हुआ। २ नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित[2]—सज्ञा पु० १ नखवाद्य। नखो को रगडकर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—सज्ञा पु० [स०] नखक्षत। २ अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [स० आच्छेतृ] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—सज्ञा पु० [स०] १ काटना। काट डालना। २ किंचित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। बलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—सज्ञा पु० [स०] आच्छेद।

आच्छेपⓊ—सज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध। ताहि कहत आच्छेप हैं, भूषन सुकवि सुमेध।—भूषण ग्र०, पृ० ३६।

आच्छोटन—सज्ञा पुं० [सं०] १ चुटकी बजाना। २ उँगली फोडना। उँगली चटकाना।

आच्छोदन—सज्ञा पुं० [स०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आछढनाⓊ†—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित वयस भोर मनमथ चोर ठेलि आछढि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ५६२।

आछत†Ⓤ—क्रि० अ० [प्रा० √अच्छ, हिं० आछना का कृदत रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता मे। मौजूदगी मे। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न वीरज विनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछनाⓊ—क्रि० अ० [स० अस्=होना अथवा स० आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ] १ होना। २ रहना। विद्यमान होना। उ०—भँवर आइ वनखंड सन, लेइ कमल कै बास। दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसीग्र०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपो का व्यवहार अब बोलचाल से उठ गया है, केवल आछत, आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरिⓊ—सज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा प्रा० अच्छरा] दे० 'अप्सरा'।

आछाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुडल नैन विसाल कमल तें आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादितⓊ—वि० [सं० आच्छादित] दे० 'आच्छादित'। उ०—गज चर्म आछादित, भ्रंम नाम, रहै वीर भैरो गन आस पास।—पृ० रा०, १। ३८६।

आछी[1]Ⓤ—वि० स्त्री० [हिं० अच्छा] १ अच्छी। भली। उत्तम। उ०—लै पौढी आँगन ही सुत कौं लिटकि रही आछी उजियरिया।—सूर०, १०। २४६। २ स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तव विट्ठल श्री गुसाँई जी सो विनती करे, जो महाराज! मेरी देह आछी नाही।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४०।

आछी[2]Ⓤ—वि० [स० अशिन्] खानेवाला। उ०—पान फूल आछी सब कोई। तुम कारन यह कीन रसोई।—जायसी (शब्द०)।

आछी[3]†—सज्ञा स्त्री० [स० आक्षिक] नुगधित फूलवाला एक पेड जिसकी लकडी हल्के पीले रग की होती है।

आछेⓊ†—क्रि० वि० [स० अच्छ=स्वच्छ, हिं० अच्छा] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब आछे कहौं बखानि।—नद० ग्र०, पृ० २६४।

आछेⓊ†[2]—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल।—भूषण ग्र०, पृ० ७१।

आछेपⓊ—सज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] आक्षेप नामक अलकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कविजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्र०, पृ० ४००।

आछैⓊ—क्रि० वि० [स० अक्षय, प्रा० अच्छै] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै सगै रहै जु वा। ता कारणि अनत सिधा जोगेश्वर हूवा।—गोरख०, पृ० २।

आछोⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—कब न परत, कमल मुख देखें, भूल्यो काम, घाम आछो बदन निहारि।—नद० ग्र०, पृ० ३५२।

आछोटणⓊ—सज्ञा पुं० [स० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।—(डिं०)।

आछोपⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखियै, सतकर्म पेखिबे तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौⓊ—वि० [हिं०] दे० 'आच्छा'। उ०—आछो गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारयौ।—सूर०, १। १०१। २ मगल। शुभ। उ०—आछो दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करयौ।—सूर०, १०। ८८।

आज[1]—क्रि० वि० [स० अद्य, पा० अज्ज] १ वर्तमान दिन मे। जो दिन वीत रहा है उसमे। जैसे,—आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते वीता। २. इन दिनो। वर्तमान समय मे। जैसे,—(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नही।—(ख) आज करे सो कल पावेगा।

आज[2]—सज्ञा पुं० १ वर्तमान दिन। जो दिन वीत रहा है। जैसे,—आज की रात वह इलाहावाद जायगा। २ इस वक्त। जैसे,—खबरदार आज से ऐसा मत करना।

मुहा०—**आज को** = (१) इस समय। जैसे,—आज को यह वात कही, कल को दूसरी वात कहेगा।—(२) इस अवसर पर। ऐसे समय मे। ऐसे मौके पर। जैसे,—आज को वह न हुए, नही तो वतला देते। **आज तक** = (१) आज के दिन तक। जैसे,—उसे वाहर गए वरसो हुए, पर आज तक उसका कोई खत नही आया।—(२) इस समय तक। इस घडी तक। जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा। **आज दिन** = इस समय। वर्तमान समय मे। जैसे,—आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नही। **आज वरसकर फिर वरसेगा** = ऐसा ही फिर होगा। **आज लौं** = आज तक। **आज से** = इस समय से। इस वक्त से। अव से। भविष्य मे। जैसे,—अव तक किया सो किया आज से न करना। **आज हो कि कल** = थोडे दिनो मे। दो चार दिन के अदर ही। जैसे,—उनका अव क्या ठिकाना, आज मरें कि कल।

आज[3]—वि० [स०] [वि० स्त्री० **आजी**] १ वकरासवंधी। २ वकरे से उत्पन्न [को०]।

आज[4]—सज्ञा पुं० १ गृध्र। गिद्ध। २ आज्या घृत। घी। ३. क्षेपण। फेंकना [को०]।

आजक—सज्ञा पु० [स०] वकरो का झुड [को०]।

आजकल—क्रि० वि० [हिं० **आज** + **कल**] इन दिनो। इस समय। वर्तमान दिनो में। जैसे,—आजकल उनका मिजाज नही मिलता।

मुहा०—**आजकल मे** = थोडे दिनो मे। शीघ्र। जैसे,—घवराओ मत, आजकल मे देता हूँ। **आजकल करना, आजकल वताना** = टालमटोल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—(क) व्यर्थ आजकल क्यो करते हो, देना हो तो दो। (ख) जव मैं माँगने जाता हूँ, तव वह मुझको आजकल वता देता है। **आजकल लगाना** = अव तव लगना। मरने मे दो ही एक दिन की देर होना। मरणकाल निकट आना। जैसे,—उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ। **आजकल होना** = (१) टालमटोल होना। हीला हवाला होना। जैसे,—महीनों से तो आजकल हो रहा है, मिले तव जानें।—(२) दे० 'आजकल लगना'। **आज मरे कल दूसरा दिन** = मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के वाद कोई चिंता नही रहती।

आजकार—सज्ञा पु० [स०] शिव का वैल। नदी [को०]।

आजगर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आजगरी**] १. अजगर संवधी। २. अजगर के समान [को०]।

आजगव—सज्ञा पु० [सं०] १ शिवधनुप। महादेव का धनुप। पिनाक। २ शिव के धनुप जैसा दृढ धनुप [को०]।

आजनन[1]—सज्ञा पु० [स०] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल। सद्वश [को०]।

आजनन[2]—क्रि० वि० [स०] जन्म से ही [को०]।

आजन्म—क्रि० वि० [स०] १ जन्म से। जन्म से लेकर। उ०—आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अय।—मानस, ६।१३०। २ जीवन भर। जन्म भर। जिंदगी भर। आजीवन। जव तक जिए तव तक।

आजमाइश—सज्ञा स्त्री० [फा० **आजमाइश**] १ परीक्षा। इम्तहान। परख। २ खडी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना।

आजमाना—क्रि० स० [फा० **आजमाइश** = परीक्षा] [वि० **आजमूदा**] परीक्षा करना। परखना। जाँच करना। उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायँ।—शेर०, पृ० ४९३।

आजमीढ[1]—वि० [स० **आजमीढ**] अजमीढ राजा के वश का।

आजमीढ[2]—सज्ञा पुं० अजमीढ़ देश का राजा।

आजमूदा—वि० [फा० **आजमूदह**] आजमाया हुआ। परीक्षित।

आजर्जरित—वि० [स०] फटा हुआ। टुकडे टुकडे। तार तार [को०]।

आजयन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विजय। २ युद्ध [को०]।

आजवन—सज्ञा पुं० [सं०] १ त्वरा। वेग। २. युद्ध। ३. आक्रमण [को०]।

आजवह[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आजवहा**] जिसे वकरी ले जाय या ढोए।

आजवह[2]—सज्ञा पु० हिमालय का पर्वतीय देश जहाँ भोजन आदि की सामग्री वकरियो पर लदकर जाती है।

आजस्रिक—वि० [सं०] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को०]।

आजा—सज्ञा पुं० [स० **आर्यक**, प्रा० **अज्जअ**] [स्त्री० **आजी**] पितामह। दादा। वाप का वाप। उ०—आजा को घर अमर है वेटा के सिर भार। तीन लोक नाती ठगा, पडित करो विचार।—कवीर (शब्द०)।

आजागुरु—सज्ञा पुं० [हिं० **आजा** + **गुरु**] १ गुरु का गुरु। २ गुरु का आजा या दादा।

आजात—वि० [स०] उच्च या ख्यात कुल मे उत्पन्न [को०]।

आजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जन्म। उत्पत्ति। २. अच्छा वंश [को०]।

आजाद—वि० [फा० **आजाद**] १ जो वद्ध न हो। छूटा हुआ। वरी। जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर वहुत से कैदी आजाद किए गए। २ वेफिक्र। वेपरवाह। ३ स्वतत्र। जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। उ०—साहव ने इस गुलाम को आजाद कर दिया। लो वदगी कि वदगी मे छूट गए हम।—शेर०, पृ० ४५९। ४ निडर। निर्भर। अशक। वेधडक। ५ स्पष्टवक्ता। हाजिरजवाव। ६ उद्धत। ७ अकिंचन। निष्परिग्रह। ८ कही एक जगह न रहनेवाला। वेपता। वे-निशान। ९ एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढी, मूँछ और भौं आदि मुँडाए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं। ये सूफी सप्रदाय के अतर्गत हैं और अद्वैतवादी हैं।

क्रि० प्र०—**करना**।—**रहना**।—**होना**।

यौ०—आजाद तबीयत, आजाद मिजाज=स्वेच्छाचारी। मनमौजी। आनदी।

आजादगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादगी] स्वतत्रता।

आजादाना—क्रि० वि० [फा० आजादानह्] आजाद की तरह। स्वतत्रतापूर्वक। स्वच्छदतापूर्वक।

आजादी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १ स्वतंत्रता। स्वाधीनता। २ निरकुशता [को०]।

आजान[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म। जनन। २.उत्पत्ति या जन्म का कारण। ३ जन्मस्थान [को०]।

आजान[2]—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [को०]।

आजान[3]—वि० [हिं० अजान] अनजान। न जाननेवाला। उ०—करतलह सु कवि कित्तिय सुवर, पय थक्के आजान जिम।—पृ० रा०, २५। ५६८।

आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल मे उत्पन्न, जैसे देव आदि [को०]।

आजानदेव—सज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि मे देवता रूप मे ही उत्पन्न हुए थे।

विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप मे ही उत्पन्न होते है।

आजानि—सज्ञा स्त्री०[स०] १ जननी। माता। २ जन्म। उत्पत्ति। ३ अच्छा वश [को०]।

आजानु—वि० [स०] जाँघ तक लवा। घुटने तक लवा।

यौ०—आजानुबाहु। आजानुभुज। आजानुलबी।

आजानुबाहु—वि० [स०] जिसकी बाहु जाँघ तक लंबी हो। जिसके हाथ घुटने तक लबे हो।

आजानुभुज—वि० [स०]दे० 'आजानुबाहु'। उ०—आजानुभुज सरचाप धर सग्रामजित खरदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७८।

आजानुलबी—वि० [स० आजानुलम्बिन्] घुटने तक लवा [को०]।

आजानेय[1]—सज्ञा पुं० [स०] घोडे की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है।

आजानेय[2]—वि० १ अच्छी नस्ल का (घोडा)। २. उच्चकुल मे उत्पन्न। ३ निर्भय [को०]।

आजार—सज्ञा पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। बीमारी। व्याधि। उ०—उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नही, अभी हो जाय शिफा।—श्यामा०, पृ० १०१।

क्रि० प्र०—देना।

२ दुख। कष्ट। तकलीफ। उ०—तेरे बीमार सा बीमार न होगा कोई। जिसको जाहिर मे जो देखा तो कुछ आजार नही।—कविता को०, भा० ४, पृ० २२६।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पाना।—लगाना।

आजि—सज्ञा पुं० [स०] १ युद्ध। रण। सग्राम। लडाई। उ०—चतुरग सैन भगाइकै, तब जीतियो वह आजि।—रामच०, पृ० १७४। २ दौड [को०]। ३ युद्धक्षेत्र या दौड का स्थान [को०]। ४. सीमा। घेरा [को०]। ५ पथ। मार्ग [को०]। ६ क्षण [को०]। ७. निंदा [को०]।

आजिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] युद्ध [को०]।

आजिगमिषु—वि० [स०] आने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

आजिगीषु—वि० [स०] जय का इच्छुक [को०]।

आजिग्रह—वि० [स०] ग्रहण या हरण करनेवाला [को०]।

आजिज—वि० [अ० आजिज] [संज्ञा आजिजी] १ दीन। विनीत। २ हैरान। तग। उ०—इंद्रिन न आजिज तुम रहते इद्री मारि गिराओ।—पलटू०, बानी, भा० ३, पृ० ५८।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

आजिजी—सज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता। विनीत भाव। नम्रता। २ हैरानी। ३. निराशा। ४. कमजोरी।

आजिमुख—संज्ञा पुं० [स०] युद्ध की अग्रपक्ति [को०]।

आजी—सज्ञा स्त्री० [स० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ अथवा हिं० आजा] दादी। पितामही।

आजीव—सज्ञा पुं० [स०] १ जीविका। धधा। २ जीविका का साधन या उपाय। ३. उचित नाम या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरो और श्रमिकों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना लिखा है।

४ राज्यकर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आजीवक—सज्ञा पुं०[स०] १ गोशाल द्वारा प्रवर्तित धार्मिक सप्रदाय का साधु (जैन)। उ०—इतने मे एक आजीवक उसी स्थान पर आकर चदन से पूछने लगा।—इरा०, पृ० ७२। २. भिखमगा। भिक्षुक [को०]।

आजीवन—क्रि० वि० [स०] जीवनपर्यंत। जिंदगी भर। जब तक जीए तब तक।

आजीवनिक—वि० [स०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [को०]।

आजीवात—क्रि० वि० [सं० आजीवान्त] मरने की घड़ी तक। प्राण निकलने के क्षण तक।

आजीविक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आजीवक' [को०]।

आजीविका—सज्ञा स्त्री० [स०] वृत्ति। रोजी। रोजगार। जीवन का सहारा। जीवननिर्वाह का अवलब। उ०—तेरी बहुत अच्छी आजीविका है।—शकुतला, पृ० १०१।

आजीवितात—क्रि० वि० [स० आजीवितान्त] जीवनपर्यंत [को०]।

आजीवी—वि० [स० आजीविन्] जीविकायुक्त। २ एक प्रकार के भिक्षुक (एकदडी) [को०]।

आजीव्य[1]—वि० [स०] १ जीविका योग्य। जीविका बनाने योग्य। ३ निवास योग्य। ४. उपजाऊ [को०]।

आजीव्य[2]—सज्ञा पुं० [स०] जीविका या रोजी का साधन [को०]।

आजु—क्रि० वि०, सज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज'। उ०—(क) आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके।—तुलसी ग्र०, पृ० २७४। (ख) बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।—मानस, २।१०२।

आजुर्दगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रज। खेद। दुःख।

आजुर्दा—वि० [फा० आज़र्दह्] खिन्न। दुखी। उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१।

आजू[1]—सज्ञा पु० [स०] १ वेगार। २ विना वृत्ति लिए काम करनेवाला नौकर (को०)। ३. नरक निवास या वास (को०)।

आजू[2] (५)—सज्ञा पुं० [अ० वजूअ] दे० 'वजू'। उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर पक तकवीर परतीत पाई—कबीर० रे०, पृ० २४।

आज्ञप्त—वि० [सं०] १ आदेश दिया हुआ। २ सूचित [को०]।

आज्ञप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आज्ञा। आदेश। २. सूचना।

यौ०—आज्ञप्तिहर=संदेशवाहक। दूत।

आज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वडो का छोटो को किसी काम के लिये कहना। आदेश। हुक्म। जैसे,—राजा ने चोर को पकडने की आज्ञा दी। २. छोटो को उनकी प्रार्थना के अनुसार वडे का उन्हे कोई काम करने के लिये कहना। स्वीकृति। अनुमति। जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगो को जुआ खेलने की आज्ञा दी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मानना।—लेना।—होना।

यौ०—आज्ञाकारी। आज्ञावर्ती। आज्ञापक। आज्ञापालन। आज्ञाभंग।

आज्ञाकर—वि० [सं०] दास। सेवक [को०]।

आज्ञाकारी—वि० [स० आज्ञाकारिन् [स्त्री० आज्ञाकारिणी] १. आज्ञा माननेवाला। हुक्म माननेवाला। आज्ञापालक। उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सव आज्ञाकारी। तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार वेत कर धारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०८। २. सेवक। दास। टहलुआ।

आज्ञाचक्र—सज्ञा पुं०[सं०] योग और तत्र मे माने हुए शरीर के भीतर के छह चक्रों मे से छठा, जो सुषुम्ना नाडी के वीचोवीच दोनो भौं के वीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है।

आज्ञाता—वि० [स० आज्ञातृ] आज्ञा देने या करनेवाला [को०]।

आज्ञादान—सज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा करना या देना [को०]।

आज्ञाधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो।

आज्ञान—सज्ञा पु० [स०] अवगम। ज्ञान। वोध [को०]।

आज्ञापक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आज्ञापिका] १ आज्ञा देनेवाला। आज्ञा करनेवाला। २ प्रभु। स्वामी।

आज्ञापत्र—सज्ञा पुं०[स०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय। हुक्मनामा।

आज्ञापन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आज्ञापित] सूचना। जताना।

आज्ञापरिग्रह—सज्ञा पु० [स०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना [को०]।

आज्ञापालक—वि० [स०] [वि०स्त्री० आज्ञापालिका] १ आज्ञा पालन करनेवाला। आज्ञाकारी। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। फरमाँवरदार। २ दास। टहलुआ।

आज्ञापालन—सज्ञा पु० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना। फरमाँवरदारी।

आज्ञापित—वि० [सं०] सूचित। जाना हुआ।

आज्ञाप्य—वि० [स०] आज्ञा या निर्देश के योग्य [को०]।

आज्ञाप्रतिघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा का उल्लघन। २. विद्रोह [को०]।

आज्ञाभंग—सज्ञा पुं० [स० आज्ञाभङ्ग] आज्ञा न मानना। हुक्म उदूली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आज्ञायी—वि० [स० आज्ञायिन्] वोध या ज्ञानवाला। समझनेवाला [को०]।

आज्ञाविधेय—वि० [स०] आज्ञा माननेवाला। आज्ञाकारी [को०]।

आज्य—संज्ञा पु० [सं०] १ घृत। घी। उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य। डाल न आशा आग मे असहयोग का आज्य।—शकर०, पृ० २०६। २ (व्यापक भाव मे) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ [को०]। ३ प्रातःकालिक होत्र के मत्र [को०]। ४ वह सूक्त जिसमे उक्त मत्र है [को०]।

यौ०—आज्यग्रह, आज्यधानी=घृतपात्र। आज्यदोह। आज्यप=घृत पीनेवाला। आज्यपा। आज्यभाग। आज्यभुक्। आज्यस्थाली।

आज्यदोह—सज्ञा पु० [स०] सामवेद की तीन ऋचाओ का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है।

आज्यधन्वा—सज्ञा पु० [सं० आज्यधन्वन्] वह जिसके धनुष मे घृत की मालिश की गई हो [को०]।

आज्यपा | संज्ञा पुं० [सं०] सात पितरो मे से एक। मनु के अनुसार ये वैश्यो के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लडके थे।

आज्यभाग—सज्ञा पुं० [स०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओ को उत्तर और दक्षिण भागो मे आधार के पीछे दी जाती हैं।

विशेष—इनके अविच्छिन्न होने का नियम नही है। ऋग्वेदी लोग अग्नये स्वाहा' से उत्तर ओर और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण ओर आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओ मे भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनो के पूर्वार्द्ध भाग ही मे देते हैं। आधार और आज्यभाग आहुति के विना हवि से आहुति नही दी जाती।

आज्यभुक्, आज्यभुज—सज्ञा पु० [स०] अग्नि।

आज्यलेप—सज्ञा पुं० [सं०] घी का मलहम [को०]।

आज्यवारि—सज्ञा पुं० [स०] घृतसमुद्र। सात पौराणिक समुद्रो मे से एक [को०]।

आज्यविलापिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र [को०]।

आज्यस्थाली—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो वटली के आकार का होता है और जिसमे हवन के लिये घी रखा जाता है।

आज्यहोम, आज्याहुति—सज्ञा पुं० [स०] घी का होम [को०]।

आज्ञा[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाक्षा] इच्छा। उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरो खान पूरवण आज्ञा।—रा० रू०, पृ० २६७।

आझाल Ⓤ†— वि० [स० आ+ज्वाल] तेजस्वी उ०—अखई प्रोहित वम उजालो, आयो प्रिय दरसण आझोलो।—रा० रू०, पृ० ३००।

आटना—क्रि०अ० [स० अटन=घूमना से प्रे० रूप आटन=घुमाना, फेरना।] पीतना। दवाना। उ०—(क) घोडो ही की लीद मे मारो आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यो इस वृद्ध पुरुप को अनुग्रह से आटे देते हो।—तोताराम।—(शब्द०)।

आटरूष—सज्ञा पु० [स०] १ पौधा। अडूसा। २ एक वृत्त का नाम। अटरूप [को०]।

आटविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन मे निवास करनेवाला व्यक्ति। २ छह प्रकार की सेनाओ मे से एक। ३ वन्य जातियो का प्रधान पुरुप या मुखिया [को०]।

आटविक[2]—वि० [स०] १ वन का। वन्य। जगली। २ वनवासियो सवधी [को०]।

आटा[1]—सज्ञा पुं० [स० आर्द=जोर से दावना, प्रा० *अट्ट] १ किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २ पिसा हुआ गेहूँ या जौ।

मुहा०—कगाली या गरीवी मे आटा गीला होना=धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना=ससार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिक्र=जीविका की चिंता। आटे का आपा=भोली स्त्री। अत्यत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना=नष्ट भ्रष्ट होना।

३ किसी वस्तु का चूर्ण। वुकनी।

आटा[2]—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहि कहँ पानी लेई वाँटा। पछिलहि कहँ नहि काँदो आटा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी। आटी। एक प्रकार की मछली [को०]।

आटिक,आटिक्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [को०]।

आटिमुख—सज्ञा पुं० [स०] शल्यक्रिया सवधी एक शस्त्र जिसका आकार आडी चिडिया के मुख या चोच का सा होता है। [को०]।

आटी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी [को०]।

आटीकन—सज्ञा पु० [स०] गाय के वछडे का उछलना कूदना [को०]।

आटीकर—सज्ञा पु० [स०] सांड। वृपभ [को०]।

आटोक्रैट—सज्ञा पुं० [अ०] १ निरकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरो पर अपनी शक्ति का अवाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २ वह जिसे किसी विपय मे अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विपय मे अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरकुश।

आटोक्रैसी—सज्ञा स्त्री०[अ०] १ दूसरो पर अनियत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरो पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरकुशता। २. किसी निरकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकतत्रता।

आटोप—सज्ञा पु० [सं०] १ आच्छादन। फैलाव। २ आडवर। विभव। ३ पेट की गुडगुडाहट। ४ फूलना। शोथ [को०]। ५ भीड [को०]। ६ आधिक्य। प्राचुर्य [को०]। ७ गर्व। घमड [को०]।

यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान वजावहिं भेरी।—मानस ६।३८।

आट्टोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमे पेट की नसें तन जाती हैं। २ पेट की नसो का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] एक सख्या। चार का दूना।

मुहा०—आठ आठ आँसू रोना=वहुत अधिक विलाप करना। आठो गाँठ कुम्मैत=(१) सर्वगुणसपन्न। (२) चतुर। (३) छँटा हुआ। धूर्त। आठो पहर=दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना=हर समय क्रुद्ध रहना। वरावर झल्लाए रहना।

आठक Ⓤ†—वि० [सं० अष्ट, पा० अट्ठ+हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [स० अष्टम, पा० अट्ठवँ, प्रा० अट्ठय, अट्ठवँ] सख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,—इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढना है।

आठैं, आठो—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठो का मेला उ०—सवत सरस विभावन, भादौं आठैं तिथि, वुधवार।—सूर०, १०।८६।

आठौगाँठ—वि० [हिं० आठों+गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुवस की आठौं गाँठि अनूप। छुटी हाथ तें पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७।

आडंवर[1]—सज्ञा पु० [स० आडवर] १ गभीर शब्द। २ तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिग्घाड। ४ ऊपरी वनावट। तडक भडक। टीम टाम। झूठा आयोजन। ढोग। कपटवेप जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमे विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंवर खूव वढाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओ के आडवर ही आडवर देख लो।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—बढाना।—रचना।

५ आच्छादन।

यौ०—मेघाडवर।

६ तवू। ७ वडा ढोल जो युद्ध मे वजाया जाता है। पटह। ८ कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक वोलना [को०]। ९ वादलो का गर्जन। मेघगर्जन [को०]। १० युद्धघोषणा या आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाडा [को०]। ११ प्रसन्नता। आह्लाद [को०]। १२ पलक [को०]। १३ अग-सवाहन। मालिश [को०]। १४ क्रोध। कोप [को०]।

आडवर[2]—वि० अधिक। उच्च। अपार [को०]।

आडवराघात—सज्ञा पु० [स० आडम्वराघात] पटह या नगाडा वजानेवाला आदमी [को०]।

आडवरी—वि० [स० आडम्वरिन्] आडवर करनेवाला। ऊपरी वनावट करनेवाला २ घमडी। अभिमानी [को०]।

आड[1]—सज्ञा स्त्री० [अर्थ=वारण, रोक] १. ओट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड मे छिपा वैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड़ कर दो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—आड़े देना(पु)=ओट करना। आड़ के लिये सामने रखना। उ०—आडे दै आले बसन, जाडे हूँ की राति। साहसु कै सनेह बस, सखी सबै ढिग जाति।—बिहारी र०, दो० २८३। २ रक्षा। शरण। पनाह। सहारा। आश्रय। जैसे,—(क) अब वे किसकी आड पकड़ेंगे? (ख) जब तक उनके पिता जीते थे, तब तक बडी भारी आड थी।

क्रि० प्र०—धरना।—पकडना।—लेना।

३ रोक। अडान। ४. ईंट वा पत्थर का टुकडा जिसे गाडी के पहिए के पीछे इसलिये अडाते है जिसमे पहिया पीछे न हट सके। रोडा। ५ सगीत मे अष्टताल का एक भेद। ६ थूनी। टेक। ७ तिल की बोडी जिसमे तिल भरे रहते हैं। ८ एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानो मे काम आता है।

आड़[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अल=डंक, पा० अड, प्रा० आड] बिच्छू या भिड आदि का डक।

आड़[3]—सज्ञा स्त्री० [स० आलि=रेखा] १ लबी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं। उ०—गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड। कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड।—बिहारी र०, दो० ७०८। २ स्त्रियो के मस्तक पर का आडा तिलक। उ०—केसव, छबीलो छत्र सीसफूल सारथी सो केसर की आडि अधि रथिक रची बनाइ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६०। (ख) मगल बिंदु सुरगु, ससि मुखु केसरि आड गुरु। इक नारी लहि मगु, किय रसमय लोचन जगत।—बिहारी र०, दो० ४२। ३ माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक गहना। टीका।

आडगीर—सज्ञा पु० [हिं०+आड़ फा० गीर] खेत के किनारे की घास।

आडण—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडना=रोकना] ढाल।—(डिं०)।

आडना—क्रि० स० [अल=वारण करना] १. रोकना। छेकना। उ०—अँचवन दियो न आजु अलि हरि छवि-अमी अघाइ। आडयो प्यासे दृगनि को लाज निगोडी आइ।—भिखारी० ग्र०, पृ० ४५। २ बाँधना। ३. मना करना। न करने देना। ४. गिरवी रखना। गहने रखना। जैसे,—सौ रुपए की चीज आड करके तो २५) लाया हूँ।

आडबंद—सज्ञा पुं० [हिं० आड+फा० बंद] १ फकीरो का लँगोट। २ पहलवानो का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं।

आडवन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडवद'।

आड़ा[1]—सज्ञा पुं० [स० आलि=रेखा प्रा० आल, आड अथवा सं० अराला प्रा० *आल] [स्त्री० आडी] १ एक धारीदार कपडा। २ जहाज का लट्ठा। शहतीर। ६. नाव या जहाज मे लगे हुए बगली तख्ते। ४ जुलाहो का लकडी का वह समान जिसपर सूत फैलाया जाता है।

आड़ा[2]—वि० १ आँखो के समानातर दाहिनी ओर से बाईं ओर को बाई ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ। २ बार से पार तक रखा हुआ।

मुहा०—आड़े आना=(१) रुकावट डालना। बाधक होना। जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उसी मे तुम बेहतर आड़े आते हो। (२) कठिन समय में काम आना। गाढे मे काम आना। सकट मे खडा होना। उ०—कमरी थोडे दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान। उनकर राखै मान बुद जहँ आडे आवै। बकुचा बाँधै मोट राति को झारि बिछावै।—गिरधर (शब्द०)। आड़ा तिरछा होना=बिगडना। मिजाज बदलना। जैसे,—आडे तिरछे क्यो होते हो, सीधे सीधे बातें करो। आड़े पड़ना=बीच मे पडना। रुकावट डालना। उ०—कबिरा करनी आपनी कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद आडा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। आड़े हाथो लेना=किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना। जैसे,—बात ही बात मे उन्होंने बलदेव को ऐसा आडे हाथो लिया कि वह भी याद करेगा। आड़ा होना=रुकावट डालना। आगे न बढने देना।—मैं पीछे मुनि धीय के, चल्यौ चलन करि चाव। मर्यादा आडी भई, आगे दियो न राव।—लक्ष्मण (शब्द०)।

आड़ा[3]—सज्ञा पु० [हिं० अड्डा] दे० 'अड्डा'। उ०—होइ निचिंत बैठे तेहि आडा। तब जाना खोचा हिय गाढा।—जायसी ग्र०, पृ० २८।

आड़ाखेमटा—सज्ञा पुं० [हिं० आडा+खेमटा] मृदग का साढे तेरह मात्राओ का एक ताल।

विशेष—इसमे तीन आघात और एक खाली रहता है। कोई कोई इसमे खाली का व्यवहार नही करते। इस ताल के बोल ये हैं—धा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन। ताके तेरे केटे धेन धागे नागे तेन।

आड़ाचौताल—सज्ञा पु० [हिं० आडा+चौताल] मृदग का एक ताल। यह ताल सात मात्राओ का होता है।

विशेष—इसमे चार आघात और तीन खाली होते हैं। इस ताल के बोल यो हैं—धाग् धागे दिता, केटे धागे दिता गदि धेने धा। मतातर से इसके बोल यो हैं—धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा।

आड़ाठेका—सज्ञा पु० [हिं० आडा+ठेका] नौ मात्राओ का एक ताल।

विशेष—इसमे चार दीर्घ और चार अणु मात्राएँ होती है। चार दीर्घ मात्राओ की आठ दून मात्राएँ और चार अणु मात्राओ की एक मात्रा। इस प्रकार सब मिला कर नौ मात्राएँ होती हैं। किंतु जब ठेके मे ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमे से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा अणु भी लगा दी जाती है। इसके मृदग के बोल ये हैं—धाकेटे नाग धो
+ ० + १ + +
ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिरेन धा।

आड़ापचताल—सज्ञा पुं० [हिं० आडा+पंच+ताल] पाँच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल।
+ १ १
विशेष—इसके बोल ये हैं—धि निर किट, धिना धि धि ना ना तु ना, कुत्ता[1] धि धि, ना धि धि ना।

आड़ालोट—सज्ञा पुं० [हिं० आडा+लोटना] डाबोडोलपन। कर। क्षोभ (लश०)।

क्रि० प्र०—मारना = जहाज का लहराना। जहाज का डगमगाना।

आडि, आडी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक प्रकार की मछली। २ एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं। यह गिद्ध की तरह होता है।

आडिटर—सज्ञा पुं० [अ०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला। आय-व्यय परीक्षक।

आडिवी—सज्ञा पुं० [सं० आडीविन्] [स्त्री० आडिविनी] काक। कौआ [को०]।

आडी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडा] १ तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढग जिसमे किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या बारहवें भाग ही मे पूरा ताल बजा लिया जाता है। २ चमारो की छुट्टी।

आडी[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरी'।

आडी[3]—वि० [हिं० आड + ई (प्रत्य०)] सहायक। अपने पक्ष का।

विशेष—जब किसी खेल मे लडको के दो दल हो जाते हैं तब एक लडका अपने दल के लडके को आडी कहता।

आडी[4]—वि० स्त्री० पडी। बेंडी।

मुहा०—आडी करना = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालो की बोली मे लबे पीटे हुए वर्क को चौडा पीटना।

आडू—सज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा [को०]।

आडू—सज्ञा पुं० [स० अंड अथवा आलु] १ एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है। देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है। इसे शफतालू भी कहते हैं। यह फल दो प्रकार का होता है—एक चकैया, दूसरा गोल। २ इस फल का वृक्ष।

आढ[1]—सज्ञा पुं० [सं० आढक] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तौल।

आढ[2] ⑤—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड] १ ओट। पनाह। २ सहारा। ठिकाना। उ०—ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जगमग मुख मलीन लहै आढ न।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४। ३ ⑤ अतर। बीच। जैसे,—(क) एक दिन आढ देकर आना। (ख) एक कोस-आढ-देकर ठहरेंगे।

मुहा०—आढ़ आढ़ करना = बीच मे अवधि डालना। आजकल करना। टाल मटूल करना। जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न विगोयो। शकर को चित हरयो कामिनी सेज छाडि भू सोयो। जारि मोहिनी आढ आढ कियो तब नख सिख तें रोयो।—सूर (शब्द०)। (ख) आढ आढ करत असाढ आयो, एरो आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते। श्रीपति ये मैन माते मोरन के बैन सुनि परत न चैन बुंदियान के झमाक ते।—श्रीपति। (शब्द०)।

आढ[3]—वि० [स० आढ्य = सपन्न] कुशल। दक्ष। उ०—स्वारथ लागि रहे वे आढा। नाम लेत जस पावक डाढ़ा।—कबीर, (शब्द०)।

आढ़[4]—सज्ञा स्त्री० [स० आढि] एक प्रकार की मछली।

आढ[5]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ = टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक आभूषण। टीका।

आढक—सज्ञा पुं० [स०] १ एक तौल जो चार सेर के बराबर होती है। २ अन्न नापने का काठ का बरतन जिसमे अनुमान से चार सेर अन्न आता है। ३ अरहर।

आढकिक—वि० [स०] १ आढकवाला आढकयुक्त। २ एक आढक से बोया हुआ (खेत) [को०]।

आढकी—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अरहर नाम का अन्न। २ सोरा मृत्तिका। गोपीचदन।

आढत—सज्ञा स्त्री० [हिं० आढना = जमानत देना] १. किसी आढ़ती व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उसकी बिक्री करा देने का व्यवसाय। २ वह स्थान जहाँ आढ़त का काम होता रहता हो। ३ वह धन जो बिक्री कराने के बदले मिलता है।

आढतदार—सज्ञा पुं० [हिं० आढत + फा दार (प्रत्य०)] वह जो व्यापारियो का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारो के हाथ बेचता हो। आढत का काम करनेवाला। अढतिया।

आढतिया—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अढतिया'।

आढ्यकर—वि० [सं० आढ्यङ्कर] असपन्न को सपन्न करनेवाला।

आढ्यभविष्णु—वि० [स० आढ्यम्भविष्णु] धनी होनेवाला [को०]।

आढ्य—वि० [स०] १ सपूर्ण। पूर्ण। २ युक्त। विशिष्ट। ३ धनी [को०]।

यौ०—आढ्यकुलीन = धनी कुल मे उत्पन्न। आढ्यचर, आढ्यपूर्व = पहले का धनी। आढ्यरोग = गठिया। वात रोग। गुणाढ्य। धनाढ्य। पुण्याढ्य। सनाढ्य।

आढ्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] धन [को०]।

आढ्यरोगी—वि० [सं० आढ्यरोगिन्] गठिया का रोगी [को०]।

आढ्यवात—सज्ञा पु० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०]।

आणक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ एक रुपये का सोलहवाँ भाग। आना। २ एक प्रकार का रतिबध। पार्श्वसभोग [को०]।

आणक[2]—वि० अधम। कुत्सित।

आणव[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आणवी] अत्यत सूक्ष्म। अणु। अत्यत छोटा [को०]।

आणव[2]—सज्ञा पुं० अणुता। अत्यत सूक्ष्मता [को०]।

आणविक—वि० [सं०] अणु से सबद्ध। अणु सबधी।

आणवीन—वि० [स०] अणुधान्य (सावाँ आदि) बोने योग्य [को०]।

आत ⑤—सज्ञा पुं० [स० आत्म, हिं० आतम] आत्मा। उ०—आगम पथ बाटा चढ़ी सुर्ति घाटा, गगन गैन फाटा सो आत निआत। घट०, पृ० ३८६।

आतक—सज्ञा० पु० [स०] १. रोब। दबदबा। प्रताप। उ०—सहित गुमान गरब आतक, सुनि राजा के बचन निसक। हम्मीर ह०, पृ० १८। २ भय। शका।

क्रि० प्र०—छाना।—जमना।—फैलना।

३ रोग। बीमारी।

यौ०—आतंक-निग्रह।

४ मुरचग की ध्वनि। ५ पीडा। कष्ट उ०—हो निर्भय निर्जय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फैला भय, आतक, विषाद।—पार्वती पृ० ८६। ६. सदेह [को०]। ७ निश्चय का अभाव [को०]।

आतंकवादी—वि० [स० आतङ्क+वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र मे विश्वास रखता हो। जैसे, आतंकवादी सघटन।

आतकित—वि० [सं० आतङ्कित] भीत। त्रस्त। डरा हुआ। उ०—पशु फिरते सानद विहगकुल मगल के स्वर गाते। आतकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते। पार्वती०, पृ० ५४।

आतचन—सज्ञा पु० [स० आतञ्चन] १ दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन। जामन। २ सकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति। ३ दही। ४ जमाने का कारण। ५ जमने मे दूध का जलीय अश। ६ प्रेपक। ७ सतोपकारक या तोपकारक। ८ सकट। विपत्ति। ९. वेग। गति। १०. धातुओ के मिश्रण मे सयोजक तत्व। ११. स्थूलकरण। मोटा करना [को०]।

आत—सज्ञा पुं० [स० आतु] शरीफा। सीताफल। उ०—दिखा रहा था तरु वृद मे खडा स्व आततायीपन, पेड आत का।—प्रिय० प्र० १०५।

आतत—वि० [सं०] १ चढा या चढाया हुआ। खिचा हुआ। फैला हुआ (धनुष या उसकी डोरी) [को०]।

आततज्य—वि० [स०] जिसके ज्या (धनुष की डोरी) आतत (चढी या खिची) हो [को०]।

आततार्ई—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—वरनि वताई, छिति व्योम की तनाई जेठ आयो आततार्ई पुटगाक सौ करत है।—कवित्त०, पृ० ५९।

आततायी—सज्ञा पुं० [स० आततायिन्] [स्त्री० आततायिनी] १. आग लगानेवाला। २ विष देनेवाला। ३ वधोद्यत शस्त्रधारी। ४ जमीन छीन लेनेवाला। ५ धन हरनेवाला। ४ स्त्री हरनेवाला। ७ क्रूर व्यक्ति। अत्याचारी। लोकपीडक। संताप देनेवाला व्यक्ति।

आतन—सज्ञा पुं० [स०] १ तानना। फैलाना। विस्तृत करना। २ दृश्य [को०]

आतप—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आतपी, आतप्त] १ धूप। घाम। उ०—मृदुल मनोहर सुदर गाता। सहत दुसह वन आतप वाता।—मानस, ४। १। २ गर्मी। उष्णता। ३ सूर्य का प्रकाश। ४. ज्वर। बुखार।

यौ०—आतपक्लात।

आतपत्र, आतपत्रक—सज्ञा पु० [स०] छाता। छतरी। उ०—आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान।—पार्वती, पृ० ३०।

आतपन—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

आतपलघन—सज्ञा पुं० [स० आतपलङ्घन] सूर्य के ताप में से गुजरना [को०]।

आतपात्यय—सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रीष्म का बीतना। २ सूर्यास्त [को०]।

आतपाभाव—सज्ञा पु० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [को०]।

आतपी[1]—सज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य।

आतपी[2]—वि० धूप का। धूप सबधी।

आतपीय—वि० [सं०] सूर्यताप संबधी। धूपवाला [को०]।

आतपोदक—सज्ञा पुं० [स०] मृगतृष्णा।

आतम[1]—वि० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—आतम रूप सकल घट दरस्यो, उदय कियो रवि ज्ञान।—सूर०, २।३३।

आतम[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—एकै आतम हम तुम माही।—सूर० ११। ४।

आतमक—वि० [स० आत्मक] दे० 'आत्मक'। उ०—प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि। नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद वखान।—भिखारी, ग्र०, भा० १, पृ० १।

आतमगामी—वि० [स० आत्म+गामिन्] आत्मविद्। उ०—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यो आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी।—नद० ग्र०, पृ० ४१।

आतमज्ञान—सज्ञा पुं० [स० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता। उ०—ताते आतमज्ञान धन पायो नाहिं अजान।—दीन० ग्र०, पृ० १५२।

आतमवादी—वि० [स० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी'। उ०—जे मुनिनायक आतमवादी।—मानस ७। ७०।

आतमहन—वि० [स० आत्महन्] दे० 'आत्महन्'। उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक, मदमति आतमहन् गति जाइ।—तुलसी (शब्द०)।

आतमा—सज्ञा स्त्री० [स० आत्मा] दे० 'आत्मा'। उ०—समयसिंधु नाम—वोहित भजि निज आतमा न तारचो।—तुलसी-ग्र०, पृ० ५५९।

आतर—सज्ञा पुं० [स०] नदी पार जाने का महसूल। नाव का भाडा। उतराई।

आतर्द—सज्ञा पु० [स०] छिद्र। सूराख [को०]

आतर्दन—सज्ञा पुं० [स०] १ धक्का देकर खोदने का कार्य। २ छिद्र। छेद। सूराख [को०]।

आतर्पसा—सज्ञा पुं० [स०] मागलिक लेपन। ऐपन।

आतश—सज्ञा स्त्री० [फा०] आग। अग्नि। उ०—आदि अत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी। लख चौरासी जीव जतु नहिं, साखी शब्द न बानी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—आतशखाना। आतशजनी। आतशदान। आतशपरस्त। आतशबाज। आतशबाजी।

आतशक—सज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरग रोग। उपदश। गर्मी।

आतशखाना—सज्ञा पु० [फा० आतशखानह्] १. अग्नि रखने का स्थान। वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं। २ वह स्थान जहाँ पारसियो की अग्नि स्थापित हो।

आतशगाह—सज्ञा पु० [फा०] दे० 'आतशखाना'।

आतशजदगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़दगी] आग लगाने का काम करना [को०]।

आतशजन—वि० [फा० आतशजन] आग लगानेवाला [को०]।

आतशजनी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़नी] आग लगाने का काम।

आतशदान—सज्ञा पुं० [फा०] अँगीठी। बोरसी।

आतशपरस्त—स० पुं० [फा०] १ अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य। २ अग्निपूजक। पारसी।

आतशफिशाँ[1]—वि० [फा आतशफिशाँ] आग उगलनेवाला [को०]।

आतशफिशाँ—सज्ञा पु० अग्निपर्वत। ज्वालामुखी पहाड [को०]।

आतशबाज—सज्ञा पु० [फा० आतशबाज] आतशबाजी बनानेवाला। हवाईगर।

आतशबाजी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशबाजी] १ बारूद के बने हुए खिलौनो के जलने का दृश्य। २ बारूद के बने हुए खिलौने। जैसे,—अनार, महताबी, छछूँदर, बान, चकरी, बमगोला, फुलझडी, हवाई आदि। ३ अगौनी (बुदेल०)।

आतशमिजाज—वि० [फा० आतश+अ०मिजाज] शीघ्र उत्तेजित या क्रुद्ध होनेवाला। विगडैल [को०]।

आतशी—वि० [फा०] १ अग्नि सबधी। २ अग्नि उत्पादक। जैसे,—आतशी शीशा जो सूर्यकिरणो की उष्णता एकत्र करके आग पैदा करता है। ३ जो आग मे तपाने से न फूटे, न तडके, जैसे,—आतशी शीशा।

यौ०—आतशी आईना, आतशी शीशा = वह शीशा जिसके नीचे रखी हुई रुई आदि सूर्यताप से जल जाती है।

आतस—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतश'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४६।

आतशबाज—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आतशबाज'। उ०—आतसबाज अनेक मिले बारूद बनावत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२।

आतशबाजी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतशबाजी'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्र, पृ० २४६।

आतापि, आतापी—सज्ञा पुं० [स०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि ने अपने पेट मे पचा लिया था। २ चील पक्षी।

आतायी—सज्ञा पुं० [स० आतायिन्] चील पक्षी [को०]।

आतार—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आतर'।

आतासदेश—सज्ञा पु० [स० आतु+व० सदेश] एक प्रकार की बँगला मिठाई। इसमे आत (शरीफा) की सी सुगध आती है और कभी कभी शरीफे के आकाराश की भी इसमें थोडी झलक आती है। यह छेने की बनती है।

आति, आती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी। आडी [को०]।

आतिथेय—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आतिथेयी] १ अतिथि के सत्कार की सामग्री। २ अतिथिसेवा मे कुशल मनुष्य। ३. मेजवान।

आतिथेयी—वि० [स० आतिथेयिन्] अतिथिसेवा करनेवाला [को०]।

आतिथ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथि का सत्कार। पहुनाई। मेहमानदारी। २ अतिथि को देने योग्य वस्तु। ३. मेहमान। अतिथि।

यौ०—आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया = अतिथि का सम्मान या स्वागत आदि करना।

आतिरश्चीन—वि० [स०] थोडा तिरछा [को०]।

आतिरेक्य, आतिरैक्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिरेक होना। आधिक्य [को०]।

आतिवाहिक—सज्ञा पुं० [स०] मरने के पीछे का वह लिंगशरीर जिसे धारण करके जीव यमलोकादि मे भ्रमण करता है। यह शरीर वायुमय होता है। इसका दूसरा नाम 'भोगशरीर' भी है।

आतिश—सज्ञा स्त्री० [फा० आतश] दे० 'आतश'।—इश्क पर जोर नही, है यह वो आतिश गालिब। कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।—शेर०, पृ० ५३६।

आतिशदान—सज्ञा पुं० [फा० आतशदान] दे० 'आतशदान'। उ०—आतिशदान के कार्निश पर धरे हुए बक्स और बोतल चमक उठे।—आकाश०, पृ० ५०।

आतिशयिक—वि० [स०] अत्यधिक [को०]।

आतिशय्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिशय होने का भाव। आधिक्य। बहुतायत। अधिकाई। ज्यादती।

आतीपाती—सज्ञा स्त्री० [हिं० पाती = पत्ता] पहडा। पहाडी डिनो। एक खेल।

विशेष—इसमे बहुत से लडके जमा होकर एक लडके को चोर बनाकर उसे किसी पेड की पत्ती लेने भेजते हैं। उसके चले जाने पर सब लडके छिप रहते हैं। पत्ती लेकर लौट आने पर वह लडका जिसको ढूँढकर छू लेता है, फिर वही चोर कहलाता है। उस लडके को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना पडता है। यह खेल बहुधा चाँदनी रातो मे खेला जाता है।

आतुर[1]—वि० [स०] १ व्याकुल। व्यग्र। घबराया हुआ। जैसे,—इतने आतुर क्यो होते हो, तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया जायगा। २ अधीर। उद्विग्न। बेचैन।

यौ०—आतुरसन्यास। कामातुर। क्रोधातुर।

३ उत्सुक। दुखी। रोगी।

आतुर[2]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्दी। उ०—मर मज्जन करि आतुर आवहु। दिक्षया देउँ ज्ञान जिहि पावहु।—मानस, ६।५६।

आतुरता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता। व्यग्रता। उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चारु चली जल च्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४। २ जल्दी। शीघ्रता।

आतुरताई—सज्ञा स्त्री० [स० आतुरता+हिं० आई (प्रत्य०)] उतावलापन। शीघ्रता। जल्दीबाजी। उ०—उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई। विहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर धाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३५।

आतुरशाला—सज्ञा पुं० [स०] चिकित्सालय। अस्पताल [को०]।

आतुरसन्यास—सज्ञा पुं० [स०] वह सन्यास जो मरने के कुछ पहले त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है।

आतुरालय—सज्ञा पुं० [स०] अस्पताल। चिकित्सागृह [को०]।

आतुरिया⑤—सज्ञा स्त्री० [स० आतुर+हिं० इया (प्रत्य०)] आतुरता। उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १२१।

आतुरी[1]⑤—सज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+ई (प्रत्य०)] १ घबराहट। व्याकुलता। २ शीघ्रता। जल्दीबाजी। उतावलापन। बेसब्री।

आतुरी[2]⑤—क्रि० वि० घबराहट से। आतुरतापूर्वक। उ०—नारि गई फिरि भवन आतुरी। नद घरनि अब भई चातुरी।—सूर०, १०।३६१।

आतुरी[3]⑤—वि० घबराया हुआ। व्याकुल।

आतुर्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ रोग। बीमारी। २ एक प्रकार का ज्वर [को०]।

आतृण्ण[1]—वि० [स०] १ विद्ध। बिधा हुआ। २. कटा हुआ। घायल [को०]।

आतृण्ण[2]—सज्ञा पुं० १ छिद्र। छेद। २ खुला हुआ घाव या जख्म [को०]।

आतृप्य—सज्ञा पु० [स०] मीताफल। शरीफा [को०]।

आतोदी—वि० [सं० आतोदिन्] आघात द्वारा बजनेवाले बाजों को बजानेवाला [को०]।

आतोद्य, आतोद्यक—सज्ञा पु० [स०] आघात से बजनेवाला बाजा [को०]।

आत्त—वि० [सं०] १ लिया हुआ। प्राप्त। गृहीत। २ निकाला हुआ। ३. पकडा हुआ। हृत। ४ अनुभव किया हुआ। अनुभूत। ५ आरब्ध। प्रारभ किया हुआ [को०]।

आत्तगध—वि० [स० आत्तगन्ध] १. सूँघा हुआ। २ तिरस्कृत। अपमानित। ३ पराजित। परामूत [को०]।

आत्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व। जिसका गर्व हर लिया गया हो।

आत्तदड—वि० [स० आत्तदण्ड] दडित। सजायाफ्ता [को०]।

आत्तप्रतिदान—सज्ञा पुं० [स०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या फेरना (को०)।

आत्तमनस्क—वि० [स०] हर्षित। तुष्ट [को०]।

आत्तमना—वि० [स० आत्तमनस्] प्रसन्न। हृष्ट [को०]।

आत्तलक्ष्मी—वि० [स०] धन से वचित [को०]।

आत्तवचस्—वि० [स०] वाक् या वाणी से रहित [को०]।

आत्मभरि—सज्ञा पुं० [स० आत्मम्भरि] १. जो अकेले अपने को पाले। २ जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही भोजन करे। उदरभरि [को०]।

आत्म—वि० [स० आत्मन्] अपना। स्वकीय। निज का।

आत्मक—वि० [स०] [स्त्री० आत्मिका] मय। युक्त।

विशेष—यह शब्द अकेले नही आता, केवल यौगिक बनाने के काम मे किसी शब्द के अंत मे आता है। जैसे—गद्यात्मक = गद्यमय। पद्यात्मक = पद्यमय।

आत्मकथा—सज्ञा स्त्री० [स० आत्म+कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तांत। आत्मचरित। आपबीती। उ०—सुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११।

आत्मकल्याण—पज्ञा पुं० [स०] अपना भला। अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मकामा] १ स्वय से ही प्रेम करनेवाला। गर्विष्ठ। २. आत्मतत्व का प्रेमी [को०]।

आत्मकृत—वि० [स०] १ अपना किया हुआ। २ अपने विरुद्ध किया हुआ [को०]।

आत्मक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स० आत्मक्रीडा] आत्मतत्व के साथ क्रीडा [को०]।

आत्मगत[1]—वि० [स०] १ अतरात्मा का। आतरिक। उ०—बढ रहा था तेज तप का हुआ कृशतर गात। खिली मुख पर दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञात।—पार्वती, पृ० १४५। २ मानसिक [को०]।

आत्मगत[2]—सज्ञा पुं० [स०] नाटक के पात्र का अपने ही मन मे सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के लिये जोर जोर से कहना पडता है। स्वगत।

आत्मगति—सज्ञा स्त्री० [स०] अपनी गति (को०)।

आत्मगत्या—क्रि० वि० [स०] अपनी ही गति से। अपने ही कार्य से [को०]।

आत्मगुप्ता—पज्ञा स्त्री० [स०] १. केवाँच। २ शतावर।

आत्मगुप्ति—पज्ञा स्त्री० [स०] किसी जानवर के रहने की छिपी जगह। माँद [को०]।

आत्मगौरव—सज्ञा पु० [स०] अपनी बडाई या प्रतिष्ठा का ध्यान। उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्यगाथा गूँज उठी भारत के कोने कोने जिस दिन।—लहर, पृ० ६३।

आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी। खुदगर्ज [को०]।

आत्मघात—सज्ञा पुं० [स०] अपने हाथो अपने को मार डालने का काम। खुदकुशी। आत्महत्या।

आत्मघातक[1]—वि० [स०] अपने हाथो अपने को मार डालनेवाला।

आत्मघाती—वि० [स० आत्मघातिन्] [वि० स्त्री० आत्मघातिनी] जो अपने हाथो अपने को मार डाले। उ०—आत्मघाती बन प्रकृति के रमण मे खो शक्ति सारी।—पार्वती, पृ० २।

आत्मघोष[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अपनी भाषा मे अपना ही नाम पुकारनेवाला—कौआ। २ मुर्गा। ३ वह व्यक्ति जो अपनी प्रशंसा आप करे (को०)।

आत्मघोष[2]—वि० अपने मुँह से अपनी बडाई करनेवाला।

आत्मचिंतन—सज्ञा पुं० [स० आत्मचिन्तन] आत्म या आत्मा सबधी चिंतन। उ०—हृदय नही है परिचित मन से, मन है विमुख आत्मचिंतन से।—प्रेमाजलि, पृ० ४५।

आत्मचतुर्थ—वि० [स०] तीन हिस्सेदारो के अतिरिक्त चौथे भाग या हिस्सेवाला। चौथाई का हिस्सेदार [को०]।

आत्मचरित—सज्ञा पुं० [स०] अपने जीवन का वृत्त या हाल। उ०—पुराने हिंदी साहित्य मे यही एक आत्मचरित मिलता है।—इतिहास०, पृ० २२२।

आत्मज[1]—पज्ञा पु० [स०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र। लडका। २. कामदेव। ३ रक्त। खून।

आत्मज[2]—वि० [स०] स्वय उत्पन्न [को०]।

आत्मजन्म--सज्ञा पुं० [स०] पुत्र का जन्म [को०]।
आत्मजन्मा--सज्ञा पु० [स० आत्मजन्मन्] दे० 'आत्मज'।
आत्मजय--सज्ञा पु० [स०] इद्रियनिग्रह करने का कार्य [को०]।
आत्मजा--सज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। दुहिता [को०]।
आत्मजात--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज'।
आत्मजिज्ञासा--सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आत्मजिज्ञासु] अपने को जानने की इच्छा।
आत्मजिज्ञासु--वि०[स०] अपने को जानने की इच्छा रखनेवाला।
आत्मज्योति--सज्ञा स्त्री० [स०] आत्मा की ज्योति। अतरात्मा का प्रकाश [को०]।
आत्मज्ञ--सज्ञा पुं० [स०] जो अपने को जान गया हो। जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो।
आत्मज्ञान--सज्ञा पुं० [स०] निजत्व की जानकारी। जीवत्मा और परमात्मा के विषय मे जानकारी। २ ब्रह्म का साक्षात्कार।
आत्मज्ञानी--सज्ञा पुं०[स० आत्मज्ञानिन्] १ जो आत्मतत्व को जान गया हो। आत्मा और परमात्मा के सबध मे जानकारी रखनेवाला।
आत्मतत्र[1]--सज्ञा पुं० [स० आत्मतत्र] अपना आधार [को०]।
आत्मतत्र[2]--वि० १ अपने वश या अधिकार मे किया हुआ। २. अपने पर अवलबित। स्वतत्र [को०]।
आत्मतत्व--सज्ञा पुं० [स०] आत्मा या परमात्मा का तत्व [को०]।
आत्मतत्वज्ञ--वि० [सं०] आत्मा या परमात्मा के तत्व का जानकार [को०]।
आत्मता--सज्ञा स्त्री० [स०] सार। प्रकृति [को०]।
आत्मतुष्टि--सज्ञा स्त्री०[स०]१ आत्मज्ञान से उत्पन्न सतोष या आनद। २ आत्मसतोष।
आत्मतृप्त--सज्ञा पु० [स०] स्वय में सतुष्ट [को०]।
आत्मत्याग--सज्ञा पुं० [स०] १ परोपकार बुद्धि से अपने लाभ की ओर ध्यान न देना। दूसरो के हित के लिये अपना स्वार्थ छोडना। २ आत्मघात। खुदकुशी (को०)।
आत्मत्यागी--वि० [सं० आत्मत्यागिन्] १ आत्मघाती। २ अविश्वासी [को०]।
आत्मद्रोही--वि० [सं० आत्मद्रोहिन्][वि० स्त्री० आत्मद्रोहिणी] अपने को हानि पहुँचानेवाला। अपनी हानि करनेवाला।
आत्मधारणभूमि--सज्ञा स्त्री०[स०]वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रबध वही की सेना और सपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पडे (को०)।
आत्मन्--सज्ञा पुं० [स०] निजत्व। अपनापन। अपना स्वरूप।
विशेष--इसका प्रयोग प्राय यौगिक शब्दो मे होता है और यह 'निज' या 'अपना' का अर्थ देता है। जैसे,--आत्मकल्याण। आत्मरक्षा। आत्महत्या। आत्मश्लाघा इत्यादि।
आत्मनिवेदन--सज्ञा पुं० [स०] १ अपने आपको या अपना सर्वस्व अपने इष्टदेव पर चढा देना। आत्मसमर्पण। २ नवधाभक्ति मे से अतिम भक्ति।
आत्मनिवेदनासक्ति--सज्ञा पुं० [सं०]अपने सर्वस्व और शरीर को अपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रबल इच्छा।
आत्मनिष्ठ--वि० [स०] आत्मज्ञान मे रत। ब्रह्मनिष्ठ। मुमुक्षु।
आत्मनिष्ठा--सज्ञा स्त्री०[स०]१. आत्मज्ञान की रति। २ अपने प्रति निष्ठा। आत्मविश्वास [को०]।
आत्मनीय--सज्ञा पु० [स०] १. पुत्र। २ साला। ३ विदूषक।
आत्मनेपद--सज्ञा पुं०[स०]१ सस्कृत व्याकरण मे धातु मे लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययो मे से एक। २ वह क्रिया जो आत्मनेपद प्रत्यय लगने से बनी हो।
आत्मप्रशसा--सज्ञा पु० [स०] अपने मुँह से अपनी बडाई।
आत्मप्रसार--सज्ञा पुं०[स०]आत्मविस्तार। अपना फैलाव। उ०--मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस अल्पक्षण मे ही आत्मप्रसार को बद्ध रखकर सतुष्ट नही हो सकती।--रस०, पृ० १४८।
आत्मप्रेरणा--सज्ञा स्त्री० [स०]अपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा। आतरिक प्रेरणा। उ०--आत्मप्रेरणा की पीडा से आकुल थे सब प्राणी।--पार्वती, पृ० ५६।
आत्मबोध--सज्ञा पु०[स०] दे० 'आत्मज्ञान'। उ०--आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियो ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की।--रस०, पृ० ५५।
आत्मभू[1]--वि० [स०] १ अपने शरीर से उत्पन्न। २ आप ही आप उत्पन्न।
आत्मभू[2]--सज्ञा पु० १. पुत्र। २.कामदेव। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५. शिव।
आत्मभूत--वि०[स०]आत्ममय। वह जो अपना अग बन गया हो। अपनाया हुआ।
आत्मयोनि--सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ महेश। ४ कामदेव।
आत्मरक्षक--वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा करनेवाला।
आत्मरक्षण--सज्ञा पुं० [स०] अपना बचाव। अपनी हिफाजत।
आत्मरक्षा--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आत्मरक्षण'। २ इद्रवारुणी वृक्ष [को०]।
आत्मरत[1]--वि० [स० आत्मरति] १ जिसे आत्मज्ञान हुआ हो। ब्रह्मज्ञानप्राप्त। ब्रह्मज्ञानी। २ स्वय को प्रेम करनेवाला।
आत्मरत[2]--सज्ञा पुं० [स०] महेंद्रवारुणी। बडी इद्रायन।
आत्मरति--सज्ञा स्त्री०[स०]१ आत्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान। २ स्वय से प्रेम करना।।
आत्मवचक--वि० [स० आत्मवञ्चक] अपने को आप ठगनेवाला। अपनी हानि स्वय करनेवाला। अज्ञानी।
आत्मवाद--सज्ञा पुं० [स०] अहभाव। उ०--प्रथम हम हम करत पहुँच्यो आत्मवाद कठोर।--बुद्ध०, पृ० १४५।
आत्मविक्रय--सज्ञा पुं० [स०] [वि० आत्मविक्रयी] अपने को आप ही बेच डालना।
विशेष--मनु के अनुसार यह कर्म एक उपपातक है।

आत्मविक्रयी—वि० [स० आत्मविक्रयिन्] अपने को बेचनेवाला।

आत्मविक्रेता—सज्ञा पुं० [स० आत्मविक्रेतृ] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो।

आत्मविचय—सज्ञा पु० [सं०] अपनी तलाशी या नगाभोली देना।

आत्मविद्—सज्ञा पु० [स०] १ बुद्धिमान व्यक्ति। आत्मज्ञानी। २. अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३. शिव का एक नाम (को०)।

आत्मविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह विद्या जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो। ब्रह्मविद्या। अध्यात्मविद्या। २. मिस्मेरिज्म।

आत्मविश्वास—सज्ञा पु० [स०] अपनी शक्ति पर विश्वास। अपनी योग्यता का भरोसा।

आत्मविस्मृत—वि० [स०] स्वय को भूला हुआ।

आत्मविस्मृति—सज्ञा स्त्री० [स०] अपने को भूल जाना। अपना ध्यान न रखना। आत्मविस्मरण।

आत्मशल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] सतावरी।

आत्मशासन—सज्ञा पु० [स० आत्म + शासन] दे० 'स्वराज' (क्व०)।

आत्मश्लाघा—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आत्मश्लाघी] अपनी तारीफ।

आत्मश्लाघी—वि० [स० आत्मश्लाघिन्] अपनी प्रशसा करनेवाला।

आत्मसभव[1]—वि० [स० आत्मसम्भव] [वि० स्त्री० आत्मसंभवा] अपने शरीर से उत्पन्न।

आत्मसभव[2]—सज्ञा पुं० पुत्र।

आत्मसमान—सज्ञा पु० [सं० आत्मसम्मान] आत्मगौरव। अपने गौरव का भाव।

आत्मसयम—सज्ञा पु० [स०] अपने मन को रोकना। इच्छाओं को वश मे रखना।

आत्मसवेदन—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आत्मा का अनुभव। आत्मबोध।

आत्मसस्कार—सज्ञा पु० [सं०] अपना सुधार।

आत्मसमुद्भव[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मसमुद्भवा] १ अपने शरीर से उत्पन्न। २ अपने ही आप उत्पन्न।

आत्मसमुद्भव[2]—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ शिव। ४ कामदेव।

आत्मसमुद्भवा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कन्या। २. बुद्धि।

आत्मसाक्षी—सज्ञा पुं० [स० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा।

आत्मसिद्ध—वि० [स०] अपने आप होनेवाला। बिना प्रयास ही होनेवाला।

आत्मसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] आत्मभाव की प्राप्ति। मुक्ति। मोक्ष।

आत्महत्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपने आपको मार डालना। खुदकुशी २ अपने आपको दुख देना।

आत्महन्—वि० [स०] १. जो अपने आप को मार डाले। आत्मघाती। २ जो अपनी भलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा करे (को०)। ३ अविश्वासी (को०)। ४. मदिर आदि मे नौकरी करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०)।

आत्महिंसा—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आत्महत्या'।

आत्मा—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १ जीव। २ चित्त। ३ बुद्धि। ४ अहकार। ५ मन। ६. ब्रह्म।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ मे होता है। इसका यौगिक अर्थ 'व्याप्त' है। जीव शरीर के प्रत्येक अग मे व्याप्त है और ब्रह्म ससार के प्रत्येक अणु और अवकाश मे। इसीलिये प्राचीनो ने इसका व्यवहार दोनो के लिये किया है। कही कही 'प्रकृति' को भी ग्रन्थो मे इस शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। साधारणत जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनो के लिये या यो कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इनमे 'जीव' के अर्थ मे इसका प्रयोग मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों मे क्रमश गौण है। दार्शनिको के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी। प्रकृति से पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं। आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष माननेवाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत मे प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नही। अनात्मवादी आजकल योरप मे बहुत हैं। आत्मा के विषय मे इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैकारिक अशो के सयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियो मे गर्भावस्था मे उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है। पीछे उन तत्वो के विश्लेषण से, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है। बहुत दिन हुए भारतवर्ष मे यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम से प्रख्यात है और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं। इनका कथन है कि 'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्'। देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नही है, अत चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है। इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमश शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति मे कारणभूत इद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहकार को ही आत्मा मानने लगे। कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं। वैशेषिक दर्शन मे आत्मा को एक द्रव्य माना है और लिखा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इद्रिय, अतर्विकार जैसे—भूख, प्यास, ज्वर, पीडादि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के लिंग हैं। अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देख पडे वहाँ आत्मा रहती है। पर न्यायकार गौतम मुनि के मत मे 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दुख और ज्ञान (इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्) ही आत्मा के चिह्न है। साख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत पुरुष और प्रकृति से भिन्न एक अतीद्रिय पदार्थ है। योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतीद्रिय पदार्थ है जिसमे क्लेश, कर्मविपाक और आशय हो। ये दोनो (साख्य और योग) आत्मा के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग करते हैं। मीमासा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतत्र अतीद्रिय पदार्थ है। पर मीमासको मे प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है। वेदात के मत से नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अशविशेष आत्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अत अवस्था का ज्ञान नही है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धो के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियो के मत से कर्मों का कर्त्ता फलो का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और बधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मुहा०—आत्मा ठढी होना=(१) तुष्टि होना। तृप्ति होना। सतोष होना। प्रसन्नता होना। जैसे,—उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठढी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,—बाबा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठंढी हो। आत्मा मसोसना=(१) भूख सहना। भूख दबाना। जैसे,—इतने दिनो तक आत्मा ममोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दबाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना।

७ देह। शरीर। ८ सूर्य। ९ अग्नि। १० वायु। ११ स्वभाव। धर्म। १२ पुत्र [को०]।

आत्माधीन[1]—वि० [सं०] अपने वश में।

आत्माधीन[2]—सज्ञा पुं० १ पुत्र। २ विदूषक। ३ साला (को०)।

आत्मानद—सज्ञा पुं० [स० आत्मानन्द] आत्मा का ज्ञान। आत्मा मे लीन होने का सुख।

आत्मानुभव—सज्ञा पु० [सं०] १ अपना अनुभव या तजुरबा। स्वानुभूति। २ आत्मा की अनुभूति।

आत्मानुरूप—सज्ञा पुं० [स०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि मे अपने समान हो। स्वानुरूप।

आत्माभिमान—सज्ञा पुं० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

आत्माभिमानी—सज्ञा पु० [स० आत्माभिमानिन्] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बडा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

आत्मामिष सधि—सज्ञा स्त्री० [स० आत्मामिषसन्धि] कामदकीय नीति के अनुसार वह सधि जो स्वय सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

आत्माराम—सज्ञा पु० [स०] १ आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २ जीवा ३ ब्रह्म। ४ तोता। सुग्गा।

आत्मावलंबी—सज्ञा पु० [स० आत्मावलम्बिन्] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलबी।

आत्मिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मिका] १ आत्मासबधी। २ अपना। ३ मानसिक।

आत्मीकृत—वि० [स०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

आत्मीय[1]—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मीया] निज का। अपना। स्वकीय।

आत्मीय[2]—सज्ञा पुं० [स०] स्वजन। अपना सबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

आत्मीयता—सज्ञा स्त्री० [स०] अपनायत। स्नेह-सबंध। मैत्री।

आत्मोत्सर्ग—सज्ञा पुं० [स०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति मे डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हिताहित का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

आत्मोद्धार—सज्ञा पु० [सं०] अपनी आत्मा को ससार के दुःख से छुडाना या ब्रह्म मे मिलाना। मोक्ष।

आत्मोद्भव—सज्ञा पु० [स०] १ पुत्र। २ कामदेव। ३ दुःख। पीडा [को०]।

आत्मोद्भवा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कन्या। २ बुद्धि। ३ माशपर्णी [को०]।

आत्मोन्नति—सज्ञा पु० [स०] १ आत्मा की उन्नति। २ अपनी तरक्की। स्वविकास।

आत्मोपजीवी—सज्ञा पुं० [स० आत्मोपजीविन्] १ अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २ रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३ अभिनेता [को०]।

आत्मोपम—सज्ञा पु० [स०] पुत्र [को०]।

आत्यतिक—वि० [स० आत्यन्तिक] [वि० स्त्री० आत्यन्तिकी] १ जो बहुतायत से हो। २ जिसका ओर छोर न हो।

यौ०—आत्यतिकदुःखनिवृत्ति=मोक्ष। आत्यंतिकप्रलय=पूर्ण प्रलय।

आत्ययिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्ययिकी] १. विनाशक। २ दुर्भाग्य पूर्ण। ३. आवश्यकीय। ४. देर किया हुआ। विलबित [को०]।

आत्रेय[1]—वि० [स० अत्रि] १. अत्रि के गोत्रवाला।

आत्रेय[2]—सज्ञा पुं० १ अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चद्रमा। २ आत्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अतर्गत है। ३. शिव की एक उपाधि [को०]।

आत्रेयी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदात मे बड़ी निष्णात थी। २ पश्चिमी बगाल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३ रजस्वला स्त्री। ४ अत्रि गोत्र की स्त्री।

आथⓊ—सज्ञा पुं० [स० अर्थ] धन। पूँजी। उ०—आथ तेणे अभिलाष इम, इण भुजनूँ आवत।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३ पृ० ६।

आथना[1]Ⓤ—क्रि० अ० [स० अस=होना, स० अस्ति, प्रा० अत्थि] होना। उ०—(क) कबिरा पढना दूर कर, आथि पडा ससार। पीर न उपजै जीव की, क्यो पावै करतार।—कबीर (शब्द०)। (ख) काया माया सग न आथी। जेहि जिउ सौंपा सोई साथी।—जायसी ग्र०, पृ० ६०।

आथना[2]Ⓤ—क्रि० अ० [स० अस्त, प्रा० अत्थ] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

आथर्वण—सज्ञा पुं० [स०] १ अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २. अथर्ववेदविहित कर्म। ३ अथर्वा ऋषि का पुत्र। ४ अथर्वा गोत्र मे उत्पन्न व्यक्ति।

आथी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० स्थातृ, हिं० थाती अथवा स० आयकी=आर्थिक स्थिति प्रा० *अत्थिई, *आथइ] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निजाथि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी (शब्द०)।

आथी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अर्थ] अर्थसपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

आदश—सज्ञा पु० [स०] १ दाँत से काटना। २ दाँत काटने से बना हुआ घाव। ३ दाँत [को०]।

आदत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ स्वभाव। प्रकृति। २ अभ्यास। टेव। बान। उ०—तू भी मजबूर है जाती नही आदत तेरी।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

आदम—सज्ञा पु० [अ० आदम, तुल० स० आदिम] १ इबरानी और अरबी लेखको के अनुसार मनुष्यो का आदि प्रजापति। उ०—आदम आदि सुद्धि नहिं पावा। मामा हौवा कहँते आवा।—कबीर (शब्द०)। २. आदम की सतान। मनुष्य। जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जगल मे पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद।

यौ०—आदमकद। आदमखोर। आदमचश्म। आदमजाद।

आदमकद—वि० [अ० आदम+कद] आदमी के कद के बराबर। उ०—कमरे मे बडे बडे आदमकद आइने रखे जाते हैं।—गबन, पृ० १०६।

आदमखोर—वि० [अ०आदम+फा० खोर] आदमी को खानेवाला। मानवभक्षी (शब्द०)।

आदमचश्म—सज्ञा पु० [अ० आदम+फा० चश्म=चक्षु] वह घोडा जिसकी आँख की स्याही मनुष्य की आँख की स्याही के समान हो। ऐसा घोडा बडा नटखट होता है।

आदमजाद—सज्ञा पु० [अ० आदम+फा० जाद=पैदा] १. आदम की सतान। २ मनु की संतान। मनुष्य।

आदमियत—सज्ञा पु० [अ०]१ मनुष्यत्व। इसानियत। २ सभ्यता।

क्रि० प्र०—पकडना।—सीखना।

आदमी—सज्ञा पु० [अ०] आदम की सतान। मनुष्य। मानव जाति।

मुहा०—आदमी बनना = सभ्यता सीखना। अच्छा व्यवहार सीखना। शिष्टता सीखना। आदमी बनाना=शिष्ट और सभ्य करना।

२ नौकर। सेवक। जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिटठी डाकखाने भिजवा दो।

आदमीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। इसानियत। उ०—गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या। आदमीयत चाहिए इसान मे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१। २. सभ्यता।

आदर—सज्ञा पु० [सं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] समान। सत्कार। प्रतिष्ठा। इज्जत। कदर। जैसे,—(क) वे बडे आदर के साथ हमे अपने घर ले गए। (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज मे बडा आदर है।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य। आदर करने के लायक। समाननीय।

आदरना—क्रि०स०[सं० आदर से नाम०] आदर करना। मानना। उ०—जो प्रबध बुध नहिं आदरही। सो श्रम बादि बाल कवि करही।—मानस, १।१४।

आदरभाव—सज्ञा पुं० [सं० आदर+भा] सत्कार। समान। कदर। प्रतिष्ठा। जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नही, वहाँ क्यों जायँ? उ०—ऊधौ, चलौ विदुर के जइयै। दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पइयै।—सूर०, १।२३६।

आदरस—सज्ञा पु० [स० आदर्श] दे० 'आदर्श'। उ०—दरसो सारसरम भरे दृग आदरस मँगाय।—स० सप्तक, पृ० २५८।

यौ०—आदरसमदिर=शीशमहल। उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मदिर मे इदीवर सुदर गुविंद को मुखारविंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य। आदरणीय।

आदर्श—सज्ञा पुं० [सं०] १ दर्पण। शीशा। आईना। २ वह जिससे ग्रथ का अभिप्राय झलक जाय। टीका। व्याख्या। ३ वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय। नमूना। जैसे,—उसका चरित्र हम लोगो के लिये आदर्श है।

यौ०—आदर्शमडल। आदर्शमदिर। आदर्शरूप।

आदर्शक—सज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। शीशा [को०]।

आदर्शन—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रदर्शित करना। दिखलाना। २ शीशा। दर्पण [को०]।

आदर्शबिंब—सज्ञा पुं० [स० आदर्श बिम्ब] गोला शीशा [को०]।

आदर्शमडल—सज्ञा पुं० [स० आदर्श मडल] १. एक तरह का साँप। २ गोल आईना। ३ दर्पण का तल [को०]।

आदर्शमदिर—सज्ञा पुं० [स० आदर्श मदिर] शीशमहल।

आदर्शवाद—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श+वाद] [अ० आइडियलिज्म] वस्तुओ के ज्यो के त्यो वर्णन को प्रमुखता या महत्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना। पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादो आदि मे प्रचलित विशेष विचारधारा।

आदर्शवादी—वि०[स० आदर्शवादिन्] [अ० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला।

आदर्शात्मक—वि०[स०] काल्पनिक आदर्श के रूप मे विषयो के चित्रण या निरूपण से युक्त। आदर्शवाद से सबध रखनेवाला। आदर्शपरक।

आदहन—सज्ञा पुं० [सं०]१ ईर्ष्या। जलन। २ श्मशान। चिताभूमि।

आदा†—सज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदान—सज्ञा पु० [स०] १ लेना। ग्रहण करना। २ अर्जन। ३. रोग का लक्षण। ४ बाँधना। सुनियोजित करना। ५ घोडे को फँसाना या बधनग्रस्त करना। जकडबदी। ६ क्रिया या कार्य। ७. पराभूत करना [को०]।

आदानप्रदान—सज्ञा पुं० [सं०] लेना देना।

आदानसमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पचसमिति मे से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो [को०]।

आदापन—सज्ञा पुं० [स०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना [को०]।

आदाब—सज्ञा पुं० [अ०] १. नियम। कायदा। २ लिहाज। आन। ३ नमस्कार। प्रणाम। सलाम। जोहार।

मुहा०—आदाब अर्ज करना = प्रणाम करना। आदाब बजा लेना=नियमानुसार प्रणाम करना।

आदि[१]—वि० [स०] प्रथम। पहला। गुरू का। आरभ का। जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। उ०—गाइ गाउँ के बत्सला मेरे आदि सहाई।—सूर०, १।२३८।

आदि[२]—सज्ञा पु० [स०]१ आरभ। बुनियाद। मूल कारण। जैसे,—(क) इस झगडे का आदि यही है। (ख) हमने इस पुस्तक को आदि से अत तक पढ डाला। २ परमात्मा। परमेश्वर। उ०—आदि किएउ आदेश सुनहि ते अस्थूल भए।—जायसी ग्र०, पृ० ३०८।

मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपांत। शुरू से आखीर तक। संपूर्ण। समग्र। सब।

आदि[३]—अव्य० वगैरह। आदिक। उ०—सिंहसावक ज्यो तजै गृह, इंद्र आदि डरात।सूर०, १।१०६।

आदिक—अव्य० [सं०] आदि। वगैरह। उ०—कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।—सूर० ९।२९।

आदिकर—वि० [सं०] आदि करनेवाला। स्रष्टा [को०]।

आदिकरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा [को०]।

आदिकर्ता—वि० [सं०] आदिकर। स्रष्टा [को०]।

आदिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कर्म का आदि या आरंभ [को०]।

आदिकवि—संज्ञा पु० [सं०] वाल्मीकि ऋषि। उ०—जान आदि-कवि नाम प्रभाऊ। भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊँ।—मानस, १।१९। २ शुक्राचार्य।

आदिकांड—संज्ञा पु० [सं० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला कांड [को०]।

आदिकारण—संज्ञा पुं० [सं०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब व्यापार उत्पन्न हुए। मूलकारण।

विशेष—सांख्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं। नैयायिक पुरुष या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं।

आदिकाल—संज्ञा पु० [सं०] प्रारंभिक काल या समय [को०]।

आदिकालीन—वि० [सं०] प्रारंभिक या आदिकाल से संबंध रखनेवाला [को०]।

आदिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि रामायण।

विशेष—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है।

आदिकृत्—वि० [सं०] स्रष्टा [को०]।

आदिकेशव—संज्ञा पु० [सं०] १ काशी स्थित एक देवविग्रह। २. विष्णु [को०]।

आदिगदाधर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

आदिजिन—संज्ञा पु० [सं०] ऋषभदेव (जैन) [को०]।

आदित—क्रि० वि० [सं०] प्रारंभ से। आदि से [को०]।

आदित(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आदित्य'। उ०—हरि दरसन सब्राजित आयौ। लोगनि जान्यौ आदित आवत हरि सौं जाइ सुनायौ।—सुर०, १०।४८०८।

आदिताल—संज्ञा पु० [सं०] संगीत में ताल का प्रकारविशेष [को०]।

आदितेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अदिति का पुत्र। २. देव। ३. सूर्य [को०]।

आदित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अदिति के पुत्र। २ देवता। ३ सूर्य। ४ इंद्र। ५. वामन। ६ वसु। ७ विश्वेदेवा। ८ बारह मात्राओं के छंदों की संज्ञा, जैसे—तोमर लीला। ९ मदार मदार का पौधा।

यौ०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण। आदित्यपर्णिका, आदित्यपर्णिनी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय लता। आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य संबंधी सूक्त या स्तोत्र।

आदित्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य + केतु] १ एक राजा जिसके वंशजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष दिल्ली में राज्य किया था। २ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०]। ३ सूर्य का सारथि [को०]।

आदित्यगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्य का मार्ग [को०]।

आदित्यगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व [को०]।

आदित्यज्योति—वि०[सं०] जिसमें सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो[को०]।

आदित्यदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन कराने का एक संस्कार [को०]।

आदित्यपत्र—संज्ञा पुं० [पं०] १ एक पौधा। २ आक का पत्र या पत्ता [को०]।

आदित्यपाक—वि० [सं०] सूर्यताप में पकाया हुआ [को०]।

आदित्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल का मदार।

आदित्यभक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर।

आदित्यमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक् पड़नेवाला वलय या घेरा [को०]।

आदित्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यलोक [को०]।

आदित्यवार—संज्ञा पुं० [सं०] एतवार। रविवार।

आदित्यव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]

आदित्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०]।

आदित्यसंवत्सर—संज्ञा पु० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

आदित्यसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर। २ यम। ३ कर्ण। ४ सुग्रीव। ५ मनु [को०]।

आदित्यानुवर्ती—वि० [सं० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या अनुगमन करनेवाला [को०]।

आदित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वता। प्राथमिकता [को०]।

आदित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेने की इच्छा [को०]।

आदित्सु—वि० [सं०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०]।

आदिदीपक—संज्ञा स्त्री० [सं०] छंद की विशेष व्यवस्था (जिसमें क्रियापद वाक्य के आदि में आता है) [को०]।

आदिदेव—संज्ञा पु० [सं०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ शिव। ४ गणेश। ५ सूर्य [को०]।

आदिदैत्य—संज्ञा पु० [सं०] हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिनव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभाग्य। २ जूए की हार [को०]।

आदिनाथ—संज्ञा पु० [सं०] १ आदिबुद्ध। २ एक जैन तीर्थंकर [को०]।

आदिपर्व—संज्ञा पुं० [सं० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का नाम [को०]।

आदिपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य पर्वत [को०]।

आदिपुराण—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्रह्मपुराण। २ एक जैन धर्मग्रंथ [को०]।

आदिपुरुष, आदिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमेश्वर। विष्णु। २ हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिप्लुत—वि० [सं०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो (व्या०) [को०]।

आदिबल—सज्ञा पुं० [स०] उत्पादक या जनन शक्ति (सुश्रुत) [को०]।

आदिभूत[1]—वि० [सं०] आदि मे उत्पन्न [को०]।

आदिभूत[2]—सज्ञा पु० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु [को०]।

आदिम—वि० [स०] पहले का। पहला। प्रथम। उ०—आखेट के लिये उक्त आदिम नरो का झुड बीच बीच मे मिलता।—इद्र०, पृ० ८८।

आदिमत—वि० [स०] जिसका आरभ आदि हो [को०]।

आदिमूल—सज्ञा पु० [स०] मूल कारण [को०]।

आदियोगाचार्य—सज्ञा पु० [सं०] शिव [को०]।

आदिरस—सज्ञा पुं० [स०] शृगाररस (साहित्य शा०)।

आदिराज—सज्ञा पु० [स०] १ मनु। २ पृथु [को०]।

आदिरूप—सज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण (रोग का) [को०]।

आदिल—वि० [अ०] न्यायी। न्यायवान्। उ०—नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल-सरि गोउ न अहा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आदिलुप्त—वि० [स०] (शब्द) जिसका प्रथम अक्षर लुप्त हो [को०]।

आदिवराह—सज्ञा पु० [स०] वराहरूप विष्णु। विष्णु [को०]।

आदिवाराह—वि० [स०] आदि वराह सबधी [को०]।

आदिविपुला—सज्ञा पु० [सं०] छदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम दल के प्रथम तीन गणो मे पाद अपूर्ण हो।

आदिविपुलाजघनचपला—सज्ञा पु० [स०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय मे पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल मे दूसरा और चौथा गण जगण हो।

आदिशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मूल या आदि स्थानीय शक्ति। महामाया। २ दुर्गा [को०]।

आदिशरीर—सज्ञा पुं०[सं०] १ मूल शरीर। २ सूक्ष्म शरीर [को०]।

आदिश्यमान—वि० [स०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो।

आदिष्ट—वि० [स०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो। आज्ञप्त। आदेशप्राप्त।

आदिष्टसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० आदिष्टसन्धि] वह सधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय। (कामं द०)।

आदिसर्ग—सज्ञा पु० [स०] मूल या आदि की सृष्टि [को०]।

आदी[1]—वि० [अ०] अभ्यस्त। उ०—अब उतर आए हैं वो तारीफ पर। हम जो आदी हो गए दुश्नाम के।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५५३।

आदी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदी[3]—क्रि० वि० [स० आदि] बिलकुल। नितात। जरा भी। उ०—(क) मानु न जानमि बालक आदी। हौं बादना सिध रनवादी। जायसी ग्र०, पृ० २८२।

आदीचक—सज्ञा पुं०[स० आर्द्रक+चक्र]एक प्रकार की अदरक जिसकी भाजी बनती है। अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी।

आदीनव—सज्ञा पुं०[स०]१ दोष। २ क्लेश। विपत्ति। ३. दुख। बेचैनी (को०)।

आदीपक—वि०[सं०]१ आग लगानेवाला। २. दाहक। ३ उत्तेजक [को०]।

आदीपन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना। २. आग लगाना। ३ उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [को०]।

आदीपित—वि० [सं०] प्रज्वलित। जलता हुआ [को०]।

आदीप्य—वि० [स०] जलने योग्य [को०]।

आदीर्घ—वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अडाकार [को०]।

आदीर्य—वि० [सं०] फटा हुआ। दरका हुआ [को०]।

आदृत—वि० [स०] आदर किया हुआ। समानित।

आदृत्य—वि० [सं०] आदरणीय [को०]।

आदृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि। नजर [को०]।

यौ०—आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार=दृष्टि की सीमा के भीतर।

आदेय[1]—वि० [स०] लेने योग्य।

यौ०—उपादेय। अनादेय।

आदेय[2]—सज्ञा पुं०[सं०]वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके (को०)।

आदेयकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्सिद्धि होती है, अर्थात् वह जो कहे वही होता है।

आदेव[1]—सज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [को०]।

आदेव[2]—वि० [स०] देवभक्त। देवपूजक [को०]।

आदेवक—वि०[स०]१ खेल या क्रीडा करनेवाला। २. जुआ खेलनेवाला [को०]।

आदेवन—सज्ञा पुं० [स०] १ खेल का स्थान। २ खेल का साधन या सामग्री। ३ खेल (जूए) मे होनेवाला लाभ [को०]।

आदेश—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १. आज्ञा। २ उपदेश। ३ विवरण (को०)। ४. प्रणाम। नमस्कार। उ०—शेख बडो बढ सिद्धि बखाना। किय आदेश सिद्धि बड माना।—जायसी (शब्द०)। ५ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहो का फल। ६ भविष्यकथन (को०)। ७ व्याकरण मे एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना। अक्षरपरिवर्तन।

आदेशक—वि० [स०] १ आज्ञा देनेवाला। २ उपदेश देनेवाला।

आदेशकारी—वि०[स० आदेशकारिन्]आज्ञा पालन करनेवाला [को०]।

आदेशन—सज्ञा पुं० [स०] आज्ञा देना। निर्देशन [को०]।

आदेशी—वि [सं० आदेशिन] १ आदेश देनेवाला। २ भविष्यकथन करनेवाला। ३ (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [को०]।

आदेश्य—वि० [स०] आदेश के योग्य [को०]।

आदेष्टा—वि० [स० आदेष्टृ] आदेश देनेवाला [को०]।

आदेस(पु)—सज्ञा पुं० [सं०आदेश] दे० 'आदेश'।

आद्यत—क्रि० वि० [स० आद्यन्त] आदि से अत तक। आद्योपात। शुरू से आखीर तक।

आद्य[1]—वि० [स०] १ पहला। आरभ का। २ प्रधान। प्रथम। अद्वितीय (को०)।

आद्य[2]—वि० [स०√अद्=(खाना)>आद्य] खाने योग्य। जिसके खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढे।

आद्यकवि—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा। २ वाल्मीकि [को०]।

आद्यबीज—सज्ञा पुं०[स०]जगत् या सृष्टि का मूल कारण। साख्य के अनुसार प्रधान या प्रकृति [को०]।

आद्यमाषक—सज्ञा पुं० [स०] एक तोल जो पाँच गुजा या रत्ती के बराबर होता था [को०]।

आद्यश्राद्ध—सज्ञा पुं० [स०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोलह श्राद्ध किए जाते हैं उनमे से पहला।

आद्या—सज्ञा पुं०[स०] १ दुर्गा। प्रधान शक्ति। २ दश महाविद्याओ मे से प्रथम देवी।

आद्युदात्त—वि०[स०][सज्ञा आद्युदात्तत्व] जिसका पहला वर्ण उदात्त हो [को०]।

आद्यून—वि० [स] १ अध्ययन करनेवाला। पेटू। २ बुभुक्षित। भूखा। ३ लोभी। लालची। ४ आदिरहित [को०]।

आद्योत—सज्ञा पु० [स०] प्रकाश। ज्योति। चमक [को०]।

आद्योपात—क्रि० वि० [स० आद्योपान्त] शुरू से आखीर तक [को०]।

आद्रा—सज्ञा स्त्री० [स० आर्द्रा] १ एक नक्षत्र। २.जब सूर्य इस नक्षत्र का हो। इस नक्षत्र मे लोग धान बोना अच्छा मानते हैं। उ०—(क) चित्रा गेहूँ आद्रा धान। न उनके गेरुवी न उनके धाम। (ख) आद्रा धाम पुनर्वसु पइया। गा किसान जब बोवा चिरइया। (शब्द०)।

आद्रिसार—वि० [स०] लोहनिर्मित। लोहे से बना हुआ [को०]।

आध—वि० [सं० अर्द्ध प्रा० अद्ध हिं० आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागो मे से एक। आधा। निस्फ। उ०—जै जै कार भयो भुव मापत नीनि पैंड भइ सारी। आधा पैंड बसुधा दै राजा नातरु चलि सत हारी।—सूर०, ८।१४।

विशेष—यह वास्तव मे आधा का अल्पार्थक रूप है और यौगिक शब्दो एव प्राय तौल और नाप के सूचक शब्दो के साथ व्यवहृत होता है। जैसे,—आध सेर आध पाव, आध छटाँक, आध गज।

यौ०—**एक आध**=कुछ थोडे से। चद। जैसे,—एक आध आदमियो के विरोध करने से क्या होता है। (शब्द)

आधमन—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा [को०]।

आधमर्ण्य—सज्ञा पुं० [स०] ऋणग्रस्त होना [को०]।

आधर्मिक—वि० [सं०] धर्महीन। अधर्मी [को०]।

आधवन—सज्ञा पुं० [सं०] कंपित करना। हिलाना डुलाना [को०]।

आधा—वि० [सं० अर्द्ध, वा अद्धो, प्रा० अद्ध] [स्त्री० आधी] किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सो में से एक।

यौ०—**आधा साझा। आधा सीसी।**

मुहा०—**आधो आध**=दो बराबर भागो मे। जैसे—इन केलो को आधो आध बाँट लो। [यह क्रि० वि० की तरह आता है, जैसे, बीचो बीच] **आधा तीतर आधा बटेर**=कुछ एक तरह का और कुछ दूसरी तरह का। बेजोड। बेमेल। अटबट। क्रमविहीन। **आधा होना**=दुबला होना। जैसे,—वह सोच के मारे आधा हो गया। **आधे आध**=दो बराबर हिस्सो मे बँटा हुआ। उ०—लागे जब मग मुग मेर मोग धरणी रग आवे आध पाव चले नूपुर बजाइ के।—प्रिया० (शब्द०)। **आधे कान सुनना**=यो ही या ऊपर से सुन लेना। उ०—फैले बरसाने मे न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावे ना।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४७। **आधी बात**=जरा सी भी अपमानसूचक बात। जैसे,—हमने किसी की आधी बात भी नही सुनी। **आधे पेट खाना**=भरपेट न खाना। पूरा भोजन न करना। **आधे पेट रहना**=तृप्त होकर न खाना। **आधी बात कहना या मुँह से निकालना**=जरा सी अपमानसूचक बात कहना। जैसे,—मेरे रहते तुम्हे कोई आधी बात नही कह सकता। **आधी बात न पूछना**=कुछ ध्यान न देना। कदर न करना। जैसे,—अब वे जहाँ जाते हैं, कोई आधी बात भी नही पूछता।

आधाझारा—सज्ञा पु० [स० आधाट] अपामार्ग। ओगा। चिचडा। चिचडी।

आधाता—सज्ञा पुं० [स० आधातृ] गिरवी रखनेवाला। बधक रखनेवाला।

आधान—सज्ञा पु० [सं०] १. स्थापन। रखना।

यौ०—**अग्न्याधान। गर्भाधान।**

२ गर्भ। ३ गिरवी या बधक रखना। (को०) ४ अग्न्याधान (को०)। ५ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ६ वह स्थान जहाँ कोई वस्तु रखी जाय (को०)। ७ निश्चयात्मकता। ८ द्रवित करना (को०)। ९ सामीप्य। सन्निधि (को०)। १० मैथुन (को०)।

आधानवती—वि० स्त्री० [स०] गर्भवती।

आधार—सज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय। सहारा। अवलब। जैसे,—(क) यह छत चार खभो के आधार पर है। (ख) वह चार दिन फलो के ही आधार पर रह गया। २ व्याकरण मे अधिकरण कारक। ३ थाला। आलवाल। ४ पात्र (नाटक)। ५ नीव। बुनियाद। मूल। ६ योगशास्त्र मे एक चक्र का नाम।

विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं। इसमे चार दल हैं। रग लाल है। स्थान इसका गुदा है और गणेश इसके देवता हैं।

७ बधा। बाँध (को०)। ८ नहर। प्रणाली (को०)। ९ सबध। लगाव (को०) १० किरण (को०)। ११ बरतन। पात्र (को०)। १२ आश्रय देनेवाला। पालन करनेवाला। जैसे,—इस दशा मे ही वे हमारे आधार हो रहे हैं।

यौ०—**आधाराधेय**=आधार और आधेय का सबध, जैसे,—पात्र और उसमे रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई किताब का सबध। **प्राणाधार** जिसके आधार पर प्राण हो। पर मप्रिय।

मुहा०—आधार होना = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है, पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [स० आधार] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [स० आधारिन्] [स्त्री० आधारिणी] १ सहारा रखनेवाला। सहारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २ साधुओं की टेवकी या अड्डे के आकार की लकडी जिसका सहारा लेकर वे बैठते है। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नही थिर जीऊ। तन त्रिसूल आधारी पीऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कबीर ग्र०, पृ० १५४।

आधासीसी—सज्ञा स्त्री० [स० अर्द्ध + शीर्ष] अधकपारी। आधे सिर की पीडा।

आधि—सज्ञा स्त्री० [स०] १. मानसिक व्यथा। चिंता। फिक्र। शोच। सोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोइ।—स० सप्तक, पृ० ३४३। २ गिरो। गिरवी। बधक। रेहन। ३ स्थान। आवास [को०]। ४ पास पडोस (को०)। ५ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ६ धर्म या कर्तव्य की चिंता (को०)। ७ परिमाण। लक्षण [को०]। ८ आशा [को०]। ९ दड (को०)। १० परिवार या कुटुंब की चिंता [को०]।

आधिक[1] ⓤ—वि० [हिं० आधा + एक] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लौ जाय चितै पुनि प्राय गरें लपटाय कै रोई।—मुबारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुवीर कह्यो सुनु वीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक[2]—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोडा। उ०—लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु, आँगु मोरि अँगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जँभाइ।—बिहारी र०, दो० ६३०।

आधिकरणिक—सज्ञा पु० [स०] १ न्यायाधीश। २ सरकारी अधिकारी [को०]।

आधिकारिक[1]—सज्ञा पु० [स०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदो मे एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० 'वस्तु'।

आधिकारिक[2]—वि० १ मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल मनुष्य मनुष्य के बीच भ्रातृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २ अधिकार या अधिकारी से सबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—सज्ञा पुं० [स०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

आधिदैविक—वि० [स०] देवताओं द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, भूत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—सुश्रुत मे सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं, उनमे से तीन अर्थात् कालबलकृत (वर्फ इत्यादि पडना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (बिजली पडना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्ता—सज्ञा पु० [स०] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [को०]।

आधिपत्य—सज्ञा पुं० [स०] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—सज्ञा पु० [स०] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबध करता हो।

आधिभोग—सज्ञा पुं० [स०] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [को०]।

आधिभौतिक—वि०[स०] व्याघ्र, सर्पादि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियो द्वारा प्राप्त।

विशेष—सुश्रुत में रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियो को आधिभौतिक के अतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—सज्ञा पु० [स०] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [को०]।

आधिमोचन—सज्ञा पुं० [स०] गिरवी या बधक छुडाना।

आधिवेदनिक—सज्ञा पुं० [स०] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके सतोष के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—सज्ञा पु० [स०] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा बिना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [को०]।

आधी—वि० स्त्री० [स० अर्द्ध, प्रा० अद्ध] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—आधो छोड सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीन ⓤ—वि०[स० अधीन] दे० 'अधीन'। उ०—करौं घरी आधीन मैं करौं हरी आधीन।—बिहारी र०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनता ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० अधीनता] दे० 'अधीनता'।

आधीरात—सज्ञा स्त्री० [स० अर्धरात्रि] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि०[स०] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। साप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [स०] अद्यतन। नवीनतम।

आधूत—वि० [स०] १ कपित। काँपता हुआ। २ पागल। ३. व्याकुल।

आधूपन—सज्ञा पुं० [स०] धुँए या कुहरे से आवृत [को०]।

आधूम्र—वि० [स०] धुँए की तरह काले रगवाला [को०]।

आधृत०—वि० [स०] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [को०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छवि हेरति।—बिहारी० र०, भा० १, पृ० १५८।

आधेय—सज्ञा पुं०[स०] १ आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी सहारे पर टिकी हुई चीज। २ स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३ गिरो रखने योग्य।

आधोरण—सज्ञा पुं० [स०] हाथीवान। महावत। पीलवान।

आध्मात[1]—वि० [स०] १ फूला हुआ। २ गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। ज्वर वायु से ग्रस्त [को०]।

आध्मात[2]—सज्ञा पुं० १ उदर मे होनेवाला वायु रोग। २ युद्ध [को०]।

आध्मान—सज्ञा पु० [सं०] एक वातव्याधि। पेट का फूलना। अफरा

आध्मानी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नलिका नामक गधद्रव्य। २ फुँकनी। वह धातु या बाँस की नली जिससे हवा फूँकी जाय [को०]।

आध्यात्मिक—वि० [स०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १ आत्म सबधी। २ मन सबधी। ३ अध्यात्म से सबध रखनेवाला [को०]।

यौ०—आध्यात्मिक ताप = वह दुख जो मन आत्मा और देश इत्यादि को पीडा दे, जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि।

आध्यापक—सज्ञा पुं० [स०] दे० अध्यापक' [को०]।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदो के अध्ययन मे सलग्न रहनेवाला [को०]।

आध्यासिक—वि० [स०] वेदातदर्शन मे भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०]।

आनतर्य—सज्ञा पुं० [स० आनन्तर्य] १ अचानक होनेवाली सफलता। २ तात्कालिक अनुमान।

आनंत्य—सज्ञा पु० [सं० आनन्त्य] १ अत या समाप्ति का अभाव। अनतता। २ स्वर्ग। ३ अविनश्वरता।

आनद[1]—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनदित, आनदी] १ हर्ष। प्रसन्नता। खुशी। सुख। मोद। आह्लाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना। मनाना।—मिलना।—रहना।—लेना। जैसे,—(क) कल हमको सैर मे बडा आनद आया। (ख) यहाँ हवा मे बैठे खूब आनद ले रहे हो। (ग) मूर्खों की सगति मे कुछ भी आनद नही मिलता।

यौ०—आनदमगल।

मुहा०—आनंद के तार या ढोल बजाना = आनद के गीत गाना। उत्सव मनाना।

२ प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियो मे से एक है। उ०—सत्, चित और आनद, ब्रह्म के इन तीन स्वरूपो मे से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनद' स्वरूप को लेकर चले।—रस०, पृ० ५५। ३ मद्य। शराब। ४ शिव (को०)। ५ विष्णु (को०)। ६ बुद्ध के एक प्रधान शिष्य (को०)। ७ दडक छद का एक भेद (को०)। ८. ४८ वें सवत्सर का नाम (को०)।

आनद[2]—वि० सानद। आनदमय। प्रसन्न। जैसे,—आनद रहो।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यो मे होता है। पर ऐसे स्थानो मे भी यदि आनद को विशेषण न मानना चाहे, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं।

आनंदक—वि० [सं० आनन्दक] आनद प्रदान करनेवाला [को०]।

आनदकर—सज्ञा पु० [स० आनन्दकर] चद्रमा [को०]।

आनंदकला—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनदमयी सत्ता। ईश्वर का आनदमय स्वरूप। उ०—भगवान् की आनदकला के विकास की ओर बढती हुई गति है।—रस०, पृ० ६०।

आनदकानन—सज्ञा पुं० [स० आनन्दकानन] दे० 'आनदवन'।

आनदघन[1]—वि० [स० आनन्द+घन] आनद से भरा हुआ।

आनंदघन[2]—सज्ञा पुं० १ श्रीकृष्ण भगवान्। २ हिंदी के एक कवि का नाम।

आनदज—वि० [सं० आनन्दज] हर्ष के कारण उत्पन्न, जैसे,—अश्रु [को०]।

आनदना(ख)—क्रि० अ० [सं० आनन्द से नाम०] प्रसन्न होना। आनंदयुक्त होना। उ०—ज्यो चकई प्रतिबिंब देखिकै, आनदै पिय जानि। सूर पवन मिलि निठुर बिधाता, चलत किये जल आनि।—सूर०, १०।३२६८।

आनदपट—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दपट] वैवाहिक वस्त्र। जोडावामा [को०]।

आनंदपूर्ण—वि० [सं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०]।

आनदप्रभव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दप्रभव] वीर्य। शुक्र [को०]।

आनदबधाई—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्द+हिं० बधाई] १ मगल-उत्सव। २ मगल अवसर। ३ मगल की बधाई।

आनदवन—सज्ञा पु० [स० आनन्दवन] काशी। वाराणसी। अविमुक्त क्षेत्र। बनारस। सप्तपुरियो मे से चौथी।

आनदभैरव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दभैरव] १. शिव का एक नाम (को०)। २ वैद्यक मे एक रस का नाम जो प्राय ज्वरादि की चिकित्सा मे काम आता है।

विशेष—इसके बनाने की यह रीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध गधक की कजली, शुद्ध सिगी मुहरा, सिंगरफ, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, सूना सुहागा, इन सबका चूर्ण कर भँगरैया के रस मे तीन दिन खरल कर आध आध रत्ती की गोलियाँ बनावे। एक गोली नित्य दस दिन पर्यंत खिलाने से खाँसी, क्षय, सग्रहणी, सन्निपात और मृगी के सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

आनदभैरवी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] भैरव रोग की रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय प्रात काल १ दड से ५ दड तक है।

आनदमंगल—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द+मङ्गल] सुख चैन।

आनदमत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमत्ता] प्रौढा नायिका का एक भेद। आनद से उन्मत्त प्रौढा। दे० 'आनदसमोहिता'।

आनदमय[1]—वि० [सं० आनन्दमय] आनदपूर्ण। प्रसन्नता से युक्त [को०]।

यौ०—आनंदमयकोष = आत्मा के पचकोषों मे से एक (वेदांत)।

आनंदमय[2]—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

आनदमया—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०]।

आनंदलहरी—सज्ञा स्त्री० [स० आनन्दलहरी] शकराचार्य विरचित एक ग्रथ जिसमे पार्वती जी की स्तुति है [को०]।

विशेष—इसे सौदर्यलहरी भी कहते हैं।

आनंदवाद—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनद को ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धात।

आनदसमोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसम्मोहिता] वह नायिका जो रति के आनद मे अत्यत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो रही हो। यह प्रौढ़ा नायिका का एक भेद है।

आनदा—सज्ञा स्त्री० [स० आनन्दा] भाँग [को०]।

आनंदित—वि० [सं० आनन्दित] हर्षित। मुदित। प्रमुदित। सुखी। उ०—आनंदित गोपी ग्वाल, नाचैं कर दै दै ताल, अति अह्लाद भयो जसुमति माइ कै।—सूर०, १०। ३१।

आनंदी—वि० [सं० आनन्दिन्] हर्षित। प्रसन्न। सुखी। खुश।

आन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० आणि=मर्यादा, सीमा] १ मर्यादा। २ शपथ। सौगंध। कसम। उ०—मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौ।—मानस, २।१००। ३. विजय-घोषणा। दुहाई।

क्रि० प्र०—फिरना। उ०—बार बार यो कहत सकात न, तोहि हति लैहैं प्रान। मेरे जान, कनकपुरी फिरिहै रामचद्र की आन।—सूर०, ९। १२१।

४. ढंग। तर्ज। अदा। छवि। जैसे,—उस मौके पर बड़ौदा नरेश का इस सादगी से निकल जाना एक नई आन थी। ५ अकड़। ऐंठ। दिखाव। ठसक। जैसे,—आज तो उनकी और ही आन थी। ६. अदब। लिहाज। दबाव। लज्जा। शर्म। हया। शंका। डर। भय। जैसे,—कुछ बड़ों की आन तो माना करो। ७ प्रतिज्ञा। प्रण। हठ। टेक। जैसे,—वह अपनी आन न छोड़ेगा।

आन[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण। अल्पकाल। लमहा। जैसे,—एक ही आन में कुछ का कुछ हो गया है।

मुहा०—आन की आन में=शीघ्र ही। अत्यल्प काल में। जैसे,—आन की आन में सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया।

आन[3]—वि० [सं० अन्य] दूसरा। और। उ०—मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना।—जायसी ग्र०, पृ० ३५।

आन[4]—क्रि० वि० [हिं० आना] आकर। उपस्थित होकर। जैसे,—पत्ता पेड़ से आन गिरा।

आनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ डंका। दुंदुभी। भेरी। ढक्का। बड़ा ढोल। मृदंग। नगाड़ा। उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६४३। २. गरजता हुआ बादल।

यौ०—आनकदुंदुभी।

आनकदुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० आनकदुंदुभि] १. बड़ा नगाड़ा। २. कृष्ण के पिता वसुदेव।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब देवताओं ने नगाड़े बजाए थे।

आनड्वाह—वि० [सं०] बैल या साँड से संबद्ध [को०]।

आनत—वि० [सं०] अत्यंत झुका हुआ। अतिनम्र। उ०—पत्रों के आनत अधरों पर, सो गया निखिल वन का मर्मर।—गुंजन, पृ० ७६। २ कल्पभव के अंतर्गत वैमानि नामक जैन देवताओं में से एक देवता।

आनतान[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन=दूसरा+तान=गीत] अंड बंड बात। ऊटपटाँग बात। बेसिर पैर की बात।

आनतान[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन+खिंचाव] १. मर्यादा। ठसक। २. टेक। अड़।

आनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नत होना। झुकना। झुकाव। २ प्रणाम करना। प्रणति। ३ सत्कार करना [को०]।

आनतिकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपहार। पुरस्कार [को०]।

आनद्ध[1]—वि० [सं०] १ बँधा हुआ। कसा हुआ। २ मढ़ा हुआ।

आनद्ध[2]—संज्ञा पुं० १ वह बाजा जो चमड़े से मढ़ा हो, जैसे—ढोल मृदंग आदि। २. सज्जित होना। कपड़े आभूषण आदि पहनना [को०]।

आनद्धवस्तिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेशाब या पाखाने का रुकना [को०]।

आनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख। मुँह। उ०—आनन रहित सकल रस भोगी।—मानस, १।११८। २ चेहरा। उ०—आनन है अरविंद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात हौ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ९१।

यौ०—चद्रानन। गजानन। चतुरानन। पंचानन। षडानन।

आननफानन—क्रि० वि० [अ० आनन फानन] अतिशीघ्र। फौरन झटपट। बहुत जल्द।

आनना⑤—क्रि० स० [सं० आ+√नी=ले जाना या लाना] लाना। उ०—आनहु रामहि बेगि बोलाई।—मानस, २।३९।

आनबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन+बान] १ सजधज। ठाट बाट तड़क भड़क। बनावट। उ०—जुही आनबान भरी, चमेली जबान परी।—आराधना, पृ० २३।

आनमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनति' [को०]।

आनयन⑤—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाना। २ उपनयन संस्कार।

आनर—संज्ञा पुं० [अ०] १. संमान। प्रतिष्ठा। इज्जत। सत्कार। २ समानचिह्न। उपाधि।

आनरेबुल—वि० [अ०] प्रतिष्ठित। माननीय।

विशेष—अँगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गवर्नर, बड़े लाट या छोटे लाट की कौंसिल के सभासद् होते थे, उन्हें तथा हाई कोर्ट के जजों और कुछ चुने अधिकारियों को यह पदवी मिलती थी। अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों को इस नाम से पुकारा जाता है।

आनरेरी—वि० [अ०] १. अवैतनीक। कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा के हेतु काम करनेवाला।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। आनरेरी सेक्रेटरी।

२ बिना वेतन लेकर किया जानेवाला। जैसे,—यह काम हमारा आनरेरी है।

आनर्त—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आनर्तक] १ देशविशेष। द्वारका २. आनर्त देश का निवासी। ३ राजा शर्याति के तीन पुत्रों से एक। ४ नृत्यशाला। नाचघर। ५ युद्ध। ६ जन। नृत्य [को०]।

आनर्तक—वि० [सं०] नाचनेवाला।

आनव[1]—वि० [सं०] १ मनुष्य की तरह शक्तिवाला। २. मनुष्य पर दया करनेवाला [को०]।

आनव[2]—संज्ञा पुं० १ मनुष्य। मानव। २. विदेशीजन [को०]।

आना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आणक] १. रुपए का १६वाँ भाग। २ किसी वस्तु का १६वाँ अंश। जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर

अब चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव मे चार आना उनका है।

आना[१]—क्रि० अ० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन, आवना, जैसे द्विगुण से दूना। अथवा सं० आयणा हिं० आवना] १ वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे है। (ख) जब हम बनारस मे थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २ जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे—तुम यही खडे रहो, मैं अभी आता हूँ। ३ प्रारभ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढक बोलने लगते हैं। ४ फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड मे अच्छे फूल आवेंगे। ५ किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनद आना, क्रोध आना, दया आना, करुणा आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष—इस अर्थ मे 'मैं' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बडा क्रोध आया।

६ आँच पर चढे हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नही। ७ स्खलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बडी देर से आता है।

मुहा०—**आई**=(१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कही टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। **आए दिन**=प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का झगडा अच्छा नही। **आए गए होना**=खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। **आओ या आइए**=जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें घूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब मे क्या लिखा है। **आ जाना**=पड जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। **आता जाता**=आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। **आना जाना**=(१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। सभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लडका कहाँ से होता? **आ धमकना**=एकबारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिक्र कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ धमकी। **आ निकलना**=एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नही हम लोग कहाँ आ निकले। **आ पडना**=(१) सहसा गिरना। एकबारगी गिरना। जैसे,—धरन एकदम नीचे आ पडी। (२) आक्रमण करना जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पडे। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—बेचारे पर बैठे बिठाए यह आफत आ पडी। (४) सकट, कठिनाई या दुख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पड़ी है जो उनके पीछे दौडते फिरो। (ख) जब आ पडती है तब कुछ नही सूझता। (५) उपस्थित होना। एकबारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पडता है, तब वह खिसक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का सारा बोझ आ पडा। (शब्द०) (ग) कल हमारे यहाँ दस मेहमान आ पडे। (शब्द०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। विश्राम करना। जैसे,—क्यों इधर उधर भटकते हो, चार दिन यहीं आ पडो। **आया गया**=अतिथि। अभ्यागत। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए। **आ रहना**=गिर पडना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) यह चबूतरे पर से नीचे आ रहा। **आ लगना**=(१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) बात की बात मे किश्ती किनारे आ लगी। (ख) रेलगाडी प्लेटफार्म पर आ लगी। (इस क्रियापद का प्रयोग जड पदार्थों के लिये होता है, चेतन के लिये नही।) (२) आरभ होना। जैसे,—अगहन का महीना आ लगा है। (३) पीछे लगना। साथ होना। जैसे,—बाजार मे जाते ही दलाल आ लगते हैं। **आ लेना**=पास पहुँच जाना। पकड लेना। जैसे,—डाकू भागे पर सवारों ने आ लिया। (२) आक्रमण करना। टूट पडना। जैसे—हिरन चुपचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। किसी का किसी पर कुछ रुपया **आना**=किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बीस रुपये। **किसी की आ बनना**=किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वार्थसाधन का मौका मिलना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नही, नौकरों की चूप आ बनी है। **किसी को कुछ आना**=किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ ज्ञान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोलना ही नहीं आता। (ख) उसे चार महीने मे हिंदी आ जायगी। **किसी को कुछ आना जाना**=किसी को कुछ बोध या ज्ञान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नही। **किसी पर आ बनना**=किसी पर विपत्ति पडना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारो ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोड पराई आस (शब्द०) **(किसी वस्तु) मे आना**=(१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर मे यह जूता आता है। (ख) यह साडी इस छडी मे नही आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस बरतन मे दस सेर घी आता है। (३) अतर्गत होना। अतर्भूत होना। जैसे,—ये सब विषय विज्ञान ही मे आ गए। **किसी वस्तु से (धन या आय) आना**=किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किसी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—भाडा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'धन' आदि शब्दो का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) **कोई काम करने पर आना** = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उतारू होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नही समझता। **जूतो या लात घूसों आदि से आना** = जूतो या लात घूसो से आक्रमण करना। जूते या लात घूसे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूतों से आऊँगा। **(पौधे का) आना** = **(पौधे का)** बढना। जैसे,—खेत मे गेहूँ कमर बराबर आए हैं। **(मूल्य) को या मे आना** = दामो मे मिलना। मूल्य पर मिलना। मोल मिलना। जैसे,—(क) यह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने मे आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए मे आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के स्थान पर 'की' या 'मे' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'आना' क्रिया के अपूर्णभूत रूप के साथ अधिकरण मे भी 'को' विभक्ति लगती है, जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर सयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्राय सयुक्त क्रियाओ मे अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है, जैसे, दे डालना, गिर पडना आदि। पर 'आना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती है, जैसे,—'इस चीज को उन्हे देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनो क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'आना' का व्यापार प्रधान दिखाई देता है, जैसे,—चले आओ। बढे आओ। कही कही आना का सयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरतर सपादन सूचित करने के लिये होता है, जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनो से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आप-के कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिसूचक क्रियाओ में 'आना' क्रिया धातुरूप मे पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ मे विशेषता करती है, जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना आ धमकना, आ निकलना, आ पडना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया मे 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नही है। इससे सदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो, जैसे,—आयात, आगमन, आनयन, आपतन।

आनाकानी—सज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] १ सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—आनाकानी आरसी निहारिनो करौगे कौ लौं ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टाल-मटूल। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने मे आनाकानी क्यो करते हो ?

क्रि० प्र०—करना।—देना।

३ कानाफूसी। धीमी बातचीत। इशारो की बात। उ०—आनाकानी कठ हँसी मुहाचाही होन लगी देखि दसा कहत विदेह बिलखाय कै।—तुलसी (शब्द०)।

आनाथ्य—सज्ञा पुं० [सं०] असहाय या अनाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

आनाय—सज्ञा पुं० [सं०] जाल। फदा [को०]।

आनाह—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २ बाँधना [को०]। ३ लवाई (कपडे आदि की) [को०]। ५ विस्तार [को०]।

आनि(५)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आन'।

आनिल[1]— वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनिली] वायु से सबधित या उत्पन्न [को०]।

आनिल[2] **आनिलि**— सज्ञा पुं० [सं०] १ हनुमान। २ भीम। ३ स्वाती नक्षत्र [को०]।

आनिला—सज्ञा पुं० [अ०] जहाज के लगर की कुडी।

आनीजानी—वि० [हिं० आना+जाना] अस्थिर। क्षणभगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की आनी जानी देखी। जो आके न जाए वह खुदापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

आनीत—वि० [स०] लाया हुआ [को०]।

आनील[1]—वि० [स०] हरे रग का। हल्का नीला [को०]।

आनील[2]—सज्ञा पु० काला घोडा [को०]।

आनुकूलिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आनुकूलिकी] अनुकूल [को०]।

आनुकूल्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

आनुक्रमिक—वि० [स०] क्रमानुसार [को०]।

आनुगतिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आनुगतिकी] अनुगत या अनुगति से सबध रखनेवाला [को०]।

आनुगत्य—सज्ञा पु० [सं०] १ अनुगत होने की क्रिया। २ अनुकरण। ३ परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-सुदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का आनुगत्य है।—पाकेन पृ० २०१।

आनुग्रहिककरनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालो पर रियायत की जाती है।

आनुग्रहिक दारो दय शुल्क—सज्ञा पुं० [सं०] वह चुगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ मे यह द्वारादेय शुल्क या आनुग्रहिक कहा गया है।)।

आनुग्रामिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आनुग्रामिकी] ग्रामसबंधी। ग्रामीण [को०]।

आनुपदिक—वि० [स०] [स्त्री० आनुपादिकी] १ पीछा करनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला [को०]।

आनुपातिक—वि० [स०] अनुपात सबधी [को०]।

आनुपूर्वी—वि० [स० अनुपूर्वीय] क्रमानुसार। एक के बाद दूसरा।

आनुमानिक—वि० [स०] अनुमान सबधी। खयाली।

आनुयात्रिक—सज्ञा पुं० [स०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

आनुरक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुरक्ति [को०]।

आनुलोमिक—वि० [स०] १ नियमित। क्रमित। २ अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

आनुवंशिक—वि० [स०] वशपरंपरा मे आया हुआ। वशानुक्रमिक [को०]।

आनुवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ पड़ोसी। प्रतिवेशी। २ वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो। प्रतिवेश्य का उलटा [को०]।

आनुश्राविक¹—वि० [सं०] जिनको परंपरा से सुनते चले आए हों।

आनुश्राविक²—संज्ञा पुं० दो प्रकार के विषयों में से एक, जिसे परंपरा से सुनते आए हों। जैसे,—स्वर्ग, अप्सरा।

आनुषंगिक—वि० [सं०] जिसका साधन किसी दूसरे प्रधान कार्य को करते समय बहुत थोड़े प्रयास में हो जाय। बड़े काम के सिलसिले में हो जानेवाला। जिसकी बहुत कुछ पूर्ति किसी दूसरे कार्य के संपादन द्वारा हो जाय और शेष अंश के संपादन में बहुत ही थोड़े प्रयत्न की आवश्यकता रहे। साथ साथ होनेवाला। गौण। अप्रधान। प्रसंगतः होनेवाला या हो जानेवाला अथवा किया जानेवाला। प्रासंगिक। जैसे,—जिस ओर जाओ, उधर से आते समय साग भी लेते आना। उ०—चलो सखी तहँ जाइए जहाँ बसत ब्रजराज। गोरस बेचत हरि मिलत एक पंथ द्वै काज (शब्द०)।

आनूप—वि० [सं०] १ जलवाला। २ जलज भूमि में उत्पन्न [को०]।

आनृत—वि० [सं०] [स्त्री० आनृती] हमेशा झूठ बोलनेवाला [को०]।

आनृशंस¹—वि०[सं०] कोमल स्वभाववाला। मृदु [को०]।

आनृशंस²—संज्ञा पुं० १ दयालुता। २ क्षमाशीलता। ३ मृदुता। ४. रक्षकता। रक्षक स्वभाव [को०]।

आनृशंस्य—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनृशंस' [को०]।

आनेता—वि० [सं० आनेतृ] लानेवाला [को०]।

आनैपुण, आनैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अदक्षता। अपटुता [को०]।

आनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य का अभाव। अनैश्वर्य [को०]।

आन्न—वि०[सं०][स्त्री० आन्नी]१ अन्नवाला। २ अन्न से संबंधित [को०]।

आन्वयिक—वि०[सं०]१ कुलीन। २ गुणवंशजित। गुणयुक्त [को०]।

आन्वष्टक्य—वि०[सं०]हेमंत और शिशिर के चारों महीनों, अगहन पूस, माघ और फागुन में कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को होने वाला (श्राद्ध)।

आन्वीक्षिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मविद्या। २ तर्क-विद्या। न्याय।

आप¹—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अत्त अप्प, अप्पण, पं० आपनो] १. स्वयं। खुद।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों के लिये होता है। जैसे, उत्तम पुरुष—मैं आप जाता हूँ, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं। मध्य पुरुष—तुम आप अपना काम क्यों नहीं करते, दूसरों का मुँह क्यों ताका करते हो। अन्य पुरुष—तुम मत हाथ लगाओ, वह आप अपना काम कर लेगा। २ 'तुम' और 'वे' के स्थान पर आदरार्थक प्रयोग। जैसे,—(क) कहिए बहुत दिन पर आप आए हैं, इतने दिन कहाँ थे? (ख) ईश्वरचंद्र विद्यासागर पुराने ढंग के पंडित थे। आपने समाज संशोधन के लिये बहुत कुछ उद्योग किया। (ग) आप बड़ी देर से खड़े हैं, ले जाकर बैठाते क्यों नहीं? ३ ईश्वर। भगवान्। उ०—(क) जहाँ तहाँ जहँ धर्म है, तहाँ सोभ तहँ साथ। तहाँ सोच तहँ है नहीं, जहाँ न आपु अनाथ—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—आपसवाला = अपना साथी। जैसे—आपसवाले सहायक (शब्द०)। उ०—[illegible] आपसवाले।—[illegible]। आपसवाली = सखी। सहचरी। आपसी = आपस का। परस्पर का। आपस्य = स्वयं। खुद। आपस्यात् = अपने। उ०—जिन के अनुग्रह के कारण वो अपने आपस्यात् को भूल गए।—[illegible]।—सखी।

मुहा०—आप आप करना = चुपचाप रहना। जैसे—अपना काम आप करो, दूसरों से क्यों नहीं कहते। आप आपको पहचानना = अपने को समझना। अपनी शक्ति का ज्ञान होना। जैसे,—जब तक वे दूसरों के सहारे रहते थे तब तक आप आपको नहीं पहचानते थे। आप आपसे = [illegible]। जैसे,—(क) वह अपने आप [illegible]। (ख) [illegible]। आप आपसी = (१) अपनी ओर से। अपने आप। जैसे,—(क) [illegible]। (२) [illegible]। आप में = [illegible]। जैसे,—[illegible]। आप रु = स्वयं। खुद। जैसे,—उसने आपरुवा [illegible] नहीं किया था। उ०—[illegible]।—[illegible], भा० १, पृ० १८१। आपसे आप = स्वयं। खुद। जैसे,—(क) आप से आप [illegible]। (ख) [illegible]। आप ही = स्वयं। खुद। जैसे,—[illegible]। उ०—[illegible]। आपा = (१) अहंकार। घमंड। जैसे,—उसमें आपा नाम को नहीं है। (२) होश। जैसे,—उसे आपा नहीं है। आपा खोना = (१) अपने को भूल जाना। होश हवास न रहना। जैसे,—[illegible]। (२) [illegible]। आपा गहना = [illegible]। आपा धापी = [illegible]। आपा पहचानना = [illegible]। आपा मारना = [illegible]। आपा रखना = [illegible]। आपा रहना = [illegible]। आपा रोकना = [illegible]। आपा सँभालना = [illegible]। आपा सँभालना = [illegible]। आपा सँभाल

यौ०—आपधर=बादल। उ०—कर निए चाप परतापधर। तीन लोक मे आपधर। नृप गरज्यो जैसे आपधर। साँपधरन सम दापधर।—गोपाल (शब्द०)। आपनिधि=समुद्र। उ०—ज्ञानगिरि फोरि, तोरि लाज तरु जाइ मिलौं, आप ही तें आपगा ज्यो आपनिधि प्रीतमैं।—केशव ग्र०, पृ० १२७।

२ आठ वसुओं मे से एक का नाम (को०)। ३ जलप्लावन। बाढ (को०)। ४ जल का सोता या प्रवाह (को०)। ५ आकाश (को०)।

आपक—वि० [सं०] प्रापक। प्राप्त करनेवाला (को०)।

आपकर—वि० [स०] [वि० स्त्री० आपकरी] १ बिना मैत्री का। अमैत्री-पूर्ण। २ बुराई या निंदा करनेवाला। ३. अनिष्टकारी (को०)।

आपक्व—वि० [स०] जो अच्छी तरह न पका हो। कम पका हुआ (को०)।

आपगा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २ एक नदी का नाम (को०)।

आपगेय—सज्ञा पुं० [स०] भीष्म पितामह (को०)।

आपचार—सज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी।

आपचारना—क्रि० अ० [हिं० आपचार+ना (प्रत्य०)] उ०—विष लै बिसारयौ तन, कै बिसारी आपचारयौ, जान्यौ हुतौ मन? तैं सनेह कछु खेल सौ।—घनानद, पृ० ६३।

आपण—सज्ञा पुं० [स०] १ हाट। बाजार। २ किराया या महसूल जो बाजार मे मिले। तहबजारी।

आपत्—सज्ञा स्त्री० [सं०] 'आपद' का समासगत रूप (को०)।

आपत—सज्ञा स्त्री० [स० आपद] दे० 'आपद्'।

आपत्कल्प—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आपद्धर्म' (को०)।

आपत्काल—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपत्कालिक] १ विपत्ति। दुर्दिन। २ दुष्काल। कुसमय।

आपत्कृतऋण—सज्ञा पुं० [स०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पडने पर लिया जाय।

आपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. दुख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। सकट। आफत। ३ कष्ट का समय। ४ जीविकाकष्ट। ५ दोषारोपण। ६ उज्र। एतराज। जैसे,—हमको आपकी बात मानने मे कोई आपत्ति नही है। ७ प्राप्ति (को०)।

आपद्—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विपत्ति। आपत्ति। २ दुख। कष्ट। विघ्न।

यौ०—आपद्गत, आपद्ग्रस्त, आपद्प्राप्त=(१) आफत मे पडा हुआ। (२) अभागा। आपद्धर्म। आपद्विनीत=कष्ट या विपत्ति मे नम्र होनेवाला।

आपद—सज्ञा स्त्री० [स० आपद्] दे० 'आपद्'।

आपदर्थ—सज्ञा पुं० [स०] वह धन या सपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चलकर अपना अनिष्ट हो।

विशेष—जिस सपत्ति के लेने पर शत्रुओं की सख्या बढे, व्यय या क्षय बढे अथवा दूसरो को बहुत कुछ देना पडे, वह आपदर्थ है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टात दिए हैं, जैसे,—वह सपत्ति जो कुछ दिनो पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पार्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या सधिभग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मडल हो, इत्यादि। [को०]।

आपदा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। आफत। सकट। ३ सकट का समय। जीविका का कष्ट।

आपद्धर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो।

विशेष—जीविका के सकोच की दशा मे जीवनरक्षा के लिये शास्त्रो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारो से निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुकाल मे वर्जित है, जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और वाणिज्य आदि का करना मना है, पर आपत्काल मे इन व्यापारो द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है।

आपधाप—सज्ञा स्त्री० [हिं० आप+धाप] अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। दे० 'आपाधापी'।

आपन, आपनि†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—(क) आपन मोर नीक जो चहहू।—मानस, २। ६१। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।—मानस, २।१८२।

आपनपो—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो'।

आपनपौ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—तहँ साँच चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नही।—इतिहास, पृ० ३४३।

आपना†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—भजि रघुपति करु हित आपना। छाडहु नाथ मृषा जल्पना।—मानस, ६।५५।

आपनिक—सज्ञा पु० [स०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। २ जगली जाति। किरात (को०)।

आपनिधि—सज्ञा पुं० [स० आपोनिधि] जलनिधि। समुद्र। उ०—आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति मे।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२७।

आपनो†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—केहि अघ अवगुन आपनो करु डारि दिया रे।—तुलसी ग्र० पृ० ४७१।

आपन्न—वि० [सं०] १ आपदग्रस्त। दुखी। २ प्राप्त।

यौ०—आपन्नसत्व=गर्भिणी। सकटापन्न।

आपपति—सज्ञा पुं० [स० आप+पति] समुद्र। उ०—काँपि उठ्यो आपपति तपनहि ताप चढी, सीरी यो समीर गति भई रजनीस की।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२८।

आपमित्यक—वि० [स०] विनिमय अथवा अदल बदल द्वारा प्राप्त (सपत्ति) [को०]।

आपया—सज्ञा स्त्री० [स० आपगा] नदी।

आपराह्णिक—वि० [सं०] अपराह्ण या तीसरे पहर होनेवाला [को०]।

आपरूप[१]—वि० [हिं० आप+सं० रूप] अपने रूप मे युक्त। मूर्तिमान्। साक्षात् (महापुरुषो के लिये)। जैसे,—इतने ही मे आपरूप भगवान प्रकट हुए।

आपरूप[२]—सर्व० साक्षात् आप। आप महापुरुष। ये महापुरुष। खुद बदौलत। हजरत (व्यग्य)। जैसे,—(क) यह सब आपरूप ही की करतूत है। (ख) यह देखिए अब आपरूप आए हैं।

आपरेशन—संज्ञा पुं० [अं० ऑपरेशन] शल्यचिकित्सा ।

आपर्तुक—वि० [सं०] किसी विशेष समय या ऋतु से संबंध रखने-वाला [को०] ।

आपवर्ग्य—वि० [सं०] अपवर्ग या मोक्ष से संबंध रखनेवाला [को०] ।

आपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] [वि० आपसी] १ संबंध । नाता । भाईचारा । जैसे,—आपसवालों में धोखा न होगा । २ एक दूसरे का साथ । एक दूसरे का संबंध ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल 'षष्ठी' और 'सप्तमी' में होता है । नियमानुसार षष्ठी में यह विशेषण की तरह आता है । जैसे,—(क) यह तो आपस की बात है । (ख) ये आपस में लड़ रहे हैं ।

मुहा०—आपस का = (१) एक दूसरे से समान संबंध रखनेवाला । अपने भाई बंधु के बीच का । जैसे,—आपस का मामला । आपस की बात । आपस की फूट । जैसे—कहो न, यहाँ तो सब आपस ही के लोग बैठे हैं । (२) परस्परिक । परस्पर का । जैसे,—जरा सी बात पर उन्होंने आपस का आना जाना बंद कर दिया । आपस में = परस्पर । एक दूसरे के साथ । एक दूसरे के बीच । उ०—(क) हिंदू मरम सिख्य नहिं दीजै । आपस में लरि लरि पोजै ।—कबीर (शब्द०) । (ख) तुम पाइहै कान सुने बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहै ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६७ ।

यौ०—आपसदारी = परस्पर का व्यवहार । भाईचारा । आपसदार = आत्मसंबंधी ।

आपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० आपस्तम्ब] [वि० आपस्तंबीय] १ एक ऋषि जो कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे । यह शाखा उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है । २ आपस्तंब शाखा के कल्प सूत्र-कार जिनके बनाए तीन सूत्र ग्रंथ हैं, कल्प, गृह और धर्म । ३ एक स्मृतिकार जिनकी स्मृति उनके नाम से प्रसिद्ध है ।

आपस्तंबीय—वि० [सं० आपस्तम्बीय] आपस्तंब संबंधी ।

आपा¹—संज्ञा पुं० [हिं० आप] १ अपनी सत्ता । अपना अस्तित्व । जैसे,—अपने आपे को समझो, तब ब्रह्मज्ञान होगा । २ अपनी अनस्थियत । जैसे,—अपने आपको देखो तब बढ़कर बातें करना । ३ अहंकार । घमंड । गर्व । उ०—(क) जग में बैरी कोइ नहीं जामें शीतल होय । या आपा को डारि दे दया करै सब कोय ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खोना ।—छोड़ना ।—जाना ।—मिटना ।

४ होश हवास । सुध बुध । जैसे,—यह दशा देख लोग अपना आपा भूल गए ।

मुहा०—आपा खोना = (१) अहंकार त्यागना । नम्र होना । निरभिमान होना । उ०—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय । औरन को शीतल करै आपुहि शीतल होय ।—कबीर (शब्द०) । (२) अपने को बरबाद करना । अपने को मिटाना । अपनी सत्ता को भूलना । खाक में मिलाना । उ०—रगहि पान मिले जम होई । आपहि खोय रहा होय सोई ।—जायसी (शब्द०) । (३) हस्ती बिगाड़ना । प्राण तजना । मरना । जैसे,—उसने जरा सी बात पर अपना आपा खो दिया । आपा डालना = अहंकार का त्याग करना । नम्र होना । [illegible] आपा मारि मारि ।—कबीर (शब्द०) । आपा लखना = (१) अपनी सत्ता को समझना । अपने को पहचानना । अपने स्वरूप का ज्ञान होना । उ०—[illegible] हृदि भयो प्रकास । दास धरनि कहै मिटि गयो जनम मरन को त्रास ।—धरनी० श० । (२) अपने को सर्वश्रेष्ठ समझना । घमंड करना । अपने को सर्वोपरि समझना । [illegible] साथ साथ घमंड भी होता है । उ०—आपा लखै सो [illegible] होय । (३) अपने को पहचानना । अपने स्वरूप का ज्ञान होना । उ०—[illegible] ज्ञान होय । कबीर (शब्द०) । आपा विसरना = (१) [illegible] । (२) [illegible] आपा सँभालना = (१) [illegible] । (२) अपनी दशा सुधारना । (३) अपने को पहचानना । ज्ञान होना । उ०—[illegible] हृदि भयो प्रकास । दास धरनि कहै मिटि गयो जनम मरन को त्रास ।—धरनी० श० ।

आपा[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आप] बडी बहिन (मुसलमानी)।

आपा[3]—सज्ञा पु० बडा भाई (महाराष्ट्र)।

आपाक—सज्ञा पु० [स०] १ आँवा। २ भट्ठी [को०]।

आपात—सज्ञा पु० [स०] १ गिराव। पतन। २ किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरभ। ४ अत। ५ पहली झलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६ गिराना। अध पतित करना (को०)। ७ हाथी पकडने के लिये उसे गड्ढे मे गिराना (को०)। ८ नरक [को०]।

आपातत.—क्रि०वि० [स०] १ अकस्मात्। अचानक। २ अत को। आखिरकार। ३ ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—आपातत आभासित होते हैं।—शैली, पृ० ११६।

आपातलिका—सज्ञा पु० [स०] एक छद जो वैतालीय छद के विषम चरणो मे ६ और सम चरणो मे ८ मात्राओ के उपरात एक भगण और दो गुरु रखने से बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जजालहि तज या जग माही। तन, मन, धन सो जपिहौ जो, हरधाम मिलव सशय नाही।

आपाद[1]—अव्य० [स०] पैर तक [को०]।

यौ०—आपादमस्तक=सिर से पैर तक।

आपाद[2]—सज्ञा पुं० १ प्राप्ति। २ पुरस्कार। इनाम। ३ पारिश्रमिक [को०]।

आपाधापी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आप + धाप] १ अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग आपाधापी मे हैं, कोई किसी की सुनता ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—पडना।—होना।

२ खींचतान। लागडाँट। जैसे,—उन लोगो मे खूब आपाधापी है।

आपान, आपानक—सज्ञा पु० [स०] १ वह गोष्ठी जिसमे शराब पी जाय। शराबियो की गोष्ठी। उ०—रिक्त चषक सा चद्र लुढककर है गिरा, रजनी के आपानक का अब अंत है।—झरना, पृ० २५। २ शराब पीने का स्थान।

यौ०—आपानोत्सव, आपानकोत्सव=शराब पीने का समारोह।

आपापथी—वि० [हिं० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपथी।

आपायत—वि० [स० आप्यायित=वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(डिं०)।

आपालि—सज्ञा पु० [स०] जूँ। लिक्षा [को०]।

आपिंजर[1]—वि० [स० आपिञ्जर] कुछ लाल रग का [को०]।

आपिंजर[2]—सज्ञा पु० स्वर्ण। सोना [को०]।

आपी—सज्ञा पु० [स० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जल है पूर्वाषाढ नक्षत्र।

आपीड़[1]—सज्ञा पुं० [स० आपीड] १ सिर पर पहनने की चीज, जैसे,—पगडी, सिरपेच, वेनी इत्यादि। २ घर के बाहर पार्श्व मे निकले हुए बँडेरे का भाग। मँगरोरी। मँगीरी। ३ एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे मे २० अक्षर होते हैं। इसमे समस्त चरणो के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

आपीड[2]—वि० १ कष्ट देनेवाला। पीडक। २ दबानेवाला [को०]।

आपीडन—सज्ञा पु० [सं० आपीडन] १ दबाना या मलना। २. दुख देना। कष्ट देना [को०]।

आपीत[1]—सज्ञा पुं० [सं०] सोनामाखी।

आपीत[2]—वि० [स०] सोनामाखी के रग का। कुछ पीला।

आपीन[1]—वि० [स०] १ मोटा। २ मजबूत। बलवान् [को०]।

आपीन[2]—सज्ञा पु० १ थन या छीमी। २ कुआँ। कूप [को०]।

आपु†—सर्व० [हिं०] दे० 'आप'। उ०—आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहि जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहि।—मानस, ७।१००।

आपुन[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुन[2]—सर्व० [स० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हिं० आप] खुद। स्वय। उ०—आपुन चढे कदम पर धाई। बदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि मद दुहाई।—सूर०, १०।१४१८।

आपुनो†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुस†—सज्ञापु० [हिं०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमैं सब आपुस मे जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।

आपूपिक—वि० [सं०] १ बढिया पुआ बनानेवाला। २ पुआ खाने मे अभ्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३ पुआ बेचनेवाला।

आपूप्य—सज्ञा पुं० [स०] १. आटा। २ बेसन। ३ मैदा। ४. सत्तू [को०]।

आपूर—सज्ञा पु० [स०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १ बाढ। बाढ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।

आपूरण—सज्ञा पु० [स०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।

आपूरना—क्रि० अ० [स० आपूरण] भरना।

आपूरित, आपूर्ण—वि० [स०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।

आपूर्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भरना। भरण। २ सतुष्टि। पूर्ति [को०]।

आपूप—सज्ञा पु० [स०] १ रांगा। २ सीसा।

आपृच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] जिज्ञासा। औत्सुक्य। २ वार्तालाप। बातचीत [को०]।

आपेक्षिक—वि० [स०] १ सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २ अवलंबन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।

आपोक्लिम—सज्ञा पुं० [सं०] [यू० एपोक्लिमा] जन्मकुडली का तीसरा छठा, नवाँ और बारहवाँ स्थान।

आपोजीशन—सज्ञा पु० [अ० अपोजीशन] पार्लमेंट (समद) या व्यवस्थापिका सभाओ (विधानपरिषद्) के सदस्यो का वह समूह या दल जो मत्रिमडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामस सभा में आपोजीशन के लीडर ने हाम मेंबर पर वोट आफ सेंसर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया।

आप्त[1]—वि० [सं०] १ प्राप्त। प्रामाण्य रूप मे लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'आप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे प्राय समस्त पदो में मिलता है, जैसे,—आप्तकाम। आप्तवर्मा। आप्तकाल।

२ कुशल। दक्ष। ३ विषय को ठीक तौर से जाननेवाला। साक्षात्कृतधर्मा।

आप्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषि। २ यथार्थ का वक्ता। प्रामाणिक कथन का कहनेवाला। ३ योगशास्त्र के अनुसार आप्तयोगी।

विशेष—पतंजलि के अनुसार आप्त वह है जो परोक्ष वस्तु का समग्रता के साथ जाननेवाला या द्रष्टा या ज्ञाता हो तथा रागादि के वश में पड़कर भी कभी अन्यथा न करे।

यौ०—आप्तप्रमाण। आप्तवाक्य। आप्तवचन। आप्तागम। आप्तोक्ति।

३ भाग का लब्ध।

आप्तकाम—वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों। पूर्णकाम।

आप्तकारी[1]—वि० [सं० आप्तकारिन्] उचित या मुख्य रूप से कार्य करनेवाला (को०)।

आप्तकारी[2]—संज्ञा पुं० १ विश्वस्त अनुचर। २ सुनार [को०]।

आप्तगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री० [को०]।

आप्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन समूह [को०]।

आप्तवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आप्तोक्ति'। उ०—तब तो पुनर्जन्म का वाक्य अवश्य मानते होंगे।—स्वा०, पृ० ८०।

आप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा [को०]।

आप्तागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वसनीय वेद जो परंपरा से चली आती हो। २ वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ आदि [को०]।

आप्ताधीन—वि० [सं०] विश्वस्त जनों पर निर्भर। विश्वस्त व्यक्ति के अधीन रहनेवाला [को०]।

आप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राप्ति। लाभ। २ पूर्णता [को०]। ३ पहुँचना [को०]। ४ संयोग। संबंध [को०]। ५ अंदाज। ख्याल [को०]।

आप्तोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उक्ति जिसे विश्वास करने योग्य माना जाय। परंपरा से प्रामाणिक रूप में मानी जानेवाली बात [को०]।

आप्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। २ जलोद्भव पौधे आदि [को०]।

आप्य[2]—वि० १ प्राप्तियोग्य। प्राप्य। २ जल से संबंधित [को०]।

आप्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्यायित] १ वृद्धि। संवर्धन। २ तृप्ति। तर्पण। ३ एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना। एक रूप से दूसरे रूप में आना, जैसे—दूध में खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना। ४ मृत धातु को शहद, सुहागा, घी आदि के संयोग से जगाना या जीवित करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आप्यायित—वि० [सं०] १ तृप्त। संतुष्ट। २ आर्द्र। तर। ३ परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ४ अवस्थांतरप्राप्त। दूसरे रूप में परिवर्तित।

आप्रच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदा करना या स्वागत करना। २ मिलने के समय का कुशलप्रश्न [को०]।

आप्रच्छन्न—वि० [सं०] रहस्य। गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

आप्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्रपदीन] पैरों तक पहुँचनेवाला वस्त्र [को०]।

आप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २ पानी से तर करना या सींचना [को०]।

आप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्लावित] १ बाढ़ आदि। २ बहाना। स्नान। ३ [illegible]

आप्लावित—वि० [सं०] [illegible]

आप्लुत[1]—वि० [सं०] [illegible] २ [illegible]

आप्लुत[2]—संज्ञा पुं० [illegible]

आप्लुति—संज्ञा पुं० [illegible]

आप्वा—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]

आफ़त—संज्ञा स्त्री० [अ० आफ़त] १ [illegible] २ [illegible]

मुहा०—आफ़त आना।—[illegible]।—टूटना।—ढाना।—[illegible]।—पड़ना।—बरपा होना।—बरसना।—मचलना।—मोल लेना।—[illegible]

यौ०—[illegible]

(१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त का परकाला = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त का पुर्जा = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त की नानी मरना = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त की पोटली = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त की बला = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त की बेटी = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त के मारे = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त ढाना = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त तोड़ना = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त बरसाना = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त मचाना = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफ़त मोल लेना = दे० 'आफ़त सिर पर लेना'। आफ़त सिर पर लाना या लेना = (१) झगड़ा मोल लेना। झंझट में पड़ना। जैसे,—

तू इसे व्यर्थ छेड़कर अपने सिर आफत लाया। (२) सकट मे पड़ना। दु ख को बुलाना। अपने को झझट मे डालना। जैसे—तुम तो रोज रोज अपने सिर पर एक न इक आफत लाया करते हो।

आफताव—सज्ञा पु० [फा० आफताब] [वि० आफतावी] १ सूर्य। उ०—जाहि कै प्रताप सो मलीन आफताव होत, ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।—भूषण ग्र०, पृ० १०८। २ धूप। घाम [को०]।

आफतावा—सज्ञा पु० [फा० आफतावह्] एक प्रकार का गडुआ जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता है। यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है।

आफतावी[१]—सज्ञा स्त्री० [फा० आफ़तावी] पान के आकार का या गोल जरदोजी का बना पखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है। यह लकडी के डडे के सिरे पर लगाया जाता है और राजाओ के साथ या बरात और अन्य यात्राओ मे झडे के साथ चलता है। २ एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है। ३ किसी दरवाजे या खिडकी के सामने का छोटा सायबान या ओसारी जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय।

आफतावी[२]—वि० १ गोल। २ सूर्यसबधी।

यौ०—आफतावी गुलकद=वह गुलकद जो धूप मे तैयार की जाय।

आफर—सज्ञा पु० [स० आफर] प्रदान करना। प्रस्तुत करना। सामने रखना। उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक दम लगा लेता था।—सन्यासी, पृ० ५१।

आफरी—अव्य० [फा० आफ़रीं] शाबाश! वाह वाह! उ०—कीन्हे तै आफताव खलक आफरी। कलमा बिन पढन कहँ कुफर काफरी।—घट०, पृ० २०९।

आफरीनिश—सज्ञा स्त्री० [फा० आफ़रीनिश] उत्पत्ति। सृष्टि [को०]।

आफियत—सज्ञा स्त्री० [अ० आफ़ियत] कुशल। क्षेम।

आफिस—सज्ञा पु० [अ० ऑफिस] दफ्तर। कार्यालय।

आफू—सज्ञा स्त्री० [हिं० अफीम, तुल० मरा० अफू] अफीम। उ०—मीठी कोऊ वस्तु नहि मीठी जाकी चाह। अमली मिसरी छाँडि कै आफू खानु सराहि।—स० सप्तक, पृ० ३२२।

आफूक—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'आफू' [को०]।

आबंध—सज्ञा पु० [स० आबन्ध] १ बधन। बाँधना। २ गाँठ। ३ प्रेमबधन। प्रेम। ४ हल के जुए का बधन (नाधा)। ५ अलकार की सजावट। अलकरण [को०]।

आबधन—सज्ञा पुं० [स० आबन्धन] दे० 'आबध' [को०]।

आब[१]—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ चमक। तडक भडक। आभा। छटा। द्युति। काति। झलक। पानी। उ०—(क) साधू ऐसा चाहिए ज्यो मोती की आब।—कबीर (शब्द०)। (ख) चहचही चहल चहूँधाँ चारु चदन की चद्रक चुनीन चाँक चौकन चढी है आब।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२५। २ प्रतिष्ठा। महिमा। गुण। उत्कर्ष। उ०—गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाब को। हिना पानड़ी बेल कौन बूझिहै आब को।—व्यास (शब्द०)। ३ शोभा। रौनक। छवि। उ०—वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब। फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई गाँव गुलाब।—बिहारी र०, दो० ४३८।

क्रि० प्र०—उतरना।—जाना।—बिगडना।—बढना।—चढ़ाना।—देना।

आब[२]—सज्ञा पु० १ पानी। जल। २. मदिरा [को०]। ३ किसी वस्तु का अर्क [को०]। ४ प्रस्वेद। पसीना [को०]। ५. अश्रु। आँसू [को०]। ६ मवाद। पीप [को०]। ७ फूल का रस [को०]।

मुहा०—आब आब करना=पानी माँगना। उ०—काबुल गए मुगल हो आए, बोलै बोल पठानी। आब आब करि पूता मर गए धरा सिरहाने पाने।—(शब्द०)।

यौ०—आब व हवा=जलवायु। सरदी गरमी के विचार से देश की प्राकृतिक स्थिति।

आबकार—सज्ञा पुं० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला। कलवार। कलाल।

आबकारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ शराब चुआई जाती हो। भौली। शराबखाना। कनवरिया। भट्टी। २. मादक वस्तुओ से सबध रखनेवाला सरकारी मुहकमा।

यौ०—आबकारी कानून। आबकारी मुहकमा=एक सरकारी विभाग विशेष जिसे अग्रेजी मे 'एक्साइज' विभाग कहते हैं।

आबखुर्द—सज्ञा पु० [फा० आबखुर्द] १ भाग्य। किस्मत। २ भाग। हिस्सा। ३ पेय जल का तालाब [को०]।

आबखोरा—सज्ञा पु० [फा० आबखोरह्] १ पानी पीने का बरतन। गिलास। २. प्याला। कटोरा।

आबगीना—सज्ञा पुं० [फा० आबगीनह] १ शीशे का गिलास। २. आईना। ३ हीरा।

आबगीर—सज्ञा पु० [फा०] जुलाहो की कूँची।। कूँचा।

आबजोश—सज्ञा पु० [फा०] गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का। लाल मुनक्का। दे० 'अगूर'।

आबड—सज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण। घेरा।

आबताब—सज्ञा स्त्री० [फा०] तडक भडक। चमक दमक। द्युति। काति। शोभा।

आबदस्त—सज्ञा पु० [फा०] १ मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को धोना। सौंचना। पानी छूना। २ मलत्याग के अनतर मन धोने का जल। हाथपानी।

क्रि० प्र०—लेना।

आबदाना—सज्ञा पुं० [फा०] १ अन्नपानी। दानापानी। अन्नजल। २ जीविका। जैसे,—आबदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ वहाँ जायँगे।

मुहा०—आबदाना उठाना=जीविका न रहना। रहायश न होना। सयोग टलना। जैसे,—जब यहाँ से हमारा आबदाना उठ जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे।

आबदार[१]—वि० [फा०] चमकीला। कातिमान्। द्युतिमान्। भडकीला।

आबदार[२]—सज्ञा पु० वह आदमी जो तोप मे सुआ और पानी का पुचारा देता है। उ०—केतेक जानदार आबदार लावदार हौ।—सूदन (शब्द०)।

विशेष—पुरानी चाल की तोपो मे जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठढा करने के लिये एक छड मे लपेटे हुए चीथडो को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमे नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय।

आबदारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] चमक। जिला। ओप। काति। उ०—आबदारी से है हर मिसरए तर आबेहयात।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

आबदीदा—वि० [फा० आबदीदह्] अश्रुयुक्त। रोता हुआ [को०]।

आबदोज—सज्ञा पुं० [फा० आबदोज] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज [को०]। पनडुब्बी।

आबद्ध[1]—वि० [स०] १ बँधा हुआ। २ कैद।

आबद्ध[2]—सज्ञा पु० १ अलकार। २ द्यूत। जुआ। ३ दृढ या कठोर बधन [को०]।

आबनजूल—सज्ञा पुं० [फा० आब+अ० नुजूल] फोते मे पानी उतरने का रोग। अडवृद्धि।

आबनूस—सज्ञा पु० [फा०] [वि० आबनूसी] एक पेड जिसे तेंदू कहते हैं और जो जगलो मे होता है।

विशेष—यह पेड जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसकी लकडी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकडी आबनूस के नाम से बिकती है और बहुत वजनी होती है। आबनूस की बहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,—जैसे—छडी, कलमदान, रूल, छोटे बक्स इत्यादि। नगीने मे आबनूस का काम अच्छा होता है।

यौ०—आबनूस का कुदा=अत्यंत काले रग का मनुष्य।

आबनूसी—वि० [फा०] आबनूस सा काला। अत्यत श्याम। गहरा काला। २ आबनूस का। आबनूस का बना हुआ।

आबपाशी—सज्ञा स्त्री० [फा०] सिचाई।

आबरवाँ—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार का बारीक कपडा। बहुत महीन मलमल। २ बहता हुआ पानी।

आबरू—सज्ञा स्त्री० [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। बडप्पन। मान।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—खोना।—गँवाना।—जाना।—देना।—पर पानी फिरना।—बिगडना।—मे बट्टा लगना।—रखना।—रहना।—लेना।—होना।

दे० 'इज्जत'।

आबरूह(पु)†—सज्ञा स्त्री० [फा० आबरू+हिं० ह (प्रत्य०)] दे० 'आबरू'। उ०—हमरे सबद बिवेक लगहिं चूतर मे सोटा। आबरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं झोटा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८६।

आबला—सज्ञा पुं० [फा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०—पडना।

आबलोच(पु)—सज्ञा पुं० [फा० आब+हिं० लोच] सुंदरता का रस। उ०—हम गुलाब मे आबलोच घोल्या है।—दक्खिनी०, पृ० ४०५।

आबल्य—सज्ञा पुं० [स०] अबलता। निर्बलता। बलहीनता [को०]।

आबशिनास—सज्ञा पुं० [फा० आबशनास] जहाज का वह कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जाँचकर राह बतलाना होता है।

आबहवा—सज्ञा स्त्री० [फा०] सरदी गरमी आदि के विचार से किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जलवायु।

आबाद—वि० [फा०] १ बसा हुआ। २ प्रसन्न। कुशलपूर्वक। जैसे,—आबाद रहो बाबा आबाद रहो। ३ उपजाऊ। जोतने बोने योग्य (जमीन)। जैसे,—ऊसर जमीन को आबाद करने मे बहुत खर्च पड़ता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

यौ०—आबादकार।

आबादकार—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार के काश्तकार जो जगल काटकर आबाद हुए हैं। २ एक प्रकार के जमीदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं से वसूल की जाती है, नवरदार के द्वारा नही।

आबादानी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अबादानी'।

आबादी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ बस्ती। २ जनसख्या। मनुष्यसुमारी। ३ वह भूमि जिसपर खेती होती हो।

आबाधा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. पीडा। मानसिक पीडा। चिंता [को०]।

आबाल[1]—अव्य० [स०] बालको से लेकर। लडको से लेकर। जैसे, आबालवृद्ध।

आबाल(पु)[2]—सज्ञा स्त्री० युवती। नायिका। उ०—लगन दसा आबाल तन उजियारी किमि होति। बिना नेह नहिं बढत है तिय-तन दीपनि जोति।—स० सप्तक, पृ० ३४६।

आबिल—वि० [स०] १ पकिल। गदा। २ तोडनेवाला। भग करनेवाला। ३ साफ करनेवाला [को०]।

आबी[1]—वि० [फा०] १ पानीसबधी। पानी का। २ पानी मे रहनेवाला। ३ रग मे हलका। फीका। उ०—दृग बने गुलाबी मद भरे लखि अरिमुख आबी करत।—गोपाल (शब्द०)। ४ पानी के रग का। हल्का नीला या आसमानी। ५ जलतटनिवासी।

आबी[2]—सज्ञा पुं० १. खारी नमक जो सूर्य के ताप से पानी उडाकर बनता है। लवण। साँभर नमक। २ जल के किनारे रहनेवाली एक चिडिया जिसकी चोच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफेद होते हैं। ३ एक प्रकार का अगूर।

आबी[3]—सज्ञा स्त्री० वह भूमि जिसमे किसी प्रकार की आबपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

यौ०—आबी रोटी=रोटी जिसका आटा केवल पानी से सना हो। आबी शोरा।

मुहा०—आबी करना=दूध, पानी और लाजवर्द मे बने हुए रग से किसी कपडे के थान को तर करके उसपर चमक लाना।

आबू—सज्ञा पुं० [सं० अर्बुद] अरावली पर्वत पर का एक स्थान।

आबेरवाँ—सज्ञा पु० [फा०] बहता हुआ पानी या आँसू। उ०—देख तव सरवर मजलूम बेकस। वहा अँखियाँ सेती आबेरवाँ को असबस।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

आवेस⑤—संज्ञा पु० [सं० आवेश] दे० 'आवेश'। उ०—आसा के आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ।—घनानद, पृ० ५२२।

आवेहयात—सज्ञा पुं० [फा० आब+अ० हयात] जीवनजल। अमृत। सुधा। उ०—आवेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या। मानिद खिजर जग मे अकेला जिया तो क्या।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१।

आब्द - वि० [सं०] बादल से उत्पन्न या सबद्ध [को०]।

आब्दिक—वि० [स०] वार्षिक। सालाना। सावत्सरिक।

आव्रत⑤—सज्ञा पु० [स० आवर्त] दे० 'आवर्त'। उ०—बिसरै सुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आव्रत मन घिरै।—घनानद पृ० २६१।

आभ[1]⑤—सज्ञा स्त्री० [स० आभा] शोभा। कांति। आभा। द्युति।

आभ[2]⑤—सज्ञा पुं० [फा० आब वा स० अम्भ प्र० अम्भ] पानी। जल। उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणिया तिनकूं तैसा लाभ। ओसों प्यास न भाजई जब लग धसै न आभ।—कबीर ग्र० पृ० ६।

आभ[3]—सज्ञा पु० [स० अभ्र] आकाश। (डिं०)।

आभय—सज्ञा पु० [सं०] १ काला अगर। २ कुट नाम की ओषधि।

आभरण—सज्ञा पु० [स०] गहना। भूषण। आभूषण। जेवर। अलकार।

विशेष—इनकी गणना १२ है—(१) नूपुर। (२) किंकिणी। (३) चूडी। (४) अँगूठी। (५) कंकण। (६) विजायठ।(७) हार। (८) कठश्री। (९) बेसर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीस फूल। आभरण के चार भेद हैं—(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायँ, जैसे,—कर्णफूल, बाली इत्यादि। (२) बधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायँ, जैसे—बाजूबद, पहुँची, सीसफूल, पुष्पादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमे अग डालकर पहनें, जैसे—कडा, छडा, चूडी, मुँदरी इत्यादि। (४) आरोप्य अर्थात् जो किसी अग मे लटकाकर पहने जायँ, जैसे—हार, कठश्री, चपाकली, सिकरी आदि। २ पोषण। परवरिश।

आभरन⑤—सज्ञा पुं० [सं० आभारण] दे० 'आभरण'। उ०—जटित जवाहिर आभरन छवि के उठत तरग।—स० सप्तक, पृ० ३७३।

आभरित—वि०[स०]१ सजाया हुआ आभूषित। अलकृत। २ पोषित।

आभा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ चमक। दमक। कांति। उ०—थी अग सुरभि के सग तरगित आभा।—साकेत, पृ० २०४। २ दीप्ति। द्युति। प्रभा। उ०—उस धुँधले गृह मे आभा से तामस को छलती थी। कामायनी, पृ० ११८।३ झलक। प्रतिबिंब। छाया। ४ बबूल का पेड।

आभाणक—सज्ञा पुं०[स०]१ एक प्रकार के नास्तिक। २ कहावत। मसल। अहाना।

आभात—वि०[सं०]१ चमकता हुआ। २ कातिपूर्ण। ३ दृश्य [को०]।

आभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ बोझ। २ गृहस्थी का बोझ। गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी। उ०—चलत देत आसीस मुनि, उही परोसिहि नाह। लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुनु माँह।—बिहारी र०, दो० ५५१। ३ एक वर्णवृत्त जो आठ तगण का होता है, जैसे,—बोल्यौ तबै शिष्य आभार तेरो गुरु जी न भूलो जपौं आठहूँ जाम। हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम। (शब्द०)। ४. एहसान। उपकार। निहोर।

आभारी—वि० [स० आभारिन्] एहसान माननेवाला। उपकार माननेवाला। उपकृत। उ०—कितना आभारी हूँ, इतना सवेदनमय हृदय हुआ।—कामायिनी, पृ० २२६।

आभाष—सज्ञा पुं० [सं०]१ संबोधित करना। २ परिचय। भूमिका। ३ भाषण। कथन [को०]।

आभाषण—सज्ञा पु० [स०] सभाषण। बातचीत करना। २. सबोधन [को०]।

आभास—सज्ञा पु० [स०] १ प्रतिबिंब। छाया। झलक। जैसे,—हिंदू समाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है। २ पता। सकेत। जैसे,—उनकी बातो मे कुछ आभास मिलेगा कि वे किसको चाहते हैं।

क्रि० प्र० देना।—पाना।—मिलना।

३ मिथ्या ज्ञान। जैसे,—सर्प मे रस्सी का आभास।

यौ०—प्रमाणाभास। विरोधाभास। रसाभास। हेत्वाभास।

आभासन—सज्ञा पुं० [स०] स्पष्ट करना। आभासित करना। प्रकाशित करना [को०]।

आभास्वर—वि० [स०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला। चमकीला। तेजोमय। उ०—हम आभास्वर देवताओ की तरह प्रीति का भोजन करते हैं। भस्मावृत० पृ० १०५।

आभिचारिक[1]—वि० [स०] १ अभिचार सबधी। होना या जादू सबधी [को०]।

आभिचारिक[2]—सज्ञा पु० अभिचार सबधी मत्र [को०]।

आभिजन—सज्ञा पु० [स०] कुलीनता [को०]।

आभिजात्य—सज्ञा पु० [स०] १ उच्च कुल मे पैदा होने का भाव। कुलीनता। २ श्रेणी। ३ विद्वत्ता। ४ सौंदर्य [को०]।

आभिजित—वि० [स०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र मे पैदा होनेवाला [को०]।

आभिधा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ध्वनि। शब्द। २ नाम। ३ व्याख्या। उल्लेख [को०]।

आभिधानिक[1]—वि० [स०] कोश सबधी या कोश मे प्रयुक्त होनेवाला [को०]।

आभिधानिक[2]—सज्ञा पु० कोशकार [को०]।

आभिप्रायिक—वि० [स०] अभिप्राय सबधी। ऐच्छिक [को०]।

आभिमुख्य—सज्ञा पु० [सं०] १ आमने सामने होने की अवस्था या भाव। २ अनुकूल होना [को०]।

आभिरामिक—वि० [स०] सुदर। अच्छा [को०]।

आभिरूपक, आभिरूप्य—सज्ञा पु० [सं०] सुदरता। सौंदर्य [को०]।

आभिषेचनिक—वि० [स०] अभिषेचन सबधी। राजतिलक सबधी [को०]।

आभिहारिक[1]—वि० [सं०] १ उपहार मे दिया हुआ। २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [को०]।

आभिहारिक[2]—सज्ञा पुं० १ उपहार। भेंट। २. कमरा [को०]।

आभीर—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० आभीरी] १ अहीर। ग्वाल। गोप। उ०—आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।—मानस, ७।१३०।

विशेष—ऐतिहासिको के अनुसार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध जाति जो कुछ लोगो के मत से बाहर से आई थी। इस जातिवालो का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। कहा जाता है कि उनकी सस्कृति का प्रभाव भी भारतीय सस्कृति पर पडा। वे आगे चलकर आर्यों मे घुलमिल गए। इनके नाम पर आभीरी नाम की एक अपभ्रश (प्राकृत) भाषा भी थी।

यौ०—आभीरपल्ली = अहीरो का गाँव। ग्वालो की बस्ती। २ एक देश का नाम। ३ एक छद जिसमे ११ मात्राएँ होती हैं और अत मे जगण होता है। जैसे,—यहि विधि श्री रघुनाथ। गहे भरत के हाथ। पूजत लोग अपार। गए राज दरबार। ४ एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आभीरक[1]—वि० [स०] आभीर या अहीर सबधी [को०]।

आभीरक[2]—सज्ञा पुं० १ आभीर या अहीर जाति। २ आभीर या अहीर जाति का कोई सदस्य [को०]।

आभीरनट—सज्ञा पु० [स०] एक सकर राग जो नट और आभीर से मिलकर बनता है।

आभीरी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक सकर रागिनी जो देशकार, कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है। अहीरी। २ भारतवर्ष की एकप्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी मे पजाब मे बोली जाती थी। आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी मे यह भाषा अपभ्रश के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उस समय इस भाषा मे साहित्य का भी निर्माण होने लगा था।

आभील—सज्ञा पु० [स०] दुख। कष्ट।

आभूत—वि० [स०] उत्पन्न। अस्तित्ववाला [को०]।

आभूषण—सज्ञा पु० [स०] [वि० आभूषित] गहना। जेवर। आभरण। अलकार। उ०—उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ अस्त्र नए।—कामायनी, पृ० १८१।

आभूषन—सज्ञा पुं० [स० आभूषण] दे० 'आभूषण'।

आभृत—वि० [सज्ञा] १ अच्छी तरह से भरा हुआ। २ बँधा हुआ। ३ उत्पादित [को०]।

आभेरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी [को०]।

आभोग—सज्ञा [स०] १ रूप की पूर्णता। रूप मे कोई कसर न रहना। किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातो की विद्यमानता। जैसे—यहाँ आभोग से बस्ती का पास होना जाना जाता है। २ किसी पद्य के बीच मे कवि के नाम का उल्लेख। ३ वरुण का छत्र। ४. सुख आदि का पूरा अनुभव।

आभोजी—वि० [सं० आभोजिन्] खानेवाला [को०]।

आभ्यतर—वि० [स० आभ्यतर] भीतरी। अतर का। उ०—काव्य का आभ्यतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है।—रस०, पृ० १०५।

यौ०—आभ्यतर तप = भीतरी तपस्या। यह तपस्या छह प्रकार की होती है—(१) प्रायश्चित्त, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय, (४) विनय, (५) व्युत्सर्ग और (६) शुभ ध्यान।

आभ्यंतरपातिथ्य—सज्ञा पुं० [स० आभ्यन्तर प्रातिथ्य] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल।

आभ्यतरकोप—सज्ञा पु० [स० आभ्यन्तरकोप] मत्री, पुरोहित, सेनापति युवराज आदि का विद्रोह (को०)।

आभ्यतरिक—वि० [स० आभ्यन्तरिक] अतरग। भीतरी।

आभ्युदयिक[1]—वि० [स०] अभ्युदय सबधी। मगल या कल्याण सबधी।

आभ्युदयिक[2]—सज्ञा पुं० [स०] एक श्राद्ध जिसे नादीमुख भी कहते हैं।

विशेष—इस श्राद्ध मे दही, बेर और चावल को मिलाकर पिंड देते हैं और इसमे माता, दादी और परदादी को पहले तीन पिंड देकर तब बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमातामह आदि को पिंड देते हैं। इनके अतिरिक्त तीनो पक्षो के तीस विश्वेदेवा होते हैं। उन्हे भी पिंड दिया जाता है। यह श्राद्ध पुत्रजन्म, जनेऊ और विवाह आदि शुभ अवसरो पर होता है। इसमे यजमानकरनेवाले को अपमव्य नही होना पडता।

आमजु—वि० [स० आमञ्जु] अच्छा। मनोरम [को०]।

आमत्रण—सज्ञा पु० [स० आमन्त्रण] [आमत्रित] १ सबोधन। बुलाना। पुकारना। आह्वान। २ निमत्रण। न्योता। बुलावा। उ०—खुले मसृण भुजमूलो से वह आमत्रण था मिलता।—कामायनी, पृ० १२५।

आमत्रयिता—सज्ञा पु० [स० आमन्त्रयितृ] वह जो निमत्रण देता है [को०]।

आमत्रित—वि० [स० आमन्त्रित] १ बुलाया हुआ। पुकारा हुआ। २. निमत्रित। न्योता हुआ। उ०—विस्तृत वसुधा की विभुता कल्याणसघ की जन्मभूमि आमत्रित करती आई थी।—लहर, पृ० ३३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आमद्र[1]—वि० [स० आनन्द्र] थोडा गभीर स्वरवाला [को०]।

आमद्र—सज्ञा पु० थोडा गभीर स्वर [को०]।

आम्—अव्य० [स०] अगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द। हाँ। इसका प्रयोग नाटको की बोलचाल मे अधिक है।

आम[1]—सज्ञा पुं० [सं० आम्र] एक बडा पेड और उसका फल। रसाल।

विशेष—यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रात को छोड और सारे भारत वर्ष मे होता है। हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके जगली पेड मिलते हैं। इसकी पत्तियाँ लबी लबी गहरे हरे रग की होती हैं। फागुन के महीने मे इसके पेड मजरियो या मौरो से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गध मे दिशाएँ भर जाती हैं। चैत के आरभ मे मौर झडने लग जाते हैं और 'सरसई' (सरसो के बराबर फल) बँधने लगते हैं। जब कच्चे फल बेर के बराबर हो जाते हैं, तब वे 'टिकोरे' कहलाते है। जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और उनमे जाली पडने लगती है, तब उन्हे 'अँबियाँ' कहते हैं। फल के भीतर एक बहुत कडी गुठली होती है जिसके ऊपर कुछ रेशेदार गूदा चढा रहता है। कच्चे फल का गूदा सफेद और कडा होता है और पक्के फल का पीला और पीला। किसी किसी मे तो बिलकुल पतला रस निकलता है। अच्छी

जाति के कलमी आमो की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बँधा हुआ, गाढा तथा बिना रेशे का होता है। आम का फल खाने मे बहुत मीठा होता है। पक्के आम आषाढ से भादो तक बहुतायत मे मिलते हैं।

केवल बीज से जो आम पैदा किए जाते हैं उन्हे 'बीजू' कहते हैं। ये उतने अच्छे नही होते। इसी से अच्छे आम कलम और पैवंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैवद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले मे बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी अच्छे पेड के पास ले जाते है और उसकी डाल उस अच्छे पेड की डाल से बाँध देते हैं। जब दोनो की डाल बिलकुल एक होकर मिल जाती है, तब गमले के पौधे को अलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया से गमलेवाले पौधे मे उस अच्छे पौधे के गुण आ जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि अच्छे आम की डाल को काटकर किसी बीजू पौधे के ठूँठे मे ले जाकर मिट्टी के साथ बाँध देते हैं। आम के लिये इट्टी की खाद बहुत उपकारी होती है।

आम के बहुत भेद हैं, जैसे, मालदह, बवइया, दशहरी मलदा, चौसा, अलफान्सो लँगडा, सफेदा, क्षीरभोग, रामकेला इत्यादि। भारतवर्ष मे दो स्थान आमो के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं--मालदह (बगाल मे) और मझगाँव (बबई मे)। मालदह आम देखने मे बहुत बडा होता है, पर स्वाद मे फीका होता है। बवइया आम मालदह से छोटा होता है, पर खाने मे बहुत मीठा होता है। लँगडा आम देखने मे लबा तथा होता है और सबसे मीठा होता है। बनारस का लँगडा प्रसिद्ध है। लखनऊ का सफेदा भी मिठास मे अपने ढग का एक है। इसका छिलका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी और अच्छे आम हैं, वे सब छुरी से काटकर खाए जाते है।

आम के रस को रोटी की तरह जमाकर अवँसठ या अमावट बनाते हैं। कच्चे आम का पन्ना लू लगने की अच्छी दवा है। कच्चे आमो की चटनी बनती है तथा अचार और मुरब्बा भी पडता है। आम की फाँकों को खटाई के लिये सुखाकर रखते है जो अमहर के नाम से बिकती है। इसी अमहर के चूर को अमचूर कहते हैं।

आम की लकडी के तख्ते, किवाड़, चौखट आदि भी बनते हैं, पर उतने मजबूत नही होते। इसकी छाल और पत्तियो से एक प्रकार का पीला रग निकलता है। चौपायो को आम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को इकट्ठा करके प्योरी रग बनाते हैं।

पर्या०—चूत। रसाल। अतिसौरभ। सहकार। माकंद।

यौ०—अमचूर। अमहर।

मुहा०—आम के आम, गुठली के दाम=दोहरा लाभ उठाना। आम खाने से काम या पेड गिनने से=इस वस्तु से अपना काम निकालो इसके विषय मे निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। बारी मे बारह आम सट्टी मे अट्ठारह आम=जहाँ चीज महँगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ साधारणत वह चीज सस्ती बिकती है। (यह ऐसे अवसर पर कहा जाता है जब कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नही मिल सकती।)

आम[2]–वि०[सं०] कच्चा। अपक्व। असिद्ध। उ०–बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।–तुलसी ग्र०, पृ० ५४५।

आम[3]–सज्ञा पुं० [स०] १ खाए हुए अन्न का कच्चा, न पचा हुआ मल जो सफेद और लसीला होता है।

यौ०—आमातिसार।

२ वह रोग जिसमे आँव गिरती है।

यौ०—आमज्वर। आमवात।

आम[4]–वि० [अ०] १ साधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,—आम आदमियो को वहाँ जाने की आदत नही है। उ०—आम लोग उनकी सोहबत को अच्छा न समझते थे।—प्रताप० ग्र०, पृ० २७५।

यौ०—आमखास=महलो के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या बादशाह बैठते हैं। दरबार आम=वह राजसभा जिसमे सब लोग जा सकें। आमफहम=जो सर्वसाधारण की समझ मे आवे। उ०–इबारत वही अच्छी कही जायगी जो आमफहम और खासपसद हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०९।

२ प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,–यह बात अब आम हो गई है, छिपाने से नही छिपती।

विशेष–इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नही।

आमगधि—सज्ञा स्त्री०[सं० आमगन्धि] बिसायँध गध, जैसे,—चिता के धूँए या कच्चे माम या मछली की।

आमग(पु)—सज्ञा पु० [स० अमार्ग] कुमार्ग। कुराह। उ०–वह पडित औ चतुर परेवा। आमग न चलै जानि पति सेवा।—चित्रा०, पृ० १९२।

आमगर्भ–सज्ञा पु० [सं०] भ्रूण [को०]।

आमचुर—सज्ञा पुं० [स० आम्रचूर्ण, हिं० अमचूर, आमचुर] दे० 'अमचुर'। उ०—खडै कीन्ह आमचुर परा। लौग लायची सौं खँडवरा।—जायसी ग्र०, पृ० २४७।

आमज्वर–सज्ञा पुं० [सं०] १ वह ज्वर जो आँव के कारण हो। २ वह ज्वर जिसमे आँव गिरे।

आमडा—सज्ञा पुं० [सं० आम्रात] एक बडा पेड जिसके फल आम की तरह खट्टे और बडे बेर के बराबर होते हैं, फलो का आचार पडता है। इसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियो से मिलती जुलती होती हैं।

आमणदूमण—वि० [सं० उन्मन+दुर्मन, प्रा० उम्मण दुमन, राज० आमण दूमणो] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०–साहिब हँमउ न बोलिया, मुझसूँ रीस ज आज। अतरि आमण दूमणा, किसउज इवडउ काज—ढोला०, दू० २१८।

आमद—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ अवाई। आगमन। आना।

यौ०—आमदरफ्त=आना जाना। आवागमन।

मुहा०—आमद आमद होना = (१) आने के समय अत्यत निकट होना। (२) आने की खबर फैलना या धूम होना।

२ आय। आमदनी। उ०—इन्ने थोडी आमद मे अपने घर का प्रबध बहुत अच्छा बाँध रक्खा है। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४।

आमदनी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ आय। प्राप्ति। आनेवाला धन। उ०—इन्की आमदनी मामूली नही है, तथापि जितनी आमदनी आती है उस्से खर्च कम किया जाता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४। २ व्यापार की वस्तु जो और देशो से अपने देश मे आवे। रफ्तनी का उलटा।

आमन—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे साल भर मे केवल एक ही फसल उत्पन्न हो। २ बगाल के धान की जाडे की फसल।

आमनघूमनाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'आमण दूमण'। उ०—यहु मन आमनघूमना, मेरौ तन छीजत नित जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १६०।

आमनस्य—सज्ञा पु० [सं०] अनमनापन। दुख। रज।

आमनाⓊ—क्रि० अ० [हिं० आवना] दे० 'आना'।

आमनाय—सज्ञा पुं० [पु० आम्नाय] दे० 'आम्नाय'।

आमनासामना—सज्ञा पु० [आमना = सामना का अनु० + हिं० सामना] मुकाबला। भेंट। जैसे,—इस तरह झगडा न मिटेगा। तुम्हारा उनका आमना सामना हो जाय।

आमनी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे जाडे का धान बोया जाता है। २ जाडे मे बोए जानेवाले धान की खेती।

आमनेसामने—क्रि० वि० [आमने = सामने का अनु० + हिं० सामने] एक दूसरे के समक्ष। एक दूसरे के मुकाबिले। इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो। इस प्रकार जिसमे एक वस्तु के अग्रभाग से खीची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे। जैसे,—सभा के बीच वे दोनो प्रतिद्वदी आमने सामने बैठे। (ख) वे दोनो मकान आमने सामने हैं, सिर्फ एक सडक बीच मे पडती है।

आमय—सज्ञा पुं० [सं०] रोग। व्याधि। बीमारी। आरजा।

आमयावी—वि० [सं० आमयाविन्] १ रोगी। २ मदाग्नि रोग से पीडित [को०]।

आमरक्तातिसार—सज्ञा पुं० [स०] आँव और लहू के साथ दस्त होने का रोग।

आमरखⓊ—सज्ञा पुं० [स० आमर्ष] दे० 'आमर्ष'।

आमरखनाⓊ—क्रि० अ० [स० आमर्ष = क्रोध, हिं० आमरख + ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। दुखपूर्वक क्रोध करना। उ०—(क) सुनि आमरखि उठे अवनीपति लगे वचन जनु तीर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तब विदेह पन बदिन प्रगट सुनायो। उठे भूप आमरखि सगुन नहिं पायो।—तुलसी (शब्द०)।

आमरण—क्रि० वि० [स०] मरणकाल तक। जीवन की अवधि तक। मृत्यु पर्यंत।

आमरस—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरस'।

आमर्दकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। आमला। आँवला। २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम।

आमर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आमर्दित] १. जोर से मलना। २ खूब पीसना या रगडना।

आमर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। उ०—आमर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे।—साम० पृ० ५७। २. असहनशीलता। ३ रस मे एक सचारी भाव। दूसरे का अहकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा।

आमलक—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अल्पा० आमलकी] आमला। आँवला। धात्रीफल। उ०—जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।—मानस, १।३०।

आमलकी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ छोटी जाति का आँवला। आँवली। २ फागुन सुदी एकादशी।

आमला†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आँवला'।

आमलेट—सज्ञा पु० [अ०] अडे का बना नमकीन पदार्थ। उ०—चाय आमलेट उडाने मे ही कितने रुपए खर्च कर देते हैं।—सन्यासी, पृ० १७४।

आमवात—सज्ञा पु० [स०] एक रोग जिसमे आँव गिरती है और जोडों मे पीडा तथा हाथ पैर मे सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड जाता है। यह रोग मदाग्निवाले को अजीर्ण मे भोजन करने से होता है।

आमशूल—सज्ञा पु० [सं०] आँव मुडेरे का रोग। आँव के कारण पेट मे मरोड होने का रोग।

आमश्राद्ध—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमे पिंडदान के बदले मे ब्राह्मणो को कच्चा अन्न दिया जाता है।

आमाँ—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवाँ'।

आमाजीर्ण—सज्ञा पुं० [स०] आँव का अजीर्ण। कच्चा अनपच। तुरुमा। इस रोग मे खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यो गिरता है।

आमातिसार—सज्ञा पुं० [स०] आँव के कारण अधिक दस्तों का होना। आँव मुरेडे के दस्त।

आमात्य—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमात्य'।

आमादगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तैयारी। मुस्तैदी। मौजूदगी। तत्परता।

आमादा—वि० [फा० आमादह्] उद्यत। तत्पर। उतारू। तैयार। सनद्ध। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश। —ठडा०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आमानाह—सज्ञा पु० [स०] आँव के कारण पेट का फूलना। आँव का अफरा।

आमान्न—सज्ञा पुं० [स०] कच्चा अन्न। बिना पका अनाज। कोरा अन्न। सूखा अनाज।

आमाल—सज्ञा पु० [अ०] कर्म। करनी। करतूत।

यौ०—आमालनामा।

आमालक—सज्ञा पुं० [स० आ + माल या देश०] पहाड के पास की भूमि।

आमालनामा—सज्ञा पुं० [अ० आमाल + फा० नामा] वह रजिस्टर जिसमे नौकरो की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है।

आमावास्य—वि० [स०] अमावस्या से सबधित [को०]।

आमाशय—सज्ञा पुं० [स०] पेट के भीतर की वह थैली जिसमे भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं।

विशेष—सुश्रुत मे इसका स्थान नाभि और छाती के बीच मे लिखा है, पर वास्तव मे इस थैली का चौडा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ओर होता है और क्रमश पतला होता हुआ दाहिनी ओर को घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है। यह थैली झिल्ली और मास की होती है। इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे बारीक गड्ढे $\frac{1}{100}$ इच से $\frac{2}{300}$ इच तक के व्यास के होते हैं, जिनमे पाचन रस भरा रहता है। इस थैली म पहुँच कर भोजन बराबर इधर उधर लुढका करता है जिससे उसके हर एक अश मे पाचन रस लगता है। इसी पाचन रस और पित्त आदि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपातर होता है, जैसे पित्त मे मिलकर दूध पेट मे जाते ही दही की तरह जम जाता है।

आमाहल्दी—सज्ञा स्त्री० [स० आमहरिद्रा] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड रग मे हल्दी की तरह और गध मे कचूर की तरह होती है। यह बंगाल के जगलो मे बहुत जगह आपसे आप होती है। यह चोट पर बहुत फायदा करती है।

आमिक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] फटा हुआ दूध। छेना। पनीर।

आमिख—सज्ञा पु० [स० आमिष] दे० 'आमिष'।

आमिन—सज्ञा स्त्री० [हिं० आम] अवध मे आम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं।

आमिर—सज्ञा पुं० [अ०] हाकिम। अधिकारी। उ०—नव नागरितन मुलुकु लहि जोवन आमिर जोर। घटि बढि तै बढि घटि रकम करी और की और।—बिहारी र०, दो० २२०।

आमिल[1]—सज्ञा पु० [अ०] १. काम करनेवाला। अनुष्ठान करने वाला। २. कर्तव्यपरायण। ३. अमला। कर्मचारी। ४. हाकिम। अधिकारी। उ०—लिये सकल सुख छीन, विरहा आमिल आइके।—नट०, पृ० १०१। ५. ओझा। सयाना। ६. पहुँचा हुआ फकीर। सिद्ध।

आमिल[2]—वि० [स० अम्ल] खट्टा। अम्ल। उ०—अहै सो कहुआ अहै सो मीठा। अहै सो आमिल अहै सो सीठा।—जायसी (शब्द०)।

आमिश्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] वह भूमि या राज्य जिसमे राजभक्त और राजद्रोही समान रूप से हों।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही आमिश्रा भूमि पर शासन किया जाय।

आमिष—सज्ञा पुं० [स०] १ मास। गोश्त। उ०—उनकी आमिष-भोगी रसना आँखो से कुछ कहती।—कामायनी, पृ० १११।

यौ०—आमिषप्रिय। आमिषाशी। आमिषाहारी। निरामिष।

२ भोग्य वस्तु। ३ लोभ। लालच। ४ वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो। ५ जैत्रीरी नीबू।

आमिषप्रिय[1]—वि० [स०] जिसे मास प्यारा हो।

आमिषप्रिय[2]—सज्ञा पुं० गिद्ध, चील और बाज आदि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं।

आमिषभोगी—वि० [स० आमिष+भोगी] मासभक्षी। उ०—केतें न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग आमिषभोगी भुलाने।—भिखारी ग्र०, भा० (?) पृ० ८०।

आमिषाशी—वि० [स० आमिषाशिन्] [वि० स्त्री० आमिषाशिनी] मांस भक्षक। मास खानेवाला।

आमिषी—सज्ञा स्त्री० [सं०] जटामांसी। बालछड।

आमी—अव्य० [इब०] एवमस्तु। ऐसा ही हो।

मुहा०—आमीं आमीं करनेवाले = हां मे हां मिलानेवाले। खुशामदी।

आमी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आम] १ छोटा आम। अँबिया। उ०—आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी। सूर इते पर अनखनि मरियत ऊधो पीवत मामी।—सूर०, १०।४२४७। २ एक पेड जो कद मे बहुत छोटा होता है। तुगा। भान।

विशेष—हर साल शिशिर ऋतु मे इसके पत्ते झड जाते हैं। इसके हीर की लकडी स्याही लिए हुए पीली तथा बडी मजबूत और कडी होती है। इससे सजावट की अनेक चीजें बनाई जाती हैं। हिमालय के पहाडी लोग इसकी पतली टहनियो की टोकरियाँ बनाते हैं। शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाडो मे यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है।

आमी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० आम = कच्चा] जौ और गेहूँ की भुनी हुई बाल।

यौ०—आमी होरा।

आमीलन—सज्ञा पु० [स०] १ आँखें बद करना। २ बंद करना [को०]।

आमुक्त—वि० [स०] १ मुक्त किया हुआ। छुटकारा पाया हुआ। २ फेंका हुआ या त्यागा हुआ। ३ स्वीकार किया हुआ। अपनाया हुआ [को०]।

आमुख—सज्ञा पुं० [स०] नाटक का एक अग। प्रस्तावना।

आमुखता—सज्ञा पुं० [फा० आमोख्तह्] दे० 'आमोखता'। उ०—(क) कुछ दिन कही जाकर आमुखता सुनाइए, तब कही आकर बातें बनाइए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९९। (ख) कोउ आमुखता पढत जोर सों सोर मचावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

आमुचे—सर्व० [मरा० आमूचा=हमारा] हमारे। उ०—तुम्ही आमुचे देव, तुम्ही आमुचे ध्यान।—दादू० बा०, पृ० १७४।

आमुष्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आमुष्मिकी] पारलौकिक। परलोक सबधी।

आमूल—क्रि० वि० [स०] आरभ से अत तक। आद्यंत। उ०—देखा विवाह आमूल नवल। तुझ पर शुभ पडा कलश का जल।—अनामिका, पृ० ३२।

आमेज—वि० [फा० आमेज] मिला हुआ। मिश्रित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है, जैसे,—दर्दआमेज। पनियामेज (दही वा अफीम)।

आमेजना—क्रि० स० [फा० आमेज+हिं० ना (प्रत्य०)] मिलाना। सानना। उ०—भीजी अरगजे मे भई ना मरगजे सजी आमेजे सुगध सेजै तजी शुभ्र शीत रे।—देव (शब्द०)।

आमेजिश--सज्ञा स्त्री० [फा० आमेजिश] मिलावट। मिश्रण। मेल

आमेर--सज्ञा पु० [स० अम्बर] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी।

आमोख्ता--सज्ञा पु० [फा० आमोख्तह] पढे हुए को अभ्यास के लिये फिर पढना। उद्धरणी।

क्रि० प्र०--करना।--पढना।--फेरना। सुनाना।

आमोचन--सज्ञा पुं० [स०] वधनहीन करना। मुक्त करना [को०]।

आमोद--सज्ञा पुं० [स०][वि० आमोदित, आमोदी] १ आनद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता। उ०--हौं झूमता है चित्त के आमोद के आवेग मे।--कानन०, पृ० ५३। २ दिलबहलाव। तफरीह। ३. दूर से आनेवाली महक। सुगध। उ०--कमल तजि तन रुचत नाही आक कौं आमोद।--सूर०, १०।४५३५। ४ शतावर।

यौ०--आमोदप्रमोद। आमोदयात्रा = मन बहलाने की दृष्टि से यात्रा।

आमोदन--सज्ञा पुं० [सं०] १ सुगधित करना। वासना। २ दे० 'आमोद' [को०]।

आमोदप्रमोद--सज्ञा पुं० [सं०] भोगविलास। सुख चैन। हँसी खुशी।

आमोदित--वि० [स०] १ प्रसन्न। खुश। हर्षित। २ दिल लगा हुआ। जी बहला हुआ। ३ सुगंधित। उ०--और चदन कर्पूरादि की सुगध से घ्राणेंद्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो जाता है।--प्रताप ग्र०, पृ० ५१५।

आमोदी--वि० [स० आमोदिन्] प्रसन्न रहनेवाला। खुश रहनेवाला।

आमोष--सज्ञा पुं० [स०] [वि० आमोषी] चुराना। अपहरण। छीनना [को०]।

आमोषी --सज्ञा पुं० [सं० आमोषिन्] तस्कर। चोर [को०]।

आम्नात[1]--वि० [स०] विचारा हुआ। कहा हुआ। २ दुहराया हुआ। पढा हुआ। ३ याद किया हुआ। स्मरण किया हुआ। ४ प्रयोक्त। शास्त्रोक्त। ५ पवित्र ग्रथादि के रूप मे परपरागत [को०]।

आम्नात[2]--सज्ञा पुं० [स०] अध्ययन [को०]।

आम्नाय--सज्ञा पुं० [स०] १ अभ्यास।

यौ०--अक्षराम्नाय = वर्णमाला। कुलाम्नाय = कुलपरपरा। कुल की रीति।

२ वेद आदि का पाठ और अभ्यास। ३. वेद।

आम्म--सज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जतु।

आम्र--सज्ञा पुं० [स०] १ आम का पेड। २ आम का फल।

यौ०--आम्रवन = आम का वन।

आम्रकूट--सज्ञा पुं० [स०] एक पर्वत जिसे अमरकटक कहते हैं।

आम्रगधक--सज्ञा पुं० [स० आम्रगन्धक] एक पौधा। समष्ठिल [को०]।

आम्रात्, आम्रातक--सज्ञा पुं० [स०] आमडे का पेड और फल।

आम्ल[1]--वि० [स०] अम्लसबधी [को०]।

आम्ल[2]--सज्ञा पुं० [सं० स्त्री० आम्ला] १ खट्टापन। २ इमली [को०]।

आम्लवेतस--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लवेतस'।

आम्लिका--सज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

आयँतीपायँती--सज्ञा स्त्री० [फा० पायताना अथवा स० आदित + पादत] सिरहाना पायताना। उ०--आयँती की छडियाँ पायँती और पायँती की आयँती।--(शब्द०)।

आयद--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइदा'। उ०--इनके दिन पर पूरा असर न हुआ तो, आयद बडी खराबी की सूरत पैदा होगी।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३१।

आयंदा--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइदा'।

आय[1]--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आमदनी। आमद। लाभ। प्राप्ति। धनागम।

यौ०--आयव्यय।

२ जन्मकुडली मे ११ वाँ स्थान। ३ आगमन। आना (को०) ४ अत पुररक्षक (को०)।

आय[2] (पु)--सज्ञा स्त्री० [स० आयु] दे० 'आयु'। उ०--धन्य ते जे मीन से अवधि अबु आय है।--तुलसी ग्र०, पृ० ३३७।

आय[3]--क्रि० अ० [स० अस् = होना] पुरानी हिंदी के 'आसना' या 'आहना' (होना) क्रिया का वर्तमानकालिक रूप। (शुद्ध शब्द 'आहि' है)।

आयत[1]--वि० [स०] विस्तृत। लबा चौडा। दीर्घ। विशाल। उ०--सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे।--मानस, १।३२७।

आयत[2]--सज्ञा स्त्री० [अ०] इजील का वाक्य। कुरान का वाक्य। उ०--पुनि उस्मान मडित बड गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।--जायसी ग्र०, पृ० ५।

आयतच्छदा--सज्ञा स्त्री० [स०] कदली। केला [को०]।

आयतन--सज्ञा पु० [स०] १ मकान। घर। मदिर। २ विश्रामस्थान। ठहरने का जगह। ३ देवताओं की वदना की जगह।

यौ०--रामपचायतन = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्ति।

४ ज्ञान के सचार का स्थान। वे स्थान जिनम किसी काल तक ज्ञान की स्थिति रहती है, जैसे,--इद्रियाँ और उनके विषय।

विशेष--बौद्धमतानुसार उनके १२ आयतन हैं--(१) चक्षुरायतन, (२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५) कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन, (९) गधायतन, (१०) रसनायतन, (११) श्रोतव्यायतन और (१२) धर्मायतन।

आयतनेत्र--वि० [स०] विशाल नेत्रोवाला। बडी बडी आँखोवाला [को०]।

आयतलोचन--वि० [स०] दे० 'आयतनेत्र' [को०]।

आयति--सज्ञा स्त्री० [स०] भावी आय। आगे होनेवाली आमदनी [को०]।

आयत्त--वि० [स०] [सज्ञा आयत्ति] अधीन। वशीभूत।

आयत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं०] अधीनता। परवशता।

आयद--वि० [अ०] आरोपित। लगाया हुआ। जैसे,--तुम पर कई जुर्म आयद होते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आयमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंबाई। विस्तार। २ नियमन। ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुष को)। [को०]

आयमा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ला को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय।

आयवस—संज्ञा पुं० [स०] १ पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान। २ पशुओं को खिलाने का स्थान [को०]।

आयव्यय—संज्ञा पु० [सं०] जमाखर्च। आमदनी और खर्च। (को०)

आयस[1]—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आयसी] लोहा। १ लोहा २ लोहे का कवच। ३ अगर नाम की लकड़ी। ४ रत्न। मणि।

आयस[2] ⑤—संज्ञा स्त्री० [स० आयसु] १ आदेश। हुक्म। आज्ञा। २ विवाह के अवसर की एक रीति।

आयसी[1]—वि० [स० आयसीय] लोहे का। आहनी। उ०—मजूषा आयसी कठोरा। बड़ि सृखला लगी चहुँ ओरा।—रघुराज (शब्द०)।

आयसी[2]—संज्ञा पु० [स०] कवच। जिरहबख्तर।

आयसीय—वि० [स०] लोहे का। लोह का बना हुआ [को०]।

आयसु ⑤—संज्ञा स्त्री० [स०] आज्ञा। हुक्म। उ०—प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५६।

आया[1]—क्रि० अ० [हिं० आना] आना क्रिया का भूतकालिक रूप।

आया[2]—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०] अँगरेजों के बच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री। धाय। धात्री।

आया[3]—अव्य० [फा०] क्या। जैसे—आया तुमने यह काम किया है या नहीं।

आयात—संज्ञा पु० [स०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो। आगत। जैसे,—आयात व्यापार।

यौ०—आयातकर=आयात वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल।

आयाति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ आगमन। २. पास आना [को०]।

आयान—संज्ञा पु० [स०] १ आना। २ प्रकृति। स्वभाव। आदत [को०]।

आयाम[1]—संज्ञा पु० [स०] १ लंबाई। विस्तार। २ नियमित करने की क्रिया। नियमन।

यौ०—प्राणायाम=प्राणवायु को नियमित करने की क्रिया।

आयाम[2]—क्रि० वि० एक पहर तक।

आयास—संज्ञा पु० [स०] परिश्रम। मेहनत।

यौ०—अनायास।

आयासक—वि० [स०] १ परिश्रम करानेवाला। थकानेवाला २. कष्टकारक [को०]।

आयासी—वि० [स० आयासिन्] १ जिसने परिश्रम किया हो। थका हुआ। २ प्रयास में लगा हुआ। परिश्रमी [को०]।

आयु शेष—संज्ञा पु० [स० आयुस्+शेष] आयु का शेष भाग [को०]।

आयुष्टोम—संज्ञा पु० [स० आयुस्+ष्टोम] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [को०]।

आयु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वय। उम्र। जिंदगी। जीवनकाल।

क्रि० प्र०—क्षीण होना।—घटना।—पूरी होना।—बढ़ना।

मुहा०—आयु खुटाना=आयु कम होना। उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी।—तुलसी (शब्द०)। आयु सिराना=आयु का अंत होना। उ०—जो तें कही सो सब हम जानी। पुंडरीक की आयु सिरानी।—गोपाल (शब्द०)।

आयुक्त[1]—वि० [स०] १ नियुक्त। २ अधिकारप्राप्त। ३ संयुक्त। समिलित। ४ प्राप्त [को०]।

आयुक्त[2]—संज्ञा पु० १ सचिव। मंत्री। २ कारिंदा। ३ कोपाधिकारी। ४. कमिश्नर। [को०]।

यौ०—उच्चायुक्त=हाई कमिश्नर।

आयुक्तक—संज्ञा पुं० [स०] अधिकारीविशेष [को०]।

आयुत[1]—वि० [स०] १ मिश्रित। २ द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आयुत[2]—संज्ञा पुं० [स०] आधा पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [को०]।

आयुतिक—संज्ञा पु० [स०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष।

आयुध—संज्ञा पुं० [स०] हथियार। शस्त्र। उ०—तिन्हके आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।—मानस, ३।१३।

यौ०—आयुधागार=सिलहखाना। आयुधन्यास।

आयुधजीवी[1]—वि० [सं० आयुधजीविन्] शस्त्र या हथियार की बदौलत जीविका उपार्जित करनेवाला [को०]।

आयुधजीवी[2]—संज्ञा पु० सैनिक। सिपाही [को०]।

आयुधधर्मिणी—संज्ञा स्त्री० [स०] जयंती वृक्ष [को०]।

आयुधन्यास—संज्ञा पु० [स०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान। इनमें चक्र, गदा आदि आयुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं।

आयुधपाल—संज्ञा पुं० [स०] शस्त्रागार या सिलहखाने का अधिकारी [को०]।

आयुधभृत्—वि० [स०] शस्त्रधारी। हथियारबंद [को०]।

आयुधशाला—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आयुधागार' [को०]।

आयुधसहाय—वि० [स०] जिसका सहायक आयुध या हथियार हो। हथियारबंद [को०]।

आयुधागार—संज्ञा पु० [स०] शस्त्रागार। सिलहखाना [को०]।

आयुधिक[1]—वि० [स०] शस्त्र से संबंध रखनेवाला [को०]।

आयुधिक[2]—संज्ञा पु० सैनिक। सिपाही [को०]।

आयुधी—वि० [स० आयुधिन्] दे० 'आयुधीय' [को०]।

आयुधीय—संज्ञा पु० [स०] १. फौजी सिपाही। २ सैनिक या रंगरूट देनेवाला गाँव [को०]।

आयुधीयकाय—संज्ञा पुं० [स०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो। (को०)।

आयुर्दाय—संज्ञा पु० [स०] १ फलित ज्योतिष में ग्रहों के बलाबल के अनुसार आयु का निर्णय। जैसे अष्टम स्थान में बृहस्पति आयु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान में राहु, मंगल और शनि आदि पापग्रह आयु बढ़ाते हैं। लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो आयु क्षीण होती है। २. आयु। जीवनकाल।

आयुर्द्रव्य—सज्ञा पु० [सं०] १ घृत। घी। २ दवा। ओषधि [को०]।

आयुर्बल—सज्ञा पु० [स०] आयुष्य। उम्र।

आयुर्योग—सज्ञा पुं० [स०] वह ग्रहयोग जिसके अनुसार ज्योतिषी किसी व्यक्ति के विषय मे भविष्यकथन करते है [को०]।

आयुर्वेद—सज्ञा पु० [स०] [वि० आयुर्वेदीय] आयु सबधी शास्त्र। चिकित्साशास्त्र। वैद्य विद्या।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होने दक्ष प्रजापति के धड मे बकरे का सिर जोडा था। अश्विनीकुमारो से इद्र ने यह विद्या प्राप्त की। इद्र ने धन्वतरि को सिखाया। काशी के राजा दिवोदास धन्वतरि के अवतार कहे गए हैं। उनसे जाकर सुश्रुत ने आयुर्वेद पढा। अत्रि और भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। चरक की सहिता भी प्रसिद्ध है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाग माना जाता है। इसके आठ अग हैं। (१) शल्य (चीरफाड), (२) शालाक्य (सलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर, अतिसार आदि की चिकित्सा), (४) भूत विद्या (झाड-फूँक), (५) कौमारतत्र (बालचिकित्सा), (६) अगदतत्र (बिच्छू, साँप आदि के काटने की दवा), (७) रसायन और (८) वाजीकरण। आयुर्वेद शरीर मे वात, पित्त, कफ मानकर चलता है। इसी से उसका निदानखड कुछ सकुचित सा हो गया है। आयुर्वेद के आचार्य ये हैं—अश्विनीकुमार, धन्वतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त, अत्रि तथा उनके छ शिष्य (अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, सीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक।

आयुर्वेदिक—वि० [स०] १ आयुर्वेद सबधी। २ आयुर्वेद मे होने वाला [को०]।

आयुर्वेदी[1]—सज्ञा पु० [सं० आयुर्वेदिन्] वैद्य। आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

आयुर्वेदी[2]—वि० आयुर्वेद सबधी [को०]।

आयुर्वृद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] आयु की वृद्धि। उम्र बढना [को०]।

आयुष—सज्ञा पु० [स० आयुष्] आयु। उ०—तौ अबु नामदेव आयुष तें होहु तुम्हहि प्रभु दाता।—भक्तमाला, (श्री०)। पृ० ४८५।

आयुषमान—वि० [स० आयुष्मान्] दे० 'आयुष्मान'। उ०—ताते नरजा विरद मो सोभित सिंह प्रमान। रन-भूसिना सुभासिला, आयुषमान खुमान।—भूषण ग्रं०, पृ० ७।

आयुष्कर—वि० [स०] आयुवर्धक। उम्र बढानेवाला [को०]।

आयुष्काम—वि० [स०] लबी उम्र की कामना रखनेवाला [को०]।

आयुष्कौमारभृत्य—सज्ञा पुं० [स०] बच्चो के रोगो का इलाज। बीमार बच्चो की दवा [को०]।

आयुष्टोम—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है।

आयुष्मन्—सज्ञा पुं० [स०] आयुष्मान् का सबोधन रूप। उ०—कल्याण हो आयुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारो से उदासीन हैं।—स्कद० पृ० ६।

आयुष्मान—वि० [स० आयुष्मत्, आयुष्मान्] [स्त्री० आयुष्मति] १ दीर्घजीवी। चिरजीवी। २ नाटको मे सूत रथी को आयुष्मान कह कर सबोधन करते हैं। राजकुमारो को भी इसी शब्द से सबोधन करते हैं। ३ फलित ज्योतिष के विष्कुभ आदि २७ भेदो मे से एक।

आयुष्य—सज्ञा पु० [स०] आयु। उम्र।

आयुस—सज्ञा पु० [स० आयुस्] आयु। उ०—आयुस किंकर गण तव पावै।—कबीर सा०, पृ० ४६२।

आयोग—सज्ञा पु० [स०] १ साहित्य मे विप्रलभ के दो पक्षो मे से प्रथम जिसमे अविवाहित अवस्था मे प्रेम हो जाने पर मिलन न होने से विरह दु:ख उठाना पडता है। पूर्वराग की अवस्था। २ हल या बैलगाडी का जुआ। ३ पुष्पादि भेंट करने की क्रिया। ४ किनारा। तट। ५ नियुक्ति। ६ कार्यविशेष को पूर्ण करना। ७. ताल्लुक। सबध। ८. कमीशन [को०]।

आयोगव—सज्ञा पुं० [स०] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी है। बढई।

आयोजक—वि० आयोजन या व्यवस्था करनेवाला। तैयारी करनेवाला। प्रबधक [को०]।

आयोजन—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० आयोजना [वि० आयोजित] १ किसी कार्य मे लगाना। नियुक्ति। २. प्रबध। इतजाम। सामग्रीसपादन। ठीक ठाक। तैयारी। उ०—राका रजनी आयोजनरत लोकोत्तर छविशाली।—पारिजात, पृ० १०। ३ उद्योग। ४ सामग्री। सामान।

आयोजित—वि० [स०] ठीक किया हुआ। तैयार।

आयोधन—सज्ञा पुं० [स०] १ युद्ध। लडाई। २ रणभूमि। लडाई का मैदान।

आरजित—वि० [सं० आरञ्जित] सम्यक् रूप से रजित। अच्छी तरह रँगा हुआ। उ०—नव नव उषा राग आरजित मनरंजन वनमाली।—पारिजात, पृ० १०।

आरभ—सज्ञा पु० [स० आरम्भ] किसी कार्य की प्रथमावस्था का सपादन। अनुष्ठान। उत्थान। शुरू। समाप्ति का उलटा। उ०—प्रारभ और परिणामो के सबधसूत्र से बुनते है।—कामायनी, पृ० ७५।

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—उसने कल से पढना आरभ किया।—होना। जैसे,—अभी काम आरभ हुए कै दिन हुए हैं?।

२ किसी वस्तु का आदि। उत्थान। शुरू का हिस्सा। जैसे,—हमने यह पुस्तक आरभ से अत तक पढी है। ३. उत्पत्ति। आदि। ४ वध (को०)। ५ गर्व (को०)।

आरभक—वि० [स० आरम्भक] आरभ करनेवाला। श्रीगणेश करनेवाला [को०]।

आरभण—सज्ञा पु० [आरम्भण] १ आरभ करने की क्रिया। आरभ होने की क्रिया या भाव। २ अधिकार मे करना। ३. मूठ (हैंडिल) [को०]।

आरभत—अव्य० [स० आरम्भतस्] आरभ से। मूल से। मूलत:। नए सिरे से [को०]।

आरभना[1]†—क्रि० अ० [स० आरम्भण] शुरू होना।

आरंभना[२]—क्रि० स० प्रारंभ या शुरू करना।

आरंभनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपलब्धि। माल की मांग पूरी करना। २. माल पैदा करने या बनाने की लागत। [को०]।

आरंभवाद—संज्ञा पुं० [सं० आरम्भवाद] न्यायशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०]।

आरंभशूर—वि० [सं० आरम्भशूर] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला। उ०—अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, आरंभशूर कहलाय लेंगे।—प्रताप ग्र०, पृ० ७१२।

आरंभिक—वि० [सं० आरम्भिक] आरंभ से संबंध रखनेवाला। शुरू का [को०]।

आरंभी—वि० [सं० आरम्भिन्] १ आरंभ करनेवाला। २ नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढ़नेवाला।

आर[१]—संज्ञा पुं० [सं०, तुल० अ० 'ओर'] १ वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर साफ न किया गया हो। एक प्रकार का निकृष्ट लोहा। २ पीतल। ३ किनारा। ४ कोना।

यौ०—द्वादशार चक्र। षोडसार चक्र।

विशेष—इस प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तांत्रिक लोग पूजन करते हैं।

५ पहिए का आरा। ६ हरताल।

आर[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० अर=डंक] १ लोहे की पतली कील जो साँटे या पैने में लगी रहती है। अनी। पैनी। २ नर मुर्गे के पंजे का काँटा जिससे लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं। ३ बिच्छू, भिड़ और मधुमक्खी आदि का डंक। उ०—बीछी आर सरिस टेई मूछै सबही की।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ८०।

आर[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० आरा] चमड़ा छेदने का सूआ या टेकुआ। सुतारी।

आर[४]—संज्ञा पुं० [देश०] १ ईख का रस निकालने का कलछा। पल्ली। तावी। २ बर्तन बनाने के साँचे में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोदा जिसे इस तरह बढ़ाते हैं कि वह अँवठ के चारों ओर बढ़ आता है।

आर[५]†—संज्ञा पुं० [हिं० अड़] अड़। जिद। हठ। उ०—(क) अँखियाँ करत हैं अति आर। सुंदर श्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना—जिद करना। उ०—कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेख दिखाइ बिनानी।—सूर (शब्द०)।—ठानना। उ०—हरीचंद बलिहारी आर नहिं ठानो।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६८।

आर[६]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ तिरस्कार। घृणा।

क्रि० प्र०—करना। जैसे, भले लोग बदचलनों से आर करते हैं।

२ अदावत। वैर जैसे,—न जाने वे हममें क्यों आर रखते हैं।

३. शर्म। हया। लज्जा। उ०—कुछ तुम्हीं मिलने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नंग नहीं, ऐब नहीं, आर नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ११२।

क्रि० प्र०—आना। जैसे,—इतने पर भी उसे आर नहीं आती।

आरक्त[१]—वि० [सं०] १. ललाई लिए हुए। कुछ लाल। २ लाल।

आरक्त[२]—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

आरक्तिम—वि० [सं०] थोड़ा लाल। हलकी लाली लिए हुए [को०]।

आरक्ष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षा। २ सैन्य। फौज। ३ हाथी के कुंभ का संधिस्थल [को०]।

आरक्ष[२]—वि० सुरक्षित। सँभालकर रखा हुआ [को०]।

आरक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहरेदार। रक्षक। २ सिपाही [को०]।

आरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] निर्धारित करना। निश्चित करना। अं० रिजर्वेशन।

आरक्षिक, आरक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आरक्षक' [को०]।

आरग्वध—संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास।

आरचित—वि० [सं०] पूर्ण रूप से सज्जित। अच्छी तरह बनाया हुआ [को०]।

आरचेस्ट्रा—संज्ञा पुं० [अं० आरकेस्ट्रा] १ थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल। २ थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं। ३ थियेटर में सबसे आगे की सीटें या आसन।

आरज(पु)—वि० [सं० आर्य] दे० 'आर्य'। उ०—फूटहि सो जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होत गुलाम।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २३६।

आरजपथ—संज्ञा पुं० [सं० आर्य+पथ] आर्यमार्ग। सदाचार का मार्ग। उ०—आरजपथ भूली भले विषम परी हितफंद।—घनानंद, पृ० २३८।

आरजा—संज्ञा पुं० [अ० आरिजह] रोग। बीमारी।

आरजू—संज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा। वांछा। जैसे,—(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की आरजू है। (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी आरजू पूरी हुई।

यौ०—**आरजूमंद**।

मुहा०—**आरजू बर आना**=इच्छा पूरी होना। आशा पूरना। जैसे,—बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी आरजू बर आई। **आरजू मिटाना**=इच्छा पूरी करना। जैसे,—हम भी अपनी आरजू मिटा लो।

२ अनुनय। विनय। विनती।

आरजूमंद—वि० [फा०] इच्छुक। अभिलाषी।

आरट[१]—वि० [सं०] बार बार रट लगानेवाला। शोर करनेवाला [को०]।

आरट[२]—संज्ञा पुं० विदूषक [को०]।

आरट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ पंजाब के उत्तर पूर्व का एक भूभाग। २ आरट्ट के निवासी। ३ आरट्ट जनपद का घोड़ा [को०]।

आरण(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन'। उ०—जिव आरण लोहा पाहीजै तप भखै भाखाय।—प्राण०, पृ० २११।

आरणि—संज्ञा पुं० [सं०] जलावर्त। भँवर [को०]।

आरणेय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव मुनि [को०]।

आरणेय[२]—वि० [सं०] १ अरणि नामक यज्ञ से उत्पन्न या संबद्ध [को०]।

आरण्य[१]—वि० [सं०] १ जंगली। बनैला। २ जंगल का। वन का।

यौ०—**आरण्य कुक्कुट। आरण्य गान। आरण्य पशु।**

आरण्य[२]—सज्ञा पुं० १ दे० 'अरण्य'। २ जगली पशु। ३ गोमय। गोवर। ४ मेष, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष)। ५ विना वोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०]।

यौ०—**आरण्यकाड**=रामायण का तृतीय काड। **आरण्य कुक्कुट**=वनमुर्गा। **आरण्य गान**=सामवाद के चार गानो मे एक **आरण्यपर्व**=महाभारत का एक पर्व। **आरण्यपशु**=जगली पशु। **आरण्यमुद्गदा**=एक प्रकार की मूग [को०]। **आरण्य राशि**=(१) ज्योतिष मे सिंह आदि राशियाँ। (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग।

आरण्यक[१]—वि० [सं०] [स्त्री० **आरण्यकी**] १ जगल का। वन का। जगली। वनैला।

आरण्यक[२]—सज्ञा पुं० वेदो की शाखा का वह भाग जिसमे वानप्रस्थो के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश है।

विशेष—वैदिक वाङ्मय मे सहिताओ के अनतर के ब्राह्मण ग्रथो का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदो का पूर्ववर्ती है।

यौ०—**आरण्यक संवाद**=आरण्यक ग्रथो मे प्रतिपादित सिद्धात। उ०—सुनाने आरण्यक सवाद तथागत आया तेरे द्वार। —लहर, पृ० १२।

आरतⓊ—वि० [स० आर्त] दे० 'आत'। उ०—गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी।—मानस, ३।२३।

आरतहरⓊ—वि० [सं० आर्तिहर] दु ख दूर करनेवाला। कष्टहारी। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहि आरतहर तोसो। तुलसी ग्र०, पृ० ५००।

आरति[१]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति। विराग। स्थगन। रोक। २ दे० 'आर्ति'। ३ हठ। जिद। उ०—साँझहि ते अति ही बिरुझान्यौ चंदहि देखि करी अति आरति।—सूर०, १०।२००। ४ अनीति। उ०—नदघरनि ब्रजनारि विचारति। ब्रजहिं बसत सब जनम सिरानो ऐसी करि न आरति।—सूर०, १०।४२६।

आरति[२]Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० आर्ति] मनोरथ। इच्छा। उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६।

आरती—सज्ञा स्त्री० [स० आरात्रिक] १ किसी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना। नीराजन। दीप। उ०—चढी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मगल थारी।—मानस, १।३०१।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार बार चरण, दो बार नाभि, एक बार मुँह के पास तथा सात बार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं। यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है। बत्तियो की सख्या एक से कई सौ तक की होती है। विवाह मे वर और पूजा मे आचार्य आदि की भी आरती की जाती है।

क्रि० प्र०—**उतारना**।—**करना**।

मुहा०—**आरती लेना**=देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगो का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना।

२ वह पात्र जिसमे घी की बत्ती रखकर आरती की जाती है।

३ वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढा जाता है।

आरत्तिⓊ—सज्ञा स्त्री० [सं० आर्ति] दे० 'आर्त्ति'। उ०—श्री कँवाई जी का स्मरन करि कै वोहोत आरत्ति सो विनती करी।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७।

आरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बैल या एक घोडे से चलनेवाला रथ [को०]।

आरनⓊ—सज्ञा पुं० [सं० अरण्य] जगल। वन। उ०—कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पखि उडसि जहँ चहई।—जायसी ग्र०, पृ० १।

आरनाल, आरनालक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कच्चे गेहूँ का खींचा हुआ अर्क। २ काँजी।

आरपार[१]—सज्ञा पुं० [सं० आर=किनारा+पार=दूसरा किनारा] यह किनारा और वह किनारा। यह छोर और वह छोर। अधिक। जैसे,—नाव से उसी नदी का आरपार नही दिखाई देता।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, इसमे इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है।

आरपार[२]—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक। एक किनारे से दूसरे किनारे तक। जैसे,—(क) इस दीवार मे आरपार छेद हो गया है। (ख) आरपार जाने मे कितनी देर लगेगी?

आरफनेज—सज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चो की रक्षा या पालन होता है। अनाथालय। यतीमखाना। जैसे,—हिंदू आरफनेज।

आरबलⓊ†, **आरबला**Ⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुर्बल'।

आरब्ध—वि० [सं०] आरभ किया हुआ।

आरब्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत। आरभ [को०]।

आरभट—सज्ञा पुं० [स०] १ साहसी व्यक्ति। २ साहस। बहादुरी। ३ विश्वास [को०]।

आरभटी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोधादिक उग्र भावो की चेष्टा। उ०—झूठी मन झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठन को बदन निहारत मारत फिरत नटी।—सूर (शब्द०)। २ एक प्रकार की नृत्यशैली [को०]। ३ नाटक मे एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति मे यमक का प्रयोग अधिक होता है। इसके द्वारा माया, इद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात प्रतिघात और बधनादि विविध रौद्र, भयानक और बीभत्स रस दिखाए जाते हैं। इसके चार भेद हैं—वस्तूत्थापन, सफेट, सक्षिप्ति और अवपातन (१) वस्तूत्थापन=ऐसी वस्तुओ का प्रदर्शन या वर्णन जिसमे रौद्रादि रसो की सूचना हो। जैसे,—सियारो का बोलना और श्मशान आदि। (२) सफेट=दो आदमियो का झटपट आकर भिड जाना। (३) सक्षिप्ति=क्रोधादि उग्र भावो की निवृत्ति। जैसे,—रामचद्र जी की बातो को सुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति। (४) अवपातन=प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावो का अविच्छिन्न प्रदर्शन।

आरमण—सज्ञा पुं० [सं०] १ हर्ष या आनद मनाना। २ हर्ष। खुशी। ३ यौनसुख। ४ विश्रामस्थान। विराम [को०]।

आरव—सज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द। आवाज। २ आहट। उ०—घुरघुरात हय आरव पाए। चकित बिलोकत कान उठाए।—तुलसी (शब्द०)।

आरषीⓊ—वि० [स० आर्ष] आर्ष। ऋषियो की। उ०—भले भूप कहत भले भदेश भूपन सो लोक लखि बोलिए पुनीत रीति आरषी।—तुलसी (शब्द०)।

आरस[1]ⓤ—सज्ञा पु० [हिं० आलस] दे० 'आलस्य'। उ०—मोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय।—स० सप्तक, पृ० २५३।

आरस[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'।

आरसा—सज्ञा पु० [हिं० रस्सा] १ रस्सा। जैसे,—बोए का आरसा = वह रस्सा जिसमे लगड का बोझा बँधा रहता है। २ रस्से की मुद्धी जिसमे कोई चीज बाँधकर लटकाई या उठाई जाय। गाँठ।

आरसी—सज्ञा स्त्री० [सं० आदर्श] १ शीशा। आईना। दर्पण। उ०—(क) कहा कुमुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति।—बिहारी र०, दो० ५१२। २ एक गहना जिसे स्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे मे पहनती हैं। यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमे शीशा जडा होता है। उ०—कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंबित प्यो पाइ। पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ।—बिहारी र०, दो० ६११।

आरस्य—सज्ञा पुं० [स०] रसहीनता। अरसता। शुष्कता [को०]।

आरा[1]—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अल्पा० आरी] १ एक लोहे की दाँतीदार पटरी जिससे रेत कर लकडी चीरी जाती है। इसके दोनो ओर लकडी के दस्ते लगे रहते है। उ०—यह मन वाको दीजिए जो साँचा सेवक होय। सिर ऊपर आरा सहै, तबहुँ न दूजा सोय।—कबीर (शब्द०)। २ चमडा सीने का टेकुआ या सूजा। सुतारी।

यौ०—आराकश।

आरा[2]—सज्ञा पु० [स० आर] लकडी की चौडी पटरी जो पहिए की गडारी और पुट्ठी के बीच जडी रहती है। एक पहिए मे ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जडी जाती हैं, उन्हे गज कहते हैं।

आरा[3]—सज्ञा पु० [हिं० आडा] लकी की या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोडिया या टोटा बैठाते हैं। यह इसलिये रखा जाता है कि घोडिया आदि एक सीध मे रहे ऊपर नीचे न हो। दीवारदासा। दासा।

आरा[4]†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आला'।

आराइश—सज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आरास्ता] १ सजावट। २. कागज के फूल पत्ते जो बरात मे द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं। फुलवाडी।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आनेवाला [को०]।

आराकश—सज्ञा पु०[हिं० आरा + फा०कश]आरा चलानेवाला आदमी।

आराज—सज्ञा पु० [सं०] अराजकता। शासक के अभाव मे होनेवाली अशाति [को०]।

आराजी—सज्ञा स्त्री० [अ० आराजी] १ भूमि। जमीन। २. खेत।

आराण—सज्ञा पु० [स० रण] युद्ध। सग्राम।—(डिं०) [को०]।

आरात्ⓤ—अव्य० [सं०] १ निकट। पास।

आराति—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। बैरी। उ०—सावधान होइ धाए जानि सकल आराति। लागे बरषन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भाँति।—मानस, ३।१३।

आरातीⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आराति] शत्रु। आराति। उ०—पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती।—मानस, ६।३३।

आरात्—क्रि० वि० [स०] १ पास। आसपास। २ दूर। दूरस्थ स्थान पर। ३ तुरंत। चटपट [को०]।

आराधक—वि० [स०] [स्त्री० आराधिका] उपासक। पूजा करनेवाला।

आराधन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आराधक, आराधनीय, आराधित] १ सेवा। पूजा। उपासना। उ०—आराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर।—अनामिका, पृ० १५६। २ तोषण। तर्पण। प्रसन्न करना। ३ पकाना। राँधना (को०)। ४ अर्जन [को०]।

आराधना[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] पूजा। उपासना।

आराधना[2]ⓤ—क्रि० स० [स० आराध = आ + √राध् + हिं० ना (प्रत्य०)] १ उपासना करना। पूजना। उ०—कोहि आराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मर्म सब कहहू।—तुलसी (शब्द०)। २ सतुष्ट करना। प्रसन्न करना। उ०—इच्छित फल बिनु शिव आराधें। लहइ न कोटि योग जप साधें।—तुलसी (शब्द०)।

आराधनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना। सेवा। पूजा। [को०]।

आराधनीय—वि० [स०] आराधना के योग्य। पूजनीय।

आराधयिता—वि० [स० आराधयितृ] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो। पूजित।

आराध्य—वि० [स०] पूज्य। पूजनीय।

आराम[1]—सज्ञा पु० [स०] बाग। उपवन। फुलवारी। उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहि सुख देत।—तुलसी (शब्द०)।

आराम[2]—सज्ञा पुं० [फा०] १ चैन। सुख। जैसे,—ससार मे कौन नही आराम चाहता।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पहुँचना।—पाना।—लेना।—मिलना।

२. चगापन। सेहत। स्वास्थ्य। जैसे,- जब से यह दवा दी गई हैं, तब से कुछ आराम है।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पाना।—होना।

३ विश्राम। थकावट मिटाना। दम लेना। जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—लेना।

यौ०—आरामगाह। आरामतलब। आरामदान। आरामपाई।

मुहा०—आराम करना = सोना। जैसे,—उन्हे आराम करने दो, बहुत जागे हैं। आराम मे होना = सोना। जैसे,—प्रभी आराम मे हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नही। आराम लेना = विश्राम करना। आराम से = फुरसत मे। धीरे धीरे। बेखटके। जैसे,—(क) कोई जल्दी पडी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा। (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे। आराम से गुजरना = चैन से दिन कटना।

आराम³—वि० [फा०] चगा। तदुरुस्त। जैसे,—उस वैद्य ने उसे बात की बात मे आराम कर दिया।

क्रि० प्र०—करना। होना।

आरामकुरसी—सज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लबी कुरसी जिसमे पीछे की ओर कुछ लबोतरा ढालना होता है और दोनो ओर हाथ या पैर रखने के लिये लबी पटरियाँ लगी होती हैं। इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है।

आरामगाह—सज्ञा स्त्री० [फा०] सोने की जगह। शयनागार।

आरामतलब—वि० [फा०] [सज्ञा आरामतलबी] १ सुख चाहनेवाला। सुकुमार। जैसे,—काम न करने से अमीर लोग आरामतलब हो जाते हैं। २ सुस्त। आलसी। निकम्मा। जैसे,—वह इतना आरामतलब हो गया है कि कही जाता आता भी नही।

आरामदान—सज्ञा पु० [फा० आराम+दान] १ पानदान। २ सिंगारदान।

आरामपाई—सज्ञा स्त्री० [फा० आराम+हिं० पाय] एक प्रकार की जूती जिसे पहलेपहल लखनऊवालो ने बनाया था।

आरामशीतला—सज्ञा स्त्री० [स०] आनदी। गधाढ्या। महानदा। रामशीतला।

विशेष—यह उपवन मे रहने के कारण शीतल होती है। राजनिघटु मे इसे तिक्त, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शोथ को दूर करनेवाली कहा गया है।

आरामाधिपति—सज्ञा पु० [स०] बगीचो का अधिकारी।

विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पौधे बोने मे निपुण, स्वाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जही बूटियो को पहचाननेवाला होना चाहिए।

आरामिक—सज्ञा पु० [स०] माली [को०]।

आरालिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आरालिका] रसोईदार। पाचक।

आराव—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आरव' [को०]।

आरास्ता—वि० [फा० आरास्तह्] सजा हुआ। सुसज्जित। उ०—चमत्कृत चीजो से वह आरास्ता और पैवस्ता है। प्रेमघन, भा० २, पृ० २३४।

क्रि० प्र०—करना। होना।

आराहीⓊ—वि० [सं० आराधक, प्रा० आराहग, अप० आराही] उपासक। आराधना करनेवाला। उ०—सुर जाको पार न पावैं कोटि मुनी जन ध्याई। दादू रे तन ताको है रे जाको सकल लोक आराही।—दादू० बा०, पृ० ५७३।

आरिⓊ—सज्ञा स्त्री० [हिं० अड] हठ। टेक। जिद। उ०—(क) द्वार हौं भोर ही को आजु। रटत रिरिहा, आरि और न, कौ हौं ही ते काजु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६८। (ख) तब सकोप भगवान हरि तीछन चक्र प्रहारि। धर ते सीस धरा, धरा, करि नोन्ही श्रुति आरि।—गोपाल (शब्द०)।

आरिज¹—सज्ञा पु० [अ० आरिज़] कपोल। गाल। उ०—लगा दे मोतए खारिज मे गर वह आग गुलशन में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०।

आरिज²—वि० [अ०] १ अडचन डालनेवाला। बाधक। २ होने या लग जानेवाला (रोग आदि), [को०]।

आरिजा¹—सज्ञा पु० [अ० आरिजह्] १ रोग। बीमारी। २. कष्ट [को०]।

आरिजी—वि० [अ० आरिजी] १. क्षणस्थायी। नश्वर। २ आकस्मिक। उ०—उसके रुखसार देख जीता हूँ। आरिजी मेरी जिंदगानी है।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६।

आरित्रिक—वि० [स०] अरित्र से सबधित। नाव के डाँड से सबद्ध [को०]

आरिफ—सज्ञा पुं० [अ० आरिफ़] साधु। ज्ञानी। उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं बस रज व राहत एक 'रसा'। जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ८५६।

आरिया—सज्ञा स्त्री० [स० आरूक=ककडी] एक फल जो ककडी के समान होता है। यह भादो क्वार के महीने मे होती है और बहुत ठंडी होती है। यह एक बित्ता लबी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है।

आरी¹—सज्ञा स्त्री० [हिं० आरा का अल्पा०] १ लकडी चीरने का बढई का एक औजार।

विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमे एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है। मूँठ की ओर यह पटरी चौडी और आगे की ओर पतली होती जाती है। इससे रेतकर लकडी चीरते हैं। हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है।

२ लोहे की एक कील जो बैल हाँकने के पैने की नोक मे लगी रहती है। ३. जूता सीने का सूजा। सुतारी।

आरी²Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [स० आर=किनारा] ओर। तरफ। उ०—बिछवाए पौरि लो बिछौना जरीबाफन के, खिचवाए, चाँदनी सुगध सब आरी में।—रघुनाथ (शब्द०)। २. कोर। अवँठ। बारी।

आरी³—वि० [अ०] तग। हैरान। आजिज। जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं।

क्रि० प्र०—आना।

आरी⁴—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड जिसे जालबबुरक या स्थूलकटक भी कहते हैं। २ दुर्गंधखैर। बबुरी।

आरु¹—सज्ञा पु० [स०] १ कर्कट। केकडा। २ शूकर। ३ वृक्ष विशेष। ४ मेढक [को०]।

आरु²—सज्ञा स्त्री० घडा। जलपात्र [को०]।

आरुक¹—सज्ञा पु० [स०] औषध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है। यह शीतलता प्रदान करता है [को०]।

आरुक²—वि० हानिकारक [को०]।

आरुण—वि० [स०] अरुण से सबंध रखनेवाला [को०]।

आरुणि—सज्ञा पु० [स०] १ अरुण के पुत्र। २. सूर्य के पुत्र यम, शनैश्चर आदि। ३ उद्दालक ऋषि [को०]।

आरुणेय—सज्ञा पुं० [स०] आरुणि ऋषि के पुत्र। श्वेतकेतु [को०]

आरुण्य—सज्ञा पुं० [स०] अरुणता। ललाई [को०]।

आरुष्कर—सज्ञा पुं० [स०] फलविशेष। भल्लातक [को०]।

आरू[1]—सज्ञा पुं० [सं०] पिंगल वर्ण। पीला रग [को०]।

आरू[2]—वि० पिंगल वर्णवाला। भूरे और लाल रग से मिश्रित [को०]।

आरूक-सज्ञा पुं० [स०] १ एक जडी जो हिमालय पर मे आती है। आड। २ आलूबुखारा।

आरूढ—वि० [स० आरूढ] १ चढा हुआ। सवार। उ०—खर आरूढ नगन दसमीसा। मुडित सिर खडित भुज बीसा।—मानस, ५।११। २. दृढ। स्थिर। जैसे,—हम तो अपनी बात पर आरूढ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—आरूढयौवना। अश्वारूढ। गजारूढ। सिंहासनारूढ।

आरूढयौवना—सज्ञा स्त्री० [स० आरूढ़यौवना] मध्या नायिका के चार भेदो मे से एक। वह स्त्री जिसे पतिप्रसग अच्छा लगे।

आरूढि—सज्ञा स्त्री० [स० आरूढ़ि] १. कढाव। चढाई। २. आरूढ होने का भाव। ३ तत्परता [को०]।

आरेक—सज्ञा पुं० [स०] १. घटाना। २ खाली करना। ३ सदेह। ४ आधिक्य [को०]।

आरेचन—सज्ञा पु०[स०]१ सकोचन। २ खाली करना या कराना। ३ बहिष्करण। बाहर करना या निकालना [को०]।

आरेचित—वि० [स०] १ सकुचित। २. रिक्त। ३ घटाया हुआ [को०]।

आरेवत—सज्ञा पु० [स०] अमिलतास। आरग्वध।

आरेस—सज्ञा स्त्री० [देश०] डाह। ईर्ष्या। उ०—कबहुँ न किएउ सवति आरेसू। प्रीति प्रनीति जान सब देसू।—मानस, २।४६।

आरो—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरव'।

आरोग[1]—वि० [स० आरोग्य] दे० 'आरोग्य'।

आरोगना—क्रि० स० [स० आ+रोग (√रुज्=हिंसा)] खाना। उ०—(क) शबरी परम भक्त रघुवर की चरण कमल की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी।—सूर (शब्द०)। (ख) आरोगन हैं श्रीगोपाल। पटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कचन थाल।—सूर०, १०।१०१।

आरोगाना—क्रि० स०[हिं० आरोगना का प्रे० रूप] भोजन कराना। जिमाना। उ०—ताते आजु जो ए अपने घर भेंसि लैके आवेंगे तो मैं एक दिन की माखन आरोगाउँगी।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।

आरोग्य—वि० [स०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ। तदुरुस्त।

आरोग्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] स्वास्थ्य। तदुरुस्ती।

आरोग्यप्रतिपद्व्रत—सज्ञा पु० [स०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया जानेवाला एक व्रत [को०]।

आरोग्यशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] चिकित्सा। अस्पताल [को०]।

आरोग्यस्नान—सज्ञा पु० [स०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले पहल किया जानेवाला स्नान [को०]।

आरोचक—वि० [स०] चमकीला। प्रकाशवान् [को०]।

आरोचन—वि०[स०]दे०'आरोचक'। उ०—मोह पटल मोचन आरोचन, जीवन कभी नही जनशोचन।—अर्चना, पृ० २।

आरोध—सज्ञा पुं० [स०] १ अवरोध। बाधा। घेरा। २ कँटीली झाडी की बाड [को०]।

आरोधना—क्रि० स० [स० आरोध] रोकना। छेंकना। आडना। उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहि। अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहि कहँ उरति न औ यम कालहि। मन तौ पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तही चाहत चित चालहि।—सूर० (शब्द०)।

आरोप-सज्ञा पु० [स०] १. स्थापित करना। लगाना। मढना। उ०—कवियो को उनपर अपने भावो के आरोपण की आवश्यकता नहीं होती।—रस०, पृ० १४। २ एक पेड को एक जगह मे उखाडकर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३ मिथ्याध्यास। झूठी कल्पना। ४. एक पदार्थ मे दूसरे पदार्थ के धर्म की कल्पना। जैसे,—अमग जीवात्मा मे कर्तृत्व धर्म का आरोप। ५ एक पदार्थ मे दूसरे पदार्थ के आरोप से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान। ६ (साहित्य मे) एक वस्तु मे दूसरी वस्तु के धर्म की कल्पना।

विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है। एक आहार्य और दूसरा अनाहार्य। आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता है। जैसे 'मुखचद्र'। यहाँ 'मुख' और 'चद्र' दोनो के धर्म के साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है। दूसरा 'अनाहार्य' है जिसमे ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमे एक या दोनो परोक्ष हो।

आरोपक—वि० [स०] दोष या अपराध लगानेवाला।

आरोपण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आरोपित, आरोप्य] १ लगाना। स्थापित करना। मढना। २ पौधे को एक जगह से उखाडकर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३. किसी वस्तु मे स्थित गुण को दूसरी वस्तु मे मानना। ४ मिथ्याज्ञान। भ्रम।

आरोपना—क्रि० स० [सं० आरोपण] १ लगाना। उ०—भानु देखि दल चूरन कोप्यो। तजि अनिलास्त्र अनिल आरोप्यो।—गोपाल० (शब्द)। २ स्थापित करना। उ०—सो सुनि नद सबन दै थोपी। शिशुहि सप्यार अक आरोपी।—गोपाल (शब्द०)।

आरोपित—वि० [स०] १ लगाया हुआ। स्थापित किया हुआ। मढा हुआ। उ०—जहाँ तथ्य केवल आरोपित या सभावित रहते हैं वहाँ वे अलकार रूप मे ही रहते हैं।—रस०, पृ० १४। २. रोपा हुआ। बैठाया हुआ।

आरोप्य—वि० [स०] १ लगाने योग्य। स्थापित करने योग्य। २. रोपने योग्य। बैठाने योग्य।

आरोप्यमाण—सज्ञा पु० [स०] १ वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाय। २ साहित्य मे उपमान या अप्रस्तुत [को०]।

आरोह—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आरोही] १. ऊपर की ओर गमन। चढाव। २. आक्रमण। चढाई। ३. घोडे, हाथी आदि पर

चढना। सवारी। ४. वेदांत मे क्रमानुसार जीवात्मा की ऊर्ध्वगति या क्रमश उत्तमोत्तम योनियो की प्राप्त होना। ५. दर्शन मे कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थो की एक अवस्था मे दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अकुर, अकुर से वृक्ष, या अडे से बच्चे का निकलना। ६ क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों से क्रमानुसार उन्नत प्राणियो की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक सृष्टितत्वविदो की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियो की उत्पत्ति आदि मे एक या कई साधारण अवयवियो से हुई है जिनमे चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धात इस सिद्धात का विरोधी है कि ससार के सब जीव जिस रूप मे आजकल हैं उसी रूप मे उत्पन्न किए गए। निरवयव जड तत्व क्रमश कई सावयव रूपो मे सामने आया, जिनमे, भिन्न भिन्न मात्राओ की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यत सामान्य अवयवियो से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप मे इस सिद्धात के बनानेवाले डार्विन साहब है जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसग्राम मे उपयोगी अगो की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) सुदृढाग जीवो की स्थिति और दुर्बलागो का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या सवरण जिसमे दपति-प्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपर्युक्त शक्तियो का, जो समान आकृति उत्पादन की पैतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७ सगीत मे स्वरो का चढाव या नीचे स्वर से क्रमश ऊँचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८ भूतड। नितब। ९. ग्रहण के दस भेदो मे से एक।

विशेष—इस ग्रहण मे ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (राहु) वर्तुलाकर ग्रहमडल को आवृत करके पुन दिखाई पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओ मे परस्पर सदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक[1]—वि० [स०] १ चढनेवाला। आरोही। २ ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १ सारथी। २ सवार। ३ वृक्ष [को०]।

आरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोहित] १ चढना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृग सी भाँति नहीं।—कामायनी, पृ० १८१। २ अँखुआना। अकुर निकलना। ३. सीढी। ४ नृत्यमच [को०]। ५ ऊपर उठना (को०)।

आरोहनⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आरोहण] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन अवरोहन के कै कै फल सोहैं।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहनाⓤ—क्रि० अ० [स० आरोह] चढना। तुलसी गनिन भीर दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [सं०] १ चढा हुआ। २ निकला हुआ। ३ अँखुआया हुआ।

आरोही[1]—वि० [सं० आरोहिन्] [स्त्री० आरोहिणी] १ चढनेवाला। ऊपर जानेवाला। २ उन्नतिशील।

आरोही[2]—सज्ञा पुं० १ सगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो षडज से लेकर निषाद तक उत्तरोत्तर चढता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २ सवार।

आरौ—सज्ञा पुं० [सं० आरव] १ शब्द। ध्वनि। २ आहट। उ०—धूरधुरात हय आरौ पाएँ। चकित विलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [स०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मदार) से सबध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १ शनि। २ यम। ३. वैवस्वत मनु। ४ कर्ण [को०]।

आर्केस्ट्रा—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'आरचेस्ट्रा'।

आर्गल—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्घा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पीले रग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बडा होता है। सारग मक्खी।

आर्घ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ आर्घा नाम की मक्खियो का मधु। सारग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखो को लाभकारी है। यह पकाने से कुछ कडुआ और कसैला हो जाता है।

२ एक प्रकार का महुआ जिसकी सफेद गोद मालवा देश से आती है।

आर्जⓤ—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४९१।

आर्जव—सज्ञा पु० [स०] १ सीधापन। टेढापन' का उलटा। २ सरलता। सुगमता। ३ व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अभिमन्यु [को०]।

आर्ट—सज्ञा पुं० [अं०] १ कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्प-विद्या। दस्तकारी। २ कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३ चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४ विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमे चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयो, विद्याओ और भाषाओ की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यौ०—**आर्ट पेपर**=चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। **आर्टस्कूल**=वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। निबध। २ चीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स ऑव् एसोसिएशन—सज्ञा पुं० [अ०] किसी सस्था या ज्वाइंट स्टाक कपनी या सम्मिलित पूँजी मे खुलनेवाली कपनी की नियमावली।

आर्टिक्यूलेटा—सज्ञा पुं० [अ०] बिना रीढ़वाले ऐसे जतुओ का एक

भेद जिनके शरीर सकुचित रहते हैं, पर चलने की दशा मे फैल जाते हैं, जैसे,—जोक ।

आर्टिलरी—सज्ञा स्त्री० [अ०] तोपखाना ।

आर्टिस्ट—सज्ञा पु० [अ०] वह जो किसी कला मे, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, सगीत, नृत्य आदि) मे कुशल हो ।

आर्डर—संज्ञा पु० (अ० ऑर्डर) १. आज्ञा । हुक्म । २ कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । माँग । जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं ।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं ।

क्रि० प्र०—आना ।—देना ।—मिलना ।

यौ०—**आर्डरबुक**=वह बही जिसमे आदेश या माँग लिखी जाय । **आर्डर सप्लाई** । **आर्डर सप्लायर** ।

३ स्थिरता । शाति । जैसे,—सभा मे बडा हल्ला मचा, लोग 'आर्डर', 'आर्डर', कहने लगे । ४ क्रम । सिलसिला ।

आर्डरी—वि० [अ० आर्डर+हिं० ई (प्रत्य०)] आर्डरसबधी । आर्डर का ।

आर्डिनरी—वि० [अ० ऑर्डिनरी] १ साधारण । सामान्य । मामूली । जैसे,—आर्डिनरी मेंबर । आर्डिनरी शेयर । २ प्रसिद्ध । प्रधान ।

यौ०—**आर्डिनरी स्टाक**=कपनी का प्रधान या असली धन ।

आर्डिनेंस—सज्ञा पु० [अ० ऑर्डिनेन्स] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत मे वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरो पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नए आर्डिनेंस के अनुसार बगाल मे कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

विशेष—भारत मे वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की सम्मति लिए आर्डिनेंस जारी कर सकते थे । ऐसे आर्डिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पडने पर बढाया भी जा सकता है । स्वतत्र भारत मे यह अधिकार राष्ट्रपति को है ।

आर्णव—वि० [स०] अर्णव या समुद्र सबधी [को०] ।

आर्त, आर्त्त—वि० [सं०] [सज्ञा आर्ति] १ पीडित । चोट खाया हुआ । २. दुखित । दुखी । कातर । ३ अस्वस्थ । ४ नश्वर [को०] ।

आर्तगल—सज्ञा पुं० [स०] नीली कटसरैया ।

आर्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] १. पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश ।

आर्तध्यान—सज्ञा पुं० [स०] जैनियो के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुःख हो ।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्त सयोगार्त ध्यान । (२) इष्टार्थ वियोगार्त ध्यान । (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान ।

आर्तध्वनि—सज्ञा स्त्री० [स०] दुखभरी पुकार । दर्दभरी आवाज [को०]

आर्तनाद—सज्ञा पुं० [स०] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुख मे है । दुःखसूचक शब्द ।

आर्तबधु—सज्ञा पुं० [स० आर्तबन्धु] १ दुखियो का सहायक । दीनबंधु । भगवान् । परमात्मा [को०] ।

आर्तव[1]—वि० [स०] [स्त्री० आर्तवी] ऋतु मे उत्पन्न । मौसमी । सामयिक । २ ऋतु सबधी । ३ मासिक स्राव सबधी [को०] ।

आर्तव[2]—वह रज जो स्त्रियो की योनि से प्रति मास निकलता है । पुष्प । रज ।

यौ०—**आर्तव रोग**=स्त्रियो के मासिक धर्म का समयानुसार न होना । यह दो प्रकार का होता है—(१) **रजस्राव**=जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने मे एक से अधिक बार हो । (२) **रजस्तंभ**=जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अतर देकर हो ।

आर्तवाणी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुखसूचक शब्द । आर्तस्वर । उ०—वृद्धो की आर्तवाणी, क्रदन रमणियो का भैरव सगीत बना ।—लहर, पृ० ६५ ।

आर्तवेयी—सज्ञा स्त्री० [स०] रजस्वला स्त्री । ऋतुमति नारी [को०] ।

आर्तसाधु—वि० [स०] दे० 'आर्तबधु' [को०] ।

आर्तस्वर—सज्ञा पु० [स०] दुखसूचक शब्द ।

आर्ति[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश । ३. व्याधि । रोग [को०] । ४ विनाश । बर्बादी (को०) । ५ बुराई । निंदा [को०] । ६ धनुष की कोर (को०) ।

आर्ति[2]†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरती' । उ०—फेरि रसोई मे जाइ मर्म भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मगला आर्ति करि, सिंगार धरते ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १०१ ।

आर्त्विज—वि० [स०] [स्त्री० आर्त्विजा] ऋत्विजसबंधी ।

यौ०—**आर्त्विजी दक्षिणा**=ऋत्विज की दक्षिणा ।

आर्थिक—वि० [स०] १ धनसबधी । द्रव्यसबधी । रुपये पैसे का । माली । जैसे,—आर्थिक दशा । आर्थिक सहायता । उ०—लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।—अपरा०, पृ० १६६ । २. महत्वपूर्ण । महत्व का [को०] । ३. धनयुक्त । धनी [को०] । ४ चतुर । कुशल [को०] । ५ स्वाभाविक । नैसर्गिक [को०] । ६ किसी शब्द के अर्थ से निर्मित [को०] ।

आर्थी—सज्ञा स्त्री० दे० 'कैतवापह्नुति' ।

आर्थोडाक्स—वि० [अ० ऑर्थोडॉक्स] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धात पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धात से टस से मस न होनेवाला । कट्टर सनातनी । जैसे,—परिषद के आर्थोडाक्स हिंदू मेंबरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया ।

आर्द्ध—वि० [स०] आधा । जैसे,—आर्द्धमासिक [को०] ।

आर्द्धिक—वि० स० दे० 'आर्धिक' [को०] ।

आर्द्र—वि० [स०] [सज्ञा आर्द्रता] १ गीला । ओदा । तर । २. सना । लथपथ ।

यौ०—आर्द्रवीर । आर्द्राजिनि ।

आर्द्रक[1]—सज्ञा पुं० [स०] अदरक । आदी ।

आर्द्रक[2]—वि० १ आर्द्रा नक्षत्रसबधी वा आर्द्रा मे उत्पन्न । २. गीला । तर [को०] ।

आर्द्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] गीलापन। शीतलता। ठढक।
आर्द्रपत्रक—सज्ञा पुं० [स०] वश। बाँस [को०]।
आर्द्रभाषा—सज्ञा स्त्री० [स०] मापपर्णी। वनमाष। मसवन।
आर्द्रशाक—सज्ञा पु० [स०] हरी अदरक। हरी आदी [को०]।
आर्द्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सत्ताईस नक्षत्रो मे छठा नक्षत्र।
विशेष—ज्योतिषियो ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं। इस नक्षत्र मे केवल एक ही उज्वल तारा है।
२ वह समय जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र का होता है। प्राय आषाढ के आरभ में यह नक्षत्र उगता है। इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है। किसान इस नक्षत्र मे धान बोते हैं। उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है। उ०—आर्द्रा धान पुनर्वसु पैया। गा किसान जब बोया चिरैया (शब्द०)। ३. ११ अक्षरो का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण मे जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण मे दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते है। वृत्ति उपजाति के अतर्गत है। उ०—साधो भलो योगन पै बढाओ। खडे रहो क्यो न खर्चे पचाओ। टीके सु छापे बहुतै लगाओ। वृथा सबै जो हरि को न गाओ (शब्द०)।
यौ०—आर्द्रानुबधक = केतु।
४ अदरक। आदी। ५ अतीस।
आर्द्रावीर—सज्ञा स्त्री० [स०] वाममार्गी।
आर्द्राशनि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्युत्। बिजली। २. एक अस्त्र।
आर्धिक—सज्ञा पुं० [स०] १ खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोनेवाला। २ पाराशर स्मृति के अनुसार वैश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक सकर जाति।
विशेष—ये लोग ब्राह्मणो की पक्ति मे भोजन कर सकते है। मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यान्न है।
आर्नव—वि० [स० आर्णव] आर्णव या समुद्रसबधी। उ०—आर्नव नाव विहग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर।—नद ग्र०, पृ० १३२।
आर्म—सज्ञा पु० [अ०] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।
आर्मपुलिस—सज्ञा स्त्री० [अ० आर्म्ड पोलिस] हथियारबद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।
आर्मर्डकार—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियो से बचाव के लिये लोहा मढा रहता है। बख्तरदार गाडी।
विशेष—ऐसी गाडियाँ सेना के साथ रहती हैं।
आर्मी—सज्ञा स्त्री० [अ०] सेना। फौज। जैसे,—इडियन आर्मी।
विशेष—आर्मी शब्द० देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।
आर्य[1]—वि० [स०] [स्त्री० आर्या] १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ बडा। पूज्य। ३. श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न। मान्य। ४ आर्य जाति सबंधी। आर्य जाति का।
आर्य[2]—सज्ञा पु० [सं०] १. श्रेष्ठ पुरुष। श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न।
विशेष—स्वामी, गुरु और सुहृद् आदि को सबोधन करने मे इस शब्द का व्यवहार करते है। छोटे लोग बडे को जैसे,—स्त्री पति को, छोटा भाई बडे भाई को, शिष्य गुरु को आर्य या आयपुत्र कहकर संबोधित करते है। नाटको मे नटी भी सूत्रधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है।
२ मनुष्यो की एक जाति जिसने ससार मे बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी।
विशेष—ये लोग गोरे, सुदरशरीर और ऊँचे कद के होते हैं। इनका माथा ऊँचा, बाल घने, नाक उठी और नुकीली होती है। प्राचीन काल मे इनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैस्पियन सागर से लेकर गगा यमुना के किनारो तक था। इनका आदिस्थान कोई मध्य एशिया, कोई स्कैडिनेविया और कोई उत्तरीय ध्रुव बतलाते है। ये लोग खेती करते थे, पशु पालते थे, धातु के हथियार बनाते थे, कपडा बुनते थे और रथ आदि पर चलते थे।
३. सावर्णि मनु का एक पुत्र [को०]। ४ बौद्ध धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति [को०]।
यौ०—आर्य अष्टागमार्ग = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिससे निर्वाण या मोक्ष मिलता है। ये आठ है-(१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् सकल्पना, (३) सम्यक् वाचा, (४) सम्यक् कर्मणा, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।
यौ०—आर्यक्षेत्र। आर्यपुत्र। आर्यभूमि।
आर्यक—सज्ञा पुं० [स०] १ आदरणीय जन। पूज्य व्यक्ति। २. पितामह। ३ एक श्राद्ध जो पितरो के समानार्थ किया जाता है [को०]।
आर्यका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रेष्ठ एव आदरणीय महिला। २. एक नक्षत्र का नाम [को०]।
आर्यकाव्य—सज्ञा पुं० [स०] आर्यजातीय काव्य। भारतीय आर्यो का काव्य। उ०—वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ।—रस०, पृ० ११०।
आर्यदेश—सज्ञा पुं० [स०] वह देश जिसमे आर्यो का निवास है [को०]।
आर्यधर्म—सज्ञा पु० [स०] सदाचार। उ०—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता।—प्रणिमा, पृ० ३५।
आर्यपुत्र—सज्ञा पुं० [स०] आदरसूचक शब्द०। दे० 'आर्य'।
आर्यभट्ट—सज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषशास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होने भारत मे सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था। ये ईसा की पाँचवी शताब्दी मे हुए थे [को०]।
आर्यभाव—सज्ञा पु० [स०] सदाचार। शिष्टाचार [को०]।
आर्यमिश्र[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ सस्कृत नाटको मे गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं।
आर्यमिश्र[2]—वि० [स०] पूज्य। गौरवान्वित [को०]।
आर्यरूप—वि० [स०] ढोगी। पाखडी [को०]।
आर्यलिंगी—वि० [स० आर्यलिङ्गिन्] दे० 'आर्यरूप' [को०]।
आर्यव—सज्ञा पुं० [स०] १ उत्तम आचार। सदाचार। २. न्यायोचित व्यवहार [को०]।

आर्यवाक्—वि० [स०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०]।
आर्यवृत्त—वि० [स०] धार्मिक। सदाचारी [को०]।
आर्यवेश—वि० [स०] १ आर्यों का सा सभ्य वेश धारण करनेवाला। २ पाखंडी। ढोंगी [को०]।
आर्यशील—वि० [स०] पुण्यचरित्। धर्मात्मा [को०]।
आर्यश्वेत—वि० [स०] सम्माननीय। आदरणीय [को०]।
आर्यसत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ महान् सत्य। २ बौद्धधर्म के चार सिद्धांत जो उसके आधारभूत तत्व माने जाते है। वे हैं (१) जीवन दुःखमय है, (२) जीवनेच्छा दुःख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दुःख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०]।
आर्यसमाज—संज्ञा पुं० [स०] एक धार्मिक समाज या समिति जिसके संस्थापक स्वामी दयानंद थे।
विशेष—इस समाज के प्रधान दस नियम है। इस मत के लोग वेदों के संहिता भाग को अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण मानते है। मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नहीं करते। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं।
आर्यसमाजी—संज्ञा पुं० [स० आर्यसमाजिन्] आर्यसमाज का अनुयायी। आर्यसमाज के सिद्धांतों को माननेवाला [को०]।
आर्यसिद्धांत—संज्ञा पुं० [स० आर्यसिद्धान्त] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०]।
आर्यहृद्य—वि० [सं०] सज्जनों को प्रिय लगनेवाला [को०]।
आर्या—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पार्वती। २ सास। ३ दादी। पितामही।
विशेष—इस शब्द का व्यवहार पद में श्रेष्ठ या बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के लिये होता है।
४ अर्धमात्रिक छंद का नाम। इसके पहले और तीसरे चरण में बारह बारह तथा दूसरे और चौथे चरण में १५ मात्राएँ होती हैं।
विशेष—इस छंद में चार मात्राओं के गण को समूह कहते हैं। इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चरण में जगण का निषेध है। छठे गण में जगण होना चाहिए। जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौ यामा, जपौ यही नामा। त्यागौ सारे कामा, पैहौ बैकुंठ विश्रामा। आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं—(१) आर्या या गाहा, (२) गीति या उग्गाहा (३) उपगीति या गाहू, (४) उद्गीति या विग्गाहा और (५) आर्यागीति या स्कंधक या खंधा।
यौ०—आर्यासप्तशती = गोवर्धनाचार्य का आर्या छंद में निबद्ध लगभग ७०० छंदों का संस्कृत मुक्तक काव्य।
आर्यागीत, आर्यागीति—संज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम चरण में १२ और सम चरणों में २० मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण नहीं होना तथा अंत में गुरु होता है। जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौयामा। जपौ यही नामा को। त्यागौ सारे कामा, पैहौ सोनो सुनो हरि धामा को।
आर्यावर्त—संज्ञा पुं० [स०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर है। मनु ने इस देश को पवित्र कहा है।
आर्यावर्तीय—वि० [सं०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला। २ आर्यावर्त संबंधी।
आर्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुलीना और सदाचारिणी स्त्री। २ एक नक्षत्र का नाम। ३. भागवत पुराण में वर्णित एक नदी का नाम [को०]।
आरलौ—संज्ञा पुं० [हिं० अड] १ अड़। हठ। २. निवेदन। अनुरोध। उ०—वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ। पठै सुत काज क्यों कहति हौ लाज तजि, पाइ परिकै महरि करनि आरयौ।—सूर०, १०। १३९६।
आर्ष—वि० [स०] १ ऋषिसंबंधी। २ ऋषिप्रणीत। ऋषिकृत। ३ वैदिक। ४ ऋषिसेवित।
यौ०—आर्षक्रम। आर्षग्रंथ। आर्षपद्धति। आर्षप्रयोग। आर्षविवाह।
आर्षक्रम—संज्ञा पुं० [स०] ऋषियों की प्रथा। ऋषियों की प्राचीन परिपाटी।
आर्षग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० आर्षग्रन्थ] ऋषियों द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रंथ। वेद। शास्त्र। रामायण। पुराण [को०]।
आर्षप्रयोग—संज्ञा पुं० [स०] १ शब्दों का वह व्यवहार जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो।
विशेष—प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में प्रायः व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। ऐसे प्रयोगों को व्याकरण की रीति से अशुद्ध न कहकर आर्ष कहते है।
२ छंद में कवियों का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग।
आर्षभ—वि० [स०] १. सांड से उत्पन्न। २ ऋषभसंबंधी। ऋषभ गोत्र में उत्पन्न।
आर्षभि—संज्ञा पुं० [स०] १ ऋषभ का वंशज। २ भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०]।
आर्षभी—संज्ञा स्त्री० [स०] कपिकच्छु। केवाँच।
आर्षविवाह—संज्ञा पुं० [स०] आठ प्रकार के विवाहों में तीसरा जिसमें वर से कन्या का पिता दो बैल शुल्क में लेकर कन्या देता था।
आर्षेय—संज्ञा पुं० [स०] १ ऋषियों का गोत्र और प्रवर। २ मंत्रद्रष्टा ऋषि। ३. पठन पाठन, यजन याजन, अध्ययन अध्यापन आदि ऋषि कर्म।
आर्हत—वि० [सं०] अर्हत या जैन सिद्धांत को माननेवाला अथवा उसमें मत्र रखनेवाला [को०]।
आलंकारिक—वि० [स० आलङ्कारिक] १ अलंकारसंबंधी। २ अलंकारयुक्त। ३ अलंकार जाननेवाला।
आलग[1]—वि० [स० आलग्न] आकर। संलग्न। लगा हुआ [को०]।
आलग[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ियों की संख्या।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः घोड़ियों के संबंध में होता है।
क्रि० प्र०—पर होना।—पर आना।
आलंब—संज्ञा पुं० [स० आलम्ब] १ अवलंब। आधार। सहारा। २.

गति। शरण। ३ अधिष्ठान [को०]। ४ लटकी हुई वस्तु वा पदार्थ [को०]।

आलवन—सज्ञा पु० [स० आलम्बन] [वि० आलबित] १ सहारा। आश्रय। अवलबन। २ रस मे एक विभाग जिसके अवलबन से रस की उत्पत्ति होती है। जैसे,—(क) शृगार रस मे नायक और नायिका, (ख) रौद्र रस मे शत्रु, (ग) हास्य रस मे विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस मे शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस मे शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस मे भयकर रूप, (ज) वीभत्स रस मे घृणित पदार्थ, पीव, लोहू, मास आदि (झ) अद्भुत रस मे अलौकिक वस्तु, (ट) शात रस मे अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस मे पुत्रादि। ३ बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान। यह छह प्रकार का है—रूप, रस गध, स्पर्श शब्द और धर्म। ४ साधन। कारण। ५ आधार [को०]। ६ योगियो द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०]। ७ सहारा लेना। आश्रय लेना [को०]।

आलवनता—सज्ञा स्त्री० [स० आलवन + ता (प्रत्य०)] आलवन का गुण, स्वभाव या धर्म। उ०—उसकी आलवनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बडी चौडी नीव पर ठहरी है।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ६०।

आलवित—वि० [स० आलम्बित] आश्रित। अवलबित।

आलवितबिंदु—सज्ञा पु० [स० आलम्बित बिन्दु] प्रलबित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जजीरो के छोर खभो से लगे रहते हैं।

आलवी—वि० [स० आलम्बिन्] झूलने या लटकनेवाला। उ०—सब पर सोहत गुजमाल वनमाल सहित आलबी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१२।

आलभ—संज्ञा पु० [स० आलम्भ] १ छूना। मिलना। पकडना। २ उत्पाटन। उखाडना [को०]। मरण। वध। हिंसा।

यौ०—अश्वालभ। गवालभ।

आलभन—सज्ञा पु० [स० आलम्भन] दे० 'आलभ'।

आलभी—वि० [स० आलम्भिन्] १ छूनेवाला। २ पकडने वाला [को०]।

आल[1]—सज्ञा पुं० [स०] हरताल।

आल[2]—सज्ञा स्त्री० [स० अल = भूषित करना] १ एक पौधा जिसकी खेती पहले रग के लिये बहुत होती थी।

विशेष—यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है। इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड होता है। इसके दो भेद हैं—एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल। छोटी आल फसल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बडे पेडो के बीज से आषाढ मे बोई जाती है। इसकी छाल और जड गड़ासे से काटकर हौज मे सडने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनो मे रग तैयार होता है। कहते हैं, इससे रँगे हुए कपडे मे दीमक नही लगती।

२ इस पौधे से बना हुआ रग।

आल[3]—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक कीडा जो सरसो की फसल को हानि पहुँचाता है। माहो। २ प्याज का हरा डठल। ३ कद्दू। लौकी।

आल[4]—सज्ञा पुं० [अनुव०] झंझट। बखेडा। उ०—(क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल। राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—आल जजाल, आल जँजाल, = झझट। बखेडा। उ०—कचन केवल हरिभजन, दूजा काय कबीर। झूठा आल जँजाल तजि, पकडा साँच कबीर।—कबीर (शब्द०)। आलजाल = (१) वे सिर पैर की बात। इधर उधर की बात (२) अड बड या इधर उधर की वस्तु।

आल[5]—सज्ञा पु० [स० ओल या आर्द्र] १ गीलापन। तरी। जैसे,—ऐसा बरसा कि आल मे आल मिल गई। २ आँसू। उ०—मिसक्यो जल किन लेत दृग, भर पलकन मैं आल। बिचलत खँचत लाज को मचलत लखि नँदलाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

आल[6]—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ बेटी की सतति।

यौ०—आल औलाद = बाल बच्चे।

२ वश। कुल। खानदान।

आल[7]—संज्ञा पुं० [देश०] गाँव का एक भाग।

आल[8]—वि० [स० ओल या आर्द्र] गीला। कच्चा। हरा। उ०—आलहि बाँस कटाइन डँडिया फदाइन हो साधो।—पलटू०, भा० ३, पृ० १२।

आल[9]—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का काँटीला पौधा। स्याह काँटा किंगरई। वि० दे० 'किंगरई'।

आलकसी—सज्ञा पु० [स० आलस्य] [वि० आलकसी, क्रि० अ० अलकसाना] आलस्य।

आलक्षण—सज्ञा पुं० [स०] १ परीक्षण। २ निरीक्षण। देखना। समझना [को०]।

आलक्षण्य—सज्ञा पुं० [स०] १ दुर्भाग्य। २ अपराध [को०]।

आलक्षि—वि०[स०]निरीक्षक। लक्षित करने या समझनेवाला[को०]।

आलक्षित—वि० [स०] १ सभी भाँति देखा और समझा हुआ। २. अनुभव किया हुआ [को०]।

आलक्ष्य—वि० [स०] १ दिखाई पडने लायक। प्रकट। २ जो कुछ कुछ दिखाई पडे। पूरी तौर से न दिखाई पडनेवाला [को०]।

आलड्वाल—सज्ञा पु० [अनु०] आडबर। साज सज्जा।

आलगर्द—संज्ञा पुं० [स०] जल मे रहनेवाला एक साँप [को०]।

आलथीपालथी—सज्ञा स्त्री० [हिं० पालथी] बैठने का एक आसन जिसमे दाहिनी एँडी बाएँ जघे पर और बाई एडी दाहिने जघे पर रखते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

आलन—सज्ञा पुं० [देश०] १ घास भूसा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी मे मिलाया जाता है। २ खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कडे पाथने के गोबर मे मिलाया जाता है। ३ बेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है।

आलना—सज्ञा पुं० [स० आलय, फा० लाना] घोसला।

आलपाका—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलपाका'।

आलपीन--संज्ञा स्त्री० [पुर्त० आलफिनेत] एक घुंडीदार छोटी सूई। जिसे अँगरेजी मे पिन कहते हैं।

आलबिल(पु)--सज्ञा पु० [स० ऐलबिल] कुबेर।-नद ग्र०, पृ० २१।

आलम[1]-सज्ञ पुं० [अ०] १ दुनिया। ससार। जगत्। जहान। उ०-कई आलम किए है कत्ल उनने। करे क्या एक्ला हातिम विचारा।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०। २ अवस्था। दशा। जैसे,-वे बेहोशी के आलम मे है। ३ जनसमूह। बडी जमात। ४ हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम।

आलम[2]--सज्ञा पु० १ एक प्रकार का नृत्य। उ०--उलथा टेंकी आलम सदिड। पद पलटि हृत्मयी निशकचिड।-केशव (शब्द०)।

आलमन--सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रहण। पकडना। २ छूना। स्पर्शन। ३ मारना। हिंसन। वध करना [को०]।

आलमनक--सज्ञा पुं० [पुर्त०] तिथिपत्र। पचाग। जत्री।

आलमारी--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलमारी'।

आलय--सज्ञा पुं० [स०] १ घर। गृह। मकान। २ स्थान।

यौ०--अनाथालय। देवालय। विद्यालय। शिवालय।

आलयविज्ञान--सज्ञा पुं० [स०] अहकार का आधार (बौद्ध)।

आलर्क--वि० [स०] १ अलर्क से सबधित। अलर्क का। २ पागल कुत्ते का (जहर) [को०]।

आलवण्य--सज्ञा पु० [स०] १ लावण्यहीनता। असुदरता। २ स्वादविहीनता [को०]।

आलवाल--सज्ञा पुं० [स०] थाल। अवाल।

आलस[1]--वि० [स०] आलसी। सुस्त। काहिल।

आलस[2](पु)--सज्ञा पुं० [स० आलस्य] [वि० आलसी] आलस्य। सुस्ती। उ०-तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाही।-मानस, १।८१।

आलसी--वि० [हिं० आलस+ई (प्रत्य०)] सुस्त। काहिल। धीमा। अकर्मण्य। उ०-आलसी अभागे मोसे तें कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम, अवध महरु।-तुलसी ग्र, पृ० ५८१।

आलस्य--सज्ञा पुं० [स०] कार्य करने मे अनुत्साह। सुस्ती। काहिली।

आला[1]--सज्ञा पु० [स० आलय] ताक। ताखा। अखा।

आला[2]--वि० [अ० आलह्] १ औवल दर्जे का। सबसे बढिया। श्रेष्ठ। उ०-कूँडा आला चाम का, भीतर भरा कपूर। दरिया बासन क्या करै, वस्तु दिखावै नूर।--दरिया० बानी, पृ० ३६। २ सितार के उतरे और मुलायम स्वर।

आला[3]--सज्ञा पु० [अ०] १ औजार। हथियार। २ उपकरण। यत्र। साधन [को०]।

आला[4]--सज्ञा पु० [स० अलात] कुम्हार का आँवा। पजावा।

आला[5](पु)†--वि० [स० आर्द्र, प्रा० अल्ल] १ गीला। ओदा। नम। भीगा। उ० -आडे दै आले बसन जाडे हूँ की राति। साहसु करै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति।-बिहारी र०, दो० २८३। २ हरा। टटका। ताजा।

आलाइश=सज्ञा स्त्री० [फा०] १ गदी वस्तु। मल। गलीज। २ घाव का गदा खून, पीव वगैरह। ३. पेट के भीतर की अँतडी आदि।

आलाटाली--सज्ञा पु० [आला=अनु०+हिं० टालना+ई (प्रत्य०)] टालमटोल। उ०-ये इनकी आलाटाली है पर अपनी बात का प्रमाण देने के लिये मैं इनमे कोई चीज ले लूँ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

आलात[1]--सज्ञा पुं० [स०] लकडी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। जलती लुआठी। लुक।

यौ०--आलातक्रीडा। आलातचक्र।

आलात[2]--सज्ञा पुं० [अ०] औजार।

यौ०--आलात कारतकारी=सेती मे काम आनेवाले हल, पहटा आदि यत्र।

आलात[3]--सज्ञा पु० [देश०] जहाज का रस्सा।

यौ०--आलाताखाना=जहाज मे रस्से वगैरह रखने की कोठरी।

आलातचक्र--सज्ञा पु० [स०] वह मडल जो जलते हुए लुक को वेग के साथ घुमाने से दिखाई पडता है।

आलान--सज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी बाँधने का खभा या खूँटा। २ हाथी बाँधने का रस्सा या जजीर। ३ बधन। रस्सी।

आलाप--सज्ञा पु० [सं०] १ कथोपकथन। भाषण। बातचीत।

यौ०--वार्तालाप।

२ सगीत के सात स्वरो का साधन। तान।

क्रि० प्र०--करना।--लेना।

३ प्रश्न। जिज्ञासा [को०]। ४ सगीत मे सात स्वर [को०]।

आलापक--वि० [सं०] १ बातचीत करनेवाला। २ गानेवाला।

आलापचारी--सज्ञा स्त्री० [स० आलाप+चारी] स्वरो को साधने की क्रिया। तान लडाने की क्रिया। जैसे,--वहाँ तो खूब आलाप-चारी हो रही है।

आलापन--सज्ञा पु० [स०] १ स्वस्तिवाचन। स्वस्तिपाठ। २. बातें करना। ३ सगीत मे आलाप लेने की क्रिया [को०]।

आलापना--क्रि० स० [स० आलापन या आलाप+हिं० ना (प्रत्य०)] गाना। सुर खीचना। तान लडाना।

आलापित--वि० [स०] १ कथित। सभाषित। २ गाया हुआ।

आलापिनी--सज्ञा स्त्री० [स०] १ बाँसुरी। वशी। २ तुमडी।

आलापी--वि० [स० आलापिन्] [वि० स्त्री० आलापिनी] १ बोलनेवाला। उ०--माधौ जू, मो तें और न पापी। मन क्रम बचन दुसह सबहिन सौं कटुक बचन अबलापी। --सूर० १।१४०। २ आलाप लेनेवाला। तान लगानेवाला। गानेवाला।

आलाबु, आलाबू--सज्ञा पुं० [स०] अलाबु। लौकी [को०]।

आलारामी--वि० [सं० आलस्य ?] १ बेपरवाह। निर्द्वंद्व। २ जहाँ किसी बात की पूछताछ न हो। बेपरवाही का।

यौ०--आलारामी कारखाना=अंधेरखाता।

आलावर्त--सज्ञा पुं० [सं०] कपडे का पंखा।

आलास्य--सज्ञा पुं० [सं०] मगर नामक जलजतु [को०]।

आलिंग—सज्ञा पु० [स० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—बिन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखै। देखे ते चित होत अग आलिंग विसेखै।—व्रज ग्रं०, पृ० ६०।

आलिंगन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य] गले से लगाना। हृदय से लगाना। परिरभण। उ०—अजहूँ न लक्ष्मी चद्रगुप्तहि गाढ आलिंगन करै।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १।

विशेष—यह सात प्रकार की बहिर्रतियो मे गिना गया है, जैसे—आलिंगन, चुवन, परस, मर्दन, नख-रद-दान। अधर-पान सो जाहिए, बहिरति सात सुजान।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १४।

आलिंगना Ⓤ—क्रि० स० [स० आलिङ्गन] अँकवार भरना। भेंटना। लपटाना। हृदय से लगाना। गले लगाना। उ०—प्रिय चूम्यो मुँह चूमि होन रोमाचित सगवग। आलिंगत मदमानि पीय अगनि मेले अग।—व्याम (शब्द०)।

आलिंगित—वि० [स० आलिङ्गित] गले लगाया हुआ। हृदय से लगाया हुआ। परिरभित। उ०—प्रतिजन प्रतिमन आलिंगित तुमसे हुई सभ्यता यह नूतन।—प्रनामिका, पृ० २१।

आलिंगी—वि० [स० आलिङ्गिन्] आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य[1]—वि० [स० आलिङ्ग्य] गले लगाने योग्य। हृदय से लगाने योग्य। परिरभण करने योग्य।

आलिंग्य[2]—सज्ञा पु० एक प्रकार का मृदग।

आलिंजर—सज्ञा पु० [स०] बडा घडा या झंझर [को०]।

आलिंद, आलिंदक—सज्ञा पुं० [स० आलिन्द, आलिन्दक] दे० 'अलिंद' [को०]।

आलिंपन—सज्ञा पु०[स० आलिम्पन] १. दीवार, फर्श आदि की सफेदी या लिपाई पुताई काम। २ लीपना। पोतना [को०]।

आलि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सखी। महेली। वयस्या। २ बिच्छू। ३ भ्रमरी। ४ पक्ति। अवली। ५ सेतु। बाँध। ६. रेखा।

आलिखित—वि० [स०] १ चारो ओर रेखाकित। २ चित्रित। ३ लिखित। लिखा हुआ [को०]।

आलिप्त—वि०[स० आलिप्त] अलेप। निर्लेप। उ०—लिप्त नाहिं आलिप्त रहत है ज्यो रवि जोति समावै।—जग० बानी पृ० ११६।

आलिम—वि० [अ०] विद्वान्। पडित। जानकार।

आली[1]—वि० [स०] सखी। सहेली। गोइयाँ। उ०—एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।—मानस, १।२२६।

आली[2]—सज्ञा स्त्री० [देश०] चार बिस्वे के बराबर का एक मान।

विशेष—यह शब्द गढवाल और कुमाऊँ मे बोला जाता है।

आली[3] Ⓤ†—वि० स्त्री० [स० आर्द्र] भीगी हुई। गीली। तर।

आली[4]—वि० [अ०] बडा। उच्च। श्रेष्ठ। माननीय।

यौ०—आलीशान। आलीजाह। जनाब आली।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्दो के साथ होता है।

आली[5]—[वि० आल] आल के रंग का। जैसे,—आली रग।

आली[6]—सज्ञा स्त्री० [स० आलि] पक्ति। अवली। उ०—बरनै दीन-दयाल बैठि हसन की आली, मद मद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीन० ग्र०, पृ० २०६।

आलीजा Ⓤ—वि० [अ० आलीजाह] दे० 'आलीजा'। उ०—आलीजा इक बार, हम सबको लै साथ में। जगत हरनि सिंगार, सेवौ ये अरजैं करैं। हम्मीर०, पृ० २।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे दर्जे का। उच्चपदस्थ। श्रीमान्।

आलीढ[1]—सज्ञा पुं० [स०] दाहिनी जाँघ को फैलाकर और बाईं जाँघ को मोडकर बाण चलाने की मुद्रा [को०]।

आलीढ[2]—वि० १ खाया हुआ। भुक्त। २ चाटा हुआ। ३. घायल। चोट खाया हुआ [को०]।

आलीढक—सज्ञा पुं० [स०] हाथ के द्वारा किए हुए बछडे की उछल कूद [को०]।

आलीन[1]—वि० [स०] १ परिरब्धित। आलिंगित। २ विलग्न हुआ। श्लिष्ट। ३. द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आलीन—सज्ञा पु० १ टीन। २. सीसा। ३. सपर्क [को०]।

आलीनक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आलीन' [को०]।

आलीशान—वि० [अ०] भव्य। भडकीला। शानदार। विशाल।

आलुचन—सज्ञा पुं०[स० आलुञ्चन] फाडना। चीरना। छेदना[को०]।

आलुठन—सज्ञा पु०[स० आलुण्ठन] चोरी करना। छीनना। अपहरण करना। लूटना [को०]।

आलु[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार का मूत्र। २ आबनूस। ३ नाव या बेडा। ४ पेचक। उल्लू [को०]।

आलु[2]—सज्ञा स्त्री० पानी रखने की झारी। मटकी [को०]।

आलुक—सज्ञा पुं० [स०] १ आलूकद। २. शेषनाग।

आलुल—वि० [स०] कपित। हिलता हुआ [को०]।

आलुलायित—वि० [स० आलुलित > आलुलायित = हिलता हुआ। कपित। उ०—वजी निशा के बीच आलुलायित केशो के तम में।—नील०, पृ० १०।

आलुलित—वि० [स०] १ विचलित। २ क्षुब्ध [को०]।

आल—सज्ञा पु० [सं० आलु] एक प्रकार प्रसिद्ध कद।

विशेष—क्वार कार्तिक मे क्यारियो के बीच मेड बनाकर आलू बोए जाते हैं जो पूस मे तैयार हो जाते हैं। एक पौधे की जड मे पाव भर के लगभग आलू निकलता है। भारतवर्ष मे अब आलू की खेती चारो ओर होने लगी है. पर पटना, नैनीताल और चीरापूँची इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। नैनीताल के पहाडी आलू बहुत बडे बडे होते हैं। आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफेद। यह पौधा वास्तव मे अमेरिका का है। वहाँ से सन् १५८० ई० में यह यूरोप मे गया। भारतवर्ष मे इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण मे आता है जो सन् १६१५ ई० मे सर टामस रो को आसफ खाँ की ओर से अजमेर मे दिया गया था। जब पहले पहल आलू भारतवर्ष मे आया था तब हिंदू लोग उसे नही खाते थे,

केवल मुसलमान और अँगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इसका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुआ' के लिये। फारसी में कुछ गोल फलों के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—आलूबुखारा, शफतालू आलूचा।

यौ०—रतालू। शफतालू।

आलू[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलु] छोटा जलपात्र। झारी। लुटिया। घटी।

आलूचा—संज्ञा पुं० [फा० आलूचह्] १ एक पेड़।

विशेष—यह पेड़ पश्चिमी हिमालय पर गढ़वाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पंजाब इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीला और स्वाद में खटमीठा होता है। अफगानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड़ से एक प्रकार का पीला गोंद निकलता है। फल की गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर में रंगीन और नक्काशीदार संदूक बनाते हैं।

पर्या०—भोटिया बदाम। गर्दालू।

आलूचाप—संज्ञा पुं० [हिं० आलू + अ० चॉप] आलू का पकवान जो उबाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियों की तरह बनाकर घी या तेल में तलकर बनाया जाता है। उ०—अंत में मैंने 'विशुद्ध' आलूचाप का प्रस्ताव कैलास के सामने रखा।—सन्यासी, पृ० ३४०।

आलूदम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दमआलू'।

आलूदा—वि० [फा० आलूदह] लथपथ। लिथड़ा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अश्क खूँ आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [सं०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूबालू—संज्ञा पुं० [सं० आलू + बालू (अनु०)] आलूचे की तरह का एक पेड़ जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है। योरप में इसके फलों का आचार और मुरब्बा डालते हैं, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बीन और बाँसुरी आदि बाजे बनाते हैं।

पर्या०—गिलास। ओलची।

आलूबुखारा—संज्ञा पुं० [फा० आलू बुखारह] आलूचा नामक वृक्ष का सुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय में भी होता है, परंतु बुखारा प्रदेश का उत्तम समझा जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह आँवले के बराबर और आड़ू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। हिंदुस्तान में आलूबुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शांत करता है। इसी से रोगियों को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतालू—संज्ञा पुं० [हिं० आलू + फा० शफतालू] (निरर्थक)] लड़कों का एक खेल जो पश्चिम में दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक लड़का दूसरे को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आँखें अपने हाथों से बंद कर लेता है। तब एक तीसरा लड़का उसके पीछे खड़ा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोड़ा बना हुआ लड़का उँगलियों की संख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह हटा हो जाता है और उस उँगली बुझानेवाले लड़के को घोड़ा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिखावट। लिपि। लिखाई। २ लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (रमाण आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख[२]ⓤ—वि० [सं० अलक्ष्य, प्रा० अलक्ख] जो लक्ष्य में न आए। अलक्ष्य। उ०—अकह आलेख को देखिया कैसो भयो ब्रह्मरागी।—केशव० ग्रंथा०, पृ० १०।

आलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चितेरे की भाँति अनेक सुंदर रूप या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि ग्र०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रंथ के आलेखन या संपादन में संपादन समिति के मित्रों के साथ विविध समिति के संयोजकों तथा अन्य मित्रों का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० २।

आलेख्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र। तसवीर।

आलेख्य[२]—वि० लिखने योग्य।

यौ०—आलेख्य विद्या = मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेप। २ उपलेप। पलस्तर।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करने का कार्य।

आलैⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आलय] घर। निधान। भवन। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहि बहुत दुख सालै।—सूर०, १०। ४७७२।

आलोक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आलोक्य] १. प्रकाश। चाँदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—आलोकदायक। आलोकमाला।

३ दर्शन। दीदार।

आलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [सं०] १ देखा हुआ। २ प्रकाशित। उद्भासित।

आलोचⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आ + लुञ्चन] खेतों में गिरा हुआ अन्न बीनना। गीला। (डिं०)।

आलोचक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आलोचिका] १ देखनेवाला। २ जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जाँचनेवाला।

आलोचणⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० आलोच] दे० 'आलोच'।

आलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्शन। २ गुण दोष का विचार। विवेचन। जाँच। ३ जैनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।

आलोचित—वि० [सं०] जिसके गुण दोष का निरूपण किया गया हो। विचार किया हुआ।

आलोडन—सज्ञा पुं० [स० आलोडन] १ मथना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

आलोडना Ⓤ—क्रि० स० [सं० आलोडन] १ मथना। २ हिलोरना। ३ खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

आलोडित—वि० [स० आलोडित] १ मथा हुआ। २ हिलोरा हुआ। ३ सुचिंतित। सोचा हुआ।

आलोप—सज्ञा पुं० [स०] १ लुप्त करना। २ पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

आलोल—वि० [सं०] १ कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चचल। २ क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,—केश [को०]।

आलोलित—वि० [स०] क्षुब्ध किया हुआ। आदोलित [को०]।

आल्टरनेटिव—सज्ञा पुं० [अ०] १ चारा। दूसरा उपाय। उ०—इनमे से किसी को एप्रूवर बनाना होगा, और कोई आल्टरनेटिव नही है।—गबन, पृ० २८२।

आल्वार—सज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के मत उपदेशको की श्रेणी।

आल्हा—सज्ञा पुं० [देश०] १ ३१ मात्राओं के एक छद का नाम जिसे वीर छद भी कहते हैं। इसमे १६ मात्राओं पर विराम होता है। जैसे,—सुमिरि भवानी जगदंबा को श्री सारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावो माता कठ विराजो आय। २ महोबे के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय मे था। ३ बहुत लबा चौडा वर्णन।

मुहा०—आल्हा गाना = अपना वृत्तात सुनाना। आपबीती सुनाना।

यौ०—आल्हा का पँवरा = व्यर्थ का लबा चौडा वर्णन। वितडावाद।

आवतक—स० [स० आवन्तक] अवती से सबधित [को०]।

आवतिक—वि० [स० आवन्तिक] दे० 'आवतक'।

आवती सज्ञा स्त्री० [सं० आवन्ती] अवति और उसके आस पास बोली जानेवाली प्राचीन भाषा।

आवत्य—वि० [स० आवन्त्य] १ अवति देश का। २ आवति देश का निवासी।

आवदन—सज्ञा पुं० [सं० आवन्दन] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

आवँ Ⓤ†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँवा'।

आव Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० आयु] आयु। जिदगी। उ०—मोहन दृग इन दृगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखो वह आव मे, विधि लेखनि नै छेक।—रसनिधि (शब्द०)।

आवआदर†—सज्ञा पुं० [हिं० आना + स० आदर] आवभगत। आदर-सत्कार।

आवक—सज्ञा पुं० [हिं० आवना + क (प्रत्य०)] आमद। पहुँच।

यौ०—आवकजावक = आनाजाना।

आवज Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० आतोद्य, प्रा० आओज्ज, आवज्ज] एक पुराना बाजा जो ताशे के ढग का होता है। उ०—उद्धत सुजान सुत बुद्धिबलवान सुनि, दिल्ली के दरनि बाजै आवज उछाही के।—सुजान०, पृ० १०१।

आवझ Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं० आवज] दे० 'आवज'। उ०—पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि महनाइन सो मन मोहैं।—रामच०, पृ० ४४।

आवटना[1] Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] १ हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ सकल्प विकल्प। ऊहापोह। उ०—जा घट जान विनान है, तिस घट आवटना घना। बिन खाँडे सग्राम है नित उठि मन सो जूझना।—कबीर (शब्द०)।

आवटना[2] Ⓤ—क्रि० स० गरम करना। औटाना। खौलाना।

आवटना[3] Ⓤ—क्रि० अ० गरम होना। औटना। खौलना। उबलना। उ०—जिहि निदाघ दुपहर रहै भई माघ की राति। तिहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।—बिहारी र० दो० २४४।

आवट्ट Ⓤ—सज्ञा पुं० [स० आवर्त, प्रा० आवट्ट] दे० 'आवर्त'। उ०—ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। नय लप्प मान आवट्ट मोउ।—पृ० रा०, ६१। १०००।

आवडना Ⓤ—क्रि० अ० [स० आतुष्ट, प्रा० आउट्ठ, गु आवडनु] समझना। पसद आना। उ०—घडी एक नहि आवडे, तुम दरसन बिन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।—सत बानी०, भा० २, पृ० ७०।

आवध Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं० आयुध] दे० 'आयुध'। उ०—(क) दादू सोधी नही सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावै बापुडे, आवधनी लिये हाथ।—दादू० बानी, पृ० २२। (ख) मनो आवध बज्जि जो बज्र बद्दर।—पृ० रा०, २। १०१।

आवन Ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन] आगमन। आना। उ०—(क) द्वारे ठाढे हैं द्विज बावन। चारो वेद पढत मुख आगर अति सुकठ सुर गावन। बानी मुनि बलि पूछन लागे इहाँ विप्र केहि कारन आवन।—सूर०, ८।४४०।

आवना[1] Ⓤ—सज्ञा पुं० [हिं० आवन] दे० 'आवन'। उ०—बहुर नहिं आवना या देस।—कबीर श०, पृ० ५।

आवना[2] Ⓤ—क्रि० अ० [हिं० आना] दे० 'आना'।

यौ०—आवना जावना = आना जाना। उ०—वार पार की हद्द पर हर वक्त मे भी, बीच आवना जावना लेखा है—कबीर रे०, पृ० ३५।

आवनि Ⓤ—सज्ञा स्त्री० [हिं० आवन] दे० 'आवन'।

आवनेय—सज्ञा पुं० [स०] अवनि या पृथ्वी का पुत्र, मगल।

आवपन—सज्ञा पुं० [सं०] १ बोआई। २ पेड का लगाना। ३ थाला। ४ सारे सिर का मुडन।

यौ०—केशावपन।

आवभगत—सज्ञा पुं० [हिं० आवना + भक्ति] आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवभाव†—सज्ञा पुं० [सं० भाव] आदर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०—आवभाव कै डोलिया पालकी सत्त नाम कै बाँस लगायो।—धरम० (शब्द०)।

आवय--संज्ञा पु० [सं०] १ आगमन । २ आगंतुक । आनेवाला[को०]।

आवर(पु)--अव्य० [सं० अपर] और । उ०—सखी सिखाइ केंदला गई । आवर मंदिर ठाढ़ी भई ।--माधवा०, पृ० १६७ ।

आवरक[1]--वि० [सं०] छिपानेवाला । आवरण डालनेवाला [को०] ।

आवरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] परदा । चिक [को०] ।

आवरखावो—संज्ञा पुं० [बं० आवर=और+बं० खावो=खाऊँगा] एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

आवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन । ढकना । २ वह कपड़ा जो किसी वस्तु के ऊपर लपेटा हो । वेठन । ३. परदा । उ०—सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूँगा जीवनधन की, आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की ।—कामायनी, पृ० ६८ । ४. ढाल । ५. दीवार इत्यादि का घेरा । ६ अज्ञान । ७ चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।

आवरणपत्र--संज्ञा पु० [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं । कवर ।

आवरणशक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत में आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति ।

आवरिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र आपण । छोटी दुकान [को०] ।

आवरित—वि० [सं०] ढका हुआ आवृत [को०] ।

आवरिता—वि० [सं० आवरितृ] ढकने या आच्छादित करनेवाला[को०]

आवरी—वि० [सं० आवरीतृ > आवरीता] ढकी हुई । आच्छादित । उ०—मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा दुख छीजै ।—घनानंद, पृ० १४ ।

आवर्जक--वि० [सं०] आकर्षक [को०] ।

आवर्जन--संज्ञा पु० [सं०] १ आकृष्ट करना । २ संतुष्ट करना । ३ नीचा दिखाना । ४ दान की क्रिया [को०] ।

आवर्जना—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ आकर्षण । २ तिरस्कार । अवमानना । उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पंचबाण से वंचित हो, बन आवर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी संचित हो । —कामायनी पृ० १०२ ।

आवर्जित[1]—वि० [सं०] १ त्याग किया हुआ । जिसे छोड़ दिया गया हो । छोड़ा हुआ । पराभूत । परास्त ।

आवर्जित[2]--संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०] ।

आवर्त[1]— वि० [सं०] १. पानी का भँवर । २ चार मेघाधिपों में से एक । ३ वह बादल जिसमें पानी न बरसे । ४. एक प्रकार का रत्न । राजवर्त । लाजवर्द । ५ सोनामाखी । ६ गोएँ की भँवरी । ७ सोच विचार । चिंता । ८ संसार ।

आवर्त[2]--वि० घूमा हुआ । मुड़ा हुआ ।

यौ०--दक्षिणावर्त शंख = वह शंख जिसकी गोरी दाहिनी तरफ गई हो । यह शंख बहुत मंगलप्रद समझा जाता है ।

आवर्तक--संज्ञा पु० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग । मार्कंडेय पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है ।

आवर्तकी— संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्मंग और भगवद्वल्ली भी कहते हैं ।

आवर्तन—संज्ञा पु० [सं० आवर्त्तन] १ चक्कर देना । घुमाव । फिराव । उ०—बहु अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंगभंगियों का नर्तन, मधुकर के मरंद उत्सव सा मदिर भाव में आवर्तन । —कामायनी, पृ० ११ । २ विलोड़न । मथन । हिलाना । उ०—सौर चक्र में आवर्तन या प्रलय निशा का होता प्रात । —कामायनी, पृ० २० । ३ धातु इत्यादि का गलाना । ४. दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम से पूर्व की ओर पड़ना । ५ तीसरा पहर । पराह्ण ।

आवर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह कुल्हिया या घटिया जिसमें धातु गलाई जाती है । २ कलछी । चमच । चमचा [को०] ।

आवर्तनीय--वि० [सं०] १ घुमाने योग्य । २ मथने योग्य ।

आवर्तमणि--संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त मणि । लाजवर्द पत्थर ।

आवर्तित— वि० [सं०] १ घुमाया हुआ । २. मथा हुआ ।

आवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भँवर । जलावर्त । गोरी । २ अज-शृंगी नाम का पौधा [को०] ।

आवर्ती--वि० [सं० आवर्तिन्] १ चक्कर काटनेवाला । घूमने या फेरा लगानेवाला । २ पिघलनेवाला । ३ घुलमिल जानेवाला [को०]।

आवर्दा —वि० [फा०] १ लाया हुआ । २ कृपापात्र ।

आवर्दा[2]‡--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुर्दाय' ।

आवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा । बरसात । वृष्टि [को०] ।

आवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । पाँत । अनुक्रमिकता । श्रेणी । कतार । उ०—बन उपबन खिल आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन की आवलियाँ ।—आराधना, पृ० ३ ।

आवलित--वि० [सं०] बल खाया हुआ । कुछ मुड़ा या झुका [को०] ।

आवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । श्रेणी । कतार । २ वह युक्ति या विधि जिसके द्वारा बिस्वे की उपज का अंदाज होता है । जैसे, बिस्वे की उपज के सेर का आधा करने से बीघे की उपज का मन निकलता है ।

आवलिगत--वि० [सं०] धीरे धीरे हिलता हुआ । ईषत्कंपित [को०] ।

आवलगी--वि० [सं० आवलिगिन्] नाचनेवाला [को०] ।

आवश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ जरूरत । आवश्यकता । २ अनिवार्य काम या परिणाम [को०] ।

आवश्यक—वि० [सं०] १. जिसे अवश्य होना चाहिए । जरूरी । सापेक्ष्य । जैसे,—(क) आज मुझे एक आवश्यक कार्य है । (ख) तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक नहीं । २ प्रयोजनीय । काम का । जिसके बिना काम न चले । जैसे,—पहले आवश्यक वस्तुओं का इकट्ठा कर लो ।

आवश्यकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जरूरत । अपेक्षा । २ प्रयोजन । मतलब । उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया, रे मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया ।—करुणा०, पृ० २६ ।

आवश्यकीय--वि० [सं०] प्रयोजनीय । जरूरी ।

आवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । निशा । २. रात में रहने के लिये विश्रामस्थान [को०] ।

आवसथ—पु० [सं०] १ रहने की जगह। गृह। २ बस्ती। गाँव। ३ आश्रम। ४ व्रतविशेष।

आवसथ्य[1]—वि० [सं०] घर का। खानगी।

आवसथ्य[2]—सज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्नियो मे से एक। वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम मे आती है। लौकिकाग्नि।

आवसान—वि० [स०] ग्राम के अवसान या छोर का निवासी (जैसे चाडाल आदि) [को०]।

आवसित—वि० [स०] १ पूर्ण। पूरा किया हुआ। २ निश्चित किया हुआ। एकत्र किया हुआ (धान्य आदि)। ४ पका हुआ। पूर्ण विकसित।

आवस्थिक—वि० [स०] अवस्था के अनुकूल [को०]।

आवस्सिक—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—कालि उहाँ भोजन करौ आवस्सिक यहु बात।—अर्ध०, पृ० ३२।

आवह—सज्ञा पु० [स०] वायु के सात स्कधो मे पहले स्कध की वायु। भूर्लोक और स्वर्लोक के बीच की वायु। भूवायु।

विशेष—सिद्धातशिरोमणि मे इस वायु को १२ योजन ऊपर माना है और इसी से बिजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है।

२ अग्नि की सात जिह्वाओ में से एक।

आवहन—सज्ञा पु० [स०] ढोकर पास ले जाना। समीप लाना [को०]।

आवाँ[1]—सज्ञा पुं० [हिं० आना, आवना] १ लोहा जब खूब लाल हो जाता है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं। इस बुलावे को 'आवाँ' कहते हैं।

आवाँ[2], आवा—सज्ञा पु० [सं० आपाक] दे० 'आँवाँ'। उ०—जान प्यारे जोव कहूँ दीजिए सनेसो तोव आवा सम कीजिऐ जु कान तिहि काल हैं।—रसखान, पृ० ५०।

आवागमन—सज्ञा पु० [हिं० आवा=आना+स० गमन] १ आना जाना। अवाई जवाई। आमदरफ्त। २ बार बार मरना और जन्म लेना। जन्म और मरण।

यौ०—आवागमन (से) रहित=मुक्त। मोक्षपदप्राप्त। जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य आवागमन से रहित हो सकता है।

आवागवन‡—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवागमन'। उ०—छुटावें मोहू को विपति अति आवागमन सो। शकुतला, पृ० १५४।

आवागौन—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवागमन'।

आवाज—सज्ञा पु० [फा० आवाज, सं० आवाज्, पा० आवाज] १ शब्द। ध्वनि। नाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—लगाना।

२ बोली। वाणी। स्वर। जैसे,—वे गाते तो हैं, पर उनकी आवाज अच्छी नहीं है। ३ फकीरो या सौदा बेचनेवालो की पुकार। ४ हल्ला गुल्ला। शोर।

मुहा०—आवाज उठाना=(१) गाने मे स्वर ऊँचा करना। (२) किसी बात के समर्थन या विरोध मे कहना। आवाज कसना=(१) जोर से खीचकर शब्द निकालना। (२) दे० 'आवाज कसना'। उ०—अभी तो आप हमपर आवाज कस रहे थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५। आवाज खुलना=(१) बैठी हुई आवाज का साफ निकलना। जैसे,—तुम्हारा गला बैठ गया है, इस दवा से आवाज खुल जायगी। (२) अधोवायु का निकलना। आवाज गिरना=स्वर का मद पडना। आवाज देना=जोर मे पुकारना। जैसे,—हमने आवाज दी, पर कोई नही बोला। आवाज निकालना=(१) बोलना। (२) चूँ करना। जवान खोलना। जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, आवाज न निकालना। आवाज पड़ना=आवाज बैठना। आवाज पर लगना=आवाज पहचान कर चलना। आवाज देने पर कोई काम करना। जैसे,—तीतर अपने पालनेवालो की आवाज पर लग जाते हैं। आवाज पर कान रखना=(१) सुनना। ध्यान देना। आवाज फटना=आवाज भर्राना। आवाज लडना=(१) एक के सुर का दूसरे के सुर से मेल खाना। (२) एक की आवाज दूसरे तक पहुँचाना। आवाज बैठना=कफ के कारण स्वर का साफ न निकलना। गला बैठना। जैसे,—उनकी आवाज बैठ गई है, वे गावेंगे क्या? आवाज भर्राना=दे० 'आवाज भारी होना।' आवाज भारी होना=कफ के कारण कठ का स्वर विकृत होना। आवाज मारना=जोर से पुकारना। आवाज मारी जाना=स्वर सुरीला न रहना। स्वर का कर्कश होना। जैसे,—अवस्था बढ जाने पर आवाज भी मारी जाती है। आवाज मे आवाज मिलाना=(१) स्वर मिलाना। (२) हाँ मे हाँ मिलाना। दूसरा जो कह रहा है, वही कहना। आवाज लगाना=दे० 'आवाज देना'।

आवाजा—सज्ञा पु० [फा० आवाज] बोली ठोली। ताना। व्यग्य।

क्रि० प्र०—कसना।—फेंकना।—मारना।—सुनाना=व्यग्य वचन बोलना।

यौ०—आवाजाकशी=किसी दूसरे के माध्यम से की जानेवाली व्यग्योक्ति। बोली बोलना।

आवाजानी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आवागमन। जन्म और मृत्यु का चक्र। उ०—धर्मदास कबीर जिय पाए मिट गइ आवाजानी।—धरम० शब्द०, पृ० ३।

आवाजाही‡—सज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आनाजाना।

आवादानी—सज्ञा स्त्री० [फा आवादानी] दे० 'अबादानी'।

आवाप—सज्ञा पुं० [सं०] वि० [आवापिक] १ बीज बोना। २ आलबाल। थाला। ३ कगन या ककण। ४ फेकना। छितराना। ५ मिलाना। मिश्रण करना। ६ अन्न पात्र। ७ शत्रुनापूर्ण उद्देश्य। ८ पात्रो को व्यवस्थित ढग से रखना। ९ असमतल भूमि। १० एक प्रकार का पेय [को०]।

आवापक—सज्ञा पु० [सं०] सोने का ककण। कगन [को०]।

आवापन—सज्ञा पुं० [सं०] १. करधा। २ धागा लपेटने की गोल लकडी। ३. बाल बनाना [को०]।

आवापिक—वि० [स०] १ बोने या क्षौर कर्म के लिये उत्तम। २. अतिरिक्त। सहायक। पूरक [को०]।

आवाय—सज्ञा पु० [सं०] १ थाला। २ धान आदि का खेत मे रोपना। रोपाई। ३. हाथ का कडा। ककण। ४ वह सेना जो व्यूह बाँधने से बची हुई हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए।

आवार—सज्ञा पुं० [सं०] रक्षण। बचाव। शरण [को०]।

आवारगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] आवारापन। शोहदापन।

आवारजा—सज्ञा पुं० [फा० आवारजह्] जमाखर्च की किताब। वि० दे० 'अवारजा'।

आवारा—वि० [फा० आवारह्] [सज्ञा आवारगी] १ व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। २ बेठौर ठिकाने का। उठल्लू।

क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।—होना।

३ बदमाश। लुच्चा। ४ कुमार्गी। शुहदा।

आवारागर्द—वि० [फा०] व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उठल्लू। निकम्मा।

आवारागर्दी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ व्यर्थ इधर उधर घूमना। २ बदमाशी। लुच्चापन। शुहदापन।

आवाल—सज्ञा पु० [सं०] थाला।

आवास—सज्ञा पुं० [स०] १ रहने की जगह। निवासस्थान। २ मकान। घर।

आवासी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० औसना] अन्न का हरा दाना, विशेषत जौ का दाना।

आवाह—सज्ञा पुं० [स०] १ परिणयसस्कार। विवाह। २ आमत्रण [को०]।

आवाहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मत्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य। २ निमत्रित करना। बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।

आवाहनाⓊ—क्रि० स० [सं० आवाहन] बुलाना। आमत्रित करना [को०]।

आवाहनी—सज्ञा स्त्री० [स०] देवता के आवाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०]।

आविक[1]—सज्ञा पुं० [स०] कबल या ऊनी कपडा। भेड के रोएँ का वस्त्र।

आविक[2]—वि० [स०] १ ऊन का। ऊनी। २. भेड से सबधित [को०]।

यौ०—**आविकसौत्रिक**=ऊनी तागे से निर्मित [को०]।

आविग्न—वि० [सं०] उद्विग्न। व्याकुल [को०]।

आविद्ध[1]—वि० [सं०] १ छिदा हुआ। भेदा हुआ। २ फेंका हुआ। ३ कुटिल। वक्र। [को०]। ४ मूर्ख। जड [को०]। ५ निराश। हताश [को०]। ६ असत्य। झूठा [को०]।

यौ०—**आविद्धकर्ण**=जिसका कान छिदा हुआ हो। **आविद्धकर्णिका, आविद्धकर्णी**=एकलता पाढा या पाठा।

आविद्ध[2]—सज्ञा पुं० [स०] तलवार के ३२ हाथो मे से एक, जिसमे तलवार को अपने चारो ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं।

आविध—सज्ञा पु० [स०] बडइयो का औजार। बरमा [को०]।

आविर्भाव—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविर्भूत] १ प्रकाश। प्राकट्य। २. उत्पति। जैसे,—रामानुज का आविर्भाव दक्षिण मे हुआ था। ३ आवेश। जैसे,—महात्माओ मे क्रोध का आविर्भाव नही होता।

आविर्भूत—वि० [स०] १ प्रकाशित। प्रकटित। २ उत्पन्न।

आविर्मुखी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

आविर्मूल—वि० [स०] (वृक्ष) जिसकी जड या मूल खुदा हो [को०]।

आविर्हित—वि० [स०] प्रत्यक्षीकृत। देखा हुआ [को०]।

आविर्होत्र—सज्ञा पु० [स०] एक ऋषि का नाम।

आविल—वि० [स०] १ कलुषित। मैला। पकिल। २ मिला हुआ। मिश्रित। उ०—दुख मे आविल सुख मे पकिल।—नीरजा, पृ० १।

आविष्कर्ता[1]—वि० [स०] आविष्कार करनेवाला। आविष्कारक [को०]।

आविष्कर्ता[2]—सज्ञा पुं० आविष्कार करनेवाला व्यक्ति।

आविष्कार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आविष्कर्त्ता, आविष्कृत] १. प्राकट्य। प्रकाश। २ कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिसके बनाने की युक्ति पहले किसी को न मालूम रही हो। ईजाद। जैसे,—रेल का आविष्कार इगलैंड देश मे हुआ। ३ किसी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात का पहले पहल पता लगाना। साक्षात्करण। जैसे,—उस विद्वान् ने विज्ञान मे बहुत से आविष्कार किए।

आविष्कारक—वि० [स०] दे० 'आविष्कर्ता'।

आविष्कृत—वि० [स०] प्रकाशित। प्रकटित। २ पता लगाया हुआ। जाना हुआ। ३ ईजाद किया हुआ। निकाला हुआ।

आविष्क्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आविष्कार'।

आविष्ट—वि० [स०] १ आवेश मे आया हुआ। २ भूतप्रेतादिग्रस्त। ३ तत्पर। सनद्ध। ४ अभिभूत। आक्रात। ५ प्रवेश किया हुआ। प्रविष्ट [को०]।

आवी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रसवकालीन पीडा। २ अतस्सत्वा। गर्भवती। ३ रजस्वला स्त्री [को०]।

आवीत—वि० [स०] पहना हुआ। धारित। २ गया हुआ। गत [को०]। ३ उपनीत [को०]।

आवीती—वि० [स० आवीतिन्] दाहिने कधे पर जनेऊ रखे हुए। जनेऊ उलटा रखे हुए। अपसव्य।

आवुस—सज्ञा पु० [स० आयुष्मन्, पालि-प्रा० आवुस] हे आयुष्मन्। प्रिय। उ०—पचवर्गीय साधुओ ने कहा—आवुस गौतम हम जानते हैं'।—बै० न०, पृ० ५०।

आवृत—वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढका हुआ। उ०—था प्रेमलता मे आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि।—कामायनी, पृ० २७५। २ लपेटा हुआ। आच्छादित। उ०—अपने को आवृत किए रहो, दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप।—कामायनी, पृ० १६६। ३ घिरा हुआ। छेका हुआ। उ०—उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत दिखा कर छोड दिया।—रस०, पृ० ६१।

आवृति—सज्ञा स्त्री० [स०] ढकन। आवरण [को०]।

आवृत्त—वि० [स०] १ दुहराया हुआ। आवृत्ति किया हुआ। २ लौटाया या फिराया हुआ। ३ पढा हुआ [को०]।

आवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बार बार किसी बात का अभ्यास। एक ही काम को बार बार करना। जैसे,—पाठ की आवृत्ति

कर जाओ। २ पाठ करना। पढना। ३ घूमना। लौटना [को०]। ४ पलायन [को०]। ५ संसृति। ससार [को०]। ६ किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। सस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक—सज्ञा पुं० [स०] दीपक अलकार का एक प्रकार जिसमे क्रियापदो की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—सज्ञा पु० [सं०] १ चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की झोक। जोर। जोश। जैसे,—क्रोध के आवेग मे हमने तुम्हे वे बातें कही थी। २ रस के सचारी भावो मे से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—सज्ञा पुं० [फा० आवेजह्] १ लटकनेवाली वस्तु। २ किसी गहने मे शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। झुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [स०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह पत्र या कागज जिसपर सुधार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय—वि० [सं०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [स०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [स० आवेदिन्] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [स०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—सज्ञा पु० [देश०] १ नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २ वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—सज्ञा पु० [स०] १ व्याप्ति। सचार। दौरा। २. प्रवेश। ३. चित्त की प्रेरणा। झोक। वेग। आतुरता। जोश। उ०—क्रोध के आवेश मे मनुष्य क्या नही कर डालता।—(शब्द०)। ४ भूत प्रेत की बाधा। ५ अपस्मार। मृगी रोग। ६. सकल्प। अभिनिवेश। आग्रह [को०]। ७ गर्व। मद [को०]।

आवेशन—सज्ञा पु० [स०] १ चद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २ प्रवेश। ३ कोप। क्रोध। ४ शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५. भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—सज्ञा पुं० [सं०] मित्रो को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ राजशेखर के मतानुसार कवियो की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति मे कविता करनेवाला कवि। २ अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३ अतिथिसत्कार। आतिथ्य [को०]। ४. भीतर जाना। प्रवेश करना। घुसना [को०]।

आवेशिक[2]—वि० १ असामान्य। असाधारण। २ व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३ अतर्निहित [को०]।

आवेष्टक—सज्ञा पु० [सं०] १ घेरा। २ जाल [को०]।

आवेष्टन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आवेष्टित] १. छिपाने या ढँकने का कार्य। २ छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३. वह वस्तु जिसमे कुछ लपेटा हो। वेठन। ४ चहारदीवारी।

आवेष्टित—वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढँका हुआ। २ आवेष्टनयुक्त।

आवेशⓊ—सज्ञा पु० [स० आवेश, प्रा० आवेस] दे० 'आवेश'। उ०—वाकौ सेवा के आवेस मे खाइबे की सुधि हू न रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २११।

आवरणⓊ—सज्ञा पु० [स० आवरण] आच्छादन। घेरा। उ०—दह कोह सा स्वामि आराम छुट्टौ। पछे पग रा सेन आवरण उट्टौ।—पृ० रा०, ६, । २२३७।

आशकनीय—वि०[स० आशङ्कनीय] आशकायोग्य। सदेहास्पद [को०]।

आशका—सज्ञा स्त्री० [स० आशङ्का] [वि० आशकित आशंकनीय] १ डर। भय। खौफ। उ०—उसे अपने गिर जाने की आशका थी।—ककाल, पृ० ६४। २ शक। शुबहा। सदेह। ३. अनिष्ट की भावना।

आशकित[1]—वि० [स० आशङ्कित] १ डरा हुआ। भयभीत। २ सदेहात्मक। सदेहयुक्त।

आशकित—वि० १. सदेह। शक। २ भय। डर [को०]।

आशसन—सज्ञा पु०[स०]१ आशा करना। इच्छा करना। २ कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—सज्ञा स्त्री० [स०]१ इच्छा। २ आशा। ३ सकेत। ४. भाषण। कथन। ५ कल्पना [को०]।

आशसित—वि० [स०] १ इच्छित। २ परिकल्पित। ३ कथित। ४ सोचा हुआ [को०]।

आशसिता—वि० [स० आशसितृ] १. आशा या इच्छा करनेवाला। २ वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशसी—वि० [स० आशसिन्] दे० 'आशसिता' [को०]।

आशसु—वि० [स०] दे० 'आशसिता' [को०]।

आश—सज्ञा पु० [स०] आहार। भोजन (समास मे प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [स०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—सज्ञा पु० [स० आविष्कार, फा० आशकार, आशकारा, आशकारह] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ मे आशकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—सज्ञा उभ० [फा०] १ जिससे जान पहचान हो। २ चाहनेवाला। प्रेमी। ३. प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जान पहचान। २. प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३ अनुचित सबध।

आशफल—सज्ञा पु० [मं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बगाल मे बहुत होता है। इसकी लकडी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असबाब बनाने के काम मे आती है।

आशय—सज्ञा पुं० [स०] १ अभिप्राय। मतलब। २ वासना। इच्छा। जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित है।

यौ०—उच्चाशय। नीचाशय। महाशय।

३. स्थान। आधार। जैसे,—आमाशय, गर्भाशय। जलाशय। पक्वाशय। ४. गड्ढा। खात। ५ कटहल। पनश। ६ अभ्युदय। उन्नति (को०)। ७ धन। संपत्ति (को०)। ८ कजूस। कृपण (को०)। ९. अन्नागार। बखार (को०)। १० भाग्य। लिखन (को०)। ११ विश्रामस्थान (को०)। १२. घर। गृह। (को०)। १३. जंगली जानवरो को फँसाने का गड्ढा। अवट (को०)।

आशर—सज्ञा पुं० [स०] १ राक्षस। उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय।—केशव (शब्द०) २. अग्नि।

आशा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोडा बहुत निश्चय। जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होती है। (ख) आशा मरे, निराशा जीए। २ अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के थोडे बहुत निश्चय से संतोष। जैसे,—आशा है, कल रुपया मिल जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—तोडना।—लगाना।—रखना।

मुहा०—आशा टूटना = आशा न रहना। आशा भग होना। जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनो की आशा टूट गई। आशा तोड़ना = किसी की निराश करना। जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोडना ठीक नही। आशा देना = किसी को उम्मेद बँधाना। किसी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आशा देकर धोखा देना ठीक नही है। आशा पूजना = आशा पूरी होना। आशा पूरी होना = इच्छा और सभावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना। जैसे,—बहुत दिनो पर हमारी आशा पूरी हुई। आशा पूरी करना = किसी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना। आशा बँधना = आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोग कमी पर है, इसी मे कुछ आशा बँधती है। आशा-बाँधना = आशा करना।

यौ०—आशातीत। आशापाश। आशाबद्ध। आशाभग। आशा-रहित। आशावान्। निराश। हताश।

३. दिशा।

यौ०—आशागज = दिग्गज। आशापाल = दिक्पाल। आशाबसन = दिगंबर। उ०—आशाबसन व्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही।—तुलसी (शब्द०)।

४ दक्ष प्रजापति की एक कन्या। ५. सगीत मे एक राग जो मैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आशाढ—सज्ञा पुं० [स० आशाढ] आषाढ।

आशातीत—वि० [स०] आशा से बहुत अधिक। आशा से परे [को०]।

आशानिर्वेदिसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिमृष्ट (भगोडे) सेना मे आशानिर्वेदि उत्तम है, क्योकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आशापाश—सज्ञा पुं० [सं०] आशाओ का फदा, जाल या बधन।

आशाबध—सज्ञा पुं० [स० आशाबन्ध] आशापूर्ति का विश्वास या बंधन [को०]।

आशाबद्ध—वि० [स०] तरह तरह की आशाओ मे पडा या लटका हुआ।

आशाभंग—सज्ञा पुं० [स० आशाभङ्ग] आशा टूटना। आशा का न रह जाना [को०]।

आशार—सज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान। सुरक्षा की जगह [को०]।

आशालुब्ध(पु)—वि० [सं० आशालुब्ध, प्रा० आसालुद्ध] आशा के कारण लोभ मे पडी हुई। आशालुब्ध। उ०—आसालुब्धी हूँ न मुहय सज्जन जजालेइ। ढोला०, दू० २०६।

आशावसन—सज्ञा पुं० [स० आशा + वसन] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप मे हैं अर्थात् १ शिव। २ शुक। ३ सनत्कुमार आदि। ४. दिगबर साधु।

आशावह—सज्ञा पुं० [स०] १. आदित्य। सूर्य। २ वृष्णि [को०]।

आशासन—सज्ञा पु० [स०] किसी वस्तु की आकाक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०]।

आशासनीय[1]—वि० [स०] आकाक्षनीय। अभिलषणीय [को०]।

आशासनीय[2]—सज्ञा पु० १ आशीर्वचन। २ आकाक्षा। स्पृहा [को०]।

आशास्य—वि०, सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आशासनीय' [को०]।

आशिजन—सज्ञा पुं० [स० आशिञ्जन] आभूषणों की झकृति [को०]।

आशिजित—वि० [स० आशिञ्जित] झकृत। झकार करता हुआ [को०]।

आशि—सज्ञा स्त्री० [स०] भोजन। खाना। भक्षण [को०]।

आशिक[1]—सज्ञा पुं० [अ० आशिक़] प्रेम करनेवाला मनुष्य। चित से चाहनेवाला मनुष्य। अनुरक्त पुरुष।

आशिक[2]—वि० प्रेमी। आशक्त। चाहनेवाला। मोहित।

क्रि० प्र०—होना।

यौ०—आशिकतन। आशिकजार = अनुरक्त प्रेमी। उ०—बेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। आशिकनवाज = प्रेमियो पर दयालु। आशिक माशूक = प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमपात्र। आशिक-मिजाज = (१) आशिकाना मिजाज का। प्रेमी हृदय का। (२) दिलफेंक (व्यग्य)।

आशिकाना—वि० [अ० आशिकानह्] आशिकों की तरह का। आशिकों का सा। आशिकों के ढग का।

आशिकी—संज्ञा स्त्री० [अ० आशिक़ + फा० ई (प्रत्य०)] प्रेम। मुहब्बत।

आशित—वि० [स०] १. अशित। खाया हुआ। २. खा करके तृप्त। ३. अधिक भोजन करनेवाला [को०]।

आशिता—वि० [स० आशितृ] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति। पेटू [को०]।

आशिमा—सज्ञा स्त्री० [स० आशिमन्] त्वरा। तेजी। वेग [को०]।

आशियाँ—सज्ञा पु० [फ़ा०] १. चिडियो का बसेरा। पक्षियो के रहने का स्थान। घोसला। उ०—गिरी है जिस पै कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यो हो।—शेर०, पृ० ५२४। २ छोटा सा घर। झोपडा। उ०—क्या करे जाके गुलसिताँ मे हम, आग रख आए आशियाँ मे हम।—शेर०, पृ० २०३।

आशियाना—सज्ञा पु० [फा० आशियानह्] दे० 'आशियाँ'।

आशिष—सज्ञा स्त्री० [सं० आशिष्, आशिस्] १ आशीर्वाद। आसीस। दुआ। उ०—गुरुजन की आशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१। २ एक अलकार जिसमे अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है। उ०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल। इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल।—बिहारीर०, दो० ३०१। ३ दे० 'आशी' [को०]।

आशिषाक्षेप—सज्ञा पु० [स०] वह काव्यालकार जिसमे दूसरो का हित दिखलाते हुएऐसी बातो को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव मे अपने ही दु ख की निवृत्ति हो। उ०—मत्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख साज सो। एतो सब होतै जात जो पै है कुशल गात, अबही चलौ कै प्रात, सगुन समाज सो। कीन्हो जु पयान बाध छमिअै सु अपराध, रहिअै न पल आध, बँधिअै न लाज सो। हौं न कहौ, कहत निगम सब अब तब, राजन परम हित आपने ही काज सो।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १५६।

आशी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सर्प का विषैला दाँत। २ बुद्धि नाम की जडी जो दवा के काम मे आती है। ३. सर्प का विष (को०)।

आशी[2]—वि० [स० आशिन्] [वि० स्त्री० आशिनी] खानेवाला। भक्षक।

यौ०—वाताशी। फलाशी।

विशेष—इसका प्रयोग समास के अत ही मे होता है।

आशीर्वचन—सज्ञा पु० [सं०] आशीर्वाद। आसीस। दुआ।

आशीर्वाद—सज्ञा पुं० [स०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना। मगलकामनासूचक वाक्य। आशिष। दुआ।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।—लेना।

यौ०—आशीर्वादात्मक।

आशीविष—सज्ञा पु० [स०] १ वह जिसके दाँतो मे विष हो (को०)। २ सर्प। साँप।

आशीष—सज्ञा स्त्री० [स० आशिष्] दे० 'आशिष'। उ०- देते आकर आशीष हमे मुनिवर हैं।—साकेत, पृ० २०४।

आशु[1]—संज्ञा पु० [स०] बरसात मे होनेवाला एक धान। सावन भादो मे होनेवाला। व्रीहि। पाटल। आउस। साठी।

आशु[2]—वि० तीव्र। तेज। त्वरित [को०]।

आशु[3]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तुरत।

विशेष—गद्य मे इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है।

यौ०—आशुकवि। आशुतोष। आशुव्रीहि। आशुमत।

आशुकवि—सज्ञा पु० [स०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके।

आशुकोपी—वि० [स० आशुकोपिन्] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला। झगडालू। चिडचिडा [को०]।

आशुग[1]—वि० [स०] जल्दी चलनेवाला। शीघ्रगामी।

आशुग[2]—सज्ञा पुं० १. वायु। २. बाण। तीर। ३ रवि (को०)।

आशुगामी[1]—वि० [स० आशुगामिन्] १ तेज चलनेवाला। तीव्रगामी। २. त्वरान्वित [को०]।

आशुगामी[2]—सज्ञा पुं० सूर्य [को०]।

आशुतोष[1]—वि० [स०] शीघ्र सतुष्ट होनेवाला। जल्दी प्रसन्न होनेवाला।

आशुतोष[2]—सज्ञा पुं० शिव। महादेव।

आशुशुक्षणि—सज्ञा पु० [सं०] १ अग्नि। २. वायु।

आशुव्रीहि—सज्ञा पुं० [स०] एक धान्य। आउस। साठी [को०]।

आशोष—सज्ञा पु० [फा०] १ आँख की पीडा। २ भय। डर। खौफ [को०]। ३ झगडा फसाद। शोरगुल [को०]।

क्रि० प्र०—उठना। होना।

आशोषण—सज्ञा पुं० [स०] पूरी तरह सोख लेने का काम [को०]।

आशौच—सज्ञा पु० [स०] अशुद्धि। अशौच का भाव [को०]।

आशौची—वि० [स० आशौचिन्] अपवित्र। अशौच। अशुद्ध [को०]।

आश्चर्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्चर्यित] १ वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बडी अथवा समझ मे न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान मे न आने से उत्पन्न होती है। अचभा। विस्मय। तअज्जुब।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—होना।

यौ०—आश्चर्यकारक। आश्चर्यजनक।

२ रस के नौ स्थायी भावो मे से एक।

आश्चर्य[2]—वि० आश्चर्ययुक्त। अद्भुत। विस्मयपूर्ण [को०]।

आश्चर्यित—वि० [स०] विस्मित। चकित।

आश्च्योतनकर्म—वि० [स०] आँख मे दिन के समय किसी औषध की आठ बूँद डालना।

आश्म[1]—वि० [स०] अश्मरचित। पत्थर का बना हुआ [को०]।

आश्म[2]—सज्ञा पु० पत्थर की बनी वस्तु [को०]।

आश्मन[1]—वि० [सं०] दे० 'आश्म'।

आश्मन[2]—सज्ञा पुं० [स०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०]।

आश्मरिक—वि० [स०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त। पथरी का रोगी [को०]।

आश्मिक—वि० [सं०] १ पत्थर ढोनेवाला। २ प्रस्तर निर्मित [को०]।

आश्यान—वि० [स०] जमकर कुछ सूखने या ठोस होनेवाला [को०]।

आश्रु—सज्ञा पु० [सं०] अश्रु। आँसू [को०]।

आश्रपरा—सज्ञा पुं० [स०] पाचन क्रिया। पाक क्रिया [को०]।

आश्रम—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्रमी] ऋषियो और मुनियो का निवासस्थान। तपोवन। २ साधुसत के रहने की जगह।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह। उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—गीतिका, पृ० ६३। ४ विष्णु [को०]। ५ गुरुकुल [को०]। ६. स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ। ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास। उ०—(क) देहि अमीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए। (शब्द०)।

यौ०—आश्रमगुरु। आश्रमधर्म। आश्रमपद, आश्रममंडल=तपोवन। आश्रमवास। गृहस्थाश्रम। वर्णाश्रम।

आश्रमी—वि० [सं० आश्रमिन्] १. आश्रमसंबंधी। २ आश्रम में रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में से किसी को धारण करनेवाला।

आश्रय—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्रयी, आश्रित] १ आधार। सहारा। अवलंब। जैसे,—छत खंभों के आश्रय पर है।

यौ०—आश्रयाश।

२ आधार वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारों ओर मारा मारा फिरता है, उसे कहीं आश्रय नहीं मिलता। (ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—चाहना।—ढूँढ़ना।—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

४ जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमें तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५ राजाओं के छह गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। भाथी। तूणीर [को०]। ८. अभ्यास [को०]। ९ व्याकरण में उद्देश्य। १० बौद्ध मत से मन और पंच ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११ सामीप्य। सन्निकटता। संनिधि [को०]।

आश्रयण—संज्ञा पुं० [स०] सहारा लेने का कार्य।

आश्रयणीय—वि० [सं०] अवलंबन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

आश्रयभुक्—संज्ञा पुं० [सं० आश्रयभुज्] १ दे० 'आश्रयाश'। २ कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

आश्रयाश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

आश्रयासिद्ध—वि० [सं०] १ न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका आधार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या। ३ अमान्य [को०]।

आश्रयी—वि० [सं० आश्रयिन्] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पानेवाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

आश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के कहे पर चलना। वचन। स्थिति। २ अंगीकार। ३. क्लेश। ४ जैनमत के अनुसार मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे जीव ग्रहण करके बद्ध होता है। यह दो प्रकार का है—पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार विषय जिसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य बंधन में पड़ता है। यह चार प्रकार का है—कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद या फेन (को०)। ७. सरिता। नदी (को०)। ८. प्रवाह। धारा (को०)।

आश्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] असिधारा। तलवार की धार [को०]।

आश्रित[1]—वि० [सं०] १ सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २. भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन। शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है, जैसे चाहिए, उसको रखिए। ३ सेवक। दास।

आश्रित[2]—संज्ञा पुं० न्याय मत से आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यों को छोड़ दूसरे अनित्य द्रव्यों का किसी न किसी अंश में एक दूसरे से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही से बने हैं अतः रूपांतर होने पर भी उनमें किसी न किसी अंश में समानता रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इससे उनमें एक दूसरे से साधर्म्य नहीं।

आश्रितत्व—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रित रहने या होने का भाव।

आश्रुत—वि० [सं०] १. गृहीत। अंगीकृत। स्वीकृत। २ आकर्णित। श्रुत। सुना हुआ [को०]।

आश्रुति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वीकृति। वचनदान। २ आकर्णन। श्रवण [को०]।

आश्लिष्ट—वि० [स०] १ आलिंगित। हृदय से लगा हुआ। २. लगा हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

आश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन। २ लगाव।

आश्लेषण—संज्ञा पुं० [स०] मिलावट। मेल।

यौ०—आश्लेषण विश्लेषण=कई दवाओं को एक साथ मिलाना और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२ आश्रयण। नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [स०] नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषित—वि० [स०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

आश्व—संज्ञा पुं० [स०] १. घोड़ों का झुंड। २ घोड़े की स्थिति या दशा। ३ वह रथ जिसे घोड़े खींचते हैं।

आश्वत्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वत्थ या पीपल का फल [को०]।

आश्वत्थ[2]—वि० [स०] १ अश्वत्थ या पीपल संबंधी। २ पीपल में फल आने के समय से संबद्ध [को०]।

आश्वत्था—संज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

आश्वमेधिक—वि० [सं०] अश्वमेध यज्ञ या अश्वमेध संबंधी [को०]।

आश्वयुज—संज्ञा पुं० [स०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र युक्त हो। आश्विन। क्वार।

आश्वलक्षणिक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों के भले बुरे लक्षण पहचाननेवाला। शालिहोत्री [को०]।

आश्वलायन—संज्ञा पुं० [स०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त— वि० [सं०] १ निर्भय। उ०—आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७६। २ उत्साह-युक्त [को०]।

आश्वास— सज्ञा पु० [स०][वि० आश्वासक] १. सात्वना। दिलासा। तसल्ली। आशाप्रदान। २ किसी कथा का एक भाग। ३ विराम [को०]। ४ पूरी तरह खुलकर साँस लेना [को०]।

आश्वासक[1]— वि० [स०] दिलासा देनेवाला। भरोसा देनेवाला।

आश्वासक[2]— सज्ञा पुं० कपडा। वस्त्र [को०]।

आश्वासन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य] दिलासा। तसल्ली। सात्वना। आशाप्रदान। उ०—व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई।—महा०, पृ० ४।

आश्वासनीय—वि० [स०] दिलासा देने योग्य। तसल्ली देने योग्य। प्रोत्साहन के योग्य।

आश्वासित—वि० [स०] दिलासा दिया हुआ। दिलासा पाया हुआ।

आश्वासी—वि० [स० आश्वासिन्] १ आश्वासन देनेवाला। दिलासा या ढाढस बँधानेवाला। २ आत्मविश्वासी। ३ प्रफुल्लचित्त [को०]।

आश्वास्य—वि० [स०] दे० 'आश्वासनीय'।

आश्विक[1]—वि० [स०] १ घोडो से सबध रखनेवाला। अश्वारोही घोडे से खीचा जानेवाला [को०]।

आश्विक[2]— सज्ञा पु० घुडसवार सैनिक [को०]।

आश्विन— सज्ञा पु० [स०] १ वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र मे पडे। क्वार का महीना। २ अश्विनीकुमार। ३ एक यज्ञ [को०]।

आश्विनेय— सज्ञा पुं० [स०] १ अश्विनीकुमार। २ नकुल और सहदेव।

आष Ⓤ— स्त्री० पुं० [स० आखु] दे० 'आखु'। उ०— आष इष्ठि चष अग्ग। घात मजार न मडै।— पृ० रा०, ६३।१६०।

आषाढ—सज्ञा पु० [स० आषाढ] वह चाद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो। जेष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना। असाढ। २ ब्रह्मचारी का दड। ३ पलाश। ढाक।

आषाढक[1]—वि० [स० आषाढक] आषाढ मास मे होनेवाला। आषाढ़ सबधी [को०]।

आषाढक[2]—सज्ञा पु० आषाढ मास [को०]।

आषाढा—सज्ञा पुं० [स० आषाढा] पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

आषाढाभव, आषाढाभू—सज्ञा पुं० [स० आषाढाभव-भू] मगल ग्रह।

आषाढी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० आषाढी] १ आषाढ मास की पूर्णिमा।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है। वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है।

२ इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य।

आषाढी[2]—वि० [स० आषाढिन्] पलाशदड धारण करनेवाला [को०]।

आषाढीय—वि० [स० आषाढीय] आषाढा नक्षत्र मे उत्पन्न [को०]।

आषाढी योग—सज्ञा पुं० [सं० आषाढी योग] आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय।

विशेष—इस दिन लोग थोडा सा अन्न तौलकर हवा मे रख देते हैं। यदि वहाँ की सील से अन्न की तौल कुछ बढ गई तो समझते है कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा।

आसग[1]—सज्ञा पु० [स० आसङ्ग] १ साथ। सग। २ लगाव। सबध। ३ आसक्ति। अनुरक्ति। लिप्तता। ४ मुलतानी मिट्टी जिसे सिर मे मलकर लोग स्नान करते हैं।

आसग[2]—क्रि० वि० सतत। निरतर। लगातार।

आसगत्य—सज्ञा पुं० [स० आसङ्गत्य] १ असगति का भाव या अवस्था। पार्थक्य। अलगाव। २ वियोग [को०]।

आसगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० आसङ्गिनी] बवंडर। वात्याचक्र [को०]।

आसगी—वि० [स० आसङ्गिन्] १ सपर्की। मेलजोल रखनेवाला। २. आसक्त [को०]।

आसजन—सज्ञा पु० [स० आसञ्जन] १ बाँधना या जोडना। २ पहनना या धारण करना। ३. अनुराग। ४ भक्ति। ५ मूठ [को०]।

आसद—सज्ञा पुं० [स० आसन्द] वासुदेव या विष्णु [को०]।

आसदिका—सज्ञा स्त्री० [आसन्दिका] १ मचिया। २ आसनी [को०]।

आसदी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मचिया। मोढा। कुरसी। २ खटोला।

आसबाध—वि० [स० आसम्बाध] १ अवरुद्ध। घेरे मे पडा हुआ। २ फैला हुआ [को०]।

आससार—वि० [स०] विकारी। प्रगतिशील। परिवर्तनशील [को०]।

आससृति—वि० [सं०] दे० 'आससार'।

आस[1]—सज्ञा स्त्री० [स० आशा] १ आशा। उम्मेद। उ०—साथि चले सँग बीछुरा, भए बिच समुद पहार। आस निरासा हौं फिरौं, तू विधि देहि अधार।—जायसी ग्र०, पृ० ३०। २ लालसा। कामना। उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।—मानस, १।२५२। ३ सहारा। आधार। भरोसा। जैसे,—हमे किसी दूसरे की आस नही।

मुहा०—**आस करना**=(१) आशा करना। (२) आसरा करना। मुँह ताकना। जैसे,—चलते पौरुष किसी की आस करना ठीक नही। **आस छोड़ना**=आशा परित्याग करना। उम्मेद न रखना। **आस टूटना**=निराश होना। जैसे,—जब आस टूट जाती है, तब कुछ करते धरते नही बनता। **आस तकना**=(१) आसरा देखना। इतजार करना। जैसे,—तुम्हारी आस तकते तकते दोपहर हो गए। (२) सहायता की अपेक्षा रखना। मुँह जोहना। जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस तकनी पडे। **आस तजना**=आशा छोडना। **आस तोडना**=किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना। किसी को निराश करना। जैसे,—किसी की आशा तोडना ठीक नही। **आस देना**=(१) उम्मेद बँधाना। किसी को उसके इच्छानुकुल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आस देकर तोडना ठीक नही। (२) संगीत मे किसी बाजे या स्वर से सहायता देना। **आस पुराना**=आशा पूरी करना। **आस पूजना**=आशा पूरी होना।

इच्छानुकूल फल मिलना। उ०—एकहि वार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।—मानस, २।१६। **आस पूरना**=दे० 'आस पूजना'। **आस बँधना**=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से आस बँधती है। **आस लगना**=आशा उत्पन्न होना। **आस लगाना**=आशा बाँधना। **आस होना**=(१) आशा होना। (२) सहारा होना। आश्रय होना। (३) गर्भ होना। गर्भ रहना। जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ आस है।

यौ०—आस औलाद।

आस[२]ⓤ—संज्ञा स्त्री० [स० आशा] दिशा। उ०—जैसे तैसे बीतिगे कलपत द्वादश मास। आई बहुरि बसंत ऋतु बिमल भई दस आस।—रघुराज (शब्द०)।

आस[३]—संज्ञा पु० [स०] १ धनुष। कमान। २ चूतड़। ३ आसन (को०)। ४ उपवेशन। बैठना (को०)। ५ सन्निधि। सामीप्य (को०)।

यौ०—कप्यास।

आसकत†—संज्ञा पुं० [स० आशक्ति] [वि० आसकती, क्रि० असकताना] सुस्ती। आलस्य।

आसकती†—वि० [हिं० आसकत+ई (प्रत्य०)] आलसी।

आसक्त—वि० [स०] १ अनुरक्त। लीन। लिप्त। जैसे,—इंद्रियों में आसक्त रहना ज्ञानियों का काम नहीं। २. आशिक। मोहित। लुब्ध। मुग्ध। जैसे—वह उस स्त्री पर आसक्त है। ३ विश्वास माननेवाला (को०)।

आसक्ति—संज्ञा स्त्री०[स०]१ अनुरक्ति। लिप्तता। २. लगन। चाह।

आसत्तिⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आसक्ति'। उ०—आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे।—कबीर ग्र०, पृ० १५२।

आसतीन—संज्ञा स्त्री० [फा० आस्तीन] दे० 'आस्तीन'।

आसते[१]ⓤ—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह्] १ धीरे धीरे। उ०—पौन करि आसते न जाऊँ उठी बास ते, अरी गुलाबपास ते, उठाउ आसपास तें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२२। २. होते हुए।

आसते[२]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आसना'।

आसतोषⓤ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आशुतोष'। उ०—समरथ दूलनदास के आसतोष तुम राम।—सतबानी०, भा० १, पृ० १३७।

आसत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सामीप्य। निकटता। २ अर्थबोध के लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से संबंध रखनेवाले पदों या शब्दों का पास पास रहना। जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध नहीं होता, क्योंकि आसत्ति नहीं है। पर यदि कहें कि 'वह दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य खुला जाता है। पदों का अन्वय आसत्ति के अनुसार होता है। ३ प्राप्ति। पाना। लाभ। (को०)। मेल। संगति (को०)।

आसथाⓤ—संज्ञा स्त्री० [स० आस्था] अंगीकार।—(डिं०)।

आसथानⓤ—संज्ञा पु० [स० आस्थान] दे० 'आस्थान'।

आसदन—संज्ञा पुं०[सं०]१. लाभ। मुनाफा। २ संबंध। संपर्क। ३ निकटता। समीपता। ४ बैठने की क्रिया। बैठना। ५. आसन [को०]।

आसन[१]—संज्ञा पुं०[सं०]१ स्थिति। बैठने की विधि। बैठक। जैसे,—ठीक आसन से बैठो।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का होता है-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन। कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आसन हैं।

यौ०—पद्मासन। सिद्धासन। गरुडासन। कमलासन। मयूरासन।

मुहा०—**आसन उखड़ना**=(१) अपनी जगह से हिल जाना। (२) घोड़े की पीठ पर रान न जमना। जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं है, उसका आसन उखड़ जाता है। **आसन उठना**=स्थान छूटना। प्रस्थान होना। जाना। जैसे,—तुम्हारा आसन यहाँ से कब उठेगा? **आसन करना**=(१) योग के अनुसार अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। (२) बैठना। टिकना। ठहरना। जैसे,—उन महात्मा ने वहाँ आसन किया है। **आसन कसना**=अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। **आसन छोड़ना**=उठ जाना। चला जाना। **आसन जमना**=(१) जिस स्थान पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति से स्थिर रहना। जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका आसन नहीं जमता है। (२) बैठने में स्थिर भाव आना। जैसे,—अब तो वहाँ आसन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते। **आसन जमाना**=स्थिर भाव से बैठना। जैसे,—वह एक घंटे भी कहीं आसन जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता। **आसन जोड़ना**=दे० 'आसन जमाना'। **आसन डिगना**=(१) बैठने में स्थिर भाव न रहना। (२) चित्त चलायमान होना। मन डोलना। इच्छा और प्रवृत्ति होना। (जिसमें जिस बात की आशा न हो वह यदि उस बात को करने पर राजी या उतारू हो तो उसके विषय में यह कहा जाता है।) जैसे,—(क) जब रुपया दिखाया गया, तब तो उसका भी आसन डिग गया। (ख) उस सुंदरी कन्या को देख नारद का आसन डिग गया। **आसन डिगाना**=(१) जगह से विचलित करना। (२) चित्त को चलायमान करना। लोभ या इच्छा उत्पन्न करना। **आसन डोलना**=(१) चित्त चलायमान होना। लोगों के विश्वास के विरुद्ध किसी की किसी वस्तु की ओर इच्छा या प्रवृत्ति होना। जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का भी आसन डोल गया। (ख) रुपए का लालच ऐसा है कि बड़े बड़े महात्माओं का भी आसन डोल जाता है। (२) चित्त क्षुब्ध होना। हृदय पर प्रभाव पड़ना। हृदय में भय और करुणा का संचार होना। जैसे,—(क) विश्वामित्र के घोर तप को देख इंद्र का आसन डोल उठा। (ख) जब प्रजा पर बहुत अत्याचार होता है, तब भगवान् का आसन डोल उठता है। **आसन डोल**=कहारों की बोली। जब पालकी का सवार बीच से खिसककर एक ओर होता है और पालकी उस ओर झुक जाती है तब कहार लोग यह वाक्य बोलते हैं। **आसन तले आना**=वश में आना। अधीन होना। **आसन देना**=सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

बतला देना। बैठाना। **आसन पहँचानना**=बैठने के ढग से घोडे का सवार को पहचानना। जैसे,—घोडा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढने से कुछ इधर उधर नही करता। **आसन पाटी**=खाट खटोला। ओढने बिछाने की वस्तु। **आसन पाटी लेकर पडना**=अटवाटी खटवाटी लेकर पडना। दुख और कोप प्रकट करने के लिये ओढना ओढकर या बिछौना बिछाकर खूब आडबर के साथ सोना। **आसन बाँधना**=दोनो रानो के बीच दबाना। जाँघो से जकडना। **आसन मारना**=(१) जमकर बैठना। (२) पालथी लगा कर बैठना। उ०—मठ मडप चहुँ पास सकारे। जपा तपा सब आसन मारे।—जायसी (शब्द०)। **आसन लगाना**=(१) आसन मारना। जम कर बैठना। (२) टिकना। ठहरना। जैसे,—बाबा जी, आज तो यही आसन लगाइए। (३) किसी कार्य के साधन के लिये अडकर बैठना। जैसे,—यदि आज न दोगे तो यही आसन लगावेगा। (४) बैठने की वस्तु फैलाना। बिछौना बिछाना। जैसे,—बाबा जी के लिये यही आसन लगा दो। **आसन होना**=रतिप्रसग के लिये उद्यत होना। **२** बैठने के लिये कोई वस्तु। वह वस्तु जिसपर बैठें।

विशेष—बाजार मे ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे आसन मिलते हैं। लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं।

३ टिकान या निवास। (साधुओ की बोली)। ४. साधुओ का डेरा या निवास स्थान।

क्रि० प्र०—करना=टिकना। डेरा डालना।—देना=टिकाना। ठहराना। डेरा देना।

५ चूतड। ६ हाथी का कधा जिसपर महावत बैठता है। ७ सेना का शत्रु के सामने डटे रहना। ८. उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमे कुछ परवाह नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरग का सामान करते हैं।

९ कौटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण के रोके रहने की नीति। १० एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने मे असमर्थ होकर राजाओ का सधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, सधानासन, सभूयासन, प्रसगासन और उपेक्षासन।

आसन[2]—सज्ञा पु० [स०] १ जीवक नाम का अष्टवर्गीय ओषधि। २ जीरक। जीरा।

आसना[1]⑤—क्रि० अ० [स० अस्=होना] होना। उ०—(क) है नाही कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।—जायसी ग्र०, पृ० ३। (ख) मरी उरी कि टरी बिथा, कहा खरी, चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि।—बिहारी र०, दो० ५६।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल मे ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है।

आसना[2]—सज्ञा पु०[स०] १ जीव। २ वृक्ष।

आसनी—सज्ञा स्त्री० [स० आसन का हिं० अल्पा०] छोटा आसन। छोटा बिछौना।

आसन्न—वि० [स०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। प्राप्त।

यौ०—**आसन्नकाल**=(१) प्राप्तकाल। आया हुआ समय। (२) मृत्युकाल। (३) जिसका समय आ गया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो। **आसन्नप्रसवा**=जिसे शीघ्र बच्चा होनेवाला हो।

आसन्नता—सज्ञा स्त्री० [स०] नैकट्य। सामीप्य।

आसन्नपरिचारक—सज्ञा पु० [स०] १ सदा मालिक के पास रहनेवाला नौकर। निकटवर्ती सेवक। २ अगरक्षक [को०]।

आसन्नभूत—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह भूतकाल जो वर्तमान से मिला हुआ हो, अर्थात् जिसे बीते थोडा ही काल हुआ हो। २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिससे क्रिया की पूर्णता और वर्तमान से उसकी समीपता पाई जाय। जैसे,—मैं जा रहा हूँ। मैं आया हूँ। उसने खाया है। मैंने देखा है।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, हो लगाने से आसन्नभूत क्रिया बनती है। पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुसार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों मे लगता है।

आसन्नमरण—वि० [स०] जो कुछ ही देर मे मरनेवाला हो [को०]।

आसन्नमृत्यु—वि० [स०] दे० 'आसन्नमरण'।

आसपास—क्रि० वि० [सं० आस=सामीप्य अथवा अनुच्च० आस+स० पार्श्व] चारो ओर। निकट। करीब। इर्द गिर्द। इधर उधर। अगल बगल। उ०—तब सरस्वती भी फेंक साँस, श्रद्धा ने देखा आसपास।—कामायनी, पृ० २४७।

आसवद—सज्ञा पु० [स० आश्वय+वद] एक तागा, जो पटवो के पैर के अँगूठे मे बँधा रहता है। इसी तागे मे जेवर को अटकाकर गूँथते हैं।

आसमाँ—सज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आसमान'।

आसमान—सज्ञा पुं० [फा०, मि० वै० स० अश्मन्=आकाश] १ आकाश। गगन। २ स्वर्ग। देवलोक। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवाले चारु। आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवारु।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—**आसमान के तारे तोडना**=कोई कठिन या असभव कार्य करना। जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये आसमान के तारे तोड लाऊँ। **आसमान जमीन के कुलाबे मिलाना**=(१) खूब लबी चौडी हाँकना। खूब बढ चढकर बातें करना। (२) गहरा जोड तोड लगाना। विकट कार्य करना। **आसमान झाँकना या ताकना**=(१) घमड मे सिर ऊपर उठाना। तनना। (२) मुर्गेबाजो की बोली मे मुर्गे का मस्त होकर लडने के लिये तैयार होना। झडप चाहना। (जब मुर्गा जोश मे भरता है तब आसमान की ओर देखकर नाचता है। इसी से यह मुहाविरा बना है)। जैसे,—अब तो मुर्गा आसमान झाँकने लगा। **आसमान टूट पड़ना**=किसी विपत्ति का अचानक आ पडना। वज्रपात होना। **गजब पड़ना**। जैसे,—क्यो इतना झूठ बोलते हो,

आसमान टूट पड़ेगा। **आसमान दिखाना**=(१) कुश्ती में पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हराना। **आसमान पर उड़ना**=(१) इतराना। गरूर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे संकल्प बाँधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो सामर्थ्य से बाहर हो। बहुत बढ़-चढ़कर बातें करना। डींग हाँकना। **आसमान पर चढ़ना**=गरूर करना। घमंड दिखाना। शेखी मारना। सिट्टू मारना। जैसे,—(क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढ़े जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आसमान पर चढ़ा है। **आसमान पर चढ़ाना**=(१) अत्यंत प्रशंसा करना। जैसे,—आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उसे आसमान पर चढ़ा देते हैं। (२) अत्यंत प्रशंसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज बिगाड़ देना। जैसे,—तुमने तो और उसको आसमान पर चढ़ा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझता ही नहीं। **आसमान पर थूकना**=किसी महात्मा के ऊपर लांछन लगाने के कारण स्वयं निंदित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप तिरस्कृत होना। **आसमान फट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। उ०—फिक्र यह है कि दुनियाँ क्यों कर कायम है, आसमान फट क्यों नहीं पड़ता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। **आसमान में थिगली लगाना**=विकट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,—कुटनियाँ आसमान में थिगली लगाती हैं। **आसमान में छेद करना**=दे० 'आसमान में थिगली लगाना'। **आसमान सिर पर उठाना**=(१) ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आंदोलन करना। धूम मचाना। **आसमान सिर पर टूट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। **आसमान से गिरना**=(१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,—अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नहीं रखी तो क्या आसमान से गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। बिना परिश्रम मिलना। जैसे,—कुछ काम धाम करते नहीं, रुपया क्या आसमान से गिरेगा? **आसमान से बातें करना**=आसमान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराय के दोनों धरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही में एक धरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। **दिमाग आसमान पर होना**=बहुत अभिमान होना।

आसमानखोंचा—संज्ञा पुं० [फा० आसमान+हिं० खोंचा] १ लंबा लग्गा या धरहरा जो ऊपर तक गया हो। २ बहुत लंबा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नैचा इतनी लंबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी[1]—वि० [फा०] १ आकाश संबंधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रंग का। हलका नीला। ३ दैवी। ईश्वरीय। जैसे,—उनके ऊपर आसमानी गजब पड़ा।

आसमानी[2]—संज्ञा स्त्री० १ ताड़ के पेड़ से निकला हुआ मद्य। ताड़ी। २ किसी प्रकार का नशा, जैसे,—भाँग, शराब। ३ मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारों की एक बोली। (जब कोई पेड़ की डाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी में धक्का लगने का डर रहता है, तब आगेवाले कहार पीछेवालों को 'आसमानी, आसमानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [सं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०—आसमुद्र के छितीस औ जाति को गनै। राजभोग भोजन को सबै जने गए बनै।—केशव (शब्द०)।

आसयⓊ—संज्ञा पुं० [सं० आशय] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० आशर] दे० 'आशर'।

आसर[2]—संज्ञा पुं० [अं० अशर] दस रुपए (बंगाइयों की बोली)।

आसरनाⓊ—क्रि० स० [सं० आश्रयण] आश्रय लेना। सहारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। तन में जीव आसरै सोय (शब्द०)।

आसरमⓊ—संज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—चार बिचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ४५।

आसरा—संज्ञा पुं० [सं० आश्रय प्रा० *आसरअ] १ सहारा। आधार। अवलंब। जैसे—(क) यह छत खंभों के आसरे पर है। (ख) बुड्ढे लोग लाठी के आसरे पर चलते हैं। २ भरण पोषण की आशा। भरोसा। आस। ३ किसी से सहायता पाने का निश्चय। जैसे,—हमें आप ही का आसरा है दूसरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—**आसरा टूटना**=भरोसा न रहना। निराश्रय होना। **आसरा देना**=वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना।

४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। सहायक। जैसे,—हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५ शरण। पनाह। जैसे,—जिसने तुम्हें आश्रय दिया उसी के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—पकड़ना।—देना।—लेना।

६ प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इंतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—में रहना।

७. आशा। जैसे,—अब उसका क्या आसरा है, चार दिनों का मेहमान है।

आसरैत—वि० [सं० आश्रित या हिं० आसरा+ऐत (प्रत्य०)।] १ आश्रित। किसी के सहारे रहनेवाला। २ दीन।

आसव—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह मद्य जो मसले में न चुआई जाय केवल फलों के खमीर को निचोड़कर बनाई जाय। उ०—इड़ा डालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं।—कामायनी, पृ० १८३। २ औषध का एक भेद। वनौषधियों को पानी में मिलाकर भूमि में ३० या ६० दिन तक गाड़ रखते हैं फिर उस खमीर को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३ अर्क। ४. वह पात्र जिसमें मद्य रखा जाय। ५ उत्तेजन। ६ मकरंद। पुष्परस (को०)। ७. अधर रस (को०)।

आसवद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालवृक्ष। ताड़ का पेड़। २ खजूर (को०)।

आसवन—संज्ञा पुं० [सं०] आसव बनाने की क्रिया (को०)।

आसवी--वि० [स० आसविन्] शराबी। मद्यप। मद्यपान करनेवाला। उ०—वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम। छकि छकि मतवारे रहैं, तव छवि मद वसु जाम।—स० सप्तक, पृ० २७२।

आसहर(पु)—वि० [सं० आशा+हर] निराश। उ०—सबै आसहर तकर आसा। वह न काहु के आस निरासा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

आसा[1](पु)—सज्ञा पुं० [स० आशा] दे० 'आशा'।

आसा[2]—सज्ञा पु० [अ० असा] सोने चाँदी का डडा जिसे केवल सजावट के लिये राजा महाराजो अथवा वरात और जुलूस के आगे चोवदार लेकर चलते हैं।

यौ०—आसावल्लम। आसासोंटा। आसावरदार।

आसाइश—सज्ञा पुं० [फा०] आराम। सुख। चैन।

आसाढ(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आषाढ'।

आसादन—सज्ञा पुं० [स०] १ प्राप्त करना। २ रखना। ३ झपटकर पकड लेना। ४ आक्रमण करना [को०]।

आसादित—वि० [स०] १ प्राप्त। उपलब्ध। २ पहुँचा हुआ। ३ बिखेरा हुआ। ४ पूर्ण किया हुआ। ५. आक्रात [को०]।

आसान—वि० [फा०] सहज। सरल। सीधा। सहल।

आसानी—सज्ञा स्त्री० [फा०] सरलता। सुगमता। सुबीता।

आसापाल—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड का नाम।

आसाम—सज्ञा पु० [देश०] भारत का एक प्रात या राज्य जो बगाल के उत्तर पूर्व मे है।

विशेष—इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे। इस देश मे हाथी अच्छे होते हैं। यहाँ पहले 'आहम' वशी क्षत्रियो का राज्य था। इसी से इस देश का नाम 'आहम' या 'आसाम' पड गया है। मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वश का बतलाते हैं।

आसामी[1]—सज्ञा पु०, स्त्री० [हिं०] दे० 'असामी'।

आसामी[2]—वि० [हिं० आसाम] आसाम देश का। आसाम देश सबधी।

आसामी[3]—सज्ञा पु० आसाम देश का निवासी।

आसामी[4]—सज्ञा स्त्री० आसाम देश की भाषा।

आसामुखी(पु)—वि० [सं० आशा+मुख+हिं० ई (प्रत्य०)] किसी के मुख का आसरा देखनेवाला। मुखापेक्षी। उ०—(क) जो जाकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐस न मारै दुखी।—जायसी ग्र०, पृ० ९७। (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम न देई जाव। आधा नर आसामुखी, यों ही खोवै आव।—कबीर ग्र० पृ० ४४।

आसार[1]—सज्ञा पुं० [अ०] १ चिह्न। लक्षण। निशान। उ०—बारिश के आसार पाए जाते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ०। २ चौडाई। ३ नीव। बुनियाद [को०]। ४ खडहर [को०]।

आसार[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ धारा। संपात। मूसलाधार वृष्टि। २ कौटिल्य के अनुसार लडाई मे मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता। ३ मेघमाला।—(डिं०) ४ हमला। हल्ला आक्रमण (को०)। ५ शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०]।

आसारित—सज्ञा पु० [सं०] एक वैदिक गीत।

आसाव—वि० [सं०] प्रशसक। स्तुतिकारक [को०]।

आसावरी—सज्ञा पुं० [हिं० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी। इसका स्वर ध, नि, स, म, प, ध है और गाने का समय प्रात काल १ दड से ५ दड तक। दे० 'असावरी'। २. एक प्रकार का कबूतर। ३ एक प्रकार का सूती कपडा।

आसिक[1]—वि० [सं०] तलवार चलानेवाला। असिकला मे प्रवीण।

आसिक[2](पु)—वि० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला [को०]।

आसिक्त—वि० [स०] अभिसिंचित। सीचा हुआ। भीगा हुआ [को०]।

आसिख, आसिखा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आशिष'।

आसित[1]—वि० [सं०] १ बैठा हुआ। २ सुखासीन [को०]।

आसित[2]—सज्ञा पु० १ असित मुनि का पुत्र। २ शाडिल्य गोत्र का एक प्रवर विशेष। ३ बैठने का तरीका (को०)। ४ बैठने की वस्तु। आसन (को०)।

आसिद्ध—सज्ञा पुं० [सं०] राजाज्ञा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरासत में किया हुआ मुद्दालैह् (प्रतिवादी)।

आसिन—सज्ञा पुं० [सं० आश्विन] क्वार का महीना।

आसिया—सज्ञा स्त्री० [फा०] चक्की। जाता। पेषणी [को०]।

आसिरवचन(पु)—सज्ञा पु० [सं० आशीर्वचन] आशीर्वाद। आसीस उ०—बदि बदि पग सिय सबही के। आसिरवचन लहे प्रिय जी के।—मानस, २।२४५।

आसिरवाद(पु)—सज्ञा पु० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'।

आसिरा(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'आसरा'। उ०—दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार।—दादू० बानी, पृ० ।

आसिषा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० आशिष। उ०—औरो एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।—मानस, ७।१०९।

आसिस(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आशिष'। उ०—दछिना देत नद पग लागत आसिस देत गरग सब द्विज वर।—नद ग्र०, पृ० ५७१।

आसी(पु)—वि० [स० आशी] दे० 'आशी'।

आसीन—वि० [सं०] बैठा हुआ। विराजमान।

आसीनपाठ्य—सज्ञा पुं० [सं०] नाटचशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अगो मे से एक। शोक और चिंता से युक्त किसी आभूषितागी नायिका का बिना किसी बाजे या साज के यो ही गाना।

आसीर्वाद—सज्ञा पुं० [स० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'। उ०—कोऊ वैष्णव को आसीर्वाद तो नहिं भयो ?—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ४६।

आसीवन—सज्ञा पुं० [सं०] सीने की क्रिया। तागे डालना। टाँके लगाना [को०]।

आसीस[1]—सज्ञा पुं० [सं० आ+शीर्ष] तकिया। उसीसा। उ०—तिसपर फेन से बिछौने फूलो से सँवारे बिशाल गड्डवा और आसीसे समेत सुगध से महक रहे थे।—लल्लू (शब्द०)।

आसीस[2]—सज्ञा पुं० [सं० आशिष] दे० 'आशिष'।

आसु[1](पु)—सर्व [सं० अस्य, प्रा० अस्स, आसु जैसे 'अस्य से आसु तस्य' मे आसु] इसका। उ०—जानि पुछार जो भय बनवासू। रोवँ रोवँ परि फाँद न आसू।—जायसी (शब्द०)।

आसु[२] ⑤—क्रि० वि० [सं० आशु] दे० 'आशु'। उ०—आनि कै पाँ परौ देस लै, कोस लै आसु ही ईस सीता चलै ओक को। —रामच०, पृ० ११३।

आसुग⑤—वि० सज्ञा पुं० [सं० आशुग] दे० 'आशुग'।

आसुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रस्रवण। चुवाना। २ चुआकर बनाई जानेवाली ओषधिविशेष। ३ प्रसव। ४ स्थिरता [को०]।

आसुतीवल—सज्ञा पुं० [सं०] १. कन्यापालक। बालिका का अभिभावक। २. पुरोहित। ३. शराब चुआनेवाला कलाल। ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [को०]।

आसुतोष[१]⑤—सज्ञा पुं० वि० [सं० आशुतोष] दे० 'आशुतोष'।

आसुर[१]—वि० [सं०] १ असुरसबधी।

यौ०—आसुर विवाह = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो। आसुरावेश = भूत लगना।

२ दैवी (को०)। ३. यज्ञादि न करनेवाला (को०)।

आसुर[२]—सज्ञा पुं० १. राक्षस। असुर। २. विरिया। सोवर नमक। कटीला। विड् लवण। ३. रुधिर (को०)।

आसुरि—सज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जो सांख्य योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे।

आसुरी[१]—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आसुरि'।

आसुरी[२]—वि० स्त्री० [सं०] असुर सबधी। असुरों का। राक्षसी।

यौ०—आसुरी चिकित्सा = शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड। आसुरी माया = चक्कर मे डालनेवाली राक्षसो की चाल। आसुरी सपत्। आसुरी सृष्टि।

आसुरी[३]—सज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री। उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।—रामच०, पृ० ६५। २ वैदिक छंदो का एक भेद। ३. राजिका। राई। ४ मरसों। ५. शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड (को०)।

आसुरीसपत्—सज्ञा स्त्री० [सं० आसुरीसम्पत्] १ राक्षसी वृत्ति। बुरे कर्मों का सचय। २ कुमार्ग से आई हुई सपत्ति। बुरी कमाई का धन।

आसुरीसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] दैवी आपत्ति। जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ, दुर्भिक्ष आदि।

आसूत्रित—वि० [सं०] १ माला बनानेवाला। मालाकार। २. माला पहननेवाला। २ गुँथा हुआ [को०]।

आसूदगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तृप्ति। सतोष।

आसूदा—वि० [फा० आसूदह्] १ सतुष्ट। तृप्त। २ सपन्न। भरापूरा।

यौ०—आसूदा हाल = खाने पीने से खुश।

आसेक—सज्ञा पु० [सं०] १. सिंगोना। अच्छी तरह सिंगोना। २ सींचना। आसेचन। जलसिक्त करना। अच्छी तरह सींचना। [को०]।

आसेक्य—वि० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुसक।

आसेचन[१]—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आसेक'।

आसेचन[२]—वि० [सं०] सुदर। लुभावना [को०]।

आसेचनी[१]—सज्ञा स्त्री० [सं०] लघु पात्र [को०]।

आसेद्धा—सज्ञा पु० [सं० आसेद्ध] बंदी बनानेवाला व्यक्ति। हिरासत मे लेनेवाला [को०]।

आसेध—सज्ञा पुं० [सं०] राजा की आज्ञा से वादी (मुद्दई) का प्रतिवादी (मुद्दालेह्) को हिरासत मे रखना।

आसेधक—वि० [सं०] दे० 'आसेद्धा' [को०]।

आसेव—सज्ञा पुं० [फा०] [वि० आसेवी] १. भूत प्रेत की बाधा।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—लगना।—होना।

२. कष्ट। दुख [को०]। ३ आघात। चोट [को०]। ४. रोक। बाधा [को०]।

आसेवन—सज्ञा पु० [सं०] १ निरतर सेवन करना। २ मेलजोल। बराबर होने का भाव [को०]।

आसेवा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आसेवन' [को०]।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ। बहुत दिनो तक व्यवहृत [को०]।

आसेवी—वि० [सं० आसेविन्] निरतर सेवन करनेवाला। अभ्यासी [को०]।

आसेव्य—वि० [सं०] १ निरंतर सेवा के योग्य। २ देखने योग्य [को०]।

आसेर⑤—सज्ञा पुं० [सं० आश्रय] किला।—(डिं०)।

आसोज†, आसोजा†—सज्ञा पुं० [सं० अश्वयुज्] आश्विन मास। क्वार का महीना। उ०—आस रही आसोज आइहैं पीव री।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३६८।

आसौं⑤—क्रि० वि० [सं० अस्मिन् प्रा० आस्सि = इद + सं० सम = वर्ष] इस वर्ष। इस साल।

आस्कंद—सज्ञा पुं० [सं० आस्कन्द] १ नाश। २. शोषण। ३. आक्रमण। ४ आरोहण। ५ युद्ध। ६ घोडे की एक चाल। ७ अपशब्द। तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [को०]

आस्कदन—सज्ञा पुं० [सं० आस्कन्दन] दे० 'आस्कंद'।

आस्कदित[१]—वि० [सं० आस्कन्दित] १. भारग्रस्त। २. कुचला गया [को०]।

आस्कदित[२]—सज्ञा पुं० घोडे की तेज सरपट चाल [को०]।

आस्कदी—वि० [सं० आस्कन्दिन्] १ आक्रमणकारी। आक्राता। २. खर्च करनेवाला। ३ अपहर्ता [को०]।

आस्तर—सज्ञा पु० [सं०] १ बिछौना। बिछावन। २ हाथी की झूल। ३ बिछाना। फैलाना [को०]।

आस्तरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञवेदी पर बिछाए कुश। २ दरी। बिछौना। ३ झूल। ४. फैलाना। बिछाना [को०]।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १ बिस्तरे पर सोनेवाला। २ फैलाया या बिछाया जानेवाला [को०]।

आस्तार—सज्ञा पुं० [सं०] छितराना या बिखेरना [को०]।

आस्तारपक्ति—सज्ञा पु० [सं० आस्तार पङ्क्ति] एक वैदिक छद का नाम जिसके पहले और चौथे चरण मे १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण मे आठ वर्ण होते हैं। यह सब मिलाकर ४० वर्णों का छद है।

आस्तावं—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुतिपाठ। स्तवन। २ यज्ञ मे वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [को०]।

आस्तिक[१]—वि० [सं०] १ वेद, ईश्वर और परलोक इत्यादि पर विश्वास करनेवाला। २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला।

आस्तिक[२]—सज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष।

आस्तिकता—सज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक मे विश्वास।

आस्तिकत्व—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आस्तिकता' [को०]।

आस्तिकपन—सज्ञा पु० [सं० आस्तिक+हि०पन] आस्तिकता।

आस्तिक्य—सज्ञा पुं० [स०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास। २ जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावो के अस्तित्व पर विश्वास।

आस्तीक—सज्ञा पु० [स०] एक ऋषि का नाम जिन्होने जनमेजय के सर्पसत्र मे तक्षक के प्राण बचाए थे। ये जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे।

आस्तीन—सज्ञा स्त्री० [फा०] पहनने के कपडे का वह भाग जो बाँह को ढँकता है। बाही।

मुहा०—**आस्तीन का साँप**=वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे। ऐसा सगी जो प्रकट मे हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो। **आस्तीन चढाना**=(१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना। (२) लडने के लिये तैयार होना। **आस्तीन मे साँप पालना**=शत्रु या अशुभचिंतक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना।

आस्ते—अव्य० [अ० आहिस्तह्, हि० आसते] धीरे।

आस्त्र—वि० [स०] हथियार या आयुधसबधी [को०]।

आस्था—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पूज्य बुद्धि। श्रद्धा।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

२ सभा। बैठक। ३ आलबन। अपेक्षा। ३ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ४ निवास का साधन या स्थान (को०)। ५ वादा। प्रतिज्ञा (को०)। ६ आशा (को०)।

आस्थाता—वि० [स० आस्थातृ] १ चढनेवाला। आरोही। २ खडा होनेवाला [को०]।

आस्थान—सज्ञा पु० [स०] १ बैठने की जगह। बैठक। २ सभा। दरबार।

यौ०—**आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानमंडप**।

आस्थानिका—सज्ञा स्त्री० [स०] बैठने की कोई वस्तु। कुर्सी। मचिया [को०]।

आस्थानी—सज्ञा स्त्री० [स०] सभाकक्ष। सभागृह [को०]।

आस्थापन—सज्ञा पुं० [स०] १. स्थापित करना। खडा करना। २ एक बलवर्धक ओषधि। ३ घी या तेल की वस्ति [को०]।

आस्थापित—वि० [सं०] १ खडा किया हुआ। २ सस्थापित। दृढीकृत [को०]।

आस्थायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रोताओं का समाज। २ दरबार [को०]।

आस्थित—वि० [स०] १ रहा हुआ। बसा हुआ। २ यत्न करता हुआ। ३ घेरा हुआ। ४. प्राप्त किया हुआ। पहुँचा हुआ। ५ व्याप्त। फैला हुआ [को०]।

आस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] अवस्था। दशा [को०]।

आस्थेय—वि० [सं०] १ जिसके पास पास पहुँचा जाय। २ गृहीत। ३. आदृत [को०]।

आस्नान—सज्ञा पुं० [सं०] १ पवित्रता। २ धोने या नहाने का पानी [को०]।

आस्नेय[१]—वि० [सं०] रक्तरजित [को०]।

आस्नेय[२]—वि० मुख सबधी [को०]।

आस्पद—सज्ञा पुं० [स०] १ स्थान। उ०—कोटि बार आश्चर्य का आस्पद है।—श्यामा०, पृ० ७१। २. कार्य। कृत्य। ३ पद। प्रतिष्ठा। ४ अल्ल। वश। कुल। जाति। जैसे,—आप कौन आस्पद हैं। ५. कुडली मे दसवाँ स्थान।

आस्पर्धा—सज्ञा स्त्री० [स०] होडाहोडी। प्रतिस्पर्धा। लागडाट [को०]।

आस्पर्धी—वि० [स० आस्पर्धिन्] होड लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०]।

आस्फाल—सज्ञा पु० [स०] १ धक्का देना। २ रगडना। ३ धीरे धीरे हिलाना। ४ हाथी का कान फडफडाना [को०]।

आस्फालन—सज्ञा पुं० [स] झटका। धक्का देना। झाटना। उ०—अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने। अतीव लबी वह यष्टि छीन ली।—प्रिय० प्र०, पृ० १८४।

आस्फुजित्—सज्ञा पुं० [स०] शुक्र नामक ग्रह [को०]।

आस्फोट—सज्ञा पु० [स०] १ ठोकर या रगड से उत्पन्न शब्द। २ ताल ठोकने का शब्द। ३ मदार।

आस्फोटक[१]—सज्ञा पुं० [स०] अखरोट।

आस्फोटक[२]—वि० ताल ठोकनेवाला [को०]।

आस्फोटन—सज्ञा पु० [स०] १ ताल ठोकना। २ फटकना। ३ हिलाना। कँपाना। ४. सकुचन। ५ ताली बजाना। ६ उद्घाटित करना। प्रकट करना। ७ माँडना [को०]।

आस्फोटनी—सज्ञा स्त्री० [स०] बरमी नामक बढई का औजार जिससे लकडी मे छेद किया जाता है [को०]।

आस्फोटा—सज्ञा स्त्री० [स०] नवमल्लिका। चमेली।

आस्फोत—सज्ञा पुं० [स०] १ मदार। अर्क। २ कोविदार। ३ भूपलाश [को०]।

आस्फोतक—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आस्फोतका] दे० 'आस्फोत', 'आस्फोता' [को०]।

आस्फोता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ मल्लिका। २ अपराजिता। ३ सारिवा [को०]।

आस्यंदन—सज्ञा पु० [स० आस्यन्दन] प्रस्रवण। बहना। [को०]।

आस्यधय—सज्ञा पु० [स० आस्यन्धय] चुबन करना [को०]।

आस्य—सज्ञा पुं० [स०] मुख। मुँह। मुँखमडल। चेहरा। उ०—वेश भाषा भगियो पर हास्य, कर रहे थे सरस सबके आस्य।—साकेत, पृ० १७०।

आस्यपत्र—सज्ञा पु० [स०] कमल।

आस्यलागल—सज्ञा पु० [स० आस्यलाङ्गल] १ कुत्ता। २. सूअर [को०]।

आस्यलोम—सज्ञा पु० [सं० आस्यालोमन्] दाढी [को०]।

आस्या[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विश्राम की अवस्था। २ बैठना। ३ रहना। ४ वासस्थान [को०]।

आस्या[२]—संज्ञा स्त्री० लार। राल।

आस्यासव—सज्ञा पुं० [सं०] लाला। लार [को०]।

आस्युत—वि० [स०] एक मे सिला हुआ [को०]।

आस्र—सज्ञा पु० [स०] रक्त। खून [को०]।

आस्रप[1]—वि० [स०] रक्तपायी। खून चूसने या पीनेवाला [को०]।

आस्रप[2]—संज्ञा पुं० १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र [को०]।

आस्रम Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—तुम्हरे आस्रम अवहिं ईस तप साधहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

आस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उबलते हुए चावल का फेन। २ पनाला। ३ इंद्रियद्वार। उ०—आस्रव इंद्रिय द्वार कहावै। जीवहिं विषयन ओर बहावै।—(शब्द०)। ४ क्लेश। कष्ट। ५ जैनमतानुसार औदरिक और कामादि द्वारा आत्मा की गति जो दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ।

आस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहाव। २ घाव। ३ पीडा। ४ एक रोग। ५ थूक [को०]।

आस्वनित—वि० [सं०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ। आशब्दित [को०]।

आस्वात—वि० [सं० आस्वान्त] दे० 'आस्वनित'।

आस्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] रस। स्वाद। जायका। मजा। उ०—सस्कार ने मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं।—रस क०, पृ० १८।

आस्वादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आस्वादनीय आस्वादित] चखना। स्वाद लेना। रस लेना। मजा लेना।

आस्वादनीय—वि० [सं०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने योग्य। मजा लेने योग्य।

आस्वादित—वि० [सं०] चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया हुआ। मजा लिया हुआ।

आस्वाद्य—वि० [सं०] आस्वादन करने योग्य। जायकेदार। खाने मे मधुर। मीठा [को०]।

आह[1]—अव्य० [सं० अहह] पीडा, शोक, दुःख, खेद और ग्लानिसूचक अव्यय। उ०—पीडा—आह! बडा भारी काँटा पैर मे धँसा। दुःख शोक—आह! अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है। थोडा क्रोध और खेद—आह! तुमने तो हमे हैरान कर डाला।

आह[2]—संज्ञा स्त्री० कराहना। दुःख या क्लेशसूचक शब्द। ठंढी साँस। उसास। उ०—तुलसी आह गरीब की, हरि सो सही न जाय। मुई खाल की फूँक सो, लोह भसम होइ जाय।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—आह करना = हाय करना। कलपना। ठंढी साँस लेना। उ०—(क) आह करो तो जग जले, जगल भी जल जाय। पापी जियरा ना जले, जिसमे आह समाय। (शब्द०)। (ख) भरथरि बिछुरी पिंगला आह करत जिउ दीन्ह।—जायसी ग्र०, पृ० २७२। आह खींचना = ठंढी साँस भरना। उसास खींचना। जैसे,—उसने तो आह खीचकर कहा कि तेरे जी मे जो आवे, सो कर। आह पडना = शाप पडना। किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। जैसे,—तुम पर उसी दुखिया की आह पडी है। आह भरना = ठंढी साँस खीचना। उ०—चितहिं जो चित्र कीन्ह, धन रो रो अग समीप। महा साल दुख आह भर, मुरछ परी कामीप।—जायसी (शब्द०)। आह मारना = ठंढी साँस खीचना। उ०—आह जो मारी बिरह की, आग उठि तेहि लाग। हस जो रहा शरीर महँ पख जरे सब भाग।—जायसी (शब्द०)। आह लेना = सताना। दुःख देकर कलपाना। किसी को सताने का फल अपने ऊपर लेना। जैसे,—नाहक किसी की आह क्या लेते हो।

आह[3] Ⓤ—संज्ञा पुं० [राज० आहस = बल] साहस। हियाव। बल। उ०—जड के निकट प्रवीन की, नही चलै कछु आह। चतुराई ढिग अंध के, करै चितेरी चाह।—दीनदयाल (शब्द०)।

आहक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जो नाक मे होता है। २. गीर्वाण [को०]।

आहचर्ज Ⓤ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—सदा समीपिनि सखिहु लखति अति आहचर्ज मौं।—रत्नाकर, पृ० ६।

आहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आ = आना + हट (प्रत्य०), जैसे—बुलाहट घबराहट] १ शब्द जो चलने मे पैर तथा और दूसरे अगो से होता है। आने का शब्द। पाँव की चाप। खडका। जैसे,—(क) किसी के आने की आहट मिल रही है। उ०—होत न आहट भो पग धारे। बिनु घटन ज्यो गज मतवारे।—लाल (शब्द०)। (ग) आहट पाय गोपाल की ग्वालिनि गली महँ जाय के धाय लियो है। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

२. आवाज जिससे किसी के रहने का अनुमान हो। जैसे,—कोठरी मे किसी आदमी की आहट मिल रही है।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

३ पता। सुराग। टोह। निशान।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

आहत[1]—वि० [सं०] [सज्ञा आहति] १. जिसपर आघात हुआ हो। चोट खाया हुआ। घायल। जखमी। जैसे,—उस युद्ध मे ४०० सिपाही आहत हुए। २. जिस सख्या को गुणित करें। गुण्य। ३. व्याघात दोष से युक्त (वाक्य)। परस्पर विरुद्ध (वाक्य)। असभव (वाक्य)। ४ तुरत धोया हुआ (वस्त्र)। (वस्त्र) जो अभी धुलकर आया हो। ५. पुराना। जीर्ण। गला हुआ। ६ चलित। कपित। थर्राता हुआ। हिलता हुआ। ७. हत। मृत [को०]। ८ आघात किया हुआ। बजाया हुआ [को०]। कुचला या रौंदा हुआ [को०]।

यौ०—हताहत = मारे हुए और जखमी।

आहत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊन। २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०]।

आहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट। मार। २ गुणन। गुणना। ३ मार डालना। वध [को०]।

आहन—संज्ञा पुं० [फा०] लोहा।

आहनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ यष्टि। डडा। २ मारना। पीटना [को०]।

आहनी—वि० [फा०] लोहे का।

आहर[1] Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अह] समय। काल। दिन। उ०—तिन तप कीन्ह छाँडि कै राजू। आहर गयो न गा सिध काजू। जायसी (शब्द०)।

आहर[2]—संज्ञा पुं० [सं० आहरण] युद्ध। लडाई।

आहर[3]—संज्ञा पुं० [सं० आहार] [अल्पा० आहरा] वह गहरा गड्ढा जो पोखरे मे छोटा हो, पर तलैया और ताल मे बडा हो।

आहर[4]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वीकार। ग्रहण। लेना। २ बलिप्रदान पूजा। ३. वह वायु जो श्वास के रूप मे खीची जाती है [को०]।

आहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहरणीय, कर्तृ० आहर्ता] १ छीनना। हर लेना। २ किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। स्थानांतरित करना। ३ ग्रहण। लेना। ४ विवाह के अवसर पर वधू को उपहारस्वरूप में देय धन (को०)।

आहरणीय—वि० [सं०] छीनने योग्य। हर लेने योग्य।

आहरन—संज्ञा पुं० [सं० आहनन = जिसपर आघात किया जाय, अथवा सं० आघटन = जिसपर वस्तु को पीटकर उसकी पटना अर्थात् रचना की जाय, वस्तु को गढ़ा जाय।] लोहारों और सुनारों की निहाई।

आहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आहर का अल्पा०] १. छोटा तोड़ या गड्ढा। अहरी। २ थाना। ३ कुएँ के पास का तोड़ या गड्ढा जो पशुओं के पानी पीने के लिये बनाया जाता है।

आहर्ता—वि० [सं० आहर्तृ] [वि० स्त्री० आहर्त्री] १ हरण करनेवाला छीननेवाला। लेनेवाला। ले जानेवाला। २ अनुष्ठान करनेवाला। अनुष्ठाता।

आहला†—संज्ञा पुं० [सं० आ + हला = जल] जल की बाढ़।

आहव—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। लड़ाई। २ यज्ञ। ३. पुकारना। आह्वान (को०)।

आहवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहवनी] १ यज्ञ करना। होम करना। २ यज्ञीय हवि (को०)।

आहवनी—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य। होम करने योग्य।

आहवनीय (अग्नि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकांड में तीन प्रकार की अग्नियों में तीसरी। यह गार्हपत्य अग्नि से निकालकर अभिमंत्रित करके यज्ञ के लिये मंडप में पूर्व ओर स्थापित की जाती है।

आहाँ[1]†—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] १ हाँक। दुहाई। उ०—अदल जो कीन्ह उमर की नाईं। अद आहा नगरी दुनियाईं।—जायसी (शब्द०)। २. पुकार। बुलावा। उ०—अद आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि अद गाहन नली।—जायसी (शब्द०)

आहाँ[2]†—अव्य० [अ = नहीं + हाँ] अस्वीकार का शब्द। जैसे,—प्रश्न—तुम कुछ और लोगे? उत्तर—आहाँ।

आहा—अव्य० [सं० अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय। जैसे,—आश्चर्य—आहा! आप ही थे, जो दीवार की आड़ से बोल रहे थे। हर्ष—आहा! क्या सुंदर चित्र है।

आहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन। खाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—निराहार। फलाहार।

२ खाने की वस्तु, जैसे,—बहुत दिनों से उसे ठीक आहार नहीं मिला है। ३ ले लेना। ग्रहण। स्वीकार (को०)।

आहारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वाधारी मुनिराज अपनी शंका के समाधान के लिये हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकरों के पास उपस्थित होते हैं।

आहारपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में खाए हुए पदार्थ का पचना। २ पकाने की क्रिया (को०)।

आहारविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] पाकविद्या। खाद्य वस्तुओं के गुण-दोष आदि को प्रस्तुत करनेवाला विज्ञान (को०)।

आहारविहार—संज्ञा पुं० [सं०] खाना, पीना, सोना आदि शारीरिक व्यवहार। रहन-सहन।

यौ०—मिताहारविहार = नियमित शारीरिक व्यवहार। खाने पीने आदि का संयमित।

आहारसंभव—संज्ञा पुं० [सं० आहारसम्भव] अन्न से होनेवाला आहार द्वारा उत्पन्न, जिसमें रक्त आदि (को०)।

आहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन आचार-पद्धति के अनुसार साधुओं में से एक (को०)।

आहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाने की इच्छा।

आहारी—वि० [सं० आहारिन्] [वि० स्त्री० आहारिणी] १ खानेवाला। भक्षक। २ स्वीकार या ग्रहण करनेवाला (को०)। ३ आहरण करनेवाला। लानेवाला (को०)।

आहार्य[1]—वि० [सं०] १ कृत्रिम। बनावटी। २ अनोखा। ३ पुरस्कार। पुरस्कृत (को०)।

आहार्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार प्रकार के अनुभावों में। नायक और नायिका का परस्पर एक दूसरे को देखकर प्रसन्न करना। उ०—स्याम सौंह दृग भौंह चढ़ाई। रिस करि कछु पट पारि लखाई। तरकी भाल बंद बर दीन्हे। सोभा सकल सुकवि कुल लीन्हे। मानो मकर मयी हेरि हारी। काट लगी कैरी बहु डारी। सकल समाज लहि लोगनि। देत भोरि आहार सुकवि बानी।—केशव (शब्द०) २ अभिनय के चार प्रकारों में से एक। वेश भूषा आदि द्वारा कृत्रिम रूप धारण करना।

आहार्याभिनय—संज्ञा पुं० [सं०] बिना कुछ बोले या संकेत किए केवल रूप और वेश द्वारा ही नायक के अभिप्राय को प्रकाश, वेश परिवर्तन करने रूप में किया जानेवाला अभिनय।

आहार्योदकसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वह नहर जिसका पानी किसी नदी में गिराकर पानी लाया गया हो। वि० दे० 'सेतु'।

आहाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलाशय। कुएँ के लिए खोदा हुआ। २ अग्नि। ३. युद्ध। ४ कुएँ के पास बनी हुई पानी की वह टंकी जिसमें पशु पक्षी आकर पानी पीते हैं। (वि०)।

आहिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० आहिण्डिक] [स्त्री० आहिंडिकी] वह नट जो निषाद जाति के पुरुष और वैदेह जाति की स्त्री के संयोग से उत्पन्न हो। यह धर्मशास्त्र में महाक्षुद्र कहा गया है।

आहि—क्रि० अ० [हिं०] 'आना' का वर्तमानकालिक रूप है।

आहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ केतु। २ पुराना नारा। पाणिनि मुनि।

आहित[1]—वि० [सं०] १. रखा हुआ। स्थापित। २ धरोहर रखा हुआ। गिरो रखा हुआ। रेहन रखा हुआ।

आहित[2]—संज्ञा पुं० पद्रह प्रकार के दासों में से एक, जो अपने स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसकी सेवा में रहकर उसे पटाता हो।

आहितक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल।

आहितकलम—वि० [सं०] थका हुआ। श्रांत (को०)।

आहितदास—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

आहितलक्षण—वि० [स०] जो किसी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०]।

आहितस्वन—वि० [स०] शोरगुल मचानेवाला [को०]।

आहिताक—वि० [स० आहिताङ्क] चिह्नवाला। चिह्नित [को०]।

आहिताग्नि—सज्ञा पु० [स०] अग्निहोत्री।

आहिति—सज्ञा स्त्री० [स०] स्थापन। रखना [को०]।

आहिस्ता—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह] धीरे से। धीरे धीरे। शनै शनै। धीमे से।

यौ०—आहिस्ता आहिस्ता।

आहु—सज्ञा पु० [स० आहव=ललकार, युद्ध, प्रा० आह=बुलाना] ललकार। युद्ध के लिये किसी को प्रचारना। उ०—माल लाल बेंदी छए छुटे बार छवि देत। गह्यो राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर समेत।—बिहारी र०, दो० ३५५।

आहुक—सज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम।

आहुड—सज्ञा पुं० [स० आहव+हिं० (प्रत्य०)] युद्ध। लड़ाई।

आहुत[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथियज्ञ। नृयज्ञ। मनुष्ययज्ञ। अतिथिसत्कार। २ भूतयज्ञ। बलिवैश्वदेव।

आहुत[2]—वि० हवन किया हुआ। हुत [को०]।

आहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मत्र पढकर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि मे डालना। होम। हवन। उ०—शिव आहुति बेरा जब आई। विप्रनि दच्छहि पूछयो जाई।—सू०, ४।५। २ हवन मे डालने की सामग्री। ३ होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक बार मे यज्ञकुड मे डाली जाय। उ०—आहुति जज्ञकुड मे डारी। कह्यो, पुरुष उपज्यो बल भारी।—सूर०, ४।३९९।

क्रि० प्र०—करना।—छोडना।—डालना।—देना।—होना।

यौ०—आज्याहुति। पूर्णाहुति।

आहुती§†—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आहुति'।

आहुल्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०]।

आहू—सज्ञा पुं० [फा०] हिरन। मृग।

आहूत—वि० [स०] बुलाया हुआ। आह्वान किया हुआ। निमत्रित।

यौ०—अनाहूत।

आहूतसप्लव—सज्ञा पुं० [स० आहूतसम्प्लव] प्रलयकाल। प्रलयकालीन जलप्लावन।

आहूति—सज्ञा स्त्री० [स०] आह्वान। पुकार [को०]।

आहृत—वि० [स०] १ जो हरण किया हो। जो लिया गया हो। २ जो लाया गया हो। आनीत। लाया हुआ।

आहेय—वि० [स०] अहि या सर्पसबधी [को०]।

आहै§—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप।

आह्न—वि० [स०] दिनसबधी। दैनिक [को०]।

आह्निक[1]—वि० [स०] दिन का। दैनिक। रोजाना। जैसे,—आह्निक कर्म। आह्निक कृत्य।

आह्निक[2]—सज्ञा पुं० १ एक दिन का काम। २ सूत्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अश जो एक दिन मे पढा जाय। ३. अध्यापक। ४ रोजाना मजदूरी। ५ एक दिन की मजदूरी।

आह्लाद—सज्ञा पु० [स०] [वि० आह्लादित] आनद। खुशी। हर्ष। उ०—जब उमडना चाहिए आह्लाद, हो रहा है क्यो मुझे अवसाद।—साकेत, पृ० १६७।

यौ०—आह्लादप्रद=आनददायक।

आह्लादक—वि० [स०] [स्त्री० आह्लादिका] आनंददायक। खुशी देनेवाला।

आह्लादन[1]—सज्ञा पु० [स०] हर्ष। आह्लाद [को०]।

आह्लादन[2]—वि० आनददायी। हर्ष प्रदान करनेवाला [को०]।

आह्लादित—वि० [स०] आनदित। हर्षित। प्रसन्न। खुश।

आह्लादी—वि० [स० आह्लादिन्] १ प्रसन्न। हर्षयुक्त। २ हर्षप्रद। आनद देनेवाला [को०]।

आह्वय—सज्ञा पु० [स०] १ नाम। सज्ञा।

यौ०—गजाह्वय। नागाह्वय। शताह्वय।

२ तीतर, बटेर, मेढ़े आदि जीवो की लडाई की बाजी। प्राणिद्यूत।

विशेष—मनु के धर्मशास्त्र मे इसका बहुत निषेध है।

आह्वयन—सज्ञा पुं० [स०] १. नाम का उच्चारण। २ नाम [को०]।

आह्वान—सज्ञा पुं० [स०] १. बुलाना। बुलावा। पुकार। उ०—अतर का आह्वान वेग से बाहर आया।—साकेत, पृ० ४१०। २ राजा की ओर से बुलावे का पत्र। समन। तलबनामा। ३ यज्ञ मे मत्र द्वारा देवताओ को बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आह्वाय—सज्ञा पुं० [स०] १ नाम। २ समन। तलबनामा [को०]।

आह्वायक[1]—वि० [स०] आह्वान करनेवाला। पुकारनेवाला [को०]।

आह्वायक[2]—सज्ञा पु० सदेशहर। संदेश ले जानेवाला। दूत [को०]।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला मे स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है। ई इसका दीर्घ रूप है।

इक—सज्ञा स्त्री० [अ०] स्याही। मसी। रोशनाई।

विशेष—यह मुख्यत दो प्रकार की होती है—लिखने की और छापने की। लिखने की स्याही कसीस, हड, माजू आदि को औटाकर बनती है और छापने की स्याही राल, तेल काजल इत्यादि को घोटकर बनाई जाती है।

यौ०—इंक पाट=स्याही रखने का बर्तन। मसीपात्र। दावात। इंक पैड=स्याही लगी एक छोटी सी गद्दी जिसमे रबर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है।

इंकटेबल—पंज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने मे स्याही देने की चौकी।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है—(१) सिंपुल (सादी)=यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिंड्रिकल (बेलनदार)=लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक ओर लोहे का एक बेलन लगा होता है। बेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमे कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचो को कसने और ढीला करने मे स्याही आवश्यकतानुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। बेलनवाली चौकी मे स्याही देनेवाले को अधिक मलने का परिश्रम नहीं करना पडता।

इकमैंन—सज्ञा पु० [अं०] छापेखाने मे मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इकरोलर—सज्ञा पु० [अ०] छापेखाने मे स्याही देने का बेलन।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—(१) लकडी का मोटा बेलन जिसपर कबल, बनात वगैरह लपेटकर ऊपर से चमडा मढते हैं। यह बेलन पत्थर के छापे मे काम देता है। (२) लकडी का बेलन जिसपर रबड ढालकर चढाते हैं। यह बहुत कम काम मे आता है। (३) तीसरे प्रकार का बेलन गराडीदार लकडी पर गला हुआ गुड और सरेस चढाकर बनाते हैं। यही अधिक काम मे आता है।

इग[1]—सज्ञा पुं० [सं० इङ्ग=इशारा, चिह्न] १ चलना। हिलना। डुलना। २ इशारा। ३ निशान। चिह्न। ४ हाथी का दाँत। उ०—बक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानो वियोग वराह हन्यो युग शैल की नधिनि इंगवै डारी।—केशव (शब्द०)। अग द्वारा भावो की अभिव्यक्ति। भावो की आगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६ ज्ञान (को०)। ७ पृथिवी। भूमि (को०)।

इग[2]—वि० १ गतिशील। हिलता हुआ। चल। २ विस्मयकारक। आश्चर्यजनक [को०]।

इंगन—सज्ञा पुं० [स० इङ्गन] [वि० इगित] चलना। काँपना। २. हिलना। डोलना। ३ इशारा। सकेत। ४ ज्ञान। जानकारी (को०)। ५ चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इगनी—सज्ञा स्त्री० [अ० मैंगनीज] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओ मे आक्सीजन के मिलने से पैदा होताहै।

विशेष—इगनी भारतवर्ष मे राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रात और मद्रास की खानो से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का सफेद लोहा बनाने के काम मे भी आती है जिसे अँगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इगल(पु), इगला(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० इडा] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाडी। उ०—तीर चलै जो इगल माँही। उत्तिम समत जो चलि जाही।—स० दरिया, पृ० २७। (ख) इगला पिंगला नाता कर ले सुषमन के घर मेला।—रामानद०, पृ० ३६। (ग) इगला पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज मे बसहि मुरारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह नाडी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के नथने से श्वास निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाडी के साथ की ही दूसरी नाडी 'पिंगला' की समबन्धात्मकता पर बना है। इस नाडी को 'चद्र नाडी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय मे इसका विवरण है।

इगलिश[1]—वि० [अ०] १ इगलैंड देश सबधी। अँगरेजी। २ पेंशन (सिपाहियो की भाषा)।

इगलिश[2]—सज्ञा स्त्री० अँगरेजी भाषा।

इंगलिशमैन—सज्ञा पुं० [अ०] इगलैंड निवासी व्यक्ति। अँगरेज।

इगलिस्तान—सज्ञा पुं० [अ० इगलिश+फा० स्तान=जगह, तुल० स० स्थान] अँगरेजो का देश। इगलैंड।

इगलिस्तानी—वि० [अं० इगलिश+फा० स्तानी] अँगरेजी। इंगलैंड देश का। उ०—इगलिस्तानी और दरियाई कच्छी ओलदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकन पवन की तेजी।—रघुराज० (शब्द०)।

इगलैंड—सज्ञा पु० [अ०] अँगरेजो का देश। इगलिस्तान।

इगार(पु)—सज्ञा पु० [स० इङ्गाल] दे० 'अगार'। उ०—देही कण इगार जू तपै, राजर माय नयउ उगतउ भाण।—बी० रासो, पृ० २१।

इगालकर्म—सज्ञा पु० [स० अङ्गारकर्म] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैसे,—लोहारी, सोनारी, ईंट बनाना, कोयला बनाना।

इगित[1]—सज्ञा पु० [स० इङ्गित] १ हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करनेवाली आगिक चेष्टा। २ सकेतचिह्न। इशारा। उ०—लक्ष्मण अपनी शाखाओ मे इगित करके उसे दिखाते मार्ग।—कानन०, पृ० ५७। ३ अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इगित[2]—वि० १. हिलता हुआ। २ चलित। कपित।

इगितकोविद—वि० [स० इङ्गितकोविद] आगिक चेष्टा द्वारा आतरिक भावो को जानने मे उनकी अभिव्यक्ति मे कुशल [को०]।

इगितज्ञ—वि० [स० इङ्गितज्ञ] दे० 'इगित कोविद' [को०]।

इगु—संज्ञा पु० [स० इङ्गु] एक रोग [को०]।

इगुद—संज्ञा पुं० [स० इङ्गुद] दे० 'इंगुदी'।

इगुदी—सज्ञा स्त्री० [स० इङ्गुदी] १ हिंगोट का पेड। उ०—विलसत निब विशाल इगुदी अरु आमलकी।—श्यामा, पृ० ३६। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकँगनी। ३ हिंगोट की गरी (को०)।

इंगुर(पु)†—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'इंगुर'।

इगुरौटी—सज्ञा स्त्री० [हि० ईंगुर+औटी (प्रत्य०)] वह डिबिया या पात्र जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर रखती हैं। सिंधौरा।

इगुल—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गुल] दे० 'इगुदी' [को०]।

इच—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक फुट का बारहवाँ हिस्सा। तीन आडे जव की लबाई। तस्मू। २ अत्यल्प। बहुत थोडा। उ०—इन महात्माओ के ध्यान मे यह बात नही आती कि ऐसी दलीलो से उनकी अभ्रातिशीलता एक इच भी कम नही होती।—सरस्वती (शब्द०)।

इंचाक—संज्ञा पुं० [स० इञ्चाक] एक प्रकार का मत्स्य। जल-वृश्चिक [को०]।

इचार्ज—वि०[अ०]किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला। किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०]।

इंच्छया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—न तहाँ इच्छ्या ओ अकार। न तहाँ नाभि न नालि तार। —रामानंद०, पृ० ८।

इछ(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० इच्छा] आकांक्षा। इच्छा।

इछना(पु)—क्रि० स० [हिं० इंछ+ना] (प्रत्य०)] दे० 'इच्छना'। उ०—पुनि तिनकी पद पकज रज अज अजहूँ छिछै। उद्धौ बुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सो रह इछै।—नंद० ग्र०, पृ० ४१।

इछा(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा'। उ०—वर सजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि। जेहि दिन इछा पूजै वेगि चढ़ावौं आनि। —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५०।

इंजन—संज्ञा पुं० [अ० एंजिन] १ कल पेंच। २ भाप या बिजली से चलनेवाला यंत्र। ३. रेलवे ट्रेन मे वह गाडी जो सबसे आगे रहती है और सब गाडियो को खीचती है। उ०—इच्छा कर्म सयोगी इजन गारड आप अकेला है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०३।

यौ०—इजनड्राइवर=इजन को चलानेवाला व्यक्ति।

इंजर(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'समुदरफल'।

इजीनियर—संज्ञा पुं०[अ० एंजीनियर]१ यंत्र की विद्या जाननेवाला। कलो का बनाने या चलानेवाला। २ शिल्प विद्या मे निपुण। विश्वकर्मा। ३ वह अफसर जिसके निरीक्षण मे सरकारी सडकें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं।

इजीनियरिंग—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ इजीनियर का कार्य। यंत्रादि के निर्माण का काम। २ लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का काम [को०]।

इंजील—संज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार। २ ईसाइयो की धर्म-पुस्तक। बाइबिल।

इंजेक्शन—संज्ञा पुं०[अ०]वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर मे प्रविष्ट कराया जाय। उ०—डाक्टरो ने इजेक्शन लेने के लिये कहा।—सन्यासी, पृ० १६६।

क्रि० प्र०—चढाना।—देना।—लेना।

इट्रेंस—संज्ञा पुं०[अ० एंट्रेंस] १ द्वार। दरवाजा। फाटक। २ अंग्रेजी पाठशालाओ की एक श्रेणी।

इंड(पु)—संज्ञा पुं० [स० अंड]दे० 'अंड'। उ०—ध्यावै इड करै चौचदा। आपु देखि और सहज अनदा।—कबीर सा०, पृ० ६०६।

इंडज(पु)—वि० [स० अंडज] अंडा। अंडे के आकार का। उ०—तिहि रानी पूरव क्रम गत्तिय। इडज आकृति हुड्ड प्रसूतिय।—पृ० रा०, ५७। १६६।

इंडस्ट्रियल—वि० [अं०] उद्योग धंधा सबधी। शिल्प सबधी। औद्योगिक। जैसे,—इडस्ट्रियल कानफरेंस।

इडस्ट्री—संज्ञा स्त्री० [अ०] उद्योगधंधा। शिल्प।

इंडियन—वि०, पुं० [अ०] हिंदुस्तान निवासी। भारतीय [को०]।

इंडिया—संज्ञा पुं० [यू०, अ०] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

इंडियाआफिस—संज्ञा पुं०[अं० इंडिया ऑफिस] ब्रिटिश शासनकाल मे भारत सबधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लदन स्थित एक कार्यालय। भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनो देशो मे बाँट दी गई।

इंडीक—संज्ञा पुं० [स०] कलमतराश चाकू [को०]।

इंडेक्स—संज्ञा पुं० [अ०] (पुस्तक के) विषयो की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची। विषयानुक्रमणिका। अनुक्रमणिका।

इंडेंट—संज्ञा पुं० [अ०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वही सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स—क्रि० स०[अ० एंडोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपए देने या पाने के संबंध मे हस्ताक्षर करना।

इंडोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक औषध का नाम।

इंड्र—संज्ञा पुं०[स०]हाथ की सुरक्षा के लिये सूत का दस्ताना [को०]।

इतकाम—संज्ञा पुं०[अ० इतकाम]अपकार काम दला। बदला [को०]।

इतकाल—संज्ञा पुं० [अ० इतकाल] १. मृत्यु। मौत। परलोकवास। २ एक जगह से दूसरी जगह जाना। ३. किसी जायदाद या सपत्ति का एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार मे जाना।

यौ०—इतकाल जायदाद=रेहन, बय आदि के कारण सपत्ति का दूसरे के हाथ जाना।

इतखाब—संज्ञा पुं० [अ० इतखाब] १. बसरा या खतौनी आदि के किसी लेख की बाजाप्ते कराई हुई नकल। २. चुनना या छाँटना। ३. चुनाव [को०]।

इतजाम—संज्ञा पुं० [अ० इतजाम] प्रबंध। बदोबस्त। व्यवस्था।

इतजार—संज्ञा पुं० [अ० इतजार] प्रतीक्षा। बाट जोहना। रास्ता देखना। अगोरना।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

इंतशार—संज्ञा पुं० [अ०] १ चिंता। परेशानी। उद्विग्नता। २. बिखरने की स्थिति। बिखराव [को०]।

इतहा—संज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्ति। अंत। उ०—इन्दिरा मे ही मर गए सब यार। उसका कौन इतहा पाया।—कबिता को०, भा० ४, पृ० १३३। २ हद। पराकाष्ठा।

मुहा०—इंतहा करना=हद कर देना। अति कर देना।

यौ०—इतहापसद=अति को पसद करनेवाला। अतिवादी।

इतहाई—वि० [अ०] अत्यधिक। हद दर्जे का। उ०—इतहाई उथल-पाल पैदा करनेवाले हालत का सिलसिला वे दफीन मे बाँधने लगे। —वसमावृत० पृ० ३६।

इथिहा—संज्ञा पुं०[स०]ज्योतिष का एक पारिभाषिक शब्द। मुद्दा। मुसहा [को०]।

इदंवर—संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। इदीवर [को०]।

इद'(पु)—संज्ञा पुं०[स० इद, प्रा० इद]दे० 'इद'। उ०—आवरो पुनो रहो यह मद। बलि बलि तुम कहँ करि इद। नंद ग्र०, पृ० ३१३।

इंद[२]—क्रि० वि० [अ०] १ समीप। नजदीक। २ पर। किंतु [को०]।

इदउँ—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'इदुर'। उ०—प्रेम खटोलना करि करि बाँध्यौ विरह वान तिहिं लागू हो। तिहिं चढि इदउँ करत गँवमियाँ अनरि जमवा जागी हो।—कबीर ग्र०, पृ० ११२।

इदका—सज्ञा पुं० [सं० इन्दका] मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला नक्षत्रेश [को०]।

इदर—सज्ञा दे० [स० इन्द्र] दे० 'इद्र'। उ०—मुनि जन इदर झलि सब, झूने गौरि गनेस—मतवानी, भा० १, पृ० ११८।

यौ०—इदर का अखाडा=अप्सराओ, परियो का जमावडा। उ०—हमको 'नासिख' राजा इदर का अखाडा चाहिए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३५४।

इदराज—सज्ञा पुं० [इदिराज०] वहीखाता। लेखाजोखा या पजिका मे लिखा जाना [को०]।

इदव[१]—सज्ञा पुं० [स० एन्द्रव] १ एक छद का नाम। इसके प्रत्येक चरण मे आठ मगण और दो गुरु होते हैं। इसे मत्तगयंद और मालती भी कहते है।

इदव[२]—सज्ञा पु० [स० इन्दु] चद्रमा।

इदवभाल—सज्ञा पुं० [हि० इदव+भाल] चद्रमाल शिव। उ०—हरि न बनायौ सुरमरी कीजो इदवभाल।—रहीम०, पृ० १।

इदवान—सज्ञा पु० [स० इन्द्र+वाण=आयुध] शक्र का धनुष। इद्र धनुष। उ०—घर गजिय व्योम रजि इदवान। गहि काम चाप जनु दिय निसान।—पृ० रा०, ५७।९५।

इदिदिर—सज्ञा पु० [स० इन्दिन्दिर] भ्रमर। भौंरा [को०]।

इदिय—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय, प्रा० इदिय] दे० 'इद्रिय'। उ०—इदिय दारुन जतहि हटिय ततहि ततहि धावे।—विद्यापति, पृ० ३७२।

इदिया—सज्ञा पुं० [अ०] १. ममति। राय। विचार। मशा। २. आकाक्षा। इच्छा [को०]।

इदिरा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दिरा] १. लक्ष्मी। विष्णुपत्नी। उ०—मती विधात्री इदिरा देखी अमित अनूप।—मानस १।१५५। २. कुआर के कृष्ण पक्ष की एकादशी। ३. शोभा। काति। उ०—शरद इदिरा के मदिर की मानो कोई गैल रही।—कामायनी, पृ० ९८।

यौ०—इदिरामदिर=(१) विष्णु। (२) इदीवर। नील कमल। इदिरारमण=लक्ष्मीरमण। विष्णु [को०]।

इदिरालय—सज्ञा पु० [स० इन्दिरालय] नीलकमल [को०]।

इदिवर, इदीवर—सज्ञा पुं० [स० इन्दिवर, इन्दीवर] १ नील कमल। नीलोत्पल। उ०—स्वर्गंगा मे इदीवर की, या एक पक्ति कर रही हास। कामायनी, पृ० १५२। २ कमल।

इदीवरिणी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दीवरिणी] कमलिनी [को०]।

इदीवरी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दीवरी] शतमूली [को०]।

इदीवार—सज्ञा पु० [स० इन्दवार] दे० 'इदीवर' [को०]।

इदु—सज्ञा पु० [स० इन्दु] १ चद्रमा। २ कपूर। ३. एक प्रकार की सब्जी। ४ मृगशिरा नक्षत्र। इस नक्षत्र का देवता चद्र है।

यौ०—इदुकमल=श्वेतकमल। इदुकिरीट, इदुभूषण=शिव। इदुनदन, इदुपुत्र=चद्रमा। इदुलोक=चद्रलोक। इदुवासर=सोमवार।

इदुक—सज्ञा पु० [स० इन्दुक] अश्मतक का वृक्ष [को०]।

इदुकर—सज्ञा पुं० [स० इन्दुकर] चद्रमा की किरण। उ०—जब विहार विचार कर विद्याधरो की बालिका, आ गई हैं क्या, कि ये हैं इदुकर की जालिका।—कानन०, पृ० ४२।

इदुकला—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुकला] १ चद्रमा की कला। २ चद्रमा की किरन। उ०—भाल लाल बेंदी ललन, आखन रहे विराजि। इदुकला कुज मे बसी, मनौ राहु भय भाजि।—बिहारी र०, दो० ६९०। ३ अमृत। पीयूष (को०)। ४. सोमलता। सोम (को०)। ५ गुडूची गुरुच (को०)।

इदुकलिका—सज्ञा पु० [स० इन्दुकलिका] १ चद्रमा की कला या चद्रमा की किरण। २ केतकी का पौधा [को०]।

इदुकात—सज्ञा पु० [स० इन्दुकान्त] चद्रकात नामक मणि [को०]।

इदुकाता—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुकान्ता] केतकी। इदुकलिका। २ निशा। रात्रि [को०]।

इदुक्षय—सज्ञा पु० [स० इन्दुक्षय] १ चद्रमा का क्षीण होना या न दिखाई देना। २ नए चाँद का दिन [को०]।

इदुज—सज्ञा पुं० [स० इन्दुज] चद्रमा का पुत्र। बुध [को०]।

इदुजनक—सज्ञा पु० [स० इन्दुजनक] १ चद्रमा का पिता समुद्र। अत्रि नामक ऋषि [को०]।

इदुजा—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुजा] सोमोद्भवा। नर्मदा नदी।

इदुपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुपर्णी] पँजीरी नाम का पौधा [को०]।

इदुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [स० इन्दुपुष्पिका] कलियारी या जागली नाम का पौधा [को०]।

इदुबधू—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रबधू] दे० 'इद्रवधू'। उ०—ज्यो ज्यो परसे लाल तन त्यो त्यो राखति गोइ। नवल बधू लाजन ललित इदुबधू सी होइ।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४६।

इदुभ—सज्ञा पु० [स० इन्दुभ] १ कर्कराशि। २ मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

इदुभा—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुभा] जलकमलिनी की एक जाति [को०]।

इदुभृत्—सज्ञा पुं० [स० इन्दुभृत्] शिव [को०]।

इदुमडल—सज्ञा पु० [स० इन्दुमण्डल] चद्रमा का घेरा या परिधि [को०]।

इदुमणि—सज्ञा पु० [स० इन्दुमणि] १. चद्रकात मणि। २ मोती [को०]।

इदुमती—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुमती] १ पूर्णिमा। २ राजा अज की पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी। ३ राजा चद्रविजय की पत्नी। उ०—चद्रविजय नृप रहयो तहाँ ही। रानी इंदुमती रति छाहीं। (शब्द०)।

इदुमान्—सज्ञा पु० [स० इन्दुमत्] अग्नि [को०]।

इदुमुखी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्दुमुखी] एक लता [को०]।

इदुमौलि—सज्ञा पु० [स० इन्दुमौलि] शिव। इदुभूषण [को०]।

इदुर—सज्ञा पु० [स० इन्दुर] चूहा। मूसा।

इंदुरत्न—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुरत्न] मुक्ता। मोती।

इंदुरेखा, इंदुलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुरेखा,-लेखा] १ चंद्रमा की कला। इंदुकला। २. सोमलता। ३. अमृता। ४ गुडूची (को०)।

इंदुलतलव—क्रि० वि० [अ०] माँगने पर या जरूरत पड़ने पर (को०)।

इंदुलोहक, इंदुलौह—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक,-लौह] चाँदी रजत (को०)।

इंदुवदना—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में म ज स न ग ग (ऽ।। । ऽ । ।। ऽ ।।। ऽऽ) होता है। उ०—इंदुवदना वदत जासु वनिहारी। जान मोहि दे घरहि सत्वर विहारी।-(शब्द०)। २ इंदुतुल्य मुखवाली स्त्री (को०)।

इंदुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवधू] इंद्रवधू'।

इंदुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवल्ली] सोमलता (को०)।

इंदुवार—संज्ञा पुं०[सं० इन्दुवार] १ वर्ष कुंडली के सोलह योगों में से एक। जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर में क्रूर ग्रह हों, तब यह योग होता है। यह शुभ नहीं है। २ सोमवार का दिन (को०)।

इंदुव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत।

इंदूर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दूर] चूहा। मूषा।

इंद्र[1]—वि० [सं०] १ ऐश्वर्यवान्। विभूतिसंपन्न २. श्रेष्ठ। बड़ा।

यौ०—देवेंद्र। नरेंद्र। यादवेंद्र। योगींद्र। दानवेंद्र। सुरेंद्र।

इंद्र[2]—संज्ञा पुं० १ एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है जो और पानी बरसाता है। यह देवताओं का राजा माना गया है। शौर्य, युद्ध और वैभव का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है। ऋग्वेद में सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और सोमपान आदि का वर्णन किया गया है। ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यंत प्रमुख स्थान है।

विशेष—इसका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है। इसकी स्त्री का नाम शचि और सभा का नाम सुधर्मा है, जिसमें देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। इसकी नगरी अमरावती और वन नंदन है। उच्चैःश्रवा इसका घोड़ा और मातलि सारथी है। वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शंबर, पणि, बलि और विरोचन इसके शत्रु हैं। जयंत इसका पुत्र है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। पुराण के अनुसार एक मन्वंतर में क्रमशः चौदह इंद्र भोग करते हैं जिनके नाम ये हैं—इंद्र। विश्वभुक्। विपश्चित्। विभु। प्रभु। शिखि। मनोजव। तेजस्वी। बलि। अद्भुत। त्रिदिव। सुशांति। सुकीर्ति। ऋतधामा। दिवस्पति। वर्तमान काल में तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं।

पर्या०—मरुत्वान्। मघवा। विडौजा। पाकशासन। वृद्धश्रवा। शुनासीर। पुरहूत पुरंदर। जिष्णु। लेखर्षभ। शक्र। शतमन्यु। दिवस्पति। सुत्रामा। गोत्रभिद्। वज्री। वासव। वृत्रहा। वृषा। वास्तोष्पति। सुरपति। बलाराति। शचीपति। जंभभेदी। हरिहय। स्वराट्। नमुचिसूदन। सक्रंदन। पुरुहूत। पुरुषाहूत। मेघवाहन। आखंडल। सहस्राक्ष। ऋभुक्ष। महेंद्र। कौशिक। पूतक्रतु। विश्वभर। हरि। पुरंदर। शतधृति। पृतनाषाड्। अहिद्विष। वज्रपाणि। देवराज। पर्वतारि। पर्जन्य। देवाधिप। नाकनाथ। पूर्वदिक्पति। पुलोमारि। अर्हन्प्रचीन। बर्हि। तपस्तक्ष।

यौ०—इंद्र का अखाड़ा=(१) इंद्र की सभा जिसमें अप्सराएँ नाचती हैं। (२) बहुत सजी हुई सभा जिसमें खूब नाच रंग होता हो। इंद्र की परी=(१) अप्सरा। (२) बहुत सुंदरी स्त्री। इंद्रसभा=इंद्र का अखाड़ा। उ०—इंद्रसभा जनु परिगै डीठी।—जायसी ग्र०, पृ० १८।

२ बारह आदित्यों में से एक। सूर्य। ३. विजयी। ४ राजा। मालिक। स्वामी। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। ६ चौदह की संख्या। ७ ज्योतिष में विष्कुंभादिक २७ योगों में से २६वाँ। ८ कुटज वृक्ष। ९. रात। १० छप्पय छंद के भेदों में से एक। ११ दाहिनी आँख की पुतली। १२ व्याकरण आदि के आचार्य का नाम। १३ जीव। प्राण। १४ श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति (को०)। १५ मेघ। बादल (को०)। १६ भारतवर्ष का एक भाग (को०)। १७ परमेश्वर (को०)। १८ वनस्पतिजन्य एक प्रकार का जहर (को०)।

इंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान। सभागृह (को०)।

इंद्रकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु (को०)।

इंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकान्त] चौमंजिले भवन की एक मंजिल या मरातिब (को०)।

इंद्रकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकार्मुक] इंद्रायुध। इंद्रधनुष (को०)।

इंद्रकील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १ मंदराचल का एक नाम। २ चट्टान (को०)। ३ इंद्र की ध्वजा (को०)। ४ कँटिया। किरनी (को०)।

इंद्रकुंजर—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी। ऐरावत (को०)।

इंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम (को०)।

इंद्रकृष्ट[1]—वि० [सं० इन्द्रकृष्ट] वर्षा में अपने आप उत्पन्न होनेवाला (को०)।

इंद्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० वर्षा के जल से अपने आप पैदा होनेवाली फसल (को०)।

इंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा (को०)।

इंद्रकोश, इंद्रकोष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश,—कोष] १ मचान। २ चारपाई। ३ बावर्चीखाना। छज्जा। ४ नागदंत। खूँटी (को०)।

इंद्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोश'।

इंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] महेंद्र नाम का पर्वत (को०)।

इंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगुरु] देवगुरु बृहस्पति (को०)।

इंद्रगोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] बीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रगोपक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप'।

इंद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचन्दन] श्वेतचंदन। हरिचंदन (को०)।

इंद्रचाप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रधनुष'।

इंद्रचिर्भिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिर्भिटी] इंद्रायण। एक लता-विशेष (को०)।

इंद्रच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छन्द] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लंबी होती थी।

विशेष—इसका एक नाम 'इंद्रच्छंद' भी है।

इंद्रज—सज्ञा पु० [स० इन्द्रज] वालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०]।

इंद्रजतु—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रजतु] शिलाजीत [को०]।

इंद्रजव—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रयव] कुडा। कौरैया का वृक्ष।

विशेष—ये बीज लवे-लवे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम मे आते हैं। एक एक सीके मे हाथ हाथ भर की लवी दो दो फलियाँ लगती है, जिनके दोनो छोर आपस मे जुडे रहते हैं। फलियो के अदर रुई या घूवा होता है जिसमे बीज रहते हैं। इसके पेड मे काँटे भी होते हैं। यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा सग्रहणी और खूनी ववासीर मे फायदा करता है। त्वचा के रोगो पर भी यह चलता है।

इंद्रजाल—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजाल] १ मायाकर्म। जादूगरी। तिलस्म। उ०—सो नर इद्रजाल नहिं भूला।—मानस, ३। ३३।

विशेष—यह तत्र का भी अग है।

२ एक प्रकार का रणचातुर्य। ३ अर्जुन का एक शस्त्र (को०)।

इद्रजालिक—वि० [स० इन्द्रजालिक] इद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

इद्रजाली—वि० [स० इन्द्रजालिन्] [वि० स्त्री० इंद्रजालिनी] इद्रजाल करनेवाला। मायावी। जादूगर। उ०—यौ न कहौ कटि नाहि तौ कुच हैं किहि आधार। परम इद्रजाली मदन विधि को चरित अपार।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६१।

इद्रजित्[1]—वि० [स० इन्द्रजित्] इद्र को जीतनेवाला।

इद्रजित्[2]—सज्ञा पु० रावण का पुत्र, मेघनाद।

इद्रजीत—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रजित्] दे० 'इद्रजित्'। उ०—इद्रजीत आदिक बलवाना।—मानस, ६। ३३।

इद्रजौ—सज्ञा पुं० [हिं० इन्द्रजव] दे० 'इद्रजव'।

इद्रतरु—सज्ञा पु० [स० इन्द्रतरु] १ अर्जुन नाम का वृक्ष। २ कुटज का पौधा [को०]।

इद्रतापन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रतापन] १. मेघगर्जन। बादलो का गरजना। २. एक दानव का नाम [को०]।

इंद्रतूल, इद्रतूलक—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतूल, -तूलक] वह सूत जो वायु मे उड जाय। २. रुई की ढेरी या समूह [को०]।

इद्रदमन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रदमन] १ बाढ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुड, तान अथवा वट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना। यह एक पर्व समझा जाता है। २ बाणासुर का एक पुत्र। ३ मेघनाद का एक नाम।

इद्रदारु—सज्ञा पु० [स० इन्द्रदारु] देवदारु।

इद्रद्युति—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रद्युति] श्वेतचदन [को०]।

इद्रद्रुम—सज्ञा पु० [स० इन्द्रुम] १ अर्जुन वृक्ष। २ कुटज [को०]।

इद्रद्वीप—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रद्वीप] भारतवर्ष के नौ खडो मे एक का नाम [को०]।

इंद्रधनु—सज्ञा पु० [स० इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधणु] दे० 'इद्रधनुष'। उ०—भरी धमनियाँ सरिताओ सी, रोष इद्रधनु उदय हुआ।—नागयज्ञ, पृ० ९५।

इद्रधनुप—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रधनुष] १. सात रगो का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल मे सूर्य के विरुद्ध दिशा में आकाश मे देख पडता है। जब सूर्य की किरणें बरसते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इद्रधनुष बनता है।

इद्रध्वज—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रध्वज] १ इद्र की पताका। २ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और खेती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमे राजा लोग इद्र की ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते है। ३ प्राचीन भारत मे प्रचलित एक उत्सव जिसमे वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी।

इद्रनील—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रनील] नीलमणि। नीलम। उ०—इद्रनील मणि महाचपक था मोमरहित उलटा लटका।—कामायनी पृ० २४।

इद्रनेत्र—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रनेत्र] १ १००० की संख्या। २ इद्र की आँख [को०]।

इद्रपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपर्णी] दे० 'इद्रपुष्पा' [को०]।

इद्रपर्वत—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रपर्वत] १ महेद्र पर्वत। २ एक काना पहाड (को०)।

इद्रपुरोहिता—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रपुरोहिता] पुष्य नक्षत्र।

इद्रपुष्पा—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रपुष्पा] करियारी। कलिहारी।

इद्रप्रस्थ—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रप्रस्थ] एक नगर जिसे पाडवो ने खाडव वन जलाकर बसाया था। यह आधुनिक दिल्ली के निकट है।

इद्रप्रहरण—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रप्रहरण] वज्र (को०)।

इद्रफल—सज्ञा पु० [स० इन्द्रफल] इद्रजव।

इद्रभगिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रभगिनी] पार्वती [को०]।

इद्रभाष—सज्ञा पु०[सं० इन्द्रभाष]सगीत मे इद्रताल के छ भेदो मे से एक।

इद्रभेषज—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रभेषज] सोठ [को०]।

इंद्रमंडल—सज्ञा पु० [स० इन्द्रमण्डल] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रो का समूह।

इंद्रमख—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रमख] इद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

इद्रमद—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रमद] पहली वर्षा के जल मे उत्पन्न विष जिसके कारण जोक और मछलियाँ मर जाती हैं।

इद्रमह—सज्ञा पु० [स० इन्द्रमह] १ दे० इद्रमख'। २. वर्षा ऋतु। यौ०—इद्रमहकामुक = श्वान। कुत्ता।

इद्रलुप्त—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्त] खल्वाट होने का रोग। गाज रोग।

इद्रलुप्तक—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रलुप्तक] दे० 'इद्रलुप्त'।

इद्रलोक—सज्ञा पुं० [स० इंद्रलोक] स्वर्ग। उ०—चढे अस्त्र लै कृष्ण मुरारी। इद्रलोक सब लाग गोहारी।-जायसी ग्र०, पृ०११३।

इद्रवशा—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवशा] १२ वर्णों का एक वृत्त जिसमे दो तगण, एक जगण और एक रगण होते हैं। उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मनै। को मार को देत सुखै दुखै जनै। सग्राम भारी करु आज बान सो। रे इद्रशा! लर कौरवान सो।—छद०, पृ० १७२।

इद्रवज्रा—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवज्रा] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमे दो तगण, एक जगण और गुरु होते हैं। उ०—ताता जगो गोकुल

नाथ गावो। मारी सर्व पापन को नसावो। सांची प्रभू काटहिं जन्मवेरी। हैं इंद्रवज्रा यह सीख मेरी। छंद०, पृ० १५७।

इंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] वीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवल्ली] इंद्रायन।

इंद्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवस्ति] जांघ की हड्डी।

इंद्रवारु—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। इंद्रारुन।

इंद्रवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन।

इंद्रवृद्ध—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुंसी।

इंद्रव्रत—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उसी तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी बरसाकर जीवों को प्रसन्न करता है।

इंद्रशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रशक्ति] शची। इंद्राणी [को०]।

इंद्रशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशत्रु] १ वृत्रासुर। २. प्रह्लाद [को०]।

इंद्रसारथि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसारथि] १. मातलि। २ वायु। पवन [को०]।

इंद्रसावर्णी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्रसुत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुत] इंद्र के पुत्र (१) जयंत। (२) वालि। (३) अर्जुन वृक्ष (को०)।

इंद्रसुरस—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुरस] निर्गुंडी या सिंदुवार का पौधा [को०]।

इंद्रसेन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम।

इंद्रसेनानी—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०]।

इंद्रस्तोम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रास्तोम] १ इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ। २ इंद्र की प्रार्थना [को०]।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रा] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राग्निवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राग्निवृक्ष] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणिका] निर्गुंडी [को०]।

इंद्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] १ इंद्र की पत्नी, शची। २ बड़ी इलायची। ३ इंद्रायन। ४. दुर्गा देवी। ५ बाईं आँख की पुतली। ६ सिंदुवार वृक्ष। सम्हालू। निर्गुंडी।

इंद्रानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] दे० 'इंद्राणी'।

इंद्रानुज—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था। उपेंद्र।

इंद्रायण—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इंद्रायन'। उ०—कटु इंद्रायण में सुंदर फल, मधुर ईख में एक नहीं।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० १५१।

इंद्रायन—संज्ञा पु० [सं० इन्द्राणी] एक लता जो बिलकुल तरबूज की लता की तरह होती है। इनारु। उ०—इंद्रायन दाड़िम विषम जहाँ न नेकु विवेक।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६।

विशेष—सिंध, डेरा इस्माईलखाँ, मुलतान, बहावलपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत में यह आपसे आप उपजती है। इसका फल नारंगी के बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँके कटी होती हैं। पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है। लाल रंग का भी इंद्रायन होता है। यह फल विरेचक और रेचक होता है। अँगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं में इसका मूल काम आता है। यह फल देखने में बड़ा सुंदर पर अपने कड़ुएपन के लिये प्रसिद्ध है।

मुहा०—इंद्रायन का फल = देखने में अच्छा पर वास्तव में बुरा। सूरतहराम। खोटा।

इंद्रायुध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायुध] १ वज्र। २. इंद्रधनुष। उ०—कादंबरी में वर्णित इंद्रायुध से क्या डीलडौल में कम था?—किन्नर०, पृ० ३४।

इंद्रावरज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रावरज] विष्णु। उपेंद्र [को०]।

इंद्रावसान—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रावसान] रेगिस्तान। मरुभूमि [को०]।

इंद्राशन—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राशन] १. भाँग। सिद्धि। विजया। २. गुंजा। घुघची। चिरमिटी।

इंद्रासन—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रासन] १ इंद्र का सिंहासन। इंद्रपद। २ राजसिंहासन। उ०—माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंधर्वसेन बैठ तहँ राजा। जायसी ग्रं०, पृ० १८। ३ पिंगल में गणों के पहले भेद की संज्ञा, जिसमें पाँच मात्राएँ इस क्रम से होती हैं—एक लघु और दो गुरु, जैसे,—'पुजारी'।

इंद्रिजित(पु)—संज्ञा पुं० दे० [सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—देखि कै उमा कौं रुद्र लज्जित भए मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रिजित हौं कहावत हुतौ आपु को समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ।—सूर० ८।१०।

इंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों में अनुभव होता है। २. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती है।

विशेष—सांख्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को इंद्रिय मानकर इंद्रियों के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनमें केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है। ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिससे शब्द का ज्ञान होता है।), नासिका (जिससे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है)। इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी (बोलने के लिये), हाथ (पकड़ने के लिये) पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उपस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये)। इनके अतिरिक्त उभयात्मक अंतरेंद्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदांतियों ने कुल १४ इंद्रियाँ मानी हैं। इनके पृथक् पृथक् देवता कल्पित किए हैं, जैसे, कान के देवता दिशा, त्वचा के वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा के प्रचेता, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी के अग्नि, पैर के विष्णु, हाथ के इंद्र, गुदा के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, मन के चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर। न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है।

यौ०—इद्रियघात। इद्रियजन्य। इंद्रियजित्। इद्रियदमन। इद्रियनिग्रह। इद्रियसयम। इद्रियार्थ। इद्रियासक्त।

३ लिंगेंद्रिय। ४ पाँच की सख्या। ५ वीर्य। ६ कुश्ती के एक पेंच का नाम।

इद्रियगोचर[1]—वि० [सं० इन्द्रियगोचर] इद्रियो के ग्रहण के योग्य या ज्ञेय। इद्रियो का विषय होने योग्य।

इद्रियगोचर[2]—सज्ञा पु० इद्रियो का विषय [को०]।

इद्रियग्राम—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रियग्राम] इद्रियो का समूह [को०]।

इद्रियज—वि० [स० इन्द्रियज] इद्रियो के सयोग से होनेवाला। इद्रियजन्य। उ०—आरभ मे मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर इद्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप मे रही।—रस०, पृ० २०।

इद्रियजित्—वि० [स० इन्द्रियजित्] जिसने इद्रियो को जीत लिया हो। जो इद्रियो को वश मे किए हो। जो विषयासक्त न हो। उ०—नीतिनिपुण मत्रणाकुशल ये वे रहस्यरक्षक इद्रियजित्। —स्वप्न, पृ० ३६।

इद्रियनिग्रह—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियनिग्रह] इद्रियो को दबाना। इद्रियो के वेग को रोकने का नियम।

इद्रियबोधन—वि० [सं० इन्द्रियबोधन] इद्रिय को जाग्रत या क्रियाशील करनेवाला [को०]।

इंद्रियलोलुप—वि० [सं० इन्द्रियलोलुप] इद्रिय की तुष्टि के लिये व्याकुल [को०]।

इद्रियवज्री—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय+वज्र] वाजीकरण क्रिया का एक भेद।

इद्रियवध—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रियवध] इद्रियो का अपने अपने विषय मे आसक्त न होना [को०]।

इद्रियवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रियवृत्ति] इद्रियो का कार्य [को०]।

इद्रियसन्निकर्ष—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रियसन्निकर्ष] ज्ञानेंद्रियो का अपने अपने विषयो या मन से सपर्क।

इद्रियसुख—सज्ञा पु० [सं० इन्द्रियसुख] विषयानद। विषयसुख [को०]।

इद्रियस्वाप—सज्ञा पुं० [स० इद्रियस्वाप] इद्रियो को अपने विषयो का ज्ञान न होना। २ जडता। ३ प्रलय [को०]।

इद्रियागोचर—वि० [स० इन्द्रियागोचर] इद्रियो द्वारा अग्राह्य या इद्रियो का अविषय। अज्ञेय [को०]।

इद्रियातीत—वि० [स० इन्द्रियातीत] १ इद्रियो से परे। इद्रियागोचर। अज्ञेय [को०]।

इद्रियायतन—सज्ञा पु० [स० इन्द्रियायतन] इद्रियो का आयतन या निवास। शरीर। देह। २ आत्मा [को०]।

इद्रियाराम—वि०[स० इन्द्रियाराम] इद्रियलोलुप। विषयासक्त[को०]।

इद्रियार्थ—सज्ञा पु० [स० इन्द्रियार्थ] इद्रियो का विषय। वे विषय जिनका ज्ञान इद्रियों द्वारा होता है, जैसे—रूप।

इद्रियार्थवाद—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रियार्थ+वाद] वह मत जिसके अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इद्रियज सुख ही सब कुछ है और उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है। उ०—कीट्स की कल्पना बहुत ही तत्पर थी वे अपने इद्रियार्थवाद के लिये प्रसिद्ध हैं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १३८।

इद्रियासग—सज्ञा पु० [स० इन्द्रियाशङ्ग] इद्रियो और उनके विषयो के प्रति आसक्ति का अभाव। अनासक्ति। सन्यास। वैराग्य [को०]।

इद्रियासक्त—वि०[स० इन्द्रियासक्त]इंद्रियाराम। इद्रियलोलुप [को०]।

इद्री(पु)—सज्ञा स्त्री०[स० इन्द्रिय]दे० 'इद्रिय'। उ०—इद्री सब न्यारी परी, सुख लूटति आँखि। सुरदास जे सग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि।—सूर०, १०।२४०७।

इद्रीजीत(पु)—वि० [स० इन्द्रियजित्] दे० 'इद्रियजित्'। उ०—अति अनन्य गति इद्रीजीना। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता। —तुलसी ग्र०, पृ० १०।

इद्रीजुलाब—सज्ञा पु० [स० इन्द्रिय+फा० जुलाब] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाब अधिक आता है। इसके लिये पानी मिला हुआ दूध, शोरा, मिलखडी आदि वस्तुएँ दी जाती हैं।

इद्रया(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रिय] दे० 'इद्रिय'।

इद्रेज्य—सज्ञा पु० [स० इन्द्रेज्य] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इध[1]—वि० [स० इन्ध] प्रकाशक। दीपक।

इध[2]—सज्ञा पु० १. जलावन। ईंधन। २ परमात्मा [को०]।

इधन—सज्ञा पुं० [स० इन्धन] १ जलाने की लकडी। जलावन। उ०—पान क सए सोना क टका, चंदन क मूल इधन बिका।—कीर्ति०, पृ० ६८। २ वासना (को०)।

इशा—सज्ञा स्त्री० [अ० इशा] १. इबारत। बयान। २. पत्र लिखने की कला सिखानेवाली पुस्तक। चिट्ठियो की किताब [को०]।

इसाफ—सज्ञा पु० [अ० इन्साफ] [वि० मुसिफ] १ न्याय। अदल।

यौ०—इसाफपसद—न्याय चाहनेवाला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ फैसला। निर्णय।

इस्टिट्यूट—सज्ञा स्त्री० [अ० इन्स्टिट्यूट] सस्था। सभा। समाज।

इस्ट्रूमेंट—सज्ञा पु० [अ० इन्स्ट्रूमेन्ट] १ औजार। यत्र। २ साधन।

इस्पेक्टर—सज्ञा पु० [अ० इन्स्पेक्टर] १ देखभाल करनेवाला। निरीक्षक।

इँगरेज(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँगरेज'। उ०—गयो अँगरेज मुलक रै ऊपर।—बाँकी० ग्र० भा०, ३, पृ० १०४।

इँगरेजी—सज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'अँगरेजी'। उ०—फारसी को छार सी उडाय इँगरेजी पढ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।—कविता को०, भा० २, पृ० १०३।

इँगुरौटी—सज्ञा स्त्री० [हिं० इगुर+औटा (प्रत्य०)] वह डिबिया जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर या सिंदूर रखती हैं। सिंधोरा।

इँगुवा—सज्ञा पु० [स० इङ्गुद] हिंगोट का पेड और फल। गोदी।

इँचना(पु)—क्रि० अ० [हिं० खिचना] किसी ओर आकर्षित होना खिचना। उ०—(क) भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटातु। ऐंचि छुडावति कर ईंची आगे आवति जाति।—बिहारी र०, दो० ६८३। (ख) आवति आँख ईंची खिंची भौंह भयो भ्रम आवतु है मति यापैं।—रघुनाथ (शब्द०)।

इँटकोहरा—सज्ञा पुं० [हिं० ईंट+ओहरा (प्रत्य०)] ईंट का फूटा टुकडा। ईंट की गिट्टी।

इँटाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं ईंट] एक प्रकार का पहुक। पेडुकी।

इँडहर—संज्ञा पुं० [सं० पिष्ट+हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत इँडहर है रस सागर। बेसन सालन अधिको नागर।—सूर०, १०। १२१३।

विशेष—यह इस रीति से बनता है उर्द और चने की दाल एक साथ मिगो देते हैं, फिर दोनो की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लवे लवे टुकडे बनाते हैं। इन टुकडो को पहले अदहन मे पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकडे करते हैं। अत मे इन टुकडो को घी मे तलते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।

इँडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इँडुवा'।

इँडुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] गुँडरी। बिडई। बिडवा। गेंडुरी।

इँडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] कपडे की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।

इँणि(पु)—सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साई दे दे सज्जना, रातड इँणि परि रूँन।—ढोला० दू० ३७७।

इदारा†—संज्ञा पु० [स० अम्बु, या सं० ईद=जल+धर=धारण करने वाला] कूँआ। कूप।

इँदारुन—संज्ञा पु० [सं० इन्द्रवारुणी] इद्रायन। माहर।

इदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] टेंडुरी। गेंडुरी। बेडुरी।

इंदोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] दे० 'इँदाऊन'। उ०—बहुत जतन भेख रचो बनाय बिन हरि भजन इँदोधन पाय।—गुलाल०, पृ० ५।

इँधरौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन+हिं० औंड़ा<स० आलय] ईधन रखने की कोठरी। इधनगृह। गोठौला।

इँनारुन(पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ०—बिनु हरि भजन इँनारुन के फल तजत नही करुआई।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६।

इ[1]—संज्ञा पुं० [स०] १. कामदेव। २. १०० की सख्या [को०]।

इ[2]—अव्य० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, सबोधन, आश्चर्य दु ख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।

इकक(पु)—क्रि० वि० [स० एक, प्रा० इक्क+स० अक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकक।—बिहारी र०, भा० २, पृ० ५७।

इकग[1](पु)—वि० [स० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—दुखी इकगी प्रीति सौं, चातक, मीन, पतग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

इकग[2](पु)—संज्ञा पुं० शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।

इकग[3](पु)—क्रि० वि० मिश्रित। एक मे मिला। उ०—गरल अमृत इकग करि राखैं। भिन्न भिन्न कै विररै चाखैं।—नद ग्र०, पृ० ११८।

इकत(पु)—वि० [स० एकान्त] दे० 'एकात'।

इक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहिं दाप न चाप सज्जन वचन जिमि टारै टरै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३।

इकआँक(पु)—क्रि० वि० [स० एक, प्रा० इक्क+हिं० आँक] निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तव होत दिखा-दिखी, भई अमी एक आँक। दगे तिरीछी दीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी र०, दो० ६१५। (ख) यदपि लौंग ललितौं तऊ तू न पहिरि इक आँक। सदा साँक बढियै रहै रहै चढी सी नाँक।—बिहारी र०, दो० ६८५।

इकइस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।

इकचोवियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० इक+चोव] एक चोव अर्थात् बल्ली-वाला तंबू या डेरा। वह तबू जिसमे एक ही चोव लगती हो (बोल०)।

इकछत(पु)—वि० [स० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावै। सिंहासन ऊपर बैठे जतही चँवर ढुरावै।—चरण० बानी०, पृ० ६४।

इकजोर(पु)—क्रि० वि० [स० एक+हिं० जोरना=जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चारु चद्र इकजोर। निरखति बैठि नितविनि पिय सँग सार सुता की ओर।—सूर(शब्द०)।

इकट—संज्ञा पु० [स०] सरकडे का गोफा या कोरल [को०]।

इकटक—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। बिना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिबिंब निरखि पुनकत हरि हरषि हरषि, लै उछग जननी रसमग जिय विचारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८१।

इकटग(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यौ लागै छाकि परे हरि रस पीवै।—दादू० बानी, पृ० ५९६।

इकट्ठा—वि० [स० एकस्थउ प्रा० इकट्ठा] एकत्र। जमा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इकठा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तौ ये नाना कर्म विचित्र। इकठे रहन न पावैं मित्र।—नद० ग्र०, पृ० २३६।

इकठाई(पु)†—वि० [एक+ठाई=स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जब सब गाइ भई इकठाई।—सूर०, १०। ६१४।

इकठैना†—वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत ही सब हाँकि ल्याए गाइ करि इकठैन।—सूर०, १०। ४२७।

इकठौर—वि० [हिं० इक+ठौर=स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जेंवत कान्ह नद इकठौरे।—सूर०, १०। २२४ (ख) जब पाँडे इत उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए। सूर०, ७। २।

इकडाल(पु)—संज्ञा पु०, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।

इकतन(पु)†—क्रि० वि० [हिं० इक+तन=ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यौ ब्रज कै बिच भारी।—सूर०, १०।२६०१।

इकतर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन औ पवन होत जब इकतर नाही बीच बराव।—जग० बानी, पृ० ७५। (ख) दई बडाई ताहि पच यह सिगरे जानी। दे कोल्हू मे पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहि पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेल मे इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इकतरा(पु)†—संज्ञा पुं० [स० एकान्तर] वह ज्वर जो जाडा देकर एक दिन छोड दूसरे दिन आता है। अँतरिया। उ०—बड दुख होइ इकतरो आवै। तीन उपास न बल तन खावै।—जायसी (शब्द०)।

इकता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०—इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कविंद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोविंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६९।

इकताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता या फा० यकता+हिं०ई (प्रत्य०)] १ एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दृगनसें इकताई की बात। जूरी डीठ इक सँग रहै, जदपि जुदे दिखात।—स० सप्तक, पृ० २।९। २ अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या बान। एकातसेविता।—अली गई अब गरवई इकताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाइ।—स० सप्तक, पृ० २८४।

इकताना(पु)—वि० [सं० एकतान या हिं० एक+तान=खिचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०—ऐसे ही देखत रहौं, जन्म सफल करि मानौं। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किसोर जानौं। पलौ न टरौं छिन इत उत न होउँ रहौं इकतानो।—हरिदास (शब्द०)।

इकतार[1](पु)†—वि० [हिं० एक+तार] बराबर। एकरस। समान। उ०—हरि के केसन सो सटी लखत खौर इकतार। मानहुँ रवि की किरन कछु छीन लई अँधियार।—व्यास (शब्द०)।

इकतार[2]—क्रि० वि० लगातार। उ०—आकिंचन इंद्रियदमन रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे सत जन बिरले या ससार।—तुलसी ग्र०, पृ०, १२।

इकतारा—संज्ञा पु० [हिं० एक+तार] १ एक बाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तंबूरा।

विशेष—इसकी बनावट इस प्रकार होती है चमडे से मढा हुआ एक तूंबा बाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुंबे के नीचे जो थोडा सा बाँस निकला रहता है उसमे एक तार तुंबे के चमडे पर की घोडियों या ठिकरी पर से होता हुआ बाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी मे बँधा रहता है। इस खूँटी को ऐंठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। बजानेवाला इस तार को तर्जनी से हिला हिलाकर बजाता है। प्राय साधु इसे बजा बजाकर भीख माँगते हैं।

२ एक प्रकार का हाथ से बुना जानेवाला कपडा।

विशेष—इसके प्रत्येक वर्ग इंच मे २४ ताने के और आठ बाने के तागे होते हैं। बुन जाने पर कपडा धोया जाता है और उसपर कुंदी की जाती है। इसका थान ६ गज लंबा और ११ इंच चौडा होता है।

इकताला[1](पु)—[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०—इकताला रै चैत सुद। आद उदे नवरात।—रा० रू०, पृ० २७९।

इकताला[2]—संज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इकतीयार(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] अधिकार। अख्तियार। उ०—बदे बदगी इकतीयार। साहिब रोप धरौ कि पियार।—कबीर ग्र०, पृ० ३०७।

इकतीस[1]—वि० [स० एकत्रिंशत्, पा० एकतीस] तीस और एक।

इकतीस[2]—संज्ञा पु० तीस और एक की संख्या। इकतीस का अंक।

इकतूत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० एकत्रिति] इकट्ठे रहने की स्थिति। जमाव। उ०—भाँति भाँति के मनुजन की नित रहति इकतूत।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इकत्र(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—मनहुँ सिंगार इकत्र ह्वै बैठ्यौ बार के वेस।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८८।

इकदाम—संज्ञा पु० [अ० इक्दाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २ सकल्प। इरादा। ३ कदम बढाना (को०)। ४ आगे बढना (को०)।

यौ०—इकदाम ए जुर्म=अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इकन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकन्नी'।

इकपेचा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+फा० पेचह] एक प्रकार की पगडी जिसकी चाल दिल्ली आगरे मे बहुत है।

इकबारगी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकबारगी'। उ०—बहुत भए इकबारगी, तिनको गुफ जु होय। ताहि समुच्चय कहत हैं, कवि कोविद सब कोय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१८।

इकबाल—संज्ञा पु० [अ० इक़्बाल] दे० 'एकबाल'। उ०—राजाओं की रक्षा उनका इकबाल है।—काया०, पृ० १८६।

इकबाल दावा—संज्ञा पु० [अ० इकबालदावा] मुद्दई के दावे का स्वीकरण। मुद्दई के दावे को अंगीकार करना।

इकबालमद—वि० [अ० इकबाल+फा०+मन्द] प्रतापशाली। भाग्यवान् [को०]।

इकबालो गवाह—संज्ञा पुं० [अ० इक़्बाल+फा० ई (प्रत्य०)+गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मंजूर करनेवाला।

इकबालो बयान—संज्ञा पु० [हिं० इकबाली+फा० बयान] वह साक्षी या गवाही जिसमे अपराध स्वीकार किया जाय।

इकबीस†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकइस'। उ०—इकबीसे बार नछत्री अवनी कीन्ही पोइस धार करूर।—रघु० रू०, पृ० २५८।

इकरग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकरग'। उ०—छिरकि छिरकि घनस्याम सब इकरग कियो है।—नंद ग्र०, पृ० ३८६।

इकरदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० एक, प्रा० इक्क+सं०रदन] दे० 'एकरदन'।

इकरस(पु)—वि० [स० एक+रस] एकरग। समान। बराबर। उ०—जो कटु अब का प्रीति न हममे। रहत न कोउ इकरस हरदम मे।—विश्राम (शब्द०)।

इकराजी(पु)—वि० [स० एक+राजा+हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०—दादू नगरी चैन तब जब इकराजी होइ।—दादू० बानी, पृ० १२४।

इकराम—संज्ञा पुं० [अ० इकराम] १ दान। पारितोषिक। २ इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३ अनुग्रह। कृपा (को०)।

यौ०—इनाम इकराम। इज्जत इकराम।

इकरार—संज्ञा पुं० [अ० इक़रार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २ कोई काम करने की स्वीकृति।

इकरारनामा—संज्ञा पु० [अ० इकरार+फा० नामह] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(पु)–वि० [हिं०] दे० 'इकरस'। उ०–'खड खड निज ना मया, इकलस एकै नूर।—दादू० बानी, पृ० १०३।

इकला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला'।

इकलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लाई या लोई=पर्त] एक पाट का महीना दुपट्टा या चद्दर। उ०– क) आनपाम आनन के फबन फबी है कैसी कुचित कुमुभी कोरदार इकलाई की।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१४। (ख) दुपट्टा दुलाई चादरैं इकलाई कटिबद बर। कचुकी कूलहिया ओढनी अगवस्त्र धोती अबर।—सूदन (शब्द०)।

इकलाई[2]—संज्ञा पु० [हिं० इकला+ई (प्रत्य०)] अकेलापन।

इकलीम—संज्ञा पुं० [अ० इकलीम] १ पृथिवी। भूखड। २ राज्य। ३ समार की आबाद भूमि का सातवाँ हिस्सा [को०]।

इकले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—इकले प्रान पियारे पाए। देखि हरष भरे नयन सिराए।–नद ग्र० पृ० १७२।

यौ०—इकले दुकले=अकेले दुकेले।

इकलो†—वि० [हिं०] दे० 'इकला' या 'अकेला'। उ०—तब याको पिता मरयो। तब यह घर में इकलो रहे।—दो सौ बावन, पृ० १६।

इकलोईकड़ाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लोई] वह कडाही जो एक ही लोई या तवे की बनी हो, अर्थात् जिसके पेंदे म जोडन हो।

इकलौता–संज्ञा पु० [हिं० इकला+सं० पुत्र, प्रा० ऊत] [स्त्री० इकलौती] १. वह लडका जो अपने मां बाप का अकेला हो। वह लडका जिसके और भाई बहिन न हो। २. एकमात्र। अकेला। उ०—तो इन्हें इकलौता बुद्धिमान मान लेना पडता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

इकल्ला(पु)†–वि०[स० एकल=एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इक्कल] १ अकेला। एकाकी। उ०—रणधीर इकल्ला है और अपने पास इतनी सेना है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०७।

इकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+वाह] १ एक प्रकार की सिलाई जो सदान या अरन के आकार की होती है। भेद इतना ही होता है कि सदान मे दोनो ओर हाथे या कोर निकले रहते हैं और इसमें एक ही ओर। भारतवालो की इकवाई की एक कोर लबी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चौडी होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं। २ जो सख्या मे तीन हो। तीन (दलाल)।

इकस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकस'।

इकसठ[1]—वि० [स० एकषष्ठि, पा० एकसट्ठि] साठ और एक।

इकसठ[2]–संज्ञा पुं० वह अक जिसमे साठ और एक कावोध हो। ६१।

इकसर(पु)—वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी।

इकसार†(पु)–वि०[स० एक, हिं० इक+स०सदृश, प्रा० सरिस, नारिस] एक सा। समान। बराबर। उ०— उनयौ मेघ घटा चहूँ दिश तें वर्षन लगो अखडित धार। बूडी मेरु नदी सब सूकी भर लागो निसदिन इकसार।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५३१।

इकसीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'अकसीर'।

इकसूत(पु)—वि० [स० एकश्रुत (=लगातार) या एकसूत्रित] १ एक साथ। इकट्ठा। एकत्र। उ०—देखि के निकसे दोऊ ओर जे सखियाँ हुती। ते सबै तुरतै दौरी बाहरी ह्वै इकसुती।—गुमान (शब्द०)।

इकहरा– वि० [हिं०] [वि० स्त्री० इकहरी] दे० 'एकहरा'।

इकहाइ(पु), इकहाई(पु)–क्रि० वि० [हिं० एक+हाइ (प्रत्य०)]१ एक साथ। फौरन। उ०—(क) यह सुनि रानिन के वदन भे प्रसन्न हरखाइ। ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमल इकहाइ।—(शब्द०)। (क) सीत भीत हरषादि तें उठै रोम इकहाइ। ताहि कहत रोमाच है सुकविन के समुदाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६८। २ एकदम। अचानक।

इकहाऊ(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाऊ (प्रत्य०)] दे० 'इकहाइ'। उ०—त्यो पदमाकर झोरी झमाइ सु दौरी सबै हरि पै इकहाऊ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५५।

इकात(पु)—वि० [स० एकान्त] दे० 'एकात'।

इकाई—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'एकाई'।

इकार—संज्ञा पुं० [स०] स्वर वर्ण 'इ'।

इकारात—संज्ञा पुं० [सं० इकारान्त] वह शब्द जिसके अंत मे इकार हो। वह शब्द जिसका अत 'इ' से हो।

इकीस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै।—तुलसी ग्र०, पृ० १५६।

इकेला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला।'। उ०—देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ सग माइ। मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि हस इकेला जाइ।—कबीर ग्र०, पृ० २८५।

इकेले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—भोजन करि कै इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १५।

इकैठ(पु)—वि० [स० एकस्थ, प्रा० इकट्ठ] इकट्ठा। एकत्र।

इकोतर(पु)—वि० [हिं०] दे० एकोत्तर'। उ०–और इकोतर नामहि पावै। तुम कहँ जीत हस घर आवै।—कबीर सा०, पृ० १६।

इकोतरसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकोतर सो'। उ०—इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषत श्री गोरखराई।—गोरख० पृ० ५६।

इकौज—संज्ञा पुं० [स० एक+वध्या, प्रा० वज्झा, हिं० बाँझ, या स० एक+जा, या सं० काकवध्या > काकवज्झा > ककौज्झा > इकौंजा] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या उत्पन्न हुई हो। वह स्त्री जो एक बार जनकर बाँझ हो जाय। काकवंध्या।

इकौना†—संज्ञा पु० [हिं० एक+बना] बिना छाँटा हुआ अन्न। बिना चुना हुआ अनाज।

इकौसी(पु)—वि० स्त्री० [स० एक+वासी] [वि० पुं० इकौसा] एकात मे रहनेवाली। अकेली। उ०—अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।—घनानद, पृ० ३३।

इकौसे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] पृथक्। जुदा। अलग।

इकौसो(पु)†—वि० [स० एक+आवास या अवकाश (=स्थान), अप० ओसाम] एकात। निराला। उ०—मेरो है इकौसो वास जातें हरि दास, लेवो मुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै।—प्रिया (शब्द०)।

इक्क(पु)—वि० [अप०] दे० 'एक'। उ०—इक्क मथ्यो विना धाइ हत्थों करें।—सुजान०, पृ० २०।

इक्कट—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सरकडा जिसकी चटाइयां बनती हैं [को०]।

इक्कबाल—सज्ञा पुं० [अ० इकबाल] १ ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग।

विशेष—जब किसी के जन्म के समय ग्रह कटक (१,४,७ १०) या पनकर (२,५,८,११) मे हो, अर्थात् ३, ६, ९ और १२ मे कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और सुख को बढानेवाला योग होता है।

२ अभ्युदय। बढती।

इक्का[1]-वि० [स० एक] १ एकाकी। अकेला। २. अनुपम। बेजोड।

इक्का[2]-सज्ञा पु० १ एक प्रकार की कान की बाली जिसमे एक मोती होता है। २ वह योद्धा जो लडाई मे अकेला लडे। उ०—कूदि परे लंका बीच इक्का रघुवर के।—मानकवि (शब्द०)। ३ वह पशु जो अपना झुड छोडकर अलग हो जाय। ४ एक प्रकार की दो पहिए की घोडा गाडी जिसमे एक ही घोडा जोता जाता है। ५ ताश का वह पत्ता जिसमे किसी रग की एक ही बूटी हो। यह पत्ता और सब पत्तो को मार देता है। जैसे,—पान का इक्का। ईंट का इक्का।

इक्कादुक्का-वि० [हिं० इक्का+दुक्का] अकेला दुकेला। जैसे,—'कोई इक्का दुक्का आदमी मिले तो बैठा लेना'।

इक्कावन†—वि० [हिं०] दे० 'इक्यावन'।

इक्कावान†—सज्ञा पु० [हिं०[दे० 'एक्कावान'।

इक्कासी†—वि० [हिं०] दे० इक्यासी'।

इक्की†—संज्ञा स्त्री० [स० एक+ई (प्रत्य०)]ताश का वह पत्ता जिसमे एक बूटी हो। एक्का।

इक्कीस[1]—वि० [सं० एकविंश, प्रा० एक्कवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक।

इक्कीस[2]—सज्ञा पुं० बीस और एक की सख्या या अक जो इस तरह लिखी जाती है—२१।

इक्यावन[1]—वि० [स० एकपंचाशत्, प्रा० एक्कावन्न]पचास और एक।

इक्यावन[2]—सज्ञा पुं० पचास और एक की सख्या जो इस तरह से लिखी जाती है—५१।

इक्यासी[1]—वि० [स० एकाशीति, प्रा० एक्कासि] अस्सी और एक।

इक्यासी[2]—सज्ञा पुं० अस्सी और एक की सख्या या अक जो इस तरह लिखी जाती है—८१।

इक्षना(पु)—क्रि० स० [हिं० इच्छना] दे० 'इच्छना'। उ०—लप्पन उद्दल, मुमट वर, ते इक्षत घमसान।—प० रा०, पृ० १३४।

इक्ष—संज्ञा पु० [स०] १ ईख। गन्ना। दे० 'ईख'। २ कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०)। ३ मनोरथ। इच्छा (को०)।

यौ०—इक्षुकाड। इक्षुगंधा। इक्षुतुल्या। इक्षुदंड। इक्षुपत्रा। इक्षुप्रमेह। इक्षुमती। इक्षुमेह। इक्षुरस। इक्षुविहारी। इक्षुविकार।

इक्षुकद—सज्ञा पु० [सं० इक्षुकन्द] कूष्माड। कुम्हडा [को०]।

इक्षुक—सज्ञा पुं० [स०] ईख [को०]।

इक्षुकाड—सज्ञा पु० [स० इक्षुकाण्ड] १ ईख का डठल। २. कांस। ३ मूंज। ४ रामसर।

इक्षुकात—सज्ञा [सं० इक्षुकात] छमंजिली इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०]।

इक्षुकीय—वि० [स०] [वि० स्त्री० इक्षुकीया] जहां ईख अधिक पैदा होती हो [को०]।

इक्षुकुट्टक—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो इकट्ठा करता हो। गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०]।

इक्षुगध—सज्ञा पुं० [स० इक्षुगध] १. छोटा गोखरू। २ कांस।

इक्षुगधा—सज्ञा स्त्री० [स० इक्षुगन्धा] १ गोखरू। २ कोकिलाक्ष। तालमखाना। ३. कांस। ४ सफेद विदारी कद।

इक्षुगधिका—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धिका] भूमिकूष्माड [को०]।

इक्षुज[1]—सज्ञा पु० [स०] वह पदार्थ जो ईख के रस से बने।

विशेष—प्राचीनो के अनुसार इसके छह भेद हैं—फाणित (जूषी या शीरा), मत्स्यखडी (राब), गुड, खडक (खांड), सिता (चीनी) और सितोपल (मिश्री)।

इक्षुज[2]—वि० ईख के रस से बना हुआ [को०]।

इक्षुतुल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक पौधा जिसका रस मीठा होता है। कांस।

इक्षुदड—सज्ञा पु० [स० इक्षुदड] ईख का डंठल। ईख।

इक्षुदर्भ—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का तृण।

इक्षुनेत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का एक भेद। ईख की गाँठों पर होनेवाला आँख का आकार [को०]।

इक्षुपत्र—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १ ज्वार। मक्का। २ बाजरा।

इक्षुपाक—सज्ञा पु० [स०] गुड या राब [को०]।

इक्षुप्र—सज्ञा पुं० [स०] रामशर। शर।

इक्षुप्रमेह—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का प्रमेह। इक्षुमेह। मधुमेह।

विशेष—इस रोग मे मूत्र के साथ मधु या शक्कर जाती है। इसके रोगी के मूत्र पर चीटियां और मक्खियां बहुत बैठती हैं। मूत्र के अशो को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमे चीनी का अंश मिलता है।

इक्षुवालिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] काश या मूंज [को०]।

इक्षुभक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यत्र [को०]।

इक्षुमती—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका कुरुक्षेत्र मे होना लिखा है।

इक्षुमालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इद्र पर्वत से निकलती है।

इक्षुमूल—सज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार की ईख। बाँसी। २. ईख की जड या मूल [को०]।

इक्षुमेह—सज्ञा पु० [स०] इक्षुप्रमेह। मधुप्रमेह। मधुमेह।

इक्षुमेही—वि० [स० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०]।

इक्षुयत्र—सज्ञा पु० [स० इक्षुयत्र] ईख पेरने की मशीन। कोल्हू [को०]।

इक्षुयष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुर—सज्ञा पुं० [स०] १ गोखरू। २. तालमखाना। ३. गन्ना [को०]।

इक्षुरस—सज्ञा पुं० [स०] १ ईख का रस। २. कास। ३ राब [को०]।

इक्षुरसवल्लरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी। दूधविदारी। महाश्वेता।

इक्षुरसोद—सज्ञा पु० [स०] पुराणानुसार सात समुद्रो मे से एक जो ईख के रस का है।

इक्षुवण—सज्ञा पुं० [सं०] ईख का डठल [को०]।

इक्षुवल्लरी—सज्ञा स्त्री० [स०] १. पीले रग की ईख। २. क्षीरकद। क्षीरविदारी [को०]।

इक्षुवाटिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १. ईख की एक जाति। पुड्रक। पौंडा। २ ईख का खेत या फारम [को०]।

इक्षुविकार—सज्ञा पुं० [स०] गुड, राब आदि ईख के रस के छह रूप। २. कोई भी मीठा पदार्थ [को०]।

इक्षुविदारी—सज्ञा स्त्री० [स०] विदारीकद।

इक्षुवेष्टन—सज्ञा पुं० [स०] गन्ने की एक किस्म [को०]।

इक्षुशर—सज्ञा पुं०[स०] एक प्रकार का कास और उसका जगल [को०]।

इक्षुशाकट—संज्ञा पु० [स०] गन्ना बोने लायक खेत [को०]।

इक्षुसमुद्र—सज्ञा पुं० [स०] पुराणोक्त सात महासमुद्रो मे एक नाम [को०]।

इक्षुसार—सज्ञा पु० [स०] इक्षुविकार। गुड आदि [को०]।

इक्ष्वाकु[1]—सज्ञा पुं० [स०] १. सूर्यवश का एक प्रधान राजा। यह पुराणों मे वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। रामचद्र इसी के वश के थे। २ इक्ष्वाकु के वश का व्यक्ति (को०)।

यौ०—इक्ष्वाकुनदन, इक्ष्वाकुवंशी = इक्ष्वाकु के पुत्र।

इक्ष्वाकु[2]—सज्ञा स्त्री० कडवी लौकी। तितलौकी।

इक्ष्वारि—सज्ञा पु० [स०] ईख का दुश्मन—कास [को०]।

इक्ष्वालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १. नरकट। नरकुल। २ सरपत। मूँज। ३ काम।

इखद—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।

इखफाय—सज्ञा पु० [अ० इख्फाय] प्रकट न करना। गोपन। छिपाव [को०]।

यौ०—इखफाये जुर्म, इखफाये वारदात = कानून मे किसी पुरुष का किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमानुसार उसका कर्तव्य हो।

इखरना†—क्रि० अ० [हिं० बिखरना का अनु०] बिखरना। इधर उधर गिरना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है।

यौ०—इखरना बिखरना = इधर उधर हो जाना। किसी भी वस्तु का इतस्तत हो जाना (बोल०)।

इखराज—सज्ञा पुं० [अ०] १. निकास। खर्च। २ बहिष्कार [को०]।

इखलाक—सज्ञा पुं० [अ० अख़लाक़] व्यवहार। आचरण। उ०—उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मर्दों का बनाया हुआ।—ज्ञानदान, पृ० ११७।

इखलाकी—वि० [हिं० इखलाक] आचरण या व्यवहार सबधी। व्यावहारिक। उ०—'मसायब का इखलाकी पहलू भी होता है।'—गोदान, पृ० ३६।

इखलास—सज्ञा पुं० [अ० इख़लास] १ मेलमिलाप। मित्रता। उ०—तू जा सुजानहि पास। हमसौं करै इखलास।—सूदन (शब्द०)। २ प्रेम। भक्ति। प्रीति। उ०—कुल आलम इके दीदम अखाहे इखलास। वद अमल बदकार तुई पाक यार पास।—दादू (शब्द०)। ३. सबध। साविका।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—बढ़ाना।

इखु—सज्ञा पुं० [सं० इषु] 'इषु'। उ०—अमर अधिप वारन वरन दूसर अंत अगार। तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अधार।—स० सप्तक, पृ० १६।

इख्तियार—सज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] १ अधिकार। २ आधिकारक्षेत्र। ३. सामर्थ्य। काबू। जैसे,—यह बात हमारे इख्तियार के बाहर की है। ४ प्रभुत्व। स्वत्व। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा कुछ इख्तियार नही है। ५ स्वीकार। ग्रहण। मजूर। उ०—सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहबे इश्क इख्तियार किया।—कविता को०, भा० ४, पृ० १३१।

क्रि० प्र०—करना = स्वीकार करना। अपनाना। ग्रहण करना। उ०—और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नही कर सकता है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २४६।

यौ०—इख्तियारे समाअत = विचार करने का अधिकार।

इख्तिलाफ—संज्ञा पुं० [अ० इख्तिलाफ] १. विरोध। विभेद। विभिन्नता। अंतर। फर्क। २. अनबन। बिगाड।

यौ०—इख्तिलाफे राय = विचारवैमत्य। मतभेद।

इगारह—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'। उ०—सत जो धरै सो खेलन हारा। ठारि इगारह जाइ न मारा।—जायसी ग्र०,पृ० १३७।

इगारहों—वि० [हिं० इगारह] एकादश की सख्यावाला। दस और एक की सख्यावाला। उ०—सभा समासद निरखि पद पकरि उठायो हाथ। तुलसी कियो इगारहो वमनवेष जदुनाथ।—तुलसी ग्र०, पृ० ११७।

इग्यारस†—संज्ञा स्त्री० [सं० एकादश] दे० 'एकादशी'। उ०—बाहण वरत इग्यारस पारस सामँत कुसुम कज सामीर।—रघु० रू०, पृ० २५५।

इग्यारह†—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'।

इग्यारी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्यारी'।

इचकना†—क्रि० अ० [देश०] क्रोध से दाँत या खीस निकालना।

इचन—सज्ञा पु० [हिं० इचना] खिचाव। तनाव। ऐचन। उ०—नीकी नासापुट ही की इचनि अचभे भरी, मुरिके इचनि मो न क्यो हूँ मन तें मुरै।—घनानद, पृ० ३२।

इचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ऐचना'। उ०—डीठि मिचि जात

मिचि इचत ना ऐंचि खेंची खिचत न तसवीर तसवीरगर पै।—पजनेस०, पृ० ७।

इचरज(पु)–सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—शिवसूँ उमग पूछै मगत, इचरज अत आवत यहै।—रघु० रू०, पृ० ४५।

इचिकिल—सज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़। २ तालाब या बावडी। ३. दलदल [को०]

इच्छक[1]—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला।

इच्छक[2]—सज्ञा पुं० १ नारगी का वृक्ष। २ गणित मे जोडी हुई राशि या सख्या। जोड [को०]।

इच्छना(पु)—क्रि०स० [स० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—इच्छ इच्छ विनती जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ भइ रानी।—जायसी (शब्द)।

इच्छा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख की सभावना होती है। कामना। लालसा। अभिलाषा। चाह। ख्वाहिश।

विशेष—वेदात और साख्य मे इच्छा को मन का धर्म माना है। पर न्याय और वैशेषिक मे इसे आत्मा (गुण) धर्म या व्यापार माना गया है।

पर्या०—आकाक्षा। वांछा। दोहद। स्पृहा। ईहा। लिप्सा। तृष्णा। रुचि। मनोरथ। कामना। अभिलाषा। इषा। छद।

यौ०—इच्छाघात। इच्छाचार। इच्छाचारी। इच्छानुकूल। इच्छानुसार। इच्छापूर्वक। इच्छाबोधक। इच्छाभेदी। इच्छाभोजन। इच्छावान्। इच्छाबाधक। इच्छावसु। स्वेच्छा। ईश्वरेच्छा।

२. माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र मे माँग या 'डिमाड' शब्द का व्यवहार जिस अर्थ मे होता है, उसी अर्थ मे कौटिल्य ने 'इच्छा'का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रो की इच्छा और बनाने के व्यय को सदा समझता रहे।

३. गणित मे त्रैराशिक की दूसरी शक्ति। ४. तितिक्षा या इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था। उ०—वह एक वृत्ति चक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति, शरीरधर्म सबका योग रहता है।—चितामणि, भा०, २, पृ० ८८।

इच्छाकृत—वि० [स०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०]।

इच्छाचारी—वि० [स० इच्छा+चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी] अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला। उ०–चले गगन महि इच्छाचारी।—मानस, ५।३५।

इच्छादान—सज्ञा पु० [स०] किसी याचक की आकाक्षा परिपूर्ण करना [को०]।

इच्छानिवृत्ति–सज्ञा स्त्री० [स०] भोग-तृष्णा से विरक्ति। विराग [को०]।

इच्छानुसारिणीक्रियाशक्ति–सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियो के इच्छानुसार कारण के बिना कार्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे,—मिट्टी के बिना घट या बीज के बिना वृक्ष इत्यादि का योगियो की इच्छा से उत्पन्न होना।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०]।

इच्छाफल—सज्ञा पु० [सं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल समाधान [को०]।

इच्छाभेदी—वि० [स०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (औषध)। प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने की इच्छा हो।

यौ०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस=दे० 'इच्छाभेदी'।

इच्छाभोजन—सज्ञा पुं० [सं०] १ जिन जिन वस्तुओ की इच्छा हो, उनको खाना। रुचि के अनुसार भोजन। जैसे, आज हमें इच्छाभोजन कराओ। १ भोजन की वह सामग्री जिसे खाने की इच्छा हो। रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने दिनो पर आज हमे इच्छाभोजन मिला है।

इच्छामय—वि० [स०] रुचि के अनुकूल। जैसा चाहे वैसा। उ०—इच्छामय नरवेष सँवारे।—मानस, १।१५२।

इच्छामरन—वि० [सं० इच्छा+मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला। उ०—कामरूप इच्छा मरन ज्ञान विराग निधान।—मानस, ७।११३।

इच्छारूप—वि०[सं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण करनेवाला। कामरूप। उ०—चेहरे बदलने के कारण ही सभवत इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है।—प्रा० भा० प०, पृ० ६।

इच्छावसु[1]—संज्ञा पुं० [स०] कुबेर।

इच्छावसु[2]—वि० अपनी आकाक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन प्राप्त करनेवाला [को०]।

इच्छित—वि०[सं०] चाहा हुआ। वाछित। अभिप्रेत। अभीष्ट। उ० इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुम्हे।—करुणा, पृ० १४।

इच्छु[1](पु)—सज्ञा पुं० [स० इक्षु] ईख। उ०—इच्छु रसहू ते है सरस चरनामृत औ लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कै।—चरण (शब्द०)।

इच्छु[2]—वि० [स०] चाहनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने मे ही होता है, जैसे-शुभेच्छु, हितेच्छु।

इच्छुक—वि० [स०] चाहनेवाला। अभिलाषी। आकाक्षायुक्त।

इछना(पु)—क्रि०स० [हिं०] दे० 'इच्छना'। उ०—छेल इछहि छोडह मोर भोर।—विद्यापति, पृ० २०२।

इछा(पु)—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'इच्छा'। उ०—शीतल जल के इछा भूमि (क) कर्कशता।—वर्ण०, पृ० १६।

इछु—वि० [स० इच्छु] दे० 'इच्छुक'। उ०—धर्म तप्पनह पार। न कोऊ दास रहै इछु।—पृ० रा०, २५।१७३।

इजति(पु)–सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०–ति पातमाह की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।—मतिराम ग्र०, पृ० ३८६।

इजतिराब--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराब] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी। उ०--मरना बेहतर इस इजतिराब के बदले।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३।

इजमत--संज्ञा स्त्री० [अ० अजमत] दे० 'अजमत'। उ०--यसू ज्ञान इजमत कूँ देखो अनमुस एकै ठानै।--चरण० बानी, भा० २, पृ० १८३।

इजमाल--संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इजमाली] १ कुल। समष्टि। २ किसी वस्तु पर कुछ लोगों का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक। साझा। शिरकत। ३ एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)। ४ संक्षेप कथन (को०)।

इजमाली--वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साझे का।

इजरा[1]†--संज्ञा स्त्री० [सं० नि (=नितरां)+जरा (जीर्ण) अथवा हिं० इ+जरा=जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनों तक जोतने से कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती छोड़ दी जाय।

इजरा[2]--संज्ञा पुं० [अ० इजराय] दे० 'इजराय'।

क्रि० प्र०--इजरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इजराय--संज्ञा पुं० [अ०] १ जारी करना। प्रचार करना। २ काम में लाना। व्यवहार। अमल।

यौ०--इजराय डिगरी=डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी को कार्यान्वित करना।

इजलास--संज्ञा पुं० [अ०] १ बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय। न्यायालय। अदालत।

यौ०--इजलासकामिल=न्यायालय की वह बैठक जिसमें सब जज एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इजहार--संज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन। उ०--धर्म का यह इजहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।--मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०--एक दूसरे कैदी के इजहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०--देना।=लेना।--होना।

यौ०--इजहारतहरीरी=लिखी हुई गवाही। लिखित बयान (को०)।

इजाजत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाजत] १ आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी। मंजूरी। स्वीकृति।

इजाफत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाफत] संबंध। सादिका। २ फारसी व्याकरण में छठे कारक का चिह्न (को०)।

इजाफा--संज्ञा पुं० [अ० इज़ाफ़ह्] १ बढ़ती। बेशी। वृद्धि। बढ़ोतरी। उ०--अपने अँग के जानि कै, जोबन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को, बड़ो इजाफा कीन।--बिहारी र०, दो० २। २. बचा हुआ धन। बचत।

यौ०--इजाफालगान=लगान का अधिक होना। कर या लगान की बढ़ती।

इजावत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कबूलियत। स्वीकृति। स्वीकार या मंजूर करना। २ शौच। दस्त। निवृत्ति (को०)।

इजार--स्त्री० [अ०] पायजामा। सूथन। सुथना। उ०--बसन गूजरी ऊजरी बिनसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरै बैठी बाल बजार।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०--उतारना = नंगा होना। प्रतिष्ठा जाना। इज्जत उतारना। उ०--और आदमी ही डाले है अपनी इजार उतार।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३१७।

यौ०--इजारबंद।

इजारदार--वि० [अ० इजारह+फा० दार(प्रत्य)] [वि० स्त्री० इजारदारिन] किसी पदार्थ को इजारे वा ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधिकारी। उ०--कहा तुमहीं हौ ब्रज के इजारदार।--गीत (शब्द०)

इजारबंद--संज्ञा पुं० [अ० इजार+फा० बंद] सूत या रेशम का बना हुआ जालीदार बंधना जो पायजामे या लहँगे के नेफे में उसे कमर से बाँधने के लिये पड़ा रहता है। नारा। कमरबंद।

इजारा--संज्ञा पुं० [अ० इजारह्] १ किसी पदार्थ को उजरत या किराए पर देना। २ ठेका। ३. अधिकार। इख्तियार। स्वत्व। जैसे,--तुम्हारा कुछ इजारा है?

क्रि० प्र०--करना=जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना। उ०--कर्मधा चालो मत करो, करो इजारो आय।--रा० रू०, पृ० ३१७।--देना।--लेना।

यौ०--इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजारह्+फा० दारी प्रत्य०] ठेकेदारी स्वत्व। कब्जे में होने की स्थिति। उ०--इसे ही इजारादारी एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।--मान०, भा० ?, पृ० २१२।

इजारेदार--वि० [अ० इजारह+फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'इजारदार'।

इजाला--संज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना (को०)।

इजाला हैसियत उर्फी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फी] कोई ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आबरू में धब्बा लगे या उसकी बदनामी हो। हनकइज्जती। मानहानि।

इज्जत--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्ज़त] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०--समझते हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।--कविता को०, भा० ४, पृ० ५९३।

मुहा०--इज्जत उतारना=मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--जरा सी बात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०--करना = प्रतिष्ठा या सम्मान करना।--खोना = अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--तुमने अपने हाथों अपनी इज्जत खोई है।--गँवाना=दे० 'इज्जत खोना'।--जाना। जैसे,--पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत चली जायेगी।--देना=(१) मर्यादा खोना। जैसे,--क्या खुद के बाजार में हम अपनी इज्जत देंगे? (२) गौरवान्वित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे,--चुनाव में गरीब होकर आपने इन्हें बड़ा इज्जत दी।--पाना=प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,--उन्होंने इस दर्बार में बड़ी इज्जत पाई।--बिगाड़ना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। जैसे,--बदमाश भले आदमियों की राह चलते इज्जत

विगाड देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। बेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत विगाडना।—होना = आदर होना। जैसे,—उनकी चारो तरफ इज्जत होती है।

यौ०—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज्जत + फा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—सज्ञा पु० [स०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्तिराव—सज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराव] दे० 'इजतिराव' [को०]।

इज्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १. यज्ञ। २ देवपूजा।

इट—सज्ञा पु० [स०] १ वेंत। २, तृण। ३ तृण या वेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—सज्ञा पुं० [अ०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—सज्ञा पु० [स०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—सज्ञा पु० [अं०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—सज्ञा पु० [अ०] १ एक प्रकार का कपडा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रग प्राय काला होता है।

२ इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—सज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमे अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—सज्ञा पुं० [स०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला सांड या बैल [को०]।

इठलाना—क्रि० अ० [देश०] १ इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोडे में ही इठलाने लगते हैं। २ मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहैं पकरि तब पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात बे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के लिये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर मे करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताब कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इठलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इठलाहटी—वि० [हिं० इठलाहट + ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरै अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु। दुसह सक विस को करै जैसे सोठि मिठासु।—बिहारी र०, दो० ३६०।

इठाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इष्ट, पा०इट्ठ + हिं० आई(प्रत्य०)] १ रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारौ उदाखन माखन हूँ सह मेटि इठाई।—केशव (शब्द०)। २ मित्रता। प्रेम।

इठाना(पु)—क्रि० स० [स० एषण या इषणि] भेजना। पठाना। उ०—चाह जीयै मिलन की सो तौ कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायौ तू धिगानौ रे।—ब्रज० ग्र०, पृ० १३२।

इठिमिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद से सबद्ध काठक का एक विभाग या अश [को०]।

इठौं†—क्रि० वि० [स० इध, प्रा० *इढ, इह] यहाँ। इस ओर। इधर। उ०—सरधे इठे इठे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५।

इड—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

इडरहर†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इडहर'। उ०—बने अनेक अन्न पकवाना। बरिन इडरहर स्वादु महाना।—रघुराज (शब्द०)।

इडविडा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बकरी। २ बकरी की तरह मेमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४ अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७ एक प्रकार का अप्रिय देवता जो अमोमपा है। ८ अन्न। हवि। ९ नमदेवता। १० दुर्गा। अबिका। ११ पार्वती। १२ कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी। १३ वसुदेव की एक स्त्री। १४ मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिसमे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५ ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६ स्वर्ग। १७. एक नाडी जो बाई ओर है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ से होकर नाक तक है। बाईं साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय मे चद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनो के अनुसार यह प्रधान नाडी है।

इडाचिका—सज्ञा स्त्री० [स०] बर्रे। भिड [को०]।

इडाजात—सज्ञा पुं० [सं०] एक सुगधित द्रव [को०]।

इडावान—सज्ञा पु० [स०] १ यज्ञान्न को खाने का अधिकारी। २ उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—सज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिक्क—सज्ञा पुं० [सं०] जगली बकरा [को०]।

इडुर—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इडहर—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'इँडहर'।

इडा—सज्ञा स्त्री० [सं० इडा] दे० 'इडा'।

इण(पु)—सर्व० [स० एनत, प्रा० एण, इण] दे० इम'। उ०—(क) इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४९। (ख) आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई वेस।—रघु० रु०, पृ० १२।

इत—क्रि० वि०[स०] १ अत। इसलिये। २. यहाँ। ३ इस स्थान से। यहाँ से। ४ इधर। इस ओर। ५ इस समय से। अब से [को०]।

इत पर—क्रि० वि० [स०] १ इसके उपरात। इसके बाद। २ इतने पर। इस पर।

इत[१](पु)†—क्रि० वि० [सं० इत] इधर। यहाँ। उ०—इततें उत औ उततें इत रहु यम की साँट सँवारी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत चितै धँस्यो मदिर मैं हरि को दरसन पायो।—सूर०, १०।४२७।

इत[२]†(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—सातू इत रो नह सोक लगर, सुखी सगला लोक।—रघु० रू०, पृ० १२३।

इतकाद—सज्ञा पुं० [अ० एतकाद] दे० 'एतकाद' । उ०—तुम करौ तयारी सब इसवारी, मैं दिल यह इतकाद करयौ।—सुजान०, पृ० १४ ।

इतनक—वि० [हिं० इतना+क (प्रत्य०)] इतना । थोड़ा । उ०—(क) जानैं कटा कटाच्छ तिहारे कमलैन मेरो इतनक सो री। सूर०, १०।३०५। (ख) सुदर विरहिन दुखित पीव नहीं पावरी। (परि हौं) इतनक विष अब बाँटि सखी मुहि पावरी।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३४१ ।

इतना—वि० [सं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा० इयतन अथवा हिं० ई० यह+तना (प्रत्य०)] [स्त्री० इतनी] इस मात्रा का। इस कदर। उ०—(क) इतनासुख जो न समाता अतरिक्ष मे, जल थल मे।—प्रांसू, पृ० ४६। (ख) जनु इतनी विरंचि करतूती। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—इतने मे=इसी बीच मे। इसी समय। उ०—इतने में रन ठौर रुधिर नदी प्रगटत भई। गज हय सुभट करारे छिन्न अंग छैं छैं गिरे।—(शब्द०) ।

इतनो—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—सब कौ न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फनु है।—तुलसी० ग्र०, पृ० २०६।

इतफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तफ़ाक़] दे० 'इत्तफाक'। उ०—काट जिका कुल ऊबटै, आठवाट इतफाक।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६४ ।

इतबार—सज्ञा पु० [अ० एतबार] विश्वास। प्रतीति। उ०—(क) सार शब्द से बाँचियो मानौ इतबार।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५०। (ख) ऐसे घर मे जो बसै वाको क्या इतबार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५ ।

इतबारी—वि० [हिं० इतबार+ई (प्रत्य०)] एतबार के योग्य। विश्वासपात्र। उ०—गोरि न रह्यो पोरिया जे इतबारी धाम।—पृ० रा०, ६३। २०४ ।

इतमाम—सज्ञा पुं० [अ० इहतिमाम=प्रबध] इतजाम। बदोबस्त। प्रबध। उ०—ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चँवर मोरछल ढारि कियो इतमाम आम घर।—सूदन (शब्द०)।

इतमीनान—सज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। दिलजमई। सतोष। उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इतमीनान जामिन के लिये। कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६ ।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—तुम अपना हर तरह से इतमीनान कर लो, तब मकान खरीदो (शब्द०) ।—कराना ।—देना ।—होना। जैसे—'अब तुम्हारी बातो से हमें इतमीनान हो गया (शब्द०) ।

यौ०—इतमीनाने कल्ब=हृदय का विश्वास या सतोष ।

इतमीनानी—वि० [अ० इतमीनान+फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासपात्र। विश्वासनीय ।

इतर[1]—वि० [स०] १ दूसरा। ऊपर। और। अन्य। उ०—बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नही। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१०। २. नीच। पामर। साधारण। उ०—महि परत सुमन रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर बिभाग।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४६ ।

इतर[2]—सज्ञा पुं० [अ० इत्र] दे० 'अतर' ।

यौ०—इतरदान=इत्र रखने का पात्र। इतरफरोश=इत्रविक्रेता।

इतरत., इतरत्र—क्रि० वि० [स०] १ अन्यथा। व्यतिरिक्त। २. दूसरी जगह पर। अन्य स्थान पर [को०] ।

इतरथा—क्रि० वि० [स०] अन्यथा [को०] ।

इतराज—सज्ञा पुं० [अ० एतराज] दे० 'एतराज' ।

इतराजी—सज्ञा स्त्री० [हिं० इतराज+ई (प्रत्य०)] विरोध। बिगाड। नाराजी। उ०—बडी मीत तुव मिलन कौ, चित राजी को चाव। इतराजी मत कर अरे, इत राजी है आव।—स० सप्तक, पृ० २१६ ।

इतराना—क्रि० अ० [स० इतर अथवा स० उत्तरण, हिं० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना। घमड करना। मदाध होना। उ०—(क) बडो बडाई नहिं तजै, छोटो वहु इतराय। ज्यो प्यादा फरजी भयो, टेढो टेढो जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जस थोरेहु धन खल इतराई।—मानस, ४।१८। २ रूप और यौवन का घमड दिखाना। ठसक दिखाना। ऐंठ दिखाना। इठलाना। उ०—अब काहू के जाउ कहीं जनि आवति हैं युवती इतरात। सूर—(शब्द०) ।

इतराहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० इतराना] इतराने का भाव। दर्प। घमड। गर्व। उ०—जीवन के इतराहट सौ अठिलाट अछो टटि ऐंठनि ऐंठि।—देव (शब्द०) ।

इतरेतर—क्रि० वि० [स०] परस्पर। आपस मे ।

इतरेतरयोग—सज्ञा पुं० [स०] १. परस्पर सबध। २ एक प्रकार का द्वद्वसमास जिसमे दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है। हिंदी मे समास का यह भेद नही है।

इतरेतराभाव—सज्ञा पु० [स०] न्यायशास्त्र मे एक के गुणो का दूसरे मे न होना। अन्योन्याभाव। जैसे,—गाय घोडा नही, क्योकि गाय के धर्म घोडे मे नही हैं।

इतरेतराश्रय—सज्ञा पु० [स०] तर्क मे एक प्रकार का दोष।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इतरेतराश्रय दोष होता है। जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण मे लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण मे लाना।

इतरेद्यु—क्रि० वि० [स०] दूसरे दिन। अन्येद्यु [को०] ।

इतरैं—क्रि० वि० [स० इत.पर] इतने में। इसके उपरात। उ०—इतरैं एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस।—वेलि०, दू० ८३ ।

इतरौहाँ—वि० [हिं० इतराना+औहाँ] (प्रत्य०)] जिससे इतराने का भाव प्रकट हो। इतराना सूचित करनेवाला। उ०—रहे परम पद साधत बीचै परी चाह चकचौंह। रतन खोइ कै कौड़ी पाई चाल चलै इतरौंह।—देवस्वामी (शब्द०) ।

इतलाक—सज्ञा पुं० [अ० इतलाक] १. जारी करना। इजराय। २. बधनमुक्त करना। खोलना। ३. बोलना। कथन। ४. वह

दफ्तर या बही जिसमे दस्तक और समनें आदि के जारी होने और उनके तलवाने के आयव्यय का लेखा लिखा जाता है।

यौ०—इतलाकनवीस = वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत—क्रि० वि० [स० इतस्तत, प्रा० *इतवतः हिं० इतउत] इधर उधर। उ०—उझकत इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६२।

इतवरी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'इत्वरी'।

इतवार—सज्ञा पुं० [स० आदित्यवार, प्रा० आइत्तवार = ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्तत —क्रि० वि० [स०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता(पु)—वि० [स० इयत् पा० इयन्त, प्रा० *इअतन, हिं० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) बड्डा जु बोल मुख नन्हिया, इता बोल सिर पर धरै।—पृ० रा०, ६४।१२६। (ख) साचा मुँह मोडै नही अर्थ इता ही बूझ।—दादू०, पृ० ३८५।

इताअत—सज्ञा स्त्री० [अ०] आज्ञापालन। तावेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताअत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

इतातिं—सज्ञा स्त्री० [अ० इताअत] दे० 'इताअत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इतातिं है।—तुलसी ग्र०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना = आज्ञा या हुक्म मानना। उ०—निमि बासर ताकहँ भलो, मानै राम इतातिं।—ग्र०, पृ० ५१५।

इताब—सज्ञा पुं० [अ०] क्रोध। कोप। गुस्सा [को०]।

यौ०—इतावनामा = क्रोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला पत्र।

इति[1]—अव्य [स०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—अब तुम्हारी पढाई की इति हो गई। २. गति। गमन। ३ ज्ञान (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति[3]—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७६। (ख) इति बदत तुलसीदास।—तुलसी ग्र०, पृ० ७८।

इतिक[1]—वि० [सं०] चलता हुआ। गतिशील [को०]।

इतिक[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतेक'। उ०—पन कितो कहरि अप्पन होइ। इतिक विदा सजि चद को।—पृ० रा०, ६१। ८८६।

इतिकथ—वि० [सं०] १ अविश्वसनीय। २ नष्ट। अश्रद्धेय [को०]।

इतिकथा—सज्ञा स्त्री० [स०] अविश्वसनीय एव निरर्थक बात [को०]।

इतिकरणीय—वि० [स०] दे० 'इतिकर्तव्य' [को०]।

इतिकर्तव्य—वि० [सं०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या पूर्णता। उ०—जैसे कागजी बुद्धदौड मे है आज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. मीमासा या कर्ममीमासा मे वह अर्थवाद बोधित वाक्य जिसमे किसी कर्म की प्रशसा और उसके करने के विधान का बोध हो।

इतिमात्र—वि० [स०] इतना ही। इस प्रकार का ही [को०]।

इतिय(पु)—वि० [देश०] दे० 'इतना'। उ०—यौ बलिज मार आतुर इतिय ज्यो डूरिय बूंद धर।—पृ० रा०, १३।११६।

इतिवत्—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार। इस ढग से [को०]।

इतिवृत्त—सज्ञा पु० [स०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २ कहानी। किस्सा।

इतिश्री—सज्ञा स्त्री० [स०] समाप्ति। अंत। जैसे,—औरगजेब से ही मुगलो के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार निश्चय ही [को०]।

इतिहास—सज्ञा पुं० [स०] १ बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनसे सबध रखनेवाले पुरुषो का कालक्रम से वर्णन। तवारीख। उ०—यद्यपि हमे इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नही।—भारत०, पृ० ४। २ वह पुस्तक जिसमे बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और भूत पुरुषो का वर्णन हो। उ०—अब भी 'लिखित मुनि' का चरित वह लिखित है इतिहास मे।—भारत०, पृ० १०। १ किसी विषय मे सबधित तथ्यो का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, सस्कृति का इतिहास। ४. कथा। वृत्त। उ०—इस अनत काले मानव का, यह जब उच्छृखल इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यौ०—इतिहासकार = इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ = इतिहास का जानकार। इतिहासवेत्ता = इतिहासज्ञ।

इते(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'। उ०—इन घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह।—तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

इतेका—वि० [हिं० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै—क्रि० वि० [स० इत] इधर। इस तरफ। इस ओर। उ०—मोहन मानि मनायौ मेरो। हौं बलिहारी नद नदन की, नेकु इतै हँसि हेरो।—सूर०, १०। २१६।

मुहा०—इतै उत = दे० 'इतउत'। उ०—उमडे जबै मुंडदंडे उछालैं। तबै तोरि तारैं इतैउत्त पालैं। पद्माकर ग्र०पृ०२७६।

इतो(पु), इतौ(पु)—वि० [सं० इयत् = इतना] [स्त्री० इती] इतना। इस मात्रा का। निर्दिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढिगो इतो उदोत। बक बिकारी देत ज्यो दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हे बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इती री।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०८। (ग) लै चैं मोहन, चदा लै। सूरदास प्रभु इती बात को कत मेरे लाल हठै।—सूर०, १०। १६५।

इतौत(पु)—क्रि० वि० [हिं० इत+उत] इधर उधर। उ०—चद उदोत इतौत चितौत चकी सबकी चख चाह चकोरी।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५०।

इत्कट—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष या घास [को०]।
इत्किला—सज्ञा स्त्री० [स०] एक सुगध द्रव्य। गोरोचन [को०]।
इत्त(पु)—क्रि०वि० [हिं०] दे० इत'। उ०—जा को रहना उत्त घर सो क्यो लोडै इत्त। जैसे पर घर पाहुना रहै उठाए चित्त।—कबीर सा० स०, पृ० ७७।
इत्तन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—इत्तन वचन कह्यौ चर आइय।—प० रा०, पृ० १२०।
इत्तफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक] [वि० इत्तफाकिया, क्रि० वि० इत्तफाकन] १ मेल। मिलाप। एका। २ सहमति।
मुहा०—इत्तफाक करना=सहमत होना। जैसे,—मैं आपकी राय से इत्तफाक नही करता।
३ सयोग। मौका। अवसर। जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं तो आप भी कभी यहाँ आते हैं?
मुहा०—इत्तफाक पड़ना=सयोग उपस्थित होना। मौका पडना। अवसर आना। जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक कभी नही पडा। इत्तफाक से=सयोगवश। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी रास्ते मे मिल गए'।
इत्तफाकन्—क्रि०वि०[अ० इत्तिफाकन्]सयोगवश। अचानक। एकाएक।
इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियह] आकस्मिक।
इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफ़ाक़] दे० 'इत्तफाकिया'।
इत्तला—सज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना। खबर। उ०—बहरे खुदा जनाब दें हमको ये इत्तला। साहब का क्या जवाब था बाबू ने क्या कहा।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२६।
क्रि० प्र०—करना।—देना।-होना।
मुहा०—इत्तला लिखना=राजकर्मचारियो का किसी बात की सूचना लिखना।
यौ०—इत्तलानामा।
इत्तलानामा-सज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ+फा० नामह] किसी बात की खबर देनेवाला पत्रक। सूचनापत्र।
इत्तहाद—सज्ञा पु० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप। एकता। उ०—खुदा गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की।—काया०, पृ० ३३४।
इत्ता†—वि० [हिं० इतना] इतना। उ०—कडेल जवान न होगा तो भला शेरो से इत्ता ठेंगा मुकाबिला कर सकेगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२।
इत्तिफाक—सज्ञा पु० [अ० इत्तिफ़ाक़] सयोग। मौका। उ०—'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड की ऊँची चोटी पर हैं'।—मैर कु०, पृ० ६२।
इत्तिहाम—सज्ञा पुं० [अ०] दोष। तुहमत।
क्रि० प्र०—देना।
इत्तो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'।
इत्थ—क्रि० वि० [सं० इत्थम्] इस प्रकार से। ऐसे। यों।
इत्थकार—क्रि० वि० [स० इत्थङ्कारम्] इस प्रकार। इस ढग से [को०]
इत्थंभूत—वि० [स० इत्थम्भूत] इस प्रकार का। ऐसा। २ सत्य। विश्वसनीय (कथा)।
इत्थविध—वि० [स०] १ इस प्रकार का। ऐसा। २. इस प्रकार की विशेषता या गुणों से युक्त [को०]।
इत्थमेव[1]—वि० [स०] ऐसा ही।
इत्थमेव[2]—क्रि० वि० इसी प्रकार से।
इत्थशाल—सज्ञा पुं० [स०; सं०, अ० इत्तिसाल] दे० इत्थसाल' [को०]।
इत्थसाल—सज्ञा पुं० [अ०इत्तिसाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुडली मे १६ योगो में से तीसरा योग जहाँ वेगगामी ग्रह मदगामी ग्रह से एक अश मे कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को देखते हों या सबध करते हों वहाँ इत्थसाल योग होता है।
इत्थाँ(पु)†, इत्थूँ(पु)† इत्थे(पु)†—क्रि० वि० [स० इत] यहाँ। इस स्थान पर।
इत्यादि—अव्य० [स०] इसी प्रकार के अन्य। और। इसी तरह। और दूसरे। वगैरह। उ०—बेटा हमारा धन, आभूषन, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५०८।
विशेष—जहाँ किसी प्रसग से समान सबध रखनेवाली बहुत सी वस्तुओ को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के लिये केवल दो तीन वस्तुओ को गिनाकर 'इत्यादि' लिख देते हैं जिससे और वस्तुओ का आभास मिल जाता है।
इत्यादिक-वि० [स०] इसी प्रकार के अन्य और। ऐसे ही और दूसरे जैसे—राम कृष्ण इत्यादिको ने भी ऐसा ही किया है।
विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और विशेष शब्द प्राय लुप्त रहते है।
इत्र—सज्ञा पुं० [अ०] १ अतर। पुष्पसार। इतर। उ०—न दी बू एक ने ऐ गुलबदन तेरे पसीनों की, हजारो इत्र खिचकर तबल ए अत्तार मे आए। कविता को०, भा० ४, पृ० ३७७। २. सुगध। खुशबू। ३. सार। सत्त।
इत्रदान—सज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० दान] दे० 'अतरदान'।
इत्रफरोश—सज्ञा पु० [अ० इत्र + फा० फरोश] अतर बेचनेवाला। गधी। अत्तार।
इत्रसाज—सज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० साज़] इत्र बनानेवाला। गधी[को०]।
इत्रीफल—सज्ञा पुं० [स० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड, बहेडे और आँवले का चूर्ण तिगुने शहद मे मिलाकर चालीस दिन तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है।
इत्वर[1]—वि० [स०] १ क्रूरकर्मा। क्रूर। २ निम्न। नीच। ३ यात्री। पथिक [को०]। ४ निर्धन। धनहीन [को०]।
इत्वर[2]—सज्ञा पुं० १. षढ। नपुसक। २ उत्सर्ग किया हुआ वृष या छुट्टा पशु। खुला हुआ जानवर [को०]।
इत्वरी—वि०स्त्री०[स०] १ छिनाल। कुलटा। २ अभिसारिका [को०]।
इथ(पु)—अव्य० [स० अत्र, प्रा० इत्थ] यहाँ। अत्र। उ०—तै इथ नै सतारि दै जो चाहहि सो लेहि।—बिखारी० ग्र०, भ० १, पृ० १६७।
इथ्थह(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'इत्थ'। उ०—तब लग मेछ इथ्थह प्रवेस।—पृ० रा०, ६१।५६२।

इदंतन—वि० [स० इदन्तन] १ इस समय का। वर्तमान। २ क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदंता—संज्ञा स्त्री० [स० इदन्ता] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदंद्र—संज्ञा पुं० [स० इदन्द्र] वह जो (इस) इद (=जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदंवर—संज्ञा पुं० [स० इदम्बर] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इदम्—सर्व० [स०] यह।

इदमित्थ—पद० [स० इदमित्थम्] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—संज्ञा पुं० [अ० इद्राक] ज्ञान। बोध। समझबूझ। उ०—गफलत कि यह जागे नहीं यहाँ चाहिये इदराक बहु।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानीतन—वि० [सं० इदानीन्तन] १ इस समय का। आधुनिक। २ नवीन। नया।

इदावत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष में १२ युग होता है और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इदावत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—युवा, धाता, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, क्रोधी, सौम्य, आनंद, सिद्धार्थ और रक्ता इनमें अन्न और वस्त्र के दान का बड़ा माहात्म्य है।

इद्दत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अशौच जो मुसलमान विधवाओं को होता है और जिसके बीत ये अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकती।

विशेष—कहते हैं कि यह इसलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि तलाक की स्थिति में तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये संतान होने तक भी है।

इद्ध[1]—वि० [सं०] १ प्रकाशित। ज्योतित। २ प्रकाशमान। चमकीला। ३ आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४ पालन किया जानेवाला (आदेश)। ५ दीप्त। ६ दग्ध। ७ स्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्ध[2]—संज्ञा पुं० १ आतप। घाम। २ दीप्ति। कांति। ३ आश्चर्य। अचंभा [को०]।

इद्धर्दिति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्धमन्यु—वि० [सं०] भयंकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्धाग्नि—वि० [सं०] जिसकी अग्नि निरंतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्वत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष में १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अंतिम वर्ष को इद्वत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजापति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक⑨†—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरुष निरजुर अहो।—रघु० रू०, पृ० ५७।

इधकार⑨†—संज्ञा पुं० [सं० अधिकार] दे० 'अधिकार'। उ०—अवध नाम धधकार जग सार माटी पगो।—रघु० रू०, पृ० २८।

इधर—क्रि० वि० [सं० इतस या इदर] १. इस ओर। यहाँ। इस तरफ। उ०—इधर कोई न यहाँ से फिर हुआ तेरा मेरा अनुमान।—रामायनी, पृ० ४२।

मुहा०—इधर उधर = (१) यहाँ वहाँ। इतस्ततः। अनिश्चित स्थान में। जैसे,—लोग विपत्ति में मारे इधर उधर मारे मारे फिरते थे। (२) आसपास। इर्द गिर्द। अनिश्चित प्रदेश में। जैसे,—तुम्हारे घर के इधर उधर कोई नाई हो तो भेज देना। (३) चारों ओर। सब ओर। जैसे,—तेज के इधर उधर देखो, पुस्तक यहीं कहीं होगी। इधर उधर करना = (१) दाएँ-बाएँ करना। तीया पाँचा करना। जैसे,—उसने इतना रुपया माँगने पर, तब तक इधर उधर करते रहे। (२) अस्त-व्यस्त करना। उलट पुलट करना। क्रम भंग करना। जैसे,—बच्चे ने सब कागजपत्र इधर उधर कर दिए। (३) तितर बितर करना। भगाना। जैसे,—पहले इतने ३० लोगों को मारकर इधर उधर कर दिया। (४) हटाना। किसी नियत स्थानों पर से हटाना। जैसे,—महाजनों ने कर में उनकी सब माल इधर उधर कर दिया। इधर उधर की बात = (१) बेतुकी बात। बकवाद। गपी सपाट बात। जैसे—इस तेरी इधर उधर की बातों पर विश्वास नहीं करते। (२) निंदितों की बात। अनर्गल बात। दूसरों की शिकायत। जैसे,—तू कोई काम नहीं करता, दूसरे इधर उधर की बातें किया करते हैं। इधर को उधर करना या लगाना = चुगलखोरी करना। परिवाद करना। एक पक्ष से लोगों की बात दूसरे पक्ष के लोगों से कहना। झगड़ा कराना। इधर की दुनिया उधर होना = असंभावित बात का होना। कभी न हो सकने वाला। जैसे,—चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। इधर उधर की हाँकना = बढ़ बढ़कर बकना। व्यर्थ समय खोना। जैसे,—तुम इधर उधर के दस काम करते हो, कोई काम तो करते नहीं। इधर उधर से = (१) अनिश्चित प्रकार से। अनिश्चित उपाय से। जैसे,—यह दुकान कहीं इधर उधर से झटक लाए हो। (२) लोगों से। दूसरों से। जैसे—(क) जब तक इधर उधर से काम चले, तब तक पैसा क्यों खोना लें। (ख) उसे इधर उधर से भोजन मिल ही जाता है, वह रसोई क्यों बनावे। इधर का उधर होना = (१) उलट पुलट होना। गड़बड़ होना। बिगड़ना। जैसे,—इस में सब कागज-पत्र इधर उधर हो गए। (२) प्रबंधयुक्त होना। ठीक-ठिकाने होना। जैसे,—महीनों से इधर उधर हो रहा है देखें रुपया कब मिलता है। (३) मर जाना। तितर बितर होना। जैसे,—घर के आधे ही सब लोग इधर उधर हो गए इधर का उधर करना = उलट पलट देना। अस्तव्यस्त करना। क्रम बिगाड़ना। इधर का उधर होना = उलट जाना। विपर्यय होना। विपरीत होना। जैसे,—देखते देखते सारा मामला इधर का उधर हो गया। इधर या उधर होना = परस्पर विरुद्ध दो संभावित घटनाओं में से (जैसे—जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—जज के यहाँ

मुकदमा हो रहा है, दो चार दिन मे इधर या उधर हो जायगा। **इधर से उधर फिरना** = चारो ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। **न इधर का होना न उधर का** = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष मे न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे, अत मे न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यो में से किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे, पर अत मे न इधर के हुए न उधर के।

इध्म—सज्ञा पु० [स०] १ काठ। लकडी। २. यज्ञ की समिधा जो प्राय पलाश या आम की होती है।

यौ०—**इध्मजिह्व** = अग्नि। **इध्मवाह** = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इध्मपरिवासन—सज्ञा पुं० [सं०] लकडी की चैली या टुकडा [को०]।

इध्मप्रवश्चन—सज्ञा पु० [स०] कुल्हाडी। टाँगी [को०]।

इध्मभृति—वि० [स०] ईंधन या लकडी लानेवाला [को०]।

इन[1]—सर्व० [हिं०] 'इस' का बहुवचन।

इन[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ प्रभु। स्वामी। ३ राजा। नरेश (को०)। ४ हस्त नाम का नक्षत्र [को०]।

इन[3]—वि० १ योग्य। शक्त। क्षम। २ बहादुर। ताकतवर। दृढ। ३. गौरवपूर्ण [को०]।

इनआम—सज्ञा पु० [अ० इन आम] दे० 'इनाम'। उ०—इन लोगो को एक एक जोडा दुशाला इनआम दो।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५४२।

इनकम—सज्ञा स्त्री० [अ०] आय। आमदनी। अर्थागम।

यौ०—**इनकम टैक्स**।

इनकमटैक्स—सज्ञा पु० [अ०] आदमी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इनकलाब—सज्ञा पु० [अ० इनक़लाब] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानो से था जो हमने वो आँख से इनकलाब देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६९२। २. क्राति। राज्यपरिवर्तन।

यौ०—**इनकलाब जिंदाबाद** = क्राति चिरजीवी हो। **इनकलाब हुकूमत** = राज्यक्राति। राज्य सबधी परिवर्तन।

इनकलाबी—वि० [अ० इनकलाबी] क्राति या परिवर्तन लानेवाला।

इनकात—सज्ञा पु० [स० इनकान्त] सूर्यकात मणि [को०]।

इनकार—सज्ञा पुं० [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामजूरी। नही करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इनकारी[1]—वि० [अ०] इनकार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [को०]।

इनकारी[2]—सज्ञा स्त्री० इनकार या अस्वीकार की स्थिति।

इनकिशाफ—सज्ञा पुं० [अ० इनकिशाफ़] १ गवेषणा। अनुसधान। २. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [को०]।

इनकिसार—सज्ञा पु० [अ०] खाकसारी। नम्रता। विनय [को०]।

इनफार्मर—सज्ञा पुं० [अ० इनफ़ार्मर] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइदा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनफिकाक—सज्ञा पु० [अ० इनफ़िकाक] १. रेहन का छुड़ाना। बधक छुडाना। २ मुक्त होना। छूटना (को०)। ३ अलग अलग होना (को०)।

यौ०—इनफिकाक रेहन।

इनफिसाल—सज्ञा पुं० [अ० इनफिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [को०]।

इनफ्लुएजा—सज्ञा पुं० [अ० इनफ्लुएजा] सरदी का बुखार जिसमे सिर भारी रहता है, नाक बहा करती है और हरारत रहती है।

इनसभ—सज्ञा पुं० [स०] राजसभा। शाही दरबार [को०]।

इनसान—सज्ञा पुं० [अ०] १ मनुष्य। आदमी। २ सभ्य। सज्जन [को०]।

इनसानियत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। आदमीयत। २ बुद्धिमानी। बुद्धि। शऊर। ३ भलमनसी। सज्जनता। मुरव्वत।

इनसानी—वि० [अ० इनसान + फा० (प्रत्य०)] १ मानवीय। मानव सबधी। २ सज्जनोचित [को०]।

इनसानीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'इनसानियत' [को०]।

इनसाफ—सज्ञा पुं० [अ० इन्साफ़] दे० 'इसाफ'। उ०—माँ और भाई मालिक मे इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३४९।

इनसालवट, इनसालवेंट—वि० [अ०] वह व्यापारी जो व्यापार मे घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इनसालवेंट होने की दरखास्त देनी पडेगी।—श्री निवास ग्र०, पृ० ३८१।

इनसिदाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यौ०—**इनसिदादे जुर्म** = अपराधो का रुकना। अपराधो का निवारण। खात्मा [को०]।

इनस्टिट्यूशन—सज्ञा पुं० [अ० इन्स्टिट्यूशन] सस्था। समाज। मडल।

इनहिदाम—सज्ञा पुं० [अ०] १ ढहना। गिरना। २. ध्वस [को०]।

इनहिसार—सज्ञा पुं० [अ०] निर्भरता। दारोमदार [को०]।

इनान—सज्ञा पुं० [अ०] बल्गा। बाग। लगाम [को०]।

यौ०—**इनाने हुकूमत** = शासन की बागडोर। शासनसूत्र।

इनानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष। वटपत्री [को०]।

इनाम—सज्ञा पुं० [अ० इनआम] १ पुरस्कार। बखशिश। उपहार। २ माफी जमीन।

यौ०—**इनाम इकराम** = इनाम जो कृपापूर्वक या सेवा से प्रसन्न होकर दिया जाय। **इनामदार** = इनाम प्राप्त करनेवाला।

इनायत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। उ०—इनायत है तुम पे यह सर्कार की। तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी।—कविता को०, भा० ३, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—रखना।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना। जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए। २ रहने देना। बाज रखना। वंचित रखना (व्यंग्य)। जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता।

इनारा†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इँदारा'।

इनारुन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'।

इनारू—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ०—मीठा जिसमें जानते थे वह इनारू का फल था।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०५।

इनेगिने—वि० [हिं० इने=गिने की अनुच्व० + गिनना] १. कतिपय। कुछ। चंद। थोड़े से। २ चुने चुनाए। गिने गिनाए। जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं।

इनोदय—संज्ञा पु० [सं०] सूर्योदय [को०]।

इन्जिन—संज्ञा पुं० [हिं० इंजन] दे० 'इंजन'। उ०—इच्छा कर्म सजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है।—श्यामा०, पृ० ११४।

इन्टरनैशनल—वि० [अं०] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय'। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इंटरमीडिएट—वि० [अ०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे,—इन्टरमीडिएट क्लास उच्चतर माध्यमिक कक्षा।

इन्टरव्यू—संज्ञा पु० [अ०] १ व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता प० मोतीलाल नेहरू का इंटरव्यू किया था। २ परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के समुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

३ आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्तालाप। जैसे,—समाचार पत्रों में एक संवाददाता और मालवीयजी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्नर†—संज्ञा पु० [सं० अनीर = बिना जल का] पेउस (१० दिन के भीतर ब्याई हुई गाय का दूध) में गुड़, सोंठ, चिरौंजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है। इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं।

इन्यामⓊ†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इनाम'। उ०—राजमती इन्याम दी। मढी है थानीक चापानेर।—वी० रासो, पृ० ९५।

इन्वेका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इल्वला नाम का पाँच तारों का समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है।

इन्वायस—संज्ञा पुं० [अ०] १ व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवौती। २ चालान का कागज।

इन्श्योरेंस—संज्ञा पुं० [अ० इन्श्योरेंस] दे० 'बीमा'। जैसे—लाइफ इन्श्योरेंस, जीवनबीमा।

इन्स—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'इनसान'। उ०—बजुज खालिक जिन, इन्स व बशर, उनकी होनहारी की नई किस खबर।—दक्खिनी०, पृ० ३७४।

इन्साइक्लोपीडिया—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'विश्वकोश'।

इन्साइक्लोपीडियाब्रिटानिका—संज्ञा पुं० [अ०] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश। उ०—न एतबार हो तो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खोलकर देख लीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१४।

इन्सोलिन—संज्ञा स्त्री० [अ०] मधुमेह रोकने की दवा। उ०—सिर्फ एक बार शिमला में इन्सोलिन की सुई लगाई थी।—किन्नर०, पृ० १५।

इन्हⓊ†—सर्व० [हिं०] दे० 'इन'। उ०—इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।—मानस, १।८५।

इन्हनⓊ—संज्ञा पु० [स० इन्धन] दे० 'इंधन'। उ०—ज्ञान अगिन तामें दियो विषय इन्हन जरि जाय।—भीखा श०, पृ० १००।

इफतरा—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तिरह्] १ मिथ्या आरोप। तोहमत। २ व्यर्थ की बात। उ०—वेद कितेब इफतरा भाई दिल का फिकिर न जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १९७।

यौ०—इफतरा परदाज = कलंक लगानेवाला। तोहमत लगानेवाला।

इफतार—संज्ञा पु० [अ० इफ्तार] रोजा खोलना [को०]।

इफतारी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्तारी] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [को०]।

इफरात—संज्ञा स्त्री० [अ० इफरात] अधिकता। ज्यादती। अधिकाई। कसरत। बहुतायत।

इफलास—संज्ञा पुं० [अ० इफ्लास] मुफलिसी। तंगदस्ती। गरीबी। दरिद्रता। आवश्यकता। उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया। जो दौलत से करते हैं नफरत जियादा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६००।

इफलासी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्लासी] दे० 'इफलास'।

इफाकत—संज्ञा पुं० [अ० इफाकत] १. रोगमुक्ति। २ रोग में सुधार होना। स्वास्थ्यलाभ करना [को०]।

इवⓊ—अव्य [हिं०] दे० 'अब'। उ०—इव तो मोहि लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई।—दादू० पृ० ४७०।

इवतदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] दे० 'इब्तिदा'। उ०—जो औव्वल में पैदायश इवतदा, परम आतमा से हुई यह सदा।—कबीर म०, पृ० ३८६।

इवन—संज्ञा पुं० [अ० इब्न] पुत्र। उ०—तेहि के कोख कीन्ह अवतरा। यूसुफ इवन अमीन दुई वारा।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४।

इवरत—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रत] १ विचित्रता। अद्भुत कार्य। २ चेतावनी। शिक्षा। नसीहत [को०]।

यौ०—इवरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला। शिक्षाप्रद। **इवरत आमेज** = अद्भुत। अद्वितीय। अनोखा।

इवरानी[1]—संज्ञा पुं० [अ० इब्रानी] इब्र हीम नामक पैगंबर के वंशज। यहूदी।

इवरानी[2]—संज्ञा स्त्री० पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा।

इवरानी[3]—वि० यहूद या फिलस्तीन देश का। उस देश से संबंधित।

इवरायनामा—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तबरदार हो। त्यागपत्र।

इबराहीम—संज्ञा पुं० [अ० इब्राहीम] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।—उ०—नूह की दसवीं पीढी मे इबराहीम उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ५२।

इबरी—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रानी का संक्षिप्त रूप] दे० 'इबरानी'। उ०—इबरी औ अरबी सुर बानी। पारस औ तुरकी मिसरानी।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस—संज्ञा पुं० [अ० इब्लीस] शैतान। उ०—खडग दीन्ह उन्ह जाइ कहँ देखि डरै इबलीस।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक तरह का कंबल। २ बडा चोगा [को०]।

इबादत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पूजा। आराधना। उ०—उन्हे शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँउनके मुँह से ठुमरियाँ होकर।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२२।

यौ०—इबादतखाना।

इबादतखाना—संज्ञा पुं० [अ० इबादत+फ़ा० खानह] पूजा करने का स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इबारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। मजमून। उ०—उसके आसपास फारसी मे बहुत सी इबारत लिखी थी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १३०। २. लेखशैली। वाक्यरचना। उ०—बस इबारत हो चुकी मतलब प आया चाहिए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ००।

यौ०—इबारत आराई=आलंकारिक शैली।

इबारती—वि० [अ० इबारत फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो इबारत मे हो। इबारतसबधी।

यौ०—इबारती सवाल=वह हिसाब जिसमे राशीकृत अको के सबध मे कुछ पूछा जाय।

इब्तदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] आरभ। शुरूआत। उ०—सच य है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया। इब्तदा डाढ़ी से की औ इंतहा मे मूँछ ली।—कविता को०, भा० ४, पृ०६२४।

इब्तदाई—वि० [अ० इब्तिदह् + फ़ा० ई (प्रत्य०)] आरभिक।

इब्तिदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] १. आरभ। आदि। शुरू। उ०—इब्तिदा ही मे मर गए सब यार। इश्क की कौन इतहा लाया।—कविता को०, भा० ४, पृ० १३३। २ जन्म। पैदाइस। ३ निकास। उठान।

इब्न—संज्ञा पुं० [अ०] पुत्र। बेटा। लडका। उ०—ये फरजद दो उमर इब्न खत्ताब।—दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इबराहीम'।

इब्राहीमी—संज्ञा पु० [अ०] एक सिक्का जो इब्राहीम लोदी के वक्त मे जारी हुआ था।

इभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अभी या इभ्या] हाथी। उ०—राधे तेरे रूप की अधिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पगु भए विधना आन बनाइ।—सूर०, १०। २७७६।

इभ[2]—क्रि० वि० [स० इव] इस प्रकार। ऐसे (डिं०)।

यौ०—इभ आनन, इभानन=गणेश। इभकेशर=नागकेशर। इभगधा=विषैले फलवाला एक पौधा। इभदता=एक प्रकार का पौधा। इभपोटा=अल्पवयस्का हथिनी। इभपोत=कम वय का हाथी। इभभर—हाथियो का झुंड। इभयुवति=मादा हाथी। हथिनी।

इभकर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुंभ—संज्ञा पु० [सं० इभकुम्भ] हाथी का मस्तक।

इभानमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]१ विदग्धता। चातुर्य। बुद्धिमत्ता। २. भाँग [को०]।

इभपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ महावत। २ हाथी रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

इभमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

इभया—संज्ञा पु० [स०] स्वर्णक्षीरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी—संज्ञा स्त्री० [स०] हथिनी [को०]।

इभोषणा—संज्ञा स्त्री० [स०] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य[1]—वि० [स०] १. जिसके पास हाथी हो। २ धनवान्। धनी।

यौ०—इभ्यपुत्र=धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य[2]—संज्ञा पुं० १. राजा। २ हाथीवान। महावत। ३ शत्रु।

इभ्यक—वि० [स०] संपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या—संज्ञा स्त्री० [स०] १ हथिनी। सलई का पेड।

इम—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इमि'। उ०—(क) निधरक भई कहति इम लहिए। सा परिकिया लच्छिता कहिए।—नददास ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मगलाचार इम नाशत विघ्न अनत।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ४।

इमकान—संज्ञा पु० [अ० इम्कान] १ संभावना। २ ताकत। मकदूर। बस। काबू। जैसे,—हमने अपने इमकान भर कोशिश कर दी।

इमकानात—संज्ञा पु० [अ० इम्कान का बहु० व०] संभावनाएँ। उ०—मेरे दिमाग के उडने के ज्यादा इमकानात हैं।—दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति (को०)।

इमकानी—वि० [अ० इम्कानी] संभावित [को०]।

इमकोस—संज्ञा पुं० [सं० कोश] तलवार का म्यान।—(डिं०)।

इमचार—संज्ञा पुं० [सं० चर १] गुप्तचर। गुप्त दूत।—(डिं०)।

इमदाद—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद का बहु व०] मदद। सहायता। उ०—दाग कोताही न कर यह वक्त है इमदाद का—शेर०, भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी—वि० [अ० इमदाद] १ मदद पानेवाला। जैसे,—इमदादी मदरसा=वह मदरसा जिसे सरकार से कुछ द्रव्य की सहायता मिलती हो। २ इमदाद या सहायता के रूप मे प्राप्त होनेवाला।

इमन—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'ईमन'। उ०—मीड़ मधुरतम विधुर इमन की।—गीतगुंज, पृ० ६२।

इमरती—संज्ञा स्त्री० [स० अमृत] एक मिठाई।

विशेष—उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चौरेठे को तीन चार तह कपडे मे, जिसके बीच एक छोटा सा छेद रहता है, रखकर खौलते हुए घी की तई मे घुमा घुमाकर टपकाते हैं, जिससे कगन के आकार की बत्तियाँ बनती जाती हैं। घी मे तल लेने पर इनको चीनी के शीरे मे डुबाते हैं।

इमरतीदार—वि० [हिं० इमरती+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमे इमरती की भाँति गोल गोल घेरे या बल पडे हो। जैसे,—इमरतीदार कगन।

इमरित—सज्ञा पु० [स० अमृत दे० 'अमृत']। उ०—लडिका बाका महा हरामी इमरित मे विष घोरै।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

इमला—सज्ञा पुं० [अ० इमलाह्] १ वर्तनी। शुद्ध लिखावट। २ बताई हुई इबारत को सही लिखना [को०]।

यौ०—इमलानवीस=वर्तनी के अनुसार या शुद्ध लिखनेवाला।

इमलाक—सज्ञा स्त्री० [अ० मुल्क का बहु० ब०] सपत्ति। जायदाद [को०]।

इमली—सज्ञा स्त्री० [स० अम्ल+हिं० ई (प्रत्य०)] १. एक बडा पेड जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती हैं। इसमे लबी लबी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कटा छिलका होता है। छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। २ इस पेड़ की फली।

मुहा०—इमली घोंटना=विवाह के समय लडके या लडकी का मामा उसको आम्रपल्लव दाँत से खोटाता है और यथाशक्ति कुछ दक्षिणा भी बाँटता है। इसी रीति को 'इमली घोटना' कहते हैं।

इमसाक—सज्ञा पुं० [अ० इम्साक] १ रुकावट। २. आकर्षण। खिचाव। ३. कजूसी [को०]।

इमसाल—सज्ञा पुं० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०]।

इमाम—सज्ञा पु० [अ०] [वि० इमामी] १ अगुआ। २. पुरोहित। मुसलमानो के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य। ३ अली के बेटो की उपाधि। ४ मुसलमानो की तसबीह या माला का सुमेर।

इमामजिस्ता—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इमामदस्ता'। उ०—यह तन कीजै इमामजिस्ता खमीर सबै करि डारिया रे।—स० दरिया०, पृ० ६६।

इमामत—सज्ञा स्त्री० [अ०] इमाम का पद। पेशवाई [को०]।

इमामदस्ता—सज्ञा पु० [फा० हावन+दस्तह्] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल बट्टा।

इमामा—सज्ञा पु० [अ० अम्मामह्] एक प्रकार की बडी पगडी। अमामा।

इमामबाडा—सज्ञा पु० [अ० इमाम+फा० बारह, हिं० बाडा] वह हाता जिसमे शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते है।

इमारत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ बडा और पक्का मकान। २ वैभव। शानशौकत। उ०—आप मे हिंदोस्तानी इमारत पूरे तौर पर मौजूद है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

इमारती—वि० [फा०] मकान का। मकान से सबधित। जैसे,—इमारती सामान।

इमि—क्रि० वि० [स० एवम्] इस प्रकार। इस तरह। ऐसे। उ०—होहि प्रेम बस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहि।—मानस, २। १२१।

इमोशन—संज्ञा पुं० [अ०] १. संवेग (मनोवै०)। २ भाव। मनोविकार। उ०—अँगरेजी मे भाव को इमोशन और फारसी मे जजबा कहते हैं।—रस क०, पृ० ३६।

इम्तहान—सज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा। जाँच। 'इम्तिहान'। उ०—साफ कब इम्तहान लेते हैं। वह तो दम दे के जान लेते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७२।

इम्तिनाई—वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०]।

इम्तिनाय—सज्ञा पु० [अ०] निषेध। रोग मनाही [को०]।

इम्तियाज—सज्ञा पुं० [अ० इम्तियाज़] १. भेद। अतर। २ विवेक। गुण दोष की पहचान। उ०—देख इकबार चश्म अपना करके बाज। गर तुजे किस बात का है इम्तियाज।—दक्खिनी०, पृ० २०४।

इम्तिहान—सज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इम्तहान'। २ परख (को०)।

इम्पीरियल—वि० [अ०] साम्राज्य या सम्राट् सबंधी। राजकीय। शाही। जैसे,—इम्पीरियल सर्विस=राजकीय नौकरी।

इम्पीरियलगवर्नमेंट—सज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार। बडी सरकार। जैसे,—भारत में अग्रेजी सरकार को भी इपीरियल गवर्नमेंट अर्थात् बडी सरकार कहते थे।

इम्पीरियलप्रेफरेन्स—सज्ञा पुं० [अ० इम्पीरिल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओ पर उसके अधीनस्थ देश मे इस प्रकार आयात निर्यातकर बैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशो के मुकाबले मे सस्ता माल बेच सके। साम्राज्य की बनी वस्तुओ को प्रशस्तता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स—सज्ञा स्त्री० [अ०] अग्रेजी शासनकाल मे वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिसकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते थे। आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी।

इम्पोर्ट—सज्ञा पु० [अ०] पुं० 'आयात'। जैसे,—इम्पोर्ट ड्यूटी=आयातकर।

इम्रित—सज्ञा पु० [स० अमृत] दे० 'अमृत'।

इयत्—वि० [स०] इतने विस्तारवाला। इतना बडा [को०]।

इयत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा। हद। परिमिति। उ०—तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूब अच्छा प्रमाण दिया।—कालिदास, पृ० ६७।

इयार†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यार'। उ०—जग मे जीवन थोरा थोरा वो इयार जी।—स० दरिया, पृ० १६८।

इरखा†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इर्षा'। उ०—सौतिन्ह कर इरखा नहिं करना। साईं सग सदा जिय डरना।—चित्रा०, पृ० २२९।

इरखाना—क्रि० अ० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना। डाह करना। उ०—उनीदति अलसाति सोवत सधीर चौंकि चाहि चित अमित सगर्व इरखानि है।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४१।

इरण—सज्ञा पुं० [स०] मरुभूमि। मरुस्थल [को०]।

इरम्मद१—वि० [स०] १ पीने मे रुचि रखनेवाला। २ अग्नि का विशेषण [को०]।

इरम्मद२—सज्ञा पुं० १. मेघज्योति। विद्युत। २. वडवाग्नि [को०]।

इरशाद—सज्ञा पु० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद'। उ०—देखते ही मुझे महफिल

मे यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७७ ।

इरषा(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—इद्र देखि इरषा मन लायौ । करि कै क्रोध न जल बरसायौ।—सूर०,५ २।

इरषित(पु)—वि० [स० ईर्षित] दे० 'ईर्षित' ।

इरसाल—सज्ञा पुं० [अ० इर्साल] १ प्रेषण । २. उपहार । भेंट ।

इरसी—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए की धुरी ।

इरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की वह स्त्री जिससे बृहस्पति या उद्भिज उत्पन्न हुए । २ भूमि । पृथ्वी । ३. वाणी । वाचा । ४ जल । ५ अन्न । ६ मदिरा । शराब ।

यौ०—इराक्षीर=क्षीरसागर । इराचर=(१) ओला । करक । (२) जलचर । (३) भूमि मे उत्पन्न ।

इराज—सज्ञा पु० [सं०] कामदेव [को०] ।

इराक—सज्ञा पु० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश ।

इराकी[1]—वि० [अ०] इराक देश का ।

इराकी[2]—सज्ञा पुं० १ घोडो की एक जाति । उ०—सुमडे घुमडे उमडे इराकी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८० । २. इराक देश का निवासी ।

इरादतन—अ० [अ०] इरादा करके । विचारपूर्वक । जानबूझकर [को०] ।

इरादा—सज्ञा पुं० [अ० इरादह्] विचार । सकल्प । उ०—बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।—वेला, पृ०, ८३ ।

इरावत[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक पर्वत का नाम । २ एक सर्प का नाम । ३ अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था । इसका नाम वभ्रुवाहन था । ४. समुद्र । ५. मेघ ।

इरावत्[2]—वि० तृप्तिदायक । सुखद [को०] ।

इरावती—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप ऋषि की भद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ । २ ब्रह्म देश की एक नदी । ३ पटपत्री । पथरचट ।

इरिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

इरिण—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊसर । ईरिण [को०] ।

इरिमेद—सज्ञा पुं० [सं०] अरिमेदे । विट्खदिर [को०] ।

इरिविल्ला, इरिवेल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सन्निपात से उत्पन्न सिर की फुसी ।

इरिषा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर बाल । कछु इरिषा कछु मद लिए सो विव्योक रसाल ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४८ ।

इरेश—सज्ञा पुं० [स०] १. विष्णु । २ गणेश । ३. वरुण । ४. ब्राह्मण । ५. सम्राट् [को०] ।

इर्गड—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० इर्गला] दे० 'अर्गल' ।

इर्तकाब—सज्ञा पुं० [अ० इर्तिकाब] १ पार करना । २. कोई प्रारब्ध करना ।

यौ०—इर्तकाबेजुर्म=अपराध करना ।

इर्द गिर्द—क्रि० वि० [अनु० इर्द+फा० गिर्द] १. चारो ओर । चारो तरफ । २. आसपास । इधर उधर । अगल बगल ।

इर्वारु, इर्वालु[1]—वि० [स०] हिंसक [को०] ।

इर्वारु, इर्वालु[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार की ककडी [को०] ।

यौ०—इर्वारुशक्तिका=एक प्रकार का खरबूजा ।

इर्वारुक—सज्ञा पुं० [स०] मांद के अतर्गत रहनेवाला जानवर [को०] ।

इर्शाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. आज्ञा । हुक्म । उ०—मूँ आँख उनको फेरके इशारा पलट गई । गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया ।—कविता को०, भा० ४, पृ०, ५४८ । २ पथप्रदर्शन ।

इर्षना(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रबल इच्छा । उ०—छूटी त्रिविध इर्षना गाढी । एक लालसा उर अति बाढी ।—तुलसी (शब्द०) ।

इल[1]—सज्ञा पुं०[स०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो बाह्लीक देश का राजा था ।

इल[2]—सज्ञा स्त्री० [स० इला] पृथिवी । धरती । उ०—राक्षस हनि दाढे इल गह काढे सो थिर माढे निज सेनम् ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

इलजाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्ज़ाम] १. दोष । कलक । अपराध । उ०—मैं इलजाम उनको देता था कुसूर अपना निकल आया ।—शेर०, भा० १, पृ० ४७७ । २ अभियोग । दोषारोपण । उ०—चुप रहेंगे हया से वे कब तक, गुस्सा इलजाम से तो आएगा ।—शेर०, भा० १, पृ० ६६० ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—देना ।

इलता—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानो और पहाडो मे होता है । इसमे बहुत बडे बडे फूल और फल लगते है । इसके छोटे छोटे कल्लो से बहुत अच्छा कागज बनता है ।

इलम(पु)—सज्ञा पु० [अ० इल्म] दे० 'इल्म' । उ०—दादू अलिफ एक अल्ला का जे पढि जाणै कोई । कुरान कतेबाँ इलम सब पढि करि पूरा होई ।—दादू०, पृ० ४७ ।

इलमास—सज्ञा पुं० [अ०] १ हीरा । २ शीशा [को०] ।

इलय—वि० [स०] गतिविहीन [को०] ।

इलव—सज्ञा पुं० [स०] १ हलवाहा । २. गरीब आदमी । ३ किसान । कर्षक ।

इलविला—सज्ञा स्त्री० [स०] १. विश्रवा की स्त्री, तृणबिंदु की कन्या और कुबेर की माता का नाम । २ पुलस्त्य की स्त्री ।

इलहाक—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाक़] १ सबध । मिलना । संयोजन । २ किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य ।

इलहाकदार—सज्ञा पु० [अ० इल्हाक़+फा० दार] वह मनुष्य जिसके साथ बदोबस्त के वक्त मालगुजारी अदा करने का इकरारनामा हो । नवरदार या लवरदार ।

इलहाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाम] ईश्वर का शब्द । देववाणी । ईश्वरीय प्रेरणा । आत्मा की आवाज । आत्मिक दृष्टि ।

इलहामी—वि० [अ० इल्हामी] जिसको इलहाम हुआ हो । ईश्वर द्वारा प्रेरित । अतरात्मा मे स्फुरित ज्ञान से सबद्ध । [को०] ।

यौ०—इलहामी किताब=ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक । धर्मग्रंथ ।

इला–सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ सरस्वती। वाणी। ४. बुद्धिमती स्त्री। ५ गौ। धेनु। ६ वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था। इडा। ७ राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम। ८ कर्दम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के शाप से स्त्री हो गया था। ९. एक की सख्या।

इलाका—सज्ञा पुं० [अ० इलाकः] १ सबध। लगाव। उ०–कैधौ कछू राखैं राकापति सो इलाका भारी भूमि की सलाका कै पताका पुन्यगान की।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६२। २ एक से अधिक मौजे की जमींदारी। राज्य। रियासत। उ०—यह दानपत्र युधिष्ठिर के सवत् १११ का है जो इलाका मैसूर मे मिला है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १३५।

यौ०—इलाकेदार।

इलाचा—सज्ञा पुं० [देश०] एक कपडा जो रेशम और सूत मिलाकर बुना जाता है।

इलाज—सज्ञा पुं० [अ०] १ दवा। औषध। २. चिकित्सा। ३ निवारण का उपाय, युक्ति या तदबीर। उ०–उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।—प० सप्तक, पृ० ३३०।

इलादा Ⓟ–वि० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ० शब्द पढ क्या सुनाता है भेद सबसे इलादा है। सत तुलसी०, पृ० ३६।

इलापत्र—सज्ञा पुं० [स०] एक नाग का नाम।

इलाम Ⓟ–सज्ञा पुं० [अ० ऐलान] १ इत्तलानामा। २. हुक्म। आज्ञा। उ०–ठान्यो न सलाम, मान्यो माहि को इलाम, धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा।—भूषण ग्र०, पृ० ५८।

इलायची–सज्ञा स्त्री० [स० एला+ची, फा० 'च' (प्रत्य०)] एक सदाबहार पेड जिसकी शाखाएँ खडी और चार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं। यह दक्षिण मे कनारा, मैसूर, कुर्ग तिरुवाकुर और मदुरा आदि स्थानो के पहाडो जगलो मे आप से आप होता है। यह दक्षिण मे लगाया भी बहुत जाता है।

विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बडी)। सफेद इलायची दक्षिण मे होती है और काली इलायची या बडी इलायची नैपाल मे होती है, जिसे बँगला इलायची भी कहते हैं। बडी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनो के मसालो मे दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीजो मे पडती है और पान के साथ खाई जाती है। सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं–मलाबार की छोटी और मैसूर की बडी। मलाबारी इलायची की पत्तियाँ मैसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूसरी ओर सफद सफेद बारीक रोईं होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। मैसूर इलायची की पत्तियाँ मलाबारी से बडी होती हैं और उनमे रोईं नही होती। इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठडी हवा पाकर खूब बढती है। इसे धूप और पानी दोनो से बचाना पडता है। क्वार कार्तिक में यह बोई जाती है अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने मे जब पौधे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेडो के नीचे लगा देते हैं और पत्ती की खाद देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बैसाख में फूलने लगता है और असाढ सावन तक उसमें डोडी लगती है। क्वार कार्तिक मे फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या घौद तोड लिए जाते है और दो तीन दिन सुखाकर फलो को मलकर अलग कर लेते हैं। एक पेड मे पाव भर लगभग इलायची निकलती है। इसका पेड १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रातो मे जाती थी, इसी से इसे गुजराती इलायची भी कहते हैं।

यौ०—इलायची डोरा=इलायची की डोडी।

इलायचीदाना—सज्ञा पुं० [हिं० इलायची+फा० दाना] १. इलायची का बीया या दाना। २ एक प्रकार का मिठाई। चीनी पागा हुआ इलायची या पोस्ते का दाना।

इलायची पंडू†—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जगली फल।

इलावर्त Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इलावृत्त'।

इलावृत, इलावृत्त—सज्ञा पुं० [सं०] जबू द्वीप के नौ खडो मे से एक विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेरु पर्वत को घेरे हुए है। इसके उत्तर मे नील, दक्षिण मे निषध पश्चिम मे माल्यवान् और पूर्व मे गधमादन पर्वत है।

इलाही¹—सज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर। परमात्मा। भगवान्। खुदा। उ०—यह रग कौन रगे तेरे बिना इलाही।—कबिता कौ०, भा० ४, पृ० ३१३।

इलाही²—वि० ईश्वरसबधी। ईश्वरीय। जैसे,—फजाए इलाही। उ०—कौन को कलेऊ धौं करैया भयो कान्ह अरु कौन धौं परैया भयो गजब इलाही है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २२८।

इलाहीखर्च—सज्ञा पुं० [अ० इलाही+फा० खर्च] फजूल खर्च। अधिक खर्च। बेहिसाब खर्च। अपव्य।

इलाहीगज—सज्ञा पुं० [अ० इलाही+फा० गज] अकबर का चलाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अगुल (३३¾ इच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम मे आता है।

इलाहीमुहर¹–वि० [अ० इलाही+फा० मुहर] ज्यो का त्यो। अछूता। खालिस।

इलाहीमुहर²—सज्ञा स्त्री० अमानत। धरोहर। न्यास।

इलाहीरात—सज्ञा स्त्री० [अ०] रतजगे की रात।

इलाहीसन्—सज्ञा पुं० [अ० इलाही+हिं० सन] अकबर बादशाह का चलाया एक सन् या सवत्।

इलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

इली—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलवार। कटार [को०]।

इलीश, इलीष—सज्ञा स्त्री० [सं०] हिलसा मछली।

इलेक्ट्रिक—वि० [अ०] बिजली सबधी। बिजली का।

यौ०—इलेक्ट्रिक पावर=बिजली की शक्ति। इलेक्ट्रिक लाइट=बिजली की रोशनी।

इलेक्ट्रिकल—वि० [अ०] बिजली सबधी [को०]।

इलेक्ट्रिसिटी—सज्ञा स्त्री० [अ०] बिजली। विद्युत् [को०]।

इलेक्ट्रो¹–सज्ञा पुं० [अ०] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्रेस।

इलेक्ट्रो[2]—सज्ञा पु० तसवीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

यौ०—इलेक्ट्रो टाइप = बिजली द्वारा किया जानेवाला अकन या खुदाई का कार्य। इलेक्ट्रोपेथी = बिजली के तरगसचार द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करने की प्रक्रिया।

इलेक्ट्रोन—सज्ञा पु० [अ०] परमाणु (ऐटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिसमें विद्युत् का ऋणावेश होता है।

इल्जाम—सज्ञा पु० [अ० इल्ज़ाम] आरोप। दोषारोपण। उ०—इल्जाम यह रखा है खिलवत मे कहा होता।—शेर०, भा० १, पृ० ६९५।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

इल्तजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह] दे० 'इल्तिजा'। उ०—कही वह आके मिटा दे न इन्तजार का लुत्फ। कही कबूल न हो जाय इल्तजा मेरी।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५।

इल्तमास—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिमास] अनुरोध। प्रार्थना। उ०—(क) सुबह तक शमा सर को धुनती रही। क्या पतगे ने इल्तमास किया।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२। (ख) मेरी आप से यही इल्तमास है कि आप उसकी वजारत कबूल करें।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

इल्तिजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह्] १ निवेदन। प्रार्थना। २ मिन्नत। खुशामद।

क्रि० प्र०—करना।

इल्तिफात—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिफात] १ कृपा। दया। २ ध्यान देना [को०]।

इल्तिवास—सज्ञा पु० [अ०] समानता। सादृश्य [को०]।

इल्तिवा—सज्ञा पु० [अ०] [वि० मुल्तवी] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना। तारीख टलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अदालती कार्रवाइयो मे अधिक होता है।

इल्म—सज्ञा पु० [अ०] [वि० इल्मी] विद्या। ज्ञान। जानकारी। उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२४।

यौ०—इल्मेअदब = साहित्यशास्त्र। इल्मेइलाही = ब्रह्मविद्या, अध्यात्म। इल्मेगैब = परोक्षविज्ञान। इल्मेनुजूम = ज्योतिष विज्ञान।

इल्लत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ रोग। बीमारी। २ बाधा। झझट। जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी। ३ लत। व्यसन। उ०—पापो के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की सहज लतें छूटें।—बेला, पृ० ७९। ४ दोष। अपराध। जैसे,—वह किस इल्लत मे गिरफ्तार हुआ था।

मुहा०—इल्लत पालना = बुरी आदत डाल लेना।

यौ०—इल्लत आफताब = कमल रोग। इल्लत फाइली = निमित्त कारण। इल्लत माद्दी = उपादान कारण।

इल्लल—सज्ञा पु० [स०] एक पक्षी [को०]।

इल्ला[1]—सज्ञा पु० [स० कील] छोटी कडी फुसी जो चमडे के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्ला[2]—अव्य० [अ० इल्लह्] किंतु। लेकिन। पर। उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनो एक तीसरे की रिआया हैं"'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८९।

इल्लिश, इल्लिस—सज्ञा पु० [सं०] इलीश। हिलसा मछली [को०]।

इल्ली—सज्ञा स्त्री० [स० इल्लिका] चींटी आदि के बच्चो का वह पहला रूप जो अडे से निकलने के उपरात तुरत होता है।

इल्वल—सज्ञा पु० [स०] १ एक दैत्य या असुर का नाम।

विशेष—इसका एक नाम आतापि भी था। यह अपने छोटे भाई वातापि को भेडा बनाकर ब्राह्मणो को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था। तब वह ब्राह्मण का पेट फाडकर निकल आता था। इन दोनो को अगस्त्य मुनि खाकर पचा गए थे।

२ ईल या बाम मछली।

इल्वला—सज्ञा पु० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र के सिर पर रहनेवाले पाँच तारो का समूह।

इव—अव्य० [सं०] उपमावाचक शब्द। समान। नाईं। तरह। सदृश। तुल्य। जैसे। उ०—निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई।—मानस १। ५८।

इवापोरेशन—सज्ञा पु० [अ० इवॅपोरेशन] गरमी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप मे परिवर्तित होना। भाप बनकर उडना। वाष्पन। वाष्पीभवन। वाष्पीकरण। उच्छोषण।

इशरत—सज्ञा स्त्री० [अ०] सुख। चैन। आराम। भोग विलास। उ०—फिर वह चर्चे हो फिर वही बातें। दिन हो इशरत के, ऐश की रातें।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७।

यौ०—ऐश व इशरत।

इशरती—वि० [अ० इशरत + ई (प्रत्य०)] आरामतलब। विलासी। उ०—इशरती घर की मुहब्बत का मजा भूल गए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६३३।

इशा—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सध्या। २ रात। ३ रात की नमाज [को०]।

इशारत—सज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा। सकेत। उ०—न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३२५।

इशारा—सज्ञा पु० [अ० इशारह्] १ सैन। सकेत। चेष्टा। उ०—यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई। गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५४८। २. सक्षिप्त कथन। उ०—जो इशारे में काम हो सकता तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने में क्या काम।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७२। ३ बारीक सहारा। सूक्ष्म आधार। जैसे,—एक लकडी के इशारे पर यह सदूक ऊपर टिका है। ४ गुप्त प्रेरणा। जैसे,—इन्ही के इशारे से उसने यह काम किया।

यौ०—इशारेबाजी = इशारा करना।

इशारात—सज्ञा पु० इशारा का बहुवचन दे० इशारा'। उ०—क्या बात कोई उस बुते ऐयार की समझे। बोले है जो इसने तो इशारात कहीं और।—कविता को० भा० ४, पृ० २२३।

इशिका, इशीका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उशीका'।

इश्क—सज्ञा पु० [अ० इश्क्][वि० आशिक, माशूक] मुहब्बत। चाह।

प्रेम। लगन। अनुराग। आसक्ति। उ०—गम बहुत दुनिया मे है पर इश्क का गम और है। है इसी आलम मे लेकिन उनका आलम और है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८।

यौ०—इश्कमजाजी = लौकिक प्रेम। वासनायुक्त प्रेम। इश्कहकीकी = आध्यात्मिक प्रेम। ईश्वर के प्रति प्रेम।

इश्कबाज—वि० [फा० इश्कबाज़] इश्क करनेवाला। प्रेमी। [कौ०]।

इश्कबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्क्+फा० बाजी] प्रेम के चक्कर मे पड़ना। उ०—इश्कबाजी बाजिए शतरज है। चाल नादाँ रह गया दाना चला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४।

इश्कपेचाँ—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं और जिसमे लाल फूल लगते हैं। उ०—(क) दरख्तो को सुखाता है लपटना इश्कपेचाँ का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६४। (ख) अत मे जब वो इश्कपेचे की बेल पर जाकर बैठा तब मुझे उसके पकडने का समय मिला।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३९२।

इश्किया—वि० [अ० इश्कियह्] प्रेमसबधी। शृगारिक।

इश्तहार—संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। नोटिश। जाहिरात। एलान। उ०—शहरो शहरो मुल्को मुल्को मे उन्हीं का इश्तहार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१।

इश्तहारी—वि० [अ०] विज्ञापित। जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [कौ०]।

इश्तियाक—संज्ञा पु० [अ० इश्तियाक] १ शौक। २. इच्छा। अभिलाषा [कौ०]।

इश्तियाल—संज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इश्तियालक'। २ भडकाना। उत्तेजित करना। ३ लौ। लपट [कौ०]।

इश्तियालक—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह सीक जो बत्ती बढाने के लिये दीपक मे पडी रहती है। टहलवी। २ बढ़ावा उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

इश्तिराक—संज्ञा पुं० [अ०] शिकरत। साझेदारी [कौ०]।

इश्तिहा—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्तिहह] १. चाह। अभिलाषा। २ बुभुक्षा। भूख [कौ०]।

इष—संज्ञा पुं० [स०] १ क्वार का महीना। आश्विन। २ बलवान् व्यक्ति।

इषण, इषणा—संज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रबल इच्छा। कामना। ख्वाहिश। वासना।

इषणि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ भेजना। २ अभिलाषा [कौ०]।

इषराया—संज्ञा स्त्री० [स०] उत्कट अभिलाषा। प्रबल इच्छा [कौ०]।

इषना—संज्ञा स्त्री० [स० इषणा] दे० 'इषणा'।

इषव्य—वि० [स०] बाणविद्या मे निपुण [कौ०]।

इषित—वि० [स०] १ चलाया हुआ। २. प्रेषित। ३ उत्तेजित। प्रेरित। ४ तीव्र। प्रचंड [कौ०]।

इषीका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ गाँडर या मूँज के बीच की सीक जिसके ऊपर जीरा या भूसा होता है। २ बाण। तीर। ३. हाथी की आँख का डेला।

इषु—संज्ञा पु० [सं०] १ बाण। तीर। २. क्षेत्रगणित मे वृत्त के अतर्गत जीवा के मध्यबिंदु से परिधि तक खीची हुई सीधी रेखा। दे० 'शर'। ३ पाँच की सख्या।

इषुकार—संज्ञा पु० [स०] बाण बनाने का काम करनेवाला हो [कौ०]।

इषुधर—संज्ञा पु० [सं०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर [कौ०]।

इषुधि—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। तूणीर। तरकश।

इषुधी—संज्ञा पुं० [सं० इषुधि] दे० 'इषुधि'। उ०—नेकु जही दुचितो चित कीन्हो। शूर बडी इषुधी धनु दीन्हो।—केशव (शब्द०)।

इषुच्या—संज्ञा स्त्री० [स०] गिडगिडाना। निवेदन करना [कौ०]।

इषुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] बाण की मार। बाण की पहुँच [कौ०]।

इषुपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का पौधा [कौ०]।

इषुमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष के बराबर लबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है।

इषुमान[1]—वि० [स० इषुमत<इषुमान्] बाण चलानेवाला। तीरदाज। उ०—तब इषुमान प्रधान चलेउ इषुमान ज्ञानधर। देवश्रवा सतान समर पर सान मान हर।—गोपाल (शब्द०)।

इषुमान[2]—संज्ञा पु० वसुदेव का भाई। देवश्रवा का पुत्र।

इषूपल—संज्ञा पु० [सं०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिसमे ककड पत्थर डालकर छोडे जाते थे।

इष्ट[1]—वि० [स०] १ अभिलषित। चाहा हुआ। वाछित। जैसे,—(क) परिश्रम से इष्ट फल की प्राप्ति होती है। (ख) हमे वहाँ जाना इष्ट नही है। २ अभिप्रेत। जैसे,—अधिकार का इष्ट यह नही है। ३ पूजित। ४ अनुकूल। ५ प्रिय।

यौ०—इष्टदेव।

इष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म। इष्टापूर्त। धर्मकार्य। २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है। इष्टदेव। कुलदेव। ३ अधिकार। वश। जैसे,—उसको देवी का इष्ट है। ४. मित्र। दोस्त।

यौ०—इष्टमित्र।

५. पति। ६ रेंड का पेड। ७ ईंट।

इष्टका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ ईंट। यज्ञकुड बनाने की ईंट।

इष्टकाचित—वि० [स०] ईंटो द्वारा निर्मित [कौ०]।

इष्टकाचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंटो की पक्तिबद्ध जोडाई। उ०—इस स्तूप की इष्टकाचिति अपने ढग की अनूठी है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०९।

इष्टकान्यास—संज्ञा पु० [स०] शिलान्यास। नीव रखना [कौ०]।

इष्टकापथ—संज्ञा पुं० [स०] १ सुगठित घास की जड। २ ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [कौ०]।

इष्टकाल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष मे किसी घटना के घटित होने का ठीक समय।

इष्टगध—संज्ञा पुं० [स० इष्टगन्ध] १ सुगधित वस्तु। २. सिकता। बालू [कौ०]।

इष्टजन—संज्ञा पु० [स०] प्रिय व्यक्ति [कौ०]।

इष्टता—संज्ञा स्त्री० [स०] मित्रता। मिताई। दोस्ती।

इष्टदेव–सज्ञा पुं० [सं०] आराध्यदेव। पूज्यदेवता। वह देवता जिनकी पूजा से कामना सिद्ध होती हो। कुलदेवता। उ०–लहै बडाई देवता इष्टदेव जब होइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२६।

इष्टदेवता—सज्ञा पु० [स०] दे० 'इष्टदेव'।

इष्टा—सज्ञा स्त्री० [स०] प्रिया। प्रेमिका [को०]।

इष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] वादी के कथन मे प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी आपत्ति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले। जैसे, वादी ने कहा–जीव ब्रह्म है। प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत की झूठी कल्पना करके झूठा हुआ। वादी—हो, इससे क्या हानि।

इष्टापूर्त्त—सज्ञा पुं० [स०] अग्निहोत्र करना, कुआँ, तालाब खुदाना, बगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म।

विशेष—वेद का पठनपाठन, अतिथिसत्कार और अग्निहोत्र इष्ट कहलाते हैं, और कुआँ, तालाब खुदाना, देवमदिर बनवाना, बगीचा लगाना आदि कर्म इष्टापूर्त्त कहलाते हैं। बडे बडे यज्ञो के बद होने पर इष्टापूर्त्त का प्रचार अधिकता से हुआ है।

इष्टापूर्त्ति–सज्ञा पु० [स०] १ 'इष्टापूर्त्त'। २ काम्य या वाछित की सिद्धि या उपलब्धि।

इष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ इच्छा। अभिलाषा। २ व्याकरण मे भाष्यकार की वह सम्मति जिसके विषय मे सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो। व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो। ३ यज्ञ। ४ हवि। ५ प्राप्ति तथा सिद्धि के निमित्त होनेवाला प्रयत्न। ६ निवेदन। ७ निमत्रण (को०)।

इष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टका' [को०]।

इष्टिपच—सज्ञा पुं० [स०] १ कृपण। कजूस। २ असुर [को०]।

इष्टिपशु—सज्ञा पु० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०]।

इष्टी(यु)–वि० [स० इष्टिन्] इष्टसिद्धि करनेवाला। उ०–इष्टी स्वर्गी बहु मिले हिरनी मिले अनत।–सतवाणी०, भा०१, पृ०१२८।

इष्टु—सज्ञा स्त्री० [स०] इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इष्म[1]—वि० [स०] इच्छुक [को०]।

इष्म[2]—सज्ञा पुं० १. कामदेव। २ वसत ऋतु। ३ गमन [को०]।

इष्य—सज्ञा पुं० [स०] वसत ऋतु।

इष्व—सज्ञा पुं० [स०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

इष्वनीक—सज्ञा पुं० [स०] बाण की अनी। तीर की नोक [को०]।

इष्वसन—सज्ञा पुं० [स०] धनुष [को०]।

इष्वस्त्र—सज्ञा पु० [स०] दे० 'इष्वसन' [को०]।

इष्वास–सज्ञा पु० [स०] १. बाण चलाना। २ धनुष। ३ धनुर्धर। ४ योद्धा [को०]।

इस—सर्व० [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ, प्रसग के अनुसार प्रस्तुत और उल्लेख के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है।

विशेष –जब 'यह' शब्द मे विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते है। जैसे,—इसने, इसको, इससे, इसमे।

इसकदर—सज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकदर बादशाह। अलेक्जेंडर। उ०—नग अमोल अस पाँचो मान समुँद वह दीन्ह। इसकदर नहिं पाई जोरे समुंद जस लीन।—जायसी (शब्द०)।

इसक(यु)—सज्ञा पु० [अ० इश्क] दे० 'इश्क'। उ०–याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप। गजब हियै समझ्यौ न तब अजब इसक सताप।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

इसतरी(यु)†–सज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री, हिं० इस्त्री] दे० 'स्त्री'। उ०–नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत। –सतवाणी०, भा० १, पृ० ५६।

इसनान(यु)†—सज्ञा पु० [स० स्नान, हिं० असनान] दे० 'स्नान'। उ०–बार बार स्नान जेऊ गगा इसनान करैं न कुदेव देव होन न अज्ञान है।–सुदर ग्र० (जी०) भा० १, पृ० १०१।

इसफज—सज्ञा पुं० [अ० स्फज] समुद्र मे एक प्रकार के अत्यत छोटे कीडो के योग से बना हुआ मुलायम रुई की तरह का सजीव पिंड जिसमे बहुत से छेद होते हैं, जिनमे से होकर पानी आता है। मुर्दा बादल। अब्रे मुर्दा।

विशेष—इसफज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है–एक तो सक्रिमाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के सयोग से। इसकी बादामी रग की, रुई के समान मुलायम ठठरी जिसमे बहुत से छेद होते हैं, बाजारो में इसफज के नाम से बिकती है। इसमे पानी सोखने की बडी शक्ति होती है, इसी से लडके इसमे स्लेट पोछने और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

इसपात—सज्ञा पुं० [सं० अयस्पत्र अथवा पुर्त० स्पेडा] एक प्रकार का कार्बन मिश्रित कडा लोहा। फौलाद।

इसपिरिट—सज्ञा स्त्री० [अ० स्पिरिट] १ किसी प्रकार का सत। २. एक प्रकार का खालिस शराब।

इसपेशल[1]—वि० [अ० स्पेशल] विशेष। खास।

इसपेशल[2]—स्त्री० नियत समयो पर चलनेवाली सवारी गाडी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाडी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोडी जाती है।

इसबगोल—संज्ञा पुं० [फा० इस्पगग़ोल, इस्पग़ोल] चिकित्सा कार्य मे प्रयुक्त एक झाडी या पौधा।

विशेष–यह फारस मे बहुत होता है। पजाब और सिंध में भी इसकी झाडियाँ लगाई जाती हैं। इसमे तिल के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और गुलाबी होते हैं। यूनानी चिकित्सा मे इसका व्यवहार अधिक है। यह शीतल, बद्धकारक और रक्तातिसारनाशक है। यह बवासीर, नकसीर आदि रक्तस्राव की बीमारियो मे बहुत फायदा करता है। अतिसार और सूजाक मे भी दिया जाता है।

इसम(यु)—सज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—पुष्पराजप इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

इसमाईल—सज्ञा पुं० [इब०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दासी से उत्पन्न हुआ था। २ सावर तंत्र मे एक योगी का नाम जिसकी आन प्राय मंत्रो मे दी जाती है।

इसमाईली—संज्ञा पु०[इब ०] शीया मुसलमानो की एक शाखा [को०]।

इसरⓊ†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'ईश्वर'।

इसराईल—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब। पैगंबर का नाम। २ यहूदी। ३ एक देश का नाम।

इसराईली[1]—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब के वंशज। यहूदी [को०]।

इसराईली[2]—संज्ञा स्त्री० इसरायल की भाषा।

इसराईली[3]—वि० इसरायल देश संबंधी।

इसराज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सारंगी की तरह का बाजा। उ०—इधर परदादी चपाकली ने इसराज संभालकर पीलू का रियाज करना आरंभ किया।—शराबी, पृ० १७।

इसराफ—संज्ञा पु० [अ० इसराफ] फजूलखर्ची। अपव्यय [को०]।

इसरफील—संज्ञा पुं० [इब० इसराफील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो बार सुर फूंकेगा। पहली बार जीवित प्राणी मृत हो जायंगे और दूसरी बार सभी मृत जीवित हो जायंगे [को०]।

इसरार—संज्ञा पुं० [अ०] १ हठ। जिद। आग्रह। अनुरोध। उ०—तब वह इनकार और इसरार के लिए क्या बाकी छोडती है।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६२। २ सारंगी की तरह का एक बाजा।

इसरीⓊ†—वि० [हिं०] दे० 'ईश्वरीय'।

सलाम—संज्ञा पु० [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानी धर्म। मुहम्मद साहब का चलाया हुआ धर्म।

क्रि० प्र०—(कबूल) करना।

इसलामी—वि० [अ०] इसलामसंबंधी।

इसलाह—संज्ञा पु० [श० इस्लाह] संशोधन। दुरुस्त करना।

इसवरⓊ—संज्ञा पु० [सं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर'। उ०—इसवर सीय सेस चढे रथ ऊपर।—रघु०, पृ० १०६।

इसहाक—संज्ञा पु० [अ० इसहाक] इसलाम धर्म के एक पैगंबर।

इसाⓊ—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यो डोलै न डुलाया।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ५१२।

इसाई—वि० [हिं०] दे० 'ईसाई'।

इसानⓊ—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान'। उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६।

इसारतⓊ—संज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] संकेत। इशारा। उ०—मुख सो न कह्यो कछू हाथ की इसारत सो गारी दै दै आपसी किवारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ (शब्द०)।

इसिम—संज्ञा पु० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—सत सिपाहिक पूत इसिम मे दाग न लागै।—पलटू०, पृ० ३४।

इसी—सर्व० [हिं० इस+ही वा ई (प्रत्य०)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप बनाता है।

इसीकाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] दे० इषीका'।

इसे—सर्व० [सं० एष] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानकारक रूप।

इसैंⓊ—वि० [सं० इदृश] इस प्रकार। ऐसा।

इसौⓊ—वि० [हिं० ऐसा]। ऐसा। इस प्रकार।

इस्क—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इश्क'। उ०—तब इनको राग रंग को इस्क लग्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८८।

इस्कात—संज्ञा पुं० [अ० इस्कात] गिरना। पतन। २ गर्भपात। हमल गिरना।

इस्कूलⓊ†—संज्ञा पुं० [अं० स्कूल] दे० 'स्कूल'। उ०—कथा कहानी सिखन हित इस्कूलन मे जाहि।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १८०।

इस्ट[1]Ⓤ—संज्ञा पु० [सं० इष्ट] दे० 'इष्ट'। उ०—प्राय घरै घर औरही वरण इष्ट दे बीच।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५७।

इस्ट[2]—संज्ञा पुं० [अ०] पूर्व दिशा।

इस्टाम†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'स्टाम'। उ०—या मेरे अल्लाह, अब मैं क्यो कर कहूँ। इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ?—सैर०, पृ० ३०।

इस्टेशन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टेशन' उ०—इस्टेशन मे केवल दै ही कोस दूर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८।

इस्तगी—संज्ञा स्त्री० [अ० स्टिंग] जहाजो मे वह रस्सी जो पिछी में लगी होती है और जिससे पाल के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं।

क्रि० प्र०—चांपना।

इस्तकबाल—संज्ञा पु० [अ० इस्तिकबाल] स्वागत। अगवानी। उ०—चमन मे सुन खबर आने की इस्तकबाल को चलियां।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

इस्तखारा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिखारह] दैवी सहायता चाहना। ईश्वर से मंगलकामना करना। उ०—यहाँ नालो से मिलता है पियारा। अबस देखै है जाहिद इस्तखारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६।

इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तिमरारी] सब दिन रहनेवाला। जिसमे कुछ अदल बदल न हो। नित्य। अविच्छिन्न।

यौ०—इस्तमरारी बंदोबस्त=जमीन का वह बंदोबस्त जिसमे मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है। यह बंदोबस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किया था।

इस्तरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—देखो हम दो टोगी दिए। मर्द इस्तरी उनमे जिए।—कविता कौ०, भा४,पृ० ६५।

इस्तिंजा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिंजह] पेशाब करने के बाद मिट्टी के ढेले से इंद्रिय मे लगी हुई पेशाब की बूंदो को सुखाने की क्रिया जो मुसलमानो में प्रचलित है। उ०—खडे होकर इस्तिंजा मत करो।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१।

मुहा०—इस्तिंजे का ढेला=अनाहूत व्यक्ति। तुच्छ मनुष्य। इस्तिंजा लड़ना=अत्यंत मित्रता होना। दाँतकाटी रोटी होना। इस्तिंजा लड़ाना=अत्यंत मित्रता करना।

इस्तिकलाल संज्ञा पु० [अ०इस्तिकलाल] दृढ़ता। मजबूती। संकल्प की दृढता [को०]।

इस्तिगासा—संज्ञा पुं० [इस्तिगासह] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन। नालिश। फौजदारी का दावा [को०]।

इस्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी (=तह करनेवाली) स्तृ] धोबी का

वह औजार जिससे वह धोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उसकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिसमें कोयले के अंगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ परस्पर संधि करना। २ परिभाषा सिद्ध अर्थ। परिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—संज्ञा पु० [अ०] १ पृथक् करना। अलग रखना। २ अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—संज्ञा पु० [अ०] दृढ़ता। स्थिरता। पायदारी [को०]।

इस्तीफा—संज्ञा पु० [अ० इस्तीफ़ा] नौकरी छोड़ने की दरख्वास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—संज्ञा स्त्री० [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इस्तेमाल—संज्ञा पुं० [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—में लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) चार वरग जो लिंग के भाषा में नहीं होइ। स्त्री पुंस नपुंसकहि इस्त्रि नपुंसक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५४४। (ख) वर वृक्ष को इस्त्री भाँवरि देति है।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी, हिं० इस्तिरी] दे० 'इस्तरी'।

इस्त्रीजित—वि० [सं० स्त्रीजित्] स्त्रियों का गुलाम। स्त्रीभक्त। उ०—कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लछ लाघव सधान धरें आयुध के सूरे।—नंद० ग्र०, पृ० १८१।

इस्थिर—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कबीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढ़ा बारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'स्नान'। उ०—क्या जप क्या तप संयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कबीर ग्र०, पृ० ३२६।

इस्पज—संज्ञा पुं० [हिं० इसपंज] दे० 'इसपज'।

इस्पंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना = बुरी नजर दूर करने के लिये राई जलाना।

इस्पीच—संज्ञा स्त्री० [अ० स्पीच] वक्तृता। भाषण। लेक्चर। उ०—करनी कछु नहिं देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—संज्ञा पु० [अ०] नाम। संज्ञा।

यौ०—इस्मनवीसी = (१) गवाहों की सूची। (२) किसी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३ पटवारी की जगह के लिये जमींदार का किसी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इसलाम'। उ०—बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'श्लोक'। उ०—कथा औ कवित इस्लोक रसरी बटै बकै बहु बाय मुख मूढ़ भारी।—कबीर रे०, भा० २, पृ० ५।

इस्सर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुरुनाथ गोसाईं। पंथ बीच इस्सर की नाईं।—इंद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर पैठें दरिद्दर निकसै।—(लोक०)।

इह[1]—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक में। इस काल में। यहाँ

इह[2]—संज्ञा पुं० यह संसार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उ निवेदित इह के निवासी।—हरी घास०, पृ० १६।

यौ०—इहामुत्र।

इह[3]—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—ते मर छाँडन अवनन माँही। पुरुषपराव इह पौरुष नाही।—नंद ग्रं०, पृ० १३५।

इहइ—सर्व० [हिं० यह+ही] दे० 'यही'।

इहकाल—संज्ञा पुं० [सं०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'एहतमाम' [को०]।

इहतिमाल—संज्ञा पु० [अ०] [वि० इहतिमाली] १ संभावना। २. संदेह [को०]।

इहतियाज—संज्ञा पुं० [अ०] १ अभाव। आवश्यकता। २ अवसर।

इहतियात—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तईं गिरह से कभी खोलती नहीं। है जुल्फ को भी अपने परेशाँ की इहतियात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १९१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागों की अपने क्यों न करे 'दर्द' परवरिश। हर बागवाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १९१।

यौ०—इहतियाती कार्रवाई = अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतियातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहतिलाम—संज्ञा पुं० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे संबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—संज्ञा पु० [सं०] यह संसार। जगत्। दुनिया। उ०—किंतु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिये विवश हुआ।—रंगभूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [सं०] इहलोकसंबंधी। इस लोक का। सांसारिक। २ इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ—क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवैं—क्रि० वि० [सं० इह] यहीं। इसी स्थान पर।

इहसान—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानस, २। ३३।

इहामुत्र—संज्ञा पु० [सं०] यह लोक और परलोक। उ०—स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागैं सुख दोइ।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—संज्ञा पु० [सं० ईहामृग] दे० 'ईहामृग'।

इहि—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—कहन लगे इहि भवन कौन के।—नंद० ग्र०, पृ० २१४। २ दे० 'इस'। उ०—निहुँ काल में प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नंद० ग्र०, पृ० १४३।

इहै—सर्व० [हिं०] दे० 'यही'। उ०—धरनी धन धाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७।

क्रि० प्र०—लगाना।

ईंदर†—संज्ञा पुं० [देश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी। ईन्नर।

ईंधन—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १. जलाने की लकड़ी, कोयला, कंडा आदि। जलावन। जरवनी। उ०—विद्य न ईंधन पाइए सायर जुरे न नीर। परै उपाम कुबेर घर जो विपच्छ रघुबीर।—तुलसी (शब्द०)। २ किसी यंत्र को गतिशील करने के लिये उसमें दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि। ३ ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने में सहायक हो।

ई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

ई[2]ⓤ—सर्व० [सं० ई = निकट का संकेत] यह। उ०—(क) कहहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार। एक राम नाम जाने बिना भव बूडि मुआ संसार।—कबीर (शब्द०)। (ख) विरल रसिक जन ई रस जान।—विद्यापति, पृ० ३०८।

ई[3]—अव्य० [सं० हि०] जोर देने का शब्द। ही। उ०—पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास। नित प्रति पून्यो ई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी (शब्द०)।

ई[4]—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

ईकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [को०]।

ईकारांत—वि० [सं० ईकारान्त] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो। वह शब्द जिसके अंत में ईकार हो।

ईक्षⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु] दे० 'ईख'। उ०—मयी सरकरा ईक्ष रस व्यापि मिठाई माहिं। सुंदर ब्रह्म सु जगत है, जगत ब्रह्म द्वै नाहिं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०२।

ईक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ देखनेवाला। दर्शक। २ विचार या विमर्श करनेवाला [को०]।

ईक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १ दर्शन। देखना। २ आँख। उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी।—वेला, पृ० २२। ३ दो (२) की संख्या का सूचक शब्द (को०)। ४. विवेचन। विचार। जाँच।

विशेष—इसमें अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अप, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, प्रतीक्षण, अभीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षणिक, ईक्षणीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १ दैवज्ञ। ज्योतिषी। २. सामुद्रिक जाननेवाला।

ईक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दृष्टि। दर्शन। २. विवेचन। ३. आत्मज्ञान [को०]।

विशेष—इसमें परि, अप, सम्, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख। दृष्टि [को०]।

ईक्षित—वि० [सं०] १ दृष्ट। देखा हुआ। २. विवेचित [को०]।

ईक्षिता—वि० [ईक्षितृ] देखनेवाला [को०]।

ईख—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] घर जाति का एक प्रकार जिसके डंठल में मीठा रस भरा रहता है। इसके रस से गुड़ चीनी और मिस्री आदि बनती है। डंठल में ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गेंड़ा कहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में इसकी बुआई चैत वैसाख में होती है कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है। डंठलों को कोल्हू में पेरकर रस निकालते हैं। रस को छानकर कड़ाहे में औटाते हैं। जब रस पककर सूख जाता है तब गुड़ कहलाता है। यदि रस कच्चा हुआ तो औटाते समय कड़ाहे में रेंड़ी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठंढा होने पर उसमें कलमे या रवे पड़ जाते हैं। इसी राब से जूमी या चोटा दूर करके खाँड़ बनाते हैं। खाँड़ और गुड़ गला कर चीनी बनाते हैं।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं। ऊख, गन्ना और पौंढा। (क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है। इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे हरे रंग की होती हैं। इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होती, केवल नीचे दो तीन गाँठों तक होती हैं। इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं। इसके प्रधान भेद पौंड, मतना, कुसवार, लखड़ा, सरौनी आदि हैं। गुड़ चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती होती है। (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौड़ी होती हैं। इसका छिलका कड़ा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है। इसकी गाँठों में जटाएँ अधिक होती हैं। इसके कई भेद हैं, जैसे,—अगौल, दिकचन, पसाही, काला गन्ना, केतारा, बड़ौखा, तका, गोंडारा। इससे जो चीनी बनती है उसका रंग साफ नहीं होता। (ग) पौंढा—यह विदेशी है। चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं इसका डंठल मोटा और गूदा नरम होता है। छिलका कड़ा होता है और छीलने से बहुत जल्दी उतर जाता है। यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम में आता है। इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढा है। राजनिघंटु में ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंड्रक (पौंढा) भीरुक, वंशक (बड़ौखा), शतपोरक (सरौती), कांतार (केतारा), तापसेक्षु, काष्टेक्षु (लखड़ा), सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गंडा), कोशकृत (कुशवार या कुसियार)।

ईखतⓤ—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

ईखनाⓤ—क्रि० स० [सं०, ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना। अवलोकना।—(डिं०)।

ईखराज—संज्ञा पुं० [हि० ईख + राज] ईख बोने का प्रथम दिन।

ईच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—जो प्रभुन की ईच्छा भई सो सही।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९।

ईछनⓤ—संज्ञा पुं० [सं० ईक्षण = आँख, प्रा० *ईच्छन] आँख। उ०—दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन। ये तेरे सवतें बिषम ईछन तीछन बान।—बिहारी र०, दो० ३४९।

ईछनाⓤ—क्रि० स० [सं० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यों कोउ जानै त्यों ही करि ईछो। जैसो ही आपुनो भाव है सुंदर तैसोहि है दृग खालि कै बीछो।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७।

ईछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—बिमरी सबहि जुद्ध कै ईछा।—मानस, ६।४६।

ईछी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—त्रेप भये विप, भावे न भूषण भोजन को कुछ हूँ नहिं ईछी।—देव (शब्द०)।

ईजति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैव काज झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।—भूषण ग्र०, पृ० ९६।

ईजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इजह्] दुख। तकलीफ। पीडा। कष्ट। उ०—जस मनमा तस आगे आवै, कहै कबीर ईजा नहि पावै।—कबीर सा०, पृ० ४४४।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

ईजाद—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी नई चीज का बनाना। नया निर्माण। आविष्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ईजान—वि० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला। यजमान। २ यज्ञ करानेवाला [को०]।

ईठ(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० इष्ट, प्रा०इट्ठ] १ जिसे चाहें। प्रिय। मित्र। सखा। उ०—(क) यार दोस्त बोले जा ईठ।—खुमरो (शब्द०)। (ख) ज्यौं त्यौं हूँ न मिलै कहूँ केशव दोऊ ईठ।—केशव (शब्द०)। (ग) करै निरादर ईठ को निज गुमान गहि बाम।—पद्माकर ग्र० पृ० १७७। २ चेष्टा। यत्न। उ०—केशव कैसहुँ ईठन दीठि ह्वै दीठ परे रति ईठ कन्हाई।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४६।

ईठना(पु)—क्रि० अ० [सं० इष्ट+हिं० ना (प्रत्य०)] चाह करना। इच्छा करना।

ईठा(पु)—वि० [सं० इष्ट] अभिलषित। उ०—नानक बारवाँ हाटु अनत सुख ईठा।—प्राण०, पृ० १४५।

ईठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि, प्रा० इट्ठि] १ मित्रता। दोस्ती, प्रीति। उ०—नहि सूनें घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गडी सु चित नाही करति करि ललचौंही दीठि।—बिहारी र०, दो० ५८२। २ चेष्टा। यत्न। उ०—सखियाँ कहैं सु साँच है लगत कान्ह की डीठि। कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरयो आजु सो ईठि।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७। ३ सखी। उ०—लोनें मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि। दूनी ह्वै लागन लगी, दिऐं दिठौना दीठि।—बिहारी र०, दो० २७।

ईठी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ माला। बरछा। २. दंड।

ईठी[2]—वि० [सं० इष्ट] प्यारी।

ईठी(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि] प्रीति। उ०—लागै न बार मृनाल के तार ज्यो टूटैगी लाल हमैं तुम्हैं ईठी।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २५।

ईठीदाडू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ईठी+दंड] चौगान खेलने का डंडा।

ईडन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसा करना। प्रशंसना [को०]।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० ईडा=स्तुति] [वि० ईडित, ईड्य] स्तुति। प्रशंसा। उ०—(क) कीन्हि बिडोजा ईडि जिमि बार बार सिर नाय। कहूँ अभय वर दीन्ह हरि पठयो त्यहि समुझाय—लल्लू (शब्द०)। (ख) रति मांगी तुमते करि ईडा। पारथ करहु सग मम क्रीडा।—सबल (शब्द०)।

ईडित—वि० [सं० ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो। प्रशंसित। उ०—तीसे अग्र अनेक हाथ गिरजा, लीन्हे महा ईडितैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २६२।

ईडुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईडुरी'।

ईड्य—वि० [सं०] पूज्य। स्तुति के योग्य।—प्रशंसित। उ०—अहो ईड्य नव घन तन श्याम। तडिदिव पीत बसन अभिराम।—नंद० ग्र०, पृ० २६८।

ईढ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्ट प्रा० इट्ठ अथवा सं० हठ > प्रा० *पढ, *अढ *ईढ] [वि० ईढ़ी] जिद। हठ। उ०—बोलिये न झूठ ईढ मूढ पैं न कीजई। दीजयै जो बिताहाय भूलिहूँ न लीजई।—केशव (शब्द०)।

ईत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—ईत तणो नह भीत अगजी मान दुजा मन मेर।—रघु० रू०, पृ० ६२।

ईतर[1](पु)—वि० [हिं० इतराना] इतरानेवाला। ढीठ। शोख। गुस्ताख। उ०—गई नंद घर कौं सबै, जसुमति तहँ भीतर। देखि महरि कौं कहि उठी सुत कीन्हो ईतर।—सूर०, १। १।२१०४।

ईतर[2]—वि० [सं० इतर] निम्न श्रेणी का। साधारण। नीच। उ०—कोटि विलास कटाच्छ कलोल बढ़ावै हुलासन प्रीतम हीतर। यो मनि यामैं अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कही ईतर। सूर०, १०।१४८६।

ईतरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इतरता] भेदभाव। अन्यत्व। परायापन। भिन्नता। उ०—ईहा और ईरषा भानौं। ईतरता कबहूँ नहिं आनौं।—सुंदर० ग्र० भा० १, पृ० २१६।

ईति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख) अनावृष्टि। (ग) टिड्डी पडना। (घ) चूहे लगना। (च) पक्षियों की अधिकता। (छ) दूसरे राजा की चढाई। उ०—दसरथ राज न ईति भय नहिं दुख दुरित दुकाल। प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब सब सुख सदा सुकाल।—तुलसी ग्र०, पृ० ६८। २ बाधा। उ०—अब राघे नाहिनै ब्रजनीति। सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति।—सूर (शब्द०)। ३. पीडा। दुख। उ०—चारुनी ओर की वायु बहै यह सीत की ईति है बीस बिसा मैं। राति बडो जुग सी न सिराति रह्यो हिम पूरि दिशा विदिशा मैं।—गोकुल (शब्द०)।

ईतिभय—संज्ञा पुं० [सं० ईति+भय] ईति नामक विपत्ति की आशंका।

ईथर—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त शून्य स्थल मे व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणु के बीच मे भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का सचार इसी के द्वारा होता है। २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गधक के तेजाब से बनता है।

विशेष—बोतल मे अलकोहल और गधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आँच द्वारा उसे दूसरी बोतल मे

टपका लेते हैं, जो ईथर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जमने-वाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड जाता है और बहुत शीत पैदा करता है, इसलिये बरफ जमाने मे काम आता है। रासायनिक क्रियाओ मे इससे बडे बडे कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोडी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम मे लाया जाता है। यह जरमनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद[1]— सज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानो का एक त्योहार। रमजान महीने मे तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पडता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ०- ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड।-शेर०, भा० १, पृ०७३१।

मुहा०-ईद का चाँद = दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति। ईद का चाँद होना = बहुत कम दीख पडना। ईद मनाना = प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद[2]ⓤ--सज्ञा पु० [स० ईन्दु] चद्रमा। इदु। उ०---हौं दरोग जो कहौं ईद उगमे कुहु निसि।--पृ० रा०, ६४। २०४४।

ईदगाⓤ--सज्ञा स्त्री० [फा० ईदगाह] दे० 'ईदगाह'। उ०---बडी मसीत ईदगावाली।—रा० रू०, पृ० २८४।

ईदगाह सज्ञा स्त्री० [अ० ईद + फा० गाह] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढते हैं।

ईदिया— सज्ञा पु० [अ० ईदियह्] दे० 'ईदी' [को०]।

ईदी- सज्ञा स्त्री० [अ०] १ त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २ किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यो को देते हैं। ३ वह बेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४ वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य मे मौलवियो को शिष्य देते हैं। ५ नौकरो या लडको को त्योहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा--सज्ञा स्त्री० [अ० ईदुज्जुहह्] मुसलमानो का एक मुख्य त्योहार जिसमे भेंड, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [को०]।

ईदुलफितर--सज्ञा स्त्री० [अ० ईदुलफित्र] दे० 'ईद'।

ईदृश[1]— क्रि० वि० [स०] [स्त्री० ईदृशी] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदृश[2]—वि० इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीतⓤ—वि० [हिं० इंद्रीजीत] दे० 'इद्रियजित्'। उ०—मुज को आडवे दवजर कोपिन। ईस विध जोगी ईद्रीजीत।—रामानद०, पृ० ४६।

ईप्सन--सज्ञा पुं० [स०] प्राप्त करने की अभिलाषा करना [को०]।

ईप्सा-सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० ईप्सित, ईप्सु] १ इच्छा। चाहा। अभिलाषा। उ०-मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी काक्षा, जगत् की उपलब्धियाँ सब है लुभानी भाँति।-हरीघास०, पृ० १३। २ प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित—वि० [स०] चाहा हुआ। अभिलषित। उ०--(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।--करुणा०, पृ० १४।

ईप्सु--वि० [स०] चाहनेवाला। वाछा करनेवाला।

ईफाय-सज्ञा पुं० [अ० ईफाय] वचनपालन। वचन पूरा करना [को०]।

ईफायडिगरी--सज्ञा स्त्री० [अ० ईफाय + अ० डिगरी] डिगरी रुपया अदा कर देना। जर डिगरी बेबाक कर देना।

ईफायवादा-सज्ञा पुं० [अ० ईफाय + फा०ए-अ० वादह्] वादे को निभाना [को०]।

ईबीसीवीⓤ--संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] सिसकारी का शब्द। 'भी शब्द जो संभोग के अत्यत आनद के समय मुँह से निकलता उ०--गूजरी बजावैं रव रसना सजावैं कर चूरी छमकावैं गहति गहकि कै। मुख मोरि त्योरी तोरि भौंहैं नासिका भरैं देव ईबीसीवी बोल बोलति पहकि कै।—देव (शब्द०)।

ईमन—सज्ञा पु० [फा० यमन] सपूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐ उ०-आसा करि लागि पिय सो रटपचम सुर गा ईमन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, २८८।

ईमनकल्यान -सज्ञा पु० [हिं० ईमन + सं०कल्याण] एक मिश्र राग का नाम।

ईमाँ--संज्ञा पुं० [अ० ईमान] दे० 'ईमान'। उ०---ईमाँ की क्या दुश्मने जानी है हमारा।-भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५।

ईमा-सज्ञा पु० [अ०] १ इशारा। सकेत। आदेश। हुक्म। २ तात्पर्य [को०]।

ईमान--सज्ञा पुं० [अ०] १ विश्वास। आस्था। आस्तिक्य बुद्धि उ०-दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई सा राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लाना = विश्वास या आस्था रखना। जैसे--ईसा कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।

२. चित्त की सद्वृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म सत्य। जैसे (क) ईमान से कहना, झूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोडो। (ग) यह तो ईमान की बात नहीं है।

क्रि० प्र०—खोना। —छोडना। —डिगना। —डिगा देना। —डोलना। —डोलाना।

मुहा०--ईमान की कहना = सच कहना। न्याय की बात कहना। ईमान जाना = नीयत बिगडना। उ०-उधर है जेल की जहमत इधर है कौम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ईमान जाता है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६५५। ईमान ठीक न होना = धर्मभाव दृढ न रहना। ईमान देना = सत्य छोडना धर्म विरुद्ध कार्य करना। ईमान मे फर्क आना = धर्म भाव ह्रास होना। नीयत बिगडना। ईमान लाना = दृढ विश्वास करना। ईमान से कहना = सच सच कहना।

ईमानदार—वि० [अ० ईमान + फा० दार] १. विश्वास करनेवाला। २ विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३ सच्चा। दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५ न्याय का पक्षपाती।

ईमानदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० ईमान + फा० दारी] १ ईमानदार स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २ सत्यनिष्ठा। दियानतदारी [को०]।

ईर[1]†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईख'।

ईर[२]—सज्ञा पुं० [स०] वायु [को०]।

ईरखा(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० ईर्षा] दे० 'ईर्षा'। उ०—करै ईरखा। सो जु तिय मनभावन सो मान।—मतिराम ग्र०, पृ० २९४।

ईरज—सज्ञा पुं० [स०] वायुपुत्र हनूमान् [को०]।

ईरण[१]—वि० [स०] विक्षुब्ध करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईरण[२]—सज्ञा पुं० १ हवा। पवन। २ जाना। गमन। ३ भेजना। प्रेपित करना। प्रेषण। ४ कष्ट से मल का निकलना। ५ कहना। कथन [को०]।

ईरपाद—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

ईरपुत्र—सज्ञा पुं० [स०] हनूमान् [को०]।

ईरमद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० इरम्मद] दे० 'इरम्मद'।

ईरान—सज्ञा पुं० [फा०] [वि० ईरानी] फारस देश।

ईरानी[१]—वि० [फा०] ईरान से सबधित। ईरान का [को०]।

ईरानी[२]—सज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०]।

ईरानी[३]—सज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०]।

ईरिण[१]—सज्ञा पुं० [स०] बलुआ मैदान। ऊसर जमीन।

ईरिण[२]—वि० [सं०] ऊसर [को०]।

ईरित(पु)—वि० [स०] प्रेपित। प्रेरित। उ०—ऊधो विधि ईरित भई है माग कीरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की।—घनानद, पृ० २०२। २ कहा हुआ (को०)। ३ काँपता हुआ। हिलता डुलता हुआ [को०]। ४ गया हुआ। गत [को०]।

ईर्म[१]—वि० [सं०] १ क्षुब्ध। २ निरतर गतिशील। ३ उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईर्म[२]—सज्ञा पुं० १ बाहु। २ व्रण। फोडा [को०]।

ईर्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] यतियो की भाँति भ्रमण करना [को०]।

ईर्यासमिति—सज्ञा पुं० [स०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे देखकर चलने का नियम। यह नियम इस कारण रखा गया है कि जिसमे आगे पडनेवाले कीडे फतिगे दिखाई पडें।

ईर्वारु—सज्ञा पुं० [सं०] ककडी [को०]।

ईर्षणा(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्यण] ईर्ष्या। हसद। डाह। उ०—पर की पुण्य अधिक लखि सोई। तबै ईर्षणा मन मे होई।—विश्राम (शब्द०)।

ईर्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु] दूसरे की बढती देखकर होनेवाली जलन। डाह। हसद। उ०—तजि द्वेष ईर्षा द्रोह निंदा देश उन्नति सब चहैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१४।

ईर्षारति—सज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुसक व्यक्ति [को०]।

ईर्षालु—वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला। दूसरे की बढती देखकर जलनेवाला। दूसरे के उत्कर्ष से दुखी होनेवाला।

ईर्षापड—सज्ञा पुं० [सं० ईर्षाषण्ड] एक प्रकार का अर्धनपुसक व्यक्ति। हिजडा टट्टू।

ईर्षित—वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो।

ईर्षु—वि० [सं०] डाह करनेवाला। ईर्षालु।

ईर्ष्य—वि० [सं०] ईर्षालु [को०]।

ईर्ष्यक[१]—सज्ञा पुं० [स०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

ईर्ष्यक—वि० ईर्षालु। डाह करनेवाला [को०]।

ईर्ष्या—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'ईर्षा'। उ०—ईर्ष्या हमारे चित मे क्षण मात्र भी हटती नहीं।—भारत०, पृ० १८६।

ईर्ष्यालु—वि० [सं०] दे० 'ईर्षालु' [को०]।

ईर्ष्य—वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्य' [को०]।

ईल[१]—सज्ञा पु० [देश०] एक बनैला जतु।

ईल[२]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की मछली। बाँग।

ईलि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ यष्टि। लाठी। लगुड। २ एक शस्त्र। छोटी असि या कटार [को०]।

ईली—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०]।

ईश[१]—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० ईशा, ईशी] १ स्वामी। मालिक। उ०—जो सवते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै बरु दीजत।—रामचद्र०, पृ० १६१। २. राजा। ३ ईश्वर। परमेश्वर। ४ महादेव। शिव। रुद्र। उ०—चद्रहि बदत हैं सब केशव ईश त बदनता अति पाई।—रामच०, पृ० १६१

यौ०—ईशकोण।

५ ग्यारह की सख्या। ६ आर्द्रा नक्षत्र। ७ एक उपनिषद् जो शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि शाखा के अतर्गत है। इसका पहला मत्र 'ईश' शब्द से प्रारभ होता है। ईशावास्य उपनिषद्।

यौ०—देवेश। नरेश। वागीश। सुरेश।

८ पारद। पारा।

ईश[२]—वि० १ ऐश्वर्यशाली। २ सामर्थ्यवान् [को०]।

ईशकोण—सज्ञा पुं० [स०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०]।

ईशता—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व। प्रभुत्व।

ईशत्व—सज्ञा पुं० [स०] ईश्वरत्व। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०—उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममे नही।—भारत०, पृ० १५५।

ईशदगरी—सज्ञा स्त्री० [स०] काशी [को०]।

ईशपुरी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'ईशनगरी' [को०]।

ईशबल—सज्ञा पुं० [स०] पाशुपत नामक अस्त्र [को०]।

ईशसख—सज्ञा पु० [स०] कुबेर [को०]।

ईशा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऐश्वर्य। २ ऐश्वर्यसपन्न स्त्री। ३ दुर्गा।

ईशान[१]—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० ईशानी] १ स्वामी। अधिपति। प्रभु। २ शिव। महादेव। रुद्र। ३ ग्यारह की सख्या। ४. ग्यारह रुद्रो मे से एक। ५ शिव की आठ मूर्तियो मे से एक। सूर्य। ६ पूरब और उत्तर के बीच का कोना। ७ आर्द्रा नक्षत्र (को०)। ८ प्रकाश। ज्योति (को०)। ९ शमी वृक्ष (को०)।

ईशान[२]—वि० १ शास्ता। शासक। २ ऐश्वर्यशाली। ३. सपन्न [को०]।

ईशानी—सज्ञा स्त्री० [स०]१ दुर्गा। २ सेमल का वृक्ष [को०]।

ईशिता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आठ प्रकार की सिद्धियो मे से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'ईशिता'।

ईशी[1]—वि० [सं० ईशिन्] १. शासन रखनेवाला। २. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी[2]—सज्ञा पुं० १ देवता। २ पति। ३ मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर[1]—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।

यौ०—ईश्वरप्रणिधान। ईश्वराधिष्ठान। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।

३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों मे से एक जो ससार का कर्त्ता, अपादान, अतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से सपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। पारा। ८. पीतल। ९ कामदेव। पुष्पधन्वा (को०)। १० एक सवत्सर [को०]।

ईश्वर[2]—वि० समर्थ। शक्तिमान्। सपन्न।

ईश्वरता—सज्ञा स्त्री० [स०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहिं ईश्वरता अंटकी वेद मे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग मे है ईश्वरता तो है मनुष्यता मे ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिषेध—संज्ञा पुं० [स०] ईश्वर मे अविश्वास। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि०[स०] ईश्वर मे विश्वास या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [स०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिधान—सज्ञा पु० [स०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमो मे से अतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर मे अत्यत श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—सज्ञा पुं० [स०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—सज्ञा पु० [सं०] १ प्राधान्य। २ ऐश्वर्य। ३ सामर्थ्य [को०]।

ईश्वरवाद—सज्ञा पुं० [सं० ईश्वर + वाद] ईश्वर को जगत् का कर्ता माननेवाला मत जिसमे भगवान् के दया दाक्षिण्य की झलक जगत् के नाना रूपों और व्यापारो मे रहस्य की दृष्टि से देखी जाती है। उ०—ईसाइयो मे जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [स० ईश्वर + वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—सज्ञा स्त्री० [स०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप (को०)।

ईश्वरसखा—सज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सखा, कुबेर।

ईश्वरसद्म—सज्ञा पुं० [स०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—सज्ञा स्त्री० [स०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. दुर्गा। २ लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

ईश्वराधीन—वि० [स०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]।

ईश्वरी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'ईश्वरा'। २ नाकुली, क्षुद्रजटा, वध्या कर्कटी, लिंगिनी आदि पौधे [को०]।

ईश्वरी[2]—वि०, दे० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १. ईश्वर सबधी। उ०—हे भाव सबके आननों पर ईश्वरीय प्रसाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपासना—सज्ञा स्त्री० [स०] ईश्वरसेवा। ईश्वर की पूजा [को०]

ईष—सज्ञा पुं० [स०] १ आश्विन मास। कुआर। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईषण—वि० [स०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईषणा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. शीघ्रता। तेजी। २ तेज गति [को०]।

ईषत्[1]—वि० [स०] थोडा। कुछ। कम। अल्प।

यौ०—ईषद् उष्ण। ईषद् हास्य।

ईषत्[2]—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आशिक रूप मे [को०]।

ईषत्कर—वि० [स०] १. आशिक रूप मे करनेवाला। कम करनेवाला। २ आसन [को०]।

ईषत्कार्य—वि० [स०] १. अत्यत आसान। २ अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईषत्पुरुष—सज्ञा पुं० [स०] क्षुद्र व्यक्ति [को०]।

ईषत्स्पृष्ट—सज्ञा पु० [स०] वर्ण के उच्चारण मे एक प्रकार का आभ्यतर प्रयत्न जिसमे जिह्वा, तालु, मूर्धा और दत को तथा दाँत, ओष्ठ को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईषत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईषद्—वि० [स०] दे० 'ईषत्'।

ईषद—वि० [स० ईषद्, हिं० ईषद] दे० 'ईषद्'।

ईषद्हास—सज्ञा पुं० [स० ईषद्हास] हल्की हँसी। मुस्कराहट। उ०—ईषदहास दत दुति विगसित मानिक मोती अरे जनु पोई।—सूर०, १०।२१०।

ईषदुष्ण—वि० [स०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईषद्दर्शन—सज्ञा पुं० [स०] १. साधारण दृष्टि। स्वल्प दृक्पात। २ वितवन [को०]।

ईषद्धास सज्ञापु० [स० ईषद् + हास्य] हल्की मुसकान। मुस्कराहट[को०]।

ईषना—सज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—सुत वित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।—मानस, ७।७१।

ईषल्लभ—वि० [स०] अल्प मूल्य मे उपलब्ध [को०]।

ईषा—सज्ञा स्त्री० [स०] गाडी या हल में वह लबी लकडी जिसके सिरे पर जुआ बाँध कर बैल को जोतते हैं। हरसा। हरिस।

ईषादंड—सज्ञा पुं० [स० ईषादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईषादत[1]—सज्ञा पुं० [सं० ईषादन्त] १. लबे दाँत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दाँत [को०]।

ईषादत[2]—वि० लबे दाँतोवाला [को०]।

ईषिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी की आँख का खोडरा या गोलक। २ चित्रकारी मे रग भरने की कलम। कूँची। ३. बाण। ४. सिरकी। सींक।

ईपिर—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग [को०] ।

ईपीका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईषिका' [को०] ।

ईष्म—सज्ञा पुं० [स०] १. वसत ऋतु । २. कामदेव । मदन [को०] ।

ईष्व—सज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०] ।

ईस(पु)—सज्ञा पुं० [स० ईश, प्रा० ईस] दे० 'ईश' । उ०—तेहि द्विज वदु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३०७ ।

ईसन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण । पूरब और उत्तर के बीच का कोना । उ०—सतमी पूनिउँ पायव आछी । अठइँ अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसवगोल—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसवगोल' ।

ईसर[1](पु)—सज्ञा पुं० [स० ऐश्वर्य] धनसपत्ति । ऐश्वर्य । वैभव । उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तें रोवा । अब ईसर भा दारिद खोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसर[2](पु)—सज्ञा पुं० [स० ईश्वर प्रा० इस्सर, ईसर] दे० 'ईश्वर' । उ०—ईसर केर घट रन वाजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ११७ ।

ईसरगोल—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसवगोल' ।

ईसरी(पु)—[सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' ।

ईसवी—वि० [अ०] ईसा से सबध रखनेवाला ।

यौ०—ईसवी सन् = ईसा मसीह के जन्मकाल से चला हुआ सवत् ।

विशेष—यह सवत् पहली जनवरी से आरभ होता है और इसमे प्राय ३६५ दिन होते हैं । ठीक ठीक सौ वर्ष का हिसाब पूरा करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की सख्या चार से पूरी विभक्त हो जाती है, तब फरवरी मे एक दिन बढ़ा दिया जाता है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है । इसमे और विक्रमीय सवत् मे ५७ वर्ष का अतर है ।

ईसा—सज्ञा पुं० [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य ।

यौ०—ईसामसीह = ईसा जिनका धर्माभिसिचन किया गया था ।

ईसाई—वि० [फा०] ईसा को माननेवाला । ईसा के बनाए धर्म पर चलनेवाला । क्रिश्चियन । उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५६४ ।

ईसान(पु)—सज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान' ।

ईसानी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० ईशानी] दे० 'ईशानी' ।

ईसार—सज्ञा पुं० [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करना [को०] ।

ईसारपेशा—वि० [अ० ईसार + फा० पेशह्] परोपकारी । अपना स्वार्थत्याग करके दूसरो का हित करनेवाला [को०] ।

ईसुर(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—जौं ईसुर हो तो कहूँ सुनतो करुना बैन ।—श्यामा०, पृ० १६६ ।

ईसुरी[1](पु)—सज्ञा स्त्री० [स० ईश्वरी] दुर्गा । पार्वती । उ०—इनके नमक तें ईसुरी हमको करै रन में अदा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।

ईसुरी[2]—वि० [स० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' । उ०—दस औतार ईसुरी माया करता करि जिन्ह पूजा । कहै कबीर सुनो हो साधो उपजै खपै सो दूजा ।—घट०, पृ० २६४ ।

ईस्ट—सज्ञा पुं० [अ०] पूरब । पूर्व दिशा ।

ईस्वर(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] 'ईस्वर' । उ०—ऐगें सुजस सुपंथ मैं ईस्वर सबकौं देत ।—हम्मीर०, पृ० ४१ ।

ईस्वरता(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईश्वरता' । उ०—श्री गुसाईं जी वाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६ ।

ईहग—सज्ञा पुं० [सं० ईहा = इच्छा + ग = गमन करनेवाला] कवि । चारण ।—(डिं०) ।

ईहाँ(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'यहाँ' । उ०—इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे । जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे ।—नद० ग्रं०, पृ० ११७ ।

ईहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईहित] १. चेष्टा । उ०—सूछम समुझि परासयहि ईहा साभिप्राय । कर जोरत लखि हरिहि तिय लिख कज्जल दृग लाय ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६३ । २. उद्योग । ३. इच्छा । वाछा । ४. लोभ ।—(डिं०)

ईहाम—सज्ञा पु० [अ०] भ्राति । भ्रम । वहम [को०] ।

ईहामृग—सज्ञा पुं० [स०] १. नाटक का एक भेद जिसमे चार अंक होते हैं । इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है । इसकी कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है । कुछ लोग इसमें एक ही अक मानते हैं । मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक इसमे ईहा करता है । अत इसे ईहामृग कहते हैं । २ भेडिया ।

ईहार्थी—वि० [स० ईहार्थिन्] [वि० स्त्री० ईहार्थिनी] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति के लिये यत्नशील [को०] ।

ईहावृक—सज्ञा पुं० [सं०] लकडबग्घा ।

ईहित—वि० [सं०] इच्छित । ईप्सित । चाहा हुआ । वांछित ।